लेख-सूची।

बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अरबी कविता	श्रीयुत महेशप्रसाद (मौलवी आलिम) ...	१७४
२	अरबी का कालिदास	श्रीयुत महेशप्रसाद (मोलवी आलिम) ...	३२७
३	आकांक्षा	पण्डित शिवकुमार त्रिपाठी	२७७
४	आत्मदशा	पण्डित शिवकुमार त्रिपाठी	१
५	आर्त्तनाद	पण्डित शिवकुमार त्रिपाठी	२२५
६	आर्य-बाला	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय	७२
७	इतिहास और राजनीति	प्रोफ़ेसर बेनीप्रसाद एम० ए०	११४
८	कवि	श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त	२३५
९	कविराज राजशेखर	पण्डित भूपनारायण दीक्षित	३९
१०	कँवर-जाति का 'गौरा' त्योहार	श्रीयुत मनोहरदास वैष्णव	४७
१	काबुल के स्वर्गवासी अमीर हबीबुल्लाख़ां ...	श्रीयुत गुरुनारायण मेहरोत्र, बी० ए० ...	३०३
२	क्षत्रप-वंश का इतिहास	साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ ...	१२३
३	गणित से लाभ	श्रीयुत गोपालदास झालानी, बी० ए० ...	२५८
४	गीताञ्जलि में दुःख	पण्डित मुकुटधर	२८६
१५	गीता-रहस्य-विवेचन	पण्डित मुक्तिनारायण सुकुल	२०१
१६	गुरुकुल	श्रीयुत कालिदास कपूर, बी० ए०	८९
१७	ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड में कृषि-सुधार	श्रीयुत रामस्वरूप, एम० ए०	२४०
१८	गोस्वामी तुलसीदासजी के समय की कुछ प्राचीन प्रतियों और प्रचलित प्रतियों के पाठ ...	श्रीयुत जगन्मोहन वर्मा	७४
१९	चित्र-परिचय	सम्पादक	५६, ११२, १६८, २२४, २७५ और ३३२
२०	छत्तीसगढ का प्राचीन इतिहास ...	श्रीयुत मौलिप्रसाद श्रीवास्तव	१३५
२१	जर्मनी में क़ैदी हिन्दुस्तानी सिपाही ...	श्रीयुत सेंट निहालसिंह, (लन्दन) ...	१००
२	जीवन्मुक्त-पञ्चक	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०	११३
३	जैन-सूत्र और बौद्ध मत के ग्रन्थ, 'धम्म-पद' की परस्पर समता...	उपाध्याय जैन-मुनि आत्माराम	९५
३	डाक्टर विलसन	सेंट निहालसिंह, (लन्दन)	२१४
५	डायरी की कुछ बातें	श्रीयुत रामकुमार खेमका, न्यूयार्क (अमेरिका) ...	१५५
६	दुःख में	श्रीयुत पण्डित मुकुटधर	१५४

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२७	नीगरो जाति का प्रधान शिक्षालय, टसकेजी	अमेरिका का एक यात्री	२६१ और २९७
२८	नेक कमाई	श्रीयुत ज्वालादत्त शर्मा	२३६
२९	परिग्रह (कविता)	श्रीयुत रायकृष्णदास	१७
३०	पश्चिमी क्षत्रप-वंश का इतिहास	साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ	२०७, २४५ और २९१
३१	पाठशालाओं के उपयोग	श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, एम ए०	७९
३२	पुस्तक-परिचय	सम्पादक	५५, ११०, १६५, २२३, २७५ और ३३२
३३	पृथ्वी और उसके खनिज पदार्थ	श्रीयुत कृष्णकुमार माथुर, बी० एस-सी०, (लन्दन)	३१४
३४	प्राचीन भारत में शिल्प-कला	श्रीयुत दिनेशप्रसाद वर्म्मा और नन्दकुमारसिंह	१४७
३५	प्राचीन भारतीयों की संरक्षित व्यापार-नीति	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	८४
३६	प्रार्थना	पण्डित मुकुटधर	१६९
३७	प्रेम-पात्र की खोज	श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए०	३२४
३८	बग़दाद में भारतवासी और संस्कृत	श्रीयुत महेशप्रसाद (मौलवी आलिम)	६५
३९	बच्चों की शिक्षा और रक्षा के लिए अमरीका के संयुक्तराज्य के सत्कार्य	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०	२
४०	बस-विहीन लन्दन	श्रीयुत जगद्बिहारी सेठ, (लन्दन)	५
४१	भट्टनारायण और वेणी-संहार नाटक	पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	१७८
४२	भविष्यत् में हिन्दी का रूप क्या हो ?	श्रीयुत मुकुटधर पाण्डेय	३०
४३	भारतीय पुरातन राजनीति	श्रीयुत गोविन्दराव परवार, काव्यतीर्थ	२५९
४४	भेट	श्रीयुत सियारामशरण गुप्त	१८६
४५	भ्रम	पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा	१२९
४६	मनमौजी मज़मून	प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम० ए०	३१३
४७	महाकवि भवभूति	पण्डित नारायण शास्त्री	२७७
४८	मान का मूल्य	पण्डित रामचरित उपाध्याय	२०६
४९	मुक्त-काव्य	प्रोफ़ेसर शिवाधार पाण्डेय, एम० ए०, एल०-एल० बी०	५०
५०	मुसलमान और ईसाइयों में हिन्दी-प्रेम-प्रवर्त्तन के उपाय	अध्यापक ज़हूरबख़्श	२२७
५१	राजकीय शास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध	प्रोफ़ेसर बेनीप्रसाद, एम० ए०	१६९
५२	राजकीय शास्त्र की कठिनाइयां	प्रोफ़ेसर बेनीप्रसाद, एम० ए०	२२५
५३	रायपुर के लार्ड सिनहा	श्रीयुत गुरुनारायण मेहरोत्र, बिलग्रामी, बी० ए०	१८१
५४	राशि-चक्र	श्रीयुत कन्नोमल, एम० ए०	
५५	रासो के मङ्गलाचरण में ही अर्थ की असङ्गति और भूलों की भरमार	हिन्दी का एक 'वृद्ध सेवक'	३५
५६	रूस का राष्ट्र-विप्लव	श्रीयुत श्यामाचरण राय, बी० ए०, एल०-एल० बी०	१८६

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
५७	लन्दन की सैर	श्रीयुत बेनीप्रसाद शुक्ल, (फ़्रांस)	१८६
५८	लीला	श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त	२२ और १२६
५९	विस्फोटक या शीतला रोग	डाक्टर प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस०	२४
६०	विविध विषय	सम्पादक	५३, १०६, १६०, २१६, २६८ और ३३०
६१	वीराङ्गना	"मधुप"	५७
६२	शनिवार की रात	श्रीयुत रामकुमार खेमका, न्यूयार्क (अमरीका)	१७
६३	शान्ति और राष्ट्र-संघ	श्रीयुत श्यामाचरण राय, बी० ए०, एल०-एल० बी०	२८३
६४	शिक्षा का अन्तिम उद्देश	श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०	३०७
६५	श्रीगुलाबराव महाराज	श्रीयुत रघुनाथ माधव भगाड़े, बी० ए०, एल०-एल० बी०	११६
६६	सन्तोष	श्रीयुत बाबू सियारामशरण गुप्त	१३९
६७	संयुक्त प्रान्त की हिन्दी	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०	३२४
६८	सांग्रामिक न्याय	पण्डित आनन्दीप्रसाद दुबे, बी० सी० एल० (आक्सफो०), बैरिस्टर एट-ला	२९५
६९	स्वर्गवासी सर गुरुदास बैनर्जी	श्रीयुत बालादत्त पाण्डेय	६०
७०	स्वप्न	श्रीयुत हरिवंशदास	६३
७१	हिन्दी गद्य का क्रम-विकाश	श्रीसत्यभक्त	१३९
७२	हिन्दी-नाटक-पात्रों की भाषा	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	३१०
७३	हिन्दुओं में बालविवाह	पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए०	६८

चित्र-सूची ।

रङ्गीन चित्र ।

नंबर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	उमर ख़याम	मार्च	आदि-पृष्ठ
२	कृष्ण-राधिका	फ़रवरी	आदि-पृष्ठ
३	दो अन्धे फ़क़ीर	एप्रिल	आदि-पृष्ठ
४	नेता	जनवरी	आदि-पृष्ठ
५	फ़ारसदेश की एक महिला	मई	आदि-पृष्ठ
६	शङ्कर-पार्वती	जून	आदि-पृष्ठ

सादे चित्र ।

१ आशु कवि स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथ जी ५४
२ इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के नये वाइस-चान्सलर आनरेबल जस्टिस थियोडर केरो पिगट १०८

नंबर	नाम	पृष्ठ
३–४	कुमारी ताराबाई के २ चित्र	२२०
५–१०	'जर्मनी में क़ैदी हिन्दुस्तानी सिपाही' लेख से सम्बन्ध रखनेवाले ६ चित्र	१०१–१०५
११	डाक्टर लेफ़राय और भारत-वर्ष की बिशप-मण्डली	१६१
१२–१५	डाक्टर विल्सन-सम्बन्धी ४ चित्र	२१४–२१५, २१७–२१८
१६	दिल्ली की कुतुब मीनार	१५२
१७	दिल्ली-दर्बार में राजकुमार	१४४
१८	पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एल०-एल० बी०	२७४
१९	पुराने मन्दिर का दृश्य	१२८
२०–२७	पृथ्वी और उसके खनिज-पदार्थ-सम्बन्धी ८ चित्र ...	३१६–३१७, ३१९–३२३
२८	पृथ्वीराज के मन्दिर में लोहे का स्तम्भ	१२८
२९–३५	बस-विहीन लन्दन-सम्बन्धी ७ चित्र	६, ८, १०–१२, १४–१५
३६–४२	मिस मेरी लॉगडन, एम० डी०, डी० पी० एच०, और क्षय-रोगाश्रम, पेंडरा-रोड-सम्बन्धी ७ चित्र	२७१–२७३
४३	रोम में एन्जलो का पुल	१३६
४४	लार्ड सिनहा	१८२
४५–४९	विस्फोटक या शीतला-रोग-सम्बन्धी ५ चित्र	२५–२९
५०	शरेबिम फ़रिश्ते	१३६
५१	श्रीगुलाबराव महाराज	११७
५२	स्वर्गवासी श्रीमान् महाराजा सा० लेफ्टीनेन्ट कर्नेल, सर वेंकटरमणसिंहजू देव, जी० सी० एस० आई०, रीवाँ राज्य	५३
५३	स्वर्गवासी सर गुरुदास वैनर्जी	६१
५४	हिन्दी-साहित्य-प्रदर्शिनी, इन्दौर	२७६

रङ्गीन चित्र	६
सादे चित्र	५४
कुल	६०

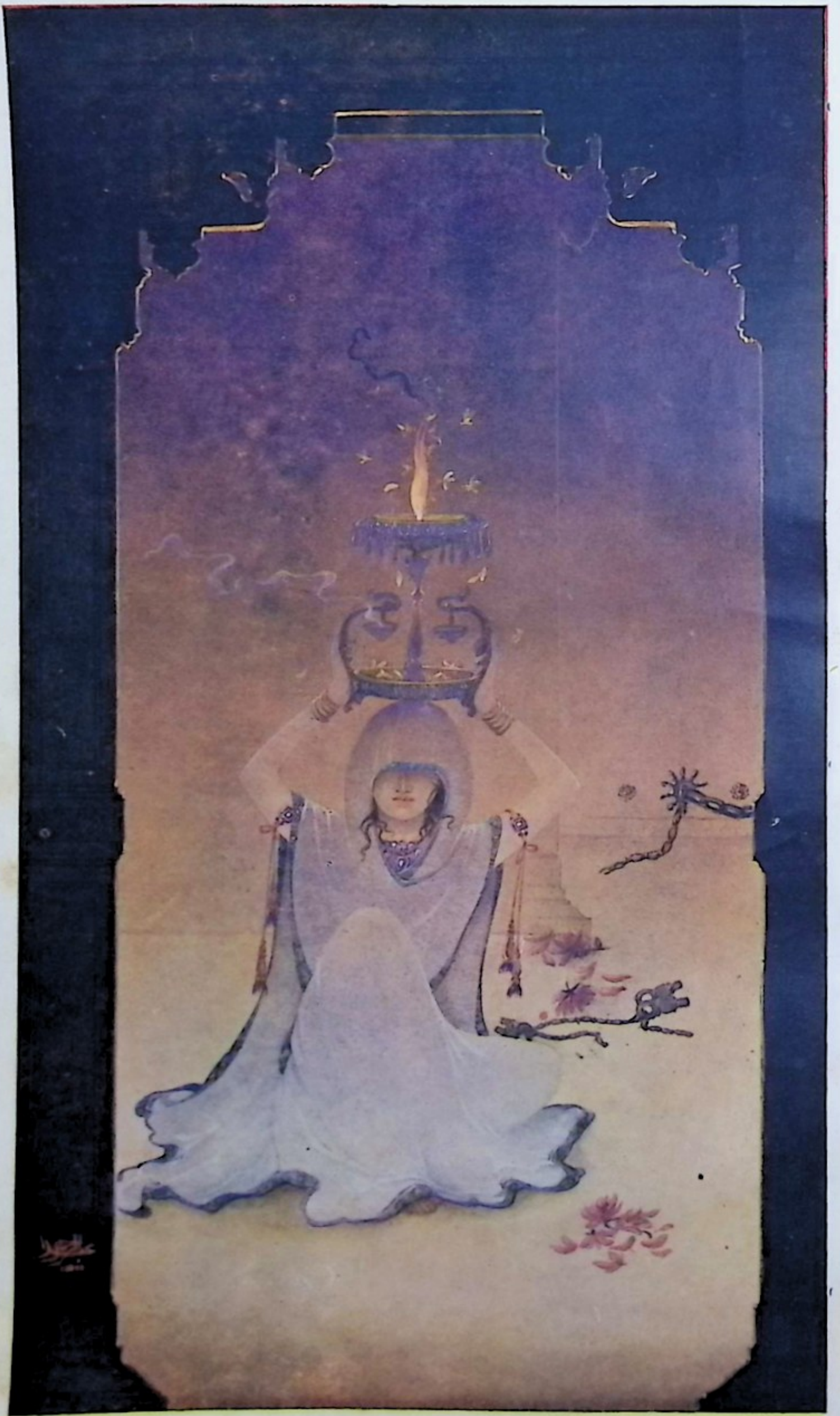

नेता।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड १] जनवरी १९१९—माघ १९७५ [संख्या १, पूर्ण संख्या २२९

आत्म-दशा

हे दुःखनाशन ! सौख्यसिन्धो ! भक्तवत्सल राम हो,
तुम हो निरामय पुण्यमय सुख-सम्पदा के धाम हो।
मैं पतित हूँ तुम, पतित-पावन हो दयामय ! सर्वथा,
दुख पा रहा हूँ घोरतर करिए कृपा हरिए व्यथा ॥१॥
तुम को कभी निष्कपट होकर ध्यान में लाया नहीं,
षड्वर्ग में नित लिप्त हो तव नाम को गाया नहीं।
अति मोहवश मैं हूँ फँसा धन, धाम, धरणी-जाल में,
उन्मुक्त करिए दीन-पालक ! दौड़ कर इस काल में ॥२॥
मतिहीन कामासक्त हो नर भूल जाते हैं तुम्हें,
पर दुःख में अति व्यग्र हो वे ही मनाते हैं तुम्हें।
मैं हूँ अघी तुम अघ-विनाशक हो न प्रण को छोड़ना,
मैं मुड़ गया था, पर न तुम मुझ से प्रभो ! मुख मोड़ना ॥३॥
अपने कुकर्मों को कहूँ कैसे घृणित वह बात है,
मदमत्त था कैसा हुआ तुम को सभी कुछ ज्ञात है।
जो चाहिए करिये उसे मैं हाथ जोड़े हूँ खड़ा,
अपनी विरद निरवाहिए है नाम प्रभुवर का बड़ा ॥४॥
भव-सिन्धु में मैं डूबता हूँ त्राण मिलता है नहीं,
क्यों आप का तो भी अभी तक हाथ हिलता है नहीं।
तृष्णा-तरङ्गों से शिथिल हूँ तङ्ग हूँ अपनाइए,
निज ओर लख कर, घोरतर मम दोष पर मत जाइए ॥५॥
कर्पूर सा मेरे प्रभो ! मन का कड़ापन उड़ गया,
पद-पद्म में तेरे भ्रमर सा मन विवश हो जुड़ गया !
आशा न मुझ को और है खासा बना हूँ दास मैं,
सन्तप्त होकर रो रहा हूँ पा रहा हूँ त्रास मैं ॥६॥
हे दीनबन्धो ! आप को मैं भूल जो जाता नहीं,
तो फिर किसी विधि आज जग में घोर दुख पाता नहीं।

मैं हूँ तनय अविनय भरा पर तुम पिता हो गुण भरे,
किस को न है तेरी विदित सद्भक्त-वत्सलता हरे ॥७॥
प्रभु की शरण में आ गया अब फेंकिए मुझ को नहीं,
निर्दय तनय के हेतु क्या निर्दय पिता होगा कहीं ?
मैंने न निज कर्त्तव्य का पालन किया यह खेद है,
पर आप के औदार्य को तो गा रहे सब वेद हैं ॥८॥
शिशु-दोष को गुरु-जन कभी निज चित्त में धरते नहीं,
शरणागतों की भी उपेक्षा साधु-जन करते नहीं।
क्या है यही कर्त्तव्य प्रभु का बैठ रहना मौन हो,
यदि आप ही ऐसा करें तो मम सहायक कौन हो ? ॥ ९ ॥
मैं दीन हूँ या मलिन हूँ पर हूँ कहाता आप का,
है शोक तो भी बन रहा हूँ पात्र मैं सन्ताप का।
दुर्दैन्य-दानव से दयामय ! शीघ्र रक्षा कीजिए,
चाहे न कुछ भी दीजिए, तो भी तनिक सुधि लीजिए ॥१०॥

शिवकुमार त्रिपाठी

बच्चों की शिक्षा और रक्षा के लिए अमरीका के संयुक्त-राज्य के सत्कार्य।

किसी जाति की सभ्यता की सब से अच्छी कसौटी यह है कि वह जाति अपनी माताओं और बच्चों की रक्षा तथा शिक्षा को कितना महत्त्व देती है। पश्चिम की प्रायः सभी शिरोमणि जातियाँ बालक के राष्ट्रीय मूल्य को खूब समझती हैं। यह मूल्य उस मूल्य से सर्वथा भिन्न है जो बालक के माता-पिता और परिवार उसका समझते हैं। इसलिए बहुत सी सभ्य जातियाँ ऐसे राजनियम बना रही हैं जिनसे तन्दुरुस्त बालकों की उत्पत्ति में सुभीता हो और जन्म के पश्चात् स्वास्थ्यवर्धक और शुद्ध रीति से उनका विकास हो सके। संसार की सभी प्राचीन सभ्यतायें इस बात को समझती थीं। आर्य्य-स्मृतियों में बालकों की रक्षा और शिक्षा को बड़ा महत्त्व दिया गया है। भेद केवल इतना है कि प्राचीन सभ्यताओं में शिक्षा का प्रयोजन धार्म्मिक तथा आध्यात्मिक कारणों से माना जाता था। आधुनिक सभ्यता आर्थिक कारणों से इसका प्रयोजन समझती है। प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश आत्मा की रक्षा होता था। आधुनिक काल में व्यक्ति तथा राष्ट्र के शरीर की रक्षा ही शिक्षा का उद्देश है।

अमरीका के संयुक्त-राज्य में पैदा होनेवाले प्रत्येक बालक और बालिका की रक्षा तथा शिक्षा की ज़िम्मेदारी वहाँ की सरकार ने ले रक्खी है। यह देख कर सत्य-युग के स्वप्न होने लगते हैं। जन-साधारण के सभा-समाजों और व्यक्तियों की सहकारिता उपयोगिनी तो है; पर इसका यह मतलब नहीं कि इससे इस विषय में सरकार का अपना कोई कर्तव्य और दायित्व ही नहीं। अपना कर्तव्य पालन करने के लिए अमरीका की विविध रियासतें जो कुछ कर रही हैं उसके सामने जन-साधारण की सभाओं के किये हुए सुभीते परिशिष्ट मात्र हैं। इसका उदाहरण लीजिए। बालकों की भलाई के लिए उस देश में असंख्य जन-साधारण-सभायें हैं। गर्भिणी माताओं की रक्षा से लेकर बालक के युवावस्था को प्राप्त हो जाने तक वे सभायें उनकी देख-रेख और सँभाल करती हैं। राज्य ने एक शिशु-कार्यालय (Children's Bureau) खोल रक्खा है। वह सब श्रेणियों के अमरीकन लोगों में अनुसन्धान करता है कि बालकों के जीवन की क्या दशा है तथा उन्नति की गति कैसी है। वह बालकों की मृत्यु तथा उत्पत्ति की गति, अनाथालय, शिशु-अपराधियों की न्यायसभा, हानिकारक व्यवसाय, दुर्घटना तथा बच्चों के रोग, नौकरी, और संयुक्त-राज्य की विविध रियासतों के बालकों के लिए बनाये गये राजनियम इत्यादि की भी जाँच करता है। तन्दुरुस्ती के महकमे

से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। आरोग्य-विभाग उससे अलग है। बालकों की उन्नति के लिए बनाई गई संयुक्त-राज्य की सभी रियासतों और प्रान्तों के सभी सभाओं के साथ, चाहे वे किसी विशेष व्यक्ति की हों चाहे सार्वजनिक, चाहे गवर्नमेण्ट की, चाहे म्युनिसिपैलिटी की, शिशुकार्यालय का आरोग्य-विभाग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। देश में पैदा होनेवाले प्रत्येक बालक-बालिका के जन्म-स्थान, जाति, आयु, राष्ट्रीयता, माता-पिता इत्यादि का पूरा पूरा ब्योरा सरकार रखती है। बालकों का कल्याण चाहनेवाली समितियाँ अपने अपने इलाक़ों में पैदा होनेवाले बच्चों का पूरा पूरा इतिहास अपने पास रखती हैं। उनके जन्म-दिन से लेकर युवावस्था में प्रवेश करने तक उनकी हर प्रकार से देख-रेख करती हैं। ये समितियाँ गर्भिणी स्त्रियों से मिल कर उन्हें उपदेश और आवश्यकता के समय सहायता देती हैं, जिससे, जन्म ले चुकने पर, बालक का मङ्गल हो। जन्म के पश्चात्, ये समितियाँ माताओं को बालकों की रक्षा करना सिखलाती हैं। निर्धन परिवारों में डाक्टरनियाँ और धायें मुफ़्त जाती और परामर्श देती हैं। यदि रोग धाई की क़ाबू के बाहर होते हैं तो उच्च कोटि की डाक्टरी सहायता और परामर्श का भी प्रबन्ध किया जाता है। जहाँ बालक को काफ़ी भोजन न मिलता हो और आरोग्यवर्द्धक परिस्थिति का अभाव हो—इस कारण उसे कष्ट होता हो—वहाँ इन दोनों तकलीफ़ों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बालक का पूरा इतिहास तैयार किया जाता है। प्रौढ़ हो जाने पर जहाँ कहीं वह जाता है और जो कुछ वह करता है सब बातों की पूरी पूरी ख़बर रक्खी जाती है। जब तक उसकी उम्र स्कूल जाने योग्य नहीं हो जाती, बड़े ध्यान से उसकी देख रेख की जाती है। उसकी तन्दुरुस्ती की रक्षा और उसके चरित्र-गठन के लिए उसके माता-पिता को हर प्रकार से सहायता प्रदान की जाती है। भोजन, वस्त्र, शुद्ध वायु, मनोरञ्जन, किण्डर-गार्डन के पाठ, माता के लिए स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें, डाक्टरी सहायता, इत्यादि सब बातों का ध्यान रक्खा जाता है—रियासतें और नगर भी इनकी सफलता के लिए यत्न करते हैं और जहाँ कहीं इनकी आवश्यकता हो वहाँ वे यथासम्भव और यथा-शक्ति पहुँचाते हैं। जब बालक स्कूल जाने योग्य हो जाता है तब रियासत उसकी शिक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेती है। किसी सार्वजनिक स्कूल में भरती होना उसके लिए अनिवार्य्य हो जाता है। शिक्षा उसे मुफ़्त मिलती है।

कई रियासतें और नगर बालक को पुस्तकें, काग़ज़, स्लेट, रोशनाई, बल्कि जहाँ घर में उसे कम भोजन मिलता हो वहाँ भोजन तक मुफ़्त देते हैं। उस अवधि में रियासत और जन-साधारण की समितियाँ इस बात का ख़याल रखने में कोई कसर उठा नहीं रखतीं कि बालक को यथार्थ शिक्षा और उत्तम भोजन मिलता रहे; उसके वस्त्र और निवास-स्थान अच्छे हों और उसका शारीरिक और मानसिक विकास स्वाभाविकता से हो। अपूर्ण और रोगी बालकों के लिए, शिक्षा और चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध किया जाता है। रियासत की ओर से विशेष विशेष समितियाँ भी हैं जो परोपकारी संस्थाओं के साथ मिल कर स्कूल जानेवाले बालकों के नैतिक अभ्युदय का ख़याल रखती हैं। ऐसे इन्स्पेक्टर भी नियत हैं जिन्हें क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं। वे गलियों, शराब-ख़ानों, चंडू-ख़ानों आदि स्थानों में जाकर बालकों को पकड़ते हैं। पकड़े जाने पर वे कचहरियों में पेश किये जाते हैं। ऐसी कचहरियाँ इसी काम के लिए विशेष रूप से बनी हैं। वहाँ उनके साथ वैसा ही बर्ताव होता है जैसा कि माता-पिता बुरे बच्चों के साथ करते हैं। उद्देश दण्ड देना नहीं, सुधार करना है। रियासत उनके हित के लिए नियम बनाती है। उनके अनुसार

बालकों में विशेष व्यवसायों और उद्योग-धन्धों में लगाने की प्रवृत्ति और रुचि पैदा होती है उनमें बालकों से नियत समय से अधिक काम लेने का निषेध भी होता है, जिससे उनके शारीरिक और नैतिक विकास में बाधा न पड़े। कई नियम-बद्ध और सुव्यवस्थित सभायें या सङ्घ ऐसे भी हैं जिनका एक मात्र काम बालक मज़दूरों के काम आदि के नियमों की देख-रेख करना है। बालकों के हित के लिए उन नियमों में वे परिवर्तन और संशोधन के प्रस्ताव करते रहते हैं। इसी प्रकार बालकों को नौकर रखनेवाली संस्थाओं और अपने बच्चों की कमाई से लाभ उठानेवाले माता-पिताओं का भी निरीक्षण किया जाता है। कई बार बालकों को माता-पिता के अनुचित दबाव से बचाने की भी आवश्यकता होती है; क्योंकि कितने ही मां-बाप भी अपनी सन्तान से कभी कभी बहुत बुरा बर्ताव करते हैं। यथा—द्रव्य के लोभ से वे उन्हें भयङ्कर उद्योग-धन्धों या चरित्र बिगाड़ देनेवाले व्यवसायों में लगा देते हैं अथवा जितने समय की क़ानून आज्ञा देता है उससे अधिक काम लेते हैं, किंवा उनके भोजन वस्त्र का सुप्रबन्ध नहीं करते।

स्कूली शिक्षा समाप्त होते ही समितियाँ बालक को अपनी देख-रेख में ले लेती हैं। वे उसे आगे पढ़ने में, किसी उद्योग-धन्धों या व्यवसायों के लिए योग्य बनाने में, या अवकाश के समय अपने अध्ययन को जारी रखने में सहायता देती हैं। सारांश यह कि वे उसके लिए ऐसी सुविधायें कर देती हैं जिनसे वह अपने भविष्य जीवन को उन्नत कर सके; अपनी शक्तियों को पूर्णतया विकसित कर सके और उनसे यथासम्भव पूरा पूरा लाभ उठा सके। स्कूल और कालेज, जीवन-यात्रा में, अपने छात्रों की ख़बर रखते हैं और परामर्श देकर तथा अन्य रीतियों से उनकी सहायता करते रहते हैं।

यह सारा काम या तो स्वयं रियासत करती है या रियासत से सहायता पानेवाली समितियाँ करती हैं, अथवा ऐसे सङ्घ करते हैं जिनके साथ रियासत की पूर्ण सहानुभूति होती है। रियासत और जनता इस बात को ख़ूब समझती है कि जाति के बच्चे सब से उत्तम और सब से बहुमूल्य जायदाद हैं और इस जायदाद से अच्छी तरह काम लेने से ही राष्ट्र को ऐश्वर्य्य की प्राप्ति हो सकती है। प्रत्येक बालक को जीवन-सङ्ग्राम के लिए सर्वोत्तम शिक्षा देना रियासत और जनता अपने ऊपर एक प्रकार का ऋण समझती है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के लिए बालक को स्वास्थ्यवर्द्धक और शुद्ध प्रणाली पर यथासम्भव और यथाप्राप्य सर्वोत्तम शिक्षा मिलनी चाहिए। सारांश यह कि बालक इस योग्य हो जाय कि व्यक्तिरूप से अपने जीवन से वह अधिक से अधिक लाभ उठा सके, साथ ही रियासत और जनता भी उससे ज़ियादह से ज़ियादह और उत्तम से उत्तम काम ले सके। वे इसका भी अनुभव करती हैं कि इस योग्यता की प्राप्ति के लिए बालक की निज की या उसके माता-पिता की आमदनी पर बोझ न पड़े। रियासत और जनता इस बात को स्वीकार करती हैं कि संयुक्त-राज्य में पैदा होनेवाले प्रत्येक बालक का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है कि इस उद्देश की प्राप्ति के लिए वह उनसे यथासम्भव पूरी पूरी सहायता ले। बच्चे के जन्म के साथ ही नागरिक के नाते, उसके लिए रियासत का यह कर्तव्य हो जाता है।

संयुक्त-राज्य के लोग व्यावसायिक शिक्षा के पीछे पागल हो रहे हैं। वे चाहते हैं कि प्रत्येक बालक किसी विशेष कार्य्य के योग्य बनाया जाय। इसी भित्ति पर शिक्षा का सारा ढाँचा खड़ा किया गया है। किसी जाति की सम्पत्ति और धन उसके व्यक्तियों की उत्पादनशक्ति पर

अवलम्बित होता है। इसलिए इस उत्पादन-शक्ति के विकास तथा वृद्धि का प्रबन्ध करना रियासत और जनता का कर्तव्य है। यह दो रीतियों से किया जाता है। एक तो यान्त्रिक सुधार से, दूसरे राष्ट्र के बच्चों के मस्तिष्क की उन्नति तथा प्रत्येक बच्चे को ऐसी शिक्षा देने से जिससे वह धन पैदा करने में अपनी पूरी शक्ति से काम ले सके। इसका उद्देश व्यक्ति-विषयक और साथ ही राष्ट्रीय ऐश्वर्य्य-वृद्धि है। प्रत्येक मनुष्य को किसी एक व्यवसाय, व्यापार या कला का विशेषज्ञ होना चाहिए। प्रत्येक बालक के अपने तथा राष्ट्र के हितार्थ अपने आपको कोई विशेष काम करने योग्य बनाना चाहिए। इस उद्देश की पूर्ति के लिए संयुक्त-राज्य में व्यवसाय, व्यापार, उद्योग-धन्धा, कृषि इत्यादि के स्कूल खुले हुए हैं। संसार का कोई भी उद्योग-धन्धा ऐसा नहीं जो इन स्कूलों में न सिखाया जाता हो।

सन-फ्रांसिस्को की गत पनामा-पैसेफ़िक-इन्टरनेशनल एक्सपोज़ीशन में अर्थात् पनामा और प्रशान्त महासागर के बीच की नहर के खोलने के उत्सव पर अमेरिका के शिक्षा-विभाग ने नीचे लिखे आदर्श-वाक्य, मोटे अक्षरों में, प्रदर्शित किये थे। संयुक्त-राज्य के शिक्षा-विभाग की सारी नीति का सार इनमें है।

(१) जो राष्ट्र अपनी जनता को शिक्षा नहीं देता वह अपने बच्चों को दूसरे शिक्षा देनेवाले राष्ट्रों के अधीन बना देता है। अनेक बार शिक्षा के अभाव से राष्ट्रों ने हार खाई है। क्या हम हार से बचने के लिए तैयारी न करेंगे ?

(२) क्या हम एक औद्योगिक सेना तैयार न करेंगे ?

स्कूल, विश्वविद्यालय और प्रयोग-शालायें, इस युद्ध के रणक्षेत्र हैं। व्यापार की स्पर्धा में लड़नेवालों के हाथ में जो शस्त्र विज्ञान देता है उनके कारण, शस्त्रहीन लोग, महाबली होते हुए भी इस तरह पीछे रह जाते हैं जिस तरह कि उमडरमान के दरवेश लार्ड किचनर की तोपों के मुक़ाबले में पीछे रह गये थे। क्या हमारे बच्चे औद्योगिक दरवेश बनेंगे*

सन्तराम, बी० ए०

बस-विहीन लन्दन ।

गत सप्ताह मैं लन्दन में अपने एक मित्र के पास बिता रहा था। रविवार के प्रातःकाल सण्डे—पिक्टोरियल (Sunday Pictorial) में एक यह ख़बर पढ़ कर कि बसों पर टिकट देनेवाली और मुसाफ़िरों को चढ़ाने उतारनेवाली औरतों ने यकायक, बिना किसी नोटिस के, शनिवार की शाम से हड़ताल कर दी है, जी में थोड़ा सा कुतूहल तो अवश्य हुआ; परन्तु हमारे मित्र का मकान किसी बड़ी भीड़ भब्भड़दार सड़क पर न होने से, उक्त ख़बर का कोई तत्क्षण असर दृष्टिगोचर न हुआ। और दिन भर कहीं बाहर जाने का अवकाश न मिलने से यह बात एक तरह से भूल सी गई, कम से कम यह सोचने की तो न सूझी कि सचमुच ही यदि बसों का चलना बन्द हो गया होगा तो.........।

शाम के वक्त, चाय वग़ैरह पी चुकने के बाद, यह सोच कर कि दिन भर घर ही में बैठे रहने के कारण जी घबड़ा गया है, घर से बाहर निकल पड़े और सोचा कि चलो किसी बस की खुली छत पर बैठ कर शहर से बाहर निकल चलें और ज़रा खुली हवा खा आवें। सबेरे जो ख़बर पढ़ी थी उसकी याद तो अवश्य आई, लेकिन साथ ही यह भी सोचा कि बसों के बन्द हो जाने से लोगों को बड़ी ही तकलीफ़ होगी। ऐसे कठोर समय, युद्धकाल

---

* श्रीयुत लाजपतराय की नवीन पुस्तक—The United States of America के आधार पर।

में, हर एक प्रकार के काम-धन्धों में बाधा पड़ जायगी। यह सब सोच समझ कर बस-कम्पनियों के मालिकों और नौकरों के बीच अवश्य ही शीघ्र किसी न किसी प्रकार का निपटारा हो गया होगा और बसें आदि यदि कुछ थोड़े से समय के लिए बन्द भी हो गई हों तो अब अवश्य चलने लगी होंगी। यह सब विचार कर, निकटवर्ती मुख्य सड़क की ओर रवाना हुआ और दूर से एक बस को उसी सड़क पर से जाते हुए देखा। मन में ज़रा तसल्ली हुई। सड़क पर पहुँच कर सदा की भांति किसी बस के आने का इन्तज़ार करने लगे। दोनों तरफ़ से दो तीन बसें खचाखच भरी हुई आईं और चली गईं; परन्तु एक बात देख कर कुछ कुछ आंखें खुलने लगीं। जितनी बसें आती थीं, सब की सब एक ही नम्बर की थीं, अर्थात् सभी केवल दो नियत स्थानों के बीच में दौड़ती थीं। यह हाल देख कर नतीजा निकालने में कुछ देर न लगी कि कम से कम एक बस-कम्पनी में काम करनेवालों ने हड़ताल नहीं की है।

बस चलानेवाली युवतियां अपना काम छोड़ कर खेतिहरों की सहायता कर रही हैं।

परन्तु हड़ताल के बारे में और अधिक लिखने के पहले कदाचित् यह उचित होगा कि हम अपने पाठक-पाठिकाओं को ज़रा इस बात का ज्ञान करा दें कि बस इत्यादिक हैं क्या चीज़? लन्दन संसार के सब शहरों से बड़ा है—क़द के लिहाज़ से भी और जन-संख्या के लिहाज़ से भी। कोई पचास लाख लोग इस शहर में रहते हैं; और उत्तर से दक्षिण अथवा पूर्व से पश्चिम, कोई १० या १२ अथवा अधिक मीलों तक इस शहर का विस्तार चला गया है। इतने बड़े शहर में, एक स्थान से दूसरे तक जाने के लिए, इतने लोगों की सुविधा के लिए कई प्रकार के साधन होने चाहिए। पृथिवी-तल के ऊपर, सड़कों पर चलनेवाली तरह तरह की गाड़ियां हैं—किराये की मोटरें (इनको टैक्सी (Taxi) कहते हैं), घोड़े-गाड़ियां इत्यादि। हां, ये गाड़ियां एक प्रकार की निज की गाड़ी सी हैं। जन-साधारण के लिए सस्ते दामों पर जानेवाली गाड़ियां आम्नीबसें (Omnibuses) और ट्राम (Tram) गाड़ियां हैं। ट्राम विद्युत्-द्वारा चलाई जाती हैं और इनसे तो हमारे बहुतेरे पाठक परिचित होंगे, क्योंकि वहां के बड़े बड़े शहरों में भी इनका रिवाज है। हां बसों से हमारे पाठक उतना अधिक परिचित न होंगे, अतएव इनका वर्णन कुछ विस्तार के साथ देने में कदाचित् क्षमा-प्रार्थना की आवश्यकता न होगी[*]। बसें एक प्रकार की बड़ी बड़ी मोटर-गाड़ियां हैं। इनके भीतर, दोनों ओर की दीवारों से सटी हुई (ठीक वहां की ट्राम-गाड़ियों की तरह) दो लम्बी लम्बी गद्देदार बेंचें होती हैं। एक एक पर प्रायः १०,१२ लोग बैठ सकते हैं। दोनों बेंचों के बीच

---

[*] इन गाड़ियों के बारे में एक छोटा सा नोट सरस्वती भाग १८, खं० १, सं० ३ 'ट्राम चलानेवाली' शीर्षक लेख में निकल चुका है।

की जगह में भी, ज़्यादा भीड़ के समय लोग खड़े रह कर जा सकते हैं । इन गाड़ियों की छतों पर भी बैठने के लिए छोटी छोटी बेंचें दो क़तारों में बिछी रहती हैं । एक एक बेंच पर मामूली क़द के दो आदमी बैठ सकते हैं । इस प्रकार छत के ऊपर कोई ४० आदमियों के बैठने का इन्तज़ाम होता है । बसों की छत हमेशा खुली हुई होती है । अतएव जब पानी पड़ता हो उस समय उन पर बैठ कर बहुत ज़्यादा आराम मिलने की आशा न करनी चाहिए, यद्यपि पैरों को ढँकने के लिए आयल-क्लाथ की ऊपरी परत पड़े हुए टाट के टुकड़े प्रत्येक बेंच के साथ बँधे रहते हैं । हाँ, जिस समय पानी नहीं बरसता उस समय इन खुली छतों पर बैठ कर लन्दन शहर की सैर करने में बड़ा आनन्द आता है । गरमी की ऋतु में जिस दिन पानी न बरसता हो, इन छतों पर जगह पाने के लिए लोगों को बड़ी ही उत्कंठा रहती है । बहुत से लोग तो सिर्फ़ हवा खाने की ग़रज़ से ही छतों पर बैठ कर लम्बी लम्बी सैरें करते हैं । इन छतों पर लोग खड़े खड़े नहीं जाने दिये जाते, इस लिए बाज़ बाज़ दफ़े तो ऊपर जगह ज़रा मुश्किल ही से मिलती है । ऐसे समय बस का कंडक्टर चिल्ला कर लोगों को बतला देता है (Inside only) अर्थात् सिर्फ़ अन्दर ही जगह है । बहुत सी ट्राम-गाड़ियां भी खुली छतवाली होती हैं; परन्तु ज़्यादातर उनका दूसरा मंज़िल पटा हुआ ही होता है ।

बसें लन्दन में सर्वव्यापी हैं ; उनकी पहुँच प्रायः कम से कम सभी मुख्य गलियों में है । परन्तु ट्राम हर जगह नहीं जाने पाती । ट्राम को चलाने के लिए पटरियों तथा विद्युत्-वाहक तारों की आवश्यकता होती है । बसें मामूली मोटर-गाड़ी की तरह स्टीम या पेट्रोल के द्वारा चलाई जाती हैं, और उनके लिए पटरी आदि लगाने का परिश्रम नहीं करना पड़ता । पेट्रोल आदि की बदबू तो जिन जिन सड़कों पर बसें चलती हैं अवश्य रहती है, परन्तु उनके चलने में उतना शोर-गुल नहीं होता जितना ट्राम के चलने में होता है । ट्राम जिस वक़्त सड़क पर से निकलती है, उस समय सड़क के दोनों ओर पक्के रास्ते पर चलनेवाले लोगों को एक दूसरे की बात सुनना मुश्किल हो जाता है । ख़ैर, चाहे जो कारण हो, ट्राम ख़ास लन्दन के अन्दर नहीं जाने पाती । लन्दन की बड़ी बड़ी भड़कदार और शानदार सड़कों पर उनकी पहुँच नहीं । एक जगह पर तो ट्राम-लाइन ज़मीन के अन्दर सुरङ्ग में होकर गई है, क्योंकि उसका यह हिस्सा उन गलियों में होकर निकलता है जहाँ उसके जाने की इजाज़त नहीं है ।

ट्राम और बसों के नम्बर होते हैं । एक ही नम्बरवाली गाड़ियाँ हमेशा एक ही स्थान से रवाना होती हैं, एक ही स्थान तक जाती हैं, और एक ही गली से होकर गुज़रती हैं । एक ही नम्बर की सैकड़ों गाड़ियाँ आती जाती रहती हैं । मालूम नहीं कि लड़ाई के पहले क्या हाल था, लेकिन आज कल भी एक ही नम्बर की गाड़ियाँ कोई चार पांच या कम मिनटों के अन्तर से निकलती रहती हैं । इसके सिवा, बहुत सी नम्बरोंवाली गाड़ियों की राह का थोड़ा बहुत हिस्सा अक्सर एक ही सड़क पर रहता है । उदाहरण, पिकाडिली-सर्कस एक बड़ा ही केन्द्रस्थान है । बहुत से नम्बरवाली गाड़ियाँ यहाँ से होकर निकलती हैं । उत्तर से दक्षिण जानेवाली गाड़ियाँ भी यहाँ होकर गुज़रती हैं, पूर्व से पश्चिम जानेवाली भी । नतीजा यह होता है कि बड़ी बड़ी सड़कों पर कोई भी समय क्यों न हो, अनेकों बसें निकलती रहती हैं; और नज़र उठा कर देखने से एक दो बसें प्रायः हमेशा ही आती या जाती हुई दिखाई पड़ती हैं । कोई ज़माना था कि रात के १२—१ बजे तक बसें इत्यादि धड़ाधड़ चला करती थीं । सड़कों पर तथा दूकानों में इतनी चकाचौंध रोशनी होती थी कि कहते हैं रात में भी दिन की तरह उजाला रहता था । परन्तु युद्ध आरम्भ होने के उपरान्त जब से लन्दन पर वायु-मार्ग से ज़पलिन और एरोप्लेनों के आक्रमण शुरू हुए तब से सड़कों की रोशनी कम और धीमी कर दी गई और कहीं भी ज़्यादा रोशनी न रहने देने के लिए इसकी सख़्त ताकीद कर दी गई । कुछ दिनों तक बसें पहले ही की तरह चलती रहीं परन्तु धीरे धीरे उनके चलने का समय घटाया जाने लगा, और आज कल तो यह नौबत पहुँची है कि कोई ९ या १० बजे के बाद बहुत ही कम बसें चलती हैं और कोई ११, ११॥ तक सभी बन्द हो जाती हैं । नाटकशालाओं को, तथा रेस्टरा रूम अर्थात् खाने पीने की जगहों को १०॥ के बाद खुला रखने का हुक्म नहीं है । अस्तु ।

बसादिकों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों तरह की सैकड़ों कामों के लिए गाड़ियां सड़कों पर चलती रहती हैं। इतने बड़े ट्रैफिक (Tralfic) का ठीक तरह से सँभालना कोई हँसी-ठट्टा नहीं है। परन्तु लन्दन की पुलीस को धन्य है कि वह इस भारी ट्रैफिक का ऐसी ख़ूबी से इन्तज़ाम करती है कि शायद ही कभी कोई दुर्घटना होती हो। गाड़ियों के चलानेवालों की भी तारीफ़ है। ट्रैफिक-सम्बन्धी नियमों और उपनियमों का उन्हें भली भांति पता रहता है और यथासम्भव ये उन्हा के अनुसार चलते हैं जिससे कि पुलीस का काम उतना कठिन नहीं रहता। बड़े बड़े चौराहों पर तो बाज़ बाज़ दफ़ा चार चार पुलीस के जवान खड़े रहते हैं। ये लोग हमेशा ही बड़े शिष्ट और नम्र (Polite) होते हैं और लोगों से बड़ी भलमनसाहत के साथ पेश आते हैं। जन-साधारण को सब प्रकार सहायता देना ही इन लोगों का सदैव उद्देश रहता है—भारत की पुलीस की तरह नहीं कि जैसे हो सके लोगों के कामों में नुक्ता-चीनी निकालें, उन्हें किसी प्रकार सहायता देने की कौन कहे। लन्दन की पुलीस जग-विख्यात है, सभी देशों के लोगों ने उसकी प्रशंसा की है। पुलीस में भर्ती होने के पहले उनके लन्दन के गली-कूचों के ज्ञान की परीक्षा ली जाती है। फल यह होता है कि प्रत्येक पुलीसमैन को हर एक गली-कूचे का ख़ूब ही ज्ञान रहता है—कम से कम जिस जिस जगह उसकी ड्यूटी (Duty) होती है उसके आस पास की गलियों तथा इमारतों का ठिकाना सदैव उसकी ज़बान ही पर रहता है। जहां किसी ने किसी जगह का ठिकाना पूछा, तुरन्त उसने ठीक राह बतला दी। इस प्रकार लन्दन में किसी को अपनी राह का पता लगाने में कोई विशेष कठिनता नहीं होती। इलाहाबाद में मुझे याद है कि एक बार कटरे के चौराहे पर एक पुलिसवाले से मैंने एक गली की राह पूँछी, उसने बड़ी रुखाई से जवाब दिया कि हमें नहीं मालूम, हम यहां नये आये हुए हैं। ख़ैर, इस लम्बे विषयान्तर के लिए पाठकों से क्षमा माँगता हूँ।

बस चलानेवाली युवतियां खेतों में आनन्द कर रही हैं !

केवल बसों और ट्रामों से ही इतने बड़े शहर का काम नहीं चल सकता। बसें और ट्रामें पृथिवी-तल के ऊपर, सड़कों पर, चलती हैं; पृथिवी-तल के नीचे, भूगर्भ में चलनेवाली गाड़ियाँ भी यहाँ होती हैं। ये भी प्रायः उन सभी स्थानों के बीच चलती हैं जहाँ जहाँ बसादिकें जाती हैं। भूगर्भ के अन्दर चलनेवाली ये गाड़ियाँ, बिजली के ज़रिये चलाई जाती हैं। ये अण्डर ग्राउण्ड (Underground) अर्थात् भूगर्भगामिनी यानी ज़मीन के अन्दर चलनेवाली कहलाती हैं। ये "अण्डर ग्राउण्ड" भी मुख्यतया दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जो सचमुच ही भूगर्भान्तर्गामिनी हैं, जिन पर चलते हुए खुले दिन की झलक भी नहीं मिल सकती; और दूसरी वे जो नाम मात्र के लिए अण्डर ग्राउण्ड कहलाती हैं। क्योंकि उनमें बैठे हुए व्यक्ति को अक्सर खुले आकाश का दर्शन हो जाता है। बाज़ बाज़ जगह तो (हाँ शहर के मुख्य भाग के बाहर) ये पिछले प्रकार की अण्डर ग्राउण्ड ज़मीन की मामूली सतह से प्रायः उतने ही ऊपर होकर निकलती हैं जितना कि शहर के अन्दर ज़मीन के नीचे होकर उन्हें जाना पड़ता है। इन स्थानों में भी, इनके स्टेशनों पर, बड़े बड़े हरफ़ों में अण्डर ग्राउण्ड लिखा हुआ देख हँसी आये बिना नहीं रहती। शहर के अन्दर, ज़मीन की सतह से

इनकी पटरी शायद ही ८ या १० फ़ीट नीचे होती होगी, और १५–२० सीढ़ियाँ उतर कर ही इनका प्लेटफ़ार्म आ जाता है।

दूसरे प्रकार की असली अण्डर ग्राउण्डों को साधारणतया ट्यूब कहते हैं। इनकी भी कई लाइनें हैं और ये लाइनें प्रायः भूतल से ६० फ़ीट से लेकर ४०, ५० फ़ीट तक नीचे हैं। अर्थात् गहरी से गहरी ट्यूब ज़मीन से ६० फ़ीट नीचे है। बाज़ बाज़ ट्यूबों का आख़िरी हिस्सा जो कि मुख्य शहर से निस्सन्देह काफ़ी दूर पर होता है, जहाँ कि ट्रैफिक का उतना आधिक्य नहीं रहता, खुला हुआ रहता है और थोड़ी दूर तक ये मामूली बिजली की गाड़ियों की तरह दौड़ती हैं। इस प्रकार की कोई पाँच लम्बी लम्बी लाइनें हैं। पहाड़ी देशों में रेल पर सफ़र करते हुए हमारे कई एक पाठकों को सुरङ्गों के अन्दर गुज़रने का मौक़ा अवश्य पड़ा होगा। इन लाइनों को बस उसी प्रकार की मीलों लम्बी सुरङ्गें समझिए। इन सुरङ्गों में मोटी मोटी स्टील की चद्दरों की परत पड़ी हुई है। ज़मीन के इतने नीचे साफ़ हवा के पहुँचाने और गन्दी के निकालने का बड़ा ही अच्छा इन्तज़ाम है। जाड़े के दिनों में इन सुरङ्गों में गरमी पहुँचाई जाती है और इनका पारा ६५° फ़ैरनहिट के लगभग हमेशा ही रहता है। कई एक शहर के अमीर-हिस्सों में हो कर जानेवाली सुरङ्गों में एक विशेष प्रकार की शुष्क हवा पहुँचाई जाती है, जिससे कि ज़मीन की नीचे नमी बिलकुल नहीं मालूम देती, बल्कि एक प्रकार की धीमी मीठी सुगन्ध सी आती रहती है।

जगह जगह पर ज़मीन के नीचे ही नीचे स्टेशन बने हैं! इन स्टेशनों पर ये सुरङ्गें चौड़ी कर दी गई हैं और वहीं पर प्लेटफ़ार्म इत्यादि बनाये गये हैं। ज़मीन की सतह से इन टनलों तक पहुँचने के लिए हर एक स्टेशन पर, मामूली सीढ़ियों के सिवा, बिजली से चलाई हुई कई एक "लिफ़्ट" (Lifts) रहती हैं। ये लिफ़्ट एक छोटे से कमरे के समान होती हैं। मुसाफ़िर अपना अपना टिकट दिखा कर इसमें जाकर खड़े हो जाते हैं। लिफ़्ट चलानेवाला (या चलानेवाली) फाटक बन्द कर देता है। कैंची (Switch) के घुमाते ही लिफ़्ट नीचे को चलने लगती है। यथास्थान पहुँचने पर कैंची के दूसरी ओर घुमाने पर वहीं खड़ी हो जाती है। मुसाफ़िर प्लेटफ़ार्म की सतह तक पहुँच जाते हैं, और एक छोटी या लम्बी सुरङ्ग की राह चल कर ठीक प्लेटफ़ार्म पर पहुँच जाते हैं। एक दो बड़े बड़े स्टेशनों पर लिफ़्ट चलानेवाला ऊपर ही खड़ा रहता है और कैंची के यथासमय घुमाने-फिराने ही से उक्त सब काम हो जाते हैं। कभी कभी एक स्थान से दूसरे तक पहुँचने के लिए दो तीन लाइनों के द्वारा जाना पड़ता है। एक लाइन से दूसरी तक पहुँचने के लिए, उन स्टेशनों पर जहाँ दो या अधिक लाइनें जाती हैं, अन्दर ही अन्दर रास्ता होता है।

लोग ज़्यादातर लिफ़्ट ही के ज़रिये चढ़ते उतरते हैं। हाँ, बाज़ बाज़ स्टेशनों पर सुरङ्ग की गहराई उतनी ज़्यादह नहीं होती, और यदि लिफ़्ट आने में देर हुई तो जो लोग जल्दी में होते हैं वे सीढ़ियों से ही चढ़ या उतर जाते हैं। ट्यूब-गाड़ियाँ (दूसरे प्रकार की अण्डर ग्राउंड गाड़ियाँ भी) बिजली की रोशनी से जगमगाती रहती हैं और बैठने के लिए आराम की जगहें होती हैं। कोई दो दो या तीन तीन मिनट के अन्तर में ये आती जाती रहती हैं (आने जाने के लिए, निस्सन्देह, दो लाइनें होती हैं।) ट्यूब-गाड़ियों में सब एक ही दरजे की गाड़ी होती हैं। पर दूसरे प्रकार की अण्डरग्राउण्ड गाड़ियों में दो दर्जे होते हैं—पहला और तीसरा। मामूली रेलगाड़ियों में भी यही दो दर्जे रहते हैं। दूसरे दर्जे की गाड़ियाँ यहाँ बहुत कम दिखलाई देती हैं। इन दोनों प्रकार की अण्डरग्राउंडों पर सफ़र करने के लिए पहले से ही टिकट लेना पड़ता है और टिकट दिखलाने पर ही प्लेटफ़ार्म पर जाने दिया जाता है। इनके ख़ास ख़ास स्टेशन होते हैं वहीं ठहरती हैं। ट्राम या बस पर, किन्तु, गाड़ी पर चढ़ जाने के बाद, गाड़ी का गार्ड या कंडक्टर (Conductor) आपके पास आकर टिकट देता है। बस को तो आप जहाँ चाहें वहीं ठहरा सकते हैं (यद्यपि उसके भी ख़ास ख़ास अड्डे होते हैं); पर ट्राम के ख़ास अड्डे (थोड़ी थोड़ी दूर पर) होते हैं वहीं वे ठहरती अथवा ठहराई जा सकती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जगह जगह मुसाफ़िरों को चढ़ाने या उतारने के लिए ठहरने से, तथा सड़कों पर अन्यान्य गाड़ियों के द्वारा बाज़ बाज़ वक्त जगह रुकी रहने से, बसों

और ट्रामों को एक स्थान से दूसरे तक पहुँचने में अपेक्षित से ज़्यादा देर लगती है। अण्डरग्राउण्डों को इन असुविधाओं का सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए कहीं जाने के लिए सबसे जल्दी की राह यही है। यदि बहुत जल्दी का काम न हो और शहर की सैर तथा हवा खाने का भी इरादा हो तो बस ही काम की चीज़ है।

उक्त दो प्रकार की बिजली की गाड़ियों के सिवा और भी अनेकों बिजली द्वारा चालित एवं मामूली स्टीम द्वारा चालित गाड़ियाँ भी हैं, परन्तु ये मुख्यतया शहर के आस-पासवाली छोटी छोटी या मनोरञ्जन की जगहों तक पहुँचने के ही काम आती हैं।

बस चलानेवाली युवतियाँ पुरुषों के साथ क्रिकट खेलती हैं।

बसों और ट्रामों पर बहुधा दो व्यक्ति (मुसाफ़िरों के अतिरिक्त) होते हैं, एक तो ड्राइवर अर्थात् गाड़ी चलानेवाला, और दूसरा कंडक्टर। इसका काम होता है मुसाफ़िरों को चढ़ाना उतारना और उनसे भाड़ा लेना, तथा ड्राइवर तक घण्टी या सीटी से गाड़ी चलाने या ठहराने की ख़बर पहुँचाना। ड्राइवर तो अब तक सब ही पुरुष होते रहे हैं, परन्तु इस युद्धकाल में कंडक्टरों के काम पर स्त्रियों को भर्ती करने लग गये हैं और आजकल बहुत ही कम पुरुष कंडक्टर रह गये हैं। [*]लन्दन को पाँच दिन बस-विहीन रखने का कारण यही स्त्री कंडक्टरें ही थीं। इन स्त्रियों को तनख़्वाह तो वही मिलती है जो कि पुरुषों को, परन्तु कुछ दिन हुए, गवर्नमेंट की क़ायम की हुई एक कमिटी ने यह निश्चित किया था कि चूँकि बहुत सी स्त्रियाँ लड़ाई पर गये हुए पुरुषों की पत्नियाँ हैं, इस कारण उन्हें अपने स्वामियों से अलग होने से एक ख़ास भत्ता (Separation allowance) मिलना चाहिए। और चूँकि स्त्रियों के बहुधा उन्हीं पर सहारा करनेवाले लोग नहीं होते इसलिए लड़ाई के कारण जो क़ायम-मुक़ाम (Temporary) तरक़ी तनख़्वाह में हो वह सिर्फ़ पुरुषों ही को मिले औरतों को नहीं। इसमें तो किसी को भी सन्देह नहीं कि यह फ़ैसला बड़ा ही अन्याय-पूर्ण था। किसी को किसी प्रकार से ऊपर की आमदनी है या नहीं, अथवा किस पर कितने लोगों के पालने का भार है, भला, इन सब बातों से मज़दूरों ती तनख़्वाह मुक़र्रर करने से क्या मतलब? इसके अनुसार तो अविवाहित और विवाहित पुरुषों, तथा बड़े और छोटे कुटुम्बवाले पुरुषों की तनख़्वाहों में भी भेद होना चाहिए। तनख़्वाह देने में तो सिर्फ़ यही देखना चाहिए कि मज़दूर कितना काम कर रहा है। और इस बात में तो कोई भी

---

[*] हमारे पाठकों को यह तो मालूम ही होगा कि पुरुषों के लड़ाई पर भेज दिये जाने के कारण, इधर दो ढाई वर्षों से बहुतेरी स्त्रियाँ वे काम करने लगी हैं जो पहले पुरुष करते थे। हज़ारों स्त्रियाँ खेती के कामों में लगी हुई हैं। हज़ारों W. A. A. C. (Women's Auxiliary Army Corps) में दाख़िल होकर फ्रांस गई हुई हैं। हज़ारों सामुद्रिक बेड़ों में भरती हुई हैं। बहुतेरी स्त्रियाँ गाड़ियों के हाँकने का काम करती हैं, तथा ट्राम और बस की कंडक्टरें प्रायः स्त्रियाँ ही हैं। इस समय इँगलेंड में कोई साठ लाख महिलायें उन कामों पर हैं जो पहले पुरुष करते थे। अर्थात् उन्होंने ६० लाख पुरुषों को लड़ाई पर भेजने के लिए उनके पुराने काम से छुटकारा दिया है और देश के काम में कोई अड़चन न पड़े इसलिए स्वयं उनके कामों को कर रही हैं।

सन्देह नहीं करता कि स्त्री-कंडक्टरों ने पुरुष-कंडक्टरों से किसी भाँति भी कम या कुताही से काम नहीं किया है। वास्तव में उन्होंने पुरुषों से एक प्रकार से ज़्यादा ही काम किया है; क्योंकि आज कल लड़ाई की वजह से एक तो बसों की संख्या पहले से कुछ कम अवश्य हो गई है, और दूसरे उसी (लड़ाई के) कारण उन लोगों में से बहुत से लोग जो पहले भाड़े की मामूली मोटर-गाड़ी (टैक्सी Taxi) को बुला लेते थे, आज कल ऐसी ऐसी फ़ज़ूल-ख़र्चियों में पैसा न ख़र्च करके बसों के द्वारा ही काम चलाते हैं। इन सब का नतीजा यह हुआ है कि बसों पर जानेवालों की संख्या पहले से कहीं अधिक हो गई है, इसी कारण स्त्री-कंडक्टरों का काम भी अधिक हो गया है; और सभी लोग इनके काम से पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। तनख़्वाह बढ़ाने की जगह, इन बेचारियों की एक प्रकार से तनख़्वाह कम करने का प्रयत्न किया जा रहा था! परन्तु यहाँ की अबलाएं वास्तव में अबला या बेचारी नहीं हैं। ज्योंही कम्पनियों के मालिकों ने गवर्नमेंट-कमिटी के आदेशानुसार पुरुषों की तनख़्वाह तो बढ़ाई और स्त्रियों की वैसी ही रक्खी, त्यों ही स्त्रियों ने हड़ताल कर दी। मालिकों का कहना था कि वे क्या करें उन्होंने तो वही किया जो गवर्नमेंट ने कहा। उनका तो हमेशा ही यह प्रयत्न रहता है कि जहाँ तक हो सके कम ही तनख़्वाह पर ज़्यादा काम निकल आवे। इधर स्त्रियों ने यकायक हड़ताल कर दी। मालिक लोग कहने लगे कि उन्हें किसी बात के विचारने का मौक़ा ही न मिला।

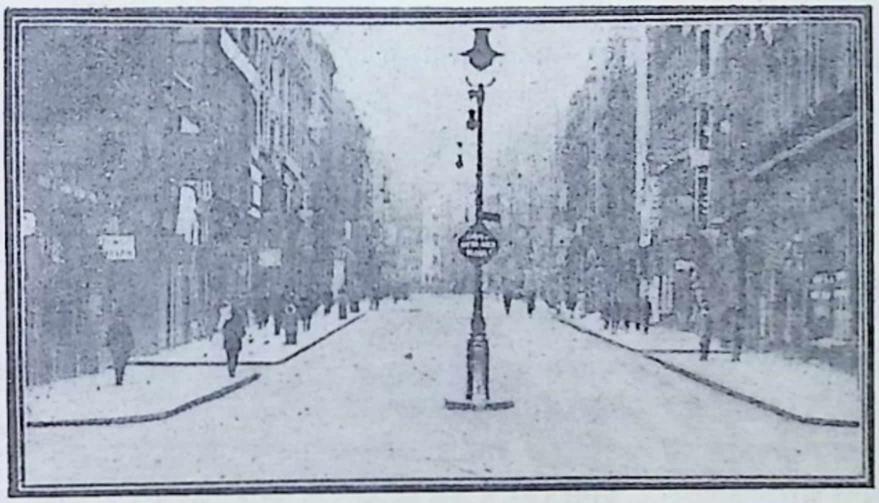

बस-विहीन लन्दन की एक सड़क का दृश्य।

इस देश में हर एक प्रकार के मज़दूरों के सङ्घ होते हैं, जिन्हें ट्रेड यूनियन्स (Trade Unions) कहते हैं। मज़दूर लोगों को जो कुछ कहना होता है या जो काम कराना होता है, वह इन्हीं सङ्घों के द्वारा पेश किया जाता है; और हड़ताल इत्यादि सब काम इन्हीं सङ्घों की अनुमति पाने पर ही करते हैं। परन्तु अबलाओं ने वह काम किया जिसे देख कर लोग दङ्ग रह गये। बिना अपने सङ्घ से पूँछे पाछे, बिना उनकी अनुमति के ही उन्होंने हड़ताल कर दी! उनके सङ्घ के मंत्री को जब इस बात की ख़बर लगी होगी तब वे अवश्य अवाक् हो गये होंगे। कम से कम उन्होंने स्त्रियों की इस कार्रवाई को बेज़ाब्ता बतलाया और लानत दी। उनसे कहा कि तुरन्त ही काम पर लौट जाओ जिससे जन-साधारण को और ख़ास कर युद्ध-सम्बन्धी कार्य करनेवालों को कोई तकलीफ़ न हो, तथा युद्ध के कामों की तैयारी में बाधा न पहुँचे। इस बीच में, मन्त्री ने कहा, वे ऐसा प्रयत्न करेंगे कि जिससे उन्हीं की बात रहे। परन्तु अबला-हठ को कौन हटा सकता है, स्त्रियों ने एक न सुनी और काम पर जाने से इनकार किया। स्त्रियों के साथ सहानुभूति करने के लिए पुरुषों ने भी काम करना बन्द कर दिया। इसी गड़बड़ी के मारे एक आध दिन तक तो किसी को यही न पता चला कि किससे बात करना चाहिए और कैसे मामला तै करना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि पांच दिन तक कुछ भी ठीक न हो सका। अन्त में बृहस्पतिवार को मध्याह्न के बाद इस बात से सम्बन्ध रखनेवाले मज़दूर-मज़दूरिनियों की एक विराट् सभा हुई, जिसमें बड़े वादविवाद के बाद यह निश्चित हुआ कि लोगों को काम पर लौट जाना

चाहिए श्रौर उनके सङ्घ गवर्नमेंट से मामला तै करेंगे । इस प्रकार शनिवार १७ अगस्त की शाम को जो हड़ताल शुरू हुई थी बृहस्पतिवार को समाप्त हुई श्रौर शुक्रवार के दिन एक बार फिर लन्दन की गलियों में पहले की भाँति बसादिक चलने लगीं ।

बस चलानेवाली एक युवती ।

लन्दन में कई एक बस श्रौर ट्राम-कम्पनियाँ हैं । दो को छोड़ कर प्रायः श्रौर सभी कम्पनियों में हड़ताल की छूत पहुँच गई थी । हाँ, एक बस-कम्पनी श्रौर एक ट्राम-कम्पनी की गाड़ियाँ सदा की भाँति चलती रही थीं—उन लोगों ने यह तै किया था कि जो कान्फ़रेन्स इन बातों को तै करने के लिए होनेवाली थी उसका नतीजा देख कर वे लोग काम करेंगे। जिन जिन स्थानों में इन दो कम्पनियों की गाड़ियाँ जाती थीं, वहाँ बसें श्रौर ट्रामें अवश्य दिखलाई पड़ती थीं । यही कारण था कि रविवार की शाम को जब हम घूमने निकले तब एक बस हमें मिल गई थी । सब मिला कर कोई १७ या १८ हज़ार लोगों ने काम बन्द कर दिया था । हड़ताल की छूत लन्दन को छोड़ श्रौर भी कई एक शहरों में पहुँच गई थी । परन्तु दो मुफ़स्सिल के शहरों में कम्पनी के मालिकों ने ज़रा दूरदर्शिता से काम किया । उन लोगों ने सोचा कि अन्त में तो स्त्रियों की बात रहेगी ही , जन साधारण को अपनी हठ-धर्मी से कष्ट पहुँचाने से कोई लाभ नहीं । अतएव उन्होंने एक ही आध दिन के बाद स्त्रियों की बात मानली थी ।

जैसा पहले लिख आये हैं, पूरे पांच दिन यह हड़ताल रही । इन दिनों सड़कों की शोभा निराली ही थी । बिना उन ऊँची ऊँची बसों के सड़कें एक प्रकार से सूनी सी मालूम पड़ती थीं । जिन सड़कों पर पहले एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ जाने के लिए बड़ी सावधानी से इधर उधर देखते हुए क़दम रखना पड़ता था, उन्हीं में, एक दिन, रात के समय, अनेक जनाकीर्ण पैदलों के पक्के मार्ग से उतर कर बीच सड़क में चलना सुगम होगया । कहना चाहिए कि सड़कों का वास्तविक स्वरूप दृष्टिगोचर होता था, ऊँची ऊँची बसें बहुत से दृश्यों को छिपाये सी रखती थीं । दैनिक पत्रों ने बहुत से ऐसे विशेष स्थानों की ओर जनसाधारण का ध्यान दिलाया जो कि मामूली बसवाले दिनों में लोगों के दृष्टिगोचर ही न होते थे । मालूम नहीं कि सचमुच ही इन दिनों टैक्सियों की संख्या अधिक होगई थी या नहीं, परन्तु एक दिन सबेरे जो मैं गलियों में घूमने निकला तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों मामूल से ज़्यादा टैक्सियाँ सड़कों पर चल रही थीं । होसकता है कि मामूली दिनों में बसों के कारण टैक्सियों की संख्या उतनी अधिक नहीं मालूम पड़ती । परन्तु जो हो, मुझे तो बसों के बिना सड़कें सूनी ही सी मालूम पड़ती थीं ।

एक बात के जानने से पाठकों का अवश्य मनोरञ्जन होगा । आज कल वेल्स (Wales) में एक बायस्कोप की तसवीरें बनानेवाली कम्पनी प्रधान सचिव मिस्टर लायड-जार्ज की जीवनी का चित्र बना रही है । जब इन्हें इस हड़ताल की ख़बर मिली, तब वे बड़े श्रौत्सुक्य से वेल्स से दौड़े हुए लन्दन में पहुँचे श्रौर लायड जार्ज के पहले पहल दिन पार्लामेण्ट-भवन में प्रवेश करने की घटना के चित्र लिये । जिस समय जार्ज महोदय पार्लामेंट में मेम्बर हो कर पहले पहल गये थे उस समय लन्दन में मोटर-बसों का प्रचार नहीं हुआ था । अतएव बस-विहीन लन्दन पाने का इससे अच्छा सुअवसर उन्हें कब मिलता । हाँ, उस समय घोड़े की बसों का प्रचार अवश्य था । मालूम नहीं कि इन चित्रकारों ने इस बात का इन्तज़ाम किया था या नहीं कि एक दो घोड़ों की बसें इधर उधर दौड़ती हुई दिख-

लाई दें। परन्तु, वास्तव में, जैसा कि यहाँ के एक दैनिक पत्र ने लिखा था, यदि ये चित्रकार बिना लन्दन में आये हुए और बिना इस हड़ताल की सहायता के ही उक्त घटना की नक़ल न उतार सकें तो वे अपने काम में बड़े निपुण नहीं कहे जा सकते। अस्तु।

यदि इन हड़तालों के पहले किसी से पूछा जाता कि क्या बिना बसों और ट्रामों के लन्दन में काम चल सकता है, तो हठात् मुँह से यही निकलता कि नहीं, कदापि नहीं। परन्तु यद्यपि बसों के न होने से थोड़ी बहुत तकलीफ़ तो सभी को हुई होगी तथापि काम-काज में कोई वैसी अड़चन नहीं पड़ी। यदि किसी को कहीं पहुँचने के लिए बहुत ज़्यादा तकलीफ़ उठानी पड़ी होगी तो ऐसे वे ही लोग होंगे जो लन्दन में नये नये पहुँचे होंगे, जैसे कि बाहर मुफ़स्सिल से आये हुए लोग, या फ्रांस से छुट्टी पर आये हुए अमेरिका या आस्ट्रेलिया के सिपाही आदि। लन्दन में रहनेवालों को इस बात का पता लगाने में देर न हुई कि यदि बस नहीं मिल सकती तो किस प्रकार से अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों को जायँ, और लोग अपने अपने कामों पर यथा-समय ही पहुँचते रहें। लोगों को ट्यूब और अण्डरग्राउण्ड ही के ज़रिये अपना काम चलाना पड़ता था। बहुतेरे लोगों ने अवश्य ही, अपने पैरों की क़ीमत समझी होगी और पैदल चलने की वरज़िश के फ़ायदों को समझा होगा। इन दिनों धूप भी ख़ासी निकला करती थी, अतएव गर्मी ख़ूब पड़ रही थी और चलने में ख़ूब पसीना निकलता था। थक जाने पर या जल्दी का काम होने पर पाताली गाड़ियों की शरण लेनी पड़ती थी। परिणाम यह होता था कि अण्डर-ग्राउण्ड-गाड़ियाँ भी खचाखच भरी होती थीं और गरमी की भीषणता से भी छुटकारा न मिलता था। परन्तु लन्दन की भीड़ों का सँभालना कोई मुश्किल काम नहीं है। जो लोग बैठने की जगह पा सकते थे वे तो बैठ ही जाते थे, बाक़ी को खड़े ही खड़े हिलते जुलते जाना पड़ता था [1]। यह सब होने पर भी कभी कभी लोगों से बिना मज़ाक़ किये न रहा जाता था और एक आध हास्यपूर्ण बातें सुनाई ही दे जाती थीं, जैसे Inside (१) only; Full up (२) Standing room in the pit only (३) इत्यादि इत्यादि।

इसे सौभाग्य की बात समझना चाहिए कि हड़ताल की छूत अण्डर-ग्राउण्ड-गाड़ियों में काम करनेवालों को नहीं लगी। एक लाइन की कुछ लड़कियों ने कुछ देर के लिए काम ज़रूर छोड़ दिया था, लेकिन उनकी वजह से कोई असली दिक़्क़त नहीं हुई और गाड़ियाँ चलती ही रहीं बाक़ी सब लाइनें मामूली की तरह चलती रहीं। यदि कहीं बस और ट्यूब दोनों साथ ही साथ बन्द हो जातीं, तब तो बड़ी ही तकलीफ़ होती।

---

[1] मामूली दिनों में भी बाज़ बाज़ वक़्त बैठने की जगह नहीं मिलती और खड़े ही खड़े जाना पड़ता है। इन खड़े खड़े जानेवालों के पकड़ने के लिए गाड़ी में जगह जगह तस्मे लगे होते हैं, ताकि उन्हें पकड़ कर खड़े रहें और इधर उधर गाड़ी के झोंकों में गिरें गिरायें नहीं। इस ग़ैर मामूली समय में, भीड़ इतनी अधिक होती थी कि, प्रायः हर एक गाड़ी में लोगों को खड़े होकर ही नहीं, पर बिना तस्मा पकड़े हुए भी जाना पड़ता था।

१ इनसाइड ओनली (Inside only) अर्थात् सिर्फ़ अन्दर बैठने की जगह है। बसों में छत की सब जगहें भर जाने पर, कंडक्टर उक्त शब्द कह कर लोगों को इस बात की इत्तला देता है। इसके बारे में पहले ही लिख आये हैं।

२ फुल अप (Full up) अर्थात् सब जगहें भरी हैं। बस पर बिलकुल ऊपर नीचे कहीं भी जगह न रहने पर कंडक्टर इन दो शब्दों के द्वारा प्रतीक्षा करनेवाले मुसाफ़िरों को उक्त बात की ख़बर देता है।

३ स्टैण्डिंग रूम इन दि पिट ओनली (Standing room in the pit only) अर्थात् पिट में सिर्फ़ खड़े रहने ही की जगह है। पिट यहाँ की नाटक-शालाओं के एक स्थान-विशेष का नाम है। पिट की जगहें पहले से ही 'रिज़र्व' नहीं कराई जा सकतीं; नाटक आरम्भ होने से थोड़ी देर पहले ही इस दर्जे का दरवाज़ा खुलता है तभी वहीं टिकट लेकर उसके अन्दर जा सकते हैं। बाज़ बाज़ खेलों में किसी दिन भीड़ ज़्यादा होती है और बैठने के लिए 'पिट' में जगह नहीं रह जाती। उस समय जो लोग भीतर जाना चाहते हैं, उनको उक्त शब्दों द्वारा इस बात की इत्तला दी जाती है, और अगर उन्हें तमाशा खड़े ही खड़े रह कर देखना मंज़ूर हुआ तो टिकट लेकर वे अन्दर जा सकते हैं।

इस मौक़े पर शायद एक बात का लिख देना असङ्गत न होगा कि बस की हड़ताल बन्द होने के बाद ट्यूब की लड़कियों की भी एक छोटी मोटी हड़ताल हो गई है; जिसकी वजह से एक दो दिन के लिए एकाध ट्यूब-लाइन तथा कई एक स्टेशनें बन्द रखनी पड़ी हैं। ट्यूबों के बन्द होने से भी जो तकलीफ़ लोगों को हुई होगी उसका पाठक स्वयं कुछ कुछ अनुमान कर सकते हैं। परन्तु यह हड़ताल शीघ्र ही समाप्त हो गई। मैं तो समझता हूँ कि यह हड़ताल नितान्त अन्धाधुन्ध अबलाहठ का एक मात्र उदाहरण था। अस्तु।

पिकेडिली सर्कस लन्दन।

बस—अकाल के इन भीड़ भम्भड़वाले दिनों में कदाचित् सब से टेढ़ा काम टिकट लेना था। बाज़ बाज़ स्टेशनों में, बाज़ वक्त इतनी भीड़ होती थी कि टिकट लेने में ही कोई १२–२० मिनट लग जाते थे। परन्तु एक बात कह देना आवश्यक मालूम पड़ती है, वह यह कि टिकट इत्यादि लेने में यहाँ इँग्लैंड में कहीं भी और कभी भी, वैसी आफ़त नहीं होती जैसी कि हिन्दुस्तान में तीसरे दर्जे का टिकट लेने या और कोई वैसा ही काम करने में होती है। वहाँ तो जिसकी लाठी उसकी भैंस सभी जगह चलती है। क्या रेलवे-स्टेशन की टिकटघर की खिड़की पर और क्या थियेटर के टिकट की खिड़की पर। लोग एक दूसरे के ऊपर गिरे से पड़ते हैं और सभी का यह उद्देश होता है कि सब से पहले टिकट उसे ही मिल-जाय चाहे आप आये सब से पीछे हों और दर्जनों लोग आपके पहले से आये हुए खड़े के खड़े ही रह जायँ, लेकिन टिकट आप सब से पहले ही चाहते हैं। यहाँ पर कहीं भी ऐसा अन्धाधुन्ध नहीं दिखलाई पड़ता। यहाँ पर First come first served, जो पहले आवे उसी को पहले मिले, इस सिद्धान्त के अनुसार सब काम किये जाते हैं। जहाँ कहीं भी किसी चीज़ के लेने के लिए भीड़ होना शुरू हुई—चाहे रेल या नाटक का टिकट हो, अथवा तरकारी गोश्त या और कोई सौदा मोल लेना हो,—वहाँ सब लोग अपने आप ही क़तार में खड़े होना शुरू कर देते हैं। जो पीछे आवे वह जितने पहले के आये हुए खड़े हैं उन सब के पीछे अपने आप खड़ा होजायगा, उसके बाद आने वाला उसके पीछे खड़ा होगा, इत्यादि। इस प्रकार की अक्सर बड़ी बड़ी क़तारें बाज़ वक्त खड़ी हुई दिखलाई देती हैं। थियेटर के टिकट लेने के लिए बाज़ बाज़ जगह बड़ी लम्बी क़तार इकट्ठा हो जाती है। इस प्रकार की भीड़ को इधर क्यू (Queue) कहते हैं। बाज़ बाज़ दफ़े तो ऐसा होता है कि किसी बड़े या आवश्यक या मनोरञ्जक जलसे में शरीक़ होने के लिए, अच्छी जगह पाने के लिए, लोग दरवाज़ा खुलने के समय से घंटों पहले आकर जमा होने लगते हैं—अक्सर आँधी-पानी के कष्टों को सहते हुए भी कई दफ़ा तो किसी अच्छे थियेटर में जाने के लिए मुझे 'क्यू' में घण्टे डेढ़ घण्टे तक खड़ा रहना पड़ा है। अभी उस साल शेक्सपियर के शतवर्षाधिवेशन (Centenary) का जो जलसा हुआ था वह तीसरे पहर कोई तीन बजे से शुरू होनेवाला था। प्रायः जितनी

बैठने की जगहें थीं सभी बड़े बड़े लोगों ने पहले से 'रिज़र्व' कर रक्खी थीं, पर कुछ थोड़ा सा स्थान बिना रिज़र्व की हुई जगहों के लिए छोड़ दिया गया था। मेरे दो एक मित्र इन बिना रिज़र्व की हुई कुर्सियों पर ही जगह मिल जाय और जगह मिलने में कोई संशय न रहे यह सोच कर सबेरे ८ ही बजे से वहाँ इन्तज़ार करने के लिए पहुँच गये थे, यद्यपि दरवाज़ा २। या २॥ से पहले खुलने को न था! इस बस-अकाल के समय एक रात को मैं थियेटर से लौट रहा था। सोचा कि अंडर-ग्राउण्ड से घर चलें। पर स्टेशन पर, पास की सड़क पर भी बहुत दूर तक फैले हुए लम्बे क्यू को देख कर ट्यूब से जाने की हिम्मत न हुई। पैदल ही चलने की ठहराई और कोई ४० मिनट में घर पहुँचे। दूसरे दिन फिर वहीं से घर लौटना पड़ा। अब की दफ़े सिर्फ़ यह अन्दाज़ लगाने के लिए कि देखें ट्यूब से ऐसी हालत में घर पहुँचने में कितनी देर लगती है, बड़ी हिम्मत करके क्यू के आख़ीर में जाकर खड़े हो गये। कोई २० मिनट तो केवल टिकट की खिड़की तक पहुँचने ही में लग गये और कुल मिला कर कोई ३५ मिनट में घर पहुँचे—मामूली तौर से १५ मिनट से ज़्यादा न लगते। दमड़ी की बुलबुल टका उसकाईवाली मसल हो गई।

बंक और रायल एक्सचेञ्ज ।

मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान में भी इस क्यू बनाने की प्रथा को प्रचलित कर देना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इसको प्रचलित करने में पहले बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। इस बारे में मुझे एक घटना की याद हो आती है जिसका कि मुझसे मेरे एक मित्र ने हाल में ज़िक्र किया था। आप Y. M. C. A. के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान से इधर आये थे और फ़्रांस में हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आवश्यकताओं को रफ़ा करने के लिए जो Y. M. C. A. की कुटियाँ होती हैं उनमें काम करने के लिए भेजे गये थे। आप कहते थे कि वहाँ वे लोग सिपाहियों तथा मज़दूरों को क्यू बना कर खड़ा होना सिखलाने की कोशिश करते हैं। एक दिन कुछ लोग खड़े हुए अपनी अपनी बारी आने का इन्तज़ार कर रहे थे कि इतने में एक लम्बा चौड़ा सिख-जवान कोई चीज़ लेने के लिए आया। अपनी पुरानी आदत के अनुसार आप क्यू के पीछे इन्तज़ार करने की बात भूलकर सीधे खिड़की के पास पहुँचे और कहने लगे कि बाबूजी हमें फ़लानी फ़लानी चीज़ दे दो। बाबूजी ने कहा कि जा कर क्यू के पीछे खड़े होकर इन्तज़ार करो, जब तुम्हारी बारी आवेगी तुमको ये सब चीज़ें दी जायँगी। यह बात आपको अच्छी न लगी कि आप औरों के पीछे जाकर खड़े होवें। तब बाबूजी को उन्हें समझाना पड़ा कि भला अगर ऐसा होता कि आप खुद कोई चीज़ लेने के लिए थोड़ी देर से खड़े इन्तज़ार कर रहे हों और इतने में कोई नया आया हुआ व्यक्ति आपको हटा कर अपनी ही चीज़ें माँगने लगे, और यदि देनेवाला इस नवागन्तुक को आप के पहले ही चीज़ें देने लगे, तो आपको कैसा मालूम होगा? उत्तर में दो जवाब होही नहीं सकते। "यह बात तो ठीक नहीं होगी। हम ऐसा होने ही न देंगे।"

"फिर आपको हम कैसे उन लोगों से पहले चीज़ें देदें जो आपके बहुत पहले से ही इन्तज़ार कर रहे हैं। उनको

भी यह बात उतनी ही बुरी मालूम होगी जितनी कि आपको उस फ़र्ज़ी वाक्य में मालूम होती।”

“बाबूजी बात तो आप ठीक कहते हैं, लेकिन एक परेड से तो हमने अभी अभी छुट्टी पाई है, और अब आप दूसरे परेड पर खड़े होने को कहते हैं। और फिर आप कहते हैं कि यह जगह हम लोगों के आराम के लिए बनी है। इसलिए हमें तो आप सबके पहले ही चीज़ें देदें, बड़ी मिहर्बानी होगी।

टीका-टिप्पणी अनावश्यक है। ऐसी घटनायें शुरू में अवश्य होवेंगी। परन्तु थोड़े दिनों के बाद क्यू बनाने के गुणों को लोग स्वयं समझने लगेंगे, और खुद ही क्यू बनाकर खड़े होने लगेंगे।

परन्तु अपने विषय से हम बड़ी दूर जा पहुँचे हैं। तदर्थ पाठकों से क्षमा-याचना करते हुए फिर अपने विषय की ओर लौटते हैं। ऊपर लिख आये हैं कि पाँच दिनों के वाद उक्त हड़ताल का अन्त हुआ। परन्तु असल में मामला विलकुल तै नहीं हुआ है। तै केवल यही बात हुई है कि जिस गवर्नमेंट-कमिटी ने आदमियों की तनख्वाह बढ़ाने पर स्त्रियों की नहीं वाला मन्तव्य पास किया था वह अपने मन्तव्य के बारे में पुनर्विचार करे। पुनर्विचार का फल क्या होगा यह किसी से छिपा नहीं है। सर्वसाधारण स्त्रियों के ही पक्ष में है। देश के जितने पत्र हैं, क्या उदार दलवाले और क्या पुराने लकीर के फ़क़ीर दलवाले, क्या मज़दूर-दलवाले और क्या ही किसी अन्य दलवाले, सभी ने स्त्रियों का ही पक्ष लिया है और गवर्नमेंट के मन्तव्य को अन्यायपूर्ण बतलाया है। इसी लिए कहते हैं कि पुनर्विचार का फल क्या होगा इसके विषय में दो मत नहीं हो सकते।

हड़ताल, वास्तव में, मज़दूरों के हाथ में एक बड़ा ही विकट और कार्य सिद्ध करानेवाला हथियार है। मज़दूरों को जो कार्य अपने मालिकों से करवाना हुआ और यदि उनका पक्ष सबल और न्यायपूर्ण हुआ, तो यदि मालिकों ने ज़रा भी आनाकानी की, बस तुरन्त ही हड़ताल बोल दी गई। प्रायः सदैव मज़दूर-पक्ष की ही जीत होती है, मालिकों को उनकी बातें न्यूनाधिक माननी ही पड़ती हैं। इतना सब जानते हुए भी मालिक लोग हमेशा हर बात में हठ-धर्मी करते हैं, चुपचाप शान्तिपूर्वक मज़दूरों की न्याय्य प्रार्थनाओं को मान लेने के बजाय, वे उन्हें हड़ताल के द्वारा अपनी कार्य-सिद्धि प्राप्त करने के लिए बाध्य करते हैं। इस युद्ध-काल में भी मज़दूरों को अपने देशभक्ति का ही ध्यान करके वैसा न करने के कितने ही उपदेश दिये जाने पर भी, न मालूम कितनी बड़ी बड़ी और गहन प्रश्नों से सम्बन्ध रखनेवाली हड़तालें हो चुकी हैं। पर एक प्रकार से उन सब हड़तालों और स्त्रियों की इस हड़ताल में अन्तर है। अन्य सब हड़तालों में मज़दूर-पक्ष प्रायः सब पुरुष ही पुरुष रहते हैं, और यदि पुरुषों ने बहुत ही हठधर्म्मी पर कमर बाँधी और तब तक काम पर न लौटने की ही ठान ली जब तक कि उनकी बातें सचमुच ही मान न ली जायँ, तो प्रायः सदैव ऐसे मौक़ों पर गवर्नमेंट हस्ताक्षेप कर बैठती है और पुरुषों को इस धमकी के ज़रिये काम पर भेजा जाता है कि यदि तुरन्त ही काम पर न लौटे तो सभों को सेना में भर्त्ती होने के लिए बाध्य किया जायगा। परन्तु यह हड़ताल ख़ास करके स्त्रियों की थी। स्त्रियों को उक्त प्रकार की कोई धमकी नहीं दी जा सकती थी। कदाचित् यही कारण था कि इतने दिनों तक यह हड़ताल जारी रही। इस विषय को छोड़ने के पहले यह लिख देना उचित समझता हूँ कि मैं सम्पत्तिशास्त्र अथवा राजनैतिक-विज्ञान का विद्यार्थी नहीं, अतएव, हो सकता है, इनके किन्हीं सिद्धान्तों के विरुद्ध, मैंने कोई बात लिख डाली हो।

पाँच दिनों की एक प्रकार की छुट्टी सी इन स्त्रियों को मिलगई थी। और उन लोगों ने इसका खूब ही स्वागत किया होगा और बड़े चैन से दिन काटे होंगे। परन्तु बहुतेरी लड़कियों ने, स्वयं ही, जा कर खेती के कामों में सहायता पहुँचाना आरम्भ कर दिया था और फ़सल कटवाने में मदद पहुँचाई थी। शुक्रवार के सवेरे बसों को एक बार फिर चलते हुए देख कर जितनी जल्दी होसका मैं एक बस पर जाकर सवार होगया। बस चलानेवाली के चेहरे पर खुशी और विजय की हँसी और लाली छाई हुई थी। मैंने उसे एक शख़्स से यह कहते हुए सुना कि ‘I enjoyed my five days’ holiday,’ अर्थात् मैंने इन पाँच दिनों छुट्टियाँ खूब ही मनाईं। जो हो ये स्त्रियाँ मज़दूर-पक्ष के लोगों की अवश्य ही धन्यवाद-पात्र हुईं।

लन्दन;
२१—८—१८ } जगद्विहारी सेठ।

परिग्रह

तव निवास है सीप, अतल जल में सागर के,
हैं प्रवाल के विपुल जाल भूषक जिस घर के ।
पर है तेरा स्नेह दूर गगनस्थित घन से,
स्थिति से क्या, वह मिला हुआ जो है तव मन से ।
उसके लिए निवास छोड़ देती तू अपना,
ऊपर आती मग्नभाव-सुख को कर सपना ।
अतल-निवासिनि, हृदय खोल जल पर तिरती है,
मारी मारी तरल-तरङ्गों में फिरती है ।
प्रेम-नीर की झड़ी लगा देता तव घन है,
छक जाता बस एक बूँद से तेरा मन है ।
इस सुख से हो मत्त किन्तु क्या तू गृह तजती ?
नहीं नहीं, फिर लौट उसे मोती से सजती ।

कृष्णदास

शनिवार की रात ।

(अमेरिका में, देशी अचार, गीतों और विद्यार्थियों की बातें)

सूर्यास्त की धीमी किरणों की शीतलता का न मालूम मन पर क्या विचित्र प्रभाव पड़ता है । उदार कल्पना देवी स्वप्न राज्य की सृष्टि कर एकान्त मनुष्य को कुछ समय के लिए संसार की असारता भुला देती है । न्यूयार्क के जगत्-प्रसिद्ध विशाल पुस्तकालय के अर्थ-शास्त्र-विभाग के कमरे में खिड़की के पास की टेबल पर एक कोने में, पुस्तकों से घिरे हुए क़िले में बैठा, मैं अर्द्ध-मुद्रित नयनों से, भविष्य उच्चाकाङ्क्षाओं के दुर्जय दुर्गों के विजय के उपायों का ध्यान, एकाग्र-चित्त हो, कर रहा था; इतने में पास के टेलेफ़ोन की घण्टी बजी—

एक परिचित स्वर ने कहा, "आधा घण्टा हो गया मैं आप के लिए यहाँ बैठा हूँ । यदि भोजन करना हो तो शीघ्र आइए ।"

स्मरण आया । प्रातःकाल मेरे मित्र मि० गुप्त ने किरा के (K. Y. Kira) भारतीय भोजनालय में सायंकाल उनके साथ भोजन करने का न्योता दिया था ।

"तुरन्त आता हूँ" उत्तर दे, स्वप्न-राज्य का राजत्व त्याग, पुस्तकों को चारों ओर से एकत्र कर एक कोने में रखा, ओवरकोट पहन, हैट (Hat) ले, किरा के "अमेरिका में एक मात्र", "स्वादिष्ट तरकारीवाले" भारतीय भोजनालय की ओर मैंने प्रस्थान किया ।

इस भोजनालय का नाम अमेरिका के सब भारत-वासियों को विदित है । यहाँ प्रति रात्रि प्रत्येक प्रान्त के विद्यार्थियों को लोक-नीति, धर्म-नीति 'राज-नीति' आदि अनेक नीति अनीतियों की आलोचना करते, भारतीय और विदेशी लेखकों, दर्शनों और धर्मों की समीक्षा और अनेक गूढ़ विषयों की मीमांसा करते पाइएगा । सचमुच, घर-बीती पर-बीती बातें करने, हँस कर छुट्टी का समय काटने, विदेश का कष्ट भूलने, मिर्चभरी तरकारी खाने के लिए ऐसा अनूठा भोजनालय अमेरिका में यह एक ही है ।

बङ्गाली विद्यार्थी इसको "आड्डाघर" कहते हैं । प्रति सायङ्काल—इनके एक दल के एक कोने में उच्च स्वर से अँगरेज़ों के शासन-पद्धति की समालोचना, रवीन्द्रनाथ के पद्यों की प्रशंसा और "माछेर झोल" का गुणगान करते पाइएगा । इनके उच्च स्वर से बोलने का एक कारण है । यद्यपि एक के मुख से दूसरे के कानों का जितना अन्तर है उससे दूर उनके शब्दों के पहुँचने की आवश्यकता नहीं परन्तु आप जानते हैं धीमे बोलने से देशी भाषा का पूरा मिठास नहीं आ सकता ।

शनिवार होने के कारण आज ख़ासी भीड़ है। बङ्गालियों की टेबल पर उनकी त्रिमूर्ति विराजमान थी। मित्रवर गुप्त महाशय भी उनके साथ बैठे, कागज़ में लपेटा हुआ एक बण्डल लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। वन्दे मातरम् कर मैंने उनके पास ही कुरसी ग्रहण की। हमारे पास की दो टेबलों में, एक पर दो महाराष्ट्र ब्राह्मण और एक पञ्जाबी मुसलमान और दूसरी पर एक अमेरिकन युवक और युवती और दूर एक टेबल पर चार पाँच लम्बी जटाधारी सिंहली बैठे थे। हमारे यहाँ जैसे सोने की छत्री में अधेले की सुपारी से अभ्यर्थना करने की चाल है वैसे ही, मुझे आते देख एक बंगाली मित्र ने अपनी जेबों में बहुत ढूँढ़ कर, बड़ी नम्रता और शान का भाषण कर एक इलायची से मेरा सत्कार किया। अमेरिका में देशी इलायची के उपहार की क़द्र केवल जो विदेश में कई साल रह चुके हैं वही जान सकते हैं। मैंने सावधानता से उसे ले उनको धन्यवाद दिया। इतने में किरावधू ने आकर "Good evening" कर पूछा, "भोजन के लिए क्या ला दूँ?"

"आज क्या बनाया है" मैंने उत्तर में पूछा। पर पूछने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इनके यहाँ रोज़ एक ही प्रकार की चीज़ें बनती हैं। जवाब मिला, "आलू, गोभी और बैंगन की तरकारी और दाल भात। आप मांस नहीं खाते इसलिए आपको और क्या दूँ।"

यहाँ जब आता हूँ सदा आलू गोभी और बैंगन की तरकारी खानी पड़ती है। मैंने कहा, "अच्छा, जो है वही ला दीजिए।" मि० गुप्त मुझसे सहमत हो बोले, "मेरे लिए भी तथास्तु"।

परमात्मा ने मि० किरा के जगत् में केवल तीन ही प्रकार के शाकों की सृष्टि की है। भूल कर भी आप कोई नई तरह की तरकारी नहीं बनाते। पर हमारा तो यहाँ आने का प्रयोजन ही दूसरा था। भारत से हज़ारों कोस दूर विदेश आकर यहाँ अकेले रहते हैं। हफ़्ते में एक आध बार यहाँ मित्रों से मिल कर दुख सुख की बातें करने से दुख का बोझ हलका मालूम होता है और एक दूसरे के सुख में सुखी होने का मौक़ा मिलता है।

बङ्गाली विद्यार्थी प्राचीन अरबी और चीनी लेखकों पर तर्क वितर्क कर रहे थे। एक ने प्रसिद्ध चीनी लेखक याङ्ग चू (Yang chu) की अत्युक्ति कर प्रशंसा की तो एक दूसरे ने झुंझला कर कहा—

"वाह! आपके श्रीमान् याङ्ग चू का क्या कहना! दिन में दीपक और प्रातःकाल में पूर्ण चन्द्र की भाँति इनका यश सारे संसार में फैला हुआ है। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैंने इन का नाम आज सुना। पर यद्यपि मैं चीनी भाषा की कविता नहीं समझता और न मुझे अरबी में ग़ज़ल बनानी आती है और न आप की तरह चश्मा पहनता हूँ पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि कालिदास और रवीन्द्रनाथ की बराबरी करनेवाला लेखक पृथ्वी में कहीं कभी नहीं जन्मा।"

हम लोगों ने करतलध्वनि कर उनको शान्त किया।

याङ्ग चू-भक्त ने चिढ़ कर उत्तर दिया "घोडार डिम"—अर्थात् आप जो कहते हैं उससे मेरी सम्मति नहीं मिलती।

"आपकी तरकारी ठण्डी हो रही है," किरा-पत्नी ने याद दिलाया। अन्नपूर्णा के प्रसाद को ठंडा होने देनेवाला मैं थोड़े ही ठहरा; इसलिए मैंने भी अपना कार्य्यारम्भ किया।

मि० किरा सिंहली हैं। सिंहली लोग मिर्चों के परम भक्त हैं। तरकारी वैसे बुरी नहीं बनाते पर मिर्चों को ग़ैर हाज़िर करना सीख जायँ तो इनके भोजन के सुधरने की सम्भावना है। लङ्काद्वीप नारिकेल के लिए जगद्विख्यात है। मिर्च के सिवा इसकी

भी ये लोग बड़ी फ़ज़ूल-ख़र्चो करते हैं। रसे में, तरकारी में, चटनी में, हलुवे में सर्वत्र नारिकेल किसी न किसी रूप में अवश्य पाइएगा। किसी किसी स्थान में "अति वर्जयेत्" करना अच्छा है।

मि० गुप्त ने आज्ञा की, "तनिक आँख मूँदिए, देखिए, आप को क्या जादू का खेल दिखाता हूँ"।

उनकी बात मान मैंने एक आँख बन्द की। काग़ज़ का बण्डल खोल आपने एक भाण्ड निकाला और उसमें से अचार का एक टुकड़ा निकाल चम्मच से मुझे दिया।

"सुबहान अल्लाह! यह क्या? न्यूयार्क में दिल्ली का अचार—नरक में अमृत-वृष्टि, रेगिस्तान में परिस्तान की ख़ुशबू। जल्दी बताइए, यह आपने कहाँ से ख़रीदा?" तुरन्त उनके हाथ से भाण्ड छीन आश्चर्य से मैंने पूछा।

आपने व्याख्या की—

"आज घर की डाक आई है। अम्मा ने अपने हाथों अचार बना प्यार का पारसल" भेजा है। आप मेरे मित्र ठहरे इसलिए आप को चखाने के लिए इसे लाया हूँ। आपने तो सारे पर अपना अधिकार जमा लिया है।"

"आप की अम्मा ने प्रेम का बण्डल इतना छोटा क्यों बनाया" मैंने पूछा।

पर यह तो केवल कहने की बात थी। अचार थोड़ा होने पर भी था स्वादिष्ट। दूसरे, तीखा अचार भी अमृत सा लगता है जब उसकी भेजनेवाली प्रिय मित्र की पूज्य मातृ-देवी स्नेह से अपने हाथों से "प्यार का पारसल" बना कर भेजे। ऐसी अवस्था में खट्टी चीज़ भी मीठी हो जाती है और विदेश में तो उस की मधुरता सौ गुणी लगती है।

२

नये प्रकार का भोजन चखने या कुतूहल के कारण कभी कभी अमेरिकन भी इस भोजनालय में आते हैं। हमारी टेबल के पास बैठे हुए अमेरिकन युवक और युवती केवल एक दूसरे की ओर देखने में मग्न थे! बीच बीच में तरकारी का ग्रास लेते थे पर दोनों का मुख प्रसन्नता से खिला हुआ था। इनका यहाँ यह प्रथम आगमन मालूम होता है। अँगरेज़ी भाषा पुसफुसाहट से बोली और समझी जा सकती है। इनके धीमे पुलकित स्वरों से जान पड़ता था कि किसी प्रेमोपन्यास की क्रमवृद्धि हो रही है।

गौराङ्गना श्वेतवसना हो बनठन कर आई थी। पाउडर अर्चित लाज घूँघटहीन सुन्दर मुख, रूझ (Rouge) द्वारा रक्तावरणकृत ओष्ठ और कला से कृष्णाकृति नेत्रों को देख इनका—पद्य-मय भाषा में वर्णन करने के लिए मैंने याङ्ग चू-भक्त को, जो अपने को कवि भी कहते हैं, प्रार्थना की। कहने की देर थी। आपने अपनी विद्या दिखाने के लिए धारा-प्रवाह कविता आरम्भ की:—

"देखिए, सुन्दरी के कपड़ों की तुक इनके प्रत्येक अङ्ग से ऐसी उत्तमता से मिलती है मानो (Fifth Avenue) के चतुर दरज़ी ने अपनी कारीगरी की कविता लिखी है।

"इनके मुसकान का मैं कैसे वर्णन करूँ—

"चन्द्रकान्ति-परि-पूरित शान्तिमय निर्जन निकुञ्ज में मृदु-हास्य-कलित प्रेम-कथाओं का सरस माधुर्य्य केवल अनुभव किया जा सकता है; इनका वर्णन करना कवि की कला के सीमातीत है। षोडशी के अर्द्ध-स्फुटित ओष्ठों के प्रत्येक मधुर मुसकान में ऐसी ही एक प्रीति-वार्त्ता का विकाश होता है।"

"और इनका मधुर स्वर:—

"आपने शरद्-ऋतु के ठण्डे प्रातःकाल में सूर्य्योदय की सुनहली किरणों को दीवार पर चमकते देखा होगा। पूर्णिमा की रात्रि में पूर्ण चन्द्र की ज्योति का प्रकाश निरखा होगा। सुनसान वन में जलपात के टपकते हुए वारि-बिन्दुओं के साथ मृदु पवन का युक्त राग सुना होगा। इनका कोमल

मृदु स्वर सुन कर मेरे हृदय में ठीक ऐसे चित्र जागृत होते हैं।”

मैंने करतलध्वनि कर कहा,

“शाबाश, क्या खूब कविता बनाई। पर अभी इतना ही बहुत है। आपकी चाय ठण्डी हो रही है। मेरी बातों पर ध्यान न दे कविजी निरन्तर कहने लगे :—

“मधुर मधुरा के माधुर्य्य की मधुरता की माधुरी”—

इसपर इनके साथी बङ्गालियों से नहीं रहा गया। बात काट कर एक ने कहा—

“कहीं आपकी चाय में चीनी तो अधिक नहीं गिर पड़ी”। दूसरे ने व्यङ्ग्य-पूर्व्वक एक प्रसिद्ध बँगला गीत का एक पद “तोर मुखेर वाणी आमार काने लागे सुधार मत” अलापना आरम्भ किया।

(३)

भोजन समाप्त कर चाय लाने की आज्ञा दे मैंने अपनी दृष्टि पञ्चनद और महाराष्ट्र के समावेश पर डाली। पञ्जाबी सज्जन अमेरिका में नये आये हुए मालूम होते थे। इनको महाराष्ट्र महाशय व्याख्यान दे रहे थे :—

“हमारे यहाँ लोगों का मूल विश्वास है कि विदेश जा लड़के बिगड़ जाते हैं। भारतीय नवयुवकों के विचारों में फेर अवश्य होता है पर वे बिगड़ते नहीं। इनकी आँखें खुल जाती हैं। अमेरिका की बातें देख सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता के विचार इनके हृदय में पैदा होते हैं। इसका कारण है। कुतुबमीनार पर चढ़ कर आप सारी दिल्ली देख सकते हैं पर सड़कों में घूमने से केवल आसपास की दोनों ओर की चीज़ें ही दिखाई देती हैं। किसी वस्तु को चारों ओर से अच्छी तरह से देखने के लिए उससे अलग हो, कुछ दूर जा देखने की आवश्यकता पड़ती है। वैसे ही अमेरिका आकर यहाँ की और भारत की हालत का अन्तर देख हमारे विद्यार्थियों की आँखों का परदा दूर हो जाता है। बिगड़ने के बदले बिगड़े हुए लड़के यहाँ आकर सुधर जाते हैं और शिक्षा समाप्त कर भारत लौट कर देश की दशा सुधारने का सङ्कल्प करते हैं।

“अमेरिका में प्रायः दो सौ भारतीय विद्यार्थी हैं। इनमें प्रायः सभी स्वावलम्बी हैं। घर से ख़र्च नहीं आता इसलिए घरवालों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। इनकी चिन्ता करनेवाला दुनिया में विरला ही कोई है। सैंकड़ों मारवाड़ी गुजराती पारसी लखपतियों ने भारत में स्थान स्थान पुण्य और यश के लिए धर्मशालाएँ मुसाफ़िरख़ाने और अतिथि-आश्रमों की स्थापना की है। पर किसी ने भी भारत के बाहर अपने देशभाइयों के लिए कुछ करने का प्रयत्न नहीं किया है। यदि मेरे पास कभी लाख दो लाख रुपये हों तो मैं लन्डन, न्यूयार्क और टोकियो (Tokyo) में भारतीय यात्रियों, विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिए भारतभवन बनवाऊँगा। और इन प्रत्येक अतिथि-मन्दिरों में भारतीय विषयों का एक पुस्तकालय, भारतीय वस्तुओं की एक प्रदर्शिनी और भारतीय ढङ्ग से सजा हुआ एक व्याख्यानगृह निर्म्माण कराऊँगा। पर मेरा यह सङ्कल्प अभी तो केवल कालपनिक ही है।

“आत्मावलम्बी विद्यार्थी कैसे शिक्षा ग्रहण करते हैं, सुनिए। दिन में कभी दो बार खा, कभी एकादशी कर, कभी स्कूल की फ़ीस और कमरे के भाड़े की चिन्ता में निमग्न रह कर पढ़ना सुखमय नहीं है। पीछे कपड़ों की चिन्ता, नौकरी की चिन्ता, आदि सैकड़ों चिन्तायें इनको घेरे रहती हैं...।”

महाराष्ट्र सज्जन का कहना सत्य है। मैंने भी भारतीय विद्यार्थियों के कष्टों की अनेक हृदय-वेधक कथायें सुनी हैं; पर, इनका साहस और उत्साह भी अथाह है। दरिद्र, स्वावलम्बी विद्यार्थियों से मिल

कर नई आशा और नया जोश दिल में पैदा होता है। इस दुनिया में यदि किसी का चरित्र पवित्र, किसी का चित्त उदार और किसी का जीवन निर्मल है तो इन सदा हँस-मुख विद्यार्थियों का है जो विद्या-शिक्षा के लिए सहस्रों कोस कष्ट सह कर आते हैं। इनका दर्शन सैकड़ों तीर्थ-यात्रा से भी अधिक फलप्रद है।

महाराष्ट्र महाशय का रङ्ग कुछ कृष्ण वर्ण है। मुसलमान विद्यार्थी के पूछने पर वर्ण-विरोध पर आपने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट कीः—

"स्वर्ग में वर्ण-भेद है कि नहीं, पता नहीं पर; अमेरिका तो कृष्णवर्णवालों के लिए जीवित नरक समान है।"

"मैं इस देश में पाँच साल से हूँ। पर अमेरिका में मेरे प्रथम दिन की बात मैं अभी तक नहीं भूला हूँ। मैं एक भोजनालय में भोजन करने गया था। वहाँ उन्होंने मेरी कृष्ण-मूर्ति और फटे कपड़े देख भोजन परोसना अस्वीकार किया था। नाई के यहाँ हजामत कराने गया तो नाई ने मेरी बड़ी असभ्यता से अभ्यर्थना की थी। रात को सोने के लिए बड़े कष्ट से एक रद्दी होटल में कमरा मिला था। पाँच साल में मेरी सूरत में अधिक फ़रक नहीं हुआ पर अब अधिक कष्ट नहीं होता। कुछ हो, मैं पहले दिन के अतिथि-सत्कार को जन्म भर याद रखूँगा।"

जब जब मैंने विद्यार्थियों से पूछा है, "आपको अमेरिका कैसा लगता है?" प्रायः सभी ने उत्तर दिया है—"विष-सम" या "नरक-तुल्य"। व्यर्थ, हम यहाँ विदेशी ठहरे विदेश में विदेशी हो कर रहने में सुख कहाँ।

विदेश में घर के सुख की आशा करना भी भूल है। दिग्विजयी आर्य्य सन्तान यदि ज़रा ज़रासी बात में कष्ट की चिन्ता करें तो भारत का उद्धार कैसे होगा। प्रिय पाठक! वर्ण-विरोध से न डरिए। अमेरिका आने की इच्छा हो तो अवश्य आइए। यदि आपकी उच्चाकाङ्क्षा की पूर्ति के लिए आप के प्रान्त में उपयुक्त साधन न हों, यदि आपको राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक चिन्तायें घेरे हुए हों, यदि आपके घरवाले आपके उन्नत नये विचारों को नास्तिकता समझ आपसे रूठे हुए हों, यदि आप किसी सनातन या नव आविर्भूत धार्मिक माया-पाश में बँधे हों—कुछ भी हो—सरस्वती की आराधना के लिए, लक्ष्मी की पूजा के लिए, अन्नपूर्णा के प्रसाद के लिए—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सर्व रोगों के विनाश के लिए अमेरिका आइए। इस जन्म में देशी बन्धनों से मुक्त होना हो, इस देह से स्वर्ग और नरक दोनों एक साथ भोगना हो, इस लोक की लीला के लालित्य का दर्शन करना हो तो अमेरिका आइए। जो आवे सो पछताय, जो न आवे वह भी पछताय। कुछ हो मन की साध तो कर लीजिए।

४

कवि महाशय बँगला गीत "से जे स्वप्न दिये तैरी से देश, स्मृति दिये घेरा" को बड़े करुण स्वर से गुनगुना रहे थे। अन्य एक बङ्गाली विद्यार्थी वीर-रसात्मक "बाहु ते तुमि मा शक्ति, हृदये तुमि मा भक्ति, तोमारि प्रतिमा गढ़ि मन्दिरे मन्दिरे" को प्रकट उच्च स्वर से कलावन्ती कर रहे थे। दो अकलित कण्ठों के दो प्रकार के स्वरों के दो गीतों की खिचड़ी में कितनी मधुरता हो सकती है, आप विचार सकते हैं। इनकी राग-रागिनियाँ सुन मि० गुप्त ने इनको धमका कर कहा—"अरे भाई! यदि गाना हो तो दोनों मिल कर एक गीत गाओ या एक ही को गाने दो, या दोनों मौन धारण करो, या आओ तीनों मिल कर गाते हैं।" इस पर उन्होंने हँस कर कहा, "अच्छा आइए। आरम्भ कीजिए।" गुप्तजी ने नेतृत्व स्वीकार कर आदेश दिया—"मैं एक—दो—तीन गिनता हूँ जब तीन कहूँ तब तीनों मिल कर "वन्दे मातरम्" गायेंगे। मैं ने भी इनके

साथ योगदान किया। अब हम चार बेसुरे स्वरों की चार प्रकार की ध्वनि होने लगी।

हमारे इस अचानक भैरव-नाद को सुन अन्य लोगों ने शान्त होने की प्रार्थना की। आपने दिल की कसर निकाल, थोड़ी देर बाद उनकी अर्ज़ियाँ सुन, हमने भी स्थिर किया कि अब बहुत हुआ। पर हम लोगों को इतनी जल्दी सन्धि करना नहीं चाहिए था। चारों ओर से हम लोगों पर कोपारोप हुआ। श्रोताओं में से एक ने अपने कानों पर से हाथ हटा कर कहा, "जातीय गीत को यथोचित भक्ति और श्रद्धा से गाना प्रत्येक देशभक्त का धर्म है। जिस मधुर कण्ठ से आप लोग शोर मचा रहे थे उसके लिए आप लोगों को लज्जित होना चाहिए।"

आपका कहना सत्य है। जातीय गीत भक्ति और श्रद्धा से गाया जाना चाहिए। पर भला कहिए हम लोग किन्नर-गन्धर्व और तानसेन के वंशधर तो हैं ही नहीं और यदि सब लोग बात बात में लज्जित हो चुप रहें तो भारत का जातीय गीत उत्साह और वज्र-निनाद से संसार में कौन प्रचलित करेगा?

५

पासवाली टेबल पर से स्त्री-कण्ठ के मधुर स्वर से ध्वनि मेरे कानों में पड़ी। अमेरिकन-सुन्दरी अपने मित्र से कह रही थी—"प्रियतम! तुमने याद क्यों नहीं दिलाया; इतनी देर हो गई है। माँ क्या कहेगी।"

"देर हो गई है" सुन मैंने घड़ी निकाल कर देखी। इनके प्रेमोपन्यास के प्रथम परिच्छेद के समाप्त होने और मेरे घर जाने का समय आ गया देख मैं गुप्तजी को उनके सत्कार के लिए धन्यवाद दे सब को (Good night) राम नाम लेता हुआ, बिस्तर की शरण लेने के लिए विदा हुआ।

न्यूयार्क अमेरिका। रामकुमार खेमका
अक्टूबर १९१८

लीला

(१)

फणीन्द्रफणाश्रित रत्नसिंहासनासीन वसुन्धरा देवी

(गान)

दूर अब होगा मेरा भार
करुणा वरुणालय विभुवर ने सुन ली अहा! पुकार
किया धन्य लीलामय ने है नर-लीला-विस्तार
दिखला कर निज-जन-वत्सलता लिया आप अवतार
शीतल हुआ हृदय यह मेरा वे पद-पङ्कज धार
जिनकी रज सिर पर रखते हैं अज भी वारं वार
आदि-शक्ति के सहित हुए हैं निराकार साकार
बची रसातल जाने से मैं पाकर यों उद्धार
नीच निशाचर-कुल का होगा अब सत्वर संहार
पूर्णादर्श-चरित की शिक्षा पावेगा संसार
मेरा भारत भाग भाग्य-सा चमका सभी प्रकार
जिसका अतिथि हुआ है आकर सहसा स्वर्गागार
ऊँचा हुआ हिमालय का सिर गूँजा जय जयकार
जय जय मर्यादा-पुरुषोत्तम, जय जय जगदाधार!

(२)

स्थान—एक प्रान्तर

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, धीर और गम्भीर

लक्ष्मण

आर्य्य, आज मृगयार्थ चलेंगे?

राम

मृगया तुमको भाती है?

लक्ष्मण

अङ्ग-स्फूर्ति, लक्ष्य-लघुता भी उससे कैसी आती है!
मेरी इच्छा है कि सिंह से आज नियुद्ध मचाऊँ मैं
दोनों पिछले पंजों के बल उसको नाच नचाऊँ मैं

शत्रुघ्न

सिंह नहीं तब रीछ ठीक है

भरत

ये साहस की बातें हैं
पिता सुनेंगे क्रोध करेंगे, पशुओं में भी घातें हैं

धीर
और इस लिए वन में जाना केवल कष्ट उठाना है
सिंह समझ कर मुझे नचा लो जैसा मन में ठाना है
बाल बिखेर रीछ बन जाऊँ चीते की छलाँग मारूँ
कहो, सुअर-सा सीधा भागूँ, जल-थल में न कहीं हारूँ
पशुओं को भी पशुओं की सब विद्याएँ मैं सिखलाऊँ
हिरन-चौकड़ी भरूँ कहो तो गीदड़-भभकी दिखलाऊँ
बन्दर-घुड़की यहीं दिखादूँ, वन में व्यर्थ भटकना है
काँटों की झाड़ी में जाकर अपने आप अटकना है !
राम
बड़ी कलाएँ तुझे याद हैं !
धीर
मैं क्या ऐसा वैसा हूँ
मैं ही नहीं जानता हूँ तब क्या बतलाऊँ, कैसा हूँ ?
गम्भीर
प्राण बचे
भरत
क्या हुआ ?
गम्भीर
बतादूँ ? बचा धूप में मरने से
भरत
किन्तु बचोगे कैसे बच्चू, सरयू-जल में तरने से ?
धीर
अरे बाप रे ! जल-विहार की यह भी कोई वेला है ?
लक्ष्मण
वेला हो कि न हो, मगरों का झगड़ा और झमेला है !
भरत
लक्ष्मण, भैया, यह कटाक्ष क्यों ? मैं मृगया से भीत नहीं
सत्य बात यह है कि व्यर्थ ही रक्तपात से प्रीत नहीं
लक्ष्मण
सचमुच तुम में दया बहुत है, जल-विहार ही होने दो
वेला भी चढ़ती है, इसको उसका रोना रोने दो
धीर
मैं क्यों रोऊँगा ? हँस हँस कर सब को दाँत दिखाऊँगा
उपवन में चलिए तो आहा ! मधुर मधुर फल खाऊँगा
शत्रुघ्न
हम को भी खिलायगा ?
धीर
हाँ हाँ, चलिए, हवा खिलाऊँगा
पकड़ पकड़ कर ललित लताएं उनको खूब हिलाऊँगा
भरत
आर्य्य, आप की क्या आज्ञा है ?
राम
जिसमें तुम सब सुख पाओ
खेलो कोई खेल प्रेम से किन्तु इसे न भूल जाओ
मृगया क्षत्रियकुल का गुण है, किन्तु अधिकता भली नहीं
दया खलों पर दुर्बलता है किन्तु वधिकता भली नहीं
भरत और लक्ष्मण
जो आज्ञा
गम्भीर
पर प्रथम तर्क से आओ, सिद्ध करें इसको
लक्ष्मण
रहो, तर्क का काम नहीं है, छोड़ो दन्त घिसाघिस को
गम्भीर
तर्कशास्त्र से यह विरक्ति क्यों ?
धीर
शस्त्रों के प्रेमी ठहरे
गम्भीर
पर मृगया तो आज न होगी, अर्थ हो चुके हैं गहरे
राम
हुआ, चलो अब सरयू-तट पर चलें
(देख कर)
अरे, यह वीर कहाँ ?
(वीर का प्रवेश)
वीर
आर्य्य, एक कौशिक कौशिक कर आये हैं मुनि धीर यहाँ
राम
विश्वामित्र पधारे हैं क्या ?
वीर
हाँ हाँ, यही नाम उनका
गम्भीर
वाह ! नाम का क्या कहना है, होगा क्या न काम उनका !
शत्रुघ्न
दादा, विश्वामित्र कौन हैं

राम
बड़े तपस्वी, ज्ञानी हैं
क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हुए हैं इससे अब भी मानी हैं
शकुन्तला थी सुता इन्हीं की श्रीदुष्यन्त-भूप-जाया
जिसके पुत्र भरत थे जिनसे भारत भारत कहलाया
अपने पूर्वज हरिश्चन्द्र थे स्वर्ग मिला सशरीर जिन्हें
राज्यदान कर बिके आप वे करने को सन्तुष्ट इन्हें
शत्रुघ्न
ठीक ठीक, अब याद आगई
गम्भीर
फिर क्यों इनके चरण पड़े ?
दाता को बिकवा कर छोड़ा, आये विश्वामित्र बड़े !
राम
यह कहना अनुचित है, देखो वह तो एक परीक्षा थी
मिली सफलता जिस में हम को जैसी कुल की दीक्षा थी
यदि अब फिर कुछ कृपा करें वे तो सौभाग्य हमारा है
फिर सब देखें, सूर्य्यवंश में उसी रुधिर की धारा है
भरत
तो फिर चलो, सभा में चल कर उनके दर्शन कर आवें
धीर
अच्छा हुआ, चलें तो हम भी नौ दो ग्यारह हो जावें
वन में फिरने, जल में गिरने, दोनों से छुट्टी पाई
लक्ष्मण
क्या कहना है, बड़ा भाग्य था
राम
अच्छा, चलो, चलें भाई ।

मैथिलीशरण गुप्त

विस्फोटक या शीतला रोग

(Small-Pox)

इसे लोग चेचक, देवीजी, बसन्त, मसूरिका भी कहा करते हैं। यह रोग इस देश के तथा दुनिया के एक भयङ्कर रोगों में से है।

यह एक छुतिया (Contagious) या संसर्गज ज्वरवाला रोग है। प्रारम्भ में इसमें एक तरह के लाल लाल मच्छड़ के से काटे दाने या चकत्ते निकलते हैं जिनमें जल्द ही जल भरने लगता है। इनके मध्य में एक गढ़हा रहता है और फिर इनमें पीव पड़ जाता है ! अन्त में ये पीववाले झलके या विस्फोटक सूख कर मसूर की दाल की तरह गिर जाते हैं।

इसके विष या छूत को इस देश के निवासी ईसा के हज़ारों वर्ष पहले से जानते हैं और यहाँ इसके रोकने के लिए ब्राह्मण लोग एक प्रकार का टीका भी लगाया करते थे*। आज कल बाज़ लोग अज्ञान के कारण टीके को बाहर देश की चिकित्सा समझ कर इस के ख़िलाफ़ रहते हैं और अपने बच्चों को छिपा कर रखते हैं। उसी का फल है कि यह महामारी कभी कभी बड़ा ही नुक़सान पहुँचाती है। टीके का पुराना ढङ्ग आज कल ठीक नहीं। क्योंकि आज कल आतशक, सुज़ाक, क्षय आदि रोग अधिक प्रचलित हैं इसलिए, आज कल के तरीक़े से गुदना गुदाना ज़्यादा अच्छा है।

कानपुर में इस समय शीतला रोग का अधिक ज़ोर है। मृत्युसंख्या इस कारण बढ़ती पर है। सम्भव है यह रोग देश भर में महामारी रूप से फैल जावे और इन्फ्लूएञ्ज़ा की तरह थोड़े ही समय में लाखों को मारे और इसके अलावा हज़ारों ही को अन्धा, कुरूप, लँगड़ा लूला बना कर उमर भर के लिए बेकार बना डाले। इसलिए कम से कम बच्चों को अवश्य ही टीका लगवा देना उचित है।

इसके विषय में कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। इसको आरम्भ ही से अच्छी तरह न जानने के कारण इलाज से एक तो मृत्यु अधिक हो जाती हैं और दूसरे मेरी राय में लोग इसको फैलाने में एक प्रकार का बड़ा पाप करते हैं। छठी ईसवी में योरप में यह रोग क्रूसेड नाम की (Crusade War) लड़ाई के समय में फैला था। स्पेन में भी शायद उस समय फैला था, जब मुसल्मानों ने स्पेन को जीता था। १६ वीं ईसवी में स्पेन से अमेरिका पहुँचाया गया जिससे वहाँ के असली निवासी (Mexicans, North American Indians) क़रीब क़रीब नष्ट ही होगये। नवीं ईसवी में बग़दाद के रेज़ेस (Rhazes) नाम के हकीम ने इस रोग के विषय में अच्छी तरह लिखा था। योरप में १७९६ में डाक्टर जैनर (Dr. Jenner) ने चेचक का टीका निकाला। आठवीं ईसवी में अरबी हकीमों ने संस्कृत के प्रसिद्ध आयुर्वैदिक ग्रन्थों का (चरक, सुश्रुत आदि) अनुवाद किया। यह रोग गाय के थनों में (Cow-pox) भी होता है। इन गोवसन्त के दानों से यह गौ दुहनेवालों को भी हो सकता है।

---

*"The earliest knowledge of its (small-pox) occurrence is derived from India, where the Brahmins practised inoculation many centuries before Christian era."

—Vol. II of Allbutt System of Medicine.

इसका मुख्य कारण—एक प्रकार का छोटा जीव माना गया है (Cytoryctes Variolœ), इसके निवास की जगह चेचक के दानों के चैंप (Lymph) में, पीव में और खुरंटों में होती है। इसलिए यह रोगी के कपड़ों में, उसके साथ रहनेवालों के बदन और कपड़ों में और रोगी के बिस्तर आदि और कमर की धूल में भी होसकता है। वहाँ से नौकरों की और उक्त सज्जनों की कृपा से मोहल्ले भर में और मोटरों गाड़ियों द्वारा शहर के वायु-मंडल में व्याप्त हो सकता है। फिर ग़ैर टीके लगे बच्चे, स्त्रियों और पुरुषों पर हमला करने लगता है। गुदना लगे लोगों पर उसका असर कुछ नहीं या बिलकुल थोड़ा पड़ता है। ऐसी दशा में इसे हँसती खेलती शीतला देवी के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। इसके कई भेद हो सकते हैं। साधारण रीति से तीन हैं:—

(१) मसूरी माता, मसूरिका या बड़े (Varisla Vera) दानोंवाली शीतला।

(२) काली शीतला (Black small-pox).

(३) छोटी माता या छोटे दाने और कम दानेवाली शीतला।

लक्षण—इसका हाल लिखने के लिए मसूरी या बड़ी शीतला का ही हाल लिखा जाता है। बाक़ी में जो साधारण मनुष्यों के जानने योग्य भेद हैं स्थान स्थान पर बता दिये जायँगे।

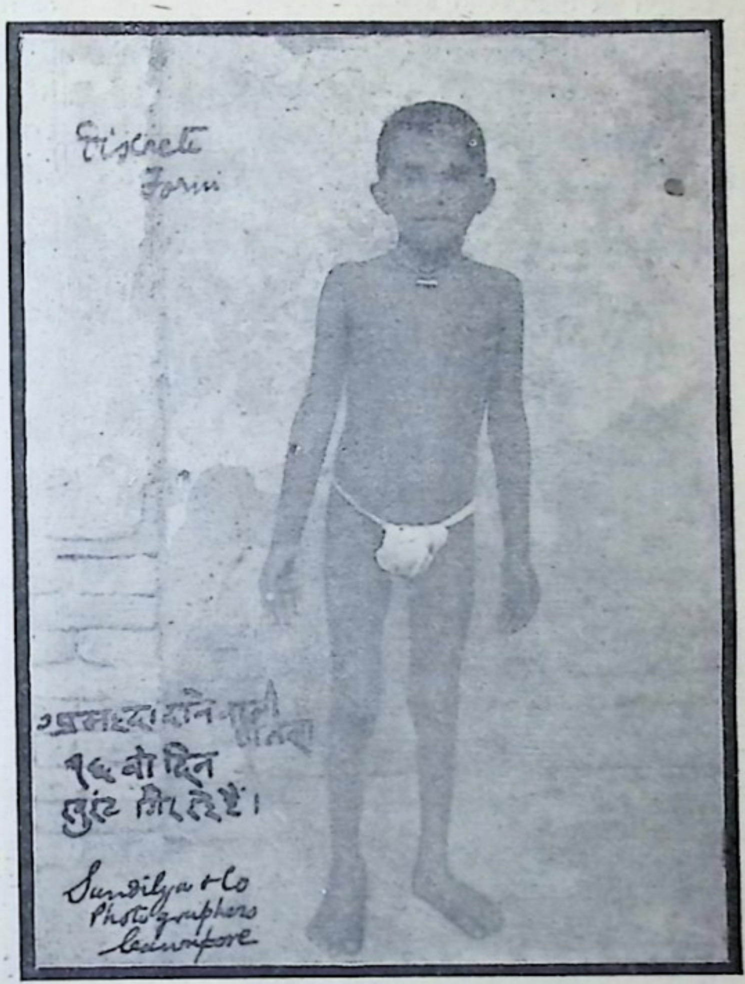

बड़ी या मसूरिका के दो रूप होते हैं—एक में दाने और झलके या विस्फोटक अलहदा अलहदा होते हैं (Discrete form), दूसरे में संयुक्त या पास पास होते हैं। दो दो तीन तीन मिल भी जाते हैं। रोग की हालत में चार अवस्थायें देखी जाती हैं। (१) रोग के आरम्भ के कुछ पहले ही से शरीर में कहीं से विष पहुँचता है। इस समय कोई लक्षण नहीं प्रकट होते, गुप्त रहते हैं। यह गुप्त समय जब कि विष शरीर में बढ़ता रहता है विष-वृद्धि-काल या अंकुरा (Incubation Period) कहाता है।

(२) दूसरी या ज्वरावस्था या अचेतनता की अवस्था। जिसमें बच्चे रोगी प्रायः ज्वर की दशा में चौंका करते हैं और वमन किया करते हैं। (३) तीसरी या विस्फोटकों की

अवस्था पकावस्था, द्वितीय ज्वरावस्था—जिसमें दानों में जल और पीव पड़ता है। (४) शुष्कावस्था या जिसमें खुरंट सूख कर गिरने लगते हैं।

ये उन रोगियों की अवस्था है जिनमें कोई और उपद्रव नहीं खड़े हो जाते और रोग शान्त हो जाता है।

बड़ी उम्र के रोगियों में आरम्भ में जाड़ा मालूम पड़ता है। माथे, कमर और हाथ-पैरों में दर्द मालूम पड़ता है। कै होती है और बच्चों में चौंकने की हालत देखी जाती है, जिसमें वे चिल्लाते हैं। ज़बान और आँखें निकाल देते हैं। हाथ पैर गर्दन ऐंठते हैं और रोगी बेहोश होजाता है। ज्वर दोनों ही को रहता है और १०३ से १०६ डिगरी तक देखा गया है। बेहोशी में पेशाब भी बिस्तर ही में कर देते हैं। बच्चों को भी कै होती है। कभी कभी आरम्भ ही में दस्त आने लगते हैं। नब्ज़ और साँस जल्द जल्द चलती हैं। रोगी बेचैन रहते हैं। हाथ पैर की अङ्गुलियाँ ठंडी मालूम पड़ती हैं। चौथे दिन बुख़ार के पीछे माथे पर, हाथ, कलाई और पेट के नीचे के भाग पर लाल लाल दाने निकलने लगते हैं जो अँगुली से दबाने से ग़ायब होकर हटाने से फिर दिखाई देने लगते हैं। पीछे धड़ के ऊपर के भाग को छोड़ कर बदन के सब हिस्सों में दाने निकल आते हैं। ये शीतला के प्रारंभिक दाने (Pocks or Initial Rash) पाँचवें या छठे * दिन जल से भरने लगते हैं। इनके बीच में छोटी ओखली की तरह गढ़हा होता है (मध्य निम्ना = उन्नत मण्डला शीतला * = Umbillicated vesicle of small pox) धीरे धीरे आठवें दिन तक ये एक तरफ़ से बिलकुल भर जाते हैं और फिर १२ दिन के भीतर पीव से भर जाते हैं। इन मसूरिका—स्फोटकों (Pustules) के चारों तरफ़ लाल लाल सूजनदार घेरा रहता है। इनकी बीच की त्वचा में (संयुक्त शीतला में) अधिक सूजन हो जाती है और दर्द भी अधिक होता है। पकने का ज्वर (maturation fever) भी बढ़ जाता है। रोगी को प्यास बहुत मालूम होती है। साँस बहुत तीव्र हो जाती है। नब्ज़ कमज़ोर रहती है। रोगी उठ भी नहीं सकता, बेचैनी बेहोशी बहुत रहती है, इस समय बड़े हिफ़ाज़त की ज़रूरत है। उबकाई और सूखी खाँसी आती है। पेशाब पाख़ाने की बार बार झूठी हाजत मालूम पड़ती है। पेट और बदन भर में बहुत दर्द मालूम होता

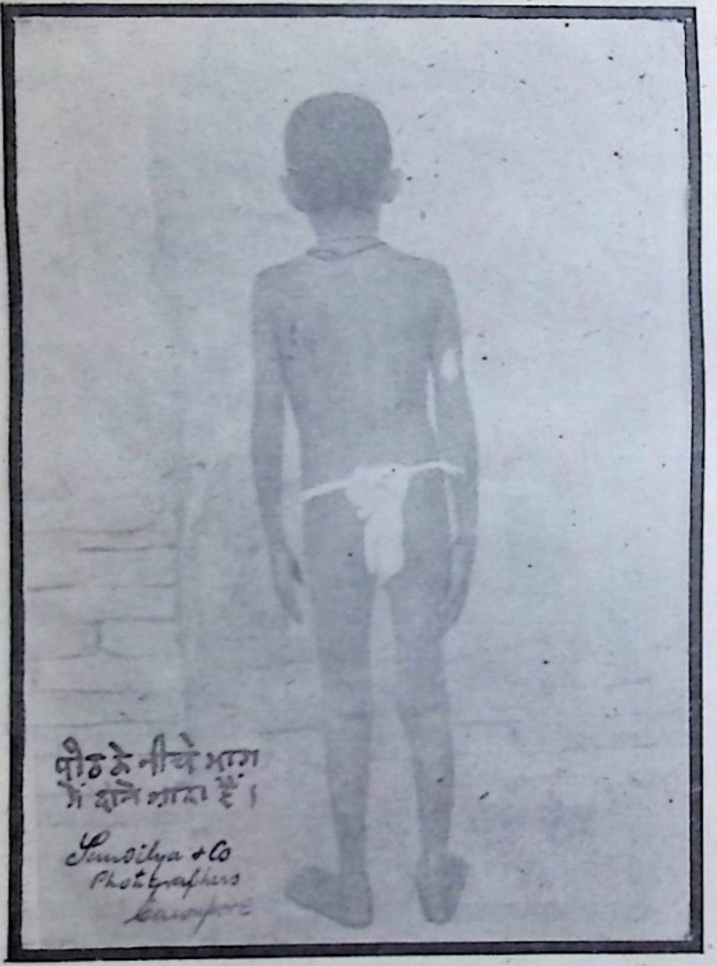

---

* आयुर्वेद की सम्मति—

शीतला ... ...
सा च सुप्तविधा... ... ...
सप्ताहोभिःसरत्येव सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत्।
ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वयम्

भावप्रकाश मसूरिका-रोग

है। संयुक्त (मिली हुई) शीतला में मुख पर अधिक दानों के कारण मुख सूज जाता है। दोनों आँखों के पलक बन्द हो जाते हैं। १४ या १५ दिन के भीतर ही अच्छे होनेवाले रोगियों में बुख़ार १३ वें दिन से घट कर बहुत कम हो जाता है और झलके सूख कर काली मसूर की तरह त्वचा में चिपके रहते हैं। बच्चे इनको खुजली के कारण नोच नोच कर निकाल डालते हैं। और किसी नये उपद्रव के पैदा हो जाने से रोगी आरम्भ में या पकने की अवस्था में मर भी जाते हैं। ऐसा प्रायः उन्हीं रोगियों में होता है जिनमें दाने संयुक्त होते हैं (Confluent Form) और या मुख पर बहुत ज़्यादा होते हैं। ऐसी कंठ या गले के वरम से या न्यूमोनिया (पसली) से बच्चे अधिक मर जाते हैं।

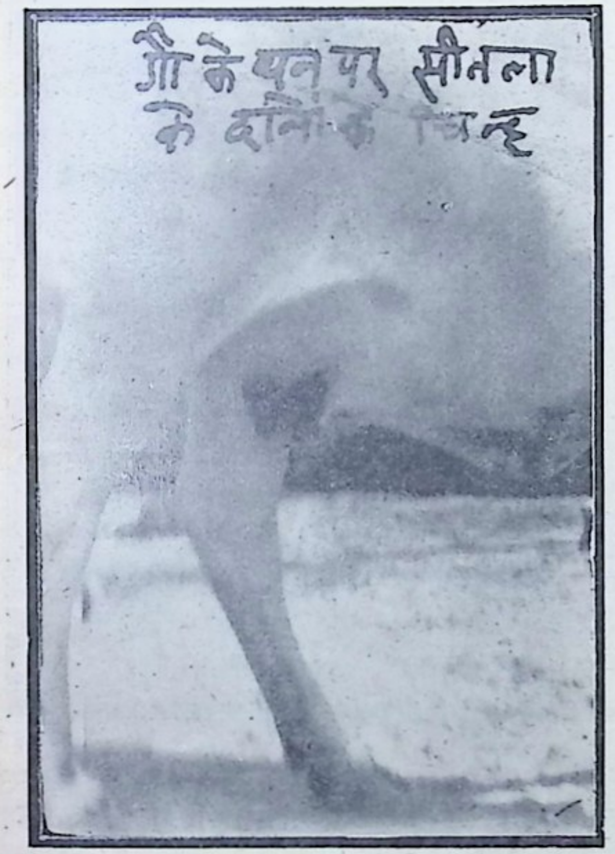

तीसरा भेद—शुष्क शीतला (Varioloid) जिसमें दाने सिर्फ़ लाल निकल कर आगे नहीं बढ़ते, जल्द सूख कर साफ़ हो जाते हैं। आरम्भ में यह टीके लगे रोगियों में होती है।

अन्य भेद—(अ) हँसती—बोलती (Abortive Type) दाने केवल माथे ही पर निकल कर जल्द अच्छे हो जाते हैं। जैसा आज कल हो रहा है। बच्चे इस हालत में खेलते रहते हैं। (ब) कहीं ख़ाली खुजली के दानों की तरह शीतला के दाने निकल कर जल्द ग़ायब हो जाते हैं।

उपद्रव(complications)—कुछ बताये जा चुके हैं। गृहस्थ को चाहिए कि ऊपर बतलाई बातों के समझने में या कोई और नई बात दिखाई देने पर किसी योग्य चिकित्सक से सलाह ले। बच्चों की आँख, पसली चलने और दस्तों पर चौंकना, ज्वर, सन्निपात आदि और अच्छे होने पर सफ़ाई कमज़ोरी आदि पर ध्यान अवश्य रक्खे। बहुत कड़ी चीज़ या ज़्यादा खिलाने से पेचिश हो जाने का डर रहता है। यथा कभी कभी गले के आगे या पीछे की ओर अन्दर ही अन्दर वरम होने से साँस बढ़ जाती है।

शीतला साध्य है या असाध्य (Prog. nosis)—संयुक्त और काली शीतला से या किसी अन्य उपद्रव से मृत्यु अधिक होती हैं (१०० में ३० या ३५ रोगी मर जाते हैं। बाक़ी साध्य होते हैं। मुख पर और हाथों पैरों पर अधिक दानों का होना या दानों में पीव पड़ने पर भी ज्वर का आना, कण्ठ, नाक, गले में भी अधिक दानों के कारण साँस का रुकना, पसली, आदि का चलना अशुभ लक्षण हैं। अधिक ज्वर, सन्निपात, शरीर काँपना, बेहोशी, अशुभ चिह्न हैं। कानपुर के श्मशान के मृत्यु-रजिस्टर देखने से मालूम होता है कि आख़ीर ४ हफ़्तों में ⅔ मौतें शीतला महामारी के कारण हुई हैं। मेरी सम्मति में यह मरी इस समय वृद्धि पर है। पाँच वर्ष तक के बच्चे अधिक मर रहे हैं।

(२) संयुक्त या मिली शीतला—इसमें पहले ही से ऐसे दाने निकलते हैं जो अधिक पास होते हैं और पानी पड़ने के समय दो या अधिक दाने आपस में मिल कर एक हो जाते हैं। स्फोटकों या झलकों के चारों ओर सूजन अधिक होती है। ये आँख, नाक, मुख में, ज़बान पर, पाख़ाने और पेशाब की जगह भी निकल आते हैं। आँखें

बंद हो जाती हैं। मुँह और हाथ-पैरों पर अधिक सूजन हो जाती है। इस प्रकार की शीतला में भी ज्वर, दानों के प्रकट होने, जल भरने और पीव पड़ने और सूखने का क्रम पहले ही ऐसा होता है। इसमें केवल ज्वर, सरसामी हालत बेहोशी अधिक होती है। आँखों में प्रायः फूली पड़ जाने का भय होता है; और मृत्यु भी इसमें अधिक होती है। इस प्रकार की शीतला में कई असाध्य रोग और भी पैदा हो जाते हैं। अर्थात्, गुर्दों में, पेट, फेफड़ों, कंठ, और दिमाग़ में कोई ऐसी हालत पैदा हो जाती है जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है, या वह बहुत दिनों तक बीमार रहता है। बदन में फोड़े-फुन्सी हो जाते हैं। गाँठों में दर्द होने लगता है।

शीतला का दूसरा भेद*—कृष्णा या काली या ख़ूनी शीतला (Blacksmall-pox) इसमें शुरू ही से शरीर के किसी जगह से ख़ून आने लगता है—जैसे नाक, मुँह, फेफड़े से या पाख़ाने पेशाब में। दानों के भीतर जल के साथ ही रुधिर आने लगता है। सारा शरीर एकदम काला पड़ जाता है। इससे रोगी प्रायः जल्द ही मर जाते हैं। मरी की हालत में पहचान कठिन नहीं होती।

आरम्भ के लक्षण—सारे शरीर में सख़्त दर्द (ख़ास कर कमर में), उबकाई, जूड़ी के (रोमांच) साथ ज्वर, चौथे दिन तक लाल दानों का मालूम पड़ना। पहले धड़ पर इसके दाने नहीं निकलते। मीज़ल्स (measles) इन्फ्लूएन्ज़ा (Influenza), चिकन पौक्स (Chicken pox), खुजली (Eczema), आतशक (Syphilitic Rash), आदि से पहचानना चिकित्सकों का काम है, यहाँ सब बातें लिखना व्यर्थ है।

इलाज—रोगी को आराम से नरम बिस्तर पर लिटा रखना। देखते रहना। रोगी के शरीर, चारपाई, कपड़े, रहने के स्थान को शुरू से आख़ीर तक साफ़ रखना। रोगी को शाक नमक छोड़ कर और जो जो खाने पीने की चीज़ें माँगे हाज़मे के अनुकूल देते रहना। पानी ठंडा जी भर देते रहना। ऐसे रोगी के पास आनेवाले या रहनेवालों को औरों के घर हो सके तो न जाना चाहिए। इसके खुरण्टों को जमा करके कहीं खुली जगह में मिट्टी चूने में मिला कर गाड़ देना अच्छा होगा। आख़ीर में खुरण्ट निकलते समय तेल लगाना चाहिए। आँखें, नाक मुँह आरम्भ से साफ़ रखना चाहिए। खुजली मालूम पड़ने

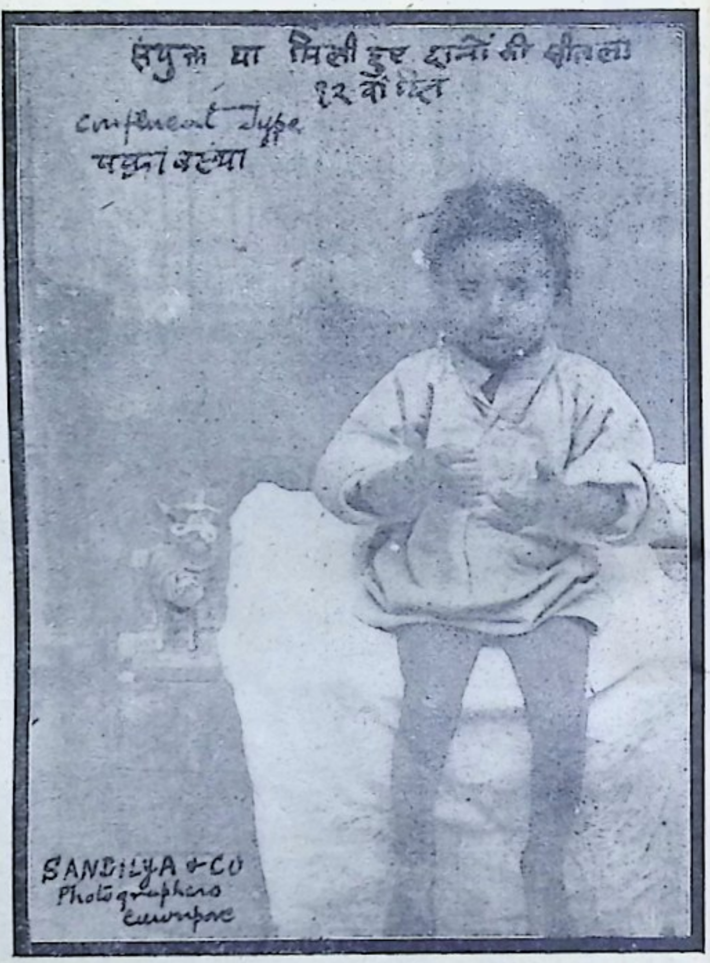

---

* डाक्टर लोग अभी तक इसे असाध्य जानते हैं। भारत के प्रसिद्ध वैद्य भाऊ मिश्र ने ऐसी हालत के आरम्भ होते ही फस्त खोलना (Venesection) या ख़ून निकलवाना उपयोगी बताया है। उनकी सम्मति उचित मालूम होती है। जाँच डाक्टर ही कर सकते हैं।

पर रुई से दानें का सहराना। मैं समझता हूँ इतना ही १०० में ७० रोगियों के लिए काफ़ी है।

पथ्य या खाने की चीज़ें—शक्कर, गुड़, मिठाई (मोतीचूर) लाई, चने की भुनी दाल, भुना चना, दूध, रोटी, मूँग की दाल, आलू, पिस्ता, बादाम, चिलगोजा, नमक कम देना अच्छा है—कुछ खुजली और झलकों में नर्मी पैदा करता है। और ऐसी ही चीज़ें रोगी के उम्र और ताक़त और मौसम को देख कर खिलाना चाहिए। कभी-कभी अनार भी दिया जा सकता है।

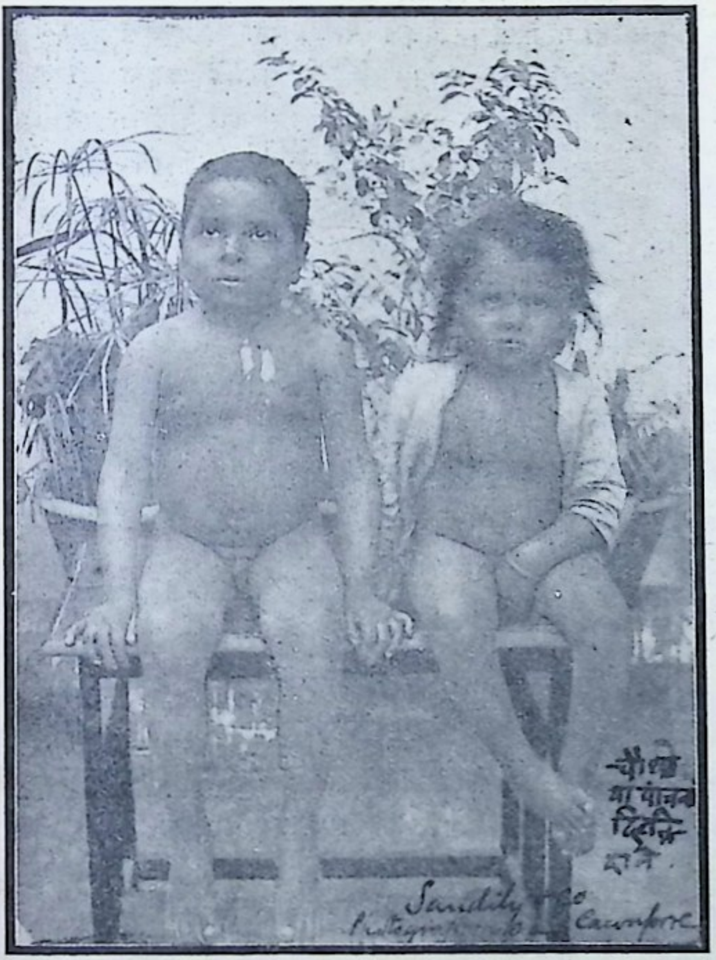

प्रतिपेधक या रोग रोकने के उपाय—महामारी (१) के समय इसकी वृद्धि को आगे फैलने से रोकने के लिए केवल गुदाना ही एक सरल उपाय है। सुना जाता है यहाँ लड़ाई के अस्पताल के सब रोगियों को गुदना लगाया गया है जिससे उन पर कानपुर में इस समय फैली शीतला का कुछ भी असर न पड़े। हमारे देश के बहुतेरे लोग आज कल सुस्ती और अपने ही शास्त्रों के न जानने से ही ऐसी चिकित्साओं से परहेज़ करते हैं। आप कुछ नहीं करना चाहते, ख़ाली पण्डितों द्वारा या अपने देवी-देवताओं पर बकरे चढ़ा कर उन्हें चपरासी बना कर रक्षा कराना चाहते हैं। प्रत्यक्ष फल यह मिलता है कि वे अपने आयुर्वेद की पुरानी पुस्तकों में बताई बातों पर ध्यान न रखने से ख़ूब रोग फैलाने में सहायक होते हैं और मेरी तुच्छ सम्मति में एक बड़ा पाप किया करते हैं। उनमें से हज़ारों को कानपुर में प्रत्यक्ष फल इसी महीने में यह मिला है कि उनकी हज़ारों सन्तानें गंगा में बहा दी गईं।

(२) गोरक्षा और उसका घर में पालना—स्मरण रखने के योग्य दूसरी बात यह है। गौ के स्थानों में कभी कभी होनेवाली मसूरिका (गो-विस्फोटक – Cow-pox) का विष प्रायः गौ दुहनेवाले स्त्री-पुरुषों पर और मेरी सम्मति में (जो अभी निश्चित नहीं) प्रति दिन दूध पीनेवालों पर भी इतना असर डालता है कि इस भयङ्कर रोग का कम असर पड़ता है। होमियोपैथीवाले (Home-opath) कहते हैं कि इसी प्रकार के विस्फोटक से बनी ओषधि (Varislinum (200)) की एक ख़ुराक मरी के समय में खा लेना शीतला रोग से बचाता है। इसलिए मनुष्य मात्र की रक्षा के लिए गौ कितनी उपयोगी है। यह टीके को अच्छा समझनेवाले डाक्टर भी मान सकते हैं। दुनिया के सब मनुष्यों को हमेशा लिंफ से (Glycerinated lymph) गोदने के लिए कितना लिंफ चाहिए ये भी वे ही समझ सकते हैं। गौ के न रहने से पृथ्वी पर मनुष्य नहीं रह सकता। एक बङ्गाल के होमियोपैथ डाक्टर कालिदास एल० एम० एस० ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि जङ्गली गधे के दूध का प्रयोग या उसमें भीगे चावल के दाने (२

से ४ तक) मरी के समय रोज़ खाने से भी शीतला नहीं निकलने पाती ।

ओषधि—सर्व-साधारण लोगों को इस विषय में इतना स्मरण रखना काफ़ी है। एक ओषधि भी याद रखना चाहिए—अफ़ीम उमर के अनुकूल (राई या सरसों के बराबर) ज़रूरत पड़ने पर कै, दस्तों में, चौंकने में सरसामी हालत में अच्छी पाई गई है । बाक़ी उपद्रवों के लिए योग्य चिकित्सक से ही इलाज करावे ।

प्रसादीलाल झा, एल० एम० एस०

भविष्यत् में हिन्दी का रूप क्या हो ?

अक्टूबर १९१८ की 'सरस्वती' में श्रीयुत पण्डित कामताप्रसाद गुरुजी का 'हिन्दी की आधुनिक अवस्था' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है । उसमें, उन्होंने, आशावादी और निराशावादियों को लेकर हिन्दी के विषय में अनेक बातें लिखी हैं । मुझे उनके विषय में कुछ कहना नहीं है । कहना है सिर्फ़ लेख के अन्तिमांश पर, जिसमें आपने इस प्रश्न पर विचार किया है कि भविष्यत् में हिन्दी अपने प्रचार के लिए कौन सा रूप धारण करे ? जान पड़ता है अगस्त १९१८ की 'सरस्वती' में प्रकाशित श्रीयुत कालिदास कपूर, बी० ए०-लिखित 'हिन्दी और उर्दू का विरोध' शीर्षक लेख को पढ़ कर ही श्रीयुत गुरुजी के हृदय में उपर्युक्त प्रश्न पर कुछ लिखने का विचार उदय हुआ । आपने अपने लेख में उक्त लेख का ज़िक्र किया भी है । मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध न तो गुरुजी से है और न कपूरजी से । इस अवस्था में यह स्पष्ट है कि मैं विचारणीय प्रश्न पर जो कुछ लिखूँगा सिर्फ़ हिन्दी के हित के ख़याल से लिखूँगा—उसमें पक्षपात की गन्ध ज़रा भी नहीं होगी ।

गुरुजी के लेख से जाना जाता है कि आप शुद्ध हिन्दी-शब्दों के पक्षपाती हैं । खिचड़ी-शैली आपको बिलकुल पसन्द नहीं । आप उर्दू-फ़ारसी के सिर्फ़ उन्हीं शब्दों का प्रयोग उचित समझते हैं, जिनके पर्यायवाची शब्द हिन्दी में बिलकुल नहीं हैं । आपको भय है कि भिन्न भिन्न भाषाओं के शब्दों के मिल जाने से हिन्दी स्वेच्छाचारिणी होकर अनेक रूप धारण कर लेगी जिससे उसका पहचानना भी कठिन हो जायगा ।

निवेदन इस पर अब यह है । गुरुजी यह बात खुद जानते हैं कि हिन्दी का शब्द-भाण्डार अभी तक सङ्कीर्ण ही बना है । पिछले पन्द्रह वर्षों में यद्यपि अनेक नये शब्दों की सृष्टि हुई है तथापि कहना ही पड़ता है कि हिन्दी में भाव-प्रकाशन की कठिनता अभी तक पूरी तरह नहीं गई । जब कोई लेखक किसी ख़ास विषय पर लिखने बैठता है तब उसको इस बात का ठीक ठीक अनुभव होता है । इस अवस्था में शुद्ध हिन्दी-शब्दों से कहाँ तक काम चल सकता है, यह गुरुजी खुद सोच सकते हैं । भाषा को उन्नत बनाने के लिए उसके शब्द-भाण्डार को विस्तीर्ण बनाने की ज़रूरत होती है । जिस भाषा में एक ही अर्थ के द्योतक जितने शब्द हों उसे उतनी ही उन्नत समझना चाहिए । इस समान-अर्थ-सूचक (Synonyms) शब्दों के आधिक्य से एक ही भाव को अनेक प्रकार से प्रकट करने में सहायता पहुँचती है । आज कल जब कि हिन्दी को उच्च शिक्षा के लिए माध्यम बनाने का यत्न चल रहा है तब उसके ऐसे शब्दों की संख्या बढ़ाना हिन्दी-सेवियों का मुख्य कर्त्तव्य है । मैं नहीं सोचता, गुरुजी किस ख़याल से यह फ़रमाते हैं कि उर्दू के उन शब्दों का प्रयोग करना (चाहे वे प्रचलित भी क्यों न हों) जिनके कि पर्यायवाचक शब्द हिन्दी में पहले से ही हों, भाषा को अशुद्ध बनाने का दोषी होना है । हिन्दी में उर्दू के अप्रचलित शब्दों को घुसेड़ना किसी को भी इष्ट नहीं होगा । यहाँ मतलब है सिर्फ़ उर्दू के उन शब्दों से जिनका हिन्दी-जनता में ख़ूब प्रचार है और जिन्हें लोग बोलने के समय अक्सर काम में लाते हैं । गुरुजी अपने लेख के प्रारम्भ में एक जगह निराशा-वादियों की ओर से कहते हैं:—"एक ही देशी-भाव को बिना विदेशी सहायता के कई प्रकार से व्यक्त करने के लिए हमारी भाषा में अभी शब्द-संख्या बहुत कम है । क़ानूनी शब्द तो हिन्दी में नाम मात्र को नहीं; और जो कुछ थोड़े से शब्द राजा

लक्ष्मणसिंह के सदृश दूरदर्शी लोग बना गये हैं, उन्हें समझनेवाले और उनका प्रचार करनेवाले भी विरले ही हैं। × + + भला क्या इतने ही इने गिने शब्दों के बल पर हिन्दी पूर्ण दिग्विजय की आशा कर सकती है ?" कभी नहीं कर सकती। पर इस अभाव की पूर्त्ति का उपाय क्या हो सकता है ? संस्कृत या और किसी भाषा का आश्रय लेकर नये शब्दों के गढ़ने का परिणाम प्रायः वही होगा, जो गुरुजी के कथनानुसार राजा लक्ष्मणसिंह के यत्न का हुआ। इधर विदेशी-शब्दों से सहायता ग्रहण करना भी स्वीकार नहीं। तब फिर शब्द-संख्या बढ़ाने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ? संसार की किसी भी उन्नत भाषा को लीजिए और उसके शब्दों के उत्पत्ति-क्रम पर विचार कीजिए। तब मालूम होगा कि उनका एक बहुत बड़ा हिस्सा विदेशी शब्दों से ही बना है। हाँ, समय की रगड़ से घिस कर अब उन शब्दों ने भले ही अन्य रूप धारण कर लिया हो। अँगरेज़ी को ही देखिए। कौन कह सकता है कि यदि वह विदेशी शब्दों से अपने शब्द-भाण्डार को भरने में आगा पीछा करती तो आज उसकी इतनी तरक्क़ी हो सकती ? शब्द-समूह को बढ़ाने के सिर्फ़ दो ही उपाय हैं। एक तो नये शब्दों का गढ़ना और दूसरा विदेशी-शब्दों का ग्रहण करना। इन उपायों से अपनाये हुए शब्द अपनी नवीनता के कारण पहले पहल लोगों को बहुत कुछ खलते हैं। प्रायः रक्षण-शील-दल उनको लेकर झगड़ा भी खड़ा कर देता है। पर धीरे धीरे ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यों वह उन्नति-शील-दल के सामने दबता जाता है। नये शब्द पुराने शब्दों में धीरे धीरे बिलकुल मिल जाते हैं। वे लिखने पढ़ने और बोलने में इस बहुतायत से आने लगते हैं कि रक्षण-शील लोगों को उनका उच्चारण करने और उन्हें देखने का अभ्यास सा हो जाता है। धीरे धीरे उनके प्रति उनका विरोध एकदम मिट जाता है।

किसी एक भाषा में विदेशी शब्दों के आ मिलने का दूसरा कारण यह है कि जब दो भाषाओं का सम्पर्क होता है, तब भाषा-विज्ञान के नियमानुसार यह कदापि नहीं हो सकता कि एक के शब्द दूसरे में जाकर न मिलें। हाँ, यदि ऐसा करने में उन्हें अपने स्वाभाविक रूप को छोड़ कर नये ढाँचे में ढलना पड़े तो, यह ज़रूर हो सकता है। इस विदेशी-शब्द-मिश्रण को भाषा की स्थिरता के ख़याल से हानिकारक समझ उससे बचने के यत्न करने का फल बहुत बुरा होता है। आदिम काल में इस प्रकार के यत्न से संस्कृत-भाषा की कुछ कम हानि नहीं हुई। आर्य जब पहले पहल पञ्जाब में पहुँचे तब वहाँ के आदिम-निवासियों की भाषा के शब्द उनकी भाषा में (जो पुरानी अथवा वेद की संस्कृत कही जा सकती है) मिलने लगे। यह देख कर आर्यों को भ्रम होने लगा कि कहीं इस गड्डमगोल से हमारी भाषा कोई अन्य ही रूप धारण न कर ले। इस डर से उन्होंने अपनी भाषा का संस्कार कर उसे व्याकरण के नियमों की जञ्ज़ीर से जकड़ दिया। इस तरह वर्तमान संस्कृत उत्पन्न हुई। किन्तु इसका फल क्या हुआ ? आर्यों ने संस्कृत के चारों ओर व्याकरण का परकोटा खड़ा कर उसमें आदिम-निवासियों की भाषा के शब्दों को आकर मिलने से रोक तो दिया; पर ज्यों ज्यों आर्यों और अनार्यों का पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ता गया त्यों त्यों स्वयं संस्कृत के शब्द ही उच्छृङ्खल क़ैदियों की तरह उस परकोटे को लाँघ कर आदिम-निवासियों की भाषा में मिलने लगे। निदान प्राकृत के नाम से एक तीसरी ही भाषा खड़ी हो गई, जिसे सर्वसाधारण काम में लाने लगे। संस्कृत सिर्फ़ पुस्तकों में रह गई।

हिन्दी का सम्पर्क फ़ारसी से शताब्दियों से रहा है। इधर उसके सामने 'कल की छोकरी' उर्दू भी पैदा हुई। अँगरेज़ी से भी उसका सम्पर्क हुए बहुत दिन बीत चुके। इस बीच में हिन्दी ने फ़ारसी उर्दू और अँगरेज़ी के अनेक शब्दों को अपना लिया। अभी यह काम जारी ही है और तब तक ज़ोरों से जारी रहना चाहिए जब तक हिन्दी अपनी पूरी पूरी तरक़्क़ी नहीं कर लेती।

हिन्दी को इन विदेशी शब्दों से दूर रखने से शायद उसकी भी वही शोचनीय दशा न हो जाय जो संस्कृत की हुई। फिर तो लोग एक दूसरी ही भाषा बोलने लगेंगे और हिन्दी सिर्फ़ साहित्य की भाषा रह जायगी। यों तो बोलने की भाषा स्वाभाविक और लिखने की कुछ अस्वाभाविक या बनावटी होने के कारण दोनों में थोड़ा बहुत फ़र्क़ ज़रूर रहता है। पर, विदेशी शब्दों के लिए हिन्दी का

दरवाज़ा एकदम बन्द कर देने से बीच में जो नई भाषा उत्पन्न होगी, वह उससे बहुत कुछ जुदी होगी।

पाठकों से यह बात छिपी नहीं कि आवश्यकता अपनी पूर्ति के लिए खुद युक्ति ढूँढ़ निकालती है। आदिम-काल में मनुष्य-जाति को अपने विचार प्रकट करने के लिए ज्यों ज्यों शब्दों की आवश्यकता होने लगी त्यों त्यों वह या तो नये शब्द बना कर अपना मतलब निकालने लगी या एक मनुष्य-समूह अपने पड़ोसी अन्य मनुष्य समूह के बनाये शब्दों को अपनाने लगा। हिन्दी में भी अभी सब प्रकार के विचार प्रकट करने के लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं गई। अतः उसे उसकी पूर्ति का उपाय ज़रूर ही करना पड़ेगा। उसे ऐसा करने से रोकने का यत्न व्यर्थ जायगा—इसमें शक नहीं।

श्रीयुत गुरुजी कपूरजी के लेख का कुछ अंश उद्धृत कर लिखते हैं:—"इसमें सन्देह नहीं कि भविष्यत् की हिन्दी में भारतवर्ष की (और विदेशी) भाषाओं के शब्द आवश्यकतानुसार अवश्य आवेंगे। पर उर्दू के शब्द तो इसके अभी तक (भी ?) आवश्यकता से अधिक भरे हुए हैं, जिनके कारण सार्थक सरल और स्वाभाविक हिन्दी शब्दों का लोप सा हो रहा है। यदि प्रचलित शब्दों के साथ साथ हमको उर्दू के शब्दों की और भी आवश्यकता हुई तो हमारी हिन्दी फिर एक बार उर्दू हो जायगी और तब इसका पुनरुद्धार कठिन हो जायगा।"

गुरुजी की यह आशङ्का ठीक है या ग़लत—इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता। हमें तो उसकी कोई ज़रूरत ही समझ नहीं पड़ती। जो कहीं उर्दू के शब्दों के अनुकूल ही हवा चली तो वह क्या किसी के रोके रुक सकती है? इस बात का निर्णय तो अकेले समय ही के हाथ है। बोल-चाल की भाषा का जो रूप होगा, वही रूप हिन्दी का भी होगा।

मालूम नहीं हिन्दी पहले कब उर्दू हुई थी जो गुरुजी को उसके फिर एक बार उर्दू हो जाने का डर है। हां, यदि आप राजा शिवप्रसाद के दल की खिचड़ी-भाषा को ही उर्दू समझते हों तो आपका कहना ठीक हो सकता है।

उर्दू शब्दों के कारण, गुरुजी के कथनानुसार जो सार्थक, सरल, और स्वाभाविक हिन्दी-शब्दों का लोप सा हो रहा है—उसके लिए दुःखित होने की आवश्यकता नहीं। समय के मुख में पड़ कर अनेक शब्द नष्ट हो जाते हैं और नये शब्द उनका स्थान ले लेते हैं। यह अस्थिरता ही जीवित-भाषा का लक्षण है। उर्दू के शब्दों के सामने उनके पर्यायवाचक हिन्दी शब्दों का लोप हो जाना ही इस बात का प्रमाण है कि वे उन हिन्दी-शब्दों से कहीं अधिक प्रचलित हैं। किसी शब्द का जीवित रहना या नष्ट हो जाना उसके प्रचार ही पर अवलम्बित है। प्रचार के आगे शब्द की सार्थकता, सरलता और स्वाभाविकता का मूल्य कम हो जाता है।

एक बार मैं एक 'साहब' से उनके बँगले पर मिलने गया। बाहर उनका अर्दली चपरासी खड़ा था। वह यू० पी० तरफ़ का 'पण्डत' था—मुझे पहले से जानता था। देखते ही बोला—"साहब **हवा** खाने निकल गये। आज **मुलाक़ात** नहीं हो सकती—कल **सुबह** आइए-**ज़रूर मुलाक़ात** होगी।" इसमें जो शब्द बड़े टाईप में हैं, उनसे गुरु जी को कुछ एतराज़ हो सकता है। क्योंकि उनके पर्यायवाचक 'सार्थक सरल और स्वाभाविक शब्द' हमारी भाषा में विद्यमान हैं। आज कल के अधिकांश लेखक चपरासी के उक्त कथन को इस प्रकार लिखेंगे:—"साहब वायुसेवनार्थ चले गये—आज भेंट नहीं हो सकती—कल प्रातः आइए—अवश्य भेंट होगी।" पर मेरी राय में यदि उक्त वाक्य-समूह चपरासी के शब्दों में ही लिखा जाय तो भी कोई हानि नहीं। क्योंकि उसमें जो विदेशी शब्द आये हैं, उन्हें हिन्दी-जनता अच्छी तरह समझ सकती है।

आज कल हमारे साहित्य में हरिश्चन्द्र की शैली तो प्रचलित है ही और रहेगी ही; पर अब हिन्दी की राष्ट्रीयता के ख़याल से उसमें बोल चाल में आनेवाले विदेशी शब्द मिला कर एक नई शैली का, जिसे गुरुजी 'खिचड़ी शैली' कहते हैं, प्रचार भी वाञ्छनीय होना चाहिए। वह शैली अरबी फ़ारसी के बड़े बड़े शब्दों से भरी हुई राजा शिवप्रसाद की शैली नहीं होगी। इसके लिए हिन्दी के रक्षण-शील-दल को चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। उसे इस बात की भी फ़िक्र नहीं करना चाहिए कि इस प्रकार की दो एक शैलियों के प्रचार से हिन्दी के कई रूप हो जायँगे, जिससे

आगे चल कर वह पहचानी भी नहीं जायगी। अँगरेज़ी आदि भाषाएँ क्या एक ही शैली में लिखी जाती हैं ? क्या उनमें भी भिन्न भिन्न शैलियाँ नहीं होतीं ? फिर आज वे भाषाएँ पहचानी जाती हैं या नहीं ? गुरुजी आज कल की हिन्दी में प्रचलित चार प्रकार की शैलियों का उल्लेख कर कहते हैं कि इनमें केवल 'हिन्दी-शब्द-मय' शैली ही अनुकरणीय है; क्योंकि उसी में हिन्दी हिन्दी रह सकती है। हिन्दी की रक्षा का आपको इतना ख़याल है कि आप उसमें एक से अधिक शैली का होना हानिकर समझते हैं ! ख़ैर, आपने हिन्दी की चार ही शैलियाँ बतलाईं पर मैंने कहीं पढ़ा था कि हरिश्चन्द्र ने उसकी बारह प्रकार की लेख-शैलियाँ दिखलाई हैं।

हिन्दी के शब्द-समूह को विस्तृत करने और उसके समानार्थ-सूचक शब्दों की संख्या बढ़ाने के ख़याल से उन्नत्तिशील-दल आज कल जान बूझ कर बोल चाल में आनेवाले विदेशी शब्दों का प्रयोग करने लगा है। ऐसा करने में उसका अभिप्राय केवल यह है कि वे शब्द आज कल के साहित्य अर्थात् लिखने की हिन्दी में प्रवेश प्राप्त कर लें। इससे उनके पर्यायवाचक हिन्दी-शब्दों का लोप नहीं हो सकता। हिन्दी के उस स्थान में पहुँच जाने पर जहाँ कि उसे एक भाव को अनेक प्रकार से प्रकट करने की आवश्यकता होगी, वे शब्द जो इस समय लुप्तप्राय समझे जाते हैं, उसके प्राङ्गण में खुद उपस्थित हो जायँगे।

उक्त खिचड़ी-शैली के प्रचार से हिन्दी के समानार्थ-सूचक शब्दों की संख्या बढ़ाने में अच्छी सहायता मिल सकती है। ऐसे शब्दों की आवश्यकता पहले कई बार बताई जा चुकी है। संस्कृत में एक एक शब्द के आठ आठ दस दस पर्यायवाचक शब्द पाये जाते हैं। अँगरेज़ी में (Synonyms) शब्दों की सैकड़ों पृष्ठों की अलग पुस्तक ही है। ऐसे शब्दों की अधिकता से कवियों को भी बड़ा लाभ होता है। कविता में परिमित मात्राओं में ही भाव व्यक्त करना पड़ता है। अतएव, समानार्थ-सूचक अनेक शब्द रहने से कवि आवश्यकतानुसार उन में से किसी भी शब्द को काम में ला सकता है। शब्दों की कमी कवि के रचना-मार्ग में कभी कभी बड़ी भारी रुकावट ला कर खड़ी कर देती है। पर वह उससे रुकनेवाला नहीं। प्रतिभा के उन्मेष में वह किसी तरह उसे हटा कर आगे बढ़ता है। हमारे महाकवियों की रचनाओं में यत्र तत्र जो विदेशी शब्द पाये जाते हैं, उसका कारण कुछ अंशों में यह भी हो सकता है।

दूसरी बात यह कि इस खिचड़ी-शैली के प्रचार से आज कल की हिन्दी को संस्कृटाइज्ड (Sanskritized) कह कर उस पर कठिन होने का इल्ज़ाम लगानेवाले एक बड़े भारी दल का मुख बन्द हो जायगा। इस दल में नवयुवक छात्र और नये फ़ेशन के लोग भी शामिल हैं। उनकी सुविधा का प्रबन्ध कर उनके हृदय में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न कर देने से हिन्दी की उन्नति और प्रचार में उनसे बहुत कुछ सहायता मिल सकने की आशा है।

श्रीयुत गुरुजी किसी विदेशी शब्द को इसलिए प्रचलित नहीं मानते कि उसका पर्यायवाचक हिन्दी (?) शब्द पहले ही से हमारी भाषा में विद्यमान है !

आपने अपना यह विचार किन कारणों की नींव पर खड़ा किया है—यह समझ में नहीं आता। इस प्रकार की रक्षा से हिन्दी को हानि के सिवा लाभ होने की सम्भावना नहीं। वह भारत की राष्ट्र-भाषा (Lingua Franca) है। इसलिए ऐसी सङ्कीर्णता छोड़ कर उसे उदार बनना चाहिए। भारत में मुसलमान भी एक बहुत बड़ी संख्या में बसते हैं। हिन्दी के लाभों से उन्हें वञ्चित नहीं रहना चाहिए। इधर प्रान्तीय अन्य-भाषा-भाषियों के सुभीते का भी पूरा ख़याल रखना होगा। संस्कृत-शब्द-मय शैली से प्रान्तीय भाषा-भाषियों को लाभ है और बोल चाल की हिन्दी से दूसरे प्रकार के लोग लाभ उठा सकते हैं। इन बातों के विचार से हिन्दी में जुदी जुदी शैलियों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

खिचड़ी-शैली के विषय में गुरुजी लिखते हैं:—“अभाग्य-वश लोगों की यह धारणा सी हो रही है कि भविष्यत् में यही खिचड़ी-शैली सफल होगी और इसके अनुयायी भी बढ़ते हुए दिखाई देते हैं।” यदि सचमुच ही लोगों की यह धारणा है तो इसे हिन्दी का अभाग्य नहीं सौभाग्य कहना चाहिए। उक्त शैली के अनुयायियों का बढ़ते जाना ही इस बात का प्रमाण है कि वह लोगों को

बहुत पसन्द आई है। यदि गुरुजी सर्व-साधारण की चाह और रुचि के ख़िलाफ़ हिन्दी से उसका बहिष्कार करा सके तो, अहोभाग्य समझना होगा।

आप हिन्दी की रक्षा के ख़याल में ऐसे डूब गये हैं कि छोटी छोटी बातों से भी आपको उसके लिए भय हो जाता है। प्रान्तीय भाषा-भाषी वक्ताओं या लेखकों का आवश्यकतानुसार टूटी फूटी हिन्दी में अपना विचार प्रकट करना आपको हानिकर जान पड़ा है। ऐसे लोगों को आप नई शैली को उत्तेजन देने और हिन्दी की स्वाभाविकता नष्ट करने का दोषी समझते हैं। मालूम नहीं उनसे नई शैली को क्या उत्तेजना मिल सकती है और वे हिन्दी की स्वाभाविकता को किस प्रकार नष्ट कर सकते हैं! जब से महात्मा गांधी ने हिन्दी का पक्ष लिया है तब से कुछ अन्य-भाषा-भाषी वक्ताओं का ध्यान उसकी ओर गया है। वे हिन्दी की उपयोगिता को समझने लगे हैं। अतः आवश्यकता से दब कर हिन्दी में किसी क़दर अपना मनोभाव प्रकट करते हैं। इससे हिन्दी का प्रचार हो रहा है। उसके साहित्य की भाषा पर भला इसका क्या असर पहुँच सकता है? गुरुजी का यह मतलब तो नहीं है कि ऐसे वक्ता या लेखक हिन्दी में कुछ कहना या लिखना ही बन्द कर दें? आप भाषा की स्थिरता को अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। बात है भी ऐसी ही। बोलने की भाषा में तो स्थिरता आ ही नहीं सकती, पर लिखने की भाषा का, जिसमें साहित्य निर्मित होता है—विविध विषयों के उपयोगी ग्रन्थ बनते हैं, रूप अवश्य स्थिर होना चाहिए। उसमें अस्थिरता बनी रहने से धीरे धीरे उसका रूप बिलकुल बदल जायगा और एक समय ऐसा आयगा कि उसमें लिखे हुए ग्रन्थों से लोग कुछ भी लाभ नहीं उठा सकेंगे। इसीलिए लिखने की भाषा के पैरों में व्याकरण की बेड़ी दरकार होती है। पर इसके लिए भी समय निश्चित होना चाहिए। यदि किसी भाषा की स्वतन्त्रता उसकी प्राथमिक अवस्था में ही छीन ली जायगी तो वह अपनी उन्नति कर फूले फलेगी किस तरह?

हिन्दी अपनी तरक्क़ी की मञ्ज़िल को अभी तक तय नहीं कर पाई है। अतएव शब्दों को अपनाने और 'खिचड़ी' 'गड़बड़' आदि भिन्न भिन्न शैलियों से काम लेने में उसे अभी कुछ दिन और स्वतन्त्र रहने देना चाहिए। गुरुजी नियमों का 'गोरखधन्धा' तैयार कर हिन्दी में स्थिरता लाने के लिए शायद व्यग्र हो रहे हैं। उनसे प्रार्थना है कि वह इतने दिन जैसे धैर्य धारण किये रहे, वैसे ही कुछ दिन और ख़ातिरजमा रक्खें।

गुरुजी हिन्दी में सिर्फ़ हिन्दी-शब्द-मय शैली का प्रचार चाहते हैं। यहाँ हिन्दी-शब्दों से आपका मतलब ठेठ हिन्दी के शब्दों से तो नहीं है? आपने अयोध्यासिंह का "ठेठ हिन्दी का ठाठ" तो देखा ही होगा। आप सोचें कि इस ढङ्ग की हिन्दी आज कल के कितने हिन्दी-लेखक लिख सकते हैं? ऐसी हिन्दी में, मैं जहाँ तक जानता हूँ अब तक सिर्फ़ वही एक पुस्तक निकली है।

एक बात यह अवश्य सन्तोष-जनक है कि आप जहाँ 'खिचड़ी' आदि शैलियों को नापसन्द करते हैं, वहाँ आपको 'संस्कृत-शब्द-मय' शैली से भी विरक्ति है। पर आपसे प्रार्थना है कि आप एक निगाह अपने लेख पर ही डालें। उसे आप हिन्दी-शब्द-मय समझते हैं या संस्कृत-शब्द-मय? 'स्वयम्भू' 'पूर्णतया' 'आर्ष' आदि शब्दों के प्रयोग को आप कैसा समझते हैं? 'उच्च' 'सदृश' 'पूर्ण' और 'पूर्व' आदि शब्दों के लिए प्रचलित हिन्दी-शब्द नहीं थे क्या?

सच तो यह है कि शुद्ध हिन्दी-शब्दों से काम नहीं निकल सकता। बिना संस्कृत-शब्दों की सहायता के हिन्दी का चलना मुश्किल है। पर उसे जहाँ तक बने संस्कृत के उन बड़े बड़े शब्दों से जिनका कि मतलब समझने में जन-साधारण को कठिनता हो, बचाना चाहिए। साथ ही वह उर्दू फ़ारसी और अँगरेज़ी के प्रचलित शब्दों से काम लें तो अच्छा। ऐसे शब्दों का तत्सम या तद्भव जो रूप सर्व-साधारण में प्रचलित हो—वही रूप रहने देना चाहिए।

भविष्यत् में हिन्दी का क्या रूप होगा—यह तो समय ही दिखलायगा; पर यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जन-साधारण में उसी भाषा का आदर होता है जो बोल-चाल में आती है या बामुहाविरा होती है।

अन्त में श्रीयुत गुरुजी से प्रार्थना है कि आप उपस्थित प्रश्न पर हिन्दी और हिन्दी-जनता के हित की दृष्टि से एक बार और विचारें।

मुकुटधर पाण्डेय

श्री ॥

पत्र ॥

(२)

रासो के मङ्गलाचरण में ही अर्थ की असङ्गति और भूलों की भरमार।

स्वर्गीय पंड्याजी लिख गये हैं कि—"जैसे चन्द के प्रयोग किये हुए छन्दों के नाम और उनके लक्षणों के शोध करने में पुरातत्त्ववेत्ताओं को परिश्रम पड़ता है वैसेही उसके इस महाकाव्य के अर्थ लगाने में भी अनेक प्रकार की अड़चनें उपस्थित होती हैं। यद्यपि हमारा मुख्य काम इस ग्रन्थ के मुद्रित करने में केवल इतना ही है कि उसके मूल पाठ को सार्थक शोध दें परन्तु यह महाकाव्य वर्तमान काल में ऐसी बिगड़ी हुई दशा में उपस्थित है कि जो उस पर इतना परिश्रम न किया जाय कि जितना हम यह करते हैं तो हमारा किया हुआ शोधन, पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों को भलीभाँति संतुष्ट नहीं कर सकता। अतएव हम चन्द के काव्य की अर्थ-सम्बन्धी कठिनता को दिखलाने के लिए केवल इस मंगलाचरण के रूपक का अर्थ उदाहरण के लिए करते हैं कि जिस में हमारे पाठकों को मालूम हो कि मूलपाठ का शुद्ध होना अर्थ पर दृष्टि दिये बिना असम्भव है। महाकवि चन्द अपने इस महाकाव्य के आरम्भ में इस मंगलाचरण के रूपक में "आदिदेव" गुरु, वाणी, लक्ष्मीश, सुरनायक और सर्वेश को नमस्कार करता है। वह कहता है कि "आदिदेव को नमन कर के और गुरु को नमस्कार करके; वाणी के पदों को वन्दन; स्वर्ग, पाताल (और) पृथ्वी के सृष्टा (?) लक्ष्मीश के चरणों का आश्रय, दुष्टों के दहन करने को तमगुण (जिस) ईश में रहता है (उस) सुरनाथ की पादुका का सेवन (और) थिर, चर, जंगम, (और) जीव के वरदायकमय सर्वेश को (मैं) चन्द नमन करता हूँ।"

स्वर्गीय पंड्याजी के इस लेख से भी यह बात प्रमाणित होती है कि प्रथम तो चन्द कवि का यह महाकाव्य वर्त्तमान समय में विशेष बिगड़ी हुई दशा में प्राप्त होता है। दूसरे अर्थ पर दृष्टि दिये बिना इसके मूल पाठ का यथार्थ ज्ञान वा अशुद्धियों का संशोधन होना असम्भव है। परन्तु स्वर्गीय पंड्याजी के घोर परिश्रम करने पर भी दुःख का विषय है, कि इस महाकाव्य का संशोधन ठीक ठीक नहीं हो सका! भाषा के मर्मज्ञ वा पुरातत्त्ववित् इससे भलीभाँति तो क्या, सन्तोष लाभ ही न कर सके! छन्द के लक्षणों पर पूरा ध्यान रखकर विशेष श्रम से संशोधनपूर्वक नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशित इस संस्करण में मंगलाचरण का पाठ नीचे लिखे अनुसार है। यथा—

मंगलाचरण।

आदीदेव प्रत्यंनम्य नम्य गुरयं, वानीय वन्दे पयं।
सिष्टं धारन धारयं वसुमती, लच्छीस चर्नाश्रयं॥
तं गुं तिष्ठति ईस दुष्ट दहनं, सुर्नाथ सिद्धिश्रयं।
थिर्चर्जंगम जीव चन्द नमयं, सर्वेस वर्दाभयं॥ छन्द॥१॥

इस समय प्राप्त हस्तलिखित वा मुद्रित किसी प्रति में भी मङ्गलाचरण में "आदीदेव" पाठ नहीं है। यहाँ तक कि स्वर्गीय पंड्याजी महाराज ने जब अपनी पठनावस्था में विद्वद्वर कविराज स्वर्गीय श्री चण्डीदीनजी से चन्द महाकवि के इस रासे को पढ़ा था तब उन्होंने यह बतलाया था कि "आदि के पहले ओ३म् शब्द का प्रयोग कवि चन्द ने किया था और उसका अर्थ आदि ओ३म् प्रनम्य अर्थात् "पहले ॐकार को नमन करके" किया था। मिष्टर जौन बीम्स की छपाई प्रति में भी "आदि प्रनम्यानम्य गुरयं" पाठ ही है। विशेष परिश्रम से पंड्याजी ने ही छन्दोभङ्ग दोष मिटा कर इस "आदिदेव" पाठ के उद्धार का यश पाया। इस श्रेय के अनुसन्धान विषय में

आपने यहाँ तक लिख भी दिया है कि—"हम इस की अपेक्षा अपनी कल्पना को अधिक बलवान् और युक्त मानते हैं और आशा करते हैं कि यदि वे (अर्थात् कविराज श्रीचण्डीदीनजी) अब विद्यमान होते तो हमारी इस कल्पना को प्रसन्नतापूर्वक मान लेते। यदि कोई ओ३म् आदि प्रनम्य ऐसा भी पाठ माने तथापि कुछ हानि नहीं है। और जब तक किसी बहुत प्राचीन पुस्तक में हमारे इस मानने के विरुद्ध कोई अन्य पाठ न मिल जावे तब तक हम इस को मानना अयोग्य नहीं समझते हैं।"

अस्तु, अपने किये हुए अर्थ के समर्थन को, मङ्गलाचरण के प्रत्येक शब्द के विषय में विस्तार से पंड्याजी बहुत कुछ लिख गये हैं। उस सुविस्तृत लेख के आदीदेव, प्रनम्य और नम्य के विषय में तो कुछ लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं, परन्तु "गुरयं" पद की व्याख्या में प्रथम तो पंड्याजी ने गुरु शब्द को पुँल्लिङ्ग स्थिर किया परन्तु आगे चल कर "चन्द की हिन्दी में तीनों लिङ्ग हैं" यह सिद्ध करने को आप लिख गये हैं कि "पाँचवें रूपक की इस" गुरं सव्व कव्वी लहू चन्द कव्वी जिनंदर्सियं देवि सा अंग हवी "तुक में गुरं शब्द चन्द ने अपनी हिन्दी के नपुंसक लिङ्ग की प्रथमा में प्रयोग किया है।"

इसका समर्थन मैं नहीं कर सकता। कवियों के विशेषणरूप से ही "गुरं" गुरु, और "लहू" अर्थात् लघु शब्द यहाँ आये हैं। कवि नपुंसक नहीं माने जा सकते। संयोक्तिक कारण दिखाये बिना ही गुरु शब्द को केवल अपनी इच्छानुसार कहीं पुँल्लिङ्ग और कहीं नपुंसक बताना कहाँ तक ठीक है, इसका विचार विद्वान् विवेचक मात्र कर सकते हैं। जब कि चन्द कवि के गिनाये हुए सब कवि, और चन्द कवि भी पुरुष ही हैं। स्त्री, वा नपुंसक नहीं, तब उनके विशेषण में प्रयुक्त गुरं और लहू शब्द नपुंसक लिङ्ग के कैसे माने जा सकते हैं? विशेष्य पदानुसार ही विशेषणपद के लिङ्ग वचन माने जाते हैं। इसलिए पाँचवें रूपक में प्रयुक्त चन्द कवि का गुरं पद नपुंसक लिङ्ग की प्रथमा का प्रयोग नहीं है। यह पुँल्लिङ्ग में ही प्रयुक्त माना जायगा।

"वानीय" पद का "सरस्वती के" यह अर्थ तो ठीक है। परन्तु षष्ठी के एकवचन का रूप हिन्दी वा प्राकृत भाषाओं में यह सर्वसम्मत नहीं है। त्वदीय, मदीय, जातीय जैसा ही 'वानीय' प्रयोग भी समझा जायगा। वन्दे और पयं की व्याख्या में किसी प्रकार की आपत्ति न होने पर भी सिष्टं पद की व्याख्या पूरी भ्रमात्मक और आपत्तिजनक ही देखने में आई! इसकी व्याख्या में आप लिखते हैं—

"सिष्टं (सं, त्रि० सृष्टःनिर्मिते। रचिते) सृजनेवाला। यह चन्द की हिन्दी में सं० सृष्टः सृजनेवाले का नपुंसक लिङ्ग की प्रथमा का एकवचन है। इस को शिष्ट अथवा श्रेष्ठ आदि शब्दों का अपभ्रंश मानना अयुक्त है किन्तु वह चन्द की हिन्दी में सं० त्रि० सृष्टः का सिष्टं बना है इसी तरह सं० भृष्ट, भ्रष्ट, धृष्ट, दृष्ट के अपभ्रंश रूप हिन्दी में भिष्ट, धिष्ट दिष्ट होते हैं।"

यहाँ तुष्टतु न्याय से सिष्टं पद को सं० सृष्टः का ही अपभ्रष्ट रूप मानने पर भी इसका अर्थ सृजनेवाला तो त्रिकाल में भी होही न सकेगा। न जाने परलोकवासी पंडितवर पंड्याजी ने क्या समझ कर सृजनेवाला अर्थ लिख मारा? फिर विशेष आश्चर्य की दूसरी बात यह है कि जिस 'लच्छीस' शब्द की लक्षणा के बल से आपने अर्थ की संगति बैठा डाली थी, उसका स्पष्ट अर्थ आपने भी विष्णु ही ठहराया। भगवान विष्णु नारायण ही जब कि आपके लिखे अनुसार सृजनेवाले हुए, तब उनका ही विशेषण उक्त सिष्टं पद नपुंसक लिङ्ग का क्यों माना गया? परम पुरुष लक्ष्मीश नारायण को ही सृजनेवाला आप जिस सिष्टं पद से मान रहे हैं वह सिष्टं, पुँल्लिङ्ग नारायण का विशेषण होने पर भी नपुं-

सकलिङ्ग का किस नियमानुसार माना जा सकता है? सिष्टं पद यथार्थ में ही यदि सृष्टः पद का रूपान्तर हो, तो इसका अर्थ भी सृजा हुआ, निर्मित या बनाया हुआ ही होगा। सृजनेवाला या रचनेवाला अर्थ तो किसी रीति से भी न बन सकेगा। संस्कृत स्रष्टा शब्द का अर्थ सृजनेवाला है। आपने भी अर्थ करने में "पृथ्वी के 'सृष्टा' (संभव है कि छापे की भूल से ही स्रष्टा का 'सृष्टा' रूप बन गया हो!) लक्ष्मीश के चरणों का आश्रय" लिख कर, सृजनेवाले के लिए, स्रष्टा पद का प्रयोग ही किया है। इस दशा में सिष्टं पद से सृजनेवाला अर्थ करना निस्सन्देह भ्रमात्मक और कोरा दुराग्रह ही दीखता है! विशेष आश्चर्य है कि त्रिलिङ्ग में प्रयुक्त इस संस्कृत शब्द को मान कर भी, पुँल्लिग सृष्टः पद से नपुंसक "सिष्टं" कैसे बनाया गया? आगे चल कर अपने पक्ष की पुष्टता को, "संस्कृतभृष्ट, भ्रष्ट, धृष्ट, दृष्ट के" अपभ्रष्ट रूप विद्वद्वर पंड्याजी ने हिन्दी में "भिष्ट, धिष्ट, दिष्ट ही दिखाये हैं! परन्तु प्रथम तो सं० भृष्ट और भ्रष्ट, ये भिन्नार्थवाची दो भिन्न भिन्न शब्द हैं। जिन मूल धातुओं से ये बने हैं वे भी स्वतन्त्र ही हैं। सं० भृज् (भर्जने) धातु से भृष्ट और सं० भ्रश् (अधः पतने) धातु से भ्रष्ट बना है। इसलिए संस्कृत भृष्ट का अर्थ है भर्जित, वा भुना हुआ। परन्तु भ्रष्ट का अर्थ है, पतित, अनाचारी, लम्पट इत्यादि । इन दो विभिन्नार्थवाची शब्दों का अपभ्रंश होने बाद भी एक सा रूप नहीं रहता है। हिन्दी मिरिष्ट वा भिष्ट, सं० भ्रष्ट के अपभ्रष्ट रूप हो सकते हैं; परन्तु सं० भृष्ट, अर्थात् भर्जित, वा भुने हुए का अपभ्रष्ट रूप "भिष्ट" कभी नहीं हो सकता। ऐसे ही धृष्ट का ढीठ और दृष्ट का दिट्ठा, दीठ और देखा, रूप ही बनते हैं। "दिष्ट" तो दृष्टि का अपभ्रंश होकर बना है।

अब ज़रा विशेष ध्यान से स्वर्गीय पण्ड्याजी की नीचे लिखी अद्भुत क्लिष्ट कल्पना को भी विचार देखिए—

"धारण (सं० पु० धारण स्वर्लोके) स्वर्गलोक। धारयं (सं० त्रि० धारय=धारके नागदेशे ॥ धारयैः कुसुमोर्माणां । भट्टिः) पाताल लोक ॥ वसुमति (सं० त्रि० भूलोक। स्पष्ट) भूलोक यहाँ थोड़ा सूक्ष्म विचार कर हमारे किये अर्थ की सत्यता जाँचने का काम है क्योंकि सिष्टं धारन धारयं वसुमती लच्छीस चर्वाश्रयं का अर्थ अनेक कवि अनेक प्रकार का करते हैं परन्तु हम उनको चन्द के अभिप्राय के अनुकूल नहीं समझते। इन शब्दों के पृथक् पृथक् अर्थ तो हमने संस्कृत कोशों से लेकर वर्णन कर ही दिये हैं। इसके सिवा लच्छास शब्द जो विष्णु का वाचक है वह हमको यह अर्थ करने की स्पष्ट लक्षणा कराता है कि धारण=स्वर्गलोक। धारयं=पाताल लोक॥ और वसुमती=भूलोक का सिष्टं=सृजनेवाला (जो) लच्छीस=विष्णु (उसके चर्नाश्रयं चरणों का सेवन (करता हूँ) यही बहुत ठीक अर्थ है क्योंकि यहाँ तत्पुरुष समास है और लक्ष्मीश का अर्थ विष्णु शास्त्रों में नीचे लिखे प्रमाण से स्पष्ट है उससे भी हमारा किया हुआ अर्थ अच्छी तरह पुष्ट होता है—"

जब कि मङ्गलाचरण में आये हुए लच्छीस शब्द से विष्णु अर्थ ग्रहण करने में किसी को आपत्ति नहीं है तब व्यर्थ उसके प्रमाणित करने को अनेक शास्त्रीय संस्कृत वचनों के उद्धार से पत्रे काले करने और पढ़नेवालों के बहुमूल्य समय को नष्ट करना निष्प्रयोजन है। विशेष दुःख तो इस बात का है कि ऊपर विद्वद्वर पंड्याजी की लिखी असाधारण कष्टकल्पना से धारण का अर्थ स्वर्ग और धारयं का पाताल लोक ही कुछ देर के लिए मान लेने पर भी यहाँ संगति किसी प्रकार से नहीं बैठाई जा सकती है। न तो अन्वय सिद्ध होता है और न लच्छीस को सृजनेवाला सिद्ध करने का साधक शब्द ही कोई मिलता है! जिस वाक्य में विष्णु सृजनेवाले होंगे वहाँ धारणं स्वर्ग और धारयं पाताल इत्यादि को कर्मकारक अथवा सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति-सिद्ध

माने बिना उपायान्तर नहीं है। क्योंकि स्वर्ग, मर्त्य, पाताल को अथवा स्वर्ग, मर्त्य, पाताल के सृजनेवाले विष्णु वाक्य और अर्थ से इतना स्पष्ट हुए बिना काम न चलेगा। यहाँ प्रथम तो सबसे बड़ी अड़चन यह उपस्थित होती है कि सिष्टं पद से सृजनेवाला यह अर्थ किया ही नहीं जा सकता। दूसरे धारयं पद को कर्मकारक में द्वितीया के संस्कृत सम रूप में प्रयुक्त यदि मान भी लें तो धारण को धारणं और वसुमति को भी वसुमतिं बन कर ही आना पड़ेगा। हिन्दी सिद्ध पद मानने से भी गोटी ठीक ठिकाने नहीं बैठती है। उधर देखिए तो संस्कृत धारण शब्द भी नपुंसक ही है। वाक्य में षष्ठ्यन्त पद भी तीनों में एक नहीं! विशेषतः चन्द जैसे संस्कृतज्ञ महाकवि की रचना के आदि-मङ्गलाचरण में ही सर्वथा अप्रसिद्ध और घोर कष्टकल्पना करने पर भी अभीष्ट अर्थ में अप्रचलित धारण शब्द को स्वर्ग और धारयं को पाताल का वाचक मानने की तो प्रवृत्ति ही नहीं होती है। पंड्याजी महाराज को भी उचित था कि संस्कृत प्राकृत पुरानी हिन्दी अथवा महाकवि चन्द का ही कोई उदाहरण दिखाकर इस कष्टकल्पना को सिद्ध करते; परन्तु वैसा उदाहरण ठीक ठीक कोई भी नाम को न दिखाया गया! यहाँ तो यह दशा उपस्थित है कि पंड्याजी का किया अर्थ मानने पर भी "भक्षितेऽपि लशुने न व्याधिशान्तिः।" उक्ति की पूरम्पूर चरितार्थता है! वाक्य में पदों का समन्वय न होने से इतने पर भी सिद्धि कुछ नहीं!

आगे चल कर परलोकवासी प्रसिद्ध पंडितवर पंड्याजी ने थिर, चर, जंगम और जीव, नाम के चार भेद मानने की अपूर्व कल्पना भी मनगढ़न्त और अनोखी ही कर डाली है! निरपेक्ष परीक्षण से इसमें कुछ भी सार नहीं दीखता! चर और जंगम यथार्थ में अभिन्न और एक ही श्रेणी के हैं। जैसा परिश्रम छन्दों के विषय में किया था, वैसा ही अर्थ की संगति देख कर पाठों के संशोधन में भी किया जाता तो ऐसी दुर्दशा देखने में न आती! थिर, चर, जंगम, जीव तथा तिष्ठति पाठ महाकवि चन्द के लिखे नहीं हैं। लिपिकार के प्रमाद और अल्पज्ञों की हाथ सफ़ाई का ही फल है। ऐसे पाठों का यथार्थ संशोधन न कर, दुःख का विषय है कि कष्टकल्पना से इनकी पोषकता का परिश्रम ही पंडितवर पंड्याजी ने किया! प्रति पृष्ठ में वैसे संशोधन की आवश्यकता दीखती है।

अन्त में वरदामयं पद का अर्थ वरद-स्वरूप किया गया है और टीका में इसलिए ही चौथे पृष्ठ में "वरदायमय (?) सर्वेश को" वाक्य का प्रयोग भी किया दीखता है। अब विचारने का स्थल है कि यहाँ वरद शब्द का अर्थ वर देनेवाला है। वरदामयं पद सर्वथा अशुद्ध ही प्रतीत होता है क्योंकि वरद के आगे आमय शब्द जोड़ कर सन्धि की जाय तो कहीं वरदामय सिद्ध होगा! मयट् प्रत्यय यहाँ धींगाधींगी जोड़ देने पर भी वरदमय रूप ही बनेगा वरदामयक भी न बनेगा, मूल में वरदामयं पाठ रख कर व्याख्या के समय उसका अर्थ "वरद-स्वरूप" किस अलौकिक व्याकरण के नियमानुसार सिद्ध किया गया है? इसका संतोषप्रद यथार्थ उत्तर देना काशी की सुविख्यात नागरी-प्रचारिणी सभा को इस समय उचित तो अवश्य है।

शीर्षकों के लिखने में, शब्दों के वर्णविन्यास-में, बिना समझे पदच्छेद करने और पदों के अनमिल बे जोड़ मिलाने में, तथा अशुद्ध प्रयोगों के लिखने आदि में इतनी असावधानता और ऐसी ऐसी विचित्र भूलें की गई हैं कि परलोकगत महाकवि चन्द की आत्मा को उनसे असीम क्लेश और असहनीय यन्त्रणा का होना अनिवार्य है! आज पत्र के विशेष बढ़ जाने से वैसी भूलों का उदाहरणमात्र दिखाने में भी मैं असमर्थ हूँ। भविष्य में कभी मङ्गलाचरण के पाठ-संशोधन और यथार्थ अर्थ दिख-

लाने के साथ ही "स्थाली पुलाक" न्याय से उनका दिग्दर्शन कराने की इच्छा है। पंड्याजी के परलोकवासी होने बाद तो उत्तरोत्तर अधिक दुर्दशा ही इस पुराने बहुमूल्य महाकाव्य की की गई है; और क्षेपकों के विषय में तो आदि से अन्त तक कहीं कुछ विचार ही नहीं किया गया! २९ वें पृष्ठ के छन्द ९२ वें रू० ४८ वें में यह पाठ आया है कि "इक दीह ऊपन्न। इक दी है सभाय क्रम" इस पङ्क्ति का अर्थ यदि एक ही दिन दोनों का (पृथ्वीराज और चन्द-कवि का) जन्म और एक ही दिन मरण, माना जायगा तो स्पष्ट है कि चन्द कवि का लिखा यह कभी हो ही नहीं सकता। अवश्य उसके पुत्र ने वा और ही किसी ने महाकवि चन्द की मृत्यु बादही इसे रचा है, ऐसे स्थलों का कुछ भी विचार नहीं किया गया, इससे लोगों का इस काव्य के विषय में जाली होने और चन्द कवि के बहुत दिनों के बाद बनने का सन्देह निस्सन्देह विशेष दृढ़ होता है। महाकवि चन्द के इस महाकाव्य के विषय में विद्वानों के विशेष परिश्रम और गभीर गवेषणा की गहरी आवश्यकता है। प्राचीन साहित्य की संरक्षा के विना, संसार में किसी भाषा की भी सम्यक् उन्नति नहीं हो सकती है। किमधिकं विज्ञेषु॥

हिन्दी का एक
'वृद्ध सेवक'

कविराज राजशेखर।

भारतवर्ष के प्राचीन कवियों तथा नाटककारों में कविराज राजशेखर का दर्जा किसी प्रकार औरों से हीन नहीं है। यद्यपि इन्होंने कालिदास या भवभूति की तरह भारतीय जन-समुदाय में प्रसिद्धि नहीं पाई, पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि इनका पाण्डित्य तथा कवित्व-शक्ति औरों से नीचे दर्जे की है। सच तो यह है, जैसा कि लार्ड मेकाले ने एक अँगरेज़ी कवि के सम्बन्ध में कहा है कि 'दुनिया में बहुधा वे मनुष्य प्रसिद्धि नहीं पाते जो ऐसे कार्य्य करते हैं जिनके करने का दूसरे लोग प्रयत्न भी नहीं करते बल्कि ऐसे मनुष्य ही ख्याति के पात्र होते हैं जो उन कार्य्यों को उत्तम रीति से सम्पादन करते हैं जिन्हें दूसरे मामूली तौर से करते हैं।' राजशेखर के सम्बन्ध में यह बात बहुत कुछ ठीक उतरती है। संस्कृत के अतिरिक्त वे प्राकृत भाषाओं के भी इतने बड़े पण्डित थे कि उनकी विद्वत्ता की थाह लगाना साधारण मनुष्यों के लिए कोई सरल बात न थी। इसके सिवा भारतवर्ष में संस्कृत के पण्डितों के आगे प्राकृत भाषाओं के पण्डितों का सदैव बहुत कम मान रहा है। इस कारण राजशेखर भी उस ख्याति से वञ्चित रहे, जिसे उन्होंने अपने पाण्डित्य तथा विचक्षण कवित्व-शक्ति से अपनी अनुगामिनी बना लिया था।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह न समझ लेना चाहिए कि राजशेखर की योग्यता सदैव अज्ञात तथा अस्वीकृत रही। यह बात नहीं है। उनके समय के तथा बाद के अनेक विद्वानों ने उनकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। उनके समकालीन किसी प्रसिद्ध विद्वान शङ्करवर्म्मा ने उनके सम्बन्ध में कहा है:—

पातुं श्रोतृरसायनं रचयितुं वाचस्सतां सम्मता,
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः॥
भोक्तुं स्वादु फलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं,
तद्भ्रातः श्टणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः॥

[कानों का रसायन पीने में, सज्जनों द्वारा पसन्द की हुई कविता के रचने में, सर्वोच्च प्रवीणता हासिल करने में, रसरूपी नदी की सीमा पाने में तथा जीवन-वृक्ष का स्वादिष्ट फल खाने में यदि तुम्हारी रुचि है तो हे भाई! राजशेखर कवि के अमृत वर्षानेवाले काव्य को सुनो।]

नीचे लिखे हुए दो श्लोक राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी में अपराजित कवि के रचे हुए बतलाये गये हैं। ये भी हमारे क़वि के समकालीन थे।

बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ।
इअ जस्स परम्परए अप्पा माहप्पमारूढ़ो॥
सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहु अणं पि धवलेन्ति।
हरिणङ्कपालि सिद्धिए णिक्कलङ्का गुणा जस्स॥

[बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः ।
इह यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः ॥
सोऽस्य कविः श्रीराजशेखरस्त्रिभुवनमपि धवलयति ।
हरिणाङ्कप्रति (पङ्क्ति) सिद्धया निष्कलङ्का गुणा यस्य ॥]

[पहले बालकवि फिर कविराज (तदनन्तर) जो निर्भयराज के उपाध्याय हुए तथा (इसी प्रकार) परम्परा से जिन्होंने बड़प्पन लाभ किया । वही इसके (कर्पूरमञ्जरी के) कवि श्रीराजशेखर तीनों भुवनों को उज्ज्वल करते हैं जिनके गुण चन्द्रमा से प्रतिस्पर्धा करने पर भी निष्कलङ्क हैं ।]

उनके सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक भी प्रसिद्ध ही है:—

बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्त्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्त्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥

[जो प्राचीन समय में वाल्मीकि कवि थे, फिर संसार में भर्त्तृमेण्ठ जिनका नाम पड़ा तदनन्तर जो भवभूति के नाम से दुनिया में रहे वे ही आज कल राजशेखर (रूप से) हैं]

वर्त्तमान समय में भी वे Pischel तथा Lanman प्रभृति अनेक जर्म्मन तथा अमरीकन विद्वानों की प्रशंसा के पात्र बन चुके हैं ।

वैसे तो प्रायः सभी प्राचीन भारतीय कवियों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान पर्य्याप्त नहीं है पर दूसरों की अपेक्षा राजशेखर का हाल जानने के लिए हमारे पास बहुत कुछ सामान है । शिला-लेखों तथा उनके समय के कवियों के वर्णनों के सिवा राजशेखर ने स्वयं अपने ग्रन्थों में अपना बहुत कुछ हाल दिया है जिससे उनके जीवनचरित के जानने तथा उनका समय निरूपण करने में बड़ी सहायता मिलती है ।

राजशेखर किस समय में हुए इस विषय पर बहुत समय तक आधुनिक विद्वानों की कोई एक राय नहीं थी। मेक्समूलर की राय में वे ईसा की चौदहवीं शताब्दी में हुए । विल्सन के मत में वे ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तथा बारहवीं के प्रारम्भ में रहे । वेबर तथा भाण्डारकर ईसा की दसवीं शताब्दी उनका समय बतलाते हैं । पीटर्सन तथा दुर्गाप्रसाद आठवीं शताब्दी के मध्य में उनका समय स्थिर करते हैं । राजशेखर के सम्बन्ध में एक दन्तकथा भी प्रचलित है कि वे शङ्कराचार्य्य के समकालीन थे क्योंकि 'शङ्करविजय' में कई स्थलों पर उनका नाम आया है । कुछ विद्वानों ने इसी मत का अनुसरण किया है ।

इस सम्बन्ध में सब से नूतन तथा निश्चयात्मक मत प्रोफ़ेसर कोनो का है । इसे उन्होंने पुराने सब मतों की छानबीन करके तथा नये सबूतों को खोज कर ऐतिहासिक रीति से निश्चित किया है, और अनेक विद्वानों ने उसे मान भी लिया है । आपने सिद्ध किया है कि राजशेखर ९०० ई० में रहे । जिन सबूतों द्वारा वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं वे इस प्रकार हैं:—

१. राजशेखर के प्रायः सब उपलभ्य ग्रन्थों में इस बात का ज़िक्र आया है कि वे (राजशेखर) राजा महेन्द्रपाल के गुरु थे । जैसे विद्धशालभञ्जिका में 'रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः' इत्यादि, बालरामायण तथा बालभारत में 'देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघूणाम्मणिः' और कर्पूरमञ्जरी में 'महेन्द्रपालस्य कश्च गुरुः' इत्यादि । इसके सिवा कर्पूरमञ्जरी ही में एक स्थान पर 'निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः' इससे उनका किन्हीं निर्भयराज का भी गुरु होना स्पष्ट है । इसके सिवा उनके रचे हुए बालभारत में किन्हीं महिपालदेव का भी वर्णन है और उन्हीं की आज्ञा से उक्त नाटक के अभिनय की बात आई है । यथा

"नमितमुरलमौलिः पालको मेकलानां
रणकलितकलिङ्गः केलिकृत् केरलेन्दोः ।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलानां कुठारो
हठहृतरमठश्रीः श्रीमहीपालदेवः ॥
तेन च रघुवंशमुक्तामणिना आर्यावर्त्तमहाराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाधिकृताः सभासदः ।"

इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि राजशेखर महेन्द्रपाल, निर्भयराज तथा उनके पुत्र महिपालदेव राजाओं के समय में थे, तथा यह भी सिद्ध हुआ कि महिपालदेव आर्य्यावर्त्त के राजा थे और उन्हों ने मुरल, मेकल, कलिङ्ग, केरल, कुलूत, कुन्तल, रमठ इत्यादि देशों पर विजय पाई थी ।

२. यूफ्रेक्ट (Aufrecht) तथा पाइकेल (Pischel) ने स्पष्ट रूप से यह साबित किया है कि 'निर्भयराज' यह महेन्द्रपाल का ही नामान्तर है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि महिपालदेव, महेन्द्रपाल ही के पुत्र थे।

३. सियदनी-शिला-लेख से यह बात स्पष्ट है कि महेन्द्रपाल और महिपाल कन्नौज (कान्यकुब्ज) के राजा थे।

४. राजशेखर ने अपने नाटक बालभारत में उक्त नाटक का महोदय नगर में अभिनय होना लिखा है। यथा 'कथमेते महोदयनगरलीलावतंसा विद्वांसः सामाजिकाः।' यह महोदय कोई दूसरा नगर नहीं कन्नौज का ही नामान्तर है जैसा कि विश्वप्रकाश तथा मेदिनीकोष से स्पष्ट है 'महोदयः कान्यकुब्जे'। इसे गाधिपुर भी कहते हैं। राजशेखर ने भी 'बालरामायण' में इस बात को साफ़ कर दिया है। यथा

'लक्ष्मणः—इदं पुनस्ततोऽपि मन्दाकिनीपरिक्षिप्तं महोदयं
नाम नगरं दृश्यते।
रामः—शश्वत्सुधाम वसुधामहितं द्विषद्भि—
र्नो गाहितं भवति गाधिपुरं पुरस्तात् ॥
वैदेहि देहिशफरीसदृशं दृशं त—
दस्मिन्नितम्बिनि ! नितम्बवहद्युसिन्धौ ॥
इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं,
परस्परालङ्करणैकहेतु।
पुरं च हे जानकि ! कान्यकुब्जं,
सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला ॥'

अब इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं रहा कि महोदय तथा कन्नौज दोनों एक ही हैं तथा यहीं के राजा महेन्द्रपाल और उनके पुत्र महिपाल के समय में राजशेखर थे।

५. असनी तथा सियादनी शिलालेखों से यह विदित हुआ है कि महेन्द्रपाल (निर्भयनरेन्द्र या महिष्पाल) ने ९०७ ई०, तथा महिपाल (क्षितिपाल या हेरम्बपाल) ने ९१७ ई० के कुछ आगे तक राज्य किया। अस्तु।

यह सिद्ध हुआ कि राजशेखर दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे।

कन्नौज के महाराजों के अतिरिक्त चेदिदेश के राजघराने से भी हमारे कवि का तथा उनके पूर्वजों का कुछ सम्बन्ध मालूम होता है, यद्यपि यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हो सकी है। चेदिदेशीय राजाओं के विल्हारी-शिलालेख के अन्तिम भाग में राजशेखर का नाम आया है। यथा—

सुश्लिष्टबन्धघटनाविस्मितकविराजशेखरस्तुत्या।
आस्तामियमाकल्पं कृतिश्च कीर्त्तिश्च पूर्वाच ॥

अनेक विद्वानों के मत में इससे राजशेखर का चेदिदेश के राजाओं से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य झलकता है। यह सिद्धान्त स्वयं राजशेखर के एक श्लोक से कुछ दृढ़ता भी पाता है। यथा—

नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम् ॥

[नदियों में नर्मदा, राजाओं में रणविग्रह तथा कवियों
में सुरानन्द चेदिदेश के अलङ्कार रूप हैं।]

ये सुरानन्द राजशेखर के एक पुरखा थे जैसा कि आगे चल कर विदित होगा। उनका चेदिदेश में रहना इस श्लोक से स्पष्ट है। 'रणविग्रह' यह चेदि के राजा शङ्करगण का नामान्तर है। दसवीं शताब्दी के मध्य में इनका राज-काल स्थिर किया गया है। इन प्रमाणों से यह सम्भव है कि राजशेखर अपने जीवन के किसी भाग में मुख्य कर अन्तिम भाग में चेदिराजाओं के दरबार में रहे हों।

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि राजशेखर कन्नौज के महाराजों के दर्बार में थे, तथा यह भी सम्भव है कि वे चेदिदेश में भी कुछ समय तक रहे हों पर उन दोनों स्थानों में से कोई भी उनकी जन्मभूमि नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि जैसा शिवराम बामन आप्टे ने कहा है, कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में दक्षिण के स्थानों का जैसे पाण्डि, काञ्ची, चोल, कर्णाटक, कुन्तल, राढ़, केरल, कलिङ्ग इत्यादि, दक्षिणी नदियों का जैसे नर्मदा, कावेरी, ताम्रपर्णी इत्यादि दक्षिणी वृक्ष-लता तथा वनस्पतियों का जैसे चन्दन, कङ्कोली, विचकिल इत्यादि और दक्षिणी रीति-रिवाजों का ही बहुतायत से उल्लेख किया है। इससे उनकी जन्मभूमि का कहीं दक्षिण में ही होना प्रतीत होता है। इस के अतिरिक्त काश्मीर के प्रसिद्ध कवि तथा 'समय-मातृका' के रचयिता क्षेमेन्द्र ने अपने 'औचित्य-विचार-चर्चा' नामक ग्रन्थ में राजशेखर-रचित एक श्लोक लिखा है उससे भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है। वह श्लोक यह है :—

कार्णाटीदशनाङ्कितः शितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः ।
प्रौढ़ान्ध्रीस्तनपीड़ितः प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः ॥
लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः ।
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति ॥

इस श्लोक में जितने देशों के नाम आये हैं वे सब प्रायः दक्षिण के ख़ास कर पश्चिमी घाट की तरफ़ कम्बे की खाड़ी से लेकर कमोरिन अन्तरीप तक के हैं। इस कारण राजशेखर की जन्मभूमि का कहीं इसी तरफ़ होना मालूम होता है। बालरामायण में राजशेखर ने अपने पर-बाबा अकालजलद के लिए 'महाराष्ट्रचूड़ामणिः' विशेषण का प्रयोग किया है। विद्धशालभञ्जिका के टीकाकार नारायण दीक्षित ने उक्त पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है कि राजशेखर महाराष्ट्र देश में पैदा हुए थे। जो कुछ हो, दक्षिण भारत में ही राजशेखर का जन्मस्थान होना निश्चित होता है।

राजशेखर की जाति पाँति के सम्बन्ध में बहुमत यह है कि वे ब्राह्मण थे। उदाहरणार्थ—आप्टे कहते हैं कि राजशेखर सम्भवतः ब्राह्मण ही थे क्योंकि अपने ग्रन्थों में बार बार वे अपने नाम के पहले 'उपाध्याय' शब्द लगाते हैं और एक स्थान पर उनके भवभूति (जो ब्राह्मण थे) के अवतार होने का उल्लेख है। राजशेखर अपने को यायावर कुल में उत्पन्न हुआ बतलाते हैं। इससे भी कुछ लोग उनका ब्राह्मण होना समझते हैं। पर यह बात ठीक नहीं क्योंकि 'यायावर' तो गृहस्थों का एक विभाग है जैसा कि महात्मा देवल कहते हैं 'द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालिनश्च' यानी "गृहस्थ दो प्रकार के होते हैं यायावर और शालिन'। इस से उनका ब्राह्मण होना कैसे साबित होता है, यह हमारी समझ में नहीं आता। बल्कि इसके विरुद्ध कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि राजशेखर की स्त्री चौहान कुल की थी। यथा 'चाउहाण-कुल-मौलि-मालिआ राजसेहरकेन्दगेहिनी।'

यानी 'चाहुवान (चौहान) कुल के सिर का आभूषण कविश्रेष्ठ राजशेखर की स्त्री' इत्यादि। यदि राजशेखर ब्राह्मण थे तो क्या उनका एक क्षत्रिय-कन्या से विवाह करना आश्चर्य्य की बात नहीं है?

वे किस मत के अनुयायी थे इस पर भी अन्दाज़े लगाये गये हैं। क्योंकि उन्हों ने प्रायः अपने सब नाटकों में दूसरे देव-देवियों के साथ साथ शिव तथा पार्वती की वन्दना की है, इस से कुछ लोगों ने उनका शैवमतावलम्बी होना सम्भव माना है।

राजशेखर के ग्रन्थों से उनके पूर्वजों का भी कुछ हाल मालूम होता है। बालरामायण में उन्हों ने लिखा है :—

स मूर्त्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा ।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले ॥

[जिस (कुल) में गुण-समूहों के मूर्त्ति-स्वरूप अकालजलद हुए; जिसमें सुरानन्द हुए जिनके शब्द कर्णपुटों से पीने योग्य हैं। (जिसमें) तरल, कविराज इत्यादिकों की कोई गिनती ही नहीं, उसी यायावर-कुल में ये महाभाग (राजशेखर) उत्पन्न हुए।]

इसी के आगे और लिखा है "तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्रचूड़ामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः (दौहिकिः) शीलवतीसूनुरुपाध्यायश्रीराजशेखरः।" इससे पता लगता है कि राजशेखर के पिता का नाम दौर्दुकि (या दौहिकि) था। बालरामायण के एक दूसरे श्लोक से यह भी विदित होता है कि वे किसी राजा के 'महामन्त्री' थे। राजशेखर की माता का नाम शीलवती था। ऊपर उनके चार पुरखों के और भी नाम आये हैं—अकालजलद, सुरानन्दर, तरल तथा कविराज। ये प्रायः सभी अच्छे कवि थे। अकालजलद, राजशेखर के प्रपितामह थे जैसा कि 'विद्धशालभञ्जिका' में आया है कि 'अकालजलदस्य प्रणप्तुः'। अकालजलद कोई बड़े प्रसिद्ध कवि थे। इनकी बाबत सूक्तिमुक्तावली में राजशेखरकृत एक श्लोक है :—

अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वदनचन्द्रिका ।
नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न च हीयते ॥

[अकालजलदरूपी चन्द्रमा की मुखकान्ति-रूपी चाँदनी, जिसे कवि-चकोर सदा पिया करते हैं पर जो कम नहीं होती, हृदय को प्रसन्न करनेवाली है।]

तरल के सम्बन्ध में भी हमारे कवि का एक श्लोक है:—

यायावरकुलश्रेणीहरियष्टेश्च मण्डनम् ।
सुवर्णबन्धरुचिरस्तरलस्तरलो यथा ॥

[जैसे सोने के जड़ाव से सुन्दर (हार के बीच का रत्न हार को सुशोभित करता है वैसे ही 'सुवर्णबन्ध' (यह किसी ग्रन्थ का नाम है) के कारण प्रसिद्ध तरल यायावर-कुल को विभूषित करते हैं ।]

सुरानन्द राजशेखर के बाबा थे। इनकी बाबत हम पहले ही कह चुके हैं कि इन्होंने अपनी कविता के कारण चेदिराजाओं के दर्बार में बड़ा मान पाया था। कविराज कौन थे यह अभी तक निर्णय नहीं हुआ।

राजशेखर, जैसा कि हम पहले कह आये हैं संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं के बड़े भारी विद्वान् थे, यहाँ तक कि शिवराम वामन आप्टे को भी, जिन्होंने हमारे कवि की बड़ी तीव्र आलोचना की है और जहाँ तहाँ निन्दा भी करने में नहीं चूके हैं—उन्हें भी उनकी विद्या की गम्भीरता तथा उनके ज्ञान का अलौकिक विस्तार मानना पड़ा है। मालूम होता है कि राजशेखर की संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत-भाषाओं की ओर अधिक रुचि थी क्योंकि एक स्थान पर वे कहते हैं 'उत्तिविसेसो कव्वो भासा जा होइ सा होदु' यानी 'उक्ति-विशेष ही काव्य है भाषा चाहे कोई हो' और दूसरी जगह

परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुउमारो।
पुरुपमहिलाणं जेत्तिअभिहन्तरं तेत्तिअम्मिमाणम् ॥
"परुषाः संस्कृतगुम्फाः प्राकृतगुम्फोऽपि भवति सुकुमारः ।
पुरुषमहिलानां यावदिहान्तरं तेषु तावत् ॥"

[संस्कृत की कविता कठोर और प्राकृतिकी कविता सुकुमार या नम्र होती है। जैसा पुरुष और स्त्रियों में अन्तर होता है वैसा ही इनमें भी है ।]

कुछ फुटकर श्लोकों को छोड़ कर आज कल राजशेखर के रचे हुए तीन पूरे और एक अधूरा ग्रन्थ उपलभ्य है। इन्होंने अपने एक नाटक में कहा है 'विद्धि नः षट् प्रबन्धान्' इससे मालूम होता है कि इनके रचे हुए कोई छः ग्रन्थ रहे होंगे। सम्भव है कि ऐसा हो और जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य-रत्नाकर के अनेक देदीप्यमान रत्नों का लोप हो गया है उसी प्रकार इनके शेष ग्रन्थों का भी हो गया हो। प्रोफ़ेसर कोनो का विचार है कि शायद इनके रचे शेष ग्रन्थ भी इनके नाम के पर्य्यायवाची किसी दूसरे नाम से प्रचलित हों। यह भी हो सकता है।

उनके रचे हुए ग्रन्थ ये हैं—कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण, तथा बालभारत। बालभारत के केवल पहले दो अङ्क मिलते हैं शेष का पता नहीं। कर्पूरमञ्जरी एक नाटक[*] (या सट्टक) है। कुछ जैन हस्त-लिखित प्रतियों में इसे 'नाटिका' तथा 'महानाटिका' भी बतलाया गया है। यह बिलकुल प्राकृत भाषाओं में है। इसमें चार अङ्क हैं जिनमें से प्रत्येक का नाम 'जवनिकान्तर' है। इसमें राजा चण्डपाल और कुन्तल के राजा की लड़की कर्पूरमञ्जरी के ब्याह का हाल है। इसमें कई स्थलों पर कालिदासकृत 'मालविकाग्निमित्र' से कुछ कुछ समानता झलकती है पर हमारी समझ में इससे अधिक और कोई बात सिद्ध नहीं होती कि बहुधा दो मनुष्यों के स्वतन्त्र विचार उन्हें एक ही स्थान पर ले जाकर डाल देते हैं।

कोनो के मत में कर्पूरमञ्जरी हमारे कवि की पहली कृति है, क्योंकि इसकी प्रस्तावना में इसके अभिनय का होना राजशेखर की स्त्री 'अवन्तिसुन्दरी' की आज्ञा से बतलाया गया है। इससे मालूम होता है कि राजशेखर ने कन्नौज की राजसभा में जाने के पहले ही इस ग्रन्थ की रचना की होगी। पर यह सिद्धान्त ठीक नहीं जँचता; क्योंकि उसी पुस्तक की प्रस्तावना में इस बात का भी ज़िक्र आया है कि राजशेखर महेन्द्रपाल के गुरु थे। इससे उक्त ग्रन्थ की रचना के समय में या इससे पहले उनका कन्नौज के राजाओं से सम्बन्ध प्रतीत होता है। इस आधार पर हम कर्पूरमञ्जरी को राजशेखर की पहली कृति नहीं मान सकते।

---

[*] साटक (या सट्टक)—यह रूपक का एक भेद है। इसके लक्षण साहित्यदर्पण के अनुसार ये हैं:—

सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम् ।
न च विष्कम्भकोऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः ॥
अङ्का जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिका समम् ॥

अर्थात् सट्टक बिलकुल प्राकृत में ही हो, उसमें 'प्रवेशक' तथा 'विष्कम्भक' न हों। अद्भुत रस की ही प्रधानता रहे और उसके 'अङ्कों' का नाम जवनिका हो। और सब बातें नाटिका के समान होनी चाहिएं।

हमारे कवि की दूसरी कृति विद्धशालभञ्जिका है। यह नाटिका है और इसमें भी चार अङ्क हैं। इसकी कथा कर्पूरमञ्जरी की कथा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसमें विद्याधरमल्ल और मृगाङ्कावली के विवाह का हाल है। इसकी प्रस्तावना में किन्हीं 'श्रीयुवराजदेव की आज्ञा से इसका अभिनय होना लिखा है। सम्भवतः 'युवराजदेव' से महिपालदेव का मतलब है। इस नाटिका के अभिनय के समय में वे युवराज रहे होंगे। यदि ऐसा है तो यह हमारे कवि का सबसे पहला ग्रन्थ है। हाँ यदि कोनो साहब के मतानुसार कर्पूरमञ्जरी उनका पहला ग्रन्थ मान लिया जाय तो उस दशा में इसका नम्बर दूसरा होगा। पर यह भी सम्भव है कि 'युवराजदेव' से चेदि-नरेश केयूरवर्ष युवराजदेव का मतलब हो जो ईसा की दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में थे। यदि ऐसा है तो इसे कवि का अन्तिम ग्रन्थ मानना चाहिए।

बालरामायण हमारे कवि का तीसरा ग्रन्थ है। यह नाटक है। संस्कृत-साहित्य की ही क्या शायद सम्पूर्ण जगत् के साहित्यों में इतना बड़ा नाटक नहीं होगा। इस युग में आकार का आधिक्य भी तो बड़ा भारी दोष समझा जाता है। इसी अक्षन्तव्य अपराध के कारण, इस विषय में, राजशेखर भी अनेक समालोचकों की अकृपा के पात्र बने हैं। इसी कारण तो वरनेल महाशय को बालरामायण में कोई खूबी नहीं सूझती। इसी लिए तो आप्टे प्रभृति विद्वानों ने हमारे कवि की निन्दा के पुल बाँध दिये हैं। इस नाटक में रामचन्द्र की कथा सीताजी के स्वयंवर से लेकर रावण-वध के उपरान्त रामराज्याभिषेक तक है। इस पर कोई टीका नहीं है।

अब रहा बालभारत। इसका अभिनय महिपालदेव की आज्ञा से हुआ था। इस से यह स्पष्ट है कि यह विद्धशालभञ्जिका तथा बालरामायण के बाद का है। इसका दूसरा नाम 'प्रचण्डपाण्डव' भी है। इसके केवल दो अङ्क मिलते हैं। आप्टे महाशय के मत में इसका भी आकार बालरामायण के बराबर ही रहा होगा।

इसके सिवा शार्ङ्गधरपद्धति, वल्लभदेवकृत सुभाषितहारावली तथा सूक्तिमुक्तावली-प्रभृति ग्रन्थों में उनके रचे हुए अनेक श्लोक बतलाये जाते हैं। इनमें से कुछ श्लोक तो उनके उपलभ्य ग्रन्थों में मिलते हैं और कुछ नहीं। जो नहीं मिलते वे उनके शेष ग्रन्थों में के होंगे जिनका कुछ पता नहीं चलता।

कविता कैसी होनी चाहिए तथा उसमें मुख्यतया किन किन गुणों का समावेश होना चाहिए इस विषय पर राजशेखर की राय संयोग से उनके एक ग्रन्थ में आ गई है। उनके मतानुसार कविता में नीची लिखी चार बातें अवश्य होनी चाहिए—[१] अभिनवार्थदर्शनम्, [२] रमणीयः शब्दः, [३] उक्तिविचित्रिता, [४] रसनिष्पन्दश्च।' वैसे तो और गुणों के साथ साथ प्रायः ये सब गुण राजशेखर की कविता में पाये जाते हैं पर मुख्यतया जिन गुणों के कारण वे विद्वानों के आदर के पात्र बने हैं वे ये हैं:—

१ कल्पनाशक्ति।
२ रमणीय शब्दविन्यास।
३ अर्थ के अनुरूप शब्दों का प्रयोग (Onomatopoe)।

अब हम राजशेखर की कविता के कुछ नमूने देते हैं जिनसे पाठकवृन्द स्वयं जान सकेंगे कि पूर्वोक्त गुण हमारे कवि में कहाँ तक विद्यमान हैं।

द्वित्रैर्व्योम्नि पुराणमौक्तिकमणिच्छायैः स्थितं तारकैः।
ज्योत्स्नापानसमालसेन वपुषा मत्ताश्चकोराङ्गणाः ॥
यातोऽस्ताचलचूलमुद्धसमधुच्छत्रच्छविश्चन्द्रमाः।
प्राचीबालबिडाललोचनरुचां जाता च पात्रं ककुप् ॥

[यह प्रातःकाल का वर्णन है—आकाश में पुराने मोतियों की कान्तिवाले दो तीन तारे (रह गये) हैं। मतवाली चकोरियाँ चाँदनी के पीने के साथ ही शिथिल-शरीर होगई हैं। शहद निकाले हुए मधुमक्खियों के छत्ते के समान चन्द्रमा अस्ताचल की चोटी पर पहुँच गया है और पूर्व-दिशा ने बिल्ली के बच्चे की आँखों की सी शोभा पाई है।

निर्यद्वासरजीवपिण्डकरणिं कुर्वन्कवोष्णैः करै-
र्माञ्जिष्ठं रविबिम्बमम्बरतलादस्ताचलं चुम्बति।
किं च स्तोकतमः कलापकलनाश्यामायमानं मना-
ग्धूमश्यामपुराणचित्ररचनारूपं जगज्जायते ॥

[यह सन्ध्या का वर्णन है—अपनी कुछ कुछ गरम किरणों से जीव-रहित दिन का पिण्डीकरण करते हुए, मँजीठी

रङ्ग का सूर्य्य आकाश से अस्ताचल पर पहुँचा है। और कुछ कुछ अन्धकार से व्याप्त होने के कारण संसार काला हो रहा है अतएव धुयें से काली पुरानी चित्र-रचना के समान मालूम होता है।]

मण्डले ससहरस्य गोरए दन्तपन्जरविलास चोरए।
भादिलञ्छनमिओ फुरन्तिओ केलिकोकिलतुलं धरन्तओ॥
"मण्डले शशधरस्य गौरे दन्तपञ्जरविलासचौरे।
भाति लाञ्छनमृगः स्फुरन्केलिकोकिलतुलां धारयन्॥]

[हाथी-दाँत के पिँजरे की सुन्दरता चुरानेवाले स्वच्छ चन्द्रमण्डल में कलङ्कमृग पालतू कोयल के समान शोभित होता है।]

अकुङ्कममचन्दणं दह दिहावहूमण्डणं।
अकङ्कणमकुण्डलं भुअणमण्डलीभूसणम्॥
असोसणममोहणं मअरलञ्छणस्साउहं
मिअङ्ककिरणावली णह अलम्भि पुञ्जिज्जइ॥
[अकुङ्कुममचन्दनं दश दिशावधूमण्डनम्,
अकङ्कणमकुण्डलं भुवनमण्डलीभूषणम्।
अशोषणममोहनं[1] मकरलाञ्छनस्यायुधं।
मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति॥]

[जो कुङ्कुम अथवा चन्दन नहीं है पर दसो दिशा-रूपी बहुओं का मण्डन है, जो कङ्कण अथवा कुण्डल नहीं है, पर सम्पूर्ण भुवन तल का भूषण है तथा जो 'शोषण' या 'मोहन[2]' नहीं है पर कामदेव का अस्त्र है। (अथवा जो ऐसा फूल है जो न कभी सूखता है और न मुरझाता है) ऐसी चन्द्रमा की किरणमाला का आकाश-मण्डल में जमाव हो रहा है।]

ये पूर्वं यवसूचिसूत्रसुहृदो ये केतकाग्रच्छद-
च्छायासाम्यभृतो मृणाललतिका लावण्यभाजोऽत्र ये
ये धाराम्बुविडम्बिनः क्षणमथो ये तारहारश्रिय-
स्तेऽमी स्फाटिकदण्डडम्बरचितो जातास्सुधांशोः कराः॥

[जो पहले जौ की बालियों के डोरों की तरह और फिर केतकी की पँखुड़ियों के अग्रभाग के समान हुईं, फिर जिन्होंने कमल-नालों की (तदनन्तर) धारवर्षी बादलों की और (अन्त में) लम्बे हारों की शोभा को पाया, वही चन्द्रमा की किरणें अब स्फटिकमणि के दण्डों से व्याप्त सी हो गई हैं।]

ऊपर के श्लोकों से यह स्पष्ट विदित होता है कि प्राकृतिक दृश्यों के चित्र खींचने में हमारे कवि कितने चतुर चित्रकार थे। प्रोफ़ेसर लेनमेन उनकी विचित्र वर्णन-शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं:—

"And the descriptive stanzas (as of sunset, evening or moonrise) deserve high praise for their vividness and genuinely poetic sense, of the fairest aspects of nature." अर्थात् 'सर्वोत्तम प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन-सम्बन्धी श्लोक (उदाहरणार्थ संध्या, प्रातःकाल तथा चन्द्रमा के उदय के) अपनी स्पष्टता तथा कविता के चोखे भावों के लिए बड़े प्रशंसनीय हैं।' आगे के श्लोकों से पता लगेगा कि राजशेखर ने जिस खूबी के साथ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है उसी खूबी से उन्होंने विविध अवस्थाओं (हालतों) के तथा हृदय के महीन महीन भावों के चित्र खींचे हैं।

परं जोह्ला उह्ला गरलसरिसो चन्दणरसो।
खदक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा॥
मुलाणी बाणाली जलदि अ जलद्दा तणुलदा।
वरिट्ठा जंदिट्ठा कमलवअणा सा सुणअना॥
परं ज्योत्स्ना उष्णा गरलसदृशश्चन्दनरसः,
क्षतक्षारो हारो रजनिपवना देहतपनाः।
मृणाली बाणाली ज्वलति च जलार्द्रा तनुलता।
वरिष्ठा यद्दृष्टा कमलवदना सा सुनयना॥]

[यह विरहावस्था का वर्णन है—क्योंकि (हमने) कमल के समान मुँहवाली तथा अच्छे नेत्रवाली उस श्रेष्ठ (स्त्री) को देखा है इसलिए चांदनी बहुत गरम मालूम होती है, चन्दन-रस विष के समान हो गया है, माला घाव में नमक की तरह लगती है, रात की (ठण्डी) हवा शरीर को जलाती है, कमलनालों की पङ्क्ति बाणों की पङ्क्ति के समान है और शरीर यद्यपि जल से भीगा हुआ है फिर भी जला जाता है।]

---

[1] इस पंक्ति का कोष्ठान्तर्गत अनुवाद Prof. Lanman के अँगरेज़ी अनुवाद के अनुसार है पर अशुद्ध मालूम होता है। [2] शोषण और मोहन—कामदेव के पाँच बाणों में से ये दो के नाम हैं।

सहदिअहणिसाइं दीहरा सासदण्डा,
सहमणिबलयेहिं बाहधारा गलन्ति।
सुहअ तुअ विओए तेअ उव्वेअणीए,
सह अ दणुलदाए दुब्बला जीविदासा ॥
[सह दिवसनिशाभ्यां दीर्घाः श्वासदण्डाः,
सह मणिबलयैर्बाष्पधारा गलन्ति।
सुभग! तव वियोगे तस्या उद्वेगिन्या,
सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा ॥]

[यह भी विरहावस्था का वर्णन है—(विरह-वेदना के कारण उसके) दिन और रात तो बढ़ही गये हैं (पर) साथ ही (उसकी) श्वास (या आहें) भी बढ़ गई हैं। (दुर्बलता आजाने के कारण उसकी) मणिरचित चूड़ियां तो हाथों से गिरती ही हैं (पर) साथ ही उसकी अश्रुधारा भी गिरती है। हे सुन्दर! आपके वियोग में उस शोक-ग्रसिता के शरीर के साथ साथ उसके जीवन की आशा भी दुर्बल हो गई है।]

सहोक्ति के ऐसे उदाहरण सब कहीं नहीं मिलते।

रणन्तमणिणेउरं झणझणन्तहारच्छडं,
कलकणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्बरम्।
विलोलकलआवली जणिदमन्जुसिञ्जारवं।
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिन्दोलणम् ॥
[रणन्मणिसुनूपुरं झणझणायमानहारच्छटं,
कलक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम्,
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवं,
न कस्य मनोमोहनं शशिमुख्या हिन्दोलनम् ॥]

[बजते हुए मणि-नूपुरों से उपलक्षित, झनझनाते हुए हार की शोभा से और बजती हुई क्षुद्रघण्टिकाओं तथा सशब्द करधनी के दर्प से संयुक्त, चञ्चल चूड़ियों की पङ्क्तिओं के खनखनाने से सशब्द—ऐसा शशिमुखी (नायिका) का झूलना किसके चित्त को नहीं चुराता।]

इस श्लोक में कवि का शब्द-विन्यास कैसा अनुपम है। पदलालित्य के सिवा, श्लोक के पढ़ते पढ़ते यह अनुभव सा होने लगता है कि मानों बजते हुए भूषणों के शब्द स्पष्ट सुनाई देने लगे। इस श्लोक के सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर लेनमेन कहते हैं "The stanza is a *tour de force* in the use of initiative words." अर्थात् 'अर्थानुसार शब्दों के प्रयोग में यह श्लोक अत्यन्त अद्भुत है।' आगे का श्लोक भी इसी प्रकार का है।

अमन्दमणिनूपुरक्वणनचारुचारिक्रमं,
झणझ्झणितिमेखलास्खलिततारहारच्छटम्।
इदं तरलकङ्कणावलिविशेषवाचालितं,
मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडनम्।

[(इस) वनिता का यह गेंद खेलना मन को हरे लेता है—जिस खेल में सशब्द मणि-जटित बिछुओं के बजने से चलने का क्रम बहुत ही उत्तम लगता है, जिसमें झनझनाती हुई करधनी खिसक जाने के कारण लम्बे हार की शोभा को पाती है और जिसमें चञ्चल कङ्कणों की पङ्क्तियों से विशेष रूप से शब्द होता है।]

वल्गच्चाणूरचूर्णीकरणसहभुवः पूतनापूत्कृतानां
कर्त्तारः कंसवंशप्रशमपरशवः केशिनः क्लेशकाराः।
यस्यासन्दानदर्पप्रबलकुवलयापीडपीडाप्रगल्भाः
क्रीडाडिम्भस्य लीलोद्धृतधरणिधराः केलयः कालियारेः ॥

[बलफते हुए चाणूर के चूर्ण करने के समकालीन, पूतना को हफानेवाले, कंस-वंश के नाश करने में फरसाओं के समान, केशी को क्लेश पहुँचानेवाले, मदगर्वित, प्रबल कुवलयापीड को मारने में धृष्ट, सहज ही में पर्वत उठा लेने से (उपलक्षित)—ऐसे खेल जिस खिलाड़ी लड़के कालीनाग के शत्रु श्रीकृष्ण के हुए।]

महाकवि राजशेखर की ऐसी कविता है। संस्कृत-साहित्य की उन्होंने जो सेवा की है वह तो उच्च कोटि की है ही पर प्राकृत साहित्य के लिए उन्होंने जो कुछ किया है उसके लिए उक्त साहित्य के इतिहास में उनका नाम सुवर्णाक्षरों से लिखा रहेगा। उन्होंने प्राकृत-साहित्य के मन्द-प्रवाह में एक नये वेग का सञ्चार किया तथा उसे नवीन नवीन मार्गों में सञ्चालन किया। उनके पहले प्राकृत भाषाओं के कवि प्रायः 'अनुष्टुप्' 'आर्य्या' इत्यादि छन्दों में ही कविता करके सन्तोष रखते थे। बहुत बड़ा छन्द लिया तो 'इन्द्र-वज्रा' या उसी के समान कोई दूसरा। 'शार्दूलविक्रीड़ित' 'स्रग्धरा' इत्यादि बड़े छन्दों का प्रयोग तो कोई जानता ही न था। उन्होंने प्राकृत-साहित्य की यह कमी भली भांति पूरी की। अनेक बड़े बड़े मधुर छन्दों में उन्होंने कविता रच कर प्राकृत भाषा के इस कलङ्क को उज्ज्वल

किया । मालूम होता है कि 'शार्दूलविकीडित' छन्द हमारे कवि को अधिक प्रिय था क्योंकि अकेले कर्पूरमञ्जरी में लगभग ३९ श्लोक इसी छन्द में हैं । सुवृत्ततिलक में क्षेमेन्द्र ने लिखा भी हैः—

> शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः ।
> शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ॥

राजशेखर के पहले प्राकृत-साहित्य में एक भी रूपक नहीं था । राजशेखर ने 'कर्पूरमञ्जरी' की रचना करके उसका यह कलङ्क भी धो दिया । जहाँ तक मालूम है अभी तक प्राकृत भाषा में इस के सिवा और कोई दूसरा रूपक नहीं मिला है । सचमुच प्राकृत-साहित्य उनका बड़ा ऋणी है ।

भूपनारायण दीक्षित

कँवर-जाति का 'गौरा' त्योहार ।

मध्य-प्रदेश में छत्तीसगढ़ नाम का एक प्रान्त है । यों तो इस प्रान्त भर में कँवर-जाति के जङ्गली लोग पाये जाते हैं; पर उदयपुर, यशपुर, सिरगुजा, कोरिया, कोरबा, रायगढ़ आदि में ये लोग अधिकता से रहते हैं । भिन्न भिन्न जगहों में रहनेवाले कँवरों में कुछ न कुछ भेद अवश्य दिखाई पड़ता है ।

ये लोग अपने को कौरव-पाण्डवों के वंशधर क्षत्रिय कहते हैं; पर हैं ये निरे जङ्गली । इनके और क्षत्रियों के रस्मो-रिवाज में भी बहुत भेद है ।

मुख्यतः इनके दो विभाग हैं—(१) रठिया और (२) पेंकरा । रठिया लोग शराब, मुर्गों आदि का सेवन करते हैं और जङ्गली देवताओं की आराधना करते हैं । पेंकरा लोग शराब, मुर्गों से घृणा करते हैं और ईश्वर-सेवी होते हैं । इन दोनों में यही मुख्य भेद है । शेष व्यवहार दोनों में एक से हैं ।

इनके कई गोत्र होते हैं । यथा—लिवरी, करियारी, खूटा, जौइड़ा, बाँदी, गाना, पुरगा, कटारी, कोग, कसौदी, डिहरिया, जाताँ, डीला, गन्धेल; चिनगा इत्यादि । इन गोत्रों का अर्थ समझ में नहीं आता । "अनमिल आखर अर्थ न जापू"—वाली दशा है ।

ये लोग पीतर (१) देव को मानते हैं । जब किसी के यहाँ बच्चा पैदा होता है तब बैगा (२) निमन्त्रण देकर बुलाया जाता है । उसके आने पर भाव खिलवाया जाता है—किसी के सिर कोई देव आता है । तब उस देव से प्रश्न किया जाता है कि महाराज, यह—जन्मा हुआ बच्चा—कौन है ? भाव खेलनेवाला उत्तर देता है कि तुम्हारी दादी, तुम्हारा दादा अथवा अमुक मृत व्यक्ति इस बच्चे के रूप में आया है । फिर, दशकर्म के समय, उस बच्चे के पैर दूध से धोये जाते हैं और वह पूज्य दृष्टि से देखा जाता है ।

यदि पुत्र हुआ तो उसका घरेलू नाम, डोकरा, और कन्या हुई तो डोकरी रक्खा जाता है । कोई कोई लौकिक नाम भी रख लेते हैं । पर विशेषतः पुत्र को बाबू और कन्या को नोनी कह कर पुकारते हैं । पुरुष को डौका और स्त्री को डौकी कहते हैं ।

बोल-चाल इनकी छत्तीसगढ़ी है । हर शब्द में गा और गे का प्रयोग होता है ।

इनका मामूली भोजन दाल-भात है । हर प्रकार के जङ्गली कन्द-मूल, फल खाकर भी ये निर्वाह कर लेते हैं । मांस-मछली खाने के तो ये बड़े ही शौक़ीन हैं । अपनी जाति के सिवा दूसरे लोगों के यहाँ का दाल-भात नहीं खाते । हाँ, अपने से उच्च वर्ण के यहाँ की बनी रोटी मात्र खा लेते हैं ।

इनका मुख्य पेशा खेती है । इसी पर ये अपना निर्वाह करते हैं । दूसरा पेशा बहुत कम जानते या करते हैं ।

इस जाति के लोग बड़े सच्चे और ईमानदार होते हैं ।

---

(१)—पीतर-पितृदेव । (२)—बैगा-कँवर-जाति का पुरोहित ।

इन लोगों में एक बड़ा भारी त्योहार होता है। इसे गौरा कहते हैं। इसे महादेव-पार्वती-सम्बन्धी उत्सव समझिए। इसका वृत्तान्त इस प्रकार है—

कुँवार शुक्ला १०—विजय—दशमी से इसका श्रीगणेश होता है। उस दिन बैगा तथा सात कुमारिकायें व्रत-धारण करती हैं। सन्ध्या-समय गाँव के सब लोग एकत्र होकर कुम्हड़े तथा कुछ फूल-फल लिये हुए बैगा के घर जाते हैं। बैगा के आँगन में एक चबूतरा रहता है। उसके बीचों बीच एक गढ़ा भी रहता है। वहाँ पहुँच कर व्रतधारिणी कुमारिकायें फूल-फल आदि सब सामान तथा कुम्हड़े के कुछ टुकड़े उसी गढ़े में डाल कर उलटे मूसल से उन्हें, धान या चावल की तरह, कूटती हैं। इस समय और लोग वाजा वजाते, नाचते और गीत गाते रहते हैं। इनके गीतों का नमूना है—

“हई हई दैया, राम दुहईया। गावत रहे विसुर छाड़े भूले विसरे दई हो समझाई—”

इस कूटने को ये लोग कहते हैं कि—“आज गौरा-रानी के फूल कूटे जाते हैं।” इसका क्या आशय है, समझ में नहीं आता।

जब कूटना हो चुकता है तव वे कन्यायें अलग होजाती हैं। फिर बैगा चबूतरे पर धूप देता है और दीपक जलाता है। हाथ में चावल लेकर वह कुछ आदमियों के सिर पर फेंकने लगता है। इस प्रकार वह अपने जङ्गली देवताओं का आह्वान करता है। उस समय वह—“आओ, महाराज!” आदि कुछ शब्द कहता भी जाता है। (१) ठाकुरदेव, (२) महादेव, (३) देहारिन, (४) गेरसिया ठाकुर और (५) डेढरिया आदि उन देवताओं के नाम हैं। ये देवता इसी जाति के लोगों के सिर आते हैं। बैगा के चावल सिर पर गिरते ही उपस्थित कँवरों में से दो चार आदमी आप ही आप भाव खेलने लगते हैं और हाहा हू हू करके चिल्लाने लगते हैं। तब बैगा इन भाव खेलनेवालों की पूजा करता है। दूध से वह उनके पैर धोता है और एक पत्ते पर आग रख कर उस पर घी छोड़ देता है। फिर वह भाव खेलनेवाले को वह पत्ता दे देता है। खेलनेवाला उसे अपने मुँह के पास लेजाकर उसका धुँआ पी लेता है और पत्ता बैगा को लौटा देता है। इसका अभिप्राय “देवता के निमित्त होम करना”—है।

यह हो चुकने पर बैगा भाव खेलनेवाले के हाथ पर हाथ रख कर प्रश्न करता है कि—“महाराज, किसका चँवर डोलता है? अर्थात् कौन सा देवता पधारा है? तब भाव खेलनेवाला देवता का नाम बताता है। तदनन्तर खेलनेवाले की दूध आदि से पूजा होती है। तदनन्तर भाव खेलनेवाला बहुधा यह पूछता है कि कुछ पूजा-पाती तैयार है या नहीं? इस पर बैगा—शराब लाकर उसे पिलाता है। इसके वाद गाँव का ज़मींदार और बैगा उससे प्रार्थना करते हैं—“महाराज! यह आप ही का जग्ग है। लड़के बच्चे आपही के हैं। इन पर कृपा बनी रहे। बस्ती में कुछ अमङ्गल न हो। सब आप ही के बल-भरोसे पर हैं।” भाव खेलनेवाला उत्तर देता है—“सब पर सब प्रकार की कृपा है; आनन्द ही आनन्द रहेगा।”

वरदान पाने के वाद गाँव के सब लोग एक एक ढोल गले से लटका बजाते नाचते और गाते हैं। गीत इनके बिना सिर-पैर के होते हैं—न आदि का पता न अन्त का। स्त्रियाँ भी नाचती हैं। हाथ मिला कर एकही क़तार में वे अपने पैर आगे पीछे सरकाया करती हैं। गीत की तान टूटने पर कमर के ऊपर का भाग भी ऊँचा नीचा करती रहती हैं।

दो ही चार घण्टे यह जलसा रहता है; फिर बन्द कर दिया जाता है। अन्त में सिर आये हुए देवता भी बिदा हो जाते हैं और सब लोग अपने अपने घर जाते हैं।

कार्तिक और अगहन में प्रायः नित्य ही यह उत्सव

होता है। पूस लगने पर गाँव के मुखिया और ज़मींदार आदि भले आदमी बैगा के आँगन में एकत्र होते हैं। तब फिर भी पहले की तरह भाव खेलवा कर देवता से आज्ञा माँगी जाती है कि महाराज, इस जग्ग का अन्तिम उत्सव ठाठ-बाट से करना है, आज्ञा दीजिए। देवता जो दिन बता देता है, उसी दिन उत्सव की ठहरती है। आज्ञा मिलते ही चौकीदार से कह दिया जाता है कि गाँव भर में ख़बर कर दो कि अमुक दिन गौरा त्योहार होगा। सब लोग अपने घर-द्वार लीप पोत रखें। रोटियाँ,* पूड़ियाँ, गुझियाँ आदि तैयार करलें। अपने अपने रिश्तेदारों, दोस्तों तथा नाचने गाने और बजानेवालों को भी उत्सव देखने के लिए न्योता भेज दें। इस उत्सव में उन लोगों को ज़रूर ही आना पड़ता है जो उस गाँव की लड़की से अपने लड़के की शादी करना चाहते हैं।

निमन्त्रित लोगों में से कोई तो अपने साथ शराब लाते हैं कोई कपड़ा, कोई धान की खीलें। ये चीज़ें मुखिया के यहाँ जमा कर दी जाती हैं। गौरावाले दिन, सबेरे, शराब और खीलें आदि सब लोग मिल जुल कर खा पी लेते हैं। तदनन्तर गाँव के सब लोग बाजे-गाजे सहित मिट्टी लाने के लिए देवरास (देवस्थान) जाते हैं। वहाँ फिर भी देवताजी किसी के सिर बुलाये जाते हैं, भाव खेलाया जाता है। खेलनेवाले की पूजा होती है। उससे मिट्टी लाने के लिए आज्ञा माँगी जाती है। मिट्टी लेकर सब लोग ज़मींदार के घर आते हैं। वहाँ पर दिन भर मिट्टी के गौरा-पार्वती, ठाकुरदेव आदि बनाते हैं। शाम को, बाजे-गाजे के साथ, गौरा-पार्वती आदि की वे मूर्तियाँ दो कुमारिकाओं के सिर पर रख कर उन्हें बैगा के यहाँ ले जाते हैं। साथ चार पाँच आदमी बराबर भाव खेलते रहते हैं। बैगा देवताओं पर चँवर डुलाता जाता है।

नियत स्थान पर पहुँचते ही कन्यायें चबूतरे की सात परिक्रमायें करके उस पर गौरा-पार्वती आदि को रख देती हैं। इन कन्याओं को उस दिन उपवास करना पड़ता है। इस के बाद गौरा-पार्वती आदि देवमूर्तियों और भाव खेलनेवालों के पैर दूध से पखारे जाते हैं। फिर ज़मींदार भाव खेलनेवालों की पूजा करता है। कन्यायें अपने घरों से रोटियाँ भी लाती हैं। उनका भोग लगाया जाता है। फिर वे सबको बाँट दी जाती हैं। इसके बाद घण्टे दो घण्टे नाच-कूद कर सब लोग अपने अपने घर चले जाते हैं। भोजन के बाद सब लोग बड़ी सज-धज से और शराब के नशे में चूर, नाचने के लिए आते हैं। तब सारी रात स्त्री-पुरुषों का नाच धूम-धाम से होता है।

ये लोग शराब के नशे में एक एक मन के ढोल कन्धे पर लटका कर नाचते रहते हैं। कन्धे पर काफ़ी कपड़े भी नहीं रखते। नशे में इन्हें कुछ मालूम ही नहीं होता।

सबेरे, फिर भी, भाव खेलनेवालों के सिर वही देवता आते हैं।

एक अचम्भे की बात सुनिए। उत्सव में ये लोग एक हण्टर (कोड़ा) रखते हैं। सचमुच ही कोई देवता सिर आया है या ढोंग है, यह सन्देह मिटाने के लिए, भाव खेलनेवालों को ये उस हण्टर से ज़ोर ज़ोर से पीटते हैं। पर न तो उन के बदन पर इस मार का कोई निशान ही बनता है न खून ही निकलता है। यह मेरी आँखों देखी बात है।

दूसरे दिन, सबेरे, गौरा-पार्वती आदि की

---

* ये लोग, अच्छी तरह रोटियां बनाना नहीं जानते। उनकी बड़ी दुर्दशा करते हैं। कभी आग में डाल कर भूनते हैं, कभी गीला आटा तवे पर फैला कर उठा लेते हैं, कभी पानी में उबालते हैं। पूड़ियों की भी बुरी गत करते हैं। गुझिया तो इनकी पाव पाव भर की होती हैं। वे भी पानी में ही उबाली सी जाती हैं।

वे मूर्तियाँ दो कन्याओं के सिर पर रक्खी जाती हैं। बाजा बजने लगता है। कन्यायें उनको ज़मींदार आदि भले भले लोगों के दरवाज़े लाती हैं। घर का मालिक उनकी पूजा करता है और यथाशक्ति एक आध नवीन वस्त्र उन पर चढ़ाता है। यह काम हो चुकने पर बैगा नदी में उनका विसर्जन कर देता है। तदनन्तर सब लोग नाचते गाते घर जाते हैं।

मनोहरदास वैष्णव

मुक्त काव्य

मुक्त काव्य किसे कहते हैं ?

मुक्त काव्य को अँगरेज़ी में "ब्लैंक वर्स" कहते हैं, और हिन्दी में यमकहीन, (अन्त्य) अनुप्रासहीन, अमित्राक्षरी, भिन्न तुकान्त, अतुकान्त आदि अनेक बेतुके नामों से पुकारते हैं।

मुक्त काव्य का प्रधान लक्षण क्या है ?

मुक्त काव्य का प्रधान लक्षण कविता के कोरे नियमों से मुक्त होना है। इसी लिए उसको मुक्त काव्य कहते हैं। किन्हीं किन्हीं आचार्यों का मत है कि मुक्त काव्य में मुक्त-हस्त होकर कविता आती है इसी से यह मुक्त काव्य कहलाता है।

मुक्त काव्य के सिवा काव्य के और कौन कौन अङ्ग हैं ?

बद्ध काव्य और बन्ध काव्य। बन्ध काव्य बच्चों का खेल है। इसमें शब्दों को नोच घसीट कर किसी रीति से भाँति भाँति के मुरज-बन्ध, अश्व-बन्ध, खड्ग-बन्ध आदि अनेक बन्धों में बन्द कर देते हैं। इसका नाम चित्र काव्य भी है। एकाक्षरी कविता आदि सब इसी बन्ध काव्य में आती है। बन्ध काव्य को काव्य कहना व्यर्थ है। यह काव्य में काव्य-बन्धु है।

बद्ध काव्य क्या है ?

बद्ध काव्य सच्ची कविता है, और साहित्य का भूषण है। जब कविता नियमों से बद्ध होती है तब बद्ध काव्य कही जाती है।

तुकान्त कविता और बद्ध काव्य में क्या भेद है ?

तुकवाली कविता बद्ध काव्य का केवल एक अंश है। बद्ध काव्य दो भाँति का होता है:—जिसमें अन्त में तुक वा यमक हो, और जिसमें तुक वा यमक की अन्त में क़ैद न हो, परन्तु आदि से अन्त तक एक विशेष छन्दोबद्ध गति की ज़बर-दस्त जकड़बन्दी हो। इस हेतु बद्ध काव्य के दो भेद यमकबद्ध और छन्द-बद्ध मानने पड़ेंगे।

मुक्त काव्य और छन्द-बद्ध काव्य में क्या भेद है ?

मुक्त काव्य जीवन्मुक्त की भाँति नियममुक्त है। छन्द-बद्ध काव्य यमक-बद्ध काव्य से भी अधिक कठिन है।

क्या मुक्त काव्य गद्य काव्य भी हो सकता है ?

असम्भव नहीं है। दोनों के आदर्श एक ही हैं। जब मनुष्य जाति अपने भावों और विचारों को काव्यमय कर लेगी तब मुक्त काव्य और गद्यकाव्य में बहुत कम भेद रह जायगा।

मुक्त काव्य के लक्षण क्या हैं ?

सब नियमों को तोड़ना : यमक का न होना, किसी विशेष छन्द गति का न होना, पङ्क्ति पङ्क्ति में यदि जी चाहे तो गति का बदलना, मात्राओं का हेर फेर, यति का अदल बदल, अक्षरों की कमती बढ़ती। यह सब मुक्त काव्य के लक्षण हैं, और यदि इनमें से कोई न होसके तो वह काव्य मुक्त काव्य नहीं है।

संस्कृत काव्य को मुक्त काव्य कह सकते हैं ?

संस्कृत काव्य कई प्रकार का है। गीत आदिक में यमक होते हैं। शिखरिणी, मालिनी, शार्दूल विक्रीडित आदि अनुपम छन्दों में एक विशेष छन्द-बद्ध गति होती है जो यदि एक ही छन्द में काव्य किया जाय तो निरन्तर आदि से अन्त तक रहेगी। यदि छन्द से छन्द बदला जाय तो छन्द की बद्ध गति तो न रहेगी,

परन्तु काव्य की बद्ध गति भी भटकती फिरेगी। काव्यगति को घड़ी घड़ी इस घोड़े से उस घोड़े पर उछालना न चाहिए।

तो संस्कृत काव्य में मुक्त काव्य नहीं है?

नहीं है।

समवृत्त अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त कोई भी मुक्त काव्य नहीं है। मात्रा-छन्द वा जाति-छन्द भी मुक्त काव्य नहीं है क्योंकि उनमें पाद होते हैं। गाथा, दण्डक, मात्रा-समक आदि भेदों में किसी में मुक्त काव्य नहीं पाया जाता।

हिन्दी काव्य में मुक्त काव्य नहीं है?

नहीं है।

सवैया, कवित्त, दोहा, सोरठा, चौपाई आदि सब में तुक होती है। यह सब यमक काव्य हैं। अकसर सवैये आदि बद्ध काव्य भी होते हैं परन्तु यह लाज़मी नहीं। चौपाई छन्द को हिन्दी में बिलकुल बद्ध काव्य से बचा लिया है। कहीं कहीं उसमें शंखध्वनि होती है, कहीं कहीं मधुर ध्वनि, मुरली ध्वनि, परन्तु यमक उसमें उपस्थित है।

हिन्दी काव्य में मुक्त काव्य हो सकता है?

अवश्य हो सकता है।

जब दूसरी भाषाओं में है तो हिन्दी काव्य में क्यों नहीं हो सकता?

हिन्दी काव्य को मुक्त काव्य से लाभ होगा?

अवश्य होगा। यद्यपि हिन्दी में अनुस्वार का अधिक प्रयोग नहीं होता न विसर्ग का, परन्तु हिन्दी इतनी यमकों से भरी भाषा है कि उसको साधारण रूप से यमक बद्ध काव्य में अधिक कष्ट नहीं होता। उसकी मुक्त काव्य के प्रयोग में कुछ हानि नहीं है। उलटा लाभ ही लाभ है।

संस्कृत की भाँति बद्ध काव्य से हिन्दी काव्य को लाभ होगा?

अवश्य होगा यदि उचित रीति से प्रयोग किया जाय। नहीं तो नहीं होगा।

इसका अर्थ क्या है?

हिन्दी काव्य की रुचि मात्रा काव्य की ओर अधिक गई है। वृत्त काव्य वा अक्षर काव्य की ओर कम। यह स्वतन्त्रता का चिह्न है और नियमों की बात छोड़ कर कार्यक्रम में हिन्दी संस्कृत से अधिक स्वतन्त्र है। सवैय्या, कवित्त, छप्पय आदि छन्दोबद्ध काव्य के दोष से बहुत कुछ निकल आये हैं, परन्तु इनमें अभी पाद बने हैं और मात्रायें भी अटल हैं। मात्राछन्द और वृत्तछन्द में से कौन अधिक स्वाधीन है?

मात्राछन्द। वृत्तछन्द का ढाँचा बँधा रहता है जिससे वह टस से मस नहीं कर सकता। मात्रा-छन्द अपने अक्षरों को नहीं बाँधता, किसी क़दर स्वतन्त्रता देता है। विशेष कर चौपाइयों में (यदि रामायण की सब चौपाइयाँ जाँची जायँ तो न मालूम कितने चतुष्पदी छन्द उनमें निकलें) हिन्दी ने मात्राछन्द का सहारा संस्कृत से अधिक पकड़ा है, और वृत्तछन्द को नीचा स्थान दिया है।

वृत्तछन्दरूपी बद्ध काव्य का हिन्दी में क्या भविष्य है?

तुक का होना या न होना बराबर है। अधिकतर उदाहरणों में तुक के न रखने से तुक का रखना अच्छा और अधिक सरल और मधुर होता।

यदि उसमें तुक न रक्खी जाय, तो क्या हानि है?

कुछ भी नहीं, परन्तु था, सा, ती, का अथवा का, ई, आ, ई अथवा ए, को, ई, ए यह तीनों प्रकार के पाद तुकों से अलग नहीं हैं। से, को, ई, जा—इसी प्रकार के छन्द तुकों से दूर हैं।

इस भाँति के काव्य में क्रिया का प्रयोग कैसा होना चाहिए?

यदि किसी हिन्दी वृत्त छन्द के चारों पादों में भिन्न भिन्न तुकें हैं तो ख़ैर, परन्तु इन तुकों में है, था,

आदि क्रियाएं न होनी चाहिएं। खड़ी बोली में इन क्रियाओं का होना आवश्यक है और उसी भाँति विभक्ति-सूचक से, के, में, की, आदि शब्दों का भी हाल है, परन्तु यदि पंक्ति के अन्त में तुकों का क्रम बचाते हुए भी यही शब्द आते हैं तो यह काव्य की दुर्बलता का चिह्न है। खड़ी बोली के कविगण यदि संस्कृत वृत्त-छन्दों का प्रयोग करें तो क्रियावाचक और विभक्तिवाचक शब्दों को पंक्ति के अन्त में न रखने का प्रयत्न करें। इसमें सफल होने से खड़ी बोली की क्लिष्टता निकल जायगी।

संस्कृत समासों का हिन्दी छन्दों में कब प्रयोग होना चाहिए?

लाचारी दर्जे पर। हिन्दी को समास प्यारे नहीं हैं। वह उनके चंगुल से छूट गई है। साधारण लोग समासों में नहीं बोलते और खड़ी बोली साधारण लोगों की भाषा है। जो समासों और संस्कृत वृत्तों के द्वारा कविता करने का कष्ट केवल हिन्दी भाषा का अन्य प्रान्तों में प्रचार करने के उदार उद्देश्य ही से उठाते हैं, उनके आगे हम अपना सिर झुकाते हैं।

वृत्त-छन्द-रूपी बद्धकाव्य से हिन्दी को क्या लाभ होगा?

संस्कृत के भिन्न भिन्न वृत्त छन्दों से भिन्न भिन्न ध्वनि निकलती है। कोई शिथिल है कोई शीघ्र है, कोई इधर उधर खेलता चलता है, किसी को चलते हुए ही कष्ट मालूम होता है। रस और भाव के अनुसार इनका प्रयोग करने से काव्य में अवश्य अधिक सुन्दरता आ सकती है, परन्तु आज कल तो यह छन्द योंही सब छकड़ों में जोत दिये जाते हैं। और विशेष कर उनमें जिनको किसी कथा का भार भर कर दूर चलना होता है। सौभाग्यवश ऐसे लोकप्रिय छन्द भी ५–६ ही हैं, परन्तु यह धीरे धीरे भी उकताने लगते हैं, और श्लोक श्लोक पर ठिठकते जाते हैं। इससे क्या लाभ? एक बात और है वृत्त छन्दों का यदि प्रयोग ही करना है, तो तुकों को यों ताक में रखदिया जाय। केशवदास जी की तरह कुछ सफलता ही न प्राप्त की जाय। समय की गति किस ओर है?

खड़ी बोली में मधुर काव्य की ओर। यह कैसे हो सकता है?

क्रियाओं की कला जानने से। समासों को साँपों की तरह समझने से। संस्कृत-वृत्तों का ठीक ठीक प्रयोग करने से। गीतों को खड़ी बोली में रखने से। भाव की उँचाई और रस की गहराई से। मुक्त काव्य के प्रयोग से।

मुक्त काव्य खड़ी बोली में हो सकता है?

अवश्य। खड़ी बोली ही के लिए तो वह रखा हुआ है। उसको कमज़ोर क्रिया नहीं चाहिए।

उर्दू काव्य से कुछ लाभ है?

उर्दू में कविता के कुछ ढाँचे हैं, जिनमें उर्दू के लिखनेवाले बहुत दिन काम कर चुके हैं। यदि वे इन्हीं में पड़े रहेंगे तो धीरे धीरे पाला मार जायगा। हम लोगों के लिए यह ढाँचे थोड़े नये ही से हैं, इससे हम लोग इनको भी ले सकते हैं। परन्तु कविता अपनी होनी चाहिए। खड़ी बोली के यह काम के अवश्य हैं।

उर्दू गद्य का नाच कैसा होता है?

बिलकुल अस्वाभाविक। उर्दू नाटकों की नाचती हुई गद्य की तरह आज तक किसी देश में बोला ही नहीं जाता। यदि गद्य में पाँव पाँव पर तुकें ही मिलाना है तो फिर पद्य किस लिए है?

व्रज-भाषा का भविष्य कैसा है?

अटल। हिन्दी जब तक जीवित है, व्रज-भाषा जीवित रहेगी। परन्तु हिन्दी के भविष्य राष्ट्रीय भवन में वह एक प्रान्तीय स्थान पावेगी, यद्यपि वह स्थान हिन्दी के हृदय से मिला रहेगा।

व्रजभाषा में मुक्तकाव्य हो सकता है?

निन्नानवे फ़ी सदी नहीं। उसमें क्रियाएं कम-

ज़ोर हैं। क्रियाओं की कला मुक्त काव्य का एक प्रधान अङ्ग है।

मुक्त काव्य से क्या लाभ है?

उसका आनन्द दूसरा ही है। अपनी अपनी रुचि है।

मुक्त काव्य के प्रेमी लोग क्या कहते हैं?

बद्ध काव्य अच्छा है, परन्तु मुक्त-काव्य उत्तम है। बद्ध काव्य साँकलदार हाथी है, मुक्त काव्य बे साँकल का सिंह।

और कुछ?

बद्ध काव्य भूतकाल, मुक्त काव्य भविष्य-काल। बद्ध काव्य कवियों की बोली, मुक्त काव्य संसार की बोली।

बस?

कविता की तीन दशायें हैं:—मुक्त काव्य, बद्ध काव्य, बन्ध काव्य—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति।

यही न?

यही! अब आगे अतिशयोक्ति है!

तो यह प्रश्नोत्तरी भी समाप्त हो?

अवश्य।

शिवाधार पाण्डेय

विविध विषय।

१—रीवाँ-नरेश का देहावसान।

गत कार्तिक कृष्ण ११ बुधवार (ता० ३० आक्टोबर) को महाराजा साहब बहादुर लेफ्टनेन्ट कर्नल सर वेङ्कटरमणसिंह जू देव जी० सी० एस० आई० रीवाँ-नरेश का वैकुण्ठवास हो गया। आप थोड़े ही दिन प्लूरसी रोग से पीड़ित रहे थे। प्राचीन काल में गुजरात से सोलङ्की क्षत्रियों का एक दल मध्य प्रदेश में आया था। उसी दल के नेता महाराज व्याघ्रदेव ने मध्य भारत में अपना आधिपत्य जमाया। उनके वंशज महाराज विक्रमादित्य ने रीवाँ को अपनी राजधानी बनाया। इस घराने में पहले ही से विद्यानुराग, वीरता और धर्म्मिष्ठता रही है। महाराज रघुराजसिंह देव जू के नाम से सभी हिन्दी-प्रेमी परिचित हैं। साहित्य और सङ्गीत में प्रवीण आप एक परम वैष्णव थे। उनके पुत्र स्वर्गीय वेंकटरमणरामानुजप्रसादसिंहजी का जन्म १९३३ में हुआ। १८९५ ई० में राजसिंहासन पर

स्वर्गवासी
श्रीमान् महाराजा सा० बहादुर लेफ्टीनेन्ट कर्नेल सर वेंकटरमणसिंहजू देव, जी० सी० एस०, आई०, रीवाँराज्य।

बैठते ही आपने राज्य के कुल दफ़्तरों में हिन्दी और नागरी लिपि के द्वारा कार्य्य किये जाने की आज्ञा दे दी। आप में भी अपने पूज्यपाद पिताजी की तरह विद्या और धर्म्मानुराग था। आपके असमय देहावसान से हिन्दी और हिन्दुओं की बड़ी हानि हुई। उनके उत्तराधिकारी कुमार महाराज गुलाबसिंह जी से इस दुःख में सहानुभूति प्रकट करते हुए हम आशा करते हैं कि वे भी हिन्दी और हिन्दूधर्म्म का पालन अपने पूर्वजों की तरह करेंगे।

२—आशु-कवि स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथ जी।

आशु-कवि स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथजी।

दुष्ट इन्फ़्लुएञ्ज़ा ज्वर ने हमारे देश से थोड़े ही दिनों में कितने ही अमूल्य नर-रत्न उठा लिये। ऐसे ही नर-रत्नों में आशु-कवि पण्डित अयोध्यानाथ जी भी थे। मार्गशीर्ष कृष्ण ११ शुक्रवार को इन्फ़्लुएञ्ज़ा ज्वर से इनका देहान्त हो गया। अभी इनकी उम्र सिर्फ़ ५५ वर्ष की थी। इनके चरित और कवित्व-शक्ति को पहले भी सरस्वती प्रकाशित कर चुकी है। यूँ तो इनकी पदवी थी घटिका शतक अर्थात् एक घड़ी में सौ श्लोक बनाने की शक्ति रखनेवाले। परन्तु इनकी प्रतिभा और अलौकिक कवित्व-शक्ति पर मुग्ध हो स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित राममिश्र शास्त्री इन्हें घटिका-सहस्र कहने लगे थे। मङ्गलाचरण के दो श्लोक कहने के अनन्तर ही जिस विषय पर आप कहिए, छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा उसी पर एक नहीं कितने ही नवीन श्लोक धारा-प्रवाह सरल संस्कृत में सुनाते जाते थे। कालेजों, समाजों और विद्वानों की मण्डली में इनकी प्रतिभा का चमत्कार देख कर लोग व्यासादिक ऋषियों की कवित्व-शक्ति का स्मरण करते थे। पण्डित अयोध्यानाथ जी सरल और धर्म्मिष्ठ ब्राह्मण थे। सीधेसादे तपस्वी-वेष में ये भारत के सभी प्रान्तों में भ्रमण किया करते थे परन्तु काशी ही उनका केन्द्र-स्थान था। आप रहनेवाले थे जालौन ज़िला कुमहार ग्राम के। उनका कुटुम्ब प्रायः ग्राम ही में रहता था। गुणग्राही अनेक राजाओं ने आशु-कवि जी से अपने दरबार में रहने के लिए

आग्रह किया परन्तु कवियों को बन्धन में फँसना कब पसन्द है ? स्वतन्त्र यत्र तत्र सर्वत्र विचरना ही आशु-कवि जी को अच्छा लगता था। इनकी तरह प्रतिभाशाली पुरुष यदि योरप या अमेरिका में होता तो उसका बहुत कुछ आदर होता और कीर्ति समस्त संसार में फैल जाती। भारतवर्ष में संस्कृत के विद्वानों का सम्मान करनेवाले थोड़े ही हैं और अभग्य वश उनकी संख्या और भी कम होती जाती है।

आशु-कवि जी के दो लड़के और चार लड़कियाँ हैं। भगवान् उन्हें चिरायु करें और शान्ति दें।

३—अन्धे सिपाहियों को सहायता।

भारत की सरकार ने यह प्रबन्ध स्वीकार किया है कि अन्धे हो गये सिपाहियों को लाहौर के "अन्धों के स्कूल" और बम्बई के "विक्टोरिया मैमोरियल स्कूल" में शिक्षा दी जाय।

इन स्कूलों में अन्धे सिपाही भिन्न भिन्न प्रकार के ऐसे लाभदायक हुनर सीख सकेंगे और गुण ग्रहण कर सकेंगे जिन से वे अपना समय काम करते हुए व्यतीत कर सकेंगे और यदि उनकी इच्छा होगी तो पेन्शन के अतिरिक्त और जीविका भी कमा सकेंगे।

पूर्वोक्त हुनर और गुण ये होंगेः—

विद्या-सम्बन्धी

ख़ास तौर पर तैयार की हुई पुस्तकों के द्वारा पढ़ना लिखना और हिसाब निकालना।

हुनर-सम्बन्धी

चिकें और टोकरियाँ बनाना, कपड़ा बुनना और कुर्सियों पर बेत लगाना।

इन स्कूलों में विद्या और हुनर धर्मार्थ सिखाये जायँगे।

इन स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते समय अन्धे सिपाहियों को निम्नलिखित चीज़ें दी जायँगी :—

(क) ख़ूराक और मकान मुफ़्त।

(ख) छः रुपया महीना अलौन्स जो पेन्शन या उस रुपये के अतिरिक्त होगा जो सम्भव है कि अन्धे सिपाहियों ने अपने आप कमाया हो।

(ग) अन्धे सिपाहियों का अपना और यदि आवश्यकता हो तो उनके एक सहायक का भी घर से या उस छावनी से जहाँ उसका इलाज हो रहा हो स्कूल तक पहुँचने और वापस जाने का रेल का किराया।

शिक्षा का समय प्रायः ९ महीने होगाः—

जो कोई अन्धा सिपाही इन स्कूलों में दाख़िल होना चाहे उसे उस ज़िले के कलेक्टर-साहब की सेवा में जिस में वह रहता हो इस प्रयोजन के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

पुस्तक-परीक्षा।

१—सचित्र श्रीमद्भागवतम्। कुछ समय पूर्व सरस्वती में एक लेख निकल चुका है। उसमें श्रीमद्भागवत के एक संस्करण पर विचार प्रकट किये गये थे। साथ ही उसमें इस रसाल ग्रन्थ के महत्त्व का भी कुछ उल्लेख था। कुछ मुष्टिमेय मनुष्यों को छोड़ कर, संस्कृत-भाषा का ज्ञान रखनेवाले प्रायः सभी सरस-हृदय सज्जन इस पुराण से प्रेम रखते हैं। यह है भी ऐसा ही। इसमें शृङ्गार-रस है, शान्ति-रस है, भक्ति-रस है, सांख्य है, वेदान्त है; हर विषय के प्रेमियों को प्रसन्न करने की सामग्री इसमें विद्यमान है। जो भावुक भक्त संस्कृत नहीं जानते वे पुराण-पाठी पण्डितों से इसका सार्थ पारायण सुन कर अपनी आत्मा को उन्नत करते हैं। ऐसे प्रसिद्ध बहु-गुण-सम्पन्न ग्रन्थ का एक नया संस्करण निकलना आरम्भ हुआ है। यह खण्डशः प्रकाशित होता है। इसका आकार बड़ा, काग़ज़ पुष्ट, टाइप सुन्दर और कई प्रकार का, और मूल्य प्रति खण्ड का १२ आने है। इसके प्रत्येक खण्ड में नयन-रञ्जक रङ्गीन चित्र रहते हैं—एक ही नहीं, कई एक। अब तक इसके चार खण्ड निकल चुके हैं। ऊपर मूल संस्कृत-श्लोक दिये जाते हैं; उनके नीचे उनकी सान्वय व्याख्या; तदनन्तर श्रीधरस्वामि-कृत भावार्थदीपिका। यह सब संस्कृत ही में। पर सब के नीचे भावार्थ-बोधक हिन्दी-टीका भी रहती है। अतएव संस्कृत न जाननेवाले पाठक भी इसे पढ़ कर इससे यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। इसका सम्पादन श्रीनित्यस्वरूप ब्रह्मचारी करते हैं। मुद्रण इसका वृन्दावन के श्रीदेवकीनन्दन प्रेस में और प्रकाशन २३४, बहू-बाज़ार-स्ट्रीट, कलकत्ते से होता है। इसी

पिछले पते पर, प्रकाशक के नाम पत्र भेज कर, ग्राहक होने की इच्छा रखनेवाले महाशय इसे कलकत्ते से प्राप्त कर सकते हैं।

इस ग्रन्थ-रत्न के सम्पादक महोदय से हमारी प्रार्थना है कि इसकी "भाषा-टीका" की हिन्दी लिखने, अथवा प्रेस में भेजने के पहले उसे एक बार देख जाने के लिए कोई अच्छा हिन्दी-लेखक ज़रूर रख लें।

⁂

२—भूकम्प। प्रणेता, श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा। प्रकाशक, गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय, ३६, लाटूश रोड, लखनऊ। मूल्य सजिल्द का १।=) सादी का १=) पृष्ठ-संख्या १६८; यह गंगा-पुस्तक-माला की चौथी पुस्तक है। पुस्तक अच्छी है और खोज से लिखी गई है। पुस्तक में १२ चित्र हैं जिससे कि पुस्तक के समझने में सरलता होगी। पुस्तक के दाम कुछ अधिक हैं। इससे उपयोगिता कम हो जाने की सम्भावना है। सिलाई भी ठीक तरह नहीं की गई।

⁂

३—महात्मा मार्टिनलूथर। लेखक, बाबू लालता-प्रसाद टण्डन; प्रकाशक, ओंकार बुकडिपो, प्रयाग। मूल्य ।=) पृष्ठ-संख्या १२४; चरित्र-माला की पहली पुस्तकों की भांति यह भी अच्छी लिखी गई है। धर्म्म-सुधारकों के पढ़ने योग्य है। कागज़ और छपाई अच्छी है। मार्टिनलूथर का चित्र भी साफ़ है।

⁂

४—संगीत-शास्त्र। प्रकाशक पण्डित राधेश्याम-मोहिल, प्रयाग। पुस्तक मिलने का पता शंकर-सङ्गीत समाज लोकनाथ लेन, चौक बाज़ार, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या १०४ मूल्य ।।।) मझोले आकार की पुस्तक है। २२ पृष्ठों की विज्ञप्ति आवश्यकता से कुछ अधिक मालूम होती है। तथा तबला हारमोनियम बजाने की रीति बड़ी सरलता से समझाई गई है। पुस्तक सङ्गीत-प्रेमियों तथा अभ्यासियों के लिए लाभदायक है।

५—भूषण-ग्रन्थावली। (सटीक) टीकाकार पण्डित रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक, परीक्षा-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग। मूल्य ।=) पृष्ठ-संख्या १८४।

यह सुलभ साहित्यमाला का पहला ग्रन्थ है। हिन्दी-साहित्य के प्रचार के लिए इस साहित्यमाला का जन्म हुआ है। विद्यालय में बालकों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। ग्रन्थमाला की यह चेष्टा प्रशंसा-योग्य है। इस में प्राचीन कविताओं का संग्रह किया गया है। टीका में कहीं कहीं त्रुटियाँ हैं। द्वितीय संस्करण में ध्यान देना आवश्यक है। इतनी बड़ी पुस्तक होने पर भी मूल्य कम रक्खा गया है।

चित्र-परिचय।

इस संख्या के रङ्गीन चित्र में चित्रकार ने ऐसे नेताओं की दशा दिखाई है जो वस्तुतः नेता बनने के योग्य नहीं हैं। परन्तु स्वार्थ या झूठी कीर्त्ति के विचार से लोकोपकारी कार्य्यों में योग देने का साहस करते हैं। उनके सिर पर लोकोपकारी कार्य्यों का भार देख लोग उनकी ओर दौड़ते हैं। सिर पर रक्खा हुआ लेम्प लोकोपकारी कार्य्य और पतिङ्गे पीछे दौड़नेवाले लोगों को सूचित करते हैं। नेता स्त्री-रूप में इसलिए प्रदर्शित किया गया है कि वस्तुतः उसमें पुरुषत्व का अभाव ही है। आँखें घूँघट से इसलिए छिपा दी गई हैं कि प्रशंसा के भूखे ऐसे लोगों को नेता बनने का तो शौक़ है पर उन्हें देश, काल, अवस्था का ज्ञान कुछ भी नहीं। यह चित्र मिस्टर मुहम्मद अब्दुर्रहमान चग़ताई की कल्पना का फल है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

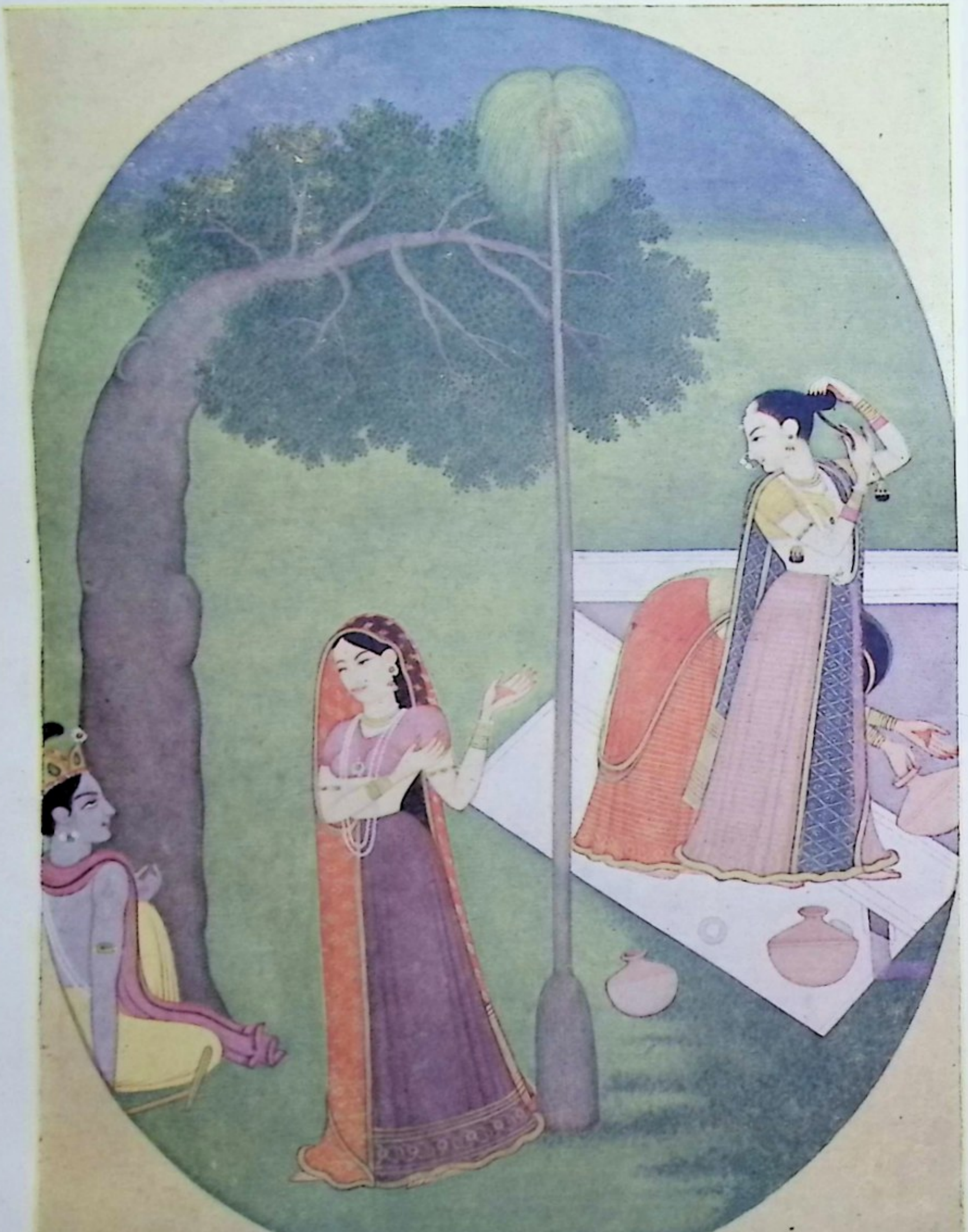

कृष्ण-राधिका।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड १] फ़रवरी १९१९—फाल्गुन १९७५ [संख्या २, पूर्ण संख्या २३०

वीराङ्गना।

(अर्जुन के प्रति द्रौपदी)

—हे सुरेन्द्रधामवासी, याद कभी आता है
अब यह पाप भव ? अथवा क्यों आवेगा ?
कान्त, क्या अभाव तुम्हें वैजयन्त-धाम में ?
देव-सुख-भोगी तुम देव-सभा में सदा
इन्द्रासनासीन; सेवा करती हैं यत्न से
सुन्दरी सुराङ्गनाएँ—रम्भा रम्य-रूपिणी,
प्रमदा घृतांची, मिश्रकेशी मृदुकेशिनी,
उर्वशी, कलङ्कहीना चन्द्रकला स्वर्ग की,
मञ्जुघोषा. मेनका, प्रभावती, स्वयंप्रभा,
सुतिला तिलोत्तमा, सुलोचना सुलोचना,
चारुचित्रा चित्रलेखा,—कोई गीत गाती है,
कोई नाचती है, दिव्य वीणा दिव्य ताल से
बजती है, खेलती है वेणी नागनारी-सी
पीठ पर,—दिव्य पुष्प-रत्नों से गुँथी हुई।
केसर, कपूर, मृगगन्ध कोई लाती है।
कोई अधरामृत पिलाती है अकेले में
डाल गल बाँह गुण-गेह, तुम्हें बाँध के।
तुम रस-सागर हो और रस-नागरी
देवनारियाँ हैं. जहाँ सौ सौ फूल फूले हों
वञ्चित हो अलि किस सुख से सखे, वहाँ ?
सुख से सदैव तुम नन्दन-विपिन में
सुमति, विहार करो, सुनती हूँ मैं वहाँ
नित्य ऋतुराज वनराजियाँ सजाता है।

गाते हैं विहङ्ग, कभी फूल नहीं सूखते ;
सारे सरोरोध स्वर्ण-मणियों से हैं बने,
मन्द मन्द वायु वहाँ गन्धामोद देता है
नित्य सब ओर, किन्तु व्यर्थ यह वर्णना
केवल सुना है जिसे दासी ने तुम उसे
देखते हो, स्वर्ग-सुख-भोग सशरीर ही;
और किसका है कृती, ऐसा भाग्य भव में ?
नर-कुल धन्य तुम, धन्य तव पुण्य है ।

पढ़ कर ये बातें क्या विचारोगे मन में
शूर-शिरोरत्न, तुम ? हाय ! कहो मुझ से
आती तुम्हें याद है क्या दासी हत-भागिनी ?
यदि स्वगुणों से—गुण-गेह नाथ, तुम हो—
भूले नहीं उसको तो आशीर्वाद दो प्रभो,
होती है तुम्हारे चरणों में नत द्रौपदी,
हाथ जोड़ दासी चरणों में नत होती है ।

हाय ! नाथ, व्यर्थ जन्म मेरा वधू-कुल में ।
विधि ने न जानें क्यों लिखा है दग्ध भाल में
ऐसा ताप, दण्ड दिया ऐसा किस पाप से
दासी को, कहेगा कौन ? किस से मैं पूछूँ ? हा !
रहती सरोजिनी है सूर्य्यरता सर्वदा
फिर भी समीर सदा कहता है उस से
प्रेम की रहस्य-कथा, लूटता है गन्ध भी !
पीता है अधर-मधु भृङ्ग सदा गूँज के !
हाय लज्जा, जिसने सरोजिनी को है सृजा
दासी को सृजा है उसी निर्मम विधाता ने
निन्दा करूँ किसकी अरिन्दम, बताओ, मैं ?
किन्तु सुनो, प्राणाधार, साक्षी कर धर्म्म को
कहती हूँ—नलिनी ज्यों रवि के वियोग से
रहती निशा में है विषाद-युक्त मलिनी
विमुद तुम्हारे बिना हैं ये दग्ध प्राण त्यों ।
सौ सौ अलि गूँजें चरणों में क्यों न साध से
सौ सौ प्रार्थनाएँ करे वायु क्यों न कान में
होती है परन्तु कभी पद्मिनी प्रफुल्लिता
स्वर्णोदय शैल पर देखे बिना सूर्य्य को ?
हे किरीटी, अन्धकार-दग्ध इन आँखों में
नाथ, अन्धकार है, तुम्हारे बिना विश्व भी—
शूरशून्य, शब्दशून्य मानों महारण्य है ।
और क्या कहूँ मैं देव, उन पद-पद्मों में
द्रौपदी के इष्ट-काम, द्रौपदी के पति हैं—
धनञ्जय, जानती हूँ यही मानती हूँ मैं
जैसा रुचे करे धर्म्म—पाप करती हूँ जो
तुम्हें प्रेम करके तो—जैसा रुचे हे सखे,
ऐसा सुख भोग कौन डरता है दुःख से ?

ज्ञात है यशस्वि, तुम्हें जन्मी यज्ञ-वह्नि से
दासी याज्ञसेनी । नव यौवन में हाय रे !
विह्वल, विवश हो तुम्हारे रूप-गुण से
मन में वरा था तुम्हें, सखियों को साथ ले
खेले थे कितने खेल मैं ने, कहूँ कैसे मैं ?
सीता का चरित्र सुन लोगों से, शिव के
मन्दिर में जा के और देके कुसुमाञ्जली
पूज शिव-चाप यह कहती थी साध से—
स्वप्न दो पिता को ऋषिवेश रख शीघ्र ही
(कामरूप तुम हो, मैं जानती हूँ) देने को—
किङ्करी को उन पुरुषोत्तम के हाथ में
तोड़ेंगे तुम्हें जो चाप, आप भुजबल से
पाऊँगी तभी मैं उन्हें, नाथ हैं महाबली ।

सुन दमयन्ती का चरित्र, धर जाल में
राजहंस, उसको चुगा के, पहना के मैं
सोने के नूपुर, यह कहती थी कान में—
यमुना किनारे है प्रसिद्ध पुरी लोक में
हस्तिना, हे राजहंस, जाओ वहाँ उड़के,
देखोगे नरोत्तम को, कहना पदों में यों—
मरती तुम्हारे बिना द्रुपदपुरी में है
द्रौपदी, यों कहके मैं छोड़ उसे देती थी ।
मेघ देख नभ में प्रणाम कर कहती—
मेघकुलराज, तुम वाहन हो जिनके
पुत्रवधू उनकी मैं, वारिधारा ज्यों मुझे
पहुँचा दो पैरों में—वहन कर—नाथ के ।
तुष्ट करते हो चातकी को तुम दाता हो
हाय ! वह चातकी तुम्हारे बिना दीन ज्यों
दीन हूँ, मिलादो मुझे मेरे उस मेघ से ।

और क्या कहूँ मैं नाथ, इतने में सहसा
सुना, हाय ! माता के समेत जतुगृह में
पञ्च पाण्डुरथियों ने दग्ध हो अकाल में
देह छोड़ी, कितनी मैं रोई, कहूँ किस से ?
रोई यथा यौवन में विधवा मैं होगई !
रति से मनाने लगी—रुद्ररोषानल में
हे सति, तुम्हारे पति दग्ध जब थे हुए
कैसा दुख तुम को हुआ था, उसे सोच के
रक्षा करो मेरे काम की, है यही प्रार्थना।

बाद में स्वयंवर। दिखाई दिया मुझको
चारों ओर घोर तम, राज-सभा-मध्य में
आई जब—प्रार्थना की फटने को भूमि से।
लक्ष्य के तले हो खड़ी मैं ने कहा उससे
गिर पड़ो लक्ष्य, तुम मेरे दग्ध भाल पै
वज्र सम, दग्ध होऊँ दाह से तुम्हारे मैं—
प्राण-पति मेरे जले जैसे जतुगृह में !
जीना नहीं चाहती, जिऊँ मैं किस साध से ?

शोर यों सभा में हुआ, सारे क्षत्र-वीरों में
भेद सका कोई भी अलक्ष्य लक्ष्य को नहीं
जानते हो तुम गुण-गेह, फिर क्या हुआ !
तुम ने किया जो उसे कौन नहीं जानता
लोक में ? रथीन्द्र, वज्र नाद से विशिख ने
विद्ध किया मत्स्य-नेत्र अम्बर में, सहसा
मग्न हुए मेरे प्राण मानों सुधा-सिन्धु में
स्वप्न में ज्यों मैंने सुना—तेरे पति हैं यही
याज्ञसेनि, पुष्पमाला डाल कर कण्ठ में
वर नर-वर को तू, वरने को मैं चली
किन्तु हतभागिनी को रोक दिया तुम ने
हाय ! भाग्य-दोषवश, जलती नहीं तो क्यों
नाथ, यह दासी इस तीक्ष्णतर ताप से ?

किन्तु है विलाप वृथा, घोर नाद करके
लक्ष रथियों ने जब घेर लिया तुम को,
अम्बुराशि जैसी जब कम्बुराशि गरजी,
साहस दिया था तब तुम ने क्या कहके
दासी को वहाँ, क्या याद तुम को है ? अन्त में
जप के उसी को महा मन्त्र ज्यों मरूँगी मैं।
तुम ने कहा था देव, सम्बोधन दे मुझे,
"आशा-तुल्य मेरे पास सुन्दरि, खड़ी रहो;
चन्द्र-मुख देख के बढ़ेगा बल दुगना
चन्द्र-मुखि, जब तक जीवित फणीन्द्र है
हर सकता है कौन शीर्षमणि ? सुभ्रु, मैं
पार्थ हूँ !"—क्षमा करो हा ! देव, दृग-जल से
भींगने लगी है लिपि, क्यों न हाय ! क्यों न मैं
पैरों में, वहीं पर, उसी दिन मरी न क्यों ?
क्या मैं लिखती हूँ हाय ! दीख नहीं पड़ता,
अन्धी है तुम्हारी यह दासी अश्रु-वेग से !

कल इतना ही लिख फेंकी दूर लेखनी
मैं ने, प्राण रोने लगे पूर्व-कथा सोच के,
वृक्ष-तले बैठ नाथ, आँसुओं से भींगी मैं !
किसने ये नेत्र पोंछे ? कौन पोंछेगा कहो ?
इस भव-मण्डल में कौन है अभागी का ?
इच्छा यही होती है कि डूब मरूँ जल में;
किंवा विष-पान करूँ; किन्तु जब सोचती
हूँ मैं प्राणनाथ, हाय ! मरने से फिर मैं
देख न सकूँगी वे पदाब्ज तब मन को
देती हूँ प्रबोध, भूल लज्जा-अपमान को
जीना चाहती हूँ, स्वर्ण तप कर आग में
गलता सुहाग से है, पावे यदि उसको;
किन्तु कहो देव, कब आके इस वन में
दर्शन दयालु, तुम दोगे इस दासी को ?
स्वर्ग की सुनाओ कथा, तुम कविराज हो,
गूँथ मधुवाक्यगाथा भेजो इस दासी को।
इच्छा है बड़ी ही सखे, पारिजात-पुष्पों को
अलकों में गूँथने की, यदि तुम लाओगे
द्विगुण समादर से पहनूँगी उनको।
सुनती हूँ, कामदा सुरेन्द्रपुरी है सदा
दासी पर जो दया हो तुमको हृदय में,
और यदि भूल सको देव-बाला-दल को,
कामना करो तो कृपायुक्त काम-धेनु से
पाओ अभागी को वहाँ चरणों में जिससे
क्षण भर, देव, तुम्हें देख जी जुड़ाऊँगी।
भूलूँगी वियोग यह देख वह माधुरी।

देव-बाला-वल्लभ हो, नारियों के नाथ हो
तुम, न करो इसी से दासी से घृणा, यही
उन चरणों में प्रार्थना है यही दासी की।
गहने पहनते हैं सोने के गले में जो,
कानों में, हाथों में और सिर में सदा
देव, क्या वे चाँदी नहीं पैरों में पहनते ?

हम सब कैसे इस विकट विपिन में
काटते हैं दिन सो कहूँगी अब मैं, सुनो,
धर्म्म-कर्म्म-मग्न सदा धर्म्मराज ऋषि हैं।
करते प्रसन्न उन्हें धौम्य पुरोहित हैं
कर बहु शास्त्रालाप, मृगया-निरत हैं
मध्यम सहोदर तुम्हारे, भक्ति-भाव से
दोनों ही अनुज दोनों अग्रजों की सेवा में
रत रहते हैं, यथाशक्ति यह किङ्करी
करती है दीर्घबाहो, काम सब घर का।
रहते तुम्हारे बिना किन्तु सब हैं दुखी।
आँसुओं से भींगते हैं याद करके तुम्हें
भूपति तथा तुम्हारे तीनों बन्धु सर्वदा।
व्याकुल ये दग्ध प्राण रहते हैं नित्य ही
पाती अवकाश हूँ तो ले के स्मृति-दूती को,
छोड़ के कुटीर, घूम घूम के अकेले में
सुनती हूँ उससे मैं बातें सब पूर्व की।

तुम हो भरोसा महेष्वास, पाण्डुकुल का
विमुख करोगे तुम्हीं सम्मुख समर में
शत्रुओं को, प्राण-सखे, भीष्म, द्रोण, कर्ण को
और सब कौरवों को रण में सुलाओगे,
राजासन दोगे तुम्हीं पाण्डुकुलराज को,
आशा यही गीत इस आश्रम में गाती है—
सोते-जागते में सुनती हूँ इसी गीत को।

अस्त्र-शिक्षा कौन तुम्हें देगा देवलोक में
अस्त्रिकुलगुरु हो जो—देव, इन्हीं देवों को
करके प्रचारित प्रचण्ड निज चाप से,
खाण्डव जलाया था तुम्हीं ने, आप जीते थे
लक्ष नृप हे रथीन्द्र, लक्ष्य भेद करके;
तुष्ट किया था किरात-रूपी महादेव को
युद्ध में तुम्हीं ने, भला फिर यह मिस क्यों ?

लौट नररत्न, आओ, कौन परदेश में
रहता है युवती प्रिया को घर छोड़ के ?
किन्तु सुरनारियों ने जो तुम्हें भुलाया है
तो तुम न भूलो नाथ, भाइयों को, सब वे
दुःखी रहते हैं सदा याद करके तुम्हें।

अधिक कहूँ क्या और जो दया हो आके तो
देखो हैं तुम्हारे बिना कैसी दशा में पड़े ?
वासी इस देश के हैं कैसी दशा में पड़े ?

पाई भाग्य से है इस निर्जन विपिन में
पुण्यवती ऋषि-पत्नी, पूर्व-पुण्य-बल से
कामचारी पुत्र उनका है, वेद-पाठ में
निरत सदैव, वही माँ के अनुरोध से
होकर दयालु मेरा पत्र सुरपुर में
लावेगा, करना तुम पूजा वहाँ उसकी।
उत्तर तुम्हारा वही मेरे पास लावेगा,
क्या कहा नरेन्द्र, मैं ने, उत्तर का काम क्या ?
पत्रवाह सङ्ग तुम्हीं आओ यहाँ लौट के।

"मधुप"

स्वर्गवासी सर गुरुदास बैनर्जी

देश के दुर्भाग्य से गत २ दिसम्बर सन् १९१८ ईसवी को, रात्रि के कोई साढ़े दस बजे, भारतीय विद्वन्मण्डली के पूजनीय आचार्य्य, कलकत्ता-हाईकोर्ट के प्रख्यात न्यायाधीश, वङ्ग-देश के सार्व्वजनिक नेता, धार्मिक-प्रवर सर गुरुदास बैनर्जी का शरीरान्त हो गया।

आपका जन्म ता० २६ जनवरी सन् १८४४ ई० को, कलकत्ते के नरकुलडांगा नामक स्थान में, एक प्रसिद्ध ब्राह्मण कुल में, हुआ था। आपकी बाल्यावस्था में ही आपके पूज्य पिता का स्वर्गवास हो चुका था। अतएव आपके पालन-पोषण का भार आपके मामा पर आ पड़ा। माता आपकी बड़ी

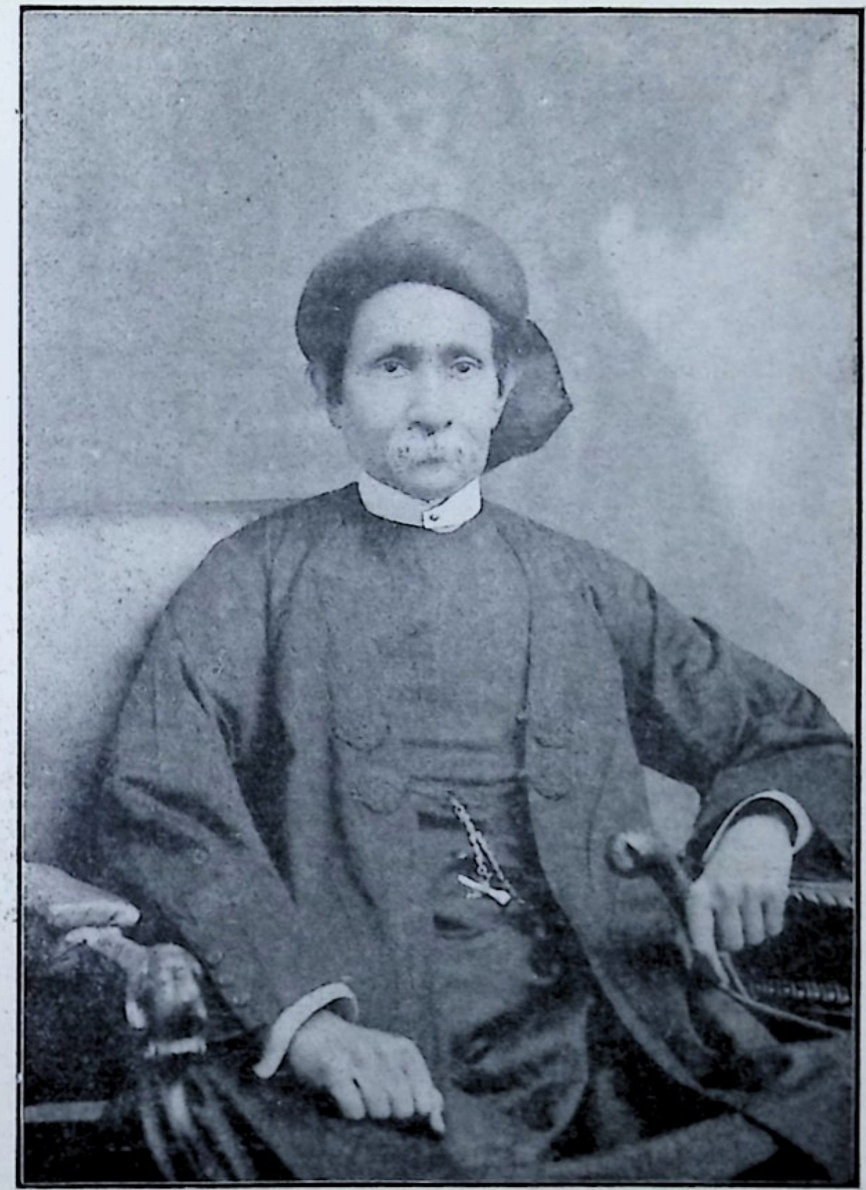

स्वर्गवासी सर गुरुदास बैनर्जी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

[illegible]

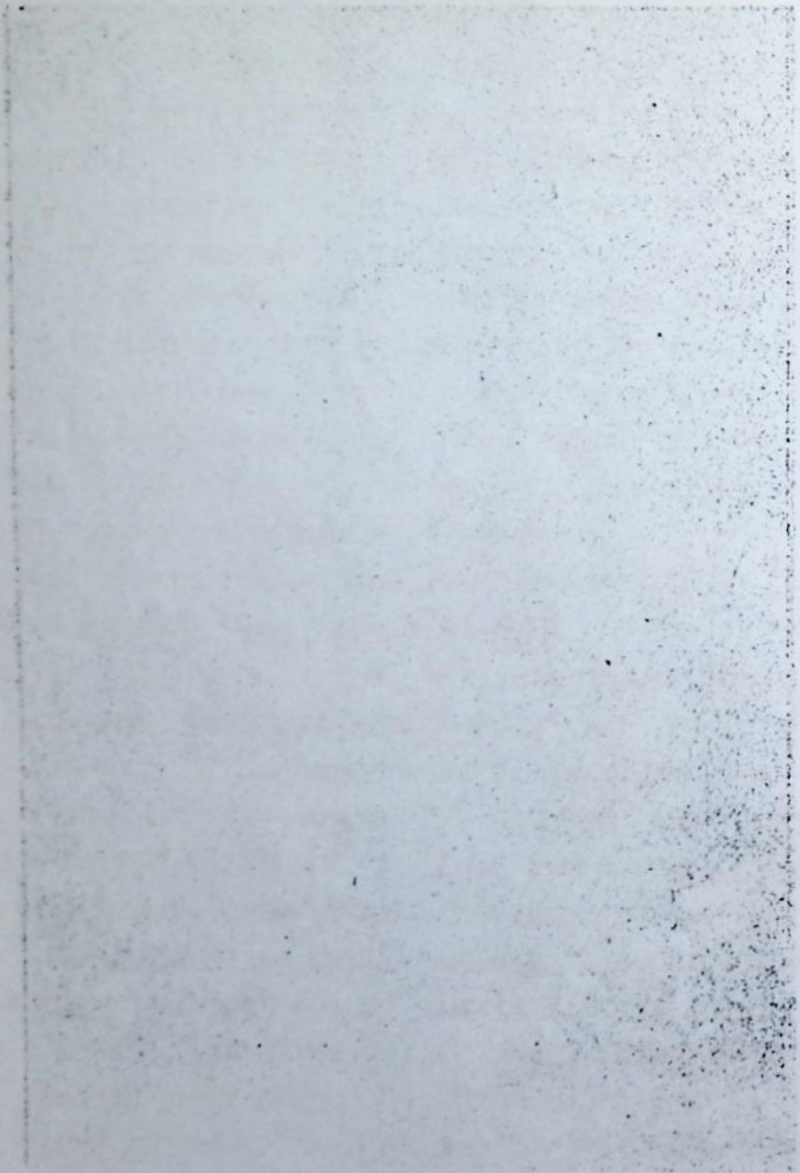

[illegible]

[illegible]

विदुषी थीं। वे आप की सुशिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध करने में सदैव प्रयत्नशील रहती थीं। बालक गुरुदास में प्रारम्भ ही से भावी महत्ता के सुलक्षण लक्षित होने लगे थे। आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। पढ़ने लिखने में आप चित्त भी ख़ूब लगाते थे। पहले पहल आपने हेयर स्कूल में प्रवेश किया। वहाँ से आप ने नामवरी के साथ प्रवेशिका परीक्षा पास कर छात्र-वृत्ति प्राप्त की। पुनः आप प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश कर क्रमशः एफ० ए०, बी० ए०, तथा एम० ए० की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। एम० ए० की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के कारण आपको स्वर्ण-पदक मिला था। कालेज छोड़ने के बाद आप कुछ काल तक यथाक्रम प्रेसीडेन्सी कालेज तथा जनरल ऐसेम्बली इन्स्टीट्यूशन में अध्यापन-कार्य्य करते रहे। इसी बीच में आपने क़ानून की परीक्षा दी। इस बार भी सदा की भाँति प्रथम स्थान प्राप्त कर आप विश्व विद्यालय के स्वर्णपदक के अधिकारी हुए। इस तरह केवल २२ वर्ष की तरुण अवस्था में चरितनायक ने कलकत्ता-हाईकोर्ट में वकालत करनी प्रारम्भ कर दी। पर शीघ्र ही बहरमपुर कालेज में अध्यापक नियुक्त होने के कारण आपको वहाँ चला जाना पड़ा। वहाँ पर आपको वकालत करने की भी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इसी ओर आपने विशेष ध्यान दिया। आपको अपने अध्यवसाय तथा बुद्धिबल से अच्छी सफलता प्राप्त हुई। यहाँ आप छः वर्ष रहे। सन् १८७२ ई० में आप पुनः कलकत्ते लौट आये और हाईकोर्ट में वकालत प्रारम्भ कर दी। थोड़े ही दिनों में आपकी बड़ी प्रसिद्धि हो गई। आपकी विद्वत्ता तथा तर्क की धाक बँध गई। आपके सहयोगी आपको सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। सन् १८७६ ई० में आपने डाक्टर आफ़ ला की सम्मानास्पद उपाधि प्राप्त की। इसके लिए आपने क़ानून-सम्बन्धी दो बड़े ही गवेषणा-पूर्ण प्रबन्ध लिखे। इनकी बड़ी प्रशंसा हुई। सन् १८७८ ई० में आप टैगोर लॉ प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए और हिन्दू-विवाह-विधान तथा स्त्री-धन पर बड़े ही महत्त्व-पूर्ण व्याख्यान दिये। ये बड़े काम के हैं। इनके तीन संस्करण हो चुके हैं।

सन् १८७९ ई० में आप कलकत्ता यूनिवर्सिटी के फ़ेलो निर्वाचित किये गये। इस पद पर रह कर आपने उसकी बड़ी सेवा की। सन् १८८७ ई० में आप बङ्गाल की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य बनाये गये। यहाँ पर भी आपने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा तथा निर्भीकता का परिचय देकर देश का बड़ा कल्याण-साधन किया। यहाँ पर आप बहुत दिन तक न रह सके। सन् १८८८ ई० में आप कलकत्ता-हाईकोर्ट के अस्थायी विचारपति नियुक्त किये गये। पर शीघ्र ही जस्टिस कनिङ्हम के अवसर ग्रहण करने पर आप स्थायी जज हो गये। यहाँ पर आपने सोलह वर्ष तक कार्य्य किया। इस बीच में आपने, समय समय पर, अपनी विलक्षण विचार-शक्ति तथा व्यापक विद्वत्ता का परिचय देकर भारतवासियों का मस्तक सदा के लिए ऊँचा कर दिया। कितनी ही बार अपने सहयोगियों से मत-भेद हो जाने के कारण आपको स्वतन्त्र फ़ैसले लिखने पड़े; पर अन्त में आप ही की विजय हुई। आप बड़े न्याय-परायण तथा सूक्ष्मदर्शी न्यायाधीश थे।

शिक्षा-सम्बन्धी कार्य्यों में आपका पहले ही से अनुराग था। वह दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया। आपका यह पूर्ण विश्वास था कि शिक्षा-प्रचार ही देश की उन्नति का मूल है। इसी उद्देश को लेकर तत्सम्बन्धी कार्य्यों में आप पूर्ण उत्साह तथा आग्रह से भाग लिया करते थे। देश की निरक्षरता का ध्यान कर आपका हृदय काँप उठता था। सिंडिकेट के सदस्य होने के समय से ही देश में शिक्षा-विस्तार को हर प्रकार से सुलभ करने

की आपने भरपूर चेष्टा की। सन् १८९० ई० में कलकत्ता-हाईकोर्ट के तत्कालीन प्रधान विचारपति के कलकत्ता-विश्वविद्यालय के वाइस् चैन्सलर पद से अवसर ग्रहण करने पर उन्हीं के विशेष आग्रह से भारतवासियों में सर्वप्रथम जस्टिस गुरुदास उक्त पद के लिए वरण किये गये। इस पद पर रह कर आपने देशवासियों का जो उपकार किया, वह कदापि विस्मरण नहीं किया जा सकता। विद्यार्थियों के लिए शिक्षामार्ग प्रशस्त करनेवाले अनेक नये नये नियम बना कर आपने पूर्वोक्त विश्वविद्यालय की बड़ी उन्नति की। आपने अपना काम बड़ी दक्षता तथा दबङ्गी से सम्पादन किया। इसके लिए लार्ड लैन्सडाउन ने आप की शतमुख से प्रशंसा की थी। आप में विद्यार्थियों की अनुपम भक्ति थी। बङ्ग-वासियों के आप आराध्य देव थे।

सन् १९०३ ई० में लार्ड कर्ज़न महोदय ने एक यूनिवर्सिटी कमीशन नियुक्त किया था। सर गुरुदास भी उसके एक सदस्य थे। अन्यान्य सदस्यों से आप का घोर मत-भेद हो गया। आपने बड़ी निर्भीकता से अपनी स्वतन्त्र राय लिखी। कर्ज़न महोदय इस से कुछ रुष्ट हो गये। पर आप रत्ती भर भी विचलित न हुए। सन् १९०४ ई० में आपने हाईकोर्ट से अवसर ग्रहण किया। इसी वर्ष आप नाइट बनाये गये। पेन्शन लेकर बूढ़े गुरुदास जवानों को भी मात करनेवाले उत्साह से देश के उन्नति-मूलक सभी कार्य्यों में भाग लेने लगे। देश की प्रायः सभी संस्थाओं से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। राष्ट्रीय शिक्षा-विस्तार के आप पूर्ण सहायक थे, तथा देश में सर्वत्र उसका प्रचार चाहते थे। हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रवर्तक देश-प्राण पण्डित मदनमोहन मालवीय जी महाराज की आप में बड़ी श्रद्धा थी। उक्त विश्वविद्यालय-सम्बन्धी कार्य्यों में कठिनाई उपस्थित होने पर वे सदैव सर गुरुदास के शुभ आदेश का आश्रय लेते रहे हैं। विश्वविद्यालय को वर्तमान स्वरूप देने में आप का पूर्ण सहयोग था। आपने अँगरेज़ी तथा बँगला में शिक्षा-विषयक कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनकी प्रायः सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है।

बङ्गीय साहित्य-परिषद् के आप एक स्तम्भ थे। आप की यह दृढ़ धारणा थी कि बिना जातीय साहित्य की उन्नति हुए, देश में राष्ट्रीय जागृति की आशा, दुराशामात्र है। इसी उद्देश्य को लेकर आप मातृभाषा के उन्नति-साधन में सदैव अग्रणी रहे।

यद्यपि आप राजनैतिक कार्य्यों में विशेष भाग न लेते थे; तथापि उस ओर आप के विचार बड़े उदार थे। देश में राजनैतिक जीवन की उन्नति देख आप को बड़ा सन्तोष होता था।

महात्मा गुरुदास के चरित से अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। एक पितृहीन साधारण ब्राह्मण-बालक की स्थिति से केवल अपने ही अध्यवसाय के सहारे कोई कैसे उच्च से उच्च पद को प्राप्त कर सकता है, आप स्वयं इसके साक्षात् प्रमाण थे। बाल्य-काल से ही आप बड़े सीधे सादे, कर्मनिष्ठ तथा आज्ञानुवर्ती थे। जिन माता की सुशिक्षा तथा सुव्यवस्था से सर गुरुदास इस योग्य हुए, उनके वे अनन्य भक्त थे। आप के लिए वे साक्षात् मूर्तिमती देवी थीं। बिना उनका चरणोदक लिये आप जल-ग्रहण न करते थे। आप सच्चे ब्राह्मण तथा कट्टर सनातन-धर्म्मावलम्बी थे; पर किसी धर्म्म से आपका द्वेष न था। प्रातः गङ्गा-स्नान तथा सन्ध्यावन्दन, आपका नित्य-कर्म्म था। आपका चरित्र निर्म्मल तथा पवित्र था। राग-द्वेष आपके निकट फटकता तक न था। सरलता आपमें कूट कूट कर भरी थी। छोटे बड़े सभी से आप समभाव तथा खुले हृदय से मिलते थे। अँगरेज़ी तथा संस्कृत-साहित्य पर आप की पूरी सत्ता थी। बड़े बड़े कवियों की कविताएं आप को कण्ठस्थ थीं। सुन्दर उद्यानों तथा सघन वनों की प्राकृतिक छटा निरख आप पुलकित हो उठते तथा

आनन्दोन्मत्त हो प्राचीन कवियों की कोमल कान्त-पदावली उच्चारण करते करते तन्मय हो जाते थे।

यद्यपि सर गुरुदास ने ७४ वर्ष की पकी हुई उम्र में पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रों को अपने सन्मुख देखते हुए शान्ति-पूर्वक जीवन-लीला समाप्त की, तथापि आपकी मृत्यु से देश का एक महापुरुष उठ गया। जातीय शिक्षा-मन्दिर का एक प्रधान स्तम्भ टूट गया।

बालदत्त पाण्डेय

स्वप्न।

परसों मेरे मित्र राऊल का विवाह सेंट क्लोटिलडि नाम के गिरजाघर में हुआ। गिरजा में पहुँचने पर मैंने देखा कि बड़ी भीड़ है और विवाह हो रहा है। पादरी ने अपने आशीर्वाद के अन्त में वर-कन्या से कहा कि इस संसार में तुम तब तक एक हो कर रहो जब तक कि तुम दोनों स्वर्ग में एकमय न हो जाओ।

इस बात पर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। राऊल किसी क़ारी कन्या से विवाह न कर रहा था, किन्तु मेरे मित्र गैस्टन डी चारमेलीव की सुन्दर विधवा, कौंटेस डी चारमेलीव, से उसका विवाह हुआ था। वह स्त्री मेरे मित्रों को सुखी करने ही के लिए जन्मी थी। उसने पहले गैस्टन को अपनाया; उसके बाद राऊल को। पादरी ने जो कहा कि इस संसार में एकमय हो कर रहो, सो उस में तो कोई बाधा नहीं। क्योंकि गैस्टन के मर जाने के बाद राऊल ही यहाँ रह गया था। परन्तु स्वर्ग में एकमय होना कैसे सम्भव था? वहाँ तो प्रथम और द्वितीय पति, याने गैस्टन और राऊल दोनों ही रहेंगे।

मैं गिरजा से लौट कर दो तीन मित्रों से मिलने गया। लौट कर घर आया। फिर तमाशा देखने गया। परन्तु इस बेहूदे ख़याल ने कि गैस्टन और राऊल उस लोक में कैसे निबटेंगे, मेरा पीछा न छोड़ा।

मैं सोने गया। मुझे निद्रा आई तो मैंने एक स्वप्न देखा। क्या देखता हूँ कि मैं स्वर्ग के रेलवे-स्टेशन पर हूँ। गाड़ियों की रेल पेल है। वहाँ से ख़ाली गाड़ियाँ अधिक जाती हैं; परन्तु भरी हुई थोड़ी लौटती हैं। सेंट टामस वहाँ के स्टेशन-मास्टर हैं। मुझ से उन से बात चीत हुई और उन्होंने कृपा कर के वहाँ का सब प्रबन्ध मुझे समझा दिया। वे तो बहुंत कुछ कहते रहे, परन्तु मैंने वह सब सुनाही नहीं। क्योंकि मेरा ध्यान दूसरी तरफ़ चला गया था। मैंने एक बड़ी गाड़ी के द्वार पर सेंट क्लोटिलडिवाली विधवा—गैस्टन और राऊल की पत्नी—का सुन्दर मुख देखा। वह व्याकुल हो कर इधर उधर दौड़ रही थी। "स्वर्ग कहाँ है? स्वर्ग कहाँ है? यह लीजिए मेरा टिकट"।

सेंट पीटर उसके पास गये और कहा—"आप का टिकट? कृपा करके अपना टिकट दिखलाइए"।

"लीजिए, मेरा टिकट यह है"।

"ठीक है; आप जाइए; स्वर्ग का द्वार इधर से है"।

मुझे उस समय उसके साथ साथ जाने की बड़ी गहरी इच्छा हुई। मैंने सोचा, कौन जानता है, कदाचित् राऊल भी मर गया हो। तब तो इस विधवा को यहाँ दो पति मिलेंगे!

मैंने सेंट टामस से पूछा कि क्या आप मुझे वहाँ जाने देंगे?

उन्होंने उत्तर दिया—"बिला खटके"।

"हाँ! परन्तु एक घण्टे से अधिक ठहरने की इच्छा नहीं है। मैं नहीं चाहता कि वहाँ जाने पर रोक लिया जाऊँ। लौट सकूँगा न? क्योंकि स्वर्ग चाहे कैसा ही मनोहर हो, पर जो मैं पृथ्वी पर दो चार वर्ष और रहने योग्य हूँ तो मैं अपने जीवन का वह अमूल्य भाग खोना नहीं चाहता। जन्म एक ही बार होता है। स्वर्ग तो सदा के लिए है"।

"आप विश्वास रक्खें; आप फिर लौट आ सकेंगे"।

उन्होंने मुझे सेंट पीटर के पास ले जाकर कहा—"आप इन्हें पहचान लीजिए। ये चाहते हैं कि इधर उधर घूम घाम कर स्वर्ग की सैर करें और फिर लौट जायँ।"

सेंट पीटर ने कहा—"महाशय, आप जाइए। मैं आप को फिर पहचान लूँगा"।

मैं स्वर्ग में पहुँचा और बहुत ठीक समय पर पहुँचा। राऊल और गैस्टन, जो हर आगन्तुक को बड़े चाव से देखते रहे थे, अपनी पत्नी के पास पहुँच गये थे।

गैस्टन उसका दाहिना हाथ पकड़ कर अपनी तरफ़ खींच रहा था और कहता था—"जेनी—मेरी प्यारी जेनी"। राऊल उस का बायाँ हाथ पकड़ कर दूसरी तरफ़ खींचता था और कह रहा था—"मारथी, मेरी प्यारी मारथी"।

उस विधवा के दो नाम थे। मैंने सोचा कि पहला पति जिस नाम से पुकारता था वह मनहूस था। इस कारण उसने दूसरे पति को दूसरा नाम बताया होगा। इसी से दोनों उसे अलग अलग नाम से पुकारते थे।

राऊल और गैस्टन एक दूसरे की बात माननेवाले न थे। एक भी दबता न देख पड़ता था।

"जेनी"

"मारथी"

"मैं तुम्हारा पहला पति हूँ"

"मैं तुम्हारा दूसरा पति हूँ"

"मेरा अधिकार निर्विवाद है"

"महाशय, आप इनसे न बोलिए"

"महाशय, मैं आप से नहीं बोलता। मैं तो आप को पहचानता भी नहीं"।

"मैं भी आप को नहीं पहचानता।"

घोर अन्धेर! इस संसार में जब ये दोनों जीवित थे तब दोनों में बड़ी गहरी मित्रता थी। और लोग यह कहते थे—परन्तु लोगों के कहने पर क्या विश्वास?

राऊल और गैस्टन का विवाद बढ़ता ही गया। स्वर्ग का जीवन सुखद है; परन्तु प्रति दिन एक ही दृश्य देखते देखते जी ऊब जाता है। अतएव थोड़ा सा भी गोल-माल होने से बड़ा कोलाहल मचता है। गैस्टन और राऊल को झगड़ते देख ईश्वर के प्यारे पार्षद चारों तरफ़ से दौड़ पड़े। किसी ने पहले पति का पक्ष लिया। किसी ने दूसरे का। जेनी चुप चाप खड़ी थी। उस ने अपना हाथ छुड़ा लिया। वह राऊल या गैस्टन किसी से भी नहीं बोली।

सेंट टामस मेरे साथ साथ स्वर्ग गये थे। मैंने उनसे कहा—"ऐसे ऐसे मामले यहाँ प्रायः होते होंगे, क्योंकि दो पतियों की पत्नियों का संसार में अभाव नहीं है।"

"यह सच है, परन्तु सब से अनोखी बात तो यह है कि दोनों पति एक ही पत्नी के लिए परस्पर लड़ें,—पर पत्नी से कोई भी बात तक न करें"!

"और, जब इसका उलटा हो? याने जब एक पति की दो पत्नियाँ हों तब?"

"तब तो बात ही और है। स्त्रियाँ ही पति के लिए अधीर होती हैं। यहाँ स्वर्ग में भी वे विवाह के लिए उन्मत्त रहती हैं"।

इतने में गहरे जयजयकार की ध्वनि सुनाई दी। बात यह थी कि सर्व-शक्तिमान् जगदीश्वर उधर से जा रहे थे। उन्हें देख कर उन के प्यारे पार्षदों ने जयजयकार मचाया। उस कोलाहल को सुन कर ईश्वर भी उस स्थान पर आकर उपस्थित हो गये।

स्वप्न—यह केवल स्वप्न है। पर किसी तरह भुलाने से भी वह नहीं भूल सकता।

ईश्वर वहाँ पर ठहर गये और उन्होंने पूछा कि क्या मामला है। सारा माजरा उन्हें संक्षेप में समझा दिया गया।

परमात्मा ने कहा—"यह तो एक सीधी सादी बात है। यह स्त्री अपनी भक्ति और ईसाई धर्म्म में दीक्षित होने के बदले यहाँ आने पाई है। यह पूर्ण और दीर्घ-स्थायी आनन्द की अधिकारिणी है। यह बतावे कि इन दोनों पतियों में से किस पर उसकी प्रीति अधिक है।"

इस पर गैस्टन ने कहा—"अच्छा तो वह बेचारा क्या करे, जिसे यह स्त्री न पसन्द करे"?

ईश्वर—"यहाँ स्वर्ग में ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं, जिन पर किसी ने अपना अधिकार प्रकट नहीं किया। मैं उनमें से एक उसे दे दूँगा। महाशया, व्यर्थ समय न नष्ट कीजिए। बतलाइए कि किस पर आप की विशेष रुचि है"?

जेनी चुपचाप अपने पतियों के बीच खड़ी रही। गैस्टन और राऊल बारी बारी से अपने मनोभावों को गद्य-पद्य में इस प्रकार प्रकट करने लगे जैसे किसी समय ग्रीस देश की नाट्यशालाओं में, नायक-नायिकाओं का हृदय द्रवीभूत करने के लिए, नट भाव प्रकट करते थे—

... ...

राऊल बोला—"महाशय, यदि सच पूछिए तो इन बातों का स्मरण करने और दिलाने से कुछ भी लाभ नहीं"।

"सम्भव है, परन्तु यदि मैं स्मरण करूँ तो किसी का क्या? अपने स्नेह और विश्वास के विषय में मैं सब कुछ कहने का अधिकार रखता हूँ। पर मेरा विश्वास अटल था। कितने ही आदमी मेरे पास आते थे और यह कहते

थे कि राऊल से सचेत रहना । उसका कर्तव्य आँख खोल कर देखना । निस्सन्देह वह तुम्हें बहुत चाहता है । परन्तु कोई और भी है जिसे वह तुम से अधिक चाहता है, और वह तुम्हारी पत्नी है । तथापि मैं इन निकम्मी बातों पर ज़रा भी ध्यान न देता था ।"

"मैंने भी विश्वास करने में किसी से कम योग्यता नहीं दिखलाई । आप के बाद जब पति होने की मेरी बारी आई तब भी लोग यों ही ग़प्पें उड़ाते रहे । मुझ से लोग महाशय सेरीकोर्ट के बारे में तरह तरह की बातें कहते थे । सेरीकोर्ट मेरा परम मित्र था । क्या ही अन्धेर है !"

मैं ने देखा कि उद्योग करने पर भी सेरीकोर्ट के नाम पर जेनी सावधान न रह सकी । वह चौंक पड़ी । परन्तु केवल मैं ने यह देखा । राऊल इस बात को न ताड़ सका । वह कहने लगा—

"और जब सेरीकोर्ट मेग्सिको (Mexico) में मारा गया तब उसके मृत्यु-समाचार से आप को अत्यन्त खेद हुआ था । उसी समय मुझे एक गुम-नाम पत्र मिला । उसमें लिखा था कि मेरी पत्नी अपने पति से भी अधिक उस मित्र के लिए रोई और दुखी हुई । इस पत्र की चर्चा मैं ने आप से कभी भी नहीं की । आप पर सन्देह ! सेरीकोर्ट पर सन्देह !!!"

ईश्वर ने पूछा—"यह सेरीकोर्ट कौन है ?" "क्या यह तीसरा पति है ?"

"मेरे पिता, मुझे एक बात—केवल एक बात—कहने की आज्ञा मिले—सेंट क्लोटिलडि से मेरे विवाह के समय पादरी ने मुझे विश्वास दिलाया था कि संसार के नियमित मिलाप के बाद हम लोग स्वर्ग में एकमय हो जायेंगे ।"

गैस्टन ने उत्तर में कहा "और मुझे भी - मेरे पवित्र पिता—मेरे विवाह के समय मेडलीन में एक लाट पादरी—ध्यान रहे पादरी नहीं, किन्तु लाट पादरी—ने मुझे भी इन्हीं शब्दों में ऐसी ही आशा दिलाई थी" ।

परमात्मा ने कहा—"शिव शिव ! यह तो बड़ा गोलमाल है । हमारे प्रतिनिधि संसार में बिना विचारे जो जी में आता है कर डालते हैं । परन्तु महाशया, इस बात का निपटारा करना आपही के हाथ में है" ।

इस पर वह विधवा लजाती हुई बोली—"परमात्मा, यदि मुझ पर आपकी कृपा है तो आप मुझे आज्ञा दें कि मैं महाशय सेरीकोर्ट के पास चली जाऊँ । वे उस छोटे से मेघ की आड़ से कोई पौन घण्टे से सङ्केत द्वारा मुझे बुला रहे हैं" ।

मैं ने जो घूम कर देखा तो सचमुच ही सेरी कोर्ट अपना मनोभाव बड़ी ही रसिकता से प्रकट कर रहे थे ।

सेरीकोर्ट भी मेरे मित्र थे । निस्सन्देह यह सुन्दरी स्त्री मेरे मित्रों को इस और उस दोनों लोकों में सर्वदा के लिए सुखी करने को जन्मी थी ।

परमेश्वर ने उत्तर दिया "तुमने यह बात पहले ही क्यों न कह दी । कह देने से यह झगड़ा तभी तै हो गया होता । जाव, सेरीकोर्ट के साथ सुखी रहो । तुम बड़ी नेक ईसाई-धर्म्मावलम्बिनी हो । मेरी यही इच्छा है कि तुम सुख-चैन से स्वर्ग में रहो" ।

इतने ही में मेरी नींद खुल गई—*

हरिवंशदास

बग़दाद में भारतवासी और संस्कृत

जब से अँगरेज़ों के विजय की पताका बग़दाद नगर में लहरा रही है तब से अब तक बहुत से भारतवासी बग़दाद पहुँच चुके हैं । किन्तु इतिहास से पता चलता है कि एक हज़ार वर्ष से भी अधिक हुए, भारतनिवासियों का जाना बग़दाद में पहले भी हो चुका है । उस समय वहाँ पर अँगरेज़ों की हुकूमत न थी बल्कि मुसलमानों का राज्य था । उस समय भारतनिवासी वहाँ कब पहुँचे, आर कैसे पहुँचे, भारतवासियों ने वहाँ जाकर क्या किया, आज इसी विषय में पाठकों को कुछ बतलाना है । किन्तु इस के पहले मैं बग़दाद नगर की बाबत भी कुछ कह देना उचित और आवश्यक समझता हूँ ।

बग़दाद शब्द असल में बाग़दाद था । यह बाग़ और दाद दो पृथक् पृथक् शब्दों से मिल कर बना

---

*"The Humour of France" (अर्थात् फ़्रांस की व्यङ्गय-कथायें) नामक पुस्तक की एक कहानी का अनुवाद ।

है। "बाग़ अर्थात् उद्यान और दाद अर्थात् न्याय इन्साफ़"। नौशेरवाँ नाम का एक बादशाह अद्वितीय न्यायी यहाँ हो चुका है। और आज भी वह नौशेरवाँ आदिल अर्थात् नौशेरवाँ न्यायी के नाम से प्रसिद्ध है। उसने नगर में एक बाग़ बनवा रक्खा था। उस सुप्रसिद्ध बाग़ में बैठ कर वह लोगों का न्याय करता था। नौशेरवाँ ने न्याय में बड़ा यश प्राप्त किया। इस से बाग़ की भी बड़ी कीर्ति फैली और नगर का नाम बाग़-दाद अर्थात् न्याय का बाग़ हो गया। यहाँ तक कि आज भी कुछ पाठान्तर के साथ नगर क़रीब क़रीब उसी नाम से प्रसिद्ध है। और यही नहीं बल्कि इस प्रान्त का नाम भी बग़दाद ही है।

बग़दाद में पूर्वकाल में भारत-वासियों के पहुँचने की राम-कहानी इस प्रकार है—

आठवीं शताब्दी ईसवी में मुसल्मानों ने जब भारत का एक भाग विजय किया और यहाँ रहने सहने लगे तो भारतवासी हिन्दुओं और मुसल्मानों का एक दूसरे पर बड़ा असर पड़ा। यहाँ तक कि प्रत्येक ने एक दूसरे की भाषा सीखी। परस्पर मेल जोल भी कुछ हो गया। इस काल में मुसल्मानों के कई बड़े बड़े राज्यों की स्थापना हो चुकी थी। सब राज्यवाले चाहते थे कि अरबी का कोष सब प्रकार की विद्याओं से भरा जावे। बग़दाद में अब्बासी राज-घराने की राजधानी थी। यहाँ ख़लीफ़ा (बादशाह) मंसूर नामक जो राज्याधिकारी हुआ वह भी चाहता था कि कलदानी, नबती, सुरियानी, फ़ारसी और संस्कृतादि अनेक भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद अरबी में कराया जावे।

बहुत से ऐतिहासिकों का मत है कि ख़लीफ़ा मंसूर बड़ा विद्याप्रेमी था। वह अरब के अतिरिक्त अन्यदेशीय (Non-Arab) व्यवहारों को भी बहुत पसन्द करता था। इसी कारण बड़े बड़े धुरन्धर और अद्वितीय विद्वान् उसके दरबार में बड़ी चाव से आये। यहाँ तक कि ईसाई विद्वान् भी उसके दरबार में आये। उसने उनकी भी बड़ी इज़्ज़त की। किसी प्रकार का पक्षपात नहीं प्रकट किया और न किसी प्रकार का कष्ट ही दिया। इस प्रकार मंसूर के विद्या-प्रेम की चर्चा भारतीय हिन्दुओं के कानों तक भी पहुँची और फल यह हुआ कि गणित-शास्त्र का एक भारतीय विद्वान् (हिन्दू) १५६ हिजरी तदनुसार सन् ७७२ ई० में मंसूर के दरबार में बग़दाद पहुँचा। उसने एक पुस्तक मंसूर को भेंट की। उस भारतीय विद्वान् के नामादि का ठीक ठीक पता, अरबी पुस्तकों में तो, चलता नहीं, किन्तु पुस्तक का नाम "सिद्धान्ता" लिखा हुआ है। यह आर्य्यभट का रचा हुआ सूर्य्य-सिद्धान्त नामक ज्योतिष का ग्रन्थ है। आर्य्यभट शायद विक्रमी संवत् की पाँचवीं शताब्दी में हुए हैं। मंसूर की आज्ञा से इस पुस्तक का अनुवाद अरबी में किया गया और यही ग्रन्थ तारा-गणों के विषय में बहुत दिनों तक माननीय रहा।

इस विद्वान् के अतिरिक्त और बहुत से भारत-वासी विद्वान् मंसूर के दरबार में बग़दाद पहुँचे थे। बहुत सी अन्य संस्कृत-पुस्तकों का अनुवाद भी मंसूर-ख़लीफ़ा के समय में हुआ था। इस ख़लीफ़ा ने ७७५ ईसवी तक राज्य किया। हारून-रशीद, मंसूर की मृत्यु के कुछ काल बाद, राज-सिंहासन पर बैठा। इस का राज्य-काल सन् ७८६ ई० से प्रारम्भ हुआ। इसके समय में एक ऐसी घटना हो गई कि जिस के कारण बहुत से हिन्दुस्तानी विद्वानों को बग़दाद जाने की नौबत आई। और भी बहुत सी संस्कृत-पुस्तकों का अनुवाद अरबी में कराया गया। ऐतिहासिकों का मत है कि एक बार ख़लीफ़ा हारून-रशीद बहुत बीमार हो गया। बग़दाद तथा अन्य स्थानों के हकीम दवा करते करते हार गये। किन्तु वह अच्छा नहीं हुआ। फिर भारत से एक वैद्य बुलाया गया। उस (वैद्य) की कीर्ति उस समय बहुत बढ़ी चढ़ी थी। अरबी में वैद्यजी

महाराज का नाम मनका लिखा हुआ है। मनका वैद्य होने के अतिरिक्त तत्त्ववेत्ता भी था। बग़दाद में पहुँच कर मनका ने ख़लीफ़ा का इलाज किया। ईश्वर की कृपा से ख़लीफ़ा आराम हो गये। तमाम रोग जाता रहा। फिर क्या था। हिन्दुस्तान की विद्या और हिन्दुस्तानियों का बड़ा मान हुआ। फिर तो मनका की बहुत ही आव-भगत हुई। उसने बग़दाद में रह कर संस्कृत-पुस्तकों के अनुवाद अरबी में कराये। सुश्रुत, जो कि वैद्यक का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है, मनका की बदौलत ही अरबी में अनुवादित हुआ। तत्पश्चात् हारून के प्रधान सचिव यहिया वरमकी ने हुक्म दिया कि राजकीय औषधालयों में अनुवादित सुश्रुत से काम लिया जाय।

प्रधान सचिव यहिया वरमकी भारतवासियों का बड़ा हितैषी था। इसने बहुत से भारतीयों को दरबार में बुलवाया। इसने एक मनुष्य को भारत में भेजा था ताकि वह भारत से जड़ी-बूटियाँ लावे। निस्सन्देह इसकी बदौलत बहुत सी संस्कृत-पुस्तकों का अनुवाद भी हुआ और ख़लीफ़ा के दरबार में बहुत से भारतीय विद्वान् भी पहुँचे थे। उनमें से एक का नाम "इब्न धन" अर्थात् धन का पुत्र लिखा हुआ है। भारत के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि इब्न धन बग़दाद में एक औषधालय का मुख्याधिष्ठाता (Chief Superintendent) बनाया गया था।

हारून की मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् सन् ८१३ ई० में मामून बग़दाद की राजगद्दी पर बैठा। इसके समय में दार्शनिक ग्रन्थों की प्रधानता थी। यह इसी बात से बहुत कुछ मालूम हो सकता है कि इसने फ़लसफ़ा की किताबें इतनी अधिक मँगाई थीं कि केवल इसी विषय की पुस्तकें पाँच ऊँटों पर लद कर रूम से बग़दाद आई थीं। इनके लिए इसने बड़ा व्यय किया था। तथापि संस्कृत-पुस्तकों की क़दर कुछ कम न थी। अस्तु, बग़दाद में समस्त ख़लीफ़ाओं के समय में संस्कृत की जिन जिन पुस्तकों का अनुवाद हुआ है उन सब का नाम लिखना यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो ज़रूर ही है। क्योंकि बहुत सी पुस्तकों के नाम इतने बदले हुए प्रतीत होते हैं कि उनकी बाबत ठीक ठीक पता लगाना बहुत कठिन है। जिन के नामों का थोड़ा सा ही परिवर्तन हुआ है उनकी बाबत तो ठीक ठीक पता चल जाता है, जैसे कि अरबी में सुश्रुत के लिए "सुसुरुद" शब्द और चरक के लिए "जरक" शब्द लिखा हुआ है।

वैद्यक के अन्य माननीय ग्रन्थ 'चरक' का अनुवाद, पहले फ़ारसी में, बाद को अरबी में हुआ था। पञ्चतन्त्र, हितोपदेश और कथा-सरित्सागर की कहानियों ने अरबी-वेष बग़दाद ही में धारण किया था। इन कहानियों ने अरबी-चोला धारण करके जो इज़्ज़त अरबी-साहित्य में प्राप्त की है, वह अकथनीय है। इसी प्रकार कुछ ५०–६० नहीं बल्कि अगणित संस्कृत-पुस्तकों ने बग़दाद में अरबी लिबास पहना था, और अरबी भाषा के कोष को भरा था। मैं पहले बतला चुका हूँ कि अनुवादित पुस्तकों का नाम ठीक ठीक लिखना कठिन है। किन्तु जिन लोगों की रची हुई पुस्तकों का अनुवाद अरबी में किया गया है उनमें से कुछ लोगों का नाम अरबी में—कपिल, ब्राहमर, राय, माणिक, बाहर आदि लिखा हुआ है।

बग़दाद में जो संस्कृत की पुस्तकें एकत्र की गई थीं वे प्रायः हर एक विषय की थीं और हर एक विषय की पुस्तक का अनुवाद भी हुआ था। यहिया वरमकी ने भारतवासियों के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट भी तैयार कराई थी। एक पुस्तक से यह भी पता चलता है कि भल्ला नाम का भी कोई विद्वान् बग़दाद गया था। क्योंकि अरबी-लेखक का कथन है कि भारत के वैद्य और विद्वान्, जिनको

कि यहिया ने बग़दाद में बुलाया था, उनमें से मैंने भल्ला (हिन्दुस्तानी) से पूछा कि अलङ्कार क्या है ? इत्यादि।

इस प्रकार बग़दाद में मुख्यतः कई बादशाहों के समय में संस्कृत-भाषा-साहित्य तथा भारतवासियों का अच्छा मान रहा। इस सम्बन्ध में पाठकों को यह बतला देना उचित समझता हूँ कि उन सब भारतवासियों का पूरा पूरा हाल जो कि बग़दाद गये थे बहुत कम मिलता है। किन्तु उन्होंने जो कुछ किया है उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ सामग्री प्राप्त है, जिससे भारतीय इतिहास पर बहुत कुछ रोशनी पड़ती है।

महेशप्रसाद, (मौलवी आलिम)

हिन्दुओं में बाल-विवाह।

विवाह की प्रथा समाज तथा जाति के कल्याण के लिए बहुत ज़रूरी है। यहां पर यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रथा का चलन कब से और क्यों हुआ। इतना ही कह देना काफ़ी है कि यह बहुत प्राचीन प्रथा है और इसके चलाने का असली उद्देश "लोकसंग्रह" अर्थात् समाज तथा जाति की रक्षा और उन्नति करना था। अतएव किसी देश अथवा जाति की वैवाहिक प्रथा के अच्छे या बुरे होने की कसौटी यही है कि उससे उस देश या जाति की उन्नति होती है या अवनति। लिखते हुए दुःख होता है कि विवाह, जिस पर कुल समाज तथा कुल जाति का बनना और बिगड़ना स्थित है, हमारे देश में एक खेलवाड़ समझ लिया गया है। स्त्री और पुरुष का विवाह किस उम्र में होना उचित है; विवाह करने के लिए पुरुष और स्त्री दोनों में अलग अलग क्या योग्यता होनी चाहिए; अधिकतर लोगों का विवाह होना चाहिए या नहीं; उत्तम सन्तान किस तरह पैदा हो सकती है; कितनी सन्तान पैदा करनी चाहिए; अधिक सन्तान होना किस उपाय से रुक सकता है; सन्तान का पालन-पोषण किस तरह करना चाहिए ? ये सब बातें हमारे लिए जीवन-मरण के प्रश्न हैं। इन्हीं को उचित प्रकार से हल करने पर हमारी और हमारी भावी सन्तान की उन्नति का दारोमदार है। योरप की उन्नत जातियों ने विवाह के इन मसलों को बहुत कुछ हल कर लिया है। हमारे देश की तरह उनके यहां विवाह खेलवाड़ नहीं समझा जाता। वे लोग इसे बड़ा गम्भीर और महत्त्वपूर्ण विषय समझते हैं। इसी से तो वे उन्नति के शिखर पर चढ़े हुए हैं और इसी विवाह की कुरीतियों की बदौलत हमारा देश अवनत बना हुआ है। हमारे देश के राजनैतिक नेता और सुधारक, राजनैतिक सुधार की ओर जितना ध्यान लगाते हैं, यदि उसका आधा भी ध्यान वैवाहिक कुरीतियों को दूर करने में लगाते तो यदि हमें होमरूल न मिलता तो कम से कम हम होमरूल के लायक़ तो ज़रूर हो जाते। परन्तु यह लेख इस आशा से लिखा गया है कि लोग इसमें लिखी गई बातों की ओर ध्यान देंगे और विवाह के चलन के साथ साथ जो कुरीतियाँ प्रचलित हो गई हैं उन्हें दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

हमारे देश में विवाह की प्रथा का कब सुधार होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है। क्योंकि जिस तरह बालक-बालिकाओं का विवाह ५० वर्ष पहले होता था उसी तरह अब भी हो रहा है। जैसी फ़िज़ूलख़र्ची विवाह में पहले होती थी वैसी ही अब भी होती है। दहेज़ की जैसी चाल पहले थी वैसी ही आज कल भी है। विवाहों में फ़िज़ूलख़र्ची देख कर ही तो अन्य देशीय कहने लगते हैं कि हिन्दुस्तान में दरिद्रता (Poverty) नहीं है। उनका कथन है कि यदि देश में दरिद्रता (Poverty) होती तो विवाह के ख़र्च और सामान में ज़रूर कमी की जाती। यदि वास्तव में ग़रीबी होती तो १० छटांक घी और ५ सेर गेहूँ के समय में भी पूरी-पेड़ा तथा कच्ची-पक्की का झगड़ा न उठता। जितने विवाह पहले होते थे उतने ही बल्कि उससे भी अधिक आज कल प्लेग, इन्फ्लूएंज़ा और महँगी के ज़माने में भी होते हैं। जैसे अपाहिजों का विवाह पहले होता था वैसा ही आज कल भी होता है। जितने कच्चे-बच्चे और अपाहिज पहले पैदा होते थे उतने ही आज कल भी होते हैं। ख़ुलासा यह कि दुनिया में बड़े बड़े उलट-फेर और परिवर्तन ५० वर्ष के

बीच में हो गये, पर हमारा समाज विवाह के मामले में एक इञ्च भी टस से मस नहीं हुआ। यही होता कि जितने दिनों तक प्लेग और दरिद्रता का हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा ज़ोर हो उतने दिनों तक विवाह बन्द कर दिया जाता। पर नहीं, इस मँहगी के ज़माने में भी पहले से अधिक विवाह होते हुए दिखलाई पड़ते हैं। ज़रा लगन तो आने दीजिए; तब देखिएगा, हिन्दू-लोग कैसे विवाह पर एकदम टूटते हैं। अस्तु। हिन्दू-समाज की जिस वैवाहिक कुरीति की ओर मैं आप का ध्यान खींचना चाहता हूँ वह है

बाल-विवाह।

हिन्दू-समाज में जितनी सामाजिक कुरीतियाँ और कुसंस्कार फैले हुए हैं उन सब की जड़ कम उम्र का विवाह है। इस बाल-विवाह की कुरीति से हिन्दू-समाज की कैसी अधोगति हो रही है, यह प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य अवश्य अनुभव करता होगा। इस कुरीति से पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक सताई जाती हैं। पहले तो स्त्रियाँ पढ़ाई नहीं जातीं और यदि पढ़ाई भी गईं तो छोटी उम्र में विवाह हो जाने से उनका पढ़ना लिखना फ़ौरन बन्द कर दिया जाता है। इस तरह हिन्दू-समाज का आधा अङ्ग ज़बरदस्ती मूर्खता के गड्ढे में पड़ा हुआ है। छोटी उम्र में विवाह हो जाने से बारह वर्ष से कम उम्रवाली हज़ारों विधवायें दुःख की आहें भरती हुई अनेक कष्टों और दुःखों को सहन कर रही हैं।

बहुत सी स्त्रियों के तेरह या चौदह वर्ष की उम्र में सन्तानोत्पत्ति होने से, कमज़ोर और रोगी सन्तानों की भारतवर्ष में वृद्धि हो रही है और कम उम्र की मातायें स्वयं भी या तो आजन्म रोगी और कमज़ोर रहती हैं अथवा सन्तानोत्पत्ति के समय में ही मौत की शिकार हो जाती हैं। इसी तरह की अनेक कुरीतियाँ और कुसंस्कार इसी बाल-विवाह की कुरीति के परिणाम हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि यदि बाल-विवाह की कुरीति उठा दी जाय तो ऊपर लिखी जितनी बुराइयाँ हैं आप से आप सब दूर हो जायँगी। पुराने ख़याल के लोग, जो बाल-विवाह के पक्षपाती हैं, कहा करते हैं कि ऋतुमती का विवाह न सिर्फ़ शास्त्रनिषिद्ध ही है बल्कि भारतवर्ष में कभी भी प्रचलित नहीं था। मैं यहाँ पर यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि ऋतुमती का विवाह पूर्णतया वेद और शास्त्रविहित है और प्राचीन भारतवर्ष में युवती ही का विवाह होता था और वही उचित विवाह समझा जाता था। हम इस बात को वेदों के गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों के, स्मृतियों के, तथा पुराणों के प्रमाणों से इस लेख में सिद्ध करने का यत्न करेंगे। प्राचीन ग्रन्थों और शास्त्रों में इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में यह कोई धर्म-सम्बन्धी आवश्यक बात नहीं थी कि प्रत्येक कन्या का विवाह अवश्य हो।

सब गृह्यसूत्रों में विवाह उन स्नातकों के लिए लिखा है जो गुरुकुल में ब्रह्मचर्य्य और विद्याध्ययन को समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहते हैं। प्राचीन समय में गृहस्थ के लिए अग्निहोत्र करना आवश्यक कर्त्तव्य था और यह गृह्याग्नि-उपासना विना स्त्री की सहायता के नहीं हो सकती थी। इस अग्निहोत्र-उपासना में पत्नी का निरन्तर सङ्ग अत्यावश्यक था। अतएव गृह्यसूत्रों में लिखा है कि "समाप्यैतमग्निमुपहरन्ति" अर्थात् पति और पत्नी दोनों विवाह समाप्त होने पर विवाहाग्नि को पति के घर में ला कर उसकी निरन्तर उपासना करें। क्या यह सम्भव है कि उस समय की छोटी उम्र की लड़कियाँ पति के गृह में जा कर एक सुयोग्य पत्नी के उन कर्त्तव्यों को कर सकती होंगी जो गृह्यसूत्रों और धर्मशास्त्रों में लिखे हुए हैं? विवाह के समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनसे साफ़ साफ़ मालूम होता है कि प्राचीन समय में स्त्री और पुरुष दोनों विवाह के समय युवक और युवतियाँ होती थीं, न कि बालक और बालिकायें। वे मन्त्र हमें विवाह के उपरान्त निकट भविष्य में होनेवाले पति-पत्नी के सम्मिलन की, तथा पत्नी के पति-गृह की स्वामिनी होने की, बातें बतलाते हैं। कुछ मन्त्रों में तो विवाह के उपरान्त ही पति-पत्नी के सहवास के बारे में ऐसे खुले लफ़्ज़ों में लिखा गया है जिन्हें वही मनुष्य कह सकता है जो पत्नी के सहवास की आशा लगाये हुए है। इस तरह के कुछ मन्त्र नीचे लिखे जाते हैं जिनसे जान पड़ेगा कि बाल-विवाह की स्वभाव-विरुद्ध रीति प्राचीन समय में ज्ञात नहीं थी और कन्याओं का विवाह उनके युवती होने पर किया जाता था।

"उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुन्नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृपदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि"॥

हे विश्वावसु ! (विवाह के देवता) इस स्थान से उठो, क्योंकि इस कन्या का विवाह समाप्त हो गया। हम लोग सूक्तों से और दण्डवत कर के विश्वावसु की स्तुति करते हैं। अब किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ जो अब तक अपने पिता के घर हो और विवाह करने की अवस्था के चिह्नों को प्राप्त कर चुकी हो। वह तुम्हारा भाग होगी। उसे जानो।

"उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेलामहे त्वा।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सञ्जायां पत्या सृज ॥"

हे विश्वावसु ! इस स्थान से उठो। हम तुम्हें दण्डवत करके तुम्हारी पूजा करते हैं। अब किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ जिसके अङ्ग प्रौढ़ता को प्राप्त हों। उसे एक पति से मिला कर पत्नी बनाओ।

"प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वा बन्धात्सविता सुषेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि" ॥

हे कुमारी ! सुन्दर सूर्य ने तुझे (कुवाँरेपन) के बन्धनों से बाँधा है। अब हम लोग तुझे उन बन्धनों से छुड़ाते हैं। हम तुझे तेरे पति के साथ ऐसे स्थान में रखते हैं जो कि सचाई और पुण्य का घर है।

"इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं संसृज स्वाधाजिव्री विदथमावदाथः" ॥

तुझे सन्तान हो। अपने घर का काम-काज सावधानी से कर। अपना शरीर अपने इस पति के शरीर के साथ एक कर और बुढ़ापे तक पति के घर में प्रभुत्व कर।

"सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा" ॥

पहले सोम तुझे अङ्गीकार करता है, तब तुझे गन्धर्व अङ्गीकार करता है, तेरा तीसरा स्वामी अग्नि है और तब चौथी बेर मनुष्य तुझे अङ्गीकार करता है।

"सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥"

सोम ने यह कन्या गन्धर्व को दी, गन्धर्व ने उसे अग्नि को दी, और अग्नि ने उसे धन और सन्तति के साथ मुझे दी है।

ये दो मन्त्र बहुत महत्त्व के हैं। इन ऋचाओं से जाना जाता है कि विवाह किये जाने के पहले कन्या इन तीनों देवताओं को अर्पण की जाती थी। सायण इनकी व्याख्या इस तरह करते हैं—

"अनुपजातपुरुषसम्भोगेच्छावस्थां स्त्रियं सोमो लेभे। स च सोम ईषदुपजातभोगेच्छावस्थां तां गन्धर्वाय प्रादात् स च गन्धर्वो विवाहसमयेऽग्नये प्रददौ। अग्निश्च मनुजाय भर्त्रे धनपुत्रैः सहितामिमां प्रायच्छदिति।"

अर्थात् ऐसी स्त्री को, जो युवती नहीं हुई, सोम ग्रहण करता है। उसके युवती हो जाने पर उसे गन्धर्व ग्रहण करता है। विवाह के समय उसे गन्धर्व अग्नि को देता है और अग्नि से धन और पुत्र के साथ भर्त्ता उसे ग्रहण करता है।

यहाँ तक वेदों के प्रमाण दिये गये। अब कुछ पौरुषेय गृह्यसूत्रों और स्मृतियों के प्रमाण दिये जायँगे। हर एक गृह्यसूत्र की पुस्तक के विवाह-प्रकरण में ये बातें लिखी रहती हैं—किस समय विवाह होना चाहिए, किस घर की लड़की के साथ विवाह करना चाहिए, लड़की में और उसके रिश्तेदारों में कौन कौन से गुणों और दोषों का निरीक्षण करना चाहिए, इत्यादि। यदि युवती का विवाह धर्म-विरुद्ध होता तो गृह्यसूत्रों में, जहाँ बहुत से दोष लड़कियों के लिखे हैं, वहाँ यह भी लिखा होता कि उस लड़की से विवाह न करना चाहिए जो युवती हो। इस तरह का कोई निषेध हमें गृह्य-सूत्रों में नहीं मिलता। इसलिए यह काफ़ी सबूत है कि गृह्य-सूत्रों के समय में ऋतुमती का विवाह प्रचलित था।

सांख्यायन गृह्य-सूत्र में लिखा है—

"उत्तरायणे शुक्लपक्षे विशिष्टव्यतीपातादिवर्जिते विवाहलग्नमन्वीक्ष्य तस्मिन्निरूपिते कन्यामस्पृश्यमैथुनामह्यमानार्पयां लक्षणोपेतां परिणयीत।"

अर्थात् "उत्तरायण में, शुक्ल पक्ष में, शुभ दिन में वर ऐसी ब्रह्मचारिणी का पाणिग्रहण करे जो कुमारी हो, उत्तम लक्षणों से युक्त हो, समान गोत्र की न हो और सुशील हो।" यदि ऋतुमती का विवाह धर्म-विरुद्ध होता तो यह अवश्य लिख दिया जाता कि "वह ऐसी कुमारी का पाणिग्रहण करे जो ऋतुमती न हो।" किन्तु इस तरह का कोई निषेध यहाँ पर नहीं है।

जैमिनि गृह्य-सूत्र में लिखा है—

"पितृभ्यामनुज्ञातो जायां विन्देतानग्निकां समानजातीयामसगोत्रां मातुरसपिण्डाम्।"

अर्थात् "वर अपने माता-पिता की आज्ञा से ऐसी कुमारी के साथ विवाह करे जो अनग्निका हो, समान वर्ण की हो, और समान गोत्र की न हो।" यहाँ पर नग्निका का अर्थ अमरकोश में इस तरह लिखा है "नग्निकाअनागतार्तवा" अर्थात् नग्निका उसे कहते हैं जिसके मासिक धर्म न होता हो। अतएव अनग्निका उसे कहते हैं जिसके मासिक धर्म होता हो। ऊपर लिखा है कि "ऐसी कुमारी के साथ विवाह करे जो अनग्निका हो" अर्थात् जो ऋतुमती हो । इस गृह्य-सूत्र में साफ़ साफ़ ऋतुमती का विवाह लिखा गया है।

विवाह के चौथे दिन चतुर्थी कर्म होता है। आज कल जैसे सब संस्कार प्रहसन की तरह किये जाते हैं उसी तरह चतुर्थी कर्म भी नक़ल की तरह कर दिया जाता है। पहले चतुर्थी कर्म का तात्पर्य्य यह था कि कम से कम, तीन रात तक तो पति और पत्नी विवाह के बाद ब्रह्मचर्य्य और पवित्रता के साथ रहें। किन्तु आज कल इस चतुर्थी कर्म की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि आज कल छोटी छोटी लड़कियों का विवाह होने से यह भय नहीं कि पति-पत्नी तीन दिन तक भी ब्रह्मचर्य्य का पालन नहीं कर सकते।

गोभिल-गृह्यसूत्र में लिखा है—

"तावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयाताम्।" अर्थात् पति और पत्नी दोनों विवाह-दिन से आरम्भ कर तीन रात तक नमक इत्यादि कामवर्द्धक वस्तुओं को न खाते हुए, ब्रह्मचर्य्य धारण करते हुए, ज़मीन पर एक साथ शयन करें।

जैमिनि लिखते हैं—

"त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ अधः संवेशनौ सह शयाताम्। ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् सम्भवः।"

अर्थात् "तीन रात तक ब्रह्मचर्य्यपूर्वक एक साथ शयन करने के बाद चौथे दिन पति-पत्नी का संयोग उचित है।"

तीन रात्रि तक इस हठात् ब्रह्मचर्य्य का तात्पर्य्य यह था कि कामोत्पत्ति करनेवाले कारणों के होते हुए भी कामविकार का न पैदा होना और ब्रह्मचारी रहना पति और पत्नी दोनों के लिए प्रशंसा का कारण था और ऐसा विश्वास किया जाता था कि जितने अधिक दिनों तक विवाह के उपरान्त स्त्री-पुरुष का संयोग न होगा उतनी अच्छी सन्तान उत्पन्न होगी। अब आपही बतलाइए कि "अष्टवर्षा गौरी" को इस तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य्य से रहने के नियम की क्या आवश्यकता है? क्या जिसके रजो-धर्म नहीं हुआ उसके लिए यह कहा जा सकता है कि "तीन रात तक ब्रह्मचर्य्य-पूर्वक रहने के बाद चौथे दिन पति-पत्नी का संयोग हो।"

जब हम स्मृतियों को देखते हैं तब हमें रजोधर्म के पहले ही विवाह करने के वचन मिलते हैं। किन्तु स्मृतियों के पहले के ग्रन्थों में हमें कहीं भी रजोधर्म के पहले स्त्री के विवाह होने का प्रमाण नहीं मिलता। स्मृतियों में भी प्राचीन स्मृति में—जैसे मनुस्मृति में—हमें ऋतुमती के विवाह के विरुद्ध बहुत थोड़े वचन मिलते हैं। किन्तु नवीन स्मृतियों में जैसे नारद-स्मृति, पराशर-स्मृति इत्यादि में हमें ऋतुमती के विवाह के विरुद्ध बहुत से श्लोक मिलते हैं। जितनी ही नवीन स्मृति होगी उतनी ही अधिक वह ऋतुमती के विवाह के विरुद्ध होगी।

आपस्तम्ब-स्मृति में लिखा है—

"विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते यदा।
रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत्॥
स्नापयित्वा तदा कन्यां अन्यवस्त्रैरलंकृताम्।
पुनर्मध्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत्॥"

अर्थात्—प्रथम श्लोक में सवाल है कि—जब विवाह-संस्कार हो रहा हो उस समय यदि कन्या ऋतुमती हो जाय तो विवाह-संस्कार किस तरह पूरा हो। दूसरे श्लोक में इसका उत्तर है कि उस कन्या को स्नान करा कर, दूसरा वस्त्र पहना कर, हवन करा कर, शेष विवाह-कर्म पूरा करे।

अत्रि-स्मृति में लिखा है—

"विवाहे वितते तन्त्रे होमकाल उपस्थिते।
कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः॥
हविष्मत्या स्नापयित्वा अन्यवस्त्रैरलंकृताम्।
युजातामाहुतिं कृत्वा ततः कर्म प्रवर्तते॥"

इसका भी वही अर्थ है जो ऊपर के श्लोक का है।

अब आप ही बताइए कि ऋतुमती का विवाह प्रचलित नहीं था तो इसके लिखने की क्या आवश्यकता थी।

मनु लिखते हैं—

"नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम्॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न यक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥
यस्यास्तु न भवेद् भ्राता नाविज्ञायेत वा पिता ।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥"

अर्थात् कपिल बालोंवाली, अधिक अंगवाली, रोगिणी, बिना बालोंवाली, बहुत बालोंवाली, कठोर वचनवाली, नक्षत्र, वृक्ष, नदी इत्यादि नामोंवाली कन्या से विवाह न करे। जिसके भाई न हो, जिसके पिता का पता न लगे उसके साथ पुत्रिका धर्म से डर कर (जिसका प्रथम पुत्र अपने नाना की गोद में धर्म से देना पड़े उसको "पुत्रिका" कहते हैं) विवाह न करे।"

ऊपर कन्या के दोषों में यह कहीं नहीं लिखा कि "ऐसी स्त्री से विवाह न करे जो युवती हो"।

आगे मनु लिखते हैं—

उत्कृष्टायातिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥"

अर्थात् "कुल आचारादि से उच्च और सुन्दर तथा गुणों में बराबरवाले वर को कन्या (चाहे वह कन्या (अप्राप्ता) कम उम्र की भी हो) यथाविधि पिता दे दे।"

"काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥"

अर्थात् चाहे कन्या ऋतुमती होकर मरने तक घर में बैठी रहे परन्तु गुणहीन वर को कन्या कभी न दे।"

"त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥"

अर्थात् "रजस्वला कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे, फिर अपने बराबर गुणवाले पति को वर ले।"

मनु के इन ऊपर के श्लोकों में यद्यपि ऋतुमती के विवाह का विरोध साफ़ साफ़ शब्दों में नहीं किया गया तथापि उसका समर्थन भी नहीं किया गया बल्कि एक तरह पर रजोधर्म से पहले विवाह करना अच्छा लिखा गया है।

बात यह है कि जिस समय मनुस्मृति बनी उस समय दोनों विवाह प्रचलित थे। अर्थात् ऋतुमती का भी विवाह होता था और जो ऋतुमती नहीं होती थी उसका भी विवाह होता था। मनुस्मृति में ऋतुमती के विवाह का निषेध खुले शब्दों में कहीं नहीं किया गया है। हां, मनुस्मृति के बाद की स्मृतियों में ऋतुमती का विवाह बहुत ही निषिद्ध समझा जाने लगा और उसका बहुत कड़े शब्दों में खण्डन होने लगा। किन्तु ये स्मृतियाँ उस समय की बनी हुई हैं जब हिन्दू-धर्म पहले की तरह उन्नत दशा में न था और बाल-विवाह का प्रचार कई कारणों से पूरी तरह पर हो चुका था। ऐसी अवस्था में वेद, गृह्यसूत्र, तथा मनुस्मृति के मुक़ाबले में उनका प्रमाण कभी नहीं माना जा सकता।

पुराणों में भी अनेकों कथायें मिलती हैं, जिनसे मालूम पड़ता है कि प्राचीन काल में ऋतुमती का विवाह शास्त्रविहित समझा जाता था। स्वयंवर की प्रथा क्या है ? क्या प्राचीन काल में छोटी छोटी लड़कियाँ इतनी समझदार होती थीं कि वे स्वयंवर में अपने पति को स्वयं वरती रही हों ? यह आप ही सोचिए। लेख-विस्तार के भय से हम और प्रमाण यहाँ पर देना नहीं चाहते। इतने ही प्रमाण उन लोगों को चुप करने के लिए काफ़ी होंगे जो विवाह-संशोधन में तथा अन्य सामाजिक संशोधनों में शास्त्र की धमकी दिया करते हैं।

जनार्दन भट्ट

आर्य्य-बाला

छपै

बहु ललामता-बलित अति ललित रुचियों वाली ।
सकल लोक-हित-जननि भाव तालों की ताली ।
मनुज-रंजिनी कलित कला की कामद काया ।
नव-नव-लीला-मयी मूल सब ममता माया ।
कमनीय विधाता कर-कमल की रचना का चरम फल ।
कल-कीर्ति-सुकुसुमावलि सजी जयति आर्य्य-बाला सकल ॥१॥
कमला लौं सब काल लोक-लालन-पालन-रत ।
गिरि-नन्दिनी-समान पूत पति-प्रेम-भार-नत ।
गौरव-गरिमा-मयी ज्ञान-शालिनी गिरा सम ।
काम-कामिनी-तुल्य मृदुलता-वती मनोरम ।
सुरपुर अधिपति ललना समा प्रीति-नीति-प्रतिपालिका ।
सब दनुज-प्रकृति नर के लिए आर्य्य-नारि है कालिका ॥२॥

वह बहु अनुपम साधन की है सिद्धि उदारा ।
वह है गुरु-जन-भक्ति-भूमि की सुरसरि-धारा ।
वह है पति-मन-मधुप के लिए लतिका कुसुमित ।
वह है सुन्दर सरसि सरोजिनि सन्तति के हित ।
वह है मनमोहन-मुरलिका मधुरमुखी मृदु-नादिनी ।
पुर-जन परिजन परिवार-जन गोप-समूह-प्रसादिनी ॥३॥

वह है ममता-मयी पूत माता अवलम्बन ।
वह है छाया समा प्रकृत जाया आलम्बन ।
परम प्रीति-आधार भगिनि-मणि की है वह खनि ।
सहज प्रेममय-सुता लताओं की है सु-अवनि ।
पर-दुख-कातरता सदयता सहृदयता-अवलम्बिनी ।
वह है कुटुम्ब-जन-हित-निरत परमोदार कुटुम्बिनी ॥४॥

पा जिनका विज्ञान बनी अति पावन अवनी ।
उन ऋषि गौतम कपिल व्यास की है वह जननी ।
द्रोणार्जुन से धीर वीर औ महा धनुर्धर ।
भीष्म-तुल्य भूरत्न पले उसका पय पी कर ।
उसकी सुज्योति ही बुद्ध और शंकर के उर में जगी ।
जिनके अनुपम आलोक से जगत-तमो-मयता भगी ॥५॥
नर है पीवर धीर वीर संयत श्रमकारी ।
है मृदु तन उपराम-मयी तरलित उर-नारी ।
विपुल-कार्य्य-मय नर-जीवन है प्रान्तर न्यारा ।
नाना-सेवा-निलय नारिता है सरि-धारा ।
मस्तिष्क मान-साहस-सदन वीर्य्यवान है पुरुष-दल ।
हैं सहृदयता-ममतावती पयोमयी महिला सकल ॥६॥
युगल मूर्ति सहयोग जनित है जग की सत्ता ।
लालन-पालन सृजन तथा सङ्कलन महत्ता ।
निज निज कृति-रत रहे युगल के सिद्धि मिलेगी ।
किये अन्यथा प्रकृति चाल प्रतिकूल चलेगी ।
हो उदय गगन-तल में तभी विधु ढालेगा रस-घड़े ।
जब सुधा-धार सी चाँदनी तृण-वीरुध तक पर पड़े ॥७॥
हृदय हृदय मस्तिष्क सदा मस्तिष्क रहेगा ।
वीर्य्यवान सम पयोमयी को कौन कहेगा ।
स-अवसाद जन नव जीवन तब कैसे पावे ।
स अवसाद उपराम-मयी ही जब बन जावे ।
युग भिन्न प्रकृति जो परस्पर हित-वाञ्छा से है बनी ।
उनकी विभिन्नता ही फलद है समानता ने घनी ॥८॥

भली भाँति यह तत्त्व आर्य्य-तिय को है अवगत ।
इसी लिए वह हुई नहीं समता-विवादरत ।
पा माता-पद उच्च सदन की जो है देवी ।
सब कुटुम्ब जिसके सरोज-पग का है सेवी ।
वह क्यों समानता-लाभ के लिए रहे चाहों भरी ।
जो बन सच्ची सहधर्मिणी है गृह-पति हृदयेश्वरी ॥९॥

आत्म-त्याग-मन्दारकुसुम से मण्डित बाला ।
क्यों पहनेगी आत्म-प्रेम-सरसिज की माला ।
जो उदारता-सुधा परम रुचि से पीलेगी ।
वह क्यों प्रतिद्वंदिता-सुरा-प्रेमिका बनेगी ।
नर से समानता-समर कर वह क्यों दिखलावे दुई ।
जो सुर-सरि-धारा लौं मिलित जग हित जलनिधि में हुई ॥१०॥

अहमहमिका-उपेत स्वार्थपरता में डूबी ।
निज अधिकारों के निमित्त अधिकाधिक ऊबी ।
है समाज कमनीय गात की कुत्सित बाई ।
परम रुचिर संसार-सरोवर की है काई ।
होगी वर-विधि की बाधिका जो हो वाद-विधायिनी ।
जाया जीवन-अवलम्बिनी जननी जीवन-दायिनी ॥११॥
वह समाज-अनुराग-कुसुम खिलते कुम्हलावे ।
जिसमें से बहुविध विलासिता की बू आवे ।
कभी जाति-हित का वह पादप पनप न पावे ।
जो अवलम्बन स्वरुचि-लताओं का बन जावे ।
वह देश-प्रेम नव-जनित शिशु भूतल पर गिरते मरे ।
वर जीवन बहु नर-नारि का कूटनीति-मय जो करे ॥ १२ ॥
वह स्वतन्त्रता रुचि-प्रियता निजता जल जावे ।
जो सुशीलता मानवता का गला दबावे ।
वह मतिमत्ता नीति-चतुरता वञ्चित होवे ।
सत्य-न्याय-सौजन्य-सुरुचि-गरिमा जो खोवे ।
वह गौरव-ममता समदता आत्म-महत्ता ध्वंस हो ।
जो पति-प्रियता हितकारिता भव-वत्सलतामय न हो ॥१३॥
जो सामयिक प्रवाह है जगत बीच प्रवाहित ।
कैसे भारत-अवनि न उससे होती प्लावित ।
इसी लिए हो चली सुरुचि-धारा कुछ गँदली ।
गति मति कितनी आर्य्य-कामिनी की है बदली ।
पर काम चारुतर रजत का रांगा द्वारा कब चला ।
जलधर-माला से आवरित चिर दिन रही न विधुकला ॥१४॥

जिनका जीवन उच्च वेद-वचनों द्वारा है।
जिनकी रग में बही पुनीत रुधिर-धारा है।
वे अति-पावन-चरित आर्य्य-कुल की बालायें।
भूलेंगी, पर तज न सकेंगी पूत प्रथायें।
कालान्तर में पा उन्हीं से परम अलौकिक आत्म-बल।
आ जावेंगी आलोक में भूतल की महिला सकल ॥ १५ ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

गोस्वामी तुलसीदासजी के समय की कुछ प्राचीन प्रतियों और प्रचलित प्रतियों के पाठ।

२—गीतावली-रामायण।

इस ग्रन्थ के केवल दो काण्ड सुन्दर और उत्तर के कुछ पत्रे उपलब्ध हुए हैं। सुन्दरकाण्ड में १, १३, १४, १७ और २१ से अन्त तक के पत्रे नष्ट हो गये हैं और ऐसे ही उत्तरकाण्ड के भी १ और १२ से अन्त तक के पत्रे नष्टप्राय हैं। लिखावट इनकी रामगीतावली से, जिसे आज कल विनयपत्रिका कहते हैं, मिलती है। अक्षर से जान पड़ता है कि दोनों प्रतियाँ एक ही लेखक के हाथ की लिखी हुई हैं। रामगीतावली के अन्त में लिपि-काल १६६६ संवत् दिया हुआ है। अतः यह निर्विवाद है कि इस ग्रन्थ का भी लिपिकाल उसके लगभग ही होगा। इसके जो पत्रे उपलब्ध हुए है वे भी रामनगर के चौधरी मथुराप्रसाद जी उपनाम छुन्नीसिंह जी के पास ही हैं। पत्रों के आकार और अवस्था भी वैसी ही है जैसी विनय पत्रिका की है। इसके पदों के क्रम भी आधुनिक प्रचलित गीतावलीरामायण से कुछ विलक्षण ही हैं, पर कथा-प्रसङ्ग अटूट और अविच्छिन्न है। हाशिये पर ग्रन्थ के नाम के सङ्केताक्षर 'रा० प०' लिखा हुआ है, जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस पुस्तक का नाम पहले रामपदावली था। पीछे से जब इसके क्रम आदि बदले गये तब इसका नाम गीतावली-रामायण रखा गया। दोनों उपलब्ध काण्डों के जो पत्रे हमें मिले हैं उनमें पदों के क्रम इस प्रकार से हैं—

सुन्दर-काण्ड

पत्राङ्क	पद	प्राचीन क्रम-संख्या	आधुनिक क्रम-संख्या
२	कब देखोंगी नयन वह मूरति ...	.. २	४७ अन्तिम अंशमात्र पत्रा २ में है।
	अबलों मैं तोसों न कहे री ...	... ३	४९
	देखी जानकी जब जाइ ...	... ४	२
	हौं रघुबंसमनि को दूत ...	... ५	६
३	कहो कपि कब रघुवीर कृपा करिहैं	... ६	९
	कबँहुं कपि राघो आवहिंगे ...	... ७	१०
४	सत्य वचन सुनु मातु जानकी ...	... ८	११
	तात तोहू सो कवति होय हिय गलानि	... ९	७
५	मातु काहे को कहति अति बचन दीन	... १०	८
	तौ लौं मातु आपु नीकें रहिबो	... ११	१४
	कपि के चलत सिय मन गहवरि आयो	... १२	१५
	कहु कबहुँ देखिहैं आलि हौं आरज सुअन	... १३	४८
६	सो दिन सोने को कब ऐहैं ...	... १४	२०
७	सिय धीरजु धारिये राघो अब ऐहैं	... १५	५१
	रघुपति देखो आयो है हनुमंत ...	... १६	१६

पत्राङ्क	पद	प्राचीन क्रम-संख्या	आधुनिक क्रम-संख्या	
८	सुनहु राम विश्रामधाम जनकसुता अति विपति जैसे सहति	१७	१७	
९	रघुकुल-तिलक वियोग तिहारे	१८	१८	
	अतिहि अधिक दर्सन की हो आरति ...	१९	१९	
	तुम्हरे विरह भई गति जौन	२०	२०	
१०	कपि के सुनि कल कोमल बैन	२१	२१	
	आए देपि इत सुनि सोच सठ मन में ...	२२	२३	
११	अपनी अपनी भाँति सब काहू कही है ...	२३	२४	
	दूसरो न देखतु साहिबु सम रामैं ...	२४	२५	
१२	*जाइ भाय पाय परि कथा सो सुनाई है ...	२५	२६	
	भाइ कोसो कहो डरो कठिन कुफेरु ...	२६	२७	
१५	विनती सुनि प्रभु प्रमुदित भये	३१	३२	अन्तिम अंशमात्र पत्रा १५ में है।
	हिय विहँसि कहत हनुमान सों	३२	३३	
	साँचेहू विभीषनु आइहै	३३	३४	
१६	चले लेन लषनु हनुमानु हैं	३४	३५	
	रामु करत प्रनामु निहारि कै	३५	३६	
१६	करुनानिधान की करुना भई	३६	३७	केवल आदि का कुछ अंश मात्र है।
१८	सुजसु सुनिहों नाथ आयो सरन ...	३८	४३	
	दीन हित विरुद पुराननि गायो... ...	३९	४४	
१९,२०	जब रघुबीर पयानो कीन्हों	४०	२२	
	उत्तर-काण्ड			
२	देषत अवध को आनंदु	२	२३	अन्तिम अंशमात्र पत्रा २ में है।
	देषो राघो बदन विराजत चारु	३	१०	
	रितुपति आयो भलो बन्यो वन समाजु ...	४		यह पद अब अयोध्या-काण्ड में छठा है।
३	पेलत वसंत राजाधिराजु	५	२२	
	रघुपति राजीवनयन सोभा तनु कोटि मदन करुना रस अयन चयन रूप भूप माई	६	३	
४	देषु सषि आजु रघुनाथ सोभा बनी ...	७	५	

---

* सम्भव है कि नष्ट पत्रों १३, १४ में २७–३० तक के पद वे ही रहे हों जो आधुनिक प्रतियों में २८–३१ तक हैं।

पत्राङ्क	उत्तर काण्ड	प्राचीन क्रम-संख्या	आधुनिक क्रम-संख्या
५	आलि री राघो के रुचिर हिँडोलना झूलन ऐऔ	८	१८
६,७	कोसलपुरी सुहावनी सर सरऊ के तीर	९	१८
८	पालत राजु यों राजा रामु धरमधुरीन	१०	२४
	संकटु सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ	११	२५
	राम विचारि कै राषी ठीक दै मन मांहि	१२	२६
९	चरचा चरनि सों चरची जानि मनि रघुराइ	१३	२७
	आए लषनु लै सौंपि मुनीसहि आनि	१४	२८
	तौ लौ बलि आपु ही कीवी	१५	२९
१०	सुनि व्याकुल भये ऊतर कछु कह्यो न जाइ	१६	३०
	गौने मौन ही वारहि वार परि पायँ	१७	३१
	पुत्रि न सोचिये आई हों जनक-गृह जिय जानि	१८	३२
११	जब तें जानकी रही रुचिर आश्रम आइ	१९	३३
	सुभ दिन सुभ घरी नीको नषतु लगनु बजाइ	२०	३४
	मुनि करि छठी कीन्ही बारहे की रीति	२१	३५

पूर्वोक्त विवरण से यह विदित होगा कि प्राचीन राम-पदावली और वर्तमान या आधुनिक गीतावली-रामायण के क्रम में कितना अन्तर पड़ गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक गीतावली रामायण में रामगीतावली या प्राचीन विनयपत्रिका के वे पांचों पद, जो आधुनिक विनयपत्रिका में नहीं मिलते, भिन्न भिन्न काण्डों में इस प्रकार सन्निविष्ट हैं—

पत्राङ्क	पद	आधुनिक क्रम-संख्या	
	३—रामगीतावली	आधुनिक गीतावली-रामायण	
२६	रामचरित अभिराम काम-प्रद तीरथराज बिराजै	उत्तरकाण्ड	१५
२७	रामचंद-कर-कंज-कामतरु कामदेव-हितकारी	,,	१४
३६	प्रातकाल रघुवीर-वदन-छवि चितै चतुर चित मेरे	,,	१२
८०	रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर सकल अवधवासी	,,	३८
१६९	राघो भावति मोहिँ वीथिन की धवनि	अयोध्या-काण्ड	५

इस से यह स्पष्ट है कि गीतावली-रामायण का क्रम बदलनेवाला भी वही पुरुष था जिसने विनयपत्रिका का क्रम बदला। सबसे अद्भुत बात तो आधुनिक गीतावली-रामायण में प्राचीन रामगीतावली के उत्तरकाण्ड के चौथे पद को अयोध्याकाण्ड में रखना है*। सम्भव है कि उसका यह साहस गोस्वामीजी के सारे पदों को सङ्ग्रह करने के लिये हो, पर ऐसा न कर के परिशिष्ट-रूप में वह रख सकता था। इतना करने पर भी गोस्वामीजी के कितने ही पद ऐसे हैं जो अब तक कहीं भी सङ्ग्रहीत नहीं हैं। ऐसे पद अब तक अयोध्याजी के आस पास के रहनेवालों को याद हैं और स्त्रियां उन्हें प्रायः गाया करती हैं—उदाहरण के लिये कुछ नीचे दिये जाते हैं —

१ ठाढ़ी री झरोखें ताकै नंदिनी जनक की।
बड़े बड़े भूप ठाढ़े धनुष टरै न टारे कहत लषन
मानों पखुरी कमल की। इत्यादि
२ भजु मन राम-चरन दिन राती······

---

* गीतावली में दो एक ऐसे पद भी हैं जो ज्यों के त्यों या थोड़े हेर फेर से सूर-सागर से लिये गये हैं।

उन पदों की रचना और अन्त में तुलसीदास का नाम आना तथा रामचरित का वर्णन इत्यादि ऐसे हेतु हैं जिनसे वे गोस्वामी जी के अतिरिक्त अन्य के नहीं हो सकते । उनका स्मरण और कीर्तन अयोध्या-वासी परम्परा से करते आते हैं ।

दोनों ग्रन्थों का क्रम–परिवर्तन भी एक ही काल में हुआ । इसी से अबतक सिवा एक प्रति के दूसरी का पता नहीं चला । वे प्रतियाँ भी अपूर्ण हैं नहीं तो पाठकों के लिए वे बड़े महत्त्व की चीज़ थीं । आगे कहीं मिलेंगी या नहीं, पर नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज की रिपोर्ट देखने से ज्ञात होता है कि अब तक तो कहीं पता नहीं चला है ।

३—राममुक्तावली

यह ग्रन्थ भी तुलसीदासजी का बनाया हुआ है । कितनों ने इसे तुलसीदास का नहीं माना है । पर क्यों ? यह वही जानें । हमें तो इसकी सब से प्राचीन प्रति संवत् १६८९ की लिखी हुई मिली है, जिससे यह ग्रन्थ हम गोस्वामी जी के अतिरिक्त दूसरे का नहीं मान सकते । इस ग्रन्थ की भाषा, रचना आदि से ज्ञात होता है कि सम्भव है कि यह गोस्वामी जी का पहला ग्रन्थ हो जिसे उन्होंने हिन्दी भाषा में लिखा । सबसे पते की बात इसमें यह है । इसके एक वाक्य से यह पता चलता है कि गोस्वामी जी १२० वर्ष की आयु तक जीवित रहे । वह वाक्य यह है—

‘ पवनतनय मों सों कहेउ पांच बीस औ बीस ’

इसमें गोस्वामी जी ने अपने पहले पहल काशी आने का उल्लेख किया है । इसकी एक और प्रति कैथी अक्षरों में संवत् १८०० के पीछे की लिखी हुई भी मिली है । दोनों प्रतियाँ काशि-राज के सरस्वती-भाण्डार, रामनगर, में हैं, पर पिछली प्रति में भाषा और क्रम में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया गया है । भाषा भेद के उदाहरण-स्वरूप कुछ चौपाइयाँ नीचे दी जाती हैं । पाठक विचार करें :—

संवत् १६८९ की प्रति का पाठ ।	१८०० संवत् के बादवाली प्रति का पाठ ।
सब ऋषि संमत अस कीन्हा ।	सब ऋषि मिलि तब अस मत कीन्हा
सुत विरचि कै कह वै लीन्हा ॥	सुत विरंचि के कह वै लीन्हा ।
तीनो गुन तीनों प्रभु भएऊ ।	तीनिउ रूप तीनिउ प्रभु भैऊ
एको रूप न जानल गएऊ ॥	एकउ रूप न जाना गैऊ ।
जावहु भृगु सब संसै जाऊ ।	जाएहु भृगु संशय सब गैऊ
तीनिउ मूर्ति के लेहु सुभाऊ ॥	तीनिहु मूर्ति कै लेहु सद भाऊ
प्रथमै भृगु गए सिव पासा ।	प्रथमहि भृगु गए संकर पासा
नींद रहित तिन्ह कीन्ह निरासा ॥	नीद रहै तिन्ह कीन्ह निरासा ।
बहुत दिवस भृगु रहे निनारा ।	बहुत दिवस भृगु रहे निनारा ।
उमा महेश्वर निकट अगारा ।	उमा महेश निकट आगारा ॥
देइ स्राप रिपि कै खीसा ।	दीन साप रिषी कै खीसा ॥
भग लिंग मय भये तब ईसा ॥	भग लिंग एक लिग भए अहीसा ॥
तव भृगु गए विरंचि जहँ रहई ।	तव भृगु गए विरंचि जहँ रहेऊ
आदर कछु न भए उर दहई ॥	आदर कछु न भए उर दहेऊ ॥
देइ स्राप रिपि चले कुहाई	देइ स्राप रिपि चले कुहाई ।
अपुज कीन्ह ब्रह्मा कहँ जाई ॥	अपुज कीन्ह ब्रह्मा कहँ जाई ॥
विष्णु पास गए रिपि जबहीं	विष्णु के पास गए रिपि जबहीं
कमला संग रहे प्रभु तबहीं ॥	कमला पति संग देखी तुबही ॥

संवत् १६८९ की प्रति का पाठ।	१८०० संवत् के बादवाली प्रति का पाठ।
सोवत विष्णु पलंग पर देखा।	सोहत सैन पलंग पर देखा।
पाउँ दाब लछिमिः अस पेखा॥	पद दाबत लछिमी अस पेखा॥
कीन्ह प्रहार चरन तब घाला।	कीन्ह प्रहार चरन अस घाला।
जागि उठे तब मदनगोपाला॥	जागि उठे तब दीन-दयाला॥
स्वामी पीर न भए तुम्हारे।	स्वामी पीर न भए तुम्हारे।
हरिहि देखि भृगु भए सुखारे॥	हरिहि देखि रिषि भए सुखारे॥
लै पगु भृगु कर दावन लागे।	तब हरि भृगु पद दाबन लागे।
देइ असीस चले रिषि आगे॥	देइ असीस चले रिषि आगे॥
कहेउ आइ रिषि तीनिउ बाता।	कहा आइ रिषि तीनिउ बाता।
समता कहि लोचन न अघाता॥	सब ताकहिं लोचन न अघाता॥
तब सब रषि मिलि कीन्ह विचारा।	तव सव रिषि मिलि कीन विचारा॥
निर्गुन सर्गुन केर पसारा॥	अगुन सगुन कै कीन्ह विस्तारा॥
निर्गुन पंथ सभै मिलि कहा।	निर्गुन कर पथ सब मिलि काहा।
जो चित धरे राम मन महा॥	जो चित धरै राम मन माहा॥
पहिले अंग न्यास जो करई।	पहले अंगन्यास कराई।
तेहि पीछे गए मन चित धरई॥	तेहि पीछे तब मन चित धरई।
मन के हाथे करै जो प्रानी।	मन कहँ हाथ करे जो प्रानी।
ततक्षण भेंटे सारंगपानी॥	ततछन भेंटै सारंगपानी॥
यह पथ अगम जो कहु मन माना।	पंथ अगम जाकर मन माना।
सोई चित राखै परिनामा॥	सो जो राखै रचि परि जाना॥
निर्गुन के सुरूप मैं कहेऊँ।	निर्गुन कै सव रूप मैं कहेऊ।
अरूप महातम नहि किछु लहेऊ॥	रूप रेख कछु तहाँ न रहेऊ॥
छोड़ै गृह अरु कमला नारी।	छोड़े घर औ कमला नारी।
छोड़ै राज पाट सब झारी॥	छोड़े राज पाट सब झारी॥
छोड़ै सभ कछु सहन भंडारा।	छोड़ै सब कछु सहन भंडारा।
छोड़ै मया सकल विस्तारा॥	छोड़े मया सकल संसारा॥
दंड कमंडल लै करि हाथे।	दंड कमंडल लै कै हाथा।
चलु अकेल कोइ संग न साथे॥	चलु अकेल कोइ संग न साथा॥
रहै उदास दीन औ राती।	रहै उदासिन दिन अरु राती।
रहै निरंतर व्रती एक साथी॥	रहै निरंतर व्रत हरि भांती॥
पाप पुन्य कर करै न आसा।	पाप पुन्य कर करै न आसा।
सो पहुँचै प्रभुनायक पासा॥	सो पहुँचै रघुनायक पासा॥
नहाइ न देइ पिंड अरु पानी।	नहाइ न देइ पिंड अरु पानी।
रहै सदा मन कहँ जिय जानी॥	रहै सदा रस एक जिय जानी॥

संवत् १६८६ की प्रति का पाठ।	१८०० संवत् के बादवाली प्रति का पाठ।
जाइ न तीरथ करै न पूजा।	जाइ न तीरथ करै न पूजा।
जानै एक न दूसर दूजा॥	जानै एक अवर नहिँ दूजा॥
संध्या गाइत्री के लग नहिं जाइ।	संध्या गायत्री के लग नहि जाही।
जहाँ जुरै तहाँ तैसै खाई॥	जहाँ जुरै तहाँ तैसैं खाही॥
नेम धरम एकौ नहिं जानै।	नेम धरम एकौ नहि जानै।
मन के हाथ करै मन मानै॥	मन कहँ हाथ करै मन भानै॥
मै अरु तू अरु तुहँ मैं भाई।	मैं तुम मैं अरु तुम मैं भाई।
एकै जाने हानि बड़ाई॥	सम करि जानै हानि बड़ाई॥
जब मन हाथ होइ तेहि प्रानी।	एहि विधि मनहि करै जो प्रानी।
पलकहि भेंटै सारंगपानी॥	तत खन भेंटै सारंगपानी॥
दोहा।	
जो मन जीत सकै नहिँ औ ममता नहिं त्यागि।	जौ मन जीति सकै नहिँ नहिँ ममता कहँ त्यागि।
त्यों त्यों सरगुन पंथ लै जो जोगी की आगि।	तब तब सरगुन पंथ ले जेउ जोगी की आगि।

ऊपर दिये उदाहरण से पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि पीछे की प्रति में कितना पाठ में अन्तर पड़ गया है। गोस्वामी जी के प्रायः सभी ग्रन्थों में पीछे से लोगों ने पाठ बदल डाला है। कितने ऐसे पद जिनमें छन्द-दोष भाषा-दोष आदि थे बदल दिये गये हैं। कुछ हो, चाहे वह शोधने या सुधार की दृष्टि ही से क्यों न किये गये हों, पर किसी कवि की कृति में इस प्रकार हस्ताक्षेप कई कारणों से अच्छा नहीं है। जब केवल सौ सवा सौ वर्षों में इतना अन्तर पड़ गया तब आज कल के ग्रन्थों में पाठों की क्या दशा हो गई होगी, यह विचार-शील सज्जन अनुमान कर सकते हैं।

जगन्मोहन वर्म्मा

पाठशालाओं के उपयोग।*

सर्वसाधारण लोग शिक्षा शब्द का जैसा अर्थ समझते हैं, वह अर्थ वैसा सङ्कुचित नहीं है। जिन जिन अनुभवों से हमारे कार्य अधिक लाभकारी हो सकें, उन सब की प्राप्ति को शिक्षा कहते हैं। पाठशालाओं में जो कुछ पढ़ा या सीखा जाता है, उसी को साधारण लोग शिक्षा कहते हैं। वास्तव में यह अर्थ अत्यन्त सङ्कुचित है, और इसी कारण शिक्षा और व्यवहार में इतना अन्तर पड़ गया है † लड़कपन में हम ऐसी बहुत कम बातें करते हैं कि जिनके करने से हमारे अगले कार्यों में कुछ असर नहीं पड़ता। उन तमाम बातों का आगे कुछ न कुछ परिणाम होता ही है।

---

* लड़कपन से लगा कर मैट्रिक्यूलेशन तक जिन संस्थाओं में पढ़ते हैं, उन्हें मामूली भाषा में पाठशाला कहते हैं। पर शिक्षा-शास्त्र में इस शब्द का इतना सङ्कुचित अर्थ नहीं। इस शब्द से उन सब संस्थाओं का बोध होता है जहाँ विद्यार्थियों को विशिष्ट प्रकार की शिक्षा नित्य प्रदान की जाती है, फिर वह शिक्षा केवल "अ आ, इ ई" ही हो अथवा तत्त्वज्ञान के महागहन सिद्धान्त। इससे स्पष्ट होगा कि कालिज, यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) इत्यादि सब इसी शब्द के अन्तर्गत हैं। हाँ, इस लेख में मामूली पाठशालायें ही लक्षित हैं। यह बात आगे स्पष्ट की जायगी।

† यह बात हिन्दुस्तान को सर्वथैव लागू होती है। यहाँ तो समझते ही नहीं कि शिक्षा व्यवहार के लिए उपयोगी होगी। इसके कुछ कारण ऐसे हैं कि जिनके लिए शिक्षार्थी अधिकांश में ज़िम्मेदार नहीं।

इसलिए शिक्षासाधनों के दो भेद करना आवश्यक है। (१) कोई किसी पाठशाला में पढ़े या न पढ़े, पर वह कुछ न कुछ अनुभव नित्यप्रति मानव-संसर्ग से प्राप्त करता ही रहता है। इससे उसके जीवन पर बहुत कुछ असर होता है। यह भी एक प्रकार की शिक्षा है। इस शिक्षा को हम **अविहित शिक्षा** (Informal Education) कहेंगे। (२) कुछ विशिष्ट संस्थाओं के द्वारा हमें कुछ विशिष्ट अनुभव कराये जाते हैं। यह सभी जानते हैं कि अनुभवों का परिणाम हमारे जीवन पर बड़ा भारी होता है। दूसरे प्रकार की शिक्षा में विशेषता यह रहती है कि विशिष्ट अनुभव ही कराये जाते हैं, अर्थात् विचारपूर्वक उनका नियन्त्रण पाठशाला, आप्तजन अथवा धर्म के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की शिक्षा को **विहित शिक्षा** (Formal Education) कहते हैं।

(क) "अनुभव* के समान शिक्षक नहीं" इत्यादि कहावतों में अविहित शिक्षा का सच्चा स्वरूप स्पष्टतया ध्वनित है। पूर्व विवेचन से इसकी सत्यता प्रत्येक जन जान जायगा। क्योंकि आख़िर शिक्षा अनुभवों की प्राप्ति ही है। इस कहावत का अर्थ यह है कि मामूली चलते फिरते जो अनुभव हम प्राप्त करते हैं वे हमारे जीवन में बड़े परिणाम उत्पन्न करते हैं। विशिष्ट हेतु से जो अनुभव प्राप्त किये जाते हैं, उनका इतना अधिक परिणाम नहीं होता। इससे यह बात सिद्ध होती है कि व्यवहार से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह पाठशालाओं और शिक्षकों के दिये हुए ज्ञान से अधिक लाभकारी होता है। और यह बात प्रत्येक प्रौढ़ पुरुष जानता ही है। अगर एक बार बालक की उँगुली आग से जल जाय तो वह सदा आग से डरता रहेगा। परन्तु केवल 'आग से देह जल-भुन जायगी' इतना बतलाने से विशेष परिणाम न होगा। इस प्रकार का अनुभव प्रत्येक माता-पिता को मिलता ही है। किसी व्यापार की शिक्षा देनेवाली पाठशाला में सीखने से लड़कों को उतना लाभ नहीं होता जितना एक बैङ्क में प्रत्यक्ष काम करने से होता है। सारांश, व्यवहार से प्राप्त हुआ ज्ञान पाठशाला में सिखाये हुए ज्ञान की अपेक्षा अधिक असर रखनेवाला होगा और स्मरण में भी अधिक रहेगा। इस कारण उसका फिर से उपयोग व्यवहार में अधिक होगा।

व्यवहार से प्राप्त ज्ञान के ये फ़ायदे अवश्य हैं, पर उसमें कुछ दोष भी हैं। पहले तो यह ज्ञान अव्यवस्थित, असंबद्ध रहता है; उसमें कुछ भी क्रम नहीं रहता। आख़िर ये चलते फिरते ही अनुभव हैं। उनमें से कई ऐसे होते हैं जिनका फिर शायद कभी उपयोग न हो। और, जीवन में जितने अनुभव, जितने प्रकार का ज्ञान, चाहिए वह सब इस रीति से प्राप्त नहीं हो सकता। इस लिए "अविहित शिक्षा" यानी व्यवहारज ज्ञान हमारे जीवन के सब कार्य्यों के लिए पूर्ण नहीं होता। इस कारण इसके भरोसे अगर हम अपना जीवन चलाने लगें तो इस जीवन में बहुत प्रकार का ज्ञान मिलना असम्भव हो जायगा। एक बार शरीर और मस्तिष्क के भीतर बाहर के सब सम्बन्ध निश्चित रूप से बन गये कि फिर उनमें कोई अदल बदल करना कठिन हो जाता है। नया अनुभव प्राप्त करना या उससे फ़ायदा उठाना असम्भव सा हो जाता है। बड़े होने पर आदतें, स्वभाव, विचार बदलना अत्यन्त कठिन होता है। दूसरा दोष यह है कि यह शिक्षा बहुत परिश्रम और समय के ख़र्च से प्राप्त होती है। मनुष्य-समाज ने जो अनुभव प्राप्त कर लिये हैं, जो ज्ञान इकट्ठा कर रक्खा है, उसका इस शिक्षा में कुछ भी उपयोग नहीं होता। यह बात स्पष्ट ही है कि प्रत्येक जन अपने जीवन भर में सब अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए उसका जीवन कम से कम एक कोटि वर्ष का होना चाहिए। अगर हम अपने पूर्वजों के अनुभव का उपयोग न करें तो हम बहुत कुछ नीच वर्ग के प्राणियों के समान ही हो जायँगे। सारांश, यह बात सत्य है कि अनुभव के समान शिक्षक नहीं, परन्तु यह भी बात सत्य है कि ऐसी शिक्षा अत्यन्त परिश्रम और बहुत काल बाद मिलती है।

(ख) इसलिए विहित शिक्षा दोष-पूर्ण रहने पर भी हमारे जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अविहित शिक्षा से बालक निसर्ग की शक्तियों के अधीन हो जाता है। एक ओर ये प्रचण्ड शक्तियाँ हैं, दूसरी ओर बेचारा बालक है। उसे अपने प्रति कार्यों से जैसे भले बुरे अनुभव मिलते जायँगे, वैसे वह बदलता जायगा। परन्तु विहित शिक्षा का यह मतलब नहीं। यह बालक को उन प्राकृतिक शक्तियों के

---

* यहाँ अनुभव का मामूली सङ्कुचित अर्थ है।

अधीन नहीं छोड़ देती। इस शिक्षा का मतलब यह है कि बालक की इच्छा हो या न हो, जिन जिन अनुभवों का उपयोग उसके जीवन में होगा वे सब अनुभव उसे प्राप्त करने ही होंगे। चाहे उसे जान बूझ कर ऐसी परिस्थिति में रख दें कि उसे हमारे इच्छानुरूप अनुभव मिल ही जायँ, अथवा उन अनुभवों का ज्ञान भाषा के द्वारा करा दिया जाय—वे सीधे उसे बतला दिये जायँ। इनमें से किसी प्रकार भी उसे अनुभव करा दिया जाय। दोनों मार्ग कृत्रिम हैं, क्योंकि इनमें जिन अनुभवों का ज्ञान कराना चाहिए उनका निर्णय हम ही करते हैं।

विहित शिक्षा का असली साधन गृह अर्थात् आप्त जन हैं। यह सत्य है कि अविहित शिक्षा की प्राप्ति के कई मौक़े घर में मिलते हैं। पर बहुधा घर का प्रभाव यथेष्ट नहीं होता। आप्त जनों के समान सब बातें उसे सिखाई जाती हैं। बालक पैदा होने के समय पशु के समान रहता है। परन्तु घर पर ही पहले उसे मनुष्यत्व प्राप्त हो जाता है। अच्छी आदतें उसे यहाँ सिखलाई जाती हैं। वह ग़लती करता है तो बार बार उसे बतलाते हैं और सुधारते हैं। कभी कभी हम पहले करके दिखलाते हैं, पीछे उसे नक़ल करने के लिए कहते हैं। कई बार वह आप ही हमारी नक़ल करता है। धर्म, नीति इत्यादि के उच्च उद्देश उसे यहीं बतलाये जाते हैं। प्रत्येक घर मनुष्य-समाज का एक बड़े महत्त्व का स्थान है। उसी से राष्ट्र या जाति को उसकी विशेषता प्राप्त होती है। यह विशेषता भी बालक घर पर ही सीखता है। मनुष्य के इतिहास में यह घर की शिक्षा अत्यन्त महत्त्व की रही है। वास्तव में शिक्षा का प्रारम्भ ऐतिहासिक दृष्टि से घर से ही हुआ है। मनुष्य-समाज की नितान्त पहली अवस्था में इस शिक्षा के सिवा दूसरी किसी शिक्षा का प्रबन्ध था ही नहीं। और, अब भी घर की शिक्षा की बराबरी दूसरी कोई शिक्षा नहीं कर सकती*।

तथापि पाठशाला की शिक्षा भी अत्यन्त महत्त्व की है। इसकी रचना जितनी विचारपूर्वक की जाती है उतनी घर की शिक्षा की नहीं। पाठशाला की तमाम शिक्षा की छान बीन बहुत विचारपूर्वक होती है। घर की शिक्षा बहुधा पीढ़ी दर पीढ़ी एक सी चली जाती है। यह कह ही चुके हैं कि मनुष्य-जीवन की बहुत सी मुख्य बातें यहाँ सिखलाई जाती हैं। तथापि उतने से हम सब लोगों का जीवन चलना शक्य नहीं। बहुत सी बातें हमें पाठशाला में ही सीखनी पड़ती हैं। विचार-पूर्वक योजना ही पाठशाला की शिक्षा की विशेषता है। जीवन की तमाम बातें यहीं सिखलाई जाती हैं। इस विषय में एक बात और कहनी चाहिए। पाठशाला का उपयोग हमारे बालपन में ही होता है। इस लिए हमें बालपन का अर्थ समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि इससे पाठशाला के उपयोग का अधिक स्पष्टीकरण होगा।

(क) पहले तो बालपन अपरिहार्य परावलम्बन का काल है। बालक के जीवन की सब बातों का प्रबन्ध दूसरे करते हैं। खाना, पीना, सोना, आराम करना, कपड़े पहनना, कपड़े उतारना इत्यादि सब कामों के लिए वह परावलम्बित है। इनमें से कोई काम वह दूसरों की सहायता के बिना नहीं कर सकता।

(ख) दूसरे, बालपन में मन और शरीर दोनों कोमल रहते हैं। अपरिपक्व होने के कारण उन्हें हम बहुत कुछ इच्छानुसार बढ़ा सकते हैं। यानी यह इच्छा विधेयता* का काल है। इसका सबब यह है कि मानव-शिशु के शरीर के मज्जातन्तुओं के सम्बन्ध नितान्त दृढ़ नहीं रहते। नीच वर्ग के प्राणियों का हाल ऐसा नहीं है। उनके मज्जातन्तुओं के सम्बन्ध जन्म से ही क़रीब क़रीब दृढ़ रहते हैं। उनमें अधिक फेर-फार किंवा इच्छानुसार सम्बन्ध नहीं हो सकते। मानव-शिशु की क़रीब क़रीब सभी शक्तियाँ पीछे से प्रकट होती हैं। मज्जातन्तुओं के सभी सम्बन्ध बहुधा जन्म के बाद बनने के कारण उन पर परिस्थिति का बड़ा भारी प्रभाव होता है। परन्तु धीरे धीरे वे दृढ़ होते जाते

---

* यह बात हिन्दुस्तानियों के विषय में जितनी सत्य है उतनी यूरोपीय लोगों के विषय में नहीं। पाश्चात्य देशों में बालक बालपन ही से प्रायः पाठशाला के अधीन कर दिया जाता है। इसलिए 'घर की शिक्षा से वहाँ पाठशाला की शिक्षा ही अधिक प्रधान है।

* जिन वस्तुओं को हम इच्छानुसार बना सकते हैं वे वस्तुएं इच्छाविधेय (Plastic) हैं।

हैं और फिर उनका बदलना असम्भव सा हो जाता है। मज्जातन्तुओं की कोमलता कुछ काल के बाद कुछ ही काल तक रहती है; फिर वे कठिन हो जाते हैं।

सारांश, बालपन में सांसारिक झञ्झटों से फुरसत रहती है। इस समय उसका भरण-पोषण दूसरे करते हैं और इसलिए भविष्य काल के वास्ते वह अनुभव अर्थात् ज्ञान का सञ्चय कर सकता है। वह अपना समय और श्रम एक सुदूर ध्येय के वास्ते लगा सकता है। उसके शरीर और मस्तिष्क कोमल यानी इच्छाविधेय रहते हैं। इस कारण इस समय जो अनुभव वह प्राप्त करेगा उसका उसके मन पर खूब गहरा और चिरस्थायी परिणाम होगा। अज्ञानावस्था छोड़ कर बच्चे जब स्त्री या पुरुष बनें तब उनका खूब मानसिक विकास होना चाहिए। प्राणिवर्ग के एक ओर सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जीव है, और दूसरी ओर सब प्राणियों का राजा मनुष्य है। इन दोनों में बड़ा अन्तर है। एक के आत्मजों को शिक्षा की नाम मात्र भी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि जन्मते ही वे सर्वथा पूर्ण रहते हैं। दूसरे के आत्मज क़रीब क़रीब सर्वथा अपूर्ण रहते हैं, और अपने माता-पिता के समान बनने के लिए भी उन्हें शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। फिर उनसे अच्छी दशा प्राप्त करने के लिए शिक्षा की उपयोगिता निःसीम है। इन दोनों अवस्थाओं के बीच लाखों प्राणी हैं। इनकी शारीरिक रचना एक दूसरे से अधिकाधिक पेचीदा (Complex) होती गई है और प्रौढ़ावस्था की वृद्धि भी उसी क्रम से बढ़ती दीख पड़ती है।

तो फिर पाठशाला किसे कहना चाहिए? पाठशाला विहित शिक्षा की वह संस्था है जहाँ पर बालपन के इच्छाविधेय काल में बालक कौन कौन से अनुभव प्राप्त करे, इस बात का यथासम्भव प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु स्मरण रहे कि केवल पाठशाला ही शिक्षा का साधन नहीं है। जहाँ कहीं एक मनुष्य अपना जीवन समुन्नत करने में बाहरी शक्तियों से संग्राम करता है और एतदर्थ सांसारिक ज्ञान का उपयोग करता है वहीं शिक्षा का कार्य आरम्भ हो जाता है। फिर वहाँ पाठशाला रहे या न रहे। इतना ही नहीं, किन्तु जहाँ कहीं कोई मनुष्य अपने ही अनुभवों से अपने को अपनी परिस्थिति के अधिक अनुकूल बना ले सकता है, वहाँ भी समझो कि शिक्षा का कार्य जारी है, फिर वहाँ कोई शिक्षक रहे या न रहे। शाला में जाने योग्य होने तक घर पर जो शिक्षा मिलती है, उसके बाद घर पर और समाज में जो शिक्षा मिलती रहती है, निज अनुभव से भी जो शिक्षा मिलती है, इन सब शिक्षाओं को हम महत्त्वहीन नहीं समझ सकते। परन्तु यह बात मान लेने पर भी यह मानना ही पड़ेगा कि पाठशालाओं पर हमारा विशेष ध्यान रहना चाहिए और उसी के सुधार में हमारा मुख्य परिश्रम लगना चाहिए। इसका असली कारण यह नहीं है, कि इतर साधनों की अपेक्षा पाठशालाओं का हम पर अधिक प्रभाव होता है, किन्तु यह है कि पाठशालाओं का कार्य हम इच्छानुसार नियन्त्रित कर सकते हैं। क्योंकि किसी बात का हम पर बड़ा प्रभाव होने पर भी अगर हम उसे नियन्त्रित न कर सकें तो उस पर ध्यान देने से भी हमें विशेष लाभ न होगा। **किसी भी राष्ट्र की पाठशालायें देख कर हम बतला सकते हैं कि उस राष्ट्र का भविष्य क्या होगा।*** पैत्रिक शिक्षा की विधि और क्रम सदा एक से रहते हैं; उन में कोई परिवर्तन नहीं होता। सामाजिक शिक्षा और निज 'अनुभव' की शिक्षा ये दोनों नितान्त अनिश्चित हैं। उनकी विधि और क्रम का कुछ भी ठीक ठिकाना नहीं रहता। परन्तु पाठशाला की शिक्षा ऐसी है कि बहुत कुछ हम उसे अपने इच्छानुसार नियन्त्रित कर सकते हैं।

इस सिद्धान्त की पुष्टि में किसी किसी को अधिक सुबूत चाहिए। पाठशाला की विहित शिक्षा का समाज पर क्या चिरस्थायी प्रभाव पड़ता ही है? क्या प्रभावशाली शिक्षक, जितने साधन उनके पास हैं, उनका ऐसा उपयोग कर सकते हैं कि उनसे राष्ट्र की भविष्य दशा नितान्त बदल जावे? इन प्रश्नों के उत्तर में हम ऐतिहासिक प्रमाण ही पेश करेंगे।

इसके लिए चीन का बहुत अच्छा उदाहरण है। इस देश में अनेक वर्षों से एक ही समान शिक्षा दी जाती है। मानों

---

* हम हिन्दुस्तानियों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

विहित शिक्षा के परिणाम की यहाँ प्रत्यक्ष परीक्षा की गई है। पाठशालाओं में रटन्त विद्या सिखलाई जाती है। उसका परिणाम यह हुआ है कि वह अनुन्नतशील राष्ट्र बन गया है। किसी प्रकार की नई प्रथा, किसी प्रकार के नये काम, किसी प्रकार की नई संस्थाएं पसन्द ही नहीं हो सकतीं। पुराना ढर्रा चला जा रहा है। उसमें कोई अदल बदल नहीं। *

इँग्लेंड का भी इसी प्रकार का उदाहरण है। अब क़रीब क़रीब पचास वर्ष हो गये कि जब हर्बर्ट स्पेंसर ने पुराने ढर्रे की शिक्षा के परिणाम क्या होंगे, यह बतलाया था। लैटिन और ग्रीक भाषाओं के प्रभाव का जो ज़ङ्ग इस राष्ट्र पर चढ़ गया है वह निकलता ही नहीं †। हर्बर्ट स्पेंसर ने अपने ग्रन्थ में विज्ञान के महत्त्व की घोषणा की थी। वह चाहता था कि विज्ञान की ओर अँगरेज़ लोग अधिक दृष्टि दें। उसने लिख दिया था कि अगर उद्योग-धंधों में विज्ञान का अधिक उपयोग न किया जायगा तो इँग्लेंड के उद्योग-धंधों की दशा धीरे धीरे बिगड़ती जायगी। यह स्पष्ट है कि उसकी भविष्य वाणी ठीक ही निकली *।

जापान और जर्मनी विहित शिक्षा के उदाहरण हैं और उससे इन देशों ने बड़ा लाभ उठाया है। जापान में शिक्षा ने चमत्कार कर दिखलाये हैं। यह उसके गत चालीस वर्ष के इतिहास से स्पष्ट है। अगर विहित शिक्षा के प्रभावशाली परिणाम जानने हों तो इस देश की उन्नति का इतिहास पढ़ना चाहिए। उसी प्रकार जर्मनी ने इस विहित शिक्षा से क्या क्या चमत्कार कर दिखलाये, यह उसके इतिहास से जाना जा सकता है। आज युद्ध के समय भी यह बात छिपी नहीं है। ईसवी सन् १७७१ में जब जर्मनी ने पेरिस शहर जीत लिया, उस समय उस देश के सेना-नायक वॉन मोल्टके ने कहा कि इस अतुल्य विजय का श्रेय जर्मनी के शिक्षकों को है। उद्योग-धन्धों की पाठशालाओं की बदौलत ही जर्मनी ने व्यापार में इतनी भारी दौड़ मारी है। सारांश, जर्मनी विहित शिक्षा के क्रान्तिकारक परिणामों का एक मूर्तिमान् उदाहरण है।

शारीरिक आनुवंशिकता से शील-स्वभाव बनता है या परिस्थिति से? यह प्रश्न हमेशा से चला आया है। वास्तव में दैववाद और उद्योगवाद के प्रश्न का ही यह दूसरा रूप है। पहली बात तो यह है कि लाखों लोग उद्योग में ही विश्वास रखते दीख पड़ते हैं। ऐसा न होता तो इतना श्रम हम रात दिन न उठाते, न इतनी आशा किये बैठे रहते। आशा से ही जगत् का सब काम चला है।

मानवरचनाशास्त्रज्ञ (Anthropologists) यह मानते हैं कि आनुवंशिकता की अपेक्षा परिस्थिति के परिणाम सदा अधिक ही हुए हैं। आनुवंशिक कारणों की अपेक्षा परिस्थित्यात्मक कारण ही किसी प्राणी को जीवन-कलह में विजयी करने में अधिक फलीभूत हुए हैं। हमारी अन्तःप्रवृत्तियों का महत्त्व बहुत कम है, क्योंकि

---

* इस पर कोई कहेंगे कि यह नितान्त अनैतिहासिक है, क्योंकि चीन की नई जागृति इसके विपरीत प्रत्यक्ष प्रमाण है। परन्तु यह अच्छी तरह ख़याल रखना चाहिए कि यह नवीन जागृति पाश्चात्य संसर्ग से पैदा हुई है। अगर चीन से किसी प्रकार पाश्चात्य विचारों का सम्पर्क न होता, तो आज भी वही पुराना चीन बना रहता। इसका यही सुबूत है कि यहाँ की राज्यक्रान्ति अभी तक स्थायी नहीं हुई।

† थोड़े ही महीने पहले शिक्षामन्त्री मि० फ़िशर ने पार्लियामेंट में शिक्षा सुधारने के लिए एक एज्युकेशन-बिल पेश किया था। परन्तु वह स्वीकृत नहीं किया गया। शिक्षा-सुधार की आवश्यकता अँगरेज़ी राष्ट्र को जँच गई है, और जहाँ तहाँ इस विषय में लेख निकलते हैं और वक्तृतायें भी होती हैं। बीच में यह लहर बड़ी ज़ोरदार हो गई थी। अब बहुत कुछ मन्द हो गई है। इस लहर के उत्पन्न होने का कारण जर्मनी के साथ महायुद्ध आरम्भ होना था। सब से पहले लोग शिक्षा में ही दोष ढूँढ़ने लगे। जर्मनी और इँग्लेंड की शिक्षा की तुलना होने लगी। इससे भी विहित शिक्षा के प्रभाव दीख पड़ते हैं।

* जर्मनी के विज्ञानमूलक उद्योग-धंधे इँग्लेंड के व्यापार को पीछे हटाते चले जा रहे थे। यह युद्ध भी वास्तव में वैज्ञानिक झगड़ा ही है। इससे विहित शिक्षा की प्रधानता स्पष्ट दीख पड़ती है।

नीचतर प्राणियों की अन्तःप्रवृत्तियों की अपेक्षा वे कम परिणाम-कारक हैं। सारांश, परिस्थिति ही हमारे जीवन में विशेष महत्त्व की बात है। और इन परिस्थितियों का सामना करने में हमें शिक्षा सहायता देती है। इस कारण उसका प्रभाव हमारे लिए सर्वव्यापी है। और हमें यह शिक्षा पाठशालाओं के द्वारा मिलती है। उनसे हम विशिष्ट परिस्थिति पैदा करते हैं, परिस्थिति का नियन्त्रण कर सकते हैं और परिस्थिति का उपयोग भी अपने फ़ायदे के लिए कर सकते हैं।

पाठशालाओं का बड़ा भारी कार्य ज्ञान का वितरण करना है। दूसरा कार्य यह भी है कि यहाँ नये नये अनुभव प्रत्येक मनुष्य प्राप्त कर सकता है। इस तरह व्यक्ति का विकास होता जाता है। और यही दोनों बातें राष्ट्रों की उन्नति के लक्षण और कारण हैं। जो संस्थायें हमारे जीवन का इतना बड़ा कार्य करती हैं, उनकी ओर हम उदासीन रहें तो यही समझना चाहिए कि हम अपने जीवन के विषय में उदासीन हैं। इस विषय में निराश होकर हतोत्साह हो बैठना जीवन-कलह में हार मान कर मृत्यु की बाट देखना है।

गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए०

प्राचीन भारतीयों की संरक्षित व्यापार-पद्धति।

सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति और राष्ट्र-वैभव का मूल कारण केवल व्यापार ही है और यह बात आज कल की तरह प्राचीन काल में भी व्यवहारज्ञ लोगों को मालूम थी। यहाँ तक कि महाभारत के समान महाकाव्य में भी इस विषय का अत्यन्त मार्मिक विवेचन पाया जाता है। इसका कुछ थोड़ा सा वृत्तान्त पाठकों के लिए हम यहाँ देते हैं।

हर एक व्यवसाय में, प्रत्येक कामकाज में, विचित्र वैज्ञानिक अन्वेषणों में और नानाविध कला-कौशलों में प्रत्येक मनुष्य, अपनी अपनी अभिरुचि के अनुसार, जब बिलकुल लग जायगा तभी राष्ट्र की उन्नति होगी। क्योंकि उद्यम से ही व्यापार के सब अङ्ग वृद्धि पाते हैं और उनको स्वाभाविक उत्तेजना मिलती है, तथा व्यापार आप ही आप फैल जाता है। व्यापार के फैलने से देश काञ्चन-मय हो जाता है—किम्बहुना इसी से सम्पूर्ण संसार धनाढ्य बनता है।

सुप्रसिद्ध आँग्लकवि कौपर ने एक जगह कहा है कि व्यापार मानों भूगोल का एक **काञ्चन-मय वलय** ही है "Trade is a golden girdle of the globe." इस के सिवा यह बात हमें कभी न भूलना चाहिए कि पाश्चात्य लोग व्यापार को ही अपना मुख्य ध्येय समझते हैं; और उससे वे सदैव पूरा पूरा लाभ उठा लेते हैं।

परन्तु पश्चिमी लोगों के समान ही हमारे प्राकालीन पूर्वज भी व्यापार के द्वारा देशहित साधने और राष्ट्रकल्याण करने में पूर्ण निपुण थे। इस में कुछ भी सन्देह नहीं है। क्योंकि इस विषय में महाभारत में बिलकुल स्पष्ट दिग्दर्शन किया गया है। वहाँ धर्मराज युधिष्ठिर को राजनीति-विषयक महत्त्वपूर्ण उपदेश करते हुए महामुनि नारद ने उन से पूछा है कि, "हे राजा युधिष्ठिर, तुम्हारे साम्राज्य के प्रामाणिक व्यवसायी लोग, तथा व्यापारी जनसमूह, और सम्पूर्ण शिल्पी वर्ग, सब लोग, अपना अपना उद्योग व्यवस्थित रीति से और उत्साह-पूर्वक करते हैं या नहीं?" क्योंकि जब सब व्यवसायी लोग अपने अपने काम में रँग कर सदैव उद्योग में लगे रहेंगे, अपने व्यवसाय में अपना तन मन धन अखण्ड रूप से अर्पण करेंगे, अधिक क्या, उसी में रातदिन लगे रहेंगे, तभी राष्ट्र का अभ्युदय होगा—उसको उन्नतावस्था प्राप्त होगी। तभी देश समृद्धिशाली होगा; और उसको उच्च श्रेणी का सुख मिलेगा।

यही नहीं, किन्तु तभी उसका सर्वत्र बोल बाला रहेगा; और सारे संसार में तभी उसे ऊँचे दर्जे का सम्मान मिलेगा ।

अवश्य ही, ये और ऐसे ही अन्य अनेक कारण मन में ला कर ही महर्षि नारद ने युधिष्ठिर महाराज से महत्त्व का उक्त प्रश्न किया; और न सिर्फ़ पर्याय से, किन्तु प्रत्यक्ष ही यह सूचित किया कि, जब हमारे देश के सम्पूर्ण उद्योग-धन्धों का सब प्रकार से, उत्तम रीति से, परिपोषण होगा, तभी आबालवृद्ध सभी स्त्री-पुरुषों का यथास्थित, स्वयमेव, जीवन-निर्वाह होगा; और राष्ट्र का सच्चा कल्याण होगा ।

अस्तु । नारद मुनि की यह जिज्ञासा महाभारत के सभापर्व में है । इसे देख कर हमारी इस मनोवृत्ति में, जो बहुत काल के सङ्घट्टन से दूषित हो रही है, एकदम फ़र्क़ पड़ जाता है । किम्बहुना, हमारे हृत्कमल का प्रेमोद्भूत आनन्दोदधि एकदम उमड़ पड़ता है; और उस में बराबर लहरें उठने लगती हैं—वे बहुत ही ज़ोर से उछलती हैं । इतना ही नहीं, बल्कि इस का हम पर, एक प्रकार का, इष्ट और विचित्र प्रभाव पड़ता है; और जब हम यह देखते हैं कि, उन सर्व-संग-परित्याग किये हुए ऋषिवर्गों में भी, सिर्फ़ जनता के कल्याण की ही इतनी तीव्र लालसा थी; और इसी कारण वे व्यापार-विषयक विचारों की चर्चा करते रहते थे, तब हमारे मन में उन पर अत्यन्त आदर-भाव और निस्सीम श्रद्धा उत्पन्न होती है—तब हमें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि, "**परोपकाराय सतां विभूतयः**"—अर्थात् सन्तों की विभूति परोपकार के लिए ही होती है; और परोपकार की चिन्ता में ही वे व्यग्र रहते हैं ।

प्रस्तुत विषय का मूल लेख महत्त्वपूर्ण है, अतएव उसका थोड़ा सा अवतरण हम यहाँ पर देते हैं । नारद ऋषि धर्मराज से पूछते हैं—

कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥
—म० भा०, सभा०, श्लो० ८३ ॥

इस श्लोक का भावार्थ हम पहले लिख आये हैं । तथापि, इसमें 'वार्ता' शब्द बड़े महत्त्व का है; और वह निस्सन्देह ध्यान में रखने योग्य है । क्योंकि वह बहुत व्यापक है; और उसमें कृषि-जीवन, पशु-पालन, व्यापार, उधार और नक़द देन-लेन, व्याज-बट्टा, चक्रवृद्धि, उद्योग, व्यवसाय और उपजीविका के अन्य साधन, इत्यादि सब का अन्तर्भाव होता है ।

इससे, यह कहने में कुछ भी प्रत्यवाय नहीं है कि, प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों में व्यापार-विषयक दूरदर्शिता पूरी पूरी पाई जाती थी । तथापि, हमारे ग्रन्थों, और पूर्वजों के सर्वाङ्ग-सुन्दर बुद्धि-वैभव, के विषय में जानकारी न होने के कारण, जो चाहता है वही, हमारे ऊपर मनमाने तौर से, सूक्त-असूक्त और समय-असमय, भले-बुरे, आक्षेप किये बिना नहीं रहता । अतएव, हम, ऐसे लोगों की परवा न करते हुए 'श्रीयुत सी० एन० के० आयर, एम० ए०, एल० टी० के एतद्विषयक विचार पाठकों के सामने रखते हैं, जो उन्होंने श्रीमच्छङ्कराचार्य के चरित्रात्मक एक लेख में प्रदर्शित किये हैं । वे कहते हैं—

> "India suffers to-day in the estimation of the world more through that world's ignorance of the achievements of the heroes of Indian history, than through the absence or insignificance of such achievements." (Shree Shankrâchârya : His Life and Times. Fourth Edition. P.V.)

अर्थात् सम्पूर्ण संसार की दृष्टि में, भारतवर्ष का हीनत्व जो आज कल भासमान होता है, वह वास्तव में वैसा ही नहीं है । सच पूछिए तो भारतवर्ष में (ज्ञान, विज्ञान, साहस, शौर्य, शास्त्र, कला, नीति, उन्नति, इत्यादि विषय के) नानाविध पराक्रमों का लेशमात्र भी अभाव अथवा न्यूनता नहीं

है; किन्तु इस विषय में लोगों का केवल अपरिमित अज्ञान ही कारण है। इसीसे उनको यह अभाव दिखाई देता है; और यह हीनत्व भासता है।

ऐसा हाल हो रहा है, इसीलिए हम आज कल की परिस्थिति के विषय में कुछ लिखने का साहस करते हैं। हमारे कितने ही प्रिय भाइयों तथा कुछ पूर्वीय और पश्चिमीय विद्वानों की एक ऐसी भ्रान्तिमूलक सम्मति बन गई है कि व्यापार की सच्ची दृष्टि हमारे प्राचीन पूर्वजों को न थी; और इस काम में उन्होंने लेशमात्र भी विचार नहीं किया था; और इस विषय में भी उनको कुछ कल्पना न थी कि व्यापार से देश की सम्पत्ति कैसे बढ़ती है; और उससे सम्पूर्ण राष्ट्र वैभव-सम्पन्न कैसे होता है। अधिक क्या कहा जाय, वे यहाँ तक कहते हैं कि, मुक्त, अथवा अनियन्त्रित व्यापार, और नियन्त्रित अथवा संरक्षित पद्धति, के तुलनात्मक गुणदोष लोगों के सामने रख कर, इस विषय में अपने राष्ट्र के परिपक्व विचार सुनने की ओर भी उनका मन आकर्षित नहीं हुआ था; इत्यादि, इत्यादि। परन्तु वास्तविक दशा निस्सन्देह इससे भिन्न थी। यह बात पिछले उदाहरण और अगले विवेचन से सहज ही पाठकों के ध्यान में आ जायगी।

अस्तु। प्राक्कालीन ज्ञान-भाण्डार के विषय में पूर्ण अज्ञान होने के कारण कितने ही अविचारवान् लोग हमारे पूर्वजों को व्यवहारशून्य भले ही समझा करें; व्यापार विषय में वे कदाचित् उन्हें मूर्ख भी गिनें; वे यह भी कहा करें कि, अर्थशास्त्र से उनकी कभी पहचान भी न थी; अथवा वे यह भी कल्पना किया करें कि स्वदेश की साम्पत्तिक स्थिति का उन्होंने स्वप्न में भी विचार नहीं किया था; तथापि हमें यह कहने में कुछ भी शङ्का नहीं है कि, वास्तविक दशा, इस नितान्त भ्रामक कल्पना से, बिलकुल भिन्न है; क्योंकि यह बात बिलकुल प्रमाण-सिद्ध है कि, व्यापार की नीति, संरक्षित व्यापार-पद्धति का आशय, अप्रतिबन्ध व्यापार का एकदेशीय स्वरूप, इत्यादि बातें उन्हें पूर्णतया अवगत थीं। उनको यह अच्छी तरह मालूम था कि, संरक्षित व्यापारपद्धति से ही हमारे देश के सब प्रकार के शिल्पीवर्ग को योग्य प्रोत्साहन मिलता है; और हमें अपना कला-कौशल सारे संसार के सामने रखने का अमूल्य अवसर मिलता है। उसीसे कल्पना या अन्वेषण-शक्ति में स्वयमेव नवीन अङ्कुर फूटते हैं; और उत्पादक सम्पत्ति भी उसीसे आप ही आप बढ़ती है। अधिक क्या कहें, अपनी कर्तृत्वशक्ति, विशाल बुद्धि-वैभव, सामर्थ्य और पराक्रम से सारे संसार के व्यापार के सब बाज़ार अपने हस्तगत करके उनका नियन्तृत्व, ऐसा ही कर्तृत्वशाली देश, बात की बात में, अपने हाथ में लेलेता है। यही नहीं, बल्कि इसीसे वह देश सब प्रकार की हलचलों और सम्पूर्ण व्यापारों का केन्द्र बन जाता है।

मतलब यह है कि जब तक संरक्षित व्यापार-पद्धति हमारी भारत-भूमि में पूर्णतया वास करती थी तब तक हम सारे जगत् को सब प्रकार का माल पहुँचाते थे। यही कारण था कि हमारा निर्गत व्यापार सब देशों से बराबर बढ़ता ही गया। अतएव दरिद्रता दूर होने लगी; अन्त में उसने इस देश से अपना डेराडंडा उठाया। इसके बाद सम्पत्ति का प्रवाह इसी देश की ओर फिरा; और वह बढ़ता ही गया; हम अपने कर्तृत्व से सम्पत्तिशाली बन गये। इसका परिणाम यह हुआ कि हम भारतीयों का सम्पूर्ण भारतवर्ष काञ्चनमय हो गया; और कोयले के धुएँ की जगह सोने का ही धुआँ सर्वत्र निकलने लगा। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी अपने "भारत का दारिद्र्य" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं —

"*Gold, gems, silks, and ornaments, were in all families.* (Poverty and Un-British Rule in India. P. 584., Edition 1901).

इसी विषय में इतिहासकार लार्ड एल्फिन्स्टन कहते हैं —

"The Greeks describe India as "a country teeming with population, and *enjoying the highest degree of prosperity*."

इसी प्रकार मिशनरी वार्ड साहब कहते हैं —

"When under the Native Rajas, India seems to have *excelled in wealth, magnificence, and literature.*" (India and the Hindoos, By F. De. W. Ward, Missionary, Madras. P. 72, Edition 1853).

सारांश यह है कि, भारतवर्ष के प्राचीन वैभव के विषय में देशियों के अतिरिक्त अनेक विदेशियों ने भी अनुकूल ही सम्मति दी है। तथापि, यह सच है कि, मुक्त व्यापार अर्थात् अप्रतिबन्ध-व्यापारपद्धति के भोक्ता, पुरस्कर्त्ता और प्रतिपालक हमारे पूर्वजों को इस संरक्षित व्यापारपद्धति के विषय में केवल दोष ही देंगे—यही नहीं, किन्तु वे उनकी गणना मूढ़ अथवा पशु-वर्ग में भी करेंगे। क्योंकि उनकी यह दृढ़ सम्मति हो गई है कि, मुक्त व्यापार-पद्धति से सब देशों में बराबर प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाने के कारण, सब बाज़ार बढ़ते रहते हैं। इस से सब माल सस्ता बिकता है; और ग्राहक फ़ायदे में रहता है।

परन्तु यह सिद्धान्त केवल एकदेशीय ही है; और इसीलिए यह सर्वांश में और सर्वत्र बिलकुल उपयुक्त नहीं हो सकता। हाँ, यह बात सच है कि, देश का सुधार, राष्ट्र की विस्तृत सम्पत्ति, विद्या की अभिवृद्धि, शास्त्रकलाओं की उन्नति, इत्यादि परिस्थिति के अनुसार उक्त सिद्धान्त का मण्डन, किसी किसी विषय की दृष्टि से विशेष मोहक, कम से कम देखने में सकारण, और अर्थ-दृष्टि से दोष-रहित, दिखाई देता है। तथापि उसी के कारण कितने ही देश बिलकुल भिखारी भी हो रहे हैं; और यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष और प्रमाण-सिद्ध भी है। कितने ही विद्वान् कहलानेवालों को हमारा यह प्रतिपादन कदाचित् अप्रयोजक और अर्थशास्त्र की दृष्टि से असम्बद्ध सा जान पड़ेगा। इसीलिए हम यहाँ पर, इस विषय में, कुछ पश्चिमी विद्वानों के विचार अपने प्रिय भाइयों के सम्मुख उपस्थित करते हैं; क्योंकि उन्हीं के वचन आज कल अधिक प्रमाण मानने की चाल है। बेंजमिन होअर नामक ग्रन्थकार लिखता है —

"All this is a consequence of the competition in shops, multiplying the middle-man, and raising the cost to the consumer. In Scotland, competition gave us the "clearances" that depopulated whole counties like those of Sutherlandshire."............

"In India an equal devastation has been the result. That country, as Europeans found it, was declared to be "not inferior in civilisation to the people of Europe." (*Vide* Sleeman's *Rambles in India*, Vol. I., p. 4.)

"It (India) fed its own people plentifully, and clothed them in a cotton of its own growth and manufacture. Manchester trade-competition broke its industry more than Clive's soldiers broke its power.' (*Vide* "Preferential Trade," Edition 1904, pp. 46, 47).

इसका भावार्थ यह है कि, प्रतियोगिता या चढ़ा-ऊपरी से मध्यस्थों की खब बन आती है; और माल का व्यवहार करनेवालों को हानि उठानी पड़ती है। स्काटलेंड में इस प्रकार की प्रतियोगिता से माल की खपत अवश्य हुई; परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि, सदरलेंड-शायर के समान प्रान्त बिलकुल उजड़ गये।

मुक्त व्यापार से भारतवर्ष की भी यही दशा हुई। इस देश के यूरप के समान ही सभ्य होने में सबका एकमत है। इसके अतिरिक्त यह पहले धनवान्, समृद्ध और सुसम्पन्न था। अतएव इस देश के लोगों को अन्न-वस्त्र की कोई कमी नहीं थी, यह बात सबको मालूम है। परन्तु मैंचेस्टर और लङ्काशायर की प्रतियोगिता से इस देश के उद्योग-धन्धों का नाश हो गया; और प्रायः वे धूल में मिल गये।

मतलब यह कि, अप्रतिबन्ध-व्यापारपद्धति सब देशों में और सब समय कल्याणकारक नहीं मानी जा सकती; और उक्त मत सच भी नहीं है। इसी-

लिए फ़्रांस ने भी संरक्षित व्यापारपद्धति के ही स्वीकार किया; और उसके पुरस्कर्त्ता जान बाप्टिस्ट कोलबर्ट ने उसे कार्यरूप में परिणत किया। कोलबर्ट साहब अपने एक "वार्षिक वृत्तान्त" में लिखते हैं—

"Reduction *of export duties on all domestic products, diminution of import duties on raw materials, exclusion of foreign manufactures by means of increase of duties.*"

अर्थात् अपने देश के बाहर निर्गत होनेवाली तज्जन्य वस्तुओं पर, और यहाँ आनेवाले कच्चे माल पर, कर का परिमाण कम रखना चाहिए; परन्तु जो माल विदेशों से तैयार हो कर आता है उस पर खूब कर बढ़ाते रहना चाहिए, कि जिससे अपने देश में उस परकीय माल का बिलकुल प्रवेश न होने पावे।

इस प्रकार यह संरक्षित व्यापारपद्धति फ़्रांस के लिए सब प्रकार से कल्याणकारी ही सिद्ध हुई; और उससे फ़्रांस का ऐश्वर्य बढ़ता ही गया। अतएव कोलबर्ट की स्तुति गाते हुए एम० वांकी साहब कहते हैं—

His system was "the finest politics—economical edifice ever erected by any Government."

मतलब यह कि, कोलबर्ट की संरक्षक व्यापारपद्धति, राजनीति और अर्थशास्त्र, दोनों, की दृष्टि से उत्तम है; और वैसी पद्धति आज तक अन्य किसी सरकार ने नहीं चलाई थी।

बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं, स्वयं इँगलेंड को भी, गत सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, लार्ड बेकन के नेतृत्व में, इसी संरक्षक व्यापार-पद्धति से ही बहुत लाभ हुआ। अर्थात् इँगलेंड के बहुत से निरुद्योगी लोग धन्धे में लग गये, अनाड़ी लोग कारीगर बन गये। व्यापार के बाज़ार सर्वत्र चमकने लगे; और इँगलेंड का वैभव बढ़ा। यही बेंजमिन होअर साहब ने लिखा है—

"*Curtiss points out an early English experience. Protection was introduced into England under the* leadership of Lord Bacon. The country had been filled with tramps and beggars out of work................ Flourishing manufacturing centres sprang up in every part of the realm, and England entered upon a career of industry,......and grandeur."......(Preferential Trade. By Benjamin Hoare. P. 289., Edition 1904.)

संरक्षित व्यापार-पद्धति के विषय में पश्चिमी विद्वानों के विचार आपने जान लिये। इस लिए अब हम महाभारत की ओर फिर आते हैं; और उस समय की साम्पत्तिक स्थिति का अवलोकन करके यह विचार करते हैं कि अर्थशास्त्र, या सम्पत्ति-शास्त्र, की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय विद्वानों के क्या विचार थे। यह सच है कि हमारे ऋषिवर्य महामुनि नारद जी ने ऐडाम स्मिथ के समान कोई अर्थ-शास्त्र नहीं लिखा था; अथवा साम्पत्तिक दृष्टि से संरक्षित व्यापार-पद्धति का विचार करने के लिए जान स्टुअर्ट मिल की तरह उन्होंने अपनी लेखनी भी कभी नहीं पैनाई थी। तो भी, निस्सन्देह, सम्पूर्ण शास्त्रों, और ज्ञान के सब अङ्गों, में वे पारङ्गत थे; और, अतएव, व्यापार का तत्त्व भी उन्हें अच्छी तरह मालूम था—और यही कारण है कि, उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को, स्वदेशहितार्थ, संरक्षित व्यापार-पद्धति के यथेष्ट अवलम्बन करने का उपदेश दिया। वह उपदेश बहुत मार्मिक और महत्त्वपूर्ण है। अतएव उसका थोड़ा सा उपयुक्त भाग हम यहाँ पर देते हैं।

कच्चिदभ्यागता दूराद्वणिजो लाभकारणात्।
यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं शुल्कोपजीविभिः॥

—म० भा०, सभा० ५-११८।

नारद मुनि कहते हैं कि, हे धर्मराज, परकीय देशों से अपना माल खपाकर लाभ उठाने के लिए, जो व्यापारी तुम्हारे राज्य में आते हैं, उन से तुम्हारे शुल्कविभाग के कर्मचारी यथोचित कर वसूल करते हैं या नहीं? और इस महत्त्वपूर्ण विषय पर

तुम्हारा उचित ध्यान है न ? अब देखिए, नारदमुनि के इस प्रश्न में कितना अर्थ भरा हुआ है। दूरदर्शिता और स्वदेशहितैषिता की इसमें पराकाष्ठा दिखाई देती है। इतना ही नहीं, बल्कि इस श्लोक में संरक्षित व्यापार-पद्धति का मानो 'ओंनामा' ही—श्रीगणेश ही—दृग्गोचर होता है। इस को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह भली भाँति मालूम हो जाता है कि, हमारे भारतीय राष्ट्र ने उस समय इस पद्धति का किस दृढ़ता के साथ अवलम्बन किया था। क्योंकि परकीय देशों के माल पर यदि महसूल बिलकुल ही न होगा तो वह हमारे देश में खूब आवेगा; और स्वदेशी माल को पीछे हटा देगा; इसी लिए अर्थशास्त्रवेत्ता, किम्बहुना परमार्थशास्त्रवेत्ता, श्रीनारदमुनि ने अपने राजा को सूचित किया, कि परकीय माल का प्रतिबन्ध करने के लिए, उस पर यथोचित कर लगाना ही चाहिए—"यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं ?" इस प्रश्न का तात्पर्य हमारे लिए सदैव ध्यान में रखने योग्य है।

इस लिए अतिप्राचीन काल की, और महाभारतकाल में जिसका खूब प्रचार था, वह, संरक्षित व्यापार-पद्धति, अथवा लगभग चार पाँच हज़ार वर्ष पहले की, प्राचीन भारतीयों की व्यापार-नीति, आज कल की फ़्रेंच-व्यापारनीति के बिलकुल समान ही थी। अर्थात् फ़्रेंच व्यापारनीति का यह तत्त्व, कि "*Exclusion of foreign manufactures by means of increase of duties.*" परकीय माल का अटकाव करने के लिए, उस पर खूब कर बढ़ाना चाहिए, प्राचीन भारतवर्ष में खूब प्रचलित था।

इधर कुछ दिनों से, जब से वर्तमान महायुद्ध के कारण संसार के व्यापार में भेद पड़ गया है, यह तत्त्व सर्वांश में मान्य सा हो रहा है कि, संरक्षित व्यापार-पद्धति के ही स्वीकार करने से निस्सन्देह देश की उन्नति होती है; और राष्ट्र वैभव-सम्पन्न होता है। इतना ही क्यों—अनियन्त्रित व्यापार-पद्धति का डङ्का पीटने के लिए जो यथाशक्ति तीव्र ताड़न हो रहा था, अथवा इस पद्धति की भरपूर स्तुति गा कर जो लोग संसार के सामने खूब ब्रह्मज्ञान कथते थे, उन्होंने भी, जान पड़ता है, कम से कम वर्तमान दशा में तो अवश्य, अपनी पगड़ी स्वेच्छानुसार फिराई है।

जो हो, हमें तो यहाँ इतना ही सूचित करना है कि, आज कल पाश्चात्यों ने जिस नियन्त्रित, अथवा संरक्षित, व्यापार-पद्धति का अङ्गीकार किया है, वह हमारे पूजनीय पूर्वजों को अच्छी तरह मालूम थी। इतना ही नहीं, बल्कि उसको उन्होंने प्रत्यक्ष कार्यरूप में भी परिणत किया था; और इसी लिए जब तक हम अपने आप के स्वामी रहे; इस पद्धति का यथोचित रूप से अवलम्बन करते रहे; तब तक हमारा देश, हमारा राष्ट्र, हमारे लोग, हमारे कुटुम्ब, और हमारे लड़के-बाले, सुसमृद्ध रहे, और उन को पेट भर अन्न तथा शरीर भर वस्त्र, यथेष्ट मिलता रहा।*

लक्ष्मीधर वाजपेयी

गुरुकुल ।

सामाजिक प्रश्नों में सब से अधिक जटिल और महत्त्वपूर्ण प्रश्न जातीय शिक्षा का है। समाज के नेता इसको हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह लेख भी उन्हीं की सेवा में समर्पित है।

देशकालानुसार विचारधारा अपना रङ्ग बदला करती है। पहले शिक्षकों का यह विचार था कि

---

* प्रसिद्ध महाराष्ट्र-लेखक नाना पावगी के एक लेख के आधार पर।

मानुषिक प्रकृति के विकास होने में सहायता करना ही शिक्षा का उद्देश है। रूसो का विचार यह था कि संसार से अलग रख कर प्रकृति की शरण में ही, उसके चरित्र तथा ज्ञान का विकास हो सकता है। इस विचार ने उस समय की शिक्षा-प्रणाली के चिथड़े अवश्य उड़ा दिये। उसके विचार के अनुसार तो शिक्षा-प्रणाली में अन्तर नहीं आया, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि पुराने ढङ्ग की सम्प्रदाय-प्रचारिणी शिक्षा से चिढ़ कर यूरोपीय समाज का ध्यान प्रकृति के भेद को जानने की ओर झुकने लगा। यूरोपीय Spiritualism के खँडहर पर रूसो ही ने Materialism की नीव डाली।

इँगलिस्तान ने फ़्रान्स से लड़ कर इन विचारों को अपने देश में घुसने से रोकना चाहा। परन्तु कभी तलवार की धार भी विचार की धार को रोक सकी है ? इँगलिस्तान में भी जातीय धर्म पर कुठाराघात होने लगा। रग्बी और आक्सफर्ड में धर्म्माचार्यों के उपदेशों की ओर से रुचि घटने लगी। यहाँ तक कि गिरजाघर में हाज़िरी तक देना अनिवार्य नहीं रह सका।

ऐसे ही समय में भारत पर अँगरेज़ों का प्रभुत्व जमा और शिक्षकों का ध्यान भारतीय शिक्षा की ओर झुका। कुछ समय तक इस विषय पर बड़ा विवाद रहा कि अँगरेज़ी शिक्षा दी जाय या प्राचीन भाषाओं के द्वारा ही नवीन विचारों की शिक्षा दी जाय। मेकाले ने फ़ैसला कर दिया, और उस दिन से भारत में वर्तमान सरकारी शिक्षा-प्रणाली की जड़ जमी।

जातीय जोश में आकर बहुतेरे सज्जन इस फ़ैसले को तमाम सामाजिक दोषों का कारण समझने लगते हैं। वे भूल जाते हैं कि जातीय भाव का बहुत कुछ प्रादुर्भाव इस शिक्षा ही के कारण हुआ है। भौतिक विज्ञान की उन्नति भारत में इसी द्वारा हुई है और कुरीतियों से ग्रसित समाज का उद्धार भी इसने बहुत कुछ किया है।

परन्तु जिस उद्देश के लिए मेकाले ने भारत में अँगरेज़ी प्रणाली के प्रचार करने का मन्तव्य प्रकाशित किया था, बहुत से विचारवान् नेताओं का मत है, कि उसके पूरा करने में वह जो कुछ सहायता कर सकती थी कर चुकी। जैसे रोगी को एक दवा से किसी समय तक लाभ हो, परन्तु उसके बाद भी उसे पीते रहने पर वह नुक़सान पहुँचाने लगती है, वही दशा भारतीय समाज के शरीर की इस शिक्षा-प्रणाली से हो रही है।

जो कुछ हो, अब से १५ वर्ष पहले पञ्जाब के एक कर्मवीर महाशय ने अपने विचार को कार्य रूप में ही परिणत कर दिया। आप का शुभ नाम ला० मुन्शीराम था। अब आप स्वामी श्रद्धानन्द हैं। यद्यपि उनके, काँगड़ी के गुरुकुल की देखादेखी बहुत से 'कुल' खुल गये हैं; परन्तु इस प्रणाली के संस्थापक आप ही हैं।

देखना यह है कि हमारे गुरुकुल के संस्थापक महाशय भारतीय समाज के रोग को अच्छी तरह पहचान पाये या नहीं। यदि उनका निदान ठीक था तो उनकी चिकित्सा से कुछ भी लाभ हुआ है या नहीं; और यह कि, उनका उद्देश आर्य-समाज की उन्नति करने का था, या उसके साथ भारतवर्ष के उद्धार का भी। हमारे समाज का क्या रोग है, और वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने उसमें क्या उपद्रव पैदा कर दिये हैं। उत्तर बहुत से हो सकते हैं। उनमें से एक यह भी है—

भारतवर्ष मुसलमान-काल में धार्मिक रोग से पीड़ित था। मुसलमानों ने धर्म के नाम से इस पर बहुत अत्याचार किया; परन्तु उन्होंने कभी कभी लूट-मार को छोड़ कर भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था को नहीं छुआ। खेती, महाजनी और कारीगरी का पूरा भार हिन्दुओं ही पर था। मुस-

लमान पेश करते थे । इन्साफ़ की मात्रा बहुत कम थी, जिसके कारण शान्ति-पूर्वक मेहनत करने में बहुत कुछ बाधायें थीं; परन्तु हमारे अत्याचारी यहीं पैदा होते थे, यहीं पलते थे और यहीं मरते थे । भारतीय किसान धर्म के दुखिया थे; अकाल में मरते थे; कदाचित् और रोगों से भी मरते हों, परन्तु इतने अधिक नहीं; मूर्ख थे जैसे कि अब भी हैं; परन्तु बाज़ बाज़ इतिहास-वेत्ता चाहे जो कुछ कहें, भारतवर्ष इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि वे पेट के टूटे भी थे ।

मुग़ल-राज्य का ह्रास हुआ और अँगरेज़ी राज्य की भारतवर्ष में नीव पड़ी । अँगरेज़ भारतवर्ष में तिजारत करने आये थे । वे उस पर राज्य भी करने लगे । तिजारत में आडम स्मिथ ही की बात को मानते हुए लेन देन में दोनों तरफ़ फ़ायदा तभी होता है जब कि वे बराबर की श्रेणी के हों । विजयी जाति विजेता के साथ व्यवहार करके अपना ही फ़ायदा कर सकती है ।

यह सम्बन्ध कम्पनी के टूट जाने तक नहीं रहा । फ़्रीट्रेड (Free trade) के नाम से अब तक वह क़ायम है । भारतवर्ष में धार्मिक स्वतन्त्रता हो गई । धर्म का विकास होना चाहिए था, परन्तु पश्चिमीय शिक्षा की नई रोशनी के सामने धर्म की जो कुछ उन्नति हुई हो, विवाद की अवश्य हो गई; शान्ति और इन्साफ़ का राज्य हो गया, शेर और बकरी एक घाट पानी पीने लगे; रेलें बनीं, तार और डाकघर खुले; एक्सपोर्ट (Export) और इम्पोर्ट (Import) की समृद्धि हुई; समाचारपत्र, पत्रिकायें, पुस्तक और पुस्तिकायें, दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे; बड़े बड़े शिक्षाभवन भी बने; परन्तु देश की आर्थिक अवस्था कहाँ तक सुधरी ? कठिन प्रश्न है । परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब भी इसकी बहुत हीन अवस्था है; उन्नति जो कुछ हुई हो ।

सारांश यह कि हमारे समाज का रोग आर्थिक है, न कि धार्मिक । कोई भी शिक्षा-प्रणाली हो, यदि वह बहुत ऊँचे उद्देश रखते हुए भी जाति की आर्थिक दशा सुधारने में असमर्थ है तो वह अपने उद्देश में थोड़ी ही दूर तक सफल होगी । (Spiritualism) के प्रेमी चाहे हम से नाराज़ हो जायँ, परन्तु कहना पड़ता है कि धर्म की मात्रा बहुत कुछ हो चुकी, अब अर्थ की आवश्यकता है । धर्म में उन्नति अर्थ ही के साथ होगी; पेट भरने ही पर भजन में ध्यान लगेगा, पहले नहीं ।

कहने का यह तात्पर्य नहीं कि शिक्षा का यही कोरा उद्देश हो कि युवक मेहनत मज़दूरी के योग्य बनाये जायँ । उद्देश यह हो सकता है कि देश के उद्धार के लिए उसकी उत्पादन-शक्ति बढ़ाई जाय और उससे समाज के उस अङ्ग की सहायता की जाय जो इस कार्य्य में अशक्त है । ऐसे उद्देश का पूरा करना बहुत कठिन है । केवल धनोपार्जन के उद्देश को सामने रखने से हमारे देश की वही दशा होगी जो आज कल योरप की हो रही है । एक तरफ़ से हड़ताल, बलवा और अशान्ति और दूसरी तरफ़ से लोभ और घृणा । परन्तु आशा की जा सकती है, कि वास्तविक धर्म की, सम्प्रदाय की नहीं– शिक्षा साथ साथ दिये जाने पर धनोपार्जन की इच्छा और योग्यता होते हुए भी इतने त्याग की मात्रा हो जाय कि हम उस धन से अपने अशक्त भाइयों की सहायता कर सकें ।

मुंशीराम जी ने सामाजिक रोग का और ही निदान पहचाना । आप का विचार है कि सरकारी शिक्षा-प्रणाली ने वैदिक धर्म का अच्छी तरह ह्रास कर दिया । उनका विचार है कि डी. ए. वी. कालेज (D.A.-V.College) कितने ही खुल जायँ, उनसे इस प्राचीन धर्म का उद्धार नहीं होगा । यह तभी हो सकता है जब कि प्राचीन शिक्षा-प्रणाली भी फिर से इस कलिकाल में जन्म ले ।

निवेदन यह है कि वैदिक धर्म का ह्रास हुए थोड़े

दिन नहीं हुए। बुद्ध-काल के पहले ही यह दशा हो चुकी थी। हम तो समझते हैं कि अँगरेज़ी शिक्षा ने आर्य्य-समाज के मूल सिद्धान्तों की उन्नति करने में कुछ सहायता ही दी है। ह्रास प्राचीन प्रथाओं का अवश्य हुआ है—और यह प्रकृति का नियम है—परन्तु धर्म के कुछ अङ्गों ने उन्नति भी की है। मुसल्मान-राज्य के बिगड़ने पर हमारे कर्म बहुत कुछ भ्रष्ट हो गये थे; हममें स्वार्थ, लोभ और मत्सरता आदि दोष आ गये थे। अँगरेज़ी शिक्षा ने इस ओर हमारी दशा को बहुत कुछ सुधारा है। देश-सेवा करने के लिए यद्यपि बहुत से नेता नहीं निकले, परन्तु जितने आप देखते हैं, वे अँगरेज़ी शिक्षा की ही सन्तान हैं।

यदि वैदिक धर्म का उद्धार करना ही गुरुकुल का उद्देश था, तो यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि इस संस्था ने उसको पूर्ण करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है। संस्कृत का प्रचार अधिक होने लगा है। वेद में कलिकाल की सभ्यता के बीज ढूँढ़ने में गुरुकुल के स्नातक तत्पर हैं। वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए बहुत से उपदेशक अपना आत्म-समर्पण कर रहे हैं। यदि तुलना की जाय तो गुरुकुल की उन विश्वविद्यालयों से बहुत कुछ समता है जो फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति के पहले योरप में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए स्थापित थे।

परन्तु क्या आज कल किसी विश्वविद्यालय का किसी ख़ास धर्म या सम्प्रदाय के प्रचार करने का उद्देश हो सकता है? समय की गति को देखिए। पश्चिमी सभ्यता को चाहे जितना भला या बुरा कहिए, इस समय वही संसार में अखण्ड राज्य कर रही है। कहीं कहीं किसी भाग्यवान् कोने में आप की वैदिक सभ्यता का राज्य है। विश्वविद्यालय का उद्देश मानुषिक शक्तियों के विकास करने का है। इसका पैाधा कभी किसी धर्म या सम्प्रदाय की सङ्कीर्ण वायु में फल फूल नहीं सकता। इसके लिए स्वतन्त्र विचार-वायु चाहिए। हाँ, माली की तरह सञ्चालकों का यह कर्तव्य अवश्य है कि उस पैाधे को कुवासनाओं के ज़हरीले कीड़ों से बचायें और अपने तन मन धन से उसको सींचते रहें।

उद्देश के विषय में मत-भेद होते हुए भी कार्य्य-प्रणाली में बहुत कुछ अनुकरण करने योग्य बातें पाई जा सकती हैं। गुरुकुल एक ऐसी ही संस्था है। शिक्षा के चार अङ्ग हैं—शिक्षक, शिष्य, शिक्षालय और शिक्षा। शिक्षक को लीजिए। शिक्षा के कुछ ही उद्देश काग़ज़ पर लिखे हों, उनको पूर्ण करना शिक्षक की योग्यता पर ही नहीं उसके चरित्र पर भी निर्भर है। यदि शिक्षक निष्काम-व्रत की धारणा किये हुए अपने शिष्यों की सेवा में तत्पर है, यदि उसका व्यवहार प्रेममय है, यदि सेवा के बदले वह केवल भक्ति का ही प्रार्थी है, यदि किसी सम्प्रदाय या जातिविशेष में बँधे होने पर भी उसके विचार स्वतन्त्र हैं, तो उसके शिष्य भी उन्हीं गुणों का अनुकरण करेंगे। विश्वविद्यालयों की कीर्ति बढ़े; देश का भला हो और नये सेवकों की कमी न रहे। हमारे सरकारी शिक्षकों की रङ्गत देखिए। इने गिने रत्नों को जाने दीजिए। अधिकतर क्या पूर्व निर्दिष्ट गुणों से विभूषित हैं? वे शिक्षक का कार्य जीविका के लिए करते हैं, यह नहीं कि उनको वास्तव में शिक्षा या शिष्य से प्रेम है। पढ़ाई का समय ख़तम हुआ; शिष्य इधर, शिक्षक उधर। कुछ समय के बाद एक दूसरे को पहचानते भी नहीं। फिर कैसे सरकारी शिक्षकों के शिष्य सरकारी नौकरी तलाश न करें, क्यों उनमें से इतने कम विद्या-प्रेमी निकलें और क्यों न इतनी अधिक कमी देश-सेवकों की भारतवर्ष में रहे?

इन्हीं शिक्षकों के दर्शन से थके हुए फेल्प्स साहब गुरुकुल को देख कर मुग्ध हो गये थे। यहाँ शिक्षकों के आचरण और उनका शिष्यों के प्रति

व्यवहार अनुकरणीय है। संसार के एक कोने में, हिमालय की छाया में, गङ्गा के तट पर, वे एक आदर्श की खोज में अपना जीवन समर्पण किये हुए हैं। फिर क्यों न उनके शिष्य उन्हीं की तरह सेवाभिमानी, सच्चे और आत्म-संयमी निकलें?

बालक नये पौधे की तरह हैं। जिधर चाहें आप उन्हें झुका दें। हमारे स्कूलों और कालेजों में यह एक बड़ा भारी दोष है कि उनमें पढ़नेवाले नवयुवक या बालक सच्चरित्र महाशयों की निगरानी में नहीं रहते। उनको अपने अध्यापकों के चरित्र के अनुकरण करने का समय नहीं मिलता। बदलियाँ इतनी हुआ करती हैं। एक शिष्य ५ घण्टे के अन्दर इतने गुरु बदला करता है कि किसी की ओर उसकी विशेष श्रद्धा नहीं होती।

यही कारण है कि आज कल हमारे सरकारी शिक्षालयों में Discipline के प्रश्न ने बड़ा ज़ोर बाँध रक्खा है। यहाँ प्रेम नहीं, भय का बन्धन है। और, शिष्य उसको तोड़ने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। क्या हड़ताल इत्यादि सामाजिक रोग हमारे दुर्गम भविष्य के सूचक नहीं हैं? दवा यह नहीं है कि वे बन्धन और भी जकड़ दिये जायँ। यह नव युवक प्रेम के कच्चे धागे से ही बँधे रह सकते हैं, भय की श्रृङ्खला से नहीं।

ब्रह्मचर्य्य के प्रश्न को लीजिए। छात्रावस्था के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है। परन्तु गुरुकुल के समान संस्था ही में इस व्रत का पालन हो सकता है, जहाँ शिक्षकों की अध्यक्षता में शिष्य दिन रात रहें; खेल या पढ़ने को छोड़ कर और किसी व्यसन में समय व्यतीत न हो; भोजन शुद्ध और निरामिष मिलता हो; और, शहरों की पतित वायु फटक तक न सकती हो। हो सकता है कि इस उद्देश को पूर्ण करने के प्रयत्न में बालकों की शिक्षा या उनके चरित्र-सङ्गठन में कमी रह जाती हो। कहा जा सकता है कि गुरुकुल के शुद्ध विचारों के जल से सिंचे हुये नव स्नातक शहर के धोखेबाज़ों या पेशागरों से न बच सकेंगे। छिद्रान्वेषक यह भी दोष निकाल सकते हैं कि स्त्री-जाति के दर्शन न करने के कारण वे उनको न मालूम क्या समझने लगते हों। यह अन्तिम दोष गुरुकुल के लिए एक कठिन प्रश्न है। अब गुरुकुल के बाहर पर्यटन करने के लिए छात्रों को आज्ञा तो मिलती ही है। इस लिए यह तो हो ही नहीं सकता कि उनको स्त्री-जाति के दर्शन न मिलते हों। फिर यह नहीं समझ में आता कि स्त्रियों का क्यों इतना बहिष्कार किया जाता है। क्या वे उच्च विचार की सच्चरित्र महिलाओं को माता या बहिन के रूप में नहीं देख सकते? कम से कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि छोटी कक्षा के बालकों को पढ़ाने के लिए अध्यापिकायें ही नियत हों। वे ही अपनी माँ या बहिनों से छुटे हुए बच्चों के नव कुसुमित हृदयों को प्रफुल्लित रख सकती हैं।

रूसो का यह विचार कि शिष्य अकेला ही प्रकृति की सेवा में रहे, उसकी उन्नति का अवरोधक है। परन्तु यह माना जा चुका है कि छात्रावस्था की कुछ अवधि तक बालक-समूह अवश्य प्रकृति की गोद में रहे। गुरुकुल का निर्जन स्थान में स्थापन करना इस हद तक ज़रूरी है; परन्तु सामाजिक विचार इस कारण अधूरे ही रह जाते हैं। दूसरा प्रश्न आर्थिक उन्नति का है। यदि वैदिक धर्म के उद्धार करने का ही उद्देश हो तब तो हमको गुरुकुल से कोई झगड़ा नहीं, परन्तु यदि देश की व्यावसायिक दशा को सुधारने के लिए भी स्नातकों को तैयार करना है तो यह परम आवश्यक है कि गुरुकुल का उन शहरों से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जो व्यवसाय के केन्द्र हैं।

गुरुकुल के शिक्षालय का तात्पर्य भी अनुकरणीय है। यहाँ उन्होंने कम दाम में बड़ा काम कर दिखाया है। इमारतें इस ढङ्ग से बनी हैं, विद्यार्थियों की संख्या जिस हिसाब से बढ़े, उसी हिसाब से वे

जगह भी बढ़ा लें। इमारतों को सोने का पिँजड़ा बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। विचार केवल इस बात का रक्खा गया है कि वे उपयोगी हों। एक कक्षा के बालक एक ही कमरे में रहते हैं, एक ही साथ भोजन करते हैं, और एक ही समय पूजन करते हैं; इससे पारस्परिक प्रेम जितना बढ़ सकता है इसका अनुमान वे ही पाठक कर सकते हैं जिनको अपनी छात्रावस्था अकेले ही पढ़ कर बितानी पड़ी हो।

गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति के विषय में बहुत कुछ कहने सुनने की जगह है। यदि वैदिक या सनातन-धर्म का उद्धार करना या किसी सम्प्रदाय के लिए उपदेशक तैयार करना ही कुलों का उद्देश होता तब तो उन पर संसार को इतना ध्यान देने की आवश्यकता न होती; परन्तु कुलों के गुरु गुरुकुल, काँगड़ी, की पाठ्य-विधि से तो यही मालूम होता है कि पश्चिमी सभ्यता के विरोधी होते हुए भी वे भौतिक शास्त्र, कृषि-शास्त्र, पाश्चात्य-दर्शन, रसायन-शास्त्र, इत्यादि विषयों को अपने पाठ्य-क्रम में जगह देते हैं और ऐसा होना भी चाहिए। आर्य-समाज के लिए तो इस दशा में क्या, यदि कोई भी पश्चिमीय शास्त्र न पढ़ाये जाते, तो यह संस्था सर्वथा उपयोगी हो सकती थी। प्रश्न यह है कि संसार मात्र की उपयोगिता के लिए इसमें कहाँ तक कमी है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरुकुल के सञ्चालकों ने हिन्दी-द्वारा पश्चिमीय शास्त्र पढ़ा कर सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी इतनी ग़रीब नहीं जितना कि कुछ सज्जन इसके विषय में अनुमान करते हैं। इसलिए, वे हिन्दी द्वारा शिक्षा दे कर, देश की एक बड़ी भारी सेवा कर रहे हैं।

परन्तु क्या कारण है कि स्नातकों की हिन्दी उतनी मुहाविरेदार और सरल नहीं होती, और उनको साहित्य का उतना ज्ञान नहीं होता जितनी उनसे आशा की जाती है। हमारी समझ में तो यह आता है कि संस्कृत तथा धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में अधिक समय दिया जाता है और हिन्दी-साहित्य के लिए यहाँ भी जगह नहीं। उदाहरण के लिए काँगड़ी ही की प्रणाली लीजिए —

दशम श्रेणी में रामायण तुलसीकृत के कुछ भाग बालकों को पढ़ाये जाते हैं। उसके पहले वर्तमान साहित्य के कुछ चुने हुए ग्रन्थ जैसे—दुर्गादास, भारत-भारती, मुद्राराक्षस, सत्यहरिश्चन्द्र इत्यादि। बस, हिन्दी यहीं तक है। स्नातक-परीक्षा के लिए हिन्दी-साहित्य की कोई आवश्यकता नहीं है। संस्कृत की ओर देखिए। पुस्तकों के नाम देखने से तो यही मालूम होता है कि दशम श्रेणी तक छात्र इतनी अधिक संस्कृत में योग्यता प्राप्त कर लेते हैं जितनी कि कदाचित् हमारे विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट को नसीब नहीं होती। और स्नातक होने पर तो वे वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य के धुरन्धर पण्डित हो जाते हैं। हमको अपने विश्वविद्यालयों में पाठ्य-क्रम के भारी होने की बहुत शिकायत है; हमको बी॰ ए॰ की परीक्षा के लिए तीन ही विषय खल जाते हैं; परन्तु गुरुकुल में वैदिक-साहित्य, संस्कृत-साहित्य, दर्शन और अँगरेज़ी—ये चार विषय अनिवार्य हैं। पर्याय-विषयों में आर्य-सिद्धान्त, पश्चिमीय-दर्शन, इतिहास और अर्थशास्त्र, रसायन, कृषि, गणित और पाली में से एक आप पसन्द कर लें। हिन्दी के लिए यहाँ भी जगह नहीं।

इस पाठ्य-क्रम का क्या परिणाम हो, यदि गुरुकुल के बाहर इसका अनुकरण किया जाय। वैदिक-साहित्य से वैदिक-धर्म का चाहे जो कुछ उद्धार हो, भारतवर्ष के पेट का उद्धार वेद के मन्त्र कहाँ तक कर सकेंगे? यह प्रश्न हमारे ऐसे मोटी बुद्धि वालों की समझ में नहीं आ सकता। माना कि आपको कृषि-शास्त्र पढ़ने का मौक़ा है; परन्तु छात्र का दिमाग़ पसारी का थैला तो है नहीं कि उसमें सभी मसाले भरे जा सकें। पाँच अनिवार्य विषयों के साथ

कृषि या रसायन पर कैसे उनकी वास्तविक उपयोगिता के अनुसार ध्यान दिया जा सकता है। यही कारण है कि संस्कृत तथा वैदिक-साहित्य छोड़ कर किसी उपयोगी विषय में गुरुकुल के स्नातक योग्यता प्राप्त करते हुए नहीं दिखाई देते।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हमारे विश्वविद्यालय इस पाठ्य-क्रम को स्वीकार करलें। तो क्या परिणाम हो? अँगरेज़ी-साहित्य का बोझ उतना भारी नहीं है; अँगरेज़ी भाषा हमारी मातृ-भाषा से कम उपयोगी नहीं है; तिस पर भी हम उससे घबरा रहे हैं। यदि अँगरेज़ी के साथ साथ प्राचीन साहित्य की पूरी गठरी भी सिर पर रख दी जाय तो कदाचित् बीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य-पालन करके उठा सकें। यों तो असम्भव है। और यह सब किसलिए? वैदिक धर्म का खूब उद्धार हो। योंही हिन्दू, मुसलमानों और ईसाइयों के बीच क्या कम द्वेषभाव है। फिर तो घमासान युद्ध ही हो। और आर्थिक उन्नति? इसकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि संसार असत्य है।

गुरुकुल के महाविद्यालय–विभाग को शहरों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना चाहिए। निर्जन स्थान में दर्शनशास्त्र के बाँधनूँबँध रुकते हैं। कविता के फूल खिल सकते हैं, परन्तु सांसारिक विषयों को समझाने के लिए विद्यार्थियों को मिल के धुएँ और धुन से परिचित कराइए। तभी वे देश की आर्थिक दशा के सुधारने के योग्य होंगे। धर्म में उन्नति अवश्य हो, आचरण शुद्ध हों। सेवा, सत्य, और सद्व्यवहार हमारे देश के रत्न हैं; ये मलिन न होने पावें। परन्तु वैदिक या पौराणिक काल लौटाने का प्रयत्न न कीजिए। संसार असत्य है, तो भी बिना अन्न के न सत्ययुग में काम चला है, न अब चलेगा। स्नातकों को देश की आर्थिक उन्नति करने के योग्य बनाइए। भारतवर्ष का भला इसी में है, किसी सम्प्रदाय का हो या न हो।

कालिदास कपूर

जैन सूत्र और बौद्ध मत के ग्रन्थ 'धम्मपद' की परस्पर समता

यह संसारचक्र बड़े वेग से चला जारहा है। एक एक क्षण में भूत पर्याय का नाश, नूतन पर्याय की उत्पत्ति हो रही है। अनन्त काल इसी प्रकार व्यतीत हुआ, भविष्यत् में अनन्त काल व्यतीत होगा, अपितु जिस समय जो जीव विद्यमान होता है उस समय उसका वह वर्त्तमान समय कहा जाता है। उसके पश्चात् भावी (होनेवाले) जीव को भूत काल में रखते हैं। आगे होनेवाले समय को भविष्यत् काल कहते हैं। तात्पर्य्य यह सिद्ध हुआ कि इस अनादि संसारचक्र में भूत १ भविष्यत् २ और वर्त्तमान ३ यह तीनों समय वर्त्त रहे हैं। आत्मा चेतना लक्षणवाला है। शेष द्रव्य जड़ता-गुण से युक्त हैं। इसीलिए उन द्रव्यों को यह आत्मा अपनी ज्ञान-शक्ति या क्रियाओं के द्वारा अपने उपयोगी बनाता है। सहस्रों कार्य उन द्रव्यों से लेता है। किन्तु जैन-सूत्रों में जीवतत्त्व के मुख्यतया दो भेद प्रतिपादन किये गये हैं। जैसे कि—अल्पज्ञ (छद्मस्थ) और सर्वज्ञ। अपितु सर्वज्ञ आत्मा अपने ज्ञान में तीनों कालों के पर्यायों को सदैव प्रत्यक्ष देखता है।

अल्पज्ञ (छद्मस्थ) आत्मा इन्द्रियों द्वारा कुछ प्रत्यक्ष, शेष अनुमान, उपमान और आगम प्रमाण से अपने अभीष्ट पदार्थों का निर्णय करते हैं। * जैन शास्त्रों में अनुमान प्रमाण के अनेक भेद प्रतिपादन किये गये हैं जिनसे अपने चिंतित पदार्थों की सिद्धि होती है। भूत काल के निर्णय के लिए उत्तम विज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। उस विज्ञान द्वारा पूर्व वृत्तान्तों का भलीभाँति निर्णय हो जाता है। अपितु पूर्व परिचय के लिए शास्त्र या वास्तुक विद्या द्वारा बनाये गये गृहादि के देखने से पूर्व वार्त्ताओं का भलीभाँति पता लग जाता है। जैसे धन के लिए

---

* अनुयोग द्वारा जैन सूत्र का प्रमाण-विषय देखो।

अर्थ-शास्त्र हैं और नीरोगता के लिए वैद्यक-शास्त्र। भविष्यत् काल के शुभाशुभ देखने के लिए ज्योतिःशास्त्र है। उसी प्रकार प्राचीन समय के निर्णय के लिए धर्म-शास्त्रों में चरितानुवाद में आये हुए ऐतिहासिक वृत्तान्त मुख्य साधन हैं। उन इतिहासों से यह पता लग जाता है कि जिस समय इस इतिहास में आये हुए वृत्तान्त की रचना हुई थी उस समय सृष्टि में लोगों का आचार-व्यवहार, कला-कौशल कैसा था, और किस महर्षि के समय में इसकी सृष्टि हुई। जब एक ऐतिहासिक वृत्तान्त दो ग्रन्थों में उपलब्ध होता है तब उन ग्रन्थों के रचना-काल पर विचार करना पड़ता है। किस (कर्त्ता) ने किस ग्रन्थ का अनुकरण किया है, यद्यपि इस विषय में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं तथापि विचारशील पुरुष उन कठिनाइयों को सहते हुए अपने कार्य में उत्तीर्ण होते हैं। क्योंकि जब वे दोनों ग्रन्थों को निष्पक्ष दृष्टि से अवलोकन करते हैं तब उनको अनुकरणकर्त्ता का उसके वाक्यों से पता लग जाता है।

मैं आज ऐतिहासिक वृत्तान्तों की खोज करनेवाले सज्जनों के सन्मुख एक ऐसे विषय को रखता हूँ कि जिसकी खोज करने से भव्यात्माओं को जो अभीष्ट लाभ है उसकी प्राप्ति होगी।

श्री भगवान् महावीरस्वामी को आज दिन २४४५ या * २४५८ वाँ वर्ष निर्वाण हुए हुआ। इतिहास में लिखा है कि ईसवी सन् के ५९९ वर्ष पहले जैनियों के २४ वें तीर्थङ्कर महावीरस्वामी का जन्म और ५२७ वर्ष पहले महावीर-भगवान का निर्वाण हुआ और ईसवी सन् के ६२३ वर्ष पहले गैातम बुद्ध का जन्म तथा ५४३ वर्ष पहले बुद्ध की मृत्यु हुई।

इस लेख से यह स्पष्टतया सिद्ध हो गया है कि श्री भगवान् महावीरस्वामी के समय में बुद्ध ने मृत्यु प्राप्त की और बुद्ध कुछ समय तक श्रीभगवान् महावीरस्वामी के समय में उपदेश भी करते रहे। कई इतिहास-लेखकों का मन्तव्य है कि प्रथम बुद्ध ने श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के 'पिहिताश्रव' नामक मुनि के पास दीक्षा धारण की थी। इस कथन से सिद्ध होता है कि बुद्ध ने बहुत सा जैनमत का अनुकरण करके अपने मत की नीव डाली। इसी कारण से बहुत सी बुद्ध की वार्त्ताएँ जैनमत के अनुसार कथन की गई हैं। बुद्ध के शिष्यों ने भी इस बात का अनुकरण किया है। अर्थात् जैन-शास्त्रों से गाथाएँ या पद या शिक्षाएँ उद्धृत करके 'बुद्धदेव की शिक्षाएँ' ऐसे नाम से बहुत से ग्रन्थ निर्माण किये हैं।

बुद्ध के धर्म-ग्रन्थों की नामावली में एक 'धम्मपद' नामक भी शिक्षा-ग्रन्थ है। यह श्रीश्रमण भगवान् महावीरस्वामी के प्रतिपादन के किये हुए श्रीउत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर बनाया गया है। यद्यपि उस ग्रन्थ में अन्य जैन सूत्रों का भी आश्रय लिया गया है किन्तु 'धम्मपद' का बहुत सा भाग श्रीउत्तराध्ययनसूत्र के आधार से निर्माण किया है।

मुझे मि० बनारसीलाल यार जैन बी० एस० सी, (ग्लासगो) एम० आर० ए० एस० इञ्जीनियर से यह ग्रन्थ प्राप्त हुआ। जब इस को आद्योपान्त पढ़ा तो यह स्वतः ही सिद्ध हो गया कि—यह ग्रन्थ जैन-शास्त्रों के आधार पर बनाया गया है या यों कहिए कि इसकी सृष्टि जैन सूत्रों की सृष्टि के पश्चात् की है और जैन सूत्र ही इसकी सृष्टि के कारण हैं। अब विद्वज्जनों के प्रमोदार्थ कतिपय गाथाएँ दोनों ग्रन्थों की उद्धृत की जाती हैं। यद्यपि यह पूर्ण ग्रन्थ जैन सूत्रों की ही शिक्षाओं से अलङ्कृत किया गया है, किन्तु यहाँ पर केवल उदाहरण मात्र ही लेख लिखा गया है। आशा है, भव्य जन इसकी उत्पत्ति का अन्वेषण करके (कि—किस संवत्सर में, कब—कहाँ पर, किसने इस ग्रन्थ की रचना की है) सत्यान्वेषी पुरुषों के सन्मुख रख के कृतार्थ करेंगे।

जैन सूत्र

(१) मासे मासे उजो वालो कुसग्गेणं तु भुंजए
न सो सुअक्खाय धम्मस्स कलं अग्घइ सोलसिं॥
(जैनशास्त्र) उत्तराध्ययन सूत्र, अध्याय ९, गाथा ४४

---

* रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, के जनवरी १९१७ के जरनल में मि० एस० वी० वेंकटेश्वर ने महावीरस्वामी का निर्वाण ४३७ मसी से पहले या ४७० आनन्द-विक्रम से पहले समय सिद्ध किया है। इस गणना के अनुसार महावीर प्रभु का निर्वाण-समय आज दिन २३५५—५६ वर्त्त रहा है, क्योंकि निर्वाण-समय दीपमालिका से प्रारंभ होता है।

भावार्थ—मास मास के अन्तर में जो अज्ञानी पुरुष कुशाग्र प्रमाण भोजन करता है, वह उसका तपश्रुत और चारित्ररूप धर्म के षोडशवें भाग प्रमाण को भी प्राप्त नहीं होता। कारण उसका तपकर्म अज्ञानतापूर्वक है।

बौद्ध ग्रन्थ

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो सङ्खत धम्माणं कलं अग्घति सोळसिं॥

धम्मपद। बालवग्गा ५, गाथा ११

इस गाथा का भी भावार्थ उत्तराध्ययन सूत्र के ९ वें अध्याय की ४४ वीं गाथा के अनुकूल है। कुछ वर्ण-विपर्यय करके गाथा वैसे ही धम्मपद में गृहीत हुई है।

जैन सूत्र

(२) जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे
रागं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ॥

उत्तराध्ययनसूत्र, अ० ९, गाथा ३४

भावार्थ—जो पुरुष संग्राम में दश लाख पुरुषों को जीते और एक पुरुष अपनी आत्मा को जीते, दश लाख, पुरुषों के जीतने की अपेक्षा आत्मा के जीतनेवाले की परम जय है, अर्थात् आत्मविजयी की परम जीत है।

बौद्ध ग्रन्थ

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्ताणं सवे संगाम जुत्तमो॥

धम्मपद। सहस्सवग्ग ८, गाथा ४

यह गाथा भी श्रीउत्तराध्ययन सूत्र की गाथा का अनुकरण करती है और इसका भावार्थ वही है जो उत्तराध्यन सूत्र की गाथा का भावार्थ है। कुछ ही वर्ण इतस्ततः करके गाथा ज्यों की त्यों रखी गई है।

जैन सूत्र

(३) जहा पोमं जले जायं नो वलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्त कामेहिं तं वयं वूम माहणं॥

उत्तराध्ययनसूत्र, अ० २५, गाथा ॥२७॥

भावार्थ—जैसे पद्मकमल जल में उत्पन्न होकर फिर जल में लिप्त नहीं होता उसी प्रकार जो पुरुष विषय-विकारों से अलिप्त है उसी को हम 'ब्राह्मण' कहते हैं अर्थात् जो विषय-विकारों से पराङ्मुख रहता है वही ब्राह्मण होता है।

बौद्ध ग्रन्थ

वारियोक्खर पत्तेव आरगो रिव सासयो।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

धम्मपद। ब्राह्मणवग्ग २६, गाथा १९

इस गाथा का भी सारांश उत्तराध्ययनसूत्र के पूर्वोक्त गाथा के अनुकूल है और ब्राह्मण के लक्षण भी उसी गाथा के अनुसार कथन किये गये हैं।

जैन सूत्र

(४) जहित्ता पुव्वसंजोगं नाति संगेय बंधवे।
जो न सज्जइ एएसु तं वयं बूम माहणं॥

उत्तराध्ययनसूत्र। अ० २५, गाथा २९

भावार्थ—जो माता पिता आदि तथा ज्ञातियों के सम्बन्ध को छोड़ कर फिर उन्हीं संयोगों में आसक्त नहीं होता उसी को हम ब्राह्मण कहते हैं, क्योंकि संयोगी पुरुष संयोग में ही लिप्त रहता है।

बौद्ध ग्रन्थ

सब्ब संयोजनं छेत्त्वा यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसञ्भुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

धम्मपद। वग्ग २६, गाथा १५

इस गाथा का भी भावार्थ ऊपर की गाथा के अनुसार है। केवल शब्दों का ही परिवर्त्तन किया हुआ है जैसे कि—'जहित्ता' के स्थान पर 'छेत्त्वा'—'पुव्वसंजोगं' के स्थान पर 'सब्बसंयोजनं'—'न सज्जइ' के स्थान पर 'न परितस्सति' इत्यादि। किन्तु अनुकरण उत्तराध्ययन-सूत्र की गाथा का ही है।

जैन सूत्र

(५) ए ए पाउ करे बुद्धे जेहि होइ सिणाइओ।
सब्ब कम्म विणिमुक्कं तं वयं बूम माहणं॥

उत्तराध्ययनसूत्र, अ० २५, गाथा ३४

भावार्थ—इस प्रकार बुद्धदेव अर्थात् तीर्थङ्कर महाराज ने प्रकट किया है कि जो स्नातक होता है और सर्व कर्मों से रहित होता है। हम उसी को 'ब्राह्मण' कहते हैं। तात्पर्य्य यह है कि केवल ज्ञान के धारक का नाम ही स्नातक या ब्राह्मण है।

बौद्ध ग्रन्थ

उसभं पवर वीरमहेसिं विजीताविनं।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

धम्मपद। वग्ग २६, गाथा ४०

इस गाथा का सम्बन्ध भी श्रीउत्तराध्ययन की गाथा के साथ है किन्तु 'बुद्ध' के स्थान पर 'उसभं' (ऋषभं) ग्रहण किया गया है और 'सिणाइओ' के स्थान पर 'नहातकं' ग्रहण किया है, 'सव्वकम्मविणिमुक्कं' के स्थान पर 'विजिताविन' शब्द ग्रहण किया है इत्यादि।

इनके अतिरिक्त जैन सूत्रों की कतिपय गाथाओं के केवल पाद ही ग्रहण किये गये हैं जैसे कि—"तसे सुथावरे सुय" (उत्तराध्ययनसूत्र, अ० १९, गाथा ९०) "तसे सुथावरेसुच" (धम्म०वग्ग २६, गाथा २३)॥ "समो निंदा पसंसासु" (उत्तराध्ययन-सूत्र अ० १९, गाथा ९१) "एवं निन्दा पसंसासु" (धम्मपद। वग्ग ६, गाथा ६)॥

"सव्वेसिं जीवियं पियं" (जैनसूत्र आचाराङ्ग, प्रथम श्रुतस्कन्ध, उद्देश तृतीय) इस सूत्र का यह अर्थ है कि सर्व जीवों को जीवन प्रिय है। इसलिए किसी का घात मत करो॥ "सव्वे संजीवितं पियं" (धम्मपद ग्रन्थ०, वग्ग १०, गाथा २) वही श्रीआचारागंजी सूत्र का पाद ग्रहण किया गया है।

" नवि मुंडिएण समणो "
(उत्तराध्ययन-सूत्र, अ० २५, गाथा ३१)
" न मुण्डकेन समणो "
(धम्मपद। वग्ग १९, गाथा ९)
" समयाए समणो होइ "
(उत्तराध्ययन-सूत्र, अ० गा० ३२)
" समततादि पापानं समणोऽतिपवुच्चति "
(धम्मपद, वग्ग १९, गा० १०)
" नाणेण या मुणी होई "
(उत्तराध्ययन-सूत्र, अ० २५, गा० ३२)
" यो मुनांति उभोलोके मुनी तेन पवुच्चति "
(धम्मपद, वग्ग १९, गा० १४)

जैन सूत्र

एगे चरे गणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया
भिक्खू उवहाण वीरिए वइ गुत्ते अज्झत्थ संवुडे॥
(सूत्रकृताङ्ग, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अ० २, उद्देश २, गाथा १२)

भावार्थ—भिक्षु रागद्वेष से रहित अकेला ही विचरे और अकेला ही कार्योत्सर्ग करे। अकेला ही आसन पर बैठे। अकेला शयन करे। समाधियुक्त होवे। उपधान तप में बलवीर्य करे। वचन गुप्त करने पर अध्यात्म में संवर-युक्त होवे॥

बौद्ध ग्रन्थ

एकासनं एकं सेय्यं एको चरमतन्दितो।
एको दमयमत्तानं वनंते रमितो सिया॥

धम्मपद। वग्ग २१, गाथा १६

इस गाथा का भावार्थ भी पूर्वोक्त गाथा के ही अनुसार है।

इस प्रकार कई एक जैनसूत्रों के आधार से धर्मपद निर्मित हुआ है, किन्तु यह शिक्षाग्रंथ श्रीशय्यंभवाचार्य के पीछे बना प्रतीत होता है। कारण यह कि शय्यंभवाचार्य ने एक दशवैकालिक नामक सूत्र अपने प्रियपुत्र (शिष्य) के लिए निर्माण किया था, जिस की लगभग ७०० गाथाएँ हैं। शय्यंभवाचार्य श्रीश्रमण भगवान् महावीरस्वामी के ९८ वर्ष पीछे देवलोक को प्राप्त हुए। सो 'धम्मपद' के कर्त्ता ने श्रीदशवैकालिक सूत्र की भी बहुत सी गाथाएँ जैसी की तैसी तथा कुछ परिवर्त्तन करके ग्रहण की हैं; जैसे कि—

जैन सूत्र

१ जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं।
णय पुप्फं किलामेइ सो य पीणेइ अप्पयं॥

दशवैकालिक सूत्र, अध्याय १, गाथा २

भावार्थ—जैसे वृक्ष के पुष्पों में भ्रमर रस पीता है, किन्तु पुष्पों को पीड़ा नहीं देता, अपितु अपनी आत्मा को तृप्त कर लेता है, इसी प्रकार गृहस्थों के घरों से मुनि भ्रमर-वत् आहार लेकर देश में पर्यटन करे, भ्रमरवत् किसी को पीड़ा न देवे।

बौद्ध ग्रन्थ

यथाऽपि भमरो पुप्फं वण्ण गन्धं अहेठयं।
पले तिरसमादाय एवं गामे मुनी चरे॥

धम्मपद। वग्ग ४, गाथा ६

इस गाथा का अर्थ भी दशवैकालिक सूत्र के प्रथमाध्याय की द्वितीय गाथा के अनुसार है। प्रायः बहुत से शब्दों की भी परस्पर समता है। जैसे कि—भ्रमर पुष्फ, यथारस, इत्यादि। तात्पर्य यह है कि दोनों गाथाओं का भाव एक ही है।

जैन सूत्र

(२) अजयं चरमाणो अ पाण भूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुअं फलं॥

दशवैकालिक सूत्र, अ० ४, गाथा १

अर्थ—अयत्न से चलता हुआ प्राणी भूतों की हिंसा करता है, जिससे पापकर्म बाँधता है। उसको फिर पापकर्म का कटुक फल होता है। तात्पर्य यह कि अयत्न से चलने पर जीवों का घात और पापकर्म का बन्ध हो जाता है; फिर उसका कटुक फल भोगने में आता है।

चरंति बाला दुम्मेधा अमित्ते नेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं॥

धम्मपद। बालवग्ग ५, गाथा ७

इस गाथा का भी भाव वही है जो दशवैकालिक सूत्र की गाथा का भाव है। क्योंकि अयत्न से चलने से, तथा बालदुर्मेधा के साथ गमन करने से, पापकर्म को बाँधता है। उस पापकर्म का कटुक फल होता है। इसलिए बहुत से पदों की भी परस्पर समता है। अतः भावार्थ एक ही है।

जैन सूत्र

(३) हत्थसंजए पायसंजए वायसंजए संजए इंदिय।
अज्झप्पणासु समाहिअप्पा सुतत्थं च विआणइ॥

दशवैकालिक सूत्र, अध्याय १०, गाथा १५

भावार्थ–हाथसंयत, पादसंयत, वाक्संयत, इन्द्रियसंयत, अध्यात्म में रत, सुसमाहितात्मा जो सूत्र और अर्थ को जानता है वही भिक्षु होता है। सर्व प्रकार से जो संयत है वही भिक्षु कहलाता है।

बौद्ध ग्रन्थ

हाथसंजतो पाद संजतो वाचाय संजतो सञ्जतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं॥

धम्मपद, भिक्षुवग्ग २५, गाथा ३

इस काव्य का अर्थ भी पूर्वोक्त जैन काव्य के अनुसार है। इस काव्य में भिक्षु के लक्षण वर्णन किये गये हैं, जैसे कि—हाथसंयत, पादसंयत, वाग्संयत, अध्यात्म में रत इत्यादि।

इस प्रकार अनेक जैनसूत्रों के आधार पर इस 'धम्मपद' नामक बौद्ध ग्रन्थ की रचना हुई है। यदि यह कहा जाय कि 'धम्मपद' के आश्रय से उत्तराध्ययनादि सूत्रों की रचना हुई है, तो यह शंका हो सकती है। किन्तु इसका समाधान इस प्रकार से हो जाता है कि उत्तराध्ययनादि सूत्रों में जो ऐतिहासिक कथन हैं और उनमें आये हुए जो शिक्षा रूप कथन हैं उनको 'धम्मपद' के रचयिता ने संगृहीत किया है। पुनः जैनसूत्रों की सहस्रों गाथाएँ हैं। 'धम्मपद' की केवल ४२३ गाथाएँ हैं और वे सर्व जैनशास्त्रों के गद्य और पद्य के आधार पर बनी हुई प्रतीत होती हैं। जब 'दशवैकालिक' जैनसूत्र की गाथाओं का भी अनुकरण किया गया है तो इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह 'धम्मपद' जैनसूत्रों के आधार से बना है; केवल प्राकृत शब्दों को पाली का रूप दिया गया है।

जब कोई कर्त्ता किसी ग्रन्थ के रचने की ओर आकर्षित होता है, तब उसके मन में स्वाभाविक ये भाव उत्पन्न होते हैं कि—यह विषय मेरे सन्मुख सूत्ररूप में तो है, किन्तु मैं इसकी पूर्ण प्रकार से व्याख्या करके सर्वोपयोगी बना दूँ। सो अनुमान से ज्ञात होता है कि 'धम्मपद' की रचना इसी क्रम पर हुई है जैसे कि—जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे तस्संतिए विणइयं पउंजे सक्कारए सिरसा पंजलीओ कायग्गिए भो मणसा अनिच्चं (दशवैकालिक सूत्र, अ० ९, प्रथमोद्देश, काव्य १२)

इस काव्य का भावार्थ इतना ही है कि जिसके पास से धर्मपदों (धम्मपय) को सीखे उसकी मन से, वचन से और काय से विनय करे, और उसका सत्कार करे—शिर नमा कर नमस्कार करे, हाथ जोड़े, नित्य ही उसकी सेवा करता रहे।

इस सूत्र में 'धम्मपद' से सिद्धान्तोक्त पदों को ग्रहण किया गया है। बस इसी सूत्र पर 'धम्मपद' ग्रन्थ की रचना हुई प्रतीत होती है; क्योंकि जैनसूत्रों में सिद्धान्तोक्त पदों को 'धम्मपद' 'अज्जपय' 'अज्जवयण' इत्यादि शब्दों से ग्रहण किया गया है। इसलिए जैनसूत्रों के आधार पर यह शिक्षारूप ग्रन्थ निर्मित किया गया है। इस लेख में

केवल उदाहरण मात्र ही दिखलाये गये हैं। 'धम्मपद' में कोई भी ऐसी शिक्षा नहीं जो जैनशास्त्रों से उद्धृत नहीं की गई है। इसलिए विद्वानों को उचित है कि वे भी इस विषय को सूक्ष्म दृष्टि से अन्वेषण करें कि यह धम्मपद (बौद्धग्रन्थ) किस समय निर्मित हुआ है। यदि मुझे इसकी वृत्ति उपलब्ध होती तो इस विषय में मैं और भी कुछ लिखता। यदि मेरी सम्मत्यनुसार विद्वान् जनों की सम्मति हो कि बौद्धमत ने जैनमत का ही अनुकरण किया है तो यह और भी आनन्द का विषय होगा। यदि विद्वज्जनों की अन्य प्रकार की सम्मतियाँ हों तो युक्तियों सहित सर्वसाधारण के सन्मुख रख कर सन्तुष्ट करना चाहिए।

(उपाध्याय जैन मुनि)
आत्माराम जी

जर्मनी में क़ैदी हिन्दुस्तानी सिपाही।

हिन्दुस्तानी सिपाही जो जर्मनी में क़ैद थे और अब रिहा हुए हैं फ़्रान्स और फ़्लान्डर्स की लड़ाई में हिन्दुस्तानियों की वीरता और युद्ध का बड़ा रोचक वृत्तान्त देते हैं। वे बड़े ही नाज़ुक और कठिन समय में ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिए पहुँचे। उस समय आस्ट्रेलिया, केनेडा इत्यादि किसी भी उपनिवेश से सहायता के लिए कोई भी न पहुँचा था। बड़ी वीरता के साथ हिन्दुस्तानियों ने अपने आपको समरानल में झोंक दिया। उन मोर्चों में सामना कर, जहाँ शत्रुओं के गोलों ने ब्रिटिश सैनिकों के दल विदीर्ण कर दिये थे, हिन्दुस्तानियों ने ब्रिटिश साम्राज्य को सङ्कट से छुड़ा दिया।

क़ैद हुए हमारे सिपाहियों और अफ़सरों को जर्मनों ने जो कष्ट दिये हैं, उनका स्मरण करने से ख़ून उबलने लगता है। जिस जिस सिपाही या अफ़सर से मेरी बातें हुई हैं उसी ने इन हृदय-विदारक व्यवहारों का वर्णन किया है। जर्मनों ने हिन्दुस्तानियों की राजभक्ति शिथिल करने के लिए बड़े उपाय किये, परन्तु हिन्दुस्तानियों ने भूख से प्राण त्याग करना, बन्धन में रहना अच्छा समझा। राजभक्ति से विचलित न हुए।

नाइन्थ भूपाल इन्फ़न्टरी के अफ़सर जमादार सवाईसिंह से मैं मिला। ये जर्मनी से लौटे हैं। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब ये सब से पहले योरप पहुँचे और युद्ध में क़ैद हो गये। जब लड़ाई शुरू हुई ये छुट्टी पर थे। अपने काम पर फ़ौरन वापस हुए। जब इनसे कहा गया कि यहीं हिन्दुस्तान में बने रहो, इन्हें बड़ा दुःख हुआ। कह सुन कर ये २६ अगस्त १९१४ को अपनी रेजीमेन्ट के साथ ले कराची से योरप के लिए रवाना हो गये। कैरो में चार दिन ठहर कर, २९ सितम्बर १९१४ को मार्सेल (फ़्रान्स) पहुँच गये। चार ही पाँच दिन आराम करने के बाद मोर्चे पर भेज दिये गये। वहाँ सिपाहियों की बड़ी ही आवश्यकता थी। मैंने उनसे पूछा कि जब आप मोर्चे पर पहुँचे तो वहाँ क्या हाल था। उन्होंने उत्तर दिया कि तीन बातें हमें जाते ही मालूम हुईं (१) शत्रुदल संख्या में अधिक है और हमारी ओर सहायता कम पहुँच रही है, (२) शत्रु का तोपख़ाना इतना विशेष था कि जमादार ने वैसा अपनी २१ वर्ष की नौकरी में पहले कभी नहीं देखा था और अपनी ओर गोला बारूद का सामान बहुत कम था। (३) पलटन और युद्ध-सामग्री की कमी के कारण अपनी फ़ौज पीछे हट रही थी। उसके बाद जमादार ने यह भी कहा कि वे और उनके साथी वहाँ मैदान में लड़ने गये थे न कि लड़ाई की बातों पर विचार करने। २९ अक्टूबर को जर्मनी के तोपख़ाने का जो अनुभव जमादार को हुआ उसे वे अपनी ज़िन्दगी भर न भूलेंगे। एक बड़ा गोला जहाँ वे खड़े थे गिर कर फटा और उससे जो मिट्टी निकली उसमें वे दब गये। उनके साथियों ने तुरन्त उन्हें खोद कर निकाला। वे कहते हैं कि हफ़्तों उन्हें ऐसा मालूम होता रहा मानों वे बराबर नशे में हैं। २० दिसम्बर को सूर्योदय के समय जर्मन उसी खाई को तोपों से उड़ाने लगे, जिसमें जमादार की पलटन थी। दोपहर के तीन बजे तक जर्मन-तोपों ने अपना काम तमाम किया और इन सब को घेर लिया। ज्योंहीं जमादार को क़ैद में लिया कि एक लम्बे चौड़े जर्मन ने आकर उनके कन्धे के चाँदी के बटन काट लिये और उनकी वर्दी को फाड़ डाला। इस अपमान से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। फिर उन्हें पकड़ कर एक रेल में भर दिया जिसमें वे सात दिन तक सफ़र करते रहे। जब फ़ौज और

रसद के लिए दूसरी गाड़ियाँ निकलती थीं, यह रेल बहुधा पटरी पर खड़ी कर दी जाती थी। कुल हफ़्ते भर जमादार को खाने पीने को कुछ भी नहीं दिया गया और सर्दी से भी उन्हें बड़ा क्लेश मिला। क्योंकि वर्दी तक फाड़ डाली गई थी। जब वे और उनके सौ साथी सिपाही एक केम्प में रक्खे गये तो रोज़ाना भोजन के लिए थोड़े से आलू, कुछ आटा और थोड़े चावल मिलते थे। घी तो नाम को भी न था। क़ैद में थोड़े ही दिन रहने के बाद उनके कपड़े और भोजन के पदार्थ इँगलिस्तान के दयाशील पुरुषों और लन्दन में रहनेवाली हिन्दुस्तानी महिलाओं के भेजे हुए आने लगे। पी०एल० राय, भोलानाथ, और गुप्त महाशय की धर्मपत्नियों ने यह सुन कर कि हिन्दुस्तानी लोग फ़्रांस जा रहे हैं एक कमेटी "ईस्टर्नलीग", नाम की बनाई थी जिसमें मोज़े और गरम कपड़े सिपाहियों के लिए बनाये जाते थे और गरम मसाला तथा देशी मिठाई भी वहाँ से भेजने का प्रबन्ध था। यह तो सब कुछ था, परन्तु जर्मनों ने ऐसी चाल चली जिस से ये सामान

जमादार सवाईसिंह
(जर्मनों ने इन्हें सन् १९१४ में क़ैद कर लिया था।
१९१८ में ये फिर मुक्त कर दिये गये।)

शिवदर्शनलाल अग्रवाल, बारिस्टर एट-ला।
(ये हिन्दुस्तानी सिपाहियों की सेवा करते थे।)

हिन्दुस्तानी क़ैदी सिपाहियों तक न पहुँचने पाते थे। वे लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को बार बार बदल दिये जाते थे। कुछ दिनों एक जगह और कुछ दिनों दूसरी जगह रक्खे जाते थे, जिसका फल यह था कि खाने पहनने की भेजी वस्तुयें उन तक न पहुँचती थीं। चालाकी के विषय में जमादार सवाईसिंह का कथन है कि संसार में जर्मनों का नम्बर अव्वल है। लुधियाने के एक लम्बे चौड़े सिक्ख की वही दशा हो गई थी, जैसा कि वह कहता था, कि किसी लकड़ी को भीतर से दीमक खा जाय और बाहर से वह अच्छी दिखाई दे परन्तु छूते ही मिट्टी होकर गिर जाय।

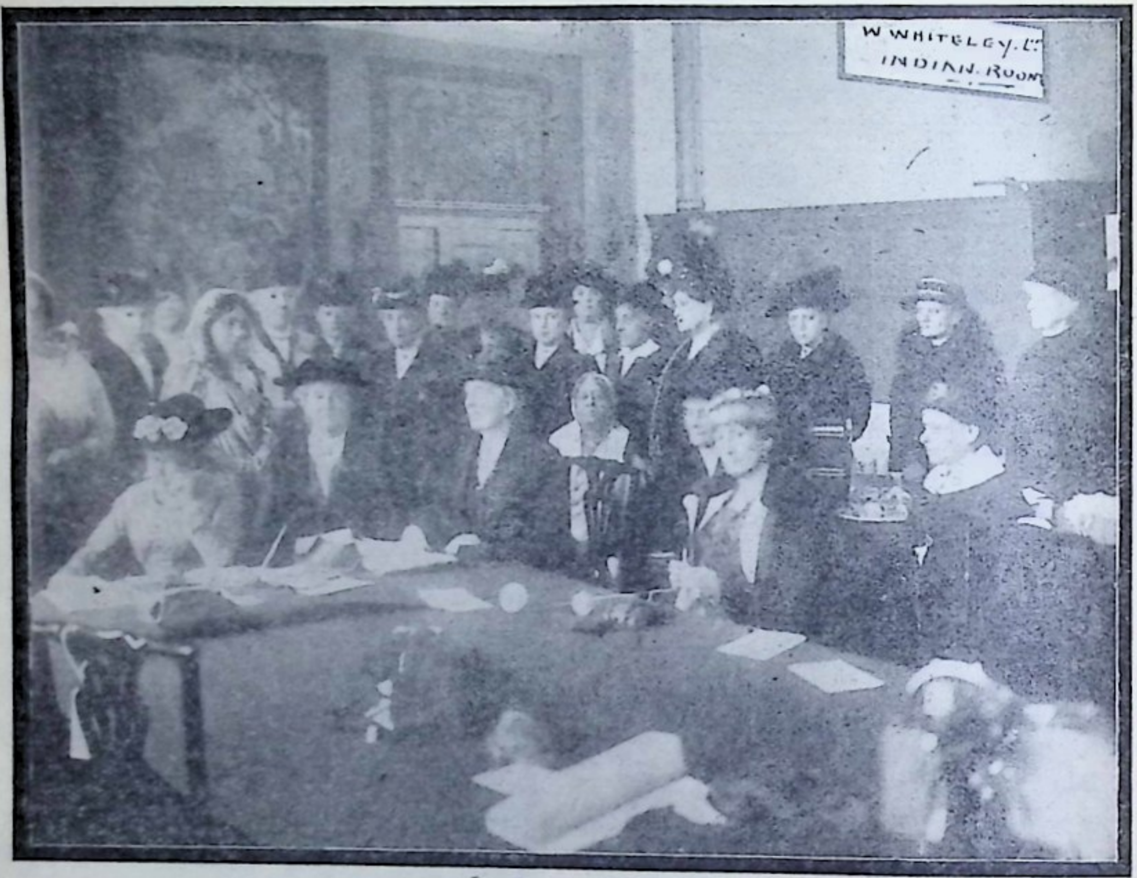

विलायत में हिन्दुस्तानी सैनिकों की सेवा करनेवाली महिलाओं की समिति।
मिसस पी० एल राय साड़ी पहने खड़ी हैं और मिसस गुप्त साड़ी पहने बैठी हुई हैं।

दूसरे हिन्दुस्तानी क़ैदी आफ़िसर जिनसे मुझ से भेंट हुई आठवीं गोरखा-पल्टन के सूबेदार रणसूरसिंह राना थे। वे हिन्दुस्तान से फ़्रांस में मई सन् १९१५ में गये थे। परन्तु कुछ दिनों वे अस्वस्थ थे, इसलिए ३० जून तक लड़ाई के मैदान में नहीं भेजे गये। यह वह समय था कि जब लड़ाई खुले मैदान में नहीं होती थी। दोनों ओर खाइयों से एक दूसरे पर गोली चलाई जाती थी। कभी कभी ऊपर भी लोग थोड़ी देर के लिए कूद आते थे और धड़ाधड़ गोलियों के बीच में फ़ायर करते थे। सूबेदार कहते थे कि यदि हिन्दुस्तानी सिपाहियों की चलती तो ऊपर से भी खूब हमले होते। किन्तु तब भी कई हमले किये और कई खाइयाँ ले लीं। लेफ़्टिनेंट जे० डब्लू० वी मेर वेदर साहब तथा राइट आनरेबिल सर फ्रेडरिक स्मिथ साहब अपनी किताब "इन्डियन कोर्स इन फ़्रान्स" में जिसको जान मरे साहब लन्दन ने प्रकाशित किया है, इन सूबेदार की वीरता की बड़ी प्रशंसा करते हैं। सूबेदार

रणसूर राना २५ सितम्बर सन् १९१५ को क़ैद हुए। जब लेफ़्टिनेंट टेलर साहब, जो उस कम्पनी के सेनापति थे, शस्त्र-रहित हुए तो सूबेदार ने उन थोड़े से सिपाहियों के साथ जो बच रहे थे धावा किया। जर्मनों ने इन वीर योद्धाओं को केवल संख्या में अधिक होने के कारण दबा लिया और तीन बजे के समय इन साहसी सूबेदार को शत्रु के हाथ में जाना पड़ा। यह जर्मन-भाषा नहीं जानते थे और न जर्मन-दल के अँगरेज़ी या गोर्खली। जो सूबेदार की मातृ-भाषा थी उसकी बात ही क्या। अपना प्रयोजन प्रकट करने के लिए संकेतों से काम लिया जाता था।

सूबेदार ने बड़े अभिमान सहित मुझ से कहा कि वे हाथ उठा कर "कमरद" नहीं पुकारते थे जैसा कि जर्मन जब इधर पकड़ कर आते थे कहा करते थे। उन्होंने केवल पेटी उतार दी थी। आफ़िसर लोग पृथक् कर दिये गये थे और लिली के एक क़िले में भेज दिये गये थे। वहाँ एक हिन्दुस्तानी जाननेवाला दाढ़ी-मोंछ बनवाये ऐनक लगाये

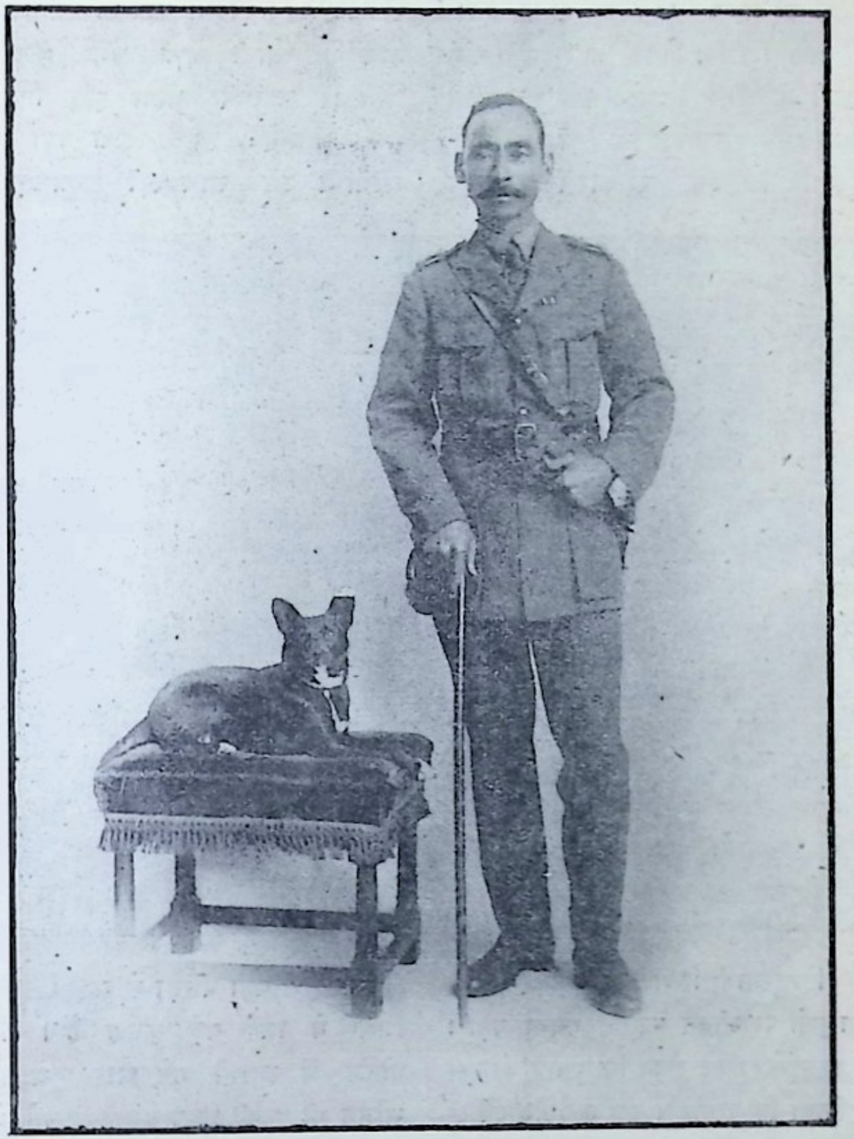

सूबेदार रणशूर राना—(१९१५ में क़ैद हुए और १९१८ में मुक्त हुए।)

आया और विश्वास दिलाया कि सब की पूरी रक्षा होगी। वहाँ वे चार दिन रहे और उत्तम भोजन, अच्छे चावल और आटा सब भरपूर मिले। उसके बाद दूसरे केम्प में भेजे गये और कुछ दिनों बाद वहाँ से भी अन्य स्थान पर, जो जर्मनी की राजधानी बर्लिन से दूर न था। वहाँ जर्मनों को एकाएक असली रूप में देखा। उनका भोजन वहाँ इतना कम कर दिया गया कि नहीं के बराबर। जर्मनों की इच्छा थी कि केवल शोरुआ दिया जाय परन्तु यह समझ कर कि धर्मविरुद्ध होगा हिन्दुस्तानियों ने उसे अस्वीकार किया। तब फिर दो या तीन आलुओं पर जीवन व्यतीत करना पड़ा। बहुत कुछ पूँछ पाँछ से मुझे प्रकट हुआ कि जर्मनों ने इस बात का बड़ा उपाय किया कि अनाहार रख कर अँगरेज़ों से इनकी श्रद्धा दूर कर दी जाय, परन्तु अन्त में उन्होंने यह देख लिया कि आहाराभाव तथा उनकी अन्यान्य युक्तियाँ भारतवासियों को राजभक्ति से नहीं हटा सकतीं।

हिन्दुस्तानी रिसाले के अफ़सर जो कम्ब्रे की लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़े।

सेकन्ड गोरखा के जमादार सूबासिंह गौरङ्ग की औरों की अपेक्षा और भी दुर्दशा हुई। जर्मनों ने उन्हें हिन्दुस्तानियों से अलग कर दिया और ऐसे क़ैदियों के साथ रक्खा जो न हिन्दुस्तानी बोल सकते थे और न गोर्खली। जमादार सूबासिंह सिर्फ़ यही दोनों भाषायें बोल सकते थे। इन दिनों उन्हें वैसा ही कष्ट हुआ जैसे उस क़ैदी को होता है जिसे एकान्त कारागार का दण्ड दिया जाता है। जर्मनों के साथ जो क़ैदियों का परिवर्तन हुआ उस में पूर्वोक्त तीन हिन्दुस्तानी अफ़सर और ८ वीं गोर्खा राइफल्स के जमादार महतवीर थापा कुछ दिन हुए हालन्ड भेजे गये जहाँ उन्हें ४ महीने रहना पड़ा। वहाँ के निवासी डच लोगों ने उनके साथ बड़ी सज्जनता का व्यवहार किया जिससे वे उनके बड़े कृतज्ञ हैं। वहाँ वे बहुत अच्छे होटल में ठहराये गये और दूध मक्खन इत्यादि अच्छे भोजन भी उनकी इच्छानुसार मिलते थे। भोजन के सिवा सूबेदार को ७५) और जमादार को ४५) माहवार ख़र्च के लिए भी मिलते थे। जब वे लन्दन पहुँचे तब सारे ब्रिटिश क़ौम के अतिथि समझे गये और साउथ केन्सिन्गटन क्वीन्सगेट के ६७ नम्बर कोठी में ठहराये गये। इस कोठी में रण से छुट्टी पर आये हुए सिपाहियों की ख़ातिर की जाती थी। इस विशाल भवन में महाराज राजराजेश्वर

के नज़दीकी रिश्तेदार रहते थे। यह बहुत बड़ा और सुसज्जित है। यहाँ हिन्दुस्तानी अफ़सरों को बड़ा आराम मिलता था, ख़ास कर श्रीयुत शिवदर्शनलाल अगरवाला बैरिस्टर-एट-ला के प्रबन्ध में। हिन्दुस्तानी अफ़सरों को सरकारी ख़र्चे से लन्दन इत्यादि बड़े बड़े नगरों की सैर कराई जाती थी। मिस्टर अल्फ़रेड एज़रा जो बड़े धनी हैं और हिन्दुस्तानी बोल सकते हैं इण्डियन स्टूडेन्ट डिपार्टमेन्ट के मिस्टर एन-सी-सेन और उनकी धर्म्मपत्नी को हिन्दुस्तानी सिपाहियों और अफ़सरों के आनन्दित करने में बड़ा ही अनुराग था।

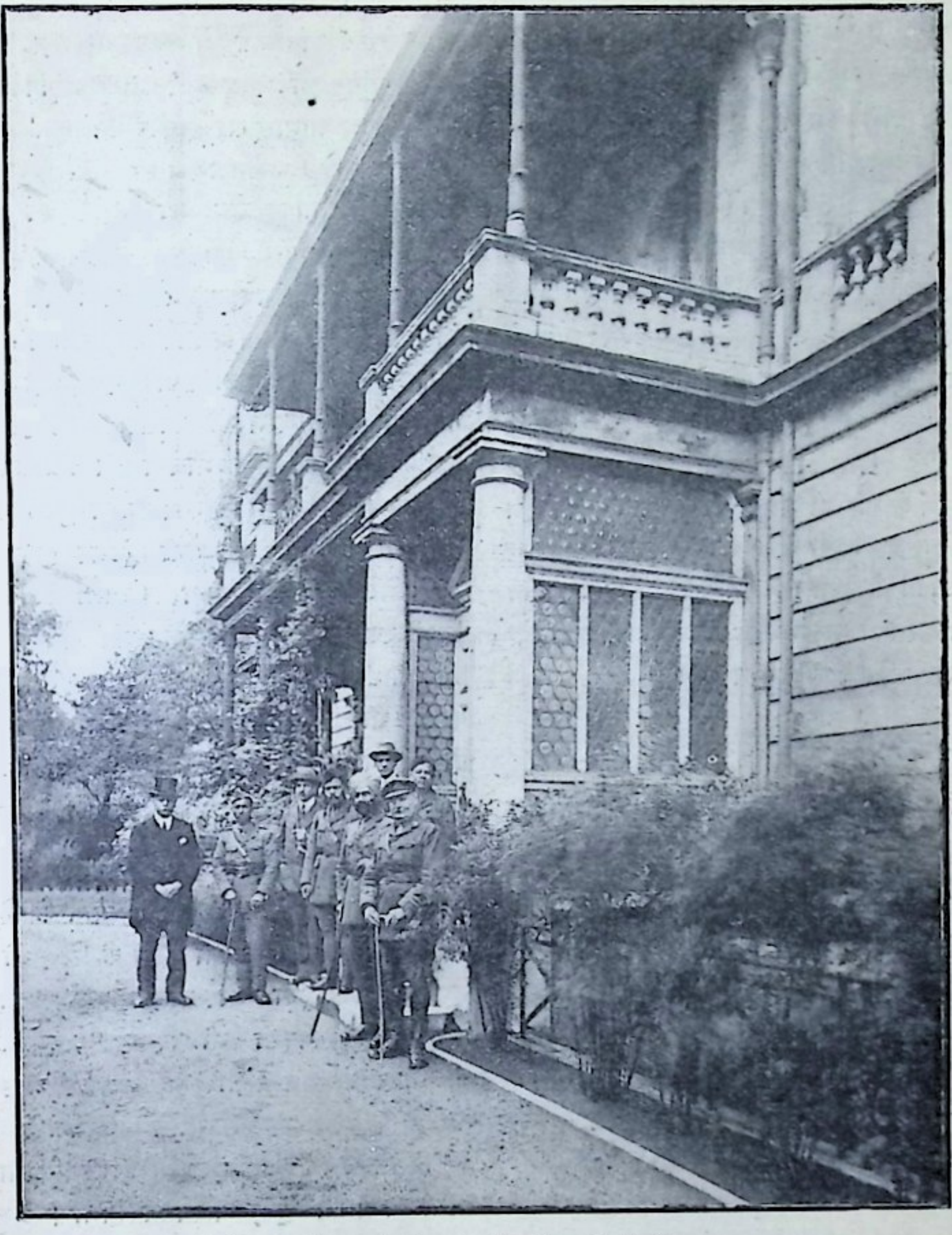

लड़ाई से छुट्टी लेकर जो सिपाही इँगलैंड लौटते थे, उनका सत्कार इस भवन में किया जाता था।

सेंट निहालसिंह, (लन्दन)

विविध विषय

१—प्राचीन भारत में समुद्र-यात्रा।

माडर्न रिव्यू में मिस्टर रामप्रसाद चन्दा ने 'ब्राह्मनिस्म इन ईस्ट बोर्नियो' शीर्षक एक लेख लिखा है। उस लेख में उन्होंने शिला-लेखों के उन संस्कृत-श्लोकों को उद्धृत किया है जो पूर्वीय बोर्नियो में पाये गये हैं। उनके कथन का सारांश यह है कि चौथी शताब्दी के मध्य में ब्राह्मणों की सभ्यता का प्रादुर्भाव उस देश में हुआ। अन्नम में उससे भी पहले इस सभ्यता का सञ्चार हुआ। वहाँ से दूसरी और तीसरी ईसवी के संस्कृत-शिला-लेख प्राप्त हुए हैं। धर्म्मराज वर्द्धमान के यज्ञ की भी चर्चा एक लेख में हुई है। इन प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि गुप्त-वंशी और पल्लव-वंशी राजाओं के समय में न केवल बौद्ध और शैव ही समुद्र-यात्रा करते थे बल्कि कट्टर वैदिक कर्म्म-काण्डियों को भी समुद्र पार जाने में सङ्कोच न था।

२—टेलीफ़ोन से बधिरता।

कहीं कहीं ऐसा देखा गया है कि बाज़ लोगों को टेलीफ़ोन से बधिरता उत्पन्न हो गई है। ज्योंही उन्होंने टेलीफ़ोन का रिसीवर (सुननेवाला यंत्र) अपने कान में लगाया, त्योंही एक बड़े ज़ोर का शब्द सुनाई पड़ा और फिर कुछ दिनों के लिए बधिरता हो गई। इसका कारण है टेलीफ़ोन के सुनने के समय ख़बर के आने के मार्ग में किसी विशेष दुर्घटना का होना। उससे कुछ ऐसा शब्द होता है जिससे कान की सुननेवाली रग को धक्का पहुँचता है और श्रवण-शक्ति मन्द पड़ जाती है। यदि टेलीफ़ोन द्वारा ख़बर सुनते समय लोग रिसीवर को कान से कुछ दूर रक्खा करें तो इस प्रकार की बधिरता का कुछ भी भय न रहे।

३—लखनऊ और आगरे में विश्वविद्यालय और चान्सलर की स्पीच।

हर्ष की बात है कि संयुक्त प्रान्त की गवर्नमेन्ट का विचार लखनऊ में भी एक विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) स्थापित करने का है। इसी विचार को शिक्षा-विभाग के सेक्रेटरी आनरेबल मिस्टर कीन ने, कुछ दिन हुए, लेजिस्लेटिव काउन्सल में प्रकट भी कर दिया था और उसकी पुष्टि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के पिछले कानवोकेशन में चान्सलर श्रीमान् सर हार्कोर्ट बटलर की स्पीच (भाषण) से भी हो गई। लखनऊ में ही नहीं किन्तु आगरे में भी यूनिवर्सिटी स्थापित होने का उद्योग हो रहा है। यद्यपि चान्सलर महोदय ने कानपुर के विषय में सिवा इतना कहने के और विशेष कुछ नहीं कहा कि वहाँ टकनालाजिकल इन्सटीट्यूट (शिल्पशाला) स्थापित करने के लिए उन्होंने गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया से एक विज्ञान-विशारद माँगा है, तथापि कानपुर में भी, कालान्तर में, एक विश्वविद्यालय स्थापित हो जाने की सम्भावना है। क्योंकि शिल्पशाला का वहाँ खोला जाना युद्ध के कारण रुका हुआ था। अब उसके स्थापित होने में देर न लगेगी। उधर कुछ लोग व्यापार-धन्धे सिखानेवाले विद्यालय (Commercial College) के भी स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं। कृषि-कालेज और आर्ट्स कालेज वहाँ हैं हीं। दयानन्द-एङ्गलो-वैदिक कालेज भी आगामी जुलाई से अपना कार्य्य आरम्भ कर देगा। इन सब संस्थाओं के होते हुए वहाँ भी एक स्वतन्त्र यूनिवर्सिटी का हो जाना उचित ही है।

चान्सलर महोदय ने अपने भाषण में विज्ञान-विषयक गवेषणा भारतवर्ष में किये जाने के लिए ज़ोर दिया और इस कार्य्य में सहायता करने के लिए भी वचन दिया। भूगोल की महत्ता और उसकी भले प्रकार शिक्षा दिये जाने की आवश्यकता भी दिखलाई, क्योंकि युद्ध के बाद जो परिवर्तन अब संसार के व्यापार और उद्योग-धन्धों में होगा उसके भली भाँति समझने के लिए भूगोल के विशेष ज्ञान की ज़रूरत होगी। प्रयाग के विश्वविद्यालय में भी कुछ परिवर्तन होगा। अभी यह केवल परीक्षा ही लिया करता है। अब इसे परीक्षा के अतिरिक्त पढ़ाने का भी कार्य्य सौंपा जायगा। सेडलर कमीशन के रिपोर्ट छपने की अपेक्षा है। उसके अनन्तर भारतवर्ष के शिक्षालयों में भी बहुत रद्दोबदल होगा जैसे कि इस समय इँग्लेण्ड आदि देशों में हो रहा है।

४—चीन का विश्वकोष।

विश्वकोष क्या है, यह बतलाने की ज़रूरत है। योरप में सबसे पहले वैरो और प्लिनी ने कुछ विश्वकोष की तरह ग्रन्थ-निर्माण किया। प्लिनी का हिस्टोरिया नेचरलिस नामक एक विख्यात ग्रन्थ है। उसमें प्राकृतिक विज्ञान-विषयक बातों का संग्रह है। स्टोवियस, स्यूडास और मारसिनस भी ऐसे ही प्राचीन ग्रन्थकार हैं जिनके ग्रन्थों को हम विश्वकोष की श्रेणी में रख सकते हैं। पर १३ वीं शताब्दी में बोभेस के डोमिनिकन विन्सेन्ट द्वारा जो ग्रन्थ संगृहीत किया गया उसे हम यथार्थ में विश्वकोष कह सकते हैं, क्योंकि उसमें मध्य-कालीन मनुष्यों द्वारा उपार्जित समस्त ज्ञान का समावेश है। इसमें ही पीछे से किसी ने एक भाग, धर्मविषयक, और जोड़ दिया। राजर बेकन का ओपसमेजस नामक ग्रन्थ भी विश्वकोष के ढँग पर है। १७ वीं शताब्दी में तो ऐसे कितने ही ग्रन्थ निर्मित किये गये। अँगरेज़ी के अकारानुक्रम से विश्वकोष १७०४ में प्रकाशित हुआ। इसका नाम था Lexicon Technicun आज कल तो अँगरेज़ी में कितने ही विश्वकोष हैं। इन ग्रन्थों से विद्वानों का असीम विद्याप्रेम और अध्यवसाय प्रकट होता है।

भारतवर्ष का सबसे प्राचीन कोष यास्क का निरुक्त है। योरोपीय विद्वानों के अनुसार इसका काल ईसा के ६०० वर्ष पहले है। संस्कृत में अन्य कई कोष हैं जिनमें शब्द और उनके अर्थ का संग्रह किया गया है। अमरकोष सबसे अधिक प्रचलित है। अन्य प्रसिद्ध कोश हैं। शाश्वत का अनेकार्थ-समुचय, हलायुध की अभिधानरत्नमाला, यादव-प्रकाश की वैजयन्ती। हेमचन्द्र नामक जैन विद्वान् ने—जिनका स्थितिकाल १०८८ से ११७२ ईसवी है—तीन कोषों की रचना की। अर्वाचीन 'शब्दकल्पद्रुम' अकारानुक्रमी होने से और अन्य कोषों की अपेक्षा बृहत् होने से सबसे उत्तम है।

ये सब कोष हैं सही, पर चीन के विराट् विश्वकोष के सामने ये कुछ नहीं हैं। चीन की जगद्विख्यात भीत के समान यह कोष भी संसार में अद्वितीय है। आज हम इसका कुछ हाल बतलाते हैं।

चीन में एक राजा था। उसका नाम था सम्राट् यंग को तृतीय। वह मिंग-वंश का था। उसने १४०३ में यह निश्चय किया कि चीन में भिन्न भिन्न विषयों पर जितने लेख प्रचलित हैं, उन सबका संग्रह किया जाय। इसके लिए उसने Hsieh chin (सीह चिन) नामक विद्वान् को नियुक्त किया। उसने १४६ विद्वानों की सहायता से १ वर्ष और ४ महीनों में अपना कार्य सम्पूर्ण किया। उस ग्रन्थ का नाम रखा गया Wen-Hsien Tach'-eng अर्थात् साहित्य का अविकल विवरण। ग्रन्थ बड़ा भारी था। बृहत् होने पर भी सम्राट् को उससे सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए लेखों का संग्रह करने के लिए पुनः तीन विद्वान् नियुक्त किये गये। सीह चिन भी इनमें से एक था। २१६९ मनुष्य और इसमें सहायता देने के लिए निर्दिष्ट हुए। चार वर्ष तक बराबर काम होता रहा। तब कहीं काम ख़तम हुआ।

११,१०० जिल्दें बनकर तैयार हुईं। उनमें २२,८७७ अध्याय थे। प्रत्येक जिल्द कोई आध इञ्च मोटी थी। यदि सब जिल्दें एक के ऊपर रख दी जातीं तो उनकी उँचाई ४५० फ़ीट होती।

हर जिल्द १ फुट ८ इंच लम्बी और एक फुट चौड़ी थी। इसके प्रत्येक परिच्छेद में २० पन्ने थे। इसलिए कुल ९,१७,४८० पन्ने हुए।

१४१० में यह निश्चय किया गया कि यह ग्रन्थ छपा दिया जाय। पर जब हिसाब लगाकर देखा गया तब जान पड़ा कि इसमें बेहद ख़र्च होगा। इसलिए यह विचार छोड़ दिया गया। १५६२ में १०० विद्वानों को उसकी नक़ल उतारने की आज्ञा दी गई। इसे इन लोगों ने १५६७ में पूरा किया था। १६४४ में मूल ग्रन्थ जलगया। नक़ल Hon Lin हन लिन नामक विद्यालय में रख दी गई। १९०० के बाक्सर-विप्लव में उसका भी नाश होगया। सिर्फ़ ६ जिल्दें लैन्सलाट गिल्स और उसके पिता हर्बर्ट गिल्स को मिलीं। हर्बर्ट गिल्स ने नाइन्टीन्थ सेन्चरी में इस पर एक लेख लिखकर छपाया था और पूर्वोक्त विवरण भी दिया। नहीं तो कदाचित् इसके अस्तित्व का भी किसी को पता न लगता।

(पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी)

५—इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के नये वाइस चान्सलर आनरेबल जस्टिस थियोडर केरो पिगट ।

इस वर्ष के आरम्भ से आनरेबल जस्टिस थियोडर केरो पिगट इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर नियुक्त हुए हैं ।

जस्टिस पिगट का जन्म २६ आक्टोबर १८६७ में इटली देश के पेडुआ नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम था रेवरेन्ड हेनरी जेम्स पिगट । जस्टिस थियोडर केरो पिगट ने पहले बाथ के किन्गसउड स्कूल में शिक्षा पाई । सन् १८८४ में क्राइस्टचर्च में इन्हें क्लासिक्स में जूनियर स्टूडेन्टशिप मिली । सन् १८८६ में क्लासिकल माड रेशन्स में दूसरे दर्जे के आनर्स मिले । इन्डियन सिविल-सर्विस की परीक्षा १८८६ और अन्तिम १८८८ में पास की। पहले पहल ये असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट और ज्वाइन्ट-मजिस्ट्रेट झाँसी, मिर्ज़ापुर, ग़ाज़ीपुर, बलिया, बदायूँ और सहारनपुर ज़िलों में रहे । सेप्टेम्बर १८९१ में इनका विवाह वाल्टर शूडी लायल साहब की लड़की, सर अलफ्रेड लायल तथा सर जेम्स लायल की भतीजी से हुआ । इनके दो लड़कियां हैं। सन् १८९५-९६ में अलीगढ़ में क़ायममुक़ाम एडीशनल जज नियुक्त हुए, १८९७-९९ में बहराइच के डिप्टी कमिशनर और १९००-१९०३ में मुरादाबाद के डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज नियुक्त हुए। बुन्देलखंड एन्कमबर्ड एस्टेट्स एक्ट के अनुसार ये बांदा और इलाहाबाद में स्पेशल जज १९०३ से १९०६ तक रहे। फिर सन् १९०७ में गोंडे के डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज हुए और मिस्टर एल जी इवेन्स के बाद १९०८-१९०९ में अवध के क़ायममुक़ाम एडीशनल जुडीशल कमिशनर और सर सुन्दरलाल के इस्तेफ़ा दे देने पर वे इस पद पर सन् १९११ में स्थायी रूप से नियुक्त कर दिये गये। उसी साल वे दिल्ली-दर्बार भी गये थे। गवर्नमेन्ट ने प्रारम्भिक शिक्षा के फैलाने के लिए सन् १९१३ में एक कमेटी नियुक्त की थी। जस्टिस पिगट उस कमेटी के सभापति थे । सन् १९०९-१९१३ तक में इलाहाबाद हाईकोर्ट के क़ायममुक़ाम जज हुए और मई सन् १९१४ से इस हाईकोर्ट के जज स्थायी रूप से नियुक्त हैं और इस वर्ष जनवरी १९१९ से इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर नियुक्त हुए हैं। आप बड़े विद्वान् हैं और आप की स्मरण-शक्ति बड़ी विलक्षण है।

६—संयुक्त-प्रदेश के जङ्गल और युद्ध ।

सन् १९१८-१९ में संयुक्त-प्रदेश के जङ्गलों से ७,५०,००० स्लीपर छोटी लाइन के रेलों के लिए और १,५०,००६ बड़ी लाइन के लिए भेजे गये। इनके दाम क़रीब २२,९०,०००) रुपये हुए। इसके सिवा ८००० टन शहतीर वग़ैरः पुलों और इमारतों के लिए भेजे गये। इन सबका मूल्य क़रीब २८,००,०००) रुपये हुआ। और भी सामान जङ्गलों से भेजा गया। भेजी हुई समस्त सामग्री का मूल्य क़रीब ६०,०००) रुपये है। यह आमदनी सिर्फ़ एक प्रान्त के जङ्गलों से हुई है सो भी एक साल में। इस देश के अन्यान्य प्रान्तों के जङ्गलों ने भी युद्धकाल में सरकार की ऐसी ही सहायता की होगी।

७—संग्राम स्थगित ।

संग्राम स्थगित हो गया । विपद्ग्रस्त संसार के दुःखों का अन्त होने लगा। ऐसा जान पड़ता है कि युद्ध के कारण भूमण्डल में नये नये विचार और नई नई संस्थाओं का जन्म होगा। समस्त योरप में भी सामाजिक और राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। रूस में राष्ट्र-विप्लव होने के कारण दूसरे ही प्रकार का राज्यनिर्माण हो रहा है। आस्ट्रिया-हंगरी के राजा ने अपनी गद्दी त्याग दी। हंगरी में प्रजा-तन्त्र राज्य स्थापित हो रहा है। जर्मनी के अन्तर्गत पहले ४ राजाओं की रियासतें, ६ ग्रैन्ड डचीज़, ७ प्रिन्सपलीटीज़ (अल्सेज़ लोरेन का प्रान्त) और ३ स्वतंत्र नगर थे। अब कैसर के अतिरिक्त बहुतेरे राजाओं ने अपना अधिकार छोड़ दिया है। तुर्किस्तान में भी अनेक प्रजातन्त्र राज्यों के स्थापित करने का विचार हो रहा है। भविष्य में युद्ध न हो सके और ज़बर्दस्त रियासत कमज़ोर को न सतावें इस हेतु प्रेसीडेन्ट विल्सन के अनुरोध से समस्त राष्ट्रों को सम्मिलित करके एक राष्ट्रसङ्घ (League of Nations) स्थापित किये जाने का विचार हो रहा है। इसका क्या परिणाम होगा सो तो भविष्य की बात है। वर्तमान काल का अन्दाज़ा यह है कि विगत संग्राम में ब्रिटिश साम्राज्य के ५, ६०,००० और फ्रांस के ६,५९,०००

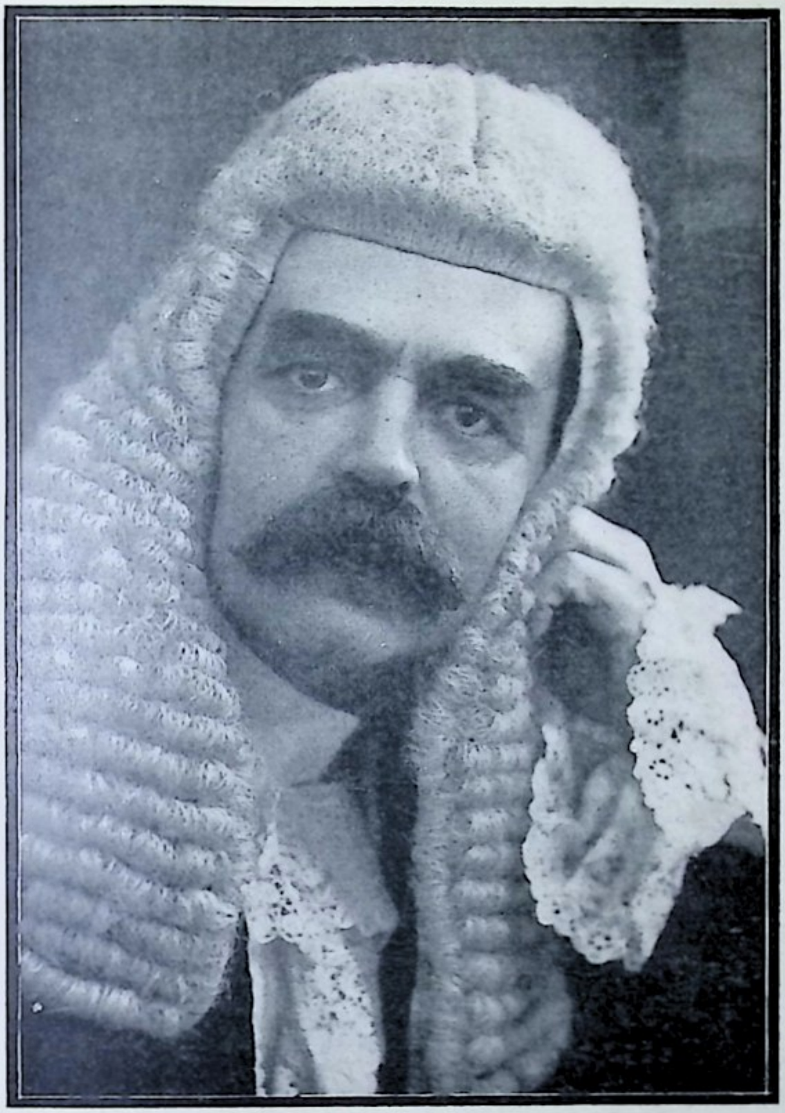

इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के नये वाइस चान्सलर आनरेबल जस्टिस थियोडर केरो पिगट।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सिपाही काम आये। और ३०,४०,००० सिपाही ब्रिटिश और ३७,२० ००० फ्रांस की तरफ़ के घायल हुए। मित्र-राष्ट्रों का क़रीब २१,००० मिलियन (दस लाख) पाउन्ड ख़र्च हुआ और जर्मनों के दल के १९ हज़ार मिलियन पाउन्ड।

८—शुद्धि के कुछ उपाय।

विहार गवर्नमेन्ट के सेनिटरी कमिश्नर ने निम्नलिखित पदार्थों के शुद्ध करने के लिए कुछ सरल उपाय प्रकाशित किये हैं।

१—कूयें—

पोटेसियमपर्मं नङ्गनेट	($\frac{१}{२}$—२ आउन्स)
क्लोरीनेटड लाइम	($\frac{१}{२}$—२ आउन्स)
क्लोरेज़न	(१—४ आउन्स)

पूर्वोक्त चीज़ों के न होने पर चूना ($\frac{१}{२}$–२ पाउन्ड) छिछले या छोटे कुओं के लिए छोटी तादाद और गहरे या बड़े कुओं के लिए बड़ी तादाद दी गई है। ऊपर बतलाई गई चीज़ों में से किसी को पहले एक पात्र में घोल कर फिर उसे कुएं के पानी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

२—पक्के मकान—अगर सफ़ेदी की गई हो तो उसके बाद एक पाउन्ड क्लोरीनेटड लाइम यानी चूने में क्लोरीन मिला कर दो-बारा पोताई करा देनी चाहिए।

अगर सफ़ेदी न की गई हो तो १००० क्यूबिक फुटवाले कमरे में क़रीब आध सेर गन्धक दो घण्टे तक जलाने से धुएं से शुद्धि हो सकती है। गन्धक जलाने के पहले वहाँ से बर्तन इत्यादि निकाल लेने चाहिएं और दर्वाज़े खिड़कियाँ वग़ैरः बन्द कर देने चाहिएं।

३—कच्चे मकान, झोपड़ियाँ—गन्धक जलाने से शुद्ध हो जाते हैं।

४—जिन मकानों में चूहे मरे हों या प्लेग हुआ हो—सूखी नीम की पत्तियाँ और गोबर मिला कर कण्डे बनावे और हर कण्डे में एक तोला गन्धक डाल कर सुखा लेना चाहिए। उन्हीं कण्डों को दर्वाज़े और खिड़कियाँ बन्द कर कमरे के अन्दर जला देने से शुद्धि हो जायगी। अगर छत खपड़ों या घासफूस से बनी हो तो उसे हटा कर कमरे के अन्दर धूप पहुँचाने से भी बड़ा लाभ है।

५—पक्की दीवारें या फ़र्श—लोशन यानी विषघ्न जल से धो देने से शुद्ध हो जाती है।

६—हैज़े के मल की शुद्धि—उसके जला देने से अच्छी तरह होती है।

७—अन्न, दुग्ध, फल और तरकारियाँ—ख़ूब उबाल डालने से विकार-रहित हो जाती हैं।

८—पकाने के वर्त्तन, लोटा, थाली इत्यादि—खौलते हुए पानी में डालने से शुद्ध हो जाती हैं।

९—बिस्तरे कम्मल इत्यादि—धूप में कम से कम ४ घण्टे एक तरफ़ पड़े रख कर फिर ४ घंटे दूसरी तरफ़ लौटा कर सुखाने चाहिएं।

१०—चारपाइयाँ चौकी इत्यादि—लोशन यानी विषघ्न जल से धोकर दो दिन तक धूप में पड़े रहने से शुद्ध हो जाती हैं।

११—धोती साड़ी सूती कपड़े—पानी में डाल कर उबालने या विषघ्न जल में डूबा हुआ रखने के बाद धूप में सुखलाने चाहिएं। फ़ीनाइल, कार्बोलिक एसिड, सिलिन इत्यादि को जल में मिला देने से वह विषघ्न हो जाता है।

१२—बूट जूते और चमड़े की चीज़ें—दो दिन तक धूप में पड़ी रखनी चाहिएं। कभी कभी उन्हें सूखने में उलट पुलट देना भी ज़रूरी है। इसके बाद यदि आवश्यकता हो तो तेल लगा कर मुलायम कर दी जायँ।

१३—रोगियों की सेवा करनेवालों को उचित है कि विषघ्न जल से अपने मुँह और हाथों को धो डाला करें। इस जल के तैयार करने के लिए कारबोलिक-एसिड और सीलिन मिला देने की आवश्यकता होती है। भोजन के पहले साबुन और जल

से मुँह और हाथ धो डालने चाहिएं। रोग से निर्मुक्त हो जाने पर लोगों को अच्छी तरह साबुन से स्नान करा डालना उचित है, विशेष कर उन रोगियों को जो हैज़ा, शीतला इत्यादि भयंकर रोगों से पीड़ित रहे हैं। धूप, विशुद्ध वायु, स्वच्छ जल और रोशनी से मकान सदा पवित्र रहते हैं।

९—मद्रास में हिन्दी-प्रचार।

मद्रास से हमें एक पत्र मिला है। उसके भेजनेवाले हैं श्रीयुत खेमानन्दजी। इससे प्रकट होता है कि उस प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करने के लिए महात्मा गाँधी के प्रयत्न के सफल होने की पूरी आशा है। अस्तु। इस सफलता का वर्णन खेमानन्दजी ही के मुख से सुनिए। आप लिखते हैं :—

"अब गाँधीजी के उद्योग से स्वामी सत्यदेवजी हिन्दी-प्रचार का काम इस प्रान्त में बड़े ज़ोर शोर से कर रहे हैं। यद्यपि यह कार्य अभी अङ्कुर स्वरूप में ही है, फिर भी लक्षणों से साफ़ दिखाई पड़ता है कि यह सर्वथा होनहार है, इसमें सफलता प्राप्त होने की पूर्ण आशा है। यहाँ के लोग बिना किसी प्रकार की विशेष अभ्यर्थना तथा प्रार्थना ही के हिन्दी पढ़ने के लिए स्वयं बड़ा आग्रह करते हैं। क्लास में बैठ कर सच्चे विद्यार्थियों की भाँति बड़े चाव से, बड़ी श्रद्धा और बड़ी भक्ति से हिन्दी पढ़ते हैं। अभी यथेष्ट रूप से क्लासों के न खुलने के कारण लोग दूर दूर से पढ़ने आते हैं। मेरा निज का अनुभव है कि कुछ युवक तीन तीन चार चार मील से पढ़ने आते हैं। एक सज्जन तो 'गोखले-हाल' से जहाँ क्लास होता है—पूरे सात मील के फ़ासले पर रहते हैं।

इस समय मद्रास ख़ास में सात क्लासें हैं और अन्य कई एक खुलनेवाले हैं। यहाँ एक 'सुगुण-विलास-सभा' है जिसमें एक हज़ार से अधिक मेम्बर हैं और वे सब उच्च-पदाधिकारी जज, मर्चेन्टस, वकील, बैरिस्टर आदि हैं। उसी सभा के एक मेम्बर मि० रामराव वकील मुझसे गोखले-हाल में मिले; उन्होंने हिन्दी पढ़ने की बड़ी इच्छा प्रकट की और पूर्वोक्त सभा की ओर से क्लास खोलने के लिए आग्रह किया। वह मुझे अपने साथ ले गये और उन्होंने उपर्युक्त सभा के सेक्रेटरी से भेंट कराई। मन्त्री महोदय इस प्रस्ताव पर बहुत प्रसन्न हुए और शीघ्र ही सभा में इस बात को पास कराकर क्लास खोलने का वचन दिया और हँसते हुए कहा, 'मैं भी स्वयं एक विद्यार्थी हूँगा'। आशा है कि वहाँ शीघ्र ही एक नहीं, कई क्लास खुलेंगे। इसके अतिरिक्त तीन क्लास मसुली-पटम में खुले हुए हैं। मि० देवीदास गाँधी के वापस आने पर यह काम और भी ज़ोर पकड़ेगा, क्योंकि वे अल्प-वयस्क होते हुए भी थोड़े ही दिनों में बहुत सर्व-प्रिय हो गये हैं। गान्धीजी के बीमार हो जाने के कारण वे चले गये थे, अब आने ही वाले हैं। विद्यार्थी लोग उनकी बाट जोह रहे हैं।

यहाँ कालेज के विद्यार्थी नौकरीपेशा लोग और वकील आदि तो पढ़ते ही हैं, पर इससे भी अधिक विशेष महत्त्व की बात यह है कि कुछ पाँच सात वर्ष के छोटे छोटे बच्चे भी हिन्दी माता की गोद में बैठ कर खेलते हैं"।

पुस्तक-परिचय

१—प्राचीन-लिपि-माला—रचयिता, रायबहादुर पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सुपरिन्टेन्डेण्ट, राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर। मूल्य पचीस रुपये।

पुरातत्त्व से प्रेम रखने और पुराने उत्कीर्ण लेख तथा सिक्के आदि पढ़ सकनेवाले भारतीय विद्वानों की संख्या बहुत ही कम है। इस विषय में हिन्दी में कुछ लिखनेवाले तो इस देश में दो ही एक निकलेंगे। रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा इन्हीं में से एक हैं। बहुत दिनों से आप अपनी प्रत्न-तत्त्वज्ञता से हिन्दी-भाषा-भाषियों का उपकार-साधन कर रहे हैं। बहुत समय हो चुका, आपने प्राचीन लिपियों की निदर्शक प्राचीन-लिपि-माला नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसका बड़ा आदर हुआ। कालेजों के बहु-संख्यक देश में और विदेश में भी छात्रों ने उससे यथेच्छ लाभ उठाया। उसने औरों की भी ज्ञान-वृद्धि की। पर धीरे धीरे वह अप्राप्य हो गई। इसी

से अब आपने उसका संवर्द्धित और संशोधित संस्करण पुनः प्रकाशित किया है। इस संस्करण का आकार एवं उसकी छपाई सफ़ाई बिलकुल वैसी ही है जैसी कि भारतीय पुरातत्त्व-विभाग की वार्षिक रिपोर्टों की हुआ करती है।

आपकी पुस्तक का यह संस्करण बहुत ही उत्तम निकला है। वह भारत की प्राचीन लिपियों को सीखने का साधन मात्र ही नहीं है, किन्तु उससे और भी कितने ही ऐतिहासिक विषयों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पुस्तक की भूमिका तो बड़े ही महत्त्व की है। पाद टिप्पणियाँ देकर और विवादास्पद ऐतिहासिक विषयों पर प्रकाश डाल कर आपने इस संस्करण की मौलिकता बहुत अधिक बढ़ा दी है।

आपकी एक उदारता विशेष प्रशंसा की पात्र है। वह है आपका हिन्दी-प्रेम। हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि में इस पुस्तक का प्रकाशन करके आपने अपनी भाषा और अँगरेज़ी न जाननेवाले लोगों का बहुत उपकार किया है।

हिन्दी में इस विषय की यही पुस्तक है और हर दृष्टि से संग्रहणीय है। जिन शिला-लेखों और ताम्रपत्रों को देख देख संस्कृत के पण्डित और हिन्दी-प्रेमी चकराया करते थे उनके लिए, इस पुस्तक की बदौलत, अब पुराने लेखों को पढ़ने का साधन सुलभ हो गया। थोड़े ही श्रम और अभ्यास से अब ये लोग ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि प्राचीन लिपियाँ पढ़ सकेंगे।

आपकी यह पुस्तक प्रधानतया दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में आपने लेखन-कला की उत्पत्ति और उसके सम्बन्ध की सब बातों का विवेचना-पूर्ण विस्तृत विचार किया है। आपने अनेकों प्रमाण देकर उन योरुपीय विद्वानों के मतों को निस्सार प्रमाणित कर दिया है जो अभी तक यही मान रहे हैं कि भारत में, पाणिनि के समय में भी, लेखन-कला का अभाव था। आपने यह बात भी सिद्ध कर दी है कि ब्राह्मी लिपि भारतीय लिपि है; कहीं अन्यत्र सीखी जाकर भारत में नहीं प्रचलित की गई, जैसा कि कुछ विदेशी विद्वानों का हठपूर्ण अनुमान है।

पुस्तक में पुराने से पुराने शिला-लेखों और ताम्रपत्रों के आंशिक अवतरण देकर लिपि का क्रम-विकाश दिखाया गया है। वर्त्तमान लिपि में उनका रूपान्तर भी दे दिया गया है। ऐसे अनेक अवतरण पुस्तक में हैं। प्रायः हर अवतरण के बाद लिपि की विशेषता समझाई गई है। दक्षिण की भी कुछ लिपियों के नमूने हैं। इस पुस्तक को हिन्दी में हम अनमोल ही नहीं, अद्भुत भी, समझते हैं। समर्थवान् सज्जनों, विशेष करके पुस्तकालयों को, इसकी एक कापी ज़रूर अपने संग्रह में रखनी चाहिए। कालेज में जिन छात्रों का एक विषय Paleography है उनको भी इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठाना चाहिए।

⁂

२—**रूस का राहु**—अनुवादक, श्रीयुत विश्वम्भर-नाथ शर्म्मा कौशिक, प्रकाशक—प्रताप कार्य्यालय कानपूर; मूल्य ।=) ; पृष्ठ-संख्या १००।

यह प्रताप-ग्रन्थ-माला की ग्यारहवीं पुस्तक है। यह वास्तव में रास पुटिन की जीवनी है। इस व्यक्ति का रूस-राज्य क्रान्ति से क्या सम्बन्ध था, यह पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने से मालूम हो जाता है। रास पुटिन अत्यन्त तीक्ष्ण-बुद्धि तथा प्रपञ्ची और चालाक था। ज़ार इसके हाथ की कठपुतली थे। ऐसे व्यक्ति की जीवनी इस समय जब कि संसार की दृष्टि रूस की ओर है उपयुक्त ही है।

भाषा में कहीं कहीं त्रुटियाँ रह गई हैं। पुस्तक जीवनी होने पर भी कहीं कहीं उपन्यास के ढङ्ग की है। पुस्तक के अन्त में ९७ से १०० पृष्ठ दो दफ़े लग गये हैं।

टाइटिल-पेज पर रास पुटिन की एक तसवीर भी दी गई है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती है।

⁂

३—'ज़माना'—ज़माने का जनवरी का अङ्क बड़े ठाठ से निकला है। चार तसवीरें—प्रेसीडन्ट विल्सन, मि० लायड जार्ज, सर एस० पी० सिन्हा और महाराजा बीकानेर की—दी हुई हैं। सय्यद अब्दुल माजिद साहब का एक मज़मून कनफ़्यूशस और उसकी फ़िलासफ़ी पर रोचक और शिक्षाप्रद है।

प्रोफ़ेसर इक़बाल बहादुर सक्सेना का लेख औद्योगिक विषय पर पढ़ने लायक़ है।

मशहूर शायरों के जैसे इक़बाल अकबर व अब्र वग़ैरा के अच्छे 'कलाम' दिये हैं। 'ज़माना' पहले बहुत पिछड़

कर आया करता था, परन्तु हर्ष की बात है कि अब ठीक समय पर निकलने लगा है।

⁂

४—सिराजुद्दौला—अनुवादक, पण्डित भगवानदीन पाठक, 'विशारद', प्रकाशक अभ्युदय प्रेस, प्रयाग; मूल्य सजिल्द २॥), सादी का २) ; पृष्ठ-संख्या ३६० ; अभ्युदय-ग्रन्थमाला की पहली पुस्तक श्रीयुत बाबू अक्षयकुमार की प्रसिद्ध पुस्तक सिराजुद्दौला का हिन्दी-अनुवाद है। मूल पुस्तक का बँगला भाषा में बड़ा आदर है। इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद हो जाने से हिन्दी-भाषा-भाषियों का बड़ा उपकार हुआ है।

सिराजुद्दौला के नाम पर जो कलङ्क-कालिमा विदेशी इतिहासकारों ने लगाई है, इसका अनुमान इस पुस्तक के पढ़ने से हो सकता है।

मूल पुस्तक की शैली और भाषा बड़ी रोचक है। अनुवाद भी अच्छा हुआ है। इससे मूल पुस्तक का आनन्द आ जाता है।

⁂

५—सेवा-सदन—लेखक, श्रीयुत प्रेमचन्द्र; प्रकाशक, महावीरप्रसाद पोद्दार, व्यवस्थापक हिन्दी-पुस्तक-एजन्सी, १२६, हेरिसन रोड, कलकत्ता। मूल्य २॥), पृष्ठ-संख्या ५१२; छपाई और जिल्द उत्तम है। भाषा सरल और लिखने की शैली रोचक है। यह उपन्यास की पुस्तक वेश्यानृत्यादि बहुतेरी सामाजिक कुरीतियों को दिखलाती है।

चित्र-परिचय

कृष्ण-राधिका

इस महीने का रङ्गीन चित्र 'कृष्ण-राधिका' है। यह काँगड़ा की क़लम का उत्तम नमूना है। कृष्णजी राधा को ढूँढ़ने के लिए बहुत समय से निकले हुए थे; पर उनका कहीं पता न लगा। फिर वे एक वृक्ष के नीचे आ बैठे। वहाँ एक सखी से वे पूछने लगे कि तुमने राधा को देखा है? सखी हाथ उठा कर बताने लगी कि हाँ ये हैं। उस समय राधाजी जूड़ा बाँध रही थीं। सखी की मधुर वाणी सुनते ही, जूड़ा बाँधती हुई उन्होंने चौंक कर देखा कि कृष्णजी बैठे हैं। बस, फिर क्या था; दोनों के नेत्र एक दूसरे से मिलसे गये; वे दोनों एक दूसरे को एकटक देखने लगे। इसी अभिप्राय का यह चित्र कलकत्ते के चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा ने भेजने की कृपा की है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

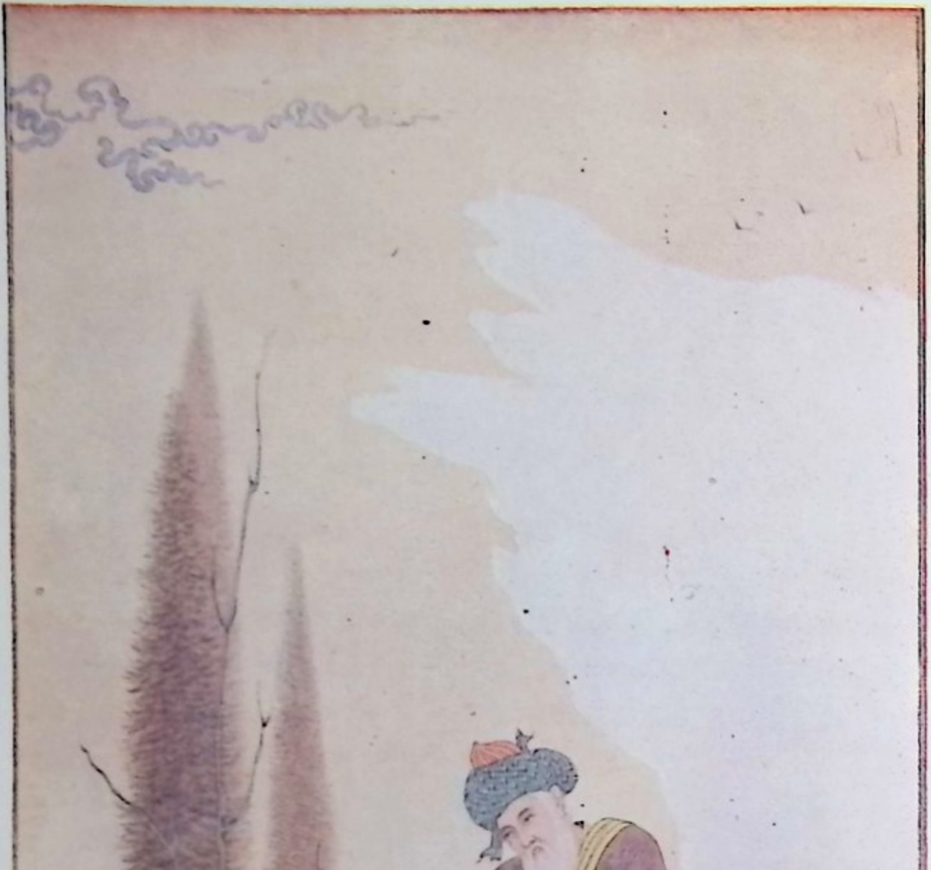

उमरख़याम।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

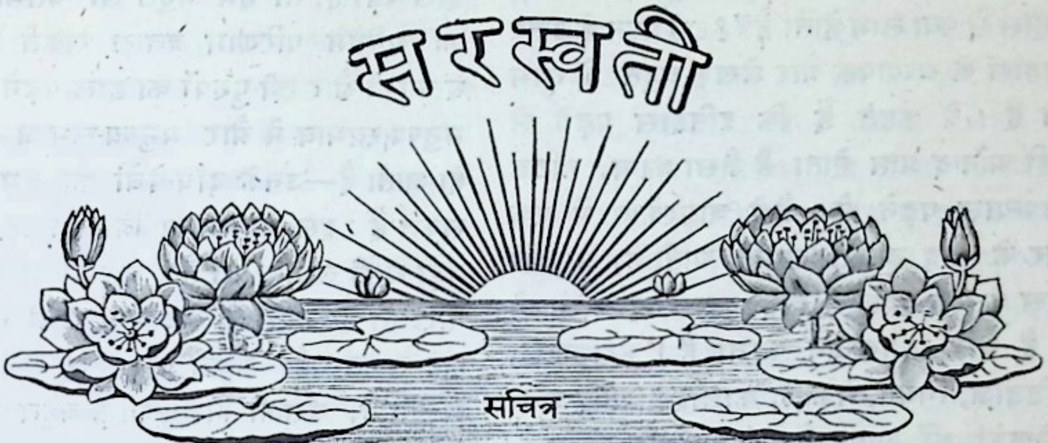

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड १] मार्च १९१९—चैत्र १९७५ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २३१

जीवन्मुक्त-पञ्चक।

पूछते हो क्या मेरा नाम,
जड़ चेतन सब दिखा रहे हैं मेरा रूप ललाम।

(१)

जल, थल, अनल, अनिल, गगन सब में हूँ मैं व्याप्त;
विश्व-बीज ओङ्कार तक मुझमें हुआ समाप्त। पूछते हो०

(२)

आत्म-ज्ञान की नाव में, बैठा हूँ सानन्द;
भव-सागर में घूमता फिरता हूँ स्वच्छन्द। पूछते हो०

(३)

भव-जल में मैं कमल हूँ, भव-घन में आदित्य;
भव-घट-मठ में व्योम हूँ, अद्भुत, अक्षर, नित्य। पूछते हो०

(४)

नर-तनु है धारण किया, करने को खिलवाड़;
कोई देख सका नहीं, तिल की ओट पहाड़। पूछते हो०

(५)

अहङ्कार का हार, डाल कल्पना के गले;
मायामय संसार, बन बैठा मैं आपही। पूछते हो०

बदरीनाथ भट्ट

इतिहास और राजनीति*

जब इतिहास पढ़नेवाले विद्यार्थी राजाओं के नाम, उनके जन्म-मरण की तारीख़ें, युद्धों की हार-जीत, षड्यन्त्रों और विद्रोहों के परिणाम याद करते करते थक जाते हैं और हताश हो जाते हैं तब कभी कभी इस विषय से उनको अरुचि हो जाती है और वे पूछने लगते हैं "इतिहास से क्या लाभ होता है"? इस प्रश्न के उत्तर में इतिहास के अध्यापक और लेखक बहुत से लाभ गिनाते हैं। वे कहते हैं कि इतिहास पढ़ने से वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है जैसा काव्य, नाटक और उपन्यास पढ़ने से। जैसे बायस्कोप में एक तसवीर के बाद दूसरी सामने आती है, वैसे ही इतिहास के एक दृश्य के बाद दूसरा दृश्य सामने आता है और मनोरञ्जन करता है। हेरोडोटस, थ्यूसिडिडीज़, गिबन, मेकाले, कार्लाइल आदि इतिहास-लेखकों की भाषा और लेखनशैली उत्तम है; उनके ग्रन्थों के पाठकों को भाषा पर प्रगाढ़ अधिकार हो सकता है और विचार प्रकट करने की शक्ति भी बढ़ जाती है। दूसरे, भूतकाल की घटनाओं से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं; बहुत सी भूलों से बच सकते हैं। प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़ने से हम अपने आदर्श स्थिर कर सकते हैं, उन्नति का मार्ग पहचान सकते हैं और भविष्य में उनके समान बनने की आशा कर सकते हैं। अपने प्राचीन गौरव, वीरत्व और महान् कार्यों का वृत्तान्त पढ़ने से देशभक्ति और समाज-सेवा का भाव जागृत होता है और देश की भविष्य उन्नति की आशा होती है। जो जाति अपने इतिहास से परिचित नहीं, अपने इतिहास पर गर्व नहीं करती, अपने पूर्वजों के नाम पर खून बहाने को तैयार नहीं, वह कभी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सकती। संसार में सब कार्य कारण से उत्पन्न होते हैं; समान कारणों से समान कार्यों की उत्पत्ति होती है। वर्तमान समय में भी भूतकाल की सी घटनायें हुआ करती हैं। यदि हमने इतिहास पढ़ा है, तो हम बहुत सी वर्तमान घटनाओं का अन्तिम परिणाम बतला सकते हैं। सैकड़ों घटनाओं और स्त्री-पुरुषों का हाल पढ़ने से हम को मनुष्य-स्वभाव में और मनुष्य-समाज में अन्तर्दृष्टि हो जाती है—उनके दाँव-पेचों को हम खूब समझ सकते हैं। इस के अलावा विद्यार्थी के मस्तिष्क को बड़ा भारी लाभ होता है। वह महती घटनाओं से परिचित हो जाता है, उन पर अच्छी तरह विचार कर सकता है, अच्छी तरह सम्मति स्थिर कर सकता है, उसकी निर्णय-शक्ति बहुत परिष्कृत हो जाती है।

इस प्रकार इतिहास से बहुत से लाभ बतलाये जाते हैं। पर आनन्द, मनोरञ्जन, भाषा पर अधिकार और विचार-प्रकाशनशक्ति की वृद्धि, उपदेश, चेतावनी, उत्कृष्ट भावों की जागृति, देश-भक्ति, समाज-सेवा-भाव की वृद्धि, मनुष्य-स्वभाव और समाज में अन्तर्दृष्टि, विचारशक्ति और निर्णय-शक्ति की वृद्धि, इत्यादि लाभ इतिहास के अलावा काव्य, नाटक, उपन्यास, मनोविज्ञानादिक और विषयों से, भी हो सकते हैं। अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण होने पर भी ये इतिहास के विशेष लाभ नहीं हैं—प्रधान लाभ भी नहीं हैं—केवल आनुषङ्गिक लाभ हैं।

वनस्पति शास्त्र के विद्यार्थी की भी बुद्धि, विचारशक्ति, निर्णयशक्ति इत्यादि मानसिक शक्तियाँ उन्नत हो जाती हैं, और उसको आनन्द और मनोरञ्जन भी होता है, पर उस को विशेष और

---

* इस अध्याय में इतिहास से हमारा अभिप्राय समाज, साहित्य, कला, उद्योग, व्यापार इत्यादि के इतिहास से नहीं है, किन्तु केवल सामान्य इतिहास अर्थात् राजनैतिक इतिहास से है।

प्रधान लाभ यह होता है कि वह वनस्पतियों की जातियों, उपजातियों, कक्षाओं, रूप, रङ्ग, बनावट, अङ्गों की वृद्धि और क्रियाओं इत्यादि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार वास्तविक इतिहास के सच्चे विद्यार्थियों को मुख्य लाभ यह होता है कि उन को राजनैतिक समाज के—शासन के विकास के, उनके भिन्न भिन्न प्रकारों के, भिन्न भिन्न अवस्थाओं के, प्ररिवर्तनों और परिवर्तनों के कारणों के, उसके अङ्गों की वृद्धि और ह्रास के व्यापक नियमों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बिलकुल यही लाभ राजकीय शास्त्र से भी होता है। इतिहास और राजकीय शास्त्र का विषय एक ही है। भेद यह है कि इतिहास राजकीय मामलों से सम्बन्ध रखनेवाली सब घटनाओं का एकत्र समावेश करता है। राजकीय शास्त्र उन घटनाओं के आधार पर (तथा वर्तमान राजनैतिक स्थिति की भी सहायता लेकर) व्यापक नियम स्थिर करता है। इतिहास सामग्री देता है, राजकीय शास्त्र उस सामग्री का उपयोग करता है। यदि सामग्री न हो तो किसी वस्तु का निर्माण नहीं हो सकता। यदि किसी वस्तु का निर्माण न हुआ तो सामग्री वर्तमान रहने से लाभ क्या हुआ। इसी भाव को अध्यापक सर जान सीली ने इस तरह प्रकट किया है कि "राजकीय शास्त्र के बिना इतिहास अधूरा है। इतिहास के बिना राजकीय शास्त्र आधार-हीन है। राजकीय शास्त्र के बिना इतिहास में कोई बल नहीं है। इतिहास के बिना राजकीय शास्त्र की कोई जड़ नहीं है।"* जो विद्यार्थी एक विषय का अध्ययन करें उनके लिए दूसरे का अध्ययन भी आवश्यक है। वे दोनों एक दूसरे से स्वभावतः ऐसे अभेद्य रूप से मिले हुए हैं कि उन को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् करने का प्रयत्न घातक हुए बिना नहीं रह सकता। जब हम इतिहास की घटनायें पढ़ें तब हमें बराबर ये प्रश्न करने चाहिए कि इस घटना का अमुक घटना से क्या सम्बन्ध है? क्या एक दूसरे के बाद घटनेवाली अमुक दोनों घटनाओं में कोई कार्य-कारण-सम्बन्ध है? यह राजनैतिक परिवर्तन किन कारणों का परिणाम है और किस ढङ्ग से हुआ? इसके स्थान पर और कोई परिवर्तन क्यों न होगया? यही परिवर्तन किसी दूसरे ढङ्ग से क्यों न हुआ? जब हम भूमण्डल के बहुत से देशों का, अत्यन्त प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक का, इतिहास इस रीति से पढ़ें और उनकी घटनाओं की तुलना एक दूसरे से करें, तो, परिणामों और परिवर्तनों के साधारण व्यापक नियम आपसे आप हमारे ध्यान में आ जायँगे। यही नियम राजकीय शास्त्र के सिद्धान्त कहलायेंगे।

यदि हमें इतिहास रूखा और लाभ-हीन मालूम होता है, तो इसका कारण यही है कि हम उसे राजकीय शास्त्र के साथ साथ या यों कहिए कि राजकीय शास्त्र की दृष्टि से नहीं पढ़ते। हम केवल घटनाओं को कण्ठस्थ करने का प्रयत्न करते हैं, उनके कार्य-कारण-सम्बन्ध को ठीक ठीक समझने का प्रयत्न नहीं करते। उनमें व्यापक नियमों की खोज नहीं करते। इसलिए वह काफ़ी चित्ताकर्षक नहीं होतीं, उनको याद रखने में भी आसानी नहीं होती और याद हो जाने पर उनसे बहुत लाभ भी नहीं होता। किसी कुम्हार से कह दीजिए कि "भाई तुम बराबर जितनी हो सकें उतनी मिट्टी जमा करते जाओ। मिट्टी खोदने से और एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाने से तुम्हारी बाँहें पुष्ट हो जायँगी, पैरों में भी बल आ जायगा, सारे शरीर में फुर्ती आ जायगी; तरह तरह की मिट्टी, तरह तरह के पेड़-पौधे, जीव-जन्तु देखने का तुम्हें अवसर मिलेगा; समय समय पर शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी प्राप्त होगी।

---

* सर जान सीली की "राजकीय शास्त्र की भूमिका" (Introduction to Political Science) के पहले व्याख्यान का चौथा पृष्ठ देखिए।

तुम्हारा परिश्रम देख कर लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। तुम लगातार मिट्टी के ढेर लगाते रहना, पर देखो घड़ा बनाने का प्रयत्न कभी न करना। प्रयत्न करने की कौन कहे, कभी ऐसी बात का विचार भी मन में न लाना"। इस आदेश के अनुसार चलनेवाले कुम्हार को शायद थोड़े ही दिनों में अपना जीवन भार मालूम होने लगेगा। राजकीय शास्त्र का कुछ भी ध्यान न रखनेवाले, केवल घटना-चक्र में घूमनेवाले, इतिहास के विद्यार्थियों की भी यही गति होती है।

इतिहास की सहायता विना राजकीय-शास्त्र-रचना के प्रयत्न भी कम भयङ्कर नहीं होते। कुम्हार से कह दीजिए कि "भाई तुम घड़ा बनाओ। घड़ा बनाना ही तुम्हारा प्रधान कर्तव्य—तुम्हारे जीवन का परम ध्येय—है। घड़ा बना कर तुम संसार का महान् उपकार करोगे—हज़ारों लाखों आदमी तुम्हारे बनाये हुए घड़ों से जल पीयेंगे, सैकड़ों दूकानदार उनमें मसाले इत्यादि विक्री के लिए रक्खेंगे, शादी-व्याह में तुम्हारे घड़ों की सहायता से बहुत सी रस्में पूरी की जायँगी। अपने उत्तरदायित्व को खूब अच्छी तरह अनुभव करो और बड़े ही सुन्दर उपयोगी घड़े बनाओ। पर देखो, मिट्टी का विलकुल प्रयोग न करना। तुम्हारे पास बुद्धि है, बल है, चातुर्य है, सहायता देने के लिए कुटुम्बी हैं, उत्साह बढ़ाने के लिए मित्र-मण्डल है। तुमको किसी वात की कमी नहीं। तुच्छातितुच्छ पदार्थ मिट्टी तुम्हारे किस काम आ सकती है?" इस आदेश को माननेवाला कुम्हार कल्पना-क्षेत्र में ही घूमता रह जायगा और कल्पित घड़े बनाने में ही समय नष्ट कर देगा।

यही समझ कर अरस्तू ने अपने ग्रन्थ राजनीति में इतिहास से बड़ी सहायता ली थी। जान स्टुअर्ट मिल ने शास्त्रों की रचना पर विचार करते हुए अपने तर्कशास्त्र में लिखा है कि "इतिहास ही राजकीय शास्त्र का आधार है। सुप्रसिद्ध अमरीकन लेखक और राज्यसंघ (United States) अमरीका के वर्तमान अध्यक्ष डा० उडरो विल्सन ने अपनी प्रामाणिक पुस्तक स्टेट (The State) में इतिहास के आधार पर ही राजनीति पर विचार किया है। केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के इतिहास के अध्यापक सर जान सीली ने इतिहास और राजनीति का सम्वन्ध दिखलाने में अपने जीवन का एक बड़ा अंश व्यतीत किया था।

एडवर्ड फ़्रीमैन ने कहा है कि इतिहास भूतकाल की राजनीति मात्र है। यह परिभाषा सर्वथा दोषरहित नहीं है, पर इसमें सत्य का अंश अवश्य है। उसी प्रकार यह भी कह सकते हैं कि राजनीति वर्तमान इतिहास है।

बेनीप्रसाद, एम० ए०।

श्रीगुलाबराव महाराज।

शालिवाहन शक १८३७ की भाद्रपद शुक्ल १२ (ता० २०—९—१९१५) को श्रीगुलाबराव महाराज नामक महाराष्ट्र के एक सत्पुरुष का देहावसान हो गया। इन महानुभाव का जन्म बरार-प्रान्त में अमरावती ज़िले के लोनीटाकली नामक ग्राम में शालिवाहन शक १८०३ के आषाढ मास में हुआ था। वे बालान्ध थे। उनके माता-पिता भी उनकी बाल्यावस्था में ही मृत हो गये। इससे उनका पालन-पोषण आदि अन्य सम्बन्धियों और मित्रों के घर हुआ। परन्तु उनके स्वभाव में असामान्य स्वतन्त्रता थी। अतः आमरणान्त वे किसी के बँधे हुए नहीं रहे। अन्य बालकों के समान महाराज को भी बालपन में

खेल-कूद से अत्यन्त प्रीति थी। बरन, यह वृत्ति उनकी आयु भर दिखाई देती थी। अपने अनुयायियों के सङ्ग वे बड़े प्रेम के साथ हँसते खेलते थे। परन्तु खेल में भी उनकी अलौकिक बुद्धि प्रतीत हुए बिना न रहती थी। अतः यद्यपि वे खेलते और क्रीड़ा करते थे, तथापि उनका प्रभाव ऐसा था कि उनके सङ्ग क्रीड़ा करनेवालों को भी कभी कभी उनकी श्रेष्ठता का विस्मरण होना असम्भव था। धर्म से प्रीति और अधर्म या अनीति से वैर उनमें बालपन से ही दिखाई देते थे। गाँव में ज्योंही किसी अनाचार की वार्ता उनके कानों में पड़ती, त्योंही वे उस पर निर्भर्त्सनात्मक गीत रचते और लड़कों से गाँव भर में गवाते फिरते थे। गीत और कविता रचने की उन्हें बालपन से ही असाधारण स्फूर्ति थी। तथा उनकी बालपन की कविता विद्वत्ता-प्रचुर भी होती थी। दस-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही वे बड़े बड़े वेदान्त-पूर्ण विषयों पर ओवी नामक मराठी छन्द में व्याख्यान दे सकते थे। इस प्रकार उनमें जन्म-सिद्ध विद्वत्ता, साधुता और कवित्व, तीनों दैवीगुण सम्मिलित हो, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुलसीदास, कबीर आदि महात्माओं का स्मरण दिलाते थे।

श्रीगुलाबराव महाराज।

विद्याभ्यास

महाराज के विद्याभ्यास की कथा अनोखी है। जिन शिक्षक के पास वे प्राथमिक शिक्षा पाने के लिए भेजे गये थे, वे ही कुछ दिनों के बाद उनके शिष्य बन गये। अन्ध होने के कारण उन्हें पढ़ना तो दुर्लभ था। परन्तु भाषा, कविता, गणित आदि सम्पूर्ण विषय उन्हें शीघ्र ही कण्ठस्थ हो जाते थे। बरन, उन विषयों में वे जो आशङ्कायें शिक्षक से करते, अथवा शिक्षक का क्रोध बढ़ाने के लिए अथवा कभी क्रोध से बचने के लिए अन्य बालकों से पुछवाते थे, उनका यथार्थ उत्तर देने के लिए शिक्षक स्वयं असमर्थ होते थे। इस कारण उनकी सब प्राथमिक शिक्षा थोड़े ही दिनों में समाप्त हो गई।

स्वयं-प्रज्ञा

परन्तु महाराज के कुग्रामवास और अन्धता के कारण बीस वर्ष की अवस्था तक उनकी स्वयं-प्रज्ञा की ओर लोगों का जितना ध्यान खिँचना चाहिए था उतना न खिँच सका। तथापि कुछ थोड़े से लोग उनकी अलौकिकता को देख बाल्यावस्था से ही उन पर प्रेम करते और उनके सहवास में रहते थे। उन्हें उनके अनेक आश्चर्य भी प्रतीत हुए हैं। बीस वर्ष की अवस्था के पूर्व ही कई लोगों ने उन्हें वेद कहते तथा कभी न देखे हुए अनेक स्थानों का यथार्थ वर्णन करते सुना है। स्मरण रहे कि बीस वर्ष की अवस्था तक वे अपना ग्राम छोड़ कर आस पास के छोटे मोटे ग्रामों के सिवा अधिक काल तक रहने या विद्याभ्यास करने के लिए कहीं न गये थे। संस्कृत की शिक्षा तो उन्होंने कहीं नहीं पाई थी। बीस वर्ष की अवस्था के पूर्व ही महाराज ने मानभाव आदि पन्थों, डार्विन, स्पेन्सर आदि विदेशी ग्रन्थकारों और थिआसफ़ी आदि नूतन समाजों के सिद्धान्तों की समीक्षा कर उन उन मतानुयायियों को कुण्ठित किया था। सन् १९०२ में महाराज

अमरावती में आ रहे। तब से उनकी कीर्ति महाराष्ट्र में फैल गई। तभी से उनके असाधारण ज्ञान का विशेष परिचय होने लगा। रोज़ उनके व्याख्यान और कविता आदि सुनने के लिए लोगों की भीड़ होने लगी। वे ओंवी नामक छन्द में व्याख्यान देते थे। परन्तु उनकी कविता-स्फूर्त्ति इतनी तीव्र थी कि प्रायः शिक्षित लोगों को भी उसका अर्थ समझते हुए सम्पूर्ण व्याख्यान सुनना कठिन होता था। उनकी वाणी इतनी शुद्ध, इतनी सरस और इतनी प्रेमपूर्ण थी कि उनके श्रीकृष्ण-विषयक व्याख्यान सुनते हुए अन्तःकरण गद्‌गद हो जाता था। बचपन से ही उन्हें श्रीकृष्ण पर अत्यन्त प्रेम था। रोज़ श्रीकृष्ण-मूर्त्ति का पूजन करते हुए, श्रीकृष्ण-गुणों के गीत गाते हुए और श्रीकृष्ण-प्रेम में रँगे हुए अपने मित्रों के साथ नाचते कूदते हुए उनका काल व्यतीत होता था। उनके व्याख्यान सदा भक्ति और ज्ञान से भरे रहते थे। वेदान्त में तो वे पारङ्गत ही थे। वेदान्त ही नहीं, किन्तु अन्य सब शास्त्रों से भी उनका दृढ़ परिचय जान पड़ता था। अनेक शास्त्रियों और मतवादियों के साथ वाद करने और उनका शङ्का-समाधान करने में वे समर्थ थे। वाद के समय उपनिषदादि तथा अनेक टीकात्मक ग्रन्थों के अवतरण वे मुखाग्र कह सुनाते थे। महाराज पढ़ नहीं सकते थे, परन्तु पुस्तकों से उन्हें अत्यन्त प्रीति थी। उन्होंने उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा भारी सङ्ग्रह किया है, जो आज अमरावती में श्रीज्ञानेश्वरमन्दिर में उपस्थित है। पुस्तकों को वे अपने प्राणों से भी प्रिय मानते थे। ज्यों ही किसी नई पुस्तक का पता लगता, त्यों ही वे उसे मँगवाने का प्रबन्ध करते थे। पुस्तक आते ही वे उसके आरम्भ, मध्य और अन्त के कुछ पन्ने किसी से पढ़वाते और तुरन्त ही सम्पूर्ण पुस्तक का आशय, पुस्तक-कर्त्ता के विचारों की दिशा, उसकी उपपत्तियाँ तथा उनका खण्डन और मण्डन सब कह सुनाते थे। उनकी बुद्धि इस प्रकार तीव्र थी।

चमत्कार

अपना परिचय देते समय महाराज निज को ज्ञानेश्वर की कन्या तथा श्रीकृष्ण की पत्नी कहा करते थे। उन्होंने अपनी सब कविता ज्ञानेश्वर-कन्या नाम से ही लिखी है। श्रीकृष्ण की पूजा के समय स्त्री-वेष लेते हुए उन्हें कई लोगों ने देखा है। कुङ्कुम और मङ्गलसूत्रादि सौभाग्य-चिन्ह वे सदैव धारण करते थे। श्रीज्ञानेश्वर महाराज के ग्रन्थ वे अपनी गुरुवाणी समझते थे। वे सदा श्रीकृष्ण-प्रेम में रममाण रहते थे। कभी कभी एकान्त में वे श्रीकृष्ण-मूर्ति को पास रख इस प्रकार तीव्रता से घूमते थे कि जिन भाविक जनों का वहाँ प्रवेश हो सकता था, उन्हें प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण की रास-क्रीड़ा देखने का आनन्द प्राप्त होता था। महाराज ने एक ग्रन्थ में लिखा है कि द्वापर में रास-लीला हुई तथापि कलियुग में भी हमने देखी है, देखते हैं और देखेंगे। महाराज के चमत्कारों की कई कथायें इस लेखक ने सुनी हैं। एक महाशय कहते थे कि मैंने महाराज को एक बार आबू पर्वत पर देखा था। उस समय वहाँ साधुओं की एक बड़ी जमात आई थी। परन्तु वहाँ पानी की अत्यन्त न्यूनता होने के कारण महाराज एक बर्तन को पाँव से छुये बैठे रहे और जब तक वे इस प्रकार बैठे थे तब तक बर्तन में पानी लबालब भरा रहा तथा सब जमात के लिए वह पानी पर्याप्त हुआ। इसी प्रकार कोई कहते थे कि मैंने महाराज को नर्मदा किनारे पुराण कहते सुना है। परन्तु वस्तुतः महाराज १९०३।४ तक अपने ही गाँव के आस पास के खेड़ों को छोड़ कहीं नहीं गये। किसी ने प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण-मूर्ति महाराज के सङ्ग खेलती हुई देखी है। किसी ने एक ही समय उन्हें एक से अधिक स्थानों में देखा है। किसी को अनेक बार महाराज ने अकस्मात् दर्शन दिया है। किसी के रोग दूर हुए हैं। किसी को और कई प्रकार के इच्छित फल प्राप्त हुए हैं। अनेक चमत्कारों की कथायें इस लेखक ने सुनी हैं। उन पर प्रायः शिक्षित जनों का विश्वास जमना अत्यन्त कठिन है। स्वयं महाराज भी इन चमत्कारों की कथाओं में से बहुत सी कथाओं को झूठ कहते थे। यह नहीं कि चमत्कार हो ही नहीं सकते। शापानुग्रह-सामर्थ्य तप का फल है। परन्तु प्रायः भावुक जन ऐसी कथायें फैला देते हैं कि उन पर स्वयं वही विश्वास रखते हैं या नहीं, यही आशङ्का होती है। इसके अतिरिक्त कई बार सिद्ध पुरुष भी अपने इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकते। देवनाथ महाराज के कीर्तन के समय मण्डप में आग लगी। वह महाराज के सामर्थ्य से न बुझ सकी। किन्तु महाराज उसी आग के परिणाम से देवलोक सिधारे। तुकाराम महाराज भी एक बार इसी

प्रकार की आपत्ति को न बचा सके । प्रायः साधुओं का प्रसाद या शाप निज के पूर्वकर्मानुसार ही फल देता है । अस्तु । चमत्कारों की मीमांसा करने का यह स्थल नहीं है । तथापि इसमें सन्देह नहीं कि श्रीगुलाबराव महाराज में बहुत कुछ अलौकिकता थी । शिक्षा पाये बिना ही वेदान्तादि शास्त्रों के गूढ़ तत्त्वार्थों का विवरण करना तथा वेदादि ग्रन्थों का परिचय बताना आश्चर्य नहीं तो क्या है ? महाराज जाति के शूद्र थे । उनकी बाल-शिक्षा शूद्र-कुल की थी । कुग्राम में उनका निवास था और प्रायः अशिक्षित ग्राम-निवासी जन उनके बालपन के मित्र थे । इन संस्कारों के सहित वे १९०३ में अमरावती पहुँचे थे । इन संस्कारों से किस में ज्ञान उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है ? परन्तु, तिस पर भी, यदि महाराज ज्ञानी थे तो आश्चर्य अवश्य है । महाराज को आदि से अन्त तक सम्पूर्ण वेद कहते हुए किसी ने न सुना हो, परन्तु वाद के समय वे प्रसङ्गोचित अवतरण कई बार और शुद्ध कह बताते थे जिससे उनका वेद-परिचय पूर्णतः सिद्ध होता था । उनके शूद्र होने के कारण ब्राह्मण कभी कभी उन्हें वेदोच्चारण करने के विषय में दूषण देते थे । परन्तु उनका उत्तर यह था कि शास्त्र में शूद्र को वेद का अध्ययन करना दोष कहा है; अनधीत शूद्र को वेद का उच्चारण न करना चाहिए । वे कभी वेद का पाठ नहीं करते थे । और उन्हें वेद का अध्ययन करते न देखने के कारण उनका दोष सिद्ध करने में कोई कभी समर्थ नहीं हुआ ।

साधुओं का कर्तव्य

परन्तु महाराज की श्रेष्ठता उनके चमत्कारों पर निर्भर नहीं है । मनुष्य की योग्यता केवल उसकी कुछ थोड़ी सी अद्भुत बातों पर अथवा उस पर श्रद्धा रखनेवालों के प्रेम से खींचे हुए चित्रों पर अवलम्बित नहीं हो सकती । साधारण जनता के लिए मनुष्य का मोल उसके लोकोपकारी कार्यों से जाना जाता है । उसने समाज के लिए क्या चेष्टा की ? इस प्रश्न का उत्तर उसके महत्त्व की कसौटी है । साधु जन वस्तुतः ईश्वर-तुल्य होते हैं । अतः उनका कर्तव्य धर्म की रक्षा और अधर्म की निवृत्ति ही युक्त है । भगवान् ने कहा है कि धर्म-संस्थापना के हेतु, साधुओं की रक्षा और दुष्टों का निष्पीड़न करने के लिए मैं युग युग में अवतार लेता हूँ । इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म-संस्थापन के लिए ईश्वर के अवतार के पूर्व साधु-जन उत्पन्न होते हैं ।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥"

इस श्लोक में 'आत्मानं सृजामि' पद का अर्थ 'तस्मिन् तज्जने भेदाभावात्' सूत्र के आधार पर "मैं अपने भक्तों को अर्थात् साधुओं को उत्पन्न करता हूँ" योग्य होगा । इस अर्थ से अगले श्लोक में आनेवाले 'परित्राणाय साधूनाम्' शब्दों की उपयुक्तता विशेषतः सिद्ध होती है । तथा 'सम्भवामि' पद के पुनरुक्ति-दोष का सम्भव भी मिट जाता है । तात्पर्य यह कि साधुओं का कर्तव्य धर्म की स्थापना के हेतु चेष्टा करना है । यह हेतु श्रीगुलाबराव महाराज के द्वारा जिस प्रमाण में सिद्ध हुआ हो उसी प्रमाण में उनकी श्रेष्ठता सिद्ध होती है । अतएव उनके कार्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

वर्णाश्रम धर्म

धर्म शब्द का अर्थ आचार्य-पादों ने ऐहिक और पारत्रिक कल्याण का साधन किया है, तथा वर्णाश्रम उसका लक्षण ठहराया है । उसी प्रकार संसृति-कारक दुःख और शोक तथा सन्ताप-कारक प्रवृत्ति को अधर्म कहा है । श्रीगुलाबराव महाराज को यही व्याख्या सम्मत थी । और यही व्याख्या प्रायः सर्वत्र मान्य है । ऐहिक कल्याणरूपी धर्म केवल व्यावहारिक नीति के नियम नहीं हैं । वे पारत्रिक कल्याण से अभिन्न हैं । समाज-धारणा नीति-नियमों से होती हो, परन्तु समाज-धारणा धर्म का बाह्य उपयोग है । ऐहिक धर्म आत्म-कल्याण अथवा मोक्ष से अविरुद्ध होना चाहिए । तात्पर्य यह कि जो नीति-नियम पारलौकिक कल्याण के अनुकूल हो वह धर्म है तथा जो प्रतिकूल हो वह अधर्म है । वास्तव में व्यावहारिक नीति से और आत्म-प्राप्ति से कुछ सम्बन्ध नहीं । 'शठे शाठ्यम्' नीति है, परन्तु आत्म-कल्याण के न अनुकूल है न प्रतिकूल । 'सभ्येषु सभ्यता' नीति है, पर मोक्ष से उसका क्या सम्बन्ध है ? राजा-प्रजा-सम्बन्धी एक व्यवहार है, परन्तु मोक्ष से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं । वर्णाश्रम-धर्म केवल नीति के नियम नहीं हैं । उससे

समाज-धारणा होती है, परन्तु शास्त्र का वचन है कि उससे परलोक भी सुधरता है। इसलिए वह धर्म है। श्रीगुलाबराव महाराज वर्णाश्रम-धर्म के बड़े अभिमानी थे। वे नीति को परिवर्तनशील समझते थे। उनका यह सिद्धान्त है कि नीति कालानुरोधिनी होती है, परन्तु वर्णाश्रम-धर्म के नियमों में कुछ अन्तर नहीं हो सकता। वे किसी विशिष्ट समाज-घटना की सूचना नहीं करते, किन्तु सर्वदा अबाधित हैं। वे गुण कर्मों पर अवलम्बित हैं सही, परन्तु श्रम-विभाग के विचार से नहीं बने हैं। उन से सत्व-गुण का ही परिपोष होता है, जो आत्म-कल्याण का साधक है। श्रीगुलाबराव महाराज के मत में जिससे सत्व-गुण की वृद्धि हो और रजस्तम का नाश हो वही धर्म है। स्वधर्म हो चाहे परधर्म, उसकी सत्वफल-साधक आज्ञा ही परमधर्म है। गुण-कर्म अनादि होने के कारण वर्णाश्रम-व्यवस्था भी अनादि समझनी चाहिए। ईश्वर तथा उसकी सृष्टि जैसी अनादि है, वैसी ही चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भी अनादि है। भगवद्गीता के 'सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा', 'देवान् भावयताऽनेन', 'इष्टान् भोगान् हि वो देवाः' इत्यादि श्लोकों से हमारे धर्माचरण से देवता-सृष्टि का सम्बन्ध ज्ञात होता है और हमारा ऐहिक कल्याण किस प्रकार होता है, इसका कुछ परिचय मिलता है। श्रीगुलाबराव महाराज के मतानुसार हमारी जातियों का मूल वर्णाश्रम-धर्म ही है। जाति का निर्णय वे जन्म से ही करते थे। तथापि उनके मतानुसार तीव्र तपस्वी अपने गुण-कर्म से इसी देह में ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतरों के वाद में वे ब्राह्मणों का ही पक्ष लेते थे। मराठा-परिषदादि संस्थाओं के चालकों में जो ब्राह्मण-द्वेष-प्रवृत्ति दिखाई देती थी उसका उन्होंने निषेध किया है।

देशभक्ति

यद्यपि महाराज वर्णाश्रम के कट्टर अभिमानी थे और यह प्रतिपादन करते थे कि सिद्धों को भी दीनजनानुग्रहार्थ धर्मत्याग करना उचित नहीं है, तथापि देहासक्ति के नाश के लिए वे सामाजिक कार्यों का उपदेश करते थे तथा उनकी यह सम्मति थी कि पुरुष चाहे मुक्त हो, भक्त हो, विरक्त हो या स्वतन्त्र हो उसे लोक-हितकारी आचरण करना ही उचित है और यदि देश-हित के लिए वर्णाश्रमधर्म के किसी नियम का उल्लङ्घन करना अनिवार्य हो तो उसे आपद्धर्म समझ कर उसका उल्लङ्घन करने में कोई दोष नहीं है। इससे ज्ञात होगा कि वे देशभक्ति को कितना महत्त्व देते थे। उनका देश-प्रेम उत्कट था। हमारी विद्या, हमारी सभ्यता और हमारी सुजनता का उन्हें अत्यन्त अभिमान था। उनकी प्रतापशील वाणी से अनेक पूर्व-इतिहासगत कथाओं का वर्णन सुनते समय उनके उज्ज्वल देश-प्रेम का यथार्थ परिचय होता था। आज कल की हमारी निकृष्ट स्थिति का कारण वे हमारी विद्या की अवनति ही बताते थे। उनके मतानुसार हमारी योगविद्या, मन्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या तथा अध्यात्मविद्या के ह्रास के कारण ही हम इस हीन स्थिति में पड़े हैं। इस लिए उनका यह उपदेश था कि हमारी पूर्व-स्थिति प्राप्त करने के लिए हमारी विद्या की ही उन्नति आवश्यक है।

वेदान्त

कई लोगों का मत है कि हमारी निकृष्ट स्थिति का कारण हमारा वेदान्त है। वेदान्त के कारण भौतिक सुखों के लिए हमारे मनों में अनास्था उत्पन्न हुई है और हम भौतिक उन्नति के लिए इष्ट प्रयत्न करना छोड़ कर आलस्य और पराधीनता के दास बन गये हैं। परन्तु आलस्य तमोगुण का लक्षण है। वेदान्त क्या तमोगुण सिखाता है? जिनका यह मत है उन्हें वेदान्त का बिलकुल परिचय नहीं। वेदान्त जो वैराग्य सिखाता है उसका हेतु सत्व-गुण की वृद्धि करना है। जिसमें सत्वगुण की अधिकता न हो वह विरक्त नहीं; विषयासक्त है। विषयों से दूर रहने को वैराग्य नहीं कहते। ऐसा हो तो निद्रा में विषय दूर रहते हैं, इसलिए निद्रित मनुष्य को विरक्त कहना ठीक होगा। वेदान्त का वैराग्योपदेश सत्व-गुण की वृद्धि के लिए है। सत्व-गुण से ही सुख और ज्ञान होता है। अतएव हमें यदि सुख और ज्ञान चाहिए तो हमें वैराग्य अवश्य सीखना चाहिए। यदि हम दुखी हैं तो वैराग्यशील निश्चय नहीं हैं। वैराग्य क्या वस्तु है, इस बात की विवेचना करने का यह स्थान नहीं, परन्तु यह सिद्धान्त कि हमारी अवनति वैराग्य के उपदेश से हुई है, क्षण भर भी युक्त नहीं मालूम होता। इसके विपरीत, वैराग्य और वेदान्त का ज्ञान हमारी उन्नति के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। कर्म न करने की प्रवृत्ति और आलस्य, जो तमो-

गुण के लक्षण हैं, वैराग्योत्थित सत्वगुण से ही जीते जा सकते हैं। अतएव वैराग्य सीखने से ही हम इष्ट प्रयत्न करनेवाले और अनलस बनेंगे। श्रीगुलाबराव महाराज यह सिखाते थे कि काल, दैव, ईशेच्छा इत्यादि के प्रभाव का उपयोग भूतशोकापमार्जन के हेतु ही करना ठीक है; परन्तु आगामी दुःख दूर करने के लिए प्रयत्न ही आवश्यक है।

अध्यात्म-शिक्षा

देशोन्नति के लिए हमें विद्या की ही उन्नति मुख्य है। इस लिए उसी पर श्रीगुलाबराव महाराज अत्यन्त ज़ोर देते थे। सब विद्याओं में अध्यात्म-विद्या ही श्रेष्ठ है, अतएव अध्यात्म-विद्या सिखाने का ही उनका मुख्य हेतु था। वे स्वयं सभी विद्याओं के अधिकारी थे। सूर्योदय होते ही जैसे प्रकाश फैल जाता है, वैसे ही प्रौढ़ावस्था की राह न देख जिन्हें सर्वज्ञता जयमाला पहना देती है और उसके लाभ से जिन के मुख-द्वारा सब विद्यायें और सब शास्त्र आप ही आप बाहर निकलते हैं, उन योगियों की पंक्ति में श्रीगुलाबराव महाराज की गणना की जा सकती थी। परन्तु उनका मुख्य हेतु अध्यात्म-विद्या की शिक्षा था। इस विद्या में भी उनके सम्प्रदाय में पुराने सम्प्रदायों से कुछ विशेषता थी। इसी विशेषता की सिद्धि सहित परमार्थोपदेश करना वे अपने अवतार का मुख्य प्रयोजन समझते थे। अपने ग्रन्थों में उन्होंने इसी विशेषता की सिद्धि की चेष्टा की है। वे शङ्कर-मतानुसार केवलाद्वैतवादी थे। तथापि जीवन्मुक्तिसुख के लिए वे भक्ति आवश्यक समझते थे। प्रारब्ध ज्ञान से नष्ट नहीं होता; परन्तु उनके मतानुसार भक्ति से नष्ट हो जाता है। इस लिए ज्ञानोत्तर भक्ति ही उनका मुख्य शिक्षाविषय था। विवेक के लिए साङ्ख्य, वृत्ति-निरोध के लिए योग, परमार्थ के लिए शाङ्कर-वेदान्त और जीवन्मुक्ति-सुख के लिए नारदोक्त भक्ति—यह उनका शिक्षा-क्रम था। भक्ति और उपासना में महाराज अन्तर मानते थे। सत्व-वृद्धि और विक्षेप-निवृत्ति के लिए जो ईश्वर-विषयक अन्तर्बाह्य कर्म किया जाता है उसे महाराज उपासना कहते थे। परन्तु भक्ति की व्याख्या वे 'अस्मिन् परमप्रेमरूपा' करते हैं। अर्थात् उपासना का हेतु विक्षेपनिवारणमूलक चित्तशुद्धि है। परन्तु भक्ति का अर्थ शुद्ध प्रेम है। उपासना कर्तृतन्त्र है, परन्तु भक्ति वस्तुतन्त्र है। उपासना का फल ज्ञान है, परन्तु भक्ति न किसी फल का साधन है और न किसी साधन से साध्य है। वह स्वयं फल-रूपा है। शाङ्कर-वेदान्त में भक्ति का समन्वय करने से वह एक नया शास्त्र ही बन जाता है। अतएव, यद्यपि ज्ञानोत्तर-भक्ति की आवश्यकता प्राचीन ऋषियों, मुनियों, आचार्यों और सन्तों ने प्रतिपादित की है, तथापि वेदान्त-शास्त्र को चलन दे उसमें भक्ति का सङ्ग्रह करने से उसका जो एक नया पृथक् स्वरूप दिखाई देता है, उसे श्रीगुलाबराव महाराज ने 'मधुराद्वैत' नाम दिया है। वास्तव में यह दर्शन सनातन ही है। कणाद ने जैसा गुरुत्व नहीं, गुरुत्व के नियम का खोज निकाला, उसी प्रकार श्रीगुलाबराव महाराज ने यह दर्शन प्रकट किया है। इस दर्शन के प्रकाशनार्थ महाराज ने कई ग्रन्थ लिखे हैं जो 'सूक्ति-रत्नावली' नामक पुस्तक द्वारा नागपूर के श्रीज्ञानेश्वर-मुद्रणालय में छपे हैं। कई ग्रन्थ अभी तक अनेक अड़चनों के कारण छपे भी नहीं। ये सब ग्रन्थ मराठी में लिखे गये हैं। केवल एक ग्रन्थ 'स्वमन्तव्यांश-सिद्धान्त-तुषार' नामक हिन्दी में लिखा गया है। इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा यद्यपि कुछ मिश्र प्रकार की है, तथापि सुबोध है। इससे महाराज के अद्वैतभक्ति-विषयक मन्तव्यों का कुछ परिचय हो सकता है। उनके अन्य ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध हो तो हिन्दी-जनता को अनुपम लाभ होगा।

अनध्यस्त-विवर्त

अद्वैत और भक्ति का समन्वय अत्यन्त गूढ़ प्रतीत होता है। प्रायः यह समझा जाता है कि भक्ति में कुछ द्वैत भाव अवश्य समाविष्ट है। परन्तु महाराज के मधुराद्वैत में विवर्त, जिससे कि द्वैत दिखाई देता है, दो प्रकार का कहा है। एक शाङ्कर-वेदान्त का अध्यस्त-विवर्त अर्थात् अध्यास या भ्रम के कारण होनेवाला सत्य वस्तु का अन्यथाज्ञान, और दूसरा अनध्यस्त-विवर्त अर्थात् अध्यास का नाश होने पर ज्ञान के कारण और प्रीति के अनुसार सत्य वस्तु का विशेष याथार्थ्य। रस्सी के स्थान में दिखाई देनेवाला सांप अध्यस्त-विवर्त है। परन्तु सोने का ज्ञान होने के कारण और सुवर्णालङ्कार की प्रीति द्वारा सुवर्ण की सत्यता की विशेष प्रतीति अनध्यस्त-विवर्त का उदाहरण है। अतः जगत् यदि अध्यस्त-विवर्त है, तो महाराज श्रीकृष्ण शरीर को अनध्यस्त-विवर्त

मानते हैं। इस प्रकार मधुराद्वैत शास्त्र में श्रीकृष्ण-भक्ति ज्ञान से भी ऊँची स्थिति की ठहराई गई है।

श्रीगुलाबराव महाराज के मतानुसार वेदान्त-मत वह है जो उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता और भागवत—इस प्रस्थान-चतुष्टय का अविरोधी हो। इनमें से श्रीमद्भगवद्गीता में वस्तुतः कर्म, योग, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, साङ्ख्य और वेदान्त-विषयों का प्रतिपादन है। परन्तु श्रीयुत तिलक जैसे गीता का मुख्य विषय कर्म ठहराते हैं वैसे महाराज गीता का मुख्य विषय भक्ति सिद्ध करते हैं। वास्तव में श्रीयुत तिलक भी कहते हैं कि गीता का मुख्य विषय ज्ञानमूलक और भक्ति-प्रधान कर्मयोग है। श्रीगुलाबराव महाराज भी जो भक्ति मानते हैं वह ज्ञानोत्तर भक्ति है। अन्तर केवल इतना ही रहा कि भक्ति-प्रधान कर्मयोग कहते हुए भी श्रीतिलक गीता का विषय कर्म कहते हैं और श्रीगुलाबराव महाराज कर्म को प्रधानता न देते हुए भक्ति ही मुख्य समझते हैं। यदि कर्म की व्यापक व्याख्या में भक्ति का समावेश हो सके तो प्रायः दोनों के मतों में कुछ अन्तर न दिखाई देगा। परन्तु कर्म कर्तृतंत्र है और भक्ति वस्तुतंत्र। अतः दोनों के मतों की एकवाक्यता नहीं हो सकती। श्रीतिलक जैसे उपक्रमोपसंहारादि कसौटी द्वारा गीता का परीक्षण कर उसे कर्म-पर ठहराते हैं, वैसे ही श्रीगुलाबराव महाराज परिचायक-षट्क द्वारा उसे भक्ति-पर ठहराते हैं। शास्त्र के मुख्य विषय सत्यत्व के दृढ़ निश्चय के लिए परिचायकषट्क का उपयोग किया जाता है। वह षट्क यह है—(१) स्वरूप-विधेयत्व, (२) अन्यथा-निषिद्धत्व, (३) सहायकत्व, (४) न्यूनताग्रहण, (५) आश्वासन और (६) सर्वकार्य-कारित्व। किसी वस्तु को सर्व-श्रेष्ठ कह कर उसमें प्रवृत्त होने के लिए उपदेश करने की विधि को स्वरूप-विधेयत्व कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय के दूसरे श्लोक में भक्ति को मुख्यत्व दिया है तथा सम्पूर्ण अध्याय में भक्ति-प्रवृत्ति का ही उपदेश है। अतः प्रथम परिचायक द्वारा गीता का मुख्य विषय भक्ति सिद्ध होता है। वह कल्प्य है अथवा सत्य है, इस सन्देह को दूर करने के लिए उसी अध्याय के पाँचवें श्लोक में यह निरूपण किया गया है कि निर्गुणोपासकों को क्लेश होते हैं। अतः अन्यथा-निषिद्धत्व-नियमानुसार अर्थात् द्वितीय-परिचायक द्वारा गीता की भक्ति-मुख्यता कल्प्य नहीं, सत्य सिद्ध होती है। तो फिर कर्म, ज्ञान आदि का निरूपण क्यों किया गया है? महाराज के मत में गीता के सब कर्म-पर और ज्ञान-पर श्लोक सहायक समझने चाहिए। भक्ति न हो तो उनके मत में कर्म और ज्ञान का कुछ महत्त्व नहीं। यह बात अव्यक्तोपासना को गौण ठहराने से पवन-रज-न्याय से सिद्ध है। अतः तृतीय परिचायक द्वारा गीता का विषय भक्ति ही समझना चाहिए। "त्रैविद्याः माम् सोमपाः पूतपापाः" इत्यादि श्लोकों से यह सिद्ध होता है कि भक्ति न हो तो कोई साधक उपयोगी नहीं होता। तथा "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" इत्यादि श्लोकों से यह मालूम होगा कि कर्म के लिए वर्णाश्रम की आवश्यकता है; "तान् तितिक्षस्व भारत" इत्यादि श्लोकों से यह ज्ञात होगा कि साङ्ख्य के लिए वैराग्य चाहिए; "शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य" इत्यादि से योग के लिए देशत्याग की आवश्यकता मालूम होगी; "तद्विद्धि प्रणिपातेन" इत्यादि से ज्ञान के लिए शास्त्राभ्यास आवश्यक मालूम होगा। परन्तु "माम् हि पार्थ व्यपाश्रित्य" इत्यादि श्लोकों में यह प्रतिपादन किया गया है कि भक्ति के लिए किसी बात की आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह कि चतुर्थ परिचायक द्वारा भी गीता का विषय भक्ति ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार "ते प्राप्नुवन्ति मामेव" इत्यादि पदों से अर्जुन को अन्यथा-निषिद्ध मार्गों से जाने की अनावश्यकता बता कर भगवान् 'तेऽपि यान्ति परां गतिम्', 'योगक्षेमं वहाम्यहम्', 'भवामि न चिरात् पार्थ,' 'ददामि बुद्धियोगं तम्', 'न मे भक्तः प्रणश्यति' इत्यादि अनेक पदों से भक्तों के लिए पूर्ण आश्वासन देते हैं। इससे पञ्चम परिचायक के अनुसार गीता का मुख्य विषय भक्ति ही प्रतीत होता है। तथा 'अनन्यांश्चिन्तयन्तो माम्', 'भक्त्या मामभिजानाति', 'यामुपेत्य पुनर्जन्म न विद्यते,' 'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्', 'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना', 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः,' 'अथैतदप्यशक्तोसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः', 'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते' । स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते' 'तस्याहं सुलभः पार्थ,' इत्यादि श्लोकों और पदों से यह बात स्पष्ट होती है कि उक्त सप्त विषयों की सहायता हो या न हो, परन्तु भक्ति से ही सब कार्य

भगवद्गीता का विषय

होता है। अतः षष्ठ परिचायक से भी गीता का मुख्य विषय भक्ति ही सिद्ध होता है। ज्ञानेश्वर-मत में शास्त्र-परीक्षण के लिए यह परिचायकषट्क ही मुख्य माना जाता है। श्रीगुलाबराव महाराज इन छः परिचायकों के सिवा 'उपेक्षा' और 'प्रमाणान्तर' दो गौण परिचायक और मानते हैं और उनके द्वारा भी गीता का विषय भक्ति ही सिद्ध करते हैं।

महाराज के सम्पूर्ण दर्शन का यथार्थ परिचय पाने के लिए उनके ग्रन्थ ही पढ़ने चाहिए। इस लेखक में इतना ज्ञान नहीं कि उसके सिद्धान्त ठीक ठीक बता सके। ऊपर जो कुछ उनके मतों का दिग्दर्शन किया गया है वह केवल एक ऐसा प्रयत्न है कि जिससे उनके सिद्धान्त जानने की लालसा पाठकों को उत्पन्न हो। महाराज का ग्रन्थ-सङ्ग्रह ज्ञानेश्वर-मन्दिर, अमरावती, में उपस्थित है। जिसे उनके ग्रन्थों के विषय में अथवा स्वयं उनके विषय में कुछ जानने की इच्छा हो उन्हें ज्ञानेश्वर-मन्दिर से सब वृत्तान्त प्राप्त हो सकता है। महाराज का सम्प्रदाय श्रीगुरु-भक्ति-परायण नारायणराव पण्डित चलाते हैं। उनके सम्प्रदायानुसार श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी और कात्यायनी-व्रत के महोत्सव किये जाते हैं। उस समय ज्ञान-चर्चा, कीर्तन, पुराणादि द्वारा महाराज के मतों का प्रचार करने का यत्न किया जाता है। महाराज के ग्रन्थ-प्रकाशन का काम भी उनके अनुयायी कर रहे हैं। इस कार्य में आज कल की परिस्थिति के कारण कई बाधायें आती हैं। तथापि, आशा है कि ईश्वर की कृपा से शीघ्र ही इन बाधाओं की निवृत्ति हो महाराज का सम्पूर्ण ग्रन्थ-सङ्ग्रह थोड़े ही दिनों में प्रकाशित हो जायगा। मैं आशा करता हूँ कि महाराज के हिन्दी-प्रेमी अनुयायियों के द्वारा हिन्दी-संसार को भी इन ग्रन्थों का आस्वादन मिलने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

रघुनाथ माधव भगाड़े,

बी० ए०, एल०-एल० बी

क्षत्रप-वंश का इतिहास।

क्षत्रप शब्द

यद्यपि 'क्षत्रप' शब्द संस्कृत का सा प्रतीत होता है, और इसका अर्थ भी क्षत्रियों की रक्षा करनेवाला हो सकता है। तथापि असल में यह पुराने ईरानी (Persian) 'क्षथ्रपावन' शब्द का संस्कृत-रूप है। इसका अर्थ पृथ्वी का रक्षक है। इस शब्द के 'खतप' (खत्तप), छत्रप और छत्रव आदि प्राकृत-रूप भी मिलते हैं।

संस्कृत-साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कहीं नहीं मिलता। केवल पहले पहल यह शब्द भारत पर राज्य करनेवाली एक विशेष जाति के राजाओं के सिक्कों और ईसा के पूर्व की दूसरी शताब्दी के लेखों में पाया जाता है।

ईरान में इस शब्द का प्रयोग जिस प्रकार सम्राट् के सूबेदार के विषय में किया जाता था, भारत में भी उसी प्रकार इसका प्रयोग होता था। केवल विशेषता यह थी कि यहाँ पर इसके साथ महत्त्व-सूचक 'महा' शब्द भी जोड़ दिया जाता था। भारत में एकही समय और एकही स्थान के क्षत्रप और महाक्षत्रप उपाधिधारी भिन्न भिन्न नामों के सिक्के मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि स्वाधीन शासक को महाक्षत्रप और उसके उत्तराधिकारी—युवराज—को क्षत्रप कहते थे। यह उत्तराधिकारी अन्त में स्वयं महाक्षत्रप हो जाता था।

सारनाथ से कुशन राजा कनिष्क के राज्य के तीसरे वर्ष का एक लेख (१) मिला है। इससे प्रकट होता है कि महाक्षत्रप खर पलान कनिष्क का सूबेदार था। अतः यह बहुत सम्भव है कि महा-

---

(1) I. R. A. S., 1903, p. I.

क्षत्रप होने पर भी ये लोग किसी बड़े राजा के सूबेदार ही रहते हों ।

पृथक् पृथक् वंश

ईसा के पूर्व की पहली शताब्दी से ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य तक भारत में क्षत्रपों के तीन मुख्य राज्य थे, दो उत्तरी और एक पश्चिमी भारत में । इतिहासज्ञ तक्षशिला (Taxila उत्तर-पश्चिमी पञ्जाब) और मथुरा के क्षत्रपों को उत्तरी क्षत्रप तथा पश्चिमी भारत के क्षत्रपों को पश्चिमी क्षत्रप मानते हैं ।

राज्य-विस्तार

ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा की पहली शताब्दी के उत्तरार्ध में ये लोग गुजरात और सिन्ध से होते हुए पश्चिमी भारत में आये थे । सम्भवतः उस समय ये उत्तर-पश्चिमी भारत के कुशन राजा के सूबेदार थे । परन्तु अन्त में इनका प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि मालवा, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, सिन्ध, उत्तरी कोंकन और राजपूताने के मेवाड़, मारवाड़, सिरोही, झालावाड़, कोटा, परतापगढ़, किशनगढ़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और अजमेर तक इनका अधिकार होगया (१) ।

जाति

यद्यपि पिछले क्षत्रपों ने बहुत कुछ भारतीय नाम धारण कर लिये थे, केवल 'जद' (घसद) और 'दामन्' इन्हीं दो शब्दों से इनकी वैदेशिकता प्रकट होती थी, तथापि इनका विदेशी होना सर्वसम्मत है । सम्भवतः ये लोग मध्य एशिया से आनेवाली शक-जाति के थे ।

भूमक, नहपान और चष्टन के सिक्कों में खरोष्ठी अक्षरों के होने से तथा नहपान, चष्टन, घसमोतिक, दामजद आदि नामों से भी इनका विदेशी होना ही सिद्ध है ।

नासिक से मिले एक लेख में (१) क्षत्रप नहपान के जामाता उषवदात को शक लिखा है । इससे पाया जाता है कि, यद्यपि क़रीब ३०० वर्ष भारत में राज्य करने के कारण इन्होंने अन्त में भारतीय नाम और धर्म ग्रहण कर लिया था और क्षत्रियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी करने लग गये थे, तथापि पहले के क्षत्रप वैदिक और बौद्ध दोनों धर्मों को मानते थे और अपनी कन्याओं का विवाह केवल शकों से ही करते थे ।

भारत में क़रीब ३०० वर्ष राज्य करने पर भी इन्होंने 'महाराजाधिराज' आदि भारतीय उपाधियाँ ग्रहण नहीं कीं और अपने सिक्कों पर भी शक-संवत् ही लिखवाते रहे । इससे भी पूर्वोक्त बात की पुष्टि होती है ।

रिवाज

जिस प्रकार अन्य जातियों में पिता के पीछे बड़ा पुत्र और उसके पीछे उस का लड़का राज्य का अधिकारी होता है उस प्रकार क्षत्रपों के यहाँ नहीं होता था । इनके यहाँ यह विलक्षणता थी कि पिता के पीछे पहले बड़ा पुत्र, और उसके पीछे उससे छोटा पुत्र । इसी प्रकार जितने पुत्र होते थे वे सब उमर के हिसाब से क्रमशः गद्दी पर बैठते थे । तथा इन सब के मर चुकने पर यदि बड़े भाई का पुत्र होता तो उसे अधिकार मिलता था । अतः अन्य नरेशों की तरह इनके यहाँ राज्याधिकार सदा बड़े पुत्र के वंश में ही नहीं रहता था ।

शक-संवत्

फर्गुसन साहब का अनुमान है कि शक-संवत् कनिष्क ने चलाया था । परन्तु आज कल इस के विरुद्ध अनेक प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं । इन में मुख्य यह है कि कनिष्क शक-वंश का न होकर

---

(१) Ep. Ind., Vol. VIII, p. 36.

(१) Ep. Ind., Vol. VIII, p. 85.

कुशन-वंश का था। लेकिन यदि ऐसा मान लिया जाय कि यह संवत् तो उसी ने प्रचलित किया था, परन्तु क्षत्रपों के अधिकार-प्रसार के साथ ही इनके लेखादिकों में लिखे जाने से सर्वसाधारण में इसका प्रचार हुआ, और इसी कारण इसके चलाने वाले कुशन राजा के नाम पर इसका नामकरण न होकर, इसे प्रसिद्धि में लानेवाले शकों के नाम पर हुआ, तो किसी प्रकार की गड़बड़ न होगी। यह बात सम्भव भी है। परन्तु अभी तक पूरा निश्चय नहीं हुआ है।

बहुत से विद्वान् इसको प्रतिष्ठानपुर (दक्षिण के पैठण) के राजा शालिवाहन (सातवाहन) का चलाया हुआ मानते हैं। जिनप्रभसूरि-रचित कल्प-प्रदीप से भी इसी मत की पुष्टि होती है।

अलबेरुनी ने लिखा है कि शक राजा को हरा कर विक्रमादित्य ने ही उस विजय की यादगार में यह संवत् प्रचलित किया था।

कच्छ और काठियावाड़ से मिले हुए सब से पहले के शक-संवत् ५२ से १४३ तक के क्षत्रपों के लेखों (१) में और क़रीब शक-संवत् १०० से शक-संवत् ३१० तक के सिक्कों में केवल संवत् ही लिखा मिलता है, उसके साथ साथ 'शक' शब्द नहीं जुड़ा रहता।

पहले पहल इस संवत् के साथ शक-शब्द का विशेषण वराहमिहिर-रचित संस्कृत की पञ्च-सिद्धान्तिका में ही मिलता है। यथा—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ"

इससे प्रकट होता है कि ४२७ वें वर्ष में यह संवत् शक-संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो चुका था। तथा शक-संवत् १२६२ तक के लेखों और ताम्रपत्रों से प्रकट होता है कि उस समय तक यह शक-संवत् ही लिखा जाता था; जिसका 'शक राजा का संवत्' या 'शकों का संवत्' ये दोनों ही अर्थ हो सकते हैं।

शक-संवत् १२७६ के यादव राजा बुक्कराय प्रथम के दानपत्र में इसी संवत् के साथ शालिवाहन (सातवाहन) का भी नाम जुड़ा हुआ मिला है। यथा—

'नृपशालिवाहन शक (१) १२७६'

इस से प्रकट होता है कि ईसवी सन् की १४ वीं शताब्दी में दक्षिणवालों ने उत्तरी भारत के मालव-संवत् के साथ विक्रमादित्य का नाम जुड़ा हुआ देख कर इस संवत् के साथ अपने यहाँ की कथाओं में प्रसिद्ध राजा शालिवाहन (सातवाहन) का नाम जोड़ दिया होगा।

यह राजा आन्ध्रभृत्य-वंश का था। इस वंश का राज्य ईसवी सन् पूर्व की दूसरी शताब्दी से ईसवी सन् २२५ के आस पास तक दक्षिणी भारत पर रहा। इनकी एक राजधानी गोदावरी पर प्रतिष्ठानपुर भी था। इस वंश के राजाओं का वर्णन वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, विष्णु और भागवत आदि पुराणों में दिया हुआ है। इसी वंश में हाल शातकर्णी बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ था। अतः सम्भव है कि दक्षिणवालों ने उसी का नाम संवत् के साथ लगा दिया होगा। परन्तु एक तो सातवाहन के वंशजों के शिला-लेखों में केवल राज्य-वर्ष ही लिखे होने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने यह संवत् प्रचलित नहीं किया था। दूसरा, इस वंश का राज्य अस्त होने के बाद क़रीब ११०० वर्ष तक कहीं भी उक्त संवत् के साथ जुड़ा हुआ शालिवाहन का नाम न मिलने से भी इसी बात की पुष्टि होती है। कुछ विद्वान् इस संवत् को तुरुष्क (कुशन) वंशी राजा कनिष्क का, कुछ क्षत्रप नहपान का, कुछ शक राजा वेनस् का और कुछ शक राजा अय (अज—Azeo)

---

(१) Ep. Ind., Vol. VIII, p. 42

(१) K. list of Inscs. of S. India, p. 78, No. 455.

का प्रचलित किया हुआ मानते हैं। परन्तु अभी तक कोई बात पूरी तौर से निश्चित नहीं हुई है।

शक-संवत् का प्रारम्भ विक्रम-संवत् १३६ की चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को हुआ था, इस लिए गत शक-संवत् में १३५ जोड़ने से गत चैत्रादि विक्रम-संवत् और ७८ जोड़ने से ईसवी सन् आता है। अर्थात् शक-संवत् का और विक्रम-संवत् का अन्तर १३५ वर्ष का है, तथा शक-संवत् का और ईसवी सन् का अन्तर क़रीब ७८ वर्ष का है, क्योंकि कभी कभी ७९ जोड़ने से ईसवी सन् आता है।

भाषा

नहपान की कन्या दक्षमित्रा और उसके पति उषवदात के समय के लेख तो प्राकृत में हैं। तथा रुद्रदामा के समय के और उसके उत्तराधिकारियों के समय के संस्कृत में हैं। परन्तु भूमक से लेकर आज तक जितने क्षत्रपों के सिक्के मिले हैं उन सबकी भाषा प्राकृत-मिश्रित संस्कृत है। इनमें बहुधा षष्ठी विभक्ति के 'स्य' की जगह 'स' होता है। किसी किसी राजा के दो तरह के सिक्के भी मिलते हैं। इनमें से एक प्रकार के सिक्कों में तो षष्ठी विभक्ति का द्योतक 'स्य' या 'स' लिखा रहता है और दूसरों में समस्त-पद करके विभक्ति के चिह्न का लोप किया हुआ होता है। यथा—

पहले प्रकार के—रुद्रसेनस्य पुत्रस्य या रुद्रसेनस पुत्रस।

दूसरे प्रकार के—रुद्रसेनपुत्रस्य।

इन सिक्कों में एक विलक्षणता यह भी है कि, 'राज्ञो क्षत्रपस्य' पद में कवर्ग के सम्मुख होने पर भी सन्धि-नियम के विरुद्ध (१) राज्ञः के विसर्ग को ओकार का रूप दिया हुआ होता है।

विश्वेश्वरनाथ रेउ
(साहित्याचार्य्य)

लीला

(३)

महाराज दशरथ की राज-सभा

दशरथ और विश्वामित्र

दशरथ

बड़ी कृपा की आज आप मुनिवर, जो आये
घर बैठे ही अहा! दास ने दर्शन पाये
अभिलाषा है यही कि कुछ सेवा भी लीजे
जो यह गौरव दिया वृद्धि यों उसकी कीजे
कुशल-रूप हैं आप, कुशल तो है आश्रम में
बाधा तो कुछ नहीं यज्ञ या तप के क्रम में?
फल फूलों के सहित वृक्ष तो हरे-भरे हैं?
पशु-पक्षी तो किसी विघ्न से नहीं डरे हैं?
हो यदि कोई ईति-भीति तो उसे हरूँ मैं
जो आज्ञा हो वही सुतों के साथ करूँ मैं

(रामादि चारों भाइयों का प्रवेश)

ये सुत भी आ गये, वत्स, आओ, सुख पाओ,
मुनि को करो प्रणाम, पूर्ण निज भक्ति दिखाओ

(चारों भाइयों का प्रणाम करना)

विश्वामित्र

मान्धाता-सम सदा दिवस मय राज्य करो तुम
भूप भगीरथ-सदृश कीर्त्ति-भाण्डार भरो तुम
रघु-सम अपने विमल वंश की वृद्धि वरो तुम
हो दशरथ सम रथी सुरों का सोच हरो तुम

राम

अनुगृहीत हम हुए

दशरथ

वत्स, मुनि-नाम सुना है?

राम

तात, सुना है और अलौकिक काम सुना है
दर्शन भी कर लिये आज इन तपोनिष्ठ के
होते हैं ये विदित बन्धु-से गुरु वशिष्ठ के

विश्वामित्र

सच मुच मेरे परम बन्धु हैं वे व्रतधारी
वत्स, सरलता और बुद्धि है धन्य तुम्हारी

---

(१) कुप्वोःᳵक ᳶपौ च, (अ० ८ । ३ । ३७)

(दशरथ से)

धन्य भूप, तुम धन्य कि ऐसे सुत हैं जिनके
होंगे अनुकरणीय चरित लोकों में इनके
सुनिए अब जिस लिए यहाँ आया हूँ वन से
खल राक्षस हैं प्राप्त वहाँ विघ्नों के घन से
करते हैं उत्पात महा हठ कर हत्यारे
धर्म-कर्म सब कठिन हुए हैं उनके मारे

राम

ऐं राक्षस क्या भरतखण्ड में भी घुस आये ?
सिन्धु पार कर यहाँ विघ्न-घन बन कर छाये ?
करती है क्या धूलि उन्हें सोने की लङ्का ?
रखते हैं जो नहीं चित्त में वे कुछ शङ्का ?

(लक्ष्मण से)

लो लक्ष्मण, आ गई उचित मृगया की बेला
खेलो अब यदि नहीं अभी खड्गों से खेला
पुण्यभूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे
पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे

लक्ष्मण

आर्य ! बड़ा उपयुक्त समय है, करो न देरी
छाती दूनी हुई हर्ष से सुन कर मेरी
जाने दें या नहीं पिता बस सोच यही है
समझ न लें सुकुमार हमें, सङ्कोच यही है

राम

क्षण भर ठहरो, सुनो तात अब कुछ कहते हैं

दशरथ

(विश्वामित्र से)

ज्ञात न था यह मुझे, आप इतना सहते हैं
माना राक्षस आज प्रतापी और प्रबल हैं
विधि के वर से अमर जयी उद्धत वे खल हैं
किन्तु अभी तक काम नरों से नहीं पड़ा है
इसी लिए हो रहा उन्हें अभिमान बड़ा है
सच्चे बल का बोध उन्हें अब हो जावेगा
उनका सारा शौर्य समर में सो जावेगा

विश्वामित्र

अमर जो न कर सकें वही नर कर सकते हैं
व्रत-साधन पर अमर भला कब मर सकते हैं ?
तुम से ही नर-लोक नाम सार्थक करता है
सुन कर जिनका नाम दैत्य-दल भी डरता है
तो विलम्ब है व्यर्थ सुयश भूतल में लीजे
कार्यसिद्धि के लिए राम-लक्ष्मण को दीजे

दशरथ

यह क्या ? यह क्या ? मुने, अहा ! वे तो बालक हैं

चारों भाई

हम बालक हों, किन्तु वंश के व्रत-पालक हैं

विश्वामित्र

वे बालक हैं और आप तुम वृद्ध हुए हो
मोह क्यों न हो सभी प्रकार समृद्ध हुए हो !

दशरथ

क्षमा कीजिए देव, आपका अनुगत हूँ मैं
दयाशील हैं आप सदा सम्मुख नत हूँ मैं
ये गोदी के फूल वहाँ मुरझेंगे क्षण में

लक्ष्मण

(राम से)

आर्य, फूल क्या नहीं फूलते कण्टकगण में ?
कहिए तो कुछ कहूँ ?

राम

रहो मैं ही कह लूँगा
पिता मोह-वश हुए उन्हें सब समझा दूँगा

दशरथ

वृद्ध हुआ मैं सही, किन्तु बल-वीर्य वही है
जिससे रक्षित मुने, आज भी महा मही है
क्षत्रिय-शोणित वही नाड़ियों में बहता है
साहस या उत्साह वही मुझमें रहता है
इन हाथों के लिए कभी कुछ कठिन नहीं है
जहाँ बढ़े ये विजय आप आ गई वहीं है
आज्ञा दीजे देव, खेल सा कर दिखलाऊँ
निशाचरों में प्रौढ़ सूर्य की समता पाऊँ
रण के सारे खेल खेल कर बैठा हूँ मैं
दैत्यों के भी वार झेल कर बैठा हूँ मैं
चलता हूँ बस अभी ; हाय ! ये तो बच्चे हैं
सच्चे फल हैं वंश-वृक्ष के पर—

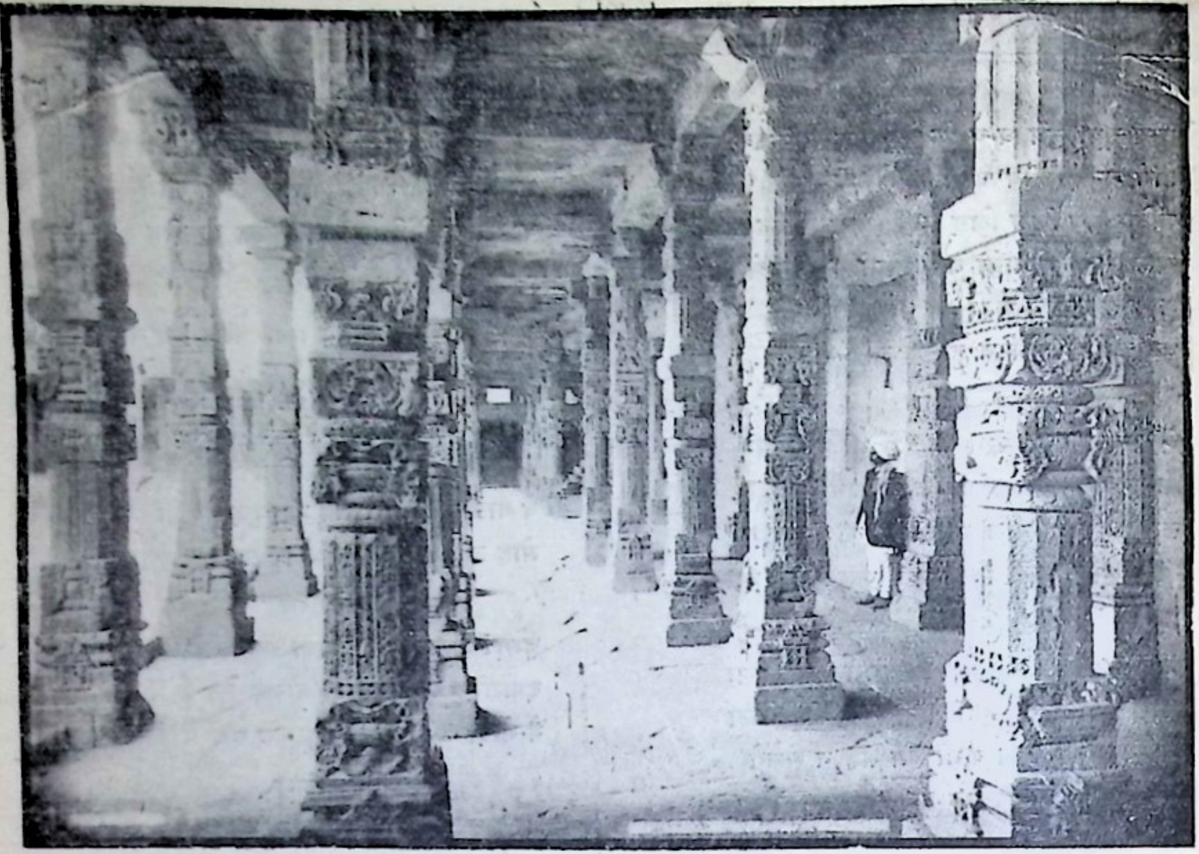

पुराने मन्दिर का दृश्य।

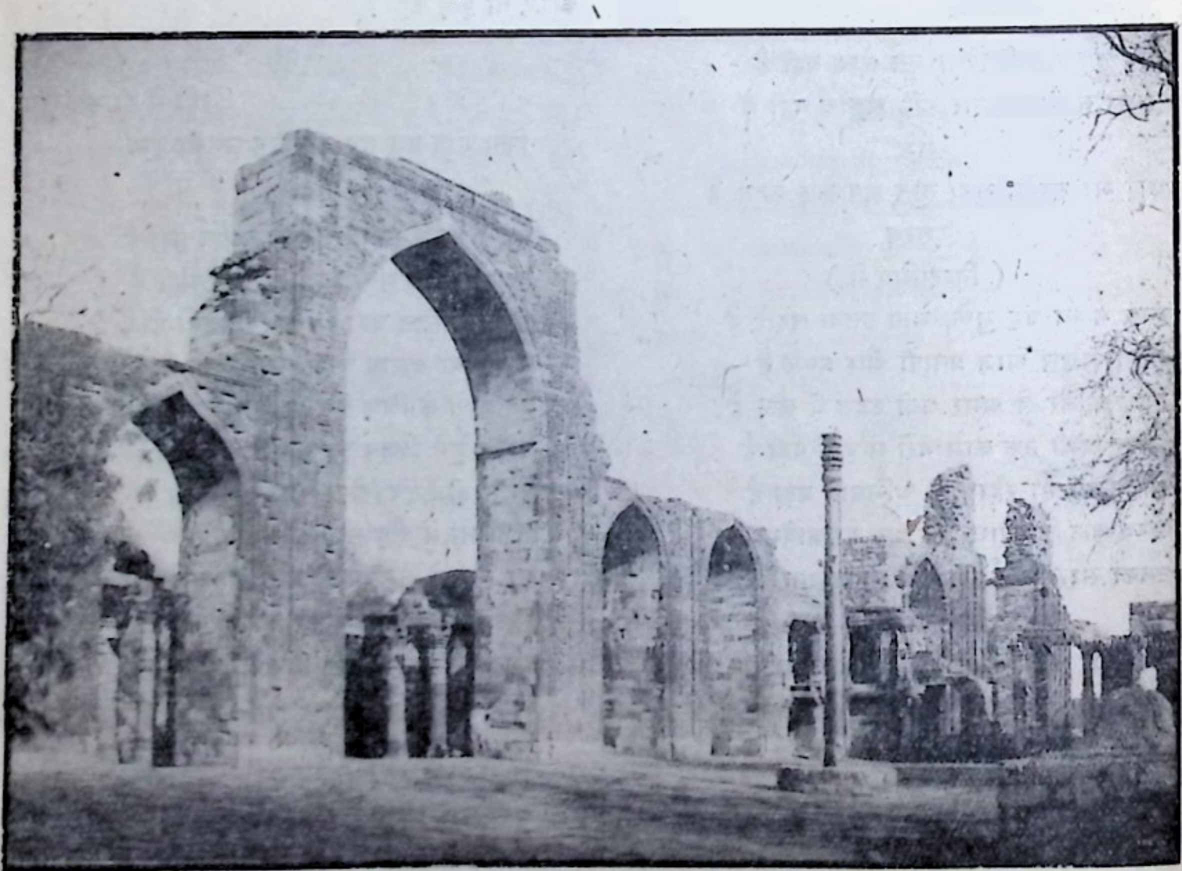

पृथ्वीराज के मन्दिर में लोहे का स्तम्भ। (देखो पृष्ठ १६८)

विश्वामित्र
कच्चे हैं
क्यों ? अच्छा बस रहो और अब कष्ट करो मत
क्षोभ दान कर मुझे क्षमा से भ्रष्ट करो मत
राम
(आगे बढ़ कर)
शान्त हूजिए देव,
(दशरथ से)
तात, विनती है मेरी
यद्यपि उसके योग्य नहीं गिनती है मेरी
अपने कुल का सदा यही व्रत वर विधेय है
दान-पात्र के लिए प्राण भी स्वयं देय है
दशरथ
किन्तु पुत्र, तुम मुझे प्राण से भी हो प्यारे
रह सकते हैं प्राण कहीं प्राणों से न्यारे ?
बड़े व्रतों से हाय ! हुए हैं जन्म तुम्हारे
आँखों से क्या अलग करूँ आँखों के तारे !
राम
किन्तु हमारे लिए तात, तुम को क्या भय है ?
धर्म-कार्य है, जहाँ धर्म है जय निश्चय है
स्वयं प्राप्त यह पर्व हमें भी लेने दीजे
सीखेंगे किस भाँति परीक्षा देने दीजे
यदि राक्षस हैं क्रूर शूर-सुत हैं तो हम भी
रखते हैं उत्साह लड़े आकर यदि यम भी
लक्ष्मण का तो बड़े वेग से भाव बढ़ा है
भरत-शत्रुघ्न
करते हैं प्रस्ताव, हमें भी चाव चढ़ा है
होंगे हम भी धन्य धर्म का विघ्न हरें जो
आज्ञा दें यदि तात और मुनि दया करें जो
विश्वामित्र
रघुकुल के ही योग्य अहा !
इन सबके मन हैं
मोह-मुग्ध क्यों न हों
नृपति जिनके ये धन हैं ?

दशरथ
मैं ऐसे नद-मध्य पड़ा हूँ मानों आकर
बहता है जो हर्ष-शोक की लहरें लाकर
राम
नहीं शोक का काम, राम की विनय मानिए
मुनि को देते हुए हमें निज निकट जानिए
इनका तपःप्रभाव मानता है सब कोई
नूतन लोक-विधान जानता है सब कोई
और हमारा कौन हितू है इनके ऐसा
मुझे याद है सभी सुना है मैंने जैसा
अपने पितर त्रिशङ्कु जिन्हें गुरु ने छोड़ा था
उनको अपनाते न इन्हीं ने मुँह मोड़ा था
निज रघु-कुल की धर्म-परीक्षा लेते हैं ये
इसी देह से उच्च स्वर्ग-पद देते हैं ये
दशरथ
हा ! अब मैं क्या कहूँ, मुने, वह दोष न रखिए
तोष पाइए और हृदय में रोष न रखिए
मेरे दोनों हाथ राम-लक्ष्मण प्रस्तुत हैं
लीजे अब से आप पिता हैं ये दो सुत हैं
और क्या कहूँ ?
विश्वामित्र
मुझे विदित हैं भाव तुम्हारे
हों मुझ-से ही पूर्ण मनः प्रस्ताव तुम्हारे
वत्स भरत-शत्रुघ्न, तुम्हें भी योग मिलेगा
सदा पूर्ण शशि-सदृश तुम्हारा सुयश खिलेगा ।

मैथिलीशरण गुप्त

भ्रम ।

(१)

एक कमरे में तीन चार मित्र बैठे हुए आनन्द मना रहे हैं । सब की वयस २३-२४ वर्ष से अधिक न होगी ।

एक ने बात करते करते दूसरे युवक से पूछा—अरे भई, कामताप्रसाद आपका विवाह कब होगा—भले आदमी, प्रतीक्षा करते करते हम लोग बुड्ढे हो गये,

आशा लगाये बैठे हैं कि तुम्हारा विवाह हो तो मिठाई खावें, जलसे देखें, परन्तु तुम टस से मस ही नहीं होते।

सब लोग बोले—हाँ, यह तो भैरवप्रसाद ने ठीक कहा--तो आज आप साफ़ साफ़ बता दीजिए कि वह दिन कब आवेगा ?

कामताप्रसाद कुछ मुसकरा कर बोले—तुम लोग तो ठहरे पेट्ट, तुम्हें तो बस खाने की पड़ी है।

भैरवप्रसाद एक दूसरे मित्र से बोले—सुना, क्या कहते हैं ? हम लोग पेट्ट हैं, मानो नित्य ही तो खिलाते रहते हैं।

कामताप्रसाद ने कहा—इनसे क्या कहते हो, ये तो तुम्हारे भी गुरु हैं। चोर के भाई गिरहकाट।

एक दूसरा मित्र, जिसका नाम घनश्याम था, बोल उठा—ख़ैर हम गिरहकाट सही, डाकू सही, परन्तु आप यह तो बताइए कि आपका विवाह कब होगा।

कामता—विवाह के विषय में मेरे जो विचार हैं वे तो तुम्हें मालूम ही हैं।

घनश्याम—हमें तो ख़ाक पत्थर भी नहीं मालूम—आप कुछ बताइए तो सही।

कामता—मेरा विचार यह है कि जब तक सुशीला, पढ़ी लिखी तथा सुन्दर स्त्री न मिलेगी मैं कदापि विवाह न करूँगा।

भैरव—यह कौन नहीं चाहता, किन्तु हिन्दुओं में तो वैसी स्त्री ज़रा कठिनता से मिलेगी।

कामता—इसी लिए तो मैं चुपचाप सोंठ हुआ बैठा हूँ और इसके अतिरिक्त जब तक मेरे माता-पिता जीवित हैं तब तक मुझे इस विषय में अपनी टाँग अड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं।

भैरव—आपके पिता तो, ईश्वर की दया से, बाबा आदम के समय के आदमी हैं। वह तो अच्छा घर, उच्च कुल तथा मालदार सुसराल ढूँढेंगे। उनसे आप अपनी इच्छाओं के पूर्ण होने की आशा मत रखिए।

कामताप्रसाद कुछ उदास होकर बोले—इसी लिए तो मैं टालमटोल कर रहा हूँ।

घनश्याम—(भैरव से) अच्छा, अब मालूम हुआ—सुनते हो भाई, इनकी इच्छा यह है कि किसी तरह बुड्ढा ढुलके तो यह कोर्टशिप करके विवाह करें—बी० ए० तक पढ़ के यही तो एक बात सीखी है।

कामताप्रसाद कुछ बिगड़ कर बोले—यार, तुम लोगों से कोई बात कहना भी महापाप है—कहाँ की बात और कहाँ ले उड़े—राम राम, भला मैं यह चाहूँगा कि मेरे पिता ढुलक जायँ ? वाह ! खूब समझे।

भैरव—तो भाई साहब ! बिना इसके और तो कोई युक्ति नहीं जिससे आप अपने मन की पत्नी प्राप्त कर सकें।

कामता—तो मुझे कोई अधिक चिन्ता भी नहीं। विवाह के लिए, तुम लोगों की तरह, मैं मुँह पसारे नहीं बैठा हूँ।

घनश्याम - सच कहना, हृदय से भी पूछ लिया है या मुँह से ही बक दिया।

कामताप्रसाद अपनी टोपी की ओर हाथ बढ़ा कर बोले—अब यहाँ बैठनेवाले को कुछ कहता हूँ, ऐसा जानता तो यहाँ आता ही नहीं।

घनश्याम ने कामताप्रसाद की टोपी उठा कर दूर फेंक दी और हँस कर बोले—ख़ैर, अब तो तुम आ ही फँसे, अब बिना हम लोगों को सन्तुष्ट किये छुटकारा मिलना टेढ़ी खीर है।

कामता—तुम लोग भी बड़े विचित्र आदमी हो, आख़िर आप चाहते क्या हैं ? कुछ मालूम तो हो।

घनश्याम—यही कि आप शीघ्र विवाह कर डालिए।

कामता—वाह वाह ! विवाह भी कोई गुड़िया का खेल है। जिसके साथ समस्त जीवन व्यतीत करना हो उसे यों ही बिना समझे बूझे ग्रहण कर लूँ ? आदमी एक मिट्टी का घड़ा भी लेता है तो ठोक बजा कर लेता है।

भैरव—तो यह कौन कहता है कि आप बिना समझे बूझे विवाह कीजिए, आप खूब समझ बूझ लीजिए।

कामता—तुम लोगों ने आज क्या मुझे तङ्ग करने की क़सम खा ली है ? वाह ! अच्छी दिल्लगी निकाली—मार मार कर विवाह कराते हो ?

घनश्याम—बात यह है कि आपके पिता हम लोगों से कई बेर कह चुके कि कामता विवाह करने के लिए प्रस्तुत नहीं, तुम लोग उसके मित्र हो—तुम लोग समझाओ और जिस प्रकार बने उसे विवाह के लिए राज़ी करो।

भैरव—तो यह कहिए कि आप मध्यस्थ हैं ?

घनश्याम—तुम चाहे जो कुछ समझो, किन्तु हम तो तुम्हारे शुभचिन्तक हैं ।

कामता—क्षमा कीजिए ऐसी शुभचिन्ता से। मुझे अविवाहित ही रहने दीजिए, बिल्ली जान छोड़े, चूहा लँडूरा ही होकर रहेगा ।

भैरव—(कुछ गम्भीर होकर) नहीं, कामताप्रसाद, यह बात तुम्हारी ठीक नहीं। देखो तुम्हारे माता-पिता कितने दिनों से आशा लगाये बैठे हैं कि लड़का पढ़ लिख ले तो विवाह करके अपना मन प्रसन्न करें, किन्तु तुम्हारे जी में न जाने क्या समाई है ?

कामता—तो मैं क्या उन्हें मना करता हूँ। मैंने तो कभी इस विषय पर उनसे हठ भी नहीं की। हाँ यह अवश्य है कि मेरी कुछ उच्चाभिलाषायें हैं और मैं चाहता हूँ कि यदि वैसा ही हो तो मैं सुखी हो सकता हूँ—बस ।

घनश्याम—ज़रा सोचने की बात है कि उन्होंने एक जगह बात चीत ठीक कर रक्खी है—घर भी अच्छा है, कुल भी अच्छा है—फिर और तुम चाहते ही क्या हो ?

कामता—मैं जो कुछ चाहता हूँ वह आप लोगों से कह चुका हूँ, अधिक बकवाद करने से कोई लाभ नहीं।

भैरव—ख़ैर, यह तो मालूम ही हो गया कि आप अपने पिता की रुचि के अनुसार कार्य करने के लिए प्रस्तुत हैं ।

कामता—किन्तु आप लोग उनसे कहीं ऐसा न कह दीजिएगा, नहीं तो वे जहाँ कल करते होंगे आज ही कर देंगे। और मैं सच कहता हूँ कि यदि मेरे मन के अनुसार स्त्री न मिली तो मेरे लिए यह संसार नरक से भी अधिक भयङ्कर हो जायगा ।

घनश्याम—हाँ, हो सकता है परन्तु................ ।

भैरव—अच्छा जी, हम उनसे यह कह देंगे कि कम से कम लड़की का चित्र तो देख ही लिया जाय ।

कामता—यह बात है, लाओ हाथ—बस मैं यह चाहता हूँ कि लड़की सुन्दर हो, यदि पढ़ी लिखी न भी होगी तो कोई चिन्ता नहीं, यहाँ आकर पढ़ लिख जायगी ।

भैरव—ऐसा ही लीजिए, हम लोग चेष्टा करेंगे कि लड़की का चित्र तुम्हें दिखा दिया जाय ।

(२)

श्रीमती सौभाग्यवती पति से सकुचाती हुई बोलीं—तो इसमें हानि ही क्या है ? उन्हें लिख भेजो कि लड़की का चित्र भेज दें, लड़के का जी ही तो है। उसका भी जी भर जायगा ।

कामताप्रसाद के पिता लालताप्रसाद कुछ बिगड़ कर बोले—तुम भी क्या बातें करती हो ? भला ऐसा कहीं हो सकता है—मैं उन्हें ऐसा लिखूँ ! वे अपने जी में क्या कहेंगे—हम लोग भी क्या कोई ईसाई हैं जो मिलाभेंटी कराके विवाह करें ?

सौभाग्यवती—आज कल तो ऐसा बहुत होता है ।

लालता—आज कल चोरी भी तो बहुत होती है, लोग झूठ भी तो बहुत बोलते हैं, धर्म भी तो बहुत कम हो गया है, लोग ईसाई भी तो हो जाते हैं—फिर इससे क्या—क्या हम लोग भी वैसे हो जायँ ? दूसरे, हमारी बिरादरी में तो आज तक यह बात हुई नहीं—हमारे यहाँ तो लड़के का चित्र भी कोई नहीं माँगता, न कि लड़की का ।

सौभाग्यवती—लड़के का चित्र भला क्यों माँगेंगे ! लड़के को तो वे आप ही देख जाते हैं ।

लालता—मेरा मतलब यह है कि लड़की के दिखाने के लिए कोई भी लड़के का चित्र नहीं माँगता। माँ बाप तो देख सुन लेते ही हैं। तुमने नहीं लड़की को दिखवा लिया ।

सौभाग्यवती—हाँ, दिखवा तो लिया है ।

लालता—बस, फिर काफ़ी है। लड़की देखने सुनने में बुरी नहीं है। भले आदमियों को इससे अधिक और क्या चाहिए। आज मैं विवाह की तिथि उन्हें लिखे भेजता हूँ ।

सौभाग्यवती—पर कहीं ऐसा न हो कि कामता............ ।

लालताप्रसाद बात काट कर बोले—अरे ये नई रोशनी के आदमी ऐसी ही निरर्थक बातें किया करते हैं। इनके मस्तिष्क में तो विलायती विचार भरे हुए हैं—ये भला इन बातों का महत्त्व क्या समझ सकते हैं ? ये लोग तो चाहते हैं कि पहले कोर्टशिप हो जाया करे ।

सौभाग्यवती—क्या हो जाया करे ?

लालता—कोर्टशिप—अँगरेज़ों में यह नियम है कि विवाह करने के पूर्व लड़के लड़की को मिलने जुलने का अवसर देते हैं। जब वे अच्छी तरह एक दूसरे से परिचित हो जाते हैं तब उन्हीं के इच्छानुसार विवाह कर दिया जाता है।

सौभाग्यवती—बड़े आश्चर्य से ठुड्डी पर उँगली रख कर बोलीं—हे भगवान्—यह भी भला कोई अच्छी बात है? अच्छा देस (देश) है—इन्हें ऐसा करते लाज भी नहीं आती?

लालता—अपने अपने देश का नियम ही तो है। इससे क्या। उनके यहाँ यही अच्छा समझा जाता है। अब ये अँगरेज़ी पढ़े भी यही चाहते हैं कि कोर्टशिप होने के पश्चात् विवाह हुआ करे।

सौभाग्यवती—राम राम—अँगरेज़ी तो बड़ी बुरी है—जो ऐसी बात थी तो इसे अँगरेज़ी पढ़ाई ही क्यों? अँगरेज़ी पढ़ने से तो लड़के बिगड़ जाते होंगे।

लालता—अब अपने ही सपूत को देख लो न, यही धुन समाई है कि किसी प्रकार लड़की को देख लें। किन्तु सभी अँगरेज़ी पढ़े ऐसे विचार के थोड़े ही होते हैं। अपने भाई ही को देख लो, वह क्या कम अँगरेज़ी पढ़ा है; किन्तु क्या मजाल जो उसके आचार विचार में तनिक भी अन्तर आवे।

सौभाग्यवती कुछ उदास हो कर बोली—आज कल कलजुग है न—इसमें जो न हो सो थोड़ा—ख़ैर तुम ठीक ठाक करके जल्दी विवाह कर लो।

लालता—यही तो मैं भी चाहता हूँ कि जितना शीघ्र विवाह हो जाय उतना ही अच्छा है। जितनी देर होगी उतना ही उसका (कामता का) मन अधिक भटकेगा।

सौभाग्यवती—अच्छी बात है। मैं तो न जाने कितने दिन से आस लगाये बैठी हूँ कि चाँद सी बहू आवे—नाती पोतों का मुँह देखकर मरूँ—पर कामता न जाने........ अच्छा ख़ैर, अब तुम देर न करो।

लालता—अजी! अब मैं भला चूकनेवाला हूँ—जो तिथि सबसे निकट होगी वही ठीक करूँगा।

यह कह कर लालताप्रसाद बाहर चले गये।

इधर सौभाग्यवती ने विवाह निर्विघ्न समाप्त होने तथा लड़के को बहू पसन्द आजाने के लिए अनेक देवी देवताओं के नाम से प्रसाद बाँटना निश्चय किया।

(३)

कामताप्रसाद का विवाह हुए एक महीना व्यतीत हो चुका। विवाह होने के पूर्व उन्होंने स्त्री को अथवा उसका चित्र देख लेने के लिए बहुत कुछ हाथ-पाँव मारे, किन्तु उन्हें सफलता न हुई। उनके पिता पुराने विचार के आदमी थे। उन्होंने इसे स्वीकार ही न किया। कामताप्रसाद तो नये विचारों के आदमी थे, किन्तु अपने पिता से बहुत डरते थे। उनके सामने उन्हें बोलने का साहस ही न होता था। अतएव उन्हें बहुत से काम, पिता के डर से, अपनी इच्छा-विरुद्ध भी करने पड़ते थे। यही बात इस विवाह में भी हुई। यद्यपि बिना लड़की का चित्र देखे वे कदापि विवाह करना नहीं चाहते थे, किन्तु पिता के डर से वे अधिक कुछ कह भी न सके। अपने भाग्य पर भरोसा करके चुपचाप विवाह कर लिया। विवाह हो चुकने पर उन्हें मालूम हुआ कि जिस बात का उन्हें भय था वही बात आगे आई। उनकी स्त्री पढ़ी लिखी तो राम का नाम ही थी। किन्तु साथ ही सुन्दरी भी न थी। सुन्दरी न होने का तात्पर्य यह नहीं है कि वह कुरूपा थी, वरन् यह कि जिसे सौन्दर्य कहना चाहिए वह बात उसमें ज़रा भी न थी।

कामताप्रसाद पर वज्रपात सा हुआ। सब लोग तो समझते थे कि उनका घर बसा और इसके लिए उन्हें बड़ी बधाइयाँ देते थे, किन्तु कामताप्रसाद ने समझ लिया था कि उनका घर बिगड़ गया, उन्हें अपनी स्त्री एक आँख भी न भाती थी। प्रायः वे ईश्वर से यह प्रार्थना किया करते थे कि या तो मेरी मृत्यु हो जाय या मेरी स्त्री की। वे यथाशक्ति उससे अलग ही अलग रहने की चेष्टा किया करते थे।

पहले तो लज्जा के कारण सङ्कोच होने से उनकी स्त्री पार्वती पति के मन का भाव न समझ सकी; किन्तु जैसे ही जैसे सङ्कोच कम होने लगा वैसे ही वैसे उसे पति की उदासीनता का पता लगने लगा। उसे क्रमशः इधर उधर से यह भी ज्ञात हुआ कि पति महाशय के विचार विवाह के पूर्व कैसे थे। जब उसे यह मालूम हुआ कि कामता-

प्रसाद उससे केवल इसलिए फटके रहते हैं कि वह सुन्दर नहीं तब उसे बड़ा दुख हुआ। किन्तु बेचारी करती क्या? सुन्दरता कोई बाज़ार में बिकनेवाली वस्तु तो है नहीं जो मँगाली जाती—बेचारी रात दिन ठंडी साँसें भरा करती और अपने भाग्य को दोष दिया करती थी। कभी कभी उसे स्वयं को सुन्दरी बनाने की सनक चढ़ती थी। फिर क्या कहना—दिन में छः छः बेर साबुन से मुँह धोती, रङ्ग बिरङ्गे वस्त्र पहनती—अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल लगा कर बालों को सँवारती। सारांश यह कि अपनी समझ में वह अत्यन्त सुन्दरी बन कर पति के सामने आती थी, किन्तु जिस समय वह देखती कि पति देवता ने उसे देखते ही नाक चढ़ा ली उस समय बेचारी का सारा परिश्रम धूल में मिल जाता था और उसकी इच्छा होती थी कि—"पृथ्वी फट जाय और मैं समा जाऊँ"। इसमें सन्देह नहीं कि वह कामताप्रसाद को प्राणों से अधिक चाहती थी और उनको प्रसन्न करने के लिए वह सब कुछ कर सकती थी; किन्तु कामता उसके इस प्रेम को नहीं समझ सके और समझ भी कैसे सकते थे? स्त्रियों का हृदय कोई साधारण हृदय नहीं होता। उनके मन की बात, उनके प्रेम की सीमा, जानना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। स्त्रियाँ अपना प्रेम पुरुषों की तरह थोड़ी सी उत्तेजना ही में प्रकट नहीं कर देतीं—प्रेम को हृदय में गुप्त रख कर भीतर ही भीतर उसका आनन्द लेने में उन्हें अधिक सुख मिलता है।

एक दिन पार्वती ने ठान ली कि आज आख़िरी ज़ोर लगा दूँ। या तो आज सफल ही हो जाऊँगी या फिर सदैव के लिए चेष्टा करना छोड़ दूँगी।

उसने कामताप्रसाद के आने से दो तीन घण्टे पूर्व शृङ्गार करना आरम्भ किया। दस बारह बेर साबुन से मुँह धोया; एक घण्टे से भी अधिक समय तक बाल सँवारे। दस बारह साड़ियाँ निकाल कर सामने रक्खीं। एक पहनी, शीशे के सामने खड़े होकर देखा—कुछ पसन्द न आई, झट उतार दी। दूसरी पहनी—वह भी पसन्द न आई उसे भी त्याग दिया। इसी प्रकार अनेक बेर अदल बदल करके एक साड़ी पसन्द की, किन्तु फिर भी उसे सन्तुष्टि न हुई—कुछ सोच विचार कर उसे भी उतारा। इसी उलट-फेर में पति महाशय आ पहुँचे। दासी ने उनके आने की सूचना दी। पार्वती घबरा उठी—अब क्या करूँ? कामताप्रसाद आ पहुँचे और अभी यहाँ साड़ी की उलझन पड़ी ही हुई है। ख़ैर, किसी न किसी प्रकार अपनी रुचि को घसीट घसाट कर एक साड़ी पर लगा लिया और उसे पहन कर पति के पास चली। किन्तु चलते समय शीशे में मुँह देखना तो भूल ही गई—फिर लौटी, ख़ूब अच्छी तरह सर्वाङ्ग का प्रतिबिम्ब देखा और चली। थोड़ी दूर चली थी कि याद आया कि गहना तो कुछ पहना ही नहीं—लीजिए सबेरा हो गया। बिना गहने के सुन्दरता कहाँ? झट बक्स खोल कर गहना निकाला और दो चार चीज़ें निकाल कर पहनीं। उसमें से भी कोई पसन्द न आई; उसे उतार डाला। उसके स्थान पर दूसरी चीज़ पहनी। ख़ैर, किसी न किसी प्रकार गहने से भी छुट्टी पाई। फिर उठी, शीशे में मुँह देखा और चली। दो पग चली ही थी कि पान न खाने की बात याद आई। झट उलटी लौटी। दो पान आप खाये और दो पति के लिए बना कर ले चली। इसी प्रकार पग पग पर अपनी सुन्दरता को बढ़ाने का ध्यान रखती हुई पति के सन्मुख पहुँची।

कामताप्रसाद ने भी देखा कि आज बेढब चढ़ाई है—ईश्वर ही कुशल करे।

पार्वती ने सकुचाते हुए पास जाकर कामताप्रसाद के हाथ में पान दिया। कामताप्रसाद ने एक बेर दृष्टि भर कर उसे सर से पैर तक देखा और मन ही मन ख़ूब हँसे। उन्होंने सोचा कि पार्वती बनावटी सौन्दर्य से उनका हृदय जीतना चाहती है। उन्हें कुछ घृणा भी मालूम हुई। उनकी दृष्टि में पार्वती के शरीर पर के गहने कपड़े ऐसे मालूम हुए जैसे किसी वृक्ष पर टँगे हों। और दिन तो वे दो एक बात भी कर लेते थे, किन्तु आज बिना मुँह से बोले हुए ही बाहर की ओर चल दिये। बेचारी पार्वती का समस्त परिश्रम तथा आशायें धूल में मिल गईं। उसने समझा कि इससे अधिक अपमान आज तक कभी भी नहीं हुआ। अभिमान तथा क्रोध से उसका बुरा हाल हो गया। और तो बेचारी कुछ कर न सकी, क्रोध की आग को आँसुओं से बुझाना आरम्भ किया। एक घण्टे तक बराबर बैठी रोती रही। जब तक रोती रही तब तक हृदय में सैकड़ों तरह के

विचार आते रहे। कभी अपने माँ-बाप पर क्रोध आता कि उन्होंने ऐसे से विवाह क्यों किया ? कभी अपने सास-ससुर पर जलन लगती कि जब वे अपने पुत्र के स्वभाव से परिचित थे तो उन्होंने ऐसा अनर्थ क्यों किया ? कभी दाँतों पर दाँत किटकिटाती थी और मन ही मन कहती थी—"आप ही कौन बड़े सुन्दर हैं, पहले शीशा उठा कर अपना मुँह तो देखें, मैं लाख गई बीती हूँ तो भी उनसे अच्छी ही हूँ। ऐसे ही बड़ी सुन्दरता के भूखे थे तो किसी मेम से विवाह किया होता; किरिस्तान हो जाते"। कभी सोचती थी कि विष खाकर सो रहूँ। सारांश यह कि इसी प्रकार की बातें सोचती रही। अन्त को रोने धोने के पश्चात् जब क्रोध शान्त हुआ तब पति के प्रति हृदय में दबा हुआ प्रेम फिर उमड़ा। प्रेम उमड़ते ही रहा सहा क्रोध भी जाता रहा और वह ठंडी साँस भर के यह कहती हुई उठ खड़ी हुई—ख़ैर भगवान उन्हें चिरञ्जीव रक्खें। मैं उन्हें देख कर ही चित्त प्रसन्न रखने की चेष्टा करूँगी।

(४)

पूर्वोक्त घटना बीते एक महीना हो चुका। अब पार्वती ने पति को अपनी ओर आकर्षित करने की सारी चेष्टायें त्याग दीं। उसने समझ लिया कि न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी—न वह सुन्दरी होगी और न पतिदेव उससे प्रेम करेंगे। उसने उन्हें देख देख कर ही चित्त प्रसन्न रखना आरम्भ किया। किन्तु प्रेम की तृष्णा भी कहीं देखने से बुझी है ? उसके हृदय की आग उत्तरोत्तर प्रज्वलित होने लगी और उसका तन मन भस्म करने लगी—वह प्रति दिन पीली पड़ने लगी—शरीर कृश होने लगा।

जब से वह यहाँ आई थी तब से उसने अपनी शिक्षा में भी अच्छी उन्नति कर ली थी। पहले वह केवल अक्षर पहचान सकती थी; अब पुस्तकें भी पढ़ने लगी। उन्हीं दिनों में दैवसंयोग से कामताप्रसाद को ज्वर आने लगा और ऐसा कठिन ज्वर आया कि वह शय्या पर से उठने के योग्य भी न रहे।

चिकित्सा इत्यादि तो होती ही थी, किन्तु पार्वती का परिश्रम भी देखने योग्य था। उसे न खाने की सुधि थी, न नहाने की। हर समय पति की शय्या के पास बैठी उनका मुख देखा करती थी। कभी बैठी चुपके चुपके रोया करती थी।

एक दिन रात को कामताप्रसाद का ज्वर कम हुआ और उन्हें भली भाँति ज्ञान हुआ।

उन्होंने कमरे में लगी हुई घड़ी की ओर देखा। उस समय रात के डेढ़ बजने वाले थे। इसके पश्चात् उनकी दृष्टि हठात् अपने पायताने की ओर गई—उन्होंने देखा कि पार्वती उनकी शय्या पर सर रक्खे बैठी ऊँघ रही है। सर के बाल तितर बितर हैं। वेष मलिन है—एक मैली धोती पहनी हुई है। रोने से गालों पर आँसुओं की लकीरें पड़ी हुई हैं। चेहरे का वर्ण पीला हो रहा है। कमरे में ख़ूब प्रकाश फैला हुआ था। कामता ने पार्वती का वेष देखा। देख कर दूसरी ओर आँख फेर ली। किन्तु एक बेर फिर देखने की इच्छा हुई। फिर देखा। फिर दूसरी ओर दृष्टि की, किन्तु फिर देखने की इच्छा हुई। अब की बेर ख़ूब जी भर के देखा; किन्तु फिर भी लालसा बनी ही रही। उन्हें उस वेष में कोई अपूर्व बात दिखाई पड़ी। ओफ़, कैसा करुण-दृश्य था—वरन् साक्षात् करुणा स्त्री के रूप में उपस्थित थी। एक हाथ सिर के नीचे, दूसरा हाथ उनके पैरों की ओर इस प्रकार से बढ़ा हुआ था कि मानों उन्हें (पैरों को) घसीट कर अपनी छाती से लगाने की इच्छा है। किन्तु नींद आजाने से अपने कार्य में सफल न हो सका। जितना बढ़ा था उतना ही बढ़ कर रह गया था। काले काले बाल, जिनमें तेल का नाम नहीं था, केवल स्वाभाविक चमक रह गई थी, कुछ शय्या पर बिखरे हुए, कुछ गालों पर होकर कन्धे से उतरते हुए भूमि पर पड़े थे। मुख पर दुख तथा चिन्ता का भाव—गालों पर आँसुओं की लकीरें पड़ी हुईं। मैली धोती में उसका गेंहुआ रंग, जिसमें इस समय कुछ पीलापन आगया था, सुवर्ण की सी शोभा दे रहा था। कामताप्रसाद का हृदय द्रवित होगया। वे इस दृश्य के प्रभाव को सहन न कर सके। उन्हें पार्वती के मुख पर कोई दैवी छटा दिखाई दी। उन्हें स्वप्न में भी यह ख़बर न थी कि जो पार्वती अतुल शृङ्गार करने पर भी उनकी दृष्टि में सुन्दरी न जँची वही पार्वती इस समय ऐसी अपूर्व छटा धारण करेगी। उन्हें पार्वती एक देवी मालूम हुई। वे धीरे धीरे तकिये के सहारे उठे और अपने पैर खिसका कर बैठ गये। वे सोचने लगे कि इसे जगावें अथवा न जगावें। उस रूप को देख कर उनकी इच्छा ही न भरती थी। वे चाहते थे

कि इसे इसी प्रकार देखा करें। अन्त को उनका जी न माना। उन्होंने पुकारा—पार्वती, पार्वती।

पार्वती ने घबरा कर आँखें खोल दीं। इस तरह घबरा कर आँखें खोलने में भी अपूर्व सुन्दरता थी। कामताप्रसाद अधीर हो गये।

पार्वती शीघ्रतापूर्वक उठ कर बोली—ओफ़, मैं सो गई थी क्या? क्यों—क्या पानी चाहिए? अब जी कैसा है?

कामताप्रसाद पार्वती की ओर कुछ क्षण तक देखते रहने के पश्चात् बोले—तुम सो क्यों गई थीं।

पार्वती कुछ लज्जित होकर बोली—कुछ नहीं, ऐसे ही आँख लग गई थी।

कामता—नहीं—मालूम होता है कि तुम कई दिनों से सोई नहीं हो?

पार्वती ने सिटपिटाकर बात टालना चाहा।

कामता बोले—यहाँ आओ?

पार्वती उनके पास आकर बैठ गई।

कामता—पार्वती! मैं एक बात तुम से कहना चाहता हूँ, सुनोगी।

पार्वती कुछ विस्मित होकर बोली—कहो क्या बात है।

कामता—मैंने अभी तक तुम्हें नहीं पहचाना था? मैं सदैव तुम्हें स्थूल आँखों से देखता रहा, किन्तु आज मैंने तुम्हें हृदय की आँखों से देखा—मैं नहीं जानता था कि तुम में इतना दिव्य सौन्दर्य है।

पार्वती अवाक् होगई। उसने लज्जा से सिर नीचे झुका लिया।

कामता—प्रिये, मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हें न पहचान कर बड़ा दुख दिया—क्या क्षमा न करोगी?

यह कह कर कामता ने पार्वती को घसीट कर हृदय से लगा लिया। पार्वती के हृदय की आग भभक कर फूट निकली। वह पति की गोद में गिर कर बड़े करुण स्वर से रोने लगी।

× × × ×

क्यों भाई कामता! अब तो आप की तबीयत बिलकुल ठीक है।

कामता को अपने कमरे में बैठे देख भैरवप्रसाद ने पूर्वोक्त वाक्य कहे।

कामता—हाँ भई, अब तो बिलकुल अच्छा हूँ, केवल कुछ कमज़ोरी है।

भैरव—मैंने सुना कि आप की स्त्री ने आप की बीमारी में बड़ा परिश्रम किया।

कामता—हाँ, किया तो।

भैरव—तो यह समझना चाहिए कि उसी ने आप को आरोग्य किया।

कामता—मुझे भी और मेरे हृदय को भी।

भैरव—इसका क्या अर्थ?

कामता—मेरे हृदय में यह भ्रम घुसा हुआ था कि स्थूल सुन्दरता ही मनुष्य का हृदय खींच सकती है।

भैरव—किन्तु अब?

कामता—अब मुझे मालूम हो गया कि सद्गुणपूर्ण हृदय की सुन्दरता के सामने शरीर की सुन्दरता वैसी ही है जैसे कि सूर्य के आगे नक्षत्र।

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा

छत्तीसगढ़ का प्राचीन इतिहास।

इस बात को सभी जानते हैं कि मध्यप्रदेश में ग्रन्थ-प्रकाशन का काम बहुत ही कम होता है। हिन्दी, मराठी अथवा अँगरेज़ी में यहाँ जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनकी संख्या अत्यन्त थोड़ी है। जो थोड़े बहुत ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं उनका अधिकांश किसी काम का नहीं होता। परन्तु हमें यह प्रकट करते बड़ा हर्ष होता है कि यहाँ, अभी हाल में, एक बहुत ही अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। प्रान्तीय विद्वानों तथा अधिकारियों ने उसकी प्रशंसा भी की है। वह अँगरेज़ी में है। उसका नाम The History of the Central Provinces and Berar है। रचयिता श्रीयुत जे० एन० सिल, बी० ए०, बी० एल, सिवनी के वकील हैं। इसमें मध्यप्रदेश और बरार का संक्षिप्त, परन्तु महत्त्वपूर्ण, इतिहास है। कदाचित् सामग्री के अभाव में कुछ प्राचीन आवश्यक बातों का विस्तृत

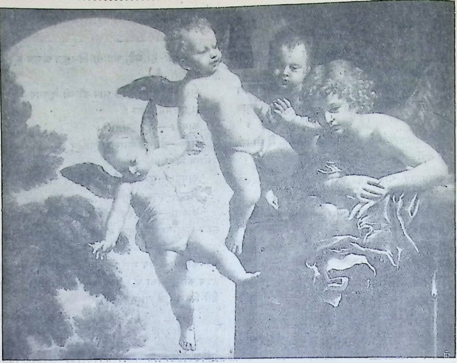

धारेबिम फ़रिश्ते ।

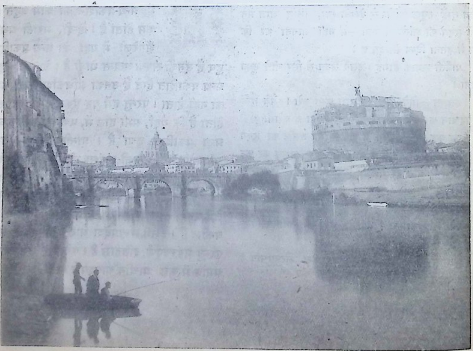

रोम में एञ्जलोका पुल । (देखो पृष्ठ १६८)

उल्लेख नहीं किया गया, तथापि जो बातें इसमें लिखी गई हैं वे अच्छी हैं। इस ग्रन्थ में छत्तीसगढ़-विभाग के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें हैं। हम यह लेख उन्हीं के आधार पर लिखते हैं।

मध्यप्रदेश का पूर्वी हिस्सा छत्तीसगढ़ कहलाता है। प्राचीन समय में इसे महाकोशल अथवा दक्षिण-कोशल कहते थे। दक्षिणकोशल नाम पड़ने का कारण यह था कि उत्तर-कोशल (वर्तमान अवध) से इस विभाग की भिन्नता विदित हो सके। महानदी के किनारे के राजिम नगर के उत्तर-पूर्व की ओर आज कल जो सिरपुर—श्रीपुर—नामक एक उजड़ा सा गाँव है वह महाकौशल की राजधानी था। रामायण के रचना-काल में मध्यप्रदेश में मनुष्यों की बस्ती आरम्भ हो गई थी और महाभारत के युद्ध के समय महाकौशल का राज्य स्थापित हो गया था।

पञ्च पाण्डवों में से अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन चित्राङ्गदपुर में राज्य करता था। इतिहासज्ञों ने यह सिद्ध किया है कि सिरपुर का ही दूसरा नाम चित्राङ्गदपुर था। राजिम और सिरपुर में मिले हुए लेखों से विदित है कि बभ्रुवाहन के वंशज होने का दावा करनेवाले राजा, सिरपुर में चौथी शताब्दी में राज्य करते थे। अतएव यह बात स्पष्ट है कि वहाँ के राजा पाण्डव थे। इस वंश के राजाओं के नाम का जो पता चलता है उनमें सब से पहला नाम इन्द्रवाल का है। सिरपुर गाँव के गन्धेश्वर-मन्दिर की परिक्रमा की दीवार में इस वंश का वृक्ष एक लेख में दिया है। इस वंश के राजाओं का जो पता, लेखों द्वारा, चलता है वह इस तरह है—

इन्द्रवाल	३१९ ईसवी
नन्ददेव	३५० ,,
तिवारदेव (चन्द्रगुप्त)	३७५ ,,
हर्षगुप्त	४०० ईसवी
शिवगुप्त	४२५ ,,
भावगुप्त	४५० ईसवी
शिवगुप्त	४७५ ,,

चन्द्रगुप्त के पौत्र शिवगुप्त का नाम महाशिवगुप्त और बलार्जुन भी था। उसकी माता मगधदेश के राजा की लड़की थी। विधवा होने पर उसने सिरपुर में ईंटों से एक विशाल लक्ष्मण-मन्दिर बनवाया, जो आज तक दर्शनीय है। राजधानी में जैसी इमारतों की आवश्यकता होती है वैसी शोभा-सम्पन्न और महत्त्व बढ़ानेवाली इमारतों, मन्दिरों, साधुओं के आश्रमों, परोपकारी संस्थाओं और बाग़ीचों—की कमी न थी। ये वस्तुयें श्रीपुर अथवा सिरपुर के नाम को सार्थक करती थीं।

सुविख्यात चीनी यात्री हुएनशांग, सन् ६३९ ई० में, महाकोशल आया था। उसने तत्कालीन भारतवर्ष की अनेक महत्त्वपूर्ण भौगोलिक तथा ऐतिहासिक बातों का वर्णन किया है। उसका कथन है कि कोशल-राज्य की परिधि १००० मील की है। उसके इस वर्णन से मालूम होता है कि उस समय छत्तीसगढ़-विभाग में सम्भवतः चाँदा, नागपुर और सिवनी ज़िले भी शामिल थे। क्योंकि ऐसा अनुमान न करने से उसकी बतलाई हुई परिधि बहुत बड़ी हो जाती है। वह कहता है—

“राजा क्षत्रिय-जाति का है। वह बुद्ध के उपदेशों का बड़ा आदर करता है और विद्या तथा कला-कुशलता का प्रेमी है। राजधानी में १०० मठ (Sangharams) और १० हज़ार साधु (Monks) हैं। प्रचलित धर्म के विरोधियों की संख्या सर्वसाधारण लोगों में बहुत है। देव-मन्दिरों की संख्या भी कम नहीं है।”

हुएनशांग ने राजा का तथा कोशल की राजधानी का नाम नहीं बतलाया। जिस शहर में १०० मठ और १० हज़ार साधु रहते हों वह कोई छोटा अथवा महत्त्वरहित शहर नहीं हो सकता। तथापि सिरपुर उस समय इतना बड़ा न था—

अवश्य ही किसी दूसरे शहर को लक्ष्य करके ये बातें लिखी गई हैं।

सिरपुर के बौद्ध राजाओं की गद्दी छीननेवाले राजाओं के वंश का पता नहीं चलता। सखपुर के राजाओं के लेख में केवल दो राजाओं का नाम मिलता है—एक महाजय राजा और दूसर उसका वारिस महासुदेव राजा। महाजय राजा ने शिवगुप्त बलार्जुन के लड़के को गद्दी से अलग करके उससे उसका राज्य छीन लिया। ये सोमवंशी राजा थे और इनकी राजधानी सखपुर में थी। डाक्टर राजेन्द्रलाल ने सिद्ध किया है कि सखपुर अथवा सवरपुर संबलपुर का नाम था।

नवीं शताब्दी में कलचुरी-वंश के राजा महाकोशल में राज्य करते थे। इस वंश का मुख्य स्थान त्रिपुर था। आज कल जबलपुर और भेड़ाघाट के बीच जो तेउर (Teor) नाम का छोटा सा गाँव है उसी का प्राचीन नाम त्रिपुर था। त्रिपुर के कोकल-नामक राजा के १८ लड़कों में से एक का नाम मुग्धतुङ्ग था। इसीने पहले पहल छत्तीसगढ़ में अपना राज्य आरम्भ किया। मुग्धतुङ्ग के एक छोटे भाई के कलिङ्गराज नामक एक लड़के ने दक्षिण में राज्य स्थापित किया। उसकी राजधानी कोशल के तुमान नामक स्थान में थी।

कलिङ्गराज के पौत्र रत्नदेव ने छत्तीसगढ़ के अत्यन्त विख्यात स्थान रतनपुर की नींव डाली। उसके समय से तुमान के बदले रतनपुर राजधानी हो गया। रत्नदेव से पृथ्वीदेव पहला, पृथ्वीदेव से जाजलदेव, जाजलदेव से रत्नदेव दूसरा, रत्नदेव से पृथ्वीदेव दूसरा, पृथ्वीदेव से जाजलदेव दूसरा, जाजलदेव से रत्नदेव तीसरा, रत्नदेव से पृथ्वीदेव तीसरा—इस तरह रतनपुर में ८ राजा हुए। छत्तीसगढ़ के शासकों के लिए रतनपुर मुख्य स्थान बन गया। परन्तु वहाँ के राजवंश में यह नियम सा हो गया था कि गद्दी पर अधिकार न रखनेवाले राजपुत्रों को कहीं न कहीं ज़मींदारी दे दी जाती थी और वे लोग उसके द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते थे। इसी तरह का एक राजपुत्र, जो रायपुर में बसा था, कुछ अधिक शक्तिसम्पन्न और अर्धस्वतन्त्र हो गया। कुछ समय में रायपुर में भी एक बहुत कुछ स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया। लेखों से रायपुर के हैहयवंशी राजाओं का पता इस तरह मिलता है—

केशवदेव	...	१४३८ ईसवी
मानसिंहदेव	...	१४६३ ,,
सन्तसिंहदेव	...	१४७८ ,,
सुरत्रसिंहदेव	...	१४९८ ,,
चमन्दसिंहदेव	...	१५२८ ,,
बंशीसिंहदेव	...	१५६३ ,,
धनसिंहदेव	...	१५८२ ,,
जैतसिंहदेव	...	१६०३ ,,
थलसिंहदेव	...	१६१५ ,,
यादवदेव	...	१६३३ ,,
सोमदत्तदेव	...	१६५० ,,
बलदेवसिंहदेव	...	१६६३ ,,
उमेदसिंहदेव	...	१६८५ ,,
बनवीरसिंहदेव	...	१७०५ ,,
अमरसिंहदेव	...	१७४१ ,,

हम ऊपर बतला चुके हैं कि प्राचीन छत्तीसगढ़ का मुख्य स्थान रतनपुर था और रायपुर में रतनपुर के आश्रित तथा सम्बन्धी राजा राज्य करते थे। ऊपर कहे गये रतनपुर के राजा तीसरे पृथ्वीदेव के बाद (१२००ईसवी से १७४० तक) रतनपुर में २६ राजा हुए। इनमें से पहले १४ राजाओं के समय का इतिहास उपलब्ध नहीं। पन्द्रहवें राजा कल्याणसहाय (१५४६ ई०) के समय में इस विभाग में पहले पहल मुसलमानी राज्य का प्रभाव पड़ा। अपने लड़के लक्ष्मणसहाय को राजगद्दी सौंप कर कल्याणसहाय एक बड़ी सेना के साथ दिल्ली के मुग़लों की सभा में गया। उस समय अकबर हिन्दुस्तान का

बादशाह था। कल्याणसहाय आठ वर्षों के बाद राजा के पूरे अधिकार और अनेक सम्मान-सूचक उपाधियाँ लेकर दिल्ली से लौटा।

कल्याणसहाय के ज़माने की मालगुज़ारी-विषयक एक पुस्तक मिली है। उससे उस समय के छत्तीसगढ़ के सम्बन्ध की बहुतसी ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं। "सीर" सहित उसकी आमदनी नौ लाख रुपयों की थी। आज कल जिस विभाग का नाम छत्तीसगढ़ है उस पर उसका पूरा अधिकार था। सम्बलपुर, पटना, खरियार, बस्तर, खरोंद, सारङ्गगढ़, सोनपुर, रायगढ़, सकती और चन्द्रपुर के राजा उसके अधीन थे। १४,२०० सिपाहियों और ११६ हाथियों की सेना उसके पास सदैव तैयार रहा करती थी।

सन् १७४० के उत्तरार्ध में मराठा-सेनापति भास्करपन्त ने छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया। उस समय रतनपुर में रघुनाथसिंह राज्य करता था। एक तो उसकी अवस्था ८० वर्ष से अधिक थी, दूसरे उसे पुत्र-शोक का सामना करना पड़ा था। अतएव वह अपने राज्य की रक्षा कर सकने में सर्वथा असमर्थ था। फलतः राज्य और कोष पर भास्करपन्त का अधिकार हो गया और हैहयवंशी राज्य का अन्त हुआ। रघुनाथसिंह को आज्ञा मिली कि वह नागपुर के भोंसला के नाम पर राज्य करे। उसके पश्चात् मोहनसिंह ने १७५८ ईसवी तक राज्य किया। मोहनसिंह की मृत्यु होने पर छत्तीसगढ़ का राज्य सीधा मराठों के अधीन हो गया और रघुजी भोंसले का लड़का बिम्बाजी भोंसला छत्तीसगढ़ का राजा हुआ। नागपुर के भोंसला-वंश से छूट कर छत्तीसगढ़ का राज्य अँगरेज़ों के हाथ चला गया।

ऊपर के विवेचन में छत्तीसगढ़-विभाग के प्राचीन इतिहास का दिग्दर्शन किया गया है। हुएनशांग के वर्णन से मालूम होता है कि इस विभाग में बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ चला था। यही नहीं, जैन-धर्म का प्रचार भी यहाँ आरम्भ हो गया था। छत्तीसगढ़ के इतिहास-शोधकों और प्राचीनता के प्रेमियों को रायपुर, सिरपुर, आरँग, धमतरी, रतनपुर, राजिम आदि महाकोशल के प्राचीन मुख्य स्थानों में बहुत कुछ जानने योग्य सामग्री मिल सकती है। जो छत्तीसगढ़-विभाग कालचक्र के सपाटे में पड़ कर आज दीन, मलीन और निरक्षर हो रहा है वह प्राचीन समय में बहुत कुछ ऐतिहासिक महत्त्व रखता था।

मौलिप्रसाद श्रीवास्तव

सन्तोष ।

जिस दिन तुम इस हृदय-कुञ्ज पर
अकस्मात छा जाओगे,
करुणा धाराएँ बरसा कर
सब सन्ताप बहाओगे।
कहीं शुष्कता नहीं रहेगी,
तृष्णानल बुझ जावेगी।
इसको हरा भरा कर के तुम
सौ सौ सुमन खिलाओगे।
धूल उड़ा कर यह समीर जो
इसे मलिन करता रहता;
तुम सर्वत्र इसी के द्वारा
शुभ-सौरभ फैलाओगे।
इस अति असहनीय आतप में,
है सन्तोष यही हम को;
पावस में हे घनश्याम! तुम,
नव जीवन ले आओगे॥

सियारामशरण गुप्त।

हिन्दी-गद्य का क्रम-विकाश।

अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई है कि हिन्दी एक प्राचीन तथा बहुत समय से भारतवर्ष में बहुप्रचारित भाषा है। इसको राष्ट्र-भाषा बनाने का आन्दोलन नया नहीं

है। हिन्दी सैकड़ों वर्ष से भारत की राष्ट्र-भाषा के सिंहासन पर विराजमान है। पर उसकी प्राचीनता की बात जान लेने पर भी यह किसी तरह नहीं वताया जा सकता कि वह किस सन् या संवत् से इस पद पर आरूढ़ है। क्योंकि हिन्दी के जन्म-समय का ठीक ठीक पता लगा सकना सम्भव नहीं। और हिन्दी ही क्या, जगत् की किसी भी भाषा का उत्पत्तिकाल निश्चित रूप से बता सकना कठिन है। क्योंकि भाषाओं की उत्पत्ति एक दिन, एक वर्ष अथवा सौ पचास वर्षों में नहीं होती। वरन् सभी भाषायें कई सौ वर्षों में धीरे धीरे विकसित होकर एक रूप से दूसरे में परिवर्तित होती हैं। और यह परिवर्तन प्रायः किसी विशेष घटना के कारण आरम्भ होता है। इस कारण हिन्दी के आविर्भाव का विलकुल ठीक समय तो लिखा नहीं जा सकता; पर अनुमान द्वारा इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दी का प्रचार संवत् १००० के आस पास से होने लगा है। भारत की भाषा में परिवर्त्तन तो इससे पहले ही होने आरम्भ हो गये थे, और हिन्दी का वीज संवत् १००, ८०० के लगभग (अनेक सज्जन इसी समय को हिन्दी का जन्मकाल मानते हैं) पड़ चुका था। पर संवत् १००० के आस पास इस देश में मुसलमानों का आगमन हुआ। और हिन्दू-मुसलमान इन दो बड़ी जातियों के सम्मेलन की बड़ी घटना का आश्रय पाकर हिन्दी का अङ्कुर फूट निकला। विदेशी लोगों को नये देश की भाषा से काम तो अवश्य पड़ता है, पर वे उसे शुद्ध रीति से नहीं बोल सकते। अतएव उसमें परिवर्तन आरम्भ होता है। इस प्रकार मुसलमानों और हिन्दुओं के मिलने से हिन्दी का विकाश होने लगा और मुसलमानों के विजयी होने तथा देश का शासक बन जाने से थोड़े ही समय में इसकी बहुत कुछ वृद्धि हो गई। इसका 'हिन्दी' नामकरण भी मुसलमानों द्वारा ही हुआ है। वे इस देश को हिन्द कहते थे, और यहाँ आने पर उन्हों ने इसकी भाषा का नाम रक्खा हिन्दवी अथवा हिन्दी। यहाँ पर हिन्दी की उत्पत्ति का हाल इतना ही लिखना पर्याप्त है।

इस भाँति हिन्दी संवत् १००० के लगभग से प्रचलित होकर दिन पर दिन उन्नति करने लगी। इसी समय से उसके साहित्य का क्रम आरम्भ होता है। यद्यपि 'पृथ्वीराज-रायसा', जो वर्तमान समय में हिन्दी का सबसे पुराना ग्रन्थ माना जाता है, संवत् १२२५ में बनना आरम्भ हुआ था, पर इसमें सन्देह नहीं कि उससे पहले भी हिन्दी में कितने ही ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। महत्त्वहीनता, विषय की साधारणता अथवा काल के प्रभाव से अब उनका पता नहीं लगता। 'पृथ्वीराज-रायसा' के पीछे दूसरे कवियों ने भी पुस्तकें लिखीं, और तब से अब तक हिन्दी में हज़ारों लाखों ग्रन्थ बन चुके हैं, तथा हिन्दी-साहित्य एक विशाल रूप को प्राप्त हो चुका है। यद्यपि आज कल मिलनेवाली अधिकांश पुस्तकें तीन चार सौ वर्षों के भीतर ही की हैं, पर अब हिन्दी-साहित्य में किसी विषय के ग्रन्थों का अभाव नहीं रह गया है। नवों रसपूर्ण काव्य, छन्द, अलङ्कार, पिङ्गल, रस आदि विषयों के अगणित ग्रन्थ तो हमारे पूर्वज ही बना कर रख गये हैं। और अब कहानी-क़िस्सा, उपन्यास, इतिहास, जीवनचरित, भूगोल, विज्ञान के ग्रन्थों द्वारा मातृभाषा का भाण्डार भरा जा रहा है। अब हिन्दी-साहित्य किसी प्रकार तुच्छ, सामान्य, महत्त्वहीन और गौरवशून्य नहीं कहा जा सकता।

पर ध्यानपूर्वक देखने से अपने प्राचीन साहित्य में हमें एक बड़ी त्रुटि मालूम होने लगती है। वह यह कि, जिन गद्य-ग्रन्थों को आज कल लोग भाषा का सर्वस्व समझते हैं, उनकी उसमें बड़ी कमी है। हिन्दी की पुरानी पुस्तकें प्रायः पद्य में ही लिखी गई हैं। जब पद्य की हज़ारों पोथियाँ सरलता

से मिल जाती हैं, तब गद्य की पुरानी पुस्तकें चालीस पचास भी कठिनता से हाथ लगती हैं। आज कल के लोगों की दृष्टि में प्राचीन हिन्दी-साहित्य की यह गद्य-हीनता एक बड़ी भारी त्रुटि जान पड़ती है। क्योंकि वे गद्य के भक्त हैं। श्रौर वास्तव में साहित्य में गद्य का स्थान है भी बहुत ऊँचा। पद्य में सब प्रकार के भाव सरलता से प्रकट नहीं किये जा सकते, सब विषय भली भाँति नहीं लिखे जा सकते, श्रौर न अच्छा पद्य लिख सकने में सब कोई समर्थ हो सकते हैं। पर गद्य में इस प्रकार का कोई अड़ङ्गा नहीं। श्रौर साहित्य, विद्या, कला, कौशल, वाणिज्य, व्यवसाय की पूर्ण उन्नति उसके द्वारा ही हो सकती है। भला पद्य में कौन पत्र लिखने बैठेगा, श्रौर कौन बही-खातों में उसका प्रयोग करेगा। सर्वसाधारण में विद्या, ज्ञान का प्रचार अच्छी तरह गद्य के द्वारा ही हो सकता है। अतएव साहित्य में गद्य-ग्रन्थों की प्रचुरता अभ्युदय के लिए अनिवार्य है।

अच्छा तो हिन्दी-साहित्य में गद्य-ग्रन्थों की ऐसी न्यूनता क्यों है? जिन लोगों ने रामचरितमानस, सूरसागर, विहारी-सतसई, पृथ्वीराज-रायसा जैसे महान् ग्रन्थों की रचना की वे क्या थोड़ी बहुत पुस्तकें गद्य में न बना सकते थे? इसका कारण यही जान पड़ता है कि हज़ार डेढ़ हज़ार वर्ष पहले से हमारा देश बड़ी अधोगति में पड़ा था। आपस के लड़ाई-झगड़ों श्रौर विदेशियों के आक्रमणों तथा शासन के कारण यहाँ विद्या की उन्नति होनी रुक गई थी; श्रौर शिक्षा, कला-कौशल की श्रोर से यहाँ के निवासी उदासीन हो गये थे। ऐसी दशा में गद्य-ग्रन्थ कौन बनाता? रही पद्य की पुस्तकें, वे मनोरञ्जन की प्रधान सामग्री हैं। उनके लिए किसी विशेष प्रकार के शासन अथवा देश-दशा की आवश्यकता नहीं; थोड़े बहुत स्वाभाविक कवि सदा पैदा होते ही रहते हैं, तथा राजा, महाराजा, शासक लोग भी आमोद एवं अपनी प्रशंसा के लिए पद्यकारों को उत्तेजना देते हैं। इन सब कारणों से उसकी उन्नति में कोई बाधा न पड़ी। पर बेचारे गद्य को केवल कुछ टीकाकारों श्रौर धर्म-प्रचारकों का सहारा था। उन्हीं के प्रसाद से आज कुछ प्राचीन गद्य-ग्रन्थ हमारे देखने में आते हैं।

गद्य-ग्रन्थों की कमी का एक श्रौर भी कारण है। हिन्दी में जितना गद्य-साहित्य है उसकी खोज भी ठीक तौर से नहीं की गई है। जो थोड़ी बहुत पुस्तकें प्रसिद्ध होने के कारण प्राप्त हैं, उन्हीं पर सन्तोष कर लिया गया है। क्योंकि प्राचीन गद्य-ग्रन्थ विशेष महत्त्व के नहीं समझे जाते। इस कारण अनुमानतः सैकड़ों गद्य-ग्रन्थ अप्रकट पड़े हुए हैं। पर इस उदासीनता से हिन्दी के इतिहास जानने में बड़ी बाधा पड़ती है।

इसी उदासीनता का एक उदाहरण लीजिए। आज कल की हिन्दी में गद्य की दे। तीन सौ वर्षों की पुरानी पुस्तकें बहुत थोड़ी मिलती हैं। उन्हें देख कर लोग कहते हैं कि हिन्दी में पहले गद्य लिखने की प्रणाली साधारण रूप में भी न थी। पर जैनियों के यहाँ पुराने गद्य-ग्रन्थ सैकड़ों की संख्या में पाये जाते हैं। उनमें से अनेक बड़े बड़े, रसीली भाषा में लिखे गये श्रौर अलङ्कार-पूर्ण हैं। पर उनकी श्रोर अभी तक किसी विद्वान् ने ध्यान नहीं दिया। क्या उनके द्वारा हिन्दी-गद्य के विकाश का धारावाही इतिहास बनाने में अमूल्य सहायता नहीं मिल सकती?

वर्तमान समय में मिलनेवाले हिन्दी-गद्य-ग्रन्थ कई विषयों में विभक्त किये जा सकते हैं। उनमें से कुछ तो कहानी-क़िस्से हैं, अन्य प्रायः ऐतिहासिक। कुछ वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाले धार्मिक ग्रन्थ हैं। अनेक संस्कृत-ग्रन्थों की टीकायें हिन्दी-गद्य में की गई थीं। कुछ हिन्दी के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों की टीकायें भी प्राचीन समय में लिखी गई।

जैनियों के सैकड़ों धार्मिक ग्रन्थ हिन्दी-गद्य में पाये जाते हैं। पर उनकी भाषा प्रायः साधारण गद्य से कुछ विशेषता लिये हुए है। उनमें से अधिकांश में ढूँढारी (जयपुरी) बोली की पुट है। इनके अतिरिक्त और भी थोड़ी बहुत फुटकर पुस्तकें प्राचीन हिन्दी-गद्य-साहित्य में मिलती हैं। आज कल तो गद्य का राज्य ही है। उसके विषय में अधिक क्या लिखा जाय।

पर यदि इस सम्पूर्ण गद्य-साहित्य का वर्णन इतिहास के रूप में किया जाय, समयानुसार इस का क्रम-विकाश दिखलाने की चेष्टा की जाय, तो इसके कई भागों में विभक्त कर देना आवश्यक है। अतएव हमारी सम्मति में इसे छः भागों में बाँटना चाहिए। पहले आदिकाल संवत् १००० के आसपास से १८६० तक, फिर माध्यमिक काल संवत् १८६० से १९२५ तक, उस के पीछे वर्तमान काल १९२५ से अब तक। इनमें से प्रत्येक काल के पूर्व और उत्तर दो भाग कर देने से सम्पूर्ण हिन्दी-गद्य-साहित्य छः भागों में बँट जाता है। आदिकाल का पूर्वकाल संवत् १६०० में समाप्त होता है, माध्यमिक काल का १९११ में, और वर्तमानकाल का १९५५ में। इन्हीं को हम हिन्दी-गद्य-साहित्य के छः युग कह सकते हैं।

यह तो लिखा ही जा चुका है कि हिन्दी का प्रचार संवत् १००० के लगभग से होने लगा है। गद्य के इतिहास का आरम्भ भी उसी समय से होता है। क्योंकि पद्य के बिना तो काम चल भी सकता है। पर बिना गद्य के निर्वाह हो सकना असम्भव है। रात दिन की बोल-चाल, चिट्ठीपत्री, हिसाब-किताब सब के लिए गद्य की आवश्यकता पड़ती है। अतएव संवत् १००० से १६०० तक कोई ६०० वर्ष लम्बा, गद्य के आदिकाल का पूर्वभाग, समझना चाहिए। कदाचित् आप इसकी बेढब लम्बाई पर आश्चर्य करने लगें। पर उस समय गद्य की दशा ही ऐसी थी। नित्य प्रति के व्यावहारिक कामों में ही इस की पूछ थी। इस में पुस्तक लिखने का उद्योग कोई कोई ही करता था। उस समय गद्य लिखने की कोई सर्व-सम्मत प्रणाली न थी। सब लोग अपने अपने प्रान्तों की बोली के अनुसार लिखते थे। इस काल में विभक्तियों का स्वरूप भी बहुत भिन्न था और उनका उपयोग भी अब के समान नहीं किया जाता था। कहीं तो निरर्थक विभक्तियाँ लिख दी जाती थीं और कहीं आवश्यकता होने पर भी वे काम में न लाई जाती थीं। लिखने में प्रचलित शब्दों का ही समावेश किया जाता था। शुद्ध संस्कृत-शब्दों के प्रयोग को उस समय के गद्य-लेखक आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे। इसी कारण आज कल उस समय के गद्य के समझ सकने में कुछ कठिनाई प्रतीत होती है। उस समय के लेखकों में अब तक गोरखनाथ (१४०७) का ही पता चला है। पर हम सम्भवतः इस काल के और भी दस पाँच गद्य-लेखकों के नमूने पाठकों की सेवा में भेंट कर सकेंगे। इस समय के गद्य के नमूने इस प्रकार हैं—

'अपन श्रीदली सूं भाई लंगरी राय जी आ या है जो श्रीदली सूं हजूर का वी खास रुका आयो है जो मारी वी पदारवा की सीख वा है।'

'स्वामी तुमे तो सतगुरु अम्हे तो सिष सबद एक पुछिबा। दया करि कहिबा। मन न करबा रोस। पराधीन न उपरांति बंधन नांही। सुआधीन उपरांति मुकुति नाहीं। चाहि उपरांति पाप नाहीं। अचाहि उपरा इति पुनि नांहीं।'

संवत् १८०० के पीछे हिन्दी-गद्य में एक परिवर्तन हुआ। उस समय व्रज में वल्लभसम्प्रदाय का प्रचार बढ़ रहा था और उस धर्म के प्रचारक अपने सिद्धान्तों तथा उपदेशों को सर्वसाधारण में फैलाने के लिए बोल चाल की व्रजभाषा में पोथियाँ लिखने लगे थे। और थोड़े ही समय में उन्हों ने इस

प्रकार के अनेक ग्रन्थ लिख डाले। कहते हैं कि उन की संख्या कई सौ है। इस भाँति इस धर्म के प्रभाव से व्रज-भाषा में गद्य-ग्रन्थों का एक अच्छा समूह तैयार हो गया और लोगों की रुचि गद्य की ओर झुकी। इसी समय अनेक जैन-ग्रन्थ भी गद्य में लिखे गये। इसके पीछे अनेक लोगों ने काव्य-ग्रन्थों पर टीकायें लिखीं। वे भी प्रायः व्रजभाषा में ही हैं। संवत् १६८० में जटमल नामक लेखक ने 'गोरा बादल की कथा' नामक एक गद्य-ग्रन्थ लिखा जिसका झुकाव वर्तमान खड़ी हिन्दी की ओर है। १७६० के आसपास सूरति मिश्र ने वैताल-पचीसी भी अच्छी लिखी। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जैनियों ने कितने ही बड़े बड़े और उत्तम गद्य-ग्रन्थ लिखे। इस काल का गद्य पहले की अपेक्षा बहुत प्रौढ़ था। यद्यपि इस समय भी लोग लिखने में अपने अपने यहाँ की बोली का उपयोग करते थे, तथापि लिखने का ढङ्ग अच्छा था। इससे उस के समझने में विशेष कठिनाई न पड़ती थी। विभक्तियाँ इस काल में वर्तमान रूप को कुछ कुछ ग्रहण करने लगी थीं। उनका उपयोग भी अधिक होने लगा था, पर नियमानुसार नहीं होता था। अनेक लोगों ने इस समय अलङ्कार-युक्त मधुर गद्य लिखने का उद्योग भी किया। इस समय के बने ग्रन्थों की संख्या सैकड़ों है, जब कि पूर्व काल में बहुत थोड़े बने थे। इस उत्तरकाल के गद्य का नमूना देखिए—

'तब श्री आचार्यजी महा प्रभून ने कह्यौ जो तू तो व्यास आसन पर बैठ्यौ है हम तेरों अतिक्रम क्यों करि करैं तब इतनौ सुनत मात्र जगतानन्द चौकी छोड़िकै उठि ठाड़ौ भयौ।"

"सो यह ग्रन्थ समुद्र तो ऐसा है जो सातिशय बुद्धिबल संयुक्त जीवनि करि भी जाका अवगाह होना दुर्लभ है। अर मैं मंदबुद्धी अर्थ प्रकासने रूप या की टीका करनी विचारों हों। सो यह विचार ऐसा भया जैसे कोऊ अपने मुष ते जिनेन्द्र देव के सर्व्वगुण कथन किया चाहै।"

इस समय अँगरेज़ों का राज्य भारत में भली भाँति जम चुका था और उन्हों ने देश का नियमपूर्वक शासन करना आरम्भ कर दिया था। अब वे यहाँ विद्या-शिक्षा फैलाने की चेष्टा करने लगे। पर ये लोग ठहरे नई सृष्टि के, गद्य के प्रेमी। ये केवल पद्य के पढ़ लेने से शिक्षा का पूर्ण होना नहीं मानते थे। अतएव इनकी चेष्टा से गद्य का भाग खुला। सरकार ने इस देश की भाषा में पुस्तकें रचने की आज्ञा दी, और तदनुसार संवत् १८६० में लल्लूलाल ने प्रेमसागर तथा सदल मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान की रचना की। ये अँगरेज़ों के पढ़ने के लिए बनाये गये थे, अतएव इन में बोलचाल की भाषा (खड़ी बोली) पर अधिक ध्यान रक्खा गया। इसके पीछे सरकार की आज्ञा से और भी पुस्तकें बनने लगीं, और खड़ी हिन्दी की वृद्धि होनी आरम्भ हुई। इस समय की भाषा गद्य के वर्तमान स्वरूप से बहुत सादृश्य रखती है। अब से पहले लोग लिखने में बहुत से निरर्थक शब्द भर देते थे, जिससे भाषा दुरूह हो जाती थी। अब यह दोष घटने लगा और लिखने में कुछ सफ़ाई आने लगी। यद्यपि लेखन-शैली इस समय भी कोई निश्चित नहीं हुई थी, तथापि लिखते सब खड़ी बोली में थे। किसी की भाषा में संस्कृत-शब्दों की भरमार रहती थी, और कोई अपनी भाषा में फ़ारसी-शब्दों की बहुतायत रखता था। विभक्तियों का लोग अब भली भाँति आदर करने लग गये थे। यह बात दूसरी है कि उनका ठीक ठीक प्रयोग बाज़े ही कर सकते थे। इस समय से विराम, अर्द्ध-विराम आदि चिह्नों का भी प्रयोग किया जाने लगा, जिन का इस से पहले नाम भी न था। उस समय केवल बीच बीच में खड़ी पाई लगा देते थे, सो भी बड़े बेढंगेपन से। इस समय हिन्दी-गद्य का अच्छा विकाश हुआ। उस

दिल्ली-दर्बार में राजकुमार। (देखो पृष्ठ १६८)

में सफ़ाई आई और उपयोगी विषय लिखे जाने लगे। वास्तव में हिन्दी की इस नवीन उन्नति का श्रेय बहुत कुछ अँगरेज़ी सरकार को है। उसी की कृपा से उस समय हिन्दी में नये ढङ्ग की अनेक पुस्तकें बनने लगी थीं। उन पुस्तकों ने पुराने हिन्दी-गद्य की काया-पलट करके शीघ्र ही एक उत्तम और सङ्गठित लेखन-शैली की सृष्टि कर दी। इस काल की भाषा का अनुमान इन उदाहरणों से किया जा सकता है—

'श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! एक दिन नन्दजी ने संयमकर एकादशी व्रत किया। दिन तो असनान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागरण में बिताई। जब छह घड़ी रैन रही और द्वादशी भई तब उठके देह शुद्ध कर भोर हुआ जान धोती, अङ्गोछा, झारी ले यमुना न्हाने चले।' —

'किसी के ताराचन्द नाम का लड़का था वह थोड़े वय का था पर बुद्धि उसकी अच्छी थी, औ उस बिन उसके पिता के और कोई लड़का न था।'

'तिस पीछे ओंटिगोनस और डिमेट्रिअस मिसर पर चढ़ गये, परन्तु उन्होंने इस उद्योग में निरास होकर रोडज नगर घेर लिया, जो नगर टालेमी की ओर हो गया था।'

इसके पीछे राजा शिवप्रसाद के समय में हिन्दी-गद्य में पुनः एक नवीन परिवर्तन हुआ। अब 'तिस' 'रैन' 'औ' 'कोऊ' 'असनान' आदि जैसे शब्द गँवारू समझे जाने लगे और उर्दू-शब्द-मिश्रित तथा साफ़ भाषा लिखने की ओर लोगों का ध्यान झुका। अब लेखक विभक्तियों का प्रयोग करना भी भलीभाँति जान गये थे। यही समय हिन्दी-व्याकरण की उत्पत्ति का है। अब तक हिन्दी में साधारण लिखने पढ़ने के भी नियम नहीं थे, व्याकरण की क्या बात। पर अब अँगरेज़ी पढ़ कर लोगों का ध्यान इस ओर गया और संस्कृत-व्याकरण का सहारा लेकर हिन्दी-व्याकरण का ढाँचा खड़ा किया गया। इससे सर्वसाधारण के लिए नियम-बद्ध भाषा लिख सकना कुछ सरल हो गया। वैसे तो अब तक हिन्दी का सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण नहीं बन सका है। इस काल में स्कूलों के लिए कितनी ही पुस्तकों की रचना की गई और हिन्दी-गद्य परिमार्जित स्वरूप को प्राप्त होने लगा। राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द आदि इस काल के बड़े लेखक हैं। इस समय के हिन्दी-गद्य का नमूना यह है—

'फ़ौज अच्छे राजा इसी लिए रखते हैं कि जो कभी कोई दुश्मन गनीम बाहर से चढ़ आवे तो अपनी प्रजा यानी रैय्यत को उस की लूट-मार से बचा सकें। या अपने ही देश में यदि बदमाश इकट्ठे होकर कुछ फ़साद उठाना चाहें उनको बख़ूबी सजा दे सकें।'

'क्योंकि कमल के फूल पर कायी भी अच्छी लगती है और पूर्ण चन्द्र में काली रेखा भी खुलती है ऐसे ही इस पद्मिनी का अङ्ग बकले पहिरने से भी सुन्दर दिखाई देता है।'

अब हिन्दी के साहित्याकाश में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ। उन्होंने हिन्दी की उन्नति के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया और थोड़े ही समय में उसमें एक नई जीवनी-शक्ति डाल कर उसे बहुत कुछ उन्नत बना दिया पर हरिश्चन्द्रजी को हिन्दी में फ़ारसी-शब्दों का मिलाया जाना भला नहीं लगा। वे विशुद्ध हिन्दी-गद्य लिखना पसन्द करते थे। अतएव इस समय से वर्तमान संस्कृत-शब्द-मिश्रित हिन्दी का प्रचार बढ़ा और उस की यहाँ तक उन्नति हुई कि आज कल प्रायः सभी विद्वान् उसी ढङ्ग पर लिखते हैं। बाबू हरिश्चन्द्रजी के काल में हिन्दी का वाक्य-विन्यास बहुत सुधरा तथा चिह्नों का भी प्रचार बढ़ा। इस समय गद्य के उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे गये और हिन्दी-प्रेमियों में गद्य का भलीभाँति आदर होने लगा। अनेक

धुरन्धर लेखकों ने इस काल में हिन्दी-साहित्य के गद्य-भाण्डार को भरा। श्रीप्रतापनारायण मिश्र, श्रीबालकृष्ण भट्ट, श्रीबदरीनारायण चौधरी, लाला श्रीनिवासदास आदि अनेक हिन्दी-भक्तों के उद्योग से इस समय हिन्दी-गद्य की दशा बहुत कुछ सुधरी। इस काल में बहुत से सामयिक पत्र भी निकलने लगे, जिन का कार्य गद्य का प्रचार ही था। इस प्रकार वर्तमान काल का पूर्वभाग हिन्दी-गद्य के लिए बड़े सौभाग्य का समय है।

इस के पीछे हिन्दी बराबर उन्नति करती गई। और आज कल, जैसा हम देख रहे हैं, हज़ारों सज्जन इस के अभ्युदय के लिए परिश्रम कर रहे हैं। वर्तमान समय में प्रति वर्ष कई सौ पुस्तकें हिन्दी में निकल जाती हैं। उनमें से अधिकांश गद्य में ही लिखी जाती हैं। अतएव यह समय हिन्दी-गद्य की पूर्णोन्नति का है। इस पन्द्रह बीस वर्ष के समय में गद्य की लेखन-शैली में सुधार भी बहुत हुए। भाषा ऐसी साफ़, सुगम हो गई है कि उस के समझने में तनिक भी भ्रम नहीं हो सकता। इस समय मिलित वर्णों के लिखने की प्रथा बहुत बढ़ी है। अब से पहले प्रायः अनुस्वार से ही मिले हुए अक्षरों का काम निकाला जाता था। आदि-काल में तो मिले हुए अक्षर कहीं लिखे दिखाई ही नहीं देते। माध्यमिक काल में भी इन का प्रचार नाममात्र को था। पर अब दिन पर दिन इन की वृद्धि हो रही है। पर लिङ्ग, वचन, विभक्ति-सम्बन्धी विवाद-ग्रस्त प्रश्न अब भी हिन्दी-गद्य लिखने में उठा करते हैं, और कितने ही विद्वानों में इस विषय को लेकर बड़ा मत-भेद हो गया है। इसके अतिरिक्त कितने ही सज्जन इस विषय का भी आन्दोलन करते हैं, कि अधिक संस्कृत-शब्द-मिश्रित भाषा लिखना ठीक नहीं। साधारण बोल-चाल की भाषा में ग्रन्थ लिखना लाभदायक है। आशा है कि कुछ समय में इन सब झगड़ों का निर्णय हो जायगा और एक सर्वसम्मत लेखनशैली स्थिर हो जायगी। वर्तमान दशा को देखते हुए अनुमान होता है कि हिन्दी-गद्य-साहित्य के सुदिन अब पास आ गये हैं और थोड़े बहुत वर्ष पीछे वह संसार की प्रधान भाषाओं के साहित्य का मुक़ाबिला करने लगेगा।

इस प्रकार हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकाश के ये छः युग समाप्त होते हैं। सम्भव है कि अनेक विद्वान् इनको ग़लत समझें, पर हमने बहुत सोच विचार कर हिन्दी-गद्य-साहित्य को इन्हीं छः विभागों में विभक्त करना उचित समझा है। खोज करने पर मालूम हुआ कि और भी कई विद्वानों का मत हमारे इस कालविभाग से कुछ कुछ मिलता है। इन छः कालों के नाम इनके प्रधान लेखकों की दृष्टि से 'शिवप्रसाद-काल', 'लल्लूलाल-काल' आदि भी रखे जा सकते हैं। अब तक प्राचीन हिन्दी-गद्य के नमूने बहुत कम मिले हैं। इसका कारण, जैसा लिखा जा चुका है, विद्वानों की इस ओर से उदासीनता ही है। हमने इस लेख में विस्तार के भय से अधिक नमूने नहीं दिये हैं। पर हमारा विश्वास है कि इस विषय की पुस्तक में हम प्राचीन हिन्दी-गद्य के कई सौ नमूने पाठकों की सेवा में उपस्थित कर सकेंगे। उनके द्वारा सब कोई हिन्दी-गद्य के क्रम-विकाश को स्पष्ट रीति से समझ सकेंगे, और हिन्दी की लेखनशैली में कब कब कौन कौन से परिवर्तन हुए, इसका पता चल जायगा। आशा है कि यह विषय सब सज्जनों तथा विद्वानों को लाभदायक और उपयोगी प्रतीत होगा, तथा वे इसकी त्रुटियों के संशोधन की कृपा करेंगे। एक पुरुष का सामर्थ्य नहीं जो प्राचीन-काल-सम्बन्धी इस विषय को पूर्ण कर सके।

श्रीसत्यभक्त

प्राचीन भारत में शिल्प-कला।

कुछ लोगों की राय है कि अशोक के समय से पूर्व भारतवर्ष में शिल्प-कला का प्रचार नहीं था। लकड़ी से बने और फूस आदि से छाये हुए मकानों के अतिरिक्त और किसी अन्य टिकाऊ वस्तुओं से बने मकान नहीं थे। प्राचीन खोह और स्तम्भादि के जो चिह्न आज मिलते हैं वे सभी ईसा के पूर्व २५० वर्ष के बाद के हैं। बौद्ध काल में विदेशियों का भारत में लगातार आगमन हो रहा था; अतएव इससे वे यह काल्पनिक सिद्धान्त निकालते हैं कि भारतवासियों ने यह कला किसी अन्य देशवासी से सीखी।

इस मत के प्रायः चार सिद्धान्त हैं—मिस्टर फर्ग्यूसन ने इस विषय का एक बड़ा इतिहास लिखा है। उनका कथन है कि पश्चिम घाट और बिहार आदि स्थानों में जो खोह और स्तूप मिलते हैं उनके रङ्ग ढङ्ग से मालूम पड़ता है कि वे भारतीय कारीगरों के बनाये नहीं,—दूसरे, ये सब लकड़ी से ईंट के प्रथम अवस्थान्तर मात्र हैं। इससे यह प्रकट होता है कि अशोक के पूर्व भारत में ईंट आदि टिकाऊ वस्तुओं का प्रचार नहीं था। अशोक ने अन्य-देशवासी शिल्पियों से स्तूपादि बनवाये और चूँकि यूनानी और बैक्ट्रियन-ग्रीक (Bactrian-Greek) भारत में उस समय अपनी सभ्यता का प्रभाव डाल रहे थे, इससे जान पड़ता है कि इन्हीं लोगों ने भारत में शिल्प-कला का प्रचार किया।

काश्मीर की मूर्त्तियाँ और सिन्ध नदी के देशों में प्राप्त यूनानी सिक्कों से कुछ लोग यह अनुमान करते हैं कि सिकन्दर के छोड़े हुए यूनानी शिल्पकारों ने भारतवर्ष में इस कला का प्रचार किया (Mr. Fergusson, Mrs. Manning, etc.)।

अशोक के दरबार की बनावट में तथा और कुछ बातों में फ़ारस की सभ्यता के प्रभाव का आभास पानेवाले लोगों की राय है कि भारतवर्ष ने फ़ारसवालों से ही यह शिक्षा ग्रहण की (Messrs. Smith, Rawlinson, etc.)।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि भारतवर्ष के प्राचीन स्तूप आदि के बचे बचाये टुकड़ों में क्रमशः मिश्र, बेबीलोन और एसीरिया के भवनों की कारीगरी का आभास पाया जाता है, जिससे विदित होता है कि भारत को इन तीनों ने अथवा इनमें से किसी एक ने भवन-निर्म्माण-कला सिखलाई।

संस्कृत और पाली-ग्रन्थादि देखने से तथा भवनों के शेषांश चिह्नों से कुछ लोग निश्चय करते हैं कि भारत में आदिकाल से शिल्प-कला का प्रचार है। (Babu R. L. Mitra, Mr. F. B. Havell, Mr. Cunningham etc).

भारतवर्ष की प्राचीन कलायें लोगों के लिए केवल कौतूहलवर्द्धक हैं। कुछ सङ्कीर्ण-हृदय विदेशी इतिहासकारों का यह अभिप्राय रहता है कि भारतवर्ष को उसके प्राचीन गौरव से अलग कर दें। कुछ हमारे देशभाई, देश-प्रेम के कठिन आवेश में आकर, अपने कथन में अत्युक्ति द्वारा सत्य और यथार्थ विषय को भी धुँधला कर डालते हैं। दोनों ही बातों से ऐतिहासिक विषय को हानि पहुँचती है। यह ठीक है कि प्राचीन काल का प्रामाणिक इतिहास हमें नहीं मिलता,—परन्तु अब पुरातत्त्व-विभाग आदि के फल-स्वरूप सामग्रियों का भी अभाव नहीं, जिनसे प्राचीन इतिहास प्रकाश में लाया जा सकता है। ऐसी दशा में दोनों पक्षवालों को उचित है कि निरपेक्ष भाव से प्राप्त सामग्री का उचित उपयोग करें और बचे बचाये संस्कृत और पाली-ग्रन्थों का आदर करके विवादास्पद विषयों की सविवेक विवेचना करें। "यह सम्भव है", "ऐसा जान पड़ता है" आदि उक्तियों से ऐतिहासिक विषयों में लाभ

होने के बदले हानि ही होती है। विशेषतः हमारा इतिहास इन काल्पनिक सिद्धान्तों से सुलझने के बदले और उलझ जाता है।

विचार करना चाहिए कि भारत ने यथार्थ में शिल्प-कला अन्य जातियों से सीखी या स्वयं इस विषय में दक्षता प्राप्त की। प्रधान विषय की विवेचना करने के पहले हमें देखना होगा कि अति प्राचीन काल से खीष्टाब्द के आरम्भ तक भारतवर्ष का संसर्ग किन किन देशों से था। यह बात प्रायः सभी को मालूम है कि प्राचीन काल में भी भारत और अन्यान्य देशों के बीच व्यापार होता था। व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। परन्तु दोनों ही सङ्कट-पूर्ण होने के कारण इसका सिलसिला बीच बीच में टूट जाया करता था।

ईसा के लगभग १३०० वर्ष पूर्व फ़िनिसिया-निवासियों ने अनेक संकट झेल कर भारत-महासागर के किनारों को ढूँढ़ निकाला। उसके उपरान्त उनकी चर्चा कुछ दिनों तक नहीं पाई जाती। बारहवीं शताब्दी में पैलेस्टाइन (Palestine) के हिब्रू राजा सोलोमन (Solomon) को अपनी राजधानी जेरूसलेम (Jerusalem) को सजाने के लिए मणि-रत्नों की आवश्यकता हुई। उसने टायर (Tyre) के राजा से नाविकों को किराये पर लेकर रत्नों की खोज में भेजा। अठारह मास की लगातार जलयात्रा के पश्चात् वे लोग सिन्ध नदी के किनारे ओफोर (Ophir) नामक बन्दरगाह में पहुँचे। सिन्ध के सन्निकटस्थ प्रान्तों से अपने काम की चीज़ें लेकर वे शीघ्र वापस चले गये। उस समय से फ़ारस की खाड़ी, भारत और एशिया-माइनर के बीच, व्यापार का मुख्य मार्ग रहा। यूफ़्रेटिज़ नदी के मुहाने पर चालडियन्स (Chaldeans) नामक नाविकों की एक प्रसिद्ध जाति रहती थी। जब बेबीलोनिया और एसीरिया के बीच राज्य के लिए झगड़ा हुआ था तब इन नाविकों ने बेबीलोन को सहायता दी थी। एसीरियावालों ने इससे क्रुद्ध होकर उन्हें वहाँ से निकाल भगाया (६२५ ईसा-पूर्व) और उनकी जगह पुनः फिनिशियावालों को बिठाया। उस समय से यही लोग भारत के साथ व्यापार का माध्यम रहे।

ट्राय (Troy) और सालमानसर (Shalemanser) आदि नगरों की खुदाई में भारतवर्ष की अनेक वस्तुयें मिली हैं, जिससे मालूम होता है कि स्थल-मार्ग से भी व्यापार होता था।

एसीरिया के बाद (६०० ईसा-पूर्व) बेबीलोन एशिया का बड़ा नगर हुआ। वहाँ भारत, मिश्र, फिनिशिया, पैलेस्टाइन आदि देशों के व्यापारी इकट्ठे होते थे।

(५३८ ईसा-पूर्व) फ़ारस के सम्राट् साइरस महान् (Cyrus the Great) ने बेबीलोन नगर पर अधिकार कर लिया। २० वर्ष बाद उसका पुत्र दारा (Darius) ईरान फ़तह करते हुए पञ्जाब पहुँचा। परन्तु यहाँ अर्द्ध-सफलीभूत हो कर शीघ्र ही लौट गया। सिकन्दर के आक्रमण के समय पञ्जाब में फारसवालों का कोई चिर-चिह्न नहीं था। इसके उपरान्त मक़दूनिया (Macedonia) के सिकन्दर का आक्रमण भारत पर हुआ (३२९ ईसा-पूर्व)। पञ्जाब के कुछ हिस्सों पर जयलाभ कर अपने एक यूनानी प्रबन्धकर्त्ता (Eudamos) को वहाँ छोड़ सिकन्दर लौट गया। यह सभी को मालूम है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् किस प्रकार उसका बृहत् साम्राज्य ताश की तरह तितर बितर हो गया। सिकन्दर के मर जाने के तीन ही वर्ष बाद चन्द्रगुप्त मौर्य्य ने यूनानियों को परास्त कर हिन्दूकुश की ओर खदेड़ दिया।

सिकन्दर लौटते समय मध्य एशिया और फ़ारस के बीच बल्ख़ (Bactria) नामक स्थान में अपनी एक सेना छोड़ गया था। अवसर पाकर यूनानी सिपाहा और बल्ख़-देशवासी दोनों मिल कर यूनान से स्वतन्त्र हो गये। इनकी शक्ति धीरे धीरे

बढ़ चली। यहाँ तक कि अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य्य-वंश के शक्तिहीन होने पर इन लोगों ने भारतवर्ष पर भी हमला किया और पञ्जाब के इर्द गिर्द लगभग दो शताब्दियों तक राज्य करते रहे।

सारांश यह है कि अति प्राचीन काल से लेकर ईसा के पूर्व पहली शताब्दी तक भारतवर्ष का सम्बन्ध क्रमशः पैलेस्टाइन, एशिया-माइनर, एसीरिया, बेबीलेनिया, फ़िनिशिया, मिस्र, फ़ारस, मक़दूनिया और बैक्ट्रिया से था।

पहले ही कहा गया है कि सिकन्दर की मृत्यु के बाद ही बैक्ट्रियन-ग्रीक स्वतन्त्र हो गये। यूनान से उनका कोई सम्पर्क न रहा। किसी भी कला में उनकी उन्नति का प्रमाण नहीं मिलता। वे लोग भारत के कुछ हिस्सों पर नाम मात्र के लिए अधिकार जमाये हुए थे। ऐसी दशा में यूनान की सभ्यता से कोसों दूर रह कर किस कला का उन्होंने प्रचार किया, यह स्वयं विचारने की बात है। यह ठीक है कि बौद्ध राजा महेन्द्र (Menander) का राजत्व-काल बहुत प्रसिद्ध था। परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि उसने भारत की शिल्प-विद्या-विषयक उन्नति में ज़ोर दिया। हाल में बेशनगर में जो एक स्तम्भ पाया गया है उसके शिला-लेख से पता चलता है कि कृष्णभक्त हेलोडारेस (Helodorus) ने उसे बनवाया था। परन्तु उस स्तम्भ की रचना किसी भी अंश में बैक्ट्रियन-ग्रीक की भवन-शैली पर नहीं है; अतएव इसमें सन्देह नहीं कि वह देशी कारीगरों द्वारा बनवाया गया था। फिर भी यह स्तूप ईसा के प्रायः १४० वर्ष पूर्व से वर्त्तमान है। उसके पहले के भी अनेक ईंट और पत्थर के स्तूप आदि मिलते हैं।

यूनानियों ने भी यह कला भारतवासियों को नहीं सिखलाई। यह ठाक है कि यूनानी लोग प्राचीन समय में शिल्पकला में दक्ष थे और कोई कोई कहते हैं कि वे लोग मिश्र-देशवासियों और पलासजियनों (Plasgians) से सङ्केत पाकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी बुद्धि और चातुर्य्य के बल से इसमें निपुण हो गये। इसलिए, जिस प्रकार यूनानियों ने इस कला में दक्षता प्राप्त की उसी प्रकार यदि भारतवासी भी आत्मावलम्बन से ही इसमें सिद्धहस्त हुए तो क्या यह बात मानने योग्य नहीं? अन्यान्य कलाओं, विज्ञानों तथा दर्शनादि शास्त्रों में अद्वितीय होनेवाले प्राचीन भारतवासी निज की विद्या-बुद्धि से पक्के मकानों के बनाने में दक्ष हुए तो इसमें खटकने की कौन सी बात है? हाँ, यदि यह सिद्ध हो जाय कि सिकन्दर के आक्रमण के समय और उससे पूर्व्व भारतवर्ष में पक्के मकान नहीं थे और सिकन्दर ने ही अपने शिल्पियों द्वारा इस कला का प्रचार कराया, तब सन्देह की कोई बात नहीं। अशोक के पूर्व्व ईंट और पत्थर के भवन होने का कोई स्मारक चिह्न नहीं मिलता (यद्यपि ऐसी बात नहीं है जैसा कि आगे चल कर मालूम होगा) इस लिए भारतवासी इस कला से अनभिज्ञ थे,—अर्थात् ऐसा कहना कि अमुक वस्तु का चिह्न नहीं पाया जाता तो उस वस्तु की स्थिति ही नहीं—साक्षात् न्याय का गला घोटना है। चिह्न नहीं मिलते तो इसके बहुत से धार्म्मिक, नैतिक, सामाजिक आदि कारण हो सकते हैं। लगातार छः सौ वर्षों तक मुसलमानों के अत्याचारों से मन्दिरों और भवनों की क्या दुर्गति हुई;—किस प्रकार उनकी सामग्रियों से मस्जिदें और मक़बरे बनाये गये,—धार्म्मिक झगड़ों से, भिन्न भिन्न राजघरानों के बीच अमानुषिक लड़ाइयों से, भारतवर्ष की कैसी जीर्ण दशा हुई—इत्यादि बातें इतिहास के विज्ञ पाठकों से छिपी नहीं हैं। इस बात का कई पुस्तकों में उल्लेख है कि अशोक ने ८४,००० स्तूप बनवाये थे। यदि यह अत्युक्ति भी मान ली जाय, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसने बहुत से स्तूप बनवाये थे। फिर भी नाममात्र

के लिए आठ दस के अतिरिक्त और किसी का चिह्न प्राप्य नहीं है। विचारिए कि वे क्या हो गये?

"सिकन्दर लौटते समय भारतवासियों को शिल्प-कला सिखाने के लिए यूनानी शिल्पकार छोड़ गया था," किस प्रमाण पर ऐसी बातें कही जाती हैं—समझ नहीं पड़ता। आक्रमण-कारी के साथ ही साथ विजित देशों की उन्नति के लिए सभी उपादानों का होना ज़रा खटकता है। भारतवर्ष में वह कुछ ही महीने रहा, तिस पर भी उसे एक जगह से दूसरी जगह जाकर आक्रमण करने की रात दिन चिन्ता लगी रहती थी। उसके उत्तराधिकारी लोग भी कुछ ही काल तक पञ्जाब के एक कोने में रहे। पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य्य ने भारत को "यवन-रहित कर दिया।" फिर उन लोगों ने शिल्पकला का प्रचार किया तो कैसे?

स्मिथ साहब ने अपनी पुस्तक (The Early History of India) में ठीक ही लिखा है कि "प्राच्य-निवासियों ने पाश्चात्यों से किसी भी विषय में शिक्षा प्राप्त करने की उत्सुकता नहीं दिखाई। यवनों को वे सदा घृणा की दृष्टि से देखते रहे। भारत की किसी संस्था में यूनानी सभ्यता का प्रभाव नहीं पाया जाता। इसका कोई भी प्रमाण नहीं कि यूनानी शिल्प का भारतवर्ष में प्रचार हुआ। सिकन्दर, डिमिट्रियस आदि यूनानियों का भारत पर आक्रमण केवल जङ्गी चढ़ाई थीं। राज्य स्थापित कर अपनी संस्थाओं का प्रचार करने में वे कदापि सफलीभूत नहीं हुए--इत्यादि।" उनके संसर्ग मात्र से ही इस कला का प्रचार होना विश्वास के योग्य नहीं। भूत का निर्णय वर्त्तमान समय से कीजिए। भारतवर्ष का सम्बन्ध अँगरेज़ों से लगभग ३०० वर्षों से है। सर जङ्गबहादुर के राजत्व में, अशोक के भारतवर्ष से नेपाल कुछ कम नहीं था। फिर भी अँगरेज़ों से सदा संसर्ग रहने पर भी हम वहाँ अँगरेज़ी क़ायदे के कोई भवन नहीं पाते। नेपाल, भूटान और काश्मीर आदि निकटवर्त्ती प्रदेशों की बात जाने दीजिए। इस ३०० वर्षों के लगातार सम्पर्क से, इस सुगम काल में भी भारतवासियों ने ही सैक्सन ढङ्ग का कौन सा भवन बनवाया? फिर, आठ वर्ष के नाममात्र के संसर्ग से ही यूनानियों ने भारतवासियों को शिल्प-कला कैसे सिखलाई?

मान भी लिया जाय कि अशोक ने यूनान से कुछ चतुर शिल्पकार मँगवाये थे। ऐसी हालत में यदि देशी लोग इस कला से पूर्ण अनभिज्ञ थे तो फिर स्तूप आदि यूनानी ढङ्ग के क्यों न बने? प्राप्त स्तूपों में न डोरिक (Doric), न आयोनिक (Ionic) और न कारिन्थियन (Corinthian) शैली का आभास पाया जाता है। फिर भी अशोक ने ८४,००० स्तूप बनवाये थे। आश्चर्य्य है कि दो चार या दस-बीस यूनानी शिल्पकार कुछ वर्षों में ही इतने बृहत् कार्य्य का कैसे सम्पादन कर सके।

इस लिए लोगों का यह अनुमान कि यूनानियों ने भारत में शिल्प-कला का प्रचार किया अथवा इसकी उन्नति में किसी प्रकार की सहायता ही पहुँचाई, बिल्कुल बे-सर-पाँव की बात है।

क्यूनाक्सा (Cunaxa) की लड़ाई में (४०१ ईसा-पूर्व) काइरस के पराजित होने पर बृहत् फ़ारस-साम्राज्य टूट गया। सब देश स्वाधीन हो गये। पञ्जाब और फ़ारस के बीच का सौ वर्ष का सम्बन्ध टूट गया। अतएव फ़ारस की सभ्यता का कोई भी प्रभाव साधारणतः भारतवर्ष पर नहीं पड़ा। बहुत से इतिहासज्ञ कहते हैं कि तक्षशिला में उन लोगों ने खरोष्ठी लिपि का प्रचार किया। उनकी राय यह भी है कि उनके संसर्ग से पञ्जाब के कुछ हिस्सों के निवासियों के आचार-व्यवहार में कुछ विभिन्नता आगई। परन्तु इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं कि शिल्प-कला-विषयक उन्नति में उन लोगों ने कुछ भी सहायता की। बौद्ध शिल्पकारों के बनाये स्तूपों में,

जो चन्द्रगुप्त से भी पूर्व्व समय से स्थित हैं, फ़ारस की कोई शैली नज़र नहीं आती।

मिस्र और बेबीलोन के निवासियों से व्यापार-विषयक संसर्ग ऊपर दिखाया गया है। परन्तु व्यापारियों के परस्पर आकस्मिक संसर्ग, किसी देश की उन्नति-विशेष में बहुत कम सहायक होते हैं। यहूदी और फ़िनीसियावालों से भारत ने कुछ नहीं सीखा। लोग कहते हैं कि भारतवर्ष को बेबीलोन से माप और सिक्के आदि विषयों में कुछ सहायता मिली है। परन्तु शिल्प-कला में उसने कदापि योग नहीं दिया। मिस्टर जस्टिन (Mr. Justin) कहते हैं कि "एसीरियावालों ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी"। उनका यह कथन कदापि प्रामाणिक एवं विश्वसनीय नहीं। यह निरी कल्पना और व्यर्थ की बनावट है। फिर भी, "एसीरिया, विशेषतः बेबीलोनिया की सभ्यता केवल साहित्य में थी। यूनान और मिस्र की तरह वहाँ शिल्प का कभी प्रचार नहीं हुआ……इत्यादि" (Encyclopædia Brit., XI Edn., Babylonian Art.) अशोक के स्तूप, विहार और खानगिरि की खोह और साँची के स्तूप के साँचे को देखने पर कोई उन्हें मिस्र देश का नमूना नहीं बता सकता। पलस्तर, द्वार दीवारगीर, कँगूरे, ढाँचे आदि सभी भिन्न और देशी ढङ्ग के हैं।

ऊपर कही गई बातों से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि पूर्वोक्त देशों में से किसी ने भारतवर्ष की शिल्प-कला में उत्तेजना नहीं दी। बल्कि भारत ने स्वतः इसमें क्रम क्रम से निपुणता प्राप्त की। रूस के एक विद्वान् (Sheftelovich) ने सिद्ध किया है कि "कास जाति (Kassites) ने १७४६ ईसा-पूर्व में बेबीलोन पर अधिकार जमा कर ६०० वर्षों तक राज्य किया। इस जाति के लोग आर्य्य थे, वैदिक-संस्कृत इनकी भाषा थी और सूर्य्य इनके प्रधान पूज्य देव थे।" यदि यह सिद्धान्त विश्वगृहीत हो तो इसमें सन्देह नहीं कि बेबीलोन भारतीय आर्य्यों का मध्यदेश था और उन लोगों के कुछ वंशजों को भारत-प्रवेश के पहले ही से आध्यात्मिक विद्याओं के साथ ही साथ शिल्पकला और अन्यान्य नागरिक कलाओं में दख़ल था।

अभाग्यवश अभी तक भवनों के बहुत से स्मारक चिह्न नहीं मिले। तोभी उनका विल्कुल अभाव नहीं है। "विम्बसार की राजधानी राजगृह की प्रस्तर-दीवार, जरासन्ध की बैठक, वैगार और शोणभद्र की खोहें ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व्व से स्थित हैं"। (Mr. Cunningham) "राजगृह के निकट ग्रीवराज की दीवार ईसा के पूर्व छठी शताब्दी से भी और पहले प्रसिद्ध शिल्पकार महागोविन्द ने बनाई थी" (Havell's Ancient and Medieval Architecture of India, Page 27) यह दीवार १३ फुट चौड़ी अभी तक वर्तमान है। पाटलिपुत्र की जो हाल में खुदाई हुई है उस से यह बात और भी पक्की हो चली है कि भारतीय इस कला से अनभिज्ञ नहीं थे। भवन, चन्द्रगुप्त के समय से वर्तमान है। बहुत से इतिहासज्ञ उसमें फ़ारस की शैली का आभास पाते हैं। परन्तु हमारी समझ में जो लोग बनावट के ढङ्ग से ऐसे सिद्धान्त निकालते हैं वे केवल भ्रम में पड़े हैं। मान भी लिया जाय कि कुछ आभास है, पर इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि फ़ारसवालों ने भारत में इस कला का प्रचार किया। इस विषय में मिस्टर हेवल (Mr. E. B. Havell) का कथन ध्यान देने योग्य है—

> "When the seat of Imperial power was transferred from Persia to Eastern India in the 4th century B.C., it might have been as natural an inclination for Chandra Gupta to supplement local architectural talent at Patliputra by bringing experts from Persepolis……… ..for Western Asia was the great culture-centre of the Indo-Aryan race. But it is a great mistake of Anglo-Indian writers to assume that Indian

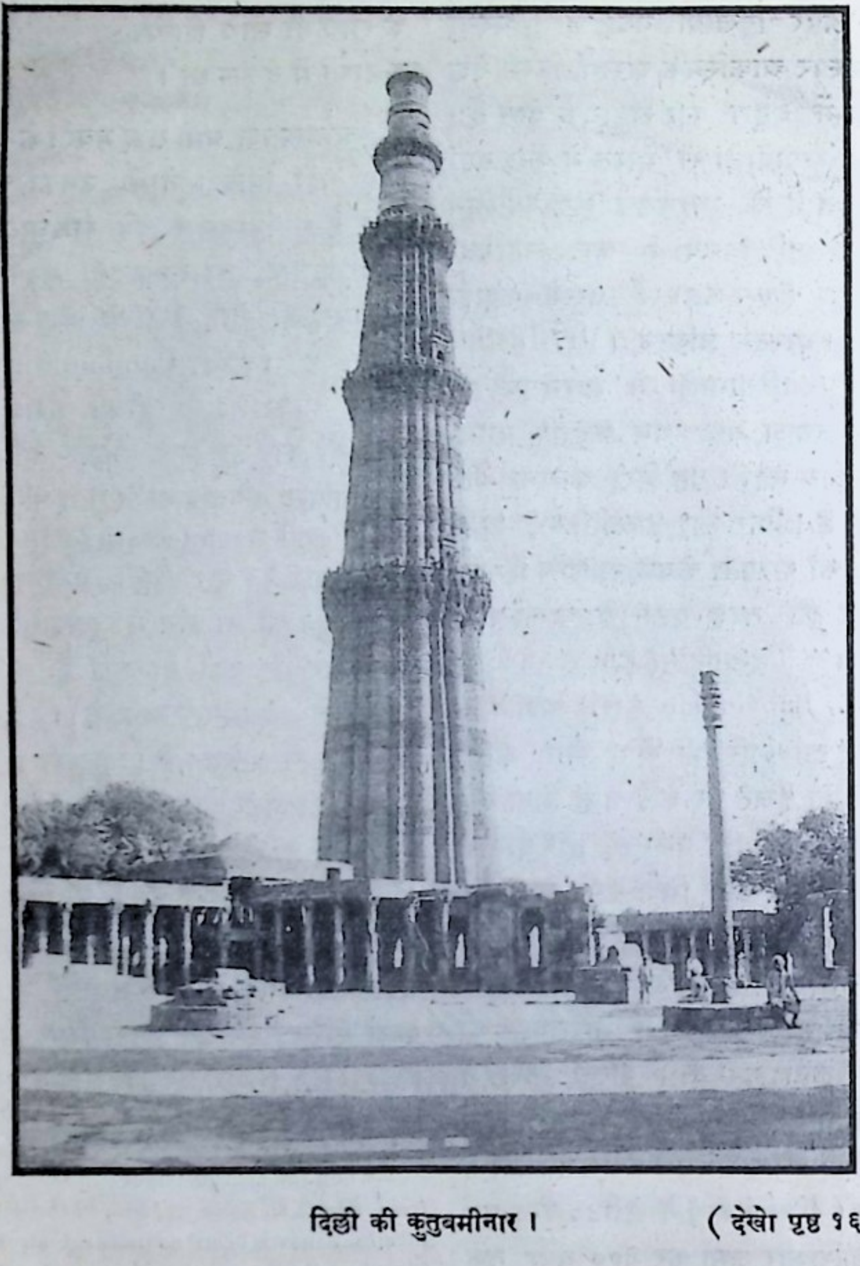

दिल्ली की कुतुबमीनार। (देखो पृष्ठ १६८)

buildings under Maurya Dynasty, wholly, or even to a large extent are importation of "styles" borrowed from Persepolis. Chandra Gupta and Asoka might set Persepolitan fashion in their palaces.................. but Indo-Aryan culture had already for many centuries planted itself deep in Indian soil, and Indo-Aryan buildings had acquired an Indian character as distinctive as that of the Indo-Aryan Philosophy and religious teachings." (Havell's Ancient and Medieval Architecture of India, pp. 3).

पाणिनि के व्याकरण (Goldstucker के मत से ईसा-पूर्व ९ वीं और ११ वीं सदी के मध्य में और मैक्स-मूलर की राय से ईसा-पूर्व छठी शताब्दी में बना था) में 'ईष्टक' 'स्तम्भ' 'भास्कर' आदि शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। यदि उस समय और उसके पहले पक्के मकान थे नहीं, तो ये शब्द प्रयोग में कैसे लाये गये ? रामायण और महाभारत का रचनाकाल अभी तक पूरी तौर से निर्द्धारित नहीं हुआ है। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि ये ग्रन्थ बुद्ध से बहुत पहले समय के हैं, क्योंकि इनमें बुद्ध का और उनके धर्म्म का नामोनिशान नहीं। इन दो प्राचीन ग्रन्थों में सैकड़ों जगह 'मन्दिर' 'दुमंज़िले मकान' 'बारजा' 'प्रस्तर निर्म्मित सीढ़ी' इत्यादि का वर्णन आया है। वाल्मीकि-रामायण में अयोध्या और उसके राज-महलों आदि का वर्णन और राजा युधिष्ठिर की मयदानव-निर्म्मित सभा लोगों से छिपी नहीं, जिसकी स्फटिक दीवारों ने दुर्य्योधन की आँखों में भी चकाचौंध पैदा कर दिया था। यास्क ने अपने निरुक्त में एक स्थान पर वेद से घर शब्द के २२ पर्य्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया है, जिनमें कई शब्द पक्के भवनों के अस्तित्व की साफ़ गवाही देते हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त ईसा के सहस्रों वर्ष पूर्व निर्म्माण किये हुए ऋग्वेद में भी 'त्रिधातु शरणम्' (तीन मंज़िले मकान) 'शतभुजी' आदि शब्द प्रायः व्यवहृत हुए हैं। उनसे उस समय भी पक्के मकानों का रहना प्रमाणित है। यूनान का प्रसिद्ध इतिहासकार एरियन (Arrian) कहता है कि सिकन्दर ने भारतवर्ष के शहरों के चारों ओर दीवार और द्वार पाये (Rookes Arrian, Vol. II, pp. 51, 53, 77)। ये सब दीवारें ईंटों की बनी हुई थीं (pp. 53, 88,) और स्थान स्थान पर क़िले-बन्दियाँ थीं (pp. 81, 89,)। मेगास्थनीज़ वर्णन करता है—"पाटलिपुत्र चारों ओर आठ एकड़ की खाईं से घिरा है। खाईं ३० हाथ गहरी है; दीवारें ५७० क़िलाबन्दियों तथा ६४ द्वारों से परिवेष्टित हैं (pp. 222) ....समुद्र के किनारों के शहर लकड़ी के बने हैं, क्योंकि वर्षा और नदियों की वार्षिक बाढ़ से ईंटों के मकान वहाँ नहीं ठहर सकते; लेकिन ऊँची जगह के मकान प्रायः ईंट और गारे के बने हैं।"

टाड साहब, जब राजपूताने में भ्रमण कर रहे थे तब, कमलमेर और नाडोर आदि स्थानों में जो प्राचीन मन्दिरों और ईंट की दीवारों के भग्नावशेष उन्हें मिले उनकी सुदृढ़ और सुन्दर बनावट देख कर वे चकित हो गये। उनका अनुमान है कि ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी में जैनियों ने उन्हें बनवाया था। उनकी रचना-शैली तक्षक कारीगरों का नमूना है। ये तक्षक कारीगर ईसा के लगभग ७०० वर्ष पूर्व से भारत में विद्यमान थे; वे भवन-निर्म्माण-कला में बड़े सिद्धहस्त थे। महाभारत में ये नागवंशज के नाम से प्रसिद्ध हैं। Todd's Rajasthan, Vol. I, (pp. 575, 597 etc.)

भ्रान्ति-वश कुछ लोग बनावट के ढङ्ग (Style) के ख़याल से भारतीय शिल्प-कला के भिन्न भिन्न युग निरूपण करते हैं। उनकी राय है कि "जैनियों, बौद्धों और हिन्दुओं के स्तूप, मन्दिर आदि में पूरी पूरी विभिन्नता पाई जाती है। अतएव समयान्तर में इस कला में बहुत कुछ हेर फेर हुआ।" यह बात विश्वसनीय नहीं। जहाँ बौद्धमतानुयायी अधिक थे वहाँ उनके ही विहारादि अधिक बने। जिन प्रान्तों

में जैन और हिन्दू लोग अधिक थे वहाँ उन लोगों के ही धर्म्मानुसार मन्दिरादि का अधिकता से रहना स्वाभाविक है। धर्म्मानुसार क्रमशः भवनों के ढँग भले ही भिन्न हों, परन्तु कारीगरी और भवन बनाने की रीति सर्वत्र एक ही थी। जहाँ अशोक-सदृश शक्तिशाली और धनकुबेर सम्राट् हुए वहाँ बौद्ध-भवनादि क़ीमती और सुदृढ़ बने। पर अन्य अन्य धर्म्मानुयायियों को सीधे सादे ढङ्ग से ही सन्तुष्ट रहना पड़ा। "India has never known any style that can be called Architectural, but one and that is Indo-Aryan" अर्थात् भारतवर्ष में सब भवनों की कारीगरी और ढाँचे एक ही हैं (Havell)। लोगों का यह ख़याल भी भ्रान्तिमूलक है कि "भारहट, साँची और अमरावती आदि के प्राचीन शिल्पों के आकार प्रकार देखने से मालूम पड़ता है कि भारत में अशोक के काल में भी लकड़ी की छतों और छज्जों के अतिरिक्त और दूसरे ढङ्ग के कोई भवन नहीं थे।" पाली-ग्रन्थों के अनेक स्थलों में चौरस छत, बड़े बड़े भवनों के ऊपरी भाग का उल्लेख हुआ है। "गृहस्वामी उन्हें बैठक, आफ़िस और भोजन-स्थान के कार्य्य में लाते थे।" (Prof. Rhys David's Buddhist India, pp. 68, 69)। इस से विश्वास होता है कि जहाँ लकड़ी कम मिलती थी वहाँ ईंट और पत्थर के मकान और छत आजकल की तरह बौद्ध-भारत में भी बनती थीं।

रामराज ने इस विषय पर एक उत्तम लेख लिखा है। उसमें उन्होंने गृह-निर्म्माण-कला-विषयक संस्कृत के आठ प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वे ये हैं:— (१) मानसार, (२) मयमत, (३) काश्यप, (४) व्याघ्रांश, (५) सकलाधिकार, (६) विश्वकर्म्मीय, (७) सारस्वत्यम् और (८) सनत्कुमार। इन ग्रन्थों का समय अभी निश्चित नहीं हुआ। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि ये अति प्राचीन हैं और प्राचीन भवन-स्तूपादि का ढङ्ग लगभग वैसाही है जैसा इन पुस्तकों में वर्णन किया गया है।

अवस्थान्तरता विश्व की प्रायः सभी चीज़ों में होती है; यह प्रकृति का नियम है। यदि अशोक के स्तूपादि में लकड़ी से ईंट के अवस्थान्तर देखनेवालों की बात मान भी ली जाय तो इस से यह कदापि निश्चित नहीं होता कि उससे पूर्व ईंट आदि टिकाऊ वस्तुओं से भवन नहीं बनाये जाते थे। राजनैतिक, धार्म्मिक आदि संस्थाओं की तरह शिल्प-कला में भी कालक्रम से, समान अवस्था में, कुछ समय तक, स्थिर-भाव पाया जा सकता है। सुयोग और सुअवसर मिलने पर सभी उन्नतियों को अग्रेसरत्व मिलता है। इस हिसाब से भी यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में ईंट और पत्थर आदि के भवन थे; परन्तु चन्द्रगुप्त, अशोक आदि शिल्पप्रेमियों की कृपा से उसकी सीधी सादी अवस्था बदल कर उच्च कोटि की सुन्दरता में परिणत हो गई।*

दिनेशप्रसाद वर्म्मा और
नन्दकुमारसिंह

दुःख में—

नाथ ! अब हर लो मेरी पीर।
तन-पिञ्जर में बन्द रट रहा, तुम्हें प्राण ज्यों कीर ॥ १ ॥
दुख-दावानल में पड़ कर है, जलता आज शरीर।
उस पर मनस्ताप नित मुझ को, मार रहा है तीर ॥ २ ॥
तुमने ही सुन विनय बढ़ाया, द्रुपद-सुता का चीर,
दौड़ तुम्हीं थे गये हुआ जब, था गजराज अधीर ॥ ३ ॥
दीन मलीन सरुज-जन के प्रभु ! नयनों का यह नीर,
पोंछेगा हाथों से तुम बिन, कौन भला रघुवीर ? ॥ ४ ॥

मुकुटधर

---

*यह लेख लिखने में राजेन्द्र बाबू की Indo-Aryans नामक पुस्तक से अधिक सहायता ली गई है।

डायरी की कुछ बातें।

भारतीय आँखों को विदेश के प्रत्येक दृश्य में विचित्रता मालूम होती है। प्रति क्षण नये दृश्य, नये विचार। नई पुस्तकों, नये मित्रों के दर्शन और परिचय का मौक़ा मिलता है। विदेश में भ्रमणकाल के जीवन और अनुभव की कथाओं के रोचक होने की सम्भावना है। शायद इसी लिए विदेश जाकर लोग डायरी लिखना आरम्भ करते हैं। अमेरिका आकर इनकी देखादेखी मैंने भी आँखों देखी, कानों सुनी और मन में आई बातों से, समय समय पर, कुछ पन्ने काले किये हैं। मन की और डायरी की सब बातें सब को नहीं बताई जा सकतीं। इस लिए इधर उधर से चुन कर कुछ चित्रों को यहाँ समर्पण करता हूँ।

न्यूयार्क के ब्राडवे (Broadway) और ४२ वीं स्ट्रीट के चौरस्ते का चित्र—

अनगिनत मोटरगाड़ियाँ। बिजली की रङ्ग-बिरङ्गी रोशनी के सहस्रों विज्ञापन और दीपावलि-सुशोभित थियेटर और होटल-श्रेणियाँ। स्त्रियों के कपड़ों की तीव्र सुगन्ध के साथ गेसोलिन, (Gasoline) धुवें और होटलों की गरम हवा की मिश्रित गन्ध। मोटरगाड़ी, ट्रामगाड़ी और घोड़ागाड़ी के घोर नाद के साथ सहस्रों मनुष्यों के सहस्रों भाषाओं के शब्दों के साथ समाचार-पत्र-वालों के विशेष समाचार के चीत्कार का मेल। असङ्ख्य गोरी बीबियाँ—क्षीण-तनु नवयौवना, पाउडर-रंजित, रङ्ग-रङ्गीला लिबास पहने, स्थूलकाय, मध्यमा और पेरिस के पिछले हफ़्ते के फ़ैशन के कपड़े पहने धनी वृद्धाओं के दल। लाखों साहब लोग—योरप के प्रत्येक देश का कूड़ा-कर्कट और विलायती हीरा-पन्ना, मोती, लाल अर्थात् सभ्य श्रेणी के लोग; लम्बोदर यहूदी सेठ और उच्च शिक्षित लोग जैसे कवि, गायक, नट, नाट्यकार, ग्रन्थकार, अनुवादक, डाक्टर, पादड़ी इत्यादि; अनेक मतों, आन्दोलनों और फ़िरक़ों के अनुयायी; नाना वर्ण के नाना देश के अनेक लोग—जिनके मन की बात यदि जानी जा सके तो ख़ून, प्रेम, चोरी, विवाह-विच्छेदादिक, प्रत्येक रङ्ग के अनेक जासूसी उपन्यासों की रचना की जा सकती है। एक कोने में मद्य की दुकान, दूसरे में युनाइटेड सिगार कम्पनी की सिगरट की दुकान, तीसरे में थियेटर और चौथे कोने में एक बड़ा होटल। ब्रडवे का यह चौरस्ता मार्कीन देश के युक्त राज्यों का रङ्गमण्डप है।

इसके साथ निम्नलिखित चित्र की तुलना कीजिए—

कलकत्ते के हरीसन रोड के चौरस्ते का चित्र—

कीचड़ फैलाती हुई बैलगाड़ी, घोड़ों की बग्घी और उड़ियों की ठेलागाड़ी। फुटपाथ पर कपड़ों की गाँठों के ढेर, आठ फुट लम्बा बाँस लिये, कंधे पर झोली लटकाये काबुलियों की भीड़। दुकानों पर सिंहासन जमाये बड़ी तोंदवाले मारवाड़ी सेठ। अनगिनत फेरीवाले—ख़ोन्चा-वाले, चूड़ीवाले, गण्डेरीवाले, "मारवाड़ का मेवा" बैर-वाले, कन्धे पर धोतियों का बोझ लिये धोतीवाले। पुजारी, दलाल और सहस्रों प्रकार के भिखमङ्गे। एक कोने में पनवाड़ी और शर्बत की दुकान, दूसरे में पेशावरी फलवाले की, तीसरे में हलवाई की और चौथे में कपड़े की दूकान, जिसके ऊपर के तल्ले में सेठजी अपना परिवार लिये रहते हैं।

सेठजी के विशेषण—धर्म-रक्षिणी सभा के मेम्बर, गुलकन्द से मीठे स्वभावयुत, सेठानीजी के परम आज्ञाकारी सेवक, पान से मुख लाल किये, हीरे की अँगूठी भड़काते हुए, बङ्गाली बाबू की तरह धोती बाँधे हुए, नई चाल के, कलकतिया मारवाड़ी—

२

चीनी मित्र मिस्टर प्याङ्ग का साल भर बाद आज पत्र आया है। बारह मास में आपने कई बड़े उत्तम काम किये हैं। प्रथम—अपना विवाह, द्वितीय—एक नया बङ्क (Bank) स्थापन, तृतीय चीनी भाषा में वाणिज्य पर दो पुस्तकों का अनुवाद। और भी कई बड़े उद्योग के कामों को शीघ्र ही आप हाथ में लेनेवाले हैं।

मिस्टर प्याङ्ग को, वाणिज्य-शिक्षा के लिए, उनके प्रान्त की सरकार ने एक विशेष छात्रवृत्ति देकर अमेरिका भेजा था। आपने विश्वविद्यालय में मेरे साथ दो साल अध्ययन किया है। मैं बहुत से चीनी विद्यार्थियों से मिला हूँ, पर इनके जैसा चतुर, कार्य्यकुशल और बुद्धिमान् मैंने विरला ही देखा है। ऐसे ही नवयुवकों से किसी देश की उन्नति और

उसके उच्च शिखर पर पहुँचने की आशा होती। चीनी सरकार प्रति साल लाखों रुपया ख़र्च कर सैकड़ों विद्यार्थी इँग्लेंड, फ़ान्स, जर्मनी, जापान और अमेरिका उच्च शिक्षा के लिए भेजती है। इसका फल यह हुआ है कि चीन में पिछले दो हज़ार सालों में इतने सुधार नहीं हुए जितने वर्त्तमान दस बीस सालों में हुए हैं।

३

अमेरिका आकर विद्यार्थियों में देशसेवा का उत्साह नये प्रकार का उत्पन्न होता है। आज सायङ्काल श्रीयुत—के साथ मैंने भोजन किया। भविष्य आकाङ्क्षाओं का वर्णन करते हुए आपने कहा—

“भारतवर्ष जाकर प्रत्येक नगर में पुस्तकालय, प्रत्येक ग्राम में विद्यालय और प्रत्येक मन्दिर, गिरजे और मसजिद में पुजारी, पादड़ी और मुल्ला के स्थान में गुरुजी, मास्टर और उस्ताद नियुक्त करने का प्रचार करने की मेरी इच्छा है। प्रजा को प्लेगादि से बचाने के लिए और स्वास्थ्य के नियमों से परिचित कराने के लिए लाखों पुस्तकें बाँटने और हज़ारों व्याख्याताओं की सहायता से ग्राम ग्राम में स्वास्थ्य पर लाखों व्याख्यानों का मैं प्रबन्ध करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा प्रत्येक भारतवासी को देश-भक्ति का यथार्थ अर्थ समझा कर देश के भविष्य मङ्गल के लिए कुछ विशेष काम करने का भार लेने की प्रत्येक से प्रतिज्ञा कराने की है। मेरी इच्छा…… ।”

आध घण्टे तक आपने अपनी इच्छाओं का सूचीपत्र सुनाया। इधर दोनों की तरकारी ठण्ढी हो रही थी। मैंने आशीर्वाद दिया—

मेरी इच्छा है, आपकी सारी इच्छायें फलवती हों और परमात्मा आपका कल्याण करे।”

प्रायः सभी भारतीय विद्यार्थी दुनिया को उलट पुलट कर अपनी “इच्छा” के अनुसार बनाना चाहते हैं। इनकी इच्छायें प्रशंसा के योग्य हैं। इनका उत्साह देख कर मालूम होता है कि भारत के शान्तिमय स्थिर जीवन में शीघ्र ही तूफ़ान आनेवाला है। सुधार की आँधी सैकड़ों वर्षों के अनेक पुराने विचारों को जड़ से उखाड़ सदा के लिए विनाश कर डाले तो आश्चर्य नहीं। इसके बाद एक नया युग आरम्भ होगा, जब प्राचीन भारत में नये जीवन का सञ्चार होगा और नये संस्कृत विचारों की पताका सदा के लिए फहरायगी।

पर कोरी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं—विशेष कर भोजन के समय थोड़ा बहुत मौनव्रत अच्छा है। “इच्छाओं” के व्याख्यान का समय दूसरा है। मेरा सिद्धान्त है—समय आने पर मनसा, वाचा, कर्मणा, तन मन धन से देश की सेवा करना, परन्तु भोजन के समय केवल भोजन। इस समय ध्यान करना चाहिए अन्य वस्तुओं का। यथा—बाग़बाज़ार का रसगुल्ला —मीठा, सुस्वादु, कोमल, पवित्र, मनोहर, श्वेत, रस से सिँचा हुआ, यस्य स्मरणमात्रेण जलमास्ये प्रपूरयेत्। पर अमेरिका में देशी मिठाइयों का स्मरण मात्र ही सम्भव है।

४

आज एक अमेरिकन वेदान्ती से मिलने गया। आपके कमरों में सर्वत्र वेदान्त के—विशेष कर स्वामी विवेकानन्द के—वाक्य सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए स्थान स्थान पर टँगे हुए थे। पढ़ने के कमरे में एक जगह अन्य मन्त्रों के साथ लिखा था—

Ye know in your hearts
Ye have but one creed–
The will to be happy.
Hang your lantern in yon nook,
Drink and laugh at priest and Shah.

यह उपदेश यदि मद्य की दुकान में लिखा होता तो बात दूसरी थी, पर अध्ययनागार में इसकी शोभा कहाँ! तोबा! तोबा! वेदान्त के साथ पञ्चमकार के तान्त्रिक विचारों की खिचड़ी। अमेरिका के लोग जब हिन्दू-धर्म स्वीकार करते हैं तब अधिकतर या तो फ़ैशन या देखा-देखी अपना मत बदलते हैं।

अमेरिकन वेदान्ती महाशय ने बैठक में आकर मेरा सत्कार कर मद्य लाने की आज्ञा दी। मैंने डर कर उत्तर दिया—“मैं ठंढे पानी का भक्त हूँ। यदि मेरे लिए एक ग्लास शुद्ध पानी मँगवावें तो कृपा होगी।” आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। पानी पीना किस सभ्यता की चाल है। बातें आरम्भ हुईं तो मैंने शङ्कराचार्य्य और वामदेव के मतों के प्रभेद, भारतीय सभ्यता की रीति-नीति, और भारतीय परमात्मा से आपका परिचय कराया। पर मुझे अब भी

सन्देह है। मालूम होता है मैंने व्यर्थ ही इतना कष्ट किया।

५

प्रत्येक स्थान में एक विचित्र प्रकार की गन्ध आया करती है। किसी मामूली मुसलमानी पाड़े के पास हो कर निकलिए—प्याज़, लहसन, मैले कपड़े, तमाखू, सड़े हुए मांस और अन्य मुसलमानी चीज़ों की बास का वहाँ निरन्तर निवास पाइएगा। यह केवल म्यूनिसिपैलिटी का दोष नहीं है। हाङ्गकाङ्ग के चीनी लोगों की मैली कुचैली गलियों में जाइए। चीन देश की हवा में सूखी मछली की, चमड़े की, मसालों की और अनेक पदार्थों की बू प्रचलित पाइयेगा। न्यूयार्क के प्लाज़ा (Plaza) होटल की आलीशान बैठक में बैठिए—फ्रान्सीसी रासायनिक एसेन्स की तीव्र सुवास के साथ सिगार की तुर्की तमाखू का और मद्य-मिश्रित गन्ध का राजत्व पाइएगा। सारी बात नाक की कारीगरी, तीक्ष्णता और विचारशक्ति पर निर्भर है।

अमेरिका में रह कर अपना हिन्दूपना सोलह आने रखने की चेष्टा करता हूँ। मेरे कमरे में पवित्र भारतीय धूप यवन देश की अशुद्ध वायु को पवित्र और सुगन्धित करती है। बीच बीच में मन काल्पनिक गुलाब और चमेली के बाग़ की सैर किया करता है। परमात्मा करे तो वह दिन भी आवेगा।

६

कीरा के सिंहली भोजनालय में आज रवीन्द्रनाथ की कविता की आलोचना हो रही थी। एक विद्यार्थी का कथन है कि—"आज कल हमको केवल देशभक्ति की कविताओं की आवश्यकता है। ईश्वर-पूजा और प्रेमरसपूर्ण कविताओं का अब समय नहीं है। कवि की कविता का गुण अपने समय के समाज की आवश्यकता-पूर्त्ति में ही है।" ठाकुर-भक्त विद्यार्थी ने उत्तर दिया—"रवि बाबू ने देशभक्ति की कवितायें भी लिखी हैं, पर उनका अँगरेज़ी-अनुवाद नहीं हुआ। इस लिए सब को यह मालूम नहीं है। दूसरे, कवि को सङ्कीर्ण सीमा में आबद्ध करने से कवि की कविता का पूर्ण विकाश नहीं होता।"

पिछले साल जब कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर दिग्विजय करने अमेरिका आये थे, तब यद्यपि आपका यथोचित सम्मान इस देश में हुआ, परन्तु यहाँ की अतिथि-पूजा से आप अधिक प्रसन्न नहीं हुए। इसके दो कारण हैं। प्रथम—अमेरिका की सरकार ने ग़रीब भारत-वासियों का अमेरिका में आना बन्द कर दिया है। नये क़ानून के अनुसार केवल धनी भारतवासी यहाँ आ सकते हैं। स्वावलम्बी विद्यार्थी का भी यहाँ आना बन्द है। भारतीय विद्यार्थियों के अनुरोध से रवि बाबू ने इस क़ानून का विरोध अमेरिका के समाचार-पत्रों में किया। दूसरा कारण—अमेरिका के लोगों की लक्ष्मी-पूजा और विलासप्रियता है। यहाँ ख़ुदा का दूसरा नाम डालर है और कार्नेगी, राकफेलर आदि अन्य करोड़पति ख़ुदा के रसूल हैं।

७

बड़े प्रातःकाल उठ कर आज न्यूयार्क के सेन्ट्रपार्क में हवा खाने गया। सूर्य्य अर्द्ध-जागृत अवस्था में रात्रि के तिमिर से आवृत हो धीरे धीरे नयन उन्मीलित कर रहा था। पार्क की शान्तिमय निर्जनता में हवा खाने का आनन्द निराला ही है। विलायती फूलों की नाना प्रकार की मिश्रित, कोमल सुगन्ध बीच बीच में हवा में खेलती हुई आती थी। रङ्ग विरङ्गे फल, फूल, पत्ते और अदृश्य सुवास की चारों ओर भरमार थी। मालूम होता था मानों इन्द्र के विलास-भवन या कवि के स्वप्नराज के सर्व-सुन्दर भाग का चित्र सूर्य्य के क्रमोदय के साथ पल पल में परिवर्तित हो नई नई मधुरता का विकास कर रहा था।

ऐसे मनोहर प्रभात का वर्णन करना कठिन है। कवियों और चित्रकारों की लेखनी सांसारिक पदार्थों की बनी हुई है। पर इस सूर्य्योदय का सौन्दर्य्य स्वर्गीय ज्योति का प्रकाश है। इसके दर्शन से नयन तृप्त होते और आत्मा को शान्ति मिलती है। प्रकृति देवी के इस चित्त-चोर रूप का वर्णन शब्दों में करना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है।

पर सौन्दर्य्य भी अस्थायी है। न्यूयार्क में एक दिन में शरद्, ग्रीष्म, वर्षा, वसन्त सब का एक एक कर शुभागमन होता है। प्रातःकाल के कुछ समय बाद ही दोपहर में काले बादलों की सेना एकत्र होने लगी। ऐसी घोर घटा छाई कि सूर्य्य मुख मोड़ अदृश्य हो गया। पुस्तका-

लय के विशेष अनुसन्धान के कमरे की चार-दीवारें और छत उपन्यास के पत्थर के पुराने बन्दीगृह की तरह लगती थीं। किवाड़ और खिड़कियाँ बन्द रहने पर भी ठंढी हवा बीच बीच में आती थी। आँधी, अँधेरे और सरदी से मेरा वैर है। ऐसे समय न तो पढ़ने को ही जी चाहता है और न और कुछ करने को। ऐसे समय घर की भूली हुई स्मृतियों का पुनरुदय होता है और चटपट भारत लौटने को जी चाहता है।

कहाँ प्रातःकाल की मधुरता और कहाँ दोपहर की विकृत मूर्ति—कुछ घण्टों में इतना फेर। समय का खेल ऐसा ही है।

८

आज जापानी सहपाठी कितामुरा-सान* के यहाँ न्यौता था। आपने बड़े प्रेम से, बड़ी पवित्रता से, जापानी तरीक़े से निरामिष भोजन की रसोई बनाई। जापान का मेवा "दायकुन" तीन रूप में परोसा—उबला हुआ, कुटा हुआ और कच्चा। जापानी दायकुन की प्रशंसा करना कठिन है। दायकुन को हिन्दी में मूली कहते हैं। ऐसी सफ़ेद, ऐसी स्वादुहीन, इतनी लम्बी और इतनी सस्ती मूली जापान छोड़ कहीं नहीं होती और होनी भी न चाहिए। आपकी बनाई हुई सोय (Soy) की चटनी और एक प्रकार के समुद्र-शाक की तरकारी स्वादिष्ट थी। बादी चीज़ें निस्सन्देह जापानी लोगों को अच्छी लगती हैं, पर मैं ठहरा भारतवासी।

इनके साथ जापान की अनेक बातें हुईं। अमेरिका आने के पहले मैं जापान में तीन मास रहा था। इस लिए थोड़ी जापानी भाषा और जापान के विषय में थोड़ा बहुत जानता हूँ। मैंने श्रीमान् कितामुरा से कहा कि मैं जब जापान का ध्यान करता हूँ तब जापानियों की जातीय भिन्नता की मधुर विचित्रता के अनेक अपरूप चित्र मेरे मन में अङ्कित होते हैं। यथा—

कारुकार्य्य-मण्डित काष्ठ-मन्दिर में दायबुत्सु (Daibutsu) (बुद्धदेव) की गम्भीर मूर्त्ति और मन्दिर के खिलौनों से भरे छोटे छोटे सुन्दर अनोखे उद्यान।

पूर्णिमा की रात को ज्योतिर्मय स्वच्छ आकाश में फ़्यूजियामा का (Fujiyama) हिमावृत श्वेत आकार। रात्रि की शान्तिमय निःशब्दता में तामसेन (वीणा) और कोतो की मधुर ध्वनि की तरङ्ग।

हिवाची (अँगीठी) लिये ताथानी (चटाई) पर बैठे हास्य-मुख अति नम्र जापानी मित्रों से सदालाप और ओ-चा (चाय) और ओ-यू, गर्मजल-पान।

नव वर्ष की रात टोकियो के गिन्ज़ा-बाज़ार की दुकानों की बहार और रिक्षा-गाड़ी में सैर इत्यादि।

"आप की बात सुन कर मुझे घर याद आता है" जापानी ने कहा—जापानी कविता पर बात छिड़ी, तब आप बोले—

"जापान कवियों का देश है। कपड़ों पर, पङ्खों पर, पर्वतों पर, छत्तों पर, सर्वत्र प्रकृति देवी की पूजा या कवि के आनन्द या मन के अन्य भावों के सूचक कुछ पाद पाइएगा। जापानी कवि और चित्रकार कुछ शब्दों में और कुछ लकीरों में बड़े गम्भीर ज्ञान के विषय को सूत्ररूप चित्रित करने में अपनी विद्या का प्रकृत गुण मानते हैं। इनका गूढ़ मर्म समझना गुणज्ञ का धर्म है। जापानी स्वभाव से ही सौन्दर्योपासक हैं।"

धर्म पर आपने डाक्टर नितोबी (Nitobe) की पुस्तक से एक अंश पढ़ कर सुनाया—

> The soul's quest of God.
>
> Oft have I asked the question, O God, who art Thou? Where art Thou? And each time the answer comes in softest voice, who art thou that askest who I am? What thou art, that I am and what I am, art thou. And where art thou that askest where I am? Where thou art there am I—and where I am, there art thou."

हमारे वेदान्त में एक सूत्र "सोऽहं" से डाक्टर नितोबी का कथन समाप्त कर दिया है।

विलायती सभ्यता के साथ देशी चाल का मेल कठिनता से मिलता है। पुरानी आदतों का बदलना सहज

---

* "महाशय", "श्रीयुत" को जापानी बोली में सान कहते हैं।

नहीं है, पर जब तक अमेरिका में रहना है तब तक अपनी सम्मान-रक्षा के लिए उच्च जातीय साहब बनने के नुसख़े मैंने अपनी डायरी में लिपिबद्ध किये हैं और उनका पालन भी नियमानुसार करता हूँ। यथा—

१—काँटा, छुरी, चम्मच आदि यन्त्रों से भोजन और हाथ मिलाने, परिचय करने, बातचीत करने और निमन्त्रण और नम्रता के विलायती सामाजिक नियमों का बड़ी शुद्धता से पालन करना।

२—सिर में तेल न लगाना। कारण ? साहब लोग इस प्रकार का पाप नहीं करते।

३—टाई बड़ी सावधानी से बाँधना। टाई बाँधने में भी कारीगरी की आवश्यकता है। कभी कभी नये कालर और पुरानी टाई से बड़ी कसरत करनी पड़ती है, पर अब कई साल का अनुभव होने के कारण सदा मेरी ही जीत होती है।

४—पतलूनधारी का सिंहासन कुरसी है; इस पर सीधे होकर बैठना सभ्यता का लक्षण है। पद्मासन और अन्य आसन केवल भारत में ही शोभा पाते हैं।

५—बोली जहाँ तक हो सके अमेरिकन लोगों की तरह बोलना—जिसमें कहने का अभिप्राय लोग सहज ही में समझ जायँ। जैसे हाफ पास्ट (Half Past) को हैफ पैस्ट कहना; कान्ट (Can't) को कैन्ट।

६—प्रति दिन कालर बदलना और जूता साफ़ करवाना। स्नान जहाँ तक हो सके रोज़। प्रति सप्ताह बाल कटवाना और दरज़ी से कोट पतलून उस्तरी कराना।

७— "Please" (कृपया), " Thank you" (धन्यवाद), "May I" (दीजिए, कीजिए, लीजिए) कहना न भूलना। नौकरों को बक़शीश देते समय उनके सेवा-कार्य्य के लिए धन्यवाद देना।

१०

सत्य की सब उपासना करते हैं—कृष्ण, महम्मद, ईसामसीह, आप, मैं सभी। पर किसी नियमित नीति को अङ्गीकार करने के पूर्व उसकी युक्त समालोचना करना, उचित अनुचित सोच लेना, प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। केवल इसी उपाय से प्रकृत उन्नति हो सकती है। स्वाधीन चिन्ता से नये सङ्कल्पों, नये आदर्शों, नये कारणों, नये अर्थों और नई व्याख्याओं की उत्पत्ति होती है। उदाहरण—

१—"सङ्कल्प—मैं मारवाड़ी (और आप जो कुछ हों) पीछे हूँ—भारत-सेवक पहले। मेरा जीवन, मेरे जीवन के सर्व कार्य्य, मेरा तन मन धन—सर्वस्व—भारत-माता के लिए प्रथम है। बाक़ी बचा—यदि कुछ बचा तो—वर्ण, समाज, जाति, उपजाति, प्रान्त इत्यादि की सेवा के लिए है।"

२—"विचार-परिवर्त्तन का मनोविज्ञान बड़ा अद्भुत है। अपने पूर्वपुरुषों, गुरुजी, बड़े बूढ़ों, मित्रों, पुस्तकों इत्यादि से अपने सारे विचार हमने एकत्र किये हैं। यदि मन का भ्रम मिटाना सीख जायँ तो असम्भव सम्भव हो सकता है। अँगरेज़ को मारवाड़ी और जर्मन को शर्मन बनाने के लाखों उपाय हैं। शङ्कराचार्य्य ने एक शास्त्रार्थ-मार्ग से करोड़ों नास्तिक बौद्धों को हिन्दू बना उनका उद्धार किया। स्वामी दयानन्द ने अपनी पेटेन्ट शुद्धि की चाबी से सहस्रों नरक-भागी यवनों के लिए स्वर्ग का दरवाज़ा खोल दिया। सारा रहस्य मानसिक संकल्प का है। गधे को घोड़ा अपने मन में आप मान लें तो आपकी भाषा में गधे का नाम घोड़ा ही है।

३—"भारतीय स्त्रियाँ उच्च शिक्षा के लिए विदेश क्यों नहीं जातीं ? कारण—जल के बाहर मीन का स्थान कहाँ—विलायत में विधर्मी रहते हैं—परदे और घूँघट की ओट में ही लाज रह सकती है—पुष्पलता का बरफ़ के तूफ़ान में और सरदी गरमी में कुम्हलाने का डर है। आप पूछ सकते हैं, लन्दन और न्यूयार्क जङ्गली उजाड़ नहीं हैं। वहाँ अन्य करोड़ों आदमी कैसे रहते हैं ? पर भारतीय महिलायें तो भारतीय ही ठहरीं। इनकी तो बात ही दूसरी है। विलायत में देशी माल भेजने का अभी समय नहीं आया।

४—शब्दार्थ—जन्म—प्रकृति देवी का संसार के सुख-दुःखों के भोग का निमन्त्रण। इच्छा—जिसकी उत्पत्ति माया के अज्ञान से होती है और जिसकी कभी पूर्ति नहीं होती। विचार—जीवन के प्रति क्षण की इच्छाओं की पूर्त्ति का ध्यान; जीवन-स्मृति, दृश्यों और ज्ञान का चित्र। मृत्यु—असार

संसार के माया-पाश से मुक्ति; जीवन की कल्पनाओं का अन्त।

५—सांसारिक सब वस्तुओं का मूल्य रुपया, आना, पाई में बँधा हुआ है। पापों से मुक्ति—स्वर्ग की टिकट—रायबहादुरी—समाज में मान—सब स्वर्ण-मुद्रा के जादू से प्राप्त हो सकते हैं।

६—वेद, उपवेद, शास्त्र, पुराण आदि पढ़ चौदह विद्या निधान होने का समय गया। वर्त्तमान स्कूलों और कालेजों में शिक्षा का परिमाण बँधा हुआ है। अब तो उस प्रकार की केवल उतनी ही विद्या की आवश्यकता है जिससे किसी सरकारी आफ़िस में नौकरी मिल जाय। एन्ट्रेन्स पास को २०), आई० ए० को ३०), बी० ए० को ४०), एम० ए० को ५०)—भाव बँधा हुआ है। घी का दाम बढ़ रहा है, पर विश्वविद्यालय के कारख़ाने की बनी हुई वस्तुओं का बाज़ार मन्दा है। दोष किसका? शिक्षा की मात्रा का, शिक्षकों का, विद्यार्थियों का या अन्य किसी का?

७—नये युग की नई बातें—मन्दिर में ग्रामोफ़ोन के गौहरजान के गीत; साहित्य में चन्द्रकान्ता-सन्तति के सैकड़ों भागों का स्थान; व्यापार में सट्टे का प्रचार; धर्म में आर्य्यसमाज और सनातनधर्म के विरोध के व्याख्यान; शिक्षाप्रचार के लिए प्राचीन संस्थाओं का ऋषिकुल और गुरुकुल—रूपेण पुनर्जन्म; हिन्दू और मुसलिम दो भिन्न विश्वविद्यालय; होम रूल इत्यादि। तिस पर भी लोग कहते हैं, दुनिया में केवल सात ही आश्चर्य्यजनक पदार्थ हैं।

८—ब्रह्मा की सृष्टि का सुधार नये ढङ्ग से करना अमेरिकन विद्वानों ने आरम्भ किया है। वैज्ञानिक उपायों से रचित अमेरिका के गुलाबों में काँटा नहीं होता। यदि गुठलीहीन आम और सुगन्धयुक्त पलाश-पुष्प चाहिए तो लूथर बरबङ्क से प्रार्थना कीजिए।

९—भविष्य विपत्ति से बचने के उपाय—गंगा-स्नान; दान-पुण्य; मूर्त्ति-पूजा; सरकार की निरूपित यात्रा की टिकट भरना; क्विनीन की गोलियाँ लेना; राजभक्त बनना; जीवन-बीमा कराना; महीने में कई बार पुरोहित, वकील और डाक्टर की सलाह लेना—जिसमें नैतिक, सांसारिक और शारीरिक पापों से मुक्ति मिलती रहे।

१०—जब सरकारी आफ़िस के चपरासी, रेलवई के टिकट-कलक्टर, पाँचवें दरजे के मास्टर जी और एन्ट्रेन्स फ़ेल "केरानी म'शाय" भारत के आय-व्यय के लेख की आलोचना करेंगे तब भारत के सौभाग्य-सूर्य्य का उदय होगा।

न्यूयार्क, अमेरिका,
नवम्बर १९१८। } रामकुमार खेमका

विविध विषय।

डाक्टर लेफ़राय।

गत १ जनवरी १९१९ को कलकत्ते के लार्ड बिशप डाक्टर लेफ़राय का देहावसान हो गया। ये पहले लाहौर के बिशप थे। इसके बाद मेट्रोपालिटन के पद पर नियुक्त हुए। कलकत्ते का बिशप ही मेट्रोपालिटन हुआ करता है और उसका पद भारतवर्ष के सब बिशपों में ऊँचा समझा जाता है। डाक्टर लेफ़राय का पद और बिशपों की अपेक्षा कितना ऊँचा था यह ईसाई मत के अनुयायी ही जानें। हमारा सरोकार उनके उन गुणों से है जिनसे वे भारतवासियों के भी प्रेमास्पद हो गये थे। डाक्टर लेफ़राय उन पादरी साहबों में न थे जो येन केन प्रकारेण अन्य-मतावलम्बियों को बपतिसमा देकर ही ईसाई मत की इयत्ता समझते हैं और न उनकी गणना उन सङ्कीर्ण-हृदय धर्म्म-धुरन्धरों में थी जो एक तरफ़ तो गिर्जे में जाकर पुलपिट (वेदी) पर खड़े हो अपने इष्टदेव के वचनों का उच्चारण करके चिल्लाते हैं कि अगर कोई तुम्हारे बायें गाल पर तमाचा मारे तो अपना दाहना गाल भी उसकी ओर फेर दो, और दूसरी तरफ़ उनके हृदय का पता लगाइए तो वहाँ क्षमा का नाम नहीं। एक ओर गला फाड़ फाड़ कर कहते हैं, Love thy neighbour as thyself, अपने पड़ोसी से इतना प्रेम करो जितना अपने आप से करते हो, "आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति", दूसरी ओर हिन्दुस्तानियों के प्रति उनका व्यवहार देखिए तो किसी बिगड़े हुए गोरे से कम नहीं। डाक्टर लेफ़राय एक ऊँचे दर्जे के ईसाई थे। दम्भ (Hypocrisy) इनके पास फटकने न पाता था। निर्भयता और प्रेम से परिपूर्ण थे। लड़ाई के दिनों में जब जर्मनों के अत्याचारों की ख़बरें

आने लगीं और बहुतेरे लोग क्रोध से अपने को न सम्हाल सके और कहने लगे कि जर्मनों के साथ भी वैसा ही व्यवहार होना चाहिए जैसा वे हमारे साथ करते हैं, तब डाक्टर लेफ़राय ने कहा कि चाहे हम लड़ाई हार जायँ, परन्तु हमें धर्म्मयुद्ध ही करना उचित है। एवं उन्हीं दिनों में जब स्वराज्य या Self-determination की बात छिड़ी हुई थी और विल्सन, लायड जार्ज प्रभृति मित्र-दल के नेता-गण यह कह रहे थे कि युद्ध छोटे राष्ट्रों की स्वातन्त्र्य-रक्षा के लिए किया जा रहा है, इस लिए कि सबल जातियाँ निर्बलों को न सतावें, तब डाक्टर लेफ़राय ने एक ऐसा उपदेश दिया जिससे उनकी निर्भीकता और न्याय-प्रियता भली भाँति प्रकट हो गई। उन्होंने अपने उपदेश में अपने सजातियों को सचेत करते हुए कहा कि यदि हम लोग भारतवर्ष को आत्मशासन या स्वराज्य करने के योग्य बनाने का प्रयत्न सच्चे दिल से न करेंगे तो भगवान् हम पर प्रसन्न न होंगे। यह बात बहुतेरे गोरे पत्रों को न जाने क्यों बुरी लगी। उन्होंने चिढ़ कर बड़ी हाय-तोबा मचाई। परन्तु डाक्टर लेफ़राय ऐसे धार्मिक स्पष्टभाषी इन बातों से कब डरने लगे।

डाक्टर लेफ़राय और भारतवर्ष की बिशपमण्डली।

इँगलेण्ड में लार्ड मार्ले से डाक्टर लेफ़राय मिले। उनके मिलने से मार्ले साहब को बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने वाइसराय मिन्टो को डाक्टर लेफ़राय के विषय में लिखा "Why did you not recommend him to be Lt.-Governor of the Punjab? There is an experiment for you. His ideas delighted me." अर्थात् आपने डाक्टर लेफ़राय की सिफ़ारिश पञ्जाब के लेफ़्टनेन्ट गवर्नर बनने के लिए क्यों नहीं की। यह एक अच्छा तजर्बा होता। उनके विचारों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

उदारचित्त और सच्चे लोग सभी मतों में होते हैं और उन्हीं से उन मतों की शोभा है।

२—भारतवर्ष के प्राचीन हस्त-लेख।

पिछली हिन्दू-कान्फ़रन्स में, जो २७ दिसम्बर १९१८ को दिल्ली में हुई थी, आनरेबल राजा सर रामपालसिंह सभापति थे। अपने भाषण में राजा साहब ने भारतवर्ष के उन प्राचीन हस्त-लेखों के विषय में, जिन्हें जर्मन्स यहाँ से लेगये हैं, कहा कि वे उनसे लड़ाई के मावज़े लेते वक्त़ लौटा लिये जायँ। उन लेखों को इसी देश में सुरक्षित रहना चाहिए। राजा साहब के कथन पर जनवरी के माडर्नरिव्यू में किसी "जी" महाशय ने एक नोट प्रकाशित किया है। उनका मत है कि वे हस्त-लेख भी भारतवर्ष में आ जाने चाहिए जो इँगलेण्ड में हैं। कुछ दिन हुए बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी ने लन्दन ब्रिटिश म्यूज़ियम से कुछ भारतवर्ष के प्राचीन हस्त-लेख उधार माँगे? वहाँ से साफ़ जवाब आगया कि पार्ल्यामेन्ट का हुक्म है कि ब्रिटिश-म्यूज़ियम से कोई चीज़ न हटाई जाय। राजा साहब और "जी" महाशय का कहना ठीक ही है, परन्तु हमी लोग यदि अपने रत्नों की खोज, रक्षा और क़द्र न करें तो इसमें दोष किसका?

३—एक्सरेज़ का नया प्रयोग।

एक्सरेज़ वे किरणें हैं जिनसे शरीर के भीतर की भी चीज़ें दिखलाई पड़ती हैं। इन की सहायता से शरीर के भीतर पड़ी हुई गोली का पता लगा लिया जाता है। और भी अनेक बीमारियों की चिकित्सा हो सकती है। अब एक्सरेज़ का एक नया प्रयोग किया गया है। कुछ दिन हुए कलकत्ते के घुड़दौड़ में एक नवयुवक पकड़ा गया। उस ने एक छोटे लड़के के गले से एक सोने की जञ्ज़ीर उतार ली। यह जञ्ज़ीर पतली और क़रीब १२ इञ्च लम्बी थी। लोगों ने इसे जञ्ज़ीर उतारते तो देखा, परन्तु जब उसकी तलाशी ली गई तब जञ्ज़ीर उसके पास न निकली। वह नवयुवक पुलिस इन्सपेक्टर मिस्टर शिलाङ्ग के हवाले कर दिया गया। शिलाङ्ग साहब को शक हुआ कि कहीं नवयुवक महात्मा जञ्ज़ीर का भोग न लगा गये हों। उन्होंने एक्सरेज़ का प्रयोग उस नवयुवक के पेट पर किया। जञ्ज़ीर साफ़ नज़र आगई। फिर क्या था। एक डाक्टर को बुला कर ज़रासा नश्तर दिला नवयुवक की उदर-दरी से जञ्ज़ीर बरामद करली गई। इस चोरी के लिए नवयुवक महात्मा पर मुक़द्दमा चल रहा है।

४—शब्द कितनी उँचाई पर सुने जाते हैं?

जब से बेलून और एरोप्लेन (हवाई जहाज़) चले, लोगों को आकाश से धरातल पर होते हुए शब्दों के सुनने का मौक़ा मिला। केमिल्ग फ़्लमेरियन साहब ने कौन कौन शब्द कितनी ऊँचाई पर सुने जाते हैं इसका पता लगा अपने पत्र में प्रकाशित कर दिया। आप कहते हैं कि मनुष्य की आवाज़ १६०० फुट ऊँचाई पर साफ़ सुनाई दी है। झिल्लिकाओं की २५०० फुट और मेढ़कों की ३००० फुट की ऊँचाई पर। ३२५५ फुट ऊँचाई पर लोग मनुष्यों की आवाज़ और गाड़ियों की घड़घड़ाहट में भेद समझ सकते हैं। ४५५० फुट की ऊँचाई पर ढोल और बैन्डों का शब्द सुनाई पड़ता है। मुर्ग़ों की बांग, गिर्जों की घन्टियां और कभी कभी मनुष्यों का चिल्लाना भी ५००० फुट ऊँचाई पर सुना गया है।

५—एरिस्टाटल और भारतवर्ष का न्याय-शास्त्र।

महामहोपाध्याय डाक्टर एस० सी० विद्या-भूषण ने ग्रेटब्रिटेन और आयरलैण्ड की रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में एक लेख लिखा है। उस लेख में उन्होंने दिखलाया है कि न्याय-सूत्रों के कर्त्ता गौतम के समय से भारतवर्ष के न्याय का किस तरह विकास हुआ है। इनका यह भी मत है कि अरिस्टाटल-कृत न्याय-शास्त्र एलग्ज़ेन्ड्रिया से भारतवर्ष में १७५ वर्ष ईसा के पूर्व से लेकर ६०० ईसवी सन् तक आया। हेतुवाद (Syllogistic reasoning) का प्रयोग पहले पहल अक्षपाद ने किया, जिनका समय ईसवी सन् १५० समझा जाता है। क्राइस्ट की चौथी शताब्दी पहले ग्रीस में एरिस्टाटल ने अपना हेतुवाद (Syllogism) परिपूर्ण कर लिया था।

भारतवर्ष का न्याय और हेतुवाद अक्षपाद से पहले भी था। इसलिए यह कहना तो बहुत कठिन है कि भारतवर्ष का न्याय अरिस्टाटल के न्याय से लिया गया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अरिस्टाटल के न्याय का भारतवर्ष के न्याय पर प्रभाव अवश्य पड़ा। क्राइस्ट से १७५ वर्ष पहले से लगा कर सन् ईसवी ५० तक भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर-प्रान्त के ग्रीक लोग अरिस्टाटल का न्याय पढ़ते रहे।

इस प्रकार का न्याय चरक के ग्रन्थों में पाया जाता है। चरक कनिष्क के वैद्य थे। कनिष्क पूर्वोक्त प्रान्त में रहते थे।

अक्षपाद का स्थान काठियावाड़ में था और दिङ्नाग का कञ्जीवरम् में। उन दिनों में येही स्थान रोम-साम्राज्य और भारतवर्ष के परस्पर व्यापार के मुख्य केन्द्र थे, जहाँ कि एलग्ज़ेन्ड्रिया से व्यापारी आया जाया करते थे। धर्म्मकीर्ति और उद्योत्कर पर सीरिया और पर्शिया के नैयायिकों का प्रभाव पड़ा। जब एलग्ज़ेन्ड्रिया मुसलमानों के अधीन हुआ तब वहाँ के ग्रन्थ नवीं ईसवी में बग़दाद पहुँचे। इसलिए ऐसा अनुमान किया जाता है कि ईसा के ३०० वर्ष पहले से १२०० वर्ष बाद तक अरिस्टाटल के न्याय का पश्चिमी देशों की अपेक्षा पूर्वी देशों में अधिक मान रहा।

६—संयुक्त-प्रदेश में शिक्षा।

संयुक्त-प्रदेश की गवर्नमेण्ट के सामने वहाँ के शिक्षा-विभाग की सालाना रिपोर्ट पेश हुई थी। उस रिपोर्ट पर गवर्नमेण्ट ने गत २८ जनवरी को अपना मत प्रकाशित किया है, जिससे मालूम होता है कि पिछले साल (१९१७-१९१८) में इस प्रान्त में शिक्षा की कुछ उन्नति अवश्य हुई, परन्तु वह उन्नति सन्तोषदायक कदापि नहीं है। जो विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा का पूरा कोर्स समाप्त करचुके हैं उन की संख्या ८१,१८९ से ९६,६३७ हो गई। यह उन्नति दो वर्ष में हुई है क्योंकि सन् १९१५–१६ में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या ८०,६१३ थी। लोअर प्राइमरी कोर्स पढ़नेवाले विद्यार्थियों में फ़ी सदी सिर्फ़ ३ की बढ़ती हुई। शिक्षा के विषय में संयुक्तप्रान्त और बड़े प्रान्तों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ है। मद्रास, बङ्गाल, बम्बई प्रान्तों की अपेक्षा इस प्रान्त में फ़ी सदी आधे लड़के पढ़ते हैं।

सन् १९१३ में भारत-सरकार ने अपना विचार प्रकट किया था कि थोड़े ही दिनों में प्रारम्भिक पाठशालाओं और विद्यार्थियों की सङ्ख्या दुगुनी हो जाय। परन्तु वृद्धि की गति यदि यही रही तो भारत-सरकार के मनोरथ सफल होने में बहुत देर लगेगी। इस लिए संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेण्ट डिस्ट्रिक्टबोर्डों को इस साल और भी आर्थिक सहायता देकर मदर्सों और विद्यार्थियों की सङ्ख्या जल्द बढ़ाना चाहती है। इलाहाबाद के ज़िले में इसका तजर्बा किया गया कि विद्यार्थी आधे दिन पढ़ें और आधे दिन काम करें। परन्तु इसमें अब तक यथेष्ट सफलता नहीं दिखाई पड़ती। गवर्नमेण्ट चाहती है कि कुछ और ज़िलों में भी इसका तजर्बा किया जाय, तभी इस विषय में कोई सिद्धान्त निश्चित रूप से स्थिर किया जा सकता है।

सेकन्डरी स्कूलों (प्रारम्भिक विषयों के आगे शिक्षा देनेवाली पाठशालाओं) की संख्या ६३१ से ६५० हो गई और विद्यार्थियों की ८६,४४६ से ९१,१७७। लड़ाई के कारण इन स्कूलों के लिए इमारतें बहुत कम बन सकीं। यद्यपि ऐसे स्कूलों की स्थापना विशेष रूप से धनी लोगों की उदारता पर होनी चाहिए, तथापि इस वर्ष सरकार इमदादी स्कूलों की सहायता करने में पहले से अधिक उदार होगी। स्कूल-लीविङ्ग सर्टिफ़िकेट की परीक्षा दिनों दिन लोकप्रिय होती जाती है। इस वर्ष ३५०६ विद्यार्थियों ने इस कोर्स में परीक्षा दी और २०९१ ने मेट्रिक में। स्कूल-लीविङ्ग का नतीजा इस वर्ष अच्छा न होने के कारण कुछ लोगों को यह शङ्का हो गई है कि कदाचित् इसका कारण आठवें दर्जे तक हिन्दी या उर्दू के द्वारा शिक्षा दिया जाना हो। यह बात ठीक नहीं। इस प्रकार शिक्षा देते हुए केवल एक ही वर्ष हुआ है। इससे पहले अँगरेज़ी ही के द्वारा शिक्षा दी जाती थी, इस लिए वर्तमान शैली में परिवर्तन होना उचित नहीं।

आर्ट्स कालेजों की संख्या नहीं बढ़ी। परन्तु उनमें पढ़नेवाले विद्यार्थी बढ़ गये हैं। स्कूलों की तरह कालेजों में भी स्थानाभाव की कठिनता है। ऐसा विचार किया जाता है कि यदि इन्टर्मिडियट (एफ़० ए०) क्लासें कुछ बड़े स्कूलों में खोल दी जायँ तो यह कठिनता कुछ दूर हो जायगी। इसी अभिप्राय से झाँसी और फ़ैज़ाबाद में ऐसी क्लासें खोली जायँगी और यूनिवर्सिटी ने भी एफ़० ए० और बी० ए० में दो बार फ़ेल हुए लड़कों को बिना कालेज में हाज़िरी दिये ही परीक्षा देने की इजाज़त देदी है। युद्ध के कारण कालेजों के अध्यापकों में कुछ कमी हो गई थी। अब वह न रहेगी। गवर्नमेन्ट का विचार है कि इमदादी कालेजों के अध्यापकों के वेतन में वृद्धि होनी आवश्यक है। युद्ध के ख़र्चे के कारण इसका सारा बोझ सरकार अपने ऊपर नहीं ले सकती, परन्तु यदि ऐसे कालेजों

के प्रबन्धकगण अपने ऊपर इसका भार लें तो सरकार की ओर से भी सहायता दी जायगी।

ट्रेनिङ्ग-कालेजों और नार्मल-स्कूलों के बढ़ाये जाने की बड़ी ज़रूरत है और इनके बढ़ाने का उद्योग हो रहा है।

वर्नाक्यूलर स्कूलों में २७८६४ अध्यापकों में १२६६५ ट्रेनिङ्ग पास हैं। इमदादी अँगरेज़ी स्कूलों में २४१ ट्रेन्ड अध्यापक हैं और १६८६ अनट्रेन्ड। स्कूल में पढ़नेवाली लड़कियों की सङ्ख्या पहले से कुछ अधिक है पर यह अधिकता बहुत ही न्यून है। पिछले वर्ष फ़ी सदी •३२ पढ़ती थीं। इस वर्ष फ़ी सदी •३३। इस प्रान्त में स्त्री-शिक्षा के प्रचार में जो बाधायें हैं वे सभों को विदित हैं और उनके दोहराने की कोई ज़रूरत नहीं। इस मामले में आर्य्यसमाज अच्छा काम कर रहा है। क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल भी अच्छी उन्नति कर रहा है। लखनऊ में भी एक कन्यापाठशाला स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा है, जिसमें बड़े घरों की लड़कियों को शिक्षा दी जायगी।

७—मुलतानी भाषा और संस्कृत का सान्निध्य।

भारतवर्ष के प्रायः सभी विद्वान् इस बात में सहमत हैं कि भारतवर्ष की आदिम अतएव प्राचीन भाषा संस्कृत थी। श्रीपाणिनिजी को हुए लगभग ४,५०० वर्ष हो चुके हैं। आपकी बनाई हुई अष्टाध्यायी का क्रम इस बात को स्पष्ट प्रकट कर रहा है कि पाणिनि-काल में देश-भाषा संस्कृत थी। उस समय भाषामात्र से तो लोग अभिज्ञ थे ही, किन्तु उस भाषा को नियमित करने के लिए ही वे व्याकरण पढ़ते थे, अन्यथा, उसका पढ़ना कठिनतम नहीं तो कठिनतर अवश्य है। पाणिनि से बहुत पीछे होनेवाले श्रीपतञ्जलि भी—'वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धा लोकाच्च लौकिकाः' लिख कर इस विषय की पुष्टि में हैं कि प्राचीन काल में संस्कृत बोली जाती थी। महाभाष्य में आगे चल कर आप लिखते हैं कि—'शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेषु……हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहति प्राच्यमध्येषु गमिमेव तु आर्य्याः प्रयुञ्जते', अर्थात् काबुल के लोग जाने अर्थ में शव् धातु का प्रयोग करते हैं, सुराष्ट्र देशवाले हम्म धातु का, पूर्व-देशीय लोग रंह धातु का और आर्य्य लोग गम् धातु का प्रयोग करते हैं। इन युक्तियों से यह निश्चय और भी दृढ़ हो जाता है कि भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत थी।

केवल भारतीय विद्वान् ही इसमें सहमत नहीं हैं, बल्कि अनेक पाश्चात्य विद्वान् भी इस सिद्धान्त को स्वीकृत करते हैं। बाप साहब ने तो यहाँ तक स्वीकार कर लिया है कि—

> At one time Sanskrit was the one language spoken all over the World.
>
> Edinburgh Review,
> Vol. XXXIII, P. 43.

अर्थात्—'समय था जब संस्कृत सम्पूर्ण संसार की बोल-चाल की भाषा थी'। वेद ईश्वरीय ज्ञान से उद्धृत है। मुलतान में जो भाषा बोली जाती है उसके बहुत से शब्द संस्कृत से ऐसे मिलते हैं मानों थोड़े ही समय से संस्कृत से भ्रष्ट हुए हों। मैं कई शब्द ऐसे आप के सम्मुख रक्खूँगा जिनसे आपको यह पूरा निश्चय हो जायगा कि जितनी मुलतानी भाषा संस्कृत से मिलती है उतनी हिन्दी भी नहीं मिलती। मैं शब्द भी वही उपस्थित करूँगा जो ठेठ मुलतानी हैं और जिन्हें मुलतानी गँवार तक भी बोलते हैं। यहाँ तक कि मुलतानी मुसलमान भी उन्हें ज्यों का त्यों बोलते हैं। जैसे—

अङ्गवाचक शब्द

मुलतानी	संस्कृत	हिन्दी (उर्दू)
अक्ख	अक्षि	आँख
कन्न	कर्ण	कान
नासां	नासा	नाक
हत्थ	हस्त	हाथ
जंघ	जंघा	जाँघ (टाँग)
मत्था	मस्तक	माथा
गल्ल	गल्ल	गाल
दन्द	दन्त	दाँत

उक्त उदाहरणों से जितना सम्बन्ध संस्कृत से मुलतानी का है, हिन्दी का उससे कहीं कम है। बहुत शब्दों में यह देखा गया है कि हिन्दी बोलनेवालों ने शब्दों को दीर्घ कर दिया है। किन्तु मुलतानियों ने उन्हें ज्यों

का त्यों रक्खा है। अब मैं पाठकों की रोचकता बढ़ाने के लिए कुछ अन्य शब्द भी उपस्थित करता हूँ—

संख्यावाचक शब्द

मुलतानी	संस्कृत	हिन्दी (उर्दू)
त्रय	त्रयः	तीन
चार	चत्वारः	चार
पञ्ज	पञ्च	पाँच
सत्त	सप्त	सात
अट्ठ	अष्ट	आठ
उनवी	ऊनविंशतिः	उन्नीस
लक्ख	लक्ष	लाख

कृदन्त (क्तान्तादि) शब्द

रुद्धा	रुद्धः	रुका हुआ
बद्धा	बद्धः	बाँधा हुआ
दित्ता	दत्तः	दिया हुआ
कीता	कृतः	किया हुआ
गिद्दा	गृहीतः	लिया हुआ
त्रुट्या	त्रुटितः	टूटा हुआ
ज्यानि	ज्यानिः	हानि (नुक़सान)

लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन

मुलतानी	संस्कृत	हिन्दी
सुण	शृणु	सुन
सिंघ	शिंघ	सूंघ
आख	आख्याहि	कह
वञ्ज	व्रज	जाओ
घिन्न	घिण्णस्व	ले
दे	देहि	दो
कर	कुरु	करो

लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन

मुलतानी	संस्कृत	हिन्दी
मने सां	मंस्ये	मानूँगा
खा सां	खादिष्यामि	खाऊँगा
पी सां	पास्यामि	पीऊँगा

छोटे छोटे वाक्य

मुलतानी	संस्कृत	हिन्दी
नदीनाम् संजोग	नदीनां संयोगः	
कि करावां ?	किं करवाणि ?	क्या करूँ ?
कि करेसां ?	किं करिष्ये ?	क्या करूँगा ?

सङ्कीर्ण शब्द

मुलतानी	संस्कृत	हिन्दी
रुत	ऋतुः	रितु (मौसिम)
खट्ट	खट्वा	खाट
पलंग	पल्यङ्कः	पलंग
मंजा	मञ्चः	मचान
वेक	विवेक	० (फ़र्क़)
परनाला	प्रणालः	परनाला
सका	सखा	साथी
भुईं	भूमि	भुइँ (ज़मीन)
धरती	धरित्री	धरती ,,
वेला	वेला	बेर
रत्त	रक्त	रकत
सीर	शिरा	० (नस)
सुञा	शून्यः	सूना
चूंडा	चूड़ा	चोटी
सुगन्ता	सुगन्धि	सुगन्ध

ऐसे अन्य भी अनेक शब्द हैं जो विस्तार-भय से नहीं लिखे गये।

उक्त उदाहरणों से आपको यह निश्चय हो गया होगा कि प्राचीन काल में भारत की भाषा संस्कृत थी, जिसकी छाया-रूप मुलतानी भाषा आज तक विद्यमान है।

चूड़ामणि शास्त्री

पुस्तक-परिचय

१—**चरित्रशिक्षा।** लेखक व प्रकाशक पं० बदरीदत्त शर्मा, हिन्दी-प्रेस, प्रयाग में मुद्रित और वहीं से प्राप्य। काग़ज़ व छपाई साधारण, आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १२०, मूल्य आठ आना।

६—जैनतत्त्वप्रदीप। लेखक न्यायविशारद न्यायतीर्थ प्रवर्त्तक श्रीमंगलविजय; प्रकाशक, अभयचन्द्र गान्धी, आकार मध्यम, काग़ज़ और छपाई साधारण, पृष्ठ-संख्या २०० के लगभग, मूल्य नहीं दिया।

यह पुस्तक संस्कृत-भाषा में है; संस्कृत भी अवच्छेदकावच्छिन्नवाली अर्वाचीन नैयायिकों की है। इस ग्रन्थ में सात अधिकार (अध्याय) हैं, जिन में क्रमशः जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष का प्रतिपादन किया गया है। ये जैन धर्म की ही परिभाषायें हैं। ग्रन्थ के अवसान में ग्रन्थकार ने अपने गुरु-वंश की एक प्रशस्ति दी है और ग्रन्थ में आये हुए शब्दों की एक अनुक्रमणिका भी दी है। ग्रन्थ के आदि में अपने गुरुवर्य, शास्त्र-विशारद, जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि, एम० ए० एस० बी० का मनोहर चित्र भी दिया है। संस्कृतभाषी जैन-धर्मावलम्बियों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है।

चित्र-परिचय।

(१)

उमरख़याम (रङ्गीन)

परशिया में उमरख़याम नामी कवि हो गया है। विलायत में उसकी कविता की बड़ी प्रशंसा है। अँगरेज़ी में उसके अनेक अनुवाद हो गये हैं। विलायत के चित्रकारों ने उसकी कविता पर अनेक चित्र बनाये हैं। कलकत्ते में बङ्गाल के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी कुछ चित्र तैयार किये हैं, जिनका लोगों ने अच्छा आदर किया है। इस चित्र के बनानेवाले कलकत्ते के बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा हैं। उन्होंने इसमें एक विशेष बात रक्खी है। वह यह कि कवि परशिया का रहनेवाला था, जिसका स्टाइल भी परशियन होना ज़रूरी था। वैसा न करने से जैसी सुन्दरता चित्र में होनी चाहिए नहीं हो सकती। उस समय जैसा परशिया में होता था वैसा ही रंग-रूप, कपड़े-लत्ते आदि चित्रकार ने इस चित्र में अङ्कित किये हैं। उमरख़याम के कुछ चित्र चित्रकार ने पहले भी बनाये थे, जिनका विहार में अच्छा आदर है।

(२)

सादे चित्रों का परिचय।

सादे चित्रों में महात्मा गुलाबराव की चर्चा अन्यत्र लेख में हो गई है। डाक्टर लेफ़राय का भी ज़िक्र विविध विषय में कर दिया गया है। जो सज्जन बैठे हुए हैं उनके मध्य में डाक्टर लेफ़राय विराजमान हैं। उनके दाहिनी ओर कोलम्बो और मद्रास के विशप हैं और बाईं ओर बम्बई और नागपुर के। चित्र में जो खड़े हुए हैं उनमें आसाम, डोर्नाकल, ट्रावन्कोर, छोटा नागपुर, रङ्गून, लाहौर और लखनऊ के विशप हैं। बाक़ी सादे चित्रों में एक इटली की राजधानी रोम के एञ्जलो का प्रसिद्ध पुल है। दिल्ली-दर्बार के समय जब महाराज पञ्चम जार्ज यहाँ पधारे थे तब कुछ राजकुमार उनके समीप उपस्थित रहते थे। उन्हीं राजकुमारों का चित्र दिया गया है। शरेबिम नामक फ़रिश्ते कुमारावस्था में प्रदर्शित किये जाते हैं। कुतुबमीनार, पुराने मन्दिर का एक दृश्य और पृथ्वीराज के मन्दिर में लोहे का स्तम्भ दिल्ली के पुराने वैभव के साक्षी हैं।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

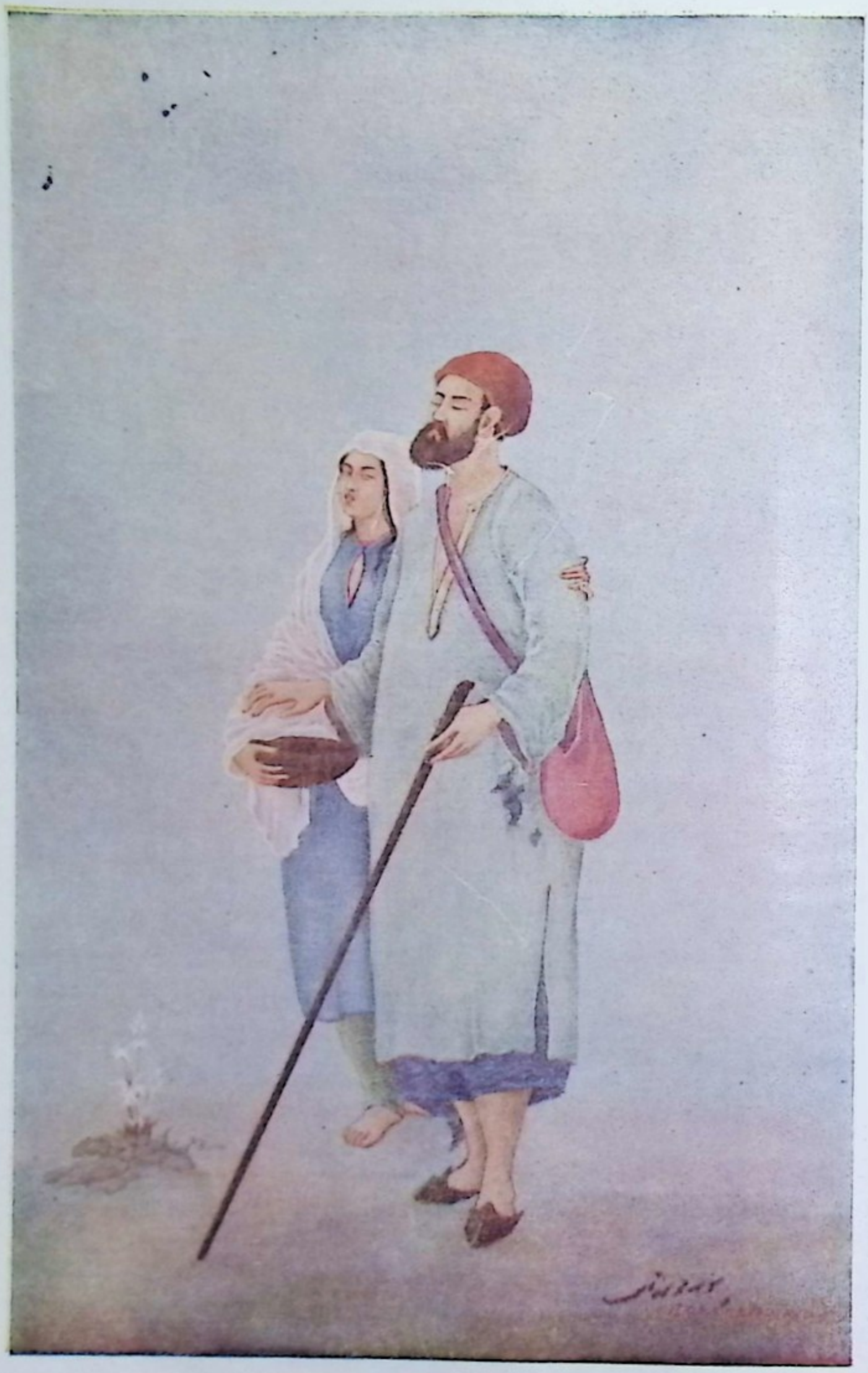

दो अन्धे फ़क़ीर ।

इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

सरस्वती

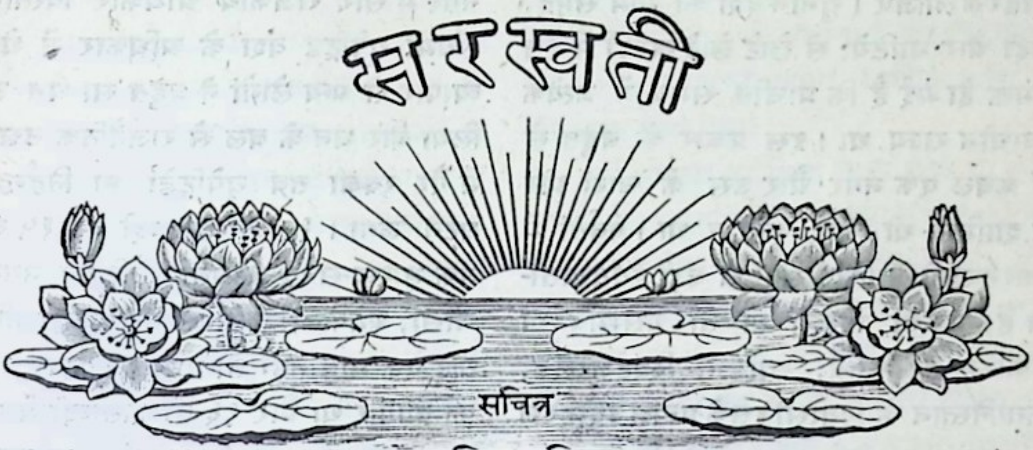

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड १] एप्रिल १९१९—वैशाख १९७६ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २३२

प्रार्थना।

दया अब करो दयामय राम !
अशरण-शरण, करन-सुख-सम्पति, करुणा के शुभ धाम ॥१॥
तुम्हीं हाथ धरते हो जन का, विधि जब होता वाम,
तात मात प्रिय बन्धु नहीं हैं, आते कोई काम ॥ २ ॥
दुख की दारुण-शिखा जलाती, जब उर को अविराम,
करता है तब शान्ति-दान कुछ, नाथ ! तुम्हारा नाम ॥ ३ ॥
कहता जब संसार—'भोग निज करनी का परिणाम',
तब तुम उठा गोद में देते, दुखिया को आराम ॥ ४ ॥
दीन-बन्धु दुख के नाशक हो, हे प्रभु पूरणकाम !
दृष्टि-दान मुझको भी होवे, करता तुम्हें प्रणाम ॥ ५ ॥

मुकुटधर।

राजकीय शास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

मनुष्य राजनैतिक जीव है, पर मनुष्य-समाज के राजनैतिक विकास पर परिस्थितियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। उत्तरी ध्रुव के पास साइबीरिया तथा अमरीका के समीपवर्ती द्वीपों में बसनेवाले एस्किमो आदि जन-समुदाय न तो कोई राजनैतिक उन्नति कर सके हैं और न कर ही सकते हैं। वहाँ इतना जाड़ा पड़ता है और इतनी बर्फ़

पड़ती है कि आबादी बहुत थोड़ी है, काम बहुत थोड़ा किया जा सकता है; राजनैतिक संस्थाओं की उत्पत्ति के लिए वह बहुत ही संकुचित क्षेत्र है।

अफ़्रीका, अरब और मंगोलिया के रेगिस्तानों में भी जो लोग हैं वे भी, राजनैतिक दृष्टि से, बड़ी हीन अवस्था में हैं। परिस्थिति के प्रभाव के, इन से विपरीत, अन्य उदाहरण लीजिए। यूनान देश की भूमि समुद्र, पर्वत, नदी और घाटियों से छोटे छोटे खण्डों में इस तरह विभक्त हो गई है कि प्राचीन समय में प्रत्येक खण्ड स्वाधीन राज्य था। इस प्रकार के बहुत से राज्यों में केवल एक नगर और उस के चारों ओर की भूमि शामिल थी; और कुछ न था। पर्वतों में निवास करनेवाली जातियाँ सदा से बड़ी स्वतन्त्रता-प्रिय रही हैं, उनको जीतना या तो असम्भव या अत्यन्त कठिन है। नार्वे, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, और अफ़ग़ानिस्तान के निवासी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इतिहास या राजनीति पर परिस्थिति के प्रभाव का विषय बड़ा ही मनोरञ्जक है। जो लोग इस का अध्ययन करना चाहें वे मिस्टर जार्ज की पुस्तक "भूगोल और इतिहास का सम्बन्ध" देखें। यहाँ एक बात का ध्यान दिलाना आवश्यक है। गरम जल-वायु का, जातीय चरित्र और राजनैतिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस प्रश्न के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा विवाद हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि "गरम जल-वायु से शरीर और मस्तिष्क दोनों ही का बल घट जाता है और क्रोध, प्रेम इत्यादि विकारों की वृद्धि होती है। प्रतिनिधिक सत्ता के लिए आवश्यक गुण, चित्त की स्थिरता, सहकारिता, मानसिक शान्ति इत्यादि का विकास नहीं होता। इस लिए गरम देशों में प्रतिनिधिसत्ता (Representative Government) कभी प्रचलित नहीं हो सकती"। अन्य विद्वान् इस मत का खण्डन करते हैं और कहते हैं कि अन्य आवश्यक परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने पर गरम जल-वायु प्रतिनिधिसत्ता के प्रचार में बाधा नहीं डाल सकती।

भौगोलिक स्थितिओं और अवस्थाओं का प्रभाव कृषि, उद्योग और व्यापार पर भी बहुत पड़ता है और इनका प्रभाव राजनीति पर बहुत पड़ता है। ईसा के पूर्व सातवीं आठवीं शताब्दी में एथेन्स नगर में सारे राजकीय अधिकार विस्तीर्ण भूमि के स्वामी यूपेट्रिड वंश के अधिकार में थे। पर जब व्यापार से अन्य लोगों ने बहुत सा धन उपार्जन कर लिया और धन के बल से राजनैतिक उन्नति के क्षेत्र में पैर रक्खा तब यूपेट्रिडों का निर्द्वन्द्व अधिकार घटने लगा। १२ वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक भूमध्य-समुद्र-तटवर्ती इटैलियन नगर जिनोआ, चीसा, अमेफली, फ्लोरेंस और वेनिस की उन्नति का यदि एक मात्र नहीं तो प्रधान कारण भूमध्यसागर का व्यापार था और १६ वीं शताब्दी में उन के ह्रास का कारण यह था कि यूरोपीय व्यापार का केन्द्र उनके सागर से उठ कर अटलांटिक सागर में पहुँच गया था। तब अटलांटिक-तटवर्ती देश प्रतेगाल, स्पेन, फ़्रांस, इँग्लिस्तान, बेल्जियम और हालेंड की उन्नति हुई। इस व्यापार ने उन के जीवन के अन्य विभागों के समान राजनीति में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। १२ वीं शताब्दी तक इँग्लिस्तान में "ज़मीन्दार" (Feudal Barons) और पादरी लोग ही राजा की सभा में स्थान पाते थे और उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। १३ वीं शताब्दी में व्यापार की वृद्धि से नगरों की वृद्धि हुई; धनी, कुशल, अनुभवी समुदाय की उत्पत्ति हुई; राजा को उन से आर्थिक सहायता लेने की अभिलाषा हुई; उन के प्रतिनिधि भी राजसभा, पार्लियामेण्ट, में बैठने लगे। १७ वीं शताब्दी में इँग्लेंड के राजा और पार्लियामेन्ट में जो संग्राम हुआ उस के अनेक कारणों में एक कारण यह भी था कि व्यापार इत्यादि से उन्नत और बलशाली होकर मध्यकक्षा की जनता राजा को

अर्थात् कार्य-विभाग को अपने अधीन रखना चाहती थी। १८ वीं शताब्दी के अन्त भाग और १९ वीं शताब्दी में आशातीत उद्योग, व्यापार और सम्पत्ति की वृद्धि का परिणाम यह हुआ है कि इँग्लेंड तथा दूसरे देशों में वंशपरम्परागत ज़मीन्दारों—लार्डों और बैरनों का—राजनैतिक अधिकार बहुत कुछ और किसी किसी देश में तो बिलकुल ही नष्ट हो गया और जनता का दौरदौरा हो गया है। इस का परिणाम भी शोचनीय हुआ है। उद्योग-व्यापार के बल से कुछ लोग तो लखपती और करोड़पती हो गये हैं, पर लाखों मज़दूर, जो दिनरात पसीना बहाते हैं, मुश्किल से शरीर-पालन करने योग्य वेतन पाते हैं। स्वभावतः वे अपनी अवस्था से बेतरह असन्तुष्ट हैं और धनपतियों से बेतरह क्रुद्ध हैं। जब से उन में शिक्षा फैली है तब से वे अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए राजनैतिक अधिकार पाने का घोर प्रयत्न कर रहे हैं। इँग्लिस्तान में मज़दूर-दलों (Trade Unions) ने राष्ट्र के राजनैतिक जीवन में अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया है; पार्लियामेण्ट में उन के पक्ष के बहुत से सदस्य हैं। फ़्रांस में साम्यवाद (Socialism) और सिन्डिकेलिज़्म का बड़ा प्रभाव है। साम्यवाद के अनेक भेद हैं—एक पक्ष कहता है कि सारी सम्पत्ति सब लोगों में बराबर बराबर बाँट देनी चाहिए। दूसरा कहता है कि रेल, खानें, कारख़ाने, मिलों आदि सब का काम सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। तीसरा कहता है कि शिक्षा, सुख-समृद्धि, राजनैतिक उन्नति, यशःप्राप्ति और समाज-सेवा के अवसर सब लोगों को एक से मिलने चाहिए इत्यादि। सिन्डिकेलिस्टों का उद्देश है कि हम सुव्यवस्थित हड़तालों के द्वारा धनप्रतियों को, समाज को और सरकार को मजबूर करेंगे कि हमारी प्रार्थनायें स्वीकार की जायँ। १८४८ और १८७१ में मज़दूर-दल के नेताओं ने फ़्रांस का शासन थोड़े दिनों के लिए ज़बरदस्ती अपने हाथ में ले लिया था। जर्मनी में वर्तमान समर के पहले, सम्राट् कैसर का दल और साम्यवादियों (Socialists) का दल अपूर्व चातुर्य से सङ्गठित होकर एक दूसरे के मुक़ाबिले में डटे हुए थे। इस समय योरप के अत्यन्त गम्भीर राजनैतिक प्रश्नों का सम्बन्ध उद्योग-व्यापार की विचित्र परिस्थितियों से उत्पन्न परिणामों से है। इन प्रश्नों की मीमांसा यथास्थान की जायगी। यहाँ हमारा उद्देश केवल यह दिखलाना है कि राजकीय शास्त्र की आलोचना करते समय आर्थिक बातों की ओर भी ध्यान देना होगा।

अभी शिक्षा का ज़िक्र किया गया था। मानसिक उन्नति या अवनति और मानसिक विचारों का प्रभाव जीवन के प्रत्येक विभाग पर पड़ता है। १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में विद्या के पुनरुज्जीवन (Renaissance) ने योरप के धर्म में ही नहीं, किन्तु राजनीति में भी क्रान्ति पैदा कर दी थी। लोग संसार की बहुत कुछ स्वतन्त्र समालोचना करने लगे जिसके सामने प्राचीन प्रणाली के राजनैतिक विचार और प्रबन्ध परिवर्त्तित होने लगे। राजनैतिक दृष्टि से अर्वाचीन योरप की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशालिनी घटना, फ़्रांस की १७८९ की राज्य-क्रान्ति (The French Revolution) है। इसके अनेक कारणों में एक बड़ा कारण १८ वीं शताब्दी का फ़रासीसी साहित्य—वाल्टेयर, रूसो, डिडीरो, टर्गो, कन्डार्से प्रभृति विद्वानों की विचार-परम्परा—थी। जो उनके विचारों से परिचित नहीं हैं वे ही १७८९ ईस्वी से लेकर आज तक के योरोपीय इतिहास को कभी अच्छी तरह समझ ही नहीं सकते। जापान की आश्चर्यजनक राजनैतिक समृद्धि का एक कारण पाश्चात्य शिक्षा है। भारतवर्ष की वर्त्तमान राजनैतिक स्थिति को उत्पन्न करनेवाले कारणों में पाश्चात्य शिक्षा और अन्य द्वारों से आये हुए पाश्चात्य विचारों की गणना अवश्य की जायगी।

सामाजिक संस्थाओं का भी राजनीति से कुछ

कम सम्बन्ध नहीं है। जहाँ सामाजिक भेदभाव बहुत होता है वहाँ के लोग राजनैतिक मामलों में भी अच्छी तरह मिल कर काम नहीं कर सकते। १३ वीं और १४ वीं शताब्दी में इँग्लेंड तथा फ़्रांस् दोनों ही देशों में अंशतः लोक-निर्वाचित व्यवस्थापक सभा की (जिसे इँग्लेंड में पार्लियामेंट और फ़्रांस में एस्टेट्स जनरल कहते थे) स्थापना हुई। इँग्लेंड में ज़मींदार लोग तथा जनता के प्रतिनिधि, सामाजिक भेद कम होने के कारण, मिल कर काम करने लगे। फ़्रांस में बिलकुल विपरीत अवस्था थी। परिणाम यह हुआ कि इँग्लेंड में पार्लियामेंट की खूब उन्नति हुई और फ़्रांस में एस्टेट्स के अधिवेशन ही बन्द हो गये। इसके और भी अनेक, इससे भी अधिक महान्, कारण थे; पर यह भी अवश्य एक कारण था।

शिक्षा और समाज-सङ्गठन के समान धार्मिक विश्वास और धार्मिक संस्थायें भी राजनैतिक घटनाओं के क्रम में बहुत हेर फेर कर देती हैं। प्राचीन पैलेस्टाइन में यहूदियों के पुरोहितही शासक का काम करते थे। प्राचीन रोम में ईसा के पहले पांचवीं और चौथी शताब्दी में पेट्रिशियन और प्लीबियन नाम के दो दलों में जो शस्त्रहीन सङ्ग्राम हुआ था उसमें एक धार्मिक अंश भी था। ईसा की सातवीं आठवीं शताब्दी में फिरङ्गियों को मध्य योरप में एक दृढ़ राज्य स्थापित करने में जो सफलता हुई उसका एक कारण रोम के प्रधान धर्माचार्य पोप की सहायता थी। पोपों और पुरोहितों का विश्वास था कि लौकिक राजाओं को निमन्त्रण करना भी हमारा कर्तव्य है—इसलिए पोपों में और मध्य-योरप के "पवित्र रोमन" कहलानेवाले सम्राटों में घोर सङ्ग्राम हुए और परिणाम-स्वरूप, "पवित्र रोमन-साम्राज्य" का नाम ही नामशेष हो गया। १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में धर्म के कारण योरप में खून की नदियाँ बहीं और सारी राजनैतिक स्थिति पलट गई। ६ वीं, ७ वीं, ८ वीं, और ९ वीं सदी में इँग्लेंड देश अनेक राज्यों में विभक्त था पर सारे इँग्लेंड का धर्मगुरु एक ही था। इससे एकता का भाव दृढ़ हुआ और एक-राज्य (State) तथा एक-राष्ट्र (Nation) के सङ्गठन में बड़ी सहायता मिली। आयरलेंड के उत्तरी प्रान्त अल्स्टर के निवासी प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के हैं और शेष आयरलेंड के निवासी रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के हैं। उनका आपस का विद्वेष इतना बढ़ा हुआ है कि अल्स्टर-वासी बराबर स्वराज्य-आन्दोलन (Home Rule Movement) का विरोध करते आये हैं। सातवीं सदी में पैग़म्बर मुहम्मद ने अपना धर्म प्रचार करके अरब-निवासियों को, जो उस समय बीसों छोटे छोटे समुदायों में विभक्त थे, एक राष्ट्र बना दिया। अरबों के हृदय में धर्म का ऐसा जोश उभड़ा कि उन्होंने मेसोपोटेमिया, एशिया माइनर, फ़ारस, मिस्र और उत्तरी अफ़्रीका को एक शताब्दी में ही अपने अधीन कर लिया।

स्पष्ट है कि भौगोलिक स्थिति, जलवायु, उद्योग, व्यापार, जनता के भिन्न भिन्न वर्गों की आर्थिक व्यवस्था, शिक्षा, समाज-सङ्गठन, धार्मिक विश्वास और धार्मिक सङ्गठन आदि राजनैतिक घटनाओं पर अत्यन्त महान् प्रभाव डालते हैं। यही बातें तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ मिलकर प्रत्येक जनसमुदाय का "जातीय" या "राष्ट्रीय चरित्र" बनाती हैं।

राष्ट्रीय चरित्र का, राजनैतिक उन्नति या अवनति पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस विषय पर इतिहास-कारों और राजनीति-शास्त्रकारों में बड़ा विवाद हुआ है। चालीस पचास वर्ष पूर्व तो अँगरेज़-लेखकों को अपने देश की आश्चर्य-जनक उन्नति का एक मात्र या प्रधान कारण अपना राष्ट्रीय चरित्र (National Character) बतलाने का अभ्यास सा पड़ गया था। बहुत से यूरोपीय लेखक एशियाई जातियों की दुर्दशा के दो ही प्रधान कारण बतलाते थे—

एक तो गरम जल वायु और दूसरा राष्ट्रीय चरित्र के अवगुण। वे समझते थे कि योरोपीय जातियों के चरित्र स्वातन्त्र्यप्रियता, राजनैतिक चातुर्य इत्यादि गुणों के विषय में सदा से ही और स्वभावतः ही उत्कृष्ट रहे हैं और एशियाई जातियों के चरित्र स्वभावतः ही हीन रहे हैं। वैज्ञानिक और ऐतिहासिक खोज ने इस सिद्धान्त को बिलकुल असत्य सिद्ध कर दिया है। लगभग सब विद्वान् अब सहमत हैं कि राष्ट्रीय चरित्र अनेक प्रकार की परिस्थितियों का परिणाम है; परिस्थितियों के बदलने अथवा प्रयत्न करने से वह बदल सकता है और इतिहास साक्षी है कि बदलता रहा है। सर जान सीली* ने अपने शिष्यों को उचित चेतावनी दी थी कि किसी राष्ट्रीय राजनैतिक विशेषता को एकदम राष्ट्रीय चरित्र की विशेषता का परिणाम न मानना चाहिए। प्रत्येक घटना और संस्था के कारणों की निष्पक्ष खोज करनी चाहिए। तथापि यह निर्विवाद है कि राष्ट्रीय चरित्र अवश्य महत्त्व की चीज़ है—यद्यपि वह उतने महत्त्व का नहीं है और उतना स्थिर तथा निश्चित भी नहीं है जितना योरोपियन लोग पहले समझते थे। राजकीय शास्त्र के विद्यार्थी को बड़ी सावधानी से इस पर विचार करना चाहिए कि किसी बात का दोष या गुण, उन्नति या अवनति, उसके ऊपर कहाँ तक आरोपित की जा सकती है।

यहाँ तक यह बतलाया गया कि राजकीय मामलों पर दूसरी बातों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यह भी निर्विवाद है कि राजनैतिक अवस्था दूसरी बातों पर बड़ा प्रभाव डालती है। प्राचीन यूनान के एथेन्स नगर ने साहित्य, चित्रकला और मूर्तिनिर्माण में जो अनुपमेय उन्नति की थी, इस का एक प्रधान कारण उसकी राजनैतिक अवस्था और शासन-प्रणाली थी। १६०९ ई० में हालेंड देश, जो कोई अस्सी नब्बे वर्ष से स्पेन के अधीन था, घोर सङ्ग्राम करके, स्वतन्त्र हो गया। स्वतन्त्रता के जोश और आनन्द में उसने व्यापार, चित्रकला और साहित्य आदि में ऐसी उन्नति की कि वह योरोप का नेता हो गया। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और आज कल बीसवीं शताब्दी में भारत में जो समाज-सुधार के प्रयत्न हुए हैं और देशी भाषाओं के साहित्य की वृद्धि हुई है उनके कुछ प्रधान लक्षण भारत और इँग्लेंड के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए हैं। धन, जन, बल से सुसम्पन्न होने पर भी स्पेन देश उन्नति के मार्ग में अन्य योरोपीय देशों से बहुत पीछे रह गया। इस के दो मुख्य कारण बतलाये जाते हैं—एक तो उसकी धार्मिक असहनशीलता और दूसरी दूषित राज्यप्रणाली। इतिहास से इस प्रकार के सैकड़ों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं; पर इतने ही दृष्टान्त यह सिद्ध करने के लिए काफ़ी हैं कि राजनैतिक परिस्थितियाँ अन्य परिस्थितियों से अभेद्यरूप से मिली हुई हैं। अतएव हमको इन सब की ओर उचित ध्यान देना पड़ेगा।

राजकीय शास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतः राजनैतिक कार्य से है—इस बात से है कि राजनैतिक क्षेत्र में मनुष्य ने क्या किया है और क्या कर रहा है। भूतकालिक और वर्तमान राजनैतिक कार्य के निरीक्षण-परीक्षण के बाद राजकीय शास्त्रवेत्ता यह भविष्यद्वाणी करने का भी साहस कर सकता है कि भविष्य में सम्भवतः मनुष्य क्या करेगा। यह विषय बड़ा ही मनोरञ्जक है; पर इस के बराबर ही मनोरञ्जक विषय यह है कि राजनैतिक क्षेत्र में मनुष्य को किस अवस्था में क्या करना चाहिए। यह विषय राजकाय शास्त्र (Political Science) का नहीं, किन्तु राजकीय तत्त्वज्ञान (Political Philosophy) का है। इस भेद को खब अच्छी तरह समझ लेना

---

* सीली महोदय की "राजकीय शास्त्र की भूमिका (Introduction to Political Science) देखिए।

चाहिए। राजकीय शास्त्र का विषय राजनैतिक तथ्यातथ्य है। राजकीय तत्त्वज्ञान का विषय राजनैतिक आदर्श और कर्त्तव्याकर्तव्य से है। शास्त्र वैज्ञानिक है, तत्त्वज्ञान व्यावहारिक (Practical) है। एक के पूर्ण अध्ययन के लिए दूसरे का अध्ययन परमावश्यक है। यह भी बहुत लाभदायक होगा कि विद्यार्थी दोनों का ही अध्ययन करें, पर दोनों विषय एक दूसरे से भिन्न हैं।

प्लेटो (अफ़लातून) ने अपने 'रिपब्लिक' में और सर टामस मूर ने अपने 'यूटोपिया' में आदर्श राजनैतिक समाज का चित्र खींचने की चेष्टा की है। इटैलियन मेकियावेली ने अपनी पुस्तक प्रिंस (The Prince) में राजाओं को 'नीति' सिखलाने का दावा किया है। इँग्लेंड में हुकर, हौब्स, और लौक ने विचार किया है कि शासन-प्रणाली कैसी होनी चाहिए। १८ वीं शताब्दी के जगद्विख्यात अत्यन्त प्रभावशाली रूसो ने "सामाजिक पट्टा" (The Contract Social) में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि राजनैतिक प्रभुता किसी एक व्यक्ति या वर्ग के हाथ में नहीं, किन्तु जनता के हाथ में होनी चाहिए (The Doctrine of the Sovereignty of the People)। उसके पहले ही मान्टस्क्यू ने ग्रीस, रोम और विशेष कर इँग्लेंड की राजपद्धति की प्रशंसा करते हुए यह सिद्धान्त पुष्ट किया है कि राज्य में शासन करने, क़ानून बनाने और न्याय करनेवाली संस्थायें एक दूसरे से पृथक् होनी चाहिए (The Doctrine of the Separation of Functions), १८ वीं सदी में एडमंड बर्क ने, जो शायद इँग्लेंड का सर्वोत्कृष्ट राजनैतिक तत्त्वज्ञानी हुआ है*, शासकों को उपदेश दिया है कि शासन किस प्रकार करना चाहिए। लार्ड मार्ले ने भी अपने ग्रन्थों में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है। जेम्स मिल, जान स्टुअर्ट-मिल आदि का नाम भी इस सम्बन्ध में लेना चाहिए। इन के विचारों ने राजनैतिक कार्यों पर बड़ा प्रभाव डाला है। इस लिए हम इनका ज़िक्र करेंगे। मुख्यतः हमारा सम्बन्ध इन से नहीं है। पर एक बात है। राजकीय शास्त्र के यथेष्ट अध्ययन से मनुष्य राजनीति में इतना निष्णात, इतना पारदर्शी हो जाता है कि उसे स्वयं राजनैतिक कर्तव्याकर्तव्य पर विचार करना चाहिए। वह इस कार्य के लिए जितना योग्य है उतना और कोई नहीं हो सकता।

बेनीप्रसाद एम० ए०

अरबी-कविता।

इस बात को प्रायः सभी लोग जानते और मानते हैं कि प्रत्येक भाषा में कविता बड़ी मनोरञ्जक होती है। हर एक भाषा में कविता को उच्च पद प्राप्त है। संस्कृत में कविता को जो महत्त्व-पूर्ण पद प्राप्त हो चुका है, वह अकथनीय है; किन्तु अरबी में भी कविता का जितना आदर किया गया है और कविता से जितना काम लिया गया है वह भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं है। कविता ही की बदौलत लोग अरब के इतिहास जानने में समर्थ हुए हैं। यदि प्राचीन अरब में कविता का चलन न होता तो लोग अरब का बहुत कुछ इतिहास जान ही न सकते। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि योरोपियन भाषाओं के छन्दःशास्त्र की रचना अरबी कविता के ही आधार पर है।

अरबी में कविता के जन्म-काल का जो पता चलता है, वह हज़रत मसीह से ४०० वर्ष बाद, अर्थात् हज़रत मुहम्मद के जन्म से लगभग १०० वर्ष पहले, का ठहरता है। अपने जन्म-काल से लेकर हज़रत मुहम्मद के समय-पर्यन्त की कविता सब से उच्च कोटि की कविता थी। आज भी उसी काल की कविता प्रामाणिक रूप में पेश की जाती है। उसका लोहा आज भी बड़े बड़े अरबी के विद्वान् मानते

---

* जान (इस समय लार्ड) मार्ले का लिखा हुआ "बर्क का जीवनचरित", पहला पृष्ठ देखिए।

हैं । प्राचीन कविताओं में किसी अद्भुत चीज़ का वर्णन नहीं है; किन्तु अरब के घोड़ों, ऊँटों और टीलों आदि के विषय में जो कुछ कहा गया है, उसमें भी चित्ताकर्षण की ज़बरदस्त शक्ति है । कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन अरब में कविता का प्रबल संस्कार स्वाभाविक ही था । इसी वजह से अलङ्कृत कविता के द्वारा लोगों को जिधर चाहते थे उधर ही फेर देते थे । यहाँ तक कि यदि युद्धस्थल में पूर्वजों की वीरता और गौरव का वर्णन करते तो सहस्रों दुर्बल आत्माओं में भी अग्नि प्रज्वलित कर देते थे और यदि शोक के विषय में कभी कुछ कहते तो आँखों से अश्रुओं की धारा बन्द न होने देते थे । कविता ही की बदौलत लोग बड़ा सम्मान पाते थे । जिस क़बीले (समुदाय) के कवि होते थे वह भी बड़ा आदरणीय समझा जाता था । कविता ही एक उपाय था जिससे कि किसी की भलाई या बुराई, बिना किसी समाचार-पत्र या नोटिस के, समस्त अरब में गूँज उठती थी ।

अरबी-कविता के विषय में यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि कविता ने अरब-निवासियों पर जादू का सा काम कर दिखाया है । अरब-निवासियों का हाल पहले यह था कि वे एक दूसरे से पृथक् पृथक् रहा करते थे । ज़रा ज़रा सी बात पर हज़ारों की संख्या में मर कट जाते थे । उन्हीं अरब-निवासियों का अब यह हाल हुआ कि कविता सुनने के लिए एक स्थान पर इकट्ठे होने के आदी हो गये । अरब-निवासियों ने वर्ष में कुछ समय ऐसा नियत कर रक्खा था जिसमें वे लड़ाई भिड़ाई बिलकुल बन्द रखते थे । ऐसे समय में कोई भी मनुष्य किसी शत्रु से वैर-विरोध का बदला नहीं ले सकता था । इस शान्ति के समय में हर साल "ओकाज़" नगर में एक बड़ा बाज़ार लगता था ; इस बाज़ार में सहस्रों कोस के व्यापारी बिना किसी खटके के आते थे । बाज़ार में लाखों का लेन देन होता था । अरब में जब कविता का चलन हुआ तब, यहीं पर कवियों ने भी अपनी कविताओं को सुनाना आरम्भ कर दिया । थोड़े ही दिनों बाद ऐसा हुआ कि सब लोग एक बड़े मैदान में बैठ जाते थे ; फिर कोई एक मनुष्य यकायक खड़ा हो जाता था और बिना अपना परिचय दिये ही अपनी कविता सुनाना आरम्भ कर देता था । कविता प्रायः शूरवीरता, पूर्वजों के गौरव, प्रेम, विलाप और तलवार आदि के विषय में होती थी । जिसकी कविता सब से उत्तम होती थी उसकी धूम एक क्षण में समस्त बाज़ार में मच जाती थी । बाद को बाज़ारवालों की बदौलत ही वह समस्त अरब में विख्यात हो जाता था और उसकी कविता भी अरब के कोने कोने में फैल जाती थी ।

बहुत से ऐतिहासिकों का यह भी मत है कि जो कविता सब से उत्तम होती थी वह नाना प्रकार के चित्र-युक्त रेशमी कपड़े या झिल्ली पर सुनहरी रोशनाई से लिखी जाती थी और मक्का में काबा (मन्दिर) की दीवार पर लटका दी जाती थी । इस प्रकार से लटकाई जानेवाली कविता को अरबी में "मुअल्लका" कहते हैं । कविता सुनहरी रोशनाई से लिखी होती थी । इस लिए अरबी में ऐसी कविता को "मुज़ह्हबा" भी कहा गया है । ऐसी कविताओं की संख्या मुसलमानी धर्म्म के जन्म-काल तक केवल सात हो चुकी थी । हज़रत मुहम्मद साहब ने इन सातों कविताओं को काबा की दीवार पर से उतरवा दिया था । ये कवितायें संख्या में सात थीं । इस लिए इनको अरबी में "अस्सबउल मुअल्लक़ात" कहते हैं । इसके अतिरिक्त इनको "अलमुज़ह्हबात" या "अस्सुमूत" भी कहा जाता है ।

पूर्वोक्त सातों कविताओं का अनुवाद अँगरेज़ी, फ़्रेञ्च और जर्मन आदि भाषाओं में हो चुका है । इन कविताओं में अधिकांश शूरता, वीरता, प्रेम, विलाप, तलवार आदि का वर्णन है; किन्तु एक कविता में मनुष्य के जीवन का ऐसा प्रतिबिम्ब खींचा गया है जिससे कि दार्शनिक अथवा नास्तिक भी किसी हालत में इन्कार नहीं कर सकते । यह कविता "तुरफ़ा" नामक कवि की है । यह बद्दू कवि २० वर्ष की आयु में मार डाला गया था । इसने कविता में जो कुछ कहा है उसका भावार्थ यह है—

> "वह मनुष्य जिसने अपने आपको वास्तविक सुख पहुँचाया है यदि वह कल मरेगा तो आनन्द के साथ मरेगा । किन्तु जिसने समस्त सामग्री के होने पर भी दरिद्रता और कंजूसी से काम लिया है वह मृत्यु के समय तृष्णा और दुःख-ग्रसित हो कर मरेगा । मैं बड़े धनिक मक्खी-चूस की क़ब्र को ऐसा ही पाता हूँ

जैसे कि किसी दुष्ट की क़ब्र को देखता हूँ ! दोनों की क़ब्रों पर मिट्टी का ढेर होता है, और दोनों पर चौड़े चकले पत्थर लगे होते हैं। अर्थात् धनी निर्धन अथवा योग्य वा अयोग्य की क़ब्रों में कुछ भेद मालूम नहीं होता। दोनों की गति मरने पर एकसी हो जाती है। मैं देखता हूँ कि जीवन एक कोष है जो प्रत्येक दिन घटता जाता है। जो वस्तु घटती ही रहती है वह अवश्यमेव एक दिन ख़तम हो जायगी, अर्थात् मनुष्य एक दिन ज़रूर ही मर जायगा।"

इसके अतिरिक्त तुरफ़ा ने काल के चक्र की बाबत बहुत अच्छा कहा है और सीधे शब्दों में बतलाया है —

"जो बातें तू नहीं जानता, ज़माना तुझ पर जल्द ही ज़ाहिर कर देगा। जो तेरा नौकर नहीं वह तुझ को ख़बर लाकर सुनावेगा अर्थात् बिना कोशिश किये तुझे बहुत सी बातें स्वयं मालूम हो जायँगी और जिसको तूने नौकर नहीं रक्खा अथवा न जिसके लिए तूने कोई समय नियत कर रक्खा है वह भी तेरे पास ख़बरें लावेगा।"

प्राचीन अरबी-कवियों का दस्तूर है कि उन्होंने ऊँट, शराब, तलवार, घोड़ा, शूरता, वीरता, प्रेम, वियोग आदि के विषय में बहुत कुछ कहा है। अतः अपनी ऊँटनी की तारीफ़ में इसी कवि ने जो कुछ कहा है उससे पाठकों को यह बात भी मालूम हो जायगी कि अरबी-साहित्य में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कार कैसा हुआ करता है। कवि ने कहा है —

"मेरी ऊँटनी बहुत तेज़ चलनेवाली है। उसके जोड़ बहुत मज़बूत हैं। वह अच्छी नसल के ऊँटों का मुक़ाबिला करती है और ऐसा लपकती हुई चलती है जैसा कि मटियाले रङ्ग की शुतुर-मुर्ग़नी तेज़ी से भागती है। वह "कफ़" की हरी भरी घाटी में चरती रही है; और ऐसी ऊँटनियों के सङ्ग में चरती रही है जिनका दूध बच्चा जनने के सात या आठ महीने बीत जाने के कारण सूख गया है। मेरी ऊँटनी घाटी के ऐसे भाग में चरती रही है, जिसमें बारिश का पानी सब से पहले बरसा है और वह ख़ुद भी बहुत हरी भरी है। ऊँटनी ऐसी है कि वह चरने में चरवाहे को भूल नहीं जाती बल्कि बुलाने पर तुरन्त चरवाहे के पास आ जाती है। उसकी पूँछ में बहुत घने बाल हैं.........वह कभी गर्भिणी नहीं हुई। बच्चा जनने से बची है, इस कारण बहुत मज़बूत है, कभी कमज़ोर नहीं होती। उसकी पूँछ ऐसी चौड़ी है मानो किसी बड़े गिद्ध के दो बाज़ू, पूँछ की हड्डी के दोनों किनारों में, दायें बायें, मोची की सुताली से सी दिये गये हैं। वह कभी उस पूँछ को कूल्हों पर मारती है और कभी ऐसे थनों पर मारती है जो पुरानी मशक के समान कुम्हलाये हुए और सूखे हुए हैं। उसकी दोनों जाँघें, जिनमें ख़ूब गोश्त भरा हुआ है, ऐसी हैं, मानों वे एक ऊँचे गच किये हुए महल के दरवाज़े हैं। वह ऐसी सख़्त मज़बूत है जैसे वह पुल बड़ा सख़्त मज़बूत होता है जिसको कि किसी रूम के कारीगर ने बनाया है, इत्यादि"।

प्राचीन अरब के लोग ख़ूब नशीली शराब का पीना और धन दौलत का उदारता के साथ दान देना (सख़ावत करना) बहुत अच्छा समझते थे। इसलिए इस विषय में भी जिस जोश तथा साहस के साथ कहा है अथवा जो कुछ कहा है वह यह है —

"सच मुच मैंने दोपहर के थोड़ी देर बाद ख़ासी चमकती हुई अशरफ़ी देकर शराब पी है। मैंने हरे रङ्ग की धारीदार शीशे की प्याली में शराब पी है। यह प्याली शराब के एक ऐसे मटके के पास रक्खी हुई थी, जो सफ़ेद चमकदार था और जिसके मुँह पर साफ़ी रक्खी थी; ताकि छन कर साफ़ शराब प्याली में निकला करे। जब मैं शराब पीता हूँ, उस समय अपने धन को दान में देता हूँ। शराब पीने से अथवा उसके नशे से मेरी इज़्ज़त को कुछ बट्टा नहीं लगने पाता। नशा उतर जाने के पश्चात् जब मैं होश में आता हूँ उस समय मैं भी अपने धन दान देने में कोई कसर नहीं रखता। मेरा स्वभाव दोनों हालतों में एक सा ही रहता है।"

पूर्वोक्त कथन जिस प्रसिद्ध कवि का है उसका नाम 'अन्तरा है'। किन्तु इसी विषय में 'उमर' नामक धुरन्धर कवि

ने जो कुछ एक शराब पिलानेवाली से कहा था वह यह है—

> "ऐ शराब पिलानेवाली! होशियार हो, और बड़े प्याले से शराब पिला और इतनी शराब पिला कि 'अन्द्र' के तमाम नगर की शराब बाक़ी न रहे। वह शराब ऐसी हो कि जब उसमें पानी मिलाया जाय तब केसरी रङ्ग की हो जाय। वह शराब ऐसी हो कि मनुष्य उसके पीने से बेहोश हो जाय और अपने सब कामों को भूल जाय। वह शराब ऐसी हो कि जब कोई धनी मक्खीचूस भी उसे पिये तो बेहोश होकर अपने धन को बेखटके लुटा दे॥"

इस प्रकार के विषयों पर तो प्राचीन अरब-निवासियों ने बहुत कुछ कहा है; किन्तु किसी किसी स्थान पर अरब-निवासियों ने बड़ी बड़ी विलक्षण बातें कह डाली हैं। "तुरफ़ा" नामक कवि का विचित्र कथन सब से पहले बतलाया जा चुका है। अब "ज़ुहैर" कवि की कविता में से पाठकों को कुछ बतलाना चाहता हूँ। किन्तु इस अवसर पर कवि के कथन को बतलाने से पहले यह कहे बिना नहीं रह सकता कि अरब का वह समय जो कि संसार के इतिहास में "अज्ञानता" का समय कहलाता है ऐसा विस्मयजनक हुआ है कि उस काल की बाज़ बाज़ बातें लोगों को अचम्भे में डाले बिना नहीं रह सकतीं। "ज़ुहैर" कवि ने क्या कहा? कैसा कहा? इसकी परख पाठकों के ज़िम्मे करते हुए कवि का कथन लिखता हूँ—

> "मनुष्य का आधा हिस्सा तो उसकी ज़बान है, दूसरा आधा भाग उसका दिल है। बाक़ी जो कुछ है वह मांस और ख़ून के सिवा कुछ नहीं है।"

यह परिभाषा कवि ने मनुष्य की बतलाई है और एक प्रकार से इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि मनुष्य क्या है?

जानना चाहिए कि अरबी-कविताओं के बहुत से ग्रन्थ हैं; किन्तु अरबी-कविताओं का एक और बड़ा माननीय ग्रन्थ है। उसका नाम है "दीवान हमासा"। अरबी-साहित्य में यह एक उच्च कोटि का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें भिन्न भिन्न विचारों की कविताओं का उल्लेख है। उन सब की बाबत कुछ लिखने के लिए अवसर इस समय प्राप्त नहीं, किन्तु नमूने के तौर पर दीवान में से कुछ लिख देना उचित प्रतीत होता है। वह यह है कि—प्रायः देखा जाता है किसी समुदाय का संख्या में अधिक होना बड़ा गौरव समझा जाता है। इसी विचार को सम्मुख रख कर "साम्वेल" कवि की स्त्री ने अपने पति के समुदाय पर ऐब (दोष) लगाया। "साम्वेल" जिस समुदाय का था वह समुदाय, संख्या के लिहाज़ से, एक छोटा सा समुदाय था। अपनी स्त्री द्वारा लगाये हुए ऐब पर "साम्वेल" ने जो उत्तर दिया है वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है—अस्तु। अपनी स्त्री को सम्बोधन करके साम्वेल ने कहा—

> "तू हम पर संख्या में कम होने का ऐब लगाती है। किन्तु स्मरण रहे कि अच्छे मनुष्य तो संसार में थोड़े ही हुआ करते हैं"।

"दीवान हमासा" की कविताओं से अरब-निवासियों के आचार, विचार तथा व्यवहार पर भी बहुत कुछ रोशनी पड़ जाती है और उनके साहित्य का भी बहुत कुछ पता चल जाता है। इस दीवान की जो कवितायें हैं वे हज़रत-मुहम्मद साहब के पहले अथवा उनके समय की हैं।

हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि कविता की हालत हज़रत-मुहम्मद साहब के बाद वैसी नहीं रही जैसी कि उनके समय में थी, किन्तु हज़रत मुहम्मद साहब के बाद कई सौ वर्ष तक कविता की जो हालत रही उसको कोई भी मनुष्य ख़राब नहीं कह सकता। इस काल में कविता का रङ्ग ढङ्ग कई कारणों से बहुत कुछ अवश्य बदल गया; परन्तु लोगों ने कविता की ओर से मुख नहीं मोड़ लिया था, बल्कि बहुत से लोग कविता करने और सुनने में काफ़ी दिलचस्पी रखते थे।

हज़रत मुहम्मद साहब के पश्चात् मुसलमानों की जो बड़ी बड़ी सल्तनतें क़ायम हुई थीं उनके दरबार में भी कवियों की बड़ी क़दर थी। कवियों को माक़ूल वज़ीफ़ा या इनाम मिला करता था। इस समय में भी बाज़ कवि ऐसे गुज़रे हैं जो प्राचीन कवियों की भाँति यथासमय फ़ौरन नई कविता कह देने की अपूर्व शक्ति रखते थे अथवा ऐसी अलङ्कृत कविता कर सकते थे जैसी अलङ्कृत कविता प्राचीन अरबवालों की होती थी। ऐतिहासिकों का मत है कि "हिमाद" नामक कवि प्राचीन अरब की कविता के पद्यों

में अपने कहे हुए पद्य इस प्रकार मिला देता था कि बड़े बड़े लोगों के लिए अति कठिन होजाता था कि वे कविता के प्राचीन और अर्वाचीन पद्यों को भली भाँति परख सकें। हज़रत मुहम्मद साहब के पश्चात् एक काफ़ी समय तक अरबी-कविता का यथायोग्य मान रहा और आज भी उस काल की कविता का यथायोग्य मान साहित्य-संसार में है। किन्तु अरबी में कविता का मान बहुत दिनों तक बहुत अच्छी तरह न रह सका। आहिस्ता आहिस्ता रङ्ग फीका पड़ गया। जिसका मूल कारण यह मालूम होता है कि इस काल में भिन्न भिन्न विषयों की जो पुस्तकें भिन्न भिन्न भाषाओं से अरबी में अनुवादित होने लगीं अथवा हुईं उनका गद्य में अनुवाद होना आवश्यक था। दूसरे यह कि लोगों की रुचि कुछ कुदरती तौर पर भी गद्य की ओर हो गई थी। आज बीसवीं शताब्दी में अरबी-कविता की जो हालत है और प्राचीन समय में जो हालत थी इन दोनों हालतों में यद्यपि ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ है तथापि यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि अब भी अरबी-संसार में ऐसे योग्य लोग हैं जिनकी बदौलत अरबी-कविता में जीवन पड़ा हुआ है और जिनको अरबी-कविता से सच्चा स्नेह है।

महेशप्रसाद
(मौलवी आलिम)

भट्टनारायण और वेणीसंहार-नाटक।

संस्कृत-साहित्य के नाटकों में भट्टनारायण कृत वेणीसंहार-नाटक भी बहुत प्रसिद्ध है। इस समय भी यह आदर-दृष्टि से देखा जाता है और कई विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों में परिगणित है। यह वीर-रस-प्रधान नाटक है। लेखशैली और संस्कृत भाषा बड़ी ही ओजस्विनी और चटकीली है। इसमें महाभारत के सभापर्व और उद्योगपर्व के आगे की सारी घटनायें संक्षिप्त रूप में आ गई हैं। इसलिए इस नाटक को पढ़ने से महाभारत के उतने अंश की कथा मालूम हो जाती है। बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करने की प्रतिज्ञा जब पाण्डवों ने पूरी कर ली तब दुर्योधन को उन्हें उनका राज्य लौटा देना था। परन्तु अविचारी दुर्योधन ने श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों के अनेक उद्योग करने पर भी न आपस में मेल किया और न पाण्डवों का राज्य ही वापस दिया। बस, इसी प्रसङ्ग को लेकर नाटक का आरम्भ हुआ है।

वेणीसंहार-नाटक में छः अङ्क हैं। इस पर एक, दो प्राचीन टीकायें भी हैं। इसका प्रथम संस्करण सन् १८७० में श्रीकेदारनाथ-तर्करत्न-सम्पादित 'मजुमदार-संस्कृत-सिरीज़' नामक पुस्तकमाला में प्रकाशित हुआ है। वह पुस्तक, इस समय, मेरे पास नहीं है। परन्तु स्मरण है, किसी प्राचीन उत्तम टीका के साथ छपी है। उसके आरम्भ में संस्कृत में एक भूमिका भी है। साम्प्रत जो वेणीसंहार मेरे सामने है, वह स्वर्गीय मिस्टर एल्० आर० वैद्य-सम्पादित पूना से प्रकाशित हुआ है। इसके साथ जगद्धरभट्ट-कृत टिप्पण, आदि में विस्तृत अँगरेज़ी-भूमिका और अन्त में नोट्स भी हैं। जगद्धर की टिप्पणी की लिखित पुस्तक सम्पादक को शुद्ध नहीं मिली। इसलिए कई स्थलों में असंलग्न है और मूल पुस्तक के पाठ में भी गड़-बड़ है। टिप्पणीकार जगद्धर-भट्ट व्याकरण, काव्य, कोष के अच्छे विद्वान् प्रतीत होते हैं। उन्होंने अन्त में अपने वंशजों का जो यथेच्छ वर्णन किया है, उसको पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनके घराने में वेद, तन्त्र, मीमांसा आदि सभी विषयों के पारगामी पण्डित होते आये हैं। उन्होंने अपनी विद्या का वर्णन इस प्रकार किया है—

येनापाठि कठोरगौतममतं वैशेषिकं खण्डनं
येनाश्रावि सकोपकाव्यनिवहं तत्पाणिनीयं मतम्।

छन्दोऽलङ्करणं च शुद्ध भरतं येनाध्यगायि स्थिरं,
तेनानेन जगद्धरेण कविना टीका कृतेयं मुदा ॥'

× × ×

असूत यं रत्नधरो गुणीशो
नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतौ व्यरंसीत्
षष्ठोऽयमङ्को वरटिप्पणेऽत्र ॥

इनके पिता का नाम रत्नधर और माता का दमयन्ती था। ये अपने को अन्त में 'धर्माधिकारी' और भट्ट भी लिखते हैं। अतः दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं। निवास-स्थान 'थुवाम' नगर लिखते हैं, जिसका साम्प्रत में, सम्भव है, कोई दूसरा नाम होगा। या, इस नाम का कोई क़सबा दक्षिण में हो; उसी को प्रतिष्ठा-सूचक 'नगर' उपाधि दे दी हो। इन भट्टजी ने अपना कोई शक संवत् नहीं लिखा। यह रीति इस देश में बहुत काल से प्रचलित ही है। अस्तु। परन्तु टिप्पणी में भोजदेव के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का उल्लेख किया है। इससे भोज से बहुत पीछे, वरन् काश्मीरक महाकवि जगद्धर (१३५० ईसवी) से भी नवीन हैं। इनकी लेख-शैली और दुर्बल प्रमाणों से यह बात जानी जाती है। ऐतिहासिक खोज में इसी प्रकार के प्रमाण प्रायः प्रमाणित हुआ करते हैं।

बात यह है कि नवीन समय और सम्प्रदाय के विद्वानों की लेख-प्रणाली प्राचीनों से प्रायः नहीं मेल खाती। वर्तमान काल के विचारक और समालोचक विद्वानों की यह धारणा है कि प्राचीन लोग दुर्बोध, जटिल और नीरस भाषा का प्रयोग किया करते थे और नवीन, उनसे विशिष्ट विद्वान् होने पर भी, अपनी लेख-रीति और विषय-विवेचन-प्रणाली को सर्वबोध्य करने की चेष्टा किया करते हैं। जो हो, परन्तु किसी भाषा का लेख गम्भीर, भावगम्य किंवा सुबोध करना लेखक के भाषा-ज्ञान पर निर्भर रहता है। जो जितना ही अधिक किसी भाषा का ज्ञान रखता है, वह उस विषय को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से सहज ही समझता है। सम्भव है, दूसरों के लिए कठिन हो जाय। इसलिए, समय का प्रभाव इन विषयों पर पड़ने पर भी, विद्वानों की अभिरुचि का परिवर्तन होने पर भी, किसी विद्वान् की विद्वत्ता का परिचय उसके कठिन किंवा सरल लेख पर अवलम्बित नहीं है; किन्तु विषय-विवेचन-शक्ति पर ही उसको अवलम्बित मानना ठीक मालूम होता है। यह भी देखा गया है कि बहुतों की प्रीति जटिल, कर्णकटु, समास-दीर्घ पदों के प्रयोग में होती है। कई महानुभाव इस रीति-नीति के भी हैं और हो गये हैं जो इसी में प्रसन्नता मानते हैं कि हमारी बातें सहज ही किसी की समझ में न आवें। तदर्थ वे अनेक भाँति के तोड़ मरोड़ किया करते हैं। उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु। इन बातों के निर्णय का प्रसङ्ग नहीं है।

भट्टनारायण।

भट्टनारायण कवि बड़े प्रौढ़ विद्वान् थे। इनके नाटक की रचना में—क्या गद्य क्या पद्य—दोनों भाव पूर्ण हैं। वीर-रस प्रधान होने से गद्य किंवा श्लोकों में ऐसे ओजस्वी शब्दों का प्रयोग किया है जिनको पढ़ते ही मन फड़क उठता है और शरीर में रस का सञ्चार हो जाता है। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित और मालतीमाधव नाटकों में जिस लेखशैली का अनुसरण किया है, उसी रीति के अनुयायी भट्टनारायण भी हैं। बहुधा नाटकों में बातचीत के चुने हुए बामुहाविरे छोटे मोटे वाक्यों का ही अधिक प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस वेणीसंहार में अनेक समासदीर्घ बड़े बड़े वाक्य हैं। संस्कृतज्ञ पाठक देख सकते हैं। भवभूति ने तो प्रसङ्गवश कहीं कहीं बड़े बड़े वाक्यों का प्रयोग किया है। ज्ञात होता है वीररस की अङ्ग-पुष्टि के लिए ही ऐसा ज़ोर भरा है। नारायण-भट्ट उन पाँच ब्राह्मणों में प्रधान हैं जिनको राजा आदिशूर ने यज्ञार्थ कान्यकुब्ज देश से बुलाया

था और जिनको अपने यहाँ बसाया एवं गाँव आदि भेंट में दिया था। कोई 'क्षितीश-वंशावली-चरित' नामक संस्कृत में वङ्गीय राजाओं का इतिहास है। उसमें यह बात लिखी हुई है। एक श्लोक भी प्रसिद्ध है—

> 'कान्यकुब्जात् समानीतान् दूतेन द्विजपञ्चकान्।
> वेदशास्त्रेष्वङ्गतान् सर्वास्त्रे च विशारदान् ॥'

अलबेरुनी के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय कान्यकुब्ज के राजा प्रथम हर्षवर्द्धन थे, जिन का समय ६०७ ईसवी से शुरू होता है। चीन परिव्राजक हुयेनसांग ने भी यही काल अपनी यात्रा-पुस्तक में लिखा है। बाण का 'हर्षचरित' इन्हीं का चरित है। भट्टनारायण का उपनाम 'मृगराज' था। ये शाण्डिल्यवंशीय, पाञ्चरात्र-सम्प्रदायी वैष्णव थे। यह सम्प्रदाय नारद मुनि ने भक्तिमार्गानुयायी चलाया था। यह वङ्गदेश में अब तक प्रचलित है, परन्तु दूसरा रूप धारण कर चुका है। सम्भव है, चैतन्य-सम्प्रदाय हो। वेणीसंहार के आदि में मङ्गलाचरण विष्णु भगवान् का है।

भट्ट-नारायण ने अपना कोई समय नहीं लिखा। आदिशूर का काल प्रोफ़ेसर विलसन आठवीं सदी और डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र १०७२ ईसवी शुद्ध मानते हैं। कोई सातवीं सदी भी मानते हैं। वल्लालसेन का राज्य तेरहवीं सदी के आसन्न स्थिर हुआ है। ये आदिशूर से बाईसवें राजा थे। इतने काल के लिए यदि ३०० वर्ष का अन्तर माना जाय तो आदिशूर का समय नवीं या दसवीं सदी स्थिर होता है।

वेणीसंहार-नाटक काव्य-गुणों से पूर्ण होने से बहुत प्रतिष्ठित माना गया है। उसके परवर्त्ती आलङ्कारिकों ने अपने ग्रन्थों में इसके श्लोक उदाहरणार्थ दिये हैं। इन परवर्त्ती विद्वानों में बहुतों का समय निश्चित हो चुका है। यदि भवभूति के अनुकरण का नाटक माना जाय तो पुरातत्त्वज्ञों ने इनका काल ईसा की सातवीं सदी का अन्त माना है। इनके मालती-माधव-नाटक का संस्करण डाक्टर भाण्डारकर का किया है। उस में यही लिखा है; अतएव अभ्रान्त है। भोजदेव ने अपने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में वेणीसंहार के उदाहरण दिये हैं। भोज १०७० ईसवी में माने गये हैं। काव्यप्रकाश के कर्त्ता मम्मट-भट्ट ने भी बहुत से उदाहरण इस नाटक के दिये हैं। उन का समय ११५०—१२५० ईसवी का मध्य निश्चित है। धनञ्जय के 'दशरूपक' ग्रन्थ में वेणीसंहार का प्रसङ्ग है। यह ग्रन्थ दसवीं सदी के मध्य का है। वामन के अलङ्कार-सूत्रवृत्ति में भी इस नाटक का स्मरण किया गया है। वे आठवीं सदी के मध्य में थे। डाक्टर पीटर्सन साहब ने निज सम्पादित वल्लभदेव की सुभाषितावलि की भूमिका में लिखा है—

> 'The date of the Venisamhar is prior to that of Âṇandvardhan, who quotes several verses from it in his book on ध्वनि .... The verses cited by Aufrecht from the Śarangadharpaddhati, under Narayan Bhaṭṭ, are all, as Aufrecht quotes, in the Venisamhar." See, Introduction, p. 51.

काश्मीरक आनन्दवर्धन, अवन्तिवर्मा के समय में, अर्थात् ८५५—८८४ ईसवी में, वहाँ सभापण्डितों में थे। ये ध्वनि-अलङ्कार के प्रतिष्ठापक हैं। इनका 'ध्वन्यालोक' बहुत आदरणीय ग्रन्थ है। जल्हण-संङ्गृहीत 'सूक्तिमुक्तावली' में, राजशेखर कवि के नाम से, इन के विषय में एक श्लोक है—

> 'ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना।
> आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः ॥'

शार्ङ्गधरपद्धति १३६३ ईसवी का ग्रन्थ है। इससे ज्ञात यह हुआ कि भट्ट-नारायण आनन्दवर्धन के पूर्व और भवभूति के अनन्तर, आठवीं सदी के आरम्भ में, वर्तमान थे।

पाश्चात्य विद्वानों में मेक्समूलर और वेबर के बाद संस्कृत-साहित्य का इतिहास प्रोफ़ेसर मेकडानल साहब ने भी लिखा है। इसकी आज कल बड़े धूम-धाम से चढ़ाई है। आपने भट्ट-नारायण के विषय में लिखा है—

'...... The age is known from its author having been the grantee of a Copper-plate, dated 840 A. D. Though not conspicuous for poetic merits, it has long been a great favourite in India owing to its express partiality for the cult of Krishna' p. 366.

बहुत ठीक है। परन्तु आपने यह कैसे जाना कि साहित्यिक योग्यता से यह नाटक शून्य है ? यदि ऐसा ही होता तो 'काव्यप्रकाश', 'सरस्वतीकण्ठाभरण' आदि आलङ्कारिक ग्रन्थों के कर्त्ता इस नाटक के उदाहरण क्यों देते ? इसी कारण यह नाटक भारतवर्ष में चिरकाल से प्रिय हुआ है कि यह सर्वगुण-सम्पन्न है, न कि कृष्णकथा और भक्तिभाव के माहात्म्य से। उसके लिए तो यों ही सैकड़ों ग्रन्थ मौजूद हैं। संस्कृतज्ञ पाठक विचार करें।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

रायपुर के लार्ड सिनहा।

गत जनवरी मास में इँग्लेंड से समाचार आया कि सर एस० पी० सिनहा प्रीवी-कौंसिल के सभासद निर्वाचित किये गये हैं। यह सुन कर देश को हर्ष तो हुआ, परन्तु यह साधारण बात समझी गई, क्योंकि भारतवासी मि० अमीरअली तो उसके सभासद पहले ही से हैं। परन्तु जब थोड़े दिनों बाद यह प्रकाशित हुआ कि सर एस० पी० सिनहा भारत के उपमन्त्री नियुक्त हुए हैं और लार्ड की उपाधि भी उन्हें मिली है और वह हाउस आव् लार्डस के भी एक सभासद हो गये हैं, तब देश के एक कोनेसे दूसरे कोने तक हर्ष की तरङ्ग फैल गई और सभी भारतवासियों ने सन्तोष और आनन्द प्रकट किया। इसका कारण यह है कि अभी तक किसी भारतवासी को इतना उच्च स्थान प्राप्त नहीं हुआ था। यह पहला ही अवसर है जब एक भारतवासी अँगरेज़ी गवर्नमेंट का इतना उच्च कर्मचारी नियुक्त हुआ। सर एस० पी० सिनहा की नियुक्ति ने इस लाञ्छना को मिटा दिया कि भारतवासी उच्च स्थान अलङ्कृत करने के योग्य नहीं हैं। भारतवर्ष में राजनैतिक उन्नति को देखते हुए यह कहना असङ्गत नहीं कि थोड़े ही समय में भारतवासी उच्च से उच्च स्थान सुशोभित कर सकेंगे।

सत्येन्द्रप्रसादसिंह का जन्म १८६३ ईसवी में रायपुर, ज़िला वीरभूम, में हुआ था। इनके पिता और पितामह उत्तर राढ़ी कायस्थों के प्राचीन वंश से थे, जिनके घराने बंगाल भर में फैले हुए हैं। इस वंश के लोग ज़मींदार और १८०० ईसवी के लगभग सेमरूपागढ़ के राजा के विश्वासपात्र सेवक थे। एस० पी० सिनहा के पिता क्षितिकान्त सिनहा, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में, मुंसिफ़ थे और तत्पश्चात् सदर अमीन नियुक्त हुए। १८६५ ईसवी में काल कराल ने उन्हें अपनाया। एस० पी० सिनहा चार भाइयों में सब से छोटे हैं। उनके सब से बड़े भाई वीरभूम में सरकारी वकील थे। दूसरे भाई घर और ज़मींदारी का प्रबन्ध करते थे। तीसरे भाई मेजर एन० पी० सिनहा ने सिविल सर्जन के पद को सुशोभित किया। यद्यपि दुर्भाग्यवश एस० पी० सिनहा के पिता का स्वर्गवास उनकी बाल्यावस्था ही में हो गया और वे उनकी सुशिक्षा से वञ्चित रहे तथापि माता ने यथाशक्ति इस अभाव की पूर्ति की। एस० पी० सिनहा ने वीरभूम के गवर्नमेंट स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा पाई। वहाँ बड़े परिश्रमी, शान्त और होनहार विद्यार्थियों में इनकी गणना होती थी। इन्होंने मैट्रिकुलेशन परीक्षा १८७७ ईसवी में योग्यता के साथ पास की और विद्याध्ययन करने के लिए प्रेसीडेन्सी कालेज, कलकत्ता, चले गये। दो वर्ष बाद एफ़० ए० परीक्षा में प्रथम कोटि में उत्तीर्ण हुए। आगामी वर्ष एक ज़मींदार की कन्या से उन्होंने विवाह किया। उसी समय एक ऐसी घटना हुई जिसने इनके जीवन-प्रवाह को एक नवीन दिशा में फेर दिया।

सिनहा के पिता इरकिन और कम्पनी में दस हज़ार रुपया जमाकर गये थे। जब एन० पी० सिनहा बालिग़ हुए तब उन्हें पितृधन मिला। वह उस समय कलकत्ते के मेडिकल कालेज में डाक्टरी पढ़ते थे। उस समय भी भारतीय विद्यार्थियों का भविष्य इतना अन्धकारमय रहता था जितना कि आज कल। उन्होंने यह भली भाँति विचार लिया था कि यदि इसी अभागे देश में डाक्टरी की परीक्षा पास करके रह गये तो फिर भविष्य उज्ज्वल होने की आशा कम है। विलायती डिग्री सांसारिक सफलता का

एक साधन है, इसलिए इँगलेंड में पढ़ना आवश्यक है। उनके छोटे भाई एस० पी० सिनहा भी उनसे अक्षरशः सहमत थे और उनकी भी विलायत जाने की प्रबल इच्छा थी। समुद्र-यात्रा-निषेध का पाखण्ड उस समय आज कल से कहीं अधिक था और वे लोग भली भांति जानते थे कि यदि हमारे कुटुम्बी हमारे विलायत-गमन-सम्बन्धी विचारों को जान लेंगे तो हमारे वहां जाने में बाधायें डालेंगे और हम लोगों का जाना खटाई में पड़ जायगा। इसलिए वे चुपके चुपके यात्रा की तैयारियां करने लगे और अपने विचार किसी पर प्रकट नहीं किये। अन्त में १८८१ ईसवी में उन्होंने विलायत को प्रस्थान किया। परन्तु जब उनके सम्बन्धियों को इस बात का समाचार मिला तो उन लोगों ने दोनों भाइयों का पीछा किया; पर एक घण्टा पहले ही उनका जहाज़ चल दिया था। इसलिए वे हताश होकर लौट आये। यदि समुद्र-यात्रा-निषेध के पाखण्ड में पड़ कर एस० पी० सिनहा का विलायत जाना न होता तो उनका भविष्य ऐसा ही होता या नहीं, कौन कह सकता है? यह तो मानना ही पड़ेगा कि इँग्लेंड जाने से उनकी योग्यता की वृद्धि हुई और उसने उनके वर्तमान उच्च-स्थान की प्राप्ति में सहायता दी।

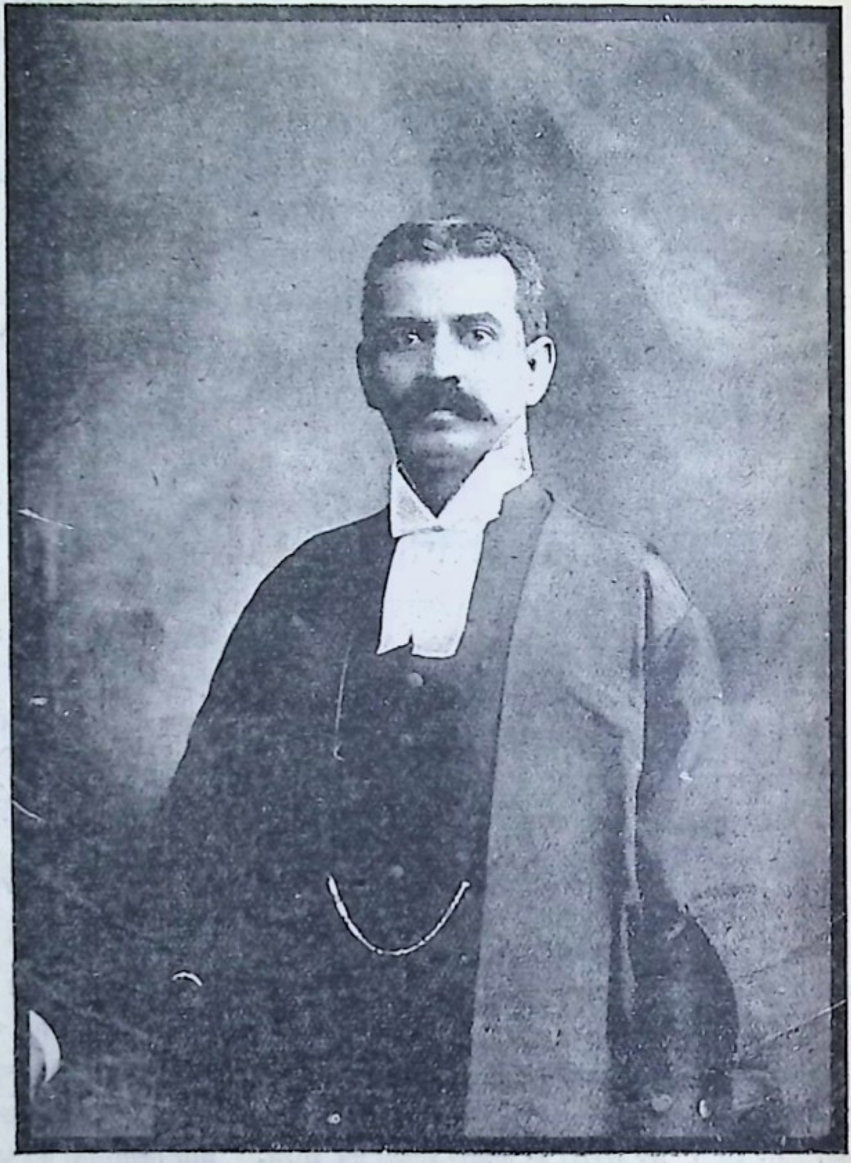

लार्ड सिनहा।

मि० सिनहा विलायत पहुँचते ही परिश्रम और उत्साह के साथ अध्ययन करने लगे। उन्होंने लिंकन्स-इन में बैरिस्टर होने के लिए प्रवेश किया और शीघ्र ही अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय देने लगे। रोम के पुराने क़ानून (Roman Law) में उन्होंने बड़ी योग्यता प्राप्त की। यहां तक कि डाक्टर हन्टर ने उनकी प्रशंसा की। धुरन्धर विद्वान् और उच्च-कोटि के गुरुजन के साथ रहने का सौभाग्य बहुत कम विद्यार्थियों को प्राप्त होता है। जेम्स ब्राइस—वर्तमान लार्ड ब्राइस—फ़्रेडरिक हैरिसन और अन्य महानुभावों का सत्सङ्ग होना मि० सिनहा के लिए

कम गौरव की बात न थी। उन्होंने इस अमूल्य और दुष्प्राप्य अवसर को हाथ से जाने न दिया; पठन-पाठन में लिप्त रहे और इसका मधुर फल उनको यह मिला कि रोम के क़ानून (Roman Law) क़ानून-विज्ञान (Jurisprudence), राज्यसङ्गठन-सम्बन्धी क़ानून (Constitutional Law) और जातियों के पारस्परिक व्यवहार के क़ानून (International Law) के लिए चार वर्ष तक ५० पौंड की छात्रवृत्ति उन्हें प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त अन्यान्य पारितोषिक भी वे पाया किये। यहाँ तक कि लिंकन्स-इन छात्रवृत्ति, जो १०० पौंड वार्षिक थी, उसके योग्य भी वे समझे गये और वह द्रव्य उन्हें तीन वर्ष तक मिला। १८८६ ईसवी में उन्होंने वैरिस्टरी की परीक्षा में सफलता प्राप्त करली। योरोपीय देशों में भ्रमण कर अनुभव प्राप्त किया और कई विदेशी भाषायें सीखीं। इससे उनका ज्ञानक्षेत्र बढ़ गया और यह उनको व्यवसाय में बहुत सहायक हुआ। बहुत कम भारतवासी मि० सिनहा की भाँति विदेश में शिक्षा लाभ करते हैं।

मि० सिनहा ने २३ वर्ष की अवस्था में कलकत्ता में वकालत करना आरम्भ किया और आठ ही वर्ष में उन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त करली। अधिकतर वकीलों को इस समय में कठिन परिश्रम करना और कभी कभी कष्ट भी उठाना पड़ता है। परन्तु मि० सिनहा इसके लिए पहले ही से उद्यत प्रतीत होते थे। उन्होंने सचाई, कठिन परिश्रम, शान्त स्वभाव, विलक्षण बुद्धि द्वारा कठिनाइयों को सरल बनाया और उनकी गम्भीर विद्या सफलता में बहुत सहायक हुई। यहाँ तक कि १८९४ में उनकी वकालत अच्छी चल निकली और पाँच छः वर्ष में उनकी गणना प्रसिद्ध वैरिस्टरों में होने लगी। वे छोटे बड़े हर एक अभियोग में परिश्रम से काम करते थे और न्यायालय में खूब तैयारी करके जाते थे। उनका सर्वव्यापी ज्ञान, मधुर, विचारपूर्ण और तर्कयुक्त भाषण का प्रभाव न्यायाधीश पर अच्छा पड़ता था। धीरे धीरे हर एक बड़े अभियोग में वे वकील होने लगे और धन की वृष्टि चारों ओर से उन पर हो चली। साथ ही साथ उनके स्वतन्त्र विचार, नम्र स्वभाव और विनीत व्यवहार के कारण उनके मित्रों की संख्या बढ़ती ही गई। गवर्नमेण्ट ने भी उनके गुणों को स्वीकार किया और १९०३ में उन्हें सरकारी वकील (Standing Counsel) नियुक्त किया। उस समय इतना योग्य कोई भारतीय या योरोपीय वकील न था जो उस स्थान को भली भाँति सुशोभित करता। तीन वर्ष बाद सिनहा महाशय प्रधान *सरकारी वकील बनाये गये और सन् १९०८ में उसी स्थान पर स्थायी हो गये। यही प्रथम भारतवासी थे जो इतने उच्च और उत्तरदायित्व-पूर्ण स्थान पर नियुक्त किये गये। इस समय तो वे निस्सन्देह बैरिस्टरों के नेता हो गये और भारतीय और योरोपीय दोनों समाजों में इनका सम्मान होने लगा।

वकालत में आप इतना दत्तचित्त हो कर कार्य करते थे कि उनको राजनैतिक विषयों पर जनता के सम्मुख वादविवाद करने का कम समय मिलता था। तथापि वे वर्तमान सामयिक विषयों का भली भाँति मनन करते थे और वे अपने उच्च विचारों को भावी राजनैतिक जीवन के लिए एकत्र करते जाते थे। वे हृदय के उद्गारों को विचारशील स्वभाव से सदा दबाये रहते थे; परन्तु देशभक्ति में पक्के थे। १८८६ ईसवी में २३ वर्ष की अवस्था में उन्होंने कलकत्ते की कांग्रेस में भाग लिया और वहाँ भारतीय राजाओं के गद्दी से न उतारे जाने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भी उपस्थित किया। वङ्गभङ्ग, कलाकौशल के नाश, भारत में अशान्ति आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में उनके विचार वैसे ही थे जैसे और देशभक्तों के। तथापि वे उनको बहुत नम्रभाव से प्रकट करते थे।

उसी समय लार्ड कर्ज़न की असन्तोषजनक गवर्नमेंट के पश्चात्, बंगाल के विभाग के सम्बन्ध में, प्रचण्ड अशान्ति फैली हुई थी। स्वदेशी आन्दोलन का भी प्रचार प्रबल था। सारे भारतवर्ष में—विशेष कर बङ्गाल में—अशान्ति छाई थी और लोग अधिक स्वत्व के लिए आन्दोलन कर रहे थे। उस समय लार्ड मारले भारत-सचिव थे। उनके राजनैतिक विचार उदार थे। यह उनकी इच्छा थी कि भारतवासी अधिक स्वतन्त्रता लाभ करें। परन्तु उनके मनोरथ के पथ में कई विघ्न थे। केवल हिन्दुस्तान-निवासी अँगरेज़ और वाइसराय की व्यवस्थापक सभा के सभासद ही नहीं, वरन् भारतमन्त्री की सभा के मेम्बर और इँगलेण्ड

---

* Advocate-general.

का मन्त्रिमण्डल (Cabinet) भी उनसे सहमत न था। सप्तम एडवर्ड भी इस विचार का विरोध करते थे। भारतीय गवर्नमेंट कहती थी कि यदि कोई भारतवासी वाइसराय की व्यवस्थापक सभा का सभासद हो जायगा तो उसको गवर्नमेंट की सारी गुप्त बातें मालूम हो जाया करेंगी और जब तब गवर्नमेंट की पोल खुल जाया करेगी। परन्तु सत्यपरायण निर्भीक मारले अपने पथ से विचलित न हुए। वे विक्टोरिया महारानी के महत्त्वपूर्ण वचन न भूले कि अँगरेज़ और भारतवासी दोनों के स्वत्व समान हैं और काले और गोरे—ईसाई और हिन्दू—में राजनैतिक क्षेत्र में कुछ भेद नहीं है। योग्यता ही कसौटी है। योरोपियन या हिन्दुस्तानी जो योग्य हो उच्च से उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है। सन् १९०७ ईसवी में दो भारतवासी भारतमन्त्री की सभा के मेम्बर नियुक्त हुए। यह सुधार अवश्य ही भारत के लिए हितकारी हुआ, क्योंकि इससे पहले भारत-मन्त्री की सभा में सारे गोरे चमड़ेवाले ही भरे थे। इसी भाँति मारले महाशय की शनैः शनैः विजय हुई। सन् १९०९ के मार्च मास में मारले महाशय का यह प्रस्ताव कि वाइसराय की व्यवस्थापक सभा का एक मेम्बर हिन्दुस्तानी होना चाहिए मन्त्रिमण्डल के सब सभासदों ने स्वीकृत कर लिया और वह पास हो गया। मंत्रिमण्डल के फ़ैसले को सप्तम एडवर्ड ने भी मान लिया। सर एस० पी० सिनहा अपनी विचित्र योग्यता के कारण इस उच्च स्थान पर नियुक्त किये गये और यह प्रथम ही भारतवासी थे जो बड़े लाट साहब की व्यवस्थापक सभा (Executive Council) के सभासद बनाये गये। राजनैतिक विषय में पूर्ण अनुभव रखनेवाले मारले का ऐसा करने में तात्पर्य्य यह था कि भारतवासियों पर से अयोग्यता की लाञ्छना दूर हो और एक भारतवासी की उपस्थिति से गवर्नमेंट जनता के विचारों को जान कर भली भाँति कार्य करे।

सर एस० पी० सिनहा की नियुक्ति से देश को बहुत सन्तोष हुआ; परन्तु ये अपने नवीन जीवन में एक वर्ष से कम ठहरे। जब उन्होंने सन् १९१० में पद त्याग किया तब भारतवासियों को बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। उनके पदत्याग का विशेष कारण क्या था, यह ठीक नहीं मालूम होता। सम्भव है कि अन्य मेम्बरों से मतभेद होने के कारण उन्होंने विरोधियों के बीच में रहना सङ्गत न समझा हो। जो कुछ हो, इसका कोई व्यक्तिगत ही कारण था। अपने इस थोड़े समय में उन्हें मिन्टोमारले सुधार के सम्बन्ध में नियम इत्यादि बनाने पड़े। वाइसराय ने उनके कार्य की प्रशंसा की। दुर्भाग्यवश उन्हीं के समय में प्रेस ऐक्ट पास हुआ, जिसका उन्होंने पहले विरोध किया था।

फिर १९१० ईसवी में उन्होंने वकालत करना आरम्भ कर दिया और उनकी प्रसिद्धि और भी बढ़ गई। १९१५ ईसवी में भारतीय जनता ने उनको जातीय राष्ट्रसभा (National Congress) का सभापति चुनकर सम्मानित किया। कांग्रेस बम्बई में बड़े समारोह के साथ हुई। वहीं हिन्दू-मुसलिम-एकता की नींव पड़ी और उसकी पुष्टि दूसरे वर्ष लखनऊ की कांग्रेस में हो गई। सभापति महोदय का भाषण नरम दलवाले विचारों से परिपूर्ण था। यद्यपि उसमें योग्यता कूट कूट कर भरी थी, परन्तु विचार बहुत नम्रभाव से प्रकट किये गये थे। अतः गरम दलवालों को पसन्द नहीं आये। वे भारतीय सेना और वालंटियरों के सम्बन्ध में ज़ोर से बोले और कहा कि भारतवासियों को सेना में ऊँचे स्थान दिये जाने चाहिए। यह भी कहा कि भारतवासियों को शस्त्र (हथियार) भी दिये जाने चाहिए ताकि वे डाकुओं और जङ्गली पशुओं से अपना तन और धन बचा सकें। आपने भारत के कलाकौशल की उन्नति की आवश्यकता दिखलाई और उसकी पूर्ति करना गवर्नमेंट का धर्म बतलाया। स्वराज्य के सम्बन्ध में उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण बातें कहीं और इस बात पर ज़ोर दिया कि स्वराज्य भारतवासियों को अवश्य मिलना चाहिए, क्योंकि यह उनका जन्मसिद्ध स्वत्व है। उनका अर्थ स्वराज्य से कनाडा ऐसी गवर्नमेंट से था। उन्होंने उन लोगों का विरोध १९११ ही में किया था जो कहते थे कि स्वराज्य का मतलब अँगरेज़ों को भारतवर्ष से मार भगाने का तात्पर्य भारतवासियों का है। उनका अटल विश्वास है कि भारतवर्ष और इँगलेंड दोनों की एकता से पारस्परिक लाभ हो सकता है। दोनों को संसार-हित करना है और वह दोनों मिल कर ही कर सकते हैं।

१९१७ ईसवी में सिनहा महाशय गवर्नमेंट के प्रधान

वकील के स्थान पर नियुक्त हो गये और आगे चल कर बङ्गाल की व्यवस्थापक सभा (Executive Council) की मेम्बरी भी स्वीकृत कर ली। इनकी इस बात पर देश को बड़ा आश्चर्य हुआ। जिन लोगों का यह मत था कि मि० सिनहा ने धनोपार्जन के लिए वाइसराय की व्यवस्थापक सभा से पदत्याग किया था उन्होंने भी अब यह मान लिया कि इस स्थान पर नियुक्त हो कर मि० सिनहा ने देशहित के लिए बहुत धनहानि उठाई और उससे उन्होंने देशभक्ति का परिचय दिया। एक वर्ष यहाँ रह कर उन्होंने अपना कर्तव्य योग्यता के साथ किया। उनके भाषण विचारपूर्ण और ज्ञान से भरे हुए होते थे।

१९१७ ईसवी में भारतमन्त्री को राजकीय समर-परिषद् में सहायता देने के लिए एक भारतवासी निमन्त्रित किया गया। भारत का प्रतिनिधि गवर्नमेंट ने इन्हीं को बना कर भेजा। महाराजा बीकानेर इन्हीं के साथ राजाओं के प्रतिनिधि होकर गये। सर जेम्स मेस्टन सिविल सर्विस के प्रतिनिधि भी साथ ही थे। वहाँ दोनों की गणना राजकीय समर-परिषद् और समर-मन्त्रिमण्डल (Imperial War Conference) के सभासदों में की गई। वे War Cabinet के मेम्बर भी बनाये गये। वहाँ सिनहाजी ने बहुत महत्त्व की बातें, देश के गौरव, सम्मान और व्यापार के सम्बन्ध में, कहीं। गवर्नमेंट को उनका कार्य्य इतना पसन्द आया कि दूसरी बार सन् १९१८ में फिर सिनहा महाशय को समर-सभा (War Conference) में भारत का प्रतिनिधि करके भेजा। यद्यपि सिनहा महाशय पर कर्त्तव्य का बड़ा भार था, फिर भी दोनों अवसरों पर उन्होंने उत्साह और परिश्रम के साथ अपना कर्तव्य पालन किया। वे वहाँ भारतीय हितैषियों से मिलने का भी अवकाश निकाल लिया करते थे। अपनी पहली यात्रा के समय वे स्वर्गवासी भारतमित्र वेडर्बर्न के यहाँ दो दिन ठहरे थे। हिन्दुस्तान की व्यापार-सम्बन्धी बातों पर मि० सिनहा के मैनचेस्टर और अन्य स्थानों में बड़े महत्त्वपूर्ण भाषण हुए। उन्होंने कहा कि भारतवर्ष सब प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करता है। उसमें अन्न से लेकर, रुई, जूट, कोयला और लोहा तक सुलभ हैं। प्रथम वहाँ के पदार्थ वहीं के हित के लिए हैं; फिर उसके बाद चाहे जो कोई लाभ उठावे। यह भारतवर्ष नहीं सहन कर सकता कि उसके द्रव्य से दूसरे मनुष्य आनन्द उठावें और वह मुँह देखा करे। भूतकाल में ऐसा ही हुआ है, परन्तु भविष्य में ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उन्होंने देश के कला-कौशल की उन्नति करना और देश की दीन दशा को दूर करना गवर्नमेंट का कर्तव्य बतलाया। यह भारतवर्ष के आन्दोलन और सिनहा महाशय के परिश्रम का फल है कि कुली-प्रथा में बहुत कुछ सुधार हुए हैं। भारत का जातीय सम्मान भी बढ़ा है। बहुत वाद-विवाद के बाद पारस्परिक समानता के प्रश्न को भी कनाडा ने मान लिया है और आशा है कि भविष्य में कनाडा और अन्य अँगरेज़ी उपनिवेशों में भारतवासियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जायगा और उनको बराबरी के स्वत्व मिलेंगे।

सिनहा महाशय ने ठीक कहा है कि समर में जो भारत ने राज्य की सेवा की है वह परम प्रशंसनीय है, तथापि देश-भक्त भारतवासियों के ये भाव हैं कि यदि भारत इस समय केवल कृषि-प्रधान देश न होता वरन् उसकी औद्योगिक उन्नति भी होती तो वह राज्य को और भी सहायता पहुँचा सकता। यदि भारत में जातीय सेना होती तो जर्मनी को शीघ्र ही पददलित कर डालती। अतः भारतवर्ष में विश्वास और राजनीतिज्ञता की नींव पर भारत-शासन की इमारत खड़ी होनी चाहिए। भारत केवल शासन-प्रणाली में सुधार ही नहीं वरन् सन्तोष और आनन्द भी चाहता है। यह देश कुछ काल से दीन हीन हो गया है और अब भी है। इसलिए उसकी दशा को सुधारना गवर्नमेंट का धर्म है। भारतवर्ष चाहता है कि उसको उसकी प्राचीन सभ्यता के अनुसार राज्यमण्डल में स्थान मिले।

सर एस० पी० सिनहा मांटेगू-चेम्सफोर्ड सुधार-स्कीम से बहुत कुछ सहमत हैं। उनका कहना है कि हम लोगों को स्वराज्य यद्यपि तुरन्त नहीं दे दिया गया, तथापि यह प्रतिज्ञा कर दी गई है कि स्वराज्य की एक अच्छी मात्रा यथाशक्ति शीघ्र ही दी जायगी और इसकी पूर्ति में चिरकाल नहीं लगेगा। उनका मत है कि यदि सुधार-स्कीम में भारतवासियों के इच्छानुसार कुछ परिवर्तन कर दिये जायँ तो जनता सन्तुष्ट हो सकती है।

गत—वर्ष के अन्त में सङ्ग्राम समाप्त हो गया और क्षणिक सन्धि भी स्थापित हो गई। सन्धि-परिषद् में फिर भारत-गवर्नमेंट ने सिनहा महाशय ही को भेजा है। यद्यपि वे जनता के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं तथापि स्कीम उपस्थित करेंगे। वे एक भारतवासी हैं और कांग्रेस के सभापति का भी आसन अलङ्कृत कर चुके हैं।

सिनहा जी की असाधारण योग्यता में कोई सन्देह नहीं। वे क़ानून में बड़े प्रवीण हैं। प्रत्येक कार्य को पूर्णतया विचार कर करते हैं। उनकी सज्जनता, चतुरता और सहनशीलता प्रशंसनीय है। देश-भक्त भी वे उच्च कोटि के हैं। वे हृदय के उद्दण्ड भावों को विचार द्वारा सदा दबाये रखते हैं। कभी तीक्ष्ण और कडुई बात कहना तो जानते ही नहीं। मधुरता ही से अपना कार्य निकाल लेते हैं। राजनैतिक विषयों में वे नरम दल के अनुयायी हैं और नरम दलवालों में भी सब से बढ़कर नरम हैं। वे अपनी विलक्षण व्यावहारिक बुद्धि के लिए प्रसिद्ध हैं और यह उनको जीवन की सफलता में बहुत सहायक हुई है। इसके द्वारा वे विरोधियों को भी अपनी ओर कर लेते हैं और कठिनाइयों को सरल बना देते हैं। इन्हीं सब गुणों का फल है कि आज वे ऐसे उच्च स्थान पर विराजमान हैं और भविष्य में उनकी उत्तरोत्तर पद-वृद्धि की आशा है। सच है—

मालतीकुसुमस्येव द्वे गतीह मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा॥

गुरुनारायण मेहरोत्र बिलग्रामी, बी० ए०

भेट

करो नाथ, स्वीकार आज इस हृदय-कुसुम को,
करें और क्या भेट, राजराजेश्वर तुम को?
सौरभ की है कमी, कहाँ पर उसको पावें,
सुन्दरता है नहीं, कहाँ से वह भी लावें।
है अयोग्य यह भेट, हमें पूरा निश्चय है,
पर जैसी है आज वही सम्मुख सविनय है।
इष्ट नहीं यह करो कि धारण इसे हृदय पर,
निज मन्दिर में ठौर कहीं दो इसको प्रभुवर!
तव पद-छाया अकस्मात जिस दिन पावेगा,
तुच्छ कुसुम यह राज-कुसुम से बढ़ जावेगा।
अन्त हीन सुवसन्त इसे विकसित करदेगा,
निरुपमेय सौन्दर्य्य सुरभि इसमें भर देगा।
उस दिन गर्व समेत कह सकेंगे हम तुम से,
है क्या अब भी घृणा तुम्हें इस तुच्छ कुसुम से!

सियारामशरण गुप्त

रूस का राष्ट्र-विप्लव।

यूरोप का युद्ध समाप्त होगया और वह अपना काम भी पूरा कर गया। युद्ध में उन राष्ट्रों की ही जय हुई जो सत्य और स्वतन्त्रता का पक्ष लेकर लड़े। जरमनी में स्वेच्छानुसार शासन करनेवाले क़ैसर को पदत्याग करना पड़ा। रूस की जनता ने भी दमन-नीति का अवलम्बन करनेवाली स्वायत्त-शासन-प्रणाली का अन्त करके जन-सत्तात्मक राज्य स्थापित किया।

युद्ध के आरम्भ होने के पहले रूस देश में ज़ार का शासन-प्रबन्ध बड़ा ही दुखदायी था। उसकी शासन-प्रणाली में प्रजा के अधिकारों की अवहेलना की जाती थी और स्वेच्छाचारी एक शासक की इच्छा के अनुकूल ही सारे राज्य का कार्य होता था। रूस का शासक ज़ार निकोलस था। इस की नीति, इसके बाप के समान, राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करना था। उस समय रूस में भी जनता के अधिकारों और नौकरशाही के अत्याचारों की चर्चा सारे देश में चल रही थी। इस आन्दोलन के बन्द करने का उपाय जो ज़ार निकोलस ने सोचा था वह जनता का मत प्रकाशित करने, बोलने और कार्य करने की स्वतन्त्रता का छीन लेना था। राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् ज़ार निकोलस ने पहला काम यह किया कि जनसत्तात्मक विचारों का प्रसार करनेवाली पुस्तकों को ज़ब्त कर लिया। पहला ही आज्ञापत्र निकलते

लगभग २०० पुस्तकें ज़ब्त हो गईं। उसमें बहुतेरी तो ऐतिहासिक और अर्थ-शास्त्र-सम्बधी पुस्तकें थीं। इसकी राजनीति से सारे देश में सनसनी फैल गई। सारे देश में धर-पकड़ आरम्भ होगई। सन् १९०३ में १२,००० मनुष्यों पर राजनैतिक मुक़द्दमा चलाया गया। इन मुक़द्दमों का विचार साधारण अदालतों में न हुआ, परन्तु विशेष अदालतों में हुआ, जहाँ पर अभियुक्त अपनी रक्षा क़ानून के अनुसार न कर पाये। इसके अतिरिक्त ज़ार ने प्रकाशकों के लिए बड़ा कड़ा क़ानून बनाया। सार्वजनिक सभाओं का होना भी बन्द कर दिया। किसानों और मज़दूरों को भी अपनी दशा सुधारने का कोई उपाय न रह गया। यहूदी लोगों को तो बड़ी कठिनाई थी। वे साधारण जनता के अधिकारों का भी उपभोग नहीं कर सकते थे। इन सब कारणों से रूस की आभ्यन्तरिक दशा बिलकुल हीन होगई और उसका फल यह हुआ कि इतने बड़े रूस देश को जापान से बहुत बुरी हार खानी पड़ी। यह जापान से युद्ध भी जनता की इच्छा के विरुद्ध ज़ार की इच्छा से हुआ था और उसमें रूस की हार होने के पश्चात् सारे देश में ज़ार और उसकी नौकरशाही के विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। राजनैतिक नेताओं को कारागृह और फाँसी का दण्ड देने पर भी आन्दोलन का दमन नहीं हुआ। षड्यन्त्रों की वृद्धि होती गई और कई राजकर्मचारियों की जान बम के गोलों से गई। फ़सल के ठीक न होने से किसानों की दशा भी शोचनीय होगई। वे लोग भी भूख से मरने लगे और अपना उदर-निर्वाह करने के लिए डाका डालने और लूट मार करने लगे। विद्यार्थी लोग भी नौकरशाही के विरुद्ध चिल्लाने लगे। सन् १९१५ में बहुत आन्दोलन होने के कारण ज़ार को एक राजसभा बनानी पड़ी जो डूमा कहलाई। डूमा में जनता को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला, परन्तु डूमा को कोई अधिकार न दिये गये थे। इससे डूमा से भी कोई लाभ जनता को न पहुँचा। ज़ार की इस नीति के अवलम्बन में जरमनी का बादशाह क़ैसर सहायता करता था और सलाह देता था। ज़ार के कई बड़े राजकर्मचारी जरमन थे और वही ज़ार की दमन-नीति के अनुसरण करने में सहायक होते थे। इन कारणों से जब सन् १९१४ ई० में रूस और जरमनी के बीच में युद्ध आरम्भ हुआ तब रूस की जनता को बड़ा आनन्द हुआ।

युद्ध होने से आनन्द होने का कारण ज़ार और क़ैसर का सम्बन्ध ही नहीं, किन्तु रूस की जनता को राष्ट्रविप्लव का अवसर मिलना भी था। युद्ध में जब हार होती थी तब जनता उसका कारण ज़ार की नौकरशाही की अयोग्यता बतलाती थी और नौकरशाही के विरुद्ध आन्दोलन-कारियों को उत्तेजित करती थी। इस युद्ध के होने से इस आन्दोलन को सहायता पहुँचना भी रूस देश को एक सौभाग्य और हर्ष की बात हुई।

राजसभा डूमा के सदस्य भी ज़ार के विरुद्ध थे। उनमें कई जो ज़ार के पक्ष में थे वे भी धीरे धीरे ज़ार के विरुद्ध होगये, क्योंकि ज़ार डूमा की कभी राय न मानता था। इस कारण डूमा के सब सदस्य धीरे धीरे उस पक्ष के ग्रहण करनेवाले हो गये जिसका विचार राज्य-संस्था में पूरा परिवर्तन कर देने का था। ज़ार के अत्याचारों की वृद्धि से आन्दोलन-कारियों के अनुयायी बढ़ते गये। सन् १९१७ में अशान्ति बहुत बढ़ गई। ग़रीबों ने लूटमार, मज़दूरों ने हड़ताल और अराजक दल ने सारे देश में बलवा करना आरम्भ कर दिया।

ज़ार ने जब देखा कि राजसभा डूमा के सब सदस्य उसके विरोधी होगये तब उसने राजसभा को मिटादेने की आज्ञा देदी। पर उसकी आज्ञा को किसी एक भी सभासद ने न माना। इस सभा ने अपना कार्य ज़ार की आज्ञा के विरुद्ध भी जारी रक्खा। इस का फल यह हुआ कि राजसभा डूमा के

पक्षवालों ने बलवा आरम्भ कर दिया । राजसभा को यह बात पहले से ही विदित थी कि सारा देश उस की सहायता करेगा और ऐसा ही हुआ । देश भर में राष्ट्रविप्लव होगया । व्यापारी-संघ, औद्योगिक संस्थायें और विद्यार्थी-संघ सब ने मिल कर राजसभा डूमा की सहायता की । सैनिकों और सेनापतियों ने भी ज़ार की परवा न करके डूमा की सहायता की । सब ने मिल कर ज़ार को पदत्याग करने के लिए बाध्य किया और डूमा ने अपने सदस्यों में से १२ सदस्यों की एक कार्यकारिणी सभा बनाली । अभी तक डूमा को कोई अधिकार न था; पर अब इस १२ सदस्यों की कार्यकारिणी सभा के हाथ में सब अधिकार आगये ।

इस नई शासन-संस्था ने बहुत से सुधार करके रूसदेशवासियों की बहुत सी आकांक्षाएं पूरी कीं । जनता को बोलने और मत प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता दी । ज़ार के बनाये हुए कड़े नियम हटा दिये । राजनैतिक बन्दियों का छुटकारा कर दिया । यहूदियों को भी वही अधिकार दिये जो साधारण मनुष्यों को थे । राजघराने के मनुष्यों ने जो बड़ी बड़ी ज़मीनें अपने अधिकार में करली थीं वे उनसे छुड़ाकर ग़रीबों को दी गईं । इस नई संस्था के स्थापित होने का समय रूस देश के लिए बड़े महत्त्व का दिन है ।

सन् १९१७ में मज़दूरों और किसानों की एक सभा बनी और कुछ दिनों के पश्चात् सैनिक भी इस सभा में सम्मिलित हो गये । डूमा शान्ति-स्थापन का कार्य स्वयं न कर सकती थी, क्योंकि देश भर में बलवा हो रहा था और उसमें मज़दूर और किसान बहुत थे । डूमा को शान्ति-स्थापन करने में मज़दूरों और किसानों की सभाएं, जो सोवियट कहलाती थीं, सहायक हुईं । धीरे धीरे सोवियट सभाओं ने सारा राज्य-कार्य अपने हाथ में ले लिया और अन्त में डूमा का कोई अधिकार न रहा और देश भर के लिए बड़ी सोवियट सभा, जिसमें छोटी छोटी सोवियट सभाओं के प्रतिनिधि थे, बड़ी राजसभा हो गई ।

प्रत्येक ग्राम में एक सोवियट सभा स्थापित की गई । उस सभा में प्रत्येक मनुष्य को प्रतिनिधि चुन कर भेजने का अधिकार दिया गया । परन्तु दूसरों की मिहनत पर लाभ उठानेवाले, व्याज पर निर्वाह करनेवाले और राजघराने के मनुष्य इस मत देने के अधिकार से वञ्चित किये गये । प्रत्येक ज़िले की सोवियट सभा ग्राम के प्रतिनिधियों द्वारा चुने गये मनुष्यों की हुई । और, देश की बड़ी सोवियट सभा इन छोटी छोटी सोवियट सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों की हुई ।

राष्ट्र की बड़ी सोवियट सभा राजधानी में बैठ कर सदस्य चुन कर एक कार्यकारिणी सभा बनाती है । कार्यकारिणी सभा ग्यारह मनुष्यों की होती है और प्रत्येक सदस्य को राजकार्य का एक विभाग सौंपा जाता है । बड़ी सोवियट सभा को अधिकार रहता है कि वह चाहे जिस विभाग के अधिकारी को, ठीक कार्य न करने के कारण, बदल दे । इस प्रबन्ध से राजकार्य का पूरा अधिकार जनता को ही रहता है ।

इन सोवियट सभाओं में दो मतों के अनुयायी हैं । एक तो बोलशेविक हैं और दूसरे मिनशेविक । बोलशेविक राज्य-संस्था के सिवा समाज-संस्था में भी पूरा परिवर्तन करना चाहते हैं । मनुष्यों में जो भेद हैं उन्हें बिलकुल हटा कर वे सब जनता को समान करना चाहते हैं । उनका कहना है कि सम्पत्ति किसी एक मनुष्य की नहीं है, किन्तु समाज की है । किसी भी मनुष्य को उसके उपभोग करने का कोई अधिकार नहीं है । मनुष्य केवल उतना ही पाने का अधिकारी है जितना कि वह समाजोन्नति के लिए कार्य करता है । यदि कोई मनुष्य समाज के लिए कोई कार्य नहीं करता तो उसे

सम्पत्ति का उपभोग करने का भी अधिकार नहीं। वे स्त्रियाँ जो समाज के लिए कोई काम न करके आराम ही करती हैं उन्हें बोलशेविक लोगों ने ज़बरदस्ती काम करने को बाध्य किया। धनी लोग जो कोई काम न करके केवल ग़रीबों से व्याज लेकर ही धन कमा कर आराम करते थे उनसे भी बोलशेविक लोगों ने धन छुड़ा कर ग़रीबों को बाँट दिया। इसमें ज़्यादती भी हो गई। परन्तु यह तो स्वाभाविक ही है जब संस्था के सुधारने का शीघ्र प्रयत्न नहीं किया जाता और ग़रीबों पर अत्याचार बढ़ता जाता है तब एक समय ऐसा आता है कि सारे समाज को दुख भोगना पड़ता है। यदि व्यवस्था के अनुसार सुधार नहीं होते तो उसका परिणाम राष्ट्र-विप्लव ही होता है।

मिनशेविकों का भी वही विचार है जो बोलशेविकों का है, परन्तु भेद इतना ही है कि मिनशेविक चाहते हैं कि समाज में परिवर्तन शीघ्रता से न हों, किन्तु धीरे धीरे हों।

सन् १९१७ के अक्टूबर के पश्चात् रूस देश में बोलशेविकों का प्रभुत्व बढ़ गया है। राज्य-कर्मचारियों में भी उनकी संख्या अधिक हो गई है। बोलशेविक लोग शान्ति करके रूस की आन्तरिक दशा सुधारना चाहते हैं। इससे उन्होंने सब लड़नेवाले देशों को सन्धि कर लेने और पराजित राष्ट्रों से हरजा न लेने और उनका देश वापस कर देने की सलाह की। प्रत्येक देश से जनता को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार देने की प्रार्थना की। जरमनी के साथ सन्धि करने की बहुत जल्दी की और बहुत सा देश छोड़ देने के लिए राज़ी हुए। जो मनुष्य रूस-देशवासियों की क़ौम के नहीं थे वे सब रूस के अधिकार से स्वतन्त्र कर दिये गये।

बोलशेविक लोगों ने जनता को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार दिया। स्थानिक स्वराज्य भी पूरी तरह से दिया। प्रत्येक गाँव, ज़िले और प्रदेश में शासन-प्रबन्ध सोवियट सभाओं के अधिकार में कर दिया। सेना में भी सेनापति नियुक्त नहीं किये जाते हैं किन्तु सैनिकों को सेनापति चुनने का अधिकार दिया गया है।

इस समय रूस ने स्वायत्त-शासन का अन्त करके जन-सत्तात्मक शासन की स्थापना की है। मनुष्यों को स्वाभाविक अधिकार और स्वतन्त्रता है। परन्तु उस देश की आर्थिक दशा अभी नहीं सुधरी है। राज्यप्रबन्ध सुधरने से आर्थिक दशा भी अवश्य सुधर जायगी। इस नई शासन-प्रथा में रूस में स्वतन्त्रता का राज्य है। प्रत्येक मनुष्य को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार है। आर्थिक दशा सुधर जाने पर विस्तीर्ण भूमि, बड़ी जनसंख्या और स्वाभाविक वैचित्र्यवाला रूस देश पृथ्वी के देशों में यदि सबसे अधिक बलवान् और वैभवशाली हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

श्यामाचरण राय (बी० ए०, बी० एल०)

लन्दन की सैर।

उनतीस अगस्त को ही हम चार आदमियों को चल देने का आर्डर आ गया था, जिससे हम लोगों को मालूम हुआ कि तारीख़ १ सितम्बर को दिन के चार बजे शाम की गाड़ी से जाना है। उस दिन बड़े उत्साह के साथ उठे और स्नान इत्यादि करके ग्यारह बजे दिन को भोजन किया, बाद वर्दी डाट कर इधर उधर घूमते रहे। तीन बजे स्टेशन की ओर चल दिये। साथ में हमारे प्रिय मित्र अहमदुल्लहशाह हमको गाड़ी पर सवार कराने गये। कुछ देर स्टेशन पर बैठ कर पांच बजे एक सेकिन्ड क्लास की गद्देदार गाड़ी पर बैठ गये। साढ़े पाँच बजे गाड़ी ने सीटी दी। शाह जी तो हाथ मिला कर लौट गये और हम लोग "बोलोन" की ओर रवाना हुए। रास्ते में फ़्रांस-भूमि के रमणीक पहाड़, खेत, जङ्गल, ग्राम

आदि देखते आनन्द से चले जाते थे । जब नौ बजे अँधेरा हो गया (यहाँ गर्मियों में नौ बजे रात को अँधेरा होता है) तब आनन्द से सो गये ।

सबेरे जब नींद खुली तब गाड़ी शहर बोलोन के पास पहुँच रही थी । इससे झट पट उठ कर बैठ गये । सूर्य उदय हो रहा था, ठंडी आनन्द-प्रद हवा चल रही थी, जिससे हरे होकर बोलोन के सुन्दर स्टेशन पर पहुँचे और गाड़ी से उतर पड़े । प्लेटफ़ार्म पर हमारे पड़ोसी और परम-मित्र दफ़ेदार शहाबुद्दीनख़ाँ हम लोगों को लेने के लिए मौजूद थे । उनसे प्रेम के साथ मिले और बातें करते हुए रेस्टहाउस (विश्रामघर) की ओर चल पड़े । बीस मिनट में वहाँ पहुँच गये । फिर क्या है, घर में थे । आनन्द से स्नानादि किया और भोजन कर के सो गये । चार बजे उठे और शहाबुद्दीनख़ाँ के साथ बाज़ार गये । यहाँ सन्नाटा था । न वह भीड़ थी, न चहल-पहल । रास्ते में शहाबुद्दीनख़ाँ ने कहा कि कल सबेरे नौ बजे जहाज़ छूटेगा । घूम घाम कर घर आये और खा पी कर सो गये । दूसरे दिन आठ बजे जब शहाबुद्दीनख़ाँ हमारे कमरे में आये तब उन्होंने हमको बिलकुल लैस पाया । सबेरे लेबरकोर के सात आदमी, एक लेफ़्टिनेण्ट, एक अँगरेज़ बुड्ढे कप्तान साहब, जो बड़े ही सज्जन और इन्चार्ज थे, सुबह की गाड़ी से आ गये थे । अब हमारी टोली, जिसमें तेरह आदमी थे, बन्दर-गाह पर जहाज़ के सामने खड़ी थी ।

यह मुसाफिर जहाज़ था और बहुत उत्तम बना था । छुट्टी पर जानेवाले आफ़िसर और सिपाहियों की इस पर बड़ी भीड़ थी । क्रम से हम भी जहाज़ पर सवार हुए । हमको सब से ऊपरवाले डेक पर, आफ़िसरों के साथ, जगह मिली । दो आने पर एक कुर्सी भी मिली, जिस पर आनन्द से बैठ गये । ऊपर होने से चारों ओर का दृश्य अच्छी तरह दिखाई देता था । आकाश में बादल जमा थे । तेज़ और सर्द हवा चल रही थी । जहाज़ ने लङ्गर उठाया और एक भयानक सीटी दे कर धीमी चाल से चलता हुआ वह बन्दर से बाहर निकला । बोलोन शहर तसवीर सा दिखाई देता था । अब हवा और तेज़ हुई और हमारा जहाज़ मस्त हाथी की तरह हिलता झूमता नीले पानी को चीरता वेग से चल पड़ा । अब हमने जो फ़्रांस की ओर दृष्टि दौड़ाई तो बोलोन धुँधला सा दिखाई देता था । लेकिन उसकी वह ऊँची मीनार, जिस पर खड़ा हुआ वीर नेपोलियन बड़े घमण्ड से योरप की ओर देख रहा है, साफ़ दिखाई देती थी ।

अब फ़्रांस के किनारे की पहाड़ियाँ भी नज़र से छिपने लगीं और चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देने लगा । दूर दूर पर बहुत से जङ्गी जहाज़ और हवाई जहाज़ ब्रिटिश टापू की रक्षा इस तरह कर रहे थे जैसे कृष्ण-पालित द्वारिकापुरी की रक्षा सुदर्शन चक्र करता था । ब्रिटिश की अजेय सामुद्रिक शक्ति का क्या कहना है । हमारी दृष्टि बार बार उस वीर पुरुष पर पड़ती थी जिसके हाथ में दो हज़ार वीरों से भरे हुए इस जहाज़ की रक्षा का भार था । यह वीर पुरुष जहाज़ का कप्तान था । इन्हीं जहाज़ और इन्हीं जहाज़ियों से ब्रिटिशसिंह सामनेवाले टापू में बैठा संसार पर गरज रहा है और निर्भय पड़ा हुआ है ।

इँगलेंड की पहाड़ियाँ दिखाई देने लगी थीं । लोग उत्साह से प्रसन्न होकर कपड़े इत्यादि सँभाल रहे थे । बात की बात में हम फ़ाक्स्टन के बन्दरगाह में, जिसका शहर और बन्दर-गाह बोलोन ही की तरह है, पहुँच गये । धीरे धीरे जहाज़ से उतरे और प्रसन्नतापूर्वक शक्तिमती इँगलेंड की स्वतन्त्र भूमि पर पैर रक्खा । गाड़ी तैयार खड़ी थी । एक फ़र्स्ट क्लास में जा बैठे । स्टेशन साधारण था । गाड़ी भी ई० आई० आर० की फर्स्ट क्लास से अच्छी नहीं थी । गाड़ी चल पड़ी । दोनों ओर का दृश्य बिलकुल फ़्रांस की तरह था, याने वही ऊँची नीची ज़मीन । लेकिन फ़्रांस की तरह अङ्गूर आदि की खेती यहाँ न थी । घास ही घास दिखलाई पड़ती थी । ग्राम सब वैसे ही सजे हुए थे । इसी तरह चार घण्टे चलने पर मकानों का एक बड़ा सिलसिला मिला । जब पन्द्रह मिनट तक गाड़ी चली गई और यह सिलसिला ख़तम नहीं हुआ तो हमने समझ लिया कि यही लन्दन है । अब गाड़ी एक नदी को पार कर ऐसी जगह से होकर जा रही थी जिसके दोनों ओर मकान और बीच में रेल की लाइन थी । दस मिनिट में गाड़ी विक्टोरिया स्टेशन में जा कर खड़ी हो गई ।

यह स्टेशन बम्बई के विक्टोरिया स्टेशन को नहीं पाता । यह धुएँ से काला होरहा था । यहाँ उतर कर हमने फ़्रांस का सिक्का बदल कर ब्रिटिश पाउंड ले लिया । आगे बढ़ कर

फाटक के पास पहुँचने पर कुछ स्त्रियों की भीड़ मिली, जो हम लोगों को शौक़ से देख कर मुस्करा रही थी, जिससे हमने फ़ौरन मालूम कर लिया कि यहाँ स्वतन्त्रता फ़्रांस से कम नहीं है। इतना बड़ा तो स्टेशन था, किन्तु चहल पहल कुछ भी न थी। इसका कारण शीघ्र समझ में आगया। हम स्टेशन के बाहर नहीं गये। इससे स्टेशन की इमारत नहीं देख सके। अब कप्तान साहब हम लोगों को लेकर एक ओर मुड़े। कुछ सीढ़ियाँ उतर कर हम लोग एक तहख़ाने में पहुँचे जहाँ बिजली की गहरी रोशनी हो रही थी और दिन का सा उजाला मालूम होता था। वहाँ एक लोहे की कोठरी (लिफ़्ट) में जाकर खड़े हो गये और कुछ पल में पाताल पहुँचे। अब कोठरी से बाहर निकले और सुरंगों से होते हुए एक छोटे प्लेटफ़ार्म में पहुँचे। थोड़ी देर में गाड़ी आई और उस पर सवार हो गये। इस गाड़ी में ख़ूब ही रोशनी थी और एक से एक अच्छी पोशाक पहने स्त्री-पुरुषों की भीड़ जमा थी। सब के हाथों में अख़बार था। यहाँ स्त्री, पुरुष, लड़के, मज़दूर, रोज़गारी, यानी समस्त जनता शिक्षित है। अख़बारों का यहाँ बड़ा ही प्रचार है। दुनिया के हर एक मामले से यहाँ के लोग जानकार हैं। हमारे यहाँ की तरह अज्ञ और मूर्ख नहीं हैं। ख़ैर, यही प्रसिद्ध ट्यूब रेलवे है और इधर ही से तमाम लोग आते जाते हैं, जिससे सड़कों पर अधिक भीड़ और किसी को कष्ट न हो।

पाँच मिनिट में हम लोग साउथकेन्सिंग्टन नामक स्टेशन पर उतर पड़े और सुरंगों से घूम कर "लिफ़्ट" पर आये और उस पर बैठ कर बाहर निकले। अब हम बम्बई की हार्नबी रोड की तरह चौड़ी, स्वच्छ और ऊँचे ऊँचे मकानों से सुशोभित सड़क पर जा रहे थे। यहाँ की तमाम सड़कें काठ की हैं, जिन पर धूना जमाया गया है। सड़क पर बिलकुल सन्नाटा था। मनुष्य का नाम नहीं। क़रीब सौ गज़ चल कर हम एक बड़े भारी चौराहे पर पहुँचे और एक बड़े मकान में दाख़िल हुए।

यह मकान, जिसका पता ८७ क्वीन्सगेट था, किसी अमीर अँगरेज़ का था और हिन्दुस्तानी आफ़िसरों के लिए दे दिया गया था। जब ग़रीब से ग़रीब यूरोपियन हमारे यहाँ के बड़े अमीर से भी अच्छे साफ़ मकान में रहता है, अच्छा खाता है, अच्छे कपड़े पहनता है, अच्छे पलँग पर सोता है तब फिर इस मकान की सजावट का क्या कहना। सीढ़ी से ऊपर चढ़ते ही एक बड़ा कमरा था जिसमें पुराने ढङ्ग के हथियार, जिरहबख़्तर इत्यादि, दीवारों पर सजे थे। तमाम मकान का फ़र्श मख़मल से ढका था। हर कमरे में, जो अत्यन्त स्वच्छ और सजे थे, तसवीरें लटक रही थीं, जिनमें बहुत सी नङ्गी औरतों की भी थीं। हम को एक कमरा दिया गया जिसमें दो पलँग, दो गद्दे, क़द्दे आदम शीशे, बग़ल की कोठरी में अँगरेज़ी ढङ्ग का पायख़ाना याने "कमोड" और नहाने का एक टब था। इसमें गरम और ठंडे पानी का प्रबन्ध भी था। साबुन, तौलिया इत्यादि सब चीज़ें वहाँ थीं। हिन्दुस्तानी ढङ्ग के भोजन का प्रबन्ध था। अब आप समझ सकते हैं कि सरकार ने हम लोगों को कैसे आराम से रक्खा है।

भोजन करके शाम को बड़े शौक़ से घूमने निकले। इतनी अच्छी सड़क और आदमी का नाम नहीं! किससे रास्ता पूछें? यह महानगर है या जन-शून्य नगर? यही सोच रहे थे कि एक वृद्ध अँगरेज़ सज्जन दिखाई पड़े। हम झट उनके पास पहुँचे। ये महाशय हिन्दुस्तानी फ़ौज में कर्नल थे और हिन्दुस्तानी बोल लेते थे। उनसे हमने पूछा, साहब हम सदर चौक जाना चाहते हैं। उन्होंने कहा। "आज पूलिसवालों ने स्ट्राइक कर दिया है' इससे तुमको रास्ता चलने में तकलीफ़ होगी। ख़ैर, सामने जो बाग़ है वहाँ से 'बस' पर चढ़ कर सीधे चले जाओ"। कुछ दूर चल कर उस बाग़ के पास पहुँचे। मोटर गाड़ियाँ, जिन के ऊपर भी बैठने की जगह होती है, बस कहलाती हैं। स्त्री-गार्ड से एक आने का टिकट लिया और बैठ गये। लड़ाई के कारण यहाँ के बहुत से काम स्त्रियाँ ही कर रही हैं। हमारे यहाँ की तरह स्त्रियाँ व्यर्थ की वस्तु नहीं हैं। रेलवे, बस, गोला-बारूद, दफ़्तर इत्यादि में सब जगह स्त्रियाँ ही काम करती हैं। स्त्रियों की एक फौज थी जो युद्धभूमि में घायलों की सेवा, असबाब का लारी द्वारा ढोना इत्यादि काम कर रही है। इस महाविजय में स्त्रियों का पूरा हिस्सा है। इसी से अब वोट देने का अधिकार और पार्लियामेंट की मेम्बरी भी स्त्रियों को मिल गई है।

यह बाग़ केन्सिंग्टन गार्डन है। इसी के एक महल

में महारानी विक्टोरिया ने जन्म पाया था । इसी में प्रिंस एलबर्ट की संगमर्मर की मूर्त्ति स्थापित है । दूसरी ओर अलबर्ट-हाल नामी बड़ा गोल कमरा है, जिसमें आठ हज़ार आदमी बैठ सकते हैं । यही देखते एक ओर बाग़ और एक ओर इमारतवाली सड़क पर थोड़ी दूर चल कर एक बड़े चौराहे में पहुँचे, जहां कई सड़कें मिली थीं । एक ओर बाग़ का फाटक था । मालूम हुआ, यह जगह हाइडपार्क-कार्नर है । हाइड-पार्क देखने के लिए हमारे सब साथी यहां उतर गये । लेकिन हम और आगे बढ़े । अब जैसे हम आगे बढ़ते जाते थे सड़क पर भीड़ बढ़ती जाती थी । इससे हम 'बस' से उतर कर पैदल चले । बड़े ही शौक़ से इस महानगर की सड़क पर थोड़ी दूर चल कर हम एक चौराहे पर पहुँचे । यह जगह पिकाडिली-सरकस थी, जो लन्दन का एक सदर चौक है ।

हम यहीं ठहर कर इधर उधर टहलने लगे । स्त्री-पुरुषों की खूब भीड़ थी । सभी अच्छे कपड़े डाटे प्रसन्न-चित्त थे । मानो दुःख-दारिद्र्य इस उद्योगी देश को सदा के लिए छोड़ कर हिन्दुस्तान चला गया है । स्त्रियां तो रङ्ग-बिरङ्गी पोशाकें पहिने, चेहरे पर पाउडर मले, सौन्दर्य्य में मदमाती अठलाती रम्भा, मेनका, उर्वशी को मात करती चली जारही हैं । पृथ्वी पर साम्राज्य होने से यहां की स्त्रियों ने भय, सङ्कोच इत्यादि बिलकुल छोड़ दिया है ।

इन्हीं बातों को देखते हम इस सड़क पर टहल रहे थे । जनता भी हमको मुसकरा मुसकरा कर देख रही थी । बहुत से साहब-मेम, जो हिन्दुस्तान में रह चुके थे, आते और थोड़ी सी बात कर हाथ मिला चले जाते थे । कुछ दुष्ट स्त्रियां भी आतीं और "कुछ चाहते हो" पूछतीं । एक हिन्दुस्तानी स्त्री भी उस पहाड़ी पर दिखाई दी । किन्तु अँधेरा हो गया था, इससे अच्छी तरह नहीं देख सके । एक बुड्ढे साहब आकर हमसे बात कर रहे थे । इतने में एक चीनी स्त्री एक अँगरेज़ के साथ जाती दिखाई दी । साहब ने कहा "देखो इस चीनी स्त्री ने अँगरेज़ से शादी की है" । हमने कहा "हां साहब पूरब और पश्चिम मिल रहा है"। साहब खूब हँसे और हाथ मिलाकर चले गये ।

अँधेरा हो गया था, इससे हम पैदल लौट पड़े । जब हाइड-पार्क के फाटक पर पहुँचे मन में आया इस प्रसिद्ध बाग़ को भी देखना चाहिए । फाटक से घुस कर भीतर पहुँचे । सामने ही काले पत्थर की ढाल तलवार लिये एक पुरुष की बड़ी मूर्त्ति एक चबूतरे पर स्थित है, जिसे लन्दन की स्त्रियों ने ड्यूक वेलिङ्गटन और उनके वीर साथियों की यादगार में बनवाया है । इस बाग़ में खूब भीड़ थी । तमाम बेंचों पर स्त्री-पुरुषों के जोड़े अँधेरे में विराजमान थे । बीच में एक बड़ी झील बनी है जो "सर्पेन्टाइन" कहलाती है । इस बाग़ का फाटक रात भर खुला रहता है । यह योरोपियन सभ्यता का विषमय फल है । हे ईश्वर ! यदि यही पश्चिमी सभ्यता है, जिसका अनुकरण हम लोग करना चाहते हैं, तो यह सभ्यता ग्रहण करने के पहले भारत को समुद्र में डुबा दे ! हमारा जो कुछ गौरव अभी बचा है वह हमारी सती-साध्वी स्त्रियों के सबब से है । इन्हीं बातों को देख कर हमारे देशवासी यूरोप को बदनाम करते हैं । किन्तु हर एक बात की तह में घुस कर राय क़ायम करना चाहिए । इस महानगर में पचीस लाख से अधिक स्त्रियां हैं । उनमें दस बीस हज़ार ही आवारा इधर उधर घूमती दिखाई देंगी । बाक़ी तमाम स्त्रियां दिन भर काम में लगी रहती हैं और काम से लौटते ही सीधी घर जाती दिखाई देती हैं । कितनी ही स्त्रियां तो विद्या-व्यसन में आजन्म ब्रह्मचारिणी रहती हैं । किन्तु हमारी स्त्रियों की रहन सहन और प्रकार की, तथा यहां की स्त्रियों की रहन सहन और प्रकार की है । यहां की स्त्रियों से आप पुरुषों की तरह मित्रता कर सकते हैं, उनके साथ अकेले बैठ सकते हैं और घूम सकते हैं । इसी से हमारे सङ्कुचित-हृदय भाइयों को यहां अधिक व्यभिचार दिखाई देता है ।

स्त्रियों के बारे में अभी और कुछ कहने की इच्छा होती है, क्योंकि एक विद्वान् का कहना है "यदि किसी जाति की दशा जानना चाहते हो तब उस जाति की स्त्रियों को देखो ।" किसी अँगरेज़ से जब हम से बात होती है और वह हमको असभ्य समझता है तब हम बड़े नाराज़ होते हैं । लेकिन जब हम गिरहबान में मुँह डाल कर देखते हैं तब लज्जित हो जाते हैं । बताइए क्या वह जाति सभ्य कहलाने का दावा कर सकती है, जिसमें पांच पांच, सात सात आठ आठ बरस के बच्चों का, नहीं नहीं दो दो एक एक बरस-वालों का, विवाह होता है । जहां साठ बरस का बूढ़

सोलह बरस की स्त्री से और सात बरस का बच्चा युवती से ब्याह करता है। जहाँ लाखों विधवायें अपने आँसुओं से पुण्य-भूमि भारत को नरक बनाये हैं, ऐसे देश की जो दुर्दशा हो थोड़ी है। हमारे यहाँ लाखों उत्साही युवक बिना ब्याह रह जाते हैं, पर धनी लोग एकाधिक पत्नी ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ की स्वात्माभिमानवाली स्त्रियाँ अपना वर स्वयं चुनती हैं और उस पुरुष से (चाहे वह महाधनी या सम्राट् ही क्यों न हो) कभी ब्याह नहीं करेंगी जिसके एक स्त्री मौजूद हो। जिस देश में इस स्त्री-रूपी महाशक्ति का ऐसा नाश किया गया हो उसकी उन्नति की क्या आशा है। सब से बड़ा यही भेद है जो यूरोप और हिन्दुस्तान में है। इसी चिन्ता में ग्रस्त हम डेरे पर आये और भोजन करके सो गये।

दूसरे दिन सबेरे उठ कर भोजनादि से निश्चिन्त हुए। दस बजे कप्तान साहब तशरीफ़ लाये। उन्होंने कहा कि आज के प्रोग्राम में यहाँ का बड़ा जोलाजिकल गार्डन देखना है। ख़ैर चल पड़े और स्टेशन पर आकर पातालवाली रेल पर सवार हुए। जो बाहर आये तो अपने को शहर के किनारे पाया। यह बाग़ कई मील के घेरे में है। लोग कहते हैं कि यह दुनिया भर के जोलाजिकल गार्डनों से बड़ा है। यहाँ सब तरह के ज़िन्दा जानवर हैं—जैसे सिंह, शेर, चीता, गैंड़ा, ध्रुव के सफ़ेद रीछ आदि। आज इतवार था, इससे ख़ूब भीड़ थी। चार बजे शेरों को मांस दिया गया, जिसे देखने को भीड़ और भी बढ़ गई थी। शाम को हम चल दिये और पाताली रेल से होकर पिकाडली के पाताली स्टेशन पर उतर पड़े। ख़ूब रोशनी थी। भीड़ भी थी। साफ़ा बांधे हम लोगों को जनता बड़े शौक़ से देखती थी। इतने में एक अमीर अँगरेज़, जिनके साथ लकोदक पोशाकें पहने छः सात स्त्रियाँ थीं, हमारे पास आये और पूछा "कोई अँगरेज़ी भी जानता है"। हम सामने आये और कहा 'साहब हम कुछ जानते हैं।"

"आप लोग कब आये और इस शहर को कैसा पाया"।

"साहब ! यह बहुत बड़ा शहर है। हम लोग कल आये और इस नगर को देख कर बहुत ख़ुश हुए"

"यहाँ की कौनसी चीज़ तुमको पसन्द है ? हिन्दुस्तान से इसमें क्या फ़रक़ है। ?"

"साहब यदि आप यह पूछते हैं तो यहाँ की जो चीज़ हमको सबसे अधिक आकर्षित करती है वह यहाँ की दौलत और एज्युकेशन है और हिन्दुस्तान से भेद यहाँ की स्त्रियों में है। हमारी ग़रीब स्त्रियाँ सादा भोजन खाती हैं, सादे वस्त्र पहनती हैं, हमारी आज्ञा में चलती हैं। यहाँ ज़रा अपने साथ की स्त्रियों को देखिए (स्त्रियों की ओर अँगुली उठा कर) गोया सब काउन्टेस, डचेज़ या क्वीन हैं। स्त्रियाँ क्या हैं, परियों को मात कर रही हैं।"

यह सुन कर सब स्त्रियाँ ख़ूब हँसी। साहब भी प्रसन्न हुए। 'थैंक्यू' कह कर हाथ मिलाया और चल दिये। हम लोगों ने भी घर पर आकर भोजन किया और सो गये।

तीसरे दिन जब कप्तान साहब आये तब हमने कहा — "साहब ! हम लोगों ने अभी शहर देखा ही नहीं, क्योंकि ट्यूब रेलवे से जाने से हम लोग शहर तो देख ही नहीं सकते।" साहब ने कहा, अच्छी बात है। तब हम लोग सीधे विक्टोरिया स्टेशन पर पहुँचे। आज इस स्टेशन को बाहर से देखा। अच्छी चहल पहल थी। जैसा यह बड़ा शहर है उसी के अनुसार स्टेशन भी है। किन्तु यह बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस को नहीं पा सकता। यहाँ साहब ने एक 'बस' किराये की और कहा, शहर के तमाम बड़े बाज़ार और बड़ी सड़कों की सैर करेंगे। हम लोग प्रसन्न-चित्त बैठ गये और 'बस' चल पड़ी।

अब हम लोग ख़ूबसूरत और भीड़वाली "ग्रासवेनर" सड़क से परिचित हाइडपार्क कार्नर पहुँचे और पिकाडिली की सुन्दर सड़क से निउबान्ड स्ट्रीट होकर "आक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट" नामी बड़ी सड़क से गुज़रे और फिर चेरिंग क्रास से मुड़ कर लीस्टर इस्कायर होते हुए "ट्राफलगार इस्क्वेयर" का आनन्द लेते स्ट्रैंड की बड़ी सड़क देखते सेंट-पाल के महागिरजा से होते हुए क्वीन विक्टोरिया स्ट्रीट से होते रायल एक्सचेंज और बैंक आफ़ इँगलेंड के चौरहे पर, जहाँ लोगों की ठसाठस भीड़ थी, उतर पड़े। एक ओर एक पत्थर की बड़ी इमारत थी। कप्तान साहब ने कहा,

यह मकान "मेसनहाउस" कहलाता है, जहां मेयर आफ़ लन्दन रहते हैं। आज इसको देखेंगे। इन सड़कों पर, जिनका चक्कर हमने आज लगाया है, प्रायः लन्दन के बड़े बाज़ार हैं और इन्हीं के आसपास की सड़कें ख़ास लन्दन हैं, जिनका वर्णन हम क्रम क्रम से करेंगे। क्या ही आनन्द आया जिस समय हम 'बस' पर चढ़े इन सड़कों से होकर जा रहे थे। बेचारी छोटी सी क़लम उस दृश्य को दिखलाने में असमर्थ है। मकान जो दोनों ओर बने थे चार, पांच, छः, मंज़िल के थे। उनमें अनेक बड़ी और अच्छी इमारतें भी थीं। कलकत्ता-बंबई में बड़ी सड़कों को देख कर इसका अनुभव कर सकते हो। लेकिन अच्छे अच्छे कपड़ों से सुसज्जित प्रसन्नचित्त स्त्री-पुरुषों की भीड़, साफ़ सड़क, बड़ी और झकाझक दूकानें, बड़े बड़े धनियों के आफ़िस, कारबार में डूबा मनुष्य-समूह, यह सब क्या है मानो जानदार मनुष्यरूपी सागर लहरें मार रहा है। इसका अनुभव हिन्दुस्तान के नङ्गे तथा अर्द्धनग्न, और दुखी चेहरेवाले, गन्दे घर और गर्द गुब्बारवाली सड़कों के रहनेवाले आप लोग, बिना देखे, नहीं कर सकते। इन्हीं सड़कों पर और इसके आस पास संसार भर से अधिक धन जमा है। यही नहीं। जैसे यह महान जाति रोमन सभ्यता तथा रोमन रीति को ग्रहण कर उन्नति के शिखर पर पहुँची है वैसे ही इसने अपने बड़े लोगों की मूर्तियां (स्टेच्यूज़) स्थापित करने में रोमन लोगों को मात कर दिया है। जिधर देखिए उधर, हर बड़ी सड़क पर, हर कोने में, मार्लबर्ग, वेलिंगटन, नेलसन आदि वीर सेनापति, पील, पिट, ग्लैडस्टन, डिसरायली आदि मंत्रिगण, एलिज़बेथ आदि राजा-रानियों की मूर्तियां स्थापित हैं, जिनका वर्णन हम कहां तक करेंगे। अँगरेज़ बच्चे के लिए इतना ही काफ़ी है कि वह इन सड़कों पर घूम कर इन मूर्तियों को देखे और यहां के बड़े बड़े म्यूज़ियम की सैर कर डाले। फिर उसमें देश भक्ति और जानकारी की क्या कमी रहेगी। वह हमारे यहां के उम्र भर पढ़नेवाले से कम न रहेगा।

मेसन हाउस

यह एक पत्थर की बड़ी और साधारण इमारत है। इसकी दीवारों पर इँगलेंड की ऐतिहासिक घटनाओं की बड़ी बड़ी तसवीरें खींची गई हैं। फ़िनीशियन लोग नङ्गे बदनवाले ब्रिटनों को कपड़े दे रहे हैं। किङ्ग जान अपने सर्दारों को प्रसिद्ध मैगनाकार्टा (सनद) दे रहे हैं, जिससे इस देश में प्रजाधिकार की जड़ पड़ी। बादशाह चार्ल्स प्रथम को पार्लियामेन्ट के सिपाही क्रामवेल की आज्ञा से पकड़ रहे हैं। रानी एलिज़बेथ की सवारी निकल रही है इत्यादि। अब एक नई घटना की नई तसवीर बनाई गई है जिसमें बादशाह जार्ज पञ्चम, प्रिंस आफ़ वेल्स और जनरल हेग के साथ, फ़्रांस के एक टीले पर खड़े महायुद्ध देख रहे हैं। बहुत से अँगरेज़ लड़के इन तसवीरों को देख रहे थे और साधारण जङ्गली अवस्था से निकल कर ब्रिटिश जाति की इस असीम उन्नति पर आश्चर्य कर रहे थे। हम लोग बाहर आये और एक मंज़िलवाले इँग्लेंड के महा-धनागार (बैंक आफ़ इँग्लेंड) पर एक नज़र डालते पैदल चल पड़े।

सेंटपाल केथेड्रल

यह गिरजा लन्दन की बड़ी आग के बाद सोलहवीं सदी में बनाया गया था। यह सफ़ेद पत्थर का बना है और लन्दन की बड़ी इमारतों में से है। इसकी लंबाई ५ फ़ीट, चौड़ाई २५० फ़ीट है। इस पर एक गोलाकार बड़ा गुम्बद है, जिसकी उँचाई ३६५ फ़ीट है। इसमें दो छोटे मीनार और भी हैं, जिनमें से एक में जो घंटा लटकता है वह इँग्लेंड भर में बड़ा है। इसका वज़न १७ टन है। इसके चारों ओर, जहां कई सड़कें मिली हैं, लन्दन का एक बड़ा बाजार है। कुछ सीढ़ियां तय कर हम इसके बड़े फाटक की बड़ी खिड़की से भीतर घुसे और एक बड़े भारी हाल (कमरे) में पहुँचे, जहां असंख्य कुर्सियां रक्खी थीं। सामने एक चबूतरे पर हिन्दू-मन्दिर की तरह क्रास पर ईसा की मूर्ति है। यहां ड्यूक वेलिंगटन, सिन्ध-विजयी चार्ल्स नेपियर, लार्ड राबर्ट्स आदि ऐतिहासिक पुरुषों और न्यूटन आदि वैज्ञानिकों की क़ब्रें हैं। हमको इन चीज़ों को ध्यान से देखते हुए देखकर लम्बा अबा पहने एक पादड़ी साहब आये और पूछा, "क्या तुम इन महापुरुषों को जानते हो?" हमने कहा, "महाशय! हमको इतिहास से अत्यन्त ही प्रेम है।" फिर उन्होंने पूछा, "क्या तुम इँग्लेंड का इतिहास जानते हो?" हमने कहा, "महाशय, मैं बीस बरस से

इतिहास जानने का यत्न कर रहा हूँ और पृथ्वी की सभी जातियों के इतिहास से प्रेम है।" फिर हमने क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स, क्रामवेल आदि की समाधियों के बारे में दरियाफ़्त किया तो उन्होंने कहा कि ये सब वेस्टमिनिस्टर एबे में हैं। फिर ये महाशय हमारे साथ ऊपर आये और गिरजाघर के बाजे को दिखा कर कहा, "यह बाजा संसार भर में सबसे बड़ा है।" हमारे साथी सब ग़ायब थे, इससे हमने पूछा तो उन्होंने कहा, सब लोग ऊपर गये हैं। हमने उनसे हाथ मिलाया और धन्यवाद देकर सीढ़ी की ओर बढ़े। सीढ़ी के पास कप्तान साहब की मेम बैठी थीं। उन्होंने हमसे पूछा, तुम इन साहब के साथ क्यों घूमते थे। हमने कहा, ये सज्जन हमको गिरजा दिखाते थे। उन्होंने कहा, ये साहब गिरजा के सब से बड़े पादड़ी हैं और लन्दन के बड़े लोगों में से हैं। हमने मन ही मन मुग्ध होकर पादड़ी साहब को धन्यवाद दिया। जहाँ हिन्दुस्तान में साधारण अँगरेज़ हमसे बात नहीं करते वहाँ इतने बड़े पद पर स्थित होकर इन पादड़ी महाशय ने हमसे मित्र का सा बर्ताव किया।

थोड़ी सी कड़ी मिहनत उठा कर सीढ़ियाँ तय करके हम इस गुम्बद की पहली छत पर पहुँचे जो ढाई सौ फ़ीट ऊँची थी। यहाँ हमारे सब साथी मौजूद थे और गिरजा के एक कर्मचारी शहर दिखा रहे थे। यहाँ हम ने ज़रा ठहर कर चारों ओर जो दृष्टि दौड़ाई तो वह दृश्य दिखलाई पड़ा जिसे जन्म भर नहीं भूलेंगे। यह महानगर हमारे बिलकुल नीचे था और सारा शहर शीशे की तरह यहाँ से दिखाई देता था। मानो घरों का महासागर है, जिसकी सड़कों पर मनुष्यों तथा गाड़ियों का आवागमन लहर की तरह प्रतीत होता था। बीच बीच में ऊँची ऊँची मीनारें विचित्र शोभा दे रही थीं। पश्चिम की ओर एक पहाड़ी थी जो यहाँ से पन्द्रह मील दूर थी और उस पर भी बस्ती थी। इस शहर की लम्बाई चौड़ाई क़रीब तीस तीस मील थी। बीच में टेम्स नदी सांप की तरह चक्कर काटती बह रही थी। इसी के पास एक और छोटा गिरजा था जो सोलहवीं सदी की बड़ी आग से बच गया था, जिसमें महाकवि गोल्डस्मिथ की समाधि थी। अब हमने गिरजे के सिरे पर चढ़ने की इच्छा प्रकट की। इसकी सीढ़ियों पर ताला बन्द था, जो खोला गया। कुछ सीढ़ियों के बाद लोहे की सीधी सीढ़ी थी। हिम्मत करके इस पर भी चढ़ गये और अपने को ३६० फुट ऊँचे पर पाया। अब उतर आये और बहुत थक जाने से 'बस' पर सवार होकर डेरे पर आये और सो गये।

पार्लियामेन्ट और वेस्टमिनिस्टर एबे।

चौथे दिन ठीक दस बजे चल "ट्राफलगार स्क्वेयर" पर 'बस' से उतर पड़े। लन्दन के इस प्रधान चौक में जहाँ "स्ट्रैंड" "काक्तपर" "सेन्टमार्टिन" "पार्लियामेन्ट स्ट्रीट" आदि कई ख़ास सड़कें मिलती हैं और एक छोटा मैदान बनाती हैं। १४५ फुट ऊँचा लोहे का मीनार है जो "ट्राफलगार" की सामुद्रिक महा विजय की यादगार में बनाया गया था और जो फ़्रांसीसी तोपों से बना है। इस पर इँगलेंड के महाविजयी एडमिरल लार्ड नेलसन खड़े हुए बड़े आतङ्क से इँगलिश चैनल की ओर देख रहे हैं। इसके नीचे चारों कोनों पर लोहे के चार सिंह बैठे हैं। मानों वे ब्रिटिश जाति के नौबल से चारों दिशाओं को त्रस्त कर रहे हैं। यहीं पर सिपाही-विद्रोह के जीतनेवाले जनरल हेवलाक, सिन्ध-विजयी चार्ल्स नेपियर तथा जनरल गार्डन की मूर्तियाँ हैं। इन्हें देखने के बाद पार्लियामेंट स्ट्रीट पर चले। इसी सड़क पर एक ओर प्रसिद्ध "वार-आफ़िस" दूसरी ओर "इण्डिया आफ़िस" आदि सुशोभित हैं। कुछ आगे बढ़ कर हम पृथ्वी के बड़े हिस्से पर शासन करनेवाली पार्लियामेण्ट महासभा की इमारत के नीचे पहुँचे।

यह इमारत ठीक टेम्स नदी के किनारे पर बनी है और पत्थर की है। यह हाउस सन् १८४० ईसवी में तीस लाख पाउंड ख़र्च करके बनाया गया था और आठ एकड़ ज़मीन घेरे है। नदी की ओर इसकी लम्बाई ९४० फ़ीट है। इसमें एक ऊँचा मीनार भी है, जिसकी उँचाई ३२७ फ़ीट है। इसी से मिला हुआ टेम्स नदी पर एक नफ़ीस पुल भी है, जो लोहे का है और जिसके किनारे रोमन लोगों से लड़ कर जान देनेवाली ब्रिटनों की रानी बोडेशिया की मूर्ति है। इस पुल से बिजली से चलनेवाली ट्रामगाड़ी चला करती है। इसके सामने एक छोटी सी जगह है, जहाँ पार्लियामेण्ट के नामी मन्त्रियों की मूर्तियाँ हैं। अब हम लोग

आगे बढ़े और एक बड़े विशाल फाटक के पास पहुँचे। यहाँ इँगलैंड के प्रसिद्ध प्रजातन्त्रवादी वीर क्रामवेल की मूर्ति खड़ी है। इस फाटक से भीतर पहुँचे और एक 'पास' लेकर एक बड़े कमरे में दाख़िल हुए। इसी कमरे से हाउस आफ़ कामन्स और हाउस आफ़ लार्ड्स में जाने का रास्ता है। इस कमरे की बड़ी दीवार पर दो बड़े चित्र खींचे गये हैं। एक में ट्राफलगार के युद्ध में घायल सेनापति नेलसन पड़े हैं। दूसरे में वाटरलू की लड़ाई में नेपोलियन को जीत कर सेनापति वेलिंगटन और ब्लूकर हाथ मिला रहे हैं। इसका आशय यह है कि इन्हीं युद्धों को जीत कर ब्रिटिश जाति संसार में प्रधान हुई है। एक दरवाज़े से घुस कर हाउस आफ़ कामन्स में पहुँचे। यह कमरा पहले कमरे के समान बड़ा था। दोनों ओर मेम्बरों के बैठने के लिए थियेटर की तरह मखमल से मढ़ी गद्दियाँ थीं। हाउस आफ़ लार्ड्स भी ऐसा ही था, किन्तु यहाँ सभापति के बैठने की जगह दो सिंहासन थे जहाँ राजा-रानी बैठते हैं। अब गाइफ़ाक्स की कोठरी (जिसने पार्लियामेण्ट को बारूद से उड़ा देने का यत्न किया था) देख कर बाहर आ गये और इसी के पास वेस्टमिनिस्टर में पहुँचे।

यों तो इस शहर में, जो इमारतों का जङ्गल है, अनेक इमारतें देखने और लिखने योग्य हैं, किन्तु यही तीन इमारतें विशेष वर्णनीय हैं। सेन्ट पाल केथेड्रल और पार्लिमेंट हाउस का हाल तो लिख चुके हैं। तीसरी यही वेस्टमिनिस्टर है। इस गिरजे की बुनियाद सन् १०६७ में बादशाह नार्मन विलियम रूफ़स के समय में डाली गई थी और फिर समय समय पर यह बनता रहा। इसका इँग्लेंड के इतिहास से बहुत घना सम्बन्ध है। इँग्लेंड के राजा लोग यहाँ गद्दी पर बैठते हैं। यहीं वह सिंहासन है जिस पर वह पत्थर रक्खा है जिसके बारे में लोगों का ख़याल है कि यह पैलेस्टाइन से स्काटलेंड में लाया गया था और फिर स्काटलेंड से इँग्लेंड में लाया गया। इँग्लेंड के नार्मन घराने के, स्टुआर्ट घराने के और वर्तमान हनोवर वंश के प्रायः सब बादशाहों की समाधियाँ यहीं हैं। तमाम बड़े बड़े मन्त्री, राजनीतिज्ञ, शेक्सपियर आदि कवि यहीं महानिद्रा में सो रहे हैं। जिस समय पादड़ी साहब एक एक राजा-रानी आदि के नाम लेकर समाधि दिखा रहे थे, इँग्लेंड का इतिहास दृष्टि के सामने घूम रहा था। जिन प्रतापी राजाओं और राजनीतिज्ञों ने इँग्लेंड के इतिहास को उज्ज्वल किया है, सब इसी ढाई हाथ पृथ्वी पर पड़े हैं और संसार की असारता दिखा रहे हैं।

यह पत्थर का बना एक बड़ा और शानदार गिरजा है। फाटक के दोनों ओर दो मीनारें हैं। एक ओर बड़ा मीनार, जो क्लाकटावर कहलाता है, ३१६ फ़ीट ऊँचा है। इस में एक बड़ी घड़ी लगी है जिसमें घण्टेवाली सुई नौ फ़ीट और मिनटवाली सुई १४ फ़ीट की है। इसका घड़ियाल, जो समय बताता है, १३॥ टन भारी है। इसकी छत पर निहायत बारीक जाली खोदी हुई है। अँगरेज़ों का ख़याल है कि यह दुनिया भर में अच्छी है।

ये तीन बड़ी इमारतें और असंख्य अच्छी इमारतों को देख कर हम हिन्दुस्तानियों को आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि हमारे देश में इनकी कमी नहीं। अजण्टा और एलोरा की गुफायें, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि के विचित्र मन्दिर, देवगढ़, चित्तौर आदि के प्रसिद्ध क़िले, उदयपुर, जयपुर के राजपूत-राजाओं के महल, आबू पर बने जैन-मन्दिर, मुसलमान बादशाहों के क़िले, मक़बरे, मसजिद आदि, आगरे का ताज, ये सब ऐसी इमारतें हैं जिनको देख अँगरेज़ ख़ुद आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। ताज की शान तथा उसकी पच्चीकारी की कारीगरी की बराबरी करनेवाली इमारत तो लन्दन क्या यूरोप भर में नहीं है। हिन्दुस्तानी जिन बातों से आश्चर्यान्वित होते हैं वे यहाँ का व्यापार, राजनैतिक सङ्गठन, धन, विद्या, फ़ैशन, स्त्री, सफ़ाई आदि हैं। अभी समय था, इससे लन्दन के प्रसिद्ध क़िले टावर की ओर चले। 'बस' पर सवार हुए और "स्ट्रैंड स्ट्रीट" से हो कर "केनन स्ट्रीट" होते हुए टावर के पास उतर पड़े।

बाहर हम लोगों के लिए 'पास' लिया गया और फाटक पर पहुँचे, जहाँ पुराने ढङ्ग की वर्दी पहने सिपाही लोग पहरा दे रहे थे। उन्हीं में से एक आफ़िसर हमारे साथ हो गया, और हम लोग आगे बढ़े। यह क़िला पत्थर और चूने का बना है। यह मज़बूत भी है और लन्दन की पुरानी इमारतों का नमूना है। यह समय समय पर क़िला, महल, क़ैदख़ाने आदि के काम में लाया गया है। इसमें इँग्लेंड के बहुत से बड़े लोग मारे गये हैं, जिनमें

तीन रानियाँ भी शामिल हैं। फाटक से घुस कर हम एक गली में जा रहे थे जिसके एक ओर नदी की तरफ़ सफ़ील थी और दूसरी ओर इमारत का सिलसिला। सिपाही ने नदी की ओर एक फाटक दिखाया और कहा, यह ट्रेटर्स गेट है, जिधर से देशद्रोही लोग लाकर यहाँ क़ैद किये जाते थे। इस फाटक के सामने फिर एक बड़ा फाटक था, जिसमें घुस कर बग़ल की एक सीढ़ी से ऊपर पहुँचे। सिपाही ने कहा, यह कोठरी क़ैदख़ाना है जहाँ अर्ल एसेक्स, वाल्टर रेले आदि क़ैद थे। हमने सिपाही के कन्धे पर हाथ रख कर पूछा "क्यों यार! अर्ल एसेक्स तो प्रसिद्ध रानी एलिज़बेथ के कृपापात्र थे, वे क्यों क़ैद किये गये"! सिपाही ने हँस कर जवाब दिया "राजाओं के कृपापात्र हमेशा ख़तरे में रहते हैं"। नीचे उतर कर फिर हम लोग क़िले के बीच में पहुँचे। इस क़िले के बीच में एक ऊँची इमारत बनी है और उसके चारों ओर मैदान है। इसी मैदान में घूम रहे थे कि सिपाही ने एक जगह दिखाई जहाँ थोड़ी सी ज़मीन ज़ंजीरों से घिरी थी और बीच में एक पत्थर गड़ा था। यही क़िले का वधस्थान था, जहाँ तीन रानियों तथा कितने ही बड़े लोगों का सिर काटा गया है। दो एक और क़ैदख़ाने देख कर हम बीचवाली बड़ी इमारत की ओर बढ़े।

इसके पास ही एक टूटी प्राचीन दीवार का हिस्सा पड़ा था। हमने उधर देख कर सिपाही से पूछा तो उसने कहा "यह रोमन दीवार का भग्नावशेष है"। अब सीढ़ियाँ चढ़ कर हम इस इमारत में पहुँचे। इसमें कई कमरे थे और एक दूसरे में जाने का रास्ता था। यह इमारत इँग्लैंड को जीतनेवाले नार्मन बादशाह "विलियम दी काङ्करर" ने बनवाया था। अब यह पुराने कवच तथा हथियारों की प्रदर्शिनी है। पुराने भाले, तलवार, कमान साफ़ किये रक्खे हैं। एक पैदल सिपाही कवच पहने खड़ा है, जिसका वज़न पैंतीस सेर है और एक सवार भी बनाया गया है। एक स्थान पर सिक्खों के शस्त्रादि भी रक्खे हैं, जिनमें मुदकी की लड़ाई में छीनी दो तोपें भी हैं, जो आज कल की तोपों से कम नहीं हैं और जिससे मालूम होता है कि हमारे यहाँ लोहे का कैसा अच्छा काम होता था। अब थक कर हम लोग लौट पड़े। रास्ते में सिपाही ने पूछा, सब देख लिया। हमने कहा "जवाहिरात तो देखे ही नहीं जिनमें कोहनूर भी है"। सिपाही ने कहा, "अफ़सोस कि युद्ध के कारण ये चीज़ें बन्द हैं"।

होटल।

लौट कर टावर-स्ट्रीट पर आये और पाताली स्टेशन पर पहुँचे। पास ही एक क़रीब ढाई सौ फ़ीट ऊँचा मीनार था जो सोलहवीं सदी की बड़ी आग की याद में बनाया गया था। गाड़ी पर बैठ कर साउथ केन्सिंगटन पर उतरे। अभी चार बजे थे, इससे इच्छा हुई कि ज़रा बाज़ार की सैर करें। फिर क्या था, 'बस' पर सवार हो कर पिकाडिली पहुँचे। अभी तक हमने कोई होटल नहीं देखा था। इससे एक बड़े होटल में पहुँचे। हज़ारों मेज़ें लगी थीं। रोशनी दिन को मात कर रही थी। बीच में बैंड बज रहा था। हज़ारों नाज़नियाँ बैठी थीं। सभी के हाथ के शीशे में लाल परी नाच रही थी। हमारे पास एक ख़ूबसूरत नौकरानी आई और एक काग़ज़ दे गई। हमने "टी" पर निशान कर दिया। ख़ैर चाय आई और हमने पीकर एक शिलिङ्ग दाम दिया और चलते बने। कहाँ हमारे यहाँ गिचपिच चौके में कपड़े उतार कर भोजन, कहाँ यह स्वर्ग-सुख!

घर की ओर लौटते हुए हम हेरड्स की मशहूर दूकान के नीचे पहुँचे, जो एक स्ट्रीट घेरे हुए है। हमारे यहाँ भी "ह्वाइट वे लैडला" इत्यादि की दूकानें कलकत्ते में हैं। लेकिन इस महा-दूकान को वे नहीं पा सकतीं। दुनिया में कौन सी वस्तु है जो यहाँ नहीं बिकती। सैकड़ों सुन्दरी युवतियाँ नौकर हैं। इधर उधर घूम कर हमने दूकान की सैर की। एक जगह दो क़द्दे आदम सङ्गमरमर की नक़्शी स्त्रियाँ बनी थीं। नफ़ीस कारीगरी थी। हमने पूछा "महाशय, इसका दाम क्या होगा"। जवाब मिला—'ये इटली की बनी हैं। दोनों के दाम एक हज़ार पाउण्ड हैं"। फिर हम ने पूछा "क्या ये बिक जायँगी"? कर्मचारी ने कहा "दूसरे हफ़्ते आओगे तो इन्हें नहीं पाओगे"। बस इसी से यहाँ के धन और विलासिता का अन्दाज़ा लगा लीजिए। फिर हम बुक-डिपार्टमेंट की ओर आये और दो एक बन्डल तसवीरें ख़रीदीं और आकर एक टेबिल के पास एक कुरसी पर बैठ गये। फ़ौरन एक सुन्दरी स्त्री हमारे पास आई और हमने लेमनड मांगा। लेमनड बड़ा ही अच्छा था और

उसे हम पीरहे थे कि दस बारह स्त्रियों ने हमें घेर लिया। हमको भी दिल्लगी की सूझी तो हमने कहा "हमें क्या देखती हो, क्या हम तमाशा हैं?" एक ने कहा "नहीं नहीं मिस्टर! आप परदेशी हैं"।

हम—"लेकिन देखने लायक तो तुम लोग हो, क्योंकि इतनी तो खूबसूरत हो, फिर इतनी बनी ठनी हो, ईश्वर जाने क्या चाहती हो"।

एक—"हम चाहती हैं कि हमारे पर निकल आते और हम आसमान पर उड़तीं।"

हम—"पर तुमको ईश्वर देदेता, लेकिन वह डरता था कि तुम आसमान से सूर्य, चन्द्रमा को तोड़ कर जेब में रख लेगी; दुनिया को तकलीफ़ होगी। इससे उसने पर तुम्हें नहीं दिये"। इस पर सब खिलखिलाकर हँसने लगीं और हम भी डेरे पर पहुँच खा पी कर सो गये। सोते वक्त हमसे कहा गया कि कप्तान साहब कह गये हैं कि कल आठ बजे तैयार रहना; बादशाह से मिलना है।

बकिंघम पैलेस

आठ बजे सबेरे हम लोग लैस थे। इतने में एक बड़ी मोटर आई। सब लोग बैठ गये और हाइड पार्क कार्नर के सामने एक फाटक से घुस कर एक बाग़ में चले जो सेन्ट जेम्स पार्क है और दस मिनट में बकिंघम महल के सामने पहुँच गये। यह एक मामूली ढङ्ग का लम्बा चौड़ा महल है और पत्थर का बना है। इसके सामने का मैदान एक लोहे के जँगले से घिरा है। पास ही महारानी विक्टोरिया की सङ्गमर्मर की मूर्त्ति है। यहाँ जँगले के बाहर खूब भीड़ जमा थी। फाटक पर पुराने राजसी ढङ्ग की वर्दी पहने सिपाहियों का पहरा था और थोड़ी सी फ़ौज खड़ी थी। बैण्ड जातीय गीत गा रहा था। हम लोग सदर फाटक से घुसे और भीतरी आँगन को पार कर एक बड़े हाल (कमरे) में पहुँच कर खड़े किये गये। यहाँ हमारी गिनती हुई और हम महल के भीतर पहुँचे। तमाम जगह सजी हुई और मख़मल से ढकी थी। साधारण अमीर अँगरेज़ों का मकान सजावट में बे-मिसाल रहता है, फिर इस महल का क्या कहना है। एक गली से होकर हम आगे बढ़े। बहुत सी दिग्वसना नारियों की मूर्तियाँ इधर उधर रक्खी थीं। इस गली के बाद सीढ़ियों से उतर कर एक फाटक पर हम लोग क़तार में खड़े किये गये। दस मिनट तक चुप चाप खड़े रहे। इतने में आवाज़ आई "किङ्गइम्परर" और जैसे ही हमने मुड़ कर उधर देखा, एक साधारण क़द के पुरुष को अपने सामने पाया। यही जार्ज पञ्चम, इँगलेंड के महाराज और भारत के सम्राट्, थे।

सम्राट् एक सुडौल किन्तु दुबले पतले मनुष्य हैं। चेहरे पर बुढ़ापे का चिह्न है। लेकिन इनकी आंखों में कोई असाधारण बात है जो साधारण मनुष्य में नहीं हो सकती। साथ में हिन्दुस्तानी जाननेवाले इण्डिया-आफ़िस के एक उच्च कर्मचारी थे। सम्राट ने कुछ बातें हम लोगों से कहीं, कुछ बातें पूँछी और कृपापूर्वक हाथ मिलाकर चले गये। जो बातें उन्होंने कीं बड़े मृदु स्वर से, जिनका मतलब कर्मचारी महाशय बतलाते जाते थे। अब हम लोग उधर से निकलकर महल के भीतरी आँगन में पहुँचे, जहाँ अच्छी भीड़ जमा थी। महल के फाटक पर एक छोटा मण्डप सा बना था, जहाँ सम्राट् अपने बड़े बड़े फ़ौजी आफ़िसरों के साथ खड़े थे। यहाँ कई सिपाहियों को, जिन्होंने युद्ध में वीरता दिखलाई थी, सम्राट् ने विक्टोरिया-क्रास दिया। कुछ विधवाओं को भी वि०क्रास दिया गया, जिनके पति युद्ध में बड़ी वीरता दिखा कर देश के लिए मारे गये थे। इस पर खूब करतल-ध्वनि हुई। दो घंटे में कोई पांच सौ आदमियों को पदक दिये गये। दरबार बरख़ास्त हुआ और हम लोग भी मोटर पर सवार होकर तीन बजे घर आये।

यहाँ आकर देखा कि मिस्टर सेन (जो लन्दन में भारतीय छात्रों की देख रेंख रखते हैं) बैठे हैं। उन्होंने कहा, आज चार बजे ८१ क्रामवेल रोड पर आप लोगों की चाय-पार्टी है। चार बजे हम लोग ८१ क्रामवेल रोड पर, जो इण्डिया हाउस का मकान है, पहुँचे। दरवाज़े से एक अँगरेज़ लड़का हमको भीतर ले गया। सीढ़ियों से ऊपर एक बड़े कमरे में पहुँचे। वहाँ पहले हमारी दृष्टि एक तसवीर पर पड़ी, जिसमें कुछ भद्दे फ़क़ीर कुछ भद्दे कपड़े पहने स्त्रियों को ठग रहे हैं। एक तसवीर भारतीय नरेशों की थी। और दो एक भारत की दुर्दशा दिखानेवाली तसवीरों से कमरा सुसजित था। यहाँ हमारे भारत के पुष्प थोड़े से विद्यार्थी उपस्थित थे। दो चार मेमें भी थीं। हमने कुछ पञ्जाबी भाइयों से प्रेम से बात की। दो एक

बंगाली भी प्रेम से मिले। और भी कुछ लोग काले काले मूँछ-मुड़ाये वहाँ दिखाई दिये। खैर, इन बातों को अधिक न बढ़ा कर यही लिखते हैं कि चाय पीकर सबसे मिल कर घर आये और भोजन कर सो रहे।

छठे दिन जो ठीक दस बजे कप्तान साहब आये तो मालूम हुआ कि आज यहाँ के महान् शस्त्रागार ऊलविच आरसेनल को देखने के लिए 'पास' आया है। विक्टोरिया स्टेशन से गाड़ी पर बैठे और नदी पार कर शहर के पूर्वी हिस्से को पार करते चार या पाँच स्टेशन तय करके "ऊलविच" स्टेशन पर उतर पड़े। यहाँ के कारख़ाने में १० हज़ार आदमी काम करते हैं, और इन्हीं मज़दूरों से यह क़सबा आबाद हो गया है। दोपहर का समय था। इससे इसके बाज़ारों और भोजनालयों में खूब भीड़ थी। फाटक पर बड़ा ही जमघट था, जहाँ मज़दूर-दल के लोग लेकचर दे रहे थे।

जिस तरह हमारे देश में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, बढ़ई, लोहार आदि जातियाँ हैं और हमारा खाना पीना—हर एक काम—धर्ममय है 'चाहे प्राण जाय लेकिन धार्मिक नियम नहीं तोड़ सकते' वैसे ही यहाँ हर पेशेवाले की राजनैतिक सभायें हैं, जो हमारी धार्मिक सम्प्रदायों से भी अधिक दृढ़ हैं। धर्म की परवा यहाँ कोई नहीं करता। ये राजनैतिक सभायें जाति-रूपी रस्सी की एक एक लड़ हैं जो आपस में मिल कर इस (जाति) बड़ी रस्सी को महा दृढ़ किये हैं। इनका हिन्दुस्तान में सर्वथा अभाव है।

फाटक पर हमसे कहा गया कि दियासलाई आदि जिसके पास हो वह यहाँ रख दे। हम लोग कारख़ाने में पहुँचे। एक टब में लोहा गल रहा था और गोले बनाये जा रहे थे। पन्द्रह इञ्चवाली जहाज़ी तोपों का बनना भी देखा। लाखों मन लोहा गलने के लिए रक्खा था। असंख्य कलें काम कर रही थीं। २०० टन बोझ उठानेवाली कल भी रक्खी थी। लोहे की इतनी भारी भारी कलों को और इनका बनना देख कर हैरान रह गये। लोहे के कारख़ाने यूरोपियन जातियों की शक्ति हैं। जो इन तोपों मशीनों को बनाते हैं उनके लिए पृथ्वी को वश कर लेना क्या मुश्किल है। यह लोहे का उपयोग है जिससे ब्रिटिश जाति इतनी शक्तिशाली है। इन चीज़ों को देख कर बाहर आये। एक जगह नक्क़ाशदार तेरह इञ्ची बड़ी तोप रक्खी थी। अँगरेज़ी में लिखा था कि यह तोप जाटों की है। जिन्होंने दिल्ली की कीली देखी है उनके लिए आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि हमारा देश किसी समय कारीगरी में पृथ्वी पर सर्वोपरि था।

गाड़ी पर सवार होकर विक्टोरिया स्टेशन पर जो हम आये तो तीन बजे थे। इसलिए इच्छा हुई कि अब "म्यूज़ियमों" की ओर झुकना चाहिए। यहाँ अनेक म्यूज़ियम हैं, जिनमें कई हमारे डेरे के पास ही हैं। इससे पहले "केन्सिंग्टन" म्यूज़ियम में पहुँचे। यहाँ पृथ्वी के तमाम जीव-जन्तु मरे हुए रक्खे हैं। एक विशाल इमारत के बड़े फाटक से घुसते ही बड़े हाल (कमरे) में पहुँचे। सामने प्रसिद्ध विकाशवादी डारविन की मूर्ति विराजमान है। बहुत विस्तार न करके संक्षेप ही में इसका वर्णन करते हैं। इसकी एक एक बात लिखी जाय तो एक बड़ी पुस्तक हो जाय। बड़े बड़े पेड़ के तने रक्खे हैं, जिनकी मोटाई यदि मध्य रेखा डाली जाय तो बारह फ़ीट है। बीच में एक बड़ा हाथी है। इतने बड़े बड़े हिरन हैं जो बड़े बैल से भी बड़े हैं। इतने बड़े बड़े कुत्ते हैं जो छोटे घोड़े की बराबरी के हैं। एक काला भयानक दरियाई घोड़ा रक्खा है। ईश्वर जाने इसका वज़न क्या होगा। इसके खुले मुँह में दो आदमी एक साथ सहज में जा सकते हैं। बड़े बड़े अफ़्रिक़न और हिन्दुस्तान के सिंह रक्खे हैं। आठ फ़ीट ऊँचे ध्रुव के रीछ हैं। एक सिर रक्खा है जो हाथी का मालूम होता है। इसके दो दाँत बारह बारह फ़ीट लम्बे हैं। जिसके दाँत इतने लम्बे हैं वह हाथी कैसा रहा होगा। बड़े बड़े नगावड़ी साँड, बड़े बड़े गोरिले; कहाँ तक कहा जाय असंख्य जीव हैं। एक जीव की हड्डियाँ जोड़ कर खड़ी की गई हैं, जो बन्दर की तरह एक पेड़ पर झुका खड़ा है। यह संसार का आदि जीव है जो अब नहीं पाया जाता। यदि यह तन कर खड़ा हो जाय तो इसकी ऊँचाई बीस फ़ीट होगी। इसके अलावा संसार भर के पत्थर एक कमरे में रक्खे हैं जिन्हें देख कर इनके संग्रह करनेवालों के परिश्रम पर आश्चर्य होता है।

संसार भर के मनुष्यों की तसवीरें भी हैं, जिनमें हिन्दुस्तानियों की तसवीरों में बूँदी के राव अपनी बृहत्

दाढ़ी के साथ हैं। दो एक मदरासी स्त्री-पुरुषों की तसवीरें भी हैं। यहाँ की नीति है कि जब किसी हिन्दुस्तानी की तसवीर बनानी होती है तब हिन्दुस्तानी का रङ्ग ख़ूब काला किया जाता है। मदरासी काले होते हैं। इससे प्रायः वही काम में लाये जाते हैं। अब बताइए कि यह बड़ा म्यूज़ियम, जिसमें संसार भर के जीव, उद्भिद् और पत्थर हैं, यदि कोई अँगरेज़ बालक देखेगा तो उसे किस बात का ज्ञान न होगा।

विक्टोरिया म्यूज़ियम।

केन्सिंग्टन के पास ही विक्टोरिया म्यूज़ियम की नई और विशाल इमारत है। इसमें भारत-विभाग का वर्णन ही आप को रुचिकर होगा। इसके फाटक में घुसते ही पञ्जाब की बनी लकड़ी की हटरियाँ रक्खी हैं। इन पर बड़ी ही अच्छी नक़्क़ाशी है। बरहामपुर की हाथी-दाँत की कारीगरी के अच्छे नमूने रक्खे हैं जो दुनिया भर से अच्छे हैं। पुरानी वस्तुओं में ईसा के बाद की चीज़ें हैं जो बुद्ध के ज़माने से सम्बन्ध रखती हैं। इसमें कुछ खम्भे, कुछ तसवीरें आदि हैं। ऊपर के खण्ड में महाराज रणजीतसिंह के दरबार की एक बहुत बड़ी तसवीर रक्खी है और सिखों के बहुत से अस्त्र-शस्त्र भी रक्खे हैं। क्या तुम इस जाति से अपनी कोई बात छिपा सकते हो! कभी नहीं। बिना हिन्दुस्तान गये अँगरेज़ बालक इसी म्यूज़ियम से तुम्हारी तमाम बातें जान सकता है। चूड़ी-लँहगा पहने स्त्रियाँ गेहूँ पीस रही हैं। जिन मूर्तियों को तुम बनारस के बाज़ारों से ख़रीद कर प्राण-प्रतिष्ठा कर के मन्दिरों में छिपाये रखते हो, यहाँ सैकड़ों मौजूद हैं। लोटे, पञ्चपात्र इत्यादि तो इतने हैं कि आप ने हिन्दुस्तान में भी न देखे होंगे। जिन हिन्दुस्तानी महिलाओं के ऊपर तुम सूर्य की दृष्टि भी नहीं पड़ने देते उनके चित्र ख़ूब गहने से लदे हरे साटन की कुरती डाटे, लाल साड़ी पहने, आलमारी में बन्द खड़े अँगरेज़ जाति का ज्ञान बढ़ा रहे हैं। बुद्ध की मूर्ति तो टके सेर है। एक ख़ूब काला, नङ्गे बदन, सुनार भी बैठा काम कर रहा है। महाशय, यह भेद है जो एक विद्या-प्रिय उन्नतिशील जाति में और तुम्हारी मूर्ख अनजान जाति में है।

सातवाँ दिन।

सातवें दिन कुछ मुसलमान साथी यहाँ बनी 'वोकिङ्' गाँव की छोटी मसजिद देखने चले। हम भी साथ हो गये। नदी पार जाकर "वाटरलू" स्टेशन से ट्रेन में सवार होकर "वोकिङ्", जो एक छोटा गाँव है, पहुँचे। एक छोटी सी मसजिद बनी है। ख़्वाजा कमालुद्दीन यहाँ के प्रबन्धकर्ता हैं, जिनसे बात चीत हुई। उन्होंने कहा, यहाँ हमने कई सौ आदमियों को मुसल्मान कर लिया है। यहाँ क़ब्रस्तान भी है। सब लोगों को लेकर वह क़ब्रस्तान देखने चले। हम सीधे स्टेशन पहुँचे और फिर "वाटरलू" लौट आये। वहाँ से पैदल चल कर पार्लिमेंट के सामनेवाले पुल पर पहुँचे और बीच में ठहर गये। हबड़े के पुल पर से आपने कलकत्ते की शोभा देखी होगी और गङ्गा के पुल पर से काशी की शोभा भी अपूर्व है। किन्तु टेम्स के इस पुल से लन्दन की जो शोभा है वह अकथनीय है। बड़े बड़े मकान, सैकड़ों मीनारें, सॅट पाल का बड़ा गुम्बद—यह महानगर देखने ही योग्य है। इसका वर्णन असम्भव है। यहाँ से भीड़ चीरते हम पैदल चले और "स्ट्रैंड" से मुड़कर "ड्रुरी लेन' होते हुए संसारप्रसिद्ध "ब्रिटिश-म्यूज़ियम" में दाख़िल हुए। यहाँ मालूम हुआ कि युद्ध के कारण केवल ग्रीक और रोमन हिस्सा खुला है; और सब बन्द है।

एक बड़े दरवाज़े से घुस कर एक बड़े कमरे में पहुँचे। यहाँ बहुत से रोमन सम्राटों की मूर्तियाँ रक्खी हैं, जो प्रायः ४०० ईसवी की बनी हैं और इतनी उत्तम बनी हैं जो आज कल की कारीगरी से किसी तरह कम नहीं हैं। सम्राट् हेड्रियान, ऐन्टोनियस, नेरो आदि की पूरी मूर्तियाँ हैं। ज्यूलियस सीज़र और आगस्टस सीज़र के बस्ट रक्खे हैं जो अत्यन्त अच्छे हैं और सच्चे फ़ोटो हैं। ग्रीक-सेकशन में एक बड़ी मूर्ति, जिसका एक हाथ टूटा है, इतनी सुन्दर बनी है कि मुँह से वाह निकल पड़ती है। सफ़ेद पत्थर का मिनर्वा देवी का "बस्ट", काला मुकुट पहने, अत्यन्त सुन्दर है। सिकन्दर का बस्ट भी है, जो बहुत पुराना है। होमर-वर्णित ट्राय के युद्ध के दृश्य भी, जो बहुत पुराने हैं, बने हैं। ईसा की छठी शताब्दी से पहले की बनी एक स्त्री की मूर्ति है, जो बहुत अच्छी है। डायना देवी के मन्दिर के टूटे खम्भे के सङ्गमर्मर के टुकड़े भी हैं। इन चीज़ों को देख कर विदित होता है कि ग्रीक लोग मूर्ति बनाने में पुरानी जातियों में सर्वश्रेष्ठ थे। इसमें कुछ मूर्तियाँ ऐसी

अच्छी हैं जो उन्नतिशील समय में भी नहीं बन सकतीं। युद्ध के कारण बहुत सी चीज़ें बन्द थीं। पुराने रथों का नमूना भी मौजूद था। खेद है कि भारत, फ़िनीशियन, सीरियन और मिसरी-विभाग बन्द था। अब हम लाइब्रेरी की तरफ़ गये, जो बन्द थी। कह सुन कर उसे खुलवाया। एक गोल बड़े कमरे में पहुँचे। चारों ओर असंख्य किताबें रक्खी थीं। फिर वहाँ से किताबों से भरे तहख़ानों में गये। इतना ही कहना काफ़ी है कि इस लाइब्रेरी में चालीस लाख पुस्तकें हैं! यह दुनिया भर में सब से बड़ी है।

अब रह गईं यहाँ के थियेटरों की बातें। थियेटर यहाँ बहुत से हैं। सिनेमा का भी बहुत चलन हो गया है, जिसे हमने फ़्रांस में बहुत देखा है। इस सिनेमा से यूरोपियन सोसाइटी का हाल मालूम होता है। लन्दन आकर हमने चार थियेटर देखे। क्या कहना है। यहाँ की सजावट और रोशनी का क्या कहना। तमाम फ़र्श मख़मल से ढका हुआ है। कुछ ख़ास बैठकें भी इधर उधर बनी हैं, जिनमें लाल मख़मल के पर्दे लगे हैं, जिनका किराया दो पाउण्ड है। इन थियेटरों में कुछ सरकस, कुछ दिल्लगी इत्यादि हुआ करती है। पूरा नाटक नहीं होता। अँगरेज़ों को दिल्लगी बड़ी प्रिय है। केवल हास्यरस चाहिए। तीन थियेटरों में यही देखते हम ऊब गये। कप्तान साहब ने पूछा, क्या तुम इन थियेटरों को पसन्द नहीं करते? हमने कहा, "साहब! आपके यहाँ शेक्सपियर साहब अच्छे नाटक बना गये हैं। वे सब यहाँ क्यों नहीं खेले जाते?" साहब ने कहा, "जैसी दर्शकों की रुचि है वैसा ही खेल ये लोग खेलते हैं। अब अँगरेज़-जनता सिर्फ़ हास्यरस पसन्द करती है"। चौथे दिन फिर हम "कोलिज़ियम" नामक थियेटर में गये, जहाँ "शंवाई" नाम तमाशा खेला जाता था। इसका कथानक यह था कि एक चीना अमीर एक बौद्ध पुरोहित की लड़की पर आशिक़ था। पुरोहित ने बिचारा कि इसने कभी संसार का दुःख नहीं देखा। इससे उसको क़ैद कर दिया। इस तमाशे में एक चीनी बुद्ध की मूर्ति को रस्सी से बाँधकर लाया; जिसे तमाम चीनियों ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तमाम दर्शक ख़ूब हँसे। यानी इसी बहाने थियेटरवालों ने बौद्धधर्म की दिल्लगी उड़ा कर उसकी दुर्दशा दिखाई है। इस थियेटर में कई बहुत अच्छे पर्दे देखने में आये। नफ़ीस पोशाकें भी।

धर्म।

धर्म यहाँ वैसा नहीं है जैसा हमारे यहाँ है। यहाँ के धर्म का प्रधान सिद्धान्त यह है कि सब को सुख देना। यों तो यहाँ भी कुछ मोटे सिद्धान्त धर्म के माने जाते हैं, किन्तु तमाम प्रजा धर्म को पादड़ियों के हाथ में छोड़ कर खाती पीती है, मौज करती है। बर्ताव भी यहाँ के लोगों का मृदु है। चाहे आप कैसे ही हों, जहाँ जायँगे सब लोग आपसे प्रेम का बर्ताव करेंगे। कभी ऐसी बातें नहीं कहेंगे जिनसे आपका चित्त दुखे। किसी पुलिसवाले से कुछ पूछिए, बड़ी नम्रता से जवाब देगा। यह बड़ाही अन्तर हमारे देश और इस देश में है। हमारे यहाँ पुलिस का और अदालतवालों का प्रजा के साथ भयानक बर्ताव, एक दूसरे की निन्दा, आपस में दुःख पहुँचानेवाली मसख़री, धर्म और समाज के दुःख देनेवाले नियम आदि, ये सब बातें देख कर यहाँ से जानेवाले अँगरेज़ का बर्ताव भी बदल जाता है। इस तरह यहाँ सात दिन रहकर हम शाम को हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों से मिलकर एक चक्कर हाइड पार्क और बाज़ारों का लगा रात को सो गये। प्रातःकाल उठ कर गाड़ी पर सवार हो फाक्स्टन पहुँचे और इँगलिश चेनेल (अँगरेज़ों के टापू की खाड़ी) पार कर बोलेन आगये।

वेणीप्रसाद् शुक्ल
(बोलेन, फ़्रांस)

गीता-रहस्य-विवेचन*।

(अध्यात्म)

न्याय और साङ्ख्य

पिछले लेख में गीता-रहस्य के नीति-विषयक सिद्धान्तों पर अपने विचार प्रकट कर चुका। अब आज अध्यात्म-विषय पर भी कुछ कहना चाहता हूँ। गीता-रहस्य में अध्यात्म-विषयक वर्णन के मुख्य तीन विभाग किये जा सकते हैं। यथा-

---

[*] यह लेख सितम्बर १९१८ की सरस्वती में निकले हुए लेख से आगे समझना चाहिए।

१ न्यायखण्डन, २ साङ्ख्यवर्णन और ३ वेदान्त-प्रतिपादन । न्याय और साङ्ख्य का वर्णन बहुत संक्षेप से हुआ है । पर वेदान्त का ज़रा विस्तार से । अतः इस लेख में न्याय और साङ्ख्य के विषय में ही कुछ निवेदन किया जायगा । ग्रन्थकार ने अध्यात्म के वर्णन में गौतम, कपिल तथा शङ्कराचार्य्य के मत का ही वर्णन किया है और अपने निराले ढङ्ग से यह सिद्ध करने की कोशिश की हैं कि वे उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा सत्य हैं । इस लेख में पहली दो बातों का ही विचार किया जायगा ।

अच्छा अब ग्रन्थकार के मत में न्याय के सिद्धान्त क्या हैं, यह उन्हीं के शब्दों में सुनिए ।

“इन लोगों का कहना है कि जगत् का मूल कारण परमाणु हैं । किसी पदार्थ का विभाग करते करते अन्त में जब उसका विभाग न हो सके तब उसे परमाणु कहना चाहिए । जैसे जैसे ये परमाणु एकत्रित होते जाते हैं, वैसे वैसे उनमें संयोग के कारण नये गुण उत्पन्न होते जाते हैं और भिन्न भिन्न पदार्थ बनते जाते हैं । मन और आत्मा के भी परमाणु होते हैं और जब वे एकत्र होते हैं तब चैतन्य की उत्पत्ति होती है । पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु स्वभाव से ही पृथक् रहते हैं । इस प्रकार सब जगत् पहले से ही नित्य और सूक्ष्म परमाणुओं से भरा हुआ है । जब सूक्ष्म और नित्य परमाणुओं का परस्पर संयोग आरम्भ होता है तब सृष्टि के व्यक्त पदार्थ बनने लगते हैं ।” इसके बाद ग्रन्थकार ने लिखा है कि—“कुछ नैयायिक इसके आगे कभी नहीं बढ़ते” । मतलब यह कि ईश्वर को नहीं मानते । पर आगे ही उन्हें स्वीकार करना पड़ा है कि “कुछ नैयायिक यह मानते हैं कि परमाणुओं के संयोग का निमित्त कारण ईश्वर है । इस प्रकार वे सृष्टि की कारण-परम्परा की शृङ्खला को पूर्ण कर लेते हैं ।”

यह हुआ ग्रन्थकार के शब्दों में न्याय-दर्शन का वर्णन । इस पर हमारा पहला ही प्रश्न यह है कि जहां साङ्ख्य और वेदान्त के वर्णन में १०० पृष्ठ लगभग ख़र्च कर दिये गये वहां न्याय-दर्शन के समान महत्त्वपूर्ण मत के लिए कुछ पङ्क्तियां ही लिख कर सन्तोष कैसे कर लिया गया । यह ज़रा विचारणीय है और सम्भव है कि इसमें कुछ कूट-नीति हो । दूसरी बात इस वर्णन के सम्बन्ध की हमें जो कहनी है वह आत्मा के परमाणुओं की है । मालूम नहीं कि ग्रन्थकार ने कौन से कणाद का मत उद्धृत किया है जो आत्मा और मन के भी परमाणु मानते हैं । आज कल जो न्याय तथा वैशेषिक पाये जाते हैं उनमें इस मत का लेश भी नहीं । सम्भव है, वे दूसरे कोई हों । जिनको हमने समझ रक्खा है वे न हों । क्योंकि आज कल यह सुनते सुनते सब के कान भर गये हैं कि न्याय तथा वैशेषिक के मत में आत्मा अनादि, अविनाशी और नित्य है । पर ग्रन्थकार कहते हैं कि उनका मत यह है कि जब परमाणुओं का संयोग होता है तब चैतन्य की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार वे उत्पत्तिमान् धर्मवाले होने से अनित्य हुए । पर यह बात उक्त दोनों ऋषियों के सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है । इसी से मैंने इस अनुमान की कल्पना की है कि वे दोनों ऋषि कोई दूसरे होंगे ।

अब देखिए कि तिलक महाराज ने उक्त सिद्धान्त पर जो ४ आक्षेप किये हैं वे कैसे हैं —

(१) न्याय, साङ्ख्य की अपेक्षा कम क्यों हैं, इसका हेतु ग्रन्थकार ने क्या ही अच्छा दिया है । वे कहते हैं कि “नैयायिकों के सिद्धान्तों की अपेक्षा साङ्ख्यवादियों के सिद्धान्त अधिक महत्त्व के हैं । इसका कारण यह है कि न्यायमतों को किसी भी प्रमुख वेदान्ती ने स्वीकार नहीं किया” । मैं नहीं सोच सकता कि इस उपपत्ति का खण्डन किन शब्दों में किया जाय ।

(२) उनकी दूसरी दलील है कि, वेदान्तसूत्र के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद में इस परमाणु-वाद का और उसके साथ ही साथ ईश्वर केवल निमित्त कारण है, इस मत का भी खण्डन किया गया है । ग्रन्थकार ने इतना इशारा ही करके छोड़ दिया है । आगे बात नहीं बढ़ाई । शायद इसका कारण यह हो कि यह युक्ति-वाद बहुत प्रचलित है । इससे इसके लिखने की आवश्यकता न थी । इसी न्याय से हमें भी इसके सम्बन्ध में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । क्योंकि यह बहुत प्रसिद्ध विषय है और इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ खण्डन-मण्डन होने पर भी अन्त को कोई सिद्धान्त नहीं बना है ।

(३) तीसरी दलील ग्रन्थकार ने यह दी है कि कणाद

के अनुयायी यह नहीं बता सकते कि मूल परमाणु को गति कैसे मिली । इस पर मुझे कुछ कहना है । यह समझना कठिन है कि यह शङ्का किस दृष्टि से की गई है । मूल परमाणु कैसे चल पड़े, या कैसे सृष्टि उत्पन्न करने लगे, इस इतनी ही शङ्का का उत्तर ६ अक्षरों में दिया जासकता है कि ईश्वर के द्वारा । पीछे हम कह चुके हैं कि ग्रन्थकार का मत है कि ईश्वर के द्वारा परमाणुओं का संयोग मान कर कुछ नैयायिक कार्य्य-कारण शृङ्खला-पूर्ण कर लेते हैं । पर वह वास्तव में पूरी नहीं होती, ऐसा इस तीसरी दलील से ग्रन्थकार का आशय प्रकट होता है । इस पर उन्हें दिखलाना था कि ईश्वर के द्वारा परमाणुओं का संयोग मानने में क्या आपत्ति आती है । परन्तु उन्होंने न मालूम किस कारण से ऐसा नहीं किया । अधिक से अधिक इस पर यदि कुछ कहा जाय तो यही कहा जा सकता है कि निराकार ईश्वर के द्वारा साकार जड़ परमाणु में गति कैसे सम्भव है । पर इसका उत्तर नैयायिक ऐसा सुन्दर देते हैं कि तबीयत खुश हो जाती है । वे कहते हैं कि जिस प्रकार निराकार आत्मा साकार शरीर में गति उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार ईश्वर भी कर सकता है । यह उत्तर समझ में भी ठीक बैठता है । तब हम निर्भय होकर कह सकते हैं कि यह तीसरी दलील भी अपूर्ण है । अतएव ग्राह्य नहीं ।

(४) ग्रन्थकार ने चौथा आक्षेप यह किया है कि "वे लोग इस बात का भी यथोचित निर्णय नहीं कर सकते कि वृक्ष, पशु, मनुष्य आदि सचेतन प्राणियों की बढ़ी चढ़ी हुई श्रेणियाँ कैसे बनीं और अचेतन को सचेतनता कैसे प्राप्त हुई" ।

मेरा ख़याल है कि इस वाक्य को पढ़ कर कोई भी मनुष्य जिसे ज़रा भी दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रेम है, आश्चर्य्य में डूब जायगा और ग्रन्थकार के इस आक्षेप पर अवश्य विस्मय प्रकट करेगा । क्योंकि इस में दूसरी बात तो बिल्कुल असम्भव है अर्थात् जड़ से चैतन्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । दूसरे शब्दों में कह लीजिए कि अभाव से भाव नहीं हो सकता । जब वह बिल्कुल ही असम्भव है तब फिर असम्भव बात की संगति न लगा रुकने पर न्यायाचार्य्य पर दोषारोपण क्यों ? क्या कहीं साङ्ख्य और वेदान्त ने जड़ से चैतन्य की उत्पत्ति मानी है ? और आप भी तो खुद नहीं मानते । फिर यही बात आप पर भी क्यों न कही जाय ?

अच्छा, अब जातियों के विकास की बात लीजिए । इस सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने पश्चिमीय विकास-वाद का आँख मीच कर अनुसरण किया है । असल बात यह है कि हमारे दार्शनिक विद्वानों ने कहीं भी इसका प्रतिपादन नहीं किया है कि मनुष्य अपनी निम्न-श्रेणी की जातियों से विकसित हुआ है । फिर यदि किसी तरह साङ्ख्य के सिद्धान्तों के साथ उसका सम्बन्ध कर भी दिया जाय, तो भी इसका यह अर्थ नहीं होता कि विकास-वाद ठीक ही है । सम्भव है कि न्यायाचार्य्य को यह मत ही स्वीकार न रहा हो । आज भी बड़े बड़े वैज्ञानिक और दार्शनिक इस मत को स्वीकार नहीं करते । और यह कहना अनुचित है कि वे सब ग़लती पर हैं । जो हो, अन्त में यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि यह मत अभी सन्दिग्ध है । इसे वे लोग भी स्वीकार करते हैं जो इसके पोषक हैं । ऐसी दशा में, एक सन्दिग्ध मत के पक्ष में किसी दार्शनिक की युक्तियाँ न पाकर यदि हम उसके मत को ग़लत कहें तो कह सकते हैं। क्योंकि इस सदी में इस विषय में सब कोई अपना मत प्रकट कर सकता है ।

कहते सङ्कोच होता है कि गीता-रहस्य में केवल इतनी ही दलीलों से न्याय-दर्शन का खण्डन कर और उसे भली भाँति खण्डित समझ आगे बढ़ा गया है । इसमें आदि की २ दलीलें तो जैसी हैं वैसी ही हैं । उनके विषय में कुछ कहने की भी आवश्यकता नहीं है । रहीं दो दलीलें और, सो एक में तो एक असङ्गत बात की सङ्गति न लगने के कारण, तथा एक सन्दिग्ध और अर्वाचीन मत के पक्ष में दलील न देने के कारण, उस मत को अपूर्ण ठहराया गया है । रही वह दलील जिससे परमाणुओं के संयोग की बात कही गई है सो वह स्पष्ट ही है और उसका उत्तर भी स्पष्ट है । परन्तु तो भी ग्रन्थ का वह अंश पढ़ते ही यह धारणा हो जाती है कि वे इस मत को बिल्कुल तुच्छ समझते हैं । जो हो, पर हमारे विश्वास के अनुसार इसके प्रतिपादन में उनसे भूल अवश्य हुई है । यदि खण्डन ही करना था तो अधिक पुष्ट और कठिन दलीलों से करते जिसमें इतनी शीघ्रता और स्पष्टता से उनकी कमज़ोरी का ज्ञान तो न होता ।

इसके बाद, साङ्ख्य का विषय छिड़ गया है और ग्रन्थकार ने साङ्ख्य का इतिहास भी थोड़ा सा लिखा है। साङ्ख्य-ग्रन्थों में उन्हें ईश्वरकृष्ण की साङ्ख्यकारिकायें ही अधिक प्राचीन ज्ञात हुई हैं। इस सम्बन्ध में हमारा कुछ वक्तव्य है। अतः हम नीचे इसकी आलोचना करेंगे।

हमारे यहां दर्शन-शास्त्र की रचना प्राचीन काल में सूत्रों में ही हुई थी। हमारा साङ्ख्य-दर्शन भी सूत्रों में ही है। परन्तु कुछ पण्डित इसके विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि ये सूत्र साङ्ख्य-शास्त्र-प्रवर्त्तक कपिल मुनि के नहीं हैं। इन्हीं पण्डितों की श्रेणी में तिलक महाराज भी हैं। परन्तु उन्होंने इसके विषय में बहुत थोड़े शब्द ही कहे हैं। वे ये हैं —

"कापिल साङ्ख्यशास्त्र में भी कणाद के न्यायशास्त्र के समान सूत्र हैं। परन्तु गौडपादाचार्य्य या शारीरक भाष्यकार शङ्कराचार्य्य ने भी इन सूत्रों का आधार अपने ग्रन्थों में नहीं लिया है। इससे बहुत से विद्वान् समझते हैं कि ये सूत्र कदाचित् प्राचीन न हों। ईश्वरकृष्ण की साङ्ख्यकारिकायें उक्त सूत्रों से प्राचीन मानी जाती हैं और उन पर शङ्कराचार्य्य के दादागुरु गौडपाद ने भाष्य किया है। शाङ्करभाष्य में भी इसी कारिका के कुछ अवतरण लिये गये हैं।"

इसी कारण उन्होंने भी इन्हीं कारिकाओं के ही आधार पर अपना साङ्ख्य-शास्त्रवाला प्रकरण लिखा है। पर यदि शुद्ध तर्क-दृष्टि से देखा जाय तो यह कारण, अर्थात् गौडपादाचार्य्य का साङ्ख्यसूत्रों पर भाष्य न लिख कर कारिकाओं पर लिखना तथा शङ्करस्वामी का सूत्रों के अवतरण न देकर कारिकाओं के ही देना, यह सिद्ध करने को पर्य्याप्त नहीं है कि साङ्ख्यसूत्र कारिकाओं के बाद बने हैं। बहुत सम्भव है कि गौडपादाचार्य्य के सिद्धान्तों के (अद्वैतवाद के) अनुकूल होने के कारण ही कारिकाओं का आदर उस सम्प्रदाय में बढ़ा हो। यह भी सम्भव है कि उस समय यह ग्रन्थ न मिलता रहा हो। ऐसी दशा में यह दूषण ठीक नहीं कहा जासकता। फिर यह भी तो देखा जाता है कि कुछ लोगों को कोई पुस्तक-विशेष से ही प्रेम हो जाता है, यथा स्वामी शङ्कराचार्य्य का अन्य उपनिषदों की भांति माण्डूक्य-उपनिषद् पर भाष्य न कर उस पर बनी हुई अपने दादागुरु की कारिकाओं पर ही अपनी टिप्पणी करना। तो क्या इससे भी उसी तरह का अनुमान कर लिया जाय? रही बात शङ्करस्वामी की कि उन्होंने सूत्रों के अवतरण न दे कर कारिकाओं के ही क्यों दिये हैं, सो इस का भी हमें यह सीधा कारण मालूम होता है कि जिस पुस्तक से गुरु को प्रेम होता है बहुधा देखा जाता है कि शिष्य भी उससे प्रेम करता है। इधर यह स्पष्ट ही है कि गौडपादाचार्य्य को कारिकाओं से प्रेम था, जिसका सूचक उनका भाष्य है। अब यदि इस दशा में शङ्कर स्वामी को कारिकाओं से ही अधिक प्रेम होगया तो मेरी समझ में यह अनुमान निकालना ठीक न होगा कि ये सूत्र कारिकाओं के बाद बने हैं।

यद्यपि हम प्रकरण से अलग जा रहे हैं तथापि इस विषय की दो एक और बातों पर भी विचार किये बिना हमसे नहीं रहा जाता। कुछ लोग उक्त मत के पक्ष में यह दलील भी दिया करते हैं कि कुछ साङ्ख्यसूत्र कारिकाओं से बिल्कुल समता रखते हैं; इस कारण वे यह अनुमान करते हैं कि ये सूत्र कारिकाओं के बाद के हैं। परन्तु सम्भव है कि संयोग ही इसका कारण हो। अच्छा, यदि यह मान भी लें कि वे सूत्र जाली हैं तो भी यह बात समझ में नहीं आती कि इन सूत्रों का बनानेवाला इतना बेवक़ूफ़ होगा कि वह इतनी बड़ी ग़लती कर जाय। और एक जगह नहीं, कई जगह। इन सब कारणों से अन्त में यही कहना पड़ता है कि मात्रा-छन्द स्वतः बन जाना असम्भव नहीं। न्यायादि शास्त्रों में भी बहुत से इस प्रकार के सूत्र मिल सकते हैं जिन से ऐसे छन्द बन सकें। अतएव सम्भव है कि उक्त सूत्र, कण्ठ होने के कारण, अर्थाभाव और विषय की एकता के कारण ऐसा हो गया हो। परन्तु इस विषय में हमारा कुछ विशेष हठ नहीं है। हमारा जो विश्वास है वह हमने कह दिया। अब इस विषय को अधिक न बढ़ा कर अपने मूल विषय पर आते हैं।

अब हम एक बड़ी बात की तरफ़ आप लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। साङ्ख्य-सूत्रों में और कारिकाओं में जो अन्तर पड़ता है वह अधिक चिन्त्य है। वह अन्तर है अव्यक्त-प्रकृति को सर्वव्यापक और विभु मानने का। साङ्ख्य-सूत्रों में कहीं भी प्रकृति को विभु नहीं कहा है। पर कारिकाओं में इसका स्पष्ट उल्लेख है। यदि सूत्र-

कार के मत में अव्यक्त प्रकृति विभु होती, तो ऐसा कोई कारण नहीं देख पड़ता कि इतने महत्त्व-पूर्ण और विशेषता-युक्त लक्षण का वे सूत्रों में उल्लेख न करते । सम्भव है कि कारिका-कार का ही यह मत हो । अथवा साङ्ख्य-दर्शन के उत्तरकालीन विद्वानों का ही माना हुआ हो । हमारे इस अनुमान की पुष्टि में एक प्रमाण और भी है । वह यह कि साङ्ख्य-शास्त्र के अन्य अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी प्रकृति को विभु नहीं माना है । इनमें से एक तो तत्त्व-समास है । इसके विषय में कुछ लोगों का कहना है कि यही कपिल-कृत असली सूत्र हैं । परन्तु कह सकते हैं कि इसके विषय में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं । अनुमान ही अनुमान है । दूसरा है पञ्चशिखाचार्य्य के साङ्ख्य-सूत्र । ये वे ही पञ्चशिखाचार्य्य हैं जो कपिल के शिष्य आसुरि के शिष्य थे । यद्यपि ये सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं, तथापि योग-दर्शन के व्यास-भाष्य में ये जितने मिलते हैं उनमें भी कहीं प्रकृति को विभु मानना नहीं पाया जाता । अतः यह कहना पड़ता है कि उत्तर-कालीन साङ्ख्य-वादियों की यह कल्पना है ।

ऐसा होने के पक्ष में एक और भी बड़ी ज़बरदस्त दलील मिलती है । वह यह कि साङ्ख्य के मुख्य सिद्धान्त सत्कार्य्यवाद के साथ भी इस विभुवाद की सङ्गति नहीं बैठती । सत्कार्य्यवाद का आशय है कि जो बात कारण में नहीं होगी वह कार्य्य में भी नहीं हो सकती । इस हिसाब से अव्यक्त प्रकृति यदि विभु है तो व्यक्त भी विभु ही होनी चाहिए । इसे इन शब्दों में भी कह सकते हैं कि निरवयव से सावयव की उत्पत्ति होना सत्कार्य्यवाद के विरुद्ध है । क्योंकि साङ्ख्य का यह सिद्धान्त है कि अव्यक्त प्रकृति में भी, सत्व, रज, तम ये तीन गुण साम्यावस्था में रहते हैं । उनमें कमी-बेशी होते ही व्यक्त पदार्थ बनने लगते हैं । अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब गुणी विभु है तब उसमें हलचल कैसे उपस्थित हो सकेगी । क्योंकि विभु पदार्थ में हलचल नहीं हो सकती । और इसीसे कहते हैं कि यह बड़े विरोध की बात है । ग्रन्थकार ने इस विरोध की बात उठाई ही नहीं । वे इसे भुला गये हैं । अस्तु, गीता-रहस्य के, तथा साङ्ख्य के, इस अंश पर खूब आन्दोलन होने की आवश्यकता है ।

एक स्थान पर ग्रन्थकार ने लिखा है—"साङ्ख्यों का सिद्धान्त है कि इन्द्रियों के अगोचर अर्थात् अव्यक्त सूक्ष्म और चारों ओर अखण्डित भरे हुए एक ही निरवयव मूल द्रव्य से सारी व्यक्त सृष्टि उत्पन्न हुई है । यह सिद्धान्त पश्चिमीय देशों के अर्वाचीन आधिभौतिक-शास्त्रज्ञों को ग्राह्य है । ग्राह्य ही क्यों अब तो उन्होंने यह भी निश्चित किया है कि इस मूल-द्रव्य की शक्ति का क्रमशः विकास होता आया है । और इस पूर्वापर क्रम को छोड़ कर अचानक या निरर्थक कुछ भी निर्माण नहीं हुआ है । इसी मत को उत्क्रान्ति-वाद या विकास-सिद्धान्त कहते हैं ।"

उन्होंने आगे चल कर इसका वर्णन इन शब्दों में किया है—"सूर्य्यमाला में पहले कुछ एक ही सूक्ष्म-द्रव्य था । उसकी गति या उष्णता का परिणाम घटता गया । तब उक्त द्रव्य का अधिकाधिक संयोग होने लगा और पृथ्वी समेत सब ग्रह क्रमशः उत्पन्न हुए । अन्त में जो शेष अंश बचा वही सूर्य्य है । पृथ्वी का भी सूर्य्य के सदृश पहले एक उष्ण गोला था । परन्तु ज्यों ज्यों उसकी उष्णता कम होती गई त्यों त्यों मूल-द्रव्य में से कुछ द्रव्य पतले और कुछ घने होते गये । इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर की हवा और पानी तथा उसके नीचे का पृथ्वी का जड़ गोला, ये तीन पदार्थ बने और इसके बाद इन तीनों के मिश्रण अथवा संयोग से सब सजीव तथा निर्जीव सृष्टि हुई ।"

महर्षि कपिल का मत इस सम्बन्ध में क्या है, यह हम संक्षेप से ऊपर बतलाने की चेष्टा कर चुके हैं । अतएव उसके विषय में अब कुछ नहीं कहना । हां, ग्रन्थकार ने जो यह लिखा है कि विज्ञानवाद को भी यह मूल-प्रकृति का विभुवाद स्वीकार है सो सत्य नहीं प्रतीत होता । योरुप में डाल्टन के परमाणुओं* के भी टुकड़े करके अन्त में इलक्ट्रान का सिद्धान्त स्थिर किया गया है । अब हम यदि इस को ही मूल-प्रकृति की जोड़ का मानें तो नहीं मान सकते हैं क्योंकि यह अखण्डित होकर व्यापक नहीं । और इसके संयोग विभाग होते हैं । दूसरा सिद्धान्त ईथर का है । ये महाशय भी कम्पित होते हैं । इस लिए इन्हें भी हम

---

* ये वास्तविक परमाणु नहीं थे । क्योंकि परमाणु का लक्षण ही हमारे यहां " परं वा त्रुटेः " अर्थात् जिसके टुकड़े न हो सकें, किया है—लेखक ।

उस स्थान पर नहीं बिठा सकते। अब जहाँ तक हमारा ख़याल है, अभी तक तो विज्ञान के द्वारा किसी ऐसे पदार्थ का आविष्कार हुआ नहीं है जिसे हम गीता-रहस्य में वर्णित साङ्ख्यों की अव्यक्त प्रकृति की समता का कह सकें। फिर, जो आगे चल कर ग्रन्थकार ने विकासवाद का मत उद्धृत किया है तथा उसमें जिस 'एकही सूक्ष्म द्रव्य' का वर्णन किया है, वह भी तो व्यापक अव्यक्त प्रकृति की भाँति 'एकही' नहीं। क्योंकि उसमें भी उष्णता का कम होना, द्रव्य का सङ्कुचित होना, आदि माना जाता है। और यह निर्विवाद है कि इन गुणोंवाली वस्तु विभु कभी नहीं हो सकती है। सबसे अन्त में हमारा इस सम्बन्ध में कथन यह है कि निरवयव से सावयव की उत्पत्ति, व्यापक से परिमित की उत्पत्ति और एक से अनेक की उत्पत्ति ठीक उसी प्रकार की ज्ञात होती है जिस प्रकार से अभाव से भाव की।

यद्यपि यह लेख विषय की दृष्टि से नहीं, स्थान की दृष्टि से कुछ बढ़ गया है, तथापि हम एक बात कहे बिना नहीं रह सकते। वह यह कि साङ्ख्य के वर्णन में यद्यपि गीतारहस्य का बहुत सा स्थान भर गया है, और वे बातें भी आ गई हैं जिनकी हमारी समझ में उतनी ज़रूरत नहीं थी तथापि, बहुत सी ऐसी बातें भी छूट गई हैं कि जिनका वर्णन बहुत आवश्यक था और जिनसे ईश्वर-कृष्ण की निरीश्वर-वादिता की मुरादाबादी कलई खुल जाती है।

साङ्ख्यवाले पुरुष को अकर्ता मानते हैं। उनका ख़याल है कि वह कुछ नहीं करता। वह निर्गुण है। उधर प्रकृति में वे तब तक क्रिया-शक्ति का होना नहीं मानते जब तक उसमें पुरुष का संयोग न हो जाय। वे कहते हैं कि तब तक प्रकृति विभु रहती है। अब प्रश्न यह होता है कि साम्यावस्थावाली प्रकृति में विकृति किस प्रकार हो गई। तब वे यह उत्तर देते हैं कि पुरुष के संयोग से। फिर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पुरुष तो निर्गुण था; वह अपने में क्रिया कैसे उत्पन्न कर सका और बिना क्रिया के उसका संयोग कैसे हुआ। देखिए, जो इधर पुरुष क्रिया करके संयोग बनाने में असमर्थ है तो उधर प्रकृति बिना संयोग के अपनी "टकसाल" जारी करने में। जब ऐसी दशा थी तब सृष्टि की उत्पत्ति ही क्यों हुई? इस स्थान पर यह न भूलना चाहिए कि साङ्ख्य-शास्त्र जगत् को अनादि नहीं मानता। यही नहीं उसके लिए उसने आदि अन्त का सिद्धान्त पूर्ण रूप से निश्चित कर दिया है। इसी तरह की और भी कई बातें हैं, जिनका सन्तोषप्रद निर्णय गीता-रहस्य में हमें नहीं मिला।

पर इन त्रुटियों के होते हुए भी ग्रन्थकार ने साङ्ख्य-वर्णन में जो पाण्डित्य दिखाया है वह सर्वथा स्तुत्य है। और यह प्रकरण सब अध्यात्म-प्रेमियों के मनन करने की वस्तु है। हाँ, अवश्य न्याय-सिद्धान्तों पर जो अनुचित आक्षेप किये गये हैं तथा उत्तर-कालीन साङ्ख्य-सिद्धान्तों के अनुसार सांख्य-शास्त्र के प्राचीन प्रकृति-विषयक सिद्धान्तों को जो काटा-छाँटा गया है वह खटकनेवाली बात ज़रूर है। पर इस पर भी यकायक यह कहने की हिम्मत नहीं पड़ती कि साङ्ख्य-वर्णन और न्याय-खण्डन एकदम अमाननीय हैं। हमारी राय तो यह है कि जो लोग इन विषयों के पारगामी पण्डित हैं उनको इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए और इस परस्पर विरोध का निर्णय करना चाहिए।

इसके आगे अध्यात्म का विषय अर्थात् वेदान्त-प्रतिपादन है। गीता-रहस्य में उसके लिए एक बृहत् प्रकरण ही लिखा गया है। विषय विस्तृत होने तथा लेख के बहुत बढ़ जाने के कारण हम उसका वर्णन इस लेख में करने को असमर्थ हैं।

मुक्तिनारायण सुकुल

मान का मूल्य।

हृदय! भीरु का जीवन कैसा? हो जा तू जैसे को तैसा।
जीवनाब्धि नर बन कर तर जा, ठोकर खा करके मत मर जा।
जो माने उसको तू मान।
अपमानित है मृतक-समान॥ १॥
क्या खाने से दूध मलाई, होवेगी कुछ देश-भलाई?
सदा उसी को मिली बड़ाई, जिसने समझी पीर पराई।
जिस से हुआ न पर उपकार।
उस के जीवन को धिक्कार॥ २॥

हृदय ! मान यदि मेरा कहना, तो खल के वश में मत रहना ।
मान-सहित सरबस दे देना, मान-रहित त्रिभुवन मत लेना ।
करे इन्द्र भी यदि अपमान ।
तो उसको भी पामर जान ॥ ३ ॥
मान-मूल्य मानव जानेगा, उसको क्या दानव जानेगा ।
दीन दस्यु जो बना हुआ है, लोभ-पङ्क में सना हुआ है ।
कभी न रहना उसके साथ ।
मान न खोना अपने हाथ ॥ ४ ॥
क्यों कणाद कैसे रहते थे ? क्या कहते थे, क्या सहते थे ?।
क्या तू भी उनकी सन्तति है ? क्यों सदैव सहता दुर्गति है ?।
अरे सुखद है पर्ण-कुटीर ।
और पुराना वल्कल चीर ॥ ५ ॥
ग्राहक बन जा तू शिक्षा का, गरल अमृत भी है भिक्षा का ।
मान-मूल यदि कन्द मूल है, फिर दुख रोना महा भूल है ।
मूढ़ ! फेंक पट रस पर ख़ाक ।
खाकर सुखद सलोने शाक ॥ ६ ॥
उद्यम करके काम चलाना, बिना काम के कहीं न जाना ।
बिना मान के नाम वृथा है, बिना दान के दाम वृथा है ।
कहीं नहीं फैलाना हाथ ।
खल को नहीं झुकाना माथ ॥ ७ ॥
क्या करना था क्या करता है ? तनिक न अपयश से डरता है ।
आत्म-वंश का हंस रहा तू, क्यों जाता है व्यर्थ बहा तू ?।
मेरी बातों पर दे ध्यान ।
रक्षित रख निज कुल के मान ॥९॥
यदि भूला भटकेगा भैया, तो क्यों पार लगेगी नैया ?
कपट-जाल फैले हैं कैसे ? बच कर चल तू जैसे तैसे ।
जब न सुनेगा पर की तान ।
तभी रहेगा तेरा मान ॥ १० ॥
मान मिलेगा क्या दुर्जन से ? जाकर पूछ इसे गुरुजन से ।
ओछों से आशा मत कर तू, मृगतृष्णा में भटक न मर तू ।
साँप मानता है क्या पोस ?
प्यास बुझाती है क्या ओस ?॥ ११ ॥
जो कुछ हानि हुई है पहले, चुप हो उसे अभी तू सहले ।
एक वायु क्या सदा बहेगी ? सदा कि भादों-रात रहेगी ?।
सब का होता है अवसान ।
फिर तू पावेगा सम्मान ॥ १२ ॥

रामचरित उपाध्याय

पश्चिमी क्षत्रप-वंश का इतिहास।

लिपि

(अक्षर और अङ्क)

क्षत्रपों के सिक्कों और लेखों आदि के अक्षर ब्राह्मी लिपि के हैं। इसी का परिवर्त्तित रूप आज कल की नागरी लिपि समझी जाती है । परन्तु भूमक, नहपान और चष्टन के सिक्कों पर ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियों के लेख हैं और बाद के राजाओं के सिक्कों पर केवल ब्राह्मी लिपि के हैं । पूर्वोक्त खरोष्ठी लिपि, फ़ारसी अक्षरों की तरह, दाईं तरफ़ से बाईं तरफ़ को लिखी जाती थी।

इनके समय के अङ्कों में यह विलक्षणता है कि उनमें इकाई, दहाई आदि का हिसाब नहीं है। जिस प्रकार १ से ९ तक एक एक अङ्क का बोधक अलग अलग चिह्न है, उसी प्रकार १० से १०० तक का बोधक भी अलग अलग एक ही एक चिह्न है। तथा सौ के अङ्क में ही एक दो आदि का चिह्न और लगा देने से २००, ३०० आदि के बोधक अङ्क हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ, यदि आप को १५५ लिखना हो तो पहले सौ का अङ्क लिखा जायगा, उसके बाद पचास का और अन्त में पाँच का। यथा—

१००+५०+५=१५५ 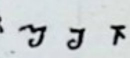

आगे क्षत्रपों के समय के ब्राह्मी अक्षरों और अङ्कों की पहचान के लिए उनके नक़शे दिये जाते हैं; उनमें प्रत्येक अक्षर और अङ्क के सामने आधुनिक नागरी अक्षर लिखा है। आशा है, इससे संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् भी उस समय के लेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों को पढ़ने में समर्थ होंगे।

इसी के आगे खरोष्ठी अक्षरों का भी नक़शा लगा दिया गया है, जिससे उन अक्षरों के पढ़ने में भी सहायता मिलेगी।

क्षत्रपों के लेखों और सिक्कों आदि में मिले हुए ब्राह्मी अक्षरों का नक़शा।

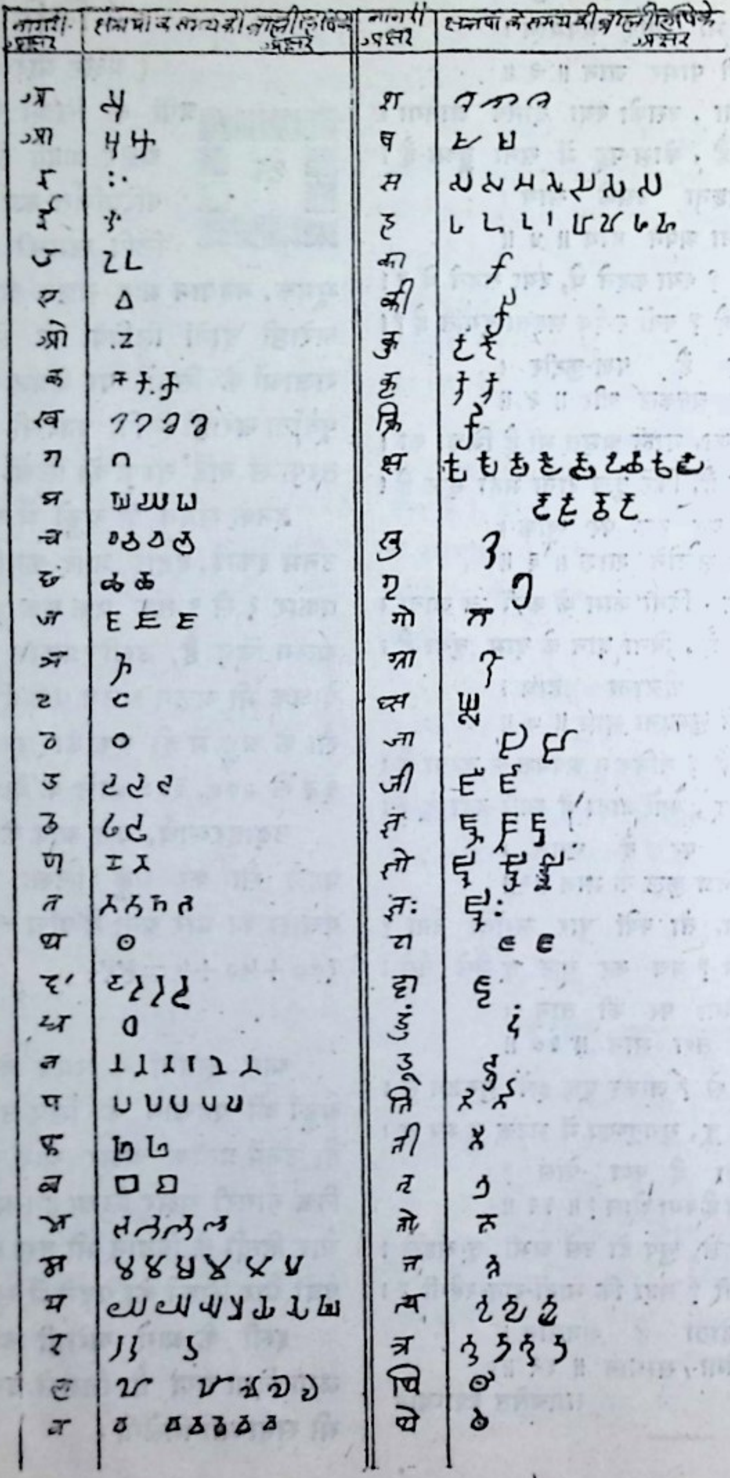
नागरी अक्षर
क्षत्रपों के समय की ब्राह्मी लिपि के अक्षर
नागरी अक्षर
क्षत्रपों के समय की ब्राह्मी लिपि के अक्षर
अ
आ
इ
ई
उ
ए
ओ
क
ख
ग
घ
च
छ
ज
ञ
ट
ठ
ड
ढ
ण
त
थ
द
ध
न
प
फ
ब
भ
म
य
र
ल
व
श
ष
स
ह
का
की
कु
कृ
क्रि
क्ष
गो
जा
जी
दा
ति
ती
त्र

क्षत्रपों के लेखों और सिक्कों आदि में मिले हुए ब्राह्मी अक्षरों का नक़्शा।

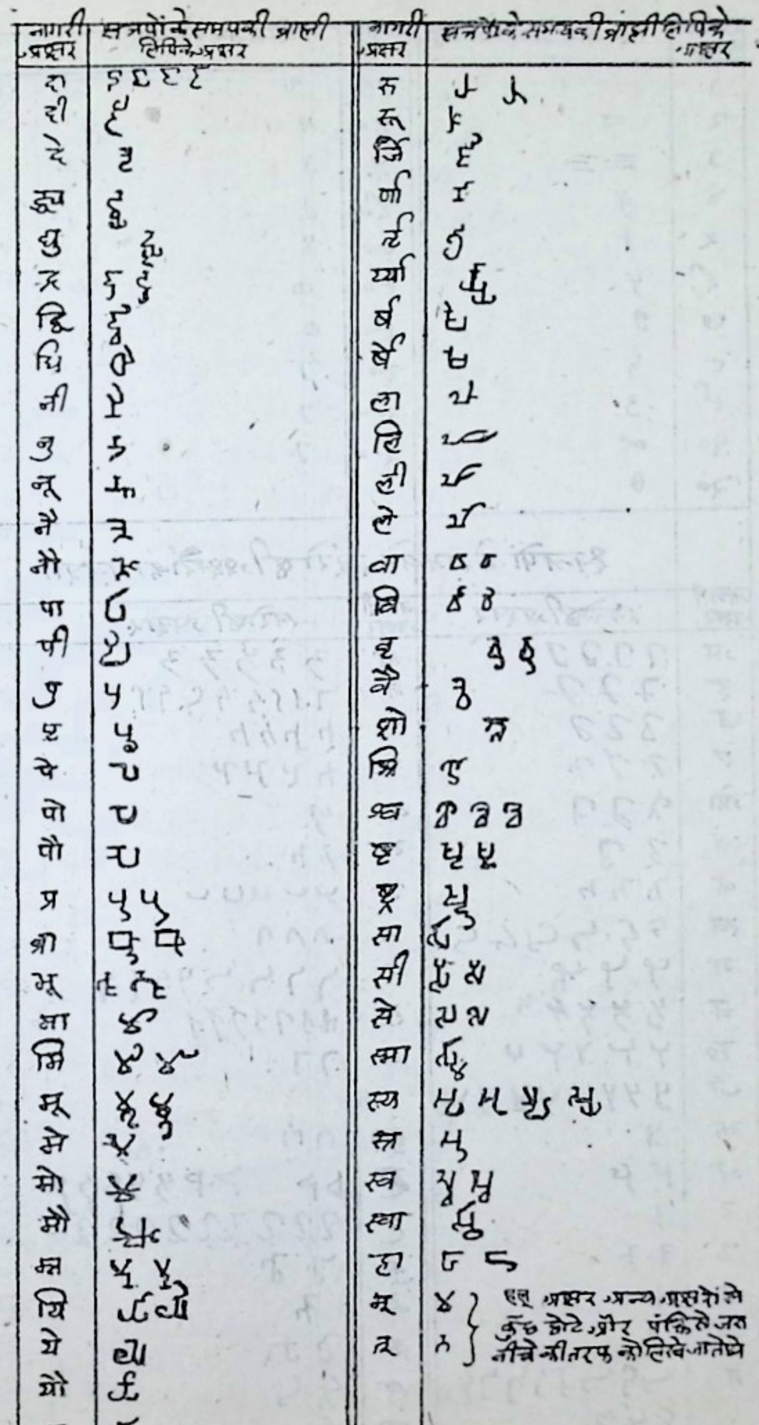
नागरी अक्षर
क्षत्रपों के समय की ब्राह्मी लिपि के अक्षर
नागरी अक्षर
क्षत्रपों के समय की ब्राह्मी लिपि के अक्षर
द
दी
दे
द्म
धु
न
न्हि
नि
नी
नु
नू
नै
नौ
प
फी
पु
पृ
पे
पो
पौ
प्र
श्री
भू
मा
मि
मू
मे
मो
मौ
म्न
यि
ये
यो
र
रि
रु
रू
र्जि
र्णा
र्द्र
र्या
र्व
र्वे
ला
लि
ली
ले
वा
वि
वृ
वै
शो
श्रि
ष्व
ष्ट
ष्र
सा
सी
से
स्मा
स्य
स्र
स्व
स्वा
हा
म्र
ह्र
ये अक्षर अन्य अक्षरों से कुछ छोटे और पंक्ति से जरा नीचे की तरफ को लिखे जाते थे

क्षत्रपों के समय के अङ्कों का नक़शा ।

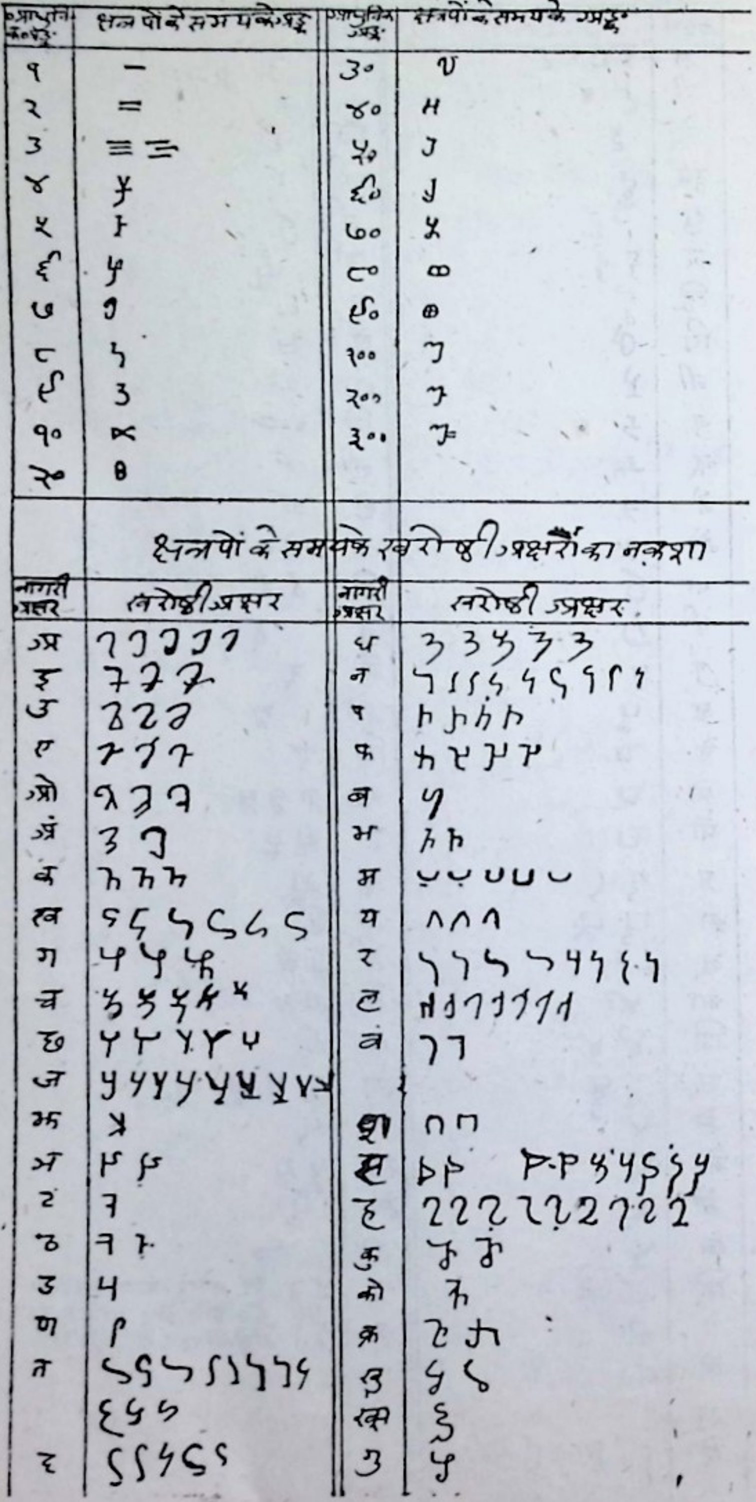
आधुनिक अङ्क
क्षत्रपों के समय के अङ्क
आधुनिक अङ्क
क्षत्रपों के समय के अङ्क
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
२०
३०
४०
५०
६०
७०
८०
९०
१००
२००
३००
क्षत्रपों के समय के खरोष्ठी अक्षरों का नक़शा
नागरी अक्षर
खरोष्ठी अक्षर
नागरी अक्षर
खरोष्ठी अक्षर
अ
इ
उ
ए
ओ
अं
क
ख
ग
च
छ
ज
झ
ञ
ट
ठ
ड
ण
त
द
ध
न
प
फ
ब
भ
म
य
र
ल
वं
श
स
ह
कु
को
क्र
ग्र
ख्र
ग

क्षत्रपों के लेखों और सिक्कों आदि में मिले हुए खरोष्ठी अक्षरों का नक़शा।

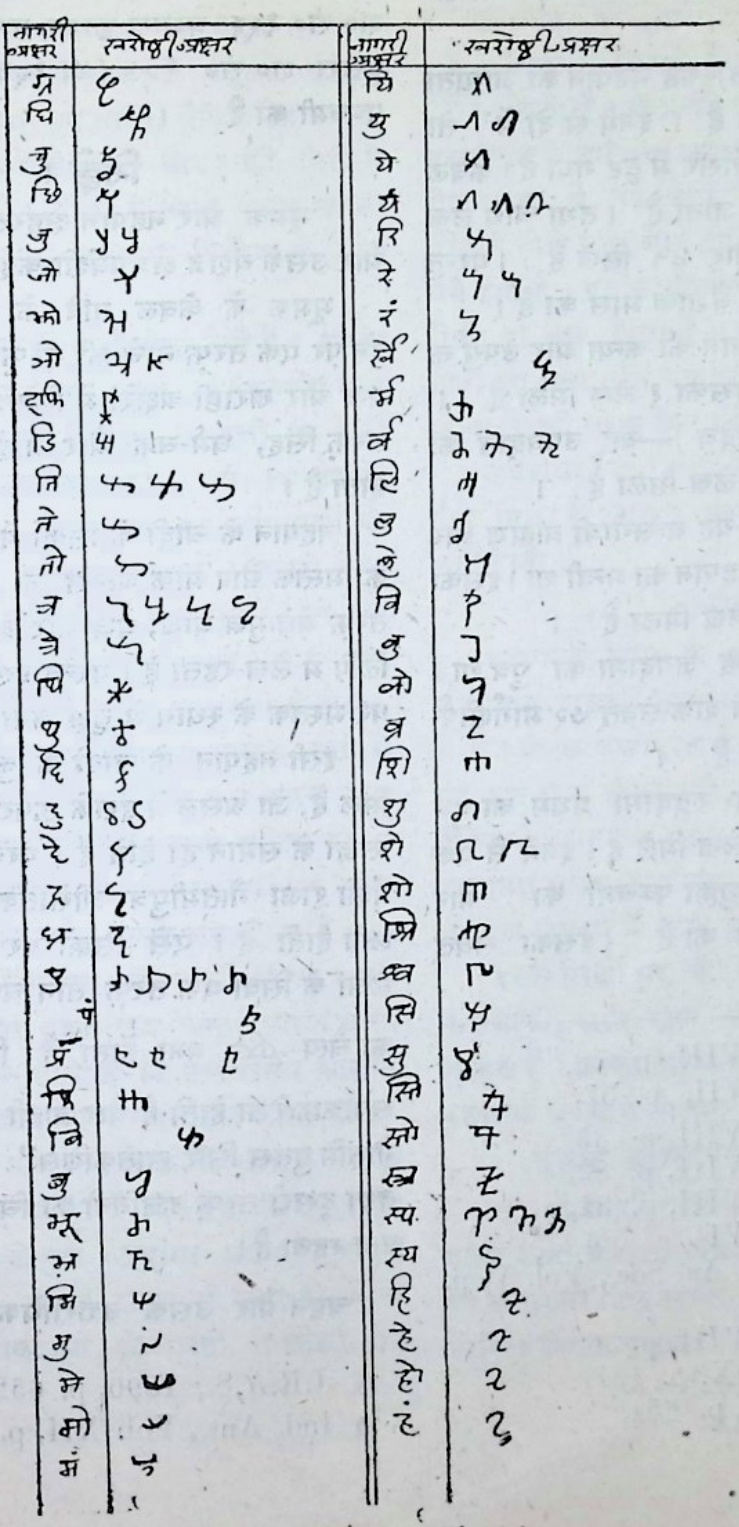
नागरी अक्षर
खरोष्ठी अक्षर
ग्र
घि
ञु
छि
जु
जो
झो
ञो
ट्फि
डि
ति
ते
तो
त्र
त्रे
थि
दु
दि
द्रु
द्रे
न
ध्र
पु
पं
प्रं
फि
बि
भु
भ्रू
मं
मि
मु
मे
मो
मं
नागरी अक्षर
खरोष्ठी अक्षर
यि
यु
ये
यै
रि
रे
रं
र्खि
र्मे
र्वे
लि
वु
वे
वि
वु
वो
व्र
शि
शु
शे
शो
श्रि
ष्व
सि
सु
स्ति
स्तो
स्त्र
स्प
स्य
हि
हे
हो
हं

लेख

अब तक इनके केवल १२ लेख मिले हैं। ये निम्नलिखित पुरुषों के हैं—

उषवदात (ऋषभदत्त)–यह नहपान का जामाता था। इसके ४ लेख मिले हैं। इनमें से दो में[1] तो संवत् है ही नहीं और तीसरे में टूट गया है। केवल चैत्र-शुक्ला पूर्णिमा पढ़ा जाता है[2]। तथा चौथे लेख में शक-संवत् ४१, ४० और ४५ लिखे हैं[3]। परन्तु यह लेख श० सं० ४२ के वैशाख मास का है।

दक्षमित्रा—यह नहपान की कन्या और उपर्युक्त उषवदात की स्त्री थी। इसका १ लेख मिला है[4]।

मित्र देवणक (मित्रदेव)—यह उषवदात का पुत्र था। इसका भी एक लेख मिला है[5]।

अयम (अर्यमन्)—यह वत्सगोत्री ब्राह्मण और राजा महाक्षत्रप स्वामी नहपान का मन्त्री था। इसका शक-संवत् ४६ का एक लेख मिला है[6]।

रुद्रदामा प्रथम—यह जयदामा का पुत्र था। इसके समय का एक लेख शक-संवत् ७२ मार्गशीर्ष-कृष्णा प्रतिपदा का मिला है[7]।

रुद्रसिंह प्रथम—यह रुद्रदामा प्रथम का पुत्र था। इसके समय के दो लेख मिले हैं। इनमें से एक श० सं० १०३, वैशाख शुक्ला पञ्चमी का[8] और दूसरा चैत्र शुक्ला पञ्चमी का है[9]। इसका संवत् टूट गया है।

रुद्रसेन प्रथम—यह रुद्रसिंह प्रथम का पुत्र था। इसके समय के २ लेख मिले हैं। इनमें पहला श० सं० १२२ वैशाख कृष्णा पञ्चमी का[10] और दूसरा श० सं० १२७ (या १२६) भाद्रपद कृष्णा पञ्चमी का है[11]।

सिक्के।

(भूमक और नहपान क्षहरत-वंशी तथा चष्टन और उसके वंशज क्षत्रपवंशी कहलाते थे)

भूमक के केवल ताँबे के सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ़ नीचे की तरफ़ फलकवाला तीर, वज्र और खरोष्ठी अक्षरों में लिखा लेख तथा दूसरी तरफ़ सिंह, धर्म-चक्र और ब्राह्मी अक्षरों का लेख होता है।

नहपान के चाँदी के सिक्कों में एक तरफ़ राजा का मस्तक और ग्रीक अक्षरों का लेख तथा दूसरी तरफ़ अधोमुख बाण, वज्र और ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में लेख रहता है। परन्तु इसके ताँबे के सिक्कों पर मस्तक के स्थान में वृक्ष बना होता है।

इसी नहपान के चाँदी के कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं, जो असल में इसके ऊपर वर्णित चाँदी के सिक्कों के समान ही होते हैं। परन्तु उन पर आन्ध्र-वंशी राजा गौतमीपुत्र श्रीसातकर्णी की मुहरें भी लगी होती हैं। ऐसे सिक्कों पर पूर्वोक्त चिह्नों या लेखों के सिवा एक तरफ़ तीन चश्मों (अर्धवृत्तों) का चैत्य 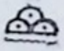 बना होता है जिसके नीचे एक सर्पाकार रेखा होती है और ब्राह्मी लिपि में "राञो गोतमि पुतस सिरि सातकणिस" लिखा रहता है। तथा दूसरी तरफ़ उज्जयिनी का चिह्न विशेष बना रहता है।

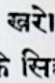

चष्टन और उसके उत्तराधिकारियों के चाँदी,

---

[1] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 78,
Ep. Ind., Vol. VII, p. 57,

[2] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 85,

[3] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 82,

[4] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 81,

[5] Ep. Ind., Vol VII, p. 56,

[6] J. Bo. Br. Roy. As. Soc., Vol. V, p. 169,

[7] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 36,

[8] Ind Ant., Vol. X, p. 157,

[9] J.R.A.S., 1890, p. 651,

[10] J.R.A.S., 1890, p. 652,

[11] Ind. Ant., Vol. XII, p. 32,

ताँबे, शीशे आदि धातुओं के सिक्के मिलते हैं। इनमें चाँदी के सिक्के ही बहुतायत से पाये जाते हैं। अन्य धातुओं के सिक्के अब तक बहुत ही कम मिले हैं। तथा उन पर के लेख भी बहुधा संशयात्मक ही होते हैं। उन पर हाथी, घोड़ा, बैल अथवा चैत्य की तसवीर बनी होती है और ब्राह्मी लिपि में लेख लिखा रहता है। शीशे के सिक्के केवल स्वामी रुद्रसेन तृतीय (स्वामी रुद्रदामा द्वितीय के पुत्र) के ही मिले हैं।

क्षत्रपों के चाँदी के सिक्के गोल होते हैं। इनको प्राचीनकाल में कार्षापण कहते थे। इनकी तोल ३४ से ३६ ग्रेन अर्थात् क़रीब १४ रत्ती के होती है। नासिक से जो उषवदात का श० सं० ४२ वैशाख का लेख मिला है[1] उसमें ७०००० कार्षापणों को २००० सुवर्णों के बराबर लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि ३५ कार्षापणों में एक सुवर्ण (उस वक़्त के कुशन-राजाओं का सोने का सिक्का) आता था। यदि कार्षापण का तोल ३६ ग्रेन (१४ रत्ती के क़रीब) और सुवर्ण का तोल १२४ ग्रेन (६ माशे २ रत्ती के क़रीब) मानें तो प्रतीत होता है कि उस समय चाँदी से सुवर्ण की क़ीमत क़रीब १० गुनी अधिक थी।

चष्टन से लेकर इस वंश के सिक्कों की एक तरफ़ टोपी पहने हुए राजा का मस्तक बना होता है। इन सिक्कों पर के राजा के मुख की आकृतियों का आपस में मिलान करने पर बहुत कम अन्तर पाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि उस समय आकृति के मिलान पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

नहपान और चष्टन के सिक्कों में राजा के मस्तक के इर्द गिर्द ग्रीक अक्षरों में भी लेख लिखा होता है। परन्तु चष्टन के पुत्र रुद्रदामा प्रथम के समय से ये ग्रीक अक्षर केवल शोभा के लिए ही लिखे जाने लगे थे। जीवदामा से क्षत्रपों के सिक्कों पर मस्तक के पीछे ब्राह्मी लिपि में वर्ष भी लिखे मिलते हैं। ये वर्ष शक-संवत् के हैं।

इन सिक्कों की दूसरी तरफ़ चैत्य (बौद्धस्तूप) 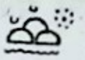 होता है, जिसके नीचे एक सर्पाकार रेखा होती है। चैत्य की एक तरफ़ चन्द्रमा और दूसरी तरफ़ तारे (या सूर्य्य) बने होते हैं। देखा जाय तो असल में यह चैत्य मेरु-पर्वत का चिह्न है, जिसके नीचे गङ्गा और दाएँ बाएँ सूर्य्य और चन्द्रमा बने होते हैं। पूर्वोक्त चैत्य के गिर्द वृत्ताकार ब्राह्मी लिपि का लेख होता है। इसमें राजा और उसके पिता का नाम तथा उपाधियाँ लिखी रहती हैं। लेख के बाहर की तरफ़ बिन्दुओं का वृत्त बना होता है।

जयदामा के ताँबे के सिक्कों पर ६ चश्मों का चैत्य मिला है। परन्तु उसके नीचे सर्पाकार रेखा नहीं होती।

भाषा

क्षत्रपों के समय के पूर्ववर्णित १२ लेखों में से उषवदात, उसकी स्त्री और पुत्र के लेख प्राकृत भाषा में हैं। केवल उषवदात के बिना संवत् के एक लेख का कुछ भाग संस्कृत में लिखा गया है। नहपान के मन्त्री अयम का लेख भी प्राकृत में है। परन्तु रुद्रदामा प्रथम, रुद्रसिंह प्रथम और रुद्रसेन प्रथम के लेख संस्कृत में लिखे हुए हैं।

इनके सिक्कों पर के एक आध लेख को छोड़ कर बाक़ी सभी लेख संस्कृत-मिश्रित प्राकृत में मिलते हैं। इनका अलग अलग खुलासा हाल प्रत्येक राजा के वर्णन में मिलेगा।

इनके इतिहास की सामग्री

क्षत्रपों के इतिहास लिखने में इनके केवल एक दर्जन लेखों और ताम्रपत्रों तथा कई हज़ार सिक्कों से ही सहायता मिल सकती है। क्योंकि इनका प्राचीन लिखित विशेष वृत्तान्त अभी तक नहीं मिला है।

(साहित्याचार्य) विश्वेश्वरनाथ रेऊ

---

[1] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 82,

डाक्टर विल्सन।

आज कल संसार के राजनीतिज्ञों में डाकृर उडरो विल्सन का दर्जा सब से ऊँचा है। उनके सिर पर ताज नहीं है और न वे राजसिंहासन ही पर आसीन हैं। उनके पास कोई पदवी नहीं, सिवा उन पदवियों के जो उन्हें विश्वविद्यालय ने सम्पत्ति-शास्त्र, क़ानून और राजनीति की कठिन परीक्षायें पास करने के लिए दी हैं। बहुतेरे लोग तो उन्हें डाकृर भी नहीं कहते, सिर्फ़ मिस्टर विल्सन कह कर पुकारते हैं। तथापि आज बड़े बड़े स्वतन्त्र नराधिप डाकृर विल्सन को दावतें देते हैं और प्रजातन्त्र राज्यों के नेता उनका आदर करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। शत्रु, मित्र और उदासीन सभी दलों के लोग उनका सम्मान करते हैं और यह आशा करते हैं कि विल्सन साहब न्याय करेंगे और राष्ट्रों के स्वार्थ पर ध्यान न दे ऐसा उपाय करेंगे कि इस विश्वव्यापी समर का अन्त हो जाय और संसार में सदैव के लिए शान्ति स्थापित रहे।

इस समय यदि कोई भी संसार का राजनेता है तो डाकृर विल्सन ही। यदि किसी मनुष्य को संसार का संरक्षक कहलाये जाने का अधिकार है तो अमेरिका के इस प्रेसीडेन्ट को।

डाकृर विल्सन के जीवन में उन शक्तियों का प्रभाव पड़ा है जो मनुष्य को पुण्यात्मा बनाया करती हैं। विल्सन साहब का जन्म वर्जिनिया के स्टोन्टन नामक स्थान में एक पादरी साहब के घर २८ दिसम्बर १८५६ को हुआ था। उनके पिता डाकृर जोज़ेफ़ आर विल्सन आइरिश-स्काच ख़ानदान के थे और वे स्टर्नबियो लाजिकैल सिमिनरी और प्रिन्सटन थियोलाजिकल सिमिनरी में अध्ययन कर प्रेसबिटेरियन-सम्प्रदाय के पादरी बने। उनकी माता जेनट वडरो विल्सन एक अँगरेज़-ख़ान्दान के पादरी की बेटी थीं।

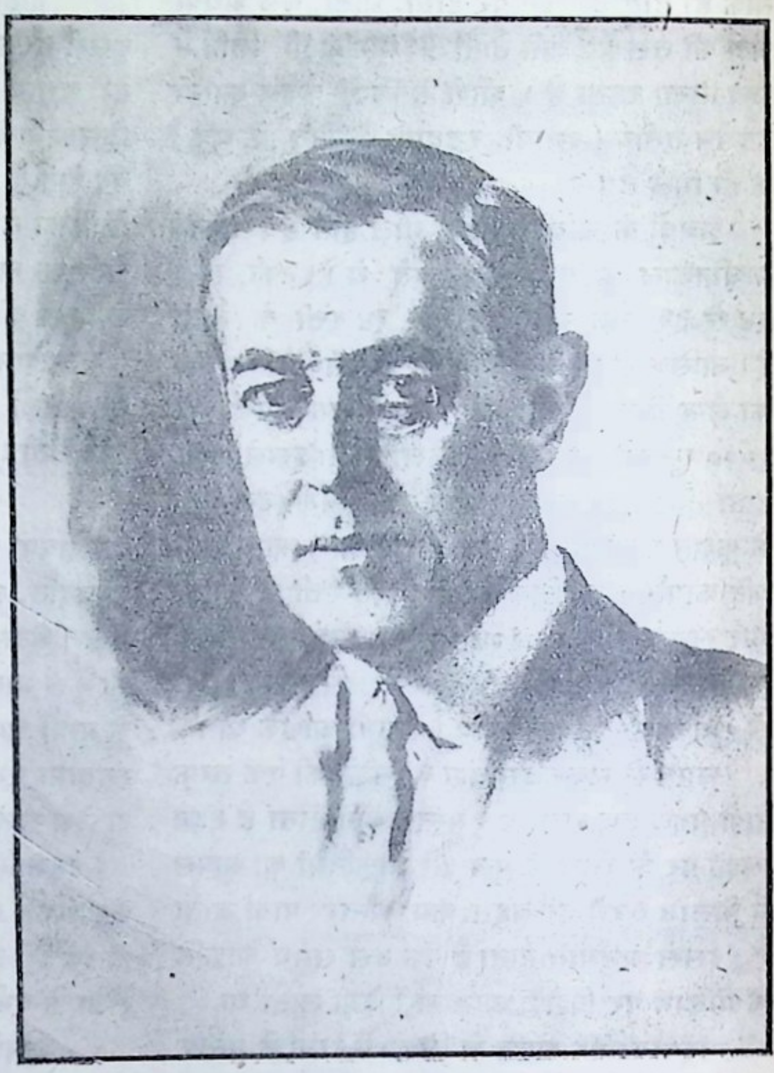

डाक्टर विल्सन।

अभी हाल में जब डाकृर विल्सन इँग्लेंड आये तब वे अपनी माता के कुटुम्बियों के स्थान को देखने गये थे। इन्हीं माता-पिता के द्वारा यूनाइटेड स्टेट्स के भावी प्रेसीडेन्ट ने गहरे आत्मिक विचार प्राप्त किये। इन्होंने ही अपने पुत्र के पालन और शिक्षा का प्रबन्ध इतना उत्तम किया जितना उस देश के थोड़े ही बालकों का हो सकता था।

डाकृर विल्सन के पिता ने अपने पुत्र को संक्षेप में, परन्तु स्वच्छता और शीघ्रता के साथ, अपने विचारों को प्रकट करने में शिक्षा दी। सत्रहवीं वर्ष की उम्र में टामस उडरो विल्सन हाई स्कूल की परीक्षा पास कर नार्थ करोलिना के डेविडसन कालेज में दाख़िल हुए। यह पुराने ढङ्ग की संस्था थी। अपने कमरों को ख़ूब साफ़ रखना, जलाने के लिए लकड़ी लाना और लम्प वग़ैरः ठीक करना इत्यादि कार्य्य विद्यार्थियों को स्वयं ही करने पड़ते थे। इस प्रकार के जीवन से छात्र विल्सन की शिक्षा के एक बड़े अङ्ग की पूर्ति हो गई। इससे उनमें स्वावलम्बन आगया। अपने कार्य्य करने के लिए अपने ही पर भरोसा करना उन्होंने सीख लिया।

कुछ दिनों तक बीमार रहने के कारण विल्सन साहब का पढ़ना लिखना बन्द रहा। परन्तु सन् १८७५ में वे प्रन्सिटन के विश्वविद्यालय में दाख़िल हुए और सन् १८७९ में नामवरी के साथ उन्हें डिगरी मिली। कालेज में उन्होंने राजकीय शास्त्र का अध्ययन बड़े प्रेम और परिश्रम के साथ किया। डिबेटिङ्ग सोसायटी में भी वे व्याख्यान दिया करते थे जिससे थोड़े ही दिनों में वे वक्तृता करने में बड़े प्रवीण होगये।

मिस मार्गेरेट विल्सन।

इसके बाद विल्सन साहब ने क़ानून पढ़ा। १८८२ में उन्हें डिप्लोमा मिला और उसी साल एटलान्टा में उन्होंने वकालत करना शुरू कर दिया। डेढ़ वर्ष तक वकालत की, परन्तु उन्हें कामयाबी न हुई। मुक़द्दमे कम मिलते थे। काम के अधिक न होने से राजकीय शास्त्र पढ़ने का अवकाश इन्हें बहुत

मिलता था। जान हायकिन्स विश्व-विद्यालय में इन्होंने शासन-शास्त्र पढ़ने के बाद काङ्ग्रेशनल गवर्नमेन्ट नामक पुस्तक लिखी, जिससे उन्हें पी० एच० डी० की पदवी मिली।

जान हायकिन्स में डाकृर विल्सन की भेंट मिस एलन लुई एक्सन से होगई जिनका प्रभाव डाकृर साहब के जीवन पर बहुत कुछ पड़ता था। मिस एलन लुई एक्सन एक पादरी की लड़की थीं और उस समय न्यूयार्क आर्ट लीग में अनेक कलाओं का अभ्यास कर रही थीं। तीन वर्ष की मित्रता के बाद २४ जून १८८५ को डाकृर विल्सन का विवाह मिस एक्सन के साथ हो गया। ब्रीन मान नामक महिला-विश्वविद्यालय में डाकृर विल्सन राजकीय शास्त्र के प्रोफ़ेसर नियुक्त होगये। वहाँ थोड़े ही दिन पढ़ाने के बाद वेसलियन-विश्व-विद्यालय में चले गये। १८९० में प्रिन्सटन विश्व-विद्यालय में क़ानून और राजकीय शास्त्र पढ़ाने लगे और बारह वर्ष बाद उस संस्था के प्रेसीडेन्ट नियुक्त किये गये। दस वर्ष तक बड़े परिश्रम के साथ वहाँ काम कर उस संस्था को सुधार उसका काया-पलट कर दिया।

१९१० में जब डाक्टर विल्सन न्यूजर्सी नामक रियासत के गवर्नर चुने गये तब उन्हें उन सिद्धान्तों को कार्य्य में परिणत करने का पहला मौक़ा मिला जिन्हें वे २५ वर्ष से पढ़ा रहे थे। उनके मित्रों और अनुयायियों का मत था कि विल्सन साहब राजकीय शास्त्र के अध्यापक तथा एक बड़ी संस्था के मुख्य अधिष्ठाता होने के कारण गवर्नरी का काम बहुत अच्छा करेंगे, परन्तु विल्सन साहब के शत्रु कहते थे कि राजनैतिक मामलों में पड़ते ही विल्सन साहब का दिमाग़, जो सिर्फ़ अध्यापकता करते रहे हैं, चक्कर में पड़ जायगा और वे शासन का कार्य्य ठीक न कर सकेंगे। डाक्टर विल्सन के मित्रों का विश्वास शीघ्र ही सच्चा साबित होगया और उनके शत्रु चकित रह गये। उन्होंने स्वार्थी, धोखेबाज़ और पेशेवाले राजनैतिक आन्दोलन-कारियों की ऐसी ख़बर ली कि वे यह मनाने लगे कि विल्सन साहब मर जाते तो अच्छा होता। विल्सन साहब ने कई एक क़ानून ऐसे पास कराये जिनसे प्रजा को बेईमान अफ़सरों और राजनैतिक आन्दोलन-कारियों से छुटकारा मिल गया। दो ही वर्ष के अन्दर यह बात हर भले आदमी को निश्चित होगई कि शासन-शास्त्र का पढ़नेवाला यदि ठीक हो तो यह ज़रूरी नहीं है कि उस शास्त्र के अध्ययन से शासन करने की शक्ति ही मारी जाय।

प्रजापक्षावलम्बी दल की ओर से डाक्टर विल्सन २ जुलाई १९१२ को यूनाइटेड स्टेट्स के प्रेसीडेन्ट के पद के लिए नामज़द किये गये। उनके प्रतिद्वन्द्वियों में विलियम जेनिङ्गस् थे जो मिस्टर विलियम मेकनली, कर्नल थियोडर रूसवेल्ड और मिस्टर विलियम हावर्ड टाफ्ट के मुक़ाबले में तीन दफ़े प्रेसीडेन्टी के चुनाव में हार चुके थे। जब मिस्टर ब्रायन को यूनाइटेड स्टेट्स में सभी लोग जानते थे तब डाक्टर विल्सन का किसी ने न्यूजर्सी के बाहर नाम तक न सुना था। परन्तु ब्रायन साहब तथा औरों के मुक़ाबले में डाक्टर विल्सन ही यूनाइटेड स्टेट्स के प्रेसीडेन्ट चुने गये। १९१२ के प्रेसीडेन्शल चुनाव में बड़ा युद्ध रहा। रिपब्लिकन दल की ओर से मिस्टर विलियम हावर्ड टाफ्ट नामज़द हुए थे, जो उस समय यूनाइटेड स्टेट्स के प्रेसीडेन्ट थे। कर्नल रूस-वेल्ट भी उम्मेदवार थे। वे पहले प्रेसीडेण्ट रह भी चुके थे। उन्होंने अपना एक नया दल तैयार किया था। टाफ्ट साहब और डाक्टर विल्सन दोनों ही ने भ्रमण कर अपने सिद्धांतों को समझाना शुरू किया। प्रजा ने डाक्टर विल्सन ही को चुना। ४ मार्च १९१३ को वाशिङ्गटन में डाक्टर विल्सन प्रेसीडेन्ट के आसन पर आरूढ़ हुए। अमेरिका और योरप में तेरह की संख्या मनहूस समझी जाती है। कारण यह है कि

यीशु मसीह सूली पर चढ़ाये जाने से एक दिन पहले अपने १२ शिष्यों को लेकर भोजन करने बैठे थे । डाक्टर विलसन के शत्रुओं ने यह कहना शुरू किया कि १९१३ में विलसन साहब प्रेसीडेन्ट हुए हैं। इससे ख़ैर नहीं । विलसन साहब ने अपने मित्रों को विश्वास दिलाया कि १३ की संख्या दूसरों के लिए चाहे जैसी हो, परन्तु उनके लिए शुभकारी ही होगी। अपनी बात के प्रमाण में उन्होंने कई सबूत भी दिये। उदाहरण के लिए उन्होंने अपने नाम ही की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया । Woodrow Wilson (उडरो विलसन) शब्द में १३ अक्षर हैं । अपने प्रोफ़ेसरी के तेरहवें वर्ष में वे प्रिन्सटन के तेरहवें प्रेसीडेन्ट हुए । प्रेसीडेन्ट बनने पर भी १३ तेरह की संख्या ने उनका पीछा न छोड़ा ।

जेसी विलसन ।

जो प्रतिज्ञायें डाक्टर विलसन ने अपने प्रेसीडेन्ट चुने जाने के समय की थीं उन्हें पूरा करने के लिए जितना प्रयत्न डाक्टर विलसन ने किया उतना शायद ही किसी अमेरिकन ने किया हो । बड़े कड़े विरोध होने पर भी उन्होंने बहुत से हितकर क़ानून पास कराये ।

१९१४ में, जब कि सारे योरप पर लड़ाई के बादल छाये हुए थे, डाक्टर विलसन की सहधर्म्मिणी का देहान्त हो गया। उनके तीन पुत्रियाँ हैं । मिस मार्गरेट विलसन सब में बड़ी हैं । वे चित्रकारी में निपुण हैं । उनका स्वर बहुत मधुर है। लड़ाई के दिनों में अनेक कन्सर्टों में गान कर उन्होंने बड़ी सहायता की ।

जेसी उडरो मेरी लेन्ड बाल्टीमोर के महिला-विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट हैं और अब फ़िलाडेलफ़िया में बन्दोबस्त के महकमे में काम करती हैं। उनका विवाह १९१३ में न्यूयार्क के मिस्टर फ्रेन्सिस सायर के साथ हुआ था। इलियनर रेनो विलसन सब में छोटी हैं । उन्होंने फ़िलाडलफ़िया के नेशनल एकेडेमी में शिक्षा पाई है । इनका विवाह १९१४ में सेक्रेटरी आफ़ दी ट्रेज़री, मिस्टर विलियम ए० मेकडू, के साथ हुआ ।

डाक्टर विलसन की सहधर्म्मिणी का देहान्त बड़े ही नाज़ुक वक़्त में हुआ। प्रेसीडेन्ट विलसन ने अपने दुःख को एक किनारे रख दिया । उस समय आवश्यकता थी कि वे एकाग्रचित्त हो युद्ध की गति

को देखते और जर्मनी की कुटिल नीति का मुक़ाबला करते। परन्तु राजकार्य्य के भार के कारण उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ने लगी। इसलिए उनके मित्रों और कुटुम्बियों को यह ख़बर सुन कर बड़ा आनन्द हुआ कि प्रेसीडेन्ट विल्सन अपना दूसरा विवाह जल्दी ही वाशिङ्गटन की मिसेज़ नार्मन जी गेट के साथ करेंगे। मिसेज़ गेट एक मालदार व्यापारी की विधवा थीं और डाक्टर विल्सन की पुत्रियों की बड़ी मित्र थीं। लोग कहते हैं कि इस विवाह का संयोग डाक्टर विल्सन की लड़कियों ही के द्वारा हुआ। अभी जब डाक्टर विल्सन शान्ति-सभा में योरप आये थे तब उनके साथ मिसेज़ विल्सन भी थीं।

डाक्टर विल्सन को समर की मारकाट से आन्तरिक घृणा है, और जहाँ तक उनसे हो सका उन्होंने युद्ध से यूनाइटेड स्टेट्स् को अलग ही रक्खा। इस पर बहुत से लोगों ने अमेरिका और योरप वग़ैरः अन्य देशों में भी उनकी बड़ी हँसी उड़ाई। बाज़ बाज़ लोगों ने तो उन पर भीरुता के दोषारोपण करने शुरू कर दिये थे। परन्तु वे दृढ़ रहे। उसी समय उन्होंने युद्ध में भाग लेना आरम्भ किया जब उन्हें जर्मनी के अत्याचारों के कारण विवश हो जाना पड़ा।

डाक्टर विल्सन सन् १९१७ में अपने प्रेसीडेन्ट के पद से अलग हो जाते। परन्तु यूनाइटेड स्टेट्स् के लोगों ने उन्हें फिर चार वर्ष के लिए प्रेसिडेन्ट चुन लिया। इसके बाद ही अमेरिका के अनेक प्रतिवाद करने पर भी जर्मनों ने बिना विचारे जहाज़ डुबाने शुरू कर दिये। तब तो डाक्टर विल्सन के धैर्य्य की सीमा टूट गई और संसार की स्वतन्त्रता के विनाशक जर्मनी के प्रतिकूल इन्हें भी तलवार उठानी पड़ी।

इलियनर विल्सन।

संग्राम के कुछ दिन पहले डाक्टर विल्सन ने युद्ध की तैयारी की। इसलिए एक क़ानून पास करा कर १,९०,२०,३२,००० रुपयों की मंज़ूरी अपनी व्यव-

स्थापक सभा से कराई। इस ख़र्च को उन्होंने इस तरह विभक्त किया—

जङ्गी जहाज़ों पर	रु० ९४,५०,००,०००
फ़ोज पर	रु० ८०,१०,००,०००
फ़ौज और जंगी जहाज़ों की त्रुटियों को दूर करने के लिए	रु० ८,२६,७४,०००
क़िला-बन्दी के लिए	रु० ७,७२,४४,०००
सैनिक शिक्षालयें के लिए	रु० ६७,१४.०००

जङ्गी बेड़े के लिए कुल १५७ जहाज़ तैयार होने के लिए हुक्म दिया गया। १० बेटल-शिप्स, ६ बेटल-क्रूज़र्स, १० स्काउट-क्रूजर्स, ५० टार्पीडो बोट्स डिस्ट्रायर, ९ फ़्लीट सब मरीन्स, ५८ कोस्ट सब मरीन्स, १ हास्पिटल शिप, १ रिपेर शिप, १ ट्रेन्सर पोर्ट, २ डिस्ट्रायर टेन्डर, १ फ्लीट सब टेन्डर और २ गनबोट। इन सब का ख़र्च रु० १,७६.४५,४१,७२८ पड़ा। ६६ जहाज़ों का बनना, जिनमें ४ ड्रेडनाट और ४ बेटल-क्रूज़र थे, फ़ौरन शुरू कर दिया गया। यह कार्य्य १९१९ तक समाप्त होने को था। इसमें यूनाइटेड स्टेटस् का रु० १,९६,५८,६९,४१८ ख़र्च अन्दाज़ा गया।

युद्ध की घोषणा देने के बाद ही डाक्टर विलसन ने जङ्गी जहाज़ों की तैयारी कराने और फ़ौज के सजाने में बड़ी ही जल्दी कराई। सैनिकों को बहुत जल्द तैयार कर ऐसे गाढ़े समय में योरप भेजा जब कि मित्र-राष्ट्रों को उनकी सहायता की बड़ी ज़रूरत थी। अमेरिकन्स के युद्ध-क्षेत्र में पहुँचते ही युद्ध की गति बदल गई और अँगरेज़ और फ़्रेञ्च इत्यादि मित्र-दल की जीत होने लगी। अमेरिकन जङ्गी बेड़े ने भी जर्मनों की चालों को काट दिया और रसद वग़ैरः इँग्लेंड भेजने में बड़ी सहायता पहुँचाई। अमेरिका में लोगों ने मोटा अन्न खाया और गेहूँ इत्यादि अच्छा अन्न उस देश में भेज दिया जहाँ के लोग युद्ध में लड़ रहे थे।

संग्राम के दिनों में डाक्टर विलसन की सचाई और मनस्विता भली भाँति प्रकट हो गई। उनकी नेक-नीयती पर किसी को शङ्का न रही। विपत्ति में धीर और प्रसन्न-चित्त और अभ्युदय में शान्त रहने के कारण आज डाक्टर विलसन संसार के पूज्य हो रहे हैं। मानव-इतिहास में कभी भी किसी पुरुष ने अपनी जन्म-भूमि को इतना कीर्त्तिशाली नहीं बनाया जितना कि डाक्टर विलसन ने अमेरिका को बनाया है।

सेंट निहालसिंह (लन्दन)

विविध विषय।

१—मदरास-कौन्सिल और तामील भाषा।

आनरेबल मिस्टर नरसिंह अइयर मदरास के लेजिस्लेटिव काउन्सिल (क़ानून बनानेवाली सभा) के सदस्य हैं। गत अधिवेशन में उन्होंने अपना भाषण तामील भाषा में करना आरम्भ किया। इस पर आनरेबल मिस्टर राजगोपालाचार्य्य ने उन्हें टोका और एतराज़ किया। इस मामले में गवर्नर साहब के राजगोपालाचार्य्य का साथ देने पर आनरेबल मिस्टर नरसिंह अइयर और गर्वनर के बीच कुछ वादविवाद हो गया। मिस्टर अइयर ने अपनी मातृभाषा में भाषण करने का आग्रह किया। गवर्नर साहब के मना करने पर वे बैठ गये, परन्तु उस समय अँगरेज़ी में सम्भाषण करने से अइयर महोदय ने इन्कार कर दिया।

जब संयुक्त-प्रदेशादि और प्रान्तों की क़ानून-बनाने वाली काउन्सिलों में मेम्बर अपनी मातृभाषा में सम्भाषण कर सकते हैं तो फिर बेचारे मदरास काउन्सिल के मेम्बर ही इस अधिकार से क्यों वंचित रक्खे जायँ? काउन्सिलों के मेम्बरों के बढ़ाये जाने की आशा की जारही है। मेम्बर भी अनेक समुदायों से चुने जासकेंगे। उन के प्रतिनिधियों को अँगरेज़ी ही में भाषण करने के लिए कैसे विवश किया जा सकेगा?

२—कुमारी ताराबाई।

बड़े बड़े वज़न के पत्थरों को अपने सीने पर रख कर घनों से तुड़वाना, बहुत से आदमियों से लदी हुई गाड़ियों का अपने ऊपर से निकलवाना इत्यादि विकट कसरतें

कुमारी ताराबाई ।

MISS TARABAI

कुमारी ताराबाई (कसरती पोशाक में)

राममूर्ति आदिक पुरुष ही किया करते थे। अब इस देश की एक महिला कुमारी ताराबाई ने भी सर्कस में इन कसरतों को दिखलाना शुरू किया है। इन के शारीरिक बल और कसरतों को देख कर लोग चकित रह जाते हैं।

ताराबाई का जन्म अजमेर में हुआ था। बालपन ही में माता-पिता के देहान्त हो जाने से ये अनाथ हो गईं और इन्हें बड़े कष्ट सहने पड़े। अजमेर से इन्हें बरोदा चला जाना पड़ा। वहां इनके स्थान के निकट ही एक अखाड़ा था। उस अखाड़े के ख़लीफ़ा अमीनुद्दीन साहब के निरीक्षण में इन्होंने भी कसरत करनी शुरू कर दी। कसरतों में इनका अभ्यास इतना बढ़ा कि इनकी बराबरी कोई भी न कर सकता था। ये अपने व्यायाम-कौशल से लोगों को चकित करने लगीं। कुछ दिनों के बाद जब इन्होंने कसरत छोड़ दी तब इनका स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ गया। इसे सुधारने के लिए इन्हें फिर अभ्यास करना पड़ा। फिर अपने शुभचिन्तकों और रिश्तेदारों की राय से इन्होंने सर्कस खड़ा किया। तब से भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में जा जाकर अपने शारीरिक बल और कसरतों के कौतुक दिखा लोगों को विस्मित कर रही हैं। आप को अनेक पदक और मान-पत्र मिले हैं।

व्यायाम स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए वे लाभकारी ही नहीं, आवश्यक समझती हैं। इस विषय पर वे प्रायः व्याख्यान भी दिया करती हैं।

३—वैवाहिक कविता।

कुछ दिन हुए हमें अपने एक कान्यकुब्ज मित्र की बारात में सम्मिलित होने का मौक़ा मिला। इस बारात की रस्में बड़ी शिष्टता के साथ पूरी की गईं। कान्यकुब्जों की बारातों में, भोजन के समय, कहीं कहीं, स्त्रियां गालियां गाती हैं यह बात इस बारात में न थी। गालियों के स्थान में महिलाओं ने सुन्दर गान सुनाये। भोजनान्त में, कोई पण्डित भोजन के पदार्थों की तारीफ़, किसी पुराने श्लोक से कर, बरातियों की तरफ़ से कृतज्ञता प्रकट कर दिया करता है। इस बारात में विशेषता यह थी कि संस्कृत-श्लोकों के सिवा बरातियों की ओर से एक सम्बन्धी कवि ने हिन्दी में भी अपने भावों को प्रकट किया। भोजनान्त ही में नहीं, किन्तु बारात के बिदा होने के समय, मण्डप के नीचे भी, हिन्दी-कविता ही से समधोर की गई। भोजनान्त और समधोर के पद्य ये हैं—

(१)

पहला दिन।

इस आंगन में भोजन करके जो सुख मुझे मिला है आज
मिलता नहीं अगर मिल जाता मुझे देवताओं का राज
देख आपका प्रेम आपके ये उदारतासूचक काज
मैं कृतार्थ हो गया आपसे कर सम्बन्ध दुबे महराज ॥ १ ॥

अपने घर में अपने कुल का मनुज बच रहा हूँ मैं एक
आज आप का सम्बन्धी बन एक नहीं अब हुआ अनेक
बांधा है जिस प्रणय-बन्ध से मुझे आपने आज अशेष
शिथिल न होने देना उसको विनती मेरी यही विशेष ॥ २ ॥

इन कोकिल-कण्ठी कामिनियों ने जो मधुर गीत गाये
सुधा-सदृश कानों से पीकर वे मुझ को अतिही भाये
इनका यह गाली गाना भी चित में जब यों चुभ जाता
यदि ये कहीं और कुछ गातीं—बिना मोल मैं बिक जाता ॥ ३ ॥

(२)

दूसरा दिन।

किये जिन्होंने ये वर व्यञ्जन अति रोचक रसाल तैयार
उनके कर-कमलों में कमला करे सदा दिनरात विहार
और परोसा इन्हें जिन्होंने उनको धन्यवाद शत वार
अब तक कभी कहीं भी मेरा हुआ नहीं इतना सत्कार ॥ ४ ॥

(३)

तीसरा दिन।

इन स्वादिष्ट भोजनों के गुण बन्धु कहां तक मैं गाऊँ
गाते गाते चुकें नहीं वे चाहे मैं ही चुक जाऊँ
इससे धन्य धन्य कहना ही बस होगा प्यारे भाई
ईश्वर करे होय आगे भी यह सम्बन्ध सौख्यदायी ॥ ५ ॥

परसों जो मधुमय गीतों का रस-समुद्र भर आया था
मैं ने तो उसमें परसों ही ग़ोता खूब लगाया था
आज उसी का बढ़ा हुआ जो बहा वेग से निर्मल नीर
मन मेरा बह गया उसी में यहां रह गया सिर्फ़ शरीर ॥ ६ ॥

गानेवाली जो सधवा हैं उनका बढ़ता रहे सुहाग
प्रेमी पति पावें कुमारिका विधवा श्री-हरि-पद-अनुराग

मम कृतज्ञतासूचक लेकर यह मुद्रा-युक महराज
पांच पांच पानों का बीड़ा दे दीजे इन सबको आज ॥ ७ ॥

(४)

चौथा दिन।

बिदा के समय,
मण्डप के नीचे,
विनय।

होता है विवाह में भाई मुख्य दान कन्या का दान
सो सद्गुणी आपने दे दी लक्ष्मी मङ्गलमूर्त्ति समान
वस्त्र, पात्र, धन-धान्य आदि भी देकर हे औदार्यनिधान
शालीनता दिखाई इतनी, इसका जब आता है ध्यान ॥ ८ ॥
तब मेरा यह हृदय बन्धुवर द्रवीभूत हो जाता है
अति अगाध आनन्द-सिन्धु में बारंबार समाता है
पूर्व-जन्म के पुण्य-पुञ्ज से दिवस आज यह आया है
दान, मान, सन्मान आपसे सब कुछ मैं ने पाया है ॥ ९ ॥
इस कन्या को सदन-स्वामिनी मैं सप्रेम बनाऊँगा
आशा यही, देख इसको मैं अपने दुःख भुलाऊँगा
विनती है, मेरी त्रुटियों को मन में आप न लावेंगे
इस लड़के को पुत्र समझ अब, इसको भी अपनावेंगे ॥१०॥

४—भारतवर्ष में शिक्षा।

भारतवर्ष में शिक्षा की दशा बतलाने के लिए सरकार की ओर से, हर पांच साल के बाद, एक रिपोर्ट प्रकाशित की जाती है। पिछली रिपोर्ट १९१२ से लेकर १९१७ तक की है। इसमें प्रत्येक प्रान्त की शिक्षा का पूरा पूरा ब्योरा दिया गया है। इस ब्योरे के साथ कुछ शिक्षा-सम्बन्धी विशेष बातें भी बतलाई गई हैं। नीचे दी गई संख्याओं से सिद्ध है कि प्रारम्भिक शिक्षा में हमारा देश अब भी और सभ्य देशों की अपेक्षा बहुत पीछे है।

देश का नाम	प्रारम्भिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों में फ़ी सैकड़ा जन-संख्या।
अमेरिका, संयुक्त प्रदेश	१९.८७
इँग्लेंड और वेल्स	१६.५२
जर्मन एम्पायर	१६.३०
फ़्रांस	१३.९०
जापान	१३.०७
सीलोन	८.९४
रोमेनिया	८.२१
रूस	३.७७
ब्रेज़िल	२.६१
भारतवर्ष	२.३८

१९११ की मर्दुम-शुमारी में लिख पढ़ सकनेवाले लोगों की तादाद हिन्दुस्तान में सिर्फ़ फ़ी सैकड़ा ५.९ थी।

सेकण्डरी स्कूलों में, अर्थात् उन स्कूलों में जहां प्रारम्भिक शिक्षा से आगे चल कर मेट्रीक्यूलेशन तक की शिक्षा दी जाती है, जन-संख्या और देशों की अपेक्षा बहुत बुरी नहीं है।

	सेकेण्डरी स्कूलों में फ़ी सदी जन-संख्या—
संयुक्त-प्रदेश, अमेरिका	१.५०२
जर्मनी	०.९८८
इँग्लेंड और वेल्स	०.६२
भारतवर्ष	०.४८६
जापान	०.३५४
फ़्रान्स	०.३२

हमारे देश के कालेजों में भी जन-संख्या और देशों के कालेजों की अपेक्षा कम है। परन्तु यहां की शिक्षा में एक बड़ा दोष यह है कि कालेजों में भी प्रायः लोग एक ही तरह के विषय का अध्ययन करते हैं, जिससे उन्हें सिर्फ़ सरकारी नौकरी, वकालत, अध्यापकता, डाक्टरी वग़ैरः दो ही चार पेशों के करने में सुविधा रहती है। शिल्पकला, व्यापारादि में तो शिक्षा का प्रबन्ध और देशों की अपेक्षा यहां बहुत ही कम है। जापान में ऐसे स्कूलों में जन-संख्या फ़ी सैकड़ा ६.५२ है और हिन्दुस्तान में ०.२७। हमारे देश की शिक्षा में और भी दोष हैं। लड़के ज़्यादा पढ़ते हैं, लड़कियां कम। अच्छे अध्यापकों की संख्या भी कम है। प्रारम्भिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों में कुल २,१९,६६७ अध्यापक हैं। उनमें सिर्फ़ ६५,८१८ अध्यापन-कार्य्य सीखे हुए हैं। सेकण्डरी स्कूलों

में ५८,९०५ अध्यापकों में २२,०३९ सीखे हुए हैं और ७६,२७ डिग्री पाये हुए हैं। वेतन भी अध्यापकों को बहुत थोड़ा दिया जाता है। इसी से प्रायः अपने काम में उनकी तबीयत कम लगती है और वे इस ताक में रहते हैं कि कहीं और अच्छी जीविका मिले और चल दें। हिन्दुस्तान में परीक्षाओं का ढङ्ग भी बहुत बुरा है। सब कुछ परीक्षाओं के फल ही पर अवलम्बित है। इससे शिक्षा और भी ख़राब होती है। रटने की आदत को उत्तेजना मिलती है और समझ को नहीं। कुंजियों और नोटों का भी प्रचार बहुत है। विद्यार्थियों की कौन कहे, बाज़ बाज़ अध्यापक भी कुंजियों और नोटों को ही देख कर पढ़ाते हैं। इसी से कहीं कहीं तो मूल पुस्तक की अपेक्षा उसकी कुंजी (की) के दाम अधिक होते हैं।

५—मज़दूरों के लिए मकान।

२६ फ़रवरी १९१९ की वाइसराय की काउन्सिल में सर दिनशा वाचा ने अपने प्रश्न से भारत-सरकार का ध्यान प्रधान सचिव मिस्टर लायड जार्ज और यूनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका, के प्रेसीडेन्ट की वक्तृताओं की ओर दिलाया, जिनमें वहां की गवर्नमेण्ट की ओर से मज़दूरों के लिए मकान बनाये जाने के वचन दिये गये हैं। वाचा साहब ने पूछा कि क्या यहां की गवर्नमेण्ट भी मज़दूरों के लिए मकान बनाने का उद्योग करेगी? गन्दे और छोटे मकानों में रहने के कारण उनकी मृत्यु-संख्या अधिक है। सरकार की तरफ़ से सर शंकरन नैय्यर ने उत्तर दिया कि बम्बई प्रान्त की गवर्नमेण्ट को ५ लाख रुपया इसलिए दिया गया है कि उससे उन लोगों को सहायता दी जाय जो मज़दूरों के लिए यथेष्ट मकान बनायेंगे। इन्डसट्रियल (व्यावसायिक) कमीशन ने जो इस विषय में राय दी है उसका भी हवाला दिया। सरकार कम सूद पर उन कम्पनियों को रुपया देने के लिए तैयार भी है जो इसका उद्योग करेंगे। परन्तु उद्योग पुतलीघरों और कम्पनियों की ओर से होना अच्छा है।

६—सूखी पत्तियों से काग़ज़।

अमेरिका में एक नया उद्योग किया जा रहा है। पेड़ों की पत्तियां जो सूख कर गिर जाती हैं उनसे काग़ज़ तैयार किया जायगा। वहां के वैज्ञानिकों ने युक्ति निकाल ली। कारख़ाने खुलनेवाले हैं। सूखी पत्तियों को पीस डालते हैं, फिर उसे साफ़ कर वह पदार्थ निकाल लेते हैं जिससे काग़ज़ बनाया जाता है। बनाने की विधि भी बहुत साधारण और कमख़र्च कही जाती है। देर भी नहीं लगती।

पिसी हुई पत्तियों का उपयोग और तरह भी करने लगे हैं। इससे जानवरों के लिए चारा तैयार करते हैं और कण्डे बना कर जलाने के काम में भी लाते हैं। यद्यपि काग़ज़ बनानेवाले कारख़ानों में पत्तियां भेजी जा सकती हैं, पर राय यह है कि जङ्गलों के पास ही कारख़ाने बनाये जायँ ताकि पत्तियों के एकत्र करने में सुविधा रहे।

अगर ये कारख़ाने चल निकले तो काग़ज़ की मँहगी शीघ्र ही दूर हो जायगी। पुस्तकों और पत्रों के ग्राहकों की शिकायतें भी साथ ही साथ जाती रहेंगी।

७—बाहर से आया हुआ दूध।

जो भारतवर्ष एक समय गो-सेवा के लिए प्रसिद्ध था और जो दूध और घी से भरा हुआ था वही देश अब इन पदार्थों के लिए भी दूसरे देशों का मुँह ताकता है। डाइरेक्टर आफ़ स्टटिस्टिक्स की रिपोर्ट से मालूम हुआ कि गत सेप्टेम्बर १९१८ के महीने में सात समुद्र पार कर दूध या दूध की बनी हुई चीज़ें नीचे दी हुई तादाद में यहां आईं—

प्रान्तों के नाम जहां आईं	कितनी	मूल्य रुपयों में
बङ्गाल	४९,५१० पाउन्ड	३२,३४८
बम्बई	२,९९,७०१	१,८५,६३५
सिन्ध	३९,०३८	२५,०८८
मदरास	८८,४४९	२६,०६३
बर्मा		
	४,७६,६९८	२,६९,१३४)

पुस्तक-परिचय।

१—दि ड्रीम क्वीन—अर्थात् स्वप्न-वासवदत्ता का अँगरेज़ी-अनुवाद। अनुवादक मि० शरीफ़ व मि० पन्नालाल; पृष्ठ-संख्या ५५; मूल्य बारह आना। इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्राप्य।

कुछ वर्ष हुए, पण्डित गणपति शास्त्रीजी ने कई हस्त-लिखित ग्रन्थों को खोज कर निकाला। यह पुस्तक उन्हीं में के एक नाटक का पद्यानुवाद है। अनुवाद अच्छा

हुआ है और पढ़ने लायक़ है। पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक नहीं मालूम होता।

※

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—लेखक, मिश्रबन्धु; प्रकाशक, परीक्षा-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ८८; मूल्य।-)

यह हिन्दी-साहित्य-सुलभ-ग्रन्थ-माला की दूसरी पुस्तक है। 'मिश्र-बन्धु-विनोद' के आरम्भ में जो हिन्दी-साहित्य का छोटा सा इतिहास दिया है वही थोड़ा सा हेर फेर कर स्वच्छन्द रूप से प्रकाशित किया गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में पाठ्य पुस्तकों में रक्खी गई है। इस पुस्तक के अब तक दो संस्करण हो चुके हैं। जो थोड़े में हिन्दी-साहित्य का इतिहास जानना चाहते हों उन्हें इससे बढ़ कर कोई पुस्तक नहीं मिल सकती। पुस्तक उपयोगी है।

※

३—दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ—लेखक श्रीयुत दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस; प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ॥).

तरुण-भारत-ग्रन्थावली की यह छठी पुस्तक राव-बहादुर श्रीयुत दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस की मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। यह दिल्ली नगर का संक्षिप्त इतिहास है। दिल्ली नगर ने जितने राजकीय परिवर्त्तन देखे हैं शायद ही किसी अन्य नगर ने देखे हों। आज कल दिल्ली फिर भारत की राजधानी बन गई है. ऐसे समय में दिल्ली का प्राचीन इतिहास और भी मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होगा। लिखने की शैली आवेश-पूर्ण है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

४—महात्मा गाँधी—लेखक, श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा। प्रकाशक, गांधी-हिन्दी-पुस्तक भण्डार, १२५, कालबादेवी, बम्बई। पृष्ठ-संख्या ३१३, मूल्य ३).

इस पुस्तक में महात्मा गांधी का जीवन-चरित तथा उनके लेखों और व्याख्यानों का संग्रह है। हर देश-प्रेमी के पढ़ने योग्य है। हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-माला का यह १३ वां ग्रन्थ है। इसे प्रकाशित करके उन्होंने हिन्दी-भाषा-भाषियों का बड़ा उपकार किया है। ऐसी पुस्तक का ऐसे अवसर पर प्रकाशित करना—जब कि देश में सत्याग्रह की गूँज हो रही है—समयानुकूल ही है।

※

५—वनिता-विलास—लेखक श्रीयुत महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक, कमरशल प्रेस, कानपुर। मूल्य।-); पृष्ठ-संख्या ८३।

यह द्विवेदीजी की पुस्तकमाला की दूसरी पुस्तक है। इसमें तीन विदेशी और सात अपने देश की स्त्रियों के मनोहर तथा शिक्षाप्रद जीवन-चरित हैं। पुस्तक स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। झाँसी की रानी का चरित्र विशेष कर पढ़ने योग्य है।

※

चित्र-परिचय।

इस बार का रङ्गीन चित्र दो अन्धे फ़क़ीरों का है। उनकी दीन दशा चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा ने इस चित्र में भली भाँति दिखला दी है। अन्धे फारस के हैं और बेचारे एक दूसरे के सहारे भिक्षा माँगने जा रहे हैं।

सादे चित्रों की चर्चा अन्यत्र लेखों में ही कर दी गई है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

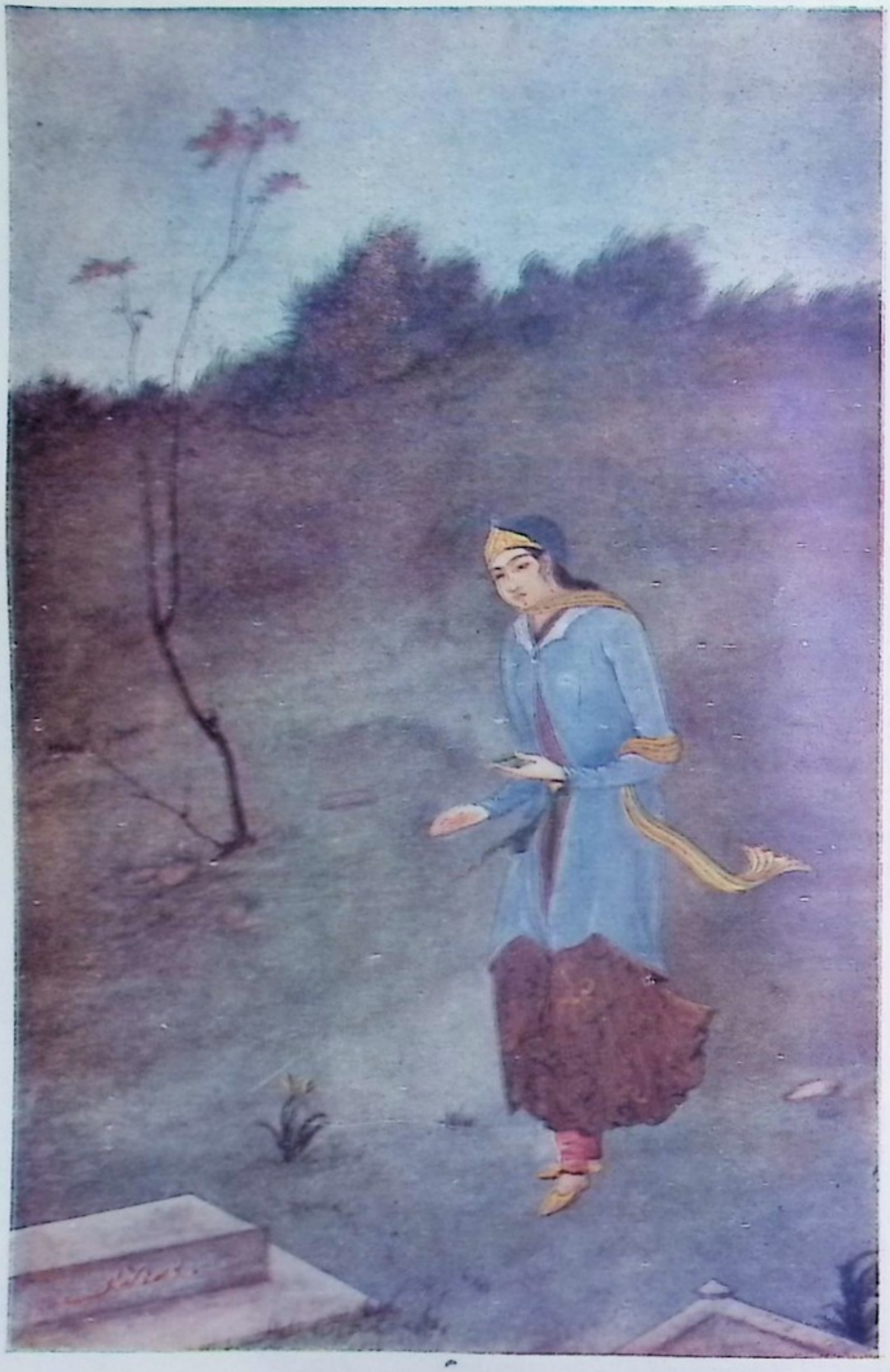

फ़ारस देश की एक महिला।

इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड १]   मई १९१९—ज्येष्ठ १९७६   [संख्या ५, पूर्ण संख्या २३३

आर्त्त नाद ।

प्रभु ! तुम हो सब के प्रतिपाल ।
सकल चराचर के कारण हो, हो सब के रखवाल ॥
भरी सभा में द्रुपद-सुता को, देखत ही बेहाल—
उसकी लाज बचाने के हित, आये थे तत्काल ॥
भव-भय भ्रम के तुम भेदक हो, कलि-कल्मष के काल ।
फिर क्यों भारत की निर्धनता, अब तक सके न टाल ?
दैन्य-दशा से दुखी देश का, झुका हुआ है भाल ।
दया-दृष्टि से फिर क्यों इसको, करते नहीं निहाल ? ॥
भारतीय हम शरण आप की, हैं अब दीनदयाल !
रखिए सदा हमारे ऊपर, निज भुज वरद विशाल ॥

शिवकुमार त्रिपाठी, आज़मगढ़ ।

राजकीय शास्त्र की कठिनाइयाँ ।

इस राजकीय शास्त्र-विषय का क्षेत्र सारा भूमण्डल है और कालावधि अत्यन्त प्राचीन समय से लेकर आज तक का समय है। इसकी घटनायें एक दूसरे से तो घनिष्ठ सम्बन्ध रखती ही हैं; पर भौगोलिक, सामाजिक, औद्योगिक, व्यापारिक, साहित्यिक, इत्यादि मामलों से भी, कार्य-कारण रूप में, ऐसी बँधी हुई हैं कि उनका सुलझाना कठिन होजाता है। अर्वाचीन इतिहास के बहुत से राजनैतिक रहस्य अभी गुप्त हैं। प्राचीन इतिहास का बहुत सा भाग लुप्त होगया। मनुष्य-स्वभाव और मनुष्य-समाज बड़ी पेचीदा वस्तु है।

हम सब लोग किसी न किसी राज्य में रहते हैं और बहुत करके कुछ न कुछ राजनैतिक विचार भी रखते हैं। हम से राजकीय शास्त्र की बातों का इतना निकट सम्बन्ध है कि उनके विषय में पूर्णतः निष्पक्ष और तटस्थ होकर विचार करना साधारण लोगों के लिए तो सर्वथा असम्भव है हा, परन्तु विद्वानों के लिए भी कठिन है। इस विषय पर बहुत से लेखकों की पुस्तकें पक्षपात के दोष से कलुषित हैं। तथापि यदि हम इसका अच्छी तरह अध्ययन करना चाहते हैं और इससे पूर्ण लाभ उठाना चाहते हैं तो हमें सब व्यक्तिगत, धार्मिक, राष्ट्रीय तथा और सब प्रकार के पक्षपात त्याग देने चाहिए। तथ्य और तर्क की दृढ़ नीव पर हमें अपना भवन बनाना चाहिए।

इस शास्त्र की एक और विचित्र कठिनाई है। बहुत सी राजनैतिक संस्थायें देखने में तो कुछ और हैं, अपने को बतलाती कुछ और हैं, वास्तव में हैं कुछ और। कहा जाता है कि इँगलेंड में एक राजा का राज्य है। वास्तव में वहाँ पार्लियामेंट और केविनट (मंत्रिमंडल) का राज्य है। कहा जाता है कि इँगलेंड में हाउस आव् कामन्स और हाउस आव् लार्डस तथा राजा मिलकर क़ानून बनाते हैं। वास्तव में हाउस आव् कामन्स क़ानून बनाता है। हाउस आव् लार्डस उनमें कुछ साधारण परिवर्तन कर देता है; राजा उनको स्वीकार मात्र करता है। इँगलेंड के क़ानून की दृष्टि में केविनट (मन्त्रिमण्डल) का अस्तित्व ही नहीं। वास्तव में मन्त्रिमण्डल राजनैतिक जीवन और शासन-प्रणाली का केन्द्र है। देखने में संसार के बहुत से राजा अनियन्त्रित थे—जो चाहते सो कर सकते थे, कोई यह कहनेवाला न था कि "क्या करते हो"? वास्तव में राजाओं के अधिकार धर्म के प्रभाव, पुरोहितों के प्रभाव, रीति-रिवाज के साम्राज्य, यशःप्राप्ति की लालसा, सम्मान-प्राप्ति की लालसा या राज्य-क्रान्ति के भय से सदा परिमित रहते थे। आगे चल कर हमें ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलेंगे। हमें सावधान रहना चाहिए कि वस्तुओं का बाह्य स्वरूप देख कर कभी धोखा न खायँ और सदा प्रत्येक बात के आन्तरिक या वास्तविक स्वरूप तक पहुँचने का प्रयत्न करें। हमें राजनैतिक संस्थाओं के शरीर का ही नहीं, किन्तु आत्मा का भी जितना हो सके उतना ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

अब हमें मालूम होगया कि राजकीय शास्त्र क्या है, उसका आधार क्या है, अन्य विषयों से उसका सम्बन्ध क्या है और उसके अध्ययन में किन बातों से विशेष सावधान रहना चाहिए। इतना होने पर हम पूर्व-परिचित वैज्ञानिक—ऐतिहासिक—रीति से इस शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ कर सकते हैं।

जङ्गली जातियों की व्यवस्था।

इस समय भी संसार में ऐसे जनसमुदाय हैं जिनमें सभ्यता और सभ्य संस्थाओं का नाम-निशान भी नहीं है।

*काले पानी अर्थात् एन्डमान द्वीप के निवासी, मलावार की पर्वतीय जातियाँ, उड़ीसा के जौंग, लङ्का के वेद्दह, अफ़्रीका के बुशमेन और अका, उत्तर अमरीका के कोलोरेडो इण्डियन, दक्षिण अमरीका के मध्यभाग के क़रीब और दक्षिण भाग के ब्रेज़िलियन, बोर्नियो के डायक, ग्रीनलेंड और लैब्रोडोर के एस्किमो आज भी बिलकुल असभ्य और जङ्गली हैं। सरकारी अफ़सरों, ईसाई पादरियों, यात्रियों, वैज्ञानिकों और विद्वानों ने बड़े परिश्रम से इनकी अवस्था का वृत्तान्त जाना और प्रकाशित किया है। मिस्टर होविट, पादरी लोरिमर फ़िसन, अध्यापक बैंलडविन स्पेंसर, मिस्टर गिलन आदि ने आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान के सारे कष्ट सह कर आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों के जीवन का विस्तृत

---

* यह प्रसङ्ग मिस्टर एडवर्ड जेंक्स की पुस्तक "राजनीति का इतिहास" के दूसरे अध्याय के आधार पर लिखा गया है।

वृत्तान्त लिखा है। मि० लीविस मोर्गन ने अमरीका के लाल इण्डियनों की अवस्था का अध्ययन करके "प्राचीन समाज" नाम की पुस्तक लिखी है जो, मि० जेंक्स के मतानुसार, १९वीं सदी के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक ग्रन्थों (Scientific products) में से एक है।

आस्ट्रेलिया के आदिम वासी न तो खेती करना जानते हैं और न भेड़-बकरी, गाय-भैंस रखना ही जानते हैं। वे बहुधा गुफ़ाओं में या पेड़ों के नीचे रहते हैं या जैसे तैसे वृक्षों की शाखाओं की टूटी फूटी झोंपड़ी बना लेते हैं। धातुओं से काम लेना तो वे विलकुल नहीं जानते। साधारणतः वे बिलकुल नङ्गे रहते हैं। अनेक प्रकार के भूत-प्रेतों में विश्वास करना और उनकी पूजा-अर्चना करना ही उनका "धर्म" है। धार्मिक रस्मों के समय वे आभूषणों के तौर पर वृक्षों की छाल और घास-फूस से अपना शरीर थोड़ा बहुत ढक लेते हैं।

बहुत से लोग मिल जुल कर शिकार करते हैं। शिकार ख़त्म होने पर प्रत्येक मनुष्य अपने खाने भर के लिए मांस अवश्य ले लेता है। प्रत्येक गरोह (pack) के आदमी साथ साथ रहते हैं। यदि रहने के लिए स्थान और खाने के लिए भोजन-सामग्री की कमी न हुई तो दो या अधिक गरोह पास पास शान्तिपूर्वक रहते हैं। यदि कमी हुई, तो एक दूसरे से खूब लड़ते हैं।

ये लोग बहुत से समुदायों में विभक्त हैं जो 'टोटम' कहलाते हैं। प्रत्येक टोटम में बहुधा कई सौ स्त्री-पुरुष होते हैं। इनके परस्पर सम्बन्धों के विषय में निश्चय ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ, पर बहुधा ये एक दूसरे को भाई बहिन समझते हैं। एक ही टोटम के स्त्री-पुरुषों में विवाह-सम्बन्ध नहीं हो सकता। विवाह की प्रथा बड़ी विचित्र है। प्रत्येक टोटम के पुरुष बहुधा उम्र के अनुसार कई समुदायों या पीढ़ियों (Generations) में विभक्त होते हैं। स्त्रियों का भी इसी प्रकार विभाग होता है। प्रत्येक टोटम का एक निश्चित "विवाह टोटम" होता है। प्रत्येक टोटम की प्रत्येक पीढ़ी के पुरुष अपने "विवाह टोटम" की उसी पीढ़ी (Generation) की सारी स्त्रियों के पति होते हैं और उसकी सारी स्त्रियाँ "विवाह टोटम" के सारे पुरुषों की पत्नियाँ होती हैं। हाँ, साधारणतः प्रत्येक पुरुष एक या दो पत्नियाँ ही रखता है।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि रहने, खाने पीने, शिकार करने और विवाह-सम्बन्ध में समुदाय को मान कर ही सब कुछ होता है, व्यक्ति को मान कर नहीं। सारा समुदाय साथ शिकार करता है, साथ ही शिकार का उपभोग करता है, एक सम्पूर्ण समुदाय दूसरे सारे समुदाय से विवाह करता है। कुटुम्ब का या नैतिक सदाचार का यहाँ कोई भाव नहीं है। राजा और प्रजा, शासक या शासित का भी कोई भाव नहीं उत्पन्न हुआ है। चालीस पचास वर्ष हुए, विद्वानों का मत था कि राजकीय समाज का प्राथमिक स्वरूप कुटुम्ब था। जङ्गली जातियों के निरीक्षण से पता लगा है कि कुटुम्ब की उत्पत्ति बहुत पीछे हुई है अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्राथमिक व्यवस्था समुदाय के आधार पर थी और कुटुम्ब का विकास बहुत धीरे धीरे हुआ है ॥

वेनीप्रसाद

मुसलमानों और ईसाइयों में हिन्दी-प्रेम-प्रवर्तन के उपाय।

बम्बई में होनेवाले नवम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए जो लेख-सूची प्रकाशित की गई है उसमें उपर्युक्त विषय भी है। निस्सन्देह यह विषय बड़े महत्त्व का है। यह जितने महत्त्व का है उतना ही क्लिष्ट और कष्टसाध्य है। सचमुच इस विषय पर

हिन्दी और हिन्द का भविष्य बहुत कुछ निर्भर है। यदि इस विषय में सफलता प्राप्त हो जाय तो समझिए कि हिन्दी और हिन्द का अर्द्धांश में उद्धार हो गया। हिन्दी म्रियमाण भारत का प्राण है। उपर्युक्त विषय में सफलता प्राप्त करना म्रियमाण भारत को अमृत-बूँद के सदृश होगा। अब यह बात प्रायः तय हो चुकी है कि बिना हिन्दी के हिन्द का कल्याण होना असम्भव है। हिन्दी के सबसे बड़े विरोधी आज कल मुसलमान ही हैं। ऐसी दशा में हिन्दी को सफलता प्राप्त होना असाध्य नहीं तो कष्ट-साध्य अवश्य है। अतएव हिन्दी के उद्धार के लिए यह बहुत आवश्यक है कि इस देश के लगभग ९ करोड़ मुसलमान हिन्दी की ओर आकर्षित किये जायँ। हर्ष की बात है कि इस वर्ष सम्मेलन ने इस शुभ कार्य्य पर विचार करना उचित समझा है। एतदर्थ हम उसके इस कार्य्य का हृदय से अभिनन्दन करते हैं। सम्मेलन की स्वागतकारिणी सभा के मन्त्री महोदय ने मुझे भी इस विषय पर विचार प्रकट करने की आज्ञा दी है। अस्तु।

मन्त्री महोदय की आज्ञा पालनार्थ मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कुछ लिखने की चेष्टा करता हूँ। यहाँ मैं सिर्फ़ मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने के साधनों पर ही कुछ विचार करूँगा। क्योंकि ईसाई तो हिन्दी को बहुत कुछ अपनाये हुए हैं। यहाँ हमारे मुसलमान भाई अपने ईसाई भाइयों से इस विषय में बहुत कुछ शिक्षा ले सकते हैं। देखिए, ये भी तो आपके भाई ही हैं! हमने माना कि वे राष्ट्रीयता के नहीं, धर्म्म के लिहाज़ से हिन्दी अपनाये हुए हैं। पर आप तो बतलाइए कि आपने किस लिहाज़ से हिन्दी को अपनाया है? आप धर्म्म के लिहाज़ से न सही तो राष्ट्रीयता के लिहाज़ से ही हिन्दी को अपना लेते! परन्तु खेद है कि आपने अपनी नासमझी के मारे अपने देश का—अपने उस देश का जिस पर आपका जीवन-मरण स्थित है—कुछ भी ख़याल नहीं किया। यदि आप पहले से ही हिन्दी को अपना लेते तो कदाचित् आपकी और आपके देश की यह दशा न होती! ख़ैर।

* मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि मुसलमान-धर्माचार्य्यों, सम्राटों, साहित्यसेवियों और नेताओं के आदर्श चरित्र प्रकाशित किये जायँ। इससे हिन्दी-साहित्य तो बढ़ेगा ही, हिन्दू भाई भी लाभ उठावेंगे और मुसलमान तो इस ओर अवश्य ही झुकेंगे। इस प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित करने की व्यवस्था सम्मेलन ही करे। इस पुस्तकमाला का नाम "मुस्लिम-पुस्तकावली" रक्खा जाय। इसी पुस्तकमाला में मुसलमानों के धार्म्मिक, सामाजिक तथा साहित्य-सम्बन्धी ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जायँ। यह और भी अच्छा होगा यदि ये ग्रन्थ संस्कृत की हिन्दी-टीकाओं के समान अपने मूलसहित प्रकाशित किये जायँ। इस उपाय से बड़े बड़े लाभ होने की सम्भावना है। इससे मुसलमानों में तो हिन्दी-सम उत्पन्न होने की आशा है ही, परन्तु हिन्दी-साहित्य के भाण्डार बढ़ने के साथ ही साथ हिन्दू भी मुसलमानों के धर्म्म, समाज तथा साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। ये ग्रन्थ सस्ते से सस्ते मूल्य में बेचने पड़ेंगे।

* मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हिन्दी-पत्रों के सम्पादक अपने पत्र के प्रत्येक अङ्क में एक मुसलमान-लेखक का लेख अवश्य ही देने की चेष्टा करें। आज कल सम्पादक लोग अधिकतर उन्हीं के लेख छापना पसन्द करते हैं जिनके नाम के आगे दो एक डिगरियाँ लगी हों अथवा वे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हों। यह उनकी बड़ी नादानी है। उन्हें यह पक्षपात अवश्य त्याग देना चाहिए। यदि वे किसी मुसलमान या ईसाई लेखक के लेख में ज़रा सी भी अच्छी बात देखें तो उसे अपने पत्र में सबसे पहले प्रका-

शित कर दें; क्योंकि इन लोगों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करना है। यदि हमारे सम्पादक लोग चाहें तो वे इस प्रकार बहुत से लोगों को सहज ही हिन्दी-प्रेमी बना सकते हैं। ऐसा करने से बहुत से मुसलमान-लेखकों के उत्पन्न हो जाने की बड़ी सम्भावना है। इससे मुसलमान अनायास ही हिन्दी-प्रेमी हो जायँगे। सम्पादकों को चाहिए कि वे अपने पत्रों में भी मुसलमान धर्माचार्य्यों, कवियों, लेखकों, सम्राटों तथा नेताओं के छोटे छोटे चरित्र तथा धार्म्मिक, सामाजिक लेख भी अवश्य दिया करें। यदि हो सके तो उर्दू पत्रों से चुनी हुई कवितायें और लेख भी उद्धृत करना चाहिए। मुसलमानों को लेख लिखने तथा हिन्दी से प्रेम उत्पन्न करने के लिए उत्तेजना देते रहना भी आवश्यक है। मुसलमान लेखकों को पुरस्कार देना भी अच्छा होगा।

* मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि कुछ ऐसे सामयिक पत्र भी निकाले जायँ जो उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में छपते हों। ऐसे पत्र बड़ी सज-धज से निकालने चाहिए। ये पत्र मुसलमान ग्राहकों को हिन्दू ग्राहकों से कुछ कम मूल्य में दिये जायँ। इनसे यह लाभ होगा कि हिन्दू उर्दू और मुसलमान हिन्दी सीखने की चेष्टा करेंगे। कई महानुभाव कह सकते हैं कि इस 'खिचड़ी' की कोई ज़रूरत नहीं; इससे कुछ लाभ नहीं। पर हमारी समझ में प्रेम-प्रवर्तन के लिए यह 'खिचड़ी' अवश्य ही होनी चाहिए। इससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। इस शैली को बहुत लोग पसन्द भी करेंगे। अभी कुछ समय की बात है कि महाशय भिक्षु अखण्डानन्दजी ने गुर्ज्जर-प्रान्त-वासियों में हिन्दी-प्रचारार्थ एक हिन्दी-लेख-माला गुजराती अक्षरों में प्रकाशित की थी। इस पुस्तक की सभी देश-हितैषियों ने प्रशंसा की थी। अच्छा हो कि शीघ्र ही इस प्रकार का एक पत्र निकाला जाय।

मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हिन्दी बहुत सरल लिखी जाय। उसे 'शुद्धता' के झगड़े से दूर रक्खा जाय और उसमें उर्दू-फ़ारसी के शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक लाये जायँ। यदि बारीक दृष्टि से देखा जाय तो जब से हिन्दी 'शुद्धता' के झगड़े में पड़ कर क्लिष्ट हुई तभी से मुसलमान उससे इतनी दूर जा पड़े कि अब उनको उसके पास लाने के लिए सत्रह उपाय करने पड़ रहे हैं। यदि हमें सचमुच मुसलमानों को हिन्दी-प्रेमी बनाना है तो अवश्य ही उर्दू-फ़ारसी के सरल शब्दों के लिए द्वार खोलना पड़ेगा। जब तक यह नहीं होता तब तक मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न होना कठिन है। प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक पूज्यपाद पं० कामताप्रसादजी गुरु का विचार है कि यदि ऐसा किया जायगा तो हमारी हिन्दी एक बार फिर उर्दू हो जायगी। अवश्य ही हमें अपनी हिन्दी को एक बार फिर उर्दू बनाना पड़ेगा, तब कहीं मुसलमान हिन्दी-प्रेमी हो सकेंगे†। अतएव अब यह बड़ा प्रश्न सामने आता है कि भविष्य में हिन्दी का क्या रूप हो? (देखो, सरस्वती, जनवरी १९१९) हमारी समझ में भविष्य में हिन्दी का रूप 'खिचड़ी' होगा। आशा है कि गुरुजी तथा अन्य हिन्दी-हितैषी इस प्रश्न पर शीघ्र ही विचार करने की कृपा करेंगे।

* मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि नगर नगर में ऐसी शालायें खोली जायँ जहाँ मुसलमानों को हिन्दी-शिक्षा मुफ़्त दी जाय। हिन्दी के साथ साथ उन्हें कुछ उर्दू-शिक्षा भी देनी पड़ेगी। मुसलमानों में ग़रीबी होने के कारण शिक्षा की बहुत कमी है। अतएव इससे भी मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने में पूरी पूरी सहायता मिलेगी। मुफ़्त शिक्षा के साथ साथ योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी

---

† पूज्यपाद गुरुजी के सिद्धान्त के विरुद्ध लिखने के लिए यह सेवक उनसे क्षमा माँगता है।

देना उचित होगा। यह लोभ भी बहुत कुछ कार्य्य करेगा। इस कार्य्य में रुपये की बड़ी ज़रूरत पड़ेगी। परन्तु कार्य्य करने से बहुत कुछ सफलता हो सकेगी। आशा है कि हमारे मुसलमान नेता भी इस कार्य्य में योग देंगे।

* सम्मेलन अपनी परीक्षाओं में उत्तीर्ण मुसलमान परीक्षार्थियों को विशेष पुरस्कार देने की व्यवस्था करे। एकाध रजत-पदक रख देना ही काफ़ी नहीं है। हम देखते हैं कि अन्य हिन्दू-परीक्षार्थियों को बहुत कुछ पुरस्कार दिये जाते हैं। सम्मेलन को चाहिए कि वह अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए प्रत्येक मुसलमान परीक्षार्थी को विशेष पुरस्कार दे। ऐसा करने से कुछ न कुछ मुसलमान अवश्य ही हिन्दी-प्रेमी होंगे। एकाध पदक ऐसा भी रक्खा जाय जो उस मुसलमान लेखक को दिया जाय जिसने उस वर्ष अच्छी हिन्दी-पुस्तक लिखी हो।

हिन्दू नेताओं को चाहिए कि वे मुसलमान नेताओं से मिल कर हिन्दी-उर्दू का झगड़ा तय कर डालें; उनको सुझा देवें कि बिना हिन्दी के तुम्हारा कल्याण नहीं। मिस्टर हैदरी, श्री० शहीदुल्लाह तथा शास्त्री अब्दुलअज़ीज ऐसे हिन्दी-हितैषियों से इस विषय में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। पर हमारे नेताओं को तो अँगरेज़ी की धूल चाटने से ही फ़ुरसत नहीं मिलती! क्या सम्मेलन का एक डेपुटेशन मुस्लिम-लीग के कर्णधारों से भेंट कर सकता है?

समय समय पर ऐसे पैम्फ़लेट प्रकाशित कर मुफ़्त बाँटे जायँ, जिनमें पूर्व-समय में मुसलमानों की हिन्दीसेवा, हिन्दी के प्रति मुसलमानों का कर्त्तव्य, मुसलमानों को हिन्दी क्यों सीखनी चाहिए इत्यादि बातों का वर्णन किया जाय। क्या इन पैम्फ़लेटों से कुछ लाभ न होगा?

स्थान स्थान पर ऐसी संस्थायें स्थापित की जायँ जिनका उद्देश मुसलमानों और ईसाइयों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करना हो।

* सम्मेलन कुछ ऐसे उपदेशक रक्खे जिनका काम मुसलमानों तथा ईसाइयों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करना हो। इनकी तीस दिन की काररवाई अवश्य ही असर करेगी। ऐसे उपदेशक यदि मुसलमान अथवा ईसाई हों तो और भी अच्छा।

* सम्मेलन अपनी कार्य्यकारिणी सभा में कुछ मुसलमान नेताओं तथा प्रसिद्ध हिन्दी-लेखकों को भी सम्मिलित करे। समय समय पर उनसे इस विषय में परामर्श भी लिया करे। आज तक सम्मेलन का सभापति मुसलमान नहीं चुना गया। सम्मेलन के सञ्चालकों को चाहिए कि वे कभी कभी सम्मेलन तथा स्वागतकारिणी समिति के लिए मुसलमान सभापति भी चुना करें। मुसलमानों पर इस कार्य्यवाही का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ेगा ही।

* हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशक तथा सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशक अपनी पुस्तकें और पत्र मुसलमान ग्राहकों को ख़ास रियायत से देने की कृपा करें। इंडियन प्रेस, नेशनल प्रेस, अभ्युदय प्रेस, नवलकिशोर प्रेस, वेङ्कटेश्वर प्रेस, निर्णयसागर प्रेस, खड्गविलास प्रेस, चित्रशाला प्रेस, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज़, बर्म्मन कम्पनी, हरिदास कम्पनी, हिन्दी-पुस्तक-एजंसी, नागरी-प्रचारिणी सभा, ओंकार प्रेस, ललिता, स्वदेश-बान्धव, भारतमित्र, हितकारिणी और प्रताप प्रभृति पत्र अवश्य ही रियायत कर सकते हैं।

हमारे लेख का सार यही है। विद्वान् लोग और भी साधन ढूँढ़ सकते हैं। आशा है सम्मेलन तथा अन्य महानुभाव हमारे इस लेख पर अवश्य ध्यान देंगे।*

ज़हूरबख़्श।

---

* जिन लेखांशों के पहले ऐसा * निशान है वे ईसाइयों पर भी लागू हो सकते हैं।

राशि-चक्र।

कोई हिन्दू ऐसा नहीं है जिसे अपने प्रतिदिन के जीवन में ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तों से काम न पड़ता हो। जब कभी हिन्दू-गृहस्थ के घर में कोई शुभ कार्य होता है, अथवा कहीं की यात्रा करनी होती है तब ज्योतिषज्ञ पण्डित से अवश्य मुहूर्त पूछना पड़ता है। बालक, बालिकाओं का विवाह तभी होता है जब दोनों की जन्मपत्रियाँ मिल जाती हैं और यह उसी शुभ लग्न में होता है जिसे पण्डित पञ्चाङ्ग देख कर बताता है। हिन्दुओं में कोई ऐसा नहीं जो पुत्र या पुत्री के जन्म होने पर उसकी जन्मपत्री न बनवावे और उसके शुभाशुभ होने के विषय में न पूछे। हिन्दुओं में अधिकांश ऐसे हैं जो पण्डितों को अपनी जन्म-पत्रियाँ दिखा कर अपनी अच्छी बुरी दशा का हाल पूछा करते हैं। बहुत से तो ऐसे हैं जो अपना वर्षफल प्रतिवर्ष बनवाते रहते हैं। जब कोई आपत्ति आती है अथवा शरीर को कष्ट होता है तब प्रायः हिन्दू पण्डितों से अपनी शुभाशुभ ग्रह-दशाओं का हाल पूछते हैं और अरिष्ट-निवारणार्थ कई उपाय करते हैं। हिन्दू-नारियों को तो ज्योतिष पर ऐसा विश्वास है कि पण्डित के पूछे बिना वे कोई भी नया कार्य नहीं करतीं—यहाँ तक कि उन्हें नये वस्त्र पहनने हों, नया ज़ेवर बनवाना या पहनना हो, अथवा माता-पिता या पति के घर जाना हो—कहीं भी जाना क्यों न हो—वे मुहूर्त दिखाये बिना कभी कुछ करती ही नहीं। यह कहना कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है और उसका मानना व्यर्थ है, एक बात है। हमारी समाज में ज्योतिष का प्रभाव कैसा फैला हुआ है और हमारे चाहने पर वह बन्द हो सकता है या नहीं—दूसरी बात है। हिन्दू-समाज से इसका प्रचार और प्रभाव उठा देना ऐसा ही दुस्साध्य है जैसा हिन्दुओं को हिन्दू धर्म त्याग करवा देना। जब तक समाज में कोई प्रथा प्रचलित है और प्रतिदिन व्यवहार में आती है तब तक उससे परिचित होना प्रत्येक मनुष्य का कार्य है। किसी जाति या समाज की आवश्यकता को उस जाति का मनुष्य तुच्छ समझ कर उसके रहस्य को न जाने तो यह केवल उसकी अनभिज्ञता ही नहीं बल्कि उसे अपने कार्यों में असफलता ढूँढ़ना है क्योंकि समाज के साथ उस व्यक्ति का प्रगाढ सम्बन्ध है और वह कदापि अपनी हानि किये बिना उससे पृथक् नहीं हो सकता। अभिप्राय यह है कि जब तक हिन्दू-समाज में ज्योतिष का मान है और उसका प्रभाव जनता पर पड़ रहा है, तब तक प्रत्येक हिन्दू को ज्योतिष के मोटे मोटे सिद्धान्तों से परिचित होना आवश्यक है।

इस लेख में हम कुछ हाल राशि-चक्र का ही लिखते हैं। क्योंकि समस्त ज्योतिष-सिद्धान्तों का आधार यही है। राशि-चक्र के समझे बिना ज्योतिष से कुछ भी परिचय नहीं हो सकता। देखिए—

समस्त आकाश-मण्डल १२ भागों में, जिन्हें राशियाँ कहते हैं, विभक्त है और इन राशियों के समूह का नाम राशि-चक्र है।

१२ राशियों के नाम ये हैं—

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन। राशि-चक्र नीचे देखिए—

राशि-चक्र।

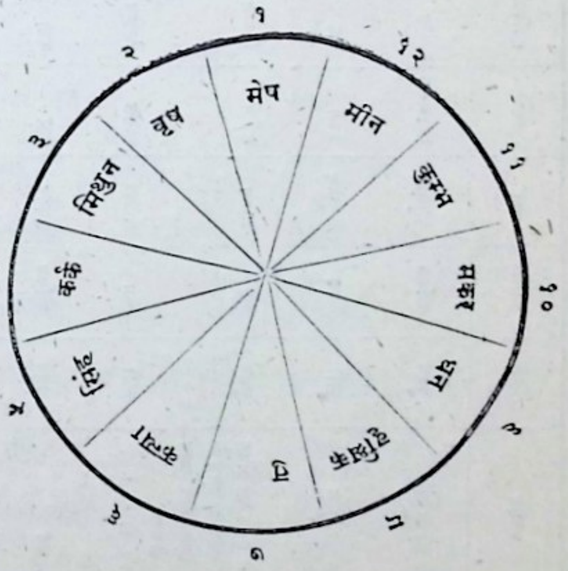

नीचे के लिखे कोष्टक में राशियों के सम्बन्ध में जो जो मुख्य बातें लिखी हैं उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए।

राशि-चक्र-व्यवस्था ।

संख्या	नाम	स्वरूप	लिङ्ग	जाति	वश्य	वर्ण	कान्ति	तत्त्व	गुण	धातु	क्रूरादि	चरादि	दिशा	ऋतु	स्वामी	अँगरेज़ी नाम
१	मेष	भेड़े की सूरत	पुरुष	क्षत्रिय	चतुष्पद	पाटलरक्त	रूक्ष	अग्नि	तम देह	पित्त	उग्र	चर	पूर्व	वसन्त	मंगल	Aries
२	वृष	बैल की सूरत	स्त्री	वैश्य	चतुष्पद	श्वेत	रूक्ष	पृथ्वी	शीत	वायु	सौम्य	स्थिर	दक्षिण	ग्रीष्म	शुक्र	Taur us
३	मिथुन	स्त्री पुरुष का जोड़ा स्त्री के हाथ में वीणा और पुरुष के गदा	पुरुष	शूद्र	मानव	हरित	स्निग्ध	वायु	तम	समधा	उग्र	द्विप	पश्चिम	ग्रीष्म	बुध	Gamena
४	कर्क	केकड़े की सूरत	स्त्री	विप्र	जलचर	पाटल	स्निग्ध	जल	शीत	कफ	सौम्य	चर	उत्तर	वर्षा	चन्द्र	Cancer
५	सिंह	सिंहरूप	पुरुष	क्षत्रिय	वनचर	धूम्र	रूक्ष	अग्नि	उष्ण	पित्त	उग्र	स्थिर	पूर्व	वर्षा	रवि	Leo
६	कन्या	नौका में बैठी हुई कन्या के हाथ में दीपक	स्त्री	वैश्य	मानव	पाण्डुरङ्ग	रूक्ष	पृथ्वी	शीत	वायु	सौम्य	द्विप	दक्षिण	शरद	बुध	Virgo
७	तुला	हाथ में तराजू लिये मनुष्य	पुरुष	शूद्र	मानव	विचित्र	स्निग्ध	वायु	उष्ण	समधा	उग्र	चर	पश्चिम	शरद	शुक्र	Lebra
८	वृश्चिक	बिच्छू की सूरत	स्त्री	विप्र	कीटक	श्वेत	स्निग्ध	जल	शीत	कफ	सौम्य	स्थिर	उत्तर	हेमन्त	मंगल	Scorpi
९	धन	ऊपर मनुष्य और नीचे घोड़े का स्वरूप कर में धनुष	पुरुष	क्षत्रिय	मानव	सुवर्णरङ्ग	रूक्ष	अग्नि	उष्ण	पित्त	उग्र	द्विप	पूर्व	हेमन्त	बृहस्पति	Segaten
१०	मकर	मृग का मुख और नाके का देह	स्त्री	वैश्य	जलचर	पीत	रूक्ष	पृथ्वी	शीत	वायु	सौम्य	चर	दक्षिण	शिशिर	शनि	Cafa
११	कुम्भ	खाली कलश कांधे पे धरा मनुष्य	पुरुष	शूद्र	मानव	कर्बुर	स्निग्ध	वायु	उष्ण	समधा	उग्र	स्थिर	पश्चिम	शिशिर	शनि	Acqueres
१२	मीन	दो मछलियाँ गोलाकार एक के मुख में दूसरी की पूंछ ।	स्त्री	विप्र	जलचर	धूम्र	स्निग्ध	जल	शीत	कफ	सौम्य	द्विप	उत्तर	वसन्त	बृहस्पति	Pisces

इन्हीं १२ राशियों पर नक्षत्र, योग, ग्रह, उपग्रहादि नियमित रूप से भ्रमण करते हैं। नक्षत्र २८ हैं जिनके नाम ये हैं —

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृग, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद और रेवती।

इन में से प्रत्येक नक्षत्र की चाल एक राशि पर सवा दो दिन की मानी गई है। एक राशि पर सवा दो नक्षत्र चलते हैं। एक नक्षत्र की अवधि एक दिन है, यानी प्रत्येक दिन नया नक्षत्र होता है। प्रत्येक नक्षत्र की अवधि के चार भाग करो तो प्रत्येक भाग का संकेत पृथक् पृथक् होगा। जैसे अश्विनी नक्षत्र के उत्तरोत्तर चारों भागों के सङ्केत चू. चे. चो. ला. चार अक्षर हैं। इसी प्रकार ली. लू. ले. लो. भरणी नक्षत्र के चार पदों के सङ्केत हैं। इसी तरह बाक़ी के २६ नक्षत्रों के सङ्केत हैं। इनसे क्या लाभ है? यह आगे चल कर कहेंगे।

जैसे २८ नक्षत्र हैं उसी प्रकार २८ योग हैं जिन की भी अवधि नक्षत्रों के बराबर ही है और जो राशियों पर नक्षत्रों की तरह और उतने ही समय में घूमते हैं।

अब ९ ग्रहों को देखिए —वास्तव में ग्रह ७ हैं, और दो यानी राहु और केतु, उपग्रह हैं। साधारणतया सब ग्रह ही कहलाते हैं:—सूर्य Sun चन्द्र Moon मङ्गल Mars बुध Mercury बृहस्पति Jupiter शुक्र Venus शनि Saturn राहु Dragon और केतु Dragon ये ग्रह निम्नलिखित नियमानुसार सब राशियों पर घूमते हैं। परन्तु प्रत्येक ग्रह की एक या दो राशियां मुख्य हैं जिसका या जिनका वह अधिपति या स्वामी कहलाता है। इसका यह अभिप्राय है कि जब वह ग्रह उन राशियों पर आता है तब उसका प्रभाव ऐसा ही अधिक होता है जैसा किसी राजा का अपने देश में। राशियों पर ग्रहों की चाल और ग्रहों की मुख्य राशियां ये हैं—

ग्रह		चाल	मुख्य राशि
सूर्य	एक राशि पर	एक महीना चलता है	सिंह
चन्द्र	,,	सवा दो दिन ,,	कर्क
मंगल	,,	डेढ़ महीना ,,	मेष, वृश्चिक
बुध	,,	एक महीना ,,	मिथुन, कन्या
बृहस्पति	,,	तेरह महीने ,,	धन, मीन
शुक्र	,,	एक महीने ,,	वृष, तुला
शनि	,,	३० महीने ,,	मकर, कुम्भ
राहु	,,	अठारह महीने ,,	कन्या
केतु	,,	,, ,,	मीन

ग्रहों के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातें नीचे के कोष्ठक में दी हैं।

नवग्रह-व्यवस्था

ग्रह	वर्ण	पुरुष, स्त्री	आकार	समय	दिशा	धातु	सौम्यादि	गुण	चरादि	रस	पित्तादि	अवस्था	रङ्ग	रत्नादि	दान, जप	अंगरेज़ी नाम
रवि	क्षत्रिय	पुरुष	चतुरस्र	मध्याह्न	पूर्व	सुवर्ण	उग्र	सत्व	स्थिर	तिक्त	पित्त	वृद्ध	पाटल	माणिक	हरिवंश-श्रवण	Sun
चन्द्र	वैश्य	स्त्री	अस्थूल	अपराह्न	वायव्य	रौप्य	सौम्य	सत्व	चर	क्षार	श्लेष्म	युवा	गौर, श्वेत	मोती	त्रिपुर-जप	Moon
मंगल	क्षत्रिय	पुरुष	चतुष्कोण	मध्याह्न	दक्षिण	सुवर्ण	उग्र	तम	चर	कटु	पित्त	युवा	रक्त	प्रवाल	रुद्री-जप	Mars
बुध	शूद्र	स्त्री	वृत्त	प्रभात	उत्तर	कांस	शुभ	रज	द्विस्वभाव	सर्वरस	समधातु	युवा	नील	पन्ना	कांस्यदान	Mecrury
गुरु	विप्र	पुरुष	वृत्त	प्रभात	ईशान	हीरसुवर्ण	शुभ	सत्व	स्थिर	मधुर	समधातु	वृद्ध	पीत	पुष्पराज	अमावस्या	Jupiter
शुक्र	विप्र	स्त्री	दीर्घ	अपराह्न	आग्नेय	रौप्य	शुभ	रज	चर	अम्ल	कफ, शुक्र	युवा	श्वेत	हीरा	गो-रक्षा	Venus
शनि	शूद्र	स्त्री	दीर्घ	अपराह्न	पश्चिम	लोह	पाप	तम	पक्षी	कषाय	वायु	अति वृद्ध	नील	नीलम	मृत्युञ्जयजप	Saturn
राहु	निषाद	पुरुष	दीर्घ	अपराह्न	नैऋत्य	लोह	पाप	तम	चर	कषाय	वायु	वृद्ध	धूम्र	पिरोजा	भुजङ्गदान	Dragon
केतु	निषाद	पुरुष	पुच्छ	अपराह्न	नैऋत्य	लोह	पाप	तम	पक्षी	कषाय	वायु	वृद्ध	धूम्र	लसनि	ध्वजादान	Dragon

राशिचक्र पर नक्षत्र, ग्रहादि घूमते ही रहते हैं। किसी समय की लग्न मालूम करने का मतलब यह है कि उस समय किन किन राशियों पर कौन कौन ग्रह कब से घूम रहे हैं। लग्न मालूम हो जाने पर ग्रहों का फल कहा जाता है और यही फलित ज्योतिष का सार है।

उदाहरण देखिए—

कोई लड़का संवत् १९६४ के पौष मास की शुक्ल पक्षी चतुर्थी मङ्गलवार को सूर्योदय से २८ घड़ी ३१ पल पर उत्पन्न हुआ। ज्योतिषानुसार विचार करने से मालूम हुआ कि उस समय शतभिषा नक्षत्र था और लग्न यह थी—यानी उस समय राशि-चक्र पर ग्रह इस तरह घूम रहे थे।

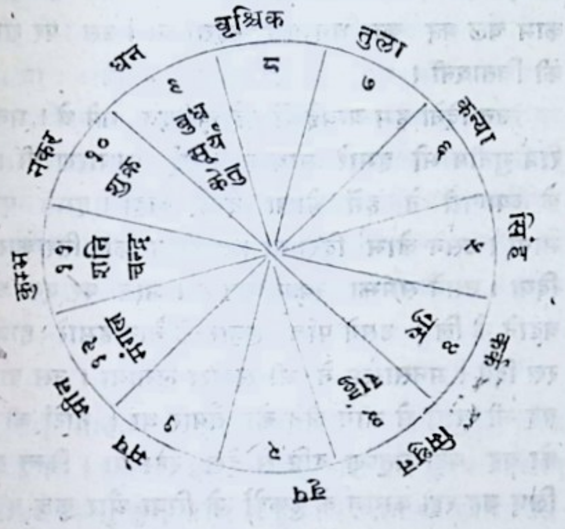

इस जन्म-कुण्डली में चन्द्र कुम्भ राशि पर है। इसलिए इस लड़के की राशि कुम्भ है—जन्मकाल में जिस राशि पर चन्द्रमा होता है वही उसकी राशि कहलाती है। इस राशि का स्वामी शनि है। उस समय वृश्चिक लग्न थी इसलिए राशि-चक्र के प्रधान स्थान पर वृश्चिक राशि लिखी गई है—यानी वृश्चिक जो आठवीं राशि है उससे आरम्भ कर और राशियाँ १२ तक रक्खी गई हैं। उस समय शतभिषा नक्षत्र का चौथा भाग वर्तमान था, जिसका सङ्केत अक्षर 'सु' है। इसलिए इस लड़के का नाम 'सु' पर हो सकता है जैसे सुरेन्द्रनाथ, सुखदेव इत्यादि।

जिस जिस राशि पर जो जो ग्रह है उसका फल ज्योतिष ग्रन्थ देख कर कहा जाता है। इस तरह इस लड़के की जीवनी का समस्त हाल बताया जाता है।

नक्षत्रों और योगों के घूमने से शुभ, अशुभ समय जाना जाता है—मुहूर्तादि देखने में इनका अधिक काम पड़ता है। ये सब बातें हिन्दू-पञ्चाङ्ग में दी होती हैं। उसके पाँच अङ्ग ये हैं —

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। इसका मतलब यह कि जिस दिन को देखना चाहो उस दिन के विषय में यह मालूम हो सकता है कि आज कौन सी तिथि है, यानी प्रथमा, द्वितीया आदि और किस पक्ष की है, शुक्ल की वा कृष्ण की। दूसरे कौन वार है—रविवार, सोमवारादि। तीसरे कौन नक्षत्र हैं—अश्विनी, भरणी आदि। चौथे कौन योग हैं विष्कम्भ, प्रीति आदि। पाँचवें कौन करण है यानी वव, लवादि। एक योग-समय में दो करण होते हैं। इनका फल भी पृथक् है, जो ज्योतिष-पुस्तकों में लिखा है।

कन्नोमल, एम० ए०

कवि।

जीवन की झटिका के झोंके झेलते हैं वे
तो भी युक्तियों के साथ मुक्त खेलते हैं वे
गाते हैं कि रोते सदा मौज ही मनाते हैं
बातें वे बनाते नहीं बात को बनाते हैं।

सम बने रहते हैं मोद में, विनोद में
क्रीडा करते हैं कल कल्पना की गोद में
शारदा के मन्दिर में सुमन चढ़ाते हैं
प्रेम का ही पुण्य-पाठ सब को पढ़ाते हैं।

षड्रस जहां हैं दृष्टि आते विधि-सृष्टि में
होते हैं हरे वे वहाँ नौ रसों की वृष्टि में
कमल खिलाते हैं स्वयं ही मरुस्थल में
ज्वाला हैं जलाते जब चाहते हैं जल में।

फूल उनके हैं रत्न, वर्ण ही सुवर्ण हैं
चांदनी है चाँदी वे सदा ही उत्तमर्ण हैं

स्वर्ग नहीं आया कभी जो तुम्हारी दृष्टि में
पाओगे समक्ष उसे तो उन्हीं की सृष्टि में
दार्शनिक वैज्ञानिक देते तुम्हें तत्त्व हैं
भावामृतपूर्ण वही देते अमरत्व हैं
दें वे अमरत्व जब और जीवनाधिपत्य
तब भी मिलेगा तुम्हें हृदय उन्हीं से सत्य !

मैथिलीशरण गुप्त

नेक कमाई।

(१)

आरम्भ से ही धार्म्मिक जीवन पर श्रद्धा थी। एफ़० ए० में दो बार फ़ेल होने पर भी देवभक्ति में कमी न हुई। अपनी श्रद्धारूप गो को कभी फल के खूँटे से नहीं बाँधा। इसी लिए उसमें कभी आघात नहीं पहुँचा।

दस ग्यारह महीने घर पर रह कर साहू रामचरण अग्रवाल का जिस समय निमन्त्रण (Offer) पहुँचा उस समय हमें बड़ा आनन्द हुआ। उससे अधिक आनन्द उस दिन हुआ जब साहू साहब से परिचय हुआ। साहू साहब लक्षाधीश थे। सुई के व्यापार में उन्होंने प्रचुर धन की प्राप्ति की थी। उनके दो सन्तति थीं। एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र शिवचरण उद्धत अवश्य था, किन्तु था ख़ूब अमायिक और पुत्री शारदा सरलता और नम्रता की मूर्त्ति थी। साहन साहब भी ख़ूब धर्म्मपरायण थीं। व्रत, उद्यापन, और दान की धारायें साहू साहब के घर में अविच्छिन्न रूप से बहती रहती थीं। ऐसे स्वामी को पाकर हम कृतकृत्य हो गये। हमने इष्ट देव का मन ही मन ध्यान किया और सुदृश्य का ध्यान कर के उनके चरणों को प्रणाम किया।

दो वर्ष के बाद साहू साहब ने हमें अपनी सम्पत्ति का असिस्टन्ट मैनेजर नियुक्त कर दिया। वेतन-वृद्धि भी हो गई। जिस दिन साहू साहब ने हमें यह नया कार्य-भार सौंपा उसी दिन शारदा ने हम से कहा—बधाई गोपाल बाबू! काम को ख़ूब सोच कर कीजिएगा—जिससे पिताजी का विश्वास आप पर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाय। तुम्हारी 'अग्रवाल अक़्ल' अक्षुण्ण बनी रहे। उसके इन वाक्यों को हमने सदा याद रक्खा। शारदा की हमारे ऊपर बड़ी कृपा थी। ख़ाली वक़्त में वह हम से अँगरेज़ी पढ़ती थी। जैसा उसका निर्मल रूप था वैसी ही बुद्धि थी और वैसे ही कर्म थे।

हम पर सभी प्रसन्न थे। किन्तु साहू साहब के अन्य नौकर हम से नाराज़ थे। वे लोग हमें बेईमानी में शामिल न कर सके थे। किसी तरह भी हम उनके प्रलोभनों में न आये थे। शारदा के वे वाक्य हमारे कान में सदा प्रतिध्वनित होते रहते थे। यही नहीं, बेईमानी से हमें घिन भी थी। हमारी आवश्यकतायें बहुत कम थीं, अतएव हमें जो वेतन प्राप्त होता था उसीसे हमारा सब काम चल कर कुछ धन बच रहता था। उस पर शारदा की चितावनी।

उन दिनों हम बम्बई में रुई ख़रीदने गये थे। मनसाराम मुनीम भी हमारे साथ था। रुई साधारण थी। रुई के व्यापारी ने हमें धोखा देना चाहा। हमने एक न मानी। उसने लोभ दिखाया। हमने उसका तिरस्कार कर दिया। उसने समझा रक़म कम है। भाव पर एक आना बढ़ाने के लिए उसने पाँच हज़ार के नोट हमारे हाथ पर रख दिये। मनसाराम ने भी सहारा लगाया। उस पाप में वह भी ख़ुशी से भाग लेने को तैयार था। नोटों की गड्डी को वह बड़ी सतृष्ण दृष्टि से देख रहा था। किन्तु हमारे लिए वह रद्दी काग़ज़ के टुकड़ों के सिवा और कुछ न थी। हम ने उस व्यापारी को समझा दिया कि उसके ये अस्त्र हमारे ऊपर नहीं चलेंगे। कम भाव पर रुई ले ली गई। मनसाराम मर गया। उसे बम्बई फीकी मालूम होने लगी।

यही कारण था कि सब नौकर हम से नाराज़ थे।

(२)

बड़े बाबू बीमार होकर मकान चले गये। डाक्टरों ने उन्हें काम से तत्काल अवकाश ग्रहण करने का परामर्श दिया। साहू साहब ने उनका पद हमें ही प्रदान किया। ५०) मासिक से एक साथ १२५) मासिक हो गये। रेल में इंटर से सेकंड दर्जा मिल गया, किन्तु हमने कभी उसमें

यात्रा नहीं की । इंटर में ही यात्रा करते और उसी का किराया ख़र्च में डालते । साहू साहब ने स्वयं कई बार कहा कि अन्तर (Difference) का रुपया तुम्हारा है किन्तु हमने ख़र्च से ज़्यादा कभी एक पैसा उनसे नहीं लिया ।।

साहू साहब को संन्यासियों पर बहुत अनुराग था । स्वामी निर्म्मलानन्द पर उनकी असीम श्रद्धा थी । अपनी उन्नति का वे उन्हें ही कारण समझते थे । उनके ही उपदेश से उन्होंने रुई का काम शुरू किया था ।

स्वामी जी ५ मास हृषीकेश और ७ मास हिमालय के विभिन्न स्थानों पर वास करते थे । साल में एक दो बार साहू साहब उनके दर्शनार्थ जाते थे और कभी कभी स्वामीजी भी कृपा करते थे । शहर से बाहर बनी कोठी में वे ठहरते थे । उनकी सेवा करने का सौभाग्य हमें ही प्राप्त होता था । उन्हीं के सदुपदेश से २३ वर्ष की अवस्था में हमने यज्ञोपवीत ग्रहण किया और प्रायश्चित्त के तौर पर गायत्री का पुरश्चरण किया था । कर्म्म-काण्ड की पथरीली भूमि में घुमा कर दो वर्ष बाद उन्होंने ही हमें उपनिषद् और योगवासिष्ठ पढ़ने का उपदेश किया था । उन्हीं की कृपा से उन दिनों हम परम शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे ।

(३)

साहू साहब के पुत्र शिवचरण के चरित्र में अनेक दोष उत्पन्न हो गये । हम ने कई बार उसे कुपथ में जाने से रोका, किन्तु कुछ लाभ न हुआ । भोग की जिस फिसलनी भूमि पर वह पड़ गया था उससे विमुख करना हम जैसे अल्पभाषियों के लिए असम्भव था ।

उस दिन शरत्पूर्णिमा थी । हम छत पर बैठे पूर्णचन्द्र के स्निग्ध प्रकाश के आनन्द का अनुभव कर रहे थे । कविकुलगुरु कालिदास के "अनेकताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः" के तत्त्व को प्रत्यक्ष कर रहे थे । इसी समय हमारे पास शिवचरण आया । उसकी दशा बड़ी अस्त-व्यस्त थी । उसने आते ही कहा—गोपाल बाबू , मेरी इज़्ज़त आप के ही हाथ में है । बचाइए । मुझे ज़्यादा नहीं ५०००) रुपयों की आवश्यकता है । माताजी से मैं कई बार धन ले चुका हूँ । इस बार उन्होंने इनकार कर दिया । मुझे बड़ा दुःख हो रहा है । पिताजी से कह नहीं सकता । आप तहवील में से दे दीजिए । मैं माताजी से फिर किसी तरह लेलूँगा और आप को देदूँगा ।

उसकी आँखें प्रभाहीन और अश्रुपूर्ण थीं, चेहरा खुश्क था ।

हमने कहा—भाई, मैंने तुम्हें कई बार समझाया । पाप के पथ में—

उसने बात काट कर कहा—गोपाल बाबू , मैं तुम से सहायता प्राप्त करने आया हूँ. उपदेश सुनने नहीं । मुझे इस समय अवकाश नहीं । सहायता करोगे ?

उसकी हीन दशा का हमारे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा । हमने कहा—भाई हम रुपया दिये देते हैं, किन्तु ऐसा करने का हमें अधिकार नहीं है । हमें चिन्ता में न पड़ना पड़े !

उसने कहा —"गोपाल बाबू, आप निश्चिन्त रहिए । मैं इसी मास में यह रुपया आपको देदूँगा । आप मुझे प्राणदान दे रहे हैं । रुपया न मिलने पर आज मुझे आत्महत्या करनी पड़ती । ऐसा ही प्रसङ्ग आ पड़ा है ।"

हमने अलमारी का ताला खोल कर ५०००) की गिन्नियाँ और नोट उसके हाथ में रख दिये । वह तत्काल चला गया । बाद को हमने सोचा, यह अच्छा नहीं हुआ । यह तो स्वामी के पुत्र को पाप के पथ में प्रवृत्त करने के प्रयास के सिवा और कुछ नहीं है ।

(४)

शिवचरण उस रात को न मालूम कहाँ चला गया । एक सप्ताह बीत गया और वह वापस न आया । अब हम ५०००) की बात को गुप्त न रख सकते थे । १००००) हमारी निधि में रहते थे । साहू साहब को शिवचरण के ला-पता होने पर कुछ भी खेद न था । वे स्थिर थे । एक दिन को भी उनके विशाल मस्तक पर चिन्ता की रेखा दिखाई नहीं दी । 'राबिन्सनक्रूसो' का पाठ पढ़ाते हुए हमने शारदा से पूछा—शिवचरण का पता न चला । देखता हूँ इस विषय में साहू साहब बिलकुल तटस्थ हैं । इसका कारण समझ में नहीं आता ।

उसने धीरता से उत्तर दिया —स्वामीजी की ऐसी ही आज्ञा है । चिन्ता करने से कुछ नहीं होता ।

उनके अलौकिक विश्वास पर हमें ज़रूर आश्चर्य हुआ। हम पाठ-समाप्ति के बाद यथानियम साहू साहब की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने काम-काज की बातें करके पूछा —तुम्हें रुपये की ज़रूरत है ?

हमने कहा—रुपये की ज़रूरत तो न होती, किन्तु शिब्बू बाबू उस दिन २०००) ले गये थे।

साहू साहब को कभी इतने क्रोध में नहीं देखा था। किन्तु वे क्रोधी और संशयालु ज़रूर थे। हज़ारों रुपयों के हानि-लाभ के तारों को, जो उद्वेगविहीन चित्त से सुन लेते थे वे ही साहू साहब, हमारे इस अपराध पर इतने लाल हो जायँगे—कभी स्वप्न में भी ध्यान न था। उन्होंने घृणा के भाव को दिखाते हुए कहा—तुमने किसकी आज्ञा से यह रुपया दिया ? कल प्रातःकाल तक रुपया दाखिल करो, वर्ना अपना मुँह मत दिखलाओ। इतना दुस्साहस ! इतनी धृष्टता ! जिसका मैं तिरस्कार करूँ, उसे तुम आश्रय दो। बस यही मेरा अन्तिम निश्चय है।

हमारी जो कुछ बचत थी सब साहू साहब के पास जमा थी। वह दो हज़ार से अधिक न थी। तीन हज़ार कहाँ से आवें। एक मकान था। दूसरे ही दिन जाकर उसे बेच डाला। दो हज़ार मिले। इस तरह चार हज़ार रुपये इकट्ठे हुए। पत्र में सब ब्यौरा लिख कर ४०००) के नोट साहू साहब के पास भेज दिये। एक हज़ार के लिए क्षमा-भिक्षा चाही।

× × × ×

(५)

चार वर्ष से गृहत्यागी हूँ। अभी संन्यासी नहीं हूँ, गृहत्यागी हूँ। गुरुदेव की आज्ञा है, जब तक एक भी वासना अवशिष्ट है, एक जगह भी मन अटका हुआ है, संन्यासी नहीं हो सकता। उनकी आज्ञा है, खूब घूमो, जब तक वासनायें अवशिष्ट हैं परोपकार करो, रोगियों की शुश्रूषा, दीनों की सहायता, मूर्खों को शिक्षा दो। इन चार वर्षों में कहाँ कहाँ घूमा हूँ, कितने ही रोगियों की परिचर्य्या, कितने ही दीनों की सहायता की है। बहुतों को अक्षराभ्यास कराया है, सदुपदेश दिये हैं। मन को खूब शान्ति मिली है, पर शारदा के प्रेम की अस्पष्ट रेखा अभी तक मन से नहीं मिटी है। उसके सुकोमल व्यवहारों का अभी तक विस्मरण नहीं हुआ है। हृदय के जितने भाग पर उसने अधिकार जमा लिया है वह अभी तक ज्यों का त्यों है। गुरुदेव ने इन्हीं सब बातों को सुन कर कहा है—अभी कम से कम एक वर्ष की कसर है। इस संस्कार को मिटाना होगा। नहीं तो दुर्दशा हो जायगी। संसार में रूप की कमी नहीं। वासना का चक्र बड़ा कुटिल है। इस संस्कार के न मिटने पर गृही बनना ही ठीक होगा।

उस दिन जाकर भवाली में उतरा था। वहाँ जल-वायु-परिवर्त्तनार्थ अनेक रोगी आते हैं। जाते ही चार रोगियों की सेवा का सौभाग्य मिल गया। एक को दूध लाकर देता था, दो की दवा लाता था, चौथे का भोजन बनाता था। मैं भिक्षा करके ही खाता था। तीन रोगी स्वस्थ हो गये। वे अपने अपने स्थान को चले गये।

हमने भी सोचा कि चल पड़ें। सङ्क्रामक रोगों के रोगियों की सेवा करने में घर के लोग भी घबराते हैं। रोग के लग जाने का उन्हें भय रहता है। इसी तरह के रोगियों की सेवा करने का हमें गुरुदेव का आदेश था। हमारे मित्र चौथे रोगी ने कहा—महात्मन्, दूसरी कोठी में एक सज्जन बीमार पुत्र को लेकर आये हैं। वे सद्गृहस्थ हैं। आप उनकी भी खबर लीजिए। हमने कहा—बहुत अच्छा।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही हमने कोठी के द्वार पर 'नारायण हरि' का उच्चारण किया। उसे सुन कर नारायण स्वयं भी आ जाते तो हमें इतना आश्चर्य नहीं होता जितना शारदा को देख कर हुआ। उसने हमें नहीं पहचाना। उसने बड़ी श्रद्धा से कहा—स्वामिन्, आइए।

हमारा नाम वहाँ 'नारायण हरि' बाबा पड़ गया था। लोगों ने हमारी प्रशंसा करके हमें खूब बदनाम कर दिया था। इस लिए 'नारायण हरि' को सुन कर लोग हमें पहचान लेते थे। हमारे मित्र रोगी ने शारदा के पिता को हमारा परिचय दे दिया था और यह भी कह दिया था कि हम प्रातःकाल उनके यहाँ आवेंगे।

साहू साहब ने हमारे चरण छुए। रोगी शिवचरण ने हमें प्रणाम किया। शारदा की माता ने हमारे आगे सिर टेक दिया। शारदा सूखा हुआ मुँह लिये हाथ जोड़े खड़ी रही। श्रद्धा का ऐसा सर्वतोमुखीभाव तो हमने बहुत

कम देखा था । हाँ, नये शहर में रोटी माँगते समय "हाथ ख़ाली नहीं है" और कहीं कहीं "आगे बढ़ो" सुनने का सौभाग्य तो प्रायः प्राप्त होता था ।

शारदा के सुस्त चेहरे को देख कर हमें बहुत दुःख हुआ। इस सुस्ती का कारण मैं ही तो नहीं हूँ। क्या इसके मन में मैं भी कोई अस्पष्टरेखा छोड़ आया हूँ; प्रमाण तो इसका स्पष्ट मालूम पड़ता है।

साहू साहब चिन्तित मालूम पड़ते थे । माँ करुणापूर्वक रो रो कर कहने लगीं —महाराज, हमारे यही पुत्र सन्तान है । कई मासों से यह पीड़ित है । दो कुलों की टेक है । आपकी चरणधूलि के पड़ने से आशा हुई है कि हमारा मनोरथ सफल हो जायगा । सुना है, आप तो वैद्य भी हैं । इसकी नाड़ी परीक्षा करके देखिए, रोग क्या है और कब तक शान्त हो जायगा ।

निश्चय हमने वैद्यक का अभ्यास किया था । अनेक रोगियों की परिचर्य्या करने से हमें रोगों की बहुत कुछ पहचान हो गई थी । रायपुर के डाक्टर गङ्गाधर, एम० डी० ने हमसे कुछ उपनिषद् पढ़े थे और उनसे हमने साधारण भैषज्यविज्ञान । हमने शिवचरण की नाड़ी देखी । हमारी बढ़ी हुई जटायें, एक वस्त्र, और पुष्ट शरीर ने हमारे पहले रूप को बिलकुल बदल दिया था । फिर भी शारदा सूखा हुआ मुँह लिये हमारी ओर देख रही थी । गोपाल समझ कर नहीं, संन्यासी समझ कर । शिवचरण को रोग कुछ न था । अधिक मद्य पीने से उसका हाज़मा बिगड़ गया था । यकृत् भी विकृत हो गया था । हमने नीबू का ताज़ा रस पीने और सायं-प्रातः टहलने का उपदेश दिया । हम नित्य उसे टहलने के लिए साथ ले जाया करेंगे—यह सेवा हमने अपने ऊपर ली ।

शिवचन्द्र से रोज़ बातचीत होती थी । भवाली की शुद्ध वायु ने उसे बहुत शीघ्र आरोग्य करना आरम्भ कर दिया । अब वह मीलों टहल कर भी नहीं थकता है । सूखे और मुरझाये हुए चेहरे पर फिर लावण्य का लालित्य लाल रङ्ग लेकर आ गया है । कभी कभी शारदा भी घूमने आती थी । परदेश में परदे की प्रथा एक तरह से छूट ही जाती है । हमने बातों बातों में उससे पूछा—आपकी अँगरेज़ी योग्यता अच्छी मालूम होती है । आपने किस स्कूल में शिक्षा पाई है ?

उसका लज्जापूर्ण चेहरा एक साथ फ़ीका पड़ गया । लम्बी साँस भर कर उसने कहा —मैंने घर पर ही थोड़ी सी अँगरेज़ी पढ़ी थी । जो...

शिवचरण ने बात काट कर कहा —स्वामिन्, हम लोगों ने एक बड़ा पाप किया है । न मालूम उसका क्या प्रायश्चित्त होगा । उस पाप का मूल मैं ही हूँ ।

हम लोग हरी घास पर बैठे हुए, सायङ्कालीन शान्त दृश्य को देख कर तृप्तिलाभ कर रहे थे । शिवचरण ने बड़ी उत्तेजना से सब बातें सुनाईं । हमसे रुपयों का लेना, किसी वेश्या को लेकर बम्बई में रहना, अपना निरुद्देश होना, पिता का अनुचित कोप, हमारा पदपरित्याग, घर बेच कर रुपयों का भेजना, हमारी तलाश, पिता का पश्चात्ताप, वेश्या की दग़ा, अपनी वापसी, रोग और वैद्यनाथ की यात्रा तक सभी घटनायें उसने सुना कर कहा—कैसा पाप किया है । गोपाल बाबू बड़े सज्जन थे । उनके जाने से हमारी बड़ी भारी हानि हुई है । उनके सामने अन्य कर्मचारियों की दाल न गलती थी । उनके चले जाने पर उन पापियों ने अनेक उत्पात मचाये । शारदा भी उस दिन से सुस्त हो गई है । माता भी अब तक उनके लिए रोती है ।

हमने कनअँखियों से शारदा की ओर देखा । उसकी अश्रुपूर्ण आंखें ओस भरे कमलों को लज्जित कर रही थीं । गुप्त वेदना के स्पष्ट चिह्न उसके चेहरे पर झलक रहे थे । उसके वेदनापूर्ण चेहरे को देख कर हमारे संयमी मन की जड़ खोखली हो गई । शिवचरण ने हमारा हाथ पकड़ कर कहा —स्वामिन्, हमारी बहिन शारदा देवी है । जानते हैं उसने कैसी भीष्म प्रतिज्ञा की है ? उसने चिरकुमार व्रत धारण किया है । गोपाल बाबू को छोड़ कर वह किसी और से विवाह न करेगी । हां ! इसी लिए तो माता-पिता की चिन्ता का ठिकाना नहीं है ।

शारदा ने नीचे को मुँह कर लिया ।

(६)

शिवचरण पूर्ण स्वस्थ होगया । परसों सब लोग मकान जायँगे । हमने अभी तक अपने स्वरूप को प्रकट नहीं

किया था। उस दिन प्रातःकाल भ्रमणोपरान्त हम लोग बरामदे में बैठे हुए थे। साहू साहब ने कहा—"स्वामिन्, एक प्रार्थना है। अस्वीकार करके दास के चित्त को व्यथित न कीजिएगा। आपने एक दिन भी मेरे स्थान पर उच्छिष्ट नहीं डाला है। आप का नियम है कि एक घर का भोजन ग्रहण नहीं करते। एक एक रोटी लेकर कई गृहस्थों को पवित्र करते हैं। इस में मुझे कुछ वक्तव्य नहीं। आपके नियम का मैं सत्कार करता हूँ। किन्तु दास को कुछ आज्ञा दीजिए। किसी लोकोपकारी कार्य्य के लिए धन-दान की आज्ञा दीजिए। मैं आपकी आज्ञा से १०–१५ हज़ार किसी काम में लगा सकता हूँ।"

हमने रहस्योद्‌घाटन के लिए इसी समय को शुभ समझा। हमने नम्रता दिखाते हुए कहा —साहू साहब, इस शरीर को आप भले ही भूल जायँ, किन्तु जो शरीर आपके अन्न से ७ वर्ष पुष्ट हुआ है और आप की पुण्य-छाया में जिसका अशेष उपकार हुआ है वह आप को कभी भूल सकता है। आशा है, इस अधम का अपराध आपने क्षमा कर दिया होगा।

हमने उनके चरण छुए। वे आश्चर्य्य में पड़ गये। वे कहने लगे—संन्यासिन्, क्या करते हैं।

हमने कहा—आप का गोपाल अभी तक संन्यासी नहीं हुआ है।

× × × × × ×

दोपहर को सब के साथ हमने भोजन किया। हमारे केशों की कोमल जटाओं को शारदा ने एकान्त में अपने हाथ से काट डाला। उसका चेहरा इन दो घंटों में ही कैसा लावण्यपूर्ण हो गया। भवाली में रह कर उसने जितना स्वास्थ्य सम्पादन किया था—वह उसे आज ही "एकमुश्त" प्राप्त हुआ। उसने हँसते हँसते कहा—

मायावी गोपाल, जानते हो, तुम्हारे चार हज़ार रुपयों से पिताजी ने कितना व्यापार किया है! उन्होंने उसे बढ़ा कर २५ हज़ार कर दिया है जो बंगाल-बैंक में तुम्हारे और मेरे नाम से जमा है। उस रुपये को जिस काम में पिताजी ने लगाया खूब लाभ हुआ। वे कहा करते हैं —

"गोपाल की नेक कमाई को जिस काम में लगाता हूँ उसी में लाभ होता है।"

हमने पहली बार उसके कोमल हाथ को अपने हाथ में लेकर प्रेम से दबा दिया।

ज्वालादत्त शर्म्मा

ग्रेटब्रिटन और आयरलेंड में कृषि-सुधार*।

यूरोपीय महायुद्ध के कारण भारतवर्ष में फेक्टरी निर्म्मित अनेक वस्तुओं का जिस प्रकार अभाव अथवा कमी हो गई थी यूरोप के इँगलेंड आदि देशों में उसी भाँति कृषि-जन्य पदार्थों का तोड़ा था। अतएव प्रत्येक देश का ध्यान अपनी अधूरी आर्थिक उन्नति और परावलम्बन पर आकर्षित हुआ है। इँगलेंड में आर्थिक तथा अन्य समस्याओं पर विचार करने के लिए (Reconstruction Committee) अर्थात् पुनर्संगठन समिति अगस्त १९१६ में बैठी, जिसकी एक शाखा कृषि-नीति-उपसमिति थी। इस उपसमिति का उद्देश्य इँगलेंड आदि द्वीपों में कृषि-उन्नति के साधनों पर विचार करना था। क्योंकि देश की रक्षा के लिए खाद्य पदार्थों के अधिक उत्पन्न करने की बड़ी आवश्यकता है। हमारे देश का मुख्य उद्यम कृषि है और उसकी दशा इँगलेंड आदि देशों की अपेक्षा बहुत हीन है। न उतनी उपज है और न अभी भाँति भाँति के नवीन वैज्ञानिक साधनों का प्रचार ही हुआ है। अतएव विदेशों में कृषि-उन्नति के लिए जो उपाय विचारे जा रहे हैं उनमें से बहुत से हमारे देश के लिए और भी अधिक लागू तथा आवश्यक हैं।

कमिटी की रिपोर्ट अभी प्रकाशित हुई है। पिछले सौ वर्षों का कृषि का इतिहास अन्वेषण

---

* मैसूर इकनामिक जरनल, मार्च १९१९, में प्रकाशित रिपोर्ट पर आश्रित।

करते हुए तथा सामाजिक और राजनैतिक मामलों का उससे सम्बन्ध दर्शा कर कमिटी ने कृषि की वर्तमान अवस्था तथा समस्याओं पर सूक्ष्म विचार किया है।

इँगलिस्तान में कृषि-उन्नति की महान् आवश्यकता।

युद्ध में यह स्पष्ट अनुभव प्राप्त हो गया है कि विदेशों से आये हुए अन्न भोजन पर आश्रित होना एक महान् भय तथा कठिनता का कारण है। इसके कारण युद्ध का व्यय बढ़ गया, विदेशों को धन जाने के कारण व्यापारिक सम्बन्धों में उलझन पड़ी तथा व्यापारिक जहाज़ का बड़ा अङ्ग इस काम में लग गया। यदि भविष्य युद्धों में जलडुब्बी (Sub-marines) नावों की अधिक वृद्धि हुई तो शायद इँगलिस्तान देश को भोजन मिलना असम्भव हो जायगा। यद्यपि यह आशा की जाती है कि भविष्य में राष्ट्र अधिक सौजन्य और ईश्वरीय नियम के अनुसार बर्ताव करेंगे तथापि निश्चय न होने के कारण हम अपनी सन्तान को महान् आपत्ति में नहीं डाल सकते। इसके सिवा इन आशङ्काओं से भिन्न भी देश की उत्पादक शक्ति की जितनी वृद्धि हो सके करनी चाहिए, जिससे हम युद्धऋण का भार सँभाल सकें, दूसरे देशों से अधिक वस्तु न ख़रीदना पड़े। युद्ध में अत्यन्त मनुष्य-क्षति हुई है। कृषि-उन्नति से देहातों में वंशवृद्धि तथा जीवनशक्ति की पूर्ति हो सकेगी।

नवीन कृषि-सम्बन्धी नीति के अनुसरण की आवश्यकता।

कमिटी को विश्वास है कि यदि उसकी बताई हुई नीति का अनुसरण किया जाय तो एक ही पीढ़ी में अपूर्व उन्नति सम्भव है। कृषि-उन्नति के लिए किसी छूमन्त्र का प्रयोग नहीं किया जा सकता। जर्म्मनी की भाँति इँगलिस्तान में भी स्थिर और लग कर चेष्टा करने से सफलता प्राप्त होगी। उद्देश राष्ट्र की भलाई है और यदि ज़मीन्दारों, किसानों और मज़दूरों को समझा दिया जाय कि जायदाद का कुप्रबन्ध और कृषि-विधि में त्रुटि का हानिकर प्रभाव केवल व्यक्ति का ही नहीं किन्तु सारे राष्ट्र का विषय है, अधिक पैदावार जाति-उन्नति तथा देश-रक्षा के लिए आवश्यक है तो निस्सन्देह वे सब उपायों और मार्गों का पालन अपना कर्तव्य समझ कर करेंगे, जैसा कि अन्य अवसरों पर उनका इतिहास साक्षी देता है।

इँगलिस्तान में बहुत सी जायदाद का प्रबन्ध अच्छा है और बहुत से अच्छे कृषक हैं, परन्तु कृषि-विधि की उन्नति की सारे देश में आवश्यकता है। १ अन्न तथा चारा दोनों की ज़मीन पर गहरी (अधिक धन तथा परिश्रम का व्यय करके) खेती होनी चाहिए। २ पशुओं की अवस्था सुधारने की चेष्टा, जो युद्ध-काल में भी किसानों और ज़मीन्दारों ने की है, जारी रखनी चाहिए। ३ घास और चारे की भूमि का बड़ा भाग अन्य फ़सलों के लिए तैयार करना चाहिए। ४ बीट से शकर बनाना तथा आलू की खाद्य वस्तुयें बनाने का व्यवसाय इँगलिस्तान के कृषिकार्य्य में सम्मिलित करने से बड़ा लाभ हो सकता है। ५ ज़मीन्दारी का प्रबन्ध अधिक से अधिक उपज की दृष्टि से करना चाहिए। ६ कृषिसम्बन्धी उद्योगों की वृद्धि और भूमि-उन्नति तथा गहरी खेती के लिए पूँजी (धन) आकर्षित करना चाहिए। ७ कृषिमज़दूरों के लिए अच्छे मकानों (Cottages) का प्रबन्ध करना चाहिए। ८ क़ब्ज़ेदारों* तथा किसानों दोनों की हैसियत के छोटे छोटे चकों का आयोजन करना चाहिए जो मज़दूरों, छुट्टी पाये हुए सिपाहियों और मल्लाहों (Sailors) के लिए स्वायत्त होने की प्रथम श्रेणी होगी। ९ सारे देश में कृषि-शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध व्याप्त किया जाय। १० सरकारी कृषि-विभाग की स्थिति उत्तम बनाई जाय। उनका वर्तमान

---

* जो किसान अपनी भूमि के स्वयं मालिक हैं।

राष्ट्रीय तथा स्थानीय संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

कमिटी अपना एक मन्तव्य पर दृढ़ विश्वास प्रकट करती है अर्थात् जब तक उन दशाओं को स्थिर और निश्चित न बनाया जायगा जिनमें कि कृषिकार्य्य होता है तब तक उपज की वृद्धि अथवा उन्नति न हो सकेगी। दशा इस भाँति से स्थिर होनी चाहिए कि खेती की उपज में से मज़दूर को सन्तोषजनक मज़दूरी मिल सके, किसान को उसके परिश्रम और व्यय का पर्याप्त पारितोषिक मिल जाय और ज़मीन्दार को भूमि में लगाये हुए धन का व्याज जब मज़दूरी सरकार की ओर से निश्चय कर दी जाय तब लगान का निश्चय किसानों और ज़मीन्दारों के बीच छोड़ देना चाहिए। हाँ, चारे की भूमि के लिए जो इक़रारनामे हो चुके हैं उनके परिवर्तन की सुविधा कर देनी चाहिए जिससे उस भूमि पर अन्न की खेती होने लगे।

कृषि बोर्ड (Board of Agriculture) की नवीन शक्तियाँ।

कृषि बोर्ड को यह अधिकार दिया जाय कि वह कृषिसम्बन्धी किसी कार्य्य का प्रबन्ध कुछ काल के लिए ज़मींदार से स्वयं ले ले। जायदाद अथवा उसका जो भाग आवश्यक समझा जाय एक अनुभवी और निपुण प्रबन्धकर्ता (Manager) को सौंपा जाय जिसको कृषिभूमि के प्रबन्ध में वेही अधिकार हों जो मालिक को हों। उन्नति करने के लिए पूँजी यदि मालिक स्वयं लगाने के लिए प्रस्तुत न हो तो क़र्ज़ लेकर लगाई जाय और उसका व्याज तथा चुकौता खाता (Sinking fund) का व्यय जायदाद की आमदनी से पहले दिया जाय। प्रबन्ध पहली बार पाँच वर्ष के लिए लिया जाय और यदि फिर पहले मालिक के सन्तोषजनक कार्य्य करने की आशा न हो तो पुनः उतने दिनों के लिए बढ़ाया जाय।

यह प्रकट कर देना चाहिए कि प्रत्येक ज़मींदार का यह कर्तव्य होगा कि अपनी रियासत के प्रबन्ध में और प्रत्येक आसामी (Lease or tenant) तथा इक़रारनामे की यह मानी हुई शर्त होगी कि भूमि पर श्रेष्ठ साधनों से कृषि की व्यवस्था की जाय। जहाँ कोई काश्तकार अच्छे प्रकार से खेती नहीं करेगा और ज़मीन्दार के आगाह करने पर ध्यान न देगा तथा यदि यह बात (Review Committee) (निरीक्षण कमिटी) को सिद्ध हो जायगी तो उसका पद छीन लिया जायगा।

*देहाती मकान (Cottages)

हम यह बात ज़ोर से कहते हैं कि जब तक मकानों की माँग पूरी नहीं होती तब तक कृषि-उन्नति की कोई सम्भावना नहीं है। परन्तु हमारा प्रस्ताव मज़दूरों के लिए अच्छी मज़दूरी और अच्छे मकान ही पर नहीं समाप्त होता। ग्रामीण जीवन के सुखसाधन प्रस्तुत करने चाहिए और ख़राब ग्रामों का पुनर्निर्माण होना चाहिए। छोटे छोटे खेतों द्वारा मज़दूरों को स्वायत्तता का मार्ग खोलना चाहिए।

वैज्ञानिक परामर्श की आवश्यकता।

कृषि में जो परिवर्तन हमारे ध्येय हैं वे तब तक नहीं हो सकते जब तक धन का उपहार स्वरूप अच्छा लगान मिलता रहेगा यह निश्चय न हो। यह स्थिरता तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि यह डर लगा हुआ है कि उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों के सस्ते दाम फिर न लौट आवें।

अतएव कमिटी का प्रस्ताव है कि सरकार साधारण कृषि-मज़दूर की मर्यादा रूप (Minimum) मज़दूरी निश्चित कर दे (जिससे कम मज़दूरी दी ही न जाय); किसान को गेहूँ तथा Oats के लिए कम से कम दाम की मर्यादा बाँध

---

* काटेज इँग्लेंड में छोटे छोटे देहाती मकानों को कहते हैं जो बहुधा श्रमजीवियों के रहने के लिए होते हैं।

दे और उपज की वृद्धि के लिए निम्नलिखित प्रयत्न करे क्योंकि पूर्वोक्त (Guarantee) इक़रार का उद्देश्य यही वृद्धि है। कृषि का मुख्य भाग अन्न की फ़सलें हैं। दुग्ध तथा उससे उत्पन्न पदार्थों का बनाना और पशुपालन आदि कृषि-सम्बन्धी व्यवसाय चारे के खेतों की अपेक्षा अन्य फ़सलों के साथ भी उसी रीति से चलाये जा सकते हैं। अतएव जहाँ तक सम्भव हो चारे की भूमि और फ़सलों के लिए परिवर्तित कर दी जाय। और जो कोई किसान अथवा पशुपालक ऐसा करे वह सरकारी गारंटी का लाभ उठा सके तथा अपनी पैदावार भी बढ़ा सके।

यद्यपि कमिटी को व्यापार-सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करने का अधिकार नहीं है तथापि यदि फेक्टरी-निर्म्मित पदार्थों पर कर लगाया जाय तो विदेशों से आनेवाले खाद्य पदार्थों—यथा दुग्धद्रव्य, नाज आदि—पर भी कर लगाया जाय और फलादिक उन वस्तुओं पर भी, जिनके लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

उपज की वृद्धि के उपाय।

यह अभिप्राय केवल किसानों के वसीले से सिद्ध किया जा सकता है। अतएव सरकार को अपनी नीति खुले शब्दों में प्रकट करके चलानी चाहिए। उच्चतम आदर्श—अर्थात् सारे देश की भूमि से भोजन और लकड़ी की अधिकतम उपज किसानों और ज़मीन्दारों के सामने रखना चाहिए। उनमें निश्चय और स्थिर अवस्था बनी रहने का विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। शिकार और खेल के लिए अधिक भूमि नहीं छोड़ी जा सकती। कृषि की एक ईति (आपत्ति) ख़रगोश हो रहे हैं, उनके नाश की चेष्टा लगातार करनी चाहिए, सिवा उन स्थानों के जहाँ उनके सिवा और खाद्य पदार्थ उत्पन्न ही नहीं हो सकते।

कृषि-शिक्षा, अन्वेषण और परामर्श का पूरा प्रबन्ध नहीं होता। भूमि से जल और नमी की बाढ़ को दूर करना (Drainage), घास और चारे की भूमि के परिवर्तन का उत्तम उपाय, खाद देने की उत्तम प्रणाली, बीज की अच्छी नसलें आदि विषयों को समझाना होगा और यह दिखला देना होगा कि उपज की वृद्धि विना घाटे के की जा सकती है।

कृषि-विभागों का संगठन और शासन।

इँगलिस्तान में हमारे देश के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के समान County Council हैं। परन्तु उनका ध्यान कृषि-उन्नति की ओर बहुत अधिक था। उनमें छोटे खेतों का वितरण, पशुओं के संसर्ग रोग और कृषि-शिक्षा की भिन्न भिन्न कमेटियाँ थीं। उन सब को हटा कर सुधार कमेटी एक स्वतन्त्र कमेटी की स्थापना चाहती है जो इन सब कार्य्यों को स्वयं अथवा उपसमितियों द्वारा करेगी।

इँगलेंड, स्काटलेंड, आयरलेंड और वेल्स के लिए भिन्न भिन्न राष्ट्रीय कृषि-कौंसिलों की स्थापना होनी चाहिए, जो वर्ष में दो बार बैठकें करे। इँगलेंड और वेल्स के लिए एक कृषि-कमेटी बैठना चाहिए, जिसमें कृषि बोर्ड और कौंसिलों के प्रतिनिधि हों और इसकी बैठक प्रत्येक तीन मास में हो। फिर पूर्वोक्त चार राष्ट्रीय कौंसिलों की प्रति वर्ष एक कान्फ़्रेंस हुआ करे।

इतना बड़ा सङ्गठन कृषिप्रधान भारतवर्ष में नहीं है। यहाँ तो केवल प्रान्तीय कृषिविभाग हैं और प्रति दो वर्ष एक कृषिकान्फ़्रेंस होती है। इनमें ग़ैरसरकारी प्रतिनिधि नहीं होते और इनकी पहुँच किसानों तक नहीं है।

स्त्रियों की शिक्षा।

युद्ध के समय में स्त्रियाँ भूमिसम्बन्धी कार्य्य करती रही हैं। वह जारी रहना चाहिए। इँगलेंड में देहातों की आबादी शहरों की ओर जा रही है। उसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही का भाग है।

ख़राब मकान, कम मज़दूरी, भविष्योन्नति की दुराशा इसके कारण हैं जिनका प्रभाव स्त्रियों पर पुरुषों की अपेक्षा अधिक पड़ रहा है। स्त्रियों का प्रभाव इस गति के प्रतिकूल डाला जा सकता है यदि उनको सुखमय गृहजीवन बनाने की शिक्षा दी जाय और वह ऐसी सामाजिक अवस्था की रचना करें जिसमें ग्राम्यजीवन के स्वाभाविक लाभ शहर के कृत्रिम आकर्षणों को दबा दें।

अतएव कृषि-कालेजों और स्कूलों में स्त्रियों को योग्य शिक्षा दी जाय और उनको अध्यापकता के पद पुरुषों के समान दिये जायँ।

ग्रामों का पुनस्सङ्गठन, उद्योग-धन्धे और सामाजिक जीवन।

मज़दूरी की कमी दूर करने का प्रस्ताव पहले किया जा चुका है; परन्तु केवल यही एक कारण नहीं है जिससे देहात उजड़ते जा रहे हैं। शहरों की सुविधाओं और आकर्षणों का देहाती मज़दूरों पर आकर्षक प्रभाव पड़ता है। शिक्षावृद्धि के साथ साथ अधिक अवकाश की आकांक्षा प्रबल होती जाती है। ग्रामों में यह अवकाश नहीं है और एक प्रकार की मुर्दनी छाई हुई है। इनकी दवा किये बिना कृषि-सुधार की कोई आशा नहीं है। एक ग्राम और दूसरे ग्राम में बहुधा बड़ा अन्तर देख पड़ता है। एक में तो मुसकाते हुए उपवन, सुन्दर खेत, सुथरे मकान, गाँव की खेल की भूमि, सामाजिक समितियाँ और वाचनालय (Reading-room) हैं। दूसरे में बहुत भूमि पड़ी हुई है परन्तु मकानों के साथ उपवन नहीं हैं! मकान ऐसे भिड़े हुए हैं कि शहर की गलियों का दृश्य दिखाते हैं। खेत आबादी से दूर स्थित हैं और किसी प्रकार का जीवन का आनन्द नहीं है। इस भेद का कारण यह मिलता है कि एक गाँव में चतुर ज़मींदार उन्नति-पथ का अनुयायी है जो आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति पर ध्यान देता रहता है और दूसरे में नहीं है। यदि देहातों के नक़शे देखे जायँ तो बहुतों की अद्भुत अनमेल वृद्धि हुई है। बहुधा गाँव की सड़क से मिले हुए विस्तृत खेत हैं जो मकान अथवा उपवनों, गोचर भूमि अथवा छोटे छोटे चकों में विभक्त होते तो अच्छा था। परन्तु इधर किसी की दृष्टि नहीं जाती। अतएव एक उन्नतिरहित परिस्थिति छा रही है। साहसी युवा ऐसी परिस्थिति को छोड़ कर शहरों में चले जाते हैं।

इसके सुधार के लिए ग्राम्यकौंसिल, राष्ट्रीय कृषि-कमेटियों और बोर्डों को चेष्टा करनी चाहिए। भूमि यदि इक़रार से न मिले तो क़ानून के द्वारा प्राप्त करना चाहिए और उसे सुधारना चाहिए। धन Public फण्ड से लिया जाय और ग्राम्यकौंसिल द्वारा मिल कर चुकाया जाय।

Agricultural Organization Society अथवा Rural League के समान देहातों में काम करनेवाली संस्थाओं को सरकारी सहायता दी जाय और ग्रामीण उद्योग-धन्धों तथा स्त्रीसंस्थाओं की उन्नति का कर्तव्य उन्हें सौंपा जाय।

ये प्रस्ताव कमेटी ने इँगलिस्तान में कृषि और ग्राम की उन्नति करने के लिए किये हैं। इन में से अधिकतर हमारे कृषि-प्रधान देश को लागू हैं तथा उनकी यहाँ और भी अधिक आवश्यकता है। क्योंकि विलायत के किसान हमारी अपेक्षा फिर भी शिक्षित हैं, वे उतने ऋणी नहीं हैं। वहाँ के कुछ ज़मींदार उन्नति की ओर ध्यान देते हैं और वे किसानों से अत्यधिक लगान नहीं ले सकते। मज़दूरों की मज़दूरी हमारे देश की भाँति कम नहीं है। वहाँ स्त्रियाँ अधिक शिक्षित हैं, इसलिए हमारे किसानों की स्त्रियों की अपेक्षा अपना कर्तव्य पालना अधिक योग्यता के साथ कर सकती हैं। कुछ समस्यायें इँगलेंड ही की हैं। यथा देहातों का उजाड़। परन्तु वही कारण हमारे यहाँ भी अत्यधिक

मात्रा में वर्तमान है, परन्तु दूसरा कोई मार्ग न होने से हमारे देशवासी खेती छोड़कर और किसी ओर नहीं जा सकते। कमेटी ने जो कर की नीति कृषि-उन्नति के लिए बतलाई है वैसी ही हमारे उद्योग-धंधों (Industries) की वृद्धि के लिए आवश्यक है। उपज की वृद्धि, ग्रामों में जीवनस्फूर्ति आदि अन्य सब प्रस्तावों की हमारे देश को इँगलिस्तान से अधिक आवश्यकता है। कमेटी ने उस देश की सरकार को जितनी व्यापक कृषिनीति का उपदेश दिया है वैसी ही विस्तृत नीति की हमारे देश को आवश्यकता है क्योंकि इँगलेंड में केवल ८ फ़ी सदी आबादी कृषि पर निर्भर है और भारतवर्ष में ७२ फ़ी सदी।

रामस्वरूप गुप्त

पश्चिमी क्षत्रप-वंश का इतिहास

इतिहास

भूमक

[श० सं० ४१ (ई० स० ११९ = वि० सं० १७६)
के पूर्व]

शक संवत् ४१ (ईसवी सन् ११९ = विक्रमी संवत् १७६) के पूर्व क्षहरत-वंश का सब से पहला नाम भूमक ही मिला है। परन्तु इसके समय के लेख आदिकों के अब तक न मिलने के कारण यह नाम भी केवल सिक्कों पर ही लिखा मिलता है।

उक्त भूमक के अब तक ताँबे के बहुत ही थोड़े सिक्के मिले हैं। इन पर किसी प्रकार का संवत् नहीं लिखा होता। केवल सीधी तरफ़ खरोष्ठी अक्षरों में "छहरदस छत्रपस भुमकस" और उलटी तरफ़ ब्राह्मी अक्षरों में "क्षहरातस क्षत्रपस भूमकस" लिखा होता है।

हम प्रस्तावना में पहले लिख चुके हैं कि इसके सिक्कों पर एक तरफ़ अधोमुख बाण और वज्र के तथा दूसरी तरफ़ सिंह और चक्र आदि के चिह्न बने होते हैं। सम्भवतः इन में का सिंह का चिह्न ईरानियों से और चक्र का चिह्न बौद्धों से लिया गया होगा।

यद्यपि इसके समय का कोई लेख अब तक नहीं मिला है तथापि इसके उत्तराधिकारी नहपान के समय के लेख से अनुमान होता है कि भूमक का राज्य शक-संवत् ४१ के पूर्व था।

नहपान

[श० सं० ४१—४६ (ई० स० ११९—१२४ =
वि० सं० १७६—१८१)]

यह सम्भवतः भूमक का उत्तराधिकारी था। यद्यपि अब तक इस विषय का कोई लिखित प्रमाण नहीं मिला है तथापि भूमक के और इसके सिक्कों का मिलान करने से प्रतीत होता है कि यह भूमक का उत्तराधिकारी ही था।

इसकी कन्या का नाम दक्षमित्रा था। यह शक-वंशी दीनिक के पुत्र उषवदात (ऋषभदत्त) की पत्नी थी। इसी दक्षमित्रा से उषवदात के मित्र देवणक नामक एक पुत्र हुआ था। हम पहले लिख चुके हैं कि उषवदात के ४ लेख मिले हैं। इन में से ३ नासिक से और १ कार्ले से मिला है। इसकी स्त्री दक्षमित्रा का लेख भी नासिक से और इसके पुत्र का कार्ले से ही मिला है। पूर्वोक्त लेखों में से उषवदात के केवल एक ही लेख में शक-संवत् ४२ दिया हुआ है। परन्तु इसी में पीछे से श० सं० ४१ और ४५ भी लिख दिये गये हैं। उक्त लेखों में उषवदात को राजा क्षहरात क्षत्रप नहपान का जामाता लिखा है। परन्तु जुन्नर की बौद्धगुफ़ा से जो श० सं० ४६ (ई०

स० १२४=वि० सं० १८१) का नहपान के मन्त्री अयम (अर्यमन) का लेख मिला है, उसमें नहपान के नाम के पहले राजा महाक्षत्रप स्वामी की उपाधियाँ लगी हैं। इससे प्रकट होता है कि उस समय—अर्थात् श० सं० ४६ में—यह नहपान स्वतन्त्र राजा हो चुका था।

इसका राज्य गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवा और नासिक तक के दक्षिण के प्रदेशों पर फैला हुआ था। इस बात की पुष्टि इसके जामाता उषवदात (ऋषभदत्त) के लेख से भी होती है।

नहपान के समय के लेख श० सं० ४१ से ४६ (ई० स० ११९ से १२४=वि०सं० १७६ से १८१) तक के ही मिले हैं। अतः इसने कितने वर्ष राज्य किया था इस बात का निश्चय करना कठिन है। परन्तु अनुमान से पता चलता है कि श० सं० ४६ के बाद इसका राज्य थोड़े समय तक ही रहा होगा। क्योंकि इस समय के क़रीब ही आन्ध्रवंशी राजा गौतमी-पुत्र शातकर्णि ने इसको हरा कर इसके राज्य पर अधिकार कर लिया था और इसके सिक्कों पर अपनी मुहरें लगवा दी थीं।

नहपान के सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में "राज्ञो-छहरातस नहपानस" और खरोष्ठी लिपि में "रञो छहरतस नहपनस" लिखा होता है। परन्तु गौतमी-पुत्र श्रीशातकर्णि की मुहरवाले सिक्कों पर पूर्वोक्त लेखों के सिवा ब्राह्मी में "राञो गोतमिपुतस सिरि सातकणिस" विशेष लिखा रहता है।

नहपान के चाँदी और ताँबे के सिक्के मिलते हैं। इन पर क्षत्रप और महाक्षत्रप की उपाधियाँ नहीं होतीं परन्तु इसके समय के लेखों में इसके नाम के आगे उक्त उपाधियाँ भी मिलती हैं।

इसका जामाता ऋषभदत्त (उषवदात) इसका सेनापति था। ऋषभदत्त के पूर्वोल्लिखित लेखों से पाया जाता है कि इस (ऋषभदत्त) ने मालवा-वालों से क्षत्रिय उत्तमभद्र की रक्षा की थी। पुष्कर पर जाकर एक गाँव और तीन हज़ार गायें दान की थीं। प्रभासक्षेत्र (सोमनाथ—काठियावाड़) में आठ ब्राह्मण-कन्याओं का विवाह करवाया था। इसी प्रकार और भी कितने ही गाँव तथा सोने चाँदी के सिक्के ब्राह्मणों और बौद्धभिक्षुकों को दिये थे, सरायें और घाट बनवाये थे, कुए खुदवाये थे और सर्वसाधारण को नदी पार करने के लिए छोटी छोटी नौकायें नियत की थीं।

चष्टन

[श० सं० ४६·७२ (ई० सं० १२४—१५०=
वि० सं० १८१—२०७) के मध्य]

यह घ्समोतिक का पुत्र था। इसने नहपान के समय में नष्ट हुए क्षत्रपों के राज्य को फिर क़ायम किया।

ग्रीक-भूगोलज्ञ टालेमी (Ptolemy) ने अपनी पुस्तक में चष्टन का उल्लेख किया है। यह पुस्तक उसने ई० स० १३० के क़रीब लिखी थी। इसी में यह भी लिखा है कि उस समय पैठन, आन्ध्रवंशी राजा वसिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमावी की राजधानी थी। इससे प्रकट होता है कि चष्टन और उक्त पुलुमावी समकालीन थे।

चष्टन के और इसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों को देखने से अनुमान होता है कि चष्टन ने अपना नया राजवंश क़ायम किया था। परन्तु सम्भवतः यह वंश भी नहपान का निकट का सम्बन्धी ही था।

नासिक की बौद्ध गुफ़ा से वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी के समय का एक लेख मिला है[1]। यह पुलमावी के राज्य के १८ वें या १९. वें वर्ष का है। इसमें गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि को क्षहरत-वंश को नष्ट करनेवाला और शातवाहन-वंश को उन्नत करनेवाला लिखा है। इससे अनुमान होता है कि शायद

---

[1] J. Bm. Br. Roy. As. Soc., Vol. VII, p. 51.

चष्टन को गौतमीपुत्र ने नहपान से छीने हुए राज्य का सूबेदार नियत किया होगा और अन्त में वह स्वाधीन होगया होगा।

चष्टन का अधिकार मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और राजपूताने के कुछ हिस्से पर था। इसी ने उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया, जो अन्त तक इसके वंशजों की भी राजधानी रही।

इसके और इसके वंशजों के सिक्कों पर अपने अपने नामों और उपाधियों के सिवा पिता के नाम और उपाधियाँ भी लिखी होती हैं। इससे पता चलता है कि चष्टन का स्थापित किया हुआ राज्य क्षत्रप विश्वसेन के समय (ई० स० ३०४) तक बराबर चलता रहा था। श० सं० २२७ (ई० स० ३०५) में उस पर क्षत्रप रुद्रसिंह द्वितीय का अधिकार होगया था। यह रुद्रसिंह स्वामी जीवदामा का पुत्र था।

चष्टन के चाँदी और ताँबे के सिक्के मिले हैं। इनमें के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्कों पर ब्राह्मी अक्षरों में "राज्ञो क्षत्रपस घ्समोतिकपुत्रस..." और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस घ्समोतिकपुत्रस चष्टनस" पढ़ा गया है। तथा खरोष्ठी में क्रमशः "रञोछ..." और "चठनस" पढ़ा जाता है।

हम पहले लिख चुके हैं कि चष्टन के और उसके वंशजों के सिक्कों पर चैत्य बना होता है। इससे भी अनुमान होता है कि इसकी राज्यप्राप्ति से आन्ध्रों का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य ही था। क्योंकि नहपान को जीत कर आन्ध्रवंशी शातकर्णि ने ही पहले पहल उक्त चैत्य का चिह्न उसके सिक्कों पर लगवाया था।

यद्यपि चष्टन के ताँबे के चौरस सिक्के भी मिले हैं। परन्तु उन पर लिखा हुआ लेख साफ़ साफ़ नहीं पढ़ा जाता।

जयदामा।

[श० सं० ४६-७२ (ई० स० १२४—१५० = वि० सं० १८१—२०७) के मध्य]

यह चष्टन का पुत्र था। इसके सिक्कों पर केवल क्षत्रप उपाधि ही मिलती है। इससे अनुमान होता है कि या तो यह अपने पिता के जीते जी ही मर गया होगा या आन्ध्रों ने हमला कर इसे अपने अधीन कर लिया होगा। यद्यपि इस विषय का अब तक कोई पूरा प्रमाण नहीं मिला है, तथापि इसके पुत्र रुद्रदामा के जूनागढ़ से मिले लेख[1] से पिछले अनुमान की ही पुष्टि होती है। उसमें रुद्रदामा का स्वभुजबल से महाक्षत्रप बनना और दक्षिणापथ के शातकर्णी को दो बार हराना लिखा है।

जयदामा के सिक्कों पर राजा और क्षत्रप शब्द के सिवा स्वामी शब्द भी लिखा होता है। यद्यपि उक्त 'स्वामी' उपाधि लेखों में इसके पूर्व के राजाओं के नामों के साथ भी लगी मिलती है, तथापि सिक्कों में यह स्वामी रुद्रदामा द्वितीय से ही बराबर मिलती है।

जयदामा के समय से इनके नामों में भारतीयता आ गई थी। केवल जद (घ्सद) और दामन् इन्हीं दो शब्दों से इनकी वैदेशिकता प्रकट होती थी।

इसके ताँबे के चौरस सिक्के ही मिले हैं। इन पर ब्राह्मी अक्षरों में "राज्ञो क्षत्रपस स्वामी जयदामस" लिखा होता है। इसके एक प्रकार के और भी ताँबे के सिक्के मिलते हैं; उन पर एक तरफ़ हाथी और दूसरी तरफ़ उज्जैन का चिह्न होता है। परन्तु अब तक के मिले इस प्रकार के सिक्कों में ब्राह्मी लेख का केवल एक आध अक्षर ही पढ़ा गया है। इसलिए निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ये सिक्के जयदामा के ही हैं या किसी अन्य के।

---

[1] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 36.

रुद्रदामा प्रथम।

[श० सं० ७२ (ई० स० १२० = वि० सं० २०७)]

यह जयदामा का पुत्र और चष्टन का पौत्र था। तथा इनके वंश में यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

इसके समय का शक-संवत् ७२ का एक लेख[1] जूनागढ़ से मिला है। यह गिरनार-पर्वत की उसी चट्टान के पीछे की तरफ़ खुदा हुआ है जिस पर मौर्यवंशी राजा अशोक ने अपना लेख खुदवाया था। इस लेख से पाया जाता है कि इसने अपने पराक्रम से ही महाक्षत्रप की उपाधि प्राप्त की थी तथा आकर (पूर्वी मालवा), अवन्ति (पश्चिमी मालवा), अनूप, आनर्त (उत्तरी काठियावाड़), सुराष्ट्र (दक्षिण काठियावाड़), श्वभ्र (उत्तरी गुजरात), मरु (मारवाड़), कच्छ, सिन्धु (सिन्ध), सौवीर (मुलतान), कुकुर (पूर्वी राजपूताना), अपरान्त (उत्तरी कोंकन), और निषाद (भीलों का देश) आदि देशों पर अपना अधिकार जमाया था।

इसने यौधेय (जोहिया) लोगों को हराया और दक्षिण के राजा शातकर्णी को दो बार परास्त किया। परन्तु उसे निकट का सम्बन्धी समझ कर जान से नहीं मारा। शायद यह राजा (वासिष्ठीपुत्र) पुलुमावी द्वितीय होगा, जिसका विवाह इसी रुद्रदामा की कन्या से हुआ था।

रुद्रदामा ने अपने आनर्त्त और सुराष्ट्र के सूबेदार सुविशाख द्वारा सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार करवाया था। उक्त समय की यादगार में ही पूर्वोक्त लेख भी खुदवाया था।

यह राजा बड़ा विद्वान् और प्रतापी था। इसे अनेक स्वयंवरों में राजकन्याओं ने वरमालायें पहनाई थीं। इसकी राजधानी भी उज्जैन ही थी। परन्तु राज्य-प्रबन्ध की सुविधा के लिए इसने अपने राज्य के भिन्न भिन्न प्रान्तों में सूबेदार नियत कर रक्खे थे।

रुद्रदामा के केवल महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के ही मिलते हैं। इन पर "राज्ञो क्षत्रपस जयदामपुत्रस राज्ञोमहाक्षत्रपस रुद्रदामस" लिखा होता है। परन्तु किसी किसी पर "...जयदामपुत्रस..." के बजाय "...जयदामस पुत्रस..." भी लिखा मिलता है।

इसके दो पुत्र थे। दामजद और रुद्रसिंह।

(सुदर्शन झील)।

उपर्युक्त झील, जिसकी यादगार में पूर्वोल्लिखित लेख खोदा गया था, जूनागढ़ में गिरनार-पर्वत के निकट है। पहले पहल इसे मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त (ईसा के पूर्व ३२२ से २९७) के सूबेदार वैश्य पुष्यगुप्त ने बनवाया था। उक्त चन्द्रगुप्त के पौत्र राजा अशोक के समय (ईसा के पूर्व २७२-२३२) ईरानी तुषास्फ ने इसमें से नहरें निकाली थीं। परन्तु महाक्षत्रप रुद्रदामा के समय सुवर्णसिकता और पलाशिनी आदि नदियों के प्रवाह से इसका बाँध टूट गया। उस समय उक्त राजा के सूबेदार सुविशाख ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। यह सुविशाख पह्लव-वंशी कुलाइप का पुत्र था। तथा इसी कार्य्य की यादगार में उक्त लेख गिरनार-पर्वत की उसी चट्टान के पीछे खुदवाया गया था जिस पर अशोक ने नहरें निकलवाते समय अपनी आज्ञायें खुदवाई थीं। अन्त में इसका बाँध फिर टूट गया। तब गुप्तवंशी राजा स्कन्दगुप्त ने, ईसवी सन् ४५८ में, इसकी मरम्मत करवाई।

दामजदश्री (दामघसद) प्रथम।

[श० सं० ७२-१०० (ई० सं० १२०-१७८ = वि० सं० २०७-२३५)]

यह रुद्रदामा प्रथम का पुत्र और उत्तराधिकारी था। यद्यपि इसके भाई रुद्रसिंह प्रथम और भतीजे रुद्रसेन प्रथम के लेखों में इसका नाम नहीं है तथापि जयदामा का उत्तराधिकारी यही हुआ था।

---

[1] Ep. Ind., Vol. VIII, p. 36.

इसके भाई और पुत्र के संवत्वाले सिक्कों को देखने से पता चलता है कि दामजद के बाद इसके भाई और पुत्र दोनों में राज्याधिकार के लिए झगड़ा चला होगा। परन्तु अन्त में इसका भाई रुद्रसिंह प्रथम ही इसका उत्तराधिकारी हुआ। इसी से रुद्रसिंह ने अपने लेख की वंशावली में अपने पहले इसका नाम न लिख कर सीधा अपने पिता का ही नाम लिख दिया है। बहुधा वंशावलियों में लेखक ऐसा ही किया करते हैं।

इसने केवल चाँदी के सिक्के ही ढलवाये थे। इन पर क्षत्रप और महाक्षत्रप दोनों ही उपाधियाँ मिलती हैं। इसके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामपुत्रस राज्ञो क्षत्रपस दामघ्सदस" या "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्नपुत्रस राज्ञ क्षत्रपस दामजदश्रिय" लिखा रहता है। परन्तु कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिन पर "राज्ञो महाक्षत्रपस्य रुद्रदाम्नः पुत्रस्य राज्ञ क्षत्रपस्य दामघ्स…" लिखा होता है। तथा इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्नपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रिय" लिखा रहता है।

इसके दो पुत्र थे—सत्यदामा और जीवदामा।

विश्वेश्वरनाथ रेऊ

भारतीय पुरातन राजनीति।

(४)

अमात्य-विभाग।

परिचय।

जिन के साथ राजा राजकीय विषयों में गुप्त विचार करता है वे मन्त्री कहलाते हैं। मन्त्री दो तरह के होते हैं—एक तो वे जो राजा को केवल मन्त्रणा ही देते हैं। अर्थात् राजकीय विभागों के कार्य्य करने की पद्धति मात्र निश्चित करते हैं। ऐसे मन्त्रियों की संख्या अधिक से अधिक ३२ होती है। दूसरे प्रकार के वे मन्त्री हैं जो मन्त्रणा भी देते हैं, तथा अपने अधीनस्थ विभागों का काम भी करते हैं। ये 'अमात्य' नाम से पुकारे जाते हैं। इनकी संख्या ५ होती है। पहली तरह के मन्त्रियों से इन में यही विशेष भेद है कि वे अर्थात् पहली तरह के मन्त्री तो केवल विभागों की कार्य्य-प्रणाली मात्र के निर्धारक होने से विभागों के कार्य्यों के उत्तरदाता नहीं हैं। और द्वितीय तरह के मन्त्री (अमात्य) अपने अपने विभागों के जवाब-देह हैं। जब कि अमात्य शब्द संयुक्त अर्थ (मन्त्री और अधिकारी) का बोधक है तब इस पद पर आसीन व्यक्ति सामान्याधिकरण मे तो मन्त्री के नाते से जाता है और वहां पर शासन-प्रणाली के निश्चित करने में सहायक होता है तथा विशेषाधिकरण में वह अधिकारी की हैसियत से उपस्थित हो कर अपने अधीनस्थ विभाग के विषय में हस्तक्षेप करता है। पहली तरह के मन्त्रियों की अपेक्षा द्वितीय प्रकार के मन्त्री श्रेष्ठ होते हैं। इस लिए वे मुख्य मन्त्रियों में परिगणित हैं। इस लेख में हम पाठकों को उन्हीं के विषय में दिग्दर्शन कराते हैं।

आवश्यकता।

राज्य दो तरह के होते हैं—गणतन्त्र और राज-तन्त्र। राज्य तीन तरह के भी होते हैं। जिनका सञ्चालन राजा और अमात्य दोनों मिल कर करते हों वे प्रथम तरह के राजतन्त्र राज्य हैं। जो राज्य केवल अमात्य द्वारा शासित हों वे दूसरी श्रेणी के हैं। और तीसरे प्रकार के वे राज्य हैं जिन का सूत्रधार सिर्फ़ राजा ही हो। इस प्रकार राज्यों का लेखा देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके सञ्चालन के लिए राज-नीति की दृष्टि से राजा की तरह अमात्य की भी बड़ी आवश्यकता है। यह बात निर्णीत ही है कि गणतन्त्र राज्य का भार अधिकतर अमात्यों के ऊपर ही रहता है। इस लिए इस राज्य में उन की आवश्यकता तो स्वतः सिद्ध ही है। राज्य-तन्त्र राज्य का भी यही हाल है। उसके भेदों में सन्निविष्ट दो राज्यों के लिए तो अमात्य का स्पष्ट उल्लेख ही है। अब रहा तीसरे प्रकार का राज्य, सो उसके विषय में इस वाक्य से कि "यह केवल राजा द्वारा ही शासित होता है", यह धारणा नहीं कर लेनी चाहिए

कि उस में अमात्य होता ही नहीं—नहीं, उसमें भी अमात्य होता है। क्योंकि राजनीति बिना अमात्य के राजा को रहने के लिए आज्ञा ही नहीं देती। वह तो कहती है कि 'चतुरङ्गयुतोऽपि नानमात्यो राजास्ति किं पुनरेकः' अर्थात् अकेले की कौन कहे चतुरङ्ग सेना सहित भी राजा बिना अमात्य के राजा नहीं कहला सकता। तीसरे प्रकार के राज्य का स्वामी इतना मनीषी, कर्मठ और न्याय-मूर्त्ति होता है कि वह स्वयं अपने राज्य की बागडोर अपने ही हाथ में प्रधानता से रखता है। वह खुद सब कामों को करता और देखता है। अमात्य उसका सहायक भर रहता है। अतएव वह गौण और राजा प्रधान है। केवल इतने से ही जनसमुदाय उस राज्य को अकेले राजा द्वारा शासित मानता है। यदि कोई राजा यह कहे कि हम बिना अमात्य के ही सब काम चला लेंगे, उसकी नियुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है, तो उसका यह कहना बहुत अविचार-पूर्ण है; क्योंकि राजनीति उस को निम्नलिखित कारणों से अमात्य की नियुक्ति के लिए विवश करती है।

१. संसार में जितने महत्त्व-पूर्ण और व्यापक कार्य्य हैं वे सभी अनेक जनों की ही बुद्धि और शक्ति के फल हैं। एक पुरुष की प्रतिभा किंवा शक्ति महान और व्यापक कार्य्य के सब अंशों को सुन्दरता से पूर्ण करने में असमर्थ हैं। बल्कि पूर्ण करना तो दूर रहा, सम्भव है कि वे कभी बने बनाये काम को भी बिगाड़ बैठें। क्योंकि असल में ठहरीं तो वे अल्पविषया और परिमिता ही न। अतः सिद्ध है कि राज्य-सञ्चालन सरीखे व्यापक और महत्त्व-पूर्ण कार्य्य को अकेला राजा भी नहीं कर सकता। उसके लिए भी बहुत सहायकों की आवश्यकता है। राजा के प्रधान सहायक का ही नाम्म अमात्य है। वृक्ष बड़ा भी हो पर एक शाखाधारी हो तो उसकी जिस तरह छाया नहीं होती, उसी तरह राजा अपनी शक्ति और चतुरङ्ग चमू से उत्तुङ्ग भी हो, पर अमात्य सरीखे सहायकों से रहित हो, तो उस की भी मनोरथ-सिद्धि नहीं होगी। इस लिए राजा को चाहिए कि वह पहले से ही कार्य्य-कारि पुरुषों का सङ्ग्रह कर रक्खे। क्योंकि कार्य्य-काल में कार्य्य-कारि पुरुष-समवाय मिलना बड़ा मुश्किल है। इसके सिवा उस समय उसका तलाश करना मूर्खता-द्योतक होने के साथ निरर्थक भी है। लोकोक्ति ही है—'अहो आग लागी जब झोपड़ी जलन लागी कुआ के खुदाये तब कौन काज सरिहै'।

२. मनुष्य चाहे कितना ही परिणत-बुद्धि क्यों न हो पर फिर भी वह कभी न कभी चूक ही जाता है और चूका कि पातरूपी फल मिलना आरम्भ हुआ। अतः अधःपात से भी बचने के लिए राजा को अमात्य सरीखे सुविचारक और कार्य्य-पटु पुरुषों की आवश्यकता है। उनके साथ विचार तथा कार्य्य करने से वह अधिकतर भूल नहीं कर सकता। कहा भी है 'बहुधा बहुभिः सार्धं चिन्तिताः सुनिरूपिताः। कथञ्चिन्न विलीयन्ते विद्वद्भिश्चिन्तिता नयाः॥ पञ्चतन्त्र। उपात्ततन्त्रोऽप्यखिलाङ्गरक्षणे न मन्त्रिसान्निध्यमपेतुमर्हसि। श्रिया पिशाच्येव नृपत्वचत्वरे परिस्खलन् कश्छलितो न भूपतिः। धर्म्मशर्म्माभ्युदय।

३. विपत्ति के समय मनुष्य की रही सही भी बुद्धि विलीन हो जाती है। उस समय वह कार्य्य-निर्वाहक विचार उत्पन्न नहीं करती। इसलिए साधारण जनता तक को सङ्कट के समय में अपने सलाहकार की आवश्यकता पड़ती है। फिर राज्य सरीखे विपत्ति-बहुल कार्य्य के लिए राजा को सुमन्त्र की कितनी ज़रूरत न पड़ेगी? इस दृष्टि से भी अमात्य की नियुक्ति अनिवार्य्य है।

४. जब राजा प्रभुता के मद से उन्मत्त हो उठता है तब उसको न्याय और कर्त्तव्य की स्मृति वही दिलाता है। उसकी उच्छृङ्खल प्रवृत्ति की नस वही दबाये रहता है। अब यदि अमात्य की नियुक्ति न हो तो कौन उसको ऐसे समय में कर्त्तव्य और नीति की स्मृति दिलायगा? कौन उसको प्रजा के ऊपर अत्याचार करने से विरत करेगा? अथवा प्रकारान्तर से यह कहना चाहिए कि प्रभुता के मद से उन्मत्त राजा द्वारा होनेवाले अत्याचारों से बचने के लिए प्रजा ने और अपनी हत्या न होने के लिए राजनीति ने ही एक ऐसे व्यक्ति को अपना अपना तेज प्रदत्त कर प्रतिनिधि रूप से राजा के पास उस काम के लिए रखना निश्चित किया, जो काम हाथी के साथ अङ्कुश करता है।

५. राजनीति अमात्य की नियुक्ति के लिए अपना अन्तिम वक्तव्य इन ज़ोरदार शब्दों में प्रकट करती है कि जिस तरह जलती हुई तथा ईंधन-सहित भी आग वायु-

विहीन प्रदेश में बुझ जाती है—कुछ भी काम नहीं कर सकती, उसी प्रकार समर्थ तथा तेजस्वी भी राजा बिना अमात्य के नष्ट हो जाता है, अपनी सत्ता खो बैठता है। कहा भी है—'असहायः समर्थोऽपि तेजस्वी किं करिष्यति। निर्वाते ज्वलितो वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ संगतिः श्रेयसी पुंसां स्वपक्षे च विशेषतः। तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥ इस के विपरीत यह हाल है कि कोई राजा भाग्यवश मन्दमति भी हो, पर उसका अमात्य कुशाग्र-बुद्धि हो, तो वह राजा उस अमात्य (प्रधान) के कारण ऐसा ही सुशोभित होता है जैसा कि पूर्णमासी का चन्द्रमा सूर्य्य से। यह बात इतिहासविश्रुत ही है कि राज्य का अनधिकारी भी चन्द्रगुप्त मौर्य्य अपने अमात्य विष्णुगुप्त की कृपा से ही पैतृक राज्य के पाने में और राक्षस सरीखे प्रबल शत्रु से प्राण बचाने में समर्थ हुआ था। यदि चाणक्य अमात्य ज़रा सा भी प्रमाद उसकी रक्षा में करता तो बेचारा चन्द्रगुप्त अनन्त काल के लिए कभी का सो जाता। मौर्य्य-राज्य ने पीछे से जो अति विशाल रूप धारण कर लिया था उसमें कौटिल्य की बुद्धि की ही विशेष करामात थी। सच है—'महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः। पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥

इस ऊपर के विवेचन का यह निष्कर्ष निकला कि चाहे राज्य गणतन्त्र हो और चाहे राज-तन्त्र। उसका बिना अमात्य के गुज़ारा नहीं। अमात्य के बिना उसका वही हाल है जो हाल एक चक्रावाली गाड़ी या पक्षविहीन पक्षी का होता है।

अमात्यों के भेद।

अमात्य भी दो तरह के होते हैं—**प्रधान** और **सहायक**।

प्रधान—इसकी निगरानी में ही सब सहायक अमात्य काम करते हैं। यह सब सहायक अमात्यों का मुखिया होता है। संसार में इसका परिचय अमात्य, महामात्य, महामात्र, प्रधान, मुख्य मन्त्री, नियोगी आदि नामों से दिया जाता है। यद्यपि सर्वसाधारण ने राज्य-सञ्चालन का भार राजा ही को सौंपा है, अतएव वही प्रजा के समक्ष राज्य के विषय में उत्तरदाता है; पर राजा ने उस भार को अपने सिर से उतार कर अमात्य के सिर पर रख दिया है। इसलिए अगत्या कहना पड़ता है कि प्रधान का पद बड़ी जोखिम का काम है। इस पद के ऊपर आसीन व्यक्ति राज्य के सब विषयों का प्रत्यक्ष रूप से राजा के समक्ष और परोक्ष रूप से प्रजा के समक्ष उत्तरदाता है। अमात्य की कार्य-प्रणाली ऐसी उत्तम होनी चाहिए कि जिससे राजा और प्रजा दोनों का भला हो। "नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता" इस किंवदन्ती का उसको अपवाद-भूत होना चाहिए। अमात्य-पद के ऊपर आरूढ़ होने से उसका कर्त्तव्य है कि वह अपनी चतुराई से राज्य की सीमा बढ़ावे—प्रजा को धन-धान्य से समृद्ध करे और देश की मिट्टी तक की ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे वह निकम्मी न पड़ी रहे। ऐसा करने से ही वह उत्तम अमात्य कहला सकेगा। कहा भी है—'सीमा वृद्धिं समायाति शुक्ल-पक्ष इवोडुराट्। नियोगसंस्थिते यस्मिन् स भृत्योऽर्हो महीभुजाम्।'

यदि राजा बाल-अवस्था या युवा अवस्था के कारण कदाचित् अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाय, राज्य-कार्य की देख रेख न करे, तो न सही, पर मुख्य मन्त्री को कभी प्रमादी न होना चाहिए। उसे तो सदैव चौकन्ना ही रहना चाहिए। अमात्य को अमात्य पद-सूचक जो तलवार सदैव रखने के लिए राजा की तरफ़ से दी जाती है उसका भी यही भाव है कि अमात्य का राज्यरूपी महल के ऊपर आठों पहर पहरा रहना चाहिए। यदि वह भी राजा की तरह असावधान हो जाय तो राज्य का सर्वनाश होते देर न लगे। जिस तरह तालतरु पर आसीन चील चारों ओर की छोटी से छोटी चीज़ को देखती रहती है, उसी तरह मुख्य मन्त्री को चाहिए कि वह भी राज्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को जाने। उससे राज्य की कोई बात छिपी न रहे। इस बात का उसे पूरा ध्यान रखना चाहिए। अमात्य राजा और प्रजा का मध्यवर्त्ती पुरुष है। इस लिए वह दोनों को अपने अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराता है। वह दोनों के हृदयों को एक हृदय उसी तरह बना देता है जिस तरह विवाह, वर और वधू के हृदयों को एक कर देता है। वह अपनी चतुराई से दोनों को एक ही ध्येय की सिद्धि में लगाता है। इस लिए उसे एक ऐसा सरोवर कहना चाहिए जिसमें दोनों ओर से दो झरने आकर मिलते हों। इतिहास-

प्रसिद्ध राक्षस, महानन्द और चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री (अमात्य) ही था ।

सहायक

ये प्रधान के नीचे होते हैं । पर इनकी नियुक्ति और विमुक्ति राजा ही करता है । ये जितने होते हैं सब समान वेतनभोगी होते हैं । इनका वार्षिक वेतन ४८००० रुपया होता है । राजा इनका समय समय पर पद-परिवर्त्तन भी कर देता है । कौटिल्य ने यद्यपि इनकी संख्या ४ ही लिखी है, जो उपधावाली विवृत्ति से स्पष्ट हो जायगी । पर वह संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ाई भी जा सकती है । ऐसा अन्य राज-नीतिकारों के लेख से मालूम पड़ता है *। कौटिल्य के मत से प्रधान को मिला कर सब अमात्य ५ हुए । जिनके नाम नीचे दर्ज हैं—

१. प्रधान (महामात्य) ।
२. न्याय-सचिव ।
३. अर्थ-सचिव ।
४. अन्तःपुर-सचिव ।
५. राज-सन्निधिस्थ सचिव ।

योग्यता ।

राजा और अमात्यों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होता है कि राजनीतिकारों ने इन लोगों को अनेक शरीर और एक-प्राण कहा है । राजा का एक भी ऐसा काम नहीं होता जो अमात्यों से छिपा रहता हो । इस लिए राजा को चाहिए कि जिस व्यक्ति को अपना अमात्य अथवा दूसरे शब्दों में द्वितीय हृदय बनावे उसमें निम्न-लिखित रीति से अमात्य बनने की योग्यता पहले ही से जाँच लेवे । बिना योग्यता देखे नियुक्त करना ठीक नहीं । क्योंकि संसार की रीति है कि जब वह धेले की भी हन्डी ख़रीदता है तब वह उसे ख़रीदने के पहले ख़ूब ठोक बजा लेता है । प्रथम तो राजा को अमात्य-पद के लिए उम्मेदवार व्यक्ति में अमात्य-कृत्य करने की क्षमता देखनी चाहिए । क्योंकि अक्षम व्यक्ति के ऊपर, कार्य-भार देना ऐसा ही है जैसा जनुषांध पुरुष को गाड़ी हाँकने का काम देना । जिस कार्य्य में जिस व्यक्ति की गति नहीं वह उस कार्य्य के लिए एक तरह से मूर्ख ही है । और मूर्ख को नियुक्त करने से नियोजक का अर्थ-नाश तो होता ही है, किन्तु उसके द्वारा होनेवाले अनर्थों के कारण उसके लिए नरकपात भी निश्चित समझना चाहिए । इसलिए उम्मेदवार व्यक्ति जब कार्य करने का अधिकारी सिद्ध हो जाय तब उसकी उपधा से परीक्षा करनी चाहिए । उपधा-विशुद्धि बिना उसे भूल कर भी अमात्य-पद नहीं देना चाहिए, चाहे वह कितना ही कार्य-कुशल क्यों न हो । क्योंकि कटारी सोने की ही सही, पर फिर भी वह पेट में नहीं रक्खी जा सकती । उपधा शब्द का अर्थ है—छल से दूसरे के हृदय को परखना । वह परख चार तरह से की जाती है । धर्म से, अर्थ से, काम से और भय से । धर्म्म से उम्मेदवार का हृदय टटोलनेवाला पुरोहित होता है । वह उसकी परीक्षा के लिए एक नक़ली षड्यन्त्र रचता है । उसमें उसके नेतृत्व में अनेक राजकर्मचारी सम्मिलित होकर ऐसी मन्त्रणा तथा उद्योग करते हैं कि जिससे उम्मेदवार के हृदय में सचमुच ही ऐसे भाव उत्पन्न हो जायँ कि अब ज़रूर राज-परिवर्त्तन होगा । ऐसे ही समय में पुरोहित उम्मेदवार से, जिसके कि ऊपर उसका पहले से ही प्रभाव-पुट जमा था, इस प्रकार कानाफूँसी करे कि देखो यह राजा बड़ा अन्यायी तथा अधर्मी है । तुम्हारे सरीखे योग्य पुरुषों की भी अब तक इसने कुछ क़द्र नहीं की । बड़ा कृतघ्न है । सब लोगों की राय है कि किसी अन्य धर्मिष्ठ व्यक्ति को राजा बनाना चाहिए । उपस्थित राजा राज-पद के लायक़ नहीं है । कहो, तुम्हारी क्या राय है ? जब उम्मेदवार व्यक्ति पुरोहित के इस प्रकार के फन्दे में न फँसे तब उसे न्यायालय का अमात्य बनाना चाहिए । अर्थ के विषय में परीक्षा करने के लिए सेनापति भी इसी प्रकार का एक जाल रचे और उम्मेदवार का दिली दोस्त बन कर उससे इस प्रकार बोले कि देखो, यह राजा बड़ा कंजूस है । हम लोग इसके वास्ते पसीने की जगह ख़ून बहाते हैं । इतना धन इकट्ठा कर लाते हैं; लेकिन फिर भी यह हम लोगों को अधिकार-प्राप्त पारितोषिक नहीं देता । और तो क्या ? मासिक वेतन तक के देने में आज कल करता है । यदि हम लोग बिगड़

---

* जैसे शुक्रनीति में ९ तरह के अमात्यों का और अशोक के शिलालेखों में अन्य महामात्र (सीमा-रक्षक) और धर्ममहामात्रों का उल्लेख है ।

उठें तो यह कर ही क्या सकता है ? सब सेना मेरे हाथ में है। सब सैनिकों की यही मंशा है कि किसी अन्य उदार व्यक्ति को अपना राजा बनाना चाहिए। यदि तुम भी इस कार्य्य में सहायता करो तो तुम्हें भी योग्य पद के साथ विपुल धन मिलेगा। फिर तुम्हें तथा तुम्हारी सन्तान प्रति संतान तक को कभी अर्थ-विषयक कष्ट न भोगना पड़ेगा। जब उम्मेदवार सेनापति के इस कूट यन्त्र में बद्ध न हो तब उसे अर्थ-विषय का अमात्य नियुक्त करना चाहिए। काम-विषयक परीक्षिका परिव्राजिका होती है। यह परिव्राजिका धर्मोपदेश के बहाने अन्तःपुर में आती जाती रहती है। अतीत काल में कुछ परिव्राजिकायें ऐसी होती थीं जो अपने चेले-चाटियों में से जो जिसका प्रेमी और प्रेयसी हो उसको वे एक दूसरे से मिला देती थीं। इसका उल्लेख हमें भवभूति के प्रसिद्ध नाटक "मालतीमाधव" में मिलता है। इस नाटक की एक परिव्राजिका पात्री, जिसका कि नाम कामन्दकी था, मालती को माधव से मिलाती हुई दर्शकों को दिखाई गई है। इस लिए कामोपधा से जाँच करनेवाली परिव्राजिका ही ठीक है। क्योंकि पूर्व-वर्णित अपवाद-प्रसिद्धि के कारण उम्मेदवार व्यक्ति को उसकी धूर्तता के ऊपर सन्देह करने का मौक़ा ही न मिलेगा। अस्तु। परिव्राजिका नियोज्यमान अमात्य से एकान्त में इस प्रकार कहे कि देखो जी, अमुक रानी साहिबा का तुम इस प्रकार चित्त मत चुराया करो। वे दिन भर में कब तुम्हारा नाम दस बारह बार न लेती होंगी और कब न तुम्हारे लिए तरसती होंगी। पर मालूम होता है कि आप उनको एक दिन भी याद नहीं करते। सचमुच ही तुम बड़े निर्दयी मालूम पड़ते हो। तो, देखो, तुम्हारे लिए उन्होंने यह पुष्प-वासित प्रावारक (रूमाल या दुपट्टा) भेजा है। इसीको उनकी तरफ़ से प्रणय-बन्धक समझना। अब मैं समझती हूँ कि आप उस गरीबिन की आशा न तोड़ेंगे। इत्यादि काम की बातें बार बार बनाने पर भी जब उम्मेदवार परिव्राजिका के हाथ में न आवे, तब उसे काम-लोभ से विशुद्ध जान अन्तःपुर का अधिकारी बनाना चाहिए। भयोपधा-शुद्धि की यह रीति है कि प्रथम एक अमात्य सब अमात्यों के साथ उम्मेदवार व्यक्ति को कृत्रिम भय दिखला कर कहीं पर भगा ले जावे। आगे चल कर कहीं पर उन सब को चालाकी से पकड़ा दे। अवसर पाकर कापटिक नाम का जासूस अन्य अमात्यों के साथ उम्मेदवार को इस प्रकार फुसलावे, कि देखो, यह राजा बड़ा दुष्ट है, तुम्हारा और हमारा इसने अर्थ तथा मान सब नष्ट कर दिया। हम लोगों को भी इसके नाश के लिए अब बद्ध-परिकर होना चाहिए। जिनमें ज़रा भी मनुष्यता है वे वैर-निर्यातन किये बिना कभी शान्त नहीं होते। अन्य अमात्य भी हमारी बात का अनुमोदन करते हैं। तुम भी हम लोगों में मिल जाओ। इत्यादि। जब उम्मेदवार व्यक्ति कृत्रिम विप्लवकारियों का साथ देने के लिए तैयार न हो तब उसे भयोपधा-विशुद्ध जान राजा अपने निकटवर्ती कामों के लिए रख ले। पूर्वोक्त चारों-उपधाओं में जो विशुद्ध हो उसे मन्त्री (प्रधान) बनाना चाहिए। उपधाशुद्धि की परीक्षा करते समय पुरोहितादि परीक्षकों को चाहिए कि वे ऐसा ढङ्ग बनावें जिससे परीक्ष्य को इस बात का रत्ती भर भी पता न लगे कि यह षड्यंत्र कृत्रिम है और मेरी परीक्षा भर के लिए ही खड़ा किया गया है। तथा उसे इस बात का भी रहस्य न मिलने पावे कि मैं परीक्षा हो चुकने के बाद अमात्य या महामात्य बनाया जानेवाला हूँ। यदि उसे इस बात का मर्म मिल जायगा तो धूर्त्त पहले से ही सब चालों को समझ जायगा। और फिर उसकी उपधा से परीक्षा करनी एक तरह से निरर्थक ही सिद्ध होगी।

अमात्यों के कार्य्य।

उपरि-वर्णित अमात्यों के कार्य्य तीन विभागों में विभक्त हैं। ये तीनों विभाग उन्हीं के अधिकार-क्षेत्र में रहते हैं। इनके भी नाम सुन लीजिए। १. आय-व्यय, २. स्वामि-रक्षा, ३. तन्त्र-पोषण।

आय-व्यय—इस विभाग का अधिकारी अर्थ-सचिव (अर्थोपधाशुद्ध) होता है। इसका काम आगत-भूमि का द्रव्य और आगत-शुल्क-द्रव्य का तथा राज्य के विविध कार्य्यों में जो व्यय होता है उसका हिसाब रखना है। अर्थ-सचिव को यह कदापि अधिकार नहीं है कि वह स्वेच्छा से ही किसी काम में राज्य-द्रव्य ख़र्च कर दे। किन्तु व्यय-विवरण बनाकर वह प्रधान और राजा के समक्ष उपस्थित हो।

जब वे स्वीकृति दे देवें तब वह विवरण के अनुसार अवश्य ख़र्च कर सकता है। यदि आय-व्यय में विवाद आ पड़े तो उसे करण (एक तरह की राज-सभा) में उपस्थित करना चाहिए। करण में निम्न-लिखित पुरुष मौजूद रहते हैं। १. आदायक, २. निबन्धक, ३. प्रतिकण्टक, ४. नीवी-ग्राहक, ५. राजा और ६. अध्यक्ष। अर्थ-सचिव के सहायक तीन और पुरुष होते हैं। इनका वेतन २४००० रुपया वार्षिक होता है। उनके भी नाम नीचे लिखे जाते हैं:— १. समाहर्त्ता, २. सन्निधाता और ३. निचयकारी। **समाहर्त्ता**—भूमिकर और शुल्क उगाता है। **सन्निधाता** कोष का अधिपति होता है। **निचयकारी** पुरुष राज्य की सब वस्तुओं का हिसाब रखता है। इस विभाग का स्वामी युद्ध के समय काम आनेवाली वस्तुओं का सङ्ग्रह करता रहता है। नीतिकार कहते हैं कि शस्त्र-सङ्ग्रह के साथ धान्य-सङ्ग्रह अवश्य करना चाहिए, क्योंकि जिस तरह अन्न से जीवन रह सकता है, उस तरह बहुमूल्य रत्नों से भी नहीं रह सकता है। इसके सिवा सारी सृष्टि के सकल प्रयास अन्न के ऊपर ही निर्भर हैं। धान्यों में कोद्रव चिरजीवी हैं, क्योंकि वे कभी घुनते ही नहीं हैं। इसलिए विपत्ति के वास्ते उनका सङ्ग्रह कर रखना चाहिए। पुराने कोदों को हर साल ख़र्च करते रहना चाहिए और नये कोदों का उनकी जगह सङ्ग्रह करना चाहिए। लवण का भी सङ्ग्रह करना चाहिए। क्योंकि लवण के बिना अच्छा भी भोजन खाने के समय गोबर सा जान पड़ता है। अर्थ-सचिव का कर्त्तव्य है कि वह राजा को बतलावे कि राज्य में कितने पुर, कितने ग्राम और कितने जङ्गल हैं। किसने कितनी ज़मीन जोती है। उससे कितना भाग (मालगुज़ारी) वसूल हुआ है। और अब उस पर कितना बाक़ी है। बिना जोती ज़मीन कितनी पड़ी है। इस वर्ष मालगुज़ारी से इतनी और शुल्क से इतनी आमदनी हुई है। खानों से इतना माल निकाला गया। और ख़ज़ाने में इस समय इतना द्रव्य है। अस्वाभाविक धन इतना आया, और चोरी से इतना धन नष्ट हुआ। इस समय राज्य में द्रव्य इतना है इत्यादि।

२. **स्वामि-रक्षा**—यह विभाग स्वामी अर्थात् राजा की रक्षा के लिए ऐसे कर्म्मचारियों की योजना करता है जो राज-भक्त होते हैं। इस विभाग से नियुक्त पुरुष रक्त वस्त्र पहने होते हैं और वे नङ्गी तलवार लेकर चलते बैठते समय राजा की रक्षा के लिए चारों ओर खड़े रहते हैं। चन्द्रगुप्त के समय में इस विभाग में अधिकतर स्त्रियाँ ही नियुक्त होती थीं। यहाँ स्वामि-शब्द व्यापक है। इसलिए उसका अर्थ केवल राजा ही न लेना चाहिए, किन्तु राजा की आज्ञा, धर्म्म, शरीर, रानी और अपत्य भी समझना चाहिए। इस विभाग का अधिकारी भयोपधा-शुद्ध राज-सन्निधिस्थ सचिव होता है।

३. **तन्त्र-पोषण**—तन्त्र शब्द के दो अर्थ हैं—सेना और स्वराष्ट्र। इसलिए इस विभाग की दो शाखाएं हैं। एक का नाम सेना-पोषण और दूसरी का नाम स्वराष्ट्र-पोषण है। १. **सेना-पोषण**—इस शाखा का काम शिबिरों का प्रबन्ध, सैनिकों का मासिक वेतन देना, सैनिकों का स्वास्थ्य-रक्षण, अस्त्र-शस्त्र-निर्माण आदि है। सारांश में यह शाखा वैसे ही सब काम करती जिन कामों से सेना के आठों अङ्ग (रथ, हाथी, घोड़ा, योद्धा, पत्ती, कर्म्मकारक चार और मुख्य दैशिक) और चारों प्रकार का बल (मौल, मैत्र, भृत्य तथा आटविक) पुष्ट रहे। उसे किसी तरह की तकलीफ़ न रहे। यह शाखा प्रधान के हाथ में रहती है। इसलिए उसका कर्त्तव्य है कि वह इस शाखा के उक्त कार्य्यों के साथ यह भी देखे कि इस समय अस्त्र-शस्त्र-धारी पदातियों में और अश्ववारों में कितने प्राचीन और कितने नवीन हैं। तथा काम के लायक़ कितनी सेना नहीं है। शस्त्र, गोला, बारूद (अग्नि चूर्ण) आदि साङ्ग्रामिक सामग्री कितनी है। जितने शस्त्रधारी पुरुष हैं, उन सब की समय समय पर परीक्षा करना भी प्रधान का कार्य्य है, क्योंकि अस्त्र-धारी पुरुष समय पा कर बिगड़ उठते हैं। इस विभाग के कार्य के लिए अमात्य का एक सहायक भी रहता है। वह सचिव के नाम से पुकारा जाता है। २. **राष्ट्रपोषण**—दो तरह से किया जाता है, एक तो खेती का प्रबन्ध, व्यापार की उन्नति का उपाय, सड़कें, क़िले, पुल, उद्यान, उजड़े अथवा शून्य प्रदेशों को बसवाना, अतिथि-शाला, औषधालय, कूप, तडाग, कुल्या (नहर), प्रपा-स्थान आदि बनवाना और ऐसे वृक्ष लगवाना जो प्रजा के लिए उपकारी हों। दूसरा पोषण न्याय से किया

जाता है। राज्य में शान्ति बनी रहे, कोई किसी के ऊपर अत्याचार न कर सके, इसके लिए रक्षा-कारी पुरुषों को नियुक्त करना, व्यवहारों (मुक़द्दमों) की निष्पत्ति (फ़ैसला) करना। कारागार इसी शाखा के अधिकार में रहते हैं। अमात्य पद के लिए निम्नलिखित पुरुष

निषिद्ध

हैं। तीक्ष्ण, अशुचि, व्यसनी, अशुद्धाभिजन, बलवत्पक्ष, अशक्य, प्रत्यावर्त्तन, अति-व्ययशील, अल्पाय, अन्यदेशायात और अतिचिक्कण। **तीक्ष्ण** अर्थात् गरम मिज़ाज-वाले को अमात्य नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि उसके ऊपर अभियोग लगाते ही उसका पारा गरम हो जाता है और वह भी इस सीमा को पहुँच जाता है कि वह या तो खुद मरने को या मालिक को मारने के लिए तैयार हो उठता है। **अशुचि**—अर्थात् जिसका चित्त परीक्षित न हो, जो घूँस-ख़ोर हो। उसे अमात्य बनाने से क्या हानि होती है इसके विषय में योग्यतावाले पिछले प्रकरण में लिखा ही जा चुका है। **व्यसनी** को भी नियोगी नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि जिस राजा का नियोगी ही व्यसनी है उस के अधःपात का क्या पूँछना? जिस तरह दुष्ट हाथी पर चढ़े हुए व्यक्ति पर आपत्ति आना सुलभ है उसी प्रकार सव्यसन-सचिव राजा भी आपत्तियों की विषैली दृष्टि से किसी तरह नहीं बच सकता। **अशुद्धाभिजन** के विषय में स्वामि-विभागवाले लेख में लिखा जा चुका है। **बलवत् पक्ष** अर्थात् सबल पक्षवाले को भी अमात्य नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि वह कभी राजा को उसी तरह जड़ मूल से उखाड़ फेंक सकता है जिस प्रकार अतिप्रवृद्ध जल-प्रवाह मत्त मतङ्गज को बहा ले जाता है। **अल्पाय और अतिव्ययी** अमात्य नियम से राज्य-द्रव्य खायगा, अथवा महाजनों का क़र्ज़दार बन कर प्रजा को सतायगा। इसलिए उसे भी नियोगी नहीं बनाना चाहिए। **अन्यदेशीय** को अमात्य बनाने में निम्नलिखित हानियाँ हैं—प्रथम तो आगन्तुक को अर्थाधिकार देना और प्राणाधिकार देना नीति-निषिद्ध है। दूसरे प्रवासी पुरुष कुछ दिन ही प्रवास में ठहरते हैं। योग्य परिस्थितियों के मिलने पर वे स्वदेश को लौट जाया करते हैं। तीसरे स्वदेशज के पास गया हुआ धन मनुष्य को फिर भी उसी तरह मिल सकता है जिस तरह घर के कुएँ में पड़ा हुआ धन। परन्तु धन प्रत्यावर्त्तनवाली बात विदेशी के साथ नहीं बन सकती। यदि विदेशी से सुख-प्राप्ति और कार्य्यसिद्धि होती हो, परन्तु स्वदेशी से न होती हो, तो ऐसी हालत में विदेशी को भी अमात्य बना लेना चाहिए, क्योंकि

> स्वदेश्यः परदेश्यो वा मन्त्री भवतु भूभुजाम्।
> प्रारब्ध-कार्य्य-निर्वाह-सुख-सिद्धया प्रयोजनम्॥
> दुःखाय देहजो व्याधिः सुखाय च वनौषधिः।
>
> यशस्तिलकचम्पू।

लेकिन विदेशी व्यक्ति को अधिकारी बनाने में यह बड़ी भारी ख़राबी है कि वह समय पर अपकार कर सकता है, क्योंकि सब पक्षपातों में स्वदेश-पक्षपात मनुष्य को बड़ा होता है। इस लिए सब से अच्छा यही है कि जहाँ तक हो वहाँ तक स्वदेशज ही अमात्य हो। **चिक्कण** अर्थात् कृपण भी अमात्य-पद के लायक़ नहीं है। क्योंकि उससे अर्थ-ग्रहण करना वैसा ही मुश्किल है जैसा कि पत्थर से बक्कलों का उधेरना। **ब्राह्मण** जातीय दोष, लोभ के, कारण उगाहा हुआ भी राज्यद्रव्य कभी देता, कभी नहीं भी देता है। **क्षत्रिय** के ऊपर अभियो लगाते ही वह तलवार दिखाने लगता है। सम्बन्धी राज-बन्धुत्व के बल से अन्य समवायिकों को दबा कर राज्य-द्रव्य हज़म करने लगता है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और सम्बन्धी को भी अधिकारी नहीं बनाना चाहिए। सम्बन्धी तीन तरह के होते हैं श्रौत, मैत्र और यौन। **श्रौत**—पूर्व पुरुषों से जिनके साथ प्रेम-व्यवहार चला आता हो। **मैत्र**—जिनके साथ खुद मित्रता हुई हो। **यौन**—जिनके साथ कौलिक सम्बन्ध हो। ऐसे भी व्यक्ति को नियोगी नहीं बनाना चाहिए जिस को अपराध होने पर प्राण-दण्ड दिया जाय और पीछे से उस के लिए पछताना पड़े। **मानी**—मनमानी करने के साथ राजा की अवज्ञा करता है। **चिरसेवक** अति परिचय से अपराध करता हुआ भी निडर रहता है। **उपकर्त्ता**—उपकार की ही ध्वजा फहरा कर सब अर्थ का लोप करने के लिए उतारू हो जाता है। **सहपांशु-क्रीड़ित**—अति परिचय के कारण स्वयं ही राजा बना फिरता है। इसलिए मानी, चिरसेवक, उपकर्त्ता और सहपांशुक्रीड़ित भी अमात्य-पद के पात्र नहीं हैं। अन्तर्द्दिष्ट अपने द्वेष्य के

नाश की ही सामग्री बटोरता रहता है। जिस के साथ एक बार चित्त बिगड़ गया उसका फिर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। अन्तर्द्विष्ट के दिल को अपने दिल के साथ मिलाना वैसा ही असम्भव है जैसा कि स्फटिक मणि के टूटे हुए कड़े का जोड़ना। बिगड़े दिल के आदमी अपने द्वेष-पात्रों के साथ कैसा अनर्थ कर सकते हैं इसकी बानगी के लिए शकटार ही काफ़ी है। इसी तरह अन्तर्दुष्ट पुरुष अपनी दुष्ट बुद्धि के कारण हर समय ऐसे अनेक उत्पात खड़े करते रहते हैं जिनका फल उनके निरपराध संगी साथियों तक को भोगना पड़ता है। कहा भी है—

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु।
रावणेन हृता सीता बन्धनं स्यान्महोदधेः॥

इसलिए दुष्ट पुरुष के अन्तर्द्विष्ट की तरह न तो अमात्य-पद ही देना चाहिए और न उसकी संगति ही करनी चाहिए। क्योंकि उस के सहवास के कारण सहवासी की भी बुद्धि दुष्ट हो जाती है। कौरवों का नाश शकुनि सरीखे दुष्टात्माओं के कारण ही हुआ है।

अमात्यों के साथ राजा का व्यवहार।

राजा को चाहिए कि वह अपने अमात्यों के साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा कि एक विनयी पुरुष अपने पूज्य पुरुषों के साथ कर सकता है। यद्यपि अमात्य भी कर्म्मचारियों की ही श्रेणी में शामिल हैं तथापि राजा उनके साथ नौकर कासा व्यवहार नहीं कर सकता। वे जो राज्य से वेतन लेते हैं उस की अपेक्षा सहस्रगुणा क़ीमती काम राज्य का वे करते हैं। इस लिए न्याय-तुला पर तोलने से उनका वेतन उनके काम के सामने कुछ भी वज़न नहीं रखता। जिस तरह हितकामी नर अपने शुभ-चिन्तक मित्रों का कहना मानता है उसी तरह राजा को अपने शुभाकांक्षी, पुरोहित, सेनापति और अमात्यों का कहना मानना चाहिए। इसमें उसी का भला है। मन्त्री पुरोहितादि द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने से वह अहार्य-बुद्धि हो जाता है। उसकी बुद्धि शत्रु के लिए अभेद्य हो जाती है। पिता वग़ैरह का भरण-पोषण जिस तरह सुपुत्र करता है उसी तरह राजा को भी अपने अमात्य-पुरोहितादिकों का भरण-पोषण करना चाहिए। राजा को याद रखना चाहिए कि अमात्य वग़ैरह की लक्ष्मी उसी का ही दूसरा कोष है।* इस लिए उसे उनके पास धन जाते समय मन-मलिन न होना चाहिए। जिस समय उसको अमात्य वग़ैरह डाटें, उस समय उनकी डाट को मानना चाहिए। प्रभुता के मान से चूर न रहना चाहिए। राजा और अमात्यों की परस्पर अनुकूलता में लक्ष्मी राज्य में स्वयं आ बसती है। उक्ति भी है—

सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।

अमात्यों का राजा के साथ व्यवहार।

अमात्यों को राजा के साथ उसी तरह व्यवहार करना चाहिए जिस तरह एक भक्त भृत्य अपने स्वामी के साथ करता है। जिस व्यक्ति के ऊपर राजा का कोप या प्रसाद हो उसी के ऊपर उन्हें भी कोप या प्रसाद करना चाहिए। वे किसी राजा से अपनी स्वतन्त्र संधि या विग्रह नहीं कर सकते। राजा से स्वीकृत संधि या विग्रह ही उनके संधि-विग्रह हैं। मन्त्रणा भर देने का अमात्यों को अधिकार है। राजा को वे अपनी बात मनाने को मजबूर नहीं कर सकते। मानना, न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर है। अमात्यों का कर्त्तव्य है कि वे राजा को खुश करने के लिए कभी अकार्य्यका उपदेश न दें, चाहे उनका मरण ही क्यों न हो जाय, क्योंकि सत्कृत्य करके मरना भला, पर अकार्य करके जीना अच्छा नहीं। अमात्य किसी व्यक्ति को प्रभु-प्रसादपात्र होने के कारण ही राज्य-कार्य्य में नियुक्त न करें, किन्तु जो जिस कर्म में कुशल हो उसे उस काम में ही नियुक्त करें। स्वामिप्रसाद कुछ सेवकों को कार्य्य के लिए उपयुक्त नहीं बनाता, किन्तु बुद्धि और पुरुषार्थ ही बनाते हैं। अमात्यों को अपना ऐसा व्यवहार रखना चाहिए जिससे राजा भी अपराध करने में उनसे भय खाता रहे। उनके आतङ्क के कारण वह निरवग्रह प्रवृत्ति करने में हिचके। उनको अपना यह अधिकार कदापि नहीं भूल जाना चाहिए कि वे दोष होने पर राजा को भी आसानी से निगृहीत कर सकते हैं। पर समय

---

* इसका ज्वलन्त उदाहरण भामाशाह का वह धन है जो विपत्ति के समय में राना प्रतापसिंह के काम आया था।

असमय वे उसको नहीं दबा सकते। साधारण समय में उनको राजा के प्रतिबिम्ब सरीखा ही रहना चाहिए। हर समय दबाते रहने से वह राज-पद से उकता उठेगा और वह उसे एक तरह से बन्धन समझने लगेगा। इसलिए अमात्यों को अभिमान के कारण कर्त्तव्य-भ्रष्ट न होना चाहिए। याद रहे कि राजा ज़रा सी आज्ञा से अमात्यों को अपने पद से जुदा ही नहीं कर सकता, किन्तु दण्डित भी कर सकता है। क्योंकि वे उसके नौकर हैं, न कि वह उनका नौकर। अतएव उन्हें स्वयं नीतिपथ पर चल कर राजा और प्रजा को नीति-मार्ग में चलाना चाहिए। राजा सबके लिए हव्यवाह की तरह ही सेव्य है। आपत्ति-प्रतीकार के सिवा अमात्य राजा के पास अनिवेदित किसी काम को न करें। अमात्यों को चाहिए कि वे कार्यों का ऐसा प्रबन्ध करें जिससे सब काम ठीक ठीक होते जायँ। यदि उनसे ऐसा प्रबन्ध न बन सका तो उनकी नियुक्ति व्यर्थ ही है। क्योंकि उस नौकर से क्या सुख जिसके रहने पर भी मालिक को स्वयं शारीरिक कष्ट भोग कर उसके हिस्से का काम करना पड़े? उस गज को क्या सुख जो स्वयं अपनी सूँड़ से ही उखाड़ कर घास को खाता है? अर्थ और सम्मान के लिए अमात्य अपनी बुद्धि और पुरुषार्थ से कर और शुल्क में उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहे। परन्तु शर्त यह है कि देश को किसी तरह की क्षति न पहुँचे। वह अमात्य चिरकाल चङ्गा रहता है जो स्वामि-प्रसाद-प्राप्ति होने पर घमण्ड से बचा रहता है। अमात्यों को कोई दूसरा राजा अधिक भी वेतन दे तो भी उनको अपने राजा की नौकरी छोड़ कर अन्यत्र नहीं जाना चाहिए। क्योंकि यह काम मध्यम दर्जे के नौकरों का है, न कि अमात्य सरीखे उत्तम भृत्यों का। अमात्य, राजा अथवा अन्य अमात्यों के सिवा अन्य किसी व्यक्ति के साथ अधिकतर न उठें बैठें, क्योंकि वे राजा के द्वितीय हृदय हैं।

अमात्यों के विषय में राजा को चेतावनी।

अमात्य कितने ही धर्मात्मा, नीतिपालक, विश्वस्त और स्वामिभक्त हों तो भी राजा उनके ऊपर राज्य का भार सौंप कर निश्चिन्त न बैठ जाय, किन्तु राज्य-कार्य को स्वयं प्रतिदिन देखता रहे। उसकी देख-रेख रखने से वे राज-द्रव्य को न तो हज़म ही कर सकेंगे और न प्रजा को ही लूट सकेंगे। नित्य परीक्षण न होने से सम्भव है कि उनका भी शुद्ध मन कदाचित् डोल जाय और वे भी अन्य दुरात्माओं की तरह अनर्थ करने लग जायँ। सचमुच कांचन और कामिनी ऐसी ही चीज़ें हैं कि जिनके संसर्ग से सिद्ध महर्षियों तक का चित्त विकृत हो जाता है। तब अमात्य की क्या चलाई? इसीलिए योगियों का कहना है कि—

आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।

जो राजा नियोगियों के हाथ में राज्य-भार देकर स्वयं विषयवासना में फँस जाता है उसका राज्य उसके मन्त्रियों द्वारा ही बर्बाद हो जाता है। वे उस राज्य को चूस कर निकम्मा कर देते हैं। इसलिए नीतिकारों ने ऐसे राजा की बड़ी निन्दा की है जो नीचे के श्लोक से स्पष्ट है—

नियोगि-हस्तार्पितराज्यभाराः
स्वपन्ति ये स्वैरविहारसाराः।
विडालवृन्दार्पितदुग्धपूराः
स्वपन्ति ते मूढधियः क्षितीन्द्राः॥

राजा अमात्य पद के लिए अपने से वयोवृद्ध पुरुषों को ही चुने, क्योंकि वार्द्धक्य में लोगों का अनुभव बढ़ने के साथ साथ स्वभाव भी शान्त हो जाता है। इस लिए वे अन्य लोगों की अपेक्षा ऐसे पदों के अधिकतर पात्र हैं। कहावत भी है 'ये तीन पुराने चाहिए, पान, धान, परधान'। वृद्ध को अमात्य बनाने से एक यह भी लाभ है कि वह स्वयं राजपद-प्राप्ति के लिए कभी अपने मन में कल्पना ही न उठायगा। किन्तु युवा अमात्य बन कर, सम्भव है, राजपद के लिए कभी अपनी कुटिल दृष्टि पसार दे। क्योंकि उसने तो वृद्ध की तरह अपने चिर जीवन की आशा नहीं छोड़ दी। राजा अपने अमात्य-मण्डल को कभी विरक्त और अपमानित न करे। क्योंकि वह अपमानित होकर बन्धु और राष्ट्रसहित राजा को नष्ट कर देता है। (सबन्धुराष्ट्रं राजानं हन्त्येको मन्त्रिविप्लवः।) राजा सदैव अपने अमात्यों के हाथ की कठपुतली न बना रहे। किन्तु अपनी भी विवेक-बुद्धि से काम ले। अपने अधिकारों को कभी न भूले। कोई कोई दुष्ट अमात्य अपने कर्त्तव्य से च्युत होकर स्वार्थ के लिए राजा को व्यसनी बना देते हैं। इस लिए

राजा उनके इस तरह के फन्दों से भी बचता रहे। उसे सदैव लोक-रक्षा के प्रधान उद्देश पर ही आरूढ रहना चाहिए। राज्य के जितने भी काम हों, सब लोक-रक्षा के सिद्धान्त पर ही हों। ऐसा करने से ही वह सुराजा कहलायगा और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होगी। (लोकानुग्रहकर्त्तारः प्रवर्द्धन्ते नरेश्वराः। लोकानां संक्षयाच्चैव क्षयं यान्ति न संशयः।) अमात्यों से अर्थ ग्रहण करने के **निम्न लिखित उपाय** हैं। १. नित्य परीक्षण, २. कर्म-विपर्य्यय (एक अधिकार से हटा कर दूसरे में नियुक्त करना) और ३. प्रतिपत्ति-पूर्वक दान। अपीड़ित दुष्ट-व्रण की तरह अपीड़ित नियोगी अन्तःसार को नहीं उगलते। इस लिए नियोगियों को अपने अपने काम के लिए राजा बार बार ताकीद करता रहे। क्योंकि ताकीद उसको वसुधारा का काम देती है।

प्राचीन राज-नीतिकारों ने अमात्यों की तुलना मन से की है। यह तुलना गहरी दृष्टि डालने से पाण्डित्य-पूर्ण दिखाई देती है। अब आप मन और अमात्य की समता देखें। १. मन ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी। इस लिए वह पुरुष (आत्मा) के लिए ज्ञान का भी साधन है और क्रिया का भी। उसी तरह अमात्य भी राजा को मन्त्रणा देता है। अतः ज्ञान-साधक हुआ और राज्य-कार्य को करता है, इस लिए क्रिया-साधक भी। २. जिस तरह कर्त्तव्याकर्त्तव्य-बोध के लिए प्रकृति मनुष्य को मनरूप मन्त्री प्रदान करती है, उसी तरह राजनीति राजा को औचित्य और अनौचित्य के विचार के लिए अमात्य रूप साधन देती है। मनुष्य जो प्रत्येक विषय को तन्न तन्न करके जाँच लेता है इसमें मन का ही माहात्म्य है। अतीन्द्रिय पदार्थों तक की थाह तर्क से मन लगा लाता है। उसी तरह राजा राजनीति के प्रत्येक अंश को अमात्य द्वारा जानता रहता है। शत्रुओं की दुरूह चालों को भी वह अमात्य-बल से ही परख लेता है। मनुष्य स्वभाव से ही अपने प्रत्येक काम में मन का अधिक उपयोग करता है। उसी तरह राजा प्रत्येक राज्य-कार्य में मन्त्रियों का अधिक प्रयोग करता है। यदि मन शुद्ध हो तो मनुष्य के सब काम भी अच्छे होते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने मानसिक विचारों के अनुसार ही सब काम करता है। उसी तरह यदि किसी राजा के अमात्य अच्छे हों तो उसके सब राज्य-कार्य भी अच्छे होंगे। क्योंकि उन कामों के वे ही प्रधान स्रोत हैं। मन जिस तरह जीव का अन्तःकरण है उसी तरह अमात्य भी राजा का अन्तःकरण है। अमात्यों के दोष निम्नलिखित हैं —

१. आयलाभ-साध्य, (बदले में कुछ द्रव्य लेकर काम करना)
२. कृच्छ साध्य (बड़ी आराधना होने पर काम के लिए तैयार होना)
३. भक्षण (राज्यद्रव्य का)
४. स्वकार्य-उपेक्षण।
५. प्रज्ञाहीनता।
६. उपरोध।
७. व्यत्ययार्थप्रवेश।
८. और राज्यद्रव्य-विनिमय।

कुछ इतिहास-प्रसिद्ध अमात्यों की तालिका—

१. सुनीति २. वर्षंकर	अजातशत्रु
३. राक्षस ४. चाणक्य	नन्द और चन्द्रगुप्त
५. चामुण्डराय	राजमल्ल।
६. पप्पट	सिन्धुराज।
७. बीरवल	अकबर।

गोविन्दराय परवार, काव्यतीर्थ

गणित से लाभ।

इस लेख में गणित-विषय से साधारणतः कौन से लाभ होते हैं, वे सूक्ष्मतया दिखाने का प्रयत्न किया जाता है। यों तो गणित की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। हमारे बड़े बड़े मकान और शहर, रेलवे और पुल, कपड़े और यन्त्र इत्यादि सब बातों में मूलतत्त्व देखा जाय तो गणित पाया जायगा। हमारे सब प्रकार के व्यवहार भी गणित पर ही चलते हैं।

इस प्रकार गणित की उपयोगिता की दो मुख्य श्रेणियाँ दीखती हैं ; एक तो वह जो पूर्वोक्त मकान, रेलवे, यन्त्र इत्यादि के लिए आवश्यक है और दूसरी वह जिसका उपयोग व्यवहार के लिए होता है। पहले प्रकार के लिए गणित के बहुत अध्ययन की आवश्यकता है, दूसरे प्रकार के लिए गणित-शास्त्र में केवल अङ्कगणित का साधारण ज्ञान ही काफ़ी है। फिर प्रश्न यह होता है कि हमारे कई बालक और विद्यार्थी जो हाईस्कूल और कालेजों में गणित सीखते हैं उन्हें उस गणित से क्या लाभ ? क्या उन सब को इञ्जीनियर या प्रोफ़ेसर बनना है ? यदि नहीं तो व्यवहार के लिए अङ्कगणित, रेखा-गणित, बीजगणित इत्यादि इतने सब सीखने की क्या आवश्यकता ? क्या केवल युनिवर्सिटी-परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए वे इतना सीखते हैं ? और यदि ऐसा ही है तो उनकी शिक्षाप्रणाली ऐसी क्यों जिसमें उन्हें अनावश्यक बातें सिखाई जायँ ? स्मरण रहे यहाँ मैं शिक्षाप्रणाली के गुण अवगुण का विचार नहीं कर रहा हूँ। मेरा केवल यह दिखलाने का प्रयत्न है कि जैसी भी शिक्षाप्रणाली है उसमें गणित भी अन्य विषयों की तरह अनावश्यक और अनुपयोगी नहीं है; इतना ही नहीं, गणित से होनेवाले लाभ अन्य विषयों की अपेक्षा अत्यन्त महत्त्व के हैं।

हमारे शिक्षण का उद्देश हमारी व्यक्तिगत उन्नति करना और सामाजिक, राजकीय इत्यादि जीवनों में अपने आपको उपयोगी बनाना है। इसमें व्यक्तिगत उन्नति अत्यन्त महत्त्व की है, क्योंकि उसके होने से अन्य सब उन्नतियाँ सहज ही हो सकती हैं। व्यक्तिगत उन्नति के लिए हमारे शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा, इन सब अङ्गों की उन्नति करनी पड़ती है।

शारीरिक उन्नति शारीरिक परिश्रम से होती है, अन्य प्रकार की उन्नतियाँ शिक्षण और अनुभव से होती हैं। परन्तु स्मरण रहे कि ये सब प्रकार की उन्नतियाँ एक दूसरे पर अवलम्बित हैं और किसी एक अङ्ग की उन्नति या अवनति का परिणाम दूसरे अङ्गों की उन्नति और अवनति पर पड़ता है। इस विषय पर अधिक लिखने के लिए यहाँ स्थान नहीं, क्योंकि एक एक विषय पर कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। यहाँ केवल यह दिखलाना है कि गणित-विषय जो आज कल सिखाया जाता है कहाँ तक और किस तरह उपयोगी है।

ऊपर गणित के जो दो लाभ दिखाये हैं, वे केवल व्यवहार और समाज के लिए उपयोगी हैं। हमें यह देखना है कि गणित से मनुष्य की मानसिक और अन्य अङ्गों की उन्नति कहाँ तक हो सकती है।

लेखक ने मानस-शास्त्र का अध्ययन नहीं किया है। अतएव यदि वह इस शास्त्र-विषयक कोई बात अस्पष्ट रीति से कहे या कदाचित् अयथार्थ कहे तो पाठक क्षमा करेंगे।

मानसशास्त्र के साधारण ज्ञान से यह बात प्रकट होती है कि हमारे विचारों और कार्यों का परिणाम हमारे स्वभाव के बनने पर पड़ता है। स्थानाभाव के कारण यहाँ विशेष नहीं लिखा जा सकता। हमें केवल यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक विचार या कार्य्य एक सूक्ष्म परिणाम स्वभाव पर डालता है और एक ही प्रकार के कई विचार या काम करते रहने से एक विशिष्ट स्वभाव—आदत—बन जाता है। इस स्वभाव या आदत का परिणाम फिर हमारे अन्य कार्यों पर भी पड़ता है। एक दवाख़ाने में मैंने देखा है कि वहाँ जब लोग पिछले दिनों की चिट्ठियाँ लेकर दवा लेने आते थे, डाकृर साहब प्रत्येक चिट्ठी को देख कर अपने पास रक्खी हुई नोटबुक में एक लकीर खींच दिया करते थे। बात यह थी कि उनकी नोटबुक में Male (पुरुष) Female (स्त्री) इत्यादि नाम लिखे हुए रहते थे और मनुष्य की चिट्ठी होने पर Male नाम के आगे और स्त्री की होने पर Female नाम के आगे एक लकीर

खींच दी जाती थी। इन लकीरों से यद्यपि यह नहीं बतलाया जा सकता था कि किस मनुष्य के लिए कौन सी लकीर खींची गई है, फिर भी उन लकीरों की संख्या से प्रति दिन आनेवाले कुल मनुष्य, स्त्रियाँ, बालक, इत्यादिकों का पता लग जाता था। ठीक यही हाल हमारे विचारों और कार्यों का है। एक विचार या कार्य्य किया कि मग़ज़ में एक लकीर खिंच गई और इस प्रकार प्रत्येक विचार या कार्य्य के होने के साथ ही साथ हमारे मग़ज़ में भी लकीरों का एक आकार—स्वभाव—बन जाता है। यद्यपि हम यह नहीं बतला सकते कि स्वभाव का कौन सा अंश किस विचार या कार्य्य से हुआ।

कुछ उदाहरणों की यहाँ आवश्यकता है। हम देखते हैं कि एक मनुष्य जिसे हमेशा विघ्न आते रहते हैं यदि वह विघ्नों से डरता रहे तो कायर बन जाता है, या चिढ़ा करे तो क्रोधी और चिड़चिड़ा बन जाता है अथवा यदि वह विघ्नों की परवा न कर अपना कर्तव्य करता रहे तो दृढ़निश्चयी और धैर्यवान् बन जाता है। यह विचारों के परिणाम की बात हुई; कार्यों का परिणाम भी इसी प्रकार होता है। दवाख़ानों में मैंने देखा है कि जो लोग कम्पाउन्डर का काम करते हैं, उन्हें एक मिश्रण (Mixture) बनाने के लिए दस जगहों से दवाइयाँ लानी पड़ती हैं और उनमें से लेकर फिर उसी स्थान पर उन्हें रखनी पड़ती हैं। यदि उसी प्रकार का मिश्रण फिर बनाना हो तो वे दवाइयों को फिर उसी स्थान पर से निकाल कर लावेंगे, न कि उन्हें वहीं डाल रक्खेंगे। इस प्रकार उन्हें अपने काम में व्यवस्था रखनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनमें व्यवस्था रखने की आदत पड़ जाती है और इससे उनके अन्य कार्यों में भी व्यवस्था पाई जाती है। क्रिकेट, फुटबाल इत्यादि खेलनेवाले विद्यार्थियों को न केवल शारीरिक बल का लाभ होता है, किन्तु इस खेल से उनमें ऐक्य, आज्ञा-पालन, नियमितता, सहनशीलता इत्यादि गुणों की वृद्धि होती है। इन सब बातों से प्रकट है कि कोई भी एक प्रकार का कार्य्य सदा करते रहने से उस कार्य्य का मूलभूत एक तात्विक परिणाम स्वभाव पर भी पड़ता है।

गणित से इस प्रकार का कौन सा परिणाम होता है, इसका हम विचार करेंगे।

गणित के कोई भी प्रश्न पर विचार करते समय मनुष्य को अपनी बुद्धि (Intellect) और विचार (Imagination) को अत्यन्त बढ़ाना और फैलाना पड़ता है; सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों पर उन्हें स्थिर करना पड़ता है और स्थिर करने के बाद अपना कार्य्यक्रम एक निश्चित रूप से ठहराना पड़ता है। विचार कीजिए, इस प्रकार हमेशा करते रहने से हमारी बुद्धि और विचार-शक्ति कितनी बढ़ जायगी और इसका परिणाम हमारे स्वभाव पर क्या होगा, कहने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार की आदत पड़ जाने से हम अन्य कार्यों में भी अपनी बढ़ी हुई बुद्धि और विचार-शक्ति का उपयोग कर सकेंगे और जीवन के गूढ़ प्रश्नों पर स्थिरता से विचार करके अपना कार्यक्रम ठहरा सकेंगे। एक हाइकोर्ट के जज के विषय में मैंने पढ़ा है कि वे नित्य एक घंटा गणित के प्रश्नों पर विचार किया करते थे। इसका कारण प्रकट है। ऊपर कहे अनुसार, ऐसा करने से, अनेक सूक्ष्म बातों पर विचार करने की शक्ति बढ़ती है। मेरा यह कहना नहीं है कि विचार-शक्ति की वृद्धि केवल गणित के प्रश्नों से ही होती है। अन्य कारणों से भी होती है; क्योंकि एकही प्रकार के स्वभाव के बनने के लिए अनेक कारण हो सकते हैं। फिर भी गणित से उक्त वृद्धि होती है, यह बात निर्विवाद है।

यह बात साधारण रीति से गणित के प्रश्नों के विषय में हुई। अधिक लिखने को यहाँ स्थान

नहीं, परतु रेखागणित के विषय में कुछ और कहना आवश्यक है ।

महर्षि वाल्मीकि के विषय में हमने सुना है कि वे मुख से " राम " शब्द का उच्चार नहीं कर सकते थे। अतएव वे " मरा मरा " कहा करते थे। इसी से उन्हें सिद्धि प्राप्त होगई और वे त्रिकालज्ञ बन गये। इनके विषय में यह बात सत्य हो या झूठ, परन्तु रेखागणित के विषय में यह बात बिलकुल सत्य है कि हम " यह रेखा इस रेखा के बराबर और यह त्रिकोण इस त्रिकोण के बराबर " इत्यादि करते करते अद्भुत और महत्त्व-पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकते हैं। किस प्रकार ?

प्रथम हम इस बात का विचार करेंगे कि रेखागणित के अध्ययन में मूलतत्त्व क्या है। रेखागणित में कारण सिवा कोई भी बात नहीं कही जा सकती। सिवा बिलकुल साधारण बातों के, जो स्वतःसिद्ध हैं, प्रत्येक बात के लिए कारण या सबूत की आवश्यकता है। केवल सयौक्तिक (Reasonable) बातें ही हमें माननी पड़ती हैं, अन्य नहीं। एक बात दी हुई है उस पर से दूसरी सिद्ध करनी है । इस कार्य्य के लिए हमें केवल सयौक्तिक कारण सोचने पड़ते हैं—इतना ही नहीं उन्हें स्पष्टतया प्रकट करना पड़ता है। प्रकट करते समय उनकी सङ्गति यथास्थित मिलानी पड़ती है। साथ ही यह ख्याल रखना पड़ता है कि हमारे कार्य्य में अनावश्यक बातें न आ जायँ और आवश्यक न रह जायँ। ये मुख्य मुख्य बातें हैं और रेखागणित के अध्ययन में इनकी पद पद पर आवश्यकता पड़ती है। अतएव यदि रेखागणित का अध्ययन किया जाय तो यह बात प्रकट है कि इन मूलतत्त्वों का परिणाम स्वभाव पर भी वैसा ही पड़ेगा। इससे हम अपने अन्य कार्यों में भी ऐसे ही—अर्थात् विचारशील सयौक्तिक (Reasonable), उचित पद्धति से कार्य्य करनेवाले, सरल, निष्कपट—हो जायँगे; और इस प्रकार हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य्य में यशस्वी हो सकेंगे ।

गोपालदास झालानी, बी० ए०

नीगरो जाति का प्रधान शिक्षालय, टसकेजी ।

अटलाँटा से प्रातःकाल ८ बजे की गाड़ी से रवाना हुआ । उसी दिन सायङ्काल टसकेजी (Tuskeji) में पहुँच गया। यह यहाँ के रङ्गीन जाति के लोगों का प्रधान विद्याश्रम है। इसे यदि नीगरो जाति का गुरुकुल अथवा जातीय कालेज कहें तो कुछ अनुचित न होगा। किन्तु इससे कोई सज्जन यह न समझ लें कि इस संस्था और हमारी संस्थाओं में कोई विशेष समानता है। गुरुकुल की भाँति यहाँ ब्रह्मचारी ही नहीं पढ़ते, न यह पाठशाला केवल बालकों ही को शिक्षा प्रदान करती है। इतना ही नहीं, गुरुकुल की स्वच्छता, पवित्रता व त्याग के भावों का भी यहाँ अभाव ही है। इसी के साथ साथ गुरुकुल की त्रुटियाँ भी यहाँ नहीं हैं। यथा विद्यार्थियों को ८ वर्ष से २४ वर्ष तक एक प्रकार का कारागार अर्थात् घर व समाजों के प्रभावों से विलग रहना या विशेष रूप की प्रतिज्ञायें करना। हमारे जातीय कालेजों की भाँति यह संस्था केवल जातीय धन से नहीं बनी है। और न विशेष रूप से यहाँ जातीयता का ही पाठ पढ़ाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ के अधिष्ठाता व अन्य शिक्षक-समुदाय लाला हंसराज व लाला मुन्शीराम, अध्यापक परांजपे इत्यादि की भाँति झोपड़ी में रह कर ७५) रुपये महीने में ही गुज़ारा नहीं करते। यहाँ के अध्यापकों को अच्छी तनख़ाहें मिलती हैं। यहाँ के अधिष्ठाता महाशय बुकर. टी. वाशिंगटन को छत्तीस हज़ार डालर

अर्थात् एक लाख अट्ठारह हज़ार रुपये वार्षिक की आमदनी है। यह आमदनी इन्हें उस निधि से होती है जो इसी निमित्त एक दानी अमेरिकन वार्ले ने जमा कर दी है। महाशय वाशिंगटनजी आनन्द से इस बड़ी रक़म की बदौलत सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। अपना नैमित्तिक कार्य करते हैं। क्या हमारे देश में भी कभी ऐसा होने की सम्भावना है? यदि ऊपर के लिखे भाँति यहाँ की संस्था और हमारी संस्थाओं में कोई समानता नहीं है तो फिर मैंने क्यों इस संस्था को यह नाम दिया। इसका कारण केवल यही है कि यह संस्था केवल हबशी जाति के लिए ही है। यहाँ शिक्षक व विद्यार्थी सभी इसी हबशी जाति के हैं।

एक बात यहाँ और कह देना मैं प्रसङ्ग-विरुद्ध नहीं समझता। इस देश में आज कल रङ्ग के भेद के कारण सामाजिक भेद प्रायः शिथिल सा हो रहा है। यह भेद दक्षिणी प्रान्तों में अत्यन्त अधिक है। यहाँ तक कि वहाँ की शासक-पद्धति ने यह नियम बना दिया है कि काले व सफ़ेद बालक एक पाठशाला में न पढ़ें। इससे अभिप्राय यह है कि यदि ये बालक साथ साथ पढ़ेंगे तो बड़े होने पर उनमें से बड़ाई व छुटाई का भाव अलग हो जायगा। वे विचार जो अभी सफ़ेदों में हैं कि वे स्वाभाविक रीति से काली जातियों से ऊँचे हैं जाता रहेगा। यह बात अमेरिकन जाति के हृदय की सङ्कीर्णता प्रकट करती है और उनके माथे पर काला धब्बा लगाती है।

पूर्वोक्त नियम के कारण इस विश्वविद्यालय में सफ़ेद लड़के सफ़ेद के नाम से नहीं भरती होने पाते, किन्तु दर्शकों को यहाँ बहुत बड़ा अंश सफ़ेद चमड़ेवालों का देख पड़ता है, जिसमें से अधिकांश वर्णसङ्कर हैं। किन्तु बहुत से असली सफ़ेद भी वर्णसंकर बन कर यहाँ की उत्तम शिक्षा का लाभ उठाते हैं। यहाँ एक बात और भी लिख देना है कि जिस प्रकार अपने देश में वर्णसङ्करों को गवर्नमेंट ने अधिक अधिकार दे रक्खा है, जिसके कारण वे अपने को ऊँचा समझ देशियों से नहीं मिलते जुलते व अपने को अलग रखते हैं वैसा इस देश में नहीं है।

यहाँ के नियम के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के शरीर में एक बिन्दु भी काला रुधिर है तो वह काला ही गिना जाता है, चाहे उसके चमड़े का रङ्ग सफ़ेद चमड़ेवालों से भी बढ़ कर सफ़ेद क्यों न हो। इस कारण यहाँ के वर्णसङ्कर अपने को काला ही समझते हैं। वे अपनी जाति के साथ ही मिल जुल कर कार्य्य करते हैं। हम लोग जिस समय टसकेजी के रेल रोड स्टेशन पर पहुँचे, वहाँ के कर्मचारी गण हमें दफ़्तर में ले गये और वहाँ से हमारे निवास-स्थान में ला उतारा। थोड़ी देर विश्राम करने के बाद एक कर्म्मचारी ने हमें घूमने के लिए कहा। हम उनके साथ घूमने चले। इस संस्था को एक छोटा सा क़सबा कहना उचित होगा। इस क़सबे का क्षेत्रफल २३४५ एकड़ भूमि है। यहाँ पर छोटे बड़े सब मिला कर १०७ मकान हैं। उनमें शिक्षालय के भिन्न भिन्न विभाग, छात्रालय तथा शिक्षकों के रहने की जगहें भी शामिल हैं। यहाँ पर छोटी बड़ी सब मिला कर कोई ४० भिन्न प्रकार के व्यावसायिक विषयों में शिक्षा दी जाती है, जिसका विशेष रूप से मैं यहाँ के अधिकारियों की भाषा में ही वर्णन करूँगा।

इस छोटे से क़सबे में उत्तम साफ़ सड़कें हैं जैसी कि हमें कलकत्ते के चौरङ्गी पर मिलती हैं—तार, टेलीफ़ोन, बिजली का प्रकाश, साफ़ शुद्ध जल, नये ढङ्ग की ज़रूरत की जगहें, मैले पानी के बह जाने के लिए बन्द सण्डासे इत्यादि सभी आधुनिक प्रकार के आराम के व ज़रूरीयात के सामान यहाँ हैं। इस सब सामान के लिए धन भी कोई ५० लाख रुपया व्यय हुआ है।

इससे हिन्दू तथा मुसलमान विश्वविद्यालय के अधिकारियों को लाभ उठाना चाहिए। मुझे एक बात

यहाँ और कह देनी है। मुझे डर है कि हम लोग अपनी संस्थाओं पर व्यर्थ अधिक धन केवल बेहूदगियों पर सर्फ़ कर देते हैं और अपना विचार केवल इँगलिस्तान की संस्थाओं के अनुरूप बनाते हैं। मैंने सुना था कि हिन्दू-विश्वविद्यालय के मन्त्री महाशय का यह विचार है कि Technology के विषय के पढ़ाने के लिए ही एक करोड़ रुपये की ज़रूरत है। किन्तु यहाँ ४० विषयों की टेकनिकल शिक्षा का प्रबन्ध केवल ५० लाख में ही हो गया है। लीड्स, मेनचैस्टर व ग्लासगो के विश्वविद्यालयों में भी इतना व्यय नहीं देख पड़ता जितना कि हमें अपने यहाँ के मन्त्री महाशय बताते हैं। अस्तु। हम लोगों ने यहाँ का पुस्तकालय, छात्रालय, साधारण शिक्षालय और विस्तृत शक्ति-शाला (Power House), जो कि निर्माण हो रही है, देखी। सायङ्काल यहाँ के वृहत् भोजनालय में शिक्षकों को साथ ले यहाँ के छात्रों का भोजन देखने चले। यह एक प्रकाण्ड भोजनशाला में होता है, जिसमें प्रायः दो सहस्र जन बैठ सकते हैं। बैठने का प्रबन्ध बड़ा उत्तम है। टेबल के एक ओर पुरुष और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठती हैं और सब आनन्दपूर्वक भोजन करते हैं। रात्रि को हमने साधारण शिक्षा की रीति देखी। उसकी एक बात यहाँ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। जिस कक्षा को हम देख रहे थे वह सातवीं कक्षा थी। यहाँ पर मिकैनिक्स पढ़ाई जा रही थी जो हमारे यहाँ एफ० ए० में पढ़ाई जाती है। विषय लीवर (Lever) था। हमारे यहाँ काले तख़्ते पर भिन्न भिन्न रेखा खींच कर यह विषय समझा दिया जाता है, चाहे विद्यार्थी की समझ में आवे या नहीं; किन्तु यहाँ की रीति दूसरी थी। यहाँ पर इस विषय के पाठ के लिए एक एक पहिया की बोझा ढोने की गाड़ी थी। कुछ ईंटें थीं और एक तराज। एक बालक गाड़ी की कम्पास पकड़ कर उसे उठाये हुए था। काले तख़्ते पर गाड़ी का बोझा तौल कर लिखा था। ईंटों का बोझा भी लिखा था। आदमी को कम्पास उठाने में कितना बल लगाना पड़ेगा यह जानने की आवश्यकता थी। पहले गणित की रीति से वह निकाला गया, फिर आदमी के हाथों को हटा वहाँ कमानीदार तराज़ू लगा कर वहीं ज्यों का त्यों दिखा दिया गया। लड़कों की समझ में गणित भी आ गया और लीवर का वास्तविक उपयोग भी। यह तीसरे प्रकार के लीवर का उदाहरण था। जिन को वास्तविक ज्ञान सिखाना मंज़ूर होता है उन्हें इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। हमारे यहाँ की शुष्क रीति पर नहीं। दूसरे दिन प्रातःकाल लड़कों की क़वायद देखी। यह भी दृश्य बड़ा ही उत्साहजनक था। सब बालक झूठी बन्दूक़ लिये फ़ौजी बाजे के साथ ठीक फ़ौजी क़वायद कर रहे थे। फिर कारीगरी की शिक्षा देखने चले। यह बालकों व बालिकाओं के लिए भिन्न भिन्न है। गौण रूप से यहाँ पर लोहारी, बढ़ईगीरी, मोची, दर्ज़ी का काम, स्त्रियों की वस्तुओं को बनाना, टोपी बनाना, भोजन बनाना, विद्युत्-शक्ति का व्यवहार, मशीन चलाना, बुनना, दूध-मक्खन का काम, भिन्न भिन्न कृषि का कार्य—इत्यादि भी सब विद्यार्थी ही करते हैं। वह कार्य्य भी ऐसा है जो केवल सिखाने ही के लिए नहीं, वरन वास्तविक कार्य्य है जिससे विद्यार्थियों को मजूरी भी मिलती है। साथ साथ वे व्यवसाय सीखते हैं व पढ़ने इत्यादि का व्यय भी निकाल लेते हैं। इस प्रकार शिक्षा के व्यय का मोल अधिकतर माँ-बाप पर नहीं पड़ता। दोपहर को सब विद्यार्थी पुरुष व स्त्री फ़ौजी बाजे व अमेरिकन झण्डे के साथ मार्च कर के भोजन करने जाते हैं। एक ओर तो यह शिक्षा विद्यार्थियों को चुस्त व चालाक बनाती है, किन्तु दूसरी ओर इस में प्रतिदिन अमूल्य समय का भी बड़ा भाग व्यय होता है। इसे देख हम लोग प्रधान वाशिंगटन महाशय के यहाँ भोजन करने गये। उन्होंने बड़े आवभगत से भोजन

कराया। फिर हम लोग गोशाला व कृषि देखने चले। गोशाला में बच्चे नहीं हैं। वे जनमते ही गायों से अलग कर दिये जाते हैं, किन्तु गायें दूध बराबर देती हैं। मैंने प्रश्न किया तो मालूम हुआ कि यहाँ कलकत्ते की भाँति यंत्र नहीं लगाया जाता, किन्तु हाथों से स्तनों को जिस प्रकार बच्चे चुबलाते हैं उसी प्रकार धीरे धीरे सुहलाने से ही गौ दूध दे देती है। गोशाला बड़ी ही साफ़ व सुथरी थी। दुहनेवाले विद्यार्थी भी साफ़ थे। उनके हाथ भी साफ़ थे। दुहने के पूर्व स्तन धो लिये जाते हैं जिसमें गंदगी न रह जाय। दुहने का पात्र बन्द होता है, उस पर एक महीन छेद की खीप होती है, जिस पर साफ़ सफ़ेद छन्ना पड़ा रहता है। दूध छन्ने में गिरता है। वह भीतर चला जाता है। यहाँ से दूध दूधघर में जाता है। यह घर बड़ा ही साफ़ था। सब ज़मीन धो-धोकर स्वच्छ थी। पहले दूध भाफ-द्वारा गरम किया जाता है, जिससे रोगजन्तु यदि उसमें हों तो मर जायँ। फिर ठंढा करके बोतलों में बन्द हो जाता है—यही क्रम यहाँ सारे देश में है। यहाँ हलवाइयों की दूकान पर मक्खी भिनकती हुई कढ़ाई में से कोई दूध नहीं लेता और न ग्वालों की ६ वर्ष पुरानी मिट्टी की कालिख लगी दुहेंड़ी ही देख पड़ती है। आधे कोस से बदबू करनेवाले दूध दही के मैले छन्ने भी यहाँ नहीं देख पड़े। यही कारण है कि यहाँ जनमते ही बच्चे नहीं मरते। यहाँ से मैं कृषिशाला में गया। यहाँ पर एक मज़दूर को देखा, जिससे हमारे देश के साहब बाबू लोग बात भी न करेंगे। किन्तु वह मज़दूरी ही करते करते ऐसे वैज्ञानिक आविष्कारों को कर रहा है जिससे थोड़े दिनों ही में संसार को चकित होना पड़ेगा। यह व्यक्ति इस समय मिट्टी में से रङ्ग निकालने के काम में तन-मन से लगा है। इसको आशातीत सफलता भी हुई है। इसने प्रायः सभी रङ्ग मिट्टी में से निकाले हैं। मैं नील को देख के हैरान हो गया। यहाँ से घूमता फिरता निवास-स्थान पर लौट आया। संक्षेप में इस संस्था की शिक्षा विद्यार्थियों को भिन्न भिन्न व्यावसायिक कार्य्यों में निपुण बना देती है। यहाँ उच्च शिक्षा, जिसे कालेज की शिक्षा कहते हैं, नहीं दी जाती। इस विद्यालय का उद्देश जनता को सांसारिक कार्य्य के योग्य बनाना ही है। यहाँ मनुष्य के हाथ और मन दोनों को शिक्षा देते हैं। यहाँ से निकल कर पुरुष या स्त्री अपनी जीविका भली भाँति कमा सकती है और मानसिक शिक्षा के कारण सुखी मन भी रख सकती है। यहाँ की इमारतें सभी विद्यार्थियों ने बनाई हैं। बढ़ई, लोहारी, मोची, धोबी कहाँ तक कहें, सभी आवश्यकतायें विद्यार्थी ही पूर्ण करते हैं। कुल के लिए अन्न-जल, पशु-पक्षी, साग-पात, फल-फूल, सभी विद्यार्थी ही इसी भूमि पर उपजाते हैं। इससे स्वावलम्बन की भारी शिक्षा यहाँ मिलती है और जीविका भी चलती है। यह एक नई बात मुझे मालूम हुई। इस प्रकार के शिक्षा-उपनिवेश अपने देश में भी बनने चाहिए। यहाँ सब को कार्य करना पड़ता है—जो दिन में पढ़ते हैं वे रात्रि में कार्य्य करते हैं। अपने देश में वृन्दावन का प्रेम-महाविद्यालय कुछ कुछ इस देश की तरह है—किन्तु वहाँ अभी रोज़ी कमाने का भी ज़रिया है या नहीं, मुझे नहीं मालूम। यदि नहीं तो जारी करना चाहिए। अब मैं नीचे कुछ विस्तार का विवरण सुनाता हूँ। सन् १८८० में व्यवस्थापक सभा ने इस संस्था को स्थापित किया। उस समय दो हज़ार डालर की सहायता भी शिक्षकों के वेतन के लिए देना निश्चय हुआ—इसका नाम-करण टसकेजी नार्मल इन्डस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट (Tuskegee Normal Industrial Institute) हुआ। प्रथम यह स्कूल एक पुराने गिरजाघर में, जो इसके लिए किराये पर लिया गया था, ४ जुलाई १८८१ को खुला। इस समय इसमें ३० विद्यार्थी और एक शिक्षक था। व्यवस्थापक सभा ने इसके लिए स्थान का कुछ

प्रबन्ध नहीं किया। १८८४ में सहायता २ से ३ हज़ार कर दी गई, और १८९३ में संस्था को पूर्वोक्त नाम से पुष्ट किया गया और उसकी रजिस्टरी हुई। किन्तु प्रथम वर्ष में ही वर्तमान स्थान १०० एकड़ ज़मीन व तीन छोटे छोटे गृहों के सहित कालों के उत्तरीय सफ़ेद मित्रों ने ख़रीद दिया। इस समय कुल की जन-संख्या हज़ार है, जिसमें १९३ शिक्षक व अन्य कार्य्यकर्ता मय अपने बालबच्चों के सम्मिलित हैं। इसके जन्मकाल से १९१२ पर्यन्त यहाँ से ९ हज़ार विद्यार्थी पूरी अथवा अधूरी शिक्षा पाकर निकल चुके हैं और अच्छी तरह से अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। अधिकांश इनमें से या तो शिक्षक का कार्य्य कर रहे हैं या कारीगरी का। १९१२ में नार्मल तथा इन्डस्ट्रीयल विभागों में नियमित दाख़िला १६४५ था। इस संस्था में ३६ प्रान्तों या भिन्न भिन्न देशों के विद्यार्थी शामिल हैं। उनमें से १६७ पुरुष व ५७८ स्त्रियाँ हैं। किन्तु ऊपर की संख्या में निम्न-लिखित असाधारण विद्यार्थियों की गणना नहीं है।

(१) २३० विद्यार्थी छोटे शिशुशाला में (२) १५० टसकेजी की नगर-निवासी रात्रि-शाला में (३) १५ रात्रि की बाइबिल कक्षा में (४) ४० सन्ध्या की पाकशाला में (५) ४९ गर्मियों के धार्म्मिक उपदेशक वर्ग में (६) ३५० गर्मियों में शिक्षक-वर्ग में (७) १४७२ कृषिशाला में हैं। यदि यह सब सङ्ख्या साधारण सङ्ख्या में सम्मिलित कर ली जाय तो वर्ष के अन्दर शिक्षा प्राप्त करने वालों की तादाद बढ़कर ३७५६ हो जायगी। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि १६४५ साधारण विद्यार्थियों में से केवल १०० को छोड़ बाक़ी सभी छात्र-शाला में निवास व भोजन करते हैं। इस पाठशाला में अधिक सङ्ख्या विद्यार्थियों की दक्षिणी अटलाण्टा प्रान्तों से ही आती है, जैसे अलबामा, जिअर्जिया, मिसिस्पी, टेक्सस, फ्लोटिका, व दक्षिणी करालिना। ये नाम विद्यार्थियों की सङ्ख्या के अनुसार दिये गये हैं।

विद्या की सामग्री में २३४५ एकड़ भूमि व १०७ छोटे बड़े मन्दिर शामिल हैं। इन्हीं मन्दिरों में निवासस्थान, छात्रशाला, पाठशाला, दूकानें तथा कारख़ाने व कृषिशालायें हैं। इस सब भूमि, मकान व तिजारती सामान का मूल्य इस समय १२९५२१३ डालर अर्थात् ३८८५६३९ रुपये हैं। इस धन-राशि में १९९१० एकड़ भूमि का मूल्य जो अभी नहीं बिकी है सम्मिलित नहीं है। कांग्रेस ने २५५०० एकड़ भूमि २,५०,००० के लागत की दी थी। उसी में से यह है। न उसमें स्थायी धन ही शामिल है। इसके देखने से प्रतीत होता है कि यदि हिन्दू या मुसलमान विश्वविद्यालय चाहें तो इतना साज़ व सामान १५ लाख के व्यय से एकत्र कर सकते हैं। क्योंकि अपने यहाँ मज़दूरी सस्ती है। जो ज़मीन के दाम कुछ अधिक नगरों में लगेंगे तो सब मिलाकर २० लाख में ४६ हज़ार विद्यार्थियों के पढ़ाने का सामान एकत्र हो सकता है। बत्तीस लाख बैङ्क में मय सूद के रक्खा जा सकता है। इस पाठशाला के प्रबन्ध का भार १९ सदस्यों की एक सभा पर है, जिसमें से आठ छोड़ कर बाक़ी देश के भिन्न भिन्न नगरों में रहते हैं। ६ न्यूयार्क २ मासाचसट २ इलिनाइस व एक पिनसिलवैनिया में रहते हैं।

६ सदस्यों की एक अन्तरङ्ग सभा धन के रखने का प्रबन्ध करती है। इस समय अस्थायी धन-राशि की सङ्ख्या १८७१६४७ डालर अर्थात् ५६१४९४१ रुपया मात्र है। इसमें से एक रक़म ३८००० डालर की श्रीमती मेरी ईशादेवी की रियासत से मिली है जो न्यूयार्क-निवासिनी एक रङ्गीन महिला हैं।

इस टसकेजी-विद्यालय के स्नातकों ने प्रथम १८९० में इस अस्थायी कोश की स्थापना की थी। यह विद्यालय को अस्थायी बनाने के निमित्त किया गया

था। यह प्रथम मुख्याधिष्ठात्री के स्मारक में हुआ था, जो उस समय स्त्रीशिक्षा-विभाग की डीन थी।

वर्तमान धन-राशि के पूरा होने में पूरे १० वर्ष लगे। अर्थात् १९०० में इस राशि की सङ्ख्या १०० डालर अर्थात् ३००० पूरे हुए। ज़रा ग़ौर कीजिए कि इनमें कितना धैर्य है। इस बीच में ग्रोर कार्य जारी रहा ग्रोर अस्थायी निधि की वृद्धि धीरे धीरे होती गई। एक महाशय ने एकबारगी ५०००० डालर दे दिये। आपका शुभ नाम कालिस पी हंटिङ्गटन Collis P. Hentington था। १८९९ व १९०० में इस राशि की वृद्धि के लिए विशेष यत्न किया गया। ग्रोर इसमें सफलता भी प्राप्त हुई अर्थात् राशि ६२, २५३—३९ से बढ़ कर १५२, २३२—४९ पहुँच गई। किन्तु बड़ी वृद्धि इसमें जाकर १९०३ में हुई। एक ग्रोर महाशय ने ६०००००० डालर एकमुश्त दे दिये। इसकी २५वीं वर्ष-गाँठ के दिन १९०५ में २ ग्रोर सहायतायें मिलीं। बालड्विन फण्ड १५०० डालर का जिसे विलियन एच्वाल्डविन के मित्रों ने एकत्र किया ग्रोर जो अपने मृत्यु के समय तक इस संस्था के एक सदस्य थे, दूसरा विद्यालय के विद्यार्थियों का दान १००० डालर। १९०७ में अल्वर्ट की जायदाद से इसे २३१०७२ डालर ग्रोर मिले। इस समय पाठशाला चलाने का वार्षिक व्यय २७०००० डालर अर्थात् ८१०००० रुपया होता है। इसकी प्राप्ति के लिए पाठशाला को अपने स्थायी कोष व अन्य आधारों से १२०००० डालर की पूर्ण आशा रहती है। १९११ में पूर्वोक्त सङ्ख्या में से १७०८७ डालर विद्यार्थियों के शुल्क से प्राप्त हुआ था।

इस भाँति प्रतिवर्ष १५०००० डालर की प्राप्ति के लिए जनता की उदरता का ही मुख ताकना पड़ता है। इस समय इस पाठशाला को भिन्न भिन्न वस्तुओं की बड़ी आवश्यकता है।

(१) ५० डालर साल एक विद्यार्थी की वार्षिक वृत्ति के लिए—विद्यार्थी अपने भोजन का प्रबन्ध स्वयं मज़दूरी कर के चलावेगा।
(२) १२०० स्थायी वृत्ति के लिए।
(३) चलते ख़र्च के लिए किसी रूप में सहायता।
(४) स्थायी कोष की वृद्धि के लिए कम से कम ३०००००० डालर यानी ९०००००० रुपया।
(५) ५०००० धार्म्मिक मण्डप बनाने के लिए।
(६) १५००० पुरुषों के व्यावसायिक भवन की पूर्त्ति के निमित्त।
(७) ४०००० पुरुषों की छात्रशाला के निमित्त।
(८) ४०००० स्त्रियों की छात्रशाला के निमित्त।
(९) १५०० की ४ रक़में ४ शिक्षकों की कुटियों के लिए।
(१०) ३००० की रक़म एक साधारण भाण्डार के लिए।

व्यावसायिक विभाग।

कृषि-विभाग तथा स्त्री-सम्बन्धी व्यवसाय को सम्मिलित करके इस समय संस्था में भिन्न भिन्न ४० व्यवसाय-सम्बन्धी विषयों की शिक्षा दी जाती है।

रोज़गारों की शिक्षा ३ विभागों में विभक्त है। (१) कृषि-सम्बन्धी (२) ग्रोज़ार-सम्बन्धी (३) वे विषय जो स्त्रियों के लिए उपयुक्त हैं—हर एक विभाग के लिए पृथक् पृथक् मन्दिर वा मंदिर-समूह हैं। कृषि-शाला में प्रयोग-शाला के अतिरिक्त अन्य भवन हैं, जहाँ जाँच का कार्य्य होता है।

कृषि-शाला।

कृषिशाला का कार्य्य मिलबैङ्ककृषि-भवन में होता है जो १९०९ में २६००० डालर की लागत से निर्माण किया गया था। साधारण पाठ की दालानों को छोड़ इसमें प्रारम्भिक प्रयोग के लिए रासायनिक प्रयोगशाला भी है। यहाँ पर एक स्टेज हाल भी है, जिसमें नाना भाँति के फल-फूल तथा अन्य जीव-जन्तुओं का अच्छा सङ्ग्रह है। यहाँ पर एक जगह

और भी है जिसमें ३०० व्यक्तियों के बैठने का प्रबन्ध है। इस मन्दिर के निचले खण्ड में दूध व मक्खन-घर है। एक कारख़ाना कृषि के यन्त्रों की मरम्मत के लिए है—यहीं पर एक और शिक्षा-घर है जिसमें जीव-जन्तु-सम्बन्धी शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध है। प्रथम कृषि-व्यवसाय १८०३ में प्रारम्भ किया गया था। यह उस स्थान पर होता है जहाँ आज दिन फेल्प हाल Phelps hall, हंटिङ्गटन मेमोरियल हाल Huntington memorial hall व कैनिङ्ग-फैक्टरी Canning factory उपस्थित हैं। इस समय यहाँ की कृषि-भूमि प्रायः २३०० एकड़ के लगभग है। इसमें से ८० एकड़ में तरकारी बोई जाती है। जिसमें पाठशाला तथा ग्राम के निवासियों को सब्ज़ी व भाजी मिलती है। ८० एकड़ में फल के बाग़ हैं। ८४० एकड़ में मामूली कृषि होती है। १३०० एकड़ में चरागाह व अन्य लकड़ी इत्यादि हैं।

इस कृषि के आधार पर बहुत से जीव यहाँ पाले जाते हैं। दूध व घी के लिए बहुत से जानवर हैं जिन में साँड़ व दूध देनेवाली १०७ गायें हैं। गत वर्ष में मक्खन-घर में ९१४९२ गैलन दूध आया और यहाँ २१३२२ पाउंड मक्खन तैयार हुआ। सूअरख़ाने में ५११ सूअर हैं, चिड़ियाख़ाने में २००० से अधिक मुर्ग़ों हैं। घुड़साले में १७० घोड़े व ख़च्चर हैं जो पाठशाला का सब कार्य्य करते हैं। गत वर्ष इनसे ३६७२९ डालर आय हुई। गत वर्ष कृषि का कार्य्य २० विद्यार्थियों, ४२ मज़दूरों व १८ शिक्षकों ने मिल के किया था।

गत वर्ष निम्न प्रकार उपज हुई। ५०० टन हरी चरी व काँटा, १३००० बुशल शकरकन्द, ३५०० बुशल मक्की, ४००० बुशल जई, २६० टन सूखी घास। तरकारी के खेत से ११५४५३ पाउंड शाक, १११६ झुफा गाजर, ४६५ बुशल पिआज, ५३ बुशल चुक़न्दर, ३५८ बुशल भिन्न भिन्न प्रकार के सेम, २९१० बुशल टमाटो, ७०० बुशल गाँठ-गोभी व शलजम, ४१५ दर्जन हरी बाल, १००० ख़र्बूज़ा व ५३६ बुशल आलू, २५८ बुशल मटर। तरकारी की एकजाई क़ीमत गत वर्ष १९५० डालर हुई।

घास के मैदान व भिन्न पेड़ों व फूलों के बाग़ बनाने का कार्य्य थोड़े दिन से सिखाना प्रारम्भ हुआ है। वृक्ष-विद्या का सिखाया जाना १८९५ में प्रारंभ हुआ। पुष्प-विद्या का १९०४ में। यह एक मित्र की उदारता से हुआ, जिसने कुछ धन इसी निमित्त दान किया था। एक दूसरा बाग़ १९०७ में बना जिसमें ४०००० छोटे छोटे पौदे व ४०० सायेदार वृक्ष लगाये गये। मगर १९११ में ७०० झाड़ी व पौदे रोपे गये। २४५०० गज़ घास का मैदान बना। ४८०० वर्ग गज़ सड़क व पगडंडियाँ बनीं और ४६७९ नल व बर्साती पानी के पनाले भी बनाये गये।

इस समय यहाँ १२५०० आड़ू के वृक्ष, १४०००० के पौदे, ३८५० अंगूर की लतायें व १८५ अंजीर या गूलर के वृक्ष पाठशाला की फलवाटिकायें हैं। एक वर्ष के भीतर विद्यार्थियों ने १०१० वृक्ष व ७८०३ झाड़ियाँ यहाँ लगाईं और वृक्षों का मूल्य मिला कर ७३९२ डालर के लागत की मिलकियत अपने परिश्रम से पाठशाला में जोड़ दी।

प्रयोगशाला कृषिशाला के सम्बन्ध में १८९६ में बनी थी। यह उस वर्ष के कृषिशाला-संबंधी राष्ट्र-नियम के अनुसार हुआ। ८ वर्षों का फल एक निबन्ध रूप में १९०५ में प्रकाशित किया गया जिसका नाम था "किस प्रकार बञ्जर भूमि को उपजाऊ बनाना" (How to build up worn out soils)

इस नियम के संबंध में एक और निबन्ध प्रकाशित हुआ जिसका विषय था 'वलूदी ऊँची भूमि पर कपास की खेती। यह निबन्ध प्रकट करता है कि अकावाया की निकृष्ट से निकृष्ट भूमि

में प्रति एकड़ इतनी रुई उपजाई जा सकती है जो इस प्रान्त के हिसाब से चौगुनी उपज है।

कपास की खेती के सम्बन्ध में १९०५ प्रयोग व परीक्षा जारी है—इसका उद्देश (१) उत्तम प्रकार की कपास पैदा करना है जिसे समुद्री द्वीप की कपास Sea Island Cotton कहते हैं (२) इस प्रकार की जाति उत्पन्न करना जो बलूदी भूमि में ख़ूब उपज सके।

यन्त्र-सम्बन्धी व्यवसाय।

वह कारख़ाना जहाँ औज़ार व यन्त्र-संबंधी कला सिखाई जाती है स्लेटर अर्मस्ट्रांग स्मारक-भवन Slater Armstrong Memorial Building में उपस्थित है। यह भवन आटे की कल के व अञ्जन-घर, यन्त्र-भवन व भंडार के सहित ३१६५० वर्ग फ़ुट ज़मीन छेके हुए है। यहाँ निम्नलिखित भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है (१) बढ़ईगीरी (२) लकड़ी का काम (३) छापाख़ाना (४) दर्ज़ीगीरी (५) लोहारी (६) पहिया व चाकी ठीक करने की कला (७) साज़ बनाने की कला (८) गाड़ी बनाना (९) पाइप का काम (१०) भाफ का काम (Steam fitting) (११) बिजली की रोशनी का काम (१२) मकान-सम्बन्धी व यन्त्र-सम्बन्धी चित्रण-कला (१३) क़लईगीरी (१४) तसवीर बनाना (१५) भाफ-यन्त्र व जूता बनाना। आराघर व ईंट पाथने का कार्य्य अलग मकानों में होता है।

यहाँ जो भट्टा तैयार हुआ उसीसे यह भवन निर्माण हुआ था। ईंटों की पथाई की शिक्षा १८८३ में ही प्रारम्भ हो गई थी। यह यहाँ की दूसरी ही कला थी। प्रारम्भ में ईंट हाथों ही से पाथी गई थी। ईंट पाथने का प्रथम यन्त्र काठ का बनाया गया था। वह केवल घोड़ों से चलता था। इससे ८००० ईंटें प्रति दिन बनती थीं। इस समय के २ यन्त्रों से २५००० ईंटें प्रति दिन बनती हैं। मेमारी व पलस्तर करने का कार्य्य सिखाना १८८३ में प्रारम्भ हुआ था। इस समय इस संस्था में २९ भवन ईंटों के हैं जो सब यहीं के छात्रों ने प्रायः शिक्षकों की सहायता से बनाये हैं। सब कार्य्य ईंट पाथने से लेकर मकानों का नक़शा तैयार करना, बधिर-भवन-निर्माण करना इत्यादि छात्रों ने ही किया है। १९११ में नई इमारत तथा मरम्मत के कार्य्य का व्यय ९५७१ डालर हुआ जो सब का सब इसी विभाग ने किया। लोहारी का काम एक १२× १६ फ़ुट के लकड़ी के मकान में आरम्भ हुआ था। इस समय इस विभाग में १० निहाई चलती हैं और प्रति वर्ष ३००० डालर का कार्य्य होता है। इस में इमारती लोहे का सामान, गाड़ी व १२०० घोड़ों की नाल जड़ाई का कार्य्य शामिल है। बढ़ईगीरी का कार्य्य १८८४ में आरम्भ हुआ था।

(असमाप्त)

अमेरिका का एक यात्री

विविध विषय।

१—पलासी का युद्ध।

बँगला के सुप्रसिद्ध कवि श्रीयुत नवीनचन्द्र सेन से अनेक साहित्यसेवी परिचित होंगे। "पलाशिर युद्ध" उन्हीं की एक अद्भुत कृति है। इस काव्य का रसास्वादन उन सज्जनों को कराने के लिए जो बँगला नहीं जानते हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध कवि ने "पलासी का युद्ध" तैयार किया है। यह "पलाशिर युद्ध" नामक काव्य का पद्यानुवाद है। किसी भी ग्रन्थ का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना कठिन काम है। किसी काव्य का अनुवाद करना तो और भी मुश्किल है। इस कार्य्य में यदि

कुछ सफलता हो सकती है तो प्रायः कवियों को ही। "पलासी का युद्ध" "पलाशिर युद्ध" का अच्छा अनुवाद हुआ है। इसको पढ़ने में मूल ग्रन्थ का बहुत कुछ आनन्द आ जाता है। ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ। परन्तु पाठकों के मनोरञ्जनार्थ हम उसके कुछ स्थल उद्धृत किये देते हैं। पलासी के युद्ध के पहले कवि ने कल्पना द्वारा क्लाइव को राजलक्ष्मी के दर्शन करा दिये हैं। राजलक्ष्मी का वर्णन और उसकी वक्तृता सुनिए—

आकर भावी-युद्ध-चित्र है कभी निरखता,
भय पाता है कभी, कभी है आशा रखता,
चिन्ता से अवसन्न हृदय कुछ समय अनन्तर
बैठ गया फिर नेत्र निमीलित किये वीर वर।
सहसा चारों ओर स्वर्ग का सौरभ आया
कोमल सुर-सङ्गीत गूँज कर नभ में छाया
फैला शत शत सूर्य्य तेज सा नभ-मण्डल में
उतरी एक प्रकाश-राशि-सी पृथ्वीतल में
क्लाइव-मन में विविध भाव विस्मय के जागे
देखी ज्योतिर्मयी एक रमणीमणि आगे
युवती की तनुकान्ति शुभ्र थी, नील नयन थे
अरुण अधर स्वर्गीय रागमय अमृत-अयन थे
राज-राज-ईश्वरी-रूप था, अङ्गों की छवि
दिखा सकेगा कौन चित्रकर और कौन कवि ?
शुचि वस्त्रों पर झलक रहे नक्षत्र-गुच्छ थे
पार्थिव मुक्ता-रत्न कि जिनके निकट तुच्छ थे
ब्रिटिश-सुन्दरी सदृश वेश-भूषा-सज्जित थी
किन्तु सर्वथा दिव्य दीप्ति में विनिमज्जित थी।
अर्द्ध-अनावृत पीन-पयोधर-युग्म पूर्ण था
गलता था हिम हृदय देख के, स्फटिक-चूर्ण था
दिखा रहा था वह सुविमल युवती का अन्तर
चिर प्रसन्नतापूर्ण प्रीतिपाथोधि निरन्तर
वदन-चन्द्र की हाय ! कहाँ से दूँ मैं उपमा ?
देता, यदि देखता स्वर्ग-शारद शशि-सुषमा
विश्वमोहिनी छटा, वसन्त-श्री-विहारिणी
कमल नेत्र, पिक-कण्ठ, मलय-निश्वासधारिणी
शत शत संख्यक 'कोहनूर' की प्रभा पाट कर
दमक रहा था दिव्य रत्न उन्नत ललाट पर
मुखमण्डल था दया और गौरव-रङ्गस्थल
प्रभुता और प्रगल्भ-भाव-भूषित हर्षोज्ज्वल
उस पर छूटी हुई कनक-अलकावलि कैसी ?
मण्डित करतीं बाल-सूर्य्य को किरणें जैसी
चिर-वासित, चिर-विकच, कुसुम-भूषित, कच-कुञ्चित
खेल रहे थे मन्द पवन से बन्ध-विमुञ्चित
उन फूलों की सुरभि और निश्वास-वास से
हो सकते हैं अमर मर्त्य भी अनायास से
ज्योति रत्नमय मुकुट शीश पर ज्योति-खचित था
जो कुछ था सो सभी ज्योतिमय ज्योति-रचित था
चिर-विकसित वह ज्योति तरुण रवि से बढ़ कर थी
पर शीतल इतनी कि चन्द्रिका से चढ़ कर थी
प्रखर तेज की वृष्टि दृष्टि झुलसाती थी ज्यों
अमृतमयी माधुरी हृदय हुलसाती थी त्यों
क्लाइव ने दृग बन्द किये जागृत सपने में
देखी भुवनेश्वरी मूर्त्ति मानों अपने में
विस्मित क्लाइव और देख सस्मित कल्याणी
बोली—'भय क्या वत्स,' अहा ! वह कोमल वाणी
गूँज उठी उल्लास-पूर्ण सन्ध्या-समीर में
गङ्गा सुनने चलीं, उठा उच्छ्वास नीर में
वह मधुर-स्वर-सुधा पान करने को पल भर
अचल हुआ सा रहा दिवाकर अस्ताचल पर
क्लाइव के तो रोम रोम में व्याप्त हुई वह
नस नस में बह उठी, भाग्य से प्राप्त हुई वह
श्लथ-हृत्तन्त्री बजी—"वत्स, क्या भय है तुझको ?
समझ वीर-वर ब्रिटिश-राजलक्ष्मी तू मुझको
लक्ष्मी-कुल-लक्ष्मी, सुपुत्र-गौरव-गौरविणी
राजलक्ष्मियों में सुधन्य विधि की आदरिणी
सुरपुर बैठी हुई, कहाँ क्या होता है, कब,
भृकुटि-भङ्ग कर देख जान लेती हूँ मैं सब
पार्थिव-घटनायें अदृश्य में रह निहारती
ब्रिटिश-राज्य-गति-वृद्धि-विपुलता हूँ विचारती
तूने आसन आज अचानक डुला दिया है
चिन्ता करके मुझे यहाँ पर बुला लिया है
मैं भावी विधि-लेख सुनाने आई तुझ को
होगा जो कि अचिन्त्य अतुल सुखदायी तुझको

तो सुन, अब से ब्रिटिश-समुन्नति ध्रुव निश्चित है
उसका शुभ सौभाग्य-सूर्य्य प्रायः समुदित है
जब होगा मध्याह्न ब्रिटिश-नृप के गौरव का
तब मानों मध्यस्थ बनेगा वह इस भव का
अर्द्धससागर धरा छत्र के तले बसेगी
दिग़दिगन्त में देश देश में कीर्ति लसेगी
और बहुत दिन मुग़ल, मराठे और फरासी
न करेंगे इस स्वर्ण-धरा को रुधिर-धरा सी
राज्य जमावेगा न दूसरा बाबर आके
अथवा करके पार हिमालय जैसे नाके—
दिल्ली को लूटने लुटेरे नहीं आयँगे
जितने भय हैं सभी न जानें कहाँ जायँगे
भारत के इतिहास मध्य प्रस्तुत होगा द्रुत
एक अपूर्वाध्याय अचिन्तित, अद्भुत, अश्रुत

कुछ दिन में अज्ञात भाव से भरतखण्ड में
जागेगी जो महाशक्ति वह एक दण्ड में—
दिल्लीश्वर को मेषतुल्य शृङ्खलित करेगी
मरहट्टों का सिंह-गर्व भी गलित करेगी
हिम-भेदन कर अरुण अर्क बढ़ता है ज्यों ज्यों
घटती है सब ओर द्रुमों की छाया त्यों त्यों
इसी तरह वह शक्ति बढ़ेगी जैसे जैसे,
हतबल होंगे यहाँ फरासी वैसे वैसे
अपने को उस महाशक्ति का मूल जान तू
सच कहती हूँ वत्स, न कुछ आश्चर्य्य मान तू
भरतखण्ड का भाग्यचक्र तव कर चूमेगा
इच्छा कर तू जिधर घुमावेगा घूमेगा
वङ्गदेश में राज्य-नींव जो तू डालेगा
भारत-व्यापी भवन गगन उसका छा लेगा
विधि-मन्दिर से वत्स, अभी जब मैं आई हूँ
भावी भारत-मानचित्र तव हित लाई हूँ,

उत्तर में वह देख, हिमावृत अतुल हिमाचल
सिर ऊँचा कर भेद रहा मानो गगनस्थल
देख, अद्रि पर अद्रि अद्रि उस पर भी अद्भुत
कटि-प्रदेश में घूम रहे हैं घन विद्युत्-युत
दक्षिण में निस्सीम फुल्ल फेनिल नीलोदधि
देख, ऊर्म्मि पर ऊर्म्मि ऊर्म्मि उस पर भी निरवधि
हिमगिरि-गर्व विलोक मत्त सा हो कर मन में
उठता है वह लोलभाव से स्वयं गगन में
उत्तर में अति अचल शैलमाला स्थित है ज्यों
चञ्चल अचलावली सिन्धु पर शोभित है त्यों

ऐरावती अपूर्व पूर्व सीमा पर रहती
पञ्चपाणि शुचि सिन्धु नदी पश्चिम में बहती
शोभित वह शतमुखी जाह्नवी-तट पर तत्ता
भावी भारत;रम्य राजधानी कलकत्ता
सम्प्रति दीन दरिद्र कुटीरों से जो छाया
लज्जित होगी उसे देख सुरपुर की माया
ब्रिटिश-केतु वह उच्च अट्ट पर फहर रहा जो
अनिलालोडित नील गगन में लहर रहा जो
लेकर उस जातीय केतु को तू निज कर में
ब्रिटिश-राज्य-विस्तार करेगा भारत भर में
नये राज्य में वत्स, तुझे अभिषिक्त करूँगी
रत्नासन पर बिठा शीश पर मुकुट धरूँगी
शासन सब सिर पर अदृष्ट-सा लिये फिरेंगे
कितने राजा, राज्य-भृकुटि पर उठें—गिरेंगे

यवनों की श्री समर-रक्त में डूब जायगी
सित-सत्ता फिर एक नया युग यहाँ लायगी
भारतेश इँगलेंड राज-प्रतिनिधि को पाकर
नमन करेगा वत्स, हिमालय-युत रत्नाकर

कुछ विप्लव के बाद राज्य दृढ़ हो जावेगा
ब्रिटिश-तेज-रवि यहाँ अपूर्व प्रभा पावेगा

× × × ×

देवी हुई अदृश्य, पड़ा अर्गल-सा दिव के
दृढ़ कपाट में, मनश्चक्षु-गत हत क्लाइव के
गया स्वर्ग, आगई धरा अपने शरीर में
हाय ! डूबता हुआ मनुज गम्भीर नीर में
क्रीडामय रवि-किरण-रचित शत-शक्रचाप-गण
और अतुल आलोक देखता है फिर तत्क्षण
अपने को विकराल काल-कवलित विलोक कर
अन्धकारमय विश्व देखता यथा शोक कर
मनश्चक्षु से तथा स्वप्नदर्शन कर पल में
क्लाइव ने अति अन्धकार देखा भूतल में

२—पेंडरा-रोड का क्षय-रोगाश्रम ।

मध्यप्रदेश के विलासपुर ज़िले में पेंडरा नामक एक ज़मीन्दारी है । इस ज़मीन्दारी में वन्य तथा पार्वत्य प्रदेशों की बड़ी अधिकता है । यहाँ के प्राकृतिक दृश्य भी बड़े मनोहर हैं । अतएव यहाँ के जल-वायु तथा दृश्यों को क्षय-रोगियों के लिए सर्वथा लाभकारी समझ अमेरिकन मिशनरी मिस मेरी लाँगडन, एम० डी०, डी० पी० एच० ने उनके लिए एक आश्रम पेंडरा और पेंडरा-रोड के—जिसे गौरेला भी कहते हैं—बीचो बीच सड़क के किनारे एक निर्जन और मनोहर स्थान में स्थापित किया है । पेंडरारोड से पेंडरा पाँच मील है और दोनों स्थानों से आश्रम के लिए टाँगे मिल सकते हैं । पेंडरारोड बी० एन० आर० के विलासपुर कटनी ब्रांच का एक स्टेशन है ।

मिस मेरी लाँगडन, एम० डी०, डी० पी० एच०
क्षय-रोगाश्रम, पेंडरारोड, मध्यप्रदेश ।

मिस लाँगडन विदुषी महिला हैं । आप डाक्टरी की उच्च परीक्षा पास हैं तथा अपने कार्य में बड़ी दक्ष हैं । आपका स्वभाव बड़ा दयालु और नम्र है । आप मिष्टभाषिणी तो हद दरजे की हैं । गत दिसम्बर सन् १९१८ के द्वितीय सप्ताह में जब मैंने अपने मित्र पण्डित लोचनप्रसादजी पाण्डेय के अनुरोध से आश्रम का अवलोकन किया तब आपने मेरे साथ अपने अमूल्य समय के दो घंटे ख़राब कर सारा आश्रम घूम घूम कर दिखलाया और आश्रम-सम्बन्धी सारी बातें बतलाईं ।

आश्रम को स्थापित हुए तीन वर्ष हुए हैं । अभी वह अधूरा है । बहुत से मकान तो बन चुके हैं पर कई अभी बन रहे हैं तथा कई नये और बनेंगे । मिस लाँगडन का कथन है कि आश्रम को पूर्ण रूप से तैयार होने में अभी दो वर्ष और चाहिए । मकान सब वैज्ञानिक तरीक़े से तैयार किये गये हैं । हवा और रोशनी का पूरा पूरा ख़याल रक्खा गया है ।

आश्रम में अभी केवल ईसाइयों के ही रहने का प्रबन्ध है । पर मिस महोदया कहती हैं कि नये मकान

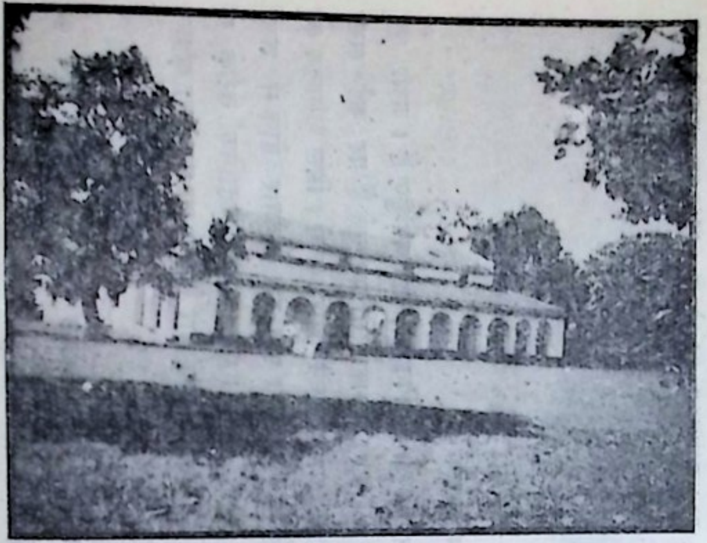

लेडी-डाक्टर के रहने का बँगला।

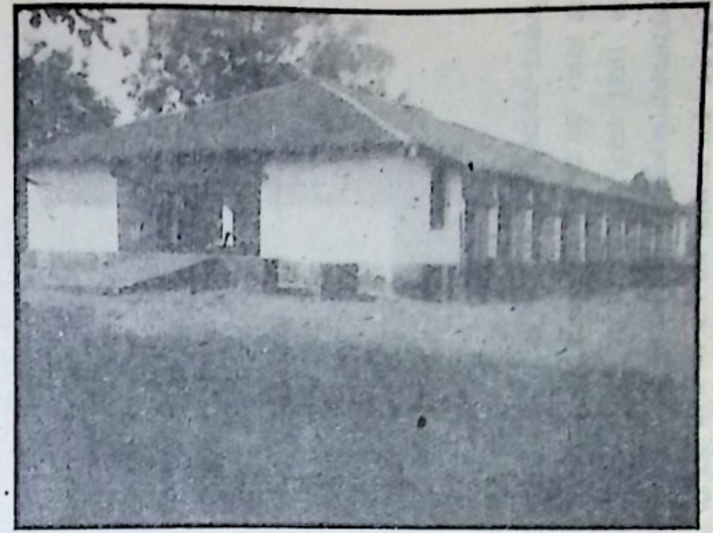

क्षय-रोग-पीड़ितों के रहने के लिए हवादार मकान।

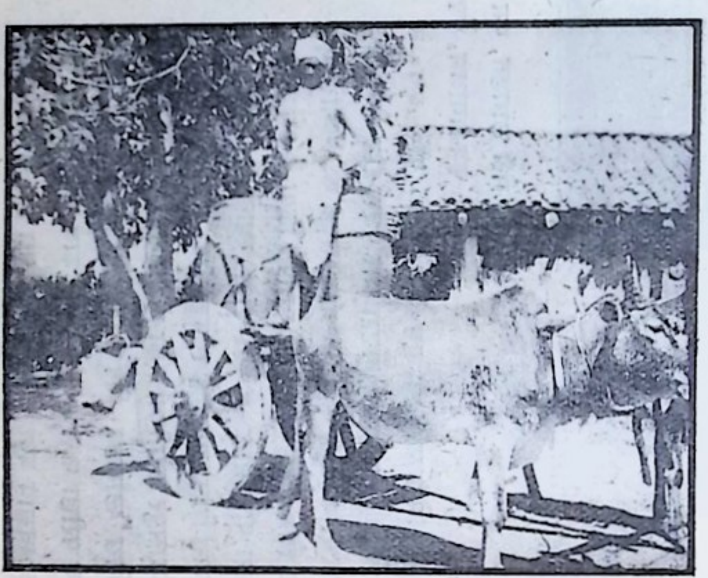

आश्रम के लिए पानी जा रहा है।

आश्रम से दवा चाहनेवाले रोगियों का एक दल।

बनते ही अन्य जाति के लोग भी बिना रोक टोक रह सकेंगे। जब तक आश्रम में स्थान नहीं है तब तक अन्य धर्मवाले रोगी पेंडरा या गौरेला में रह कर मिस महोदया से इलाज करा सकते हैं। फ़ीस आठ रुपया मासिक है।

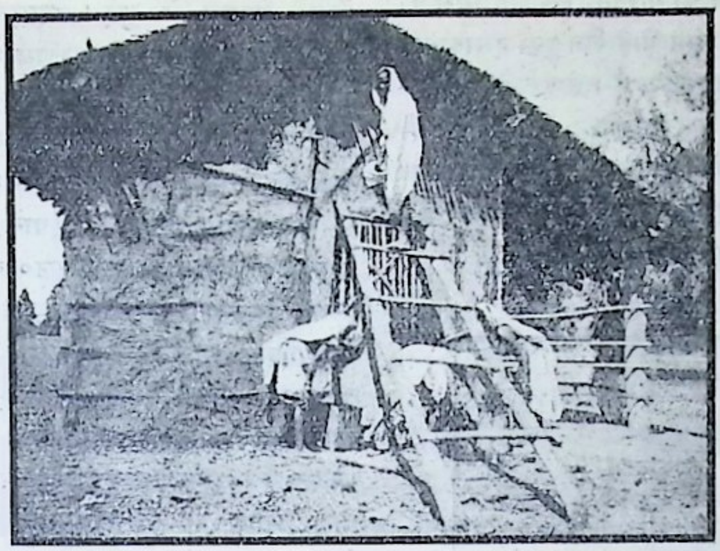

पुराने अस्पताल की मरम्मत हो रही है।

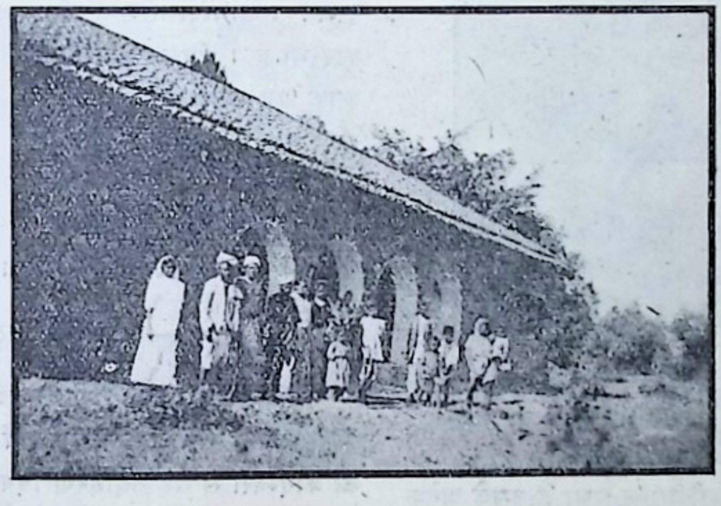

नया अस्पताल और उसके कर्मचारिगण।

यह बात नहीं है कि मिस महोदया केवल क्षयरोग के नाश करने ही में निष्णात हों। नहीं, वे स्त्रियों और पुरुषों के सम्पूर्ण प्रकार के रोगों का निदान तथा इलाज कर सकती हैं। मिस महोदया ने मुझसे कहा था कि गत वर्ष उन्होंने ऐसे २००० मनुष्यों को दवा दी जो अन्य रोग से पीड़ित थे। इन्फ़्लुएन्ज़ा के समय भी उन्होंने लोगों को बड़ी सहायता दी थी।

इस आश्रम के विषय में जिन्हें कुछ विशेष बातें और जाननी हों, वे निम्नलिखित पते पर पत्रव्यवहार करें—

Miss Mary Lougdon, M. D., D. P. H.,
Tuberculosis Sanatorium, Pendra Road,
B. N. Ry., C. P.

(प्यारेलाल गुप्त)

३—पण्डित खड्गजीत मिश्र।

आज़ सरस्वती के पाठकों को पण्डित खड्गजीत मिश्र का चित्र भेंट किया जाता है। अभी थोड़े दिन हुए, इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इन्हें एडवोकेट बनाया है। हाईकोर्ट में वकालत करनेवाले वकील भी कम एडवोकेट बनाये जाते हैं, उन वकीलों की कौन कहे जो मुफ़स्सिल ज़िलों में वकालत करते हैं। उन्हें तो यह पद और भी कम नसीब होता है। मिश्रजी के लेख कई बार सरस्वती में निकल चुके हैं।

पण्डित खड्गजीत मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट

मैंनपुरी में जो नागरी-प्रचारिणी शाखा-सभा है उसके अनेक वर्ष तक आप मन्त्री रहे हैं, और अब सभापति हैं। इनका जन्म मैंनपुरी में सन् १८७५ में, चतुर्वेदी-ब्राह्मण के एक प्रतिष्ठित कुल में, जिसको ख़ज़ानची कहते हैं, हुआ है। यह कुल ख़ज़ानची इस कारण से कहलाता है कि पहले इनके पूर्वजों के सुपुर्द मैंनपुरी के ज़िले भर का ख़ज़ाना था। इससे प्रकट है कि इनके पूर्वज धनाढ्य थे। अब भी इनकी ज़मींदारी कई मौज़ों में है। मिश्र खड्गजीत की शिक्षा मैंनपुरी में हुई। तदनन्तर सहारनपुर में, जहाँ इनके पिता सरकारी मुलाज़िम थे। इन्होंने एन्ट्रेंस प्रथम भाग में, १८९० में, पास किया और आगरा-कालिज में भरती हुए। सन् १८९४ में संस्कृत और फ़िलासफ़ी लेकर बी० ए० पास किया और १८९६ में एम० ए० तथा एल-एल० बी० दोनों परीक्षाएँ पास कीं। इस साल केवल दो छात्र प्रथम भाग में एल-एल० बी० में थे। उनमें से एक मिश्रजी थे। सन् १८९७ से वकालत आरम्भ की। सन् १९०१ में जब मैनपुरी में सरकारी वकालत ख़ाली हुई तब ये इस पद पर नियुक्त किये गये। जब इटावे में प्रसिद्ध जालसाज़ी का मुक़द्दमा हुआ था तब आप ही सरकारी वकील थे। मुलज़िम को १४ वर्ष का कालापानी हुआ था। क़रीब ११ वर्ष के बाद आपने सरकारी वकालत छोड़ दी। अब स्वतन्त्र वकालत करते हैं। आपकी वकालत दीवानी तथा फ़ौजदारी दोनों में उत्तम है और सरकार में भी आप का सन्मान है। सन् १८९७ से म्यूनीसपल कमिश्नर हैं और तीन वर्ष से चेयरमेन, ५ वर्ष से आनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं और अब असिस्टेन्ट कलक्टर भी हैं। जिस आगरा-कालिज में आप विद्यार्थी थे उसके अब सरकारी ट्रस्टी (Trustee) भी हैं। कोआपरेटिव बङ्क के डाइरेक्टर और कोर्ट आफ वार्ड्स की सरकारी कमेटी के मेम्बर हैं। आपकी रहन-सहन साधारण है और धर्म्मिष्ट होने के कारण उस प्रान्त के सभी अच्छे कामों में आप योग दिया करते हैं।

४—पद्यों में कादम्बरी।

क्षेमेंद्र कवि कश्मीर में ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ है। उसने अपने औचित्य-विचार-चर्चा नामक ग्रंथ में भट्टबाण की कादम्बरी से यह उदाहरण दिया है—

हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः॥

इसमें कादम्बरी के विरह का वर्णन है।

यह श्लोकबद्ध कादम्बरी अब नहीं मिलती। पर यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस महाकवि के पुत्र ने उत्तर कादम्बरी कैसे लिखी। (व्रजलाल एम० ए०)

पुस्तक-परिचय ।

१—ताप । लेखक, प्रेमवल्लभ जोशी, बी० एस-सी०; प्रकाशक विज्ञान-परिषत्, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ९६ मूल्य ।=)

यह विज्ञान-पुस्तकमाला की दूसरी पुस्तक है। इसके दो संस्करण अभी तक निकल चुके हैं। इस ग्रंथमाला के द्वारा हिन्दी-साहित्य का बड़ा उपकार हो रहा है। इसके चित्र स्वच्छ और भाषा रोचक है। आशा है विज्ञान-परिषत् अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित करके हिन्दी-साहित्य की अच्छी सेवा करेगी। पुस्तक में विशेषता यह है कि पुस्तक स्वतंत्र रूप से लिखी गई है।

⁂

२—वीरपूजा । लेखक पं० रूपनारायण पाण्डेय, प्रकाशक, पन्नालाल सिंघई भारत-गौरव-ग्रंथमाला, २३ अलीपूर रोड, कलकत्ता। मूल्य १)

यह पुस्तक बँगला के सुप्रसिद्ध लेखक हरनाथ वसु की बँगला वीरपूजा का अनुवाद है। इस नाटक की भाषा ओजस्विनी तथा आवेश-पूर्ण है जिससे कुछ कुछ मूल पुस्तक का रस आ जाता है। कथा औरंगज़ेब के समय में मुग़लों तथा मरहठों के युद्ध के आधार पर लिखी गई है।

⁂

३—जीवन-वेद । अनुवादक, वसन्तलाल गुप्त; प्रकाशक स्टार प्रेस, प्रयाग; मूल्य १) पृष्ठ-संख्या १६०; पुस्तक ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध आचार्य्य श्रीयुत केशवचन्द्र सेन के स्वलिखित जीवन-वेद का हिन्दी-अनुवाद है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। ब्रह्मसमाज में इस पुस्तक का बड़ा आदर है। अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

⁂

४—प्राच्य और पाश्चात्य । अनुवादक, पंडित नरोत्तम व्यास; प्रकाशक, साहित्य-रत्न-कार्य्यालय, आगरा। पृष्ठ-संख्या ६० मूल्य ।≡)

यह साहित्य-ग्रन्थमाला की चौथी पुस्तक स्वामी विवेकानन्द की बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। स्वामी जी ने पश्चिमी देशों में अनेक वर्षों तक भ्रमण करने के बाद पूर्वी और पश्चिमी सभ्यताओं का मूल तत्त्व समझ कर इस पुस्तक में भारतोत्थान का रास्ता दिखाया है। भाषा सरल है। स्वामी जी का एक चित्र भी दिया गया है।

⁂

५—सप्तसुमन । अनुवादक, श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा; प्रकाशक, साहित्य-रत्नमाला कार्य्यालय, आगरा; मूल्य ॥) पृष्ठ-संख्या १७१ साहित्य-ग्रंथमाला की यह पांचवीं पुस्तक बाबू शरच्चन्द्र घोषाल की बँगला गल्पों का अनुवाद है। गल्पें रोचक और मनोहर हैं।

चित्र-परिचय ।

(१)

फारस देश की एक महिला (रङ्गीन)

इस संख्या में 'फ़ारस देश की एक महिला' का रङ्गीन चित्र दिया जाता है। यह अपने प्रेमपात्र की क़ब्र पर चिराग़ रखने जा रही है। यह चित्र भी श्रीयुत बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा, चित्रकार, की कारीगरी का नमूना है।

(२)

हिन्दी-साहित्य-प्रदर्शिनी, इन्दौर ।

हिन्दी-साहित्य-प्रदर्शिनी, इन्दौर, का चित्र प्रकाशित किया जाता है। यह प्रदर्शिनी अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर इन्दौर के सुप्रसिद्ध 'एडवर्ड हाल' में महात्मा गान्धी जी द्वारा खोली गई थी।

इसमें लगभग चार सहस्र छपी हुई हिन्दी-पुस्तकें, बहुत से हस्त-लिखित ग्रन्थ, शिलालेख, ताम्रपत्र, चित्र, मासिक पत्र, समाचारपत्र (मृत और प्रचलित) और पुराने सिक्के प्रदर्शित किये गये थे।

लगभग दश सहस्र स्त्री-पुरुषों ने इसे देखा था।

सम्मेलमन के अधिवेशन को समाप्त करते समय महात्मा गान्धो जी ने कहा था—

"प्रदर्शिनी-समिति ने भी बहुत अच्छा काम किया है। मैं प्रदर्शिनी में स्वयं गया था, और बहुत से लोगों से उसकी तारीफ़ सुनता हूँ। खेद है कि मैं प्रदर्शिनी की चीज़ों को अच्छी तरह नहीं देख सका। जब जब सम्मेलन हो तब तब ऐसी ही प्रदर्शिनी होनी चाहिए। इनसे ज़्यादह काम होगा"।

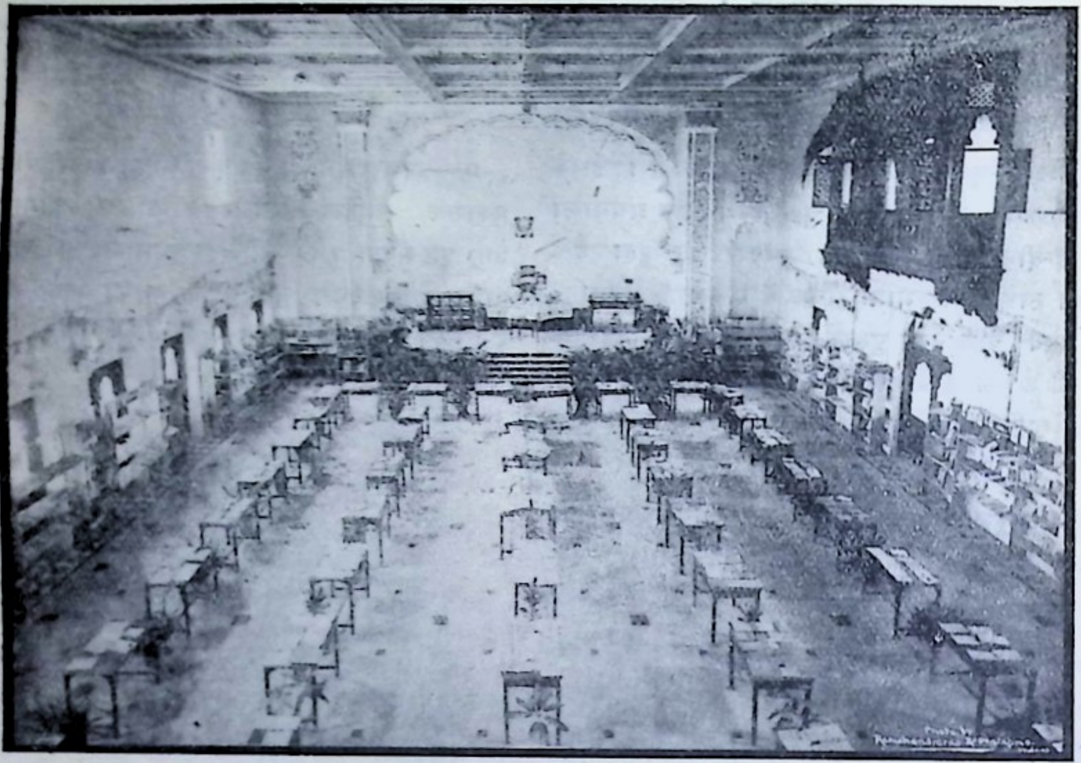

हिन्दी-साहित्य-प्रदर्शिनी, इन्दौर।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

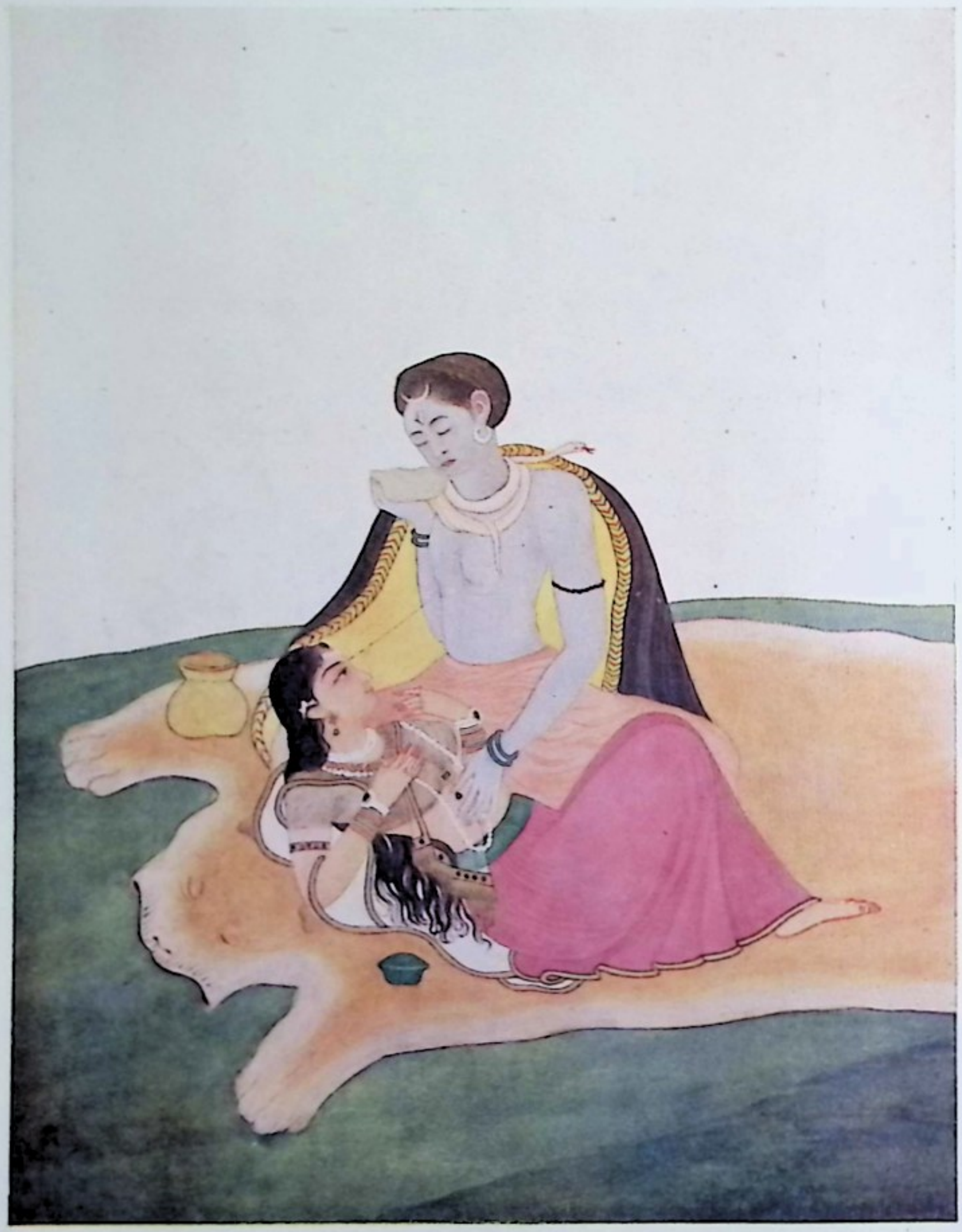

शङ्कर-पार्वती ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड १] जून १९१९—आषाढ़ १९७६ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २३४

आकांक्षा।

हे नन्द के कन्हैया, तुम हो निपट निरंजन;
भव-पोत के खेवैया, हो दुःख के निकन्दन ॥ १ ॥
अमरावती लजाती, ब्रज-वीथियाँ रहीं जो,
सूनी पड़ी हैं कहिए, क्यों आज नन्द-नन्दन ? ॥ २ ॥
तेरा प्रशस्त गाना, मुरली मधुर बजाना,
क्यों लुप्त हो गये सब, हे भक्त-भीति-भंजन ॥ ३ ॥
क्यों बन निठुर निराले, हमको भुला दिया है ?;
क्या है उचित तुम्हें यह, सर्वेश विश्व-वन्दन ! ॥ ४ ॥
यह दीन देश भारत, नित हो रहा है गारत;
भूखों तड़प रहा है, करके कराल क्रन्दन ॥ ५ ॥
हों कर्मवीर हम में, हों धर्मवीर हम में,
हो क्रूरता न हम में, हे दुष्ट-दर्प-खंडन ! ॥ ६ ॥
सुनकर विनय हमारी, सुख-शान्ति दे हमें तू;
दुख दे रहा है हमको, संसार-जाल-बन्धन ॥ ७ ॥
आलस्य-हीन हम हों, कर्त्तव्य-लीन हम हों;
सुख-भानु का उदय हो, बस है यही निवेदन ॥ ८ ॥

शिवकुमार त्रिपाठी

महाकवि भवभूति।

संस्कृत-साहित्य के भाण्डार को भरा पूरा करनेवाले प्रायः जो कवि हुए हैं, उनमें कहाकवि भवभूति का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। दूसरे कवियों की अपेक्षा भवभूति में कुछ ऐसी विचित्र-

तायें हैं, जिनके कारण इनका केवल इसी देश में नहीं वरन् सात समुद्र पार भी आदर हुआ है। यदि कालिदास के बराबर इनका मान नहीं है, तो इसका कारण केवल यही है कि कालिदास की लेखन-शैली प्रांयः सरल तथा स्वाभाविक है। और इनकी दुरूह तथा वैभवशील है। जैसा अन्तर एक हँसमुख तथा गम्भीर मनुष्य में होता है, वैसा ही अन्तर कालिदास और इनमें भी है। जैसे लोग हँसमुख मनुष्य को गम्भीर स्वभाववाले से अधिक चाहते हैं, वैसे ही लोग कालिदास तथा उनकी कविता को इनसे तथा इनकी कविता से अधिक पसन्द करते हैं। यही कारण है कि कालिदास के समान ये सर्वसाधारण के प्रेमपात्र नहीं हैं। हाँ, जैसा कि प्रोफ़ेसर राइडर ने कहा है कि जो लोग लेखनशैली की उग्रता तथा दुरूह-पद-विन्यास से भयभीत नहीं होते, उनकी निगाह में भवभूति नाटककारों में कालिदास से भी आदरणीय हैं। भवभूति ने स्वयं "मालतीमाधव" की प्रस्तावना में अपनी रचना के विषय में कहा है—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैप यत्नः।
उत्पत्स्यतेस्ति मम कोपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

अर्थात् जो लोग हमारी कविता का अनादर करते हैं वे बहुत ही थोड़ा जानते होंगे। उनके लिए यह (काव्य-निर्माण का) यत्न नहीं है किन्तु मेरे ही सदृश कोई उत्पन्न होगा, या इसी समय वर्तमान हो उसके लिए है क्योंकि समय और भूमि निष्परिमाण हैं।

वास्तव में कवि के सदृश रुचिवाले ही कवि के काव्य से आनन्द उठा सकते हैं। इस श्लोक में एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह है भवभूति का गर्व-राहित्य। भवभूति ने अपने काव्य की अवज्ञा करनेवालों को श्रीहर्ष या कुछ दूसरे कवियों की तरह टेढ़ी सूधी नहीं सुनाई। केवल जैसी बात थी उसको वैसा ही कह दिया। यह एक कहावत भी प्रसिद्ध है—

कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।

इसके सिवा उनके समकालीन एक दूसरे-कवि वाक्पतिराज ने उनके सम्बन्ध में प्राकृत में एक श्लोक लिखा है, जिसका यह संस्कृत-अनुवाद है:—

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसाः कणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेपा अद्यापि विकटेपु कथानिवेशेपु॥

अर्थात्, भवभूति रूपी समुद्र से निकले हुए काव्यामृतरस कणों के समान चमकते हैं, जिसके विशेष आज भी विकट कथा-प्रबन्धों में विद्यमान हैं।

भवभूति किस समय में हुए, यह बात अब स्थायी रूप से सिद्ध हो गई है। ये सप्तम शताब्दी के अन्त तथा आठवीं के प्रारम्भ में थे। जिन सङ्केतों द्वारा विद्वानों ने यह परिणाम निकाला है वे ये हैं—

(१) राजतरङ्गिणी के एक श्लोक द्वारा यह साबित होता है कि ये कन्नौज के राजा यशो-वर्म्मा की सभा में कवि थे। वह श्लोक यह है—

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्म्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

(२) प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वानच्वाङ् के भारत-भ्रमण के समय ६९३ से ७२९ ई० तक ललितादित्य काश्मीर के राजा थे। उन्होंने यशोवर्मा को ७२४ ई० में हराया। इससे यशोवर्म्मा का राज्यकाल आठवीं सदी के प्रारम्भ में निश्चित होता है।

अतएव यह सिद्ध हुआ कि भवभूति भी इसी समय में रहे होंगे।

भवभूति के जन्म-स्थान तथा वंश के संबन्ध में बहुत कुछ हाल उन्हीं के ग्रन्थों से मिलता है। वे विदर्भ देश में पद्मपुर नगर के निवासी थे। आर्यासप्तशती की टीका में अनन्त पण्डित ने बतलाया है कि इनका असली नाम श्रीकण्ठ था। पर उन्होंने जबसे एक श्लोक रचा तबसे उनका नाम भवभूति पड़गया। वह श्लोक यह है—

तपस्वी कां गतोवस्थामिति स्मेराननाविव।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ॥

पर महावीरचरित्र के टीकाकार वीरराघव ने लिखा है कि (साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्त्तिः) इस श्लोक के रचने से उनका यह नाम पड़ा। शेष सिद्धान्त अनन्त पण्डित के समान ही है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि उनका नाम भूगर्भ भी था। पर ये सब दन्तकथायें मालूम होती हैं। क्योंकि उन्होंने स्वयं जहाँ पर अपने नाम का उल्लेख किया है लिखा है—(श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम) इससे भवभूति ही उनका असली नाम सिद्ध होता है।

वे कश्यपगोत्रीय श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। उनके पूर्वजों ने वाजपेय यज्ञ भी किया था। भवभूति स्वयं उनकी बाबत कहते हैं:—

(तैत्तिरीयिणः, काश्यपाश्चरणगुरवः, पंक्तिपावनाः, पञ्चाग्नयो, धृतव्रताः, सोमपीथिनो, ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।)

भट्टगोपाल उनके पितामह का नाम था, नीलकण्ठ उनके पिता तथा जातूकर्णी उनकी माता थीं। उन्होंने ज्ञाननिधि परमहंस से शिक्षा पाई थी।

यथा—(तत्रभवतः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः)

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिरा।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः॥

कुछ लोगों के मत में ये ज्ञाननिधि के नहीं वरन् कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। यदि यह बात ठीक मानी जाय तो ज्ञान-निधि उनकी उपाधि होगी।

भवभूति केवल कवि ही नहीं किन्तु दर्शनादि अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ पण्डित थे। विद्वान् की विद्वत्ता उसकी बात बात में झलकती है। वैसी ही भवभूति की विद्वत्ता उनके ग्रन्थों के पद पद में भरी हुई है। भवभूति ने अपने एक नाटक में बतलाया है—वेदान्त, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों के ज्ञान से और नाटक-रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है। यथा—(यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद्गुणो नाटके।)

पर स्वयं रचना करते हुए हमारे कवि के ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उनकी झलक आ ही गई है। यथा उन्होंने (सोलह नाड़ियाँ) (शक्तियाँ) (षड-चक्र) (हृत्पद्म) इत्यादि तन्त्र तथा योगशास्त्रीय शब्दों के प्रयोग, "वृत्ति" तथा "विवर्त" सम्बन्धी ज्ञान का ज़िक्र कई स्थलों पर किया है।

भवभूति के लिखे आजकल तीन ग्रन्थ उपलभ्य हैं "महावीरचरित," "उत्तररामचरित" तथा "मालतीमाधव"। इनमें से पहले दो नाटक हैं, और अन्तिम प्रकरण (यह भी रूपक का एक भेद है) महावीरचरित में उन्होंने रामचन्द्र के विश्वामित्र के साथ जाने के समय से लेकर उनके राज्याभिषेक तक का वर्णन किया है। आनन्दराय बरुवा के मत में रामचरित-सम्बन्धी यह पहला ही अभिनय है। वे कहते हैं "उनके वीर-चरित में रामचन्द्र के जीवन-सम्बन्धी किसी दूसरे रूपककार का ज़रा भी ज़िक्र नहीं है। वे (कवि) केवल वाल्मीकि के बृहद्ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं। यथा—

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां
यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।

भक्तस्य तत्र समरंसत मेपि वाचः
तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम् ॥

कवि ने स्वयं भी तो कहा है—(किन्त्वपूर्वत्वात्प्रबन्धस्य कथापदेशं समारम्भे ज्ञातुमिच्छन्ति)

इसके अतिरिक्त अनर्घराघव की रचना में मुरारि कवि को, प्रसन्नराघव की रचना में जयदेव को तथा बालरामायण की रचना में राजशेखर को बहुत सहायता मिली है जो कि इन ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट हो जाती है।

भवभूति के रचे अनेकों पद्य अलङ्कार-ग्रन्थों में उद्धृत किये गये हैं। इससे कवि का अत्यन्त गौरव झलकता है।

उत्तररामचरित में रामचन्द्र के अवशिष्ट जीवन का वृत्तान्त है। नाटकों की खानि में यह सर्वोत्तम रत्नों में से एक है। करुणारस इसमें प्रधान है तथा उसके प्रदर्शन में कवि की चातुरी को देखकर दाँतों में उँगली दबानी पड़ती है।

इनका तीसरा ग्रन्थ मालतीमाधव है। इसे लोग इनका अन्तिम काव्य मानते हैं। यथा—किसी टीकाकार ने लिखा है—"कविकुलतिलकस्यानय काव्यं किलेदम्" इसमें कवि की कल्पना-शक्ति का लोकोत्तर परिचय मिलता है।

नाटक में क्या क्या गुण होने चाहिए इस विषय में मालतीमाधव की प्रस्तावना में कवि ने स्वयं कहा है—

भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः
सौहार्द हृद्यानि विचेष्टितानि।
औद्धत्यमायो जितकामसूत्रं
चित्रा कथा वाचि विदग्धता च ॥

(रसों की अधिकता से गम्भीर अभिनय, पात्रों के चरित्र-प्रीति से युक्त और औद्धत्य चञ्चलतादि) काम के निमित्त हो और कथायें आश्चर्य-जनक हों तथा वाणी में चातुर्य्य होना चाहिए।

प्रायः इनके रूपक इन सब गुणों से भरे हुए हैं। इनमें यह बड़ी ख़ूबी है कि इनके नाटकों के नायक सब उत्तम हैं। जिन नाटकों में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र नायक हैं उनका तो कहना ही क्या, वरन् अपने मालतीमाधव प्रकरण में जिसमें इन्हें अपनी रुचि के अनुसार नायक-निर्माण की पूरी स्वतन्त्रता थी, उसमें भी प्रायः इन्हीं के गुणों के सदृश नायक की आयोजना की है।

कालिदास तथा दूसरे कुछ कवियों की तरह इन्होंने नायकों के आचार विचार में ऐसी बातों का समावेश नहीं किया है जिससे समाज पर बुरा असर पड़े।

जिन दो नाटकों में इन्होंने रामचरित का अभिनय रचा है उनमें वाल्मीकि की कथा के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा करते हुए भी कवि ने कई स्थलों पर उसे भङ्ग किया है। कतिपय उदाहरण ये हैं—विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण और सीता-उर्मिला का मिलाप तथा उन्हीं के आश्रम में हर-धनुष-भङ्ग, परशुराम का सीयस्वयंवर के समय में ही आना, भरत का राम-वनवास के समय अयोध्या में होना एवं लव तथा चन्द्रकेतु के साथ लड़ाई होना अन्त में सीता का भूगर्भ में समा जाने के बजाय श्रीरामचन्द्रजी के साथ फिर निवास करना।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं—भवभूति की लेखनशैली एक विचित्र प्रकार की गम्भीरता से भरी हुई है जो दूसरे कवि में नहीं मिलती। इसीलिए इनकी कविता में हास्य-रस का समावेश नहीं है * यही कारण है कि इनके रूपक प्रायः सब को नहीं रुचते।

---

[1] भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
श्रृङ्गारोङ्गी नायकस्तु विप्रोमात्योथवा वणिक् ॥
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः।
नायिका कुलजा कापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ॥
साहित्य-दर्पण

यह प्रकरण का लक्षण है।

* इसी से इनकी कृतियों में विदूषक का बिलकुल नाम निशान नहीं।

भवभूति की कल्पना-शक्ति बड़ी ही प्रखर तथा ऊँचे दर्जे की है। कालिदास तो एक मामूली बात को या साधारण प्राकृतिक दृश्यों को साधारण ही रीति से वर्णन करते हैं। पर भवभूति के वर्णनों में बड़ी विचित्रता रहती है। यह बात उनमें यहाँ तक बढ़ी चढ़ी है कि वे बहुधा प्राकृतिक दृश्यों या वस्तुओं को वर्णन करते समय अदृश्य विचारों से उनकी उपमा देते हैं, जिसे हम आगे स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

वैसे तो भवभूति प्रायः सभी रस-सम्बन्धी चित्रों के खींचने में बड़े चतुर चित्रकार हैं, परन्तु बीभत्स और करुणा-रस में उनके चातुर्य्य को देखकर चकित होना पड़ता है। देखिए बीभत्सरस—

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोथभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ठदेशान्वयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा।
आर्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिमांसं स्वपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति॥

भा० अर्थ—भूख से व्याकुल, इधर उधर दृष्टि निक्षेप करते हुए, दाँतों को निकाले, दीन पिशाच पहले मुर्दे की खाल को उकेल उकेल कर शोथ-रोग से एकत्रित, कन्धे, नितम्ब, पीठ आदि अङ्गों के सुल और दुर्गन्धित मांस को खाकर पुनः हड्डियों में चिपटा हुआ नीचे स्थानों में लगा हुआ भी मांस बड़ी रुचि से खाता है।

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिक घटाघूत्कारसंवेल्लित-
क्रन्दत्फेरवचण्डडात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैस्तटैः।
अन्तः शीर्णकरङ्ककर्करतरत्संरोधिकूलङ्कष-
स्रोतो निर्गमघोरघर्घररवापारे श्मशानं सरित्॥

भा० अर्थ—कुञ्जकुटीरों में बोलनेवाले घुग्घुओं की घू घू की आवाज़ से मिश्रित, शृगालों की बोली से व्याप्त तटवाली और जिसके प्रवाह के अन्दर मुर्दों की हड्डियाँ कर्कर शब्द कर रही हैं, जिसके किनारों के सोतों से घर्घर पानी गिर रहा है, ऐसी नदी श्मशान के निकट है। (यह दोनों पद्य मालतीमाधव में श्मशान-वर्णन के हैं।)

अब करुणा-रस देखिए—

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा।
विश्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥

भा० अर्थ—सीता-वियोग से दुःखित रामचन्द्र का यह वाक्य उत्तररामचरित में है। हा देवि! हृदय फटा जाता है, देहबन्ध (सन्धियाँ) टूटा जाता है। संसार सूना है, हृदय में निरन्तर जला जाता हूँ, आत्मा कम्पित हो, अन्धकार में डूब रहा है, मोह घेरे लेता है, मैं अभागी क्या करूँ?

आजन्मनः सह निवासितया मयैव
मातुः पयोधररसोऽपि समं निपीय।
त्वं पुण्डरीकमुख बन्धुतया निरस्त-
मेको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम्॥

भा० अर्थ—हे पुण्डरीक-मुख! जन्म से लेकर मेरे साथ रहनेवाले, माता का स्तन्य-पान भी साथ ही करनेवाले, तुम अब जो बन्धुओं के तर्पण किये जल को अकेले (मेरे बिना) पीते हो यह ठीक नहीं।

(यह श्लोक मकरन्दवियुक्त माधव का मालती-माधव में है।)

अन्य रसों के भी उदाहरण देखिए।

अयं स भृगुनन्दनस्त्रिभुवनैकवीरो मुनिः
य एष निचयो महानिव दुरासदस्तेजसाम्।
प्रतापतपसोरिव व्यतिकरः स्फुरन्मूर्तिमान्
प्रचण्ड इव पिण्डतामुपगतश्च वीरो रसः॥

भा० अर्थ—महावीरचरित में यह परशुराम का वर्णन है।—

यह तीनों लोकों में मुख्य वीर, तेजःपिण्ड, दुरवलोकनीय, मानों प्रताप और तप दोनों के मिश्रीभाव हैं, एकत्रित वीर-रस ऐसे, भृगुनन्दन (परशुराम) मुनि हैं।

लवः—कोहि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति यदि नाम किंचिदस्ति वक्तव्यम् अथवा शान्तं पापम् ।......कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैनिकान् संस्तम्भयापि ॥ (सहासम्) आर्य जामदग्न्यस्य दमनः स राजा—इति कोयमुच्चैर्वादः। ......एहि विमर्दक्षमामेव भूमिमवतरावः।......... किं व्यवस्थितविषयः क्षात्रधर्मः ?

ये वाक्य उत्तररामचरित के लव-चन्द्रकेतु-संवाद के हैं। ऊपर के श्लोक तथा इन वाक्यों के प्रत्येक शब्द से वीररस टपक रहा है। भवभूति के वीररस के नमूने उ० रा० च० के ५। ६, अङ्कों में खूब ही मिलते हैं।

मनोरोगस्तीव्रो विषमिव विसर्पत्यविरतं
प्रमाथी निर्धूमो ज्वलति विधुतः पावक इव ।
हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानितइतो
न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती ॥

भा० अर्थ—विष के समान निरन्तर दुःखदायी मनोरोग शरीर में फैल रहा है, वायु से उत्तेजित अग्नि ऐसा जल रहा है, बड़े ज्वर की भाँति एक तरफ़ प्रत्येक अङ्ग को पीड़ित कर रहा है। इस विपत्ति से माता पिता या आप मेरी रक्षा नहीं कर सकतीं। मालतीमाधव में यह मालती का वचन अपनी सखी के प्रति है।

उद्दामदेहपरिदाहमहाज्वराणि
सङ्कल्पसङ्गमविनोदितवेदनानि ।
त्वत्स्नेहसंविदवलम्बितजीवितानि
किंवा मयापि न दिनान्यतिवाहितानि ॥

भा० अर्थ—उत्कट जलनवाले ज्वर की तरह शरीर को जलानेवाले, संकल्प-समागम से पीड़ा शान्त करनेवाले, तुम्हारे स्नेह-ज्ञान से ही जीवन अवलम्बित करनेवाले दिन क्या मैंने नहीं व्यतीत किये ? यह वचन मालती के प्रति माधव का है। ऊपर के दोनों श्लोकों में शृङ्गार-रस है।

अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि स्खलदसमञ्जस मञ्जु जल्पितं ते ॥

भा० अर्थ—जिसमें रोना और मुस्कराना दोनों अनिश्चित हैं, और कुछ कोमल दाँतों से युक्त, तुतलाने से सुन्दर वचनवाले अपने बच्चे (सीता) के मुखकमल का स्मरण करता हूँ। उत्तररामचरित में यह जनक की उक्ति सीता के प्रति है। इसमें वात्सल्यरस पूर्णतया विद्यमान है।

एतद्वैशसघोरवज्रपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः
क्रोधस्य ज्वलितुं धगित्यवसरश्चापेन शापेन वा ।
शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं तत्पुत्रभाण्डं हि मे/
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः ॥

भा० अर्थ—सीता-परित्याग के अनन्तर यह जनक का वाक्य है। इसमें वीर, वात्सल्य और करुण तीन रस हैं। मेरे देखते ही देखते, घातक यह घोर वज्र-पात हो गया, अब शाप या चाप के मेरे क्रोध से धक् धक् जलने का समय है। × × + अथवा राम के विषय में यह दोनों (शाप-चाप) शान्त हों क्योंकि वही मेरा पुत्र रत्न है और नगरवासी भी प्रायः स्त्रियाँ ब्राह्मण, बालक, बुड्ढे, अपाहिज और स्त्री हैं।

अब कवि के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन देखिए।

पद्मावतीविमलवारिविशालसिन्धु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति ।
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट-
संघट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरिक्षम् ॥

भा० अर्थ—यह पद्मावती नगरी का वर्णन मालतीमाधव में है। यह पद्मावती नगरी निर्मल जल तथा विशाल सिन्धु और पारा इन दोनों नदियों से घिरी हुई ऐसी शोभित है मानो अपने अन्तर्गत देवमन्दिर, पुरद्वार और अण्टों के संघर्ष से इसने आकाश को तोड़कर नीचे डाल दिया है।

यत्रत्य एष तुमुलो ध्वनिरम्बुगर्भ-
गम्भीरनूतनघनस्तिमितप्रचण्डः ।
पर्यन्तभूधरनिकुञ्जविजृम्भणेन
हेरम्बकण्ठरसितप्रतिमानमेति ॥

भा० अर्थ---यह सिन्धु नदी के जलपात का वर्णन है—जहाँ पर जल से भरे हुए नवीन मेघों के समान गर्जने की सी ध्वनि हो रही है जो ध्वनि आसपास के पर्वत तथा निकुञ्जों को गुञ्जा रही है तथा गणेश के कण्ठ-शब्द का अनुकरण कर रही है, वह ध्वनि नदी-प्रपात की है।

अयमभिनवमेघश्यामलोत्तुङ्गसानु-
मेदमुखरमयूरीमुक्तसंसक्तकेकः।
शकुनिशबलनीडानोकहस्निग्धवर्ष्मा
वितरति बृहदश्मा पर्वतः प्रीतिमक्ष्णोः॥

भा० अर्थ—यह पर्वत का वर्णन है—नवीन जलदों से श्याम तथा उच्चशिखरवाला, मद से वाचाल मयूरी की केक (मोर का शब्द) से व्याप्त, पक्षियों के घोंसलेवाले वृक्षों से स्निग्ध शरीरवाला तथा बड़े बड़े पत्थरवाला यह पर्वत नेत्रों को आनन्द देता है।

जृम्भाजर्जरडिम्बडम्बरघनश्रीमत्कदम्बद्रुमाः
शैलाभोगभुवो भवन्ति ककुभः कादम्बिनीश्यामलाः।
उद्यत्कन्दलकान्तकेतकभृतः कच्छाः सरित्स्रोतसा-
माविर्भूतशिलीन्ध्रलोध्रकुसुमस्मैराननानां ततिः॥

भा० अर्थ—यह वर्षाकाल की शोभा का वर्णन है।—विकाश से जीर्ण पत्रवाले पुष्पों से युक्त कदम्बवृक्षों से भरी हुई पर्वत-प्रान्त-भूमि है, दिशायें मेघमाला से श्याम होरही हैं, नदियों के किनारे अङ्कुरित केतकों से भरे हुए हैं तथा वन उगे हुए शिलीन्ध्र और लोध के पौदे मुस्करा रहे हैं।

व्योम्नस्तापिच्छगुच्छावलिभिरिवतमोवल्लरीभिर्व्रियन्ते
पर्यन्ताः प्रान्तवृत्या पयसि वसुमतीनूतने मज्जतीव।
वात्या संवेगविष्वग्वितवलयितस्फीतधूम्याप्रकाशं
प्रारम्भेपि त्रियामाऽतिरुणयति निजं नीलिमानं वनेषु॥

भा० अर्थ—यह सन्ध्या का वर्णन है—आकाश चारों ओर तमाल-लताओं से ऐसे अन्धकार-लताओं से घिर गया है, भूमि एक प्रकार के नवीन जल में डूब सी रही है, रात्रि अपने प्रारम्भ में भी वनों में हवा से उड़ाये हुए धूम के समान अँधेरे को फैलाती हुई अपनी तरुणता दिखाती है। पूर्वोक्त चारों पद्य मालतीमाधव के हैं।

आपको अब विदित हो गया होगा कि भवभूति कैसे कवि थे, यह भी आप भलीभाँति विचार सकते हैं, अन्य कवियों में सब गुण नहीं होते पर महाकवि भवभूति में तथा उनकी कविता में सब गुण विद्यमान हैं।

नारायण

शान्ति और राष्ट्र-सङ्घ।

मनुष्य के लिए युद्ध से बढ़कर हानिकारक और कोई वस्तु नहीं है। वह इस बात को सदा से जानता आया है। शान्ति बनाये रखने और युद्ध न होने देने के लिए भी मनुष्य सदा से प्रयत्न करता रहा है। प्रत्येक युद्ध के पश्चात् मनुष्य ऐसा प्रयत्न करता है जिससे कि फिर युद्ध होने की सम्भावना न रहे; परन्तु अभी तक इस प्रयत्न में कोई सफल नहीं हुआ। एक युद्ध के बाद दूसरा युद्ध होता है, और वह दूसरा पहले से अधिक भीषण और कष्टदायक होता है। जिस प्रकार प्रेसिडेन्ट विलसन और अन्य राष्ट्रशासक अभी शान्ति के कार्य में लगे हुए हैं, उसी प्रकार प्रत्येक युद्ध के होने के बाद मनुष्यों ने चेष्टा की, परन्तु शान्ति चिरस्थायिनी न हुई। इन युद्धों का कारण यह नहीं है कि मनुष्य स्वभाव से ही युद्ध का प्रेमी है, उसे शान्ति नहीं भाती। क्योंकि कुटुम्ब में, देश में और संसार में मनुष्य सदा शान्ति चाहता है। इतना होने पर भी कलह होने का कारण यही जान पड़ता है कि मनुष्य झगड़े के असली कारणों की जाँच करके उनके निर्मूल करने का प्रयत्न नहीं करता और उन कारणों का बीज सदा के लिए बना रहता है जो अवसर पाकर अङ्कुरित होजाता है।

इन युद्धों के होने का असली कारण मनुष्यों की स्वार्थ-बुद्धि है, जिससे वे प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल शान्ति

स्थापित करने का यत्न करते हैं। जब कोई देश दूसरे देश को बल-पूर्वक अपने अधिकार में कर लेता है और सन्धि करा लेता है तब वह समझता है कि उसने सदा के लिए शान्ति स्थापित करली। परन्तु अधिकृत देश के वासी अवसर पाकर फिर सिर उठाते हैं और युद्ध होने लगता है। तब मनुष्यों को ज्ञात होता है कि पहली सन्धि क्षणिक ही थी। इटली और ग्रीस के युद्ध इसी कारण हुए। यूरोपवासियों को ज्ञात होगया कि किसी एक देश को बलपूर्वक अधिकृत करके, उसकी जनता को स्वाभाविक अधिकार न देकर, दबा रखने से कोई लाभ नहीं होता। परन्तु स्वार्थ-परता इन सब सिद्धान्तों के प्रतिकूल काम करा बैठती है। आस्ट्रिया के अधिकार में बहुत से मनुष्य सर्विया के वासियों की जाति के थे और वे लोग आस्ट्रिया के शासन से असन्तुष्ट थे। आस्ट्रिया को विश्वास था कि वह अपनी सेना के बल से उन्हें अपने अधिकार में रखेगी और छोटा सा देश सर्विया उसका कुछ न कर सकेगा। परन्तु प्रकृति का सिद्धान्त अटल है। उसी छोटे से देश सर्विया के पक्ष की विजय हुई। और एक बार फिर मनुष्यों को मालूम हो गया कि स्वाभाविक नियमों के प्रतिकूल किसी जनसमूह को पाशविक बल द्वारा दबा रखना ही युद्ध की जड़ है और जब तक संसार के सब मनुष्यों को स्वतन्त्रता और समानता के स्वाभाविक अधिकार न दिये जायँगे तब तक पृथ्वी पर स्थायी शान्ति की आशा करना वृथा है।

इस युद्ध के पहले युद्ध न होने देने का जो प्रयत्न सोचा गया था वह सफल न हुआ। वह प्रयत्न इस सिद्धान्त पर अवलम्बित था कि युद्ध के होने का कारण किसी एक राष्ट्र की विशेष प्रबलता है जिसके द्वारा वह राष्ट्र अपने पासवाले बल-हीन राष्ट्रों को दबा देता है और अन्य देशों से भूमि छीनने के लिए युद्ध करने लगता है। इस लिए युद्ध-निवारण का यही उपाय समझा गया था कि कोई एक विशेष राज्य बहुत शक्तिवाला न होजाय और उसकी शक्ति अन्य देशों की शक्ति से न बढ़ने पावे। इस सिद्धान्त को बैलेन्स आव् पावर (Balance of power) यानी शक्ति के तारतम्य का सिद्धान्त कहते हैं। परन्तु इससे भी कोई लाभ न हुआ। जितने युद्ध हुए वे किसी शक्तिशाली राष्ट्र के अग्रसर होने से नहीं हुए, किन्तु छोटे और बलहीन और बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा सताये हुए राष्ट्रों के उठ खड़े होने से हुए। बड़े प्रभावशाली राष्ट्रों ने जनता के स्वाभाविक अधिकार और प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल काम करना आरम्भ किया और मनुष्य की कृत्रिम शक्ति को प्राकृतिक शक्ति के सामने हार खानी पड़ी। यह युद्ध भी एक छोटे से राष्ट्र सर्विया ने आरम्भ किया और उसमें शक्तियों के तारतम्यवादी सब देशों को सम्मिलित होना पड़ा।

इस पुराने प्रयत्न के सफल न होने का कारण केवल मनुष्यों की स्वार्थ-बुद्धि है, जिसके द्वारा वे लोग स्वाभाविक नियमों की ओर ध्यान न दे सके। बड़े राष्ट्रों ने अपने पाशविक बल के मद में अन्धे होकर जनता के स्वाभाविक अधिकारों की अवहेलना की। यदि किसी भी जनता को असन्तुष्ट होने का कोई कारण न रहजाय तो युद्ध भी न हो। ग्रीस को यदि विदेशी राज्य हितकर होता तो वह कभी सिर न उठाता। इटली को यदि विदेशी राज्य से हानि न होती तो वह कभी बिगड़ न खड़ा होता। सर्विया के देशवासी जो आस्ट्रिया के अधिकार में थे, यदि आस्ट्रिया के शासन से सन्तुष्ट होते तो यह भीषण युद्ध भी न होता। परन्तु यह सब तो प्रबल शक्तियों के स्वार्थ का ही फल हुआ कि जितनी हानि बड़े देशों को हुई उतनी उन छोटे देशों को न हुई।

अब शान्ति बनाये रखने की नई बात सोची गई है। वह है राष्ट्र-सङ्घ। इस राष्ट्र-सङ्घ में बड़ी शक्तियां अपने प्रतिनिधि भेजेंगी। संसार के जितने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े होंगे वे सब इसी राद्र-सङ्घ में तय होंगे। यानी इन बड़ी शक्तियों के प्रतिनिधि अपनी इच्छानुसार वे सब झगड़े तय करेंगे। इसमें सब शक्तियों के प्रतिनिधि न रहेंगे।

राष्ट्र-सङ्घ के स्थापित करने का विचार सबसे पहले राष्ट्रपति विलसन ने प्रकट किया। जिस सिद्धान्त पर इन्होंने राष्ट्रसङ्घ स्थापित करने का विचार पहले किया था वह अवश्य ही प्रशंसनीय है। विचार तो कोई नया नहीं है परन्तु अवसर ने उसे विशेष महत्त्व का बना दिया। राष्ट्रपति विलसन के विचारों को सबने पैग़म्बर के संदेशे के समान माना और उसका बड़ा आदर किया। जो विचार उन्होंने सन्धिपरिषद की पहली बैठक में प्रकट किये थे वे बहुत

ही ठीक और न्यायपूर्ण थे। मनुष्यों को तो पूरी आशा होगई थी कि यदि उनके अनुसार कार्य होगा तो वास्तव में युद्ध की सम्भावना न रहेगी। १७ जनवरी सन् १९१९ को पेरिस की सन्धि-परिषद् में राष्ट्रपति विलसन ने कहा था—

"हम यहाँ सरकारों के प्रतिनिधि नहीं हैं किन्तु जनता के प्रतिनिधि हैं। केवल किसी विशेष स्थान की सरकार की इच्छा पूरी करना ही काफ़ी न होगा; जनता की इच्छा पूरी करना आवश्यक है। × × × ×. हम लोगों के ऊपर यह भार है कि स्थायी प्रबन्ध करें जिससे न्याय और शांति बनी रहे। × × × × इस युद्ध में भाग लेते समय अमेरिका के संयुक्त राज्य ने यह नहीं सोचा कि वह यूरोप, एशिया, या पृथ्वी के किसी भाग के राजनैतिक विषयों में हाथ डालना चाहता है। उसका विचार था कि सारा संसार इस बात को जानता है कि युद्ध का निर्णय एकही सिद्धान्त के ऊपर अवलम्बित है। वह सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक स्थान के प्रत्येक प्रकार के मनुष्य के लिए न्याय और स्वतन्त्रता हो।"

इन विचारों से सारा संसार मुग्ध होगया। राष्ट्रपति विलसन को सब लोग स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के प्रचार के लिए ईश्वरीय अवतार समझने लगे। फिलिपाइन में अमेरिका ने जो उदारता दिखलाई थी उससे संसार का विचार अमेरिका के सम्बन्ध में पहले से ही अच्छा था। परन्तु अब जो राष्ट्रसङ्घ बननेवाला है उसमें इस सिद्धान्त के अनुसार कहाँ तक कार्य किया जायगा, इस विषय में लोगों को संदेह होने लगा है। क्योंकि छोटे और हीनबल राष्ट्रों को अपना रोना रोने के लिए उसमें कोई स्थान नहीं दिया गया। केवल थोड़े से शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रतिनिधि ही सारे राजनैतिक संसार के भाग्य-विधाता बनना चाहते हैं। जो बड़ी शक्तियाँ हैं और जो स्वयं अपनी रक्षा कर सकती हैं उन्हीं की रक्षा इस राष्ट्रसङ्घ द्वारा होगी। शेष सब हीनबल देश उन्हीं के भरोसे रहेंगे। इस राष्ट्रसङ्घ के सदस्य मनुष्य ही होंगे, देवता नहीं। जब इनका स्वार्थ छोटे देशों के अधिकारों के विरुद्ध होगा तब ये लोग स्वार्थ त्याग करके उन्हें कभी अधिकार न देंगे। छोटे राष्ट्रों का पक्ष-समर्थक यहाँ कोई न होगा। सङ्घ के सदस्यों की स्वार्थपरता इनके कार्य-सञ्चालन में मार्गदर्शक होगी। राष्ट्रपति विलसन को सरकारों के प्रतिनिधियों की आवश्यकता न थी, किन्तु जनता के प्रतिनिधियों की। परन्तु इस राष्ट्रसङ्घ में सरकारों के ही प्रतिनिधि रहेंगे। राष्ट्रपति विलसन को जनता की इच्छा का ध्यान था, परन्तु यहाँ पर सरकारों की इच्छा के सामने जनता की इच्छा का पता भी न लगेगा। जिन सिद्धान्तों के अनुसार चलकर राष्ट्रपति विलसन ने स्थायी शान्ति के प्रबन्ध करने का भार अपने ऊपर लिया है उनके अनुसार कार्य न होगा और इससे स्थायी शान्ति की सम्भावना भी नहीं जान पड़ती।

राष्ट्रसङ्घ के विषय में सर हर्बर्ट स्टीफन साहब का यह कहना है—

"मनुष्यों का स्वभाव और उनके न्यायसम्बन्धी विचारों की ओर ध्यान देने से यह जान पड़ता है कि राष्ट्रसङ्घ न बनना चाहिए। यदि वह बनेगा तो उससे जो आशा की जाती है वह कभी फलीभूत न होगी। जिस परिणाम की उससे आशा की जाती है उसके लिए वह बिलकुल अयोग्य है। उससे उद्देश की पूर्ति होना तो दूर रहा वह उद्देश के विपरीत कार्य करेगी।"

यह सब कहना सच जान पड़ता है क्योंकि कुछ थोड़े शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को पहले अपने स्वार्थ की ही सूझेगी और अन्य राष्ट्रों को अपनी उन्नति करने के लिए राष्ट्रसङ्घ की तो नहीं, किन्तु युद्ध की शरण लेनी पड़ेगी। जापानी राजनीतिज्ञ किरोको हबशी का कथन है कि "पहले तो वे बड़े देश जो दूसरों को हानि पहुँचाकर अपना फ़ायदा कर रहे हैं सदा के लिए उसी प्रकार फ़ायदा उठाते रहेंगे। क्योंकि उन्हें तो राष्ट्रसङ्घ से यही सुभीता होगा कि उनकी दशा में कोई परिवर्तन न हो पावेगा। और जो हतभाग्य देश अभी हीन दशा में और असन्तुष्ट हैं उनकी दशा में भी परिवर्तन न हो पावेगा और वे सदा के लिए अवनत दशा में रहेंगे और अपनी राष्ट्रीय उन्नति न कर सकेंगे। इसका तो यही मतलब है कि जो कुछ हम चाहते थे सो हमें तो मिल ही गया है, अब तुम को चाहिए कि झगड़ा बन्द करके इसी हालत में रहो।"

यदि राष्ट्रसङ्घ का उद्देश ठीक ठीक न रहा तो उससे युद्ध-निवारण की इच्छा करना वृथा है। यदि

बड़े देश अपनी दशा सुरक्षित करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि स्वाभाविक नियमों का उल्लङ्घन न करके जनता के स्वाभाविक अधिकारों की अवहेलना न करें और प्रत्येक राष्ट्र को अपनी उन्नति करने और स्वतन्त्र बनने का अवसर दें। स्वार्थ-बुद्धि के चेरे न होकर स्वतन्त्र विचार से उन्हें यह बात मान लेनी चाहिए कि मनुष्य का कृत्रिम बल प्रकृति के नियम के विपरीत काम नहीं कर सकता। यह राष्ट्रसङ्घ का प्रयत्न तभी सफल होगा जब सारे संसार की जनता की स्वतन्त्रता को कोई बाधा न रहेगी। यदि कहीं पर भी जनता असंतुष्ट रही तो पाशविक बल के डर से शान्ति नहीं बनी रह सकती। यदि राष्ट्रसङ्घ इन स्वाभाविक नियमों के अनुकूल कार्य करेगा तो अवश्य सफल होगा, अन्यथा यह भी पहले के प्रयत्नों के समान व्यर्थ होगा और शान्ति चिरस्थायिनी न होगी।

श्यामाचरण राय

गीताञ्जलि में दुःख।

हमारे जीवन में एक ओर जहां सुख है, शान्ति है, स्वास्थ्य-सम्पत्ति और सफलता है; वहाँ दूसरी ओर रोग, दुःख, चिन्ता, ग्लानि, अशान्ति और असफलता भी है। यों तो हमें अपनी जीवन-यात्रा तय करने के लिए इस सुख-दुःख-मय मार्ग से होकर ही जाना पड़ता है; किन्तु यदि हमें अपने लक्ष्य स्थान पर ले जानेवाला कोई सुख ही सुखमय मार्ग मिल जाता तो हम दुःखमय मार्ग से होकर जाना कदापि नहीं चाहते। कुसुमाच्छादित कोमल मार्ग को छोड़कर कण्टकाकीर्ण मार्ग से जाना भला कौन पसन्द करेगा? संसार में सभी सुख चाहते हैं। दुःख के लिए कोई क्यों लालायित होगा? असह्य यन्त्रणा, मर्मान्तक वेदना खिलौना नहीं है। दुःख को कोई 'पाप का फल' कहता है, कोई 'दुर्भाग्य', कोई 'ईश्वरीय कोप' तो कोई 'प्रकृति का परिशोध' बतलाता है। वह हो चाहे जो वस्तु, किन्तु उसके अर्थ में ऐसा कुछ भय—ऐसी कुछ अनिष्ट-आशङ्का छिपी हुई है कि लोग उसे सहना तो दूर रहा, उसकी कल्पना भी करना नहीं चाहते। अनेक लोग दुःख का आघात सहकर संसार-विमुख हो गये, अनेकों का हृदय-यन्त्र टूट गया, अनेक आशा और उत्साह से हाथ धो बैठे। ऐसे पुरुष विरले ही हैं जो दुःख को सहर्ष स्वीकार करते हैं। उन महात्माओं की बात दूसरी है जो 'साधना' के रूप में उसे मुक्ति का मूल मानते हैं। किन्तु एक संसारी जीव का उसके लिए उत्सुकतापूर्वक हाथ फैलाना अवश्य ही असाधारण बात है। 'गीताञ्जलि' के कवि में यह बात हम बहुतायत से पाते हैं। असाधारण बातों के निवास-स्थान कवि ही तो होते हैं। यथार्थ में 'गीताञ्जलि' में शुरू से लेकर आख़ीर तक दुःख ही की चर्चा है। उसमें उच्च से उच्च विषय का वर्णन दुख की ओट में ही किया गया है। दुःख को उसमें से अलग कर दीजिए, फिर देखिए उसमें कितना रस रह जाता है। उसके वर्णन में कवि ने ऐसी निपुणता दिखलाई है कि उसकी कटुता एक दम मधुरता में बदल गई है। जान पड़ता है, उसका साथ आजन्म दुःख से रहा है, और इसी से वह उसे बहुत चाहता है। कभी हम उसे 'अश्रुबिन्दुओं' का 'मुक्ताहार' गूँथते पाते हैं तो कभी 'वेदना का उपहार' तैयार करते। कभी वह सोते में अचानक चौंक उठता है और सोचने लगता है कि वह किसकी याद थी जिसने मेरी आँखों से नींद को इस तरह छीन लिया। कभी अपने हृदय की ''अज्ञात वेदना' को समझने की चेष्टा करता है। अँधेरी रात है—पानी बरसता है—बादल गरजते हैं—बिजली चमकती है—संसार निद्रा-मग्न है। किन्तु इस भीषण रात्रि में हम उसे अपने घर का दरवाज़ा खोले किसी की प्रतीक्षा में बैठा पाते हैं। आँखों में नींद नहीं है। हृदय में एक तूफ़ान उठा है। प्रकृति उसके साथ दुखी हो उठती है। आकाश हताश की तरह रोता है। हवा सिसकती है। नक्षत्र जागते ही रात काट देते हैं। यथार्थ में ''गीताञ्जलि'' के कवि का क्रन्दन इतना मधुर है कि पढ़नेवाले का हृदय भी उसके साथ रोना चाहता है। जी में आता है, इस रोने में ही परम सुख है। उसके उत्तप्त उद्गारों में, आन्तरिक परितापों में, हार्दिक प्रार्थनाओं और कामनाओं में, उसके आत्म-निवेदन और समर्पण में, तथा नैराश्यपूर्ण गानों में दुःख ने अपूर्व सौन्दर्य धारण किया है। उसका ऐसा सुन्दर रूप, मन को उन्मत्त बना देनेवाली ऐसी मधुरता

अन्यत्र कहीं सुलभ नहीं । इसका कारण यह है कि 'गीताञ्जलि' का कवि दुःख को भय और घृणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि प्रेम और आदर की दृष्टि से देखता है । इसी से वह उसका ऐसा सुन्दर चित्र उतारने में समर्थ हुआ है । आप 'गीताञ्जलि' के तमाम पन्ने उलट डालिए, पर दुःख के साथ उसका विरोध कहीं नहीं पाइएगा । सिर्फ़ एक जगह हम उसे विरह-विलाप और अनुताप से जर्जरित अपने दुर्भाग्य की शिकायत करते पाते हैं—"इहार चेये मरण सेजे भालो ।" किन्तु दूसरे ही क्षण 'वेदना-दूती' उसे धैर्य धारण कराने के लिए स्वर्गीय सन्देशा ले कर आ पहुँचती है और "दुःख दिए राखेन तोर मान" की सुमधुर तान छेड़ देती है । दुःख देकर मान रखने की बात में जो सत्यता है, वह केवल अनुभव-गम्य है ।

दुःख पर गीताञ्जलि के कवि के विचार दर असल अमूल्य हैं । उन्हें 'ईश्वरीय-दान' कहना चाहिए । उनके पाठ से चिर-रोग-दुःख-पीड़ित विपत्ति-व्याकुल निराश-हृदय जो धैर्य-लाभ करता हैं, उसके आगे त्रिलोक की सम्पत्ति भी तुच्छ है । नितान्त भीरु और कायर पुरुष भी उन्हें पढ़कर अपने सम्पूर्ण भय और आशङ्का को हृदय से निकालकर फेंक देता है और कठिन से कठिन दुःख के स्वागत के लिए तैयार हो जाता है । 'गीताञ्जलि' की यह बड़ी भारी विशेषता है कि उसे पढ़कर दुःख कोई दुःख ही नहीं जान पड़ता । पाठक का हृदय उससे बहुत ऊँचा जा पहुँचता है । किसी ने ठीक कहा है कि गीताञ्जलि की एक पंक्ति भी पढ़ना संसारी दुःखों को एकदम भूल जाना है ।

अब देखना यह है कि उसके मूल में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसके कारण वह ऐसा अद्भुत प्रभाव रखती है । यह वस्तु है—ईश्वर की हितैषिता पर कवि का दृढ़ विश्वास । उसने अपनी इच्छा के क्षुद्र-स्रोत को ईश्वरीय इच्छा के महासागर में मिला दिया है । उसकी सब से प्रथम प्रार्थना है—

"तोमार इच्छा कर हे पूर्ण
आमार जीवन माझे ।"

उसे अपने जीवन में ईश्वरीय इच्छा की प्रधानता का अनुभव भी हो चुका है—"मोर जीवने विचित्र रूप धरे तोमार इच्छा तरङ्गिच्छे ।" जिसने ईश्वर की इच्छा से अपना सम्पूर्ण मेल कर रक्खा है वह यदि दुःख में ही सुख अनुभव करे तो क्या आश्चर्य ?

'गीताञ्जलि' का कवि संसार में एक मात्र दुःख को ही ख़ास अपनी वस्तु समझता है । अतः वह भगवान् के सम्मुख उसे ही लेकर उपस्थित होता है । धन-धान्य तथा अपर वस्तुयें तो उसी की दी हुई हैं; फिर उसकी ही वस्तु का उसे ही अर्पण कैसा ? अपने इस "घरेर जिनिस" के बदले प्रभु-प्रसाद प्राप्त करने का उसे बड़ा अहङ्कार है ।

हम उसे अपने सुख, शान्ति, स्वास्थ्य या सम्पत्ति के लिए प्रार्थना करते कहीं नहीं पाते । उसी तरह उसने दुःख से मुक्ति-प्रदान करने की प्रार्थना भी कभी नहीं की । ईश्वर से उसे अपने चरणों में स्थान देने के लिए विनय करते हुए वह कातर-भाव से अपनी अभिलाषा प्रकट करता है—

"प्रसाद लागि कत लोक आसे धेये
आमि किच्छुहि चाहिब ना त रहिब चेये ।।"

कल्पतरु के नीचे पहुँचकर भी वह सुख-समृद्धि की याञ्चा नहीं करता, क्योंकि उसे सुख की चाह ही नहीं । यही क्यों, वह उसे घृणा की दृष्टि से देखता है—अपने हित का घातक समझता है । तभी तो वह कहता है—

"मृदु सुरेर खे लाय ए प्राण
व्यर्थ कोरो ना ।"

संसार में सुख शान्ति से रहना परम सौभाग्य माना जाता है । किन्तु 'गीताञ्जलि' का कवि उसे "ईश्वर का अभिशाप" अथवा किसी "ग्रह का दोष" समझता है । वह पूछता है—

"कोन शापे कोन ग्रहेर दोषे
सुखेर डाङ्गाय थाकब बसे ?"

सुख में रहना जिसे इतना हानिकर जान पड़ता है वह दुःख से क्यों डरेगा ? "चैन की वंशी" के कोमल स्वर में उसके लिए कोई आकर्षण नहीं । वह वज्र-नाद सुनने और तीव्र ताल सुर के साथ ताण्डव-नृत्य देखने का अभिलाषी है । उसकी प्रार्थना है—

"आमि जा गड़े तूले
आरामे थाकि भूले
सुखेर उपासना
करि गो फले फूले—
से धूला खेला घरे
रेखो ना घृणा भरे
जागाओ दया करे
वन्हि-शेल हानि ॥"

अपनी सुख-शान्ति पर इस तरह लात मारनेवाले संसार में कितने लोग हैं ?

गीताञ्जलि का कवि अभिलषित वस्तु को न पाकर—अपनी चिरपोषित वासनाओं से वञ्चित रहकर ज़रा भी दुःखित नहीं होता। न वह अपने भाग्य को कोसता, न दैव को दोष देता और न आत्म-भर्त्सना ही करता है। वह भग्न-मनोरथ होकर भी ईश्वर की हितैषिता को नहीं भूलता। अपनी असफलता को भी उसकी कृपा ही समझता है, पर ज़रा कठोर कृपा। वह कृतज्ञता के बोझ से दबकर कहता है—

"आमि बहु वासनाय प्राणपने चाही
बंचित करे बांचाले मोरे
ए कृपा कठोर, सञ्चित मोर
जीवन भरे।

जीवन की असफलता तथा दुःख-शोक में वह ताक़त नहीं कि उसे किसी प्रकार विचलित कर सकें। वह भगवान् को दुःख के रूप में बुलाता है। दुःख के आघात को आघात नहीं, उसका चरण-निक्षेप समझता है। इसी से वह उससे घबराता नहीं, बल्कि प्रसन्नता से गाता है—

"आरो आघात सहिबे आमार
सहिबे आमारो
आरो कठिन सुरे जीवन तारे झङ्कारो।"

वह पुकार कर कहता है कि "जत ताप पाही सहिबा रे चाही।" दुःख के लिए कभी दूर नहीं होनेवाली यह उत्कण्ठा और किसके हृदय में हो सकती है ? विपत्ति पर विपत्ति डालनेवाले विधाता के प्रति उसका कथन है—

"एहि करेच्छ भालो, निठुर
एहि करेच्छ भालो।
एमनि करे हृदये मोर
तीव्र दहन ज्वालो ॥"

यहां निष्ठुर की निष्ठुरता भी हैरान हो जाती है ! जब वह कहता है—

"ज्वले उठुक सकल हुताश,
गर्जि उठुक सकल बातास,
जागिये दिये सकल आकाश
पूर्णता विस्तारो।"

तब उसके धैर्य्य और सहनशीलता के आगे दुःख-दाता को ही लज्जित होना पड़ता है।

वह शान्ति के पर्य्यङ्क पर मीठी झपकियां लेना नहीं चाहता। घोर तुमुलनाद के भीतर जागते रहना ही उसे पसन्द है—

"गरजि गरजि शङ्ख तोमार
वाजियां वाजियां उठुक एबार
गर्व्व टूटियां, निद्रा छूटियाँ
जागुक तीव्र चेतना।"

आत्मिक गुणों के विकाश के लिए विपत्ति को वह बहुत ज़रूरी समझता है—

"आमार ए धूप ना पोड़ाले
गन्ध किच्छुही नाही ढाले
आमार ए धूप ना ज्वालाले
देय ना किच्छुहि आलो ॥"

वह आई हुई विपत्ति से त्राण पाने के लिए व्यग्र नहीं होता, बल्कि साहस-पूर्वक उसका सामना करने के लिए उठ खड़ा होता है। भय और आशङ्का से धैर्य्य-च्युत होकर जगह जगह कातरता प्रकट करने और कबीर के शब्दों में "दिन में सौ सौ बार" मरने की अपेक्षा वह उसके साथ लड़ते हुए ही मर जाना अच्छा समझता है। इसी से वह विपत्ति से बचने के लिए नहीं, उस पर जय-प्रदान करने के लिए भगवान् से प्रार्थना करता है—

"विपदे मोर रक्षा कर,
ए नहे मोर प्रार्थना,
विपदे आमि ना जेन करि भय।
दुःख तापे व्यथित चिते

नाही वा दिले सान्त्वना
　　दुःखे जे न करिते पारि जय ।।"

इन अवतरणों से मालूम होता है कि उसे सुख की अनुपकारिता और दुःख की उपकारिता का पूरा अनुभव हो चुका है। वह दुःख को बड़े काम की चीज़ समझता है। यह बात ऐसी है, जो सुनने में असम्भव मालूम होती है, पर दर असल ठीक है। महाभारत समाप्त हो जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण जब पाण्डवों से बिदा लेने गये तब कुन्ती देवी ने उनसे प्रार्थना की—

"विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।"

अर्थात् हे जगद्गुरो! सुख के बदले वे विपत्तियाँ ही हमारे सामने सदा उपस्थित रहें। विपत्ति की सीमा को पारकर सुख की भूमि में पैर रखते ही कुन्ती देवी उनके लिए फिर व्यग्र हो उठीं! कबीर साहब भी सुख के विरोधी थे—

"कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत ।"

उन्होंने दुखी होने में ही अपना भला समझा है—

"सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै ।
दुखिया दास कबीर है जागै औ रोवै ।।"

इससे सिद्ध है कि गीताञ्जलि का दुःख-वाद प्राचीनता से ख़ाली नहीं है। तथापि उसमें नवीनता और मौलिकता की वह झलक देखी जाती है जो अन्यत्र देखने में नहीं आती। इसका कारण है—कविता से उसका मेल। इस मेल के कारण ही उसकी कठोरता और कटुता मृदुता और मधुरता में परिवर्तित हो गई है।

गीताञ्जलि में मृत्यु पर भी बड़ी मार्म्मिकता से विचार किया गया है। कवि ने अपने हाथों में लेकर उसे ऐसा कुछ रूप दे दिया है कि नेत्र बार बार उसकी छटा देखकर भी नहीं अघाते। जी होता है, उसे दौड़कर हृदय से लगा लें। मृत्यु के विषय में ऐसी सुन्दर कल्पना, ऐसे चित्ताकर्षक भाव कहीं देखे नहीं गये। वे साहित्य-संसार में अपना सानी नहीं रखते। जिसकी भीषणता के आगे बड़े बड़े शूर-वीरों तक का कलेजा दहल जाता है, जिसकी कठोरता वज्र को भी मात कर देनेवाली है, वही मृत्यु हमें 'गीताञ्जलि' में अतुल सौन्दर्य की राशि और फूल से भी कोमल जान पड़ती है! कवि उसे अपने जीवन की परिपूर्णता समझता है। कभी वह अतिथिरूप में उसकी अभ्यर्थना करता है, कभी नवागत व्यक्ति रूप में उसे पा कर उत्सुकता से उसके साथ बातें करता है, कभी वर के साज में उसके आने की प्रतीक्षा करते फूलों की माला गूँथता है। वह दूती बनकर उसके प्रीतम का सन्देशा लाती और रात्रि के घोर अन्धकार में उसे उसके साथ मिलाने ले चलती है। फिर कहिए, वह उसके स्वागत के लिए क्यों नहीं आतुर होगा? वह उससे क्यों डरेगा? क्यों न उसपर प्रेम करेगा? यथार्थ में कोई वस्तु हमें तभी तक भयङ्कर मालूम होती है जब तक हम उसे भय-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। उसके प्रति अपने विचारों को प्रेम-मय बना लेने से वही प्रिय जान पड़ने लगती है।

'गीताञ्जलि' के कवि से कोई पूँछता है—मृत्यु जिस दिन तेरा दरवाज़ा खटखटायेगी उस दिन तू उसे क्या देगा? आप सोचते हैं उसे उत्तर देने में कुछ हिचकिचाहट हुई होगी। पर नहीं, वह तुरन्त जवाब देता है—

"जा किछु मोर सञ्चित धन?
　एत दिनेर सब आयोजन;
चरम दिने साजिए दिब उहारे।
　　मरन जे दिन आसवे आमार दुवारे ।।
शून्य विदाये करब ना त उहारे ।।"

वह मृत्यु से कहता है—"ऐ मृत्यु, तू कहां है? मैंने जीवन भर प्रति दिन तेरे आगमन की प्रतीक्षा की है। तेरे ही लिए मैंने जीवन के सुखों और दुःखों को सहन किया है।" कैसी मीठी—कैसी चाह भरी उसकी ये बातें हैं! ऐसे ही विचारों को हृदय में पोषित कर वह मृत्यु की विभीषिका को हटा सका है। यों तो इसका प्रधान कारण उसकी आध्यात्मिकता है। जिसके मन में 'मृत्यु पार के उत्सव' में सम्मिलित होने की उत्सुकता है, जिसे मृत्यु के भीतर ढँके हुए अनन्त-जीवन का ज्ञान है उसके लिए उसमें विभीषिका क्या?

'गीताञ्जलि' के कवि की 'आशावादिता' भी ध्यान देने योग्य है।

घोर संकट में भी आशा उसका साथ नहीं छोड़ती। दुःख की रात्रि के विकट अन्धकार को वह आलोकमय

प्रभात की कल्पना में काट देता है। वह आनन्द से गाता है—

उहि देख पूर्वाशार भाले
निबिड़ बनेर अन्तराले
शुक्र तारा हयेच्छे उदय
उरे आर नेही भय।

इस प्रकार भय और आशङ्का उसके पास फटकने नहीं पाती। उसके चर्म-चक्षुओं के सामने चिन्ता शोक के कारण निरन्तर वर्त्तमान रहने पर भी वह अपने मनश्चक्षुओं से सुख-शान्तिमय एक दूसरे ही दृश्य की छटा देखता है। जब वह कहता है—

दुःसह व्यथा हये अवसान
जन्म लभीवे कि विशाल प्राण!

तब उसके आशा और उत्साह से छलकते हुए हृदय का पूरा परिचय मिलता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे पाठकों को गीताञ्जलि के दुःख-वाद का मोटा मोटा ज्ञान हुआ होगा। जैसा कि हम पहले कह आये हैं उसकी कुञ्जी ईश्वरीय इच्छा में अपनी इच्छा समझना ही है। इसी बोध के कारण कवि दुःख में ही सुख अनुभव करता है। हम लोग दुःख से त्राण पाने के लिए रात दिन यत्न करते रहें। यह भूलकर भी नहीं सोचते कि शायद इसमें ही भगवान् ने हमारा कोई हित विचारा हो।

ईश्वर की हितैषिता पर विश्वास रखते उसकी इच्छा की प्रधानता को हृदयङ्गम करना ही दुःख से त्राण पाने का एक मात्र उपाय है। कविवर दाग़ ने कहा है—

"आपकी जिसमें हो मर्ज़ी वह मुसीबत बेहतर।
आपकी जिसमें ख़ुशी हो, वह*मलाल अच्छा है॥"

आइए, हम भी इसी सुर में सुर मिला दुःख की चिन्ता से अलग रहें।

मुकुटधर

ग़म होते हैं उन्हें जिन्हें ख़ुशियों से प्यार है।

पश्चिमी क्षत्रप-वंश का इतिहास।

जीवदामा

[श० सं० १[००]–१२० (ई० स० १[७८]–
१९८=वि० सं० २३५–२५५)]

यह दामजद का पुत्र और रुद्रसिंह का भतीजा था। इस राजा से क्षत्रपों के चाँदी के सिक्कों पर सिर के पीछे ब्राह्मी लिपि में बराबर संवत् लिखे मिलते हैं। परन्तु जीवदामा के मिश्र धातु के सिक्कों पर भी संवत् लिखा रहता है।

जीवदामा के दो प्रकार के चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन दोनों पर महाक्षत्रप की उपाधि लिखी होती है। तथा इन दोनों प्रकार के सिक्कों को ध्यानपूर्वक देखने से अनुमान होता है कि इन दोनों के ढलवाने में कुछ समय का अन्तर अवश्य रहा होगा। इस अनुमान की पुष्टि में एक प्रमाण और भी मिलता है। अर्थात् इसके चचा रुद्रसिंह प्रथम के सिक्कों से प्रकट होता है कि वह दो दफ़े क्षत्रप और दो ही दफ़े महाक्षत्रप हुआ था। इससे अनुमान होता है कि जीवदामा के पहली प्रकार के सिक्के रुद्रसिंह के प्रथम वार क्षत्रप रहने के समय और दूसरी प्रकार के अपने चचा रुद्रसिंह के दूसरी वार क्षत्रप होने के समय ढलवाये गये होंगे।

जीवदामा के पहले प्रकार के सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रिय पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस जीवदाम्न" और सीधी तरफ़ सिर के पीछे शक-संवत् १[+[1] +] लिखा रहता है। यद्यपि उक्त संवत् स्पष्ट तौर से पढ़ा नहीं जाता तथापि इसके चचा रुद्रसिंह प्रथम के सिक्कों पर विचार करने से इसका कुछ कुछ निर्णय हो सकता

---

* रञ्ज।

[1] संवत् एक सौ के अगले अक्षर पढ़े नहीं गये हैं।

है। रुद्रसिंह पहली बार श० सं० १०३ से ११० तक और दूसरी बार ११३ से ११८ या ११९ तक महाक्षत्रप रहा था। इससे अनुमान होता है कि या तो जीवदामा के इन सिक्कों पर श० सं० १०० से १०३ तक के या ११० से ११३ तक के बीच के संवत् होंगे। क्योंकि एक समय में दो महाक्षत्रप नहीं होते थे। इन सिक्कों के लेख आदिक बहुत कुछ इसके पिता के सिक्कों के लेखादि से मिलते हुए हैं।

इस के दूसरी प्रकार के सिक्कों पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस जीवदामस" और दूसरी तरफ़ श० सं० ११९ और १२० लिखा रहता है। ये सिक्के इसके चचा रुद्रसिंह प्रथम के सिक्कों से बहुत कुछ मिलते हुए हैं।

जीवदामा के मिश्रधातु के सिक्कों पर उसके पिता का नाम नहीं होता। केवल एक तरफ़ "राज्ञोमहाक्षत्रपस जीवदामस" लिखा होता है और दूसरी तरफ़ शक-संवत् लिखा रहता है जिसमें से अबतक केवल श० सं० ११९ ही पढ़ा गया है।

आज तक ऐसा एक भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है जिससे यह पता चले कि रुद्रसिंह के महाक्षत्रप रहने के समय जीवदामा की उपाधि क्या थी।

रुद्रसिंह प्रथम

[श० सं० १०२ – ११८, ११९? (ई० स० १८० – १९६, १९७? = वि० सं० २३७ – २५३, २५४?)]

यह रुद्रदामा प्रथम का पुत्र और दामजद का छोटा भाई था। इसके चाँदी और मिश्रधातु के सिक्के मिलते हैं। इनसे पता चलता है कि यह श० सं० १०२—१०३ तक क्षत्रप और श० सं० १०३ से ११० तक महाक्षत्रप था। परन्तु श० सं० ११० से ११२ तक यह फिर क्षत्रप हो गया था और श० सं० ११३ से ११८ या ११९ तक दुबारा महाक्षत्रप रहा था।

अब तक इसका कुछ भी पता नहीं चला है कि रुद्रसिंह महाक्षत्रप होकर फिर क्षत्रप क्यों हो गया। परन्तु अनुमान से ज्ञात होता है कि सम्भवतः जीवदामा ने उस पर विजय प्राप्त करके उसे अपने अधीन कर लिया होगा। अथवा यह भी सम्भव है कि यह किसी दूसरी शक्ति के हस्ताक्षेप का फल हो।

रुद्रसिंह के क्षत्रप उपाधिवाले श० सं० ११० के ढले चाँदी के सिक्कों में उलटी तरफ़ कुछ फरक़ है। अर्थात् चन्द्रमा, जो कि इस वंश के राजाओं के सिक्कों पर चैत्य की बाईं तरफ़ होता है, दहिनी तरफ़ है, और इसी प्रकार दाईं तरफ़ का तारामण्डल बाईं तरफ़ है। परन्तु यह फरक़ श० सं० ११२ में फिर ठीक कर दिया गया है। अतः यह नहीं कह सकते कि यह फरक़ यों ही हो गया था या किसी विशेष कारणवश किया गया था।

रुद्रसिंह के पहली बार के क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम पुत्रस राज्ञोक्षत्रपस रुद्रसीहस" और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्न पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस" अथवा 'रुद्रदाम्न पुत्रस, के स्थान में 'रुद्रदामपुत्रस' लिखा रहता है। तथा दूसरी बार के क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्न पुत्रस राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसीहस" और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपसरुद्रसीहस" अथवा 'रुद्रदामपुत्रस' की जगह 'रुद्रदाम्नपुत्रस' लिखा होता है। तथा इन सबके दूसरी तरफ़ क्रमशः पूर्वोक्त शक-संवत् लिखे रहते हैं।

इसके मिश्रधातु के सिक्कों पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस" और दूसरी तरफ़ श० सं० ११×[1] लिखा मिलता है।

इस रुद्रसिंह के समय के दो लेख भी मिले हैं। इनमें से एक श० सं० १०३ की वैशाख शुक्ल

---

[1] यह अङ्क स्पष्ट नहीं पढ़ा जाता है।

पञ्चमी का है[1]। यह गुंडा (काठियावाड़) में मिला है। इसमें इसकी उपाधि क्षत्रप लिखी है। दूसरा लेख चैत्र शुक्ला पञ्चमी का है[2]। यह जूनागढ़ में मिला है और इसका संवत् टूट गया है। इस लेख में राजा का नाम नहीं लिखा। केवल जयदामा के पौत्र का उल्लेख है। अतः पूरी तौर से नहीं कह सकते कि यह लेख इसी का है या इसके भाई दामजद का है।

इसके तीन पुत्र थे। रुद्रसेन, संघदामा और दामसेन।

सत्यदामा

[सम्भवतः श० सं० ११९—१२० (ई० सं० १९७—१९८=वि० सं० २५४—२५५)]

यह दामजदश्री प्रथम का पुत्र था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस्य दामजदश्रिय पुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य सत्यदाम्न" लिखा रहता है। यह लेख क़रीब क़रीब संस्कृत-रूप में मिलता हुआ है। इन सिक्कों के दूसरी तरफ़ शक-संवत् लिखा होता है। परन्तु अब तक एक सौ के अगले अङ्क नहीं पढ़े गये हैं।

सत्यदामा के सिक्कों की लेख-प्रणाली से अनुमान होता है कि या तो यह अपने पिता दामजदश्री प्रथम के महाक्षत्रप होने के समय क्षत्रप था या अपने भाई जीवदामा के प्रथम वार महाक्षत्रप होने के समय।

रापसन साहब का अनुमान है कि शायद यह सत्यदामा जीवदामा का बड़ा भाई होगा।

रुद्रसेन प्रथम

[श० सं० १२१—१४४ (ई० सं० १९९—२२२ = वि० सं० २५६—२७९)]

यह रुद्रसिंह प्रथम का पुत्र था।

इसके चाँदी और मिश्रधातु के सिक्के मिलते हैं। इन पर शक-संवत् लिखा हुआ होता है। इनमें से क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्कों पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहसपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस रुद्रसेनस" और दूसरी तरफ़ श० सं० १२१ या १२२[1] लिखा रहता है। तथा महाक्षत्रप उपाधिवालों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस" और सीधी तरफ़ श० सं० १२२ से १४४ तक का कोई एक संवत् लिखा होता है।

इसके मिश्रधातु के सिक्कों पर लेख नहीं होता। केवल श० सं० १३१ या १३३ होने से विदित होता है कि ये सिक्के भी इसी के समय के हैं।

रुद्रसेन के समय के दो लेख भी मिले हैं। पहला मूलवासर (बड़ौदा राज्य) गाँव में मिला है[2]। यह श० सं० १२२ की वैशाख कृष्णा पञ्चमी का है। इसमें इसकी उपाधि "राजा महाक्षत्रप स्वामी" लिखी है। दूसरा लेख जसधन (उत्तरी काठियावाड़) में मिला है[3]। यह श० सं० १२७ (या १२६) की भाद्रपद कृष्णा पञ्चमी का है। इसमें एक तालाब बनवाने का वर्णन है। इसमें इनकी वंशावली इस प्रकार दी है—

१ राजा महाक्षत्रप भद्रमुख स्वामी चष्टन
२ राजा क्षत्रप स्वामी जयदामा
३ राजा महाक्षत्रप भद्रमुख स्वामी रुद्रदामा
४ राजा महाक्षत्रप भद्रमुख स्वामी रुद्रसिंह
५ राजा महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसेन

इसमें जयदामा के नाम के आगे भद्रमुख की उपाधि नहीं है। इसका कारण शायद इसका महाक्षत्रप न हो सकना ही होगा। तथा पूर्वोक्त वंशावली में दामजदश्री और जीवदामा का नाम

---

[1] Ind. Ant, Vol. X, p. 157,
[2] J. R. A. S, 1890, p. 651,

[1] यह २ का अङ्क स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता है।
[2] J. R. A. S., 1890, p. 652,
[3] J. R. A. S., 1890, p. 652,

ही नहीं दिया है। इसका कारण उनका दूसरी शाखा में होना ही है।

रुद्रसेन के दो पुत्र थे। पृथ्वीसेन और दामजद श्री (द्वितीय)

पृथ्वीसेन

[श० सं० १४४ (ई० स० २२२ = वि० सं० २७९)]

यह रुद्रसेन प्रथम का पुत्र था।

इसके केवल क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के ही सिक्के मिले हैं। इनपर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस पुत्रस राज्ञो क्षत्रपस पृथिविसेनस" और दूसरी तरफ़ श० सं० १४४ लिखा रहता है।

यह राजा क्षत्रप ही रहा था। महाक्षत्रप न हो सका; क्योंकि इसी वर्ष इसका पिता मरगया और इसके चचा संघदामा ने राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

(इसके बाद शक-संवत् १५४ तक का एक भी क्षत्रप उपाधिवाला सिक्का अब तक नहीं मिला है।)

संघदामा

[श० सं० १४४, १४५ (ई० सं० २२२, २२३ = वि० सं० २७९, २८०)]

यह रुद्रसिंह प्रथम का पुत्र था।

इसके केवल चाँदी के महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्के ही मिले हैं। इन पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस्य संघदाम्ना" और दूसरी तरफ़ श० सं० १४४ या १४५ लिखा होता है।

श० सं० १४४ में इसका बड़ा भाई रुद्रसेन प्रथम और श० सं० १४५ में इसका उत्तराधिकारी दामसेन महाक्षत्रप था। अतः इसका राज्य इन दोनों वर्षों के मध्य में ही होना सम्भव है।

दामसेन

[श० सं० १४५—१५८ (ई० सं० २२३—२३६ = वि० सं० २८०—२९३)]

यह रुद्रसिंह प्रथम का पुत्र था।

इसके चाँदी और मिश्रधातु के सिक्के मिलते हैं। चाँदी के सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस" और सीधी तरफ़ श० सं० १४५ से १५८ तक का कोई एक संवत् लिखा रहता है। इससे प्रकट होता है कि इसने श० सं० १५८ के क़रीब तक ही राज्य किया था। क्योंकि इसके बाद श० सं० १५८ और १६१ के बीच ईश्वरदत्त महाक्षत्रप हो गया था। इस ईश्वरदत्त के सिक्कों पर शक-संवत् नहीं लिखा होता। केवल उसका राज्य-वर्ष ही लिखा रहता है।

श० सं० १५१ के दामसेन के चाँदी के सिक्कों पर भी (रुद्रसिंह प्रथम के क्षत्रप उपाधिवाले श० सं० ११० के चाँदी के सिक्कों की तरह) चैत्य की बाईं तरफ़वाला चन्द्रमा दाईं तरफ़ और दाईं तरफ़ का तारामण्डल बाईं तरफ़ होता है।

इसके मिश्रधातु के सिक्कों पर नाम नहीं होता। केवल संवत् से ही जाना जाता है कि ये सिक्के भी इसीके समय के हैं।

इसके चार पुत्र थे। वीरदामा, यशोदामा, विजयसेन और दामजदश्री (तृतीय)।

दामजदश्री (द्वितीय)

[श० सं० १५४, १५५ (ई० स० २३२, २३३ = वि० सं० २८९, २९०)]

यह रुद्रसेन प्रथम का पुत्र था।

इसके सिक्कों से पता चलता है कि यह अपने चचा महाक्षत्रप दामसेन के समय श० सं० १५४ और १५५ में क्षत्रप था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेन-

पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस दामजदश्रियः" और दूसरी तरफ़ श० सं० १५४ या १५५ लिखा होता है।

ये सिक्के भी दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के सिक्कों पर चन्द्रमा और तारामण्डल क्रमशः चैत्य के बाएँ और दाएँ होते हैं और दूसरी तरफ़ के सिक्कों पर क्रमशः दाएँ और बाएँ।

वीरदामा

[श० सं० १५६—१६० (ई० स० २३४—२३८ = वि०
सं० २९१—२९५)]

यह दामसेन का पुत्र था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस वीरदाम्नः" और सीधी तरफ़ श० सं० १५६ से १६० तक का कोई एक संवत् लिखा रहता है।

इसके पुत्र का नाम रुद्रसेन (द्वितीय) था।

ईश्वरदत्त

[श० सं० १५८ से १६१ (ई० स० २३६ से २३९ =
वि० सं० २९३ से २९६) के मध्य]

इसके नाम से और इसके सिक्कों में दिये हुए राज्य-वर्षों से अनुमान होता है कि यह पूर्वोल्लिखित चष्टन के वंशजों में से नहीं था। इसका नाम और राज्य-वर्षों के लिखने की प्रणाली आभीर[1]-राजाओं से मिलती है, जिन्होंने नासिक के आन्ध्र राजाओं के राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु इसके नाम के आगे महाक्षत्रप की उपाधि लगी होने से अनुमान होता है कि शायद इसने क्षत्रपों के राज्य पर हमला कर विजय प्राप्त की हो;[2] जैसा कि भगवानलाल इन्द्रजी का अनुमान है।

रापसन साहब ने ईश्वरदत्त के सिक्कों पर के राजा के मस्तक की बनावट से और अक्षरों की लिखावट से इसका समय श० सं० १५८ और १६१ के बीच निश्चित किया है[1]।

क्षत्रपों के सिक्कों को देखने से भी यह समय ठीक प्रतीत होता है; क्योंकि इस समय के बीच के महाक्षत्रप का एक भी सिक्का अब तक नहीं मिला है।

ईश्वरदत्त के पहले और दूसरे राज्य-वर्ष के सिक्के मिले हैं। इन में के पहले वर्षवालों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस ईश्वरदत्तस वर्षे प्रथमे" और सीधी तरफ़ राजा के सिर के पीछे १ का अङ्क लिखा होता है। तथा दूसरे वर्ष के सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस ईश्वरदत्तस वर्षे द्वितीये" और सीधी तरफ़ २ का अङ्क लिखा रहता है।

यशोदामा (प्रथम)

[श० सं० १६०, १६१ (ई० स० २३८,२३९ =
वि० सं०२९५, २९६)]

यह दामसेन का पुत्र था और अपने भाई क्षत्रप वीरदामा के बाद श० सं० १६० में ही क्षत्रप हो गया था; क्योंकि इसी वर्ष के इस के भाई के भी क्षत्रप उपाधिवाले सिक्के मिले हैं।

यशोदामा के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस यशोदाम्न" और सीधी तरफ़ श० सं० १६० लिखा होता है।

इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्के भी मिलते हैं। इससे प्रकट होता है कि ईश्वरदत्त द्वारा छीनी गई अपनी वंश-परम्परागत महाक्षत्रप की उपाधि को श० सं० १६१ में इसने फिर से प्राप्त की थी।

---

[1] आभीर शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन के राज्य के नवें वर्ष का नासिक का लेख (Ep. Ind., Vol. VIII, p. 88).

[2] J. R. A. S., 1890 ; p. 657.

[1] Rapson, Catalogue of the Andhra and Kshatrapa dynasties etc., p. CXXXV.

इस समय के इसके सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस यशोदाम्नः" और सीधी तरफ़ श० सं० १६१ लिखा मिलता है।

विश्वेश्वरनाथ रेऊ

साङ्ग्रामिक न्याय।

अशान्ति फैल जाने के कारण कुछ दिनों से पञ्जाब-प्रान्त में साङ्ग्रामिक न्याय, अर्थात् जंगी क़ानून या मार्शल लॉ व्यवहार में लाया गया है। यह साङ्ग्रामिक न्याय क्या है? इसके नियम कैसे होते हैं? इन नियमों द्वारा किस प्रकार न्याय होता है? इनका प्रयोग करना किन कर्मचारियों के हाथ में होता है? यह न्याय किस काल पर्यन्त प्रचलित रक्खा जाना चाहिए? इसके द्वारा कौन दण्ड दिये जा सकते हैं? अपराधी और निरपराधी का निर्णय किस प्रकार किया जाता है? इत्यादि अनेक प्रश्नों का संक्षेप से उत्तर देना इस लेख का उद्देश है।

शासन का प्रस्तुत न्याय-विभाग, उसके निमित्त सुशिक्षित अधिकारियों का निर्वाचन, न्याय-दान के अचल नियम और न्यायाधीशों की कार्यवाही को सन्मार्ग पर रखनेवाले क़ायदे, जिनसे हम प्रति दिन लाभ उठाते हैं, यह सब मनुष्य-जाति की दीर्घ काल की तपस्या एवं उद्योग का फल है। तत्त्व-ज्ञानियों का विचार है कि मानुषी सभ्यता प्रारम्भ होने के पूर्व मनुष्य-जाति में न तो कोई न्याय था और न न्याय की कोई पद्धति थी। उस समय "जिसकी लाठी उसी की भैंस" वाली नीति का प्रचार था। किन्तु कुछ काल के अनन्तर मनुष्य को अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ कि ऐसी स्थिति में न तो सुख है और न सम्पदा। प्रतिक्षण कुत्ते की मौत मारे जाने का भय है। क्रमशः उसे समाज स्थित करने का बोध हुआ और चार आदमी साथ उठने बैठने लगे। जब समाज संगठन हो गया तब हर आदमी के ढाई चावल अलग अलग चुरने बन्द हुए। जिसकी लाठी उसी की भैंस, यह सिद्धान्त अवश्य ही कुत्सित ठहर गया। समाज के अन्तर्गत झगड़े उत्पन्न होना अनर्थ समझा गया और बिना बलात्कार झगड़ों को सुलझाने के मार्ग निकाले गये। अतएव आदि में ही यह नियत हुआ कि ऐसे झगड़े समाज में जो सबसे उत्तम, वयोवृद्ध, अनुभवी, शूरवीर, बलवान्, व्यक्ति हों उनके सुपुर्द कर दिये जायँ और वादी और प्रतिवादी उनके समक्ष उपस्थित हो अपनी अपनी व्यथा कहें और अन्त में वे व्यक्ति जो निर्णय करें उसे स्वीकार करें। कुछ काल के बाद इसी प्रथा में राजा का सिंहासन पर बैठकर न्याय करने का अङ्कुर हमें मिलता है। इस प्रकार से न्याय की कार्यवाही कुछ काल पर्यन्त प्रचलित रहने पर सर्वसाधारण को अनुभव हुआ कि न्याय को एक व्यक्ति विशेष की स्वेच्छा पर छोड़ देना युक्ति-सङ्गत नहीं, वह व्यक्ति विशेष चाहे कितना ही विज्ञ, कितना ही सदाचारी, कितना ही पण्डित और महात्मा क्यों न हो। किसी सत्पुरुष का वाक्य है कि यथार्थ में अधिक शक्ति यदि देवताओं के हाथ में भी आ जावे तो वह शक्ति उन्हें भी बिगाड़ देगी और उन देवताओं का मन उस शक्ति का अनुचित उपयोग करने पर चलने लगेगा। अतः यह निश्चित हुआ कि न्याय के नियम लिखकर प्रकाशित कर दिये जायँ, जो सर्वसाधारण की समझ में भी आवें और न्यायाधीश उन नियमों के अनुसार व्यवस्था भी दें, किन्तु अपनी इच्छा के अनुसार नहीं। क्रमशः नियमों की संख्या बढ़ी, व्यवस्था एवं फ़ैसले भी लिखे जाने लगे और अन्त में न्याय का साहित्य एक बड़ा शास्त्र हो गया। इस विद्या को जानने के लिए विशेष परिश्रम और योग्यता की आवश्यकता होने लगी और इसके जाननेवाले विशेष उपाधियुक्त पण्डित होने लगे। ये आज कल के वकील और बारिस्टर हैं। इस विद्या का प्रयोग करना भी कोई सुगम कार्य न रह गया।

वादी प्रतिवादी जो अधिकांश इस विद्या से परिचित नहीं थे उन्हें दूसरों की सहायता की ज़रूरत पड़ी। न्यायाधीशों को भी इसकी आवश्यकता हुई कि पक्ष और विपक्ष के प्रतिनिधि योग्यतापूर्वक सूक्ष्म और गहरे तत्त्वों से न्यायाधीशों को सूचित कर न्याय करने में सहायता दें। यही, अदालती मुबाहसा एवं तर्क-वितर्क है।

साङ्ग्रामिक न्याय (मार्शल लॉ) कहाँ तक, किस आपत्ति

के समय, किस काल पर्यन्त उपयोगी है और कब उसका प्रचलित रखना अन्याय है, इसे समझने के लिए यह निवेदन आवश्यक प्रतीत होता है, कि पूर्वोक्त लिखे लिखाये, समझे बूझे हुए, क़ानून के अनुसार न्याय का होना, विशेष योग्यता-प्राप्त न्यायाधीशों द्वारा, सुशिक्षित वकीलों के तर्क-वितर्क को सुन लेने के पश्चात् व्यवस्था का दिया जाना, दीर्घ काल तक परीक्षा किये हुए अनुभव और सामाजिक आवश्यकता का अटल फल है। जो महाशय इन बातों को क़ानून की उलझन बताते हैं, वकीलों के ऊपर नाक-भौं सिकोड़ते हैं वे ऐतिहासिक प्रमाण के प्रतिकूल जाने की चेष्टा करते हैं। सुधार की आवश्यकता हर समय हर स्थान पर रहती है, परन्तु पूर्वोक्त प्रथा ही को निर्मूल कर देना असम्भव है।

साङ्ग्रामिक नियम, अथवा जङ्गी क़ानून, अर्थात् मार्शल लॉ के प्रयोग के आदि-लक्षण ये हैं—साधारण न्याय-मन्दिरों के कपाट बन्द हो जाते हैं; प्रचलित और निर्मित नियमों के स्थान पर सेनापति की इच्छा और आज्ञा का पालन किया जाता है। शीघ्रता से फ़ैसले होते हैं। वकीलों की गुज़र नहीं होती। यदि उनकी गुज़र भी हुई तो कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकते। बिना वारण्ट पकड़-धर होती है, सख़्त सज़ायें होती है। कभी कभी अहमद की पगड़ी महम्मद के सिर भी हो जाती है। जो क्रियायें सामान्य काल में घोर अन्याय समझी जाती हैं वे प्रजा में भय उत्पन्न करने के निमित्त पदाधिकारियों की अनुमति-पूर्वक प्रयोग में लाई जाती हैं।

मार्शल लॉ का प्रयोग कई अर्थों में होता है। परन्तु उनमें से एक अर्थ तो यथार्थ है, शेष नहीं। इसका असली मतलब उस क़ानून से है जिसे हम साङ्ग्रामिक नियम अथवा जंगी क़ानून कहेंगे। अनुचित प्रयोग इस शब्द का उस समय होता है जब यह मिलिटरी लॉ अर्थात् फ़ौजी क़ानून सेना-प्रबन्धक नियमों के अर्थ में इस्तेमाल किया जाता है। यह अर्थ अनुचित है। मारशल लॉ को हम इस मानी में इस्तेमाल न करेंगे।

प्रत्येक राष्ट्र में कुछ न कुछ सेना अवश्य होती है, जिस में समाज का एक विभाग सम्मिलित हो शस्त्र-धारण का उद्यम स्वीकार कर लेता है। यह शासन का सेना-विभाग कहलाता है। इसमें सम्मिलित हो जाने पर नवीन कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है। उठने बैठने के, लैन में हाज़िर रहने के, पदाधिकारियों की आज्ञा पालन करने के विशेष रूप से नियम होते हैं जो साधारण राज नियमों से भिन्न हैं। इसकी दण्डनीति, न्यायालयों का सङ्गठन, उनकी कार्यवाही के नियम, आरम्भिक न्यायाधीशों की व्यवस्था से अपील, अथवा उनके निरीक्षण का प्रबन्ध जिन नियमों द्वारा होता है उस नियम-समूह को मिलिटरी लॉ कहते हैं। यह शान्ति के समय और अन्य समय पर भी प्रचलित रहता है। इस लेख में हम इन नियमों का वर्णन न करेंगे।

जब सङ्ग्राम आरम्भ हो जाता है तब साङ्ग्रामिक नियम का प्रयोग यथोचित हो जाता है। जब तक युद्ध का आरम्भ नहीं, तब तक जंगी क़ानून प्रयोग में नहीं आसकता। बिना युद्ध की स्थिति उत्पन्न हुए यदि इन नियमों से काम लिया जाय तो पदाधिकारियों के सम्पूर्ण कार्य बिना अधिकार और बलात्कार समझे जायँगे जिनके लिए प्रजा न्यायमन्दिरों से सहायता ले उन्हें उचित दण्ड दिला सकती है। जब युद्ध-काल (Tempus Belli or time of war) आरम्भ हो जाय तब इस क़ानून के अनुसार किये हुए कार्यों की छान-बीन वर्तमान न्यायालयों में नहीं हो सकती। युद्ध की स्थिति में साङ्ग्रामिक नियमों को प्रचलित कर देने पर भी, यदि नियमों द्वारा प्राप्त किये हुए अधिकारों का द्वेषभाव अथवा अन्य कारणों से उल्लङ्घन हो अथवा जब ऐसे काम किये जायँ जो इन अधिकारों के भी बाहर हों, तब प्रजा को अवसर प्राप्त होता है कि वह इन नियमों के आधार पर किये हुए कार्यों के विषय में न्याय-मन्दिरों में नालिश कर सकती है। इसका कुछ वर्णन आगे चल कर होगा।

युद्ध की स्थिति विदेश में यानी देश की सीमा के बाहर एवं स्वदेश में यानी देश के अन्तर्गत भी उत्पन्न हो सकती है। जब एक देश की सेना दूसरे देश पर समर करती हुई बढ़ती है तब विजित देश का शासन इसी क़ानून द्वारा, उस समय तक किया जाता है जब तक समर वर्तमान रहे। जब शत्रु-सेना अपने देश में आकर युद्ध करती है तब दोनों तरफ़ उभय पक्ष को इस क़ानून से काम लेने का

अधिकार उत्पन्न हो जाता है। इसी भांति जब प्रजा का एक बड़ा समुदाय किसी कारण-वश शासन-कर्ताओं से वैमनस्य करके ग़दर करने की ठान लेता है और उद्दण्ड कर्म करने लगता है और देश से शासन उठ प्रतिदिन के कार्य बन्द हो जाते हैं उस समय भी राज-नेता इन नियमों को प्रयोग में लाते हैं और ला सकते हैं।

अब देखना चाहिए कि यह साङ्ग्रामिक नियम-नीति क्या वस्तु है ? इसका वर्णन एक प्रसिद्ध अँगरेज़ जनरल ड्यूक आव् वेलिंगटन ने इस तरह किया है। "साङ्ग्रामिक नियम केवल सेना के आज्ञाधारी सेनापति की स्वेच्छा है। इससे न कम न ज़्यादा। जो कुछ है वह सेनापति की इच्छा पर निर्भर है। वह जो चाहे करे"। वे फिर कहते हैं "वस्तुतः साङ्ग्रामिक नियम किसी प्रकार से क़ायदा या क़ानून का अर्थ नहीं रखता। इस कारण जब कोई सेनापति घोषणा-पत्र द्वारा साङ्ग्रामिक नियमों को प्रचलित होने की सूचना दे उन नियमों को प्रयोग में लाने की आज्ञा देता है, तब यह उसका कर्तव्य है कि स्पष्ट रीति से वे सिद्धान्त अथवा क़ायदे नियत एवं स्थित कर दे जिनके अनुसार उस सेनापति की उक्त स्वेच्छा का प्रतिपादन और पालन किया जायगा।*

असमाप्त

आनन्दीप्रसाद दुबे, बी. सी. एल (आक्सफर्ड)
बैरिस्टर-एट-लॉ

नीगरो जाति का प्रधान शिक्षालय टसकेजी।

दो पत्र पाठशाला के फ़ायदे के लिए यहीं से छपते हैं। चार मासिक पत्र यहाँ छपते हैं और बहुत सा फुटकर कार्य्य पाठशाला तथा निकटस्थ नगर का यहाँ होता है। इस तिभाग के कार्य्य का मूल्य १९११ में १६२१७ डालर अनुमान किया जाता है।

पाठशाला-आराघर १८८६ में बनाया गया। उस समय पाठशाला के पास बहुत सी अच्छी लकड़ी का वन था। खोज से पता चला कि इसको काटकर बेचने में बड़ी बचत व फ़ायदा होगा। १९१० में ७८००० फुट लकड़ी चीरी गई। १५३४०० फट लकड़ी छीली बनाई गई, १०५००० खराद बने और बहुत ईंधन के लिए चीरी गई।

प्रथम गाड़ी जो बनी वह एक अनपढ़ फेटापू ने (Fayettapugh) बनाई थी जो उस समय १८८७ में आरेघर में कार्य्य करता था। उस समय स्कूल को गाड़ी की बहुत ज़रूरत थी पर पास रुपया ख़रीदने को न था। इस मनुष्य ने कहा कि यदि स्कूल लोहा ख़रीदे तो वह गाड़ी बना देगा। यह गाड़ी लोहे का काम छोड़कर यहीं एक केम्प के पेड़ के नीचे बनाई गई थी। इसीसे गाड़ी व पहिये के बनाने का कारख़ाना १८८८ में खुला।

थोड़े दिन के बाद यही पहियों का कारख़ाना लोहारी के कारख़ाने की मदद से बघ्घी व गाड़ी बनाने लगा। तब गाड़ी बनाने का पूरा कारख़ाना १८९१ में खोला गया।

कृषि-यन्त्रों की मरम्मत के अतिरिक्त प्रति वर्ष यहाँ २० गाड़ियाँ बनती हैं। इसके अतिरिक्त लढ़िया व छकड़े भी बहुत से बनते हैं—१९११ में इस विभाग में से १०६२ भिन्न भिन्न सड़कें बनीं, जिनकी क़ीमत ४७७२ डालर हुई।

क़लई का ख़र्च १८९० में इतना बढ़ गया कि अपने यहाँ इसका कारख़ाना खोल लेना सस्ता मालूम पड़ा। लूइस आदस Luois Addus नामक एक रंगीन पुरुष, जिसने पाठशाला के लिए टसकेजी की प्राप्ति में बड़ी सहायता दी थी, इस कार्य्य को करता था। जाँच से पता चला कि वही मनुष्य स्कूल में नौकर रक्खा जा सकता है जो लड़कों को कार्य्य की शिक्षा देगा। वह सब कार्य्य भी

---

* हाल इन्टर न्यशनल लॉ, ५ वीं प्रति, पृष्ठ ४७१ नोट।

करेगा व इसके बदले में पुरानी चीज़ों की मरम्मत में जो व्यय होता था उससे उसे व्यय भी देना पड़ेगा। आदम महाशय मोचीगीरी भी जानते थे, जिसके द्वारा उन्होंने पाठशाला को बड़ी सहायता पहुँचाई। इससे इन्हें यहाँ रखकर सब कार्य छात्रों को सिखाना ही निश्चित हुआ।

इस समय क़लई-विभाग से प्रायः ३००० पुराने व नये बरतन तैयार होते हैं। बड़ी बड़ी सब इमारतों की छत के लिए यहीं टीन बनाई गई है। १९०८ ई० में प्रथम जस्ते की क़लई के पत्तर मकानों में लगाना यहाँ आरम्भ हुआ।

जूते की दुकान में ५३ जोड़े नये बने। ६४ जोड़ों की ऊपरी मरम्मत हुई व २९०० जोड़ों की और तरह की मरम्मत हुई। इसमें १८०० डालर का वर्ष के भीतर कार्य्य हुआ। साज़ की दूकान में १९११ में ३८ जोड़ साज़ बने, १२ दर्जन दहाने, ४०० अन्य साज़-सम्बन्धी पुरज़े बने। २० गाड़ियों की पोशिश हुई, १० अच्छी बग्घियों के टप बने। १२ जोड़ परदे व गद्दियाँ बनीं। सब मूल्य ३९६४ डालर मिला।

एक हटाया हुआ कोपला यंत्र Capola टसकेजी के निकटवर्त्ती एक सफ़ेदों की पाठशाला से यहाँ दान में मिला। इसीसे यहाँ यन्त्रशाला बनी। वाशिंगटन महाशय बहुत दिनों से यन्त्रशाला बनाने के विचार में थे। इनके विचार की पूर्त्ति के लिए ढालने के सामान की भी ज़रूरत पड़ी। यह विचार आप निकटस्थ स्कूल के कर्म्मचारियों से प्रकट कर चुके थे। उन्होंने छोटा पुराना यन्त्र हटाकर अपने यहाँ नया बनाना चाहा। इसीसे यह छोटा इनको दे दिया।

पाठशाला उस समय इतनी धन-हीन थी कि इस कार्य्य के लिए भी धन देने को समर्थ न थी। वाशिंगटन महाशय ने ३ जोड़ी बैल भेजकर उस यन्त्र को कच्ची सड़क से उठवा मँगाया। उस समय से पाठशाला अपने यहाँ के ढालने के कार्य्य स्वयं करती है व आसपास के ग्रामों का कार्य भी यहाँ होता है। यहाँ अन्य जनों के दर्वाज़े, चारपाई, भिन्न भिन्न यन्त्र इत्यादि सभी बनते व ढलते हैं।

इस समय यन्त्रशाला ढालघर को छोड़कर २८१० फुट ज़मीन छेके हुए है। यहाँ ११ इञ्जन चलते हैं, जिनकी शक्ति ८६१ अश्वों की है। भिन्न भिन्न कई इञ्जनों के कारण शक्ति के व्यर्थ व्यय को दूर करने का यत्न हो रहा है। (अब यहाँ एक बड़ा इञ्जन बन रहा है जिससे यह दिक़्क़त दूर हो जायगी।)

नल का कार्य जो पूर्व में यंत्रशाला के अन्तर्गत था अब पृथक् कर दिया गया है। इस विभाग ने ९५४५ फुट गैस तथा ३०९३७ फुट पानी के नल लगाये हैं। इस विभाग का कार्य १९११ में ६१७९ डालर का हुआ।

इस समय ६००० से अधिक बिजली की रोशनी मकानों तथा सड़कों पर लगी है। १८९८ में प्रथम २ डाइनमो ख़रीदे गये थे व प्रथम २ गिर्जों में बिजली लगी थी। इस समय गृनवुड ग्राम के बहुत से गृहों में बिजली लग गई है व क़रीब २६ मील लम्बा तार इस समय रोशनी के लिए लगा है जो सब छात्रों के ही देख भाल में है।

रंगसाज़ी प्रथम १८९१ में पृथक् सिखाई जाने लगी। पहले बढ़ई-घर व गाड़ीख़ाने में यह कार्य होता था। १९११ में इस विभाग ने छोटे बड़े १२९७ कार्य्य किये। इसमें दर्वाज़ों में शीशा लगाना, साइनबोर्ड बनाना, गाड़ी वा मेज़ कुर्सा पालिश करना सब शामिल है।

दर्ज़ीख़ाने में २००० कार्य हुए जिसमें २७५ पूरा सूट शामिल है। छात्रों की पोशाक यहीं बनती है। इसमें ६५ छात्र कार्य करते हैं।

कृषि-सम्बन्धी तथा यन्त्र-सम्बन्धी नक़शा बनाना पहले अलग अलग सिखाया जाता था। जब से इसका एक भिन्न विभाग बन गया है तब से कार्य में बहुत उन्नति हुई है। अब यहाँ केवल मकानों के ही नहीं किन्तु हर प्रकार के नक़शों का कार्य होता है।

इसकी सहायता से छात्रों की विचार-शक्ति बहुत बढ़ गई है। वे अपना कार्य अच्छी तरह करते हैं।

स्त्रियों के सम्बन्ध की कला।

जो कार्य यहाँ स्त्रियों की कला के नाम से विख्यात हैं वे एक भवन में हैं, जिसका निर्माण १९०१ में हुआ था। वह Dorothy Hall के नाम से विख्यात है। यहाँ पर धोबी-ख़ाना, पाकशाला—दर्ज़ीघर और टोपी बनाने के कारख़ाने हैं। यहाँ पर दौरी, मौनी, चटाई, झाड़ू व साबुन भी बनता है।

पाकशाला बड़ी बनाई गई है और पाकशिक्षा भी भलीभाँति दी जाती है। पहले छात्र ही पाक बनाते थे किन्तु अब परोसने का कार्य तो छात्र करते हैं पर पाक की व गृह-प्रबन्ध की शिक्षा भिन्न स्थानों में दी जाती है।

१९०३ से सब बालिकाओं को पाकक्रिया व गृह-प्रबन्ध-कला सिखाई जाती है। इस शिक्षा के पा लेने के उपरान्त उन्हें एक मास तक छात्रों तथा शिक्षकों के भोजनालय में कार्य्य करना होता है। इसके अतिरिक्त पाठशाला के पास एक और छोटा सा गृह है जिसमें ऊँची कक्षा की लड़कियाँ अपना घर का प्रबन्ध स्वयं करती हैं। इससे उन्हें गृह-प्रबन्ध में पूरी शिक्षा मिल जाती है। यह सब प्रबन्ध उन्हें थोड़े से धन से ही करना पड़ता है जो उन्हें पाठशाला से ही मिलता है।

पोशाक बनाना व टोपी साजने का कारख़ाना अभी थोड़े ही दिनों से खोला गया है और यह साधारण सिलाई के विभाग के साथ ही जोड़ दिया गया है। इसका अभिप्राय कुछ छात्रों के लिए व्यवसाय का प्रबन्ध करना ही मात्र है। साधारण सिलाई का कार्य्य मामूली अन्दर के कपड़ों के लिए खोला गया था। गत वर्ष २७१९ अदद कपड़े साधारण सिलाई-घर में बने। टोपी-घर में ४५० टोपियाँ बनीं।

ज़नाने १४५ जोड़ा पोशाक व १०७२ छोटे छोटे कपड़े व पोशाकें बनीं।

दौरीमौनी का कारख़ाना एक सम्पादक के विचार से उत्पन्न हुआ था।

१९१० में निम्न-लिखित चीज़ें यहाँ बनीं। १४४९ झाड़ू, १२५ गद्दे, १० चटाई या फ़रश वग़ैरह, ४८४ पर्दे, १९३ टेबुलक्लाथ, २६३ बिछौने की खोलियाँ, २०११ तकियों की खोलियाँ, १२३ खिड़की के पर्दे, ९९ भिन्न प्रकार के पर्दे, सब मिला के यहाँ २५७५ डालर का कार्य १९१० में हुआ।

पाठशाला की तमाम धुलाई का कार्य्य पाठशाला के ही धोबी-घर में लड़कियाँ करती हैं। १६०० आदमियों के कपड़ों की धुलाई का काम मामूली काम नहीं है। वर्ष में १४३२०२३ कपड़े धोने पड़ते हैं।

साधारण पढ़ाई-विभाग।

पाठशाला का साधारण विभाग का कालिज पी० हनटिङ्गटन स्मारक भवन (Callis P. Huntington Memorial Building) में स्थित है। यह भवन पूर्वोक्त सज्जन की पत्नी ने अपने पति के स्मारक में बनवाया है।

यहाँ के कुल छात्रों को साधारण शिक्षा भी ग्रहण करना आवश्यक अर्थात् अनिवार्य्य है। यहाँ पर साधारण शिक्षा को औद्योगिक शिक्षा के साथ मिलाने का ढङ्ग नियमित रूप पर यत्न से किया जाता है। इस भाँति औद्योगिक विभाग का कार्य केवल भार मात्र नहीं रह जाता किन्तु उसमें भी एक प्रकार का जीवन व उच्च उद्देश्य आजाता है।

दूसरी ओर जो सिद्धान्त साधारण विभाग में सिखाये जाते हैं उनका यथेष्ट प्रमाण तथा उनका वास्तविक उपयोग ज्ञान औद्योगिक विभाग में प्राप्त हो जाता है।

साधारण विभाग में छात्रों की संख्या दिन में पढ़नेवाली वा रात्रि में पढ़ने वाली जमातों में विभक्त है। दो तिहाई छात्र दिन में व एक तिहाई रात्रि में पढ़ते हैं।

रात्रि में छात्रों को प्रति सप्ताह ४ दिन ६.४५ से ८.३० तक व एक दिन ६.४५ से ८ तक पाठशाला जाना पड़ता है। दिन के विद्यार्थियों को सप्ताह में ३ दिन ९.३० से १२ व १.३० से ४ तक पाठशाला में जाना पड़ता है—रात्रि के छात्र जो हृष्ट पुष्ट व बुद्धिमान् हैं मामूली दिन के विद्यार्थियों की अपेक्षा आधी उन्नति करते हैं।

रात्रि की पाठशाला उन छात्रों के उपकारार्थ है जो दिन की शाला में, जो थोड़ी फ़ीस ली जाती है, उसे भी नहीं दे सकते।

दिन के छात्रों का व्यय कपड़े का ख़र्च छोड़कर और जो कुछ वे कमाते हैं उसे मिनहा देकर, क़रीब ४५ या ५० डालर प्रतिकाल (Term) के लिए व्यय करना होता है जो प्रायः ९ मास के लिए होता है। छात्रों की मज़दूरी की उजरत उनके परिश्रम व कार्य-कुशलता पर निर्भर है—रात्रि के छात्र जो कुछ कमाते हैं उसमें से भोजन का ख़र्च काट के बाक़ी उनके हिसाब में जमा हो जाता है जो उनके काम में उस समय आवेगा जब वे दिन की शाला में सम्मिलित होंगे।

साधारण विभाग के शिक्षकों की मण्डली ५२ की है। इनमें से ११ अँगरेज़ी के शिक्षक, ९ गणित के, ५ इतिहास व भूगोल के, २ विज्ञान के, १ शिक्षण-शास्त्र का, २ हिसाब-किताब के, ३ गान व वाद्य-विद्या के, १ अध्यापिका शिशु-शिक्षा के लिए, १ नक़्शा खींचने व लिपि के लिए, १ शारीरिक उन्नति के लिए, ३ पुस्तकालय में, ७ शिशुशाला में व ४ विभागपति के दफ़्तर में हैं।

शिशुशाला कुल के लिए साधारण शाला है। इस शाला के लिए कुल निवासी २५० डालर व कुल १००० डालर प्रति वर्ष देते हैं। इसके अतिरिक्त उसे ३५० डालर की आय शुल्क से है। १९०२ में एक उदार मित्र ने इस शाला के लिए उपयुक्त भवन बनवा दिया। इसमें पाठशाला, भोजनशाला व शय्यागृह भी है जिसके आधार पर लड़कियों को गृह-प्रबन्ध की शिक्षा दी जाती है। उसी प्रकार लड़कों के लिए दस्तकारी का भी प्रबन्ध है। यहाँ भी शिक्षक कुल से आते हैं। यह पाठशाला कुल की निचली कक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार करती है।

साधारण विभाग के अन्तर्गत प्रतिवर्ष गर्मियों में शिक्षण-कला के सिखाने का प्रबन्ध होता है।

इसके द्वारा शिक्षकों को अपनी योग्यता बढ़ाने में बड़ी सहायता मिलती है। यह पाठशाला केवल ४ सप्ताह चलती है—इसमें सारे दक्षिणी प्रान्तों तथा कुछ उत्तरी प्रान्त के प्रायः ३०० शिक्षक आजाते हैं।

फेल्प्स बाइबिल पाठशाला।

बाइबिल की शिक्षा के लिए पाठशाला फेल्प साहब के भवन में साधारण पाठशाला के सामने उपस्थित है। इसका उद्देश विद्यार्थियों को अँगरेज़ी बाइबिल का पूरा ज्ञान देना है, जिसमें वे रङ्गीन जाति के अन्दर पुरोहित व उपदेशक का कार्य कर सकें। १८९२ से अब तक यहाँ से ६११ पुरुष व ६ स्त्रियों ने शिक्षा ग्रहण की है। उनमें से ८४ पुरुष व ६ स्त्रियों ने उपाधि पाई हैं।

रात्रि की बाइबिल पाठशाला से निकटवर्त्ती ग्रामों के उपदेशकों व पुरोहितों को लाभ होता है। ये सप्ताह में दो बार कभी कभी चार चार मील पैदल चलकर शिक्षा ग्रहण करने आते हैं।

इस शिक्षा-मण्डल में ६ शिक्षक हैं। इनके अतिरिक्त रङ्गीन जाति के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के विशेष उपदेशक भी यहाँ कभी कभी सम्प्रदायों के बारे में व्याख्यान देते हैं।

मेकम वाऊनटी मिनिस्टर असोसियेशन के प्रतिवर्ष यहाँ ४ अधिवेशन होते हैं जिससे सामयिक प्रश्नों का ज्ञान विद्यार्थियों को हो जाता है। यहाँ के विद्यार्थी कृषकों की सभा में भी सम्मिलित होते हैं व भिन्न भिन्न अन्य कार्यों में भी सम्मिलित होने के कारण उन्हें जाति के सब प्रश्नों का पता रहता है और उसकी आवश्यकताओं को भी जानते रहते हैं।

शिक्षक-शाला के साथ गर्मियों में पुरोहितों के लिए भी विशेष शाला खुलती है। उसका अभिप्राय ग्रामीण पुरोहितों तथा उपदेशकों को उनकी शिक्षा में सहायता देना और उन्हें जाति-सेवा में उचित स्थान देना है।

शासन-विभाग का सब कार्य शासन-भवन में ही एकत्र है। उसमें प्रधान शासक व मन्त्री का कार्यालय स्थित है। यहीं पर कोषाध्यक्ष, शासन-सभा, परीक्षक व सेनानायक तथा पुलिस-विभाग के कार्यालय भी हैं। इसी भवन में, जो १९०४ में तैयार हुआ था, डाकघर तथा छात्रों की कोठी भी है।

शासक सभा को पाठशाला के शासन का अधिकार प्राप्त है। इसका निर्माण शाला के प्रधान कर्मचारियों से होता है। उसके सभ्य निम्न-लिखित अधिकारी-गण हैं—प्रधान, कोषाध्यक्ष, व्यवसाय-निरीक्षक, यान्त्रिक-व्यवसाय-निरीक्षक, प्रधान के मन्त्री, कृषि-विभाग के सञ्चालक, सेनानायक, बाईबिल शिक्षा के प्रधान, व्यवसाय-नायक, साधारण शिक्षा-विभाग के नायक, हिसाब-किताब के परीक्षक, खेतों की जाँच करनेवाले, प्रमाणदाता, स्त्री-शाला की प्रधान अध्यापिका व बालिका-सम्बन्धी व्यवसाय की अध्यक्षिणी।

१९०१ में कोठी भी यहाँ खोली गई। उसका अभिप्राय छात्रों को कोठियों में हिसाब-किताब रखने का अभ्यास कराना था। अपरोक्ष रीति से किफ़ायतशारी सिखाना भी था। १९११ में यहाँ की जमा की हुई रक़म १८७६ डालर थी और यह रक़म १२५० असामियों ने जमा की थी। परीक्षक के कार्य्यालय में हर प्रकार के पाठशाला-सम्बन्धी व्यय का हिसाब रहता है।

हिसाब ५१ भिन्न भिन्न विभागों में विभक्त है। इनमें ४० भिन्न भिन्न कारीगरनियों का हिसाब भी सम्मिलित है। सब अपना अपना हिसाब अलग अलग रखती हैं।

सारे लेने देने का हिसाब यहीं चुकता है। सब मिलाकर यह ६००००० के निकट पहुँचता है। इस कार्यालय में ४००० लेखे पड़े हैं जिनमें १५०० छात्रों के हैं। जाँच करनेवाले हिसाब-किताब के शिक्षण का कार्य भी पाठशाला में करते हैं और जाँच करनेवाले का विभाग छात्रों को अधिक पक्का हिसाबी बनने का भी अवसर देता है।

व्यवसाय-विभाग—यह विभाग सर्वोत्तम है। इसके द्वारा ही शाला-शिक्षक तथा कुल के लिए सारी वस्तुयें ख़रीदी व फिर बेची जाती हैं। शाला में प्रत्येक दिन ४०२७ भाग भोजन का परसा जाता है। इसका मूल्य सूखे सीधे के लिए प्रत्येक भाग पर कोई ।≤)॥ आना पड़ता है। एक समय की रसोई में निम्न-भाँति सामग्री लगती है। ९५ गैलन कहुआ, ३५० पाउंड शाक, ७५ गैलन सतालू, १२० गैलन दूध, ४५ पाउंड मक्खन, २० गैलन शीरा, ३०० रोटी, ५६०० टुकड़े मक्की की रोटी के, २२ ख़ुराक़ शकर के व क़रीब ३७५ पाउंड मांस—यह भिन्न भिन्न जन्तुओं का होता है। इसीसे इस विभाग को कितना कार्य्य करना होता है मालूम हो जायगा।

औषधालय—यह विभाग १८९२ में खुला था किन्तु १९०१ तक इसके भिन्न भिन्न विभागों को एक मन्दिर में एकत्र करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था—अब अन्डिर्युज़ स्मारक औषधालय Andrews Memorial Hospital ५०००० की लागत से बन रहा है। उसके बन जाने पर प्रत्येक विभाग के लिए यथेष्ट जगह प्राप्त हो जायगी और विस्तार व प्रसार के लिए भी कोई असुविधा न होगी।

यह औषधालय प्रधान वैद्य के निरीक्षण में है और उसके अन्तर्गत और कर्म्मचारी व कर्मचारिणियाँ हैं। १८९४ से अब तक ७४ धाइयाँ यहाँ से शिक्षा पाकर निकल चुकी हैं। इसमें शिक्षा का समय ३ वर्ष हैं। प्रवेश के पूर्व यह समझाया जाता है कि छात्र साधारण पाठशाला की शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं।

इनके अतिरिक्त शिक्षण-विभाग भी है। यह विभाग साधारण शाला में होना कठिन था। इसकी वृद्धि दिन दिन होती जाती है। इसके कार्य्य का भी संक्षेप में वर्णन कर देना उचित होगा।

१. जनता के विचार-स्रोत को बदलना। यह कार्य्य निगरो कान्फरेन्स द्वारा होता है।

२. जनता को अपने खेत में प्रीति कराना और उन्हें उत्तम रीति से कृषि-कार्य्य में उत्साहित कराना—यह कार्य्य कृषि-सम्बन्धी साधारण शिक्षा तथा प्रदर्शन द्वारा किया जाता है। इसके लिए कृषि-सभायें बनी हैं।

१८९१ से वार्षिक निगरो कानफ़्रेंस का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ और प्रथम वर्ष में ही ४०० कृषक इसमें सम्मिलित हुए और इसकी दिनोंदिन उन्नति होती गई। यहाँ तक कि आज इसमें सारे दक्षिणी प्रान्त से लोग आते हैं।

अब इसका कार्य बन्द कर दो दिन में समाप्त होता है। प्रथम दिन कृषकों को दिया जाता है, और दूसरे दिन छात्रों तथा शिक्षकों को—इससे अब कान्फ़्रेन्स के दो भाग हो गये हैं। एक कृषकों का और दूसरा कार्य्य-कर्त्ताओं का।

इसके अतिरिक्त नाना प्रकार से भिन्न भिन्न रूप में जनता की दशा सुधारने में यह संस्था महान् कार्य्य कर रही है।

इसके साथ साथ सैनिक शिक्षा का भी प्रबन्ध है, जिसमें सब छात्र सैनिक तथा शिक्षक गण नायक रूप से मिलकर पूरी सेना बनाते हैं और ये ही पुलिस तथा चौकीदारी का कार्य्य भी कुल में करते हैं।

चरित्रसुधार तथा साम्प्रदायिक शिक्षा का भी यथेष्ट प्रबन्ध है—इसके अन्तर्गत गिर्जा-युवक तथा युवती-समाज तथा अन्य व्यवसाय भी हैं।

पुस्तकालय कारनेजी महाशय की कृपा से २०००० की लागत से १९०२ में बनकर तैयार हो गया था। इसमें १९००० पुस्तकें इस समय हैं।

मैंने इस संस्था के विवरण में बहुत सी जगह इसे विस्तार से लिखने का साहस किया है, इसका कारण यह है कि मुझे यह शिक्षा-संस्था बहुत अच्छी लगी और मैं चाहता हूँ कि अनुभवी पुरुष इस ढङ्ग की संस्थाओं से अपने देश को भरदें—इसमें प्रधान ४ गुण हैं।

(१) साधारण शिक्षा के साथ व्यवसाय तथा जीविका-सम्बन्धी शिक्षा का होना।

(२) व्यवसायों के सहारे पठन-समय में भी छात्रों को जीविका का प्रबन्ध होना जिसके द्वारा निर्धन से निर्धन छात्र को भी शिक्षा का लाभ होना सम्भव हो गया है।

(३) बालक और बालिकाओं का सङ्ग्रह कर शिक्षा प्राप्त करने से, आपस की हिचक दूर होने से पवित्र व साफ़ जीवन का बनना व गृह से अलग रहने पर भी गृह के सभी उत्तम प्रभावों का समावेश व सच्चे गुरुकुल की झलक।

(४) परिश्रम द्वारा थोड़े धन से महान् कार्य्य का थोड़े समय में हो जाना ।

मैं चाहता हूँ कि इससे हिन्दू मुसलमान विश्वविद्यालय, भिन्न भिन्न गुरुकुल, देशी संस्था तथा प्रेम-महाविद्यालय उपयोगी बातों का पता लगा उन्हें कार्य्य में परिणत करें ।

देश और समाज के लिए अच्छा होता यदि हिन्दू-विश्वविद्यालय इस ढङ्ग पर बनता । हमें इस समय जितनी आवश्यकता निपुण लोहार, बढ़ई, दर्ज़ी आदि व्यवसायियों तथा भिन्न भिन्न यन्त्रकला व कृषकों की है उतनी वकीलों तथा सफ़ेद-पोश बाबुओं की नहीं है । ईश्वर हमें बुद्धि दें कि हम अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को समझें और उसके पूर्ण करने में दत्तचित्त होकर लगें ।

अमेरिका का एक यात्री

काबुल के स्वर्गवासी अमीर हबीबुल्लाख़ाँ ।

बड़े लाट के पास २४ फ़रवरी १९१९ को तार द्वारा समाचार आया कि अमीर-काबुल हबीबुल्लाख़ाँ को किसी हत्यारे ने जलालाबाद के निकट २० फ़रवरी १९१९ को मार डाला और उनके भाई नासिरुल्लाख़ाँ उनके पुत्रों और प्रजा के प्रतिनिधियों की सम्मति से राजगद्दी पर बैठे ।

वाइसराय ने, पूर्वोक्त शोक-समाचार सुनकर यह घोषणा की कि २८ फ़रवरी १९ को सब सरकारी दफ़्र ऐसे सच्चे मित्र की मृत्यु के शोक में बन्द कर दिये जायँ ।

जलालाबाद में अमीर-काबुल की अचानक हत्या की छानबीन होती रही । लोगों को नासिरुल्लाख़ाँ पर कुछ सन्देह होना आरम्भ हुआ । पीछे उनको स्वर्गवासी अमीर के पुत्र के लिए सिंहासन ख़ाली करना पड़ा । काबुल में १३ अप्रैल को एक सार्वजनिक दरबार हुआ जिसमें यह सिद्ध हुआ कि नासिरुल्लाख़ाँ ने मृत अमीर की हत्या करने के लिए उत्तेजना दी थी । इसलिए नये अमीर ने उन्हें जन्मभर के लिए कारागार में बन्द कर दिया । यह भी पता चला कि एक अफ़ग़ानी करनल ने, जिसका नाम शाह अलीरज़ा था, नासिरुल्लाख़ाँ के कहने पर जलालाबाद में अमीर की हत्या की थी । दरबार के बाद इस अफ़ग़ानी अफ़सर को अमीर की हत्या करने के अपराध में प्राणदण्ड दिया गया ।

हबीबुल्लाख़ाँ का जन्म १८७२ ईसवी में हुआ था और १९०१ में वे राजगद्दी पर बैठे । हिन्दुस्तान की सरहद पर जितने स्वतन्त्र राज्य हैं उनमें अफ़ग़ानिस्तान कई बातों में विशेषता रखता है । यह पहाड़ी देश है । इसमें लगभग ६० लाख बलवान् और हृष्ट-पुष्ट मनुष्य रहते हैं । १८८१ ईसवी में जब अमीर अब्दुर्रहमान को भारतीय गवर्नमेंट ने इस देश का शासक स्वीकार किया, तभी से इस देश का आधुनिक इतिहास आरम्भ होता है । उस समय यह भी निर्धारित किया गया कि अफ़ग़ानिस्तान स्वतन्त्र राज्य है, तोभी यह भारतीय गवर्नमेंट के अतिरिक्त और किसी अन्य देश से राजनैतिक सम्बन्ध नहीं रख सकता ।

अमीर अब्दुर्रहमान कई वर्षों तक इस सन्धि-पत्र से विचलित न हुए । भारतीय गवर्नमेंट का केवल एक मुसलमान प्रतिनिधि उस देश में रहता था । इसके अतिरिक्त और कोई विशेष सम्बन्ध न था । जब १९०१ ईसवी में अमीर अब्दुर्रहमान परलोकवासी हुए और उनके पुत्र ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली तब लोगों को यह नहीं मालूम था कि उनके भाव भारतीय गवर्नमेंट की ओर कैसे होंगे । परन्तु अमीर हबीबुल्लाख़ाँ उदारचित्त नरेश थे और उन्होंने सदैव भारतवर्ष के साथ मित्र-भाव रक्खा । घोर संग्राम में भी उन्होंने भारत-गवर्नमेंट का पक्ष नहीं छोड़ा । वाइसराय भी सदा उनकी प्रशंसा करते रहे । निस्सन्देह इस महासमर में उनका व्यवहार भारतवर्ष की ओर परम सराहनीय रहा और उनकी राजनीति से यह स्पष्ट है कि वे उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे । जर्मनी के अनेक दूत उनके देश में आये, टर्की और कैसर ने उनसे

भारतवर्ष पर आक्रमण करने को कहा, उज्ज्वल भविष्य की आशाओं से उन्हें वञ्चित करना चाहा और उनके विचारों में कुछ परिवर्तन होता हुआ न देख, उन्हें दण्ड की भी तर्जना दी अर्थात् साम, दान, दण्ड, भेद चारों का प्रयोग किया, पर उन्होंने यह कहकर सब को टाल दिया कि इस समय एक ओर अँगरेज़ों और दूसरी ओर रूस की सेना हमारे देश के निकट पड़ी है। तुम लोग अभी बहुत दूर हो। इसलिए तुम्हें हम कुछ उत्तर नहीं दे सकते। इसी भाँति वे जीवन-पर्यन्त हिन्दुस्तान के मित्र बने रहे।

हबीबुल्लाख़ाँ के पिता अब्दुर्रहमान ने राजसिंहासन पर आरोहण करते समय कहा था कि मेरा जीवन बहुत सुरक्षित नहीं, और न मेरा राज्य ही अच्छी अवस्था में है। वास्तव में अफ़ग़ानिस्तान की दूसरी लड़ाई के बाद उस देश में सुप्रबन्ध के स्थान में अराजकता छाई हुई थी। परन्तु नवीन अमीर सच्चरित्र और नीतिज्ञ थे। इक्कीस वर्ष राज्य कर उन्होंने देश में शान्ति स्थापन कर दी। १९०१ में जब उनका देहान्त हो गया, तब हबीबुल्लाख़ाँ ने राजसिंहासन को सुशोभित किया। यह कहना असङ्गत न होगा कि उस समय अफ़ग़ानिस्तान की दशा पहले से कहीं अच्छी थी और यद्यपि उसके सब भाग परस्पर भली भाँति सङ्गठित न थे, तथापि सङ्गठन का बीजारोपण पूर्व अमीर ने ही कर दिया था और बीज एक छोटे वृक्ष के रूप में परिणत हो चुका था।

पिता के देहावसान तक हबीबुल्लाख़ाँ की विलक्षण मानसिक शक्तियों का परिचय जनता को न मिला था। इसलिए उसको सन्देह था कि नये अमीर अपने पिता की भाँति योग्यता के साथ राजकार्य कर सकेंगे या नहीं। परन्तु प्रजा के भ्रम को उनके सुप्रबन्ध ने शीघ्र ही मिटा दिया। सौभाग्यवश शासनकार्य में उन्होंने अपने पिता की अध्यक्षता में उत्तम शिक्षा पाई थी। अमीर अब्दुर्रहमान के राज्य के अन्तिम पाँच वर्षों में राजकार्य के आधिक्य के कारण उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था; उनको गठिया का रोग हो गया था। इसीलिए वे राजकार्य में अपने पुत्र की सहायता लिया करते थे। हबीबुल्लाख़ाँ को इस भाँति पहले ही से राज करने में कुछ अनुभव प्राप्त हो गया। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था लगभग ३० वर्ष की थी, तथापि इनको राज्य का प्रबन्ध करने में कुछ कठिनता प्रतीत न हुई। इसके अतिरिक्त उस समय इनका कोई प्रतिद्वन्द्वी भी न था।

अफ़ग़ानिस्तान में चिरकाल तक शान्ति नहीं रहा करती। देश में लड़ाई झगड़ा हुआ ही करता है। यह बात वहाँ परम्परा से चली आई है; परन्तु अमीर हबीबुल्लाख़ाँ ने अराजकता मिटाने का उद्योग किआ और सफलतापूर्वक राज्य करते रहे। ये अपने पिता से किसी भाँति कम योग्य न थे। इनके सिंहासन पर बैठने के समय, सेना और धार्मिक संस्थाओं ने मोद प्रकट किया। दूसरे देशों के साथ इनकी राजनीति इनके पिता की अपेक्षा अधिक उदारता और बुद्धिमत्ता की थी। अफ़ग़ानिस्तान के सरदारों ने भी इनको अपना नरेश सहर्ष स्वीकार किया और भारतीय गवर्नमेंट ने भी मुसलमानों का एक डिप्यूटेशन नवीन अमीर को वधाई देने के लिए भेजा।

अमीर हबीबुल्लाख़ाँ ने अपने राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में जो कार्य प्रजा के हित के लिए किये उन्होंने उन्हें प्रजा-प्रिय बना दिया। उन्होंने अपने देश की आन्तरिक दशा सुधारी और अपने सरदारों के साथ अच्छा व्यवहार किया जिससे वे उनसे प्रेम करने लगे। उन्होंने अनिवार्य सैनिक शिक्षा का प्रचार किया; इसमें उनके सरदारों को रङ्गरूटों की कुछ संख्या शिक्षा-प्राप्ति के लिए भेजना पड़ती थी। देश के सुशासन के लिए उन्होंने एक राजसभा बनाई जिसमें राज्य के भिन्न भिन्न भागों के जटिल प्रश्न निर्धारित किये जाते थे। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय गवर्नरों के यहाँ भी प्रत्येक फ़िरक़े का एक प्रतिनिधि रहता था। यद्यपि उनकी प्रजा सङ्कीर्ण विचार की थी और उत्तरोत्तर परिवर्तन उसे पसन्द न थे, तथापि अमीर ने प्रजा के हित के लिए दूसरे देशों से संसर्ग स्थापित किया और अफ़ग़ानिस्तान की व्यावसायिक उन्नति भी की। उनके समय में देश में अच्छी जागृति हुई और प्रजा सन्तुष्ट और सुखी रही।

दूसरे देशों के साथ राजनैतिक सम्बन्ध में उन्होंने अपने पिता ही की नीति का अनुसरण किया। भारतीय गवर्नमेंट ने इनके पिता को वचन दिया था कि यदि अफ़ग़ानिस्तान केवल भारतवर्ष ही से राजनैतिक सम्बन्ध रक्खे, तो उस पर आपत्ति आने के समय यह उनकी सहायता

करेगी। अमीर हबीबुल्लाख़ां ने दृढ़तापूर्वक इस प्रतिज्ञा का पालन किया और रूस और अफ़ग़ानिस्तान से जो पत्र-व्यवहार परस्पर हुआ करता था वे भारतीय गवर्नमेंट के पास भेज दिया करते थे । हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट चाहती थी कि १८८० ईसवीवाले सन्धि-पत्र में कुछ परिवर्तन हो जाय। इसके लिए इसने बराबर लिखा-पढ़ी भी की, परन्तु सब उद्योग निष्फल हुआ। बहुत पत्र-व्यवहार के बाद अमीर-काबुल ने यह स्वीकार किया कि उनके पास राजनैतिक विषयों पर वार्तालाप करने के लिए भारतवर्ष की गवर्नमेंट की ओर से राजदूत भेजा जाय और यदि सम्भव होगा तो सन्धिपत्र की धाराओं में कुछ परिवर्तन कर दिया जायगा। इसी विचार के अनुसार लार्ड कर्ज़न ने राजनैतिक मन्त्री लुइ डेन की अध्यक्षता में एक राजनैतिक 'मिशन' १९०४ ईसवी में भेजा। ये लोग अमीर-काबुल और उनके राजकर्मचारियों से चार महीने वार्तालाप करते रहे । परन्तु अमीर-काबुल से १८८० ईसवी के सन्धि-पत्र में कुछ भी हेर-फेर कराना असम्भव समझा गया। क्योंकि वे उसकी धाराओं से बिलकुल सन्तुष्ट थे और कुछ भी परिवर्तन करने के लिए उद्यत न हुए। इसलिए १८८० और १९०५ वाले सन्धि-पत्रों में कुछ भी अन्तर न हो सका, वरन पहला ही सन्धि-पत्र और दृढ़ हो गया। हां, अमीर-काबुल के लिए १९०५ वाला सन्धि-पत्र विशेष लाभदायक रहा । इसके अनुसार उनकी स्थिति और स्वाधीनता में विशेष वृद्धि हुई। अब उन्हें "His Wajesty" का पद प्रदान हुआ अर्थात् वे पूर्णतया स्वाधीन नरेश समझे जाने लगे।

भारतवर्ष और अफ़ग़ानिस्तान में मित्रभाव बढ़ाने के लिए लार्ड मिन्टो ने अमीर हबीबुल्लाख़ां को भारतवर्ष में पधारने और मनोहर और विशाल स्थान देखने के लिए निमन्त्रित किया। अमीर-काबुल ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उसी वर्ष १९०७ में इँगलेंड और रूस के मध्य एक सन्धि-पत्र लिखा गया जिसमें दोनों देशों के हस्ताक्षर हुए। इसमें अँगरेज़ों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे अफ़ग़ानिस्तान की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन करना नहीं चाहते। उनका इरादा यह भी नहीं है कि वे अफ़ग़ानिस्तान के आन्तरिक प्रबन्ध में कुछ हस्तक्षेप करें या उसे अपने राज्य में मिला लें। उनकी एक मात्र इच्छा यह है कि अफ़ग़ानिस्तान १९०५ वाले सन्धि-पत्र से विचलित न हो। यह उनका तात्पर्य कभी नहीं है कि अँगरेज़ अफ़ग़ानिस्तान द्वारा रूस पर किसी प्रकार का प्रभाव डालें। रूस ने भी यह वचन दिया कि अफ़ग़ानिस्तान के राज-प्रबन्ध में वह हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। निस्सन्देह ये सब बातें अफ़ग़ानिस्तान के लिए हितकारी थीं। इस स्थान पर यह कहना असङ्गत न होगा कि १९वीं शताब्दी के मध्य से ही रूस की दृष्टि भारत की ओर थी और रूस के इन विचारों से अँगरेज़ अनभिज्ञ न थे। ऐसी अवस्था में भारतवर्ष और अफ़ग़ानिस्तान के मध्य मित्र-व्यवहार होना भारतवर्ष के लिए बड़े महत्त्व की बात थी। कई बार रूस ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए गुप्त प्रयत्न किये, परन्तु वे सब अफ़ग़ानिस्तान की मित्रता के कारण निष्फल रहे। भारतवर्ष मित्रभाव बनाये रखने के लिए अफ़ग़ानिस्तान को कुछ धन प्रत्येक वर्ष सहायता "Subsidy"* के रूप में देता है।

इन्हीं मित्रभावों का परिचय देने के लिए अमीर हबीबुल्लाख़ां ने वाइसराय, लार्ड मिन्टो, का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और १९०७ ईसवी में हिन्दुस्तान को पधारे। उच्च सरकारी कर्मचारियों और प्रजा ने उनका हृदय से स्वागत किया। यह पहला ही अवसर अमीर हबीबुल्लाख़ां को अपने राज्य के बाहर आने का था। वे पेशावर में एक दो दिन ठहरे। अमीर-काबुल और बड़े लाट का सम्मेलन आगरे में हुआ । उस समय आगरे में उत्सव और समारोह का कहना ही क्या था। वहां उस अवसर पर चौदह भारतीय नरेश भी उपस्थित थे जिन्होंने शोभा और भी बढ़ा दी थी। अमीर-काबुल भारतीय सेना, उसका सुप्रबन्ध और पराक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अलीगढ़-कालेज को भी अपनी उपस्थिति से सम्मानित किया था और उस समय फ़ारसी भाषा में वक्तृता देते हुए मुसलमानों से कहा कि अफ़ग़ानिस्तान में मेरी प्रजा मुसलमान

---

* Subsidy: a sum of money paid by one State to another for assistance in War.

वह धन जो एक राजा दूसरे राजा को युद्ध में सहायता के लिए देता है।

ही नहीं है, उसमें सुन्नी, शिया ही नहीं, वरन् हिन्दू और यहूदी भी रहते हैं और मैंने उन सबको पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी है। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उनके आगमन से भारतवर्ष में किसीको दुःख न हो, वरन् सभी लोग प्रसन्न रहें। बक़रीद का त्योहार निकट था। वे गोवध करके हिन्दुओं को दुःख और पीड़ा पहुँचाना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने पटियाला में अपने विचारों को इस भांति प्रकट किया—"यदि ईश्वर ने चाहा तो इस वर्ष हम दिल्ली में बक़रीद का त्योहार मनावेंगे। अपने धर्मानुसार हमें उस दिन बलिदान करना उचित है। यद्यपि गौ और अन्य जीवों का वध उस दिन किया जाता है तथापि हमारे धर्म में गोवध अनिवार्य नहीं है। इसके विपरीत हम ऊँट, बकरे इत्यादि का बलिदान कर सकते हैं। हम गोवध इस वर्ष इसलिए नहीं करना चाहते कि हिन्दू दुःखित होंगे। हमारा आगमन हिन्दू और मुसलमानों, दोनों को सुखदाई होना चाहिए। मैं अपने विचार हिन्दुओं को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।" इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि "मैं अपनी हिन्दू प्रजा की उसी भांति रक्षा करता हूँ जैसे कि मुसलमानों की। मैं गुरुद्वारों को पूजनीय समझता हूँ और अफ़ग़ानिस्तान में भी गुरुद्वारे हैं। मुझे विश्वास है कि दीन और दुखी गुरुद्वारों में भी रहते हैं। इसलिए मैंने २०० रुपये दीनों को बाँटे जाने की आज्ञा दी है।" उनके व्यवहार से हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रसन्न रहे। ग्वालियर देखकर अमीर-काबुल कलकत्ते गये और उस नगर की प्रसिद्ध और विशाल इमारतों और मनोहर रमणीक दृश्यों ने उनके चित्त को प्रफुल्लित कर दिया। इसके पश्चात् वे बम्बई पधारे। वहाँ भी उनका बहुत अच्छा स्वागत किया गया। वे विशाल, सुन्दर जलयानों (जहाज़ों) पर समुद्र में भ्रमण कर बहुत प्रसन्न हुए। हिन्दुस्तान में अमीर-काबुल ६४ दिन ठहरे और लार्ड मिन्टो, लार्ड किचनर और अन्य कर्मचारियों के व्यवहार से सन्तुष्ट रहे।

अमीर हबीबुल्लाख़ां ने जीवन पर्य्यन्त भारतवर्ष से मित्रता रक्खी। अँगरेज़ों के पक्ष के कारण उनका देश आक्रमण और सङ्ग्राम के रक्तपात से सुरक्षित रहा। साढ़े चार वर्ष के संसार-व्यापी घोर युद्ध में उन्होंने भारतवर्ष के साथ अपनी अटल मित्रता का परिचय दिया और अमीर-काबुल ही की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता ने अफ़ग़ानिस्तान और भारतवर्ष को वृथा रुधिरपात और धन-जन-हानि से सुरक्षित रक्खा। मुसलमानी राज्यों का नेता, टर्की जर्मनी की चाल में आकर अपरिमित क्लेश और दुःख का भागी हुआ। यद्यपि अमीर की प्रजा का कुछ भाग जर्मनी और टर्की से सहानुभूति रखता था, तथापि वे यथाशक्ति जर्मनी के प्रभाव को अपने देश से बाहर रखने का प्रयत्न करते रहे। अन्त में जर्मनी परास्त हुआ, परन्तु अमीर की कुछ प्रजा उनकी संग्राम-सम्बन्धी उदासीनता से सन्तुष्ट न थी। दो वर्ष पहले भी उनकी हत्या कर डालने का प्रयत्न उनके विरोधियों ने किया था और वह विफल हुआ। परन्तु वे अपनी नीति से विचलित न हुए। उनके राज्य भर में जलालाबाद सबसे अधिक अशान्त था और अन्त में वहीं एक हत्यारे ने उनका अन्त कर दिया। जो कुछ हो, हिन्दू-मुसलमानों के प्रति उनका समभाव, प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता देना, प्रजा की उन्नति और हित के लिए उत्तरोत्तर परिश्रम और उद्योग करना और जर्मनी के फेर में न आना, इत्यादि बातें इनकी बुद्धिमत्ता, सत्यता, और राजनीतिज्ञता का असन्दिग्ध परिचय देती हैं।

इस लेख के लिखे जाने के बाद यह समाचार मिला है कि नये अमीर ने दुर्नीति का अवलम्बन कर मई मास के प्रथम सप्ताह में हिन्दुस्तान की पश्चिमोत्तर सीमा पर आक्रमण कर दिया। जगद्व्यापी संग्राम समाप्त हो गया और शान्ति स्थापित हो चुकी है। ब्रिटिश गवर्नमेंट नये अमीर का सामना करने को पूर्णतया उद्यत है। युद्ध का फल यही होगा कि अफ़ग़ानिस्तान चटनी की तरह पिस जायगा। ठीक है—"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"। नये अमीर के पिता जीवन पर्य्यन्त भारतवर्ष के सच्चे मित्र बने रहे। उन्होंने घोर संग्राम में भी हिन्दुस्तान का साथ नहीं छोड़ा। वाइसराय ने उनकी कई बार मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उनकी अकाल-मृत्यु पर बहुत शोक प्रकट किया। इस युद्ध में अफ़ग़ानिस्तान की क्या दशा होगी, यह तो पहलेही से मालूम है। कहाँ सिंह और कहाँ मृग! अफ़ग़ानिस्तान में स्वयं अराजकता छाई हुई है और प्रजा नये अमीर से बिलकुल असन्तुष्ट है; तब वह ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ क्या लड़ेगा। ख़ैर, इनके भी नेत्र शीघ्र खुल जायँगे। जो हो,

अमीर की इस दुर्नीति पर हम शोक प्रकट करते हैं। इनकी नीति अपने दूरदर्शी पिता के प्रतिकूल है। इस सङ्कीर्ण दृष्टि और अनीति के लिए इन्हें शीघ्र ही पछताना पड़ेगा।

गुरुनारायण मेहरोत्र, बी० ए०

शिक्षा का अन्तिम उद्देश।

हम जितने कार्य करते हैं, उन सबमें कुछ न कुछ उद्देश रहता है। उद्देशहीन कार्य से कोई लाभ नहीं। उसके करने में जो श्रम पड़ता है वह वृथा जाता है। प्रत्येक कार्य का उद्देश हमारी आँख के सामने सदा न भी रहे, परन्तु कम से कम जीवन की प्रणाली बनाते समय किसी उद्देश का आँख के सामने रखना ज़रूरी है। अगर उद्देश नहीं रहेगा तो कार्य असंबद्ध होंगे। वे कई बार परस्पर-विरोधी भी हो जायँगे। इस अवस्था में एक बुद्धिहीन प्राणी के जीवन के समान हमारा जीवन हो जायगा। इसलिए हमारे सब कार्यों में कुछ न कुछ उद्देश रहता ही है—फिर वह उद्देश ऊँचा हो या नीचा, विचार-पूर्वक निश्चित किया गया हो या अविचार से। वह मिनट दो मिनट में सिद्ध होनेवाला हो या सैकड़ों वर्षों के बाद भी सिद्ध हो। चाहे हमारी आँखों के सामने वह रात-दिन गुज़रता हो या बड़े विचार के बाद उसका ज्ञान हमें हो सके। अगर इतना मान लिया कि हमारे प्रत्येक कार्य में उद्देश होना चाहिए और बहुधा होता ही है—क्योंकि उद्देशहीन कार्य बहुत थोड़े होते हैं, तो क्या यह आवश्यक नहीं कि हमारे कार्यों के उद्देश यथामति ख़ूब विचार के बाद निश्चित किये जाने चाहिए? सम्पूर्ण परिस्थिति का विचार करने पर हमारे कार्यों के उद्देश ठहराये जाने चाहिए। कम से कम बड़े महत्त्व के कार्यों के उद्देशों का तो ख़ूब विचार करना आवश्यक है। क्योंकि उद्देश जब तक अच्छी तरह निश्चित नहीं तब तक यह ठीक नहीं हो सकता कि कार्यों की सिद्धि के लिए कौनसे साधन किस प्रकार उपयोग में लाये जायँ। फिर महत्त्व-पूर्ण कार्यों के उद्देश बहुधा बहुकाल-साध्य होते हैं। इसके लिए अनेक छोटे मोटे साधनों की आवश्यकता होती है, और उनके लिए अनेक छोटे छोटे कार्य करने पड़ते हैं। इन छोटे छोटे कार्यों के भी उद्देश रहते हैं, जो थोड़े काल में सिद्ध हो जाते हैं और उस अन्तिम उद्देश के पोषक होते हैं। इसलिए छोटे कार्यों के परिणाम की ओर भी हमारी दृष्टि होनी चाहिए और समय समय पर यह हमें देखते रहना चाहिए कि हमारे अन्तिम उद्देश के योग्य ये साधन होते हैं या नहीं। यह तभी हो सकता है कि जब उस अन्तिम उद्देश का भलीभाँति विचार कर उसका निश्चय किया गया हो और फिर उसकी साधन-सामग्री का प्रबन्ध किया गया हो। सारांश, प्रत्येक अन्तिम उद्देश का निर्विकार रूप से विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा से अधिक महत्त्व के कार्य बहुत थोड़े होंगे। इसलिए शिक्षा के भी अन्तिम उद्देशों का विचार करना आवश्यक है।

बारूद का उपयोग चाहे कुआँ खोदने में कर लो, चाहे सुरङ्ग लगाकर फ़ौज का विध्वंस कर डालो। उसमें बारूद का कोई दोष नहीं। उसी प्रकार शिक्षा का उपयोग चाहे संस्कृत-नीति, धर्म इत्यादि बातों के लिए कर लो, चाहे चोरी, ख़ून इत्यादि गुनाह करने में कर लो। इसमें शिक्षा का कोई दोष नहीं। वह तो शस्त्र है, उसका उपयोग चाहे जैसा कर लो। उपयोग सीखने के नियम दोनों कार्यों के लिए बहुधा वही होते हैं। कुआँ खोदने में बारूद के जलाने के नियम अलग और फ़ौज के नष्ट करने के समय उसके जलाने के नियम अलग हैं, यह समझ ठीक नहीं। तथापि उपयोग की छोटी मोटी बातें अवश्य भिन्न भिन्न होंगी और विशेष साधन-सामग्री में थोड़ा बहुत भेद होगा। इसीसे उनका भिन्न भिन्न उपयोग होगा। यही बात शिक्षा को भी लागू है। चोरी करो चाहे परोपकार, पर वे ही अनुभव प्राप्त करने होंगे और उनका बहुधा एक ही विधि से उपयोग करना होगा। परन्तु उनकी प्राप्ति के समय कुछ छोटी छोटी बातें भिन्न होती जाती हैं, और उनका उपयोग करते समय विशिष्ट साधन-सामग्री की भी आवश्यकता होती है। हमने ऊपर कहा है कि उद्देशों का निश्चित करना आवश्यक है, क्योंकि कौनसी साधन-सामग्री किस प्रकार उपयोग में लाई जायगी, यह उसीसे निश्चित होगा। हमारे कहने का अर्थ अब स्पष्ट हो गया होगा। छोटी मोटी बातें ही बहुत उपयोग और महत्त्व की होती हैं। शिक्षक

को ये बातें अधिक महत्त्व की नहीं । तथापि शिक्षा के अन्तिम सूत्रधारों के लिए ये बातें विशेष महत्त्व की हैं । उन्हींके कारण शिक्षा शिक्षा कहला सकती है । इसीलिए यह सब जान सकते हैं कि उद्देशों का विचार कितना आवश्यक है, और शिक्षक को भी उद्देश का ज्ञान लाभकारी ही होगा । एक शिक्षक सीधा सीधा विद्यार्थी को बतला दे कि चूना और नौसादर पानी में मिलाने से अमोनिया नाम की वायु पैदा होती है । दूसरा शिक्षक चूना और नौसादर उन्हें पानी में मिलाने को बतला दे और उसमें क्या फ़र्क होता है, यह बारीकी से देखने को कहे, बाक़ी काम विद्यार्थी कर लें, पूर्वोक्त दो तरह से शिक्षा पाये विद्यार्थी अनेक बातों में, विशेष कर नैतिक गुणों में, भिन्न भिन्न होंगे । यह कुछ कम फ़र्क नहीं । सारांश, किसी भी दृष्टि से विचार करो, शिक्षा के उद्देशों का विचार-पूर्वक निश्चय करना अत्यन्त आवश्यक है ।

(क) उदरपूर्ति का उद्देश—बहुतेरे कहेंगे कि शिक्षा के उद्देशों का विचार ही क्या ! रोटी-पानी के लिए ही तो यह सब खटपट है ! इस पर एक प्रश्न हो सकता है कि बहुतेरे लोग अपने लड़कों को पाठशालाओं में भेजते हैं, पर उसका कारण क्या देखादेखी नहीं है ? सब कोई अपने अपने लड़के भेजते हैं, यह देखकर कोई पुरुष अपना लड़का भेजे बिना रह सकता है ? इसमें कुछ तथ्यांश अवश्य होगा, पर बहुधा लोग अपने लड़के पेट-पानी के बन्दोबस्त के लिए ही पाठशाला को भेजा करते हैं ।

बहुतसे विद्वान् इस क्षुद्र उद्देश को देखकर अफ़सोस ज़ाहिर किया करते हैं, पर यह उद्देश ऐसा क्षुद्र नहीं है, जैसा समझा जाता है । इस उद्देश में यह हो सकता है कि माता-पिता ने जैसा भोजन पाया, उससे कुछ अच्छा भोजन पाने का यत्न लड़का करे । इसमें सुधार का भाग साफ़ दीख पड़ता है । कुछ अंश में इस प्रकार के सुधार से सामाजिक सुधार भी हो सकता है । अब कोई कहे कि इस प्रकार सुधार की क़ीमत रुपये-आने-पैसे से करना ठीक नहीं, तो उसका यह उत्तर है कि आज कल सभी बातें रुपये-आने-पैसे से गिनी जाती हैं ।

इस उद्देश में अगर कुछ गुण है तो यह कि वह अत्यन्त स्पष्ट है—हम क्या चाहते हैं, यह हमें बिलकुल साफ़ साफ़ मालूम है । उसके बारे में कोई शङ्का नहीं रह जाती । परन्तु यह एक बड़े डर का भी कारण है । उस उद्देश के प्रत्यक्ष फल में कुछ बुराई नहीं—दाल-रोटी का विचार ख़ुद त्याज्य नहीं, पर उससे उस व्यक्ति के मन का जो झुकाव हो जाता है, वह बुरा है । उससे मन सङ्कुचित हो जाता है और फिर वह उद्देश ही पूरा नहीं हो पाता । जब किसी भी उपाय से, वा किसी भी रीति से, वह उद्देश सिद्ध होते नहीं दीखता, तब वह पुरुष सब त्याग देता है । जो बात कुछ काल में विशेष फ़ायदेमन्द हो, पर वह प्रत्यक्ष फलदायक न हो उसे भी वह त्याग देता है । इस दृष्टि से देखा जाय तो उदार (liberal) शिक्षा आख़िर को विशेष फ़ायदेमन्द है । क्योंकि ऐसी शिक्षा पाया हुआ पुरुष दाल-रोटी के प्रश्न भी गहरी दृष्टि से सोचेगा और उससे अपना और समाज का विशेष फ़ायदा करेगा । ऐसा पुरुष कुछ काल के बाद सीधी रोटी-पानी की शिक्षा पाये हुए पुरुष को उसी बात में पीछे हटा ही देगा ।

(ख) ज्ञान का उद्देश—यह पहले उद्देश के नितान्त विपरीत देख पड़ता है । ये दोनों उद्देश सिद्धान्त में विपरीत हों, पर व्यवहार में भी विपरीत हों, यह आवश्यक नहीं । ज्ञान अखिल मनुष्य-जाति के अनुभवों का भाण्डार है । जिन अनुभवों से मानव-जाति को लाभ न होता हो वे आज तक हमारी स्मृति में किसी प्रकार नहीं रहते । जिस प्रकार मनुष्य-शरीर की निरुपयोगी बातें कुछ काल के बाद नहीं रह जातीं, उसी प्रकार निरुपयोगी ज्ञान का अस्तित्व भी मिट ही सा जाता है ।

अगर ज्ञान का पूर्वोक्त मतलब मान लिया तो रोटी-पानी के उद्देश के समान उसके प्रत्यक्ष फल में कोई बुराई नहीं । पर इस हेतु से ज्ञान-सञ्चय करनेवाले के मन का जो झुकाव हो जाता है, वह बुरा होता है । कोई मक्खीचूस जिसप्रकार रुपये-पैसे इकट्ठा करता है, उस प्रकार ऐसा पुरुष ज्ञान-सञ्चय करता है* । कंजूस की प्रवृत्ति दोनों में रहती है । इनके श्रम से दुनिया को कोई लाभ नहीं ।

---

* यहाँ पर एक बात और बतलाने के लायक़ है । कंजूस का द्रव्य उसके मरने के बाद, निदान उसके आप्तों के अथवा और किसी के हाथ लगता है, पर ऐसे ज्ञान-सञ्चय करनेवाले का ज्ञान जो उसे दूसरों तक नहीं पहुँचाता

(ग) सभ्यता का उद्देश—ऊपर के उद्देश से इसका बहुत निकट सम्बन्ध है। भेद इतना ही है कि इस हेतु में रूढ़ियों का विचार किया जाता है। अमुक अमुक बात के जानने से लोग सभ्य समझे जाते हैं, इसलिए वे जाननी चाहिए, ऐसी प्रवृत्ति पैदा होती है। उनके व्यावहारिक उपयोग का कोई विचार नहीं किया जाता। आजकल संस्कृत न जानने से जिस प्रकार लोग उसे शिक्षित नहीं समझते, उसी प्रकार यूरोप में लैटिन और ग्रीक भाषाओं की क़दर थी। प्रत्येक शिक्षित पुरुष को ये भाषायें आनी ही चाहिए, लोगों की ऐसी समझ थी। इस कारण वहाँ ये भाषायें पाठशालाओं और कालिजों में अवश्य पढ़ाई जाती थीं। आज भी कुछ देशों की थोड़ी बहुत यही स्थिति है। हिन्दुस्तान में उतनी तो नहीं, तोभी बहुत कुछ वैसी ही स्थिति है। संस्कृत जानने में शिक्षित पुरुष का बड़ा भारी गौरव है। यही बात और तरह के ज्ञान के सम्बन्ध में कही जा सकती है। हमने तो कहीं कहीं देखा है कि कई लोग ऐसा समझते हैं कि प्रत्येक शिक्षित सब तरह का ज्ञान रखता ही है। अगर उन्हें बतला दो कि हमें फ़ारसी और उर्दू नहीं आती तो उन्हें आश्चर्य होता है!

(घ) मनुष्य की सब शक्तियों का सुसङ्गत विकास—सुसङ्गत से क्या मतलब है? क्या परिपूर्ण? अगर ऐसा कहो तो मतलब स्पष्ट हो जाता है; पर बात असम्भव हो जाती है। आज तक किसी ने भी ऐसा मनुष्य न देखा होगा, जिसकी सब शक्ति परिपूर्ण विकसित हो गई हो। कोई भी विचारवान् मनुष्य इस बात को सम्भव न मानेगा। जिसकी तमाम मानसिक शक्तियाँ परिपूर्ण हो गई हों, जिसकी शारीरिक शक्ति ख़ूब बड़ी हो और जिसका आचरण अत्यन्त ऊँचे दरजे का हो, ऐसे पुरुष का अस्तित्व केवल कल्पना में हो सकता है। अब अगर 'सुसङ्गत' की जगह 'सम-समान' कहो तो बात कुछ थोड़ी सम्भाव्य हो जाती है। इसे नितान्त असम्भव नहीं कह सकते। पर ऐसे पुरुष इतने कम मिलेंगे कि क़रीब क़रीब यह भी बात असम्भव ही कहनी चाहिए। फिर थोड़ा थोड़ा सब आना, पर भरपूर कुछ भी न आना भी ठीक नहीं; कुछ न कुछ भरपूर आना ही चाहिए। नहीं तो दुनिया में काम चलना कठिन होता है। शक्तियों का सब लोग समान उपयोग नहीं कर सकते। कोई किसी शक्ति का विशेष उपयोग कर सकता है, और कोई किसी का। इसलिए प्रत्येक की परिस्थिति और उद्योग-धंधे के अनुसार उसकी शक्तियों का विकास होना चाहिए, अन्यथा काम न चलेगा।

(ङ) नैतिक शील का विकास—यह चौथे उद्देश की अपेक्षा अधिक निश्चित देख पड़ता है। मनुष्य समाज-प्रिय प्राणी है। उसके धन-द्रव्य से, उसकी शारीरिक शक्ति से, उसकी बुद्धि से समाज को इतना मतलब नहीं जितना इस बात से है कि वह समाज के साथ कैसा बर्ताव करता है। परन्तु इसमें एक आपत्ति है। नीति की परिभाषा सब जगह एक नहीं। किसी देश में एक बात नैतिक है, तो किसी देश में वही नितान्त अनैतिक है। शिक्षा का नैतिक फल यही है कि बुद्धि से नीच प्रवृत्तियों का, पाशविक मनोविकारों का दमन हो। जङ्गली, असभ्य, अशिक्षित पुरुष को इन्द्रिय-सुख ही तमाम जीवन-सर्वस्व है। शिक्षित यानी नीति-बद्ध पुरुष को बुद्धि का सुख श्रेष्ठ जान पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि नीच प्रवृत्तियों को हमेशा उच्च प्रवृत्तियों से दबाना चाहिए। लौकिक नीति का यही अर्थ है।

बालक जब जन्मता है तब वह न तो नीतिबद्ध ही रहता है, न अनैतिक ही रहता है। उसमें जन्मतः नीच और उच्च दोनों तरह की प्रवृत्तियाँ रहती हैं। जिन प्रवृत्तियों का विकास होता जायगा, उस प्रकार वह बालक बड़ा होने पर बनेगा। यह कार्य शिक्षा का है, क्योंकि नैतिक आचरण हमेशा नैतिक कृत्य करते रहने की प्रवृत्ति ही है। यह प्रवृत्ति शिक्षा से ही प्राप्त हो सकती है।

(च) शिक्षा का अन्तिम उद्देश—समाज-योग्य व्यक्तियों का विकास। ऊपर के पाँचवें उद्देश में जो कुछ अनिश्चितत्व है, वह इसमें नहीं। इससे सामाजिक दृष्टि से शिक्षा का विचार होगा। बहुधा शिक्षा की सब संस्थायें समाज के द्रव्य से चलाई जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक और

किसी के भी काम का नहीं रह जाता। क्योंकि वह अवस्तु होने के कारण उसी के साथ नष्ट हो जाता है। सारांश, ज्ञान के उद्देश से ज्ञान-सञ्चय करनेवाला पक्के मक्खीचूस से भी लौकिक दृष्टि से कम दर्जे का है। उसके जन्म-मरण से दुनिया में कोई लाभ अथवा हानि नहीं होती।

स्वाभाविक बात है कि वे समाज का ख़याल रखकर चलाई जायँ। इसका अधिक स्पष्टीकरण होना आवश्यक है।

(१) वही मनुष्य समाज-योग्य है जिसका भार समाज पर नहीं, जो अपना बोझ आप उठा ले सकता है—जो अपना उदर कोई भी योग्य कार्य करके भर सकता है।

(२) वही मनुष्य समाज-योग्य है जो अपना बोझ तो उठाता है ही, पर दूसरों के कामों में अनावश्यक दख़ल बिलकुल नहीं देता।

(३) वही समाज-योग्य है जो ये दोनों बातें करके, अपनी शक्ति के अनुसार, समाज की और तरह से भी सहायता करता है।

असली शिक्षा से प्रत्येक व्यक्ति में ये तीनों बातें पैदा होनी चाहिए। इस उद्देश में बाक़ी सब उद्देश समाविष्ट हैं। जो शिक्षा इस प्रकार के मनुष्य तैयार नहीं कर सकती वह शिक्षा शिक्षा कहलाने योग्य नहीं। उसे तुरन्त बदल देना चाहिए। नहीं तो सामाजिक सुख और उन्नति कदापि न होगी और न वह राष्ट्र बहुत काल तक अपनी ज़िंदगी क़ायम रख सकेगा। क्या हिन्दुस्तान की शिक्षा-प्रणाली इस उद्देश के माप से निश्चित की गई है?

परिशिष्ट।

अधिक विचार न किया जाय तो अन्त में बतलाया हुआ उद्देश परिपूर्ण जान पड़ता है, पर कुछ गहरा विचार करने से उसमें भी दोष देख पड़ते हैं और हमारे हिन्दुस्तानी भाइयों को तो उसमें विशेष दोष देख पड़ेंगे। पहला दोष तो यही देख पड़ेगा कि जीवन के उद्देश से शिक्षा के इस अन्तिम उद्देश का कोई सम्बन्ध नहीं दिखलाया गया है और जीवन के उद्देश जन्म-मृत्यु के तात्विक विचारों पर अवलम्बित रहेंगे। जो पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानते हैं वे कहेंगे कि यह सब विवेचन ऐहिक दृष्टि से किया गया है—इसमें पारलौकिक विचार को कहीं भी स्थान नहीं मिला। क्या ऐहिक उद्देश से पारलौकिक उद्देश की पूर्ति हो जायगी? कभी नहीं। उसके लिए कुछ विशेष कार्य करने होंगे। सारांश, धर्म का विचार करना आवश्यक है। यह तो पुनर्जन्म माननेवालों की बात हुई। जो पुनर्जन्म नहीं मानते वे भी ऊपर बतलाये हुए अन्तिम उद्देश के विषय में यह प्रश्न कर सकते हैं कि उन्नति का अर्थ क्या है? जहाँ मूल में ही झगड़ा है वहाँ उद्देश कैसे निश्चित हुआ। अब उन्नति का भी विचार हो जाय, फिर इस उद्देश का विवेचन समाप्त करना उचित है। कोई भी विचारशील मनुष्य कहेगा कि यह आक्षेप युक्तिसङ्गत है। परन्तु जब उन्नति का विचार करते हैं तब देख पड़ता है कि जीवन के उद्देश का विचार किये बिना कार्य नहीं चल सकता। अगर उन्नति का और जीवनोद्देश का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है तो यह भी स्पष्ट है कि शिक्षा के उद्देश प्रत्येक समाज में भिन्न होंगे। सब समाज के लिए शिक्षा के नितान्त एक ही उद्देश निर्धारित नहीं किये जा सकते। जीवन के उद्देश में नीति का भी सम्बन्ध आता है। ऊपर एक जगह कह भी चुके हैं कि प्रत्येक समाज में नीति भिन्न होती है। इससे और भी स्पष्ट हो जायगा कि शिक्षा के उद्देश सबके लिए बिलकुल एक ही नहीं हो सकते—उनमें कुछ अन्तर अवश्य होगा। शिक्षा के सूत्रधारों को यह बात ख़याल में रखनी चाहिए।*

गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०

हिन्दी-नाटक-पात्रों की भाषा।

संस्कृत में नाटक-पात्रों की भाषा के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी और विचार-पूर्ण नियम लिखे गये हैं। इनका सङ्ग्रह द्विवेदीजी (सरस्वती-सम्पादक) ने अपनी नाट्य-शास्त्र नामक पुस्तिका में किया है, जिसमें से कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"संस्कृत-नाटकों में पात्रों की योग्यता के अनुसार संस्कृत अथवा प्राकृत बोलने का नियम किया गया है। प्राकृत भाषाओं में शौरसेनी, मागधी, पैशाची और महाराष्ट्री भाषाओं का विशेष प्रयोग

---

* बनारस-हिन्दू-यूनीवर्सिटी के संस्थापन का यही विशेष उद्देश है; परन्तु शिक्षा का परिणाम बाल्य-काल में जितना होता है उतना तरुणावस्था में नहीं।

है। नायक, सूत्रधार श्रौर पढ़े-लिखे उच्च-स्थिति-वाले पात्र संस्कृत बोलते हैं; स्त्रियाँ शौरसेनी; सेवक मागधी; राजपूत श्रौर वणिक् अर्द्धमागधी; विदूषक प्राची; भूत, प्रेत श्रौर असभ्य लोग पैशाची। इसके अतिरिक्त अपने अपने प्रान्त के अनुसार साधारण लोग द्राविड़ी, बाल्हीक श्रौर आवन्तिक आदि भाषायें बोलते हैं।"

इतना लिखने के पश्चात् लेखक महाशय यह भी लिखते हैं कि "ये नियम प्राचीन समय के लिए थे। अब इनका प्रतिपालन नहीं हो सकता। अब संस्कृत ही का विशेष प्रचार नहीं है; पुरानी प्राकृत का तो बिलकुल ही नहीं"। द्विवेदीजी ने इन नियमों के अप्रचलित होने के कारण कुछ खेद सा तो प्रकट किया है; पर इनको आधुनिक रूप देने की कोई कृपा नहीं की। आज-कल की भाषाओं के सम्बन्ध से आप केवल इतना ही सूचित करते हैं कि नाटक में पात्रों की भाषा उनकी स्थिति के अनुकूल होनी चाहिए। हमारे इस संक्षिप्त लेख का आधार द्विवेदीजी का यही पिछला वाक्य है।

ऊपर के अवतरण में आये हुए 'स्थिति' शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि पात्र जिस काल में उत्पन्न हुआ हो उस काल की 'स्थिति' के अनुकूल उसकी भाषा होनी चाहिए श्रौर इस 'स्थिति' का निर्णय पात्र की शिक्षा श्रौर परिस्थिति ही से हो सकता है। हम इन्हीं विचारों के आधार पर हिन्दी-नाटक-पात्रों की भाषा की विवेचना कर सकते हैं।

हम स्वयं यह नहीं जानते कि संस्कृत-नाटकों में पात्रों की जो भाषा है वह पात्रों के समय की है या नाटक-कार के समय की; पर अधिकांश हिन्दी-नाटकों को पढ़ने से यह पता चलता है कि इनके लेखकों ने हज़ार दो हज़ार वर्ष पहले के पात्रों के मुखों में अपने ही समय की श्रौर अपने ही आस-पास की भाषा भर दी है। यह एक प्रकार से ठीक ही है; क्योंकि इतने प्राचीन समय की भाषा का पता जल्दी नहीं लग सकता। इसलिए हम ऐसा अनुमान कर लेंगे कि नाटक-पात्र लेखक ही के समय की भाषा का उपयोग करते हैं श्रौर वही भाषा उनकी स्थिति के अनुकूल उच्च या साधारण अवस्था की होती है। अब देखना चाहिए कि हिन्दी-नाटकों के भिन्न भिन्न पात्र अपनी स्थिति के अनुकूल भाषा बोलते हैं अथवा उसके प्रतिकूल।

आज-कल जो हिन्दी-नाटक लिखे जाते हैं उनमें राजा से लेकर रङ्क तक श्रौर बूढ़े से लेकर बालक तक प्रायः एक ही साँचे की ढली भाषा बोलते हैं। राजा लक्ष्मणसिंह की शकुन्तला में बूढ़ा द्वारपाल ऐसी शुद्ध श्रौर उच्च हिन्दी बोलता है कि उसे सुनकर आज-कल के कई हिन्दी-"विशारद" तक लज्जा से सिर झुका लेते हैं। इसीप्रकार बाबू राधाकृष्णदास के "महाराणा प्रतापसिंह" की वृद्धा (कुटनी) ऐसी फ़ारसी बघारती है कि उसका उदाहरण दिये बिना हमसे रहा नहीं जाता। वह पृथ्वीराज की रानी से कहती है—"अच्छा, हुज़ूर, अब इधर **मुलाहिज़ा फरमावें**। यह जौहरिन की दूकान है। कैसे कैसे **बेबहा जवाहिरात रौनक़-बख़्श** हैं कि जिनकी चमक से सारा बाज़ार खिल रहा है। (हँस कर जौहरिन की ओर देखकर) श्रौर बी जौहरिन ने तो अपने याक़ूत-लब जौहर-दन्दाँ की आब के आगे सबको मात कर रक्खा है"।

हिन्दी-नाटकों में सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि जिन पात्रों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है वे किस भाषा में बातचीत करें। वीर-पूजा नामक नाटक में एक देश-त्यागी बङ्गाली ऐसी हिन्दी-भाषा बोलता है जैसी बङ्गाली लोग बहुधा बोला करते हैं—अर्थात् बङ्गाली हिन्दी; पर इसके महाराष्ट्र पात्र शुद्ध हिन्दी बोलते हैं! अब यदि कलकत्ते के बङ्गाली लोग हिन्दी बोलने में भूलें करते हैं, तो पूने के महाराष्ट्र भी "मराठी हिन्दी" बोलते हैं। ऐसी अवस्था में या तो सभी विदेशी शुद्ध हिन्दी बोलें अथवा इस भाषा में

उन लोगों की जो स्वाभाविक भूलें होती हैं वे नाटक में प्रकट की जाया करें। ये सब बातें विचारणीय हैं। यदि विनोद के लिए केवल किसी एक ही जाति की भाषा अशुद्ध मान ली जाय, तो कोई हानि नहीं है।

सबसे बड़ी कठिनाई इस बात का निर्णय करने की है कि मुसलमान पात्र शुद्ध हिन्दी बोलें या शुद्ध उर्दू या खिचड़ी। वीर-पूजा नाटक में, जिसका उल्लेख हम अभी कर आये हैं, औरङ्ग़ज़ेब अपनी बहिन से ऐसी भाषा बोलता है—"मेरे अधर्म से! मेरे अधर्म से! मुग़लों की कीर्त्ति को मिटानेवाली, मुग़लों की गौरव-लक्ष्मी का सत्यानाश करनेवाली पागिन! मेरे अधर्म से!" यह बात कई लोगों को खटकेगी कि औरङ्ग़ज़ेब यथार्थ में ऐसी भाषा बोलता था अथवा बोल सकता था। अन्य प्रान्तीय लोग तो दस-पाँच हिन्दी के शब्द बोलते भी हैं; पर मुसलमान ऐसा नहीं करते। ऐसी अवस्था में मुसलमान लोगों का शुद्ध हिन्दी में बातचीत करना ऊटपटाँग समझा जायगा। हाँ, यदि मुसलमान-पात्र ने हिन्दी पढ़ी हो, वह उनसे सहानुभूति रखता हो और उनके धर्म का प्रत्यक्ष निन्दक न हो तो उसके मुँह से निकले हुए हिन्दी-शब्द उचित जान पड़ेंगे। इन विचारों के अनुसार किसी भी नाटक में अकबर की भाषा हिन्दी रक्खी जा सकती है और जब हम इस बादशाह को हिन्दी का कवि भी मानते हैं तब इसके हिन्दी बोलने में कोई असंगति नहीं कही जा सकती। इसी श्रेणी में हम आज-कल के कायस्थ महाशयों को रखते हैं, क्योंकि मुद्राराक्षस का शकटदास शुद्ध हिन्दी में भाषण करता है।

यदि नाटकों में विरोधी मुसलमान पात्र होंगे तो हमारे नाटककारों को उनकी भाषा निश्चित करने में बड़ी कठिनाई होगी। जो लेखक उर्दू जानते हैं उन्हें तो कोई कठिनाई नहीं है; पर निरी हिन्दी जाननेवाले लेखक क्या करेंगे अथवा शुद्ध बिन्दियाँ कैसे लगायँगे? जो हो, यह बात परम आवश्यक है कि नाटक-पात्रों की भाषा चुनने में बड़ी सावधानी की जाय।

हिन्दी में निम्न श्रेणी के पात्रों की भाषा निश्चित करने में भी लेखक विशेष प्रयत्न नहीं करते। हमारे नाटकों में सच्ची "बोलचाल" (भट्ट जी के रोज़मर्रे) का जो अभाव है, वह इन छोटे पात्रों के भाषणों में और भी खटकता है। इन लोगों की यथार्थ भाषा या तो कोई प्रान्तिक बोली होती है या उसमें खड़ी और पड़ी बोली का वैसा ही मेल रहता है जैसा आज-कल की कविता में कभी कभी पाया जाता है। फिर इनकी ठेठ या खिचड़ी भाषा में "बोलचाल" की वह अधिकता रहती है कि उसके आगे वैयाकरण को भी चकित होना पड़ता है। इतना होने पर भी इन लोगों की भाषा नाटकों में सबसे अधिक बनावटी रक्खी जाती है।

हिन्दी-नाटकों में कभी कभी यूरोपीय पात्र भी पदार्पण करते हैं। "महाराणा प्रतापसिंह" में एक पुर्तगीज़ अकबर से कहता है—"खोदावंद, अम पोटगीज़ है। अमारा नाम अगस्टाइन है। अमारा गोआ के गवर्नर ने अमको हुजूर के लिए बहुत सा नजर लेकर भेजा ठा। राह में उडयपुर के राना ने अमको लूट लिया, बोला अमारे सिवाय बाडशाह कौन है; यह नजर अमारा है"। इस प्रकार की भाषा भी पात्र की स्थिति ही के अनुकूल है; पर लेखक ने इसका व्याकरण बे-हिसाब शुद्ध रखा है। विदेशी लोग केवल उच्चारण ही की भूलें नहीं करते, किन्तु व्याकरण-विरुद्ध भी बोलते हैं। जो कुछ हो, नाटक में इस प्रकार की भाषा से हास्य-रस की मात्रा बढ़ जाती है जिसकी बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि मुसलमानों की भाषा में भी दो-चार संस्कृत-शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करा दिया जाय तो नाटक की दृष्टि से अनुचित न होगा।

ऊपर-लिखे कुछ टूटे-फूटे विचार नाटककारों

की सेवा में इस आशा से उपस्थित किये जाते हैं कि वे पात्रों की भाषा निश्चित करने में किसी न किसी सिद्धान्त का पालन अवश्य करें।

कामताप्रसाद गुरु

मन-मौजी मज़मून।

गरमियों की छुट्टी आनेवाली है—इस बात से हमें बड़ा ही आनन्द होता था। आशा थी कि साल भर के न किये गये कामों को करूँगा—आनेवाले साल की तैयारी करूँगा। रोज़ रोज़ वही काम करने से जो परेशानी होती है उससे बचूँगा। कई नई किताबों को पढ़कर उनकी समालोचना लिखूँगा। मैं आनेवाली तीन महीने की छुट्टी की उमङ्ग में भूल गया कि और साल भी ऐसी ही छुट्टियाँ मिलती थीं, और साल भी ऐसी ही आशायें दिल में उपजती थीं। कभी भी तो वे आशायें फलीभूत नहीं हुईं; फिर क्यों अब भी मनसूबे बांधता हूँ? कारण केवल यही है 'आशा बलवती राजन्'। ख़ैर, छुट्टी हुई। अप्रेल की तेईस तारीख़ से छुट्टी हुई। अब पहाड़ पर जाने की इच्छा हुई। लेकिन, भाई, उसके लिए बहुत सा रुपया चाहिए। वह कहां से आवे? जाने की इच्छा है तो सही, पर 'ज़र नदारद'। अच्छा तो अगर नैनीताल और शिमला नहीं नसीब है तो इलाहाबाद ही में रहा जाय। आख़िर इस प्रान्त की सरकार की जाड़े की राजधानी यही तो है। मैं इसे अपनी ग्रीष्म की ही राजधानी बनाऊँगा। है भी यह सर्वथा इस सम्मान के योग्य। सुनिए, मैं इसे इस योग्य क्यों समझता हूँ।

इलाहाबाद में 'लू' महाराज के दर्शन प्रति दिन ११ बजे से ५ घं० ३५ मि० ८ सेकेन्ड तक होते हैं। अवश्य देवतागण प्रयाग-निवासियों पर विशेष रूप से प्रसन्न हैं और इससे बढ़कर वरदान वे और देही क्या सकते थे कि छः-सात घंटे के लिए 'लू' भगवान् स्वर्ग से उतर कर प्रयाग में नित्य निवास करें, दीन भक्तों को प्रसन्न करें और अनीश्वरवादियों का सत्यानाश करें। इतना ही नहीं। लू भगवान् कोई ऐसे वैसे तैंतीस कोटिवाले देवताओं में नहीं हैं। देवता तो यह प्रतीक्षा करते हैं कि भक्त उनके मन्दिर में आकर 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' से अर्चना करे। लेकिन लू भगवान् में इतना स्वार्थ, इतनी क्रूरता नहीं है। यदि आप इनके उपासक हैं तो आपको मन्दिर नहीं जाना पड़ेगा, पुजारी को भेंट नहीं चढ़ानी होगी, घंटों स्तोत्रपाठ नहीं करना होगा। यदि आप सच्चे भक्त हैं तो आपके इष्ट भगवान् स्वयं, अनाहूत, आपके यहां नित्य उपस्थित होते हैं। और आते भी हैं तो छिपकर, चुराकर नहीं। सारे जगत् को मालूम हो जाता है कि 'लू' भगवान् ने आपके यहां आने की कृपा की है। दरवाज़े शंखध्वनि करने लगते हैं, हवा मधुर स्वर से स्तुति करती है, वृक्षलतायें सानन्द झूम झूम स्वागत करती हैं और आप अपने शरीर के धर्म्म से उनकी पूजा करते हैं—'इदमाचमनीयं भगवते श्रीलूदेवाय नमः'। आपकी अपार भक्ति के प्रभाव से, सूर्य की प्रखर किरणों की कृपा से, आपके कमरे में शीत नहीं आने पाता। यदि आपमें कुछ भक्ति की कमी हो जाती है, तो जैसे अज्ञानतिमिर से मूर्ख अपने हृदय को अन्ध कर लेता है, वैसे ही आप ख़स ख़स की टट्टी से 'लू' भगवान् के शुभागमन के मार्ग को अवरुद्ध करना चाहते हैं। लेकिन 'क वयं? 'क हि 'लू' महाशयाः'? उस दिन, जनाब, ये आवेंगे ही नहीं। आप लाख ख़स की टट्टी लगाइए। आपके उपास्य देव अप्रसन्न हो गये। आपने पश्चिम में टट्टी लगाई तो, लीजिए, ये पूर्व दिशा से आ रहे हैं। आपने पंखा-'कुली' से कहा कि 'लू' भगवान् का आदर पङ्खा झलकर करो। तो इनके प्रभाव से पङ्खा से भी भभकती हुई गर्म हवा आप को मिलती है।

अच्छा, तो प्रयाग को राजधानी बनाने का मुख्य कारण यह है कि यहां एक प्रधान देव के दिव्य दर्शन होते हैं। किन्तु यही एक़ कारण नहीं है। यहां की म्यूनिसिपैलिटी भी ऐसी है कि उसके स्नेहपाश में फँसकर आप निकल ही नहीं सकते। और यह बन्धन भी ऐसा मनोहर, हृदय-रञ्जन, चित्तामोदक होता है कि इससे मुक्त होने की आपको अभिलाषा भी नहीं होती। सड़कों को गरमी में यह कीचड़ से बचाती है। पानी अगर सड़कों पर पड़े तो कीचड़ में पथगामियों को कष्ट होगा, इसलिए इसकी आज्ञा यही है कि अगर कहीं पानी सड़क पर मिले तो उसे वहां से हटा लेना चाहिए। भारतवर्ष के लोग दरिद्र हैं। इस कष्ट

से करुणा-पूर्ण 'म्यूनिसिपैलिटी' दरिद्रों को अन्न वितरण बिना मूल्य करती है। जो चाहे सड़क पर दो मिनट खड़ा रहे और उसका उदर धूलिरूपी अन्न से पूर्ण हो जायगा, उसकी बुभुक्षा शान्त हो जायगी। डाक्टरों का यह कहना है कि अधिक पानी नहीं पीना चाहिए। इसलिए म्यूनिसिपैलिटी ने यह सुप्रबन्ध कर दिया है कि ६ बजे दिन से ५ बजे शाम तक पानी नल में न दिया जाय। अगर कुछ प्यास लोगों को लगती भी है, तो भी अधिक पानी पीने से जो लोगों को रोग होता है उससे सब मुक्त हैं। म्यूनिसिपैलिटी के कितने गुणों का गान करें। आपने शायद सुना होगा कि बिजली की रोशनी में पढ़ने-लिखने से आँखें ख़राब हो जाती हैं। म्यूनिसिपैलिटी को आपकी आँखों का भी बड़ा ख़याल है। उसने जो सड़कों पर लेम्पें रक्खी हैं—वे अव्वल तो आठ बजे के पहले शायद ही जलाई जाती हैं और फिर उनकी ज्योति ऐसी मन्द है कि आपकी आँखों पर ज़रा सा भी आघात नहीं पहुँचता।

अच्छा, तो इलाहाबाद में रहे। बरफ़ की आदत बुरी होती है, इससे कृपार्द्र दूकानदार चार आने सेर इसे बेचते हैं। बिजली की रोशनी और पङ्खे की आदत भी अच्छी नहीं। 'इलेक्ट्रिक सपलाई कम्पनी' भी इसी कारण बहुधा दोपहर को बिजली बन्द कर देती है। गरमी में रात को काम कम करना चाहिए, इसलिए मिट्टी का तेल आठ आने बोतल मिलता है। सब तरह का आराम इलाहाबाद ही में है—लू यहीं है, सड़क पर पानी का अभाव यहीं है, यहीं बिना मूल्य अन्न-वितरण होता है, अत्यधिक जल-पान-जन्य रोग से यहीं लोग मुक्त रहते हैं।

साल भर परिश्रम बहुत किया था—पढ़ाया था और कुछ पढ़ा भी था। फिर भी और कोई काम न रहने के सबब से पढ़ने का इरादा किया। 'बाईबल बुक डिपो' से मरक्को चमड़े की जिल्द बँधी कई किताबें ले आया। एक दिन श्रीराम करके पढ़ने भी लगा। थोड़ी देर बाद देखते हैं कि जिल्द का सब सौन्दर्य्य पसीने में बहा चला जा रहा है। किताब जल्दी से बन्द कर दी। सोचा पढ़ नहीं सके, तो कुछ लिखने का ही प्रयत्न करें। सम्पादक महोदय की बहुत दिनों से आज्ञा हुई थी कि 'कुछ भेजो', 'कुछ भेजो'। मैं यही उत्तर देता था कि 'गर्मी की छुट्टी में यथासाध्य आपकी आज्ञा का पालन करूँगा'। फिर तक़ाज़ा आया—'कुछ लिखा' ? लिखें क्या ? ऐसी हालत में दिमाग़ भी काम करे ? मगर कहाँ बचने पाते हैं ? ख़ैर, लिखने बैठे। सोचा, किस विषय पर लिखें तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की याद आई। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली, सामाजिक सुधार इत्यादि कई विषय उपस्थित हुए। लेकिन उन पर सोचने लगे तो आध पेज़ का भी मसाला न मिला। इतने में सम्पादक महोदय के आदेश का स्मरण हो आया। "जो तुम्हारी मौज में आवे उसी पर लिखो।" इस आदेश से हिम्मत बँधी और मन-मौजी मज़मून पर लिखना आरम्भ कर दिया।

अमरनाथ झा, एम० ए०

पृथ्वी और उसके खनिज पदार्थ*।

क्या आपको मालूम है कि सोना, चाँदी, ताँबा, पारा, लोहा, मणि, कोयला आदि कहाँ से आते हैं ? ये किस प्रकार पृथ्वी से निकाले जाते हैं और पृथ्वी में इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

प्राचीन काल से ये धातुएँ हमारे देश में काम आती रही हैं। भारत के मणि जगद्विख्यात थे। भारत का फ़ौलाद संसार में अत्युत्तम था। आधुनिक Blasting Furnace[1] (ब्लस्टिङ्ग-फर्नंस) और Crucible Steel (क्रूसिबिल स्टील) का ज्ञान हम लोगों को था। मैसोर में आज-कल की खानों पर प्रथम १०० गज़ नीचे का

---

* लेख के साथ जो पुस्तक-सूची दी जाती हैं उस में अधिकतर साहित्य ही की सूची पाठकों को मिलेगी। प्रायः इन पुस्तकों का मूल्य बहुत है। इस कारण किसी अच्छे पुस्तकालय में इनको देख लेना काफ़ी होगा। यदि कोई महाशय पुस्तकें मँगाना चाहें तो इस * चिह्न की पुस्तकें मँगाने की सलाह दी जाती है।

[1] १—धौंकनीदार भट्ठी।

सोना पूर्वजों ने ही निकाला था । सोना निकालकर शेष पत्थर (Tailings) जो पूर्वजों ने फेंक रक्खे थे उनमें बहुत सोना था, जितना कि आज-कल भी निकालने से रह जाता है । इससे मालूम होता है कि सोना निकालने के हुनर में भी वे कुशल थे ।

इससे आप यह विचार न करने लगें कि यदि हमारे पूर्वज अपने समय में चतुर थे तो आज-कल भी उतने ही ज्ञान से वे संसार में उच्च पद प्राप्त कर सकते हैं । भाप के एञ्जिन न होने से वे पृथ्वी में २००–३०० फ़ुट से नीचे नहीं जा सकते थे, क्योंकि बिना पम्प के पानी का प्रवाह सँभालना बहुत कठिन है । उनके Blasting Furnace का प्रबन्ध हाथ-पैर की शक्ति से होता था । और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इन विद्याओं को देश के उच्च साहित्य और उच्च जातियों में मान्य पद न मिला ।

आज-कल खानों से धातु निकालने का काम संसार के सारे देशों में, जहाँ कहीं भी प्रकृति माता ने यह धन दे रक्खा है, बड़े वेग से होता है । वृद्ध जनों से पूछने पर आपको ज्ञात होगा कि अब से साठ सत्तर वर्ष पहले एक रुपये का मूल्य कहीं अधिक था । इसका प्रधान कारण यह है कि अब संसार में चाँदी बहुत पैदा होती है ।

सबसे पहले तो हमको यह जानना चाहिए कि यदि हम खोदना आरम्भ करें तो पृथ्वी के नीचे क्या मिलेगा ? इस प्रश्न का उत्तर पश्चिमी विद्वानों ने भूगर्भ-विद्या (Geology) के द्वारा बड़ी पूर्णता से दिया है । इस विद्या की उत्पत्ति २००–३०० वर्ष से इधर ही हुई है । जहाँ तक मुझे ज्ञात है, हमारे पूर्वजों ने इस विषय पर कभी बहुत विचार नहीं किया ।

मैं पृथ्वी की सृष्टि के विषय में कुछ विशेष नहीं कहना चाहता । आपको ज्ञात होगा कि किसी समय यह पृथ्वी द्रवरूप में थी । ज्यों ज्यों इसमें से गर्मी आकाश में जाने लगी त्यों त्यों भाप और पिघले हुए पदार्थ जमकर पत्थर के रूप में होने लगे । पृथ्वी का हृदय अब भी बहुत गरम है और द्रव पदार्थ ज्वालामुखी पहाड़ों से निकलकर आसपास के नगरों को नष्ट कर देते हैं । ये द्रव पदार्थ जमकर पत्थर हो जाते हैं ।

पृथ्वी की भीतरी गर्मी के कारण ही भूचाल आते हैं । जब ये बहुत प्रबल होते हैं तब एक साथ अथवा शताब्दियों में आहिस्ता आहिस्ता समुद्र की तह को उठाकर पहाड़ बना देते हैं और पहाड़ों को धँसाकर समुद्र में जलमग्न कर देते हैं । हमारा हिमालय पर्वत भी किसी समय समुद्र में जलमग्न था । सृष्टि-समय का विचार करते हुए कह सकते हैं कि यह कल ही समुद्र से उठकर भारत की सेवा करने के लिए उठ खड़ा हुआ है ।

पूर्वोक्त सिद्धान्तानुसार पहाड़ और घाटी पहले बनीं । तो फिर मिट्टी कहाँ से आई ? सुनिए । प्रकृति के नियमानुसार वर्षा प्रारम्भ हुई और पत्थरों पर जल-वायु का प्रहार आरम्भ हुआ । क्या आपको जल का बल समझाने की आवश्यकता है ? हरद्वार के समीप चट्टानों के बड़े बड़े टुकड़ों से लेकर हुगली के समीप की बारीक रेत जलदेव का ही वैभव है । सूर्य्य की गर्मी, आकाश से तेज़ाब-मिश्रित गिरनेवाला जल, वायु का आक्सीजन, ठंडे देशों का बरफ़, ये प्रबल शक्तियां शताब्दियों में कठिन से कठिन पत्थर को चकनाचूर कर देती हैं । यह सब रेत और मिट्टी समुद्र में जाती है । वहाँ इसकी तहें बनना प्रारम्भ हो जाती हैं । उदाहरण रूप से, आगरे के क़िले का सुर्ख़ पत्थर Lens (लेन्स शीशे) से देखिए । वह रेत से बना हुआ है । इस प्रकार के पत्थरों में तहें भी देखने में आती हैं । घुलनेवाले पदार्थ भी समुद्र में एकत्र होते रहते हैं । चूना जल-जन्तुओं के शरीर में जाकर अथवा अन्यथा समुद्र में चूने के पत्थरों की तहें बनाता है ।

अब यह ज्ञात होगा कि पृथ्वी के पत्थर-पदार्थ दो प्रकार के हैं—

(क) आग्निक पत्थर Igneous Rock ।

इसमें तहें नहीं होतीं । Lens या Microscope (खुर्दबीन) से देखने पर यह टुकड़ों से बना हुआ नहीं दिखाई देता ।

(ख) तहदार पत्थर Sedimentary Rock ।

इसमें तहें होती हैं । बहुधा उस समय के जन्तुओं के आकार पाये जाते हैं । Microscope से देखने से यह टुकड़ों से बना हुआ दिखाई देता है—जैसे सुर्ख़, सफ़ेद आदि रेतीले पत्थर, चूने के पत्थर, मिट्टी आदि । तहदार पत्थर बहुधा समुद्र में बनते हैं और भूचालों

से समुद्र के ऊपर उठ जाते हैं। वहां जल-वायु का फिर प्रहार आरम्भ होता है। दूसरे भूचाल में ये पहाड़ फिर समुद्र के नीचे आ जाते हैं और नई तहें बनती प्रारम्भ हो जाती हैं। यह चक्र सृष्टि के आरम्भ से अब तक चलता रहा है और आज भी जारी है। हिमालय पहाड़ इसी प्रकार की तहों से बना हुआ है। इनमें समुद्र के प्राचीन जन्तु Fossil (चित्र नं० १) पाये जाते हैं। आज-कल जल-वायु और शीत-हिम का प्रहार उसके ऊपर आप देख सकते हैं।

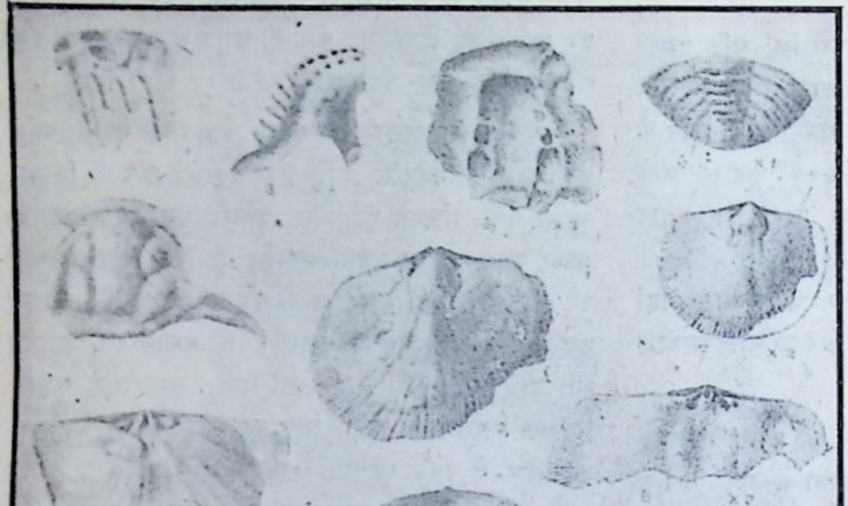

चित्र नं० १—काश्मीर में साइलयूरियन कल्प की तहों में पाये हुए। प्राचीन जन्तु अथवा उनके शरीर के भाग।

अब हम इस बात का उत्तर दे सकते हैं कि यदि किसी स्थान पर हम खोदना प्रारम्भ करें तो हमको क्या मिलेगा। उस स्थान की तहें उसके प्राचीन इतिहास पर निर्भर हैं। कितनी बेर वह स्थान जल-मग्न हुआ है, कितनी बेर और कितने समय तक वह जल से ऊपर रहा है? आपको यह जानने की इच्छा होगी कि इस गल्प का प्रमाण क्या है: हम किस तरह किसी स्थान का प्राचीन इतिहास जान सकते हैं? नीचे लिखे प्रमाणों पर आधुनिक Geology के विद्वानों का सारा ज्ञान निर्भर है—

(१) मामूली तौर पर सबसे ऊपरवाली तह सबसे नई है। नीचे की तहें क्रमशः पुरानी हैं।

(२) आज-कल जो तहें बन रही हैं उनका हाल हमको मालूम है। गहरे पानी, उथले पानी, खारी पानी, मीठे पानी से बनी हुई तहों के गुणों में भिन्नता है। पत्थर के पदार्थ से उसकी उत्पत्ति का पता लग जाता है।

(३) इन तहों में उस समय के जन्तु पाये जाते हैं। जब एक स्थान से हमको यह मालूम हो जाता है कि कौन जन्तु किस समय की तह में पाये जाते हैं तब दूसरी जगह इन प्राचीन जन्तुओं के मिलने से तह के समय का हाल खुलने में सहायता मिलती है।

भारत में भिन्न स्थानों के भूगर्भ (Geological) इतिहास की खोज करने के लिए एक जियालाजिकल सर्वे (Geological Survey) नियत है। इस कार्य में बहुत समय लगता है। इस कारण यह Survey अभी तक

सारे देश की भली भाँति खोज नहीं कर सकी है। इस Survey से जनता के हितार्थ पुस्तकें निकलती हैं। कलकत्ते में पुस्तकालय और अजायब घर हैं, जिनमें कि इस विषय का पूर्ण अध्ययन हो सकता है। आभ्यन्तर तहों का उदाहरण नीचे लिखे चित्र से ज्ञात होगा।

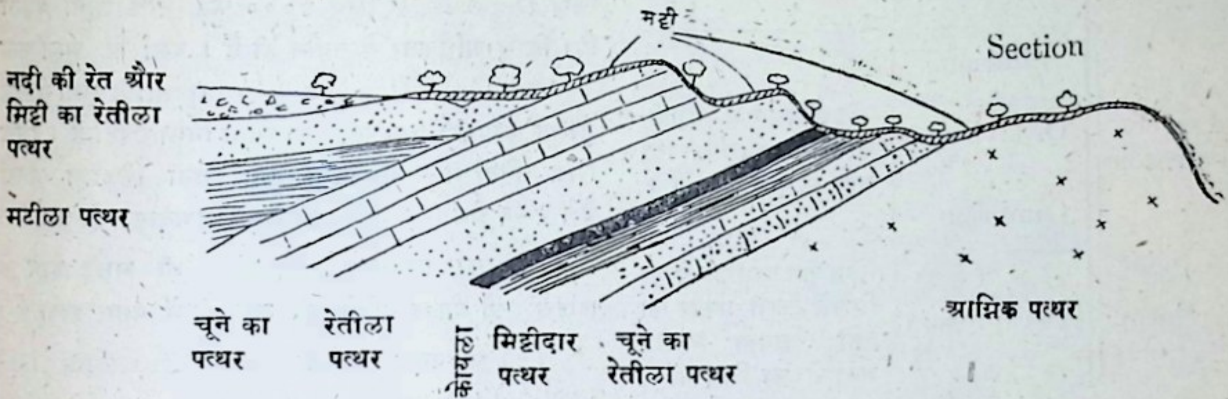

ये तहें बहुधा टेढ़ी रहती हैं, इस कारण सब से प्राचीन तह भी किसी न किसी स्थान पर सतह पर आ जाती है।

भूगर्भ-विद्या की (Geological) समय-गणना पर दो चार शब्द कहना आवश्यक है। आज-कल इन तहों के बनने की रीति हमें कुछ कुछ मालूम है। इससे हमको और तहों की गहराई से कुछ पता लगता है कि वह कितनी पुरानी है। निम्नाङ्कित चित्र से तहदार चट्टानों के बनने के समय का कुछ अनुभव होगा। यह समय भिन्न कल्पों में विभक्त है, जिनका केवल नाम दिया जाता है। जिन महाशयों को इस विषय के अधिक अध्ययन का विचार हो वे निम्नलिखित पुस्तकें पढ़ें—

Geology for Beginners by W. W. Watts. Macmillan and Co., Ltd., Booksellers and Publishers, Calcutta. मूल्य २)(?).

इस विषय का आरम्भ करने के लिए अत्युत्तम पुस्तक है—

An Intermediate text-book of Geology by Lapworth. W. Blackwood and Sons, Publishers, London. मूल्य ४) (?).

Text-book of Geology by A. Geikie. 2 Vols. Macmillan & Co., Ltd. मूल्य १६) (?).

A summary of Geology of India by Vrendenburg. Thacker Spink & Co., Publishers, Calcutta. मूल्य १) (?).

A Manual of Geology of India, Stratigraphical and Structural, by Oldham. 1893. [out of print]. अलभ्य

Records and Memoirs of the Geological Survey of India. Geological Survey Office, 27 Chowranghee Road, Calcutta. मूल्य प्रति पुस्तक १)...२)।

Peele's Handbook of Mining Engineer. नई पुस्तक है। खनिज-विद्या का कोष। मूल्य १७।) (?)

Geological (भूगर्भ का) समय

Cainozoic	Post Tertiary	मनुष्य-लिखित ऐतिहासिक समय इस मोटी रेखा के अन्दर आता है।
	Tertiary	
Mesozoic	Cretaceous	सर्पों के कम होने के पश्चात् दूध पिलानेवाले जन्तुओं का विकाश हुआ। इनकी हड्डियाँ पत्थरों में पाई जाती हैं।
	Jurrasic	
	Triassic	

Upper Paleozoic	Permian	इस समय में सर्प-जाति के प्राचीन जन्तु पृथ्वी पर राज्य करते थे।
	Carboniferous	
	Devonian	
Lower Paleozoic	Silurian	इस समय में मछली-जाति के प्राचीन जन्तु तहों में पाये जाते हैं।
	Ordovician	
	Cambrian	
Archean	Pre-cambrian	प्राचीन आग्निक पत्थर जिसमें किसी प्रकार की तहें अथवा प्राचीन जन्तुओं का चिह्न नहीं।

अब हम अपने पाठकों से खनिज पदार्थों की स्थिति के विषय में कुछ बातचीत करना चाहते हैं।

यह विद्या प्रायः यूनाइटेड स्टेट्स (अमरीका) में पिछले ४०–५० वर्षों में शनैः शनैः विकसित हुई है। अभी तक खानों का हुनर सर्वसाधारण के हाथ में रहा है। जहाँ कहीं पृथ्वी पर खनिज पदार्थ का चिह्न मिला वहाँ खोदना प्रारम्भ कर दिया। यदि भाग्य अच्छा है तो लाखों बन गये, नहीं तो वह जगह छोड़ कहीं और क़िस्मत आज़माई। अब आशा है कि संचित ज्ञान से विद्वान् लोग जनता की सहायता करेंगे। कुछ थोड़ा वृत्तान्त पाठकों के मनोरञ्जनार्थ दिया जाता है। अधिक वृत्तान्त के लिए पाठक पुस्तक-सूची से सहायता लें।

खनिज दो रूप में पाये जाते हैं—

(१) अनूप खनिज Alluvial Deposits.

(२) आभ्यन्तर खनिज Underground Deposits.

(१) अनूप खनिज के उदाहरण में स्वर्ण ले लीजिए। यह धातु-रूप में ही प्रायः पाया जाता है। हमारे देश में न्यारियों का हाल आपने सुना होगा। वायु और जल स्वर्णगर्भित चट्टानों को तोड़ता है। यह रेत जल के प्रवाह से नदियों में आती है। सोना भारी होने के कारण नदी की रेत की तह तक पहुँच जाता है और वहाँ एकत्र होता रहता है। हलके पदार्थ पानी के वेग से बह जाते हैं। यह पृथ्वी की उत्पत्ति से अब तक चला आ रहा है। कुछ ऐसी प्राचीन Deposits के ऊपर तो पत्थरों की नई तहें बन चुकी हैं। अफ़्रीक़ा की Witwatersrand की स्वर्ण Deposits के लिए ४००० फ़ुट नीचे जाना पड़ता है। किन्तु अधिकतर ये नवीन ही हैं। बर्मा में आज-कल Burma Gold Dredging Company (बर्म्मा गोल्ड ड्रेजिङ्ग कम्पनी) इस प्रकार का सोना निकाल रही है। भिन्न भिन्न नदियों में से भी थोड़ा बहुत सोना निकाला जाता है। ५–६ ग्रेन (१) प्रति टन सोना लाभदायक होता है।

राँगे का पत्थर Cassiterite भी भारी होने के कारण इसी प्रकार नदियों की तलहटी में पाया जाता है।

(२) आभ्यन्तर खनिज (Underground Deposits)।

ये खनिज अधिकतर पृथ्वी के नीचे पाये जाते हैं। पृथ्वी में किसी कारण से दरार पड़ने पर, यह दरार भिन्न तरीक़ों से बहुमूल्य और व्यर्थ खनिज से भर जाती है। यह दीवार के सदृश २००–५००–१०००–२००० फ़ुट तक जाती है और खोदनेवाले इस दीवार में खनिज की खोज करते हैं। यह दीवार बहुधा पृथ्वी में तिरछी जाती है और इसको Lode, Vein, Reef आदि नामों से पुकारते हैं। मैसोर में सोना Quartz Reef में पाया जाता है। हमारे पूर्वजों ने ३०० फ़ुट तक इसमें से सोना निकाला था। आज कल अँगरेज़ी कम्पनी ३००० फ़ुट तक काम कर रही है। यह Reef आग्निक पत्थरों में पाई जाती है। (२) स्फटिक में वह

---

(१) सोने चाँदी के लिए Troy वज़न—
२४ ग्रेन = १ पेनीवेट
२० पेनीवेट = १ आउन्स   १ पाउंड = आध सेर
१२ आउन्स = १ पाउंड
२२४० पाउंड = १ टन

(२) स्फटिक Quartz जब शुद्ध मिलता है तब (Pebble) ऐनक बनाने के काम आता है। श्वेत स्फटिक को पीसकर चीनी बर्तन बनाने के काम में लाते हैं। नदियों में पिसकर यही पदार्थ रेत के रूप में आता है। शुद्ध रेत शीशा बनाने के काम आती है।

बहुधा सोना मिलता है, किन्तु और चट्टानों में भी पाया जाता है। यदि एक टन में ४–६ पेनीवेट सोना हो तो लाभ से निकाला जा सकता है, यद्यपि आँख से हम सोना नहीं देख सकते । उथले बर्तन में एक डलिया भर पिसा हुआ पत्थर न्यारने से कोई भी मनुष्य सोना देख सकता है।

सोना निकालने की विधि यह है। खनिज को पानी के साथ मूसलों से पीसकर पारे से गिलट किये हुए ताँबे के पत्र पर बहाते हैं। कभी कम्बल पर बहाते हैं। ६० फ़ी सदी सोना इस प्रकार पारे में अथवा कम्बलों में आ जाता है। शेष स्वर्ण पोटेशियम साइनाइड से निकाला जाता है । इस तरह कुल ९३% सोना निकल आता है।

चाँदी सोने और सीसे के साथ पाई जाती है । राँगे का पत्थर, ताँबा, सीसा आदि, बहुत करके Lode में पाये जाते हैं।

यदि हम प्रत्येक धातु की स्थिति पर लिखें तो यह लेख बहुत बड़ा हो जायगा। इसके अतिरिक्त यह आनुभविक विद्या है और केवल खनिज पदार्थों के नमूने देखकर इस विषय के अध्ययन से आनन्द और लाभ हो सकता है। आगे पृथ्वी के अन्दर की खानों का कुछ वृत्तान्त लिखा जायगा।

पुस्तक-सूची—

A text book of Mining Geology by James Park. (1906). Charles Griffin and Co., Ltd., Exeter Street, Strand, London.

इसमें खनिज धातु निकालनेवाले की दृष्टि से खनिज का विचार किया गया है। मूल्य रु० ३) या ४) (?)

Mineral Deposits by Lindgren; Megraw—Hill Book Company, 239 West, 39th Street, New York.

Principles of Economic Geology by Emmons, 1918. London : Hill Publishing Company, Ltd., 6 and 8 Bouverie Street, E. C.

नवीन और विशेषतः विद्यार्थियों के लिए अत्युत्तम पुस्तक। मूल्य १५) ।

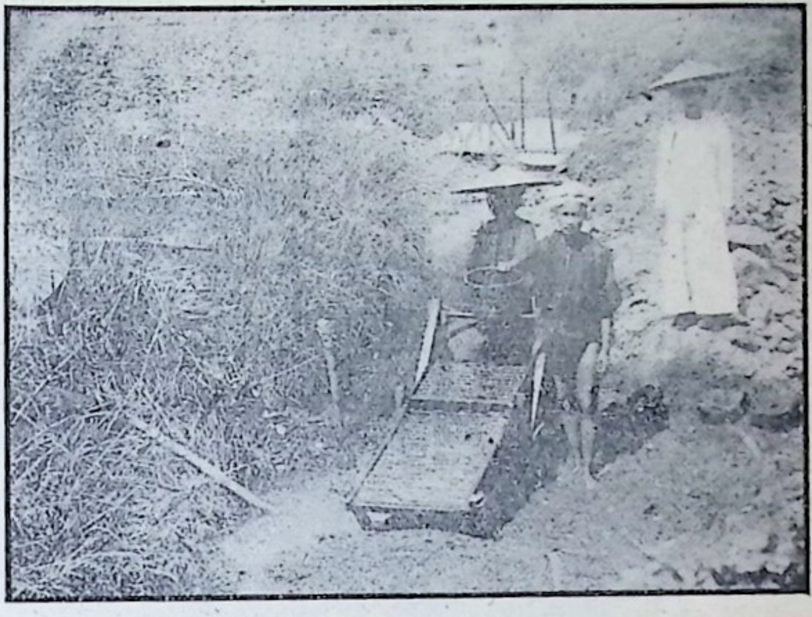

बर्म्मा में नदी की रेत और पत्थरों से सोना निकालने की प्राचीन विधि।

अब आभ्यन्तर संसार का कुछ वृत्तान्त सुनिए। १९१८ की गर्मी की छुट्टियों का हाल लिखता हूँ।

शुरू जुलाई में हम स्कूल के ६–७ विद्यार्थी अपने अध्यापक के साथ एक सप्ताह के लिए ग्लास्टर (Gloucestor) गये। यह स्थान Geology (भूगर्भ-विद्या) अध्ययन करने के लिए अत्युत्तम है। प्रतिदिन १४–१५ मील का चक्कर लगता था। इसका विस्तार मैं यहीं छोड़ता हूँ। ग्लास्टर से मैं सीधा Redruth गया। यहाँ एक Boarding House (छात्रावास) में तीन दिन रहा। फिर Basset Mines Ltd. पर एक छोटे गाँव में कप्तान की सहायता से ३५) शिलिंग साप्ताहिक पर मुझे एक घराने में जगह मिल गई। कार्नवाल का यह भाग ताँबे और राँगे की खानों से भरपूर है। Granite और Killas के मेल के समीप ऊपरी भाग में ७००–८०० फ़ुट तक ताँबा और नीचे के भाग में २००० फ़ुट तक राँगे का पत्थर Tinstone मिलता है। १५०–२०० वर्ष पहले यहाँ ताँबा निकाला जाता

था, पर अमरीका में सस्ता ताँबा निकलने के कारण कार्नवाल का कारोबार बन्द होगया। अब राँगे की खानें ही चल रही हैं। कार्नवाल के खोदनेवाले संसार भर में फैले हुए हैं। बाष्प-एञ्जिन का प्रारम्भ कार्नवाल में ही हुआ था, जहां

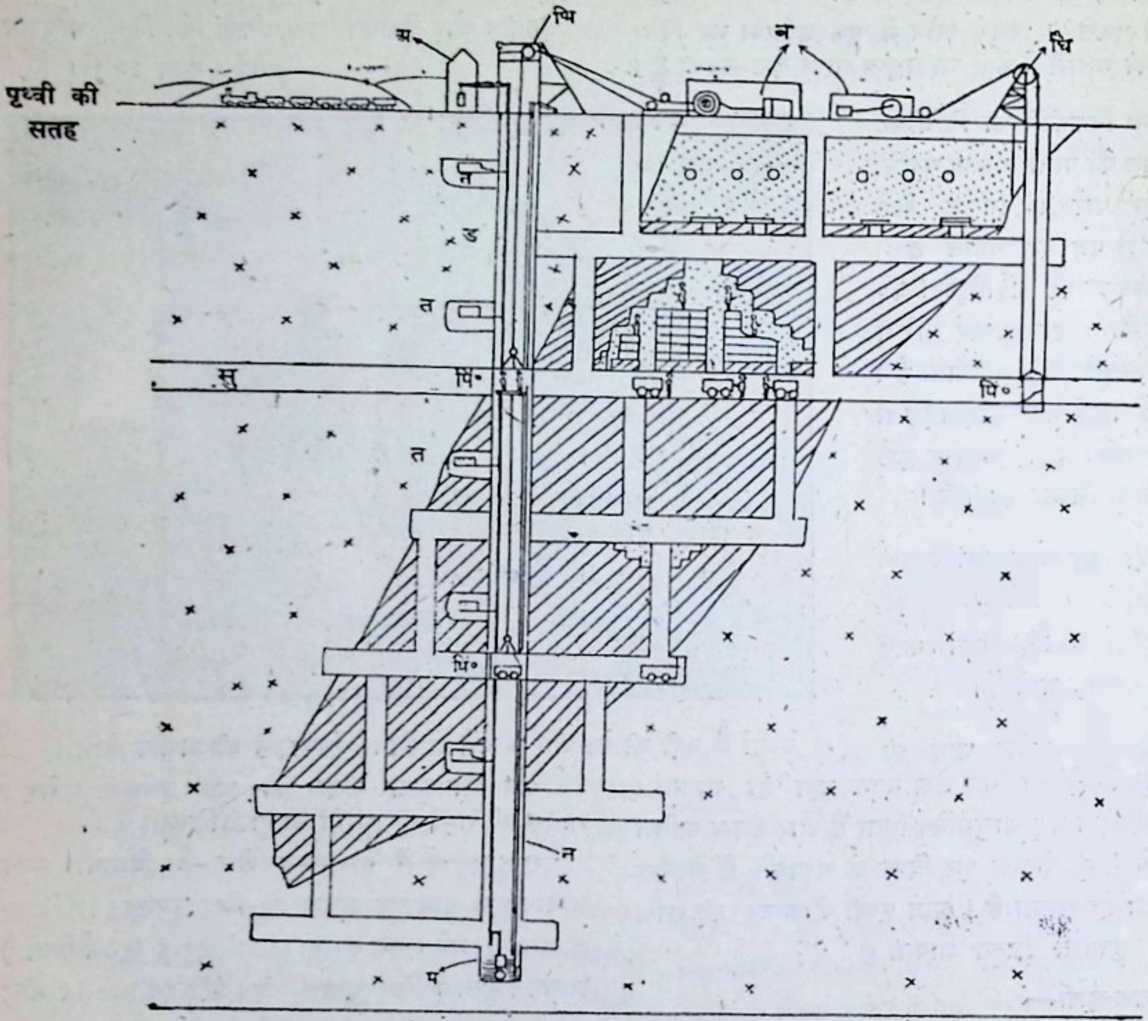

खान में Reef का चित्र

अ—पम्प का एञ्जिन-घर
ड—पम्प का डंडा। त—डंडे का बोझ लेने के लिए तराज़ू
प—पम्प
न—पम्प का नल जिसमें पानी ऊपर जाता है
पिं—पिँजरे
घि—घिरिँयाँ जिनसे पिँजरे लटकते हैं।
ब—पिँजरे खींचने का एञ्जिन
सु—खनिज की खोज के लिए सुरङ्ग

▨ Reef में खनिज पदार्थ

░ खनिज पदार्थ जो निकाला जा चुका है।

× खनिज-हीन Reef

The diagrams are very much out of proportion.

खानों से पानी निकालने के लिए कार्निश-पम्प का आविष्कार किया गया। यहाँ की जनता का व्यवसाय खान-सम्बन्धी ही है। दो पाउंड साप्ताहिक से लेकर ८–१० पाउंड तक ये लोग पैदा करते हैं। ३–४ पाउंड शायद Average (औसत) है।

जिस खान में मैं काम करता था वह क़रीब २००० फ़ुट गहरी है। लोहे की रस्सी से दो बड़े पिँजरे नीचे जाते हैं। कीचड़ और गेरुआ पानी होने के कारण नीचे जाने के कपड़े अलग रहते हैं। सख़्त टोप और मज़बूत जूते आवश्यक हैं। चित्र से पाठकों को आभ्यन्तर रास्तों का अन्दाज़ा हो जायगा। टोप पर मिट्टी से मोमबत्ती चिपका लेते हैं अथवा एसेटेलीन लेम्प इस्तेमाल करते हैं। रोशनी तो बहुत ही कम रहती है। सुनने की शक्ति से बहुत काम लिया जाता है। लकड़ी के खम्भों से कमज़ोर धरती साधी जाती है। तोभी कमज़ोर ज़मीन में गिरते हुए पत्थरों के शब्द से ही पहली ख़बर मिलती है। हथौड़े से किसी स्थान को ठोकने से वहाँ की पृथ्वी की पुष्टता का हाल बता सकते हैं। पिँजड़े के आने जाने और पम्प के चलने के शब्द से अनुभवी खोदनेवाले को एञ्जिन के स्वास्थ्य का पता लगता है।

पत्थर तोड़ने के लिए हथौड़े और लोहे की कील से अथवा वायु-यन्त्र (Air Drill) से छेद करते हैं। इनमें बारूद भरकर चारों ओर आवाज़ देते हैं। मनुष्यों के सुरक्षित स्थानों में छिप जाने के पश्चात् खोदनेवाला Fuze में आग लगाकर भाग जाता है। तोप का शब्द और भूकम्प होता है और २–३ गज़ के पत्थर टूटकर गिर पड़ते हैं। खोदनेवाले को नीचे लिखी बातों का विचार रखना पड़ता है—

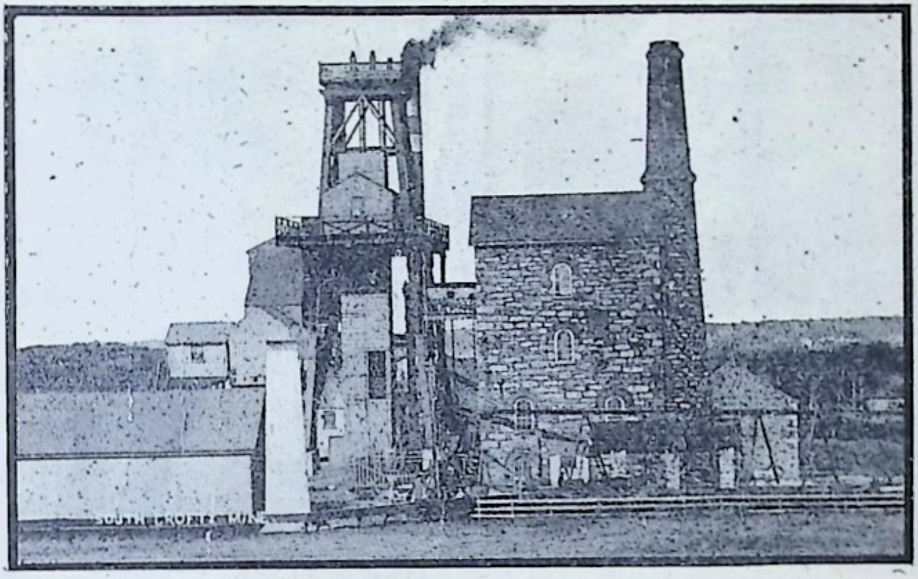

कार्नवाल में Redruth रेडरुथ के समीप South Crofty Tin Mine
साउथ क्राफ़्टी टिन माइन।
सीधे हाथ की ओर पम्प का एञ्जिन-घर है। बीच में खान के Shaft के ऊपर लकड़ी का Frame ढाँचा है, जिसके ऊपरी भाग में तीन घिर्रियाँ हैं। चित्र में पीछे छिपा हुआ रस्सी खींचने का एञ्जिन है। दूर Granite पत्थर की पहाड़ी दिखाई देती है।

१—खनिज की खोज में रहना

२—खान में पानी का रास्ता ठीक रखना और बाँध आदि से पानी को अपने हाथ में रखना।

३—खान की वायु को शुद्ध रखना। वायु का प्रवाह प्रायः स्वाभाविक रहता है। केवल कोयले की खानों में मशीन-पंखों की आवश्यकता होती है।

४—रास्तों की चट्टान की पुष्टता का विचार रखना।

खोदनेवाला प्रातः छः बजे नीचे जाता है। दस बजे जल-पान करता है। दो बजे छुट्टी मिलती है। बहुत सी खानों में दिन रात काम होता है; किन्तु एक खोदनेवाला प्रायः आठ घंटे काम करता है।

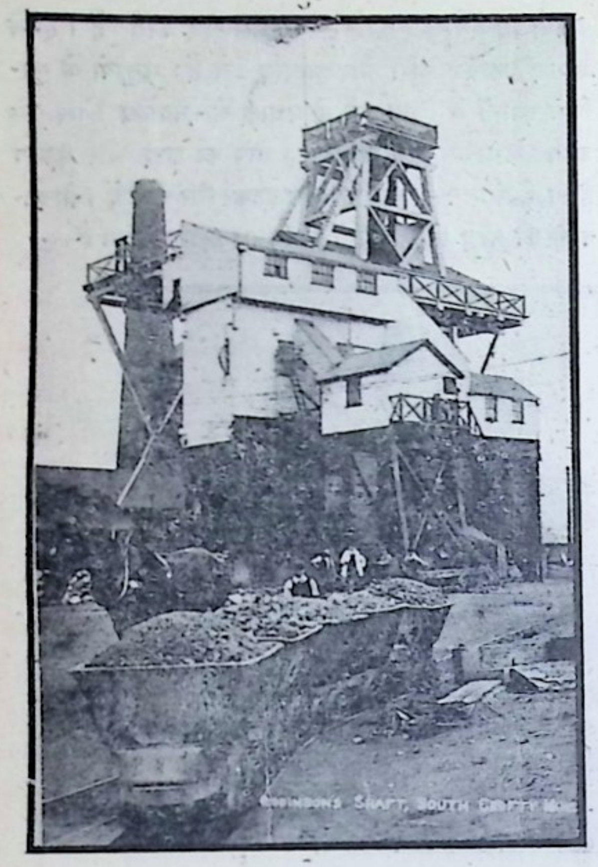

चित्र ४ का पीछे से फ़ोटो। खनिज ढाँचे के ऊपर से पत्थर तोड़नेवाले यन्त्रों में होकर छोटी छोटी गाड़ियों में भरा जाता है और शोधने की मशीनों को भेजा जाता है।

बहुत से पाठकों का विचार होगा कि यह बड़ा कठिन व्यवसाय है। यह तो अवश्य है कि इस कार्य्य के लिए पुष्ट और वीर मनुष्यों की आवश्यकता है; किन्तु अच्छे प्रबन्ध के कारण इसमें अन्य कारख़ानों से कुछ ही अधिक जानजोखों है। इस व्यवसाय से मनुष्य में वीरता और पुष्टता आती है।

पुस्तक-सूची—

Elements of Mining by G. J. Young
Mcgraw—Hill Book Company, Inc,
239 West 39th Street, New York.
मूल्य रु० १६)

अब भारत के मुख्य खनिज पदार्थों का कुछ उल्लेख किया जाता है। यह Record Geological Survey of India, Vol. XLVI, 1915-Quinquennial Review पर अवलम्बित है।

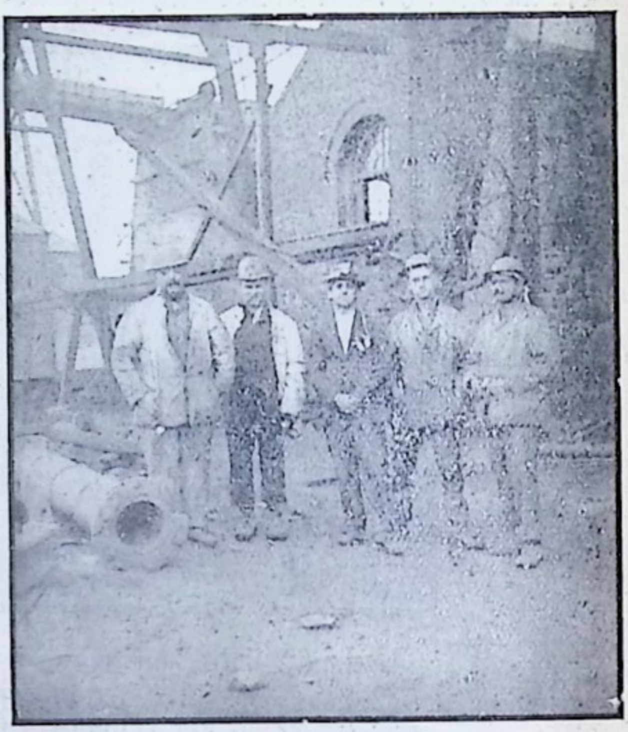

खोदनेवाले के कपड़ों में खान के भीतर जाने को उद्यत। बाईं से दाईं ओर

१ और २ खान के आभ्यन्तर Underground अध्यक्ष
३, ४, और ५ स्कूल आफ़ माइन्ज़ के विद्यार्थी

क्रोमाइट (Chromite)—भट्टी की ईंटें बनाने में काम आता है। शीशे और चीनी के बर्तनों में रंग दिया जाता है। एक प्रकार के क्रोम-स्टील में डाला जाता है। विलो-

चिस्तान और मैसोर में खानें हैं। सिंहभूम (बंगाल) में भी पाया जाता है।

पत्थर का कोयला (Coal)—प्रायः रेलवे के काम आता है।

रानीगंज, झरिया, गिरीडी, डालटनगंज (बंगाल), सिंगारनी (निज़ाम हैदराबाद), बल्लारपुर, बरोरा (गोदावरी की खाड़ी में), मोहपानी और पञ्चघाटी की खानों में,

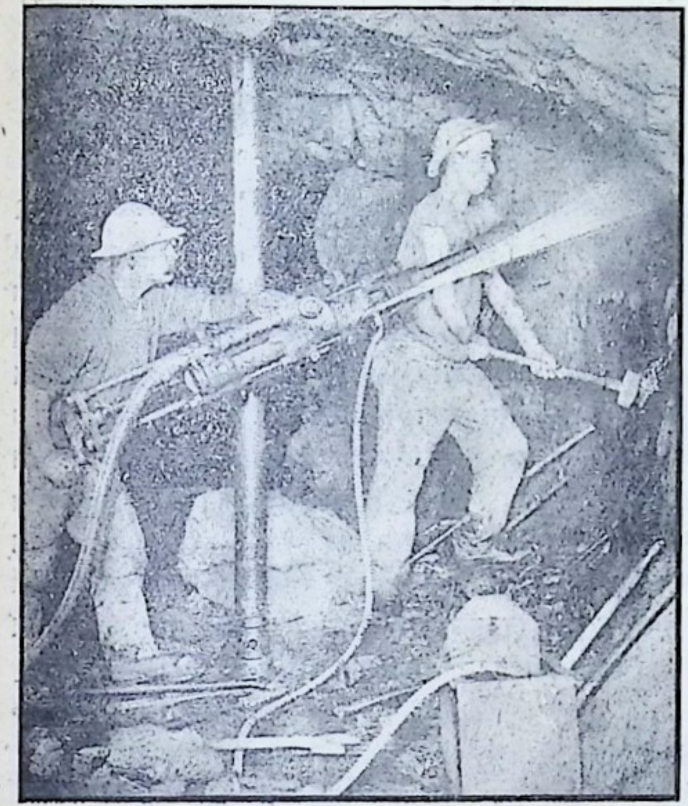

खान के अन्दर खोदनेवाले वायु-यन्त्र से छेद कर रहे हैं। धूल कम करने के लिए पानी इस्तेमाल करते हैं। रेतीली धूल फेफड़े को हानिकारक है।
Compressed Air (वायु) ऊपर से नलों में खान के अन्दर पहुँचाई जाती है।

आसाम, बर्मा, पञ्जाब, बीकानेर आदि में कोयला पाया जाता है।

हीरा—मदरास प्रान्त में कडापा, अनन्तपुर, बिलारी करनूल, कृष्णा-गोदावरी की खाड़ियों में। पन्ना, अजयगढ़ आदि राज्यों में हीरे पाये जाते हैं। किन्तु अफ़्रीका की Kimberley किम्बरले की हीरे की खानों के कारण अब हमारे देश में कारोबार बहुत कम है।

सोना—मैसोर में कोलार, अनन्तपुर, हट्टी आदि खानों से सोना निकाला जाता है। बर्मा में और अन्य स्थानों में नदियों से थोड़ा बहुत सोना निकाला जाता है।

ग्रेफ़ाइट (Graphite)—यह पेंसिल और Crucible बनाने के काम आता है। ट्रावनकोर और सीलोन में प्रायः पाया जाता है। अन्य स्थानों में भी मिलता है।

लोहा—मध्य-प्रान्त, मैसोर, गढ़वाल आदि अनेक स्थानों में पाया जाता है। ताता आइरन एण्ड स्टील कम्पनी, और बंगाल आइरन स्टील कम्पनी सफलता से कार्य्य कर रही हैं।

Galena सीसा } अब तक केवल बर्मा में
तांबा } Burma Mines Ltd.
जस्ता, और चांदी } ने बादविन खान से ये
खनिज निकाले हैं, जहां कि पहले चीनी लोग काम करते थे। अन्य स्थानों में भी ये खनिज पाये गये हैं।

Magnesite मेगनेसाइट—सालम (मदरास) में प्रायः पाया जाता है। सीमन्ट और भट्टी की ईंटों के बनाने के काम में आता है।

Manganese—यह बम्बई, मध्य-प्रान्त, और मदरास के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पाया जाता है। संसार भर की तिहाई अथवा चौथाई पैदावार भारत में होती है। यह प्रायः स्टील बनाने के काम आता है

Mica } —मुख़तलिफ़ हुनर और बिजली
अभ्रक } की मशीनों में काम आती है।
संसार की ६० फ़ी सदी पैदावार हिन्दुस्तान में होती है।

मिट्टी का तेल—प्रायः बर्मा और आसाम में पाया जाता है। पंजाब और बिलोचिस्तान में भी पाया जाता है।

नमक—पञ्जाब का लाहौरी नमक, राजपूताने का सांभर सबको ज्ञात है। समुद्र के खारी जल से भी नमक निकाला जाता है।

शोरा—संयुक्त प्रान्त और बंगाल में सतह की मिट्टी से निकाला जाता है।

रांगा (Tin) और वुलफ़्राम (Wolfram)—

रांगा भिन्न प्रकार के कांसे बनाने के काम में आता है। वुलफ़्राम से टंग्स्टन धातु निकाली जाती है जिसके तार बिजली के लम्पों के लिए काम आते हैं। टंग्स्टन स्टील भी बनाया जाता है। ये दोनों बर्मा की नदियों में पाये जाते हैं।

हमारी जनता में खनिज पदार्थों के विषय में बहुत अज्ञान है। हमारे धनी पुरुषों के विचार इस ओर फिरने चाहिए। अभाग्य से हर व्यवसाय का प्रारम्भ करने में विदेशियों को उनके ज्ञान और बल से सुभीता होता है। ताता कम्पनी और एक-आध और कम्पनियों को छोड़कर सारा कारोबार अँगरेज़ अथवा अन्य विदेशी कम्पनियों के हाथ में है। यद्यपि और देशों में खोदने का काम करनेवाले धन-सञ्चय करते हैं, पर हमारे देश में, मैसोर में और अन्य खानों में खोदनेवाले (जोकि कुली कहलाते हैं) निर्धनी किसानों से कुछ अच्छे नहीं। यह बात नेताओं के ध्यान देने योग्य है।

हमारे जो पाठक इस विषय में कुछ भी जानते हैं उनको यह ज्ञात होगा कि यह वृत्तान्त बहुत अधूरा है। इस लेख का उद्देश केवल मनोरञ्जन है। सम्भव है कि अनभिज्ञ पाठकों का विचार भारत के इस धन की ओर आकर्षित हो और विद्यार्थियों में इस अत्यन्त लाभदायक विद्या के लिए रुचि पैदा हो।

पुस्तक-सूची—

Geology of India—Economic, Vol. III by Prof. V. Ball, 2nd Edition (1888), out of print. (अलभ्य)

प्राचीन कोहनूर आदि मणियों के विषय में पढ़ने योग्य पुस्तक। ऐतिहासिक रूप से अच्छी है।

Record, Geological Survey of India, Vol. XXXIX, 1910. Quinquennial Review of Mineral Production for 1904–1908.

मूल्य २) (?)

Record, G. S. of India, Vol. XLVI 1915. Quinquennial Review of Mineral Production of India, 1909–1913,

मूल्य २)

तथा अन्य Records और Memoirs—Geological Survey office, 27 Chowrangi Road, Calcutta.

लन्दन कृष्णकुमार माथुर
दिसम्बर १९१८ बी० एस-सी०

प्रेम-पात्र की खोज।

फिर क्यों ख़ाक रहा है छान ?
जिसके हित अर्पण करने को, तन, जीवन, धन, प्रान।
लिये लिये भटका निशि दिन तू, मिला न वह यजमान॥
कुसुम-हेतु कुसुमाकर बनकर, पहुँचा कुसुमोद्यान।
भृङ्ग बना फिर नाच नाचकर, व्यर्थ अलापी तान॥
उड़ा कुसुम-सौरभ बनकर तू, हुआ ख़ूब हैरान।
धूलि-धूसरित हुआ दलित-पद, छोड़ आत्म-अभिमान॥
प्रेम-दृष्टि कर मोह-अग्नि में, किया आत्म-बलिदान।
सुधा-स्वाद के धोखे तूने, व्यर्थ किया विष-पान॥
मूढ़ ! जिसे समझा था तूने, स्वर्ग-सौख्य-सोपान।
निकला वही दण्ड यम का जब, कर आगे अनुमान॥
बहुत हुआ, बस कर अब योगी, छोड़ योग का ध्यान।
इस जीवन में ऐसे मन से, क्या होगा कल्याण ?

देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए०

संयुक्त-प्रान्त की हिन्दी।

गत अगस्त और अक्टूबर मास की सरस्वती में हिन्दी की अवस्था पर बाबू कालिदासजी और पण्डित कामताप्रसादजी के दो लेख निकले हैं। उनको देखकर मुझे भी इस विषय पर कुछ लिखने की इच्छा हुई। संयुक्त-प्रान्त हिन्दी का घर समझा जाता है। वहाँ के लेखकों और वक्ताओं की हिन्दी आदर्श हिन्दी समझी जाती है। अन्य प्रान्तोंवाले उन्हीं का अनुकरण करते हैं।

इसलिए उनकी ओर से तनिक भी असावधानी होने से हिन्दी की घोर क्षति होने की सम्भावना है। मेरी जन्म-भूमि पञ्जाब है; मुझे संयुक्त-प्रान्त में जाने का कभी अवसर नहीं मिला। इसीसे मुझे राष्ट्र-भाषा की स्थिरता के विषय में कुछ निवेदन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है।

हिन्दी अब पुराने पण्डितों के पञ्जे से निकलकर उर्दू और अँगरेज़ी-पढ़े बाबुओं के अड्डे में आ डटी है। उन्हें ही इसे राष्ट्र-भाषा बनाने का विचार उत्पन्न हुआ है। यह विचार बड़ा ही शुभ है, यह कहने की आवश्यकता नहीं; परन्तु इसको कार्य में परिणत करने के लिए जिन उपायों का अवलम्बन किया जा रहा है वे बड़े विचित्र हैं। संयुक्त-प्रान्तीय लेखकों में हिन्दी को सरल बनाने के नाम से उसमें फ़ारसी और अरबी के शब्द घुसेड़ने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ रही है। ये शब्द प्रायः ऐसे हैं जिनका शुद्ध उच्चारण साधारण लोगों के लिए बहुत कठिन है। इनको कायस्थ-मुन्शियों और काश्मीरी पण्डितों के सिवा दूसरा कोई ग्रामीण ठीक तौर पर बोल ही नहीं सकता। मुसलमानी समय में मुसलमानों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण कायस्थों के कण्ठ की बनावट ही कुछ ऐसी हो गई है कि वे हलक़, बख़्श, ग़नीमत, अ़लूम आदि शब्दों का उच्चारण कर सकते हैं; बेचारे गाँववालों के लिए तो, जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है, इन शब्दों का कण्ठ से निकालना भी कठिन है।

फिर अनेक ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है जिनकी कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु, परन्तु, यदि, अतिरिक्त, ज्वर, असम्भव, आदि के हिन्दी में होते हुए, अगर, मगर, लेकिन, अलावा, वग़ैरह, बुख़ार, नामुमकिन लिखने की क्या आवश्यकता है? पर देखते हैं कि बाल-सखा आदि बालोपयोगी पत्रों में भी इन संस्कृत-शब्दों का यत्नपूर्वक बहिष्कार किया जाता है। यदि यू० पी० के ब्राह्मणों और क्षत्रियों के घरों में भी मातायें नामुमकिन और अज़ीज़ आदि शब्द बोलती हैं तो फिर पता नहीं, हिन्दी किन लोगों की मातृ-भाषा है।

फ़ारसी और अरबी आदि विदेशी भाषाओं के आवश्यक शब्द लेने से—जिन के समानार्थक शब्द हिन्दी में पहले से ही हैं, हिन्दी को कुछ लाभ नहीं, बरन अनावश्यक और समानार्थक शब्दों के बढ़ जाने से बालकों के मस्तिष्क पर हानिकारक बोझ पड़ने का डर है। पं० कामताप्रसादजी ने ठीक कहा है कि 'भाषा में संस्कृत और फ़ारसी शब्द तभी मिलाने चाहिए जब हिन्दी शब्द न मिलें अथवा उनसे काम न चले। जिस समय संस्कृत और फ़ारसी-शब्दों में प्रयोग के सम्बन्ध से झगड़ा होने लगे उस समय हमें स्वभाव ही से संस्कृत-शब्दों का पक्ष लेना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से हम केवल अपनी ही सहायता न करेंगे, किन्तु अपने बहु-संख्यक देश-भाइयों को भी सहायता पहुँचा सकेंगे'। परन्तु संयुक्त-प्रान्त के नव-शिक्षित समाज में संस्कृत-शब्दों के प्रति घृणा उत्पन्न हो रही है। वे हिन्दी से इन शब्दों को चुन चुनकर निकाल डालना चाहते हैं। फ़ारसी-अरबी के शब्दों की जैसी भरमार इन लोगों के हिन्दी-लेखों में होती है वैसी किसी अन्य प्रान्तीय लेखक की हिन्दी में नहीं होती। आप बङ्गाली, गुजराती, महाराष्ट्र, पञ्जाबी आदि किसी की भी हिन्दी देख लीजिए, उसमें संस्कृत-शब्दों का बाहुल्य होगा। कारण यह है कि संस्कृत एक ऐसा सूत्र है जिससे सभी प्रान्तवाले एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इस सूत्र को तोड़ डालने से हिन्दी का घोर अनिष्ट होना अवश्यम्भावी है।

सरल और क्लिष्ट भी दो सापेक्ष शब्द हैं। फ़ारसी और अरबी के जो शब्द हमें क्लिष्ट जान पड़ते हैं वही अरब और फारस में, जहाँ ये भाषायें बोली जाती हैं, बहुत सरल हैं। बँगला संस्कृत-प्रचुर भाषा है। पर क्या इससे बङ्गालियों को यह बोलने और लिखने में क्लिष्ट जान पड़ती है? सच तो यह है कि जैसा माधुर्य्य और लालित्य इस संस्कृत-प्रचुर बँगला में है, कदाचित् उसका शतांश भी हिन्दी में नहीं। अब तक भी बँगला से अनुवादित हिन्दी के उपन्यासों की भाषा को पढ़कर जो रस आता है वह संयुक्त-प्रान्तीय लेखकों की भाषा में कदापि नहीं आता। इसीसे अन्य प्रान्तों के सहस्रों लोग, बँगला की संस्कृत-प्रचुरता की कुछ भी परवा न करके, इसके निज गुणों पर मुग्ध हो, इसके साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्त हुए हैं।

फिर और देखिए। मुसलमान लोग कैसी क्लिष्ट उर्दू लिखते हैं। इस पर भी कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक और कलकत्ते से लेकर कराची तक इन लोगों में इसीका व्यव-

हार होता है। वतन, वकील, ज़मीन्दार, अलहलाल इत्यादि पत्रों की उर्दू अरबी और फ़ारसी से ऐसी लदी हुई होती है कि हिन्दू तो क्या साधारण मुसलमानों के लिए भी उसका समझना कठिन है। परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि उर्दू का प्रचार कुछ कम नहीं हो रहा, बढ़ ही रहा है। मुसलमानों में जातीयता और एकता का भाव भी हिन्दुओं से कुछ कम नहीं। उनकी एकता तो जगत्प्रसिद्ध है। मैं तो यही समझता हूँ कि भाषा में कोई विशेष गुण होना चाहिए; फिर उसे सभी लोग अपने आप सीखने दौड़ते हैं। गुणहीन भाषा चाहे कैसी ही सरल और रसीली क्यों न हो उसे कोई नहीं सीखता। देखिए, अँगरेज़ी भाषा हम लोगों के लिए कितनी कठिन है। उसके उच्चारण और हिज्जों को रटते रटते ही कितने वर्ष लग जाते हैं। पर इसके राज-भाषा होने तथा इसके साहित्य के बहुत उन्नत होने के कारण सभी हिन्दू-मुसलमान, धनोपार्जन और ज्ञानवृद्धि के लिए, अनेक वर्ष लगाकर भी इसका अध्ययन करते हैं। यहाँ तक कि कई भारतीयों ने तो इसे अपनी मातृ-भाषा ही बना लिया है। इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य को उन्नत करने की आवश्यकता है। फिर जनता अपने आप इसकी ओर आकर्षित होगी। इसमें फ़ारसी-अरबी के अनावश्यक शब्द घुसेड़ने से सर्वथा हानि ही होगी। अभीष्ट-सिद्धि की इससे कदापि आशा नहीं। यह समझना कि सर्वगुणागरी देवनागरी एक दिन अपने आप भारत की राष्ट्र-लिपि बन जायगी, भारी भूल है। फ़ारसी-लिपि उर्दूवालों का बहुत अच्छा काम दे रही है। जब अँगरेज़ जैसी सुशिक्षित और गुणग्राहक जाति रोमन जैसी दूषित लिपि को छोड़ने पर उद्यत नहीं तो मुसलमान जैसे कट्टर लोगों से यह आशा करना कि वे नागरी के गुणों पर मुग्ध होकर सदोष फ़ारसी-लिपि का परित्याग कर देंगे, एक दुराशा मात्र है।

पञ्जाब में हम देखते हैं कि अदालतों की भाषा उर्दू होने के कारण अपढ़ लोगों में भी इस भाषा का प्रचार बहुत बढ़ रहा है। अदालतों में आने जानेवाले अपढ़ जाट भी मुज़ारिया, ग़ैर मुज़ारिया, इन्तक़ाल, अराज़ी, नज़रसानी, और वसीयत, ऐसे क्लिष्ट शब्द समझते और बोलते हैं। यदि इनके स्थान में संस्कृत-शब्द रक्खे होते तो क्या उनका प्रचार न हो सकता? पर संस्कृत-शब्दों के प्रयोग से तो हमारे हिन्दी के विद्वानों को हिन्दी क्लिष्ट मालूम होने लगती है; अरबी के शब्द चाहे कितने ही आ जायँ इस पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि इनसे उनकी समझ में मुसलमान हिन्दी को अपनाने लगेंगे। अरबी-फ़ारसी के शब्दों के प्रति हिन्दीवालों की उदारता यहाँ तक बढ़ी हुई है कि वे ग्वालियर की अदालती भाषा को भी, जो वास्तव में नागरी-वेष में फ़ारसी है, हिन्दी ही कहते हैं। "बख़िदमत हुज़ूर फ़ैज़ गंजूर, आली जनाब मुअल्ला अलक़ाब" आदि शब्द नागरी अक्षरों में लिखे होने से ही उनके लिए हिन्दी बन गये हैं।

अब प्रश्न होता है कि यदि हिन्दी के विद्वान् फ़ारसी-अरबी के प्रति इतना उदार भाव रखते हैं तो क्या पञ्जाबी, गुजराती, और महाराष्ट्र आदि ने कोई भारी अपराध किया है, जो उनके शब्दों के प्रयोग से हिन्दी में प्रान्तीयता की दुर्गन्ध आती है। पञ्जाब में स्त्रियां बुख़ार को तप और ताप, ज़ुकाम को सलेखम (श्लेष्म), दर्द को पीड़, वक़्त को बेला, और तख़्ती को पट्टी बोलती हैं। अब यदि पञ्जाबी लेखक बुख़ार, ज़ुकाम और दर्द ऐसे उर्दू-शब्दों के स्थान में अपने सरल पञ्जाबी के शब्दों का प्रयोग करें तो हिन्दी में पञ्जाबीपन आ जायगा! यह क्यों? क्या इसलिए कि यू० पी० में मुसलमानों का चिरकाल तक राज्य रहा है और पञ्जाबियों का नहीं रहा? भारत की राष्ट्र-भाषा में उसके सभी प्रान्तों की भाषाओं के थोड़े थोड़े शब्दों को अवश्य स्थान मिलना चाहिए। अरबी-फ़ारसी का ही यह विशेषाधिकार न रहने देना चाहिए।

सच्ची बात तो यह है कि जैसे बँगला बङ्गाल की, मराठी महाराष्ट्र की, और गुजराती गुजरात की मातृभाषा है वैसे हिन्दी किसी विशेष प्रान्त की मातृ-भाषा नहीं। यदि यह किसी प्रान्त की मातृ-भाषा होती तो इसकी आज यह दुर्दशा न होती। बङ्किम और रवीन्द्र की टक्कर का हिन्दी ने कोई भी लेखक उत्पन्न नहीं किया। बङ्गाली-लेखकों के लिखे शब्द और वाक्य ऐसे प्रतीत होते हैं मानों उनके अन्दर से स्वाभाविक रीति से निकले हैं, परन्तु हिन्दी-लेखकों की शब्द-योजना कृत्रिम और यत्नपूर्वक तैयार की हुई मालूम होती है। भला जिस प्रान्त में कायस्थों,

काश्मीरियों और उर्दू-भक्त बाबुओं की कृपा से मातायें भी अलावा, अलबत्ते, चुनांचे, चूँकि बोलने लगी हों, वहां हिन्दी के मौलिक लेखक कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? यदि सम्मेलन की हिन्दी आज हिन्दू-घरानों में नहीं बोली जाती, तो यह उर्दू-भक्त बाबुओं का ही दोष है जो आये दिन संस्कृत-शब्दों के गले पर कुठार चलाते हैं और उनसे ऐसा डरते हैं मानों उनके स्पर्श से ही हिन्दी का पवित्र कलेवर दूषित हो जायगा। क्या यवन-काल के पहले भी देहली, आगरे और लखनऊ के कायस्थ तथा काश्मीरी घरानों में फ़िसानए आज़ाद, जाने आलम और सय्यारे की उर्दू बोली जाती थी? इन लोगों ने यवन-काल में इस भाषा को ऐसे ही ग्रहण किया था जैसे आज-कल अनेक भारतवासी अपने बालकों और स्त्रियों से अँगरेज़ी बुलवा रहे हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि यदि यू० पी० के हिन्दी-प्रेमी पण्डित थोड़ा सा भी यत्न करें तो सम्मेलन की हिन्दी ही माताओं में प्रचलित हो सकती है। यदि यह विचार हो कि जो भाषा अब यवन-प्रभाव से प्रचलित हो गई है उसका संस्कार करना हमारा काम नहीं, तो फिर हिन्दी हिन्दी की पुकार मचाने से क्या लाभ? नागरी अक्षरों में ही तो कुछ रक्खा नहीं। इसके बिना भी तो फ़ारसी और रोमन आदि लिपियों से सारे संसार का काम चल ही रहा है।

उपसंहार में संयुक्त-प्रान्तीय विद्वानों, विशेषतः नवशिक्षितों, से मेरा यही निवेदन है कि हिन्दी को अपने प्रान्त की ही भाषा न समझकर इसके साथ मन-मानी न कीजिए; प्रत्युत इसे ऐसा बनाने का यत्न कीजिए जिससे इसका सम्बन्ध भारत के अन्य प्रान्तों के साथ भी बना रहे, क्योंकि इसके बिना यह कभी राष्ट्र-भाषा नहीं रह सकती।

सन्तराम, बी० ए०

अरबी का कालिदास।

अरबी-साहित्य में इमर उलक़ैस का वही स्थान है जो संस्कृत-साहित्य में कालिदास का है। अरबी-कविता प्राचीन-काल में अपनी सीमा पर पहुँची हुई थी। अरबी-काव्य-शक्ति के लिए यह समय चमत्कार का था। कवि-मण्डली में इमर उलक़ैस की गणना सूर्य्य के समान है। हज़रत उमर साहब मुसलमानों के एक बड़े सुप्रसिद्ध ख़लीफ़ा (राज्याधिकारी) थे। उनका कथन है कि इमर उलक़ैस सर्वश्रेष्ठ कवि है। यही आदिकवि है जिसने कविता के स्रोत से जल निकाला है, और सीधे सादे अथवा रूखे सूखे विषयों पर भी मनोरञ्जक कविता की है।

इमर उलक़ैस का जन्म हज़रत महम्मद साहब के जन्म से लगभग ४० वर्ष पहले हुआ था। यह हज़रत के जन्म से चार वर्ष पहले ही सन् ५६६ ई० में मर भी गया। उस समय अरब में ऐसे क़बीले (समुदाय) भी थे, जो ईसाई, यहूदी अथवा मूर्त्तिपूजक थे। समुदाय समुदाय के लोग पृथक् पृथक् रहा करते थे। प्रत्येक समुदाय जिसके वंश से प्रचलित था, उसीके नाम से वह प्रसिद्ध होता था। फिर प्रत्येक समुदाय कुटुम्बों में विभक्त किया जाता था। इमर उलक़ैस ने एक ईसाई समुदाय के कुटुम्ब में जन्म पाया था। इसलिए जन्म से तो यह ईसाई था, किन्तु ऐसा भी पता चलता है कि विचार इसके मूर्त्तिपूजकों के से थे। इसके बाप का नाम हजर था। वह असद नामक क़बीले का बादशाह था। इसको किसी कालेज अथवा स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि उस समय वहाँ कोई कालेज या स्कूल था भी नहीं। तथापि इस कवि ने छोटी आयु में ही अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देना आरम्भ कर दिया।

ऐतिहासिकों का मत है कि अरब के बादशाह पहले कविता करने की विद्या को बहुत बुरा समझते थे। इसलिए इमर उलक़ैस ने जब कविता करना आरम्भ किया तब इसके पिता ने घर से निकाल दिया। इस पर भी यह बाज़ न आया। अवस्था अभी थोड़ी ही थी, अर्थात् युवावस्था को

प्राप्त ही हो रहा था। मदिरापान का भी इसे व्यसन था और साथ ही साथ हृदय में लम्पटता का भी निवास था। इसलिए घर से निकाले जाने पर इसे बहुत दुःख उठाना पड़ा। लाचार होकर यह लूट-मार करके जीवन व्यतीत करता रहा। अभी बहुत दिन न बीते थे कि इसे ख़बर मिली कि पिता को असद-समुदायवालों ने मार डाला। वह बड़े कड़ुवे मिज़ाज का था और इसी कारण मारा भी गया। यह बात इससे भी स्पष्ट है कि उसने अपने इकलौते पुत्र ही को घर से निकाल बाहर कर दिया था। इमर उलक़ैस इस दुःख को सह न सका और इसने इसको अपमानजनक भी समझा। इस पर इसने शपथ खाई कि जब तक असद-समुदाय के २०० मनुष्यों की जान न ले लूँगा, सुख से न सोऊँगा। इसलिए किसी प्रकार से दो समुदायों की सहायता लेकर इसने असद-समुदाय पर चढ़ाई की। अभी यह शत्रुओं से अपना बदला न ले पाया था कि दोनों कबीलेवाले इसका साथ छोड़कर वापस चले गये। तत्पश्चात् अन्य लोगों की सहायता प्राप्त करके इसने बदला लेने की ठानी। इस बार इसने शत्रुओं के २०० मनुष्यों को तलवार के घाट उतारा और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

इसे इस काम से छुट्टी मिली ही थी कि इसका एक शत्रु बड़ी बुरी तरह इसके पीछे पड़ा। यह बेचारा जहाँ कहीं जाता वहीं ठहरने न पाता। शत्रु से बुरी तरह तङ्ग आकर यह सामवेल नामक एक यहूदी कवि के यहाँ ठहरा। उसने इसको बहुत सुख पहुँचाया। उसीकी बदौलत क़ुस्तुनतुनिया (Constantinople) में रूम के बादशाह तक इसकी पहुँच हुई। किन्तु भाग्य ने ऐसे स्थान पर भी साथ न दिया। एक कारण ऐसा पड़ गया जिससे इसके दुश्मन की यहाँ भी चल गई। इसके ख़िलाफ़ बादशाह के कान चुपचाप भर दिये गये। बादशाह इस समाचार से बड़ा नाख़ुश हुआ, किन्तु प्रकट रूप से उसने इसके ख़िलाफ़ कुछ करना उचित न समझा। बल्कि अपने यहाँ से जब बिदा किया तब बड़ी उदारता दिखलाई। बाद को उसने एक मनुष्य के हाथ एक वस्त्र इसके लिए भेजा। यह वस्त्र देखने में सुन्दर, लेकिन असल में विषैला था। बादशाह ने इस वस्त्र के लेजानेवाले को आज्ञा दी थी कि जब इमर उलक़ैस स्नान कर चुके तब इस वस्त्र को पहना देना। उस मनुष्य ने वैसा ही किया। इमर उलक़ैस को पहले तो कुछ ज्ञात ही न था, पर थोड़ी देर बाद जब विष शरीर में असर कर गया तब जान पड़ा कि मामला क्या है। आख़िरकार विष का ऐसा बुरा असर पड़ा कि कुछ रोक थाम न हो सकी। सारा शरीर फट गया और अन्त में प्राणान्त ही हो गया।

इमर उलक़ैस के सम्बन्ध में यह बड़ा गम्भीर और विचारणीय विषय है कि इसका जीवन अधिकांश दुःखमय जीवन था। तथापि इसने अरबी-कविता में सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त किया, यहाँ तक कि वे मुसलमान कवि भी, जिनको अरबी भाषा से विशेष सम्बन्ध रहा, इसकी टक्कर के न हुए। अस्तु। इसके विषय में यह कहना अनुचित नहीं है कि यदि इस कवि को घोर विपत्तियों का मुँह न देखना पड़ता और यह पूरी आयु पाकर मरता, तो न जाने, अरबी-कविता में यह क्या क्या न कर जाता। इसकी कविताओं का एक बड़ा सङ्ग्रह है। वह "दीवान इमर उलक़ैस" के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसकी कवितायें उच्च कोटि की हैं। लेकिन इसकी सबसे अधिक प्रसिद्ध कविता वह है जो अरबी के "सबः मुअल्लक़ः" नामक ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ में वे सात कवितायें हैं जो मक्का के मन्दिर में सुवर्ण-अक्षरों में लिखकर लटकाई गई थीं। इमर उलक़ैस की कविता इनमें सबसे पहली है। इस कविता में इसने पहले अपनी और अपनी प्रिया की रामकहानी सुनाई है। इसकी प्रिया का नाम उनैज़ा था। वह

इसके चचा की ही पुत्री थी। बाद को इसने अपने घोड़े के शिकार का हाल कहा है। फिर उन सब कठिनाइयों का वर्णन किया गया है जो सफ़र में प्रायः प्रत्येक को झेलनी पड़ती हैं। साथ ही साथ प्राकृतिक दृश्यों को भी बड़ी अद्भुत रीति पर खींचा है।

पूर्वोक्त कविता में इसकी प्रिया उनैज़ा के विषय में बहुत कुछ उल्लेख है। किन्तु उनैज़ा के सम्बन्ध में इमर उलक़ैस ने एक ऐसी बात का वर्णन किया है जो कि श्रीकृष्ण महाराज की चीरलीलावाली कथा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। उसकी बाबत ठीक ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि सचमुच वैसा ही हुआ था जैसा कि कविता में वर्णन है। अथवा भारत से किसी तरह चीरलीलावाली कथा वहाँ पहुँची और कवि ने एक रोचक भाव पाकर अपनी प्रिया के प्रति कविता की। अरबी की कई कविताओं में देखा गया है कि अरबी-कवियों ने ऐसी मनोरञ्जक और हृदयामोदक बातों को लिखा है जो कि निस्सन्देह कार्य-रूप में कभी परिणत नहीं हुई थीं। अस्तु। कवि का कथन है—

अला रुब्बा योमिन काना मिन हुन्ना सालेहिन,
वला सैय्या मा यौमिन वे दारत जुलजुली।

भावार्थ—देख! तुझे बहुतसे ऐसे दिन प्राप्त हुए हैं जिनमें तूने मनोहारिणी स्त्रियों के साथ विहार किया है। विशेषतः दारत जुलजुल (नामक तालाब) सम्बन्धी दिन तो बहुत ही अच्छा था।

× × × ×

प्राचीन अरब-वासियों की जैसी प्रकृति थी उसीके अनुसार वे लोग कविता में लालित्य उसी समय समझते थे जबकि उसमें उन चीज़ों का वर्णन होता था जो उन्हें भानेवाली होती थीं। एक वादी (तराई) जवा नाम की थी। उसमें पशु-पक्षी बहुत रहते थे। उस वादी में बहुत पानी बरसा। पशु-पक्षियों की बुरी हालत हो गई। इस पर इस कवि ने कई पद्य कहे हैं। उनमें से दो पद्यों का भावार्थ यह है—

"दूसरे दिन प्रातःकाल वादी के पक्षियों की दशा, बहुत पानी बरस जाने के कारण, ऐसी हो गई थी कि वे उड़ नहीं सकते थे। और फिर मुग्ध होकर ऐसे चहचहाते थे मानो उनको बहुत ही तेज़ क़िस्म की शराब पिला दी गई हो। पशु जो दूर दूर किनारों पर डूबे पड़े थे, वे खुदी हुई जङ्गली पियाज़ की जड़ों के समान पानी में देख पड़ते थे।"

इमर उलक़ैस के जिन पदों का भावार्थ ऊपर दिया गया है, उन्हींका अनुवाद अरबी से अँगरेज़ी में भी हो चुका है। बंगाल-सिविल-सरविस के मिस्टर चार्लस जेम्स लायल साहब ने, ४०—५० वर्ष बीते, यह अनुवाद किया था। अँगरेज़ी जाननेवालों के लिए, सम्भव है, कि अनुवाद अधिक उत्तम साबित हो—

At earliest dawn on the morrow, the birds were
chirping blithe,
As though they had drunken draughts of riot in
fiery wine;
And at even the drowned beasts lay where the
torrent had borne them dead,
High up on the valley sides, like earth stained
roots of squills,

अरबी का साहित्य अब बहुत बढ़ गया है। पुस्तकें भी बहुत सी लिखी जा चुकी हैं। कवियों ने काव्य लिखने में भी बहुत ज़ोर लगाया है। किन्तु जो विचित्रता इमर उलक़ैस की कविता में पाई जाती है वह किसी की भी कविता में नहीं है। यही आदि-कवि है जिसने कविता में कई नये छन्द निकाले, सूक्ष्म और सीधे-सादे विषयों पर कविता की, कविता में खँडहरों पर और प्रियजनों की याद करके विलाप किया, और स्त्रियों की तुलना हरिणियों और नीलगायों से की गई। और सबसे बड़ी प्रशंसनीय और विचित्र बात तो यह है कि इन सब बातों का उल्लेख इसने ऐसे ढङ्ग पर किया कि इसकी

कविता सब लोगों के चित्त को आकर्षित करनेवाली हुई। यहाँ तक कि यह अरबी का महाकवि माना गया।

महेशप्रसाद (मैालवी आलिम)

विविध विषय।

१—पायनियर का प्रलाप।

प्रयाग के पायनियर ने गत सातवीं मई की संख्या में "लिंगुआ इन्डिका" शीर्षक अपने सम्पादकीय लेखद्वारा बेतरह ज़हर उगला है। हमारे देश के राजनैतिक नेताओं और उनकी आकांक्षाओं का अहर्निश विरोध करना इसका परम धर्म्म है ही, पर अब वह अपने कर्तव्य की सीमा और आगे बढ़ाना चाहता है। इसकी क्रूर दृष्टि बेचारी हिन्दी पर जा पड़ी है। बम्बई के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय के सम्भाषण की समालोचना करते हुए पायनियर ने अनेक बे-सिर-पैर की बातें बकी हैं। वह कहता है कि "नागरी-प्रचारिणी सभा के स्थापित होने के पहले उर्दू भारतवर्ष की लिंगुआ फ़्राङ्का अर्थात् सब प्रान्तों की एक व्यापक भाषा होनेवाली थी। परन्तु गत २० वर्ष के भीतर नागरी-प्रचारिणी सभा और पण्डित मदनमोहन मालवीय के उद्योग से इन दोनों ज़बानों में बड़ा अन्तर हो गया है। हिन्दी ने उर्दू को अपने स्थान से बहुत कुछ हटा दिया। इन दोनों ज़बानों में घोर युद्ध होने पर भी उर्दू ने मुश्किल से मैदान में पीछे क़दम मारा है। उर्दू के ख़िलाफ़ बड़ी बलवती शक्तियाँ काम कर रही हैं जिससे हार उर्दू ही की होगी। गवर्नमेन्ट ने हिन्दुस्तानी भाषा प्रचलित करके दोनों भाषाओं में मेल कराना चाहा, परन्तु पण्डितों और मौलवियों की मंशा उसके प्रतिकूल जान पड़ती है। क्योंकि उनकी लेखशैली उर्दू को शुद्ध उर्दू और हिन्दी को शुद्ध हिन्दी बनाने की है। वे भाषा में एक दूसरे से दूर हटते जाते हैं। इस पार्थक्य या अलहदगी में भी हिन्दी ही मज़े में रहेगी क्योंकि हिन्दुओं की गणना अधिक है और वे शुद्ध हिन्दी पढ़ने में चाहे जितनी झंझटें उठाना स्वीकार करें, परन्तु अरबी और फ़ारसी के शब्द पढ़ना पसन्द न करेंगे।"

हिन्दी और उर्दू दो पृथक् पृथक् भाषायें हैं या दोनों एक ही भाषा के रूपान्तर हैं, इस विषय की विवेचना करने की फ़ुरसत पायनियर को नहीं और न वह यही निर्णय करना चाहता है कि मुसलमानों के आने के समय इस देश में, और विशेषतः संयुक्त प्रदेश में, कौन सी एक भाषा बोली जाती थी। तथा आज-कल भी हज़ारों तीर्थ-यात्री और व्यापारी भारतवर्ष के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक किस भाषा के सहारे भ्रमण और अपने विचारों को प्रकट करते हैं। उसका अभिप्राय है हिन्दू-मुसलमानों में किसी न किसी प्रकार अनैक्य क़ायम रखना और यदि हो सके तो उसे बढ़ाना।

वर्तमान हिन्दू-मुसलमानों की एकता ने उसके हृदय में बड़ी वेदना सी उत्पन्न कर दी है। उसे खटका है कि कहीं परस्पर भ्रान्ति निर्मूल करके ये लोग हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भी न सुलझा लें। तभी तो उसने नागरीप्रचारिणी सभा और हिन्दी-हितैषियों के उद्देश्यों और माननीय मदनमोहन मालवीयजी के सम्भाषण के अर्थ का अनर्थ कर डाला है। बम्बई के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में मालवीयजी ने हिन्दी में सम्भाषण किया था। अँगरेज़ी में इस बात का पूरा पता निश्चय रूप से बिना लगाये ही उसने कह डाला कि—

"Presumably the Pandit's oration was delivered in English for it would not otherwise have been generally understood. So practised an orator would not be likely to commit the mistake of addressing a mixed gathering at Bombay in Hindi."

अर्थात् "पण्डितजी का सम्भाषण शायद अँगरेज़ी ही में हुआ होगा अन्यथा उसे सब लोग न समझ सकते। उनका सा प्रभावशाली वक्ता बम्बई ऐसे स्थान के श्रोताओं को हिन्दी में व्याख्यान न देगा।" पायनियर की पूर्वोक्त कल्पना कितनी निस्सार है यह उन लोगों को भली भाँति प्रकट है जो गत सम्मेलन में बम्बई में उपस्थित थे अथवा जिन्होंने मालवीयजी के कितने ही व्याख्यान उस नगर में अन्यान्य अवसरों पर हिन्दी में सुने हैं।

शङ्काओं का समाधान किया जा सकता है। परन्तु द्वेषाग्नि से भड़के हुए उद्गारों का उत्तर उपेक्षा ही है। अस्तु। पायनियर के प्रलाप का एक और नमूना उसीके शब्दों में दिया जाता है—

"Whether those who set out to popularise the use of Hindi had at first any further purpose than to supplant Urdu may be doubted, but the considerable success of the movement has encouraged among the more ardent spirits an ambition to make Hindi the language of the whole of India. They now propose to uproot not only Urdu but English and to force upon the country the cultivation of Hindi, not merely as the *lingua franca* but as the *lingua Indica*—the language of the whole country. They are particularly active at the present time, for they are astute enough to see that the omens are propitious not only for giving the coup-de grace to the tottering cause of Urdu but opening an attack all along the line on the far more dangerous rival English. Hindu-Muslim unity, about which politicians talk so effusively these days will be able they think to bear the strain of a decisive blow at Urdu and British Rule, as they believe having been made thoroughly unpopular in the country by the sedulous misrepresentations of its acts and motives, they confidently look for a re-action simultaneously against the use of the English language. Their strategy is as clever as their tactics; for the Musulman politician of the new school is so desperately busy flying other kites just now that he is ready to acquiesce in almost anything at the hands of those who profess a sympathetic interest in his present occupation."

"जिन लोगों ने हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ किया उनका उद्देश पहले इसे उर्दू का स्थानापन्न बनाने के सिवा और भी कुछ रहा होगा, इसमें सन्देह हो सकता है; परन्तु इस आन्दोलन में बहुत कुछ सफलता हो जाने के कारण हिन्दी-प्रचार के अनेक उत्साहियों के हृदय में हिन्दी को समस्त भारतवर्ष की भाषा बनाने का हौसला उत्पन्न हो गया। अब वे लोग न केवल उर्दू को ही निर्मूल करना चाहते हैं किन्तु अँगरेज़ी को भी। उनका विचार हिन्दी का देश में ज़बरदस्ती प्रचार कर उसे न केवल लिंगुआ फ़्रांका (एक ऐसी भाषा जिसके द्वारा प्रत्येक प्रान्त के लोग परस्पर व्यवहार कर सकें) बनाने का है। किन्तु लिंगुआ इन्डिका अर्थात् भारतवर्ष की एक मात्र व्यापक भाषा। आज-कल लोग इस कार्य्य में बड़े उद्यमशील हो रहे हैं क्योंकि ये बड़े चालाक हैं। ये लोग वर्त्तमान समय डगमगाती हुई उर्दू ही पर अचानक आक्रमण करने के लिए अनुकूल नहीं समझते किन्तु उर्दू से भी बढ़कर भयानक प्रतिद्वन्द्विनी अँगरेज़ी पर भी चारो तरफ़ से हमला करने का अच्छा मौक़ा समझते हैं। उनका विचार है कि आज-कल जब कि हिन्दू-मुसलमानों में मेल की चर्चा राजनैतिक नेतागण बड़े ज़ोर शोर से कर रहे हैं यदि उर्दू पर हमला करके उसका काम तमाम कर दिया जाय तो विपक्षियों को इसका पता भी न लगेगा।

शासकों के अभिप्राय और कार्य्यों के मिथ्या वर्णन से अँगरेज़ी अमलदारी इस देश में भले प्रकार अप्रिय कर ही दी जा चुकी है, अँगरेज़ी भाषा के उपयोग के प्रतिकूल आन्दोलन आरम्भ उठ खड़े होने का इन्हें पूर्ण विश्वास है। इन लोगों की व्यूहरचना और युद्ध-कौशल में बड़ा चातुर्य्य है। नवीन सम्प्रदाय के मुसलमान राजनीतिज्ञ आज-कल और और मामलों में इतने जुटे हुए हैं कि वे उन लोगों की सभी बातों के मानने के लिए तैयार हैं जो कि मुसलमानों के मौजूदा शग़ल से ज़ाहिरा हमदर्दी रखते हैं।"

२—टेलीफ़ोन की मोटर-गाड़ियाँ।

अमेरिका में टेलीफ़ोन की मोटर-गाड़ियाँ तैयार की गई हैं। किसी स्थान में आग लग जाने या और कारण से जब टेलीफ़ोन ख़राब हो जाते हैं तब ये टेलीफ़ोन की मोटरें वहाँ फ़ौरन दौड़ जाती हैं। इनके पहुँचतेही उस स्थान का सम्बन्ध और और स्थानों से स्थापित हो जाता है और बातचीत करने का सिलसिला क़ायम हो जाता है। जहाँ २५००० तक की आबादी है वहाँ इन गाड़ियों के

ज़रिये टेलीफ़ोन का पूरा काम चलने लगता है। मोटरों में टेलीफ़ोन की सब कलें लगी रहती हैं। फ़ान्स में बातचीत करने के कुछ ऐसे ही यन्त्र थे। उन्हीं के सुधारकर अमेरिकावालों ने यह हिकमत निकाली है।

३—साँप काटने का प्राथमिक प्रतिकार।

सीलोन का इकनामिस्ट नामक पत्र लिखता है कि साँप काटने के अनन्तर ही काटे हुए अङ्ग के इतना कसकर बाँध देना चाहिए कि उसमें रुधिर-सञ्चालन न हो सके। तदनन्तर साँप से काटे हुए मनुष्य को दही और काली मिर्च मिलाकर या तीस बूँद लिकर अमोनिया (Liquor Ammonia) थोड़े पानी में मिलाकर हर पन्द्रह मिनट में पिलाना चाहिए। रोगी सोने न पावे और नीम की पत्ती चबाता रहे।

४—बिना तार का टेलीफ़ोन।

बहुत दिनों से बिना तार के तार प्रचलित हैं। अब बिना तार के टेलीफ़ोन भी लीजिए। थोड़े ही दिनों में लन्दन और कलकत्ते में बैठे हुए लोग परस्पर बातें कर सकेंगे! मिस्टर गाडफ़े आइज़ेक्स (मनेजिङ्ग डाइरेक्टर मार्कोनी वायरलेस टेलीग्राफ़ कम्पनी लिमिटेड) का मत है कि जिस चाल से बिना तार के तारों की उन्नति हो रही है उससे शीघ्र ही ऐसे यन्त्र निकलेंगे कि लोग उन्हें पाकट में डाले हुए हज़ारों कोस की बातें कह सुन सकेंगे! पृथ्वी पर विचरते हुए लोग सौ मील रफ़्तार से भागते हुए वायुयानों (एरोप्लेन) में उपस्थित यात्रियों से बातचीत करेंगे!

५—रेडियो-टेलीफ़ोन द्वारा सङ्गीत।

डाक्टर एल० डी० फ़ारस्ट ने, जिन्होंने बिना तार के टेलीफ़ोन का आविष्कार किया है, भविष्यद्वाणी की थी कि सन् १९१९ में रेडियो-टेलीफ़ोन द्वारा १२००० मील से बातचीत हो सकेगी। जितनी दूर बिना तार के टेलीफ़ोन से बातें होती हैं उससे एकदम ६००० मील अधिक सुनने की शक्ति बढ़ जायगी। डाक्टर फ़ारस्ट ने टेलीफ़ोन के यन्त्रों को छोटा करने की ऐसी विधि सूचित कर दी थी कि जिससे शब्द हज़ारों मील के फ़ासले पर अविकल सुनाई पड़ें। यन्त्रों में इन परिवर्तनों के हो जाने से सङ्गीत भी एक देश से दूसरे देश तक सुनाई पड़ेगा! लन्दन में बैठे हुए भारतवर्ष का गाना सुनिए और कलकत्ते में पेरिस के कन्सर्ट का आनन्द लीजिए!

पुस्तक-परिचय।

१ The Training of Teachers **दि ट्रेनिङ्ग आफ़ टीचर्स**—ब्यूरो आफ़ एजूकेशन, इण्डिया, की ओर से यह आठवीं पुस्तक निकली है। इसके रचयिता हैं मिस्टर एस० एस० डन्कन, एम० ए०, प्रिन्सपल, टीचर्स-कालेज, सैदापट, मद्रास और मिस्टर ए० एच० मेकञ्ज़ी, एम० ए०, बी० एस०-सी०, प्रिन्सपल, गवर्नमेंट ट्रेनिङ्ग कालेज, इलाहाबाद। मूल्य ॥)

थेकर, स्पिन्क ऐन्ड कम्पनी, कलकत्ता, इत्यादि सभी पुस्तक बेचनेवालों के पास से मिल सकती है, जहाँ सरकारी छापेख़ाने में छपी हुई पुस्तकें बिकती हैं।

इस पुस्तक में संयुक्त-प्रदेश और मद्रास-प्रान्त में प्रचलित, नार्मल स्कूलों के अध्यापकों की शिक्षा-विधि का वर्णन है।

चित्र-परिचय।

शङ्कर-पार्वती।

इस संख्या में शङ्कर-पार्वती का रङ्गीन चित्र दिया गया है। चित्रकार हैं श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा के कनिष्ठ भ्राता, श्रीयुत महावीरप्रसाद वर्म्मा। आप गवर्नमेंट आर्ट स्कूल कलकत्ता में शिक्षा पा रहे हैं और अपने भ्राता की तरह इस विद्या में बड़े होनहार नज़र आते हैं।

चित्र में महादेवजी की तपश्चर्या की पराकाष्ठा सूचित होती है। उनको गोद में पड़ी हुई पार्वतीजी का कुछ भी ध्यान नहीं है। ये पति की ध्यानावस्था का आनन्द लूटने के लिए यहाँ इस प्रकार लेटी हुई हैं।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad,

"THE DREAM QUEEN"

OR

Swapna Vasavadatta,

A NEW SANSKRIT DRAMA OF BHASA
(Eminent Ancient Indian Poet),
unearthed 10 years ago by Pandit Ganapati Shastri,

NOW
FOR THE FIRST TIME TRANSLATED into ENGLISH,
IN

DRAMATIC FORM,

BY
Mr. A. G. SHERRIFF, I.C.S.
and
Mr. PANNA LAL, I.C.S.

Price Annas **12.**

TO BE HAD OF—
THE INDIAN PRESS, ALLAHABAD.

JUST OUT

REVISED AND ENLARGED EDITION OF
The Rev. J. D. Bate's Famous

HINDI-ENGLISH DICTIONARY.

Crown 4to size, containing 816 pages.

Price Rs. 6.—Postage, etc., extra.

To be had of—
The Manager, Indian Press,
ALLAHABAD.

द्विवेदीजी की पुस्तकें।

सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के महत्त्वपूर्ण लेख अप्राप्य हो रहे हैं। इसे हिन्दी का दुर्भाग्य समझ कर हमने उनके उद्धार का निश्चय किया है। इस लेख-माला में अनेक पुस्तकें होंगी—यथा, कवि-कीर्तन, अद्भुत आलाप, आलोचनाञ्जलि, पुरावृत्त, कालिदास आदि। सब पुस्तकें अच्छे काग़ज़ पर उत्तम टाइप में छपेंगी। पुस्तकें बराबर निकलती जायँगी। पहली पुस्तक—

प्राचीन पण्डित और कवि

छप चुकी। इसमें कई विद्वानों और कवियों के चरित, उनकी कविताओं के नमूने और उनकी खूबियों आदि का बड़ा ही मनोरञ्जक वर्णन है। मूल्य १० आने है। दूसरी पुस्तक—

वनिता-विलास

भी निकल चुकी। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मी-बाई तथा और कई प्रसिद्ध देशी तथा विदेशी नारी-रत्नों की चरित-चर्चा है। मूल्य केवल ५ आने है। तीसरी पुस्तक—

रसज्ञ-रञ्जन

भी शीघ्र ही निकलेगी। उसमें कवि, कविता तथा अन्य साहित्य-सम्बन्धी विषयों का विशद विवेचन रहेगा। पूरी माला के स्थायी ग्राहकों से १०) फ़ी सदी मूल्य कम लिया जायगा। आज्ञापत्र इस पते पर भेजिए—

मैनेजर, कमर्शल प्रेस,
जुही, कानपुर

जाड़े की बहार

आनन्द का सुहाना राग

सुगंधित

नवकुसुम तैल

खिले हुए टटके फूलों का स्निग्ध सौरभ मिला करके यह तैल तैयार किया जाता है। इस कारण नवकुसुम तैल समस्त केश-तैलों में श्रेष्ठ है।

इसी से दरिद्र की झोपड़ी से लेकर अमीरों के महलों तक, सब जगह, इसकी चाह है। मूल्य फ़ी शीशी ।।।), तीन शीशी २), एक दरजन ७)

ओटो

दिल-प्यारा

क्या कभी आपने इसे लगाया है? इसकी मीठी ख़ुशबू सचमुच दिल को प्यारी है। प्रणयोपहार के लिए अथवा स्मृति-रक्षा के लिए 'दिल-प्यारा' सचमुच दिल को प्यारा है। बहुत बढ़िया, काँच की साफ़ ढक्कन-युक्त शीशी में रक्षित दिलप्यारा की न्योछावर सिर्फ़ १) तीन शीशी २॥) एक दरजन १०) रु०

ग्राहकों को बिना मूल्य सचित्र कलेंडर उपहार दिया जायगा।

मिलने का पता—दी इंडियन परफ़्यूमरी
३ नं० पायनियर रोड, इलाहाबाद।

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २०, खण्ड २] अक्टूबर, १९१९ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २३८

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ५)] सम्पादक { १—महावीरप्रसाद द्विवेदी
२—देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए० } [प्रति संख्या ॥)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित ।

लेख-सूची ।

पृष्ठ
(१) प्रतिज्ञा (कविता)—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त... ... . १६९
(२) ऐतिहासिक और पूव ऐतिहासिक बातें—[लेखक, पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए० ... ... १६९
(३) पश्चिमीय अर्थ-शास्त्र—[लेखक, श्रीयुत बेनीमाधव मेहरोत्र, बी० ए० ... ... १७३
(४) कवि (कविता)—[लेखक, पाण्डेय मुकुटधर १७८
(५) सबसे अधिक बुद्धिमान् कुत्ता ... १७९
(६) इब्न बतूता की यात्रा १८०
(७) साँपों का स्वभाव— [लेखक, श्रीयुत छबीलदास सामन्त १८५
(८) शरद्वर्णन (कविता)—[लेखक, पण्डित विद्याधर तिवारी १८७
(९) महाकर्षण [सङ्कलित] १८८
(१०) मेवाड़ की राजधानी उदयपुर—[लेखक, पण्डित मनोहरलाल मिश्र १९१
(११) गीता-रहस्य-विवेचन—[लेखक, पण्डित मुक्तिनारायण सुकुल १९५
(१२) रामायण का एक दृश्य (कविता)—[उद्धृत] २०२
(१३) मृच्छकटिक और उसके रचना काल का हिन्दू-समाज—[लेखक, श्रीयुत बाबूराम सक्सेना, बी० ए० ... ... २०३
(१४) लुक़मान के अनमोल बोल—[लेखक, मुन्शी नानकचन्द २०७
(१५) एलक्ज़ंन्डर का एकान्तवास (कविता)—[लेखिका, श्रीमती तोरनदेवी २०८
(१६) मनोरञ्जक श्लोक—[लेखक, श्रीशुभानन्द शर्म्मा २०८
(१७) विविध विषय २०९
(१८) पुस्तक-परिचय २२३
(१९) चित्र-परिचय २२४

चित्र-सूची ।

१—वालि का दाह-कर्म (रङ्गीन) ।
२—महाकर्षण-सम्बन्धी चक्र ।
३-६ —मेवाड़ की राजधानी उदयपुर-सम्बन्धी ४ चित्र ।
७-१३—काठमांडू के कुछ दृश्य-सम्बन्धी ७ चित्र ।
१४—इलाहाबाद हाईकोर्ट के नये चीफ़ जस्टिस ।

आवश्यकता

है, और बहुत शीघ्र आवश्यकता है, सरस्वती-सम्पादन के काम में अच्छी सहायता देनेवाले एक सहकारी सम्पादक (Joint Editor) की । जो सरल, सुन्दर और व्याकरण-सम्मत हिन्दी लिख सकते हों, लेख लिखने तथा सम्पादन-कार्य करने का अच्छा अनुभव रखते हों, साहित्य के प्रेमी हों, अँगरेज़ी अच्छी जानते हों, और संस्कृत तथा दो एक अन्य प्रान्तीय भाषाओं से भी थोड़ा-बहुत अभिज्ञ हों, उन्हींको इस पद-प्राप्ति के लिए प्रार्थना-पत्र भेजना चाहिए। पर शर्त यह है कि वे यह काम स्थायी तौर पर करने को तैयार हों। वेतन १००) रुपये महीने तक दिया जा सकेगा। पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पते पर किया जाय, परन्तु यथेष्ट योग्यता न रखनेवाले पत्र भेजने का कष्ट न उठावें।

मैनेजर, इंडियन प्रेस,
इलाहाबाद ।

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग २०, खण्ड २
जुलाई—दिसम्बर
१९१९

* * *

सम्पादक
१—महावीरप्रसाद द्विवेदी
२—देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०

* * *

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, प्रयाग
वार्षिक मूल्य पाँच रुपये

लेख-सूची ।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अध्यात्म-विषयक कुछ अनुमान	श्रीयुत गोपालदास झालानी, बी० ए०	७८
२	अपमान (अरुणकुमार की कहानी)	श्रीयुत कैलासचन्द्र गुप्त	१४२
३	अमरीका की सैर	अमरीका का एक यात्री	४५, १०३
४	अमरीका में क्रिस्मस	अमरीका का यात्री	३२४
५	अमृसतर नेशनल कांग्रेस के सभापति पण्डित मोतीलाल नहरू	श्रीयुत गुरुनारायण मेहरोत्र बिलग्रामी, बी० ए०	२६०
६	आत्मा	श्रीयुत कन्नोमल, एम० ए०	३०१
७	इब्नबतूता की यात्रा	सम्पादक	१८०
८	इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स अर्थात् साम्राज्य की व्यापारोन्नति	श्रीयुत माधवप्रसाद शर्म्मा, एम० ए०, एल-एल० बी०	८५
९	उद्योग	पण्डित गिरिधर शर्म्मा	३२७
१०	एलक्ज़न्डर का एकान्त-वास (कविता)	श्रीमती तोरन देवी	२०८
११	ऐतिहासिक और पूर्व-ऐतिहासिक बातें	पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०	१९९
१२	कलकत्ता-यूनीवर्सिटी-कमीशन	श्रीयुत गुरुनारायण मेहरोत्र, बिलग्रामी, बी० ए०	१२६
१३	कवि (कविता)	श्रीयुत पाण्डेय मुकुटधर	१७८
१४	क्लाइव की आत्म-हत्या	श्रीयुत महावीरप्रसाद चौधरी, 'विभूति'	३०४
१५	क्षयरोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा	श्रीयुत सन्त निहालसिंह (लन्दन)	१५२
१६	गङ्गा में दीपक (कविता)	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०	२३६
१७	गीता-रहस्य-विवेचन	पण्डित मुक्तिनारायण सुकुल	१९५
१८	घटना-चक्र	पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा	२९५
१९	चित्र-परिचय	सम्पादक	५६, ११२, १६८, २२४, २८०, ३३८
२०	जयपुर का "राम-निवास" बाग़ और अजायबघर'	बाबू गोविन्ददास	३०८
२१	जीवनानन्द	पण्डित चन्द्रमनोहर मिश्र, बी० ए०, एल-एल० बी०	१
२२	देवोत्तर का इतिहास	पण्डित गङ्गाधर पन्त, बी० ए०, एल-एल०बी०	६
२३	दो हज़ार वर्ष पहले की पुलिस	पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०	२३७
२४	द्विजेन्द्र-नाटकावली	श्रीयुत कालिदास कपूर, बी० ए०	१२९
२५	नक़ली फूल (कविता)	श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए०	११२
२६	नवाब आसफ़ुद्दौला	सम्पादक	११३

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२७	नालन्द-विश्वविद्यालय	श्रीयुत दिनेशप्रसाद वर्म्मा तथा श्रीयुत नन्दकुमारसिंह	६८
२८	निराशा (कविता)	पण्डित शिवकुमार त्रिपाठी	१
२९	परिचय (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	३२०
३०	पवन-दूत	श्रीयुत शिवदास गुप्त	१५०
३१	पश्चिमी क्षत्रप-वंश का इतिहास और उनका वंश-वृक्ष	साहित्याचार्य्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ	२०
३२	पश्चिमीय अर्थ-शास्त्र	श्रीयुत बेनीमाधव मेहरोत्र बी० ए०	१७३
३३	पुष्प के प्रति (कविता)	श्रीयुत भवानीशङ्कर याज्ञिक	२६६
३४	पुस्तक-परिचय...	सम्पादक	५६, १११, १६७, २२३, २८० ३३५
३५	प्रतिज्ञा (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१६३
३६	प्राकृत के कुछ सुभाषित (कविता)	पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा	२८८
३७	प्राप्ति-स्वीकार...	सम्पादक	३३६
३८	प्लेटो	श्रीयुत व्रजमोहनलाल वर्म्मा, एम० ए०	२६०
३९	बाणासुर की तपस्या (कविता)	बाबू गोविन्ददास	२५९
४०	बाय-स्काउट-संस्था	प्रोफ़ेसर मोहनसिंह मेहता एम० ए०	५७
४१	भाग्य-चक्र	'कंटक'	२६७
४२	भारतीय शिक्षा-प्रणाली के कुछ दोष	श्रीयुत गुरुनारायण मेहरोत्र, बिलग्रामी, बी० ए०	२९
४३	मनोरञ्जक श्लोक	श्रीयुत शुभानन्द शर्म्मा	२०८
४४	महाकर्षण	(सङ्कलित)	१८८
४५	महाराजा नन्दकुमार की फांसी	प्रोफ़ेसर हरिश्चन्द्र मिश्र, एम० ए० (रिसर्च स्कालर)	३२
४६	मुग़ल सम्राट् बाबर के इतिहास की सामग्री	श्रीयुत रामचन्द्र टण्डन, बी० ए०	२५३
४७	मृच्छकटिक और उसके रचना-काल का हिन्दू-समाज	श्रीयुत बाबूराम सक्सेना, बी० ए०	२०३
४८	माघकवि और उनका काव्य	पण्डित भूपनारायण दीक्षित, बी० ए०	२२५
४९	मेवाड़ की राजधानी उदयपुर	पण्डित मनोहरलाल मिश्र	१९१
५०	मोह (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	५७
५१	रामायण का एक दृश्य (कविता)	(उद्धृत)	२०२
५२	राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ	श्रीयुत लक्ष्मण गोविन्द आठले	२८२
५३	रेल में बिजली	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना	२६३
५४	लीला (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	४४
५५	लुक़मान के अनमोल बोल	मुन्शी नानकचन्द	२०७
५६	विदेशी भाषा का प्रभाव	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	३१६
५७	विरह (कविता)	श्रीयुत कार्तिकेय...	२८१
५८	विविध विषय	सम्पादक	५१, १०८, १६२, २०६, २७०, ३२९
५९	वीराङ्गना (कविता)	अनुवादक, "मधुप"	८३

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
६०	व्यायाम या कसरत	डाक्टर प्रसादीलाल झा, आयुर्वेदनिधि, एल० एम०एस०	९०
६१	शरद्वर्णन (कविता)	पण्डित विद्याधर तिवारी	१८७
६२	सत्य का कला से सम्बन्ध	श्रीयुत चन्द्रबली त्रिपाठी, बी० ए०	६६
६३	सब से अधिक बुद्धिमान् कुत्ता	सम्पादक	१७९
६४	साँपों का स्वभाव	श्रीयुत छबीलदास सामन्त	१८५
६५	सामाजिक पन्थ	श्रीयुत लक्ष्मण गोविन्द आठले	७३
६६	सुलोचना (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	२५२
६७	स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य ग्रन्थकारों के उद्गार	श्रीयुत रामकृष्ण राजवैद्य	३१४
६८	स्त्री के विषय में नीटशे के विचार	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०	१३९
६९	स्वप्न (कविता)	श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त	३२९
७०	हमारा व्यापार...	एक देश-हितैषी	२३९
७१	हाट (कविता) ..	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	२२५
७२	हिन्दी-कौमुदी (समालोचना)	पण्डित देवदत्त शर्म्मा	३२०
७३	हिन्दी-गुण-गान (कविता)	श्रीयुत मुरली-मुकुटधर	१४२

चित्र-सूची ।

रङ्गीन चित्र ।

नम्बर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	दीपक	अगस्त	आदि-पृष्ठ
२	बाणासुर की तपस्या	नवम्बर	आदि-पृष्ठ
३	बालि और सुग्रीव का मल्ल-युद्ध	सितम्बर	आदि-पृष्ठ
४	बालि का दाह-कर्म्म ...	अक्टूबर	आदि-पृष्ठ
५	श्रीराम और लक्ष्मण का सुग्रीव से परिचय	जुलाई	आदि-पृष्ठ
६	सुग्रीव का राज-तिलक	दिसम्बर	आदि-पृष्ठ

सादे चित्र ।

नम्बर	नाम	पृष्ठ
१—४	अमृतसर नेशनल कांग्रेस-सम्बन्धी ४ चित्र	२६१-२६३
५	इलाहाबाद की पबलिक-लाइब्रेरी	२७६
६	इलाहाबाद के मिन्टो-मेमोरीयल पार्क में प्रोक्लेमेशन-पिलर	२७७
७	इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का सेनेट हाल	२७७
८	इलाहाबाद हाईकोर्ट के नये चीफ़ जस्टिस	२२२
९	कलकत्ते और लखनऊ के लार्ड बिशप	२७१
१०—१६	काठमांडू के कुछ दृश्य-सम्बन्धी ७ चित्र	२१४-२१७
१७—१८	कानपुर बालिका-विद्यालय-सम्बन्धी २ चित्र	२८-२९

नम्बर	नाम	पृष्ठ
१९—२३	क्रास्थवेट गर्ल्स हाईस्कूल-सम्बन्धी ५ चित्र	२७२-२७४
२४—३१	क्षय-रोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा-सम्बन्धी ८ चित्र	१५४-१६१
३२—३९	जयपुर का "राम-निवास" बाग़ और अजायबघर-सम्बन्धी ८ चित्र	३०९-३१३
४०	नवाब आसफुद्दौला	११५
४१—५०	बाय-स्काउट संस्था-सम्बन्धी १० चित्र	५८-६५
५१	महाकर्षण-सम्बन्धी चक्र	१९०
५२	मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दू-बोर्डिङ्ग हाउस का बाहरी दृश्य	२७८
५३	मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दू-बोर्डिङ्ग हाउस में रहनेवाले विद्यार्थी	२७८
५४—५७	मेवाड़ की राजधानी उदयपुर-सम्बन्धी ४ चित्र	१९२-१९४
५८—६०	रेल में बिजली सम्बन्धी ३ चित्र	२६४-२६५
६१—६५	लन्दन-विश्वविद्यालय के उत्सव में भारतवासी नोट से सम्बन्ध रखनेवाले ५ चित्र	४-५,१२-१३,२०-२१
६६	श्रीयुत बाबू गोविन्ददासजी	३३४

रङ्गीन चित्र ६
सादे ,, ६६

कुल ,, ७२

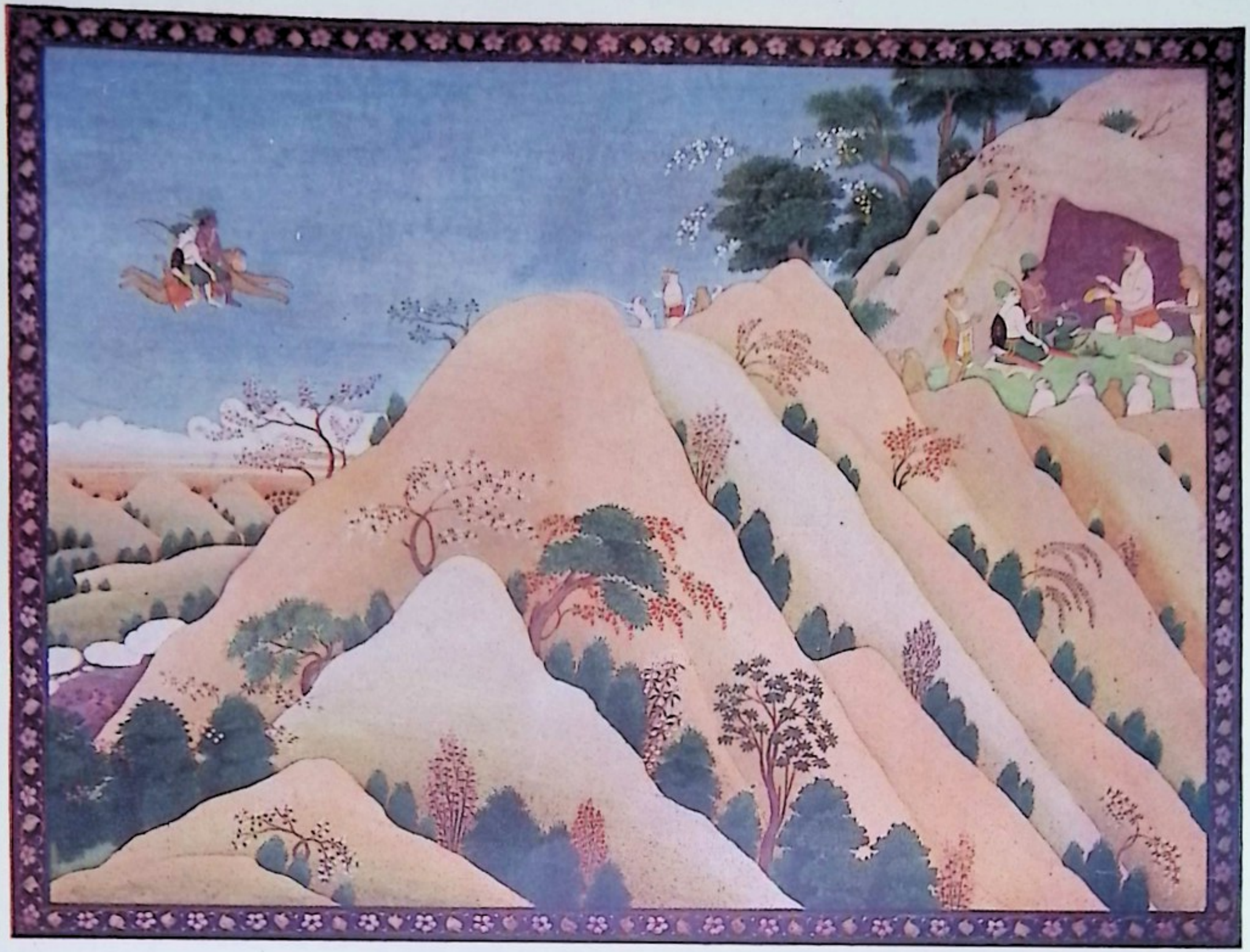

श्रीराम और लक्ष्मण का सुग्रीव से परिचय ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड २] जुलाई १९१९—श्रावण १९७६ [संख्या १, पूर्ण संख्या २३५

निराशा ।

दयामय ! कुछ भी काम न आये ।
दीनानाथ ! दयामय कैसे , दीनवन्धु कहलाये ॥
द्वेषादिक के सिर पर मानों, सघन मेघ हैं छाये ।
रोग-शोक भी हैं मेरे घर , आये बिना बुलाये ॥
प्रबला जब मैं थी, मेरे सुत तुम्हें रहे तब भाये ।
अब देखो वे ही रोते हैं, छूछे कर फैलाये ॥
दैन्य-अग्नि की लपट धधककर, देती मुझे जलाये ।
क्षीरोदधि में तुम सोते हो, तोभी नेत्र छिपाये ॥
चिन्ता-नदी तरल धारा से देती हमें बहाये ।
यदि न बचाया प्रभु ! फिर पीछे क्या होगा पछताये ॥

शिवकुमार त्रिपाठी

जीवनोनन्द ।

यदि पूछा जाय कि जीवन का सुख क्या वस्तु है और वह कहाँ है तो प्रत्येक मनुष्य प्रायः पृथक् पृथक् उत्तर देगा । सृष्टि में प्रत्येक जीवधारी अपने अपने मतानुसार एवं शक्त्यनुसार सुख की सामग्री के सङ्ग्रह करने में संलग्न पाया जायगा । जो जिस धुन में लगा है वह उसी क्षेत्र में, कार्य्य-सफलता प्राप्त करने में, सुख समझता है—कोई लौकिक, कोई पारलौकिक, कोई शारीरिक, कोई मानसिक विषयों में, और कोई नीति (Politics), कोई न्याय, कोई स्वार्थ, कोई परार्थ, कोई भोग-विलास, कोई वैराग्य इत्यादि में । यों तो अपनी अपनी धुन में सब ही मस्त हैं, पर प्रश्न यह

है कि क्या कोई भी मनुष्य कभी सफल-मनोरथ हुआ है, अथवा किसीने भी अपना आदर्श आनन्द प्राप्त किया है? यदि पौराणिक आख्यायिकाओं को सर्वमान्य न समझ एक ओर रख दें तो उत्तर में प्रायः प्रत्येक मुख से नकार ही निकलेगा। कारण यह है कि जिसका जितना बल, बुद्धि एवं विभव है आनन्द का अर्थ एवं सीमा भी उसकी उतनी ही गहन तथा विस्तृत होती चली जाती है, अर्थात् ज्यों ज्यों सुख की सीमा तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है त्यों त्यों वह वृहदाकार, दुर्गम और दुष्प्राप्य प्रतीत होती जाती है, इसीलिए किसीने कह भी डाला है "सब तें भल हैं मूढ़, जिनहिं न व्यापै जगत-गति"; किन्तु यह उत्तर सन्तोषप्रद नहीं है। यह उत्तर भी उसी प्रकार है जैसे कोई गणित का विद्यार्थी किसी प्रश्न को हल न कर पाने पर, उसमें ग़लती का दोष लगा उस पुस्तक को दियासलाई दिखाने को उद्यत हो जाय, अथवा यों समझिए कि कोई मनुष्य संसार-कर्मक्षेत्र में सफलता न पाने से आत्महत्या का प्रबन्ध करने लगे। अस्तु।

दरिद्री एवं लोभी के विचार से अतुल धन के सञ्चय ही में सुख है, और कहते भी हैं—"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति"। संसार में अगणित लक्षाधीश और कोट्यधीश धनाढ्य पुरुष पड़े हैं और अनेक ऐतिहासिक जगत्-प्रसिद्ध पुरुष हो चुके हैं जिनके पास असंख्य धन होने पर भी वे सुखी न थे और यावज्जीवन उनकी धन की पिपासा परितृप्त न हुई तथा धनाभाव का कष्ट उन्हें सन्ताप ही देता रहा। इससे सिद्ध है कि धन जीवन का सुख नहीं है। एक समय चोरों ने किसी एक धनाढ्य का समस्त द्रव्य अपहरण कर लिया और वह नितान्त अकिञ्चन रह गया; इस दशा में वह जाकर भूमि में लोट गया और बड़ा ही प्रसन्न हुआ। धन-रक्षा के अनेक सङ्कटों और विपुल सामग्री के सञ्चय के झञ्झटों से अपने को मुक्त जान, वह प्रफुल्ल-वदन हो कहने लगा कि मैं आज स्वतन्त्र हुआ और फिर वह निर्धनता ही में आनन्द-भोग करने लगा!

कतिपय महाशयों का यह कथन होगा कि सुख वास्तव में मणिरत्न-जटित मुकुटधारी शीश ही को प्राप्त हैं, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता जिनकी परिचारिका हैं। इँग्लेंड के महाराज हेनरी ने एक समय एक मलिन-वस्त्रधारी मिल के कुली को देखा जो दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद नदी-तट पर आनन्द में मग्न हो, गाता हुआ अपने घर जा रहा था। महाराज को बड़ा आश्चर्य्य हुआ और उसको अपने राजसिंहासन के निकट बुलाकर कहा कि तू एक ग़रीब कुली होने पर भी इतना सुखी है, और मैं इँग्लेंड का महाराज होने पर भी इतना सुखी नहीं हूँ! फिर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि कुली का आनन्द हमारे हृदय में पहुँचे।

"हरच बादा बाद, मा किश्ती दर आब अन्दाख़्तेम। अलविदाओ, अलविदाओ, अलविदा।" शाहंशाही जीवन-यात्रा के ये अन्तिम वचन हैं, जिनसे पश्चात्ताप टपक रहा है। हिन्दुओं में तो ऐसे अनेक चक्रवर्ती हुए हैं जिनको अपने राजत्व-काल ही में यह भूल अनुभूत हो गई हैं। महात्मा बुद्ध सरीखे बहुतेरे ऐसे प्रतिभावान् इस भारतभूमि में हो चुके हैं जिनको राज्य दुःखद था और जिन्होंने मुकुट-मणिमाल तृणवत् तिरस्कृत कर दिया। दूर का देखनेवाला उस चिन्ता का अनुमान तब तक नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं उसका भुक्त-भोगी नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि छत्रधारी होने से आनन्द की पूर्ति नहीं होती, वरन चिन्ताओं की घटायें सघन घिरी रहती हैं। इसकी सजीव उपमा क़ैसर से दी जा सकती है जिसके चिन्ता-दग्ध हृदय का विरले ही अनुमान कर सकते हैं।

बहुधा यह कहा जाता है कि राज्य में चाहे सदैव

सुख न भी मिले, किन्तु ग़रीबी में केवल दुःख ही दुःख हैं, इसलिए राजपद वाञ्छनीय है। यह एक मानी हुई बात है कि ग़रीबी बुरी है, पर यह कथन सर्वथा मान्य नहीं है कि ग़रीबी में आनन्द नहीं है।

कुली का दृष्टान्त अभी दिया गया है। साधारण जीवन में भी बहुधा ऐसे दृष्टान्त दृष्टिगत होते हैं। सड़क से कुछ दूर हटकर शहर के बाहर भङ्गी का एक झोपड़ा था, उसमें वह और उसकी स्त्री, केवल दो प्राणी रहा करते थे और वे अत्यन्त ग़रीब थे। ऐसी दशा में सुख का ठिकाना कहाँ और ऐसे कुत्सित स्थान में रहना कौन पसन्द करेगा? किन्तु नहीं। दिन भर के घृणित कर्म करने के बाद और कठिन परिश्रम से उपार्जित उच्छिष्ट भोजन पाने के बाद वे दोनों दो-चार कौड़ियों का तेल जलाकर अपने ग्रामीण सङ्गीत में मग्न होते थे। उसी धीमी, दीपक-ज्योति में बैठ पुरुष एक साधारण तार-वाद्य बजाता था और उसकी युवती स्त्री गान करती थी। भले भले आदमी जो सन्ध्या को उस सड़क पर बड़ी सज-धज से हवा खाने जाते थे बहुधा उस दाम्पत्य-सुख को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे। और वास्तव में क्या उस जोड़ी के उस समय के सुख के सामने एक साम्राज्य तुच्छ नहीं है? नांदनिवासी फिलासफर डायोजनीज़ (Philosopher, Diogenis) को तेजस्वी चक्रवर्ती आश्चर्य्य एवं ईर्ष्या से देखते थे।

यदि यह कहा जाय कि सुख वास्तव में त्याग तथा वैराग्य में है—

न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिद् न सुखं चक्रवर्त्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥

तो फ़क़ीरी में ज़िन्दगी का मज़ा कहाँ? "तुलसी वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जायँ"। संन्यासी लोग अपना दाह-कर्म वैराग्य लेने के पहले ही कर चुकते हैं। क़ानून की दृष्टि से वे सामाजिक (Civilly dead) मृतक हैं। विरक्तता में जीवनानन्द कहाँ, पर यह बात लेख के विषय के बाहर है।

वेदान्त की (Philosophical) दृष्टि से सुख-दुःख कोई वस्तु ही नहीं है, वरन् एक कल्पना-मात्र है। ठीक है; किन्तु यहाँ प्रश्न तो यह है कि सुख (जिसे किसी न किसी प्रकार सब सांसारिक मनुष्य मानते हैं वह वस्तु) कहाँ है? सुख और दुःख के अस्तित्व (existence) पर विचार करना इस लेख के बाहर का विषय है, अतः यह वेदान्त का उत्तर पर्य्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसे वेदान्त के उत्तरों से शान्ति नहीं होती—क्षुधातुर को भोजन मिलने से ही तुष्टि प्राप्त होती है, "मनमोदक नहिं भूख बुझाई।" मनमोदकों से बहुधा क्षुधा की पीड़ा में तीव्रता होती जाती है—

Boling.—

O, who can hold a fire in his hand
By thinking on the frosty Caucasus?
Or wallow naked in December snow
By thinking on fantastic summer's heat?
O, No! the apprehension of the good
Gives but the greater feeling to the worse:
Fell sorrow's tooth doth never rankle more
Than when he bites, but lanceth not the sore.

—Richard II Shakes.

अर्थात् पाले का विचार करके अपने हाथ में आग कौन रखता है अथवा ग्रीष्म की भयङ्कर उष्णता के ध्यान में मग्न होकर ठंडी बर्फ़ में कौन लोटता है? भलाई का विचार करने पर बुराई का भाव और भी प्रबल होता है। दुःख-रूपी दाँत का घाव उसके काटने पर और भी बढ़ता है, अच्छा नहीं होता।

तब भोग-विलास (Eat, drink and be merry) को जीवन का सुख क्यों न मानें जो जीव-मात्र में स्वाभाविक है?

केचिद् वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु
केचिद् वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्बीर-नीर-परिपूरित-मत्स्यखण्डे ॥

इस चार्वाक नीति का सभ्य समाज कहाँ तक मान कर सकता है, पाठक इसका स्वयं अनुमान कर लें। मनुष्यत्व से पाशविक आचार में अवतीर्ण होना कहाँ तक नीति-सङ्गत है, इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ा जाता है। प्रकृति (Nature) स्वयं बतलाती है कि इसमें जीवन का आनन्द किस प्रकार है। भोगोपरान्त आत्मिक खिन्नता (Seediness after debauch) प्रत्येक पद पर आगामी दुःख का अनुभव देती रहती है। उस सुख की अस्थिरता उसके भ्रम का एक दूसरा प्रमाण है—

भोगाः क्षणेनैव वियोगरोगा
विभूतयः स्वप्नविवाहतुल्याः।
वाताहता दीपशिखा सुखश्री-
रुन्मत्तनृत्यं भुवि वृत्तमेतत् ॥

जीवनानन्द के आगमन (Induction) की मीमांसा में शायद मूल का पता लगेगा। भय, दुःख एवं कष्ट से दूर रहना कहाँ तक सुख है? दुःख के अभाव तथा न्यूनता ही में सुख का आभास और आधिक्य है। कहावत है कि न दौड़के चले, न गिरने का भय हो। यदि रोग के भय से कुपथ्य का बचाव किया जाय तो (निघण्टु देखने से पता चलता है कि) मूँग की दाल और परवर की तरकारी भी कठिनता से निर्विकार प्रतीत होगी। सृष्टि के अगणित भक्ष्य पदार्थों से वञ्चित रह भला कितने पाठक उक्त भोजन से यावज्जीवन निर्वाह करने को सुख मानेंगे? परहेज़गारों को ज़िन्दगी का मज़ा कहाँ तक मिलता है? यदि वैद्यक-नियमों का ठीक ठीक प्रतिपालन किया जाय तो घर से बाहर निकलना एक कटक सजने से भी कठिनतर है, क्योंकि भीतर से बाहर के तापमान (Temperature) में बहुत अन्तर होता है और एक तापमान (temperature) से न्यूनाधिक तापमान में प्रवेश करना हानिकारक है। अतः मनुष्य क्रमशः ऐसे कमरों में ठहरता ठहरता बाहर आवे जिनका टेम्परेचर (तापमान) उत्तरोत्तर प्रायः एक ही सा हो। कमरों की सामग्री एवं वस्त्रादि भी उसी नियमानुसार होने चाहिए। अनुमान कीजिए कि एक पथिक जब कि

"वृष को तरनि तेज सहसौ किरनि तपै
ज्वालनि को जाल विकराल बरसत है।
तचति धरनि जगु झुरतु झुरनि सीरी
× × धमका विषम जो न पात खरकत है। × ×"

ग्रीष्म की उद्दण्डता से व्याकुल स्वेदच्युत शरीर किसी एक सघनाच्छादित झरने के निकट अनायास पहुँच जाता है। यहाँ तापमान में एक दम कितना परिवर्त्तन होता है! शनैः शनैः उष्णता में प्रवेश करनेवाला तथा इस झरने के पास आनेवाला इन दो पथिकों में से सुख किसे मिला; जीवन के आनन्द का अनुभव किसे हुआ?

इसी प्रकार दौड़कर न चलनेवाले की कहावत भी है। ऐसे सिद्धान्तियों के लिए घोड़े-हाथी की सवारी एक बड़ा दुस्साहस है; बाइसिकिल, मोटर, रेल का तो कहना ही क्या है! एक सज्जन रेल पर न सवार होने की यह दलील रखते थे कि जितनी सवारियाँ हैं सबमें वशीकरण साधन होते हैं, किन्तु यह बेडौल भूताकार एञ्जिन जिसे आँकुस या चाबुक की कुछ भी परवा नहीं, यदि बे-मार्ग होजाय तो जहाँ चाहे वहीं डाल दे, न रस्सी है न लगाम! वह तो भय से इतनी दूर भागता था, किन्तु रेल के चढ़नेवाले उसे विक्षिप्त-चित्त बतलाकर रेल आने पर प्रसन्नतापूर्वक उस पर चढ़कर चले जाते थे।

इसी प्रकार जल-यान और वायु-यान के यात्रियों का भय है। उसका आनन्द उन्हीं का चित्त जानता है।

भय से भयभीत होकर भागनेवालों ही का भय

श्रीयुत रमेन्द्र महादेव जोशी, एम० ए०, एल-एल० बी०, बी० एस-सी०।

श्रीयुत गुरुमुखसिंह, एम० एस-सी०।
(श्रीयुत सन्त निहालसिंह जी के छोटे भाई)

(पृष्ठ ५३)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पीछा करता है, भय से भिड़नेवाले को जीवन के आनन्द का अनुभव होता है।

दूर ही से देखने में मालूम होता है कि साहसी लोग भय से पीड़ित नहीं होते। ज्वालामुखी-शिखर-निवासियों का ख़याल कीजिए जो काल का ग्रास बने बैठे हैं; फिर भी वे समथल-निवासियों की भाँति गाने-बजाने, शादी-विवाहादि कर्मों में मग्न रहते हैं।

कष्ट की पराकाष्ठा मृत्यु है। शूर सामन्त साक्षात् मृत्यु के विकराल वदन को पद-दलित करता हुआ किस आमोद से समर-भूमि में अवतीर्ण होता है! तकलीफ़ में भी एक तरह का मज़ा मिलता है। हिलते हुए दाँत में छूने से भी पीड़ा होने लगती है, फिर भी जीभ और हाथ निरन्तर उसको छेड़ा ही करते हैं, क्योंकि यह सुखद दुःख है! "मीठा" "मीठा" दर्द कहते भी तो हैं—दर्द में भी मिठास है! बहुधा वयस्क पुरुष जब बालकों को साधुता के उपदेश देते हैं तब वे अपनी उस अवस्था को भूल जाते हैं और उनके नवीन रक्त का भी विचार नहीं रखते। यदि कष्ट से यथार्थ भय हो तो शायद बालक कभी पुरुष ही न हों। बालक यदि गिरने का भय करे तो कभी भी खड़ा होना और चलना न सीख सके। गिरने के कष्ट पर वह कुछ भी ध्यान न देकर बारम्बार चलने और खड़े होने का प्रयत्न करता ही रहता है। यदि उसे आनन्द नहीं मिलता तो वह सानन्द उसमें क्यों संलग्न रहता है?

संसार की विद्या, बुद्धि, बल, विभव, वसुधा एवं सभ्यता इसी साहस के फल-स्वरूप हैं, जिनको प्रारम्भिक दशा में लोग बहुधा बेवक़ूफ़ी, नातजर्बेकारी, गँवारपन इत्यादि नामों से अभिहित करते हैं। सच्चा सुख इन्हीं साहस-कर्मियों को मिलता है और इन्हीं का गौरव और अस्तित्व सदा रहा है और रहेगा।

सुख पाने की इच्छा में दुःख से दूर भागना अनुचित ही नहीं, बरन शरीरधारी के लिए असम्भव भी है। समदृष्टि से देखिए तो रणरङ्ग और रसरङ्ग में बराबर साहस है। षट्रस व्यञ्जन बड़े आनन्द से लोग खाते हैं, परन्तु उस समय यह विचार नहीं करते कि प्रत्येक ग्रास जो उदर में जा रहा है, असंख्य रोगों का कारण हो सकता है, शरीर का रोम रोम अनन्त दुःखों का आश्रयदाता हो सकता है, प्रत्येक जोड़ वज्र का काम कर सकता है। ये नसें माइन्स (Mines) की भाँति शरीर में फैली हुई हैं। "शरीरं व्याधिमन्दिरम्।"

वास्तव में कष्ट का भय करना कादरता तथा अकर्मण्यता ही नहीं है बरन जीवन के सुख से वञ्चित रहना भी है। कर्मण्यता ही में जीवन का आनन्द है। शय्या का सुख उन्हीं को है जिन्होंने कठिन परिश्रम किया है। भोजन का स्वाद उन्हीं को है जिन्होंने क्षुधा की पीड़ा सहन की है।

मुहकमा-बेकारी के एक सज्जन से, जो सुखद शय्या पर करवटें बदल रहे थे, एक महाशय ने पूछा कि आपको किसमें आनन्द है? उत्तर मिला कि मुझे तो इसी में आनन्द मालूम होता है कि पलँग पर चारों ओर मुलायम तकिये लगे हों और पङ्खा खिँचता हो, मुझे कोई काम न करना हो और मैं कभी दाहने, कभी बाएँ, घूम घूमकर नींद के खर्राटे लिया करूँ। विचार देखिए तो उक्त सज्जन नींद का सुख उठा नहीं रहे हैं, किन्तु दोनों हाथों फेंक रहे हैं। अकर्मण्यता में आनन्द का आभास है, किन्तु आनन्द के ह्रास का आनन्द है न कि सञ्चय का। यह वैसा ही आनन्द है जैसा नीरो (Nero) ने अपनी राजधानी में आग लगवाकर आग लगने का कौतुक देखकर प्राप्त किया था।

चेतनता (Activity) ही जीव का लक्षण है, जड़ पदार्थ (Inanimate) ही निष्कर्म रह सकते हैं। जीव में शक्ति (Energy) होती है और शक्ति का स्वभाव चेतनता (Activity) है और चेतनता ही का दूसरा नाम कर्मण्यता है। इसीलिए

अकर्मण्यता प्रकृति-विरुद्ध (Unnatural) है, अतएव दुःखद है। कर्मण्यता स्वाभाविक (Natural) एवम् सुखद है।

बेकारी को ह्रास की मूर्ति समझकर किसीने कहा है :—

"बेकार मबाश कुछ किया कर,
कपड़े उधेड़ उधेड़ सिया कर।"

तथा च

"बैठा बनिया क्या करे,
इस कोठे का धान उस कोठे में धरे।"

गीता का उपदेश-सार कर्मण्यता ही है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

संसार के यावत् विषय जिनमें मनुष्य संलग्न हैं, सबमें सुख की प्रतिभा है। आनन्द का आभास ही मनुष्य को कार्य-तत्परता से हटने नहीं देता। राजा और रङ्क सब ही अपनी धुन में मस्त हैं। विलासी और विरक्त दोनों सुख मान रहे हैं; कर्मण्यता दोनों में है। वास्तव में सुख कर्मण्यता का है, क्योंकि विलासिता और विरक्तता में विरोध है। अतः दोनों का फल एक नहीं हो सकता। हाँ, यह सत्य है कि कर्मण्यता का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों हो सकते हैं, जैसे कि प्रत्येक वस्तु के होते हैं। किन्तु उसकी दुरुपयोगिता एवं सदुपयोगिता का निर्णय इस निबन्ध के बाहर है, किसी अन्य स्थल पर इसका विचार किया जायगा। इतना अवश्य है कि जो जितना ही अधिक कर्मवीर है उसके जीवनानन्द की मात्रा या डिग्री भी उतनी ही अधिक है—"जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ"। बालक को बैठने से खड़े होने में विशेष आनन्द आता है। चलने में खड़े होने और चलने दोनों का आनन्द मिलता है। दौड़ने में खड़े होने, चलने एवं दौड़ने तीनों का सुख होता है। इसी प्रकार अश्वारोही के सुख का दर्जा इनसे भी बड़ा है। यही तर्क सर्व-सिद्ध है। आनन्द का आभास इसी प्रकार मनुष्य को आगे लेता जाता है और ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता जाता है त्यों त्यों सुख की सीमा विस्तृत तथा विशद होती जाती है। अकर्मण्यता में यह बात नहीं।

सुख कोई पदार्थ नहीं है जो सञ्चित किया जाय, न कर्मण्यता कोई बीज ही है जो बोया जाय। जैसा कर्म वैसा फल, यह बात दूसरी है। यह सदुपयोग और दुरुपयोग की मीमांसा है। जीवन का स्वाभाविक गुण कर्मण्यता है और कर्मण्यता का अनुचर जीवनानन्द है। जीव में जीवन निरन्तर है और जीवन के साथ कर्मण्यता लगी हुई है, सुतराम् जीवन के प्रत्येक क्षण में उसका अनुभव हुआ करता है, जैसे झूले का झूलनेवाला प्रत्येक झोंके में झूलने का आनन्द पाता है और जब तक झूलता रहता है उसका अनुभव करता रहता है। पटली से उतरने के बाद उसे आनन्द का ढेर लूटने को नहीं मिलता।

चन्द्रमनोहर मिश्र, बी० ए०, एल०-एल० बी०

देवोत्तर का इतिहास।*

हिन्दू देवालय और धर्माश्रमों की उत्पत्ति और परिवर्त्तन।

कुछ लोगों का ख़याल है कि धर्म ही से भारत का फिर उद्धार होगा। धर्म की जड़ यहाँ गहरी जमी है। जब उसकी शाखाएँ हरी-भरी होकर शुद्ध रूप से फैलेंगी तब वह एक बार दिग्विजय करने के लिए फिर समर्थ हो जायगा। इस मति के समर्थन में स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द के जीवन का उदाहरण दिया जाता है; और कहा जाता है कि अमेरिका

---

* टेगोर ला लेक्चर १९०४ (Tagore Law Lectures, 1904) के आधार पर। जो विचार अनुवाद मात्र हैं उनका उत्तरदाता लेखक नहीं है।

ऐसे दूर देश में भी यहां के वेदान्त का प्रचार होना सम्भव है। दूसरा मत इसका बिलकुल विरोधी है। इसके अनुसार धर्म की दुहाई बहुत हो चुकी, धर्म ही ने भारत को चौपट किया और अब भी अधोगति को ले जा रहा है। पोप-लीला बहुत हो चुकी। महन्त, पण्डों और पुजारियों के दिन गये। धर्म को अब रखिए ताक़ में। दुनिया की दौड़ में हम बहुत पिछड़ गये हैं। अब भी समय है। हमें अपनी आर्थिक, व्यावहारिक और राजनैतिक दशा को सुधारने की फ़िक्र में लगना चाहिए, नहीं तो कहीं के न रह जायँगे। जब जीवन की दशा सुधरेगी तब धर्म अपनी ख़बर अपने आप ले लेगा। यह ख़याल धर्म-शिक्षा-हीन अँगरेज़ी पढ़े हुए लोगों के उस एक दल का है जिसे आधुनिक धर्माधिकारियों की मूर्खता, दुष्कर्म आदि से अश्रद्धा हो गई है और जो विलायती देशों की उन्नत आर्थिक दशा की चकाचौंध में पड़ा है और वैसी ही दशा प्राप्त करने की फ़िक्र में है। मालूम नहीं कि भारत दुनिया का धर्म-गुरु कभी बनेगा या नहीं, पर इसमें सन्देह नहीं कि धर्म की अवहेलना करना कदापि ठीक नहीं। किसी एक अङ्ग की कमज़ोरी से शरीर पर उसका असर पड़ता है। भारत में धर्म प्रधान रहा है। उसका तिरस्कार करके पूर्ण उन्नति होना अभी असम्भव सा प्रतीत होता है।

हम आज कैसे और क्या हैं, इसे समझने के लिए हमें अपनी पूर्व दशा देखनी चाहिए और हमें क्या बनना मंज़ूर है, इस प्रश्न को सफलता से हल करने के लिए हमें अपनी भूत और वर्त्तमान, दोनों अवस्थाओं पर विचार करना उचित है। यह धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सब दशाओं के लिए कहा जा सकता है। कुछ भी हो हम अपने इतिहास की विस्मृति पूर्णतया कभी नहीं कर सकते। हमारे रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान और नस नस में पुरातन अवस्था की छाया मौजूद है। हम जानें या न जानें, बीते हुए ज़माने का असर हममें पाया जाता है। इस सिद्धान्त को जानते हुए हमारा विचार है कि हिन्दू-शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले दानालय और धर्मालयों की उत्पत्ति से लेकर आज-कल तक की दशा का हाल संक्षेप से दें। यह ऐतिहासिकों का क्षेत्र है। देश की दशा सुधारनेवालों के लिए भी इस विषय में सामग्री मिलेगी, और आशा है कि सर्वसाधारण का विनोद भी होगा।

दान की ओर हमारे देश में सदा रुचि रही है। हीन दशा में प्राप्त होकर भी भारतवासी कोई व्यक्ति अपने चित्त के अनुसार दानशाली होने में शायद किसीसे पीछे न पाया जायगा। यह दूसरी बात है कि हमारा दान अब पूर्ण रूप से लाभकारी न हो और बहुधा सन्मार्ग में लगाये जाने से भी वञ्चित रहे।

अधिकतर महन्त, पुजारी और पण्डों में शिक्षा और ज्ञान की हीनता होने से मठ, शिवालय और तीर्थ-स्थान अब वह उपयोगी कर्म नहीं कर सकते जिसके लिए उनकी स्थापना हुई थी। देश-नेताओं का कर्त्तव्य उनकी स्थिति सुधारना है। केवल दोषारोपण करने या दोषों की ओर पीठ फेर देने से उनका नाश नहीं होगा। सुमार्ग में लाये जाने पर धर्मालय और दानालयों से बड़ा उपयोगी कार्य्य-साधन हो सकता है। संन्यासी और पण्डे लोग यदि अपने कर्त्तव्य का पालन ठीक तरह से करने लगें तो जनता की मानसिक और धार्मिक दशा बहुत उन्नत हो सकती है।

पता लगता है कि वैदिक-काल में जो देवताओं के निमित्त देना होता था उसे अग्नि में डालते थे। जब अग्नि-पूजा कम हुई तब मूर्त्ति-स्थापना और शिवालय बनने आरम्भ हुए। बुद्ध के समय से संन्यासियों का माहात्म्य बढ़ा। तभी पहली बार उनके लिए आश्रम बने। विद्या और ज्ञान से हीन होने पर जब बौद्ध-संन्यासियों की दशा अवनत हो गई, तब शङ्कराचार्य्य ने हिन्दू-धर्म का पुनर्जीवन-संस्कार किया। उनके शिष्य दस नामी संन्यासी हुए और देश में अनेक मठ खुले। बाद में मतमतान्तर के अनुसार वैष्णव, रामानुजी, रामानन्दी, कबीरपन्थी, नानकपन्थी, दादूपन्थी आदि बहुत से मठ खुले। साथ ही साथ मन्दिर स्थापित हुए। उनमें पुराणों के अनुसार आचार्य्य आदि पूजक-मण्डली नियुक्त की गई। मन्दिरों और मठों के बनाने पर भक्त और श्रद्धावान् धनी राजा महाराजाओं ने उनके सञ्चालन और सहायता के लिए धन और भूमि दी। समय के हेर-फेर से स्थापन-कर्त्ताओं का अधिकार घटा; असली आदर्श भूल गया; सामयिक अधिष्ठाता मठ और मन्दिरों के एक प्रकार के स्वामी बन बैठे। चेले और

लड़कों को पुश्त-दर-पुश्त आश्रम और शिवालयों का अधिकार मिलता गया। धन उपार्जन करने और गद्दीनशीनी के सामने धर्मालय और दानालयों का सच्चा उद्देश उन लोगों की आँखों से छिप-सा गया। देव-निमित्त और ज्ञान-प्रसारण के वास्ते जो सम्पत्ति दी गई थी उसे मन्दिराधिकारी अपनी बपौती मानने लगे और महन्त महाराजाओं की बराबरी करने को उद्यत हुए। जो सांसारिक वस्तुओं को छोड़कर गेरुए वस्त्र धारण करने का तात्पर्य्य समझता है उसे संन्यास धारण करने के उपरान्त, महन्त होने पर भी, धनी और भूमि-पति बनने से अपने को गौरवान्वित न मानना चाहिए।

इस लेख में देवोत्तर संज्ञा से मन्दिर, मठ आदि सब धर्म और दान-सम्बन्धी स्थानों का बोध होता है। इस अर्थ में कचहरीवाले भी इस शब्द का प्रयोग करते हैं। अँगरेज़ी जज और बैरिस्टरों के सम्पर्क से देवोत्तर अब ट्रस्ट (Trust) समझा जाता है। हमारे न्यायालयों के वकील और जज देवोत्तर को इसी दृष्टि से देखते और मानते हैं। ट्रस्ट का सरल अर्थ विश्वास है। क़ानूनी मतलब उसका यह है कि जायदाद विश्वास पर छोड़ दी जाती है। जो विश्वस्त अर्थात् ट्रस्टी होता है उसको कार्य्य-विशेष सम्पादन करने और देख-भाल करने का भार सौंपा जाता है। जिस व्यक्ति या मण्डली को लाभ पहुँचता है वह Beneficiary या भोक्ता कही जाती है। धन समर्पण करनेवाला (cestui-que trust) या ट्रस्ट क़ायम करनेवाला कहलाता है। महन्त और पुजारी की (जो शिवैत भी कहलाते हैं) स्थिति ट्रस्टी (विश्वस्त) की सी है। उन पर यह भार रहता है कि देवालय और मठ का प्रबन्ध उचित रूप से होता रहे। उनके विश्वास पर धार्मिक कार्य्य सम्पादन होता है और होना चाहिए। देवमूर्ति जो क़ानूनी निगाह से मनुष्य-तुल्य समझी जाती है भोक्ता है। संन्यासी मण्डली का भरण-पोषण, मत-विशेष का रक्षण और मठ के प्रबन्ध का भार महन्त के ऊपर है। ज्ञान, विद्या, धर्म की समुचित वृद्धि, दान और दीन दुःखी प्राणी की सहायता भी यदि देवोत्तर प्रबन्धकर्त्ता अपना कार्य्य समझने लगें तो अति उत्तम हो। शिवैत और संन्यासियों में विद्या-प्रचार की आवश्यकता है। विद्वान् होकर वे अपना कर्तव्य समझने लगेंगे। किसी समय ब्राह्मणों ने सब देवोत्तर अपने उपकारार्थ बना लिया था।

देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दत्त्वा च दक्षिणाम् ।
तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत् ॥

परन्तु वास्तव में प्राणि-मात्र को उससे लाभ होना उचित है। धर्म-शाला, सदावर्त, औषधालय, अनाथालय, पाठशालाएँ, आदि लोकोपकारी स्थान सब देवोत्तर धन से स्थापित होने चाहिए।

अथ य एतदेवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु चापत्सु हुतं भवति ।
यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्य्युपासते ।
एवं सर्वाणि भूतानि अग्निहोत्रमुपासते ॥ इत्यग्निहोत्रमुपासत । इति ।

वैदिक-काल के यज्ञ—अग्नि-समर्पण ।

बहुत प्राचीन काल में हमारे पूर्व पुरुष पूजन के लिए मूर्ति की स्थापना नहीं करते थे। वैदिक समय में याग या यज्ञ हुआ करता था। उसमें अग्नि द्वारा जीव, खाद्य पदार्थ, घी और सोम की बलि हुआ करती थी; अग्नि की पूजा हर समय होती थी, सन्तानोत्पत्ति में, विवाह और मृत्यु में। वेदों में बहुत से देवताओं का वर्णन है। इन्द्र, मित्र, वरुण, रुद्र आदि। उन सबको बलि दी जाती थी। परन्तु बलि सदैव अग्नि-द्वारा ही दी जाती थी। अग्नि को इसी कारण हुतवाह कहा है।

वैदिक धर्म आज-कल के धर्म से बहुत भिन्न था। सबसे प्रधान देवता अग्नि समझा जाता था। अग्नि की प्रशंसा में जिन मन्त्रों का प्रयोग हुआ है उनसे यह ज्ञात होता है कि उसकी पदवी मनुष्य और देवताओं के बीच दूत की सी थी। वह अपनी ज्वाला से दूर से दूर स्थित देवता को भी हवन में बुला सकने की सामर्थ्य रखनेवाला समझा जाता था। विशेषतः अग्नि देवता की पूजा इस दुनिया की हवन करनेवाली आग के रूप में की जाती थी। अग्नि से उतरता दरजा इन्द्र का था। इन्द्र वह बलवान् देवता है जो अपने वज्र से काले बादलों को हटा देता है; जिसके द्वारा स्वर्ग की किरणें और जल पृथ्वी में उतरने योग्य हो जाते हैं और जिससे पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। प्रातःकाल की भी स्तुति की

गई है। सूर्योदय और सूर्यास्त की तुलना सुन्दर कुमारियों से की गई है। बलवान् किरण-युक्त सूर्य्य की भी कई प्रकार से प्रशंसा गाई गई है—अर्थात् वह रात्रि के कालेपन को जीतनेवाला और प्रकाश तथा गर्मी देनेवाला है, जिससे बीज और भेड़ों की वृद्धि होती है। मरुत् अर्थात हवा का भी वर्णन है। रुद्र वह भयानक देवता है जो बड़े बड़े तूफ़ानों का राजा है। वेदों में और भी देवताओं का नाम आता है। उनमें कुल तेंतीस देवताओं का वर्णन है, जिनमें सबसे प्रधान अग्नि, इन्द्र और सूर्य्य हैं। बढ़ते बढ़ते तीन के तेंतीस हुए, तेंतीस के तेंतीस करोड़ हो गये! वेद में शिव, महादेव, दुर्गा, काली, राम, कृष्ण का नाम कहीं नहीं आता। रुद्र बाद को शिव समझे जाने लगे। वेद में रुद्र का वर्णन हवा के पिता के रूप में किया गया है। वैदिक समय में पूजन-विधि भी आज-कल से न्यारी थी। ऋचाओं में पूजन-विधि के तीन रूप हैं—प्रदान, प्रार्थना, प्रशंसा। प्रदान बलि देने को कहते थे अर्थात् अग्नि में घृत छोड़ा जाता था। बुलाये हुए देवताओं को सोमरस भेंट किया जाता था। कभी वह अग्नि में छिड़का जाता था, कभी पृथ्वी पर, कभी कुश पर। जो बचता था उसे होता लोग पी डालते थे। स्थान पूजा करनेवाले का घर हुआ करता था। एक कोठरी में आग हमेशा क़ायम रक्खी जाती थी। किसी मन्दिर या पूजा करने के स्थान का वर्णन कहीं नहीं है। पूजा घरेलू वस्तु थी। पूजा करनेवाले अर्थात् यजमान को उस विधि में स्वयं सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं थी। पूजा करनेवाले लोगों की संख्या कभी सात, कभी सोलह बतलाई गई है। वे लोग मन्त्र पढ़ते थे और भिन्न भिन्न क्रियाओं को पूर्ण करते थे। ऋचाओं को दुहराते थे। कभी कभी पशुओं की बलि भी दी जाती थी। साधारण बलि के लिए बहुधा घृत और सोमरस का प्रयोग होता था। यद्यपि वैदिक पूजा में अग्नि और प्राकृतिक वस्तुओं का आराधन घरेलू था, तथापि उसी समय से पुरोहितों की परिपाटी की जड़ जम गई थी। अग्नि देवता के लिए मन्दिर बनाने की आवश्यकता नहीं थी। प्रतिदिन के साधारण हवन घर ही में हो जाते थे। उनकी सादगी के कारण पुरोहित की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। यजमान के घर के एक अलग हिस्से में अग्नि की स्थापना की जाती थी। बड़े बड़े यज्ञों में जो यज्ञशाला बनती थी वह भी अस्थायी रहती थी। वैदिक समय में समाज की अवस्था किसानों और गड़रियों की सी थी। ऋचाओं में ग्राम शब्द का प्रयोग हुआ है और एक जगह यह वर्णन है कि इन्द्र ने पत्थर के बने १०० नगरों को उजाड़ दिया। दूसरी जगह लोहे के नगरों का और क़िलों का भी वर्णन है और ईंटों का वर्णन भी मिलता है जो वेदी बनाने के काम में आती थीं। इससे कहा जा सकता है कि यदि वैदिक समय के लोग मन्दिर बनाना चाहते तो बना सकते थे, परन्तु उनकी पूजा-विधि ऐसी थी कि इन इमारतों के बनाने की उनको आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

पण्डितों में इस बात पर मत-भेद है कि वैदिक समय में मूर्ति की स्थापना होती थी या नहीं। अधिकतर विद्वानों की राय है कि वैदिक काल के पश्चात् मूर्त्ति-रचना होने लगी। रामायण में अग्निहोत्र का वर्णन है, मूर्त्तिपूजा का नहीं। गौतम बुद्ध के शिष्यों में से कश्यप के बारे में कहा जाता है कि जब उन्होंने बौद्धमत स्वीकार किया तब अग्नि-पूजन के बरतन फेंके, मूर्त्ति नहीं। बौद्ध-मत के प्रचार के साथ साथ अग्निपूजा की कमी होने लगी। पुराणों के अनुसार बौद्ध-मत से यज्ञों में जीवों का बलिदान होना बन्द हुआ था। जब बौद्ध-धर्म ने तान्त्रिक रूप धारण किया, तब देवी और देवताओं की पूजा होने लगी।

मूर्त्ति-पूजन और मन्दिर-रचना।

यह सम्भव है कि देवताओं की मूर्त्ति और मन्दिर बुद्ध के समय के पहले स्थापित हुए हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक-समय के बहुत दिन बाद। जिस समय लोग यज्ञ किया करते थे उस समय मूर्त्ति और मन्दिरों की स्थापना की आवश्यकता न थी। ज्यों ज्यों अग्नि की पूजा का प्रचार कम हुआ त्यों त्यों मूर्त्ति-पूजा का प्रचार अधिक होने लगा होगा। अग्निहोत्री ख़ाली ब्राह्मण हुआ करते थे। जब दूसरी जातिवाले प्रभावशाली हुए तब उनको पूजा के लिए देवताओं की आवश्यकता हुई। मूर्त्ति-पूजा की उत्पत्ति या तो यहीं की बसी हुई जङ्गली जातियों की नक़ल करके हुई होगी या उस समय की, बाहर से धावा करनेवाली जातियों की देखादेखी सीखी गई होगी। बौद्ध,

बोधिसत्व, चैत्य, स्तूप की नक़ल करके भी हिन्दू-मूर्त्ति और हिन्दू-मन्दिरों की स्थापना अधिकतर बढ़ी होगी । मूर्ति और मन्दिरों को चाहे वैदिक-समयवाले न जानते रहे हों, परन्तु दान करने में तब कमी हरगिज़ नहीं थी । यज्ञों में और विशेष कर अवसरों पर पुरोहितों को सुवर्ण और हज़ारों गायें मिलती थीं और कभी कभी सुन्दर कन्यायें दी जाती थीं । पुरोहित के लिए जो होजाय सो थोड़ा था । गृहस्थ के लिए पञ्चयज्ञ करना आवश्यक धर्म था ।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्म्मणा ॥
[मनु० अ० ३—(८१)]

अर्थात् ऋषियों की पूजा वेद-पाठ करके, देवताओं को होम देकर, पितरों की श्राद्ध करके, मनुष्यों को अन्न देकर और सब जीवों की पूजा बलि देकर करे ।

ग़रीब, लाचार आदमियों की परवरिश करना भी धर्म-कार्य्य समझा जाता था । छान्दोग्य उपनिषद् में अतिथि-शाला का ज़िक्र है । इससे साफ़ ज़ाहिर है कि पुराने ज़माने से ही दान हिन्दू-धर्म का एक अङ्ग समझा गया है ।

इष्ट, पूर्त और योगक्षेम वैदिक-काल से पौराणिक समय तक दानवाचक शब्द थे ।

वेद, स्मृति और पुराणों में इष्ट, पूर्त और योगक्षेम शब्दों का प्रयोग हुआ है । इन शब्दों के अर्थ करने में कुछ मत-भेद है । इष्ट के माने ऐसा कार्य्य करना है जिससे वह भलाई प्राप्त हो जो अभी तक नहीं मिली । और पूर्त का मतलब ऐसा धर्म का काम करना है—जैसा तालाब खुदवाना—जिसके द्वारा जो भलाई मिल चुकी है, क़ायम रहे । योगक्षेम के अर्थ में बहुत मत-भेद है, परन्तु हमारे लिए वह टीका काफ़ी होगी जिसके अनुसार क्षेम का मतलब पूर्त और योग का मतलब इष्ट है ।

क्षेमपूर्त योगमिष्टमित्याहुस्तत्त्वदर्शिनः ।

इष्ट के भीतर ये सब शामिल हैं—अग्निहोत्र, यज्ञ, पशुबन्ध, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, पुरोहितों को दान, तप, सत्य, वेदान्त-पालन, वैश्वदेव, आतिथ्य ।

इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्मास्ये यजेत्तु यः ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्यजेच्च स हि इष्टवान् ॥
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदान्तस्यैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते ॥

पूर्त कार्य्य स्मार्त्त विधि के अनुसार दान और धर्म के कार्य्य हैं । वैदिक-विधि के अनुसार नहीं । पूर्त में वह दान शामिल है जो ग्रहण के समय या और त्यौहारों में दिया जाता है । इसमें तालाब खुदाने, बाग़ लगाने, देवताओं की सवारी निकालने, कुआ, मन्दिर, धर्मशाला बनवाने, ग़रीब रोगी को भोजन और सहायता पहुँचाने के सत्कार्य्य भी शामिल हैं । विद्याप्रचार के लिए जो दान दिये जाते हैं वे यद्यपि पूर्त की संज्ञा में नहीं आते तथापि उनकी स्मृति और पुराणों में बड़ी प्रशंसा है ।

दान चार प्रकार के कहे गये हैं—(१) ध्रुव जो सदैव रहें, जैसे जल इकट्ठा करने के स्थान, आराम अर्थात् सुस्ताने के घर आदि; (२) आह्निक अर्थात् प्रतिदिन का दान; (३) काम्य अर्थात् किसी मतलब से दिया हुआ दान; (४) नैमित्तिक अर्थात् जो किसी त्यौहार या विशेष अवसर पर दिया जाय ।

प्राचीन भारत में दान का बहुत माहात्म्य था । कोई कोई सम्राट् विश्वजित् यज्ञ किया करते थे । उसमें सिवा राज्य के जो कुछ उनके पास होता था सब दे डालते थे । हिन्दू-शास्त्रकारों के अनुसार उनका ज़ाती हक़ राज्य में नहीं होता था । इस कारण उसे वे दान में न दे सकते थे । रघु के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सब कुछ दे डाला और अपने लिए मिट्टी के बर्तन पानी पीने को रख लिये । यही रिवाज बाद तक भी जारी रहा । हर्ष ने भी प्रयाग में गङ्गा-यमुना के संगम पर इसी प्रकार का दान दिया था । बङ्गाल के राजा बल्लालसेन ने एक किताब दानसागर नामक लिखी थी । उसमें तुला की एक विधि बताई है, जिसमें दान-कर्ता एक तरफ़ स्वयं बैठता था और दूसरी तरफ़ हीरा, सोना, जवाहिरात रक्खे जाते थे और फिर ब्राह्मणों को बाँट दिये जाते थे । चन्द्रशेखर ने विवादरत्नाकर में अपने किये हुए तुलादान का वर्णन बड़े शौक़ से किया है ।

धर्मालयों की स्थापना बुद्ध के समय में हुई ।

पहले-पहल बुद्ध ही के समय में मठ, मन्दिर, औषधालय और ख़ैरात-सम्बन्धी दानों का वर्णन है । बौद्ध लोग

मनुष्य और जानवरों तक के लिए शालाएँ बनवाया करते थे। पुराने इतिहास में मनुष्यों और पशुओं के लिए औषधालय बनाये जाने का ज़िक्र है। भारतवासी मन्दिर, चैत्य, स्तूप, पाठशाला आदि स्थापित करने और उनके लिए सदैव की सामग्री एकत्र करने के बड़े शौक़ीन थे। बुद्ध के जीवन में शायद उनके लिए कोई मन्दिर नहीं बना था, परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त बहुत से मन्दिर बन गये जिनमें उनकी मूर्त्तियां रक्खी गईं। जब तान्त्रिक बौद्ध-मत का प्रचार बढ़ा तब बहुत से मन्दिर बोधिसत्वों के लिए, भूत और भविष्य बुद्धों के लिए और दूसरी देवियों के लिए बनाये जाने लगे। इसी कारण हिन्दू भी पूजा के लिए देवता, देवी, गाँव के इष्ट, बीमारियों के भूत, प्रेत, पेड़, पत्थर, साँप आदि की पूजा भी करने लगे। तान्त्रिक मत के अनुसार बौद्ध, वैष्णव और शैव मतों का मेल होकर ऐसा धर्म निकला जिसमें देवता और देवी की पूजा साथ साथ होने लगी। शक्ति या प्रकृति की पूजा पाँचवीं या छठी शताब्दी से शुरू हुई। तान्त्रिक मत ही के बाद से मूर्त्ति-पूजन ने ज़ोर पकड़ा। मूर्त्ति और मन्दिरों की स्थापना के साथ ही साथ इसकी भी आवश्यकता हुई कि उनकी रक्षा के लिए पृथ्वी अर्पण की जाय। केवल पृथ्वी ही नहीं, दासियाँ भी कुछ मूर्त्तियों को अर्पण कर दी जाती थीं। बहुत से शिवालयों में अब तक भी नट-मन्दिर अर्थात् नाचने का कमरा मौजूद है। देवताओं को समर्पण करना पुजारी ब्राह्मणों को सौंपना होता था। ये ब्राह्मण देवल कहलाते थे और इनकी दशा बहुत हीन समझी जाती थी।

दान देने का अधिकार और उसमें रुकावट।

ऋषियों के मन्त्रों के अनुसार पृथ्वी के दान करने का अधिकार किसी हिन्दू को नहीं था, क्योंकि तब यह मत था कि जो पैदा हो चुके हैं और जो पैदा होनेवाले हैं और जो गर्भ में स्थित हैं वे सब अपनी परवरिश चाहते हैं, इसलिए पृथ्वी न दान देनी चाहिए न बेचनी चाहिए।

ये जाता येऽप्यजाताश्च ये च गर्भे व्यवस्थिताः।
वृत्तिञ्च तेऽभिकाङ्क्षन्ति न दानन्न च विक्रयम्॥

परन्तु कुछ दिनों बाद इस क़ायदे की पाबन्दी होने में कठिनता मालूम होने लगी। इसलिए टीकाकारों ने पुराने सूत्रों का अर्थ यह किया कि ख़ानदानी जायदाद का रेहन बय, हिबा आपत्ति-काल में या ख़ानदान की परवरिश के लिए या धार्म्मिक कार्य्य के लिए हो सकता है। धार्म्मिक कार्य्य के लिए जायदाद का इन्तक़ाल उस वक़्त ईजाद किया गया जब कि पुरोहितों की ख़ूब चढ़ती और चलती थी। पुराने सूत्रों के अनुसार पृथ्वी का दान उचित दान ही नहीं है। परन्तु बाद के मन्त्र यह दिखलाते हैं कि ब्राह्मणों को जो पृथ्वी का दान किया जाय वह सबसे बड़ा दान है। बहुत पुराने ज़माने में अपना सर्वस्व मूर्त्ति के अर्पण नहीं किया जा सकता था। एक समय यह ख़याल किया जाता था कि ब्राह्मणों को और देवताओं को जो दान दिया जाता है उससे जन्म भर के पापों का मोचन हो जाता है। इस प्रथा की बुराई यहाँ तक बढ़ी कि ऋषियों को नया क़ायदा बनाना पड़ा।

विक्रयञ्चैव दानञ्च न देयं स्यादनिच्छतः।
दाराः पुत्राश्च सर्व्वस्वमात्मन्येव तु योजयेत्॥
[कात्यायनः]

स्वकुटुम्बाविरोधेन देयो दायः सुताद्दते।
नान्वये सति सर्व्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्॥
[याज्ञवल्क्यः (२—१७५)]

अन्वाहितञ्च निक्षेपः सर्व्वस्वञ्चालये सति।
आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि पण्डितैः॥
[दक्षः]

कात्यायन, याज्ञवल्क्य, और दक्ष आदि ऋषियों के मतानुसार एक समय यह ख़याल किया जाता था कि सर्व्वस्व देय नहीं है और इसी कारण मूर्त्ति को कुल जायदाद का हिबा कर देना नाजायज़ समझा जाता था। परन्तु बाद में ऐसा हिबा भी जायज़ मान लिया गया। स्मृतियों में यह कहा हुआ है कि बीमारी और तकलीफ़ में जो हिबा किया जाता है वह ठीक नहीं है और उसके सिवा जो धार्मिक कार्य्यों में किया गया हो। अब तय हो गया है कि सुकार्य्य के लिए जो हिबा किया जाता है वह जायज़ है। इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि हिबा ऐसे समय पर किया जाय जब आदमी इतना बीमार हो कि उसका मतलब न समझता हो, या वह डर से या धोखे से या और किसी नाजायज़ तरीके से करा लिया जाय, तो उसका कुछ असर

नहीं है। बृहस्पति का कथन है कि क्रोध, डर या लापरवही से या आपत्तिकाल में, पागल या नाबालिग़ से, या नशे में, भयातुर से, या समाज-च्युत मनुष्य से, या बीमारी, शोक, या हँसी में दिया हुआ सब दान नाजायज़ है।

क्रुद्धक्रुष्टप्रमत्तार्त्तबालोन्मत्तभयातुरैः।
मत्तातिवृद्धनिर्धूतैः सम्मूढैः शोकरोगिभिः॥
नर्म्मदत्तं तथैतैर्यद्दत्तं तत् प्रकीर्त्तितम्।

[बृहस्पतिः (२५—६,१०)]

ऋषि लोगों को यह ख़याल था कि पुरोहित लोग मरते हुए आदमी पर बुरा प्रभाव डालकर कभी कभी फ़ायदा उठा लेते हैं, इसलिए उन्होंने यह लिख दिया कि ब्राह्मण की जायदाद को चुरानेवाले आदमियों की चाहे मुक्ति हो जाय, मगर जो बीमारी से सख़्त परेशान हुआ है ऐसे आदमी से दान लेनेवाले का तरना हो ही नहीं सकता।

बहुशो द्विजवित्तानामपि स्तेयं तरिष्यति।
आतुराद्यद् गृहीतन्तु तत् कथं निस्तरिष्यति॥

[ब्रह्मपुराणे]

दानालयों की उत्पत्ति।

प्राचीन काल में दानालयों का वर्णन नहीं है। तब याग या यज्ञ होते थे जिसका मतलब यह समझा जाता था कि किसी वस्तु का दान किया जावे, ताकि वह देवता की हो जाय। पहले कहा जा चुका है कि अग्नि देवता मध्यस्थ हुआ करते थे। कुल देवोत्तर का सबसे पहला विश्वस्त अग्नि था और जब अग्नि की प्रतिष्ठा घटी और मूर्त्तियों की स्थापना होने लगी और उनकी नित्य-पूजा के सामान का बन्दोबस्त करना पड़ा तब इस बात की ज़रूरत पड़ने लगी कि अर्पित जायदाद बचाई जाय और आग में न फेंक दी जाय। तभी से दानालयों की जड़ स्थापित होने का मार्ग खुला। परन्तु आरम्भ में देवनिमित्त जो अर्पण होता था वह लेख-द्वारा नहीं होता था।

पुराने ज़माने में जब कभी मूर्त्ति की स्थापना होती थी तब पुरोहितों को और दूसरे मनुष्यों को कुछ ज़मीन दे दी जाती थी। लिखा-पढ़ी की कुछ आवश्यकता नहीं थी। पुराने ताम्र-पत्र बहुत कम देखने में आते हैं। मूर्त्ति और शिवालयों की स्थापना के वास्ते सङ्कल्प और प्रतिष्ठा-विधि आवश्यक थी। इस विधि का वर्णन यों किया गया है—

देवताओं की पूजा करने के लिए आचार्य्य अथवा विद्वान् पुरोहित की, द्वार के लिए चार जापकों की अर्थात् मन्त्र पढ़नेवालों की और गर्भ अर्थात् मन्दिर के भीतर के लिए एक की ज़रूरत होती थी। इसके अलावा मूर्त्तिधर, ३२—१६ या ८ मूर्त्तिपा या मूर्त्ति उठानेवाले, ८ या ४ द्वारपाल, नाचनेवाली लड़कियाँ, भजन गानेवाले, परिचारक, सेवक, आदि भी होने चाहिए थे। तब यह रिवाज था कि इन लोगों को भूमि दी जाती थी। इनके मरने पर वह इनके बच्चों को मिलती थी। इन सबका काम था कि पुश्त-दर-पुश्त मूर्त्ति की पूजा और मन्दिरों की रक्षा और कार्य्यवाही जारी रक्खें। घर की मूर्त्तियों के लिए भी कभी कभी पुरोहित को भूमिदान दे दिया जाता था। उसीसे पूजा-सामग्री भी एकत्र की जाती थी। जब कोई बड़ा आदमी शिवालय खोलता था तब मालगुज़ारी के थोड़े हिस्से की मञ्जूरी कर दी जाती थी। घरेलू देवताओं के लिए भी बहुधा पूजा-सामग्री घर का कर्ता दिया करता था। अब भी हज़ारों हिन्दू-घरों में इसी तरह से पूजा होती है। देव-मन्दिर के प्रति भूमि का अर्पण करना और पुजारी को विश्वस्त नियुक्त करना नई प्रणाली है, प्राचीन नहीं।

धर्मालयों की उत्पत्ति।

धर्मालयों की उत्पत्ति पर विचार करने से पता चलता है कि चातुर्मास्य की विधि हम लोगों में बहुत पुराने ज़माने से चली आती है। बुद्ध के पहले के संन्यासी लोग भी बरसात के मौसम में किसी छायायुक्त स्थान पर ठहरा करते थे। मगर इस बात का लेख कहीं नहीं मिलता कि उनके लिए कोई आश्रम बनते थे या नहीं। बुद्ध के जीवन के आख़िरी हिस्से में संन्यासियों के रहने के आश्रम बनने आरम्भ हो गये। ये नये मठ बौद्ध आश्रमों के तरीक़े पर बने हैं। पहले मठ शङ्कराचार्य्य ने स्थापित किये थे। भूमि और धन का दान राजा और अमीर आदमी इन आश्रमों के हेतु किया करते थे, और यह दान मुखिया के नाम किया जाता था जो महन्त या अधिकारी कहलाता था। किसी भी शर्त से उसके अधिकार सङ्कुचित नहीं किये जाते थे। बुद्ध ने अपने संन्यासियों के लिए राज-गृह के जो विहार बनवाने की अनुमति दी थी और जिन्हें इस मतलब के लिए ग्रहण किया था वही शायद हिन्दुस्तान

लेफ्टिनण्ट दानी, आई० एम० एस।

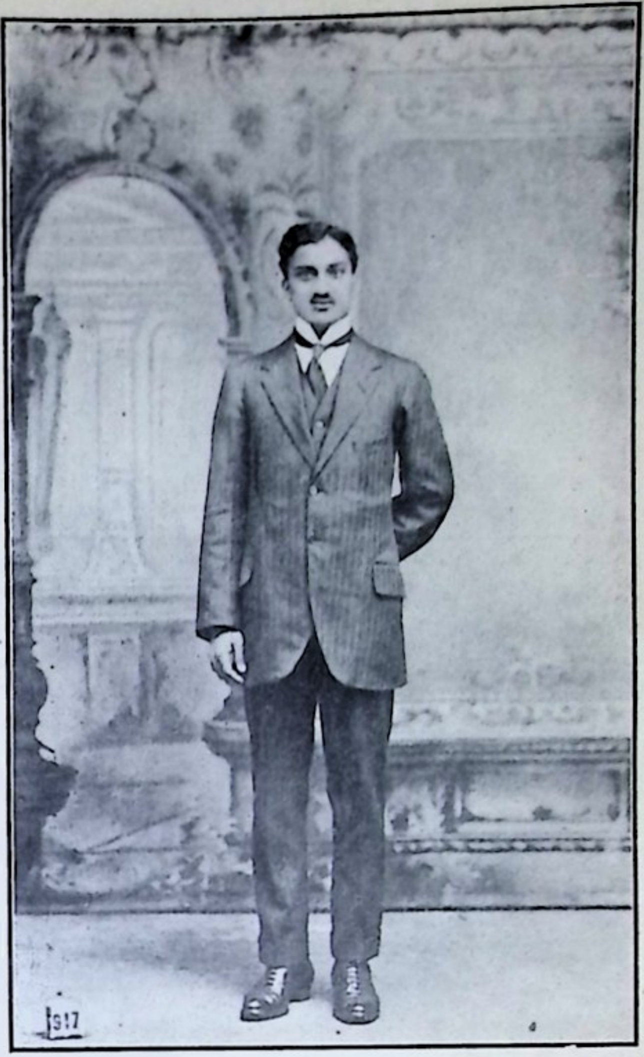

मिस्टर मुहम्मद ज़हूरुद्दीन, बी० एस-सी०, बार-एट-ला।

(पृष्ठ ५३)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

के सबसे पहले धर्मालय थे। बाद को जो मठ तैयार हुए वे इस तरीक़े से कि किसी नामी संन्यासी के बहुत से चेले हो गये और उन्हें धनी आदमियों से बहुत दान मिला, तब उन्होंने उस धन से एक आश्रम खोल दिया। फिर उनके चेलों ने अधिक धन एकत्रित किया; रोज़गार, कृषि, लेन-देन, से रुपया बढ़ाया और आश्रम खड़े कर दिये। इन आश्रमों के वास्ते जो दान दिया जाता है वह महन्त को दिया जाता है। वास्तव में यह दान संन्यासी या महन्त ही को स्वयं दिया जाता था, क्योंकि उसमें विचित्र चमत्कार, विद्वत्ता या साधुत्व के लक्षण उपस्थित रहते थे, परन्तु संन्यासी अपने लिए कोई जायदाद रखना पसन्द नहीं करते। सिद्धान्तानुसार उनकी ख़ास जायदाद कुछ नहीं होती, इसलिए कुल वस्तु जो संन्यासी को दी जाती है वह उस मठ की होती है जिससे उसका सम्बन्ध होता है। लेकिन दुनियाबी फ़ायदों के सिवा और अपने मौज-मज़े के अलावा उसको वह जिस तरह चाहे अलग कर सकता है।

वैदिक समय में धर्मालयों का कहीं पता नहीं लगता। तब बहुत से यज्ञ हुआ करते थे और यज्ञकर्ता वे लोग भी हो सकते थे जो बाद को नीच समझे जाने लगे। कुछ ऋचाएँ ऐसी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वे ब्राह्मण जाति की उत्पत्ति से पहले की हैं। फिर अथर्वण अर्थात् पुरोहितों की जाति बनी। इनका काम जप, मन्त्र, ऋचा, सूत्र आदि पढ़ना हुआ करता था। जब ब्राह्मण जाति बनी थी, तब आरम्भ में संन्यासी नहीं होते थे। पर चार आश्रमों की उत्पत्ति मनु के समय में हो चुकी थी। गृह्यसूत्रों में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति, इन चारों आश्रमों की आवश्यकता द्विजों के लिए निश्चित की गई है। शायद सारे देश-भर के आदमी इन चार आश्रमों का परिपालन न करते रहे हों, परन्तु कुछ अवश्य करते थे और बहुत से उनके लिए कोशिश करते थे। ब्रह्मचर्य्य आश्रम सबसे अधिक पालन किया जाता होगा, क्योंकि पाठशालायें बहुत होती थीं। वानप्रस्थ और यति भी हुआ करते थे, और नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी होते थे। सच्चे संन्यासी यही लोग थे। बुद्ध के समय में बहुत से राख-चुपड़े आदमी भारत-भूमि में घूमा करते थे, जिनके बालों की लटें बँध जाती थीं। ये शिव के अनुयायी थे। वेद और उपनिषदों में इनका वर्णन नहीं है। ये लोग महादेव के पूजक थे जो स्वयं बड़े घुमक्कड़ हैं। ये लौकिक वस्तुओं से घृणा करते थे, और हर्ष-विषाद को आनन्द से एकसा देखते थे। घूमनेवाले जादूगर और सँपेरे जो अपने को योगी कहते हैं, वे शायद हिन्दुस्तान के बाहर से आये हैं। यह अजीब बात है कि उसी संन्यस्त अवस्था ने अनेक रूप धारण किये—शुद्ध से शुद्ध और निकृष्ट से निकृष्ट। बुद्ध के समय में भी ये घूमनेवाले बाबा वर्तमान थे, और परिव्राजक कहलाते थे। उनके घर नहीं होता था, स्त्री नहीं होती थी। वे ख़ुशी-रञ्ज की परवा नहीं करते थे, और दुनिया की सब वस्तुओं की क्षणभङ्गुरता सिखलाते थे। वे उस आनन्द की खोज करते थे जो बदलता नहीं। उन में से बहुत से कठिन तप किया करते थे। फिर कुछ लोग यह ख़याल करने लगे कि मनुष्य ग़ैरमामूली संयम से देवताओं से भी बढ़ सकता है। जो अपने बदन और मन का मालिक हो जाय वह सबका मालिक हो सकता है। तप के द्वारा दूर की बातें बतला देना, सुन लेना, जान लेना, रोगों को नाश कर देना, बदन को पृथिवी से उठा लेना और बहुत सी आश्चर्य्यमय ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करना, आदि क्रियाएँ लोगों के मन में श्रद्धा उत्पन्न करती थीं। हिन्दू और बौद्ध किताबों में तपस्वी की शक्ति का वर्णन है। तप शब्द ऋग्वेद में भी आया है। सबसे बड़ा तप प्राणायाम है। वैदिक समय से लेकर अब तक भी सन्ध्या के साथ ब्राह्मण को प्राणायाम करना पड़ता है।

धर्माश्रमों के अधीन वासी; उनका रूपान्तर।

स्मृति के यति 'त्रिदण्डीक' थे जिसका अर्थ कुछ लोग ग़लती से 'तीन दण्डवाले' बतलाते हैं। असल में उसका मतलब तीन पदार्थों में संयम रखनेवाला है, अर्थात् मन, वाक् और शरीर को जीतनेवाला। इस आदर्श के संन्यासी कुल योगियों के लिए नमूने थे। बादवाले सब उनकी नक़ल करते गये। ब्राह्मण के सिवा दण्डी कोई नहीं हो सकते थे। जटिल संन्यासी पूरे भ्रमणकारी होते थे। ये लोग भी कई प्रकार के होते थे, यानी ब्राह्मण-पण्डित जिस-

की दिनचर्य्या पूजनीय और सराहनीय होती थी; और ख़ाली अङ्ग को कष्ट देनेवाले, जादूगर और दवावाले। परन्तु लोग इन सबसे डरा करते थे। मुड़े हुए यति और जटाधारी योगियों के नमूनों पर जैन और बौद्ध संन्यासी हुए। ये ब्राह्मण नहीं होते थे। बुद्ध के ठीक पहलेवाले परिव्राजक सब जादूगर थे। बौद्ध-मत इस जादू का बहुत विरोध करता था और उसकी मंशा फिर से शुद्ध ज्ञान का प्रचार स्थापित कर देने की थी। जादू से पूजा का नाश हो गया। बौद्ध-मत के चढ़ते ज़माने में जादू से घृणा की जाती थी और सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा होती थी। मगर जब बौद्ध भिक्षुकों के दिन गिरे तब वे भी जादूगर होगये। बुद्ध के सङ्घ बड़ी पाठशालाओं और मठों की तरह थे। बौद्ध-मत में त्रिरत्न है—बुद्ध, सङ्घ, और धर्म। बौद्ध-मत के अनुसार सङ्घ, सङ्ग, सङ्गति अर्थात् जमाव की ज़रूरत होती थी जहाँ सब मिलकर अपने अपने पापों का वर्णन कर सकें और भविष्य के लिए आत्मा की शुद्धता कर सकें। बुद्ध के पहले जो चेले थे उनके लिए कोई आश्रम नहीं बने थे। वे लोग गुफाओं में वा पेड़ों के तले रहते थे, और उतारे हुए कपड़े पहनते थे, मगर भारत के प्रचण्ड वर्षाकाल के कारण इस तरह के जीवन में कठिनता पड़ने लगी और वेदों के चातुर्मास्य की तरह संन्यासियों को 'वास' की ज़रूरत पड़ी। उनको आज्ञा थी कि चार महीने कहीं घूमें फिरें नहीं। जब सन्तों के रहने के लिए बुद्ध के एक अमीर चेले ने आश्रम बनवा दिया जिसे बुद्ध ने स्वीकार कर लिया तभी से पहला सङ्घाराम तैयार हुआ। उसके बाद बहुत क़ीमती इमारतें और उद्यान बुद्ध और उनके अनुयायियों को अर्पण किये जाने लगे यहाँ तक कि एक ज़माने में ये सब देश-भर में छागये। इसके पहले आश्रम नहीं हुआ करते थे। बौद्ध सङ्घारामों के नमूने पर बाद को मठ बने।

आधुनिक संन्यासी की अवस्था पर ग़ौर करने के लिए बुद्ध के भिक्षुक और शङ्कराचार्य के दण्डी का आदर्श जानना लाभदायक होगा।

बौद्ध-मत के भिक्षुक बनने के क़ायदे ये हैं—१५ या २० बरसवाला आदमी जो नपुंसक न हो, अङ्गहीन न हो, कोढ़ी न हो, क्षयी न हो, मृगी-रोग से पीड़ित न हो, वह भिक्षुक बन सकता है। विनय के या पबग्गा या प्रव्राज्य के क़ायदे इस तरह पर वर्णित हैं—पहले बाल और लटें काटना चाहिए, पीला वस्त्र धारण करना चाहिए, एकत्रित भिक्षुकों के चरणों में नमस्कार करना चाहिए, जुड़े हुए हाथ उठाकर उनसे कहना चाहिए कि मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ, मैं धर्म की शरण लेता हूँ, मैं सङ्घ की शरण लेता हूँ। सब भिक्षुकों की रज़ामन्दी से नया भिक्षुक भरती हो सकता था। हर एक भिक्षुक को किसी व्यक्ति को गुरु बनाना पड़ता था जो आचार्य्य या उपाध्याय कहलाता था और वह स्वयं गुरु का अन्तेवासी अर्थात् साथ में रहनेवाला या शिष्य कहलाता था। दस साल से कम अवधिवाला भिक्षुक किसीको अपना शिष्य नहीं बना सकता था।

सनातन हिन्दू धर्म में भी ब्राह्मण को बचपन में आचार्य्य या गुरु से वेद तथा अन्य विद्या सीखनी पड़ती थी। कई ऐसे भी ब्रह्मचारी होते थे जो जीवन-पर्य्यन्त गुरु के साथ रहते थे और स्वच्छ जीवन व्यतीत करते थे। प्राचीन भारत में जो शिष्य एक गुरु के यहाँ रहते थे वे सब गुरु-भाई होते थे।

बौद्ध-सङ्घ में और हिन्दू मठों में जबसे संन्यासी लोग अपने अपने शिष्य बनाने लगे तब से महन्त या अधिकारी के एक-आध ही शिष्य होते थे, बाक़ी यों ही भरे रहते थे। बौद्ध-सङ्घ में हर एक आश्रम का मुखिया आचार्य्य कहलाता था। शिष्य बुद्ध से शुरू होकर बड़े बड़े शिक्षक हो गये जो अपने ज़माने के कुल बौद्धों के नेता होते थे। शिक्षक उम्र में, विद्या में, माहात्म्य में, और सब संन्यासियों से श्रेष्ठ होता था। अधिकारियों का चुनाव सबकी राय से नहीं होता था। गुरु अपने से बाद होनेवाले अधिकारी को आपही नामज़द कर देता था। सङ्घाराम का नेता सबसे पुराना भिक्षुक होता था। परन्तु यदि वह विद्वान् न होता था तो सबसे विद्वान् उस पद पर नियुक्त किया जाता था। मगर जायदाद का प्रबन्ध सबसे पुराने संन्यासी को मिलना आवश्यक नहीं था। सब भिक्षुक सभा करके किसी एक को मकान, बिस्तर और खाने का मुन्तज़िम और बाँटनेवाला मुक़र्रर

करते थे। सङ्घ के कुल झगड़े वोट से तय हुआ करते थे। यह बौद्ध-क़ायदा था। परन्तु शैव्य मठों में महन्त के इख़्यारात बहुत ज़्यादा माने जाने लगे।

बौद्ध-विनय के अनुसार आराम, विहार, बिस्तरा, चौकी, तकिया, गद्दा, पीतल के बर्तन, छुरा, हँसिया, कुल्हाड़ी, फडुआ आदि का न बटवारा हो सकता था न ये किसी दूसरे को दिये जा सकते थे। अगर उनका इन्तक़ाल किया जाता था तो वह नाजायज़ होता था। हिन्दू मठ की जायदाद भी न बाँटी जा सकती है न अलग की जा सकती है। सम्भव है बौद्ध क़ायदे से हिन्दू क़ायदा निकला हो।

जब बौद्ध संन्यासियों का ख़राब ज़माना आया तब एक बार जटिलों ने फिर से समाज में प्रतिष्ठा पाई। आठवीं शताब्दी में एक युवक दक्षिणी ब्राह्मण विचित्र-बुद्धि और विद्या-युक्त दण्डियों की श्रेणी में सम्मिलित हुआ। उसने वेदान्त का फिर से प्रचार किया; सूत्र, उपनिषद् और वेदान्त की टीका लिखी जिससे पण्डित-मण्डल चकित हो गया। वेदान्त की शिक्षा देते हुए हिन्दू और बौद्ध पण्डितों को हराते हुए उसने विजय का डङ्का बजा दिया और काश्मीर में जाकर सरस्वती की गद्दी पर बैठा। बौद्ध संन्यासियों का मान तब से जो घटा तो फिर भारत-जनता में कभी नहीं पनपा। हिन्दू पुरोहितों की हालत भी शङ्कर के सामने कुछ भली न रही। मीमांसा का ज़ोर उस ज़माने में था। मण्डन मिश्र ने, जो कि उनका नेता था, शङ्कराचार्य्य पर बड़ा झपेटा मारा और यह कहा कि स्मृतियों के अनुसार जिसने गृहस्थ आश्रम का पालन न किया हो वह सचा संन्यासी हो ही नहीं सकता। शङ्कर ने मण्डन को भी हराया और सुरेश्वर के नाम से उनको मूँड़ लिया। शङ्कर के चारों ओर संन्यासियों का झुण्ड एकत्र हो गया। बौद्ध आश्रमों के नमूने पर उन्होंने मठ तैयार किये। उनकी मंशा थी कि मठ विद्या के बड़े केन्द्र हों, और उनमें वेदान्त की शिक्षा हो। एक समय था जब इन मठों का सिक्का हिन्दू-समाज पर ख़ूब जमा था। अब भी शृङ्गेरी मठ के महन्तजी दक्षिण और पश्चिम भारत के हिन्दू सामाजिक मामलों का निबटेरा करते हैं। इन मठों के अधिकारी अपने गुरु के नाम के अनुसार अब भी शङ्कराचार्य्य कहलाते हैं। शायद यह विश्वास किया जाता है कि ये उनके अवतार हैं। जादूगर जोगियों के दिन गये और शायद हमेशा के लिए। पर अब भी उनका लोप नहीं हुआ है। भ्रमण करते वे अब भी पाये जाते हैं। कुछ लोग उनकी गुप्त शक्ति—बीमारी हटाने, लड़का देने, भाग्य बतलाने, आदि के मामले में उन पर विश्वास करते हैं। उनमें से कुछ लोग कभी कभी शिक्षित समाज पर भी असर डालते हैं। वे क़रीब क़रीब सभी अपनेको शङ्कर या रामानुज के अनुयायी बताते हैं। परन्तु ऐसे बहुत कम हैं जो बुद्ध या शङ्कर के सच्चे अनुयायी हों, जादू से घृणा करते हों, इस दुनिया की और परलोक की वस्तुओं से रहित हों, और जो अपनेको देवताओं से बढ़कर समझें। सच बात तो यह है कि उनमें से बहुत से या तो निरक्षर भट्टाचार्य्य हैं या बराय नाम पढ़े लिखे हैं। बुद्ध और शङ्कर ने कोशिश की कि जादूगर को पण्डित बना दें; परन्तु दोनों नाकामयाब रहे।

शङ्कर का तरीक़ा बहुत सीधा-साधा था। वे अपने शिष्यों में से किसी व्यक्ति विशेष को मठ सौंप देते थे, और उसको कुल इख़्त्यारात दे देते थे। वह शिष्य अपनी विद्या और माहात्म्य से दूसरे चेलों को एकत्र करता था। उसकी हुकूमत की पूछ-जाँच करनेवाला कोई नहीं होता था। वह अपने बादवाले को नामज़द कर देता था। अगर उसने किसीको नामज़द न किया तो पहला चेला गद्दी पाता था। संन्यासियों में भी एक तरह की रिश्तेदारी मानी जाती थी। गुरु बाप समझा जाने लगा, गुरु का गुरु दादा। इस तरह उन लोगों के भाई, चाचा आदि धर्म के सम्बन्ध से होने लगे। यह अजीब मालूम होता है। जिन लोगों ने घर बार छोड़ा वे लोग मठ की जायदाद के लिए और लोगों की तरह अपनेको हक़दार समझने लगे। चेला या शिष्य, जो कि पुत्र के स्थान पर होता है उसको गुरुभाइयों से ज़्यादा हक़ है कि वह महन्त की पदवी पावे। शङ्कराचार्य्य के चार मुख्य शिष्य थे—स्वरूप या विश्वरूप, पद्मपाल या पद्माचार्य्य, त्रोटक, और पृथिवीधर। इनके सुपुर्द चार आरम्भवाले मठ किये गये। ये हिन्दुओं के अब तक चार धाम हैं। इन चार शिष्यों ने दस नामी महापुरुष अपने शिष्य बनाये।

आज-कल के संन्यासी इन्हीं दसों में से एक न एक के अनुयायी होते हैं। स्वरूप के सुपुर्द द्वारिका का शारदा-मठ हुआ। उनके शिष्य तीर्थ और आश्रम हुए। पद्मपाद का मठ पुरी का भोगवर्ध मठ है। उनके चेले वन और अरण्य हुए। त्रोटक का मठ बदरीनाथ का ज्योतिर्मठ है। उनके चेले गिरि, पर्वत और सागर हुए। पृथ्वीधर का मठ तुङ्गभद्रा नदी पर शृङ्गेरि या शृङ्गगिरि हुआ। इनके चेले सरस्वती, भारती और पुरी हुए।

तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः।
सरस्वती भारती च पुरी नामानि वै दश॥

इन दशनामियों के वर्तमान चेले शङ्कर के मत के पक्के अनुयायी नहीं रह गये हैं। उनमें से तीन और चौथी श्रेणी के कुछ अर्थात् तीर्थ और अरण्य, सरस्वती और भारती अब भी शङ्कर के सच्चे दण्डी समझे जाते हैं। काशी जी के आसपास ये बहुत हैं। इनमें से कुछ वेदान्त के अच्छे ज्ञाता हुए हैं। ये संस्कृत के और अङ्गों के भी अच्छे वेत्ता हुए हैं। बाक़ी साढ़े छः दशनामी संन्यासी शुद्ध दण्डी नहीं रहे। उन्हें अब अतिथि कहते हैं। अतिथि लोग दण्ड नहीं ग्रहण करते, कपड़े और गहने पहनते हैं। वे रुपया लेते हैं, स्वयंपाकी होते हैं, और हिन्दू-समाज की सब जातियों को भरती कर लेते हैं। अक्सर वे भी मठ में रहते हैं; मगर लौकिक कार्यों में ख़ूब सम्मिलित होते हैं, व्यापार करते हैं, जायदाद जोड़ते हैं, और शिवालयों में कभी कभी पुरोहिताई करते हैं। कभी कभी वे व्याह भी कर लेते हैं, लेकिन तब वे 'संयोगी' कहलाते हैं। इसमें संशय है कि अतिथियों में शूद्र भी भरती किये जा सकते हैं या नहीं। दण्डियों का कहना तो यह था कि सिवा ब्राह्मणों के और कोई संन्यासी नहीं हो सकता। परन्तु अब यह तय हो गया है कि दशनामियों की कक्षा में कोई भी द्विजाति संन्यासी हो सकता है। इन दशनामी संन्यासियों की रिवाज में जहां भिन्नता है वहां यह जानने से सहायता मिलेगी कि वे किस मठ के अनुयायी हैं, जैसे बदरीनाथ-मठ के अनुयायी गिरि, पर्वत और सागर हैं। अगर इनकी पुरानी रिवाज देखने की ज़रूरत हो तो बदरीनाथ-मठ की रिवाज देखनी चाहिए। अगर गिरिमठ का अधिकारी कोई न रह जाय और क़रीब के अधिकारी उनके हक़दार न हों तो बदरीनाथ-मठ हक़दार होगा। यही बात दूसरे मठ और दूसरे दशनामियों की समझना चाहिए। किन्तु सब दशनामी चार पुराने मठों को अपना अधिकारी नहीं मानते। जब शङ्कर के आदर्श से कुछ दशनामी गिर गये और लौकिक व्यवहार में सफलता प्राप्त की तब उन्होंने अलग अलग छोटे-बड़े मठ स्थापित किये। ये मुरही भी कहलाते थे। इन मुरहियों के स्वामी बहुत धन-सम्पन्न हो गये। बहुत से मठ ऐसे भी खुले जिनको शिष्यों ने गुरु से स्वाधीन होकर चला दिया, और जिनके वे स्वयं मालिक बन बैठे। ऐसे भी बहुतसे मठ हैं जिनमें राज्यों से भूमि दी हुई है। बहुत से अमीर मठों का ताल्लुक़ धीरे धीरे शङ्कर के मठों से टूट गया।

शृङ्गेरी और शारदा-मठ का हिन्दू-समाज पर अब भी बड़ा ज़ोर है। दशनामी लोग अपने बदन में विभूति लगाते हैं। यह शैव संन्यासियों की ख़ास बात थी। वैष्णव-संन्यासी ऐसा नहीं करते थे। अतिथि लोग भी राख नहीं लपेटते थे। स्मृतियों में राख धारण करने की ज़रूरत नहीं बतलाई गई है। शङ्कर के ज़माने के पहले घूमनेवाले जोगी अपने सब बदन रज से लपेटे रहते थे। उनके ख़ानदान के कनफटा जोगी हैं, जोकि सांप नचाते हैं और जादू दिखलाते फिरते हैं। कनफटे जोगी अपने को 'नाथ' कहते हैं। उनके पास ज़्यादा जायदाद नहीं होती। जायदादवाले संन्यासी या तो शङ्कर के अनुयायी हैं या वैष्णव लोग हैं। शैव योगियों में प्रधान जङ्गम या लिङ्गायत दक्षिण भारत में हैं। वे लोग शूद्रों को भी भरती करते हैं, उनके बहुत से मठ हैं।

अनेक रूपों में विचरनेवाले संन्यासियों में सच्चे महात्मा कम दिखलाई पड़ते हैं; मगर हैं वे अब भी। और भी योगियों के अजीब अजीब रूप देखने को मिलते हैं। कोई नीचे सिर लटकाकर आग तापते हैं, कोई अपने सिर के बल खड़े रहते हैं या कीलों पर बैठे रहते हैं, कोई हाथ उठाये रहते हैं, इत्यादि; परन्तु इनकी कोई अलग श्रेणी नहीं होती। इनके चेले बहुत कम होते हैं; और इनके पास जायदाद और भी कम रहती है।

वैष्णव संन्यासी वैरागी कहलाते हैं। उनके मठ भी शङ्कर के मठों की तरह हैं। वैष्णवों की चार शाखायें हैं अर्थात् (१) रामानुजी या श्री-सम्प्रदायी, (२) वल्ल-

भाचारी या रुद्र-सम्प्रदायी, (३) माध्वाचारी या ब्रह्म-सम्प्रदायी, (४) निमावत या सनकादि-सम्प्रदायी ।

रामानुजी संन्यासी सब त्रिदण्डी होते हैं, ब्राह्मण होते हैं, और बड़े कट्टर होते हैं । वे दक्षिण और उत्तर भारत में बहुत हैं । उनका पुराना स्थान श्रीरङ्ग कावेरी के किनारे है ।

रामानन्दी रामानुजी सम्प्रदाय की एक शाखा हैं । अपनी संख्या और शक्ति के कारण उत्तर भारत में उनका बहुत ज़ोर है । उनके बहुत मठ और अखाड़े हैं । मठों में ख़ाली ब्रह्मचारी लोग रहते हैं । वे अपनेको दास कहते हैं—अर्थात् श्रीरामजी के दास । वे लोग शूद्र और नीच जातियों को भी भरती करते हैं । उनका प्रधान स्थान अयोध्या में है ।

कबीर-पन्थी मुसलमानों को भी भरती करते हैं । ये लोग रामानन्दियों की एक शाखा हैं । उत्तराखण्ड में इनके बड़े बड़े आश्रम हैं ।

दादू-पन्थी रामानन्दियों की दूसरी शाखा हैं ।

नानक-पन्थ को भी एक तरह से रामानन्दी की एक शाखा कह सकते हैं । कबीरशाही और नानकशाही बहुत से महन्त ब्रह्मचारी होते हैं । परन्तु उनके लिए ब्रह्मचर्य्य आवश्यक नहीं है । उनके मठ सङ्गत कहलाते हैं । नानक-पन्थियों के उदासी और सिक्ख, दो अङ्ग हैं ।

दक्षिण में माध्वाचारियों के आठ प्रधान मठ हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ उदीपी का मठ है । इसको माध्वाचार्य्य या आनन्दतीर्थ ने स्थापित किया था जो पहले दशनामियों की एक शाखा के थे । माध्व-मठ के अधिकारी ब्राह्मण संन्यासी होते हैं जो बाल-काल ही से भरती कर लिये जाते हैं, और सदैव ब्रह्मचारी रहते हैं । निमावत में संन्यासी और गृहस्थ दोनों होते हैं । इन संन्यासियों के मठ मथुरा में हैं ।

पश्चिमी भारत में वैष्णवों में वल्लभाचारी ज़्यादा हैं । उनका पुराना स्थान गोकुल में है । वहाँ उनके बड़े बड़े आश्रम अथवा मन्दिर हैं । इन पर वल्लभाचार्य्य के कुल के लोग अब भी अधिष्ठाता हैं । वे लोग गृहस्थों की तरह रहते हैं । उनके अनुयायी उनकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं । लड़के पुश्त-दर-पुश्त गद्दी-नशीन होते जाते हैं । कभी कभी केवल बड़े लड़के का हक़ समझा जाता है, दूसरों का नहीं । भारत का एक बहुत धन-सम्पन्न मन्दिर, नाथद्वारा इनके क़ब्ज़े में है ।

एक समय शङ्कर का इतना प्रभाव था कि वैष्णव संन्यासी भी अपनेको दशनामियों में से किसी एक अङ्ग का बतलाते थे । बङ्गाल में चैतन्य ने भक्ति-रस का प्रचार किया । भागवत-भगत (भक्त लोग) वेदान्तियों के साथ ही साथ पुराने ज़माने से होते चले आये हैं ।

उत्तर भारत के वर्त्तमान काल के भगतों की पहचान यह है कि वे मांस नहीं खाते, नम्रता से जीवन व्यतीत करते हैं और बहुधा तुलसीकृत रामायण पढ़ते हैं । विष्णु-पुराण, गीता और भागवत उनकी प्रधान पुस्तकें हैं । वैष्णव मत का और भी साहित्य प्राचीन काल का है, किन्तु तुलसीदास और चैतन्य के बाद ही वैष्णव-मत सर्वसाधारण में फैला । यह विश्वास किया जाता है कि चैतन्य के समय से वृन्दावन का माहात्म्य बढ़ गया । चैतन्य के समय से बहुत से वैष्णव संन्यासी हुए । पूरे वैष्णव संन्यासी रामानुजी, रामानन्दी और माध्वाचारी हैं । उनकी जीवनचर्य्या शङ्कर के संन्यासियों की सी है । अन्तर यह है कि एक शङ्कर का वेदान्त पढ़ते हैं, और दूसरे रामानुज, माध्वाचार्य्य की किताबें, तुलसीकृत रामायण, या भक्तिशास्त्र का पठन-पाठन करते हैं । वैष्णव और शङ्कर के संन्यासियों में और भी अन्तर है । शङ्कर के संन्यासी सब वेदान्ती होते हैं और अपनेको देवताओं के बराबर समझते हैं, वे अपनेको स्वामी कहते हैं, अर्थात् माया और इन्द्रियों को जीतकर वे परब्रह्म परमेश्वर के तुल्य बन गये हैं, उनका धर्म ध्यान और सत्यता है, पूजा नहीं । वैष्णव लोग आस्तिक होते हैं, भक्ति-मार्ग के अनुयायी होते हैं, और नित्यप्रति मूर्तियों का पूजन करते हैं । बहुत से वैष्णव संन्यासी अपने को दास कहते हैं, अर्थात् परमात्मा के सेवक । वेदान्ती इन्द्रियों के भोग से दूर भागते हैं यहां तक कि तसवीर और गाना-बजाना भी नहीं पसन्द करते और वैष्णव पूजन करने के लिए बढ़िया से बढ़िया पदार्थ एकत्र करने में प्रसन्न होते हैं ।

शङ्कर के संन्यासियों के सिवा बाक़ी सब दो प्रकार के होते हैं । एक गृहस्थ या संयोगी, दूसरे विरक्त या निहङ्ग ।

दशनामियों के सिवा नानक-पन्थी, कबीर-पन्थी और दूसरे अखाड़ों में गृहस्थ और निहङ्ग दोनों प्रकार के संन्यासी होते हैं, और कभी कभी यह निश्चित करने में कठिनता पड़ती है कि महन्त कौन हो—गृहस्थ या निहङ्ग। ये संन्यासी लोग वास्तव में किसी मन्दिर, शिवालय या ग्रन्थ आदि पुस्तक के पूजक या पण्डे होते हैं; शङ्कर के संन्यासियों की तरह नहीं होते जोकि बौद्ध-मत के नमूने पर वर्षाकाल के चार मास में, या रोगी होने पर या पाठ या ध्यान के लिए आश्रमों में रहते थे।

हिन्दू मूर्ति की पूजा के लिए इस बात की आवश्यकता नहीं है कि पुरुष ब्रह्मचारी ही हो, परन्तु दशनामियों की देखादेखी कई जगह यह रिवाज हो गया है कि महन्त या तो ब्रह्मचारी हो या स्त्रियों की सङ्गति छोड़ चुका हो।

वैरागियों के अखाड़े बहुधा ऐसे हैं जो किसी व्यक्ति-विशेष के प्रताप से खड़े हो गये हैं। उनके अधिष्ठाता अधिकतर बाल-बच्चे छोड़के मरते हैं, और उनकी जायदाद उसी रीति से बँटती है जैसे और साधारण पुरुष की। परन्तु वैरागियों में जो ब्रह्मचारी होते हैं उनकी जायदाद शिष्य या गुरु को मिलती है।

मठों के अतिरिक्त कई बड़े मन्दिरों में अधिष्ठात्री मण्डलियां होती हैं। उनके कर्मचारियों के हक़ूक़ समझने के लिए पुराणों का अवलोकन लाभदायक होगा। आचार्य्य, पूजक, जापक, मूर्तिवाह, द्वारपाल, नाचनेवाली—इन सबके लिए परवरिश का सामान रहता है। वे सब पुश्त-दर-पुश्त अपना कार्य्य करने और भाग लेने के मुस्तहक़ समझे जाते हैं। आरम्भ में जिस राजा, महाराजा या धनी ने ये मन्दिर बनवाये और उनकी सहायता के लिए भूमि या धन प्रदान किया वे आरम्भ में कुछ न कुछ हुकूमत भी करते रहे होंगे। जब लड़ाई के कारण, निर्धनता या रद्दो-बदल के कारण, दाता या उसके ख़ानदान की ताक़त और हुकूमत घट गई, तब पुजारी, पण्डे या परिचारक लोग स्वाधीन मालिक बन बैठे। काली-घाट, वैद्यनाथ मन्दिरों का यही हाल है। काली जी के पुजारी अब मन्दिर के मालिक हैं। वैद्यनाथ में पण्डे लोगों के स्वयं हक़ हैं और उन सबके ऊपर महन्त या सरदार पण्डा है जो कि पुराणों के आचार्य्य के स्थान पर है। परन्तु आज-कल के पण्डे लोग स्वयं पूजा नहीं करते, पुजारियों को नौकर रख छोड़ते हैं।

संन्यासी कौन हो सकता है?

स्मृतियों के अनुसार बिना गृहस्थ हुए कोई संन्यासी नहीं हो सकता था। परन्तु शङ्कर ने यह क़ायदा बना दिया कि जब कभी ऐहलौकिक और पारलौकिक वस्तुओं से मनुष्य लिप्त न रह जाय तब वह जीवन की हर एक अवस्था में संन्यासी हो सकता है।

"यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।"

बहुत संन्यासी तब मूड़ लिये जाते हैं जब वे बिलकुल बच्चे रहते हैं। मगर यह बड़ी ख़राब बात है। छोटे बच्चों का संन्यासी बनाना हिन्दू-शास्त्र के विरुद्ध है, हानिकारक है। जो मूर्ख और उजड्ड संन्यासी बहुधा मिलते हैं उनका प्रधान कारण यही है। स्मृति के अनुसार आठ वर्ष से नीचे का बच्चा गर्भ में रहने के समान है। वह कोई पाप नहीं कर सकता, न उसे प्रायश्चित्त की आवश्यकता है। १६ बरस से नीचेवाला 'पौगण्ड' कहलाता है और पाप के लिए उसे आधा प्रायश्चित्त काफ़ी है।

> गर्भस्थसदृशो ज्ञेय आऽष्टमाद्वत्सराच्छिशुः।
> बाल आषोडशाद्वर्षात् पौगण्ड इति शस्यते॥
> परतो व्यवहारज्ञः।—[नारदः ४-३५, ३६]
> अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः।
> प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च॥
> [अङ्गिराः ५-३३]

इसलिए १६ वर्ष के पहले किसी को संन्यासी न बनने देना चाहिए। बिन-ब्याहा आदमी संन्यासी हो सकता है। वही उच्च शिखर तक पहुँच सकता है। अन्धे, कोढ़ी, पागल और असाधारण रोग-पीड़ित, कुछ टीकाकारों के अनुसार, जन्म ही से संन्यासी हैं। बुद्ध के अनुसार वे संन्यासी नहीं बनाये जा सकते। वे लोग हठ-योग नहीं कर सकते। यद्यपि प्रत्यक्ष कोई मुमानियत नहीं है, तथापि आश्रमों में ऐसे लोग नहीं लिये जाते।

शङ्कर के दशनामी संन्यासी होने के लिए द्विज होना चाहिए। परन्तु बहुत से वैष्णव, नानकपन्थी, कबीरपन्थी, दादूपन्थी और कई दूसरे अखाड़ों में इस क़ायदे की पाबन्दी नहीं होती। उनमें शूद्र और विवाहित आदमी भी भरती होते हैं।

शङ्कर के अनुसार संन्यासी बनने की क्रिया यों बताई गई है—जिसे संन्यासी बनना हो वह पहले अपने घर के सब लोगों से कहे कि मैं संन्यासी होना चाहता हूँ। सबकी अनुमति लेकर वह अपने घर की और गाँव की परिक्रमा करे, और उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करे। स्नान कर परमेश्वर की पूजा करके, देव और पितरों का स्मरण कर गुरु से भेंट करे। गुरु जाति का ब्राह्मण, शान्त और अच्छे स्वभाव का हो, जिसने सब कर्म छोड़ दिये हों। भूख, प्यास, दुःख, मूर्खता, वार्धक्य और मृत्यु से पीड़ित न हो। जिसको ब्रह्मज्ञान हो, ऐसे मनुष्य से वह संन्यास माँगे। गुरु कहे—"संन्यास का मार्ग बड़ा कठिन है।" शिष्य फिर भी ज़िद करे, तब गुरु उसे दीक्षा दे। शिष्य तर्पण करे, पितरों का श्राद्ध करे, होम करे, बाल मुड़ावे और यज्ञोपवीत फेंक दे। होम के अन्त में १०८ बलि अग्नि को दे। तब यह मन्त्र दुहराये जिसका आशय यह है, 'ॐ, मेरा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और सब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जायँ। मैं ज्योति हूँ, कलङ्क-रहित हूँ, इच्छा-रहित हूँ और पाप-रहित हो गया हूँ।' इसके उपरान्त उसके मन में यह बात लाई जाती है कि वह स्वयं परमात्मा है। यह ज्ञान वेदान्त और संन्यास का तत्त्व है। तभी वह अन्तिम समय श्राद्ध करता है।

स्मृतियों के अनुसार चार प्रकार के संन्यासी होते हैं—कुटीचर, बहुडोक, हंस और परमहंस। कुटीचर वे हैं जो बाल-बच्चों के साथ झोपड़ी में अलग रहें। बहुडोक वे हैं जो सात घरों से भिक्षा माँग लाएँ। हंस वे हैं जो एक ग्राम में पाँच दिन से अधिक न रहें। परमहंस वे हैं जो वृक्ष के तले, मकान के खँडहरों में, श्मशानादि में पड़े रहें और लौकिक वस्तुओं से अपनेको रहित समझें।

दशनामी संन्यासी हंस या परमहंस होते हैं, परन्तु आज-कल के लाखों संन्यासियों में से शायद ही कोई इस उच्च कक्षा को पहुँचते हों। बहुत तो निरक्षर होते हैं, पर थोड़े से पढ़े लिखे होते होंगे, संस्कृत और भी कम जानते हैं। पुरानी विधि और उनका तात्पर्य्य क़रीब क़रीब उन्हें भूल सा गया है।

अब रिवाज की पाबन्दी होती है।

अब चेला बनाना लड़के को गोद बिठाने की तरह समझा जाता है। यही बात अदालतें और वकील लोग भी मानने लगे हैं। पर यह हिन्दू-शास्त्र के अनुसार नहीं है। अब चेला बनाने के क़ायदों के लिए रिवाज देखने की आवश्यकता होती है। आज-कल यही देखना होता है कि रिवाज के माफ़िक़ कोई चेला बना या नहीं और गुरु ने उसको चेला माना या नहीं। दशनामियों के लिए विरजा-होम अब भी ज़रूरी समझा जाता है।

संन्यासी के लिए दोष।

बुद्ध के विनय के क़ायदे के मुताबिक़ भिक्षुक निम्नलिखित कारणों से पतित हो जाते थे और निकाल दिये जाते थे—जब वे जीवहत्या करें, चोरी, या अपवित्र कार्य्य करें, झूठ बोलें, शराब पिएँ, जब झूठे मत का अनुकरण करें, और जब भिक्षुनी के साथ सहवास करें। हिन्दू-मत के अनुसार भी इन कार्य्यों से यति भ्रष्ट होकर प्रव्रज्योपविष्ट हो जाता है। जिन कार्य्यों से ब्राह्मण भ्रष्ट हो जाता है उससे यति के अधःपतन में कोई सन्देह नहीं। नारद के अनुसार प्राचीनकाल में जो संन्यासी कुचाल से भ्रष्ट हो जाते थे या और किसी कारण लौकिक जीवन में लौट आते थे उनको राजा गुलाम बना दिया करता था।

राज्ञ एव हि दासः स्यात् प्रव्रज्यावसितो नरः।

परन्तु हमारी सरकार धर्म के मामलों में हस्ताक्षेप नहीं करती और हमारी अदालतें महन्त को कठिनता से पदच्युत कर सकती हैं, इसलिए भी आज-कल के मठों के अधिकारी और संन्यासी बिना दण्ड पाये ऐसे ऐसे दुष्ट कर्म तक करने की हिम्मत कर जाते हैं जो पुराने ज़माने में असम्भव थे।

वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जब और और उन्नतियों के साथ साथ हमारे देवोत्तर शिवालय और मठों की

दशा भी सुधर जायगी; शिवैत, पुजारी, पण्डे, महन्त और संन्यासी अपना धर्म और स्थिति समझ कर अपना कर्तव्य पालन करेंगे। देश के नेता और देश के भक्तों से प्रार्थना है कि वे इस ओर भी कुछ ध्यान दें और धर्माश्रमों के सुधार के लिए प्रयत्न करें।

गङ्गाधर पन्त, बी० ए०, एल-एल० बी०

पश्चिमी क्षत्रप-वंश का इतिहास और उनका वंश-वृक्ष।

(५)

विजयसेन

[श०-सं० १६०–१७२ (ई० स० २३८–२५० = वि० सं० २९५–३०७)]

यह दामसेन का पुत्र और वीरदामा तथा यशोदामा का भाई था। इसके भी शक-संवत् १६० के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इसी संवत् के इसके पूर्वोक्त दोनों भाइयों के भी क्षत्रप उपाधिवाले सिक्के मिले हैं। विजयसेन के इन सिक्कों पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनसपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस विजयसेनस" और दूसरी तरफ़ शक-सं० १६० लिखा रहता है।

शक-सं० १६२ से १७२ तक के इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्के भी मिले हैं। इन पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस विजयसेनस" लिखा रहता है, परन्तु अभी तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि शक-सं० १६१ में यह क्षत्रप ही था या महाक्षत्रप हो गया था। आशा है उक्त संवत् के इसके साफ़ सिक्के मिल जाने पर यह गड़बड़ मिट जायगी।

विजयसेन के शक-सं० १६७ और १६८ के ढले सिक्कों से लेकर इस वंश की समाप्ति तक के सिक्कों में उत्तरोत्तर कारीगरी का ह्रास पाया जाता है। परन्तु बीच बीच में इस ह्रास को दूर करने की चेष्टा का किया जाना भी प्रकट होता है।

दामजदश्री तृतीय

[श० सं० १७२ (या १७३)—१७६ (ई० स० २५० (या २५१)–२५४ = वि० सं० ३०७ (या ३०८—३११)]

यह दामसेन का पुत्र था और श०-सं०-१७२ या १७३ में अपने भाई विजयसेन का उत्तराधिकारी हुआ।

इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रियः" या "... ० श्रिय"—और सीधी तरफ़ संवत् लिखा रहता है।

रुद्रसेन द्वितीय

[शक-सं० १७८ (?)—१९६ (ई० स० २५६ (?)—२७४) = वि० सं० ३१३ (?)—३३१]

यह वीरदामा का पुत्र और अपने चचा दामजदश्री तृतीय का उत्तराधिकारी था।

इसके सिक्कों पर संवतों के साफ़ पढ़े न जाने के कारण इसके राज्य-समय का निश्चित करना कठिन है। इसके सिक्कों पर का सबसे पहला संवत् १७६ और १७९ के बीच का और आख़िरी १९६ होना चाहिए।

इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के

मिस (कुमारी) बानर्जी, बी० ए०, एल-एल० बी०।

इंडियन प्रेस, प्रयाग। (पृष्ठ ४३)

मिले हैं। इन पर उलटी तरफ़ "राज्ञः क्षत्रपस वीरदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस" और सीधी तरफ़ शक-सं० लिखा रहता है।

इसके दो पुत्र थे। विश्वसिंह और भर्तृदामा।

विश्वसिंह

[शक-सं० १९९–२०×[1] (ई० सं० २७७–२७×
= वि० सं० ३३४—३३×)]

यह रुद्रसेन द्वितीय का पुत्र था। यह शक-संवत् १९९ और २०० में क्षत्रप था, और शक-सं० २०१ में शायद महाक्षत्रप हो गया था। उस समय इसका भाई भर्तृदामा क्षत्रप था, जो शक-सं० २११ में महाक्षत्रप हुआ।

इसके सिक्कों पर के संवत् साफ़ नहीं पढ़े जाते हैं।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस वीश्वसीहस" और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस वीश्वसीहस" लिखा होता है। तथा सीधी तरफ़ औरों की तरह ही संवत् आदि होते हैं।

भर्तृदामा

[श०-सं० २०१—२१७ (ई० स० २७९–२९५
= वि० सं० ३३६–३५२)]

यह रुद्रसेन द्वितीय का पुत्र था और अपने भाई विश्वसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। श०-सं० २०१ में यह क्षत्रप हुआ और कम से कम श०-सं० २०४ तक अवश्य इसी पद पर रहा था। तथा श०-सं० २११ में महाक्षत्रप हो चुका था। उक्त संवतों के बीच के साफ़ संवत्वाले सिक्कों के न मिलने के कारण इस बात का पूरा पूरा पता लगाना कठिन है कि उक्त संवतों के बीच में कब तक यह क्षत्रप रहा और कब महाक्षत्रप हुआ। इसने श०-सं० २१७ तक राज्य किया था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर उलटी तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस भर्तृदाम्नः" और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस भर्तृदाम्नः" लिखा मिलता है।

इसके सिक्कों में से पहले के सिक्के तो इसके भाई विश्वसिंह के सिक्कों से मिलते हुए हैं और श०-सं० २११ के बाद के इसके पुत्र विश्वसेन के सिक्कों से मिलते हैं।

इसके पुत्र का नाम विश्वसेन था।

विश्वसेन

[श०-सं० २१६–२२६ (ई० स० २९४–३०४ =
वि० सं० ३५१–३६१)]

यह भर्तृदामा का पुत्र था। इसके श०-सं० २१६ से २२६ तक के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर "राज्ञो महाक्षत्रपस भर्तृदामपुत्रस राज्ञो क्षत्रपस विश्वसेनस" लिखा होता है। परन्तु इन सिक्कों पर के संवत् विशेषतर स्पष्ट नहीं मिले हैं।

(दूसरी शाखा)

पूर्वोक्त क्षत्रप विश्वसेन से इस शाखा की समाप्ति होगई और इनके राज्य पर स्वामी जीवदामा के वंशजों का अधिकार होगया। इस जीवदामा के नाम के साथ 'स्वामी' शब्द के सिवा 'राजा', 'क्षत्रप' या 'महाक्षत्रप' की एक भी उपाधि नहीं मिलती; परन्तु इसकी स्वामी की उपाधि से और

---

[1] यह अङ्क साफ़ नहीं पढ़ा जाता है।

नाम के पिछले भाग में 'दामा' शब्द के होने से अनुमान होता है कि इसके और चष्टन के वंशजों के आपस में कोई निकट का ही सम्बन्ध था। सम्भवतः यह उसी वंश की छोटी शाखा हो तो आश्चर्य नहीं।

पूर्वोक्त चष्टन के वंशजों में यह नियम था कि राजा की उपाधि महाक्षत्रप और उसके युवराज या उत्तराधिकारी की क्षत्रप होती थी। परन्तु इस (स्वामी जीवदामा) के वंश में श०-सं० २७० तक यह नियम नहीं मिलता है। पहले पहल केवल इसी (२७०) संवत् के स्वामी रुद्रसेन तृतीय के सिक्कों पर उसके पिता के नाम के साथ 'महाक्षत्रप' उपाधि लगी मिलती है।

महाक्षत्रप उपाधिवाले उक्त समय के सिक्कों के न मिलने से यह भी अनुमान होता है कि शायद उस समय इस राज्य पर किसी विदेशी शक्ति की चढ़ाई हुई हो और उसीका अधिकार हो गया हो। परन्तु जब तक अन्य किसी वंश के इतिहास से इस बात की पुष्टि न होगी तब तक यह विषय सन्दिग्ध ही रहेगा।

रुद्रसिंह द्वितीय

[श०-सं० २२७–२३×[1] (ई० स० ३०५–३१× = वि० सं० ३६२—३६×)]

यह स्वामी जीवदामा का पुत्र था। इसके सबसे पहले श०-सं० २२७ के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं और इसके पूर्व के श०-सं० २२६ तक के क्षत्रप विश्वसेन के सिक्के मिलते हैं। अतः पूरी तौर से नहीं कह सकते कि यह रुद्रसिंह द्वितीय श०-सं० २२६ में ही क्षत्रप होगया था या श०-सं० २२७ में हुआ था।

श०-सं० २३९ के इसके उत्तराधिकारी क्षत्रप यशोदामा के सिक्के मिले हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इसका अधिकार श०-सं० २२६ या २२७ से आरम्भ होकर श०-सं० २३९ की समाप्ति के पूर्व किसी समय तक रहा था।

इसके सिक्कों पर एक तरफ़ "स्वामी जीवदामपुत्रस राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसिहसः" और दूसरी तरफ़ मस्तक के पीछे संवत् लिखा मिलता है।

इसके पुत्र का नाम यशोदामा था।

यशोदामा द्वितीय

[श०-सं० २३९–२५४ (ई० स० ३१७–३३२ = वि० सं० ३७४–३८९)]

यह रुद्रसिंह द्वितीय का पुत्र था। इसके श०-सं० २३९ से २५४ तक के चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर "राज्ञ क्षत्रपस रुद्रसिहपुत्रस राज्ञक्षत्रपस यशोदाम्नः" लिखा रहता है। किसी किसी में 'दाम्नः' में विसर्ग नहीं लगे होते हैं।

स्वामी रुद्रदामा द्वितीय

इसका पता केवल इसके पुत्र स्वामी रुद्रसेन तृतीय के सिक्कों से ही मिलता है। उनमें इसके नाम के आगे 'महाक्षत्रप' की उपाधि लगी हुई है। भर्तृदामा के बाद पहले पहल इसीके नाम के साथ महाक्षत्रप की उपाधि लगी मिली है।

स्वामी जीवदामा के वंशजों के साथ इसका क्या सम्बन्ध था, इस बात का पता अब तक नहीं लगा है। सिक्कों में इस राजा के और इसके वंशजों के नामों के आगे "राजा महाक्षत्रप स्वामी" की उपाधियाँ लगी होती हैं। परन्तु स्वामी सिंहसेन के कुछ सिक्कों में "महाराजाक्षत्रप स्वामी" की उपाधियाँ लगी हैं।

---

[1] इसके सिक्कों के संवतों में से केवल २३१ तक के ही संवत् स्पष्ट पढ़े गये हैं। अगले संवतों के अङ्क साफ़ नहीं हैं।

इसके एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्र का नाम स्वामी रुद्रसेन था।

स्वामी रुद्रसेन तृतीय

[शा०-सं० २७०--३०० (ई० स० ३४८--३७८ =
वि० सं० ४०५--४३५)]

यह रुद्रदामा द्वितीय का पुत्र था। इसके चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर शा०-सं० २७० से २७३ तक के और शा०-सं० २८६ से ३०० तक के संवत् लिखे हुए हैं। परन्तु इस समय के बीच के १३ वर्षों के सिक्के अब तक नहीं मिले हैं। इन सिक्कों पर एक तरफ़ "राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रदामपुत्रस राज्ञ-महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस" और दूसरी तरफ़ संवत् लिखा रहता है।

इन सिक्कों के अक्षर आदि बहुत ही बुरी अवस्था में होते हैं। परन्तु पिछले समय के कुछ सिक्कों पर ये साफ़ साफ़ पढ़े जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि उस समय के अधिकारियों को भी इस बात का भय हुआ होगा कि यदि अक्षरों की दशा सुधारी न गई और इसी प्रकार उत्तरोत्तर बिगड़ती गई तो कुछ समय बाद इनका पढ़ना कठिन हो जायगा।

शा०-सं० २७३ से २८६ तक के १३ वर्ष के सिक्कों के न मिलने से अनुमान होता है कि उस समय इनके राज्य में अवश्य ही कोई बड़ी गड़बड़ मची होगी; जिससे सिक्के ढलवाने का कार्य बन्द हो गया था[1]। यही अवस्था क्षत्रप यशोदामा द्वितीय के और महाक्षत्रप स्वामी रुद्रदामा द्वितीय के राज्य के बीच भी हुई होगी।

शा०-सं० २८० से २९४ तक के कुछ सीसे के चौकोर सिक्के मिले हैं। ये क्षत्रपों के सिक्कों से मिलते हुए ही हैं। इनमें केवल विशेषता इतनी ही है कि उलटी तरफ़ चैत्य के नीचे ही संवत् लिखा होता है।

परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ये सिक्के स्वामी रुद्रसेन तृतीय के ही हैं या इसके राज्य पर हमला करनेवाले किसी अन्य राजा के हैं[1]।

स्वामी सिंहसेन

[शा०-सं० ३०४ × ३० ×[2] (ई०स० ३८२ × ३८४ ? =
वि० सं० ४३९–४४१ ?)]

यह स्वामी रुद्रसेन तृतीय का भानजा था। इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ़ "राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वस्त्रियस्य स्वामी सिंहसेनस" या "महाराज क्षत्रप स्वामी रुद्रसेन स्वस्त्रियस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी सिंहसेनस्य" और दूसरी तरफ़ शा०-सं० ३०४ लिखा रहता है। परन्तु एक सिक्के पर ३०६ भी पढ़ा जा सकता[3] है।

इसके सिक्कों पर के अक्षर बहुत ही ख़राब हैं। इससे इसके नाम के पढ़ने में भ्रम हो जाता है; क्योंकि इसमें लिखे 'ह' और 'न' में अन्तर प्रतीत नहीं होता। अतः 'सिंह' को 'सेन' और 'सेन' को 'सिंह' भी पढ़ सकते हैं।

हम पहले लिख चुके हैं कि इसके कुछ सिक्कों पर "राजा महाक्षत्रप" और कुछ पर "महाराजा क्षत्रप" लिखा होता है। परन्तु यह कहना कठिन है कि उपर्युक्त परिवर्तन किसी ख़ास सबब से हुआ

---

[1] J. B. B. R. A. S., Vol. XX, (1899), p. 209.

[1] Rapson's catalogue of the Andhra and Kshatrap dynasty, p. CXLV & CXLVI.

[2] यह अङ्क साफ़ नहीं पढ़ा जाता है।

[3] Rapson's catalogue of the Andhra and Kshatrap dynasty, p. CXLVI.

था या योंही हो गया था। यह भी सम्भव है कि "महाराजा" की उपाधि की नक़ल इसने अपने पड़ोसी दक्षिण के त्रैकूटक राजाओं के सिक्कों से की हो; क्योंकि ई० स० २४९ में इन्होंने अपना त्रैकूटक संवत् प्रचलित किया था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय त्रैकूटकों का प्रभाव खूब बढ़ा हुआ था। यह भी सम्भव है कि ये त्रैकूटक राजा ईश्वरदत्त के उत्तराधिकारी हों और इन्हीं की चढ़ाई आदि के कारण रुद्रसेन तृतीय के राज्य में १३ वर्ष के लिए और उसके पहले (श०-सं० २५४ और २७० के बीच) भी सिक्के ढालना बन्द हुआ हो।

सिंहसेन के कुछ सिक्कों में संवत् के अङ्कों के पहले 'वर्षे' लिखा होने का अनुमान होता है[1]।

इसके पुत्र का नाम स्वामी रुद्रसेन था।

स्वामी रुद्रसेन चतुर्थ

[श०-सं० ३०४–३१० (ई० स० ३८२–३८८ = वि० सं० ४३९–४४५) के बीच[1]]

यह स्वामी सिंहसेन का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके बहुत थोड़े चाँदी के सिक्के मिले हैं। इन पर "राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी सिंहसेन पुत्रस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस" लिखा होता है। इसके सिक्कों पर के अक्षर ऐसे ख़राब हैं कि इनमें राजा के नाम के अगले दो अक्षर 'रुद्र' अन्दाज़ से ही पढ़े गये हैं। इन सिक्कों पर के संवत् भी नहीं पढ़े जाते। इसलिए इसके राज्य-समय का पूरो तौर से निश्चित करना कठिन है। केवल इसके पिता सिंहसेन के सिक्कों पर के श०-सं० ३०४ और इसके बाद के स्वामी रुद्रसिंह तृतीय के सिक्कों पर के संवत् पर विचार करने से इसका समय श०-सं० ३०४ और ३१० के बीच किसी समय प्रतीत होता है।

स्वामी सत्यसिंह

इसका पता केवल इसके पुत्र स्वामी रुद्रसिंह तृतीय के सिक्कों से ही लगता है। अतः यह कहना भी कठिन है कि इसका पूर्वोक्त शाखा से क्या सम्बन्ध था। शायद यह स्वामी सिंहसेन का भाई हो। इसका समय भी श०-सं० ३०४ और ३१० के बीच ही किसी समय होगा।

स्वामी रुद्रसिंह तृतीय

[श०-सं० ३१× [1](ई० स० ३८८ ? = वि० सं० ४४५ ?)]

यह स्वामी सत्यसिंह का पुत्र और इस वंश का अन्तिम अधिकारी था। इसके चाँदी के सिक्कों पर एक तरफ़ "राज्ञो महाक्षत्रपस स्वामी सत्यसिंह पुत्रस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसिंहस" और दूसरी तरफ़ श०-सं० ३१×[1] लिखा होता है।

समाप्ति

ईसा की तीसरी शताब्दी के उत्तरार्ध से ही गुप्त राजाओं का प्रभाव बढ़ रहा था और इसीके कारण आस-पास के राजा उनकी अधीनता स्वीकार करते जाते थे। इलाहाबाद के समुद्रगुप्त के लेख से पता चलता है कि शक लोग भी उस (समुद्रगुप्त) की सेवा में रहते थे। ई० स० ३८० में समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा। इसने ई० स० ३८८ के आस-पास रहे-सहे शकों के राज्य को भी छीनकर अपने राज्य में मिला लिया और इस तरह भारत में शक-राज्य की समाप्ति होगई।

---

[1] Rapson's catalogue of the coins of the Andhra and Kshatrapa dynasty, p. CXLVIII.

[1] यह अङ्क साफ़ नहीं पढ़ा जाता है।

(६)

पश्चिमी क्षत्रपों का वंश-वृक्ष ।

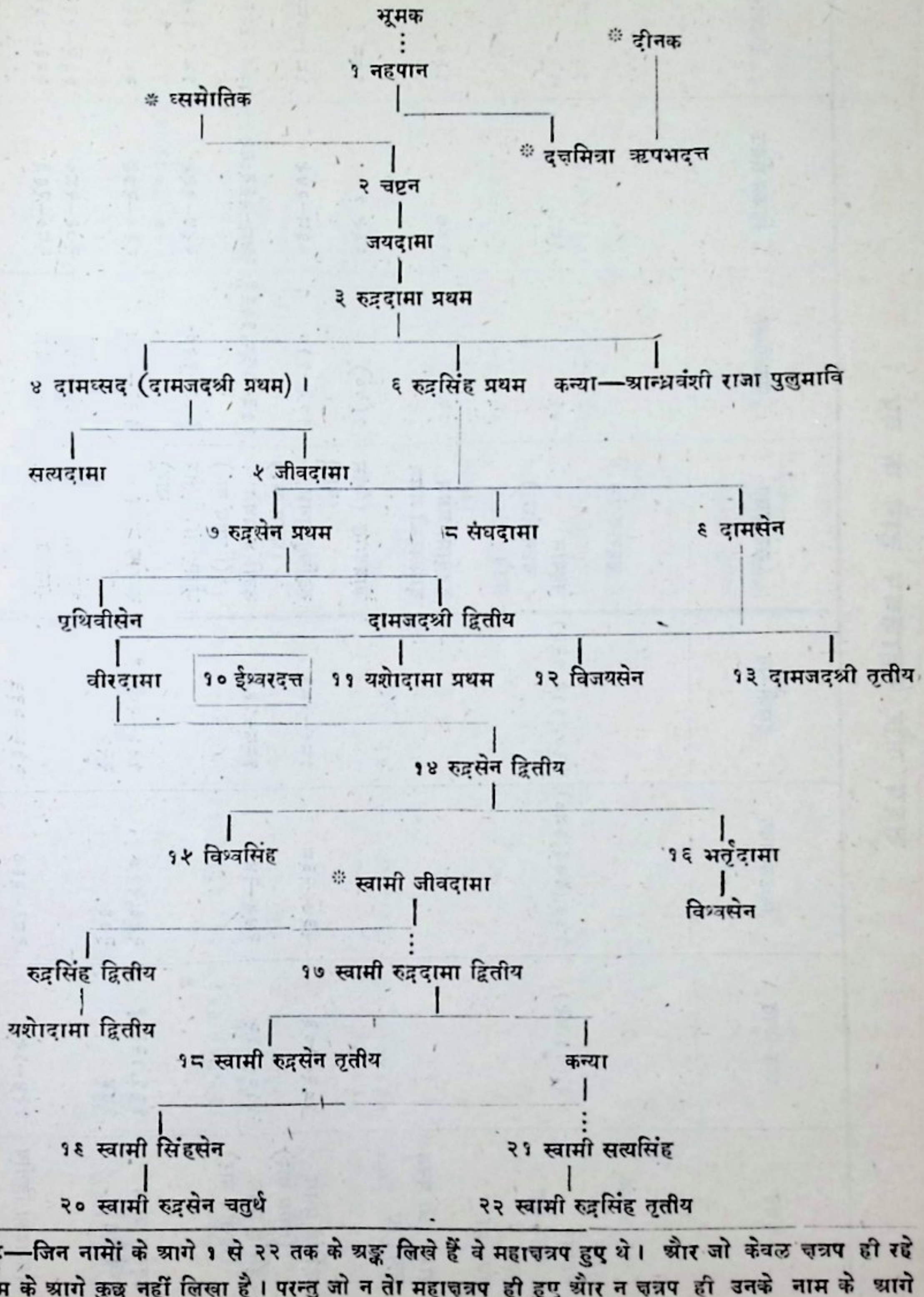
भूमक
* दीनक
१ नहपान
* घ्समोतिक
* दक्षमित्रा ऋषभदत्त
२ चष्टन
जयदामा
३ रुद्रदामा प्रथम
४ दामघ्सद (दामजदश्री प्रथम)।
६ रुद्रसिंह प्रथम
कन्या—आन्ध्रवंशी राजा पुलुमावि
सत्यदामा
५ जीवदामा
७ रुद्रसेन प्रथम
८ संघदामा
९ दामसेन
पृथिवीसेन
दामजदश्री द्वितीय
वीरदामा
१० ईश्वरदत्त
११ यशोदामा प्रथम
१२ विजयसेन
१३ दामजदश्री तृतीय
१४ रुद्रसेन द्वितीय
१५ विश्वसिंह
१६ भर्तृदामा
* स्वामी जीवदामा
विश्वसेन
रुद्रसिंह द्वितीय
१७ स्वामी रुद्रदामा द्वितीय
यशोदामा द्वितीय
१८ स्वामी रुद्रसेन तृतीय
कन्या
१९ स्वामी सिंहसेन
२१ स्वामी सत्यसिंह
२० स्वामी रुद्रसेन चतुर्थ
२२ स्वामी रुद्रसिंह तृतीय

नोट—जिन नामों के आगे १ से २२ तक के अङ्क लिखे हैं वे महाक्षत्रप हुए थे। और जो केवल क्षत्रप ही रहे थे उनके नाम के आगे कुछ नहीं लिखा है। परन्तु जो न तो महाक्षत्रप ही हुए और न क्षत्रप ही उनके नाम के आगे तारे का (*) चिह्न लगा दिया गया है।

क्षत्रप और महाक्षत्रप होने के वर्ष ।

क्षत्रप	शक-संवत्	विक्रम-संवत्	ईसवी-सन्	महाक्षत्रप	शक-संवत्	विक्रम-संवत्	ईसवी-सन्
(छहरात-वंश)				(छहरात-वंश)			
भूमक							
नहपान	४२,(४१,४५)	१७७,(१७६,१८०)	१२०,(११६,१२३)	नहपान	४६	१८१	१२४
(चष्टन-वंश)				(चष्टन-वंश)			
चष्टन				चष्टन			
जयदामा							
				रुद्रदामा प्रथम	७२	२०७	१५०
दामजदश्री प्रथम				दामजदश्री प्रथम			
सत्यदामा							
				जीवदामा (प्रथम बार)	१(००)	२३५ ?	१७८ ?
रुद्रसिंह प्रथम (प्रथम बार)	१०२–१०३	२३७–२३८	१८०–१८१	रुद्रसिंह प्रथम (प्रथम बार)	१०३–११०	२३८–२४५	१८१–१८८
रुद्रसिंह प्रथम (द्वितीय बार)	११०–११२	२४५–२४७	१८८–१९०	रुद्रसिंह प्रथम (द्वितीय बार)	११३–११८,११९?	२४८–२५३,२५४?	१९१–१९६,१९७ ?
				जीवदामा (द्वितीय बार)	११९–१२०	२५४–२५५	१९७–१९८
रुद्रसेन प्रथम	१२१,१२२ ?	२५६,२५७ ?	१९९–२०० ?	रुद्रसेन प्रथम	१२२–१४४	२५७–२७९	२००–२२२
पृथ्वीसेन	१४४	२७९	२२२				
				संवदामा	१४४–१४५	२७९–२८०	२२२–२२३
				दामसेन	१४५–१५८	२८०–२९३	२२३–२३६
दामजदश्री द्वितीय	१५४–१५५	२८९–२९०	२३२–२३३				
वीरदामा	१५६–१६०	२९१–२९५	२३४–२३८				
				ईश्वरदत्त	राज्य वर्ष १–२		

क्षत्रप	शक-संवत्	विक्रम-संवत्	ईसवी सन्	महाक्षत्रप	शक-संवत्	विक्रम-संवत्	ईसवी-सन्
यशोदामा प्रथम	१६०	२९५	२३८	यशोदामा प्रथम	१६१	२९६	२३९
विजयसेन	१६०	२९५	२३८	विजयसेन	१६२–१७२	२९७–३०७	२४०–२५०
				दामजदश्री तृतीय	१७२ ?,१७३–१७६	३०७?,३०८–३११	२५० ?,२५१–२५४
				रुद्रसेन द्वितीय	१७८ ?–१९६	३१३ ?–३३१	२५६ ?–२७४
विश्वसिंह	१९९,२००,२०१ ?	३३४,३३५,३३६?	२७७,२७८,२७९?	विश्वसिंह			
भर्तृदामा	२०१–२०४	३३६–३३९	२७९–२८२	भर्तृदामा	२× ×,२११-२१७	३३९?,३४६–३५२	२८२,२८९–२९५
विश्वसेन	२१६–२२६	३५१–३६१	२९४–३०४				
(रुद्रसिंह द्वितीय का वंश)				(रुद्रसिंह द्वितीय का वंश)			
रुद्रसिंह द्वितीय	२२७–२३ ×	३६२–३७० ?	३०५–३१३ ?				
यशोदामा द्वितीय	२३९–२५४	३७४–३८९	३१७–३३२				
(————)				(————)			
				स्वामी रुद्रदामा द्वितीय			
				स्वामी रुद्रसेन तृतीय	२७०–३००	४०५–४३५	३४८–३७८
				स्वामी सिंहसेन	३०४–३० ×	४३९–४४१ ?	३८२–३८४ ?
				स्वामी रुद्रसेन चतुर्थ			
(————)				(————)			
				स्वामी सत्यसिंह			
				स्वामी रुद्रसिंह तृतीय	३१०, या ३१ ×	४४५ या ४४ ×	३८८ या ३८ ×

ई० स० १५० के समय का अन्ध्रों और क्षत्रपों के राज्य का नक़शा ।

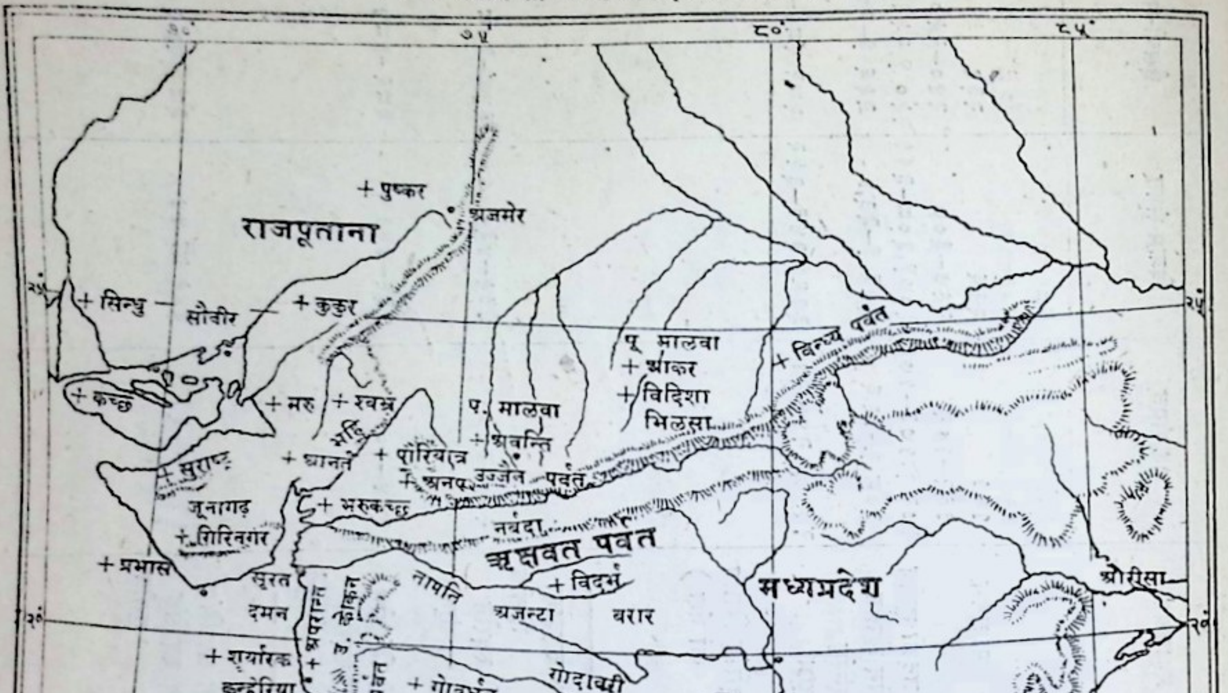
७०
७५
८०
८५
२५
२०
१५
१०
+ पुष्कर
अजमेर
राजपूताना
+ सिन्धु
सौवीर
+ कुकुर
+ कच्छ
+ मरु
+ श्वभ्र
मही
+ सुराष्ट्र
+ आनर्त
+ पारियात्र
+ अनूप
उज्जैन
पर्वत
+ भरुकच्छ
जूनागढ़
+ गिरिनगर
+ प्रभास
सूरत
दमन
नर्मदा
ऋक्षवत पर्वत
+ विदर्भ
तापति
अजन्टा
बरार
पू. मालवा
+ आकर
+ विदिशा
भिलसा
+ विन्ध्य पर्वत
प. मालवा
+ अवन्ति
मध्यप्रदेश
ओरीसा
+ अपरान्त
उ. कोंकण
+ शूर्पारक
कन्हेरिया
बंबई
+ सह्य पर्वत
+ गोवर्धन
नासिक
नानाघाट
पैठन
जुन्नर
महाराष्ट्र
कर्ले
+ मामाल
पूना
सतारा
कोल्हापुर
+ दक्षिणापथ
गोदावरी
+ आन्ध्र देश
अमरावती
+ श्रीकाकुलम्
गुदिवद
गोदावरी
कृष्णा
+ कलिंग
मद्रास
चित्र
+ सह्य पर्वत
कर्वार
बनवासी
+ वैजयन्ती
शिमोगा
अनन्तपुर
चिंतलदुर्ग
कुडप्पह
पूर्वी घाट
माइसोर
मद्रास
कुड्डलोर
+ जिनके आगे ऐसे चिह्न लगे हैं
वे उस समय के नाम हैं ।
बाक़ी के नाम आधुनिक हैं ।
नाप—१ इंच में २०० मील ।

साहित्याचार्य्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ ।

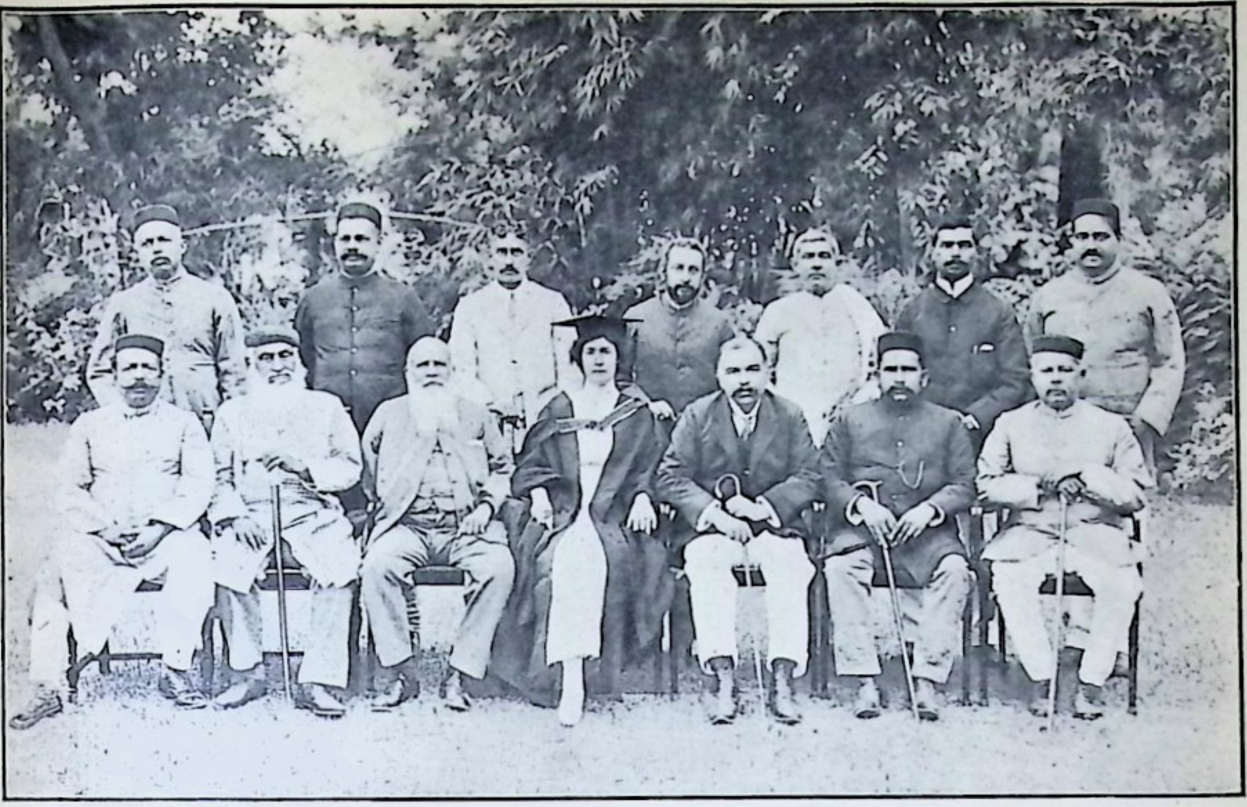

बालिका-विद्यालय, कानपुर की कमेटी।

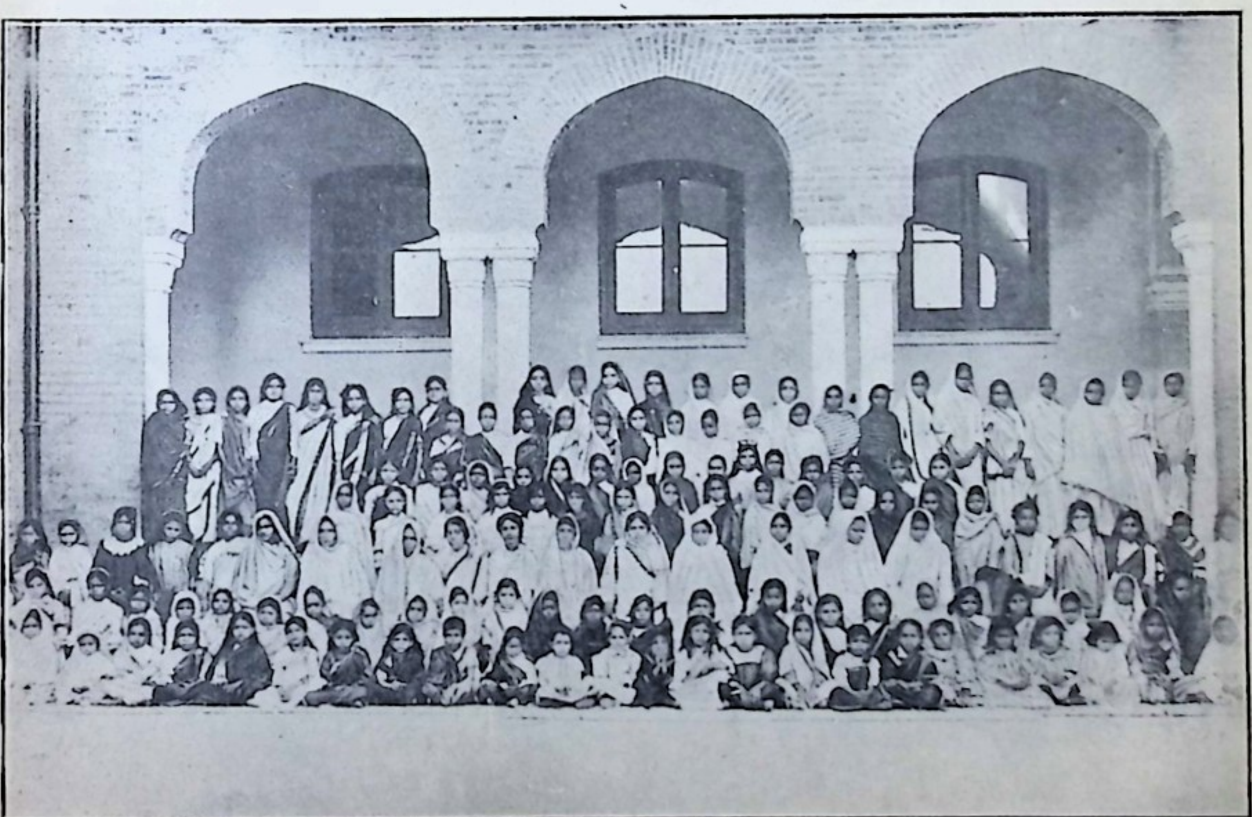

बालिका-विद्यालय, कानपुर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भारतीय शिक्षा-प्रणाली के कुछ दोष ।

संसार-व्यापक सङ्ग्राम के समाप्त होने पर प्रत्येक जाति अपनी उन्नति के प्रश्न को नवीन उत्साह से सोच रही है। युवकों की शिक्षा का प्रश्न साधारण नहीं है; यह उन्नत आङ्ग्लदेश में लड़ाई ही के समय उठा था। हालडेन साहब की कमीशन उसी प्रश्न को निर्धारित करने के लिए पहले से ही बैठी थी। महाशय फ़िशर, जो शिक्षा-सम्बन्धी बातों में बहुत दक्ष हैं, नवीन गवर्नमेंट में शिक्षा-विभाग के अधिष्ठाता नियत किये गये हैं। जब सब देश अपने बालकों को उत्तम से उत्तम शिक्षा देने को उद्यत हैं तब यह स्वाभाविक ही है कि भारतवर्ष को भी अपने युवकों के उद्धार के लिए कुछ सोचना चाहिए। इस लेख में आधुनिक शिक्षा-सम्बन्धी कुछ दोष दिखाये गये हैं और यह अच्छा होगा कि इस देश के भी विद्वान् और विशेष कर काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय उनको मिटाने का शीघ्र प्रयत्न करे।

आधुनिक शिक्षा का आरम्भ भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज के अन्तिम समय में हुआ। उसी समय गवर्नमेंट ने विद्याप्रचार करना अपना कर्तव्य ठहराया, या यों कहिए, उसे क्लर्कों और अन्य छोटे ओहदेदारों की आवश्यकता पड़ी, अतः कुछ भारतवासियों को अँगरेज़ी सिखाना अनिवार्य्य समझा गया। अँगरेज़ी द्वारा शिक्षा देना १८३५ ईसवी में महाशय मेकाले के मतानुसार निश्चित किया गया था। अर्द्ध शताब्दी से अधिक के अनुभव से यह प्रकट है कि हम लोगों की शिक्षा-प्रणाली दोष-रहित नहीं है।

कुछ समय से यहाँ के विचारशील विद्वान् भी सोचने लगे हैं कि हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली कैसे सुधारनी चाहिए। हम लोगों की शिक्षा का प्रथम और सबसे भयङ्कर दोष यह है कि भारतीय बालकों को विदेशी भाषा-द्वारा शिक्षा दी जाती है। अन्य देशों में वहाँ के बालक, अपनी मातृभाषा द्वारा, जिसमें कि वे अपने माता-पिता से वार्तालाप करते हैं, उच्च से उच्च शिक्षा पाते हैं। परन्तु इस देश में उलटी रीति के कारण बालकों को बहुत शारीरिक और मानसिक हानियाँ उठानी पड़ती हैं। ज्योंही बालक तीसरी कक्षा में पहुँचता है उसे अँगरेज़ी आरम्भ करनी होती है। नवें दर्जे से तो उसे प्रत्येक विषय अँगरेज़ी ही में पढ़ना पड़ता है। विदेशी भाषा के शब्द और वाक्य रटे विना काम नहीं चलता। कुशाग्र से कुशाग्र बुद्धि के बालक को कठिनाइयों का सामना करना होता है। इतिहास ऐसा रोचक विषय नीरस प्रतीत होता है और कठिनता के विना याद नहीं होता। साधारण विद्यार्थी का तो कहना ही क्या, अच्छों अच्छों की समझ में पुस्तकों की भाषा सहज में नहीं आती। अध्यापक यदुनाथ सरकार ने माडर्न-रिव्यू में गत वर्ष “मातृभाषा-द्वारा शिक्षा” नाम का एक लेख लिखा था। उसमें वह कहते हैं—“यद्यपि मैं कलकत्ता-युनिवर्सिटी की दृष्टि में अँगरेज़ी का एक अच्छा विद्वान् समझा जाता हूँ तथापि मुझे इतिहास की पुस्तक की भाषा समझने में कठिनाई पड़ती थी”। ऐसा ही हाल अधिकतर अन्यत्र पाया जाता है। अपने विचारों को अन्य भाषा द्वारा प्रकट करने में तो और भी कठिनता प्रतीत होती है और बहुधा बालकों को अध्ययन से इतनी घृणा हो जाती है कि वे पुस्तकों को तिलाञ्जलि देने पर उतारू हो जाते हैं। इसका स्वाभाविक फल यह होता है कि उन्नति तो बहुत साधारण होती है परन्तु हानियाँ बहुत। भारतीय विद्यार्थी इतना कठिन परिश्रम करने पर भी इतनी कम संख्या में उत्तीर्ण होते हैं कि परीक्षा-फल देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है। ऐसा होने पर भी

इस देश के बालक वही बातें कालेज में सीखते हैं जो इँगलेंड और जर्मनी के स्कूलों में सिखाई जाती हैं। यही नहीं, कालेज के अधिकतर विद्यार्थी आरटिकिल (article) का ठीक ठीक प्रयोग नहीं जानते—कुछ पृष्ठ शुद्ध अँगरेज़ी लिखना तो दूर रहा। भारतीय विद्यार्थी कोई नवीन बात नहीं सोच सकते और न कोई आविष्कार ही कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें विदेशी भाषा के शब्द और वाक्य रटने से तो अवकाश मिलता ही नहीं। इसमें उनका क्या दोष ? यह तो विदेशी भाषा की बलिहारी है ! शोक कि भारतीय बालकों को इतने कष्ट उठाने पड़ें ! गत वर्ष लार्ड रोनाल्डशे ने अपने कलकत्ता-यूनिवर्सिटी कनवोकेशन के भाषण में कहा था कि मुझे भारतीय बालकों को उस पुरानी अँगरेज़ी पढ़ाने से कोई लाभ नहीं दीख पड़ता जिसका आज-कल बोलचाल और लिखने-पढ़ने में प्रयोग नहीं किया जाता। उन्हें नवीन प्रचलित अँगरेज़ी और शुद्ध उत्तम विचार सिखलाना चाहिए। श्रीमान् गवर्नर महोदय इस बात पर शोक प्रकट करते हैं कि इस देश के विद्यार्थी पश्चिमी तत्त्ववेत्ताओं—मिल, बरक्ले—के सम्बन्ध में जितना जानते हैं उतना श्रीशङ्कराचार्य्य के विषय में नहीं, जो भारतीय तत्त्वज्ञान में इतने बढ़े-चढ़े थे। वह यहाँ तक कहते हैं कि इसकी आवश्यकता नहीं कि भारतीय विद्यार्थी शेक्सपियर और मिलटन को भली भाँति समझें। बहुत से विद्वानों का कथन है कि इस देश के बालक पश्चिमी साहित्य-सम्राटों को भली भाँति नहीं समझते, अतः साधारण बुद्धिवाले विद्यार्थी को उनके पढ़ने से विशेष लाभ नहीं होता।

बहुधा लोग कहते हैं कि भारतवर्ष में शिक्षा और दैनिक जीवन से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह अक्षरशः सत्य है, क्योंकि यहाँ की शिक्षा थोड़ी सी पुस्तकों पर ही निर्भर है। संसार की आवश्यकताओं का ज्ञान यहाँ के विद्यार्थियों को बहुत कम होता है। वे खाद्य-पदार्थों का भाव तक नहीं जानते और बाज़ार में जाकर शाक-पात मोल लेना तो मानहानि समझते हैं। अतः जब वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं तब उनकी पुस्तकों का ज्ञान उन्हें यथेष्ट सहायता नहीं देता। सैकड़ों ग्रेजुयट उद्देश-रहित इधर-उधर नौकरी की खोज में मारे मारे फिरते हैं या वकीलों और डाक्टरों की बढ़ी हुई संख्या को और भी बढ़ाते हैं। अतः गवर्नमेंट को चाहिए कि ऐसी भी पाठशालायें खोले जिनमें कला-कौशल, व्यापार, कृषिविद्या और अन्य लाभदायक बातें सिखाई जायँ और विद्यार्थी अध्ययन को समाप्त करने पर अपना और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण भलीभाँति कर सकें।

इस देश की शिक्षा का प्रभाव विद्यार्थियों के आचरण के सङ्गठन पर बहुत कम पड़ता है। शिक्षक और शिष्य केवल चार पाँच घण्टे साथ रहते हैं, और वह समय पठन-पाठन में व्यतीत होता है। विद्यार्थी अपने अध्यापकों की रहन-सहन से बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं और उनके अच्छे गुणों से लाभ नहीं उठा सकते। अतः यहाँ प्राचीन गुरुकुल की प्रणाली (Residential system in Schools and Colleges) फिर से स्थापित की जानी चाहिए ताकि गुरु का उच्चादर्श शिष्य के सामने सदा रहे और वह अध्यापक से सङ्कोचरहित वार्तालाप कर बहुत कुछ सीखे।

यहाँ और सब बातों के साथ प्रवीण और चतुर शिक्षकों की भी कमी है। बहुधा गुरुजन उतना ही जानते हैं जितना उन्हें पढ़ाना होता है। यह बुरी बात है। गुरु का ज्ञान जितना ही गम्भीर और अथाह हो उतना ही अच्छा। यहाँ धुरन्धर विद्वानों के अभाव का कारण यह है कि अध्यापकों को वेतन बहुत थोड़ा मिलता है। अतः अच्छे अच्छे ग्रेजुयट दूसरे विभागों में चले जाते हैं जहाँ

उनकी आय अधिक होती है और शिक्षा का भार अधिकतर ऐसे ही लोग उठाते हैं जिनकी योग्यता साधारण होती है और जिन्हें अपना भविष्य उज्ज्वल नहीं दीखता। गवर्नमेंट को चाहिए कि शिक्षकों का वेतन बढ़ावे और उन्हें और सुविधायें दे ताकि अच्छे अध्यापकों की कमी मिट जावे।

इन बातों के अतिरिक्त यहाँ पाठशाला का समय देश की जलवायु के अनुसार नहीं है। यह गरम देश है। विद्यार्थी दस बजे भोजन करके पाठशाला को जाते हैं। बहुधा उदरपूर्ण होने के कारण आलस्य का आक्रमण होता है और परिश्रम से पढ़ाया हुआ पाठ भी उनको अधिक लाभ नहीं पहुँचाता। अतः शरद ऋतु को छोड़कर पाठशाला प्रातःकाल लगनी चाहिए, ताकि विद्यार्थी ध्यानपूर्वक पाठ को सुनें और उससे यथार्थ लाभ उठावें।

सबसे भयङ्कर दोष तो यहाँ परीक्षा-प्रणाली में है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ढाई तीन घंटे का पर्चा दो वर्ष की पढ़ाई को भलीभाँति नहीं जाँच सकता। परीक्षा के दिन नियत होते हैं। यदि कोई विद्यार्थी दुर्भाग्यवश रुग्ण हो जाता है या उसके कुटुम्ब पर कोई अचानक आपत्ति आ पड़ती है—तो उसे एक वर्ष और बैठना पड़ता है। अतः ऐसी कोई बात सोची जानी चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उन बातों से हानि न उठानी पड़े जिनमें वे विवश हैं। आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज की भाँति यहाँ भी विद्यार्थियों की परीक्षा आगामी वर्ष उन्हीं विषयों में होनी चाहिए जिनमें वे सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं। ऐसा न करने का दुष्फल यह होता है कि एक वर्ष अँगरेज़ी में, दूसरे वर्ष इतिहास में और तीसरे वर्ष गणित में वे लोग गड़बड़ा जाते हैं और इसी भाँति कई वर्ष तक—सब विषयों में एक साथ उत्तीर्ण न होने के कारण—सफलता से वञ्चित रहते हैं। इस कुप्रथा से कैसे कैसे घोर अनर्थ उत्पन्न होते हैं, वे सब प्रत्यक्ष हैं और इसीने सहस्रों विद्यार्थियों के जीवन पर असफलता की मोहर लगा दी है। इन्हीं बातों को दृष्टिगोचर कर दूरदर्शी विद्वानों का मत है कि परीक्षा-प्रणाली का सुधार आवश्यकीय है। विद्यार्थियों को एक वर्ष में कई अवकाश परीक्षा के लिए दिये जाने चाहिए। उनकी परीक्षा उन्हीं विषयों में होनी चाहिए जिनमें वे उत्तीर्ण नहीं हो सके हैं। कुछ विचारशील शिक्षकों का कथन है कि दैनिक अध्ययन से, न कि वार्षिक परीक्षा से सफलता का निर्णय किया जाना उचित है। कौन विद्यार्थी सफलता योग्य है और कौन नहीं, इसमें उस अध्यापक की बात मानी जानी चाहिए जिसने उन्हें बराबर पढ़ाया है। ऐसा करने से अनेक आपत्तियाँ दूर हो सकती हैं और विद्यार्थी लोगों को भी नियमपूर्वक दैनिक अध्ययन में अधिक उत्तेजना मिल सकती है। काशी-विश्व-विद्यालय के भूतपूर्व वाइस-चान्सलर सर शिवस्वामी आयर ने हिन्दू-यूनिवर्सिटी कनवोकेशन के समय अपने भाषण में परीक्षा-प्रश्न के सम्बन्ध में कई महत्त्व-पूर्ण बातें कही हैं और हम लोगों को आशा करनी चाहिए कि वाइस-चान्सलर महोदय के सुविचार यूनिवर्सिटी शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत करेगी।

यों तो भारतीय शिक्षा-प्रणाली में बहुत और दोष हैं परन्तु वे इतने भयानक नहीं। गवर्नमेंट को इन्हें दूर करने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए और जनता को भी चुप बैठना उचित नहीं। गत मास वाइसराय महोदय ने कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के कनवोकेशन के समय कहा है कि कलकत्ता-यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा-विभाग में सुधार किये जायँगे। औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट तो निकल चुकी है; देखना है कि कहाँ तक यह सुधार में सहायता देती है। श्रीमान् सर हारकोर्ट बटलर ने २५ जनवरी, १९१९ को इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी-कनवोकेशन के समय वचन दिया है कि लखनऊ और आगरे में भी यूनिवर्सिटी स्थापित होगी। ईश्वर करे कि उनके

सुविचार भी उन्हीं की गवर्नमेंट में कार्यरूप में दीख पड़ें। तथापि उस समय तक भारतवर्ष के उद्धार की कोई आशा नहीं है जब तक कला-कौशल, व्यापार, औद्योगिक और अन्य उपयोगी बातों की शिक्षा हमारे नवयुवकों को न दी जावे।

गुरुनारायण मेहरोत्र, बिलग्रामी बी० ए०

महाराजा नन्दकुमार की फाँसी।

महाराजा नन्दकुमार के नाम से बहुत से पाठक परिचित होंगे। इनका नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदा लिखा जाता है और लिखा जायगा। ये कोई बड़े भारी शासक या नैतिज्ञ न थे और न इन्होंने हैदरअली या शिवाजी की भांति कोई राज्य ही स्थापन किया था। इन्होंने देश के हित के लिए कोई विशेष कार्य्य भी नहीं किया जिससे कि ये इतिहास में स्थान पाते। इनका नाम केवल इस कारण प्रसिद्ध है कि इन्होंने भारतवर्ष के प्रसिद्ध गवर्नर जनरल वारन हेस्टिङ्ग के विरुद्ध रिशवत का इलज़ाम लगाया था। इसके पूर्व कि उक्त लाट महोदय की पूरी पूरी सफ़ाई हो जाय, महाराजा नन्दकुमार पर जालसाज़ी का अभियोग ठीक उसी समय पर चलाया गया और कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट ने इँगलेंड के उस समय के प्रचलित क़ानून के अनुसार उनके प्राणदण्ड की आज्ञा दी। इन घटनाओं से उस समय की जनता ने और कुछ इतिहासज्ञों ने यह निश्चय किया कि लाट महोदय ने अपनी बचत के लिए नन्दकुमार पर जालसाज़ी का अभियोग चलवाया और उनके परम मित्र तथा सहपाठी चीफ़ जस्टिस सर इलिजा इम्पी ने धींगा-धींगी के साथ महाराजा साहब को फांसी पर लटकवा दिया! इस लेख में यह विचार किया जायगा कि इस दोषारोपण में कहाँ तक सत्य का अंश है।

पूर्व इसके कि असली मुक़द्दमे का हाल लिखा जावे, नन्दकुमार के जीवन का हाल थोड़ा सा संक्षेप में लिखना आवश्यक है। ये एक साधारण कोटि के ब्राह्मण थे और इनके पिता पद्मनाभ अलीवर्दी ख़ाँ नवाब-बङ्गाल के समय में अमीन थे। नन्दकुमार का प्रारम्भिक जीवन कुछ सुखमय न था। उसके सम्बन्ध में कुछ विशेष हाल भी नहीं मालूम है। सिराजुद्दौला के समय में नन्दकुमार हुगली के फ़ौजदार थे और अँगरेज़ी काग़ज़ातों से मालूम होता है कि इन्होंने क्लाइव से रिशवत लेकर उसे फ़्रांसीसियों से चन्द्-नगर ले लेने दिया। इसके बाद जब तक क्लाइव बङ्गाल में रहा नन्दकुमार का बोल-बाला रहा, परन्तु उसके जाने के बाद नन्दकुमार की शक्ति घट गई और उसके उत्तराधिकारी बङ्गाल के कर्म्मचारी नन्दकुमार से असन्तुष्ट रहे। इसका कारण यह था कि नन्दकुमार ने जब देखा कि अँगरेज़ों का साथ देने से हमारा अधिक लाभ नहीं हो रहा है, बरन उनका ऐश्वर्य्य और प्रताप नवाब के आधिपत्य की हानि कर बङ्गाल में जम रहा है, तब नन्दकुमार उनके विरुद्ध कार्य्य करने लगे। शाहज़ादा अर्थात् शाह आलम ने जब बङ्गाल पर आक्रमण किया तब नन्दकुमार उनसे तथा शुजाउद्दौला से चुपके चुपके पत्र-व्यवहार करते थे। भेद खुल जाने पर नन्दकुमार नज़रबन्द होकर कलकत्ते में रक्खे गये। मीर जाफ़र जब द्वितीय बार नवाब बनाया गया तब नन्दकुमार उनके दीवान नियत हुए और उसके मरने पर नजुमुद्दौला के आसन ग्रहण करने पर नन्दकुमार ने मुग़ल बादशाह से उनकी नियुक्ति का फ़रमान मँगवाया। इस घटना के बाद शीघ्र ही नन्दकुमार नज़रबन्द हुए और क्लाइव के जाने पर भी उनको कुछ सहायता न पहुँच सकी। कारण यह है कि उनमें इतने दोष सिद्ध कर दिये गये कि कलकत्ते की कमेटी ने नन्दकुमार को स्वाधीनता अथवा पद देना कम्पनी के लिए नितान्त हानिकारक समझा।

थोड़े दिनों तक, लगभग ६ वर्ष, नन्दकुमार बङ्गाल के राजनैतिक मैदान में न दिखलाई दिये। एकाएक उनका सितारा १७७२ में कुछ दमदमा उठा। मुहम्मद रज़ा ख़ाँ, जो कि बङ्गाल का नायब सूबा था, क़ैद किया गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसके शासन की जाँच करनी चाही और उस पर रुपया उड़ा देने और अकाल के समय अत्याचार करने के सम्बन्ध में अपराध लगाये। नन्दकुमार का द्रोह मुहम्मद रज़ा ख़ाँ से बहुत पुराना था और वह नन्दकुमार के बङ्गाली हिसाब-किताब और लगान इत्यादि से भली भांति

परिचित भी था, इसलिए वारन हेस्टिङ्ग ने, जो कि इस समय लाट था, नन्दकुमार को रज़ा ख़ाँ के विरुद्ध प्रमाण इकट्ठा करने के लिए कहा। नन्दकुमार की आशा-लता फिर लहलहा उठी, परन्तु डाइरेक्टरों का मन्तव्य तो कुछ और ही था। वे रज़ा ख़ाँ की मान-हानि करके उसके आतङ्क को बङ्गाल से हटाकर सब बन्दोबस्त अपने हाथ में लेना चाहते थे। दो वर्ष की जांच के बाद रज़ा ख़ाँ कारागार से मुक्त हुआ। कम्पनी ने लगान का सब इन्तिज़ाम अपने हाथ में ले लिया। नन्दकुमार, जो कि रज़ा ख़ाँ के पद पर अपनी आशा जमाये थे, उसको न पाकर और उसके लिए वारन हेस्टिङ्ग को दोषी समझ, अपना बदला लेने के लिए अवसर खोजने लगे।

१७७४ के अक्टूबर महीने में रेग्युलेटिङ्ग एक्ट के अनुसार लाट महोदय की कौंसिल के मेम्बर इँगलेंड से आये। अब कम्पनी का शासन इस कौंसिल के बहुमतानुसार होना प्रारम्भ हुआ। नये मेम्बर वारन हेस्टिङ्ग के विरुद्ध चलने लगे और वैर बढ़ने से ऐसा प्रतीत होने लगा कि यदि सम्भव होगा तो ये वारन हेस्टिङ्ग का बिलकुल मटियामेट कर देंगे। नन्दकुमार तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर ही रहा था। बस उसने ११ मार्च, १७७५ को फ्रांसिस (कौंसिल के सदस्य और हेस्टिङ्ग के कठोर विरोधी) के ज़रिये से एक पत्र कौंसिल के सम्मुख पेश करवाया, जिसमें उसने वारन हेस्टिङ्ग पर कई लाख रुपये रिशवत के रूप में ले लेने का अभियोग लगाया। १३ तारीख़ को हेस्टिङ्ग के विरोधी सदस्यों ने जो मेजारिटी के नाम से उल्लेखित किये जायँगे, नन्दकुमार को जांच के लिए बुलाना चाहा। कौंसिल का सभापति हेस्टिङ्ग था। उसने इसका विरोध किया। उसका यह कथन था कि मैं इस कौंसिल का सभापति होकर नन्दकुमार के सामने मुजरिम के रूप में नहीं बैठ सकता और ऐसा करना गवर्नर जनरल की मान-हानि भी करना है, परन्तु वह बहुमतवाले नियम के कारण विवश था। जब मेजारिटी ने न माना तब वह कौंसिल को विसर्जित करके अपने एक अनुयायी सदस्य बारवेल के साथ सभामन्दिर से चला गया। मगर मेजारिटीवाले शेष सदस्य ऐसे हथकण्डों की कहाँ परवा करते थे! यह निश्चय करके कि वारन हेस्टिङ्ग को हमारे मत के बिना बैठक विसर्जन करने का कोई अधिकार न था, उन्होंने स्वयं बैठक की और नन्दकुमार से उलटे सीधे प्रमाण लेकर इस प्रस्ताव को पास किया कि वारन हेस्टिङ्ग ने रुपये अवश्य अनुचित रूप से लिये और अब वह उन रुपयों को कम्पनी के कोष में जमा कर दे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेजारिटी ने बहुत कच्चे सबूतों पर यह प्रस्ताव पास कर दिया था और उसका फल यह हुआ कि डाइरेक्टरों ने इन प्रमाणों को परिमित न समझा। इस समय नन्दकुमार परलोक की यात्रा कर चुका था, इसलिए अब और अधिक प्रमाण देने का साहस किसी में न था। साथ ही साथ यह भी कहना पड़ेगा कि १½ लाख रुपये की एक रक़म हेस्टिङ्ग ने अवश्य ली थी,—लाट साहब ने उसको स्वयं अङ्गीकार किया—परन्तु उनका यह कहना था कि मुझे यह रुपया नवाब मुरशिदाबाद ने पुरानी प्रथा के अनुसार उस समय नज़राने और भत्ते के रूप में दिया था जब मैं नवाब के ख़र्चे में काट-छाँट करने गया था। इसका कुछ प्रमाण मिलता है कि उस समय ऐसी प्रथा थी। परन्तु क्या कारण था कि इस रक़म का लेना ३ वर्ष गुप्त रक्खा गया और जब नन्दकुमार ने उसे प्रकट किया तब वारन हेस्टिङ्ग ने उसको स्वीकार किया और फिर रिवाज या प्रथा की शरण ली।

यह सब काररवाई मार्च के महीने में हुई और अप्रैल के महीने में नन्दकुमार पर एक मुक़द्दमा चलाया गया। कमालुद्दीन नामक एक व्यक्ति वारन हेस्टिङ्ग के पास गया और उससे कहा कि नन्दकुमार और फ़ाक साहब ने दो पत्रों पर ज़बरदस्ती मेरे हस्ताक्षर करा लिये। उन पत्रों में उसकी ओर से वारन हेस्टिङ्ग, बारवेल साहब तथा अन्य अँगरेज़ी कर्मचारियों पर अनुचित और क़ानून-विरुद्ध उपायों से रुपया लेने का अभियोग लगाया गया था। वारन हेस्टिङ्ग ने कमालुद्दीन को अपने पत्र सहित, चपरासी तथा अँगरेज़ द्विभाषिये के साथ, चीफ़ जस्टिस के पास बयान देने के लिए भेजा जिसका नतीजा यह हुआ कि नन्दकुमार और फ़ाक साहब पर वारन हेस्टिङ्ग, बारवेल तथा अन्य कर्मचारियों पर षड्यन्त्र रचने का अपराध हेस्टिङ्ग तथा बारवेल साहब की ओर से लगाया गया। पूर्व इसके कि इस अपराध का मुक़द्दमा सुप्रीम कोर्ट में तय हो जावे, नन्दकुमार पर जालसाज़ी का जुर्म चलाया गया और उसको फांसी का हुक्म हो गया। इस जालसाज़ी का वृत्तान्त यों है—

बुलाक़ीदास नाम का एक महाजन था जो मीर क़ासिम का कोषाध्यक्ष भी था। जब नवाब मीर क़ासिम के साथ अँगरेज़ों का युद्ध छिड़ गया तब उसका मकान लुट गया और उसको स्वयं नवाब के साथ बङ्गाल से भागना पड़ा। जब बक्सर की लड़ाई हुई तब वह वज़ीर शुजाउद्दौला का बन्दी था। इसके बाद वह बङ्गाल को लौट आया और बीमार हो गया। उससे नन्दकुमार की बड़ी मित्रता थी और वह नन्दकुमार को अपना हितू समझता था। कभी कभी वह नन्दकुमार से रुपया भी उधार लेता था। एक बार बुलाक़ीदास ने अपने लेन-देन का हिसाब याददाश्त से लिखा और उसमें अपने को नन्दकुमार का १००००) रु० का करज़ी बताया। थोड़े दिनों में उसकी मृत्यु हो गई और वह एक वसीयत कर गया कि करज़ा अदा करने के बाद एक चतुर्थांश रुपया मेरे मुनीम पद्ममोहनदास को मिले और इसी प्रकार औरों को कुछ रुपया देकर शेष मेरे भतीजे गङ्गाविष्णु को मिले। मोहनप्रसाद नामक एक व्यक्ति उसके समय में भी और उसकी वसीयत के अनुसार उसका मुख़्यार नियुक्त था। यों तो बुलाक़ीदास के पास अधिक धन न था, परन्तु कम्पनी से उसको दो लाख से कुछ अधिक रुपये मिलते थे और वही उसकी मुख्य पूँजी थी। ख़ैर, १७६७ में नन्दकुमार के प्रयत्न से यह रुपया उसे कम्पनी से मिला। बुलाक़ीदास की स्त्री ने पद्ममोहन से कहा कि यह रुपया नन्दकुमार के पास ले जाओ और उनका हिसाब पहले चुका दो, क्योंकि वे मेरे दुःख में सर्वदा सहायक रहे हैं। नन्दकुमार ने इस अवसर पर एक दस्तावेज़ निकाली जिसमें यह लिखा था कि बुलाक़ीदास को नन्दकुमार के कुछ जवाहरात खो देने के कारण उसे लगभग १४३०२१) रु० देने हैं। इसके पूर्व पद्ममोहन ने बुलाक़ीदास की स्त्री को एक हिसाब बनाकर दिया था जिसमें सब क़रज़ा चुकता करके उसके लिए केवल ६००००) रु० बचता था। नन्दकुमार की रक़म मोहनप्रसाद के सामने उसको दी गई और मोहनप्रसाद कुछ न बोले। पर उन्होंने आगे चलकर मुक़द्दमे के समय बयान किया कि मुझे इस बात का उसी समय सन्देह हो गया था, क्योंकि बुलाक़ीदास के लेने और देनेवाले हिसाब में नन्दकुमार के नाम केवल १००००) रु० पड़े थे। नन्दकुमार ने रुपयों की रसीद लिख दी और दस्तावेज़ ख़ारिज करके वापस कर ली जो थोड़े समय के बाद बुलाक़ीदास के और काग़ज़ों के साथ मेयर की अदालत में दाख़िल कर दी गई।

बुलाक़ीदास के वारिस गङ्गाविष्णु ने १२९७३०) रु० की एक नालिश नन्दकुमार के ऊपर दीवानी में की। मोहनप्रसाद गङ्गाविष्णु का मुख़्यार था। मुक़द्दमा ३ वर्ष तक चलता रहा, क्योंकि हिसाब देखना और बही-खाता जाँचना एक अँगरेज़ जज के लिए कठिन था। राज़ीनामे के लिए कहा गया और बेवरिज साहब का मत है कि नन्दकुमार कुछ कठिनता के बाद इस पर राज़ी हो गया। इसी समय पर रज़ा ख़ां का मुक़द्दमा भी चल रहा था और नन्दकुमार का प्रभाव इस समय कर्म्मचारियों में अच्छा था।

जब दीवानीवाला मुक़द्दमा चल रहा था, गङ्गाविष्णु ने मेयर की अदालत से बुलाक़ीदास के काग़ज़ात की वापसी के लिए अरज़ी भेजी, जिनमें नन्दकुमारवाली दस्तावेज़ भी थी। ये काग़ज़ात फ़रेर साहब के कथनानुसार, जो आगे चलकर नन्दकुमार के वकील हुए थे, इसलिए माँगे गये थे कि नन्दकुमार पर जालसाज़ी का मुक़द्दमा चलाया जावे, क्योंकि हाइवर अटारनी ने इस विषय में गङ्गाविष्णु से कहा था और उन्हीं दोनों ने ये काग़ज़ात मेयर की अदालत से मांगे थे। तथापि, हाइवर की अरज़ी, जो कि अब भी मौजूद है, पढ़ने से स्पष्ट मालूम होगा कि ये काग़ज़ात केवल दीवानीवाले मुक़द्दमे के लिए माँगे गये थे।

सुप्रीम कोर्ट के स्थापित होने पर काग़ज़ात २७ मार्च १७७५ को बड़ी कठिनता से मिले। इसलिए नन्दकुमार का हेस्टिङ्ग पर अभियोग और नन्दकुमार पर जालसाज़ी का अपराध लगभग एक ही समय में हुए। परन्तु एक बात विचारने योग्य है। क्या आवश्यकता थी कि मोहनप्रसाद अथवा गङ्गाविष्णु मेयर कोर्ट के काग़ज़ों की प्रतीक्षा करते? एक साल तक मोहनप्रसाद को दस्तावेज़ अच्छे प्रकार से देखने का अवसर रहा जब कि वह मेयर कोर्ट में दाख़िल न हुई थी। यदि कहा जाय कि उसके पास उसको जाली साबित करने को गवाही न थी तो स्वयं मोहनप्रसाद के कथनानुसार १७७२ ही में कमालुद्दीन से इसकी बात-चीत

हो चुकी थी। यही कमालुद्दीन था जिसकी गवाही पर नन्दकुमार को जालसाज़ी के मुक़द्दमे में १७७५ में फांसी पर लटकना पड़ा। अगर मोहनप्रसाद दीवानीवाले मुक़द्दमे के समय अदालत के सम्मुख जाली दस्तावेज़ के सम्बन्ध में कुछ भी कहता तो उसको काग़ज़ात अदालत के द्वारा सहज में मिल जाते और उनके लिए उसको चार चार अरज़ियाँ न देनी पड़तीं। इसका कारण केवल यही मालूम पड़ता है कि कदाचित् मोहनप्रसाद को उस समय जालसाज़ी का अपराध लगाने की हिम्मत न पड़ी, क्योंकि नन्दकुमार का आदर और मान कम्पनी में रज़ा खां के मुक़द्दमे के कारण बहुत था।

आख़िरकार जब जाली दस्तावेज़ मोहनप्रसाद को मिल गई तब उसने ६ मई को सुप्रीम कोर्ट के जज के सामने जालसाज़ी का मुक़द्दमा चलाया। नन्दकुमार कई एक गवाहों की गवाही पर बन्दी करके जेल में भेजा गया। उस समय जजों की कारस्वाई से ऐसा प्रतीत होता था मानो मोहनप्रसाद मुद्दई न था; बल्कि सरकार थी; परन्तु आगे चलकर जब मुक़द्दमा चार जजों के सामने पेश हुआ तब मोहनप्रसाद ही मुद्दई माना गया।

नन्दकुमार बड़ा कट्टर ब्राह्मण और वैष्णव था। उसने जेल में भोजन तथा जल-पान करने से नाहीं की, क्योंकि वह एक ऐसे गृह में रक्खा गया था जिसमें पहले एक किरानी जेलर साहब स्वयं रहते थे और नन्दकुमार के लिए वह मकान ख़ाली किया गया था। नन्दकुमार ने दूसरे शुद्ध स्थान में, जहाँ उसको गङ्गा-स्नान करने का सुभीता था, अपने भेजे जाने की प्रार्थना कौंसिल से की। कौंसिल ने इसकी जांच की और जजों को लिख दिया कि ऐसा किया जावे। चीफ़ जस्टिस सर इलिजा इम्पी ने कुछ कलकतिया पण्डितों की राय लेकर कहा कि वहाँ नन्दकुमार का धर्म नष्ट नहीं हो सकता, इसलिए वह वहीं रक्खा जावेगा। नन्दकुमार नदिया के पण्डितों की व्यवस्था चाहता था। आख़िरकार एक ख़ीमा बन्दीगृह के आँगन में लगा दिया गया और वह वहाँ रक्खा गया। इस सम्बन्ध में कौंसिल और जजों से जो पत्र-व्यवहार हुआ उसमें बड़ी बड़ी सख़्त और अनुचित बातें लिखी गईं। जज लोग यह जानते ही थे कि मेजारिटी, फ़्रांसिस इत्यादि नन्दकुमार के पक्षपाती हैं और नन्दकुमार हेस्टिङ्ग के विरुद्ध रिशवत का मुक़द्दमा ला चुका है। इसके अतिरिक्त जज लोग कौंसिल से इस कारण भी चिढ़ते थे कि वह उनके कार्य्य में हस्ताक्षेप करके अपना बड़प्पन सिद्ध करना चाहती थी। यह झगड़ा चलकर १७८१ में इतना ज़ोर पकड़ गया था कि आपसी लड़ाई तक की नौबत पहुँच गई थी। इस समय के झगड़े से इतना अवश्य हुआ होगा कि नन्दकुमार से जो इसका मूल कारण था, जज लोग अवश्य कुछ बिगड़ गये होंगे और उससे चिढ़ मानने लगे होंगे।

नन्दकुमार का मुक़द्दमा ८ जून को सर इलिजा इम्पी, चेम्बर्स, हाइट और लेमेस्टर के सामने प्रारम्भ हुआ। इन में से अन्त के दो जजों ने तो नन्दकुमार को बन्दी-गृह में भेज ही दिया था, जब कि उन्होंने ६ मई को उस पर जुर्म लगाया था। इसलिए वास्तव में ये तो अपनी राय पहले ही ठीक कर चुके थे। ये लोग हिन्दुस्तानियों की भाषा नहीं जानते थे, इसलिए कोर्ट के द्विभाषिये की अनुपस्थिति में एलेक्ज़ेन्डर इलियट जो कि इम्पी और हेस्टिङ्ग का कृपापात्र और कम्पनी का नौकर था, इस कार्य्य के लिए नियुक्त हुआ। नन्दकुमार के वकील ने कहा कि इलियट साहब का सम्बन्ध नन्दकुमार के वैरियों से है, इसलिए वह द्विभाषिया न रक्खा जावे। चीफ़ जस्टिस साहब इसी पर बिगड़ गये और इलियट के स्वयं इस कार्य्य को करने के लिए उद्यत न होने पर भी उससे उन्होंने यह कार्य्य करवाया। इसके बाद नन्दकुमार से पूछा गया कि तुम्हें कौन जूरी (कई आदमी असेसर के ढङ्ग के जिनकी राय से मुक़द्दमा तय होता था) चाहिए? उसने कहा कि मेरी हैसियतवाले आदमी। इम्पी ने कहा, नहीं; क़ानून के अनुसार जूरी कलकत्ते के अँगरेज़ ही (British subjects) हो सकते हैं और वे ही रहे। इसके बाद नन्दकुमार के वकील फ़रेर ने उज्र पेश किया कि सुप्रीम कोर्ट को नन्दकुमार पर मुक़द्दमे का फ़ैसला करने के लिए कोई अधिकार नहीं है, परन्तु उसकी यह बात न मानी गई और उत्तर में कहा गया कि यदि तुम इस प्रश्न पर ज़ोर दोगे और यदि वह तुम्हारे अनुसार तय न होगा, तो नन्दकुमार को "मुजरिम न होना" कहने का अधिकार नहीं रहेगा।

और जब कोर्ट का अधिकार उस पर सिद्ध हो जायगा तब किसी एक क़ानून के अनुसार उसको "मुजरिम होना" कहना ही पड़ेगा। सर जेम्स स्टेफ़ेन जिन्होंने अपनी पुस्तक में इम्पी और वारन हेस्टिङ्ग की निर्दोषिता सिद्ध की है, यह कहते हैं कि यदि जजों ने ऐसी राय दी तो कोर्ट ने एक घोर अनुचित कार्य्य किया, परन्तु क्या कारण है कि फ़रेर साहब ने इस बयान को जो उन्होंने १३ वर्ष बाद इँगलेंड में पारलियामेन्ट के अनुसन्धान के समय किया था, न माना जब कि उसी समय का उनका बयान स्टेफ़ेन साहब ने मेयर कोर्ट से जाली दस्तावेज़ माँगने के सम्बन्ध में मान लिया था। क़ानून में यह स्पष्ट लिखा था कि सुप्रीम कोर्ट का अधिकार केवल 'ब्रिटिश सबजेक्ट्स' पर होगा यानी अँगरेज़ों पर; लेकिन जजों ने इस शब्द को इतना व्यापक (comprehensive) समझा कि हिन्दुस्तानी भी ब्रिटिश-सबजेक्ट हो गया और जब कि जूरी बनाने का समय आया तब ब्रिटिश-सब्जेक्ट का अर्थ केवल गोरे चमड़ेवाले विलायती मनुष्य ही रह गये। बेवरिज साहब अपने भारत के इतिहास में लिखते हैं कि सुप्रीम कोर्ट को नन्दकुमार पर निष्पत्ति करने का कोई अधिकार न था और १७७४ के रेगुलेटिङ्ग एक्ट का भाव किञ्चिन्मात्र भी ऐसा अधिकार देने का न था।

फ़रेर को अपना उज्र् वापस लेना पड़ा। इस अवसर पर जज चेम्बर्स ने एक बात और पैदा की। उसने कहा कि नन्दकुमार जालसाज़ी के लिए फाँसी देनेवाले क़ानून पर मुक़द्दमा नहीं चला सकता, बल्कि उस क़ानून पर जो कि केवल हाथ काट लेने का दण्ड देता है। क्योंकि कलकत्ते के समाज की वह स्थिति नहीं है जिसके कारण जालसाज़ी के लिए विलायत में ऐसा कठिन दण्ड दिया जाता है। परन्तु इम्पी ने इसको भी न माना और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि कलकत्ते या लन्दन में उस समय व्यवस्था-सम्बन्ध में कोई भेद न था। चेम्बर्स साहब ने अपनी बात पर कुछ ज़ोर न दिया और हाँ या नहीं, कुछ न कहा, यद्यपि १२ वर्ष बाद जब वे स्वयं चीफ़ जस्टिस हुए, उन्होंने अपनी सन् १७७५ की राय पर ही कार्य्य किया और अँगरेज़ी विद्वानों ने भी नित्य के लिए यह तय कर दिया कि चेम्बर्स साहब का कहना ठीक था।

ख़ैर, अब गवाह पेश होना शुरू हुए। दस्तावेज़ पर बुलाक़ीदास की मुहर, और महतावराय, शीलवत और कमाल मुहम्मद की गवाही थी। नन्दकुमार का कथन था कि ये तीनों गवाह मर गये हैं, लेकिन अभियोगी (prosecution) का कहना था कि कमाल-उद्दीन ख़ाँ की कमाल मुहम्मदवाली मुहर उसकी अनभिज्ञता में लगाई गई थी। कमाल-उद्दीन का नाम मार्च १७६५ के पहले मुहम्मद कमाल था और एक सनद से, जो कि कोर्ट में पेश न की गई उसका नाम बदल दिया गया। फिर यह भी साबित किया गया कि कमाल-उद्दीन की मुहर नन्दकुमार के पास कैसे पहुँची और कमाल-उद्दीन ने कहा भी कि नन्दकुमार ने मुझसे कहा था कि देखो, कचहरी में इसको अपनी लगाई हुई मुहर मञ्जूर कर लेना। इसके अतिरिक्त दस्तावेज़ अगस्त में लिखी गई, जब कि नाम की बदलौवल हो चुकी थी। तब फिर नन्दकुमार पुरानी मुहर क्यों काम में लाता, अगर उसे कमाल-उद्दीन की गवाही दस्तावेज़ पर दिलवानी थी। कमाल ने कुछ काग़ज़ात पुरानी मुहर से छपे हुए निकाले भी और चूँकि जूरी की राय में दोनों मुहरों में एक ख़ास त्रुटि (flaw) पाई गई, इसलिए स्पष्ट सिद्ध हुआ कि दस्तावेज़वाली मुहर कमाल-उद्दीन ही की थी। बेवरिज साहब का कहना है कि दोनों में कोई त्रुटि नहीं है। मैंने भी कलकत्ते के हाईकोर्ट में उस मुहर को देखा और मैं बेवरिज साहब से सहमत हूँ। इसके अतिरिक्त क्या कमाल-उद्दीन के लिए मुहर बनवा लेना असम्भव था, जब कि सिमारुल-मुताख़रीन के रचयिता गुलामहुसेन के कथनानुसार जाली मुहरें उस समय बहुत सहज में बन सकती थीं और क़माल-उद्दीन उस समय के मनुष्यों में सर्व-सम्मति से कोई भलामानस न था। शीलवत के हस्ताक्षर दस्तावेज़वाले न थे, यह पाठक और राजा नवकृष्ण की गवाही से सिद्ध किया गया। परन्तु नवकृष्ण की यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे नन्दकुमार के वैरी थे। क्योंकि एक मरतबा नन्दकुमार ने इनके विरुद्ध ज़िनाकारी का अभियोग चलवाया था, यद्यपि अन्त में वे निर्दोषी ठहराये गये। *बेवरिज का कहना है कि नन्दकुमार

---

* इन्होंने नन्दकुमार की सफ़ाई में The trial of Nandkumar नामक एक किताब लिखी है।

के विरुद्ध जितने गवाह थे वे सब कम्पनी के नौकर या उसके प्रभाव-वादियों में थे । महताबराय की गवाही के सम्बन्ध में अभियोगी (prosecution) का कहना था कि ऐसा कोई आदमी कभी था ही नहीं । कृष्णजीवन का, जो बुलाक़ीदास का मुनीम था, यह बयान था कि बुलाक़ीदास के पास कोई दस्तावेज़वाले जवाहरात जमा नहीं किये गये थे और न उसका घर लुटने के समय इतने मूल्य के जवाहरात लूटे गये थे । स्टेफ़ेन साहब का कहना है कि नन्दकुमार के पास बुलाक़ीदास की कोई रसीद तो होनी चाहिए थी । जवाहरात जमा किये गये १७४८ में और दस्तावेज़ लिखी गई १७६५ में ! परन्तु बहुधा आज-कल भी ऐसा होता है कि हिन्दू-महाजनों में लाखों का व्यवहार ज़बानी ही हो जाता है । सम्भव है, ऐसा व्यवहार नन्दकुमार और बुलाक़ीदास के भी बीच में हुआ हो ।

मुद्दालिह ने महताबराय के अस्तित्व (existence) के सम्बन्ध में गवाह पेश किये और यद्यपि अभियोग चलानेवाले की ओर से दो गवाह इस गवाही को तोड़ने के लिए पेश किये गये, परन्तु कोई भी पक्ष अपना मन्तव्य भली भाँति सिद्ध न कर सका । चार गवाह इस बात के प्रमाण के लिए कि उनके सामने बुलाक़ीदास ने अपनी मुहर दस्तावेज़ पर लगाई थी, पेश किये गये । इसमें सन्देह नहीं कि ये गवाह सिखाये-पढ़ाये थे । यारमुहम्मद का कहना था कि मैं बीच से गवाही नहीं दे सकता, शुरू से दुहरा सकता हूँ ! बुलाक़ीदास के कुछ पत्र, जिनमें उसने दस्तावेज़ के सम्बन्ध में लिखा था, बिना उसके हस्ताक्षर के, मुहर लगे हुए तीन लिफ़ाफ़ों के सहित पेश किये गये । जूरी ने इस बात की ओर तो ध्यान दिया नहीं, बल्कि उनकी लिखावट ताज़ी देखकर ही बिगड़ गये और कहा कि नन्दकुमार हमको निरा मूर्ख समझता है कि ऐसी चाल हम पर चलता है । इसलिए ये पत्र सबूत में पेश न हो सके । बेवरिज का सिमारुल मुताख़रीन के साथ यह कहना है कि उस समय में पत्र बिना हस्ताक्षर के भेजे जाते थे । रहा नई लिखावट के सम्बन्ध में, सो हम लोगों को यह अच्छे प्रकार मालूम है कि दस वर्ष ही के क्या, अकबर के समय के भी लेख अब मौजूद हैं जो बिलकुल रोशनाई के लिहाज़ से कल के लिखे मालूम होते हैं ।

इस घटना के बाद नन्दकुमार ने अपने वकील से कहा कि अदालत पक्षपात कर रही है और अब आगे प्रयत्न करना व्यर्थ है फ़रेर साहब की भी ऐसी ही कुछ राय थी । यह इस बात से प्रकट होता है कि उसने रहस्य में जजों से इस बात को कहा और उन्होंने उत्तर दिया कि वादी का पक्ष कमज़ोर है और प्रतिवादी के गवाह बनावटी हैं, इसलिए हम स्वयं जिरह करते हैं । चेम्बर्स साहब के सँदेसे ने नन्दकुमार की बात को और भी पुष्ट किया । इसके अतिरिक्त फ़रेर साहब का यह भी कथन है कि हमारे गवाहों पर आगे और भी कड़ाई होने लगी ।

इसके बाद नन्दकुमार ने एक हिसाब पेश किया जिसमें नन्दकुमार को जो रुपये ज़्यादा दिये गये थे, वे लिखे थे और मोहनप्रसाद के हस्ताक्षर थे । मोहनप्रसाद का कहना है कि मैंने पद्ममोहन के कहने से बुलाक़ीदास की स्त्री को समझाने के लिए दस्तावेज़ को जाली समझते हुए भी हस्ताक्षर कर दिये थे । इम्पी का कथन है कि इसमें मोहनप्रसाद ने कोई अनुचित बात नहीं की, क्योंकि रुपया तो दे ही दिया गया था, दस्तावेज़ चाहे जाली हो या सच्ची । यदि हम मोहनप्रसाद से इतने दिनों तक जालसाज़ी का अभियोग न चलाने में किसी प्रकार सहमत हो सकते हैं तो हिसाब पर हस्ताक्षर करनेवाली यह बात कोई प्रमाण नहीं हो सकती ।

इस समय एक सबूत ऐसा पेश किया गया कि उस पर स्वयं इम्पी ने कहा कि इससे नन्दकुमार छूट सकता था । कृष्णजीवन की फिर गवाही हुई । आज-कल के लिए यह एक अचम्भे की बात है कि उन दिनों एक गवाह दस दस बार गवाही के लिए बुलाया जाता था । उसने कहा कि पद्ममोहनदास ने अपनी मृत्यु के पहले एक क़रार-नामा बुलाक़ीदास के हस्ताक्षर-युक्त मुझको दिखलाया था जिसमें दस्तावेज़ का ज़िक्र था और उससे मैंने बही की पुस्तकों में नक़ल भी की और यह बात मोहनप्रसाद को भी मालूम थी । इससे अधिक अच्छा प्रमाण क्या हो सकता था ? तो भी नन्दकुमार ने कृष्णजीवन को फिर से बुलवाया और पूछा कि तुमने मोहनप्रसाद को क़रार-नामा समझाया था ? इस पर कृष्णजीवन उखड़ गया और नन्दकुमार का मुक़दमा चौपट होगया । नन्दकुमार ने क़रारनामे की एक

नक़ल पेश भी की और कहा कि असल या तो पद्ममोहनदास के उत्तराधिकारियों के पास है या मोहनप्रसाद के। लेकिन अदालत ने नक़ल को नामञ्ज़ूर किया। स्टेफ़ेन साहब का कहना है कि सम्भव है, पद्ममोहनदास नन्दकुमार के साथ जालसाज़ी में सम्मिलित हो, क्योंकि उसका आचरण और व्यवहार बुलाक़ीदास की मृत्यु के बाद सन्देह-जनक अवश्य था। तथापि ऐसा अनाचार क्या वह बुलाक़ीदास का विश्वास-पात्र होकर करने में समर्थ था? इसके अतिरिक्त करज़ा देने के बाद बुलाक़ीदास की जायदाद में वसीयत के अनुसार उसका चार आने का हिस्सा था, तब वह इतनी बड़ी रक़म नन्दकुमार को दिलवाकर अपना नुक़सान क्यों करता, जब तक कि स्वयं नन्दकुमार उसको उसके हिस्से से अधिक रुपया देने को उद्यत न हुआ होता। यदि ऐसा नन्दकुमार ने किया भी हो, तोभी उसके पल्ले जो कुछ पड़ा होगा वह इतनी मामूली रक़म होगी कि नन्दकुमार ऐसा घृणित कार्य्य उसके लिए नहीं कर सकता था। हमको मालूम है कि मरने के बाद उसके पास लगभग एक करोड़ के रुपया और जायदाद निकली।

जब सफ़ाई की भी गवाही ख़तम हो गई तब फ़रेर ने बहस करनी चाही, परन्तु इम्पी ने कहा कि इँगलेंड के क़ानून के अनुसार ऐसे जुर्म के अपराधी को बहस करवाने का अधिकार नहीं है, लेकिन अपनी समझ में आपने बड़ी कृपा दिखाई और कहा कि वकील साहब अपनी बहस की मोटी मोटी बातें (points) लिखकर जज साहब को दे देवें और वे जूरी की वक्तृता के साथ पढ़ दी जावेंगी। निदान ऐसा ही किया गया। ऐसा करना बाल की खाल खींचना था। सब लोगों का कथन है कि यह बात अनुचित हुई। नन्दकुमार के सम्बन्ध में अथवा एक हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में, जो अँगरेज़ी जालसाज़ीवाले क़ानून से परिचित न था, भारत में ऐसी सज़ा कभी नहीं दी जाती थी—ऐसा न करना था। स्टेफ़ेन साहब भी ऐसे नियम को अत्यन्त निकृष्ट कहते हैं, लेकिन वे यहाँ भी इम्पी की सफ़ाई करने से बाज़ नहीं आये।

इम्पी पर एक अपराध यह लगाया जाता है कि उसने अपनी जूरीवाली वक्तृता में नन्दकुमार के हितवाली बातें छिपा डालीं, या उन पर काफ़ी ज़ोर न दिया। यह दोषारोपण ठीक नहीं है; गोकि स्टेफ़ेन साहब इस बात का जो यह सबूत देते हैं कि मुक़द्दमे के बाद हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ सभी ने अपने अभिनन्दन-पत्रों में उसकी पक्षपात-हीनता के गीत गाये हैं, वह कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

नन्दकुमार को जूरी ने अपराधी निश्चय किया। जालसाज़ी साबित हुई या नहीं, यह कहना बड़ा कठिन है। दोनों पक्षों की गवाही में सन्देह उत्पन्न होता है। किसी पक्ष की कोई बात चित्त में बैठती नहीं। ऐसी अवस्था में यदि आज-कल के हाईकोर्ट में अभियोग चलता तो नन्दकुमार अवश्य छूट जाता। इस सम्बन्ध में और आगे लिखा जावेगा।

मुक़द्दमे की इस हद तक तो यह कहा जा सकता है कि यदि जजों ने कोई भूल की तो वह किसी बुरे उद्देश से नहीं। उनकी तो केवल वास्तविक भूल थी, परन्तु जो जो प्रयत्न फ़रेर साहब ने नन्दकुमार को आगे फांसी से बचाने के हेतु किये, उनके प्रति इम्पी का व्यवहार कठोर ही नहीं, किन्तु अन्याय-युक्त भी था। फ़रेर ने प्रधान जूरी से नन्दकुमार के क्षमा-प्रदान के हेतु कहा। उसने नाहीं तो की ही, परन्तु एक पत्र बेली साहब के द्वारा फ़रेर साहब की शिकायत करते हुए इम्पी को लिखा और जब फ़रेर साहब किसी और कार्य्य-वश अदालत गये तो इम्पी ने उनको बहुत फटकारा और कहा कि तुम्हारा प्रयत्न वकीलों के आचरण के नियमों के विरुद्ध था और नन्दकुमार के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य मुक़द्दमे के फ़ैसले के साथ समाप्त हो गया। स्टेफ़ेन साहब भी इम्पी के इस व्यवहार को कठोर कहते हैं। अब मैं बेली साहब की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँगा। ये वारन हेस्टिङ्ग के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। क्या राबिन्सन स्वयं पत्र नहीं भेज सकते थे? उन्हें बेली साहब की सिफ़ारिशी चिट्ठी की क्या आवश्यकता थी?

इसके बाद अदालत से कहा गया कि नन्दकुमार की फांसी रोककर उसको अवसर दिया जावे कि वह बादशाह सलामत से क्षमा की प्रार्थना करे, परन्तु यह भी अस्वीकृत हुआ। अन्त में नन्दकुमार ने एक पत्र कौंसिल को भी क्षमा-हेतु भेजा, लेकिन क्लेवरिङ्ग साहब ने उसको जान-बूझकर न खोला और जब फ़रेर साहब ने ज़बानी कुछ कहा तब भी मेजारिटी ने कुछ ध्यान न दिया।

नन्दकुमार को ५ अगस्त के दिन कलकत्ते के मैदान

नामक स्थान में फांसी हुई । नन्दकुमार का धैर्य्य और शान्ति इस समय तक प्रसिद्ध है । मेकाले साहब ने उस दृश्य का वर्णन बहुत ही स्पष्ट रूप से किया है। भीड़ बहुत थी, क्योंकि भारतवर्ष में पहले-पहल ब्राह्मण फांसी पर चढ़ाया जा रहा था। कुछ लोगों का कहना है कि दर्शकों ने इस घटना के समय कोई सहृदयता अथवा विषाद प्रकट न किया। औरों का कहना है कि फांसी देते ही लोगों ने एक 'अब्रह्मण्यम्' शब्द निकाला और गङ्गा-स्नान करके प्रायश्चित्त किया । एक बङ्गाली इतिहास-रचयिता लिखता है कि कुछ लोग उस दिन से कलकत्ता छोड़कर बाहर रहने लगे, यद्यपि वे कार्य्य-वश जाते आते थे। उनके घराने में अब भी यही पुरानी प्रथा चली आती है।

जब पार्लियामेंट में इम्पी पर मुक़द्दमा चलाया गया, तब उसने कहा था कि यदि मुझसे कहा जाता कि हेस्टिङ्ग साहब ने वैर-भाव से नन्दकुमार पर जालसाज़ी का मुक़द्दमा चलाया है अथवा वारेन हेस्टिङ्ग के ख़िलाफ़ वह स्वयं अपराध ला चुका है और उसकी जांच अभी बाक़ी है तो मैं नन्दकुमार की फांसी को अवश्य रोक देता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नन्दकुमार ने हेस्टिङ्ग के ऊपर अपने सन्देह कभी साफ़ साफ़ नहीं प्रकट किये। केवल अपने अख़ीरी पत्र में उसने हेस्टिङ्ग के सम्बन्ध में लिखा है और यह पत्र जब नन्दकुमार इस असार संसार को छोड़ चुका था तब खोला गया और वह फ़्रांसिस के कहने से जल्लाद के हाथ से जलवाया गया, क्योंकि उसमें जजों के ऊपर पक्षपात का दोष लगाया गया था। वारेन हेस्टिङ्ग के ऊपर नन्दकुमार के दोषारोपण के सम्बन्ध में इम्पी कहता है कि मुझको केवल किंवदन्ती के रूप में यह बात मालूम थी। यह ज़रा विस्मयोत्पादक बात है कि नन्दकुमार ने अपनी फांसी रुकवाने के हेतु यह कारण क्यों उपस्थित नहीं किया? सम्भव है, उससे इसके बारे में राय न ली गई हो। इसके अतिरिक्त फ़रेर साहब जजों से कुछ दबते भी थे। कई अवसरों पर यदि वे निर्भयता से पेश आते तो अच्छा होता। यदि बैरिस्टर साहब दबते थे तो कोई विस्मय की भी बात नहीं, क्योंकि उनकी जीविका का एक मात्र अवलम्ब अदालत ही थी। इम्पी का यह भी कथन है कि यदि कौंसिल नन्दकुमार की ओर से विघ्न न डालती तो हम कदाचित् नन्दकुमार की फांसी रुकवा देते, और उनका कुछ इरादा ऐसा था भी, परन्तु कुछ कारण ऐसे उत्पन्न हो गये कि उनको अपना कर्तव्य करना ही पड़ा। जनता को विश्वास था कि अदालत इतने बड़े आदमी को फांसी न देगी और जब कौंसिल का प्रभाव पड़ेगा तब दब जावेगी । इसलिए यदि अदालत उस अपने प्रारम्भिक जीवन में नन्दकुमार के ऊपर दया दिखलाती तो जनता के ध्यान में यही आता कि जज लोग दब गये और जो सुप्रीम-कोर्ट के स्थापित करने का उद्देश था उसमें महा बाधा पड़ती। इसलिए स्टेफ़ेन साहब का कहना है कि महाराजा नन्दकुमार को फांसी देना आवश्यक था। स्टेफ़ेन साहब की बात पर तो हमें ध्यान ही नहीं देना चाहिए, क्योंकि उनका तो यह कथन है कि आज-कल लोग जो फांसी का दण्ड देने में हिचकते हैं सो यह उनकी भीरुता है। उनके मत में प्राण-दण्ड देना बुढ़ापे में बदनामी के साथ जेल काटने की अपेक्षा कहीं अच्छा है। यह विचार उस सभ्यता से असङ्गत नहीं है जो घायल घोड़े को गोली मार देना उचित समझती है!

अब यह देखना चाहिए कि इन सब बातों के होते हुए भी नन्दकुमार की फांसी को रोकना कहाँ तक उचित था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जज लोगों को यह मालूम था कि हिन्दुस्तान में जालसाज़ी इतना बड़ा अपराध नहीं समझा जाता है, इसलिए यदि कोई हिन्दुस्तानी क़ानूनी बाल की खाल खींचकर और ऐंच-तान कर इँगलैंड के क़ानून से दोषी ठहर भी जावे तो उसकी फांसी बादशाह के पास से प्रार्थना-पत्र का उत्तर आने तक रोक देना चाहिए थी। जालसाज़ी को हुए कई वर्ष हो गये थे। गवाह मर गये थे। बङ्गाल में जालसाज़ी के क़ानून को लोग भले प्रकार जानते भी न थे। केवल एक हिन्दुस्तानी की एक मिसाल मौजूद थी। राधाचरण मित्र को १७६५ में फांसी की आज्ञा हुई थी, परन्तु पीछे वह काट दी गई थी। एक अँगरेज़ विद्वान् का कहना है कि यदि नन्दकुमार की फांसी का हम किसी प्रकार समर्थन कर सकते हैं तो ऐसा कहना मनुष्यत्व को क़ानून के लिए बलिदान (Sacrifice) करना है। पारलियामेंट में जब इम्पी के अपराधों पर वोट लिया गया तब मेकडानल्ड

(Macdonnald) और आरडन (Arden) साहब ने जो इँगलेंड के सालिसिटर और अटारनी-जरनल थे, अपना वोट इम्पी के पक्ष में देते हुए कहा कि हम नन्दकुमार की फांसी अवश्य रोक देते। हमारे स्टेफ़ेन साहब बहादुर भी जो नन्दकुमार के सम्बन्ध में दया प्रकट करना क़रीब क़रीब भीरुता कह चुके हैं, इस बात को कहते हुए हिचकते हैं कि नन्दकुमार की फांसी न रोकनी चाहिए थी। क्या यह सब नैतिक दृष्टि से इम्पी की निन्दा नहीं है ?

यहां तक नन्दकुमार के मुक़द्दमे का हाल दिया गया। अब इसका प्रमाण देखना है कि हेस्टिङ्ग का इससे किसी प्रकार का सम्बन्ध था या नहीं। कहा जाता है कि नन्दकुमार से हेस्टिङ्ग को बहुत भय था। लोगों का अनुमान है कि वह उस पर रिशवत के इलज़ाम ला चुका था, इसलिए उस पर मोहनप्रसाद द्वारा अभियोग चलवाकर, कमालुद्दीन की सहायता से हेस्टिङ्ग ने नन्दकुमार को मरवा डाला। इसमें सन्देह नहीं कि नन्दकुमार को फांसी उस समय हुई जब कि हेस्टिङ्ग के ऊपर लगाये हुए अपराधों के सम्बन्ध में डाइरेक्टरों ने कुछ निश्चय नहीं किया था। कौंन्सिल की मेजारिटी और सिमारुल मुताख़रीन के कथनानुसार जनता का यही मत था कि नन्दकुमार को हेस्टिङ्ग के कारण प्राण खोने पड़े और हेस्टिङ्ग ही असली मुक़द्दमा चलानेवाला था। नन्दकुमार की मृत्यु से हेस्टिङ्ग ही को सबसे अधिक लाभ हुआ, क्योंकि बुलाक़ीदास के वारिसों को नन्दकुमार की जायदाद से रुपया तो वापिस हुआ ही नहीं, और यह मुक्त कण्ठ से कहा जाता है कि नन्दकुमार की फांसी के बाद किसीको हेस्टिङ्ग के विरुद्ध चूँ करने का भी साहस न हुआ। इन कारणों से यदि उसके बारे में कोई सन्देह करे तो स्वाभाविक है, पर उसके विरुद्ध कोई पक्का या तहरीरी (definite or documentary) सबूत नहीं मिलता। जो कुछ सन्देह उस पर किया जाता है, वह केवल परिस्थिति-सम्बन्धी (circumstantial) सबूत है। प्रथम तो हेस्टिङ्ग ने नन्दकुमार को कौंसिल में अपने (हेस्टिङ्ग के) विरुद्ध प्रमाण देने के लिए बुलाने के प्रस्ताव का विरोध किया और इसमें असफल होने पर वह कौंसिल को स्थगित (adjourned) कर चला गया। लोगों का कहना है कि यदि उसके मन में पाप नहीं था, तो उसने उसी समय नन्दकुमार को अपनी योग्य जिरह से झूठा क्यों न साबित कर दिया ? यह बात जानी हुई भी है कि मुन्नी बेगमवाली १½ लाख की रक़म में हेस्टिङ्ग कुछ दबता भी था, यद्यपि बाद को वह तथा उसके आधुनिक वकील सफ़ाई देने में नहीं चूके हैं। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात इसके सम्बन्ध में यह है कि हेस्टिङ्ग साहब ने नन्दकुमार के इलज़ामों के सम्बन्ध में हां या नहीं कभी नहीं की, यद्यपि उसने कहा कई मरतबे कि हम इसका उत्तर देवेंगे। इसके साथ साथ उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में नन्दकुमार के षड्यन्त्रवाले अभियोग में शपथ लेकर कहा कि जालसाज़ीवाले मुक़द्दमे में हमारा सम्बन्ध किसी प्रकार से नहीं है। नन्दकुमार ने एक पत्र में जो कौन्सिल को भेजा गया था यह लिखा है कि मोहनप्रसाद और हेस्टिङ्ग की भेंट १७७५ के फ़रवरी महीने के बाद हुई थी, जब कि हेस्टिङ्ग ने नन्दकुमार से किसी बात पर क्रुद्ध होकर उसको अपने यहां आने के लिए मना कर दिया था। यद्यपि यह नन्दकुमार का बयान है तथापि इसको न मानने का कोई कारण नहीं मालूम होता, क्योंकि यह पत्र उसके जालसाज़ी और षड्यन्त्रवाले मुक़द्दमे के कहीं पहले लिखा गया था।

सम्भव है कि नन्दकुमार के इस अपमान के बाद मोहनप्रसाद ने जिसको नन्दकुमार अपना परम शत्रु समझता था, हेस्टिङ्ग की ख़ुशामद ही के लिए केवल जाली दस्तावेज़ का ज़िक्र किया हो और हेस्टिङ्ग ने इस पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की हो। एक अँगरेज़ सज्जन जो कि मुक़द्दमे में बराबर मौजूद थे अपनी उसी समय की छपी हुई पुस्तक में लिखते हैं कि मोहनप्रसाद के जालसाज़ी के मुक़द्दमे का एक कारण वारन हेस्टिङ्ग की नन्दकुमार पर अप्रसन्नता भी थी। सम्भव है उसने इस सम्बन्ध में मोहनप्रसाद को किसी प्रकार की आशा दिलाई हो, क्योंकि एक विशेषता की बात इस अभियोग में यह थी कि बहुत से गवाह हेस्टिङ्ग के अनुयायी या उसके कृपापात्र थे और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि वे सब नन्दकुमार से हेस्टिङ्ग पर इलज़ाम लाने के कारण बहुत अप्रसन्न थे। सर आलफ्रेड लायल जिनको कोई पक्षपात-युक्त नहीं कह सकता है,—

कम से कम हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में,—अपनी हेस्टिङ्ग की जीवनी के ७१ पृष्ठ पर यों लिखते हैं—

> The fact remains unshaken that Nand Kumar tried to ruin the Governor-General and would probably have succeeded if he himself had not been instantaneously crushed ; nor is it easy to agree with Sir James Stephen's view that Hastings, by interfering in the prosecution, incurred a tremendous risk of utter ruin for no reason at all. If the Governor-General desired to encourage or promote a prosecution against a man who was known to have come within the four corners of the English law, he could undoubtedly have conveyed an intimation to Mohan Parshad with little or no risk of discovery; and the fact that Impey tried the man with great patience, forbearance, and exact formality, might prove nothing against the intention to hang him, but only that he was too wise to strain the law superfluously......if a hint to prosecute could rid the Governor-General of a formidable and treacherous enemy, it is by no means improbable that he may have thought himself warranted in delivering so opportune and decisive a counter stroke ; and most men of his stamp would have done likewise.

लायल साहब के कहने का सारांश यह है कि इससे कुछ यह नहीं सिद्ध होता कि नन्दकुमार का अभियोग क़ानून के अनुसार ही हुआ, जब कि यह मालूम हो गया था कि नन्दकुमार इँगलैंड के क़ानून के चक्कर में आ गया है। उस समय इम्पी क़ानून से काम क्यों न लेता ? सर जेम्स की दलील कि हेस्टिङ्ग नन्दकुमार पर मुक़द्दमा चलवाकर अपने को ख़तरे में क्यों फँसाता, कुछ भी नहीं। यदि हेस्टिङ्ग ने मोहनप्रसाद से इशारा ही कर दिया होता तो भी भेद खुलने का कोई डर ही न था। हेस्टिङ्ग के सिक्के का आदमी ऐसे अवसर पर चूकनेवाला न था, जब कि उसका परम शत्रु ऐसी बुरी भांति फँसता था।

दो पत्र हेस्टिङ्ग के ऐसे हैं जिनको कुछ लोग हेस्टिङ्ग के विरुद्ध प्रमाण बतलाते हैं। एक पत्र तो वह है जिसको उसने १७७६ में लारेन्स सुलियन को लिखा था। उसमें बाद को कोर्ट से हेस्टिङ्ग का जो झगड़ा हुआ था उसके सम्बन्ध में लिखते हुए वह इम्पी के बारे में कहता है कि एक अवसर पर उन्होंने मेरे मान, नाम और नौकरी की रक्षा की थी। सर जेम्स और सर जान का कहना है कि ये शब्द इम्पी की उस समय की सहायता की कृतज्ञता प्रकट करते हैं जब कि उन्होंने क्लेवरिङ्ग के ख़िलाफ़ हेस्टिङ्ग को गवर्नर-जेनरेली पर रहने दिया था, और हेस्टिङ्ग एक भ्रम के कारण अपने पद से इस्तीफ़ा दे चुका हुआ समझा गया था। इम्पी की राय कहां तक ठीक थी, इसका विचार करना यहां पर स्थानाभाव से अनुचित है, परन्तु एक बात समझ में नहीं आती कि यदि हेस्टिङ्ग को अपनी कृतज्ञता प्रकट ही करनी थी तो इम्पी ही के सम्बन्ध में क्यों ? क्या और जजों ने सहायता न दी थी ? इम्पी चार जजों के बीच में अकेला ही तो था। और यदि वह नन्दकुमारवाले मामले में हेस्टिङ्ग की सहायता करना चाहता तो कैसे करता ? इसलिए हम इस्तीफ़ेवाले अवसर पर ही को क्यों न कहें कि उस समय वह अकेला ही था। हेस्टिङ्ग ने उसी पत्र में यह भी लिखा था कि जज चेम्बर हमारे कुछ प्रतिकूल हैं, परन्तु इस मामले में उन्होंने भी हेस्टिङ्ग ही के पक्ष में अपनी अनुमति दी थी। इससे सम्भव है कि यह पत्र नन्दकुमारवाले मामले ही की बात से सम्बन्ध रखता हो। लायल साहब की राय है कि दोनों अवसरों के लिए ये शब्द लागू हो सकते हैं। इसके अलावा यदि हेस्टिङ्ग का पक्ष दृढ़ और सत्य था तो इस्तीफ़ेवाले मामले में उसको इम्पी की सहायता का बखान करने की क्या आवश्यकता थी ? यदि वह कमज़ोर था तो सुप्रीम कोर्ट के लिए यह सम्भव था कि वह पक्षपात करे जैसा कि उसने वास्तव में किया। इसलिए यदि कोई यह कह उठे कि नन्दकुमारवाले मुक़द्दमे में कोर्ट ने हेस्टिङ्ग का पक्षपात

किया तो उसको निरा मूर्ख और पागल न समझ लेना चाहिए।

२७ मार्च १७७५ को उसने अपने मुख़्त्यार मेकलीन (Macleane) और डरहम (Durham) को लिखा कि यदि बनारसवाले सुलहनामे और रोहिला-युद्ध पर मेरे प्रतिकूल राय दी गई तो मैं फ़ौरन हिन्दुस्तान छोड़ दूँगा। ध्यान रक्खा जावे कि नन्दकुमार हेस्टिङ्ग पर अपने इलज़ाम ११ मार्च को ला चुका था। तो अब हेस्टिङ्ग को इतनी उतावली क्यों हो गई कि बिना अपने मुख़्त्यारों की चिट्ठी की प्रतीक्षा किये हुए वह चलने को उद्यत हो गया, विलायत के लिए नहीं, बल्कि केप-कालोनी में शरण लेने के लिए। १८ मई को उसने बड़ी धैर्य्यता का एक पत्र लिखा और हिन्दुस्तान से जाने का विचार छोड़ दिया। उसी पत्र में उसने यह भी लिखा कि नन्दकुमार महाराज जेल की हवा खा रहे हैं, और लगभग मृत्यु-लोक के रास्ते पर हैं। यह भविष्य-वाणी कुछ सन्देह-जनक समझी जाती है, क्योंकि उसने समझ लिया था कि नन्दकुमार को फांसी ही होगी, वह छूटने न पावेगा। तब क्या हेस्टिङ्ग इतना बड़ा क़ानूनदाँ था कि सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले को पहले ही जान लेता? क्या वह गवाही के बारे में भी कुछ जानता था? उसके पास केवल नन्दकुमार के अपराधी होने का यह सबूत अवश्य था कि उसे १७६७ के पहले नन्दकुमार को दो मरतबा जाल-साज़ी में सम्मिलित पाने का अवसर मिला था। नन्दकुमार को इन अवसरों पर कोई दण्ड नहीं दिया गया, क्योंकि प्रमाण ठीक ठीक न मिलते थे, और जाँच करनेवाले (वारन हेस्टिङ्ग) को नन्दकुमार के अपराधी होने में सन्देह न था। उक्त पत्र के सम्बन्ध में बेवरिज साहब की तो यह राय है कि इम्पी और हेस्टिङ्ग की सलाह नन्दकुमार को फांसी दिलवाने के सम्बन्ध में पहले ही हो चुकी थी।

मैं इतना स्पष्ट रीति से तो कह नहीं सकता, क्योंकि कोई पक्का सबूत हेस्टिङ्ग के ऊपर इस अपराध को प्रमाणित करने के लिए नहीं मिलता है। केवल अनुमान के भरोसे मनुष्य जो चाहे अपना मत स्थिर करे। लायल साहब का इस सम्बन्ध में यह कहना है कि—

They (the circumstances) merely explain the rumour; they are like the scattered incidents that may be faint indications of a true historic event, or may only account for the formation of a myth. (Lyall's Life of Warren Hastings—P. 70, Englishmen of Letters series.)

अर्थात् जो कुछ बातें नन्दकुमार के मुक़द्दमे की मालूम हैं वे ऐसी बेतरतीब हैं और इधर-उधर फैली हुई सी हैं कि उन पर एक ऐतिहासिक घटना की नीव भी डाली जा सकती है और उनसे एक कल्पित कथा भी बनाई जा सकती है।

सबूत के सम्बन्ध में भी इन महाशय की यह राय है—

With his reticence, self-command, consummate mastery of his instrument, fertility of resource, and firmness of purpose, he (W. Hastings) was not likely to blunder in such a simple, easy, and yet dangerous movement as would be required to set going the prosecution without leaving trace that might lead to his detection in after years.—(Lyall, P. 71.)

अर्थात् हेस्टिङ्ग में गम्भीरता और आत्मसंयम था। उसके साधन करतलगत थे और वह प्रत्युत्पन्नमति था। उसमें संकल्पदृढ़ता भी थी। इनके होते क्या यह अनुमान किया जा सकता है कि उसने इतने सहज, तथापि ख़तरनाक मामले में इस प्रकार कार्य्य किया होगा कि कोई सबूत बाद के लिए छोड़ जाता। लायल साहब का अन्तिम मत यह है—

Nevertheless when Sir James Stephen undertakes to establish by arguments drawn from the general motives of human action, the moral certainty that Hastings was totally unconnected with the business, and that the popular impression against him is utterly wrong, his demonstration is necessarily less conclusive, and we may reasonably hesitate about standing surety to this extent for the undiscoverable motives and behaviour of a man in the situation of Hastings. —(Lyall, P. 70.)

अर्थ—तथापि जब कि स्टेफ़ेन साहब उन तर्कों का उपयोग करते हैं जो कि मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्तियों पर निर्भर हैं और यह सिद्ध करते हैं कि सदाचार या धर्मदृष्टि से हेस्टिङ्ग का सम्बन्ध इस घटना से कुछ भी न था और साधारण जनता का विश्वास ठीक नहीं है, तब तो उनकी युक्ति इतनी ठीक नहीं मालूम पड़ती। यदि हम हेस्टिंग की स्थिति के मनुष्य के गूढ़ मन्तव्यों तथा आचरण के लिए हामी भरने में हिचकें तो हम लोग अविवेकी नहीं कहे जा सकते।

जब कि कोई सबूत ऐसा नहीं मिलता जिससे हेस्टिङ्ग पर नन्दकुमार की फाँसी का दोष भले प्रकार लगाया जा सके, तब हेस्टिङ्ग को उसके लिए ज़िम्मेवार कहना अन्याय और अनुचित है। साथ ही साथ यह भी कहना पड़ेगा कि नन्दकुमार को फाँसी व्यर्थ दी गई और उसके साथ अन्याय किया गया। पक्ष और विपक्ष के कई लोगों का कथन है कि यदि नन्दकुमार राजनैतिक धारा में न फँसता अथवा कम्पनी के हित के विपरीत काम न करता, तो वह कदाचित् फाँसी पर न चढ़ाया जाता। इस मत का केवल एक कारण यह है कि नन्दकुमार से कम्पनी के अँगरेज़ तथा वे हिन्दुस्तानी, आरमीनियन और अँगरेज़ जिनका हित कम्पनी के हित से था, नन्दकुमार से वैर रखते थे, क्योंकि नन्दकुमार ने कुटिलता से अपने को एक शक्तिमान् पुरुष बना लिया था और वह सदा कम्पनी को या उसके प्रभाव को नाश करने का अविरल प्रयत्न करता रहा। जूरी इन्हीं कलकत्ता-निवासी अँगरेज़ों में से चुने गये थे जिनमें प्राइस सदृश सज्जन तो पहले ही से नन्दकुमार से रुष्ट और द्वेष माने हुए थे। रहे जज लोग, सो नन्दकुमार के सम्बन्ध में कौंसिल से उनकी चोंचें चल ही चुकी थीं और वे कोई देवता तो थे ही नहीं, जो वे नन्दकुमार से बिगड़ न जाते। उनका भाव तो मुक़द्दमे में जगह जगह पर स्वतः प्रकट होता रहा था। इम्पी हेस्टिङ्ग का सहपाठी था; वह अदालत का रोब जमाना चाहता था। सम्भव है, उसने इसी कारण कड़ी दृष्टि से नन्दकुमार पर विचार किया हो। मेरा यह तात्पर्य्य नहीं कि इम्पी और हेस्टिङ्ग साहबों ने नन्दकुमार के बारे में कोई मिसकौट या कान्फ़रेन्स की हो, परन्तु इम्पी साहब ने यह तो समझ ही लिया होगा कि हेस्टिङ्ग को नन्दकुमार की मृत्यु से बड़ा ही सुख होगा और आपत्ति से छुटकारा मिलेगा। इसलिए नन्दकुमार पर कड़ा क़ानून, कड़ा व्यवहार, सब कुछ किया गया और जब उसकी फाँसी न रोकी गई, तब यह व्यवहार कठोर ही नहीं, किन्तु घोर अन्याययुक्त हुआ। स्टेफ़ेन साहब कहते हैं कि इम्पी तो चार जजों में एक था, परन्तु जब जनता की ओर से उसको प्रशंसापत्र दिये गये और उसकी तसवीर खींची गई, तब बाक़ी तीन जजों का किसी ने नाम ही न लिया! मुक़द्दमे में विचार करने की जो कुछ प्रशंसा थी सब इम्पी साहब के भाग में पड़ी। पारलियामेंट की पांचवीं कम्पनी-सम्बन्धी रिपोर्ट में सन् १७६२—७२ तक के फ़ौजदारी अभियोगों की सूची दी है; उससे मालूम होगा कि चोरी या मारपीट में हिन्दुस्तानियों को तो बेत पड़ते थे और अँगरेज़ों को जुरमाना या क़ैद की सज़ा होती थी। जालसाज़ी के सम्बन्ध में एक अँगरेज़ को तो केवल बेत पड़े। दूसरे ही साल राधाचरण मित्र को फाँसी की आज्ञा हुई, परन्तु क्षमा प्रदान की गई और नन्दकुमार को १७७५ में फाँसी हुई। इम्पी का कहना है कि फाँसीवाला विलायती क़ानून कम से कम १७५३ से हिन्दुस्तान में लागू था। तब यह सब पूर्वाग्रह नहीं तो क्या है? मेरा अनुमान और मत तो यह है कि नन्दकुमार को फाँसी इसलिए मिली कि उससे लगभग सब अँगरेज़ चिढ़ते थे। क्योंकि वह उनकी जड़ काटने पर नित्य परिकर-बद्ध रहता था। वह हेस्टिङ्ग पर इलज़ाम लाया था और कौंसिल की मेजारिटी का, जो शासन-प्रणाली और कर्म्मचारियों की ख़राबियों को दूर करना चाहती थी, सच्चा साथी था। इसलिए सब लोगों ने उसको दण्ड दिलाने में सहायता दी। हेस्टिङ्ग ने उनसे ऐसा करने को कदापि न कहा होगा, परन्तु उसकी आन्तरिक इच्छा को जानना भी कठिन न हुआ होगा। इँगलेंड के राजा हेनरी ने बेकेट की मृत्यु के लिए कभी आज्ञा न दी थी, परन्तु वह मारा

गया। हेस्टिङ्ग को स्वयं ज्ञात था कि उस पर लोगों का सन्देह होगा, इसलिए उसने अदालत में स्वयं कहा कि मैं पहले से सचेत रहा और अपने को दूर रक्खा। इस अवस्था में उसका आदर्श कर्तव्य यह था कि वह स्वयं गवर्नर जनरल के अधिकार द्वारा नन्दकुमार की फाँसी को रोकता जिसमें वह बाद को अपनी पूरी पूरी सफ़ाई दे सकता। परन्तु हेस्टिङ्ग ने ऐसा न किया। क्योंकि वह एक साधारण मनुष्य था, देवता नहीं, और इसीलिए उस पर प्रायश्चित्त रूप में एक लाञ्छन लगा हुआ है जिसको पूरी तौर से मिटाना दुष्कर किंवा असम्भव है।

हरिश्चन्द्र मिश्र, एम० ए०

लीला

(४)

स्थान—अयोध्या—राजप्रासाद।

[कौशल्या और सुमित्रा]

कौशल्या

नारि-जाति का जन्म सहन के अर्थ है
सौ सौ चिन्ता-भार वहन के अर्थ है
किन्तु वीर-सू भाव भयङ्कर भाव है
उसका क्या ही हृदयहीन वर्ताव है
होते जिनके लिए असंख्यक यत्न हैं
जो आंखों की ज्योति, हृदय के रत्न हैं
जीवन के आनन्द, पात्र जो स्नेह के
भाग्य-वृक्ष के सु-फल, दीप हैं गेह के
जो उतारने योग्य नहीं हैं गोद से
हैं रखने के योग्य हृदय पर मोद से
उन्हें भेजना हाय! राक्षसों के निकट
मनुजाहारी जो कि शस्त्रधारी विकट
नारी-कुल में जन्म विधाता दे कहीं
तो क्षत्राणी करे किसी को भी नहीं

सुमित्रा

जीजी, तब तो क्षात्र-धर्म्म का लोप हो
अनाचार का सभी प्रकार प्रकोप हो
लूटपाट मच जाय, महा अन्याय हो
जन-समाज असहाय, प्रजा निरुपाय हो
देकर निज सर्वस्व सार संसार में
रत रहती हैं हमीं लोक-उपकार में
केवल आत्म-त्याग हमारा धर्म है

कौशल्या

किन्तु बड़ा ही कठिन बहन, यह कर्म्म है

सुमित्रा

तब तो, सब को प्राप्त नहीं यह पर्व है
इस गौरव का एक हमीं को गर्व है

कौशल्या

पर मैं कैसे गर्व करूँ उस बात पर—
जो अवलम्बित रहे कठोराघात पर?

सुमित्रा

जीजी, करना जिसे लोक-हित कार्य्य है
उसे कठोराघात सहन अनिवार्य्य है

कौशल्या

अन्य मार्ग क्या नहीं लोकहित कार्य्य का
जो दर्शक हो त्याग और औदार्य्य का

सुमित्रा

दुष्टदमन का मार्ग लोक में है यही
जीजी, प्यासी सदा रक्त की है मही
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह छलते यहाँ
हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ फलते यहाँ
इनके वश नर आप निशाचर हैं बने
मानव दानव हुए पाप में हैं सने
करते वे अन्याय और उत्पात हैं
नर होकर कर रहे नरों का घात हैं

कौशल्या

तब तो वे हत-भाग्य दया के पात्र हैं
चेतन होकर हुए अचेतन मात्र हैं
सदुपदेश क्या उन्हें न देना चाहिए?
अनायास यह पुण्य न लेना चाहिए?
बहन, उचित उपदेश जहाँ वे पायँगे
पशुता छोड़ मनुष्य, क्या न बन जायँगे?

सुमित्रा

भोली जीजी, यही बात होती कहीं
तो फिर क्या था, स्वर्ग उतर आता यहीं
उठता हाहाकार गगन-भेदी न यों
होती शोणित-पूर्ण स्वार्थ वेदी न यों
सदुपदेश सर्वत्र काम देता कहीं
तो आदेश-विधान किया जाता नहीं
दुष्ट जनों के लिए दण्ड ही धर्म्म है
उसका पालन सदा क्षात्रकुल-कर्म्म है
सदुपदेश से दुष्ट शिष्ट होते नहीं
'गुड़ से सींचे निम्ब मिष्ट होते नहीं'

कौशल्या

हा ! तब तो यह वही बात फिर आ रही
जिसकी चिन्ता रोम रोम में छा रही
किन्तु सहज सुकुमार हमारे बाल हैं
पापी राक्षस उधर विदित विकराल हैं

सुमित्रा

भिन्न भिन्न है शक्ति और सुकुमारता
तरुओं तक को तुहिन तनिक में मारता
छोटा हो या बड़ा धीर है धीर ही
बाल, युवा या वृद्ध वीर है वीर ही
छोटा है जलयान, जलधि गम्भीर है
नीर चीरकर किन्तु पहुँचता तीर है
घनाघात भी सहज झेलता हीर है
यद्यपि दोनों का न समान शरीर है
शूरोत्साह न किसी दशा में छूटता
बालसिंह भी मत्त गजों पर टूटता
काट गिराता नकुल सहज ही नाग को
ईंधन ही तो अधिक बढ़ाता आग को

कौशल्या

बहन, तुम्हारा धैर्य्य चकित करता मुझे
फिर भी सुतवात्सल्य थकित करता मुझे
मैं अभागिनी स्नेह मात्र ही जानती
पुत्रों को, इसलिए मृदुल ही मानती
मेरे लिए प्रबोध बना ही सा नहीं
आशङ्का ही मुझे दीखती सब कहीं
बुद्धि तुम्हारी बात मानती है सही
किन्तु हृदय में भीति-भावना है वही !
मेरा दुर्बल मातृ हृदय किसने रचा ?

सुमित्रा

वह धाता है धन्य कि जिसने है रचा
करुणा-जल का प्रेम-पद्म सा वह बना
सब का कुशल-क्षेम-सद्म सा वह बना
जीजी, सोच न करो, सोच का काम क्या ?
घर बैठे, इसलिए हुए हैं राम क्या ?
नारी का संसार गेह-परिवार है
नर का कर्म्मक्षेत्र विश्व संसार है
माना, नारी-जन्म सहन के अर्थ है
सौ सौ चिन्ता-भार वहन के अर्थ है
किन्तु सहन-सुख-सदृश कौन सुख है कहाँ ?
गौरव है शत भार वहन में ही यहाँ

कौशल्या

पाकर शुभ साहाय्य तुम्हारा मैं, बहन,
देखूँगी जो किया जा सकेगा सहन
पर करने को क्रूर राक्षसों का दमन
जा सकते थे क्या न राज्य के सैन्य जन !

सुमित्रा

देकर निज सामन्त बचाना आपको
सह सकते क्या राम कभी इस पाप को ?

कौशल्या

कभी नहीं, यह बहुत ठीक तुमने कहा
हा ! इतना भी ध्यान क्यों न मुझको रहा
चिन्ता से मैं आज मूढ़ सी हो रही
साधारण सी बात गूढ़ सी हो रही !

मैथिलीशरण गुप्त

अमेरिका की सैर।

टसकेजी से विदा हो मैं न्यूआर्लियन्स की ओर चला। रात्रि भर के सफ़र के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल नगर के निकट जा पहुँचा। यहाँ प्रकृति देवी की रङ्ग-शाला में दूसरी यवनिका गिरी हुई थी। उत्तर की प्रचण्ड शिशिर वायु यहाँ नहीं थी,

हिम-कण से भी पृथ्वी श्वेत-वस्त्र-भूषित न थी और न शीत की क्रूरता से वृक्ष-गण ही नङ्गे थे। यहाँ सुन्दर-सौरभ वसन्त का प्रवेश था। ऋतुराज की अगवानी के लिए वृक्ष-गण नहा धो कोमल कोमल नवदलों का हरित वस्त्र पहिन तैयार हो रहे थे। कहीं कहीं एक प्रकार के विशेष वृक्ष ताल-कुसुमों से सुसज्जित नव-वधुओं की भाँति देख पड़ते थे। पृथ्वी पर भी घास का सुन्दर ग़लीचा बिछा था।

कोकिल गण भी कुहुक कुहुककर ऋतुराज के आने का सँदेशा पहुँचा रही थीं। प्रातः मन्द समीर भी धीरे धीरे पथिकों के चित्त के आमोद के लिए चल रही थी। छः मास के निष्ठुर और कठोर शीत के उपरान्त वसन्त के आगमन से चित्त पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके वर्णन की शक्ति केवल कवियों के वाक्य अथवा चतुर चितेरे की क़लम में ही होती है। मेरे ऐसे नीरस लेखकों के गद्य में उसका स्वाद ढूँढ़ना केवल प्रमाद और भूल है।

धीरे धीरे गाड़ी जङ्गल से होती हुई नगर में पहुँच गई। चारों ओर धुआँ, ऊँची ऊँची चिमनियाँ और अटारियाँ देख पड़ने लगीं। एक बार तो यही भ्रम हुआ कि क्या काशी से कलकत्ते तो नहीं आ गये, किन्तु तनिक ही में भ्रम दूर हो गया। मैं ठंढी साँस भर गाड़ी में से उतर पड़ा। स्टेशन से विक्टोरिया पर बैठ होटल में पहुँचा; थोड़ी देर बाद सामान भी आ गया। अब यहाँ शीत थोड़ा कम होने के कारण भारी कपड़े असह्य हो गये। इससे कपड़े उतार ख़ूब स्नान किया। फिर दूसरे हलके कपड़े पहन भोजन-गृह में गया। यहाँ लोगों ने मुझे अचम्भे से देखना प्रारम्भ किया। कारण यह था कि यहाँ दक्षिण के प्रदेश में रङ्ग की बड़ी घृणा है, और होटलों में मेरे जैसे काले मनुष्य नहीं आने पाते। हम विदेशी थे, इसीसे उतरने पाये थे। यही कारण उनके अचम्भे का था। थोड़ी देर में काना-फूसी से सबको पता चल गया कि यह विदेशी जन्तु है, बस सबकी निगाह हटकर अपने अपने कार्य्य की ओर चली गई। मैंने इस उपर्युक्त बात का, कई जगह, कई प्रकार से, भिन्न भिन्न प्रसङ्गों पर उल्लेख किया है। पाठक महोदय यह न समझें कि मैं व्यर्थ एक ही बात को दोहराकर उनके अमूल्य समय का नाश करता हूँ। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि मैं अपने देशवासियों पर यह भली भाँति प्रकट कर दूँ कि भारत के बाहर देवता नहीं बसते। संसार में सभी जगह मनुष्यों का वास है और सभी जगह रागद्वेष की मात्रा बराबर है।

यह नगर संयुक्त राष्ट्र के दक्षिणी छोर पर है और यह विशाल नद मिसीसिपी Mississippi पर उपस्थित है। यह नगर प्रथम प्रथम स्पेन-देश-निवासियों ने बसाया था, पर यहाँ भी नवीनता या क्रिस्तानपन की झलक देख पड़ती है। यह नगर तीन भागों में विभक्त है—नवीन, पुरातन, तथा व्यवसाय-खण्ड। नवीन भाग में साफ़ सुथरी सड़कें, उत्तम साफ़ हवादार मकान, गृहों के साथ उद्यान तथा वाटिकायें भी हैं। यहाँ खजूर और ताड़ के वृक्षों की बहुतायत है। नगर का यह भाग देखने में बड़ा ही हृदयग्राही है।

पुराना भाग मैला है। मकानात भी पुराने ढङ्ग के हैं और यहाँ प्रायः पुराने स्पेनिश और उनके वर्णसङ्कर ही निवास करते हैं। अपने देश के पुराने मुसलमानी नगर, फ़ैज़ाबाद, जौनपुर इत्यादि को देखने से इसका मानचित्र मन में खिँच सकता है। व्यवसाय-खण्ड अथवा मण्डी तो ऐसी गन्दी है कि जिसका ठिकाना नहीं। कलकत्ते के बड़े बाज़ार में वर्षा के उपरान्त जो दृश्य होता है वह यहाँ है। इस गन्दगी का विशेष कारण यह है कि इस नगर की भूमि मिसीसिपी नदी की सतह से नीची है। नदी के किनारे बाँध बाँधकर नदी का जल भीतर प्रवेश करने से रोका गया है। इसी कारण

बारिश के जल को बहाकर निकालने में कठिनाई पड़ती है। वही नगर की गन्दगी का प्रधान उत्तर-दाता है। इसीके साथ ग़रीबी भी एक विशेष प्रधान कारण है; क्योंकि अभी हाल में ही सरकारी सहायता से यहाँ की नागरिक सभा ने सुविस्तृत सण्डास (Drainage) बनाया है जो सब पानी तथा मैले को बहाकर ले जायगा। सब जल इत्यादि मुहाने के पास विशेष यन्त्र के द्वारा नीचे से उठा कर नदी में डाल दिया जायगा। यहाँ के लोग कहते थे कि थोड़े दिन में ही यह गन्दगी यहाँ से दूर हो जायगी।

अमेरिका के सब प्रधान नगरों में घूमकर नगर दिखाने के लिए एक विशेष यात्रा-संस्था है। मैं भी एक संस्था-द्वारा ठीक कर यात्रा के लिए रवाना हुआ। इस यात्रा में मैंने दो प्रधान वस्तुएं देखीं। एक रोमन कैथलिक गिर्जा, दूसरा शुतुर्मुर्ग़-ख़ाना। गिर्जे के भीतर जाने से मालूम होता था कि किसी देव-मन्दिर में आये हैं। बीच में माता मेरी की गोद में महात्मा ईसू की मूर्त्ति थी। एक ओर महात्मा ईसू सूली पर चढ़े थे, दूसरी ओर अन्य मूर्त्तियाँ थीं। प्रतिमाओं के आगे छोटी बड़ी भिन्न भिन्न प्रकार की मोमबत्तियाँ जल रही थीं। एक ओर धूपदानी से धूप की सुगन्ध उठ रही थी। अपने मन्दिरों में पुष्प और जल होता है, यह यहाँ न था, और सब बातें वैसी ही थीं। संसार में प्रायः सभी जगह प्राचीन मिस्र, यूनान, नवीन रोम, तथा नई दुनिया के पुराने निवासियों में भी "माया" सभ्यता में मूर्त्ति-पूजा के चिह्न मिलते हैं। बैबिलोनिया और चैलडिया देखी नहीं; किन्तु पुस्तक में वहाँ भी प्रतिमा-पूजा का हाल पढ़ने को मिलता ही है। इसके अतिरिक्त जिन मुसलमानों ने प्रतिमा-पूजा का प्रचण्ड खण्डन किया है उनके काबःशरीफ़ में भी "सङ्ग अस्वद" को अभी तक हाजी लोग चूमते हैं और उसका चरणामृत लेते हैं। फिर काबःशरीफ़ की ओर मुख करके नमाज़ अदा करना भी ज़ाहिर करता है कि ये लोग भी ख़ानये-ख़ुदा को पाक मानते हैं। आर्य्यसमाज के लोगों ने, जो अन्य मूर्त्ति का खण्डन करते हैं, अपने मन्दिरों में स्वामी दयानन्द की तसवीर रखना प्रारम्भ कर दिया है। कुछ लोग तसवीर को माला इत्यादि भी पहनाने लगे हैं। सम्भव है, कुछ दिनों में मूर्त्तियाँ भी बनने लगें। इन बातों को देख-सुन कर भ्रम होने लगता है कि क्या प्रतिमा-पूजन (Symbol-worship) मानव-प्रकृति का स्वाभाविक धर्म तो नहीं है। यह हो सकता है कि वह वास्तविक उपासना का ढङ्ग न हो, किन्तु मानव-मनोगति उस ओर झुकती अधिक जान पड़ती है।

शुतुर्मुर्ग़-ख़ाने में मैंने १५ दिन से लेकर ६० वर्ष तक के पुराने शुतुर्मुर्ग़ देखे। पश्चिमी महिलायें इस पक्षी के परों को टोपी में खोसने के लिए बड़े चाव से ख़रीदती हैं। ये दुष्प्राप्य होने के कारण बहुत मूल्य में बिकते हैं। इसी कारण इस देश के गर्म स्थानों में इनके कई कारख़ाने व्यवसायियों ने बड़े व्यय से खोल रक्खे हैं। प्रतिवर्ष एक पक्षी प्रायः सौ, सवा सौ पर देता है और एक एक पर का मूल्य दो-ढाई डालर तक होता है। इसी प्रकार शुतुर्मुर्ग़ के अण्डे भी एक एक डालर को बिकते हैं। इन कारख़ानों में दर्शकगण इस विचित्र पक्षी को देखने के लिए बहुधा आते हैं। यहाँ एक प्रसिद्ध श्मशान भी है, जहाँ मनुष्य गाड़े नहीं जाते; किन्तु एक प्रकार के चबूतरे पर रक्खे जाते हैं। इसे देखने के लिए भी बहुत यात्री आते हैं।

मिस्टर एडविन आर० जड (Edwin R. Jadd) महाशय इस नगर के वाणिज्य-व्यवसाय के कर्म्मचारी हैं। इनके नाम वाशिङ्गटन के प्रधान कार्य्यालय से मैं पत्र लाया था। पत्र पाकर आपने मुझ पर विशेष दया की और बड़ी सज्जनता से पेश आये। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि इस देश के

कर्म्मचारी-गण बड़ी ही सज्जनता से पेश आते हैं। अपने देश की तो बात ही न्यारी है, वहाँ तो कलेक्टरों की कोठी के पीछे घंटों धूप में सूखने के बाद प्रभु के दर्शन होते हैं! फिर भी हुज़ूर कहते कहते मुँह दर्द करने लगता है। साहब बहादुर "वल तुम अच्छा है", "कुछ काम है", "अच्छा सलाम"—बस इतना ही कह बहुत लोगों को टाल देते हैं। इँगलेंड में भी भारत-सचिव के सहकारी मन्त्री के पास मैं गया था। उन्होंने बात तो शराफ़त से की, परन्तु दो ही मिनट में टाल दिया। यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ सभी संयुक्त-राष्ट्र-निवासी राष्ट्र-पति से उसी भाँति मिल सकते हैं, जैसे अपने देश में कोई अपने ऊँचे मातहत से मिलता है। यहाँ के राष्ट्रपति जनता के नौकर हैं, प्रजा के प्रभु नहीं। मैं यहाँ के सचिव-मण्डल में तीन जनों से मिला था। सभी महाशय बड़ी सज्जनता से मिले, घण्टों बातें कीं और अनेक प्रकार से मुझे सहायता दी। यहाँ आप जिससे चाहें मिल सकते हैं—दर्शन के पूर्व पगड़ी पहनने, जूता उतारने, हाते के बाहर गाड़ी छोड़ने और धूप में तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। इच्छा प्रकट करने पर आप लोग हम सबको घाट दिखाने ले गये थे। यहाँ विस्तृत व्यापार के कारण घाट बहुत लम्बा है। १५ मील की लम्बाई में घाट ही घाट है, क़रीब ८ मील लम्बे घाटों पर टीन की छावनी पड़ी है। नाना प्रकार के द्रव्य यहाँ से आते जाते हैं। क्यूबा आदि से इस देश में केला बहुत आता है। प्रायः प्रत्येक दिन केलों से लदे जहाज़ आते हैं। उन्हें उतारने के लिए एक विशेष प्रकार का यन्त्र है। राजपूताने में कहीं कहीं जल उठाने के लिए जैसे मालाकार यन्त्र हैं ये यन्त्र भी उसी प्रकार के हैं। किन्तु आधुनिक ज्ञान का पूरा प्रयोग इसमें किया गया है। माला घूमा करती है, दो मनुष्य जहाज़ के ऊपर घौदों को माला की गोद में रखते जाते हैं और नीचे उन्हें दो आदमी उतारते जाते हैं। कहते हैं कि १२ घण्टों में प्रायः ५ सहस्र घौदें जहाज़ से उतार रेलगाड़ियों में बन्द कर दी जाती हैं। केले के लिए विशेष प्रकार की गाड़ियाँ बनी हैं जिनमें केले की घौदें लटका दी जाती हैं। हम इस घाट को प्रायः दो घण्टे तक देखते रहे, फिर नाव पर चढ़ नदी की सैर करने चले। १५ मील तक नदी में एक ओर से दूसरी ओर गये। घाटों की शोभा बड़ी ही अच्छी थी। नगर के छोर पर दो रमणियों ने जापानी बँगले बनवाये हैं। उन्हीं में वे दोनों बहिनें निवास करती हैं। बँगले बड़े ही सुन्दर हैं; जी चाहता है उन्हें देखा करूँ। लौटती बार जहाज़ की मरम्मत करने का कारख़ाना देखा। यह एक बहुत बड़ा १५ टन का यन्त्र है। इसे पानी में डुबा देते हैं। डूबने के बाद जहाज़ इस पर आता है, तब यह जहाज़ समेत उठकर ऊपर चला आता है। फिर कारीगर लोग जहाँ चाहें वहाँ जाकर यथेष्ट मरम्मत कर सकते हैं। इस समय एक जहाज़ में मरम्मत हो रही थी और दूसरे की मरम्मत का प्रबन्ध हो रहा था, अर्थात् यन्त्र पानी के भीतर जा रहा था। इसे भीतर जाने और फिर उठने में ३ घण्टे लगते हैं।

दूसरे दिन मैं उन्हीं महाशय जी के साथ चावल का मिल देखने गया। मिल के अधिकारियों ने बहुत आगा-पीछा करने के बाद इधर-उधर दिखाकर बाहर निकाला। चावल के मिल में ३ क्रियायें होती हैं—पहले धान तोड़ चावल अलग किये जाते हैं, फिर चावल साफ़ किये जाते हैं और अन्त में चावलों पर पालिश की जाती है। यह अन्तिम क्रिया व्यर्थ ही है; किन्तु ख़रीदारों को प्रसन्न करना आवश्यक है। यहाँ प्रधान चावल तीन प्रकार के होते हैं। हौंडुराज (Honduras) ब्लूरोज़ (Blue rose) और जापान। हौंडुराज़ सब से उत्तम प्रकार का चावल है। यह पतला और लम्बा

होता है; जापान मोटा और नाटा, और ब्लूरोज़ इन दोनों जातियों का सङ्कर है।

मैंने यहाँ का प्रसिद्ध चीनी का कारख़ाना देखना चाहा था, किन्तु जड महाशय के प्रयत्न करने पर भी कारख़ानों के मालिकों ने देखने की आज्ञा नहीं दी। कारण यह था कि उनको जड महाशय ने हमारे भरती होने की बात बता दी थी।

आज शाम को यन्त्र बनानेवालों का कारख़ाना देखा, पर यहाँ भी कुछ अधिक देखने को नहीं मिला। इसके बाद मिठाई का कारख़ाना देखा। यहाँ की मिठाइयाँ प्रायः शक्कर की होती हैं और कुछ चाकलेट की, जो एक प्रकार के फल का पिसान है। इसका रंग लाल कथैली की तरह और स्वाद अच्छा होता है।

ईस्टर के तेवहार के लिए यहाँ भी चीनी के ख़रगोश और अन्य जन्तु बनते हैं, जैसे दिवाली में अपने यहाँ हाथी घोड़े बनाये जाते हैं।

यहाँ से प्रसिद्ध नगर शिकागो के लिए प्रस्थान किया। उसी सुन्दर वन में से होकर फिर चला। यहाँ की शोभा का पुनः वर्णन व्यर्थ पिष्ट-पेषण है। दिन भर, रात्रि भर और पुनः एक बजे तक लगातार रेल में चलकर शिकागो पहुँचा और जाकर निर्दिष्ट स्थान में निवास किया।

यह नगर बड़ा विशाल है। इस देश में इसके बराबर केवल एकही और नगर है, जिसे न्यूयार्क कहते हैं और जिसका कुछ वर्णन पूर्व किया जा चुका है। यहाँ की इमारतें भी बड़ी ऊँची ऊँची हैं, किन्तु न्यूयार्क का मुक़ाबिला होना कठिन है। यहाँ सवारी के लिए ट्राम्वे, और एलीवेटड रेलवे हैं; न्यूयार्क की भाँति यहाँ अण्डर ग्राऊँड नहीं है। यहाँ की गाड़ियों में इतनी भीड़ रहती है कि सुबह-शाम प्रायः खड़े खड़े ही आना जाना पड़ता था। अब यहाँ की नागरिक सभा सुरङ्ग-द्वारा भी रास्ते का प्रबन्ध करने का विचार कर रही है। यहाँ की नालियाँ और पानी की कल विश्वकर्म्मा की चातुरी और शिल्प की अगाध विद्या का प्रमाण हैं। इस नगर के बीच से एक छोटी नदी बहती है जिसको शिकागो नदी कहते हैं। इस नगर का संडास इसी नदी में होकर बहता था। पूर्व में इस नदी का जल मिचिगन झील में गिरता है। किन्तु उसी झील में से नगर के पीने का जल आता है। इस कारण उसमें से संडास का गिराना अनुचित जान १९०० में ४,३०,००,००० डालर की लागत से एक नहर बनाई गई थी जिसने इस नदी की स्वाभाविक धारा को झील की ओर से ६० मील बाहर ले जाकर दो नदियों में गिराया है और अन्त में मिसीसीपी नदी में मिला दिया है। अब यह नहर या नदी २१ फुट गहरी है और संडास के अतिरिक्त नावों के आने जाने का कार्य भी करती है। इस नदी को साफ़ रखने के लिए प्रत्येक मिनट ३,००,००० घन फुट पानी इस विशाल झील में से लाया जाता है। यह सब पानी जहाँ गिरता है वहाँ एक कृत्रिम प्रपात बनाकर विद्युच्छक्ति भी उत्पन्न की जाती है।

जल का कारख़ाना इससे भी विचित्र है। झील की सतह के नीचे से पक्की सुरङ्ग बना, वहाँ का पानी नगर में लाया जाता है। और नगर में सुरङ्ग के भीतर पंप-द्वारा पानी खींचकर ऊपर लाया जाता है। इस प्रकार, जल को साफ़ करने की आवश्यकता नहीं होती। जल स्वयं शुद्ध और उत्तम है। क्या अपने देश में नागरिक सभा जल और नल का ऐसा प्रबन्ध करने के लिए कुछ करती है। कहते लज्जा आती है कि काशी के पानी और संडास का इतना बुरा हाल है जिसका ठिकाना नहीं। संडास के कारण गंगाजी का जल भ्रष्ट हो गया है और ऐसा ही हाल रहा तो उसमें कुछ दिनों में नहाना भी कठिन हो जायगा। क्या काशी की नागरिक सभा सोचकर कोई प्रबन्ध करेगी?

शिकागो में मैंने बहुत चीज़ें देखीं, किन्तु सब का लिखना कठिन है। तो भी कुछ का वर्णन करता हूँ। यहाँ का बूचड़ख़ाना दर्शकों को अवश्य देखना चाहिए। मांसाहारी के हृदय में भी वहाँ जाने से दया और घृणा आ जाती है, वैष्णवों की तो कथा ही न्यारी है। हज़ारों पशु यहाँ नित्य मारे जाते हैं। उनका सब संस्कार होने पर मांस डब्बों में बन्द होकर बाहर चला जाता है। मैं एक दृश्य का वर्णन करूँगा। एक लम्बे दालान में, बिजली के प्रकाश में, दुर्गन्ध बचा, मांस के ढेर में जा खड़े हुए। थोड़ी देर में दो मनुष्य छुरियाँ ले खड़े हुए। विशेष यन्त्र द्वारा पिछले पैरों के सहारे लटकी हुई एक के पीछे एक भेड़ों की क़तार आने लगी। एक मनुष्य उनका गला काटता जाता था, दूसरा गर्दन पर हाथ रख और मुख पकड़ उनकी गर्दन तोड़ देता था। वहाँ से छटपटाती वे दूसरी ओर चली जाती थीं। यहाँ उनके पैर तोड़े, पेट काटे और तीसरी जगह उनकी खाल उतार ली जाती थी। चौथी जगह पेट की अँतड़ियाँ निकाल, विशेष लकड़ी लगा उनकी कमर सीधी कर फैला देते थे। आगे उन्हें धोकर सिर अलग कर लेते थे। फिर दूसरी जगह पेट की निकली झिल्ली से उन्हें लपेट दिया जाता था। यह हत्याकाण्ड का अन्तिम दृश्य था! यहाँ के पीछे उनकी जाँच होती है। जो ख़राब, रोगी, कम उम्र के जानवर होते हैं उनका मांस डाक्टरी से अलग कर दिया जाता है। यदि यह डाक्टरी पहले ही हो जाया करे तो कितने निरपराध पशुओं के प्राण बच जायँ!

यहाँ पर रुधिर से लेकर नख और बाल पर्यन्त कार्य में लाये जाते हैं। सुअरों का चिल्लाना छोड़कर और कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता!

यहाँ प्रायः भेड़, सुअर और गाय का वध होता है। मैंने भेड़ और सुअर का वध होते देखा। नाना प्रकार की और व्यवस्थायें भी यहाँ देखीं। जैसे चरबी से मक्खन बनाने का कारख़ाना, बालों के साफ़ करने का कारख़ाना, मांस को डब्बों में बन्द करने की कला, तथा हिम-कोठरी जहाँ मांस जमाकर रक्खा जाता है। इस पिछले कारख़ाने का नाम स्टाक यार्ड्स (Stock yards) है। इस कारख़ाने में ५०० एकड़ जगह है। २५ मील लम्बी चरनियाँ और २० मील लम्बी पानी की नादें हैं, और यहाँ ७५,००० गायें, ३,००,००० सुअर, ५०,००० भेड़ें और ५००० घोड़े रखने की जगह है। साल में यहाँ ३७-४० लाख गायें, ७०-८० लाख सुअर ४०-५० लाख भेड़ और १ लाख घोड़े आते हैं। इनका मूल्य ३२५० लाख डालर के निकट होता है। इनमें से तीन तिहाई गायें और सुअर मारकर उनका मांस बाहर भेजा जाता है। यहाँ ३० हज़ार मनुष्य प्रतिदिन कार्य्य करते हैं। इस कारख़ाने के भीतर बंक और होटल हैं और यहाँ से अख़बार भी निकलता है। इस कारख़ाने के लिए ३० ट्रेनें चलती हैं। कारख़ाने के भीतर कई मीलों तक रेल की सड़क है, इसीसे इसके विस्तार का पता लग सकता है।

यहाँ मैं एक लोहे का कारख़ाना देखने भी गया था। लोहे की भट्टी में लोहा गलाकर बनाते हैं। लोहे से रेल तथा चद्दरें बनती हैं। मैंने शहतीर बनते देखे? उस दिन रेल और चद्दर का कारख़ाना बन्द होने के कारण मैं उसे नहीं देख सका। बहुत दिन हुए, पाठशालाओं में लोहे के बनाने की रीति रसायन में पढ़ी थी। उसीको यहाँ देखने से बहुत बातें समझ में आगईं। लौटती बार रास्ते में रेल ही पर से सीमेण्ट (अँगरेज़ी मिट्टी) का कारख़ाना भी देखा। आधुनिक शिल्प तथा यन्त्रविद्या में इसका बहुत प्रयोग होता है। इसका बनाना भी बड़ा ही सरल है। इसके कारख़ाने हमारे देश में शीघ्र बनना परमावश्यक हैं।

यहाँ एक बड़ा बैंक (फ़र्स्ट नैशनल बैंक) भी देखा। इसके उप-सभापति आरनल्ड (Arnold) महाशय ने हमें सब वस्तुएँ खूब अच्छी तरह से

घुमा फिराकर दिखाईं। अमेरिकन बैंक में एक विचित्र बात देखने में आई। अपने यहाँ अधिक दिन के लिए रुपया बैंक में रखने से सूद मिलता है। यदि तीन मास के लिए १२) रुपया सैकड़ा व्याज मिलेगा तो एक मास या २ सप्ताह के लिए ३ या ४ सैकड़ा मिलेगा। यहाँ थोड़े धन पर सूद नहीं मिलता, उलटी रखवाई देनी होती है।

अपने देश में ज़मींदारी अथवा कारख़ानों में धन लगाना आधुनिक कोठीवालों के नियम के विरुद्ध समझा जाता है, किन्तु यहाँ यह सराफ़े का प्रधान काम गिना जाता है। हिसाब-किताब रखने का भी यहाँ उत्तम प्रबन्ध है। भूल-चूक, तथा चोरी इत्यादि की सम्भावना को यहाँ बहुत न्यून कर दिया है। यहाँ चैक, रसीद और हुण्डियों पर स्टाम्प लगाने की भी आवश्यकता नहीं है। जोकि यहाँ बैंकों में थोड़ा रुपया जमा करने में दिक़त है इसलिए प्रधान प्रधान बैंकों में लोहे की बड़ी बड़ी कोठरियों में छोटे छोटे बहुतसे सन्दूक़ रहते हैं, जिन्हें किराये पर लेकर लोग अपना धन हिफ़ाज़त के लिए बैंकों में रखते हैं।

यहाँ एक प्रकार का नाच भी देखा, जिसे "कूची कूची" नाच कहते हैं। इसमें युवा लड़कियों को नङ्गा करके नचाते हैं। जिससे जनता पर बड़ा ही अनुचित प्रभाव पड़ता है। ऐसे नाचों की जगहों के पास ही अन्य प्रकार की बुराइयों की भी सुविधा है। ये जगहें नगर के प्रधान भाग में हैं, जैसे डीयरबार्न (Dearborn) सड़क इत्यादि पर। यहीं बड़ी बड़ी नाटकशालायें भी हैं। इन जगहों का नाम ओरिअण्टलडांस रख लिया है।

इस देश में आकर सब स्थानों को अवश्य देखना चाहिए जिसमें यहाँवालों की सभ्यता के खोखलेपन का पता लगे।

अमेरिका का एक यात्री।

विविध विषय।

१—हवाई डाक।

जिस तरह स्टीम एञ्जिन के आविष्कार होने पर संसार में अनेक परिवर्तन हो गये, उसी तरह आज कल के आविष्कार भी शीघ्र ही पृथ्वी का काया-पलट कर देंगे। वायु-यानों पर सवार होकर लोग हज़ारों मील का सफ़र घण्टों में तय करने लगे। बड़े बड़े पहाड़ और महासागर बात की बात में अनायास पार होने लगे। हवाई डाक चलना शुरू हो गई। इँगलैंड से कलोन को पहले पांच दिनों में डाक पहुँचा करती थी; अब वायु-यानों द्वारा दस घण्टे में पहुँच जाती है। डाक रेल से फाक्स्टन पहुँचती है। वहां कलें लगी हैं; वे उसे तुरन्त एरोड्रोम में चढ़ा देती हैं। पहली ही यात्रा में चार वायु-यानों ने २३ बड़े बड़े थैले निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा दिये।

२—पण्डित व्रजरत्न भट्टाचार्य का देहान्त।

दुःख का विषय है कि गत मास रीवाँ में मुरादाबाद के पण्डित व्रजरत्न भट्टाचार्य का देहान्त हो गया। आप कुछ वर्षों से रीवाँ के शुभचिन्तक पत्र के सम्पादक थे और इस काम के कारण आप वहाँ निवास करते थे। देहावसान के समय आपकी अवस्था लगभग ४४ वर्ष की थी।

आप गुजराती ब्राह्मण थे। भट्टाचार्यजी के पूर्वज गुजरात से आकर मुरादाबाद में बस गये थे। पण्डितजी की जीविका ज़मीन्दारी तथा पुस्तक-प्रणयन से होती थी। आपने कई संस्कृत ग्रन्थों की हिन्दी-टीकायें लिखी हैं जो बम्बई तथा अन्य स्थानों में प्रकाशित हुई हैं। आप कविता-प्रेमी भी थे और संस्कृत तथा हिन्दी में कविता लिखा करते थे। हिन्दी के प्रचार के लिए आपने तन, मन, धन से अनेक प्रयत्न किये थे। आपका स्वभाव बड़ा गम्भीर था।

ईश्वर आपकी आत्मा को शान्ति और आपके परिवार को धीरज दे।

३—*प्राचीन फ़ारस-निवासी और उनके अग्नि-कुण्ड ।

भारतवर्ष से पश्चिम की ओर ईरान देश है। अँगरेज़ी में यह देश परशिया के नाम से सुप्रसिद्ध है। किन्तु पूर्वोक्त दोनों नामों के अतिरिक्त इसका एक नाम फ़ारस भी है। भारत के वे लोग जो पारसी कहलाते हैं पहले ईरान से ही यहाँ आये हैं। लगभग १३०० वर्ष पूर्व केवल वर्तमान ईरान ही पारसी न था, बल्कि ईरान से मिले-जुले देशों में भी पारसियों का बड़ा ज़ोर था। भिन्न भिन्न स्थानों में इन लोगों के बड़े बड़े अग्नि-कुण्ड थे; और उन अग्नि-कुण्डों के मन्दिरों में ये लोग ईश्वर-भजन किया करते थे।

प्राचीन ईरान-वासियों का विश्वास था कि अग्नि ही ईश्वर और जीव के बीच में मेल का एक मात्र साधन है। समस्त सृष्टि की उत्पत्ति अग्नि से ही हुई है; इसलिए प्राचीन ईरान-निवासी अग्नि की उपासना अपना परम धर्म समझते थे। इसी विचार को सम्मुख रखकर फ़रेदूँ नामी बादशाह के समय में अग्नि-कुण्डों का श्रीगणेश हुआ। यह बादशाह ईरान में विक्रमी संवत् से बहुत वर्षों पहले हुआ था।

पहले-पहल इसने ख़ुरासान में एक अग्नि-कुण्ड बनवाया। इसके बाद सजिस्तान और अन्य स्थानों में ये कुण्ड बनवाये गये। †ज़रदुश्त नामी एक बड़ा ऋषि पारसियों में हुआ है। इसका समय विक्रमी संवत् से लगभग ५०० वर्ष पहले ठहरता है। इसके समय तक दस अग्नि-कुण्ड बन चुके थे। ज़रदुश्त के समय तथा बाद में अग्नि-कुण्डों की बड़ी वृद्धि हुई। दसवीं शताब्दी ईसवी तक ईरान में जितने अग्नि-कुण्ड थे उनके विषय में इब्नहौक़ल बग़दादी नामक एक मुसलमान ने अपने भूगोल में लिखा है कि वे इतने अधिक हैं कि उनकी संख्या का ठीक ठीक पता सरकारी काग़ज़ों से ही लग सकता है।

मसऊदी नामी ऐतिहासिक ने बहुत से मन्दिरों और अग्नि-कुण्डों के हालात लिखे हैं; किन्तु आठ मुख्य अग्नि-कुण्डों का वर्णन विस्तार-पूर्वक किया है। ये आठों कुण्ड प्रायः ईरान के बादशाहों द्वारा बनवाये गये थे। इन्हीं में से एक “नवबहार” नामी कुण्ड भी था।

“नवबहार” नाम का कुण्ड बलख़ में था। बलख़ वही नगर है जिसको कि यूनानी ऐतिहासिकों ने बैक्टीरिया लिखा है। भारत से लौटते समय महाप्रतापी सिकन्दर का प्राणान्त इसी नगर में हुआ था। बलख़ को बादशाह फ़रीदूँ के पोते ने बसाया था। इस नगर के कई आदमियों ने इतिहास में उच्च स्थान प्राप्त किया है। इस नगर पर मुसलमानों ने अपने तृतीय ख़लीफ़ा (बादशाह) के समय में अपना अधिकार जमाया, जिसका राज्य-काल ६४४ से ६५५ ई० तक रहा। उसी काल में अग्नि-कुण्ड तोड़ डाला गया और अग्नि सदैव के लिए शान्त कर दी गई। इसके बाद बहुत दिनों तक यह नगर उन्हींके हाथ में रहा। स० १२२१ ईसवी में इस पर चंगेज़ ख़ाँ का राज्य हुआ। उस समय से इसकी बराबर अवनति ही होती रही।

कहा जाता है कि चंगेज़ ख़ाँ के हाथ में आने से पहले यहाँ लगभग एक हज़ार मसजिदें ऐसी थीं जिनमें केवल जुमा (शुक्रवार) की नमाज़ हुआ करती थी। अब तो यह नगर बड़ी हीन दशा को प्राप्त हो गया है; किन्तु मुसलमानों के समय से भी बहुत पहले ख़ुरासान सूबे में सर्वश्रेष्ठ नगर था। इसका सम्बन्ध पहले ख़ुरासान (ईरान) के साथ था, किन्तु अब यह अफ़ग़ानिस्तान में शामिल है। अरब-निवासियों ने इसकी ग्रीष्म ऋतु की बड़ी प्रशंसा की है; किन्तु “नवबहार” नामी अग्नि-कुण्ड के कारण इस नगर को इतिहास में जो यश प्राप्त है वह अकथनीय है। क्योंकि इस अग्नि-कुण्ड के कारण यह नगर बड़ा पवित्र समझा जाता था।

ऐतिहासिक इस बात पर सहमत हैं कि इस प्रकार के जितने अग्नि-कुण्ड बनाये जाते थे, उनमें से प्रत्येक किसी न किसी देवता के नाम पर निर्मित किया जाता था। “नवबहार” इसी प्रकार “चन्द्रमा” के नाम पर प्रतिष्ठित किया गया था। यह कुण्ड समस्त सर्व-श्रेष्ठ कुण्डों में चौथे दरजे पर था। इसकी स्थापना फ़रीदूँ बादशाह के पोते के हाथों हुई थी। इस अग्नि-कुण्ड का मन्दिर बड़ा अपूर्व

---

* यह लेख केवल मुसलमानों द्वारा लिखित इतिहासों के आधार पर लिखा गया है—लेखक।

† ज़रदुश्त (Zarduscht) को ज़ोरोएस्टर (Zoroaster) तथा ज़राथुष्ट्र (Zarathustra) भी लिखते हैं।

और उच्च कोटि का था। सारा मन्दिर पूरे एक सौ वर्ग-गज़ भूमि में था। मन्दिर की ऊँचाई भी सौ गज़ की थी। छत के ऊपर बड़े बड़े लट्ठे लगे थे जिन पर हरे रेशम के फरहरे लहराया करते थे। प्रत्येक फरहरा सौ गज़ का होता था। मन्दिर तथा लट्ठों की ऊँचाई का अन्दाज़ा इस बात से बड़ी सुगमता के साथ हो जाता है कि जब कभी प्रचण्ड वायु के कारण कोई फरहरा अपने लट्ठे से अलग हो जाता था तब वह कई मील की दूरी तक हवा में ही उड़ते रहने के पश्चात् पृथिवी पर ठहरता था!

सारा मन्दिर तो अति सुन्दर बनाया ही जाता था; परन्तु समस्त अग्नि-कुण्ड सदैव बढ़िया रेशम और कीनख़ाब के परदों और अमूल्य रत्नों से सजा हुआ रहता था। चढ़ावे में अमित द्रव्य के अतिरिक्त बड़े बड़े लोग हरे रेशम के फरहरे चढ़ाते थे। यहां का छोटे से छोटा पुजारी एक बड़े धनाढ्य से कम नहीं था। छोटे छोटे पुजारियों के रहने के लिए ३६० कोठरियां थीं। सबसे बड़ा तथा जो मुख्य पुजारी होता था वह बड़ा ही आदरणीय समझा जाता था। बड़े बड़े राजे महाराजे उसकी आज्ञा का पालन करना अपना बड़ा भारी सौभाग्य समझते थे, यहां तक कि वे अतीव विनीत होकर उसके सम्मुख अपनी गर्दन झुकाया करते थे। "नवबहार" का व्यय चलाने के लिए जागीरें लगी हुई थीं। मुख्य पुजारी उनमें अपने स्वतन्त्र राजकीय स्वत्वों का व्यवहार रखता था। "नवबहार" की प्रतिष्ठा इससे अधिक और क्या हो सकती है कि ज़रदुश्त ने भी चिरकाल तक यहीं एकान्तवास किया था। उसके अतिरिक्त ईरान का एक बादशाह भी बूढ़ा होने पर अपना राजपाट छोड़ यहीं आकर रहने लगा था।

ये तो उस कुण्ड के संक्षेप हालात हुए जो कि चौथे नम्बर का समझा जाता था। बाक़ी सात सर्वश्रेष्ठ कुण्डों के हालात भी कुछ कम मनोरञ्जक नहीं हैं। अब अन्त में यह कहना है कि सबके सब कुण्ड ईरान की सीमा के भीतर ही नहीं थे, बल्कि ईरान से मिले-जुले देशों में भी थे, यहां तक कि जगत्प्रसिद्ध नगर कुस्तुनतुनिया (Constantinople) की खाड़ी में भी पहले एक बड़ा अग्नि-कुण्ड था। यहां का अग्नि-कुण्ड बग़दाद के ख़लीफ़ा अबू अब्दुल्ला मेंहदी अब्बासी के समय तक क़ायम रहा था; जिसने ७७४ से ७८५ ई० तक राज्य किया था। अन्य कुण्डों के स्थानों और स्थापकों का संक्षेप विवरण निम्न-लिखित है—

(१) साबूर (ईरान) में दारा बादशाह के पुत्र ने स्थापित किया था।

(२) जौर में बाबक नाम के किसी व्यक्ति ने बनवाया था, और अग्नि-कुण्ड का नाम बरमाल रक्खा था।

(३) सनआः में ईरान के बादशाह ज़ोहाक़ ने बनवाया था। कुंड का नाम "ग़मदान" रक्खा गया था। स० ६४४ से लेकर ६५५ ई० के बीच में किसी समय यह कुण्ड तोड़ा गया था, पर इसका एक बुर्ज़ अब तक विद्यमान है।

(४) अस्फ़हान के पहाड़ में ईरान के बादशाह यस्तासफ़ ने बनवाया था। यहां का कुण्ड एक ऐसे मन्दिर को तोड़कर बनवाया गया था; जिसमें मूर्तियां स्थापित थीं।

(५) इस्तख़र नाम के एक नगर में बहमन बादशाह की पुत्री ने एक कुंड बनवाया था।

इनके अतिरिक्त करमान, अल-जवाल और आज़ीरबिज़ान में, यहां तक कि भारतवर्ष के सिन्ध देश के निकट भी अग्नि-कुण्डों के होने का प्रमाण इतिहासों में मिलता है। यह बात मालूम रहे कि सिन्ध देश की सीमा जितनी इस समय है उससे कहीं अधिक उस समय थी।

महेशप्रसाद साधु (मौलवी आलिम)

४—लन्दन-विश्व-विद्यालय के उत्सव में भारतवासी।

लन्दन के श्रीयुत सन्त निहालसिंह के लेख हमारे देश के पत्रों में प्रकाशित हुआ करते हैं। "सरस्वती" पर भी सन्त निहालसिंह जी की कृपा है। सन्तजी की धर्म्मपत्नी श्रीमती केथेराइनसिंह लन्दन-यूनिवर्सिटी के उपाधि-वितरण के उत्सव में पधारी थीं। वहां हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को प्रतिष्ठा-पूर्वक उपाधियां उपलब्ध करते देख आपको बड़ा आनन्द हुआ। उसीका वर्णन आपने निम्नाङ्कित लेख में किया है—

भारतवर्ष के उन महाशयों को, जो गत मई मास में लन्दन-यूनिवर्सिटी के पदवी-वितरण-सम्बन्धी उत्सव में उपस्थित थे, भारतवासियों की सफलता देखकर अवश्य आनन्द हुआ होगा। बहुत से युवक जिन्होंने पदवी प्राप्त की

थी स्वयं सम्मिलित थे और जो विद्यार्थी किसी कारण से न आ सके थे उनके नाम बार बार नामावली में निकलते थे।

साधारणतः यह उत्सव प्रत्येक वर्ष होता है; परन्तु युद्ध के कारण १९१५—१६ के बाद से नहीं हुआ और सनदें डाक-द्वारा भेज दी गई थीं। उपाधि-वितरण-उत्सव द्वारा विद्यार्थियों के जीवन का एक महान् कार्य होता है इसलिए विश्वविद्यालय ने इस वर्ष उनको इस आनन्द और प्रतिष्ठा से वञ्चित रखना उचित नहीं समझा। सैकड़ों युवक और युवतियां, जिनको उपाधियां मिलने को थीं, अपने कुटुम्बियों और मित्रों सहित वहां उपस्थित थीं और राजकीय एलवर्ट हाल जो एक बड़ा विस्तीर्ण भवन है और जिसमें दश सहस्र मनुष्य बैठ सकते हैं खचाखच भरा हुआ था। डायस (चबूतरे) जो एक साधारण हाल से बड़ा था उन प्रसिद्ध प्रसिद्ध महानुभावों से जो विशेषतः विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखते थे परिपूर्ण था और जो स्थान उनसे बचा था उस पर संगीत कालेज ट्रिनिटी के गायक बैठे थे। ये बीच बीच में सुस्वर बाजा बजाकर आनन्द देते रहे।

समाज के अधिकांश पुरुष विश्वविद्यालय की नियमित रङ्ग बिरङ्गी पोशाकें पहने थे जिससे कि दृश्य में एक अपूर्व मनोहरता थी। उत्सव का कार्य-क्रम एक बजे से आरम्भ हुआ, एक घण्टे तक घण्टानाद होता रहा, उसके बाद सङ्गीत हुआ, फिर विश्वविद्यालय के श्रेष्ठ जन और बड़े बड़े कालेजों के मुख्य मुख्य अध्यापक, पार्लियामेन्ट के सभासद् और अन्य प्रतिष्ठित पुरुष यथाक्रम आते रहे। जब सब लोग अपने अपने स्थानों पर बैठ गये तब पब्लिक आरेटर (सार्वजनिक वक्ता) ने लेटिन भाषा में अपनी वक्तृता पढ़ी और उसके बाद वाइस-चेंसलर ने विश्वविद्यालय-सम्बन्धी रिपोर्ट सुनाई। तदनन्तर तरुण स्त्री-पुरुष जैसे जैसे उनके नाम पुकारे जाते थे आगे बढ़ते थे और अपने अपने अध्यापकों और वाइस-चेंसलर से हाथ मिलाते थे। भिन्न भिन्न विषयों के परीक्षा-उत्तीर्ण विद्यार्थी अपने अपने सुप्रसिद्ध अध्यापकों द्वारा पेश किये गये, और जब सब पेश हो चुके तब शिक्षा-विभाग-बोर्ड के सभापति ने अपनी वक्तृता दी। फिर सभापति को धन्यवाद दिया गया और सभा विसर्जन हुई।

हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की सफलता देखकर मुझे ऐसा हर्ष सहित गर्व हुआ कि रोमाञ्च हो आया। कारण यह कि वे मेरे ही देशवासी थे। मैं भारत-भूमि को अपनी माता ही समझती हूँ, यद्यपि दैवयोग से मेरा जन्म दूसरे देश में हुआ है। इस समय भारत को उन पुत्रों और पुत्रियों के लिए जिन्हें वह शिक्षा के निमित्त छः सहस्र मील समुद्र-पार भेजता है उनकी सफलता पर, और उनको अपने विषयों में उत्तीर्ण होते तथा कीर्त्ति प्राप्त करते देखकर गर्वित-चित्त होने का यथार्थ अवसर था। बहुत से विद्यार्थी इनमें से ऐसे भी हैं जो मुझसे मिलते रहे हैं और जिनको मैं स्वयं जानती हूँ। सबसे प्रथम नाम जिसने मेरा चित्त आकर्षित किया कैयलात छकोछको था। इन्होंने बी० एस-सी० की पदवी इञ्जीनियरी में प्रतिष्ठा सहित प्रथम श्रेणी में प्राप्त की थी। ये ट्रावन्कोर-निवासी हैं और इँगलिस्तान में पठन-पाठन में इनका बड़ा नाम रहा है। मुझे याद है कि एक दिन सन्ध्या समय ये मुझसे मिलने मेरे घर आये थे। उस समय प्रचण्ड आंधी आई। ऐसे समय में कमरे के भीतर छिपने के बदले ये खिड़की में आधे लटके देखते रहे कि क्या हो रहा है। कूड़ा उन पर गिरता था और मैं उनको बार बार भीतर खींचती थी; परन्तु उनको कुछ भी भय न होता था। उस समय मेरे चित्त में यह आया कि यदि विलायत निवासी उनको इस दशा में देखते तो हिन्दुस्तानियों में जो डरपोकपने का दोष बतलाते हैं उसके लिए उनको अपनी राय बदलनी पड़ती। एक और बात जो मेरे चित्त में आई वह यह थी कि लोगों का यह कहना कि भारतवासी क़ानून ही बहुत पढ़ते हैं, ठीक नहीं। बहुत से हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों ने विज्ञान-शास्त्र में पदवियां प्राप्त कीं। सन् १९१६—१७ की परीक्षा में मिस्टर अज़ीज़रिज़्क़ अब्देलना ने शाही कालेज से दूसरी श्रेणी की इञ्जीनियरी प्रतिष्ठा सहित पास की। कृपालसिंह ने सिटी कालेज से बी० एस-सी० पदवी प्राप्त की। मुहम्मद सिराजुद्दीन अहमद और मिस्टर धनराज सेठजी ने भी बी० एस-सी० पास किया। सन् १९१६—१७ की परीक्षा में मिस्टर सोरली गरलांपुरी शास्त्री ने केमिस्ट्री में एम० एस-सी० पास किया और १९१७—१८ में मिस्टर बीरबल सहानी ने इमेनुएल कालेज केम्ब्रिज से एम० एस-सी० की पदवी बाटेनी (वनस्पति-शास्त्र) में प्राप्त की। मिस्टर नीलरत्न दर ने रायल कालेज से केमिस्ट्री में डी०

एस-सी० पास किया, सत्येन्द्र मोहन दर ने यूनिवर्सिटी कालेज से बी० एस-सी० की पदवी (गणित में) प्रतिष्ठा सहित प्रथम श्रेणी में पाई और उसके साथ साथ शेरब्रुक छात्रवृत्ति भी। सन् १६१८-१६ की परीक्षा में मिस्टर शङ्कर राव उल्लाल ने केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से गणित में एम० एस-सी० पास किया। सन् १६१६—१७ में मिस्टर बालकृष्ण वासुदेव भडकमकर ने यूनिवर्सिटी कालेज से फ़िज़िक्स (पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र) में बी० एस-सी० और मिस्टर केदारनाथ चटर्जी ने जो मिस्टर रामानन्द चटर्जी, सम्पादक-माडर्न-रिव्यू के पुत्र हैं वही पदवी केमिस्ट्री में प्राप्त की। मिस्टर चटर्जी ने इस परीक्षा के पास करने के बाद बहुत से कारख़ानों में रँगाई, चीनी इत्यादि के व्यवसायों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। उसी साल मिस्टर हिरोनकुमार गुप्त ने रायल कालेज से जिआलोजी (भूगर्भ-शास्त्र) की परीक्षा पास की। सन् १६१७—१८ में मिस्टर कल्याणकुमार चटर्जी यूनिवर्सिटी कालेज से फिज़िक्स में प्रतिष्ठा सहित प्रथम श्रेणी में पास हुए। मिस्टर वसन्तरामजी खनुलकार ने भी उसी कालेज से प्रतिष्ठा सहित Human Anatomy and morphology (शरीर-व्यवच्छेद-शास्त्र) में पास किया। मिस्टर सर्वेन मथु सेम्युल नवरत्न और एस० सुब्रह्मण्य तथा मिस्टर कृष्णरजपत वेंदाराम और सेम्युल जेम्स वल्लू पिलाई वेल वन्यागम ने निज की तौर पर पढ़कर और मिस्टर धीरेन्द्रमोहन दर ने किंग्स कालेज से, बी० एस-सी० पास किया। मिस्टर चिल्लपह सुंथर लिंगम ने भी यूनिवर्सिटी कालेज से बी० एस-सी० प्रतिष्ठा सहित गणित में पास किया और पारितोषिक पाया। और विद्यार्थियों ने जिन जिन विषयों में पदवियां प्राप्त कीं उनके नाम ये हैं—

नाम	पदवी
मिस्टर प्रमथनाथ वन्द्योपाध्याय—	डी० एस-सी० (अर्थशास्त्र)
मिस्टर गुरुमुखसिंह	बी० एस-सी०
,, महादेव परशुरन चिटाले	
बाबू विमलकान्त सर्कार	
मुहम्मद ज़हूरुद्दीन	
मिस्टर इब्राहीम सुलेमान हाजी	
,, रमेन्द्र महादेव जोशी	
मिस्टर अर्मुख रमालिङ्गम् रतनम्	बी० ए०
,, शौकीराम सहिजराम मलकनी	एम०बी०बी०एस०
,, रघुनाथ गणेश दानी हरीदास	
,, रघुनाथ ददोबा शिरवलकार	
,, सिन थंवी मुट्टिया	
,, वाल्टर मुराद अब्दुलरहमान	
,, रुस्तम नसिरवान जी कूपर	
,, नौरोजी वकील	
,, मिर्ज़ा मुहम्मद ख़ां	एम० डी०
,, रामदास छोकरा	एल० एल० बी०
,, चुन्नीलाल आनन्द	
,, देवेन्द्रकुमार मित्र	
,, परमशिव सुवराधन	
,, अजीतकुमार दर	
,, प्रबोधचन्द्र घोष—	
,, कैखुशरू पस्टेंजी पादशाह	
,, मथुरादास मल्होत्रा	
,, प्रसन्नकुमार आचार्य—	डाक्टर-लिटरेचर
,, मिस बानर्जी—	एल० एल० बी०

ये मिस बानर्जी मिस्टर डब्लू० सी० बानर्जी, काङ्ग्रेस के एक प्रधान नेता की बड़ी बुद्धिमती पुत्री हैं। इन्होंने बी० एस-सी० परीक्षा सन् १६१६-१७ में पास की। आपने एक कविता वेल्स के वीरों पर लिखी थी और उसके लिए प्रथम पारितोषिक वेल्स के स्त्री-पुरुषों को न मिलकर आपही को मिला था। उसके बाद भी इन्होंने बहुत सी काव्य-रचना की और इनका विचार कविता की एक पुस्तक लिखने का है। मिस बानर्जी ही एक भारत-महिला नहीं हैं जिनका नाम लन्दन-यूनिवर्सिटी के सफलता-प्राप्त विद्यार्थियों में हो—श्रीमती राजकुमारी दास, एम० ए० (कलकत्ता) कौमारी गर्ट्रूड मायादास, बी० ए० (इलाहाबाद) को अध्यापकता में पदवी-पत्र मिला। श्रीमती दास इण्डियन-वोमेन एज्यूकेशन एसोसियेशन से छात्र-वृत्ति पाकर यहां आई थीं। कलकत्ते में ये पुत्री-पाठशाला की मुख्य अध्यापिका थीं। यहां इन्होंने लन्दन के डे ट्रेनिङ्ग स्कूल में शिक्षा पाई और मुख्य मुख्य पाठशालाओं में जा जाकर नवीन शिक्षा-प्रणाली देखी।

यह भारतवर्ष के लिए बहुत होनहार लक्षण है कि उसके इतने युवा पुरुष और स्त्रियां विविध विषयों का

ज्ञान प्राप्त करके स्वदेश को लौट रही हैं। मैं बहुतों से परिचित हूँ और कह सकती हूँ कि उनका विचार भारत-माता की यथाशक्ति सेवा करने का है।

५—कानपुर बालिका-विद्यालय।

कानपुर बालिका-विद्यालय की १९१८ और १९१९ की वार्षिक रिपोर्टें हमें प्राप्त हुईं। उनसे सूचित होता है कि यह विद्यालय दिनों दिन उन्नति कर रहा है। सन् १९१८ में इस विद्यालय में २०१ बालिकायें शिक्षा पाती थीं और १९१८ में २३२। साधारण शिक्षा के साथ साथ इसमें कन्याओं को सीना पिरोना इत्यादि घर-गृहस्थी के कार्य्य सिखाये जाते हैं और धार्म्मिक शिक्षा भी दी जाती है। परीक्षा-फल भी अच्छा रहा। १९१९ में १० लड़कियों ने हिन्दी मिडिल की परीक्षा दी; उसमें ९ उत्तीर्ण हुईं—७ प्रथम श्रेणी में और दो द्वितीय में। प्रथम श्रेणीवालियों में एक लड़की संयुक्त-प्रदेश में प्रथम रही। विद्यालय की माली हालत बहुत अच्छी नहीं है। आशा है कि गवर्नमेन्ट की सहायता और प्रबन्धकारिणी कमेटी के उद्योग से जिसमें कानपुर के बहुत से धनी और प्रतिष्ठित पुरुष हैं इस संस्था का धन-सम्बन्धी कष्ट दूर हो जायगा। ईश्वर करे कि इसके संस्थापक और परिपोषक डाक्टर सुरेन्द्रनाथ सेन के निरीक्षण में यह विद्यालय दिनों दिन उन्नति करता हुआ शीघ्र ही एक बड़ा कालेज बन जाय।

६—निमन्त्रण।

अमेरिका आइए। विद्या, शिक्षा, व्यापार, हवा खाना, जिसलिए हो, मानसिक, आर्थिक, शारीरिक—सर्व रोगों के नाश के लिए अमेरिका आइए। उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका में अनेक उत्तमोत्तम विश्वविद्यालय हैं जिनमें कृषि, वाणिज्य, कला-कौशल, रसायन—प्रत्येक विषय की गवेषणा का प्रबन्ध है। अमेरिका के साथ भारत का व्यापार दिन पर दिन बढ़ रहा है। जो वस्तु अन्यत्र नहीं मिल सकती उसके अमेरिका में मिलने की सम्भावना है। अमेरिका के विद्या-मन्दिरों, कार्य्य-भवनों के दर्शन के लिए कुछ मास विदेश-यात्रा से साफल्य-लाभ होगा। यदि अमेरिका-विषयक किसी विषय के जानने की इच्छा हो तो निम्न पते से पत्र-व्यवहार कीजिए—

Hindasthan Association of America.
126 west 39th Street
New York City, U. S. A.

पुस्तक-परिचय।

१—सावित्री-सत्यवान—यह रमणी-रत्नमाला का पहला रत्न है। इसमें स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी सावित्री-सत्यवान् का प्रसिद्ध पौराणिक उपाख्यान है। मूल पुस्तक बँगला भाषा में श्रीयुत सुरेन्द्रमोहन राय महाशय द्वारा लिखी गई थी। उसीका हिन्दी-अनुवाद बाबू नवजादिकलाल श्रीवास्तव ने किया है। पुस्तक सचित्र है। जिल्द और छपाई भी अच्छी है। लड़कियों और स्त्रियों के लिए विशेष रूप से पढ़ने योग्य है। मूल्य १॥), सजिल्द २)। पुस्तक रामलाल वर्म्मा, वर्म्मन प्रेस और आर० एल० वर्म्मन ऐन्ड को०, ३७१, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता, से मिल सकती है।

चित्र-परिचय।

श्रीराम और लक्ष्मण का सुग्रीव से परिचय।

इस महीने का रङ्गीन चित्र टेहरी-गढ़वाल के राजा साहब की कृपा से प्राप्त हुआ है। यह किसी प्राचीन दरबारी चित्रकार का खींचा हुआ है। चित्र में सुग्रीव के साथ श्रीराम और लक्ष्मणजी का परिचय होने का सुन्दर दृश्य दिखाया गया है। सीता-हरण के पश्चात् वन में फिरते हुए दोनों भाइयों का समाचार पाकर हनुमानजी उनसे मिले और फिर उन्हें पीठ पर चढ़ाकर आकाश-मार्ग से पर्वतों को नांघते अपने स्वामी सुग्रीव के पास ले गये। इसके पश्चात् अग्नि के सामने सुग्रीव तथा दोनों राजकुमारों की मित्रता हुई। चित्र में ये सब दृश्य क्रमशः बड़ी मार्म्मिकता से अङ्कित किये गये हैं।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

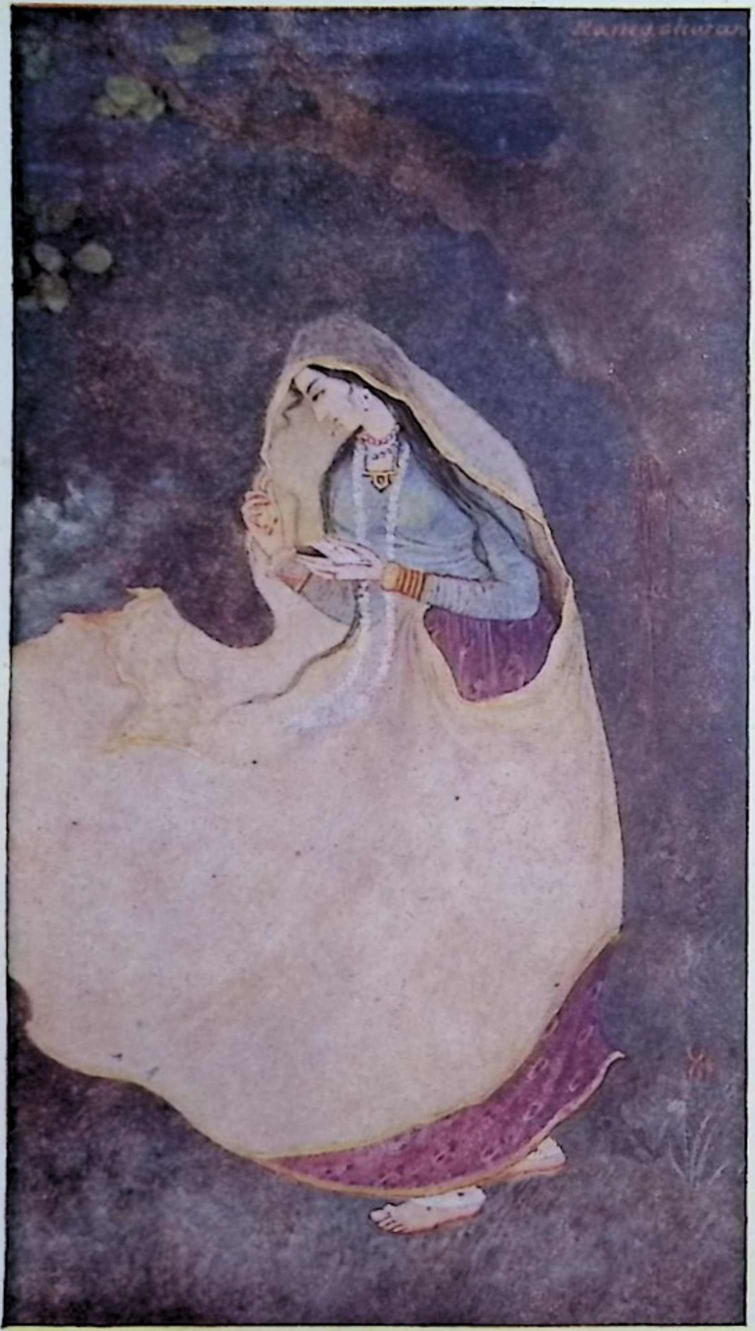

दीपक।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड २] अगस्त १९१९—भाद्रपद १९७६ [संख्या २, पूर्ण संख्या २३६

मोह ।

मुझको क्रीड़ा से तुमने इस पिँजड़े में है बन्द किया
खूब किया, आनन्द किया, पर द्वार खुला ही छोड़ दिया
लीलामय, तुम सदा यही आनन्द करो
किन्तु दुहाई है कि द्वार भी बन्द करो
द्वार खुला रहने से इसमें यदि कोई घुस आवेगा
तो यह क्रीड़ा-कीर तुम्हारा योंही मारा जावेगा
इसे सोचकर डर के मारे काँप रहा है हाय! हिया
मुझको क्रीड़ा से तुमने इस पिँजड़े में है बन्द किया
अहो दयामय! आज सहज भी ध्यान गया
बद्ध-भाव के भान मात्र से ज्ञान गया
द्वार बन्द करने को तुमसे मैं यों विनती करता हूँ
किन्तु निकल स्वच्छन्द इसीसे बाहर नहीं विचरता हूँ
कौन कहेगा किस माया ने मेरे मन को मोह लिया
मुझको क्रीड़ा से तुमने इस पिँजड़े में है बन्द किया

मैथिलीशरण गुप्त

बाय-स्काउट संस्था ।

पाठकों ने बाय-स्काउट्स (बाल-चरों) का नाम सुना होगा—उनके चित्र भी देखे होंगे; पर अभाग्यवश ऐसे लोग थोड़े ही हैं जिन्होंने कभी यह प्रश्न पूछा होगा कि यह किस प्रकार की संस्था का नाम है? इसके उद्देश्य क्या हैं? इसकी कार्य-प्रणाली क्या है? अथवा इसको भारतवासी बालकों के लाभार्थ स्थापित करने की माँग इतनी प्रबल क्यों हो रही है? (अब भारत सरकार ने भी इसको अपने हाथ में लेना निश्चित कर लिया है।) स्थान स्थान पर मुझे तो यही अनुभव हुआ है कि हमारे देश में अभी तक इस लाभदायक, शिक्षादायक और अति श्रेष्ठ विषय में बहुत कुछ अज्ञान फैला हुआ है। हमारे समाचार-पत्र तथा सम्पादकगण भी इसकी ओर पूरा पूरा ध्यान नहीं देते। और

विशेष कर हिन्दी भाषा में तो इसकी बहुत कम चर्चा हुई है।

इस विषय की महत्ता और इस संस्था के कार्य्य के जाज्वल्यमान परिणाम को देखकर हम लोगों को सोचना चाहिए कि इस विषय में हमारा कर्त्तव्य क्या है। पण्डित श्रीधर पाठकजी के हिन्दी व्याख्यान जो पण्डितजी ने भारतीय बाय-स्काउट* एसोसियेशन में कुछ मास हुए दिये थे, प्रयाग की सेवा-समिति ने छपवाकर हिन्दी-संसार का बड़ा उपकार किया है, पर मेरी तुच्छ मति में तो यह आता है कि इस विषय में अभी बहुत सा साहित्य लिखने तथा लिखवाने की आवश्यकता है। देशीय तथा प्रान्तीय भाषाओं द्वारा देश के प्रत्येक कोने में इसका प्रचार करना तथा ज्ञान फैलाना हमारे लेखक और सम्पादक-गण अपना कर्त्तव्य समझ लें तो देश का बड़ा कल्याण हो।

भारतीय सेवा-समिति प्रयाग के अधिकारी-गण और दूसरे नगरों से आये हुए स्काउट-मास्टर्स जो प्रयाग में शिक्षा पा रहे हैं।

इस लेख में लेखक का प्रयत्न केवल यही होगा कि वह हिन्दी-भाषा-भाषियों के समक्ष इस जगत्प्रसिद्ध संस्था (स्काउटिङ्ग) के मुख्य मोटे मोटे सिद्धान्तों को उपस्थित कर दे। इसका आधुनिक ढङ्ग स्थापित हुए कुछ अधिक समय नहीं हुआ; परन्तु इसका प्रचार सब देशों में प्रचण्ड वेग से हो रहा है। इस लेख में मैं इसकी उन्नति का वर्णन नहीं करना चाहता। आज मेरा प्रयोजन इस विषय की केवल सिद्धान्तरूपी मुख्य मुख्य बातें बतलाकर पाठकों के हृदयों में इसकी ओर जिज्ञासा उत्पन्न करने का है। मैं

---

* पण्डित श्रीधर पाठकजी ने इस शब्द का हिन्दी पर्याय "बाल-चर" प्रयोग किया है। मैं मूल अँगरेज़ी शब्द ही का प्रयोग करता हूँ। इसके कई कारणों में से एक यह है कि यह संसार-विख्यात संस्था हो गई है। इसका नाम बदलने से आधुनिक उस संस्था का ठीक अर्थ नहीं निकलता, जिससे मुझे इस लेख में प्रयोजन है।

इस विषय को इस लेख में आदि से अन्त तक शिक्षा-प्रणाली कहकर पुकारूँगा ।

आधुनिक स्काउटिङ्ग (संस्था) इँगलेंड में शुरू हुई । इसके स्थापित करनेवाले प्रसिद्ध जनरल सर राबर्ट बेडेन-पावैल साहब हैं । आप अब तक इस संस्था को उन्नति पहुँचाकर संसार का उपकार कर रहे हैं । इस स्थान पर इस संस्था की उत्पत्ति की कथा थोड़े से शब्दों में कह देना अनुचित न होगा ।

बाय-स्काउट्स झंडियों के इशारों से परस्पर बातचीत करते हैं ।

दक्षिण अफ्रिका के युद्ध में जब सन् १८९९–१९०० में मेफ़किङ्ग नामक नगर तथा गढ़ में अँगरेज़ों को शत्रुओं ने घेर लिया था और जब कि सैनिकों की संख्या दिन प्रतिदिन घटती जा रही थी, तब उस गढ़ के फ़ौजी अफ़सर तथा उनके सहकारी लफ़्टिनेन्ट जनरल सर राबर्ट बेडेन-पावैल साहब ने कार्य्य-सम्पादन की एक युक्ति विचारी । उनके गढ़ में लगभग ५,००० स्त्री-पुरुषों में कई सैकड़े बालक भी थे । इन जनरल महाशयों ने उन बालकों का प्रयोग करने का विचार किया । उन्होंने सब बालकों को फ़ौजी वर्दी पहनाकर थोड़ी सी क़वायद की शिक्षा दे उत्साहित किया और उनको काम में लाने लगे, इससे उनको कई सैकड़े सैनिक युद्ध करने को अलग मिल गये । वे बालक चिट्ठियाँ पहुँचाने में, बाइसिकिल दौड़ाकर समाचार लाने में, साधारण पहरे-चौकी के काम में बड़ी योग्यता तथा आनन्द से कार्य करने लगे । कई बार तो वे लोग अपना कर्त्तव्य पालन करने को गोलों की वर्षा में भी बड़े आनन्द और निर्भयता से चले जाते थे ।

जनरल बेडेन-पावैल पर इस अवस्था का बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ा । युद्ध समाप्त होने पर जब वे इँगलेंड लौटे तब उन्होंने इस विषय पर विचार करना आरम्भ किया और उन्होंने अपने नये अनुभव का पूरा प्रयोग करने का सङ्कल्प किया । यह उसी सङ्कल्प का परिणाम है कि आज लगभग बारह वर्ष के भीतर ही लाखों स्काउट्स दिखाई देते हैं ।

आपने इस महती संस्था की नींव डाली और आप ही समस्त ब्रिटिश साम्राज्य के स्काउटों के "मुख्य स्काउट" हैं । आपको अपने दक्षिण अफ्रिका के अनुभव से ज्ञात हुआ कि यदि बालक को उसकी युवावस्था ही से लेकर, उसके चित्त-विकार तथा मानसिक शक्तियों का विकास किया जाय, तो जन्म पर्यन्त उसके चरित्र, उसके आचरण, उसकी आदतें, उसकी निःस्वार्थ सेवा करने की आकांक्षायें सदा के लिए पुष्ट कर सकते हैं । उन्होंने इस विषय का अध्ययन किया और इसके अनन्तर आपने अपनी जगद्विख्यात 'Scouting for Boys' नाम की पुस्तक लिखी, जिसकी लगभग सवा तीन लाख प्रतियाँ इन दस वर्षों में छप चुकी हैं ।

ज० सर रा० बेडेन-पावैल की प्रणाली में प्रविष्ट होने-वाले बालकों की अवस्था १८ और १९ वर्ष के भीतर रक्खी गई है । यह नियम उन्होंने आरम्भ ही में बनाया था । पश्चात् अनुभव से उन्हें यह विदित हुआ कि हमारी संस्था के लाभ अल्पायु बालकों तथा १८ वर्ष से बड़े युवा पुरुषों को भी पहुँच सकते हैं । तब उन्होंने सात से लेकर बारह वर्ष तक के बालकों को भी प्रविष्ट करना शुरू किया; इनको शेर-बच्चे (कब्स) कहते हैं । आपने १९ वर्ष से

ऊपर की अवस्थावाले युवा पुरुषों को भी अपनी स्काउट-सेनाओं में बना रखने का उपाय निकाला है; इनको सीनियर स्काउट्स कहते हैं।

बाय-स्काउट्स जब सेनाओं में प्रवेश कर लेते हैं तब वे कई प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यह विषय जानने के पूर्व एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात जान लेना आवश्यक है और वह यह है कि इस संस्था के नियमों का क्या उद्देश है।

विज्ञानाध्ययन से भले प्रकार ज्ञात होता है कि पुरुष तथा स्त्रियों की वयोवस्था में एक वह समय होता है जिसको युवावस्था (अँगरेज़ी में, Adolescence) कहते हैं। यदि इसमें प्रयत्न किया जाय तो पुरुष तथा स्त्रियों के आचरण ही नहीं, वरन उनकी चित्तवृत्ति तथा मानसिक शक्तियों के विकास पर पूर्ण प्रभाव डाला जा सकता है। इस विषय पर अधिक समय तथा स्थान न देकर, मैं डाक्टर जे० डब्ल्यू० स्लॉटर साहब की विख्यात तथा प्रशंसनीय पुस्तक "The Adolescent" में से दो-चार वाक्य उद्धृत करके यह प्रमाणित कर देना चाहता हूँ कि युवावस्था की उचित शिक्षा कैसी कठिन और महत्त्वपूर्ण समस्या है। आप अपनी पुस्तक के नवें अध्याय में लिखते हैं—

बाय-स्काउट्स कुश्ती लड़ते हैं।

"The time occupied is undoubtedly the most precious of the whole life time for the growth of mind and character, yet it is thrown away in grind on materials of third-rate value—this for a stupid and scientifically obsolete tradition."

स्काउट-शिक्षा में चित्त की वृत्तियों का पूर्ण विकास (Emotional development) करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसा करने से बालक के जोश तथा उत्साह का दुरुपयोग अथवा नाश नहीं होने पाता। उसका उत्साह दिन-प्रतिदिन उत्तम धाराओं में बहता रहता है और बालक की मानसिक शक्तियों की वृद्धि होती रहती है।

वही डाक्टर महोदय अन्यत्र लिखते हैं—

"Predominant attention is given to the development of the emotions, corresponding to the significance of these factors in the period studied. The chief function of youth is the creation of ideals and the development in connection with these of characteristics especially typical of civilized man."

इसी युक्ति के अनुसार बालकों के चित्त, उत्साह तथा विकार (Emotions) के पूर्ण उद्गार के हेतु सर राबर्ट बेडेन-पावैल अपने बाय-स्काउट्स के समक्ष मध्यकालीन योधाओं (Knights of the middle ages) का लक्ष्य रखते हैं। जिस प्रकार वे योधा बालक, निर्बल पुरुष, भिक्षुकों तथा अबलाओं की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे और जिस प्रकार वे अपने शौर्य्य और पुरुषार्थ को धर्म तथा स्वामी की सेवा तथा परोपकार में अर्पण करते थे, उसी प्रकार स्काउटों के उद्देश्य रक्खे जाते हैं। पहली बात सर राबर्ट की प्रणाली में यह है कि बालक अपने जीवन का लक्ष्य सामने कर उसके अनुसार चलने पर तत्पर हो जाते हैं। फिर पुराने काल के धर्मात्मा, शूर-वीर, निर्बलों के प्रतिपालक, शुद्धात्मा योधा स्काउट्स के लक्ष्य

बनाये जाते हैं, जिनके वीर ऐतिहासिक श्रेष्ठ चरित्रों की कथाओं का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

इसी अवस्था में उनके हृदय तथा मन के पट पर यह अङ्कित किया जाता है कि संसार में तुमको अपनी प्रतिष्ठा (Honour) की रक्षा करनी चाहिए जिससे तुम्हारे वचन पर सब लोग विश्वास कर लेवें, क्योंकि स्काउट के वचन पर सदा विश्वास किया जाता है। उनको शिक्षा दी जाती है कि तुम्हारा जीवन दूसरे के लिए बनाया गया है; तुम दूसरों के, विशेष कर निर्बल अबलाओं तथा अनाथों के जीवन को सुखी बनाकर ही अपने जीवन के सुख को उपार्जन कर सकते हो; अन्यथा तुम सच्चे स्काउट कदापि नहीं हो सकते। उनको अपने स्काउट-नियमों का ज्ञान भक्ति द्वारा बतलाया जाता है। उनके कोमल हृदयों में ,'सत्य का प्रेम और सेवा का उत्साह" पैदा किया जाता है और परमेश्वर तथा राजा की ओर भक्ति उत्पन्न की जाती है।

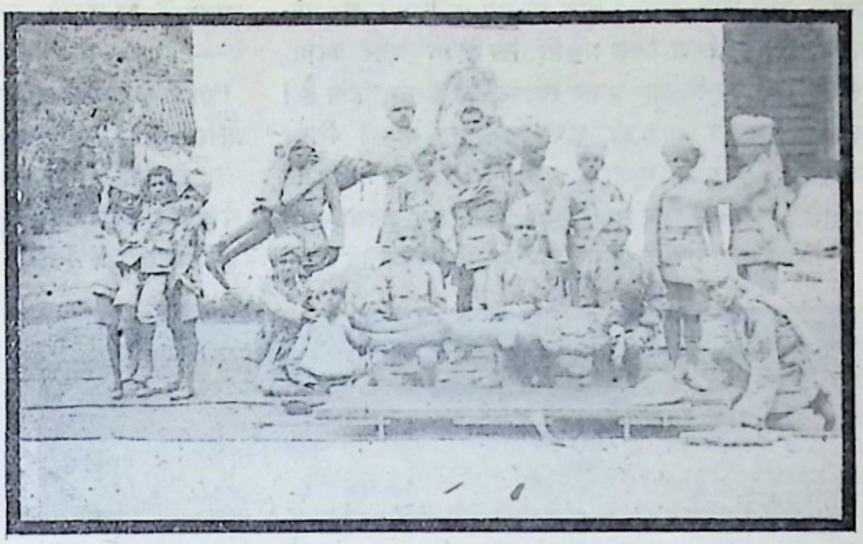

बाय-स्काउट्स घायलों की सेवा करना और उन्हें अस्पताल पहुँचाना सीखते हैं।

बाय-स्काउट्स बिगुल बजाकर अपनी सेना से काम कराते हैं।

ये थोड़ी सी बातें उन बालकों के लिए जो स्काउट बनते हैं, आचरण-सुधार तथा चरित्र गठन का हेतु होती हैं, परन्तु स्काउटिङ्ग में केवल एक ही प्रकार की शिक्षा नहीं होती। सर राबर्ट का उद्देश अपने Peace Scouts बनाने में यह था कि हम लोगों की आधुनिक सभ्यता में जो प्राकृतिक जीवन की अन्तिम झलक रह गई है उसको नाश होने से बचावें। उनका उद्देश इन बालकों में प्राकृतिक शोभा और भक्ति (Nature-love) भर देने का है। वे चाहते हैं कि बालक प्राकृतिक जीवन से विमुख न हों। यही नहीं, बरन बालकों का प्रेम ऐसे जीवन की ओर अधिक बढ़े जो सब देशों के इतिहासों के आदि काल में पाया जाता है। उस समय मनुष्य-जाति प्राकृतिक जीवन बनाये रखती थी। स्काउट अपने जीवन में से कुछ

भाग नगरों से बहुत दूर जङ्गलों में जाकर व्यतीत करते हैं। अपनी भूमि से उत्पन्न पदार्थों को पहचानना, उनका प्रयोग जानना तथा जीव-जन्तुओं और पक्षियों के शब्दों को पहचानना, उनकी भिन्न भिन्न प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना, इत्यादि बातें जानने का प्रयत्न स्काउट को करना पड़ता है। इससे स्काउट को अपने ही ऊपर निर्भर रहने की शिक्षा मिलती है। उसको खुली हवा में ("Life in the open"), जङ्गलों और पर्वतों की ओर प्रेम उत्पन्न होता है। उसे इस प्रकार के जीवन की उपयोगिता प्रतीत होती है—और इसी युक्ति द्वारा उसके हृदय में ईश्वर-भक्ति का भाव दृढ़ किया जाता है। वह ईश्वर-दत्त प्राकृतिक शोभा को भोगता है और भगवान् की ओर अपना प्रेम बढ़ाता तथा कृतज्ञ बनता है। इसीसे स्काउटों को यह भी शिक्षा मिलती है कि उनके जीवित रहने के लिए बहुमूल्य वस्तुओं की मांग नहीं होनी चाहिए; साधारण जीवन संसार में सब सुखों का भाण्डार है।

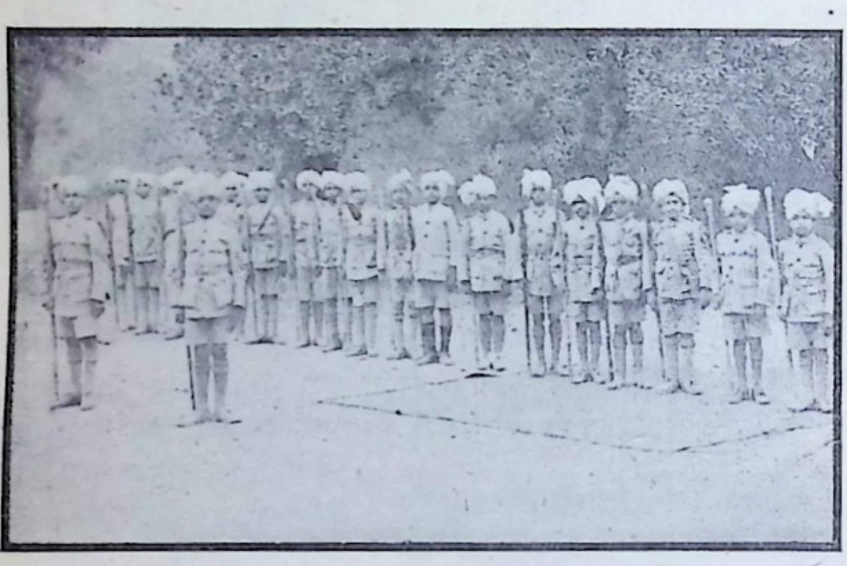

बाय-स्काउट्स क़वायद कर रहे हैं।

तृतीय उद्देश सर राबर्ट का यह है कि इसी कोमल अवस्था में बालकों को अपने शरीर को शुद्ध, स्वस्थ तथा बली बनाना और रखना सीखना चाहिए। इस हेतु वे उनके लिए विविध प्रकार के खेलों तथा व्यायामों की व्यवस्था करते हैं।

सर राबर्ट का यह भी उद्देश है कि यदि हम अपने समाज, साम्राज्य, तथा मातृभूमि के लिए स्वस्थ, योग्य, पुरुषार्थी, निस्स्वार्थ तथा चतुर नागरिकों को तैयार करना चाहते हैं तो उनको सन्मार्ग पर लाने की अवस्था यही है—यही अवस्था है जब कि उनको देश-प्रेम, राज-भक्ति तथा "पहले देश, पीछे आप" ("Country first, self afterwards") के उच्च उपदेशों की शिक्षा दे सकते हैं।

अब यह नई प्रकार की शिक्षा कहाँ तथा किस रीति से प्रदान की जाती है सो भी जान लेना आवश्यक है। इस प्रणाली में शिक्षा का साधन गुरुजी का दण्ड नहीं होता, तथा स्थान पाठशालाओं के सङ्कुचित आश्रम नहीं होते। शिक्षा अधिकतर खेल, कूद, व्यायाम, तथा कौतुकों द्वारा दी जाती है। (सर राबर्ट ने एक पृथक् पुस्तक "Scouting games" नाम की लिखी है जिसमें कई प्रकार के खेल, उनके नियम तथा साधन दिये हैं) ये खेल-कूद, कौतुक, आदि जङ्गल, झाड़ी, मैदान और पर्वतादि में खेले जाते हैं। इस संस्था में कोई स्काउट-मास्टर किसी बालक को शारीरिक दण्ड नहीं देता। वह अपने लघु भ्राता की नाईं प्रत्येक स्काउट का प्रेम तथा आदर करता है।

प्रत्येक स्काउट को इसके पूर्व कि वह नियम-बद्ध किसी स्काउट-सेना (Scout-Troop) का सदस्य बन सके, अपनी मान-मर्यादा [HONOUR] से एक प्रतिज्ञा स्काउट-मास्टर तथा अपने दूसरे भाइयों के सामने करनी पड़ती है, जिसको Scout-promise कहते हैं। स्काउट का यह संस्कार बड़े समारोह के साथ होता है और प्रतिज्ञा बड़ी भक्ति तथा आदर के साथ उत्तर-दायित्व के भावों से सबके सामने ली जाती है। स्काउट के लिए यह विधि उपनयन-संस्कार के तुल्य होती है। स्काउट-प्रतिज्ञा यह है—

मैं अपनी मान-मर्यादा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं भरसक	On my Honour I promise to do my best

(१) ईश्वर, सम्राट्, तथा मातृभूमि की ओर अपना कर्त्तव्य पालन करूँगा।	(1) to do my duty to God, crown and country,
(२) अन्य लोगों की हर समय सेवा करूँगा।	(2) To help other people at all times, and
(३) स्काउट-धर्म का पालन करूँगा।	(3) to obey the Scout Law.

बाय-स्काउट्स के मास्टर और सर्वेण्ट आफ़ इण्डिया सोसायटी के मेम्बर, पण्डित श्रीराम वाजपेयी।

स्काउट-धर्म Scout Law.

१—स्काउट के मान पर विश्वास किया जाना चाहिए।	1. A Scout's Honour is to be trusted.
२—स्काउट ईश्वर, सम्राट्, अपने माता-पिता, अपने अफ़सर, तथा अपने अधीन जो हों उनकी ओर भक्ति रखता है।	2. A Scout is loyal to the King Emperor, to his Motherland, his parents, his officers, his employers and those under him.
३—स्काउट का कर्तव्य है कि दूसरों की सेवा करे।	3. A Scout's duty is to be useful and to help others.
४—स्काउट सबका मित्र है और प्रत्येक अन्य स्काउट का भाई है, चाहे वह अन्य किसी भी जाति अथवा पन्थ का हो।	4. A Scout is friend to all and a brother to every other Scout, no matter to what social class or creed the other belongs.
५—स्काउट नम्र होता है।	5. A Scout is courteous.
६—स्काउट जीव-जन्तुओं का मित्र होता है।	6. A Scout is friend to animals.
७—स्काउट अपने माता-पिता, अपने पेट्रोल-लीडर (नायकों) तथा अपने स्काउट-मास्टर की आज्ञा मानता है।	7. A Scout obeys orders of his parents, patrol-leaders, and Scout-master.
८—स्काउट सब आपत्तियों में हँसमुख तथा प्रसन्न रहता है।	8 A Scout is cheerful in all difficulties.
९—स्काउट किफ़ायतशार रहता है।	9. A Scout is thrifty.
१०—स्काउट मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध होता है।	10. A Scout is clean in thought, word and deed.

Trusty, loyal and helpful
Brotherly, courteous, kind
Obedient, smiling and thrifty
Pure as the rustling wind.

बाय-स्काउट्स हर तरह की ग्रन्थियां लगाना और खोलना सीख रहे हैं।

इस लेख में यह दिखलाना भी उचित होगा कि स्काउट्स का अध्ययन-क्रम क्या है ? और इस शिक्षा-प्रणाली में परीक्षाओं का स्थान किसने लिया है ? अभाग्यवश अथवा सौभाग्यवश इस शिक्षा-प्रणाली में भी परीक्षा-देवी राज्य करती हैं। इस संस्था की परीक्षा और साधारण विश्व-विद्यालयों की परीक्षाओं में अन्तर केवल यह है कि स्काउट-परीक्षा देने के लिए बालक स्वयं आतुर होते हैं और स्काउट-मास्टर को परीक्षा लेने के लिए तङ्ग कर देते हैं; पर साधारण कालेजों की परीक्षाओं से कुछ योग्य विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य युवक बहुधा दुःखित तथा चिन्तित ही रहते हैं। स्काउट्स को नाना प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना होता है, उस सबको यहां गिनाना सम्भव नहीं। सर राबर्ट ही की पुस्तक में लगभग ५६ प्रोफ़िशियन्सी बेजेज़ Proficiency badges दिये हुए हैं और संख्या कुछ इनसे भी अधिक हो चली है। इन सबके अतिरिक्त उनको क़वायद, वायु तथा तारागण की गति, नेत्रों, कर्णों तथा अन्य इन्द्रियों का ठीक प्रयोग करना सीखना पड़ता है।

“नित्यप्रति काम में आनेवाली प्रायः सभी कलाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान प्रत्येक चर (स्काउट) को प्राप्त कर लेना चाहिए। जल-विद्या, स्थल-विद्या, आकाश-विद्या, तैरना, कुश्ती लड़ना, तार देना, टाइप-राइटरी, क्षिप्र-लेखन, पैरगाड़ी की सवारी, मोटर चलाना, तडिद्विद्या, आग बुझाना, पशु-रक्षा, खेती, वाजि-विद्या, वास्तु-विद्या (अर्थात् इञ्जीनियरिङ्ग), वाद्य-विद्या, नाट्य-कला, गान-विद्या, रसोई बनाना,

बाय-स्काउट्स सङ्गीत का अभ्यास कर रहे हैं।

वैद्यक-विद्या, घायलों की सेवा, रसायन, सूरत बदलना, ठठेरी-विद्या, लुहार, सुनार, बढ़ई की विद्या, खानि-विद्या, क़ेवट-विद्या, सीना-पिरोना, कपड़ा बुनना, चित्र-विद्या, फ़ोटो लेना, भेष बनाना, भेष बदलना, मोहिनी डालना, वशीकरण, ज्योतिष, पण्डिताई, पुरोहिताई, कथा-पुराण बांचना, क़िस्से-कहानी सुनाना, आदि अनेक कलाओं में से जितनी का अभ्यास हो सके उतना ही अच्छा" —पण्डित श्रीधर पाठक।

जिन विषयों में परीक्षा होती है वे नीचे लिखे जाते हैं—

प्रथमा परीक्षा, Tenderfoot tests.

(स्काउट बनने के संस्कार के पूर्व इस परीक्षा को पास करना होता है।)

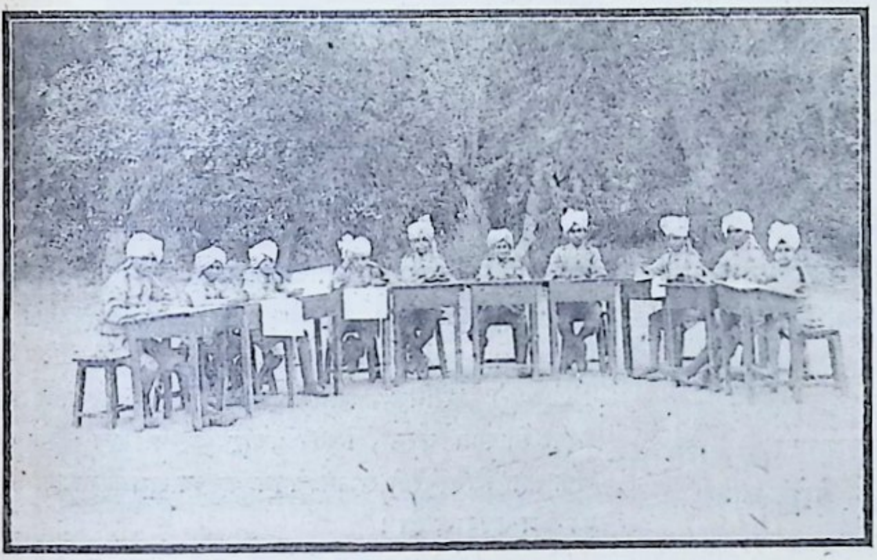

बाय-स्काउट्स ख़बरें लेना और भेजना सीख रहे हैं।

१ स्काउट-धर्म तथा उसका अर्थ जानना।
२ स्काउट के गुप्त चिह्न तथा स्काउट की सलामें।
३ छः प्रकार की गांठें बांधना जानना।
४ ब्रिटिश-साम्राज्य के झण्डे को पहचानना और उसको सही तरह से उड़ाना।

द्वितीया परीक्षा, Second Class tests.

१ एक मास की हाज़िरी।
२ घायलों की सेवा करना।
३ झण्डे से समाचार पहुँचना।
४ राष्ट्रीय गीत।
५ स्काउट क़दम पर चलना।
६ आग जलाना।
७ भोजन बनाना।
८ १६ दिशाओं को पहचानना।
९ कुछ धन बचाकर बङ्क में रखना। (कम से कम आठ आना।)
१० आधे मील तक किसी चीज़ को ढूँढ़ना।

तृतीया परीक्षा, First Class tests.

१ ५० गज़ तैरना।
२ बङ्क में कुछ बचाया धन होना। (कम से कम १).)
३ झण्डी द्वारा तार भेजना (अधिक वेग से।)
४ नाव चलाना।
५ खोज ढूँढ़ना।
६ घायलों की सेवा (हड्डी टूटने पर, नस टूटने पर, इत्यादि।)
७ कई आदमियों के लिए रसोई बनाना।
८ किसी स्थान का नक़शा बनाना।
६ किसी नये स्काउट को प्रथमा परीक्षा पास कराकर तैयार करके उपस्थित करना।
१० ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाई आदि का नाप २५ फ़ी सैकड़े कम ग़लती से बतलाना, इत्यादि।

स्काउट सेनाओं का सङ्गठन किस प्रकार होता है? स्काउटों को सेनाओं (Troops) में बांट देते हैं और प्रत्येक ट्रूप में कई समुदाय (Patrol) होते हैं जिनमें ६ और ९ स्काउटों के बीच में रहते हैं। बहुधा प्रत्येक नगर में एक 'ट्रूप' होती है; परन्तु जब एक नगर में बहुत संख्या हो जाती है (जैसे लन्दन तथा मद्रास में है) तब

उसमें कई ट्रूप एक ही शहर में हो सकती हैं । प्रत्येक पेट्रोल का नाम रखा जाता है । इँगलेंड में किसी पशु के नाम से पेट्रोल को नाम देते हैं और उसी पशु की बोली को वे अपनी वृन्द-ध्वनि (Patrol cry) बनाते हैं, जैसे कि dog patrol, horse patrol, wolf patrol. भारतवर्ष में भारतीय स्काउट किसी बड़े ऐतिहासिक पुरुष अथवा महायोधा के नाम से पुकारे जाते हैं—उदाहरणार्थ भीष्म-पेट्रोल, अकबर-पेट्रोल, शिवाजी-पेट्रोल, गोखले-पेट्रोल, इत्यादि ।

स्काउट-सङ्गठन इस प्रकार होता है—

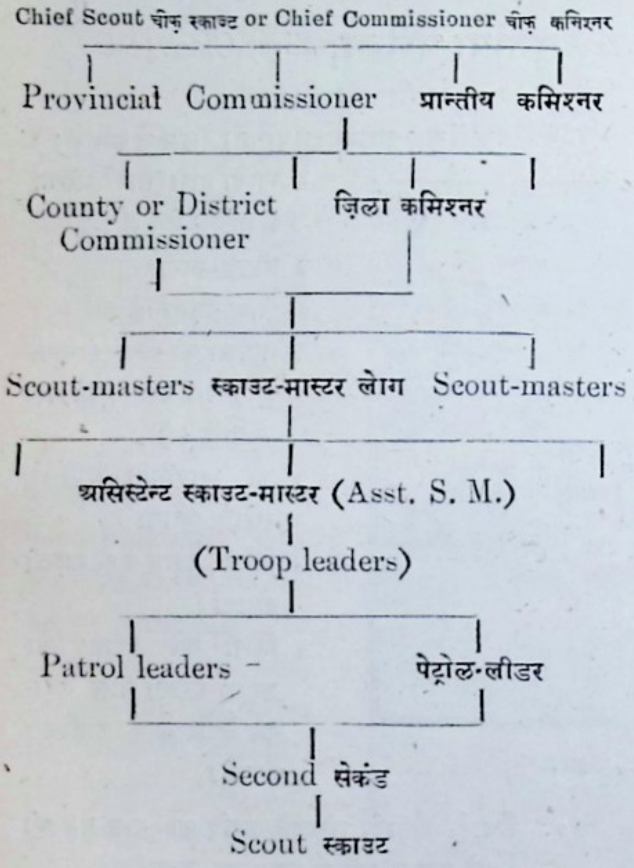
Chief Scout चीफ़ स्काउट or Chief Commissioner चीफ़ कमिश्नर
Provincial Commissioner प्रान्तीय कमिश्नर
County or District Commissioner ज़िला कमिश्नर
Scout-masters स्काउट-मास्टर लोग Scout-masters
असिस्टेन्ट स्काउट-मास्टर (Asst. S. M.)
(Troop leaders)
Patrol leaders पेट्रोल-लीडर
Second सेकंड
Scout स्काउट

धन की सहायता बहुधा सर्वसाधारण की ओर से प्राप्त होती है । इस कारण सर्वसाधारण ही में ज़िले के प्रान्तीय तथा मुख्य (central) एसोसियेशन्स (सङ्घ) बन जाते हैं । इनकी कौंसलें (अन्तरङ्ग सभायें) भी होती हैं ।

एक सम्बद्ध और महत्तावाली संस्था की चर्चा किये बिना हम इस लेख को समाप्त नहीं कर सकते । इस संस्था को कोर्ट आव् आनर (मान-न्यायालय) कहते हैं । यह सभा जिसके अधिपति स्काउट-मास्टर तथा सदस्य सब पेट्रोल-लीडर होते हैं सब प्रकार के काम करती है । इसके कार्य्य तीन प्रकार के होते हैं—न्यायसम्बन्धी (Judiciary), व्यवस्थापक (Legislative), तथा सेना-सम्बन्धी नीति, कार्य्य-विवरण, धन के आय-व्यय का ब्योरा और रीति निश्चित करना (Executive) ।

संसार के स्काउटों की संख्या आज लाखों में गिनी जाती है । उनमें आपस में भ्रातृभाव रहता है और प्रत्येक स्काउट को, चाहे वह किसी भी जाति अथवा धर्म का हो, अन्य स्काउट अपना भाई समझते हैं । पत्र-व्यवहार में भाई शब्द से परस्पर सम्बोधन करते हैं । सारे संसार के स्काउटों का आदर्श वाक्य (माटो) "Be prepared" है, अर्थात् प्रत्येक स्काउट सर्वथा सेवा करने को उद्यत रहे ।

बड़े गौरव की बात इस संस्था में यह है कि स्काउटों की धर्म-सम्बन्धी बातों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता, परन्तु प्रत्येक स्काउट से यह आशा अवश्य की जाती है कि वह अपने धर्म तथा मतानुसार पूजा-पाठ या प्रार्थना करे ।

इस संस्था का लाभ बालकों को ही नहीं, किन्तु बालिकाओं को भी होता है । बालक बाय-स्काउट्स कहलाते हैं, बालिकाएं गर्ल-गाइड्स (बालिका-पथदर्शक) कहलाती हैं ।

यदि ऐसी "non-military, non-sectarian and non-political organisation" (—F. G. Pearce) असैनिक, असाम्प्रदायिक और अराजनैतिक संस्था की सेवा करना, उसका प्रचार करना सब देशों के भक्त तथा शिक्षा-सेवी सज्जन अपना कर्त्तव्य समझें तो संसार का बड़ा कल्याण हो ।

(प्रोफ़ेसर) मोहनसिंह मेहता, (एम० ए०)

सत्य का कला से सम्बन्ध ।

परमात्मा के सृष्टि-राज्य में पशु-पक्षि-गण, आहार-विहार और आत्मरक्षा ही के क्षुद्र व्यापारों में संसार-यात्रा व्यतीत कर देते हैं; पर सृष्टि-राज्य का मुकुट-मणि, मनुष्य इन विषयों को अपने उद्देश की प्राप्ति का एक साधन-मात्र मानता

है और वह अनेक पदार्थों, और अनन्त गम्भीर विचारों का आविष्कार करता है, जिनका मनुष्येतर प्राणियों को स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता। मनुष्य अपनेको अनेक अपरिचित वस्तुओं से घिरा पाता है। जलचर, थलचर, नभचर और वृक्षादि उसके नेत्रों के सामने आते हैं। उसके दाएँ और बाएँ, आमने-सामने, नीचे और ऊपर, छोटे और बड़े, अन्धकारमय और ज्योतिर्मय पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। वह दिन में सूर्य भगवान् की प्रकाशमयी किरणें देखता है, तो निशा में निशाकर की ज्योति से प्रसन्न होता है, और नक्षत्र तथा ताराओं की शोभा से वह अलग ही आनन्द-विह्वल होता है। वह एक ओर आमोद-प्रमोद में मग्न होता है, तो दूसरी ओर शोक और मोह से उसका हृदय काँप उठता है। एक ओर वीणा-वाद्य है, तो दूसरी ओर हा हा-रुदन। कभी मेघों की गरज, कभी बिजली की तड़क, कभी जल-वेग और कभी वायु-वेग को देखकर वह विस्मय से बेसुध हो जाता है। उसके हृदय में अनेकों शङ्कायें उठती हैं; कितने ही प्रश्न उसके मन को बार बार मथन करते हैं। मैं कौन हूँ? यह इन्द्रिय-गोचर जगत् क्या है? मेरा इससे क्या सम्बन्ध है? दोनों का उत्पादक क्या है? इन सब प्रश्नों को मनुष्य के मस्तिष्क में स्थान मिलता है।

बड़े बड़े दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता और विज्ञानवेत्ता इस धरा पर हो चुके। यदि दार्शनिकों का ध्येय सत्य की खोज करना, जीव, प्रकृति और परमात्मा का वास्तविक ज्ञान लाभ करना रहा है, तो कला-कुशलों का पवित्र जीवन भी सत्य के पवित्र मार्ग पर आरूढ़ हुआ है। यदि दार्शनिकों का जीवन सत्य की खोज में समाप्त हुआ है, तो कवियों, शिल्पकारों और चित्र-कला-विशारदों को भी सदैव सत्यानुसन्धान इष्ट रहा है। अन्तर केवल इतना है कि एक सत्य के एक रूप के ज्ञान में रत होता है, और दूसरा सत्य के एक भिन्न ही रूप का भावुक है।

जीव, सृष्टि और परमात्मा-सम्बन्धी प्रश्नों ने विविध प्रकार के उत्तर उत्पन्न किये हैं। इस दशा में यदि अल्पज्ञ मनुष्य की बुद्धि अगम्य ज्ञान के सागर पर टीलों से टकरा जाय तो आश्चर्य ही क्या? यदि कुछ लोगों को केवल प्रकृति का विलास-मात्र दीखता है, तो दूसरों को इतने से सन्तोष नहीं होता और वे इस भाव को परतन्त्र मानकर कहते हैं कि आत्मा की सत्ता ही वस्तुतः माननीय है। दूसरे ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि जीव, प्रकृति और परमात्मा तीनों की स्वतन्त्र सत्ता है। सबकी जिज्ञासायें इतने से सन्तुष्ट नहीं होतीं, आत्मा की ज्ञान-पिपासा इससे शान्त नहीं होती। इधर ब्रह्मवादी केवल ब्रह्म की सत्ता का प्रतिपादन करने लगता है; उसे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के सिवा और कोई सत्य नहीं दीखता। यही अन्तिम सत्य है जिसे जानने और पहचानने के लिए हिन्दू दर्शन प्रादुर्भूत हुए हैं; यही सत्य है जिसे उच्च कोटि का हिन्दू कवि, हिन्दू चित्रकार अपने अपने काव्यों और चित्रों के द्वारा देखता है। कवि-सम्राट् कालिदास और भवभूति तथा सूरदास और तुलसीदास अपने महाकाव्यों द्वारा इसी एक सत्य का गुण गा रहे हैं; कवि-सम्राट् रवीन्द्र ठाकुर अपने काव्य द्वारा तथा राजा रविवर्मा अपने चित्रों द्वारा इसी सत्य की उपासना कर रहे हैं। दार्शनिक इस सत्य का निर्गुण, सौन्दर्य्य-विहीन रूप उपस्थित करता है; कला-कुशल इस अनन्त सौन्दर्य्य का सौन्दर्य्य खींचकर भावुक का चित्त उसी सनातन 'सत्य' की सेवा में लगा देता है।

काव्य की ओर देखिए या नाटक की चित्र-कला पर दृष्टि डालिए अथवा शिल्प-कला पर, वाद्य-कला का अवलोन कीजिए या गान-विद्या का, सर्वत्र आत्मा की ज्ञान-पिपासा की शान्ति और भगवान् की प्राप्ति ही इष्ट रही है। यूनान की शिल्प-विद्या अथवा चित्र-कला का जन्म दैवी सौन्दर्य का सुखास्वादन करने के लिए हुआ। भक्त-शिरोमणि सूरदास का सूरसागर भगवान् श्रीकृष्ण के, और

कविकुल-चूड़ामणि भक्ताग्रगण्य तुलसीदास की रामायण रामजी के चरणाम्बुज की प्राप्ति ही के लिए हुई। जिस हिन्दू को ब्रह्म के सिवा और कोई सत्य नहीं दीखता, उसके लिए वेद प्रभु-सम्मित वाक्य और स्मृति-इतिहासादिक सुहृत्सम्मित वाक्य होने पर भी, काव्य और नाटक कान्ता-सम्मित वाक्य हैं, जिनके द्वारा कला चमत्कृत वाणी और माधुर्य्यमयी, रस-सनी भारती में, जीव को शान्ति पहुँचाती और अपने आवरण के साथ साथ द्रष्टा को—संसार पथिक को सत्य की ओर दीपक दिखलाती है। कला का यह आदर्श न केवल हिन्दुओं का ही रहा है, बरन आर्येतर धर्मावलम्बियों और देशवासियों ने भी इस की सत्यता को जानकर इसका अनुकरण किया है। एक ग्रन्थकार का कथन है कि बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार चित्र और मूर्ति द्वारा हुआ। हिन्दू कवियों की भाँति प्रसिद्ध अँगरेज़ कवि वर्ड्सवर्थ क्षुद्राति-क्षुद्र पुष्प को भी ऐसे विचारों का दाता समझते हैं जिन्हें व्यक्त करना मनुष्य के लिए बहुत कठिन है! सत्य की खोज में कला पूर्णतः सफलीभूत न हो तो हर्ज ही क्या? वास्तव में कला का काम सनातन सत्य की खोज है और जहाँ तक उसकी कल्पना और भाव की पहुँच होती है वह सत्य को प्राप्त करती है। निदान कला का उद्देश मनुष्यों को ईश्वर तक पहुँचाने अथवा सत्य को प्राप्त कराने का है और यही सत्य और कला का सम्बन्ध है।

सत्य और कला के सम्बन्ध पर विचार करनेवाले प्रायः सत्य के इस रूप की ओर ध्यान नहीं देते और जब वे कला का विचार करने लगते हैं तब उसका विचार जीव और प्रकृति के साथ करते हैं। इस पर विशेष कर दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। एक का कथन है कि कला में और चाहे जो कुछ हो, अन्ततो गत्वा उसे यथातथ होना चाहिए; दूसरे प्रकार के विचारवालों का सिद्धान्त है कि कला में 'यथातथ' कैसा? एमर्सन महोदय ने कहा है कि "कला का काम अनुकरण नहीं, बरन उत्पन्न करना है।" चित्रकार भद्दे भद्दे, कुडौल पदार्थ पाता है, उसमें वह सौन्दर्य देखेगा, भद्दापन का ध्यान उसे न करना होगा। जहाँ हमें कुछ भी मनोरम और सुन्दर नहीं दिखलाई पड़ता वहाँ वह ऐसा भावपूर्ण चित्र खींचेगा कि हमारा मन मोह जाएगा। चर्म-चक्षुओं को जो कुछ वास्तव में दीख रहा है, कानों को जो कुछ सुनाई देता है, उसके रूखेपन और भद्देपन पर बिलकुल ध्यान न दे, चित्रकार उच्चादर्श द्वारा, पवित्र भावना द्वारा, मोहिनी-रूप उपस्थित करेगा। यही कला का काम है। उसमें नवीनता और आकर्षकता का होना नितान्त आवश्यक है। जिसे हम प्रतिदिन देखते सुनते हैं उसे ही कला के नाम से दिखाने सुनाने चलें तो हम ऐसी कला को दूर ही से नमस्कार करते हैं। कितने दिनों तक वे फ़ोटो जीवित रहेंगे जिन्हें हूबहू उतार लेते हैं; कितने दिन का जीवन उन उपन्यासों का होगा जिन्हें एक बार पढ़ लेने पर फिर पढ़ने को जी नहीं चाहता? उनके जीवन का अन्त तो उसी दिन हुआ जिस दिन उनके जीवन का आरम्भ हुआ!

आस्कर वाइल्ड ने कहा है कि कला में रूप की समीचीनता और विषय की आधुनिकता उसके लिए विषरूप है। लोग समझते हैं कि जिन अवस्थाओं से हम घिरे और सम्बद्ध हैं उनसे कला को भी सम्बद्ध रखना चाहिए। इस विचार का परिणाम यह होगा कि जीव और प्रकृति के भार से कला का मस्तक लद जायगा। जिनसे हमें सुख और दुःख हो रहा है, जिनसे हमें प्रेम और घृणा हो रही है उनसे हमारा सम्बन्ध भले ही हो; परन्तु कला तभी कला रहेगी जब वह उनका सङ्ग छोड़ दे। यदि तुलसीदासजी विषय की नवीनता पर मरे जाते तो वे महाकाव्य न बना पाते, और न कालिदास ही ऐसी दशा में महाकाव्य बना सकते। सच तो यह है कि कला का विषय वे लोग हैं जो हमसे बहुत पहले हो गये हैं या बहुत पीछे होंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि कला में कल्पना और भावना चाहे कितनी ही क्यों न हों, अन्त में कला को प्रकृति का मुख ताकना ही पड़ता है। जीव और प्रकृति के अनुकूल कला को होना ही पड़ता है। इस भाव के विपरीत यह सिद्धान्त है कि 'प्रकृति बेचारी सदा समय के पीछे रहती है' और जीव कला का प्राणघातक है। इन दोनों वक्तव्यों में कुछ न कुछ सत्य अवश्य प्रतीत होता है। महाकवि वर्ड्सवर्थ 'सरोवर-कवि' बनने के लिए झीलों के पास गये, पर झील की प्रकृति ने उन्हें सरोवर-कवि न बना पाया। इसके विपरीत उन्होंने घर ही पर रहकर,

'Books in running brooks,
Sermons in stones,
Good in every thing.'

का सिद्धान्त निश्चित किया। कालिदास ने पतित-पावनी भागीरथी का क्या ही हृदय-ग्राही चित्र खींचा है।—

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा॥

क्या इस वर्णन के लिए कालिदास को गङ्गा-यमुना के सङ्गम तक आना पड़ा था? गोस्वामी तुलसीदासजी सीताजी की अनुपम छवि का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परमरूपमय कच्छप सोई॥
शोभा रजु मन्दर शृङ्गारू। मथै पाणि-पङ्कज निज मारू॥

ऐसी काल्पनिक छवि के वर्णन के लिए तुलसीदास को सीता का असली रूप देखना न पड़ा था। न भवभूति को, दण्डकारण्य का निम्न-लिखित वर्णन करने के निमित्त, अपना स्थान छोड़ना पड़ा था—

कहुँ सुन्दर घनश्याम कतहुँ धारे छवि घोरा।
कहुँ गिरि खोदन गूँजि बढ़त झरनन कर सोरा।
सुनसान कहुँ गम्भीर बन, कहुँ सोर बन-पसु करत हैं।
कहुँ लपटि निसरत सुप्त अजगर सांस सों तरु जरत हैं।
गिरि-खोह महँ कछु जल भरे कहुँ क्षुद्र खात लखात हैं।
अहि-स्वेद गिरगिट पियत तहँ जब प्यास सों घबरात हैं।

निदान हम देखते हैं कि कला जीव और प्रकृति से नहीं, किन्तु कल्पना से उद्‌भूत होती है। यही उसकी प्रथम श्रेणी है। द्वितीय श्रेणी में वह उन्हें अपने घर में स्थान देती है, पर इसलिए नहीं कि वे उसके घर के स्वतन्त्र प्रभु हो बैठें और कल्पना और भावना को निकाल बाहर करें। जीवन की घटनायें और प्रकृति के पदार्थ पङ्खों का काम देते हैं जिनके आधार पर कला उड़ती है। परन्तु जिस समय कला में से कल्पना जाती रहती है और सब कुछ सत्य पर अवलम्बित होने लगता है, उस समय कला का सर्वस्व जाता रहता है और वह कला ही नहीं रह जाती। इसी बात को दो-एक उदाहरणों द्वारा देखें। इँगलेंड में पहले नाट्यकला मठाधीशों के हाथ में थी; नीत्युपदेश उसका उद्देश था और बनावटी कथाओं से उसका आवरण बना था। तदनन्तर उसमें जीव और प्रकृति को स्थान मिला; और नाटकों में अनोखे लोग घूमने फिरने लगे। नाटकों में रोम-सम्राट् सीज़र ऐसा अङ्कित किया गया जैसा सीज़र वास्तव में न था। तब और नाट्यकारों को इस बात का अनुभव हुआ कि कला का धर्म्म सत्य का सीधासादा कथन नहीं, किन्तु "जटिल सौन्दर्य" का प्रदर्शन है। चाणक्य के समकालीन उसे वैसा न देखते रहे होंगे जैसा हम उसे विशाखदत्त के मुद्राराक्षस की कला द्वारा देखते हैं। यदि कला में अर्थात् काव्य और नाटक में अथवा चित्र आदि में ऐतिहासिक सत्यता न हो, तो न सही; क्योंकि उसकी सत्यता का निर्णय अन्य ही माप से किया जाता है। कला का क्षेत्र सत्य नहीं, किन्तु कल्पना और भाव है। जब कला सत्य के लिए पछताने लगे तब जानना चाहिए कि उसका गलाघोंटू आ गया। उत्तम भावनाओं से ही उत्तम चित्र खिंच जाते हैं। इटली के एक प्रसिद्ध चित्रकार से एक सरदार ने

पूछा, भाई ! तुम जो रमणियों के ऐसे मनोहर, भावपूर्ण मुख अङ्कित करते हो उनके आदर्श कहाँ से पाते हो ? चतुर चित्रकार ने यह कहकर कि मैं अभी बताता हूँ, एक भद्दी ग्रामीण स्त्री को बुलाया और उसे आकाश की ओर मुँह उठाकर बैठ जाने के लिए कहा। उसके बैठ जाने पर उसने झट-पट प्रार्थना में रत एक अत्यन्त सुन्दरी रमणी का भावपूर्ण चित्र खींच डाला और सरदार की ओर फिरकर कहा, पवित्र और सुन्दर भाव चित्त में होना चाहिए; फिर इसकी परवाह नहीं कि नमूना कैसा है । इससे निष्कर्ष यह होता है कि कला भाव-राज्य की बात है, उसमें सत्य इतना ही है कि वह पवित्र अन्तःकरण से उत्पन्न होती है और पवित्र भावना का प्रत्यक्ष रूप है ।

यदि जीव दर्पण है तो कला असली रूप है । जीव कला का अनुकरण करता है—यद्यपि कई अंशों में यह भी ठीक है कि कला जीव का (सत्य का) अनुकरण करती है । एक उच्च कोटि का कवि कल्पनात्मक वर्णन उपस्थित करता है, और लोग उसका अनुकरण करते हैं अर्थात् कवि की कल्पना सत्य में परिणत की जाती है । यह ठीक कहा गया है कि कवि लोग भविष्य के स्वप्न देखते हैं और जो स्वप्न वे आज देखते हैं वे कल सत्य हो जाते हैं । उच्च कोटि का चित्रकार जो भावपूर्ण चित्र खींचता है, उसके रूप को अपनेमें उत्पन्न करने के लिए बहुतेरे लोग यत्न करते हैं । इस बात को भारतीयों की भाँति यूनानियों ने भी भली भाँति समझ रक्खा था। इसीलिए वे वधू के गृह में 'हर्मीज़' या 'अपोलो' के चित्र लटका देते थे, जिससे वधू उन चित्रों के समान सुन्दर सन्तान जने । कला न केवल आत्मानुभव कराती और गम्भीर विचारों को उत्पन्न करती और आत्मा को शान्ति देती है, वरन जीव ही कला का अनुगामी हो जाता है । इसी हेतु कला में जीव अथवा सत्य का अनुकरण नहीं होता: किन्तु उसमें, उत्तम भाव, उत्तम कल्पनायें खींची जाती हैं और तब वह स्वर्गीय सौन्दर्य्य का स्वरूप दिखलाती है । इससे उपदेश मिलता है, ईश्वर के स्वरूप पहचानने में सुगमता होती है और 'सत्य' की वृद्धि होती है । यही हेतु है कि यूनानियों ने कला में सत्य (Realism) के होने को आपत्ति-जनक माना था । यही कारण है कि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने बालकों का जीवन चरित्रवान् बनाने के लिए शिक्षाप्रद, भावपूर्ण, पर कल्पित और झूठी कथाओं की रचना का पक्ष लिया है ।

जो सिद्धान्त मूर्ति और चित्रादि के सम्बन्ध में ठीक है वही साहित्य को भी लागू है । साहित्य भविष्यत् का स्वप्न देखता है । उसे आशा रहती है कि भविष्य जीव उसका अनुगामी होगा । आज का साहित्य कल का उद्गम स्थान है । लड़कों ने किसी पत्र में चञ्चलता की कहानी पढ़ी नहीं, कि वे वैसी ही नटखटता दिखाने लगे । शोपेनहार ने अपने काल के जिस निराशावाद का विश्लेषण किया उसका जन्मदाता शेक्सपियर का हैम्लेट नामक नाटक था । साहित्य जीवन का अनुकरण बहुत कम करता है; वरन उसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि का हथियार बना लेता है । इँगलेंड में एक रूपवती महिला थी। उसके विचार स्थिर न थे । कभी वह राजनीति में हाथ डालती, कभी धर्म-सम्बन्धी प्रश्नों में, कभी मेस्मेरिज़्म में और कभी किसीमें और कभी किसीमें । इस प्रकार वह अनिश्चित पथ पर बही चली जाती थी कि अचानक एक पत्रिका में उसने एक ऐसी रूपवती रूसदेशीय महिला का वृत्तान्त पढ़ा जो उससे सभी बातों में मिलती-जुलती थी । कुछ समय के पश्चात् उसने यह पढ़ा कि वह रूसी महिला किसी ऐसे पुरुष के साथ भाग निकली जिसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति उस महिला से बहुत ही गिरी हुई थी । इस बात ने उस अँगरेज़-महिला के हृदय में ऐसी लहर मारी कि कुछ दिनों

पीछे पता चला कि रूसी अबला की भाँति वह भी किसीके साथ भाग खड़ी हुई ! कुछ भद्र पुरुषों ने आत्महत्या इसलिए कर ली है कि अमुक अमुक व्यक्तियों ने कवियों की कल्पित कथाओं में आत्मघात किया था। तात्पर्य्य यह है कि कला का अनुकरण सत्य करता है । पर इसका आशय यह नहीं कि जो कला सत्य का अनुगमन करेगी अर्थात् वास्तविक 'जीवन' का चित्र खींचेगी, वह कभी उत्तम कला हो ही नहीं सकती ।

सत्य ही का एक दूसरा रूप प्रकृति समझी जाती है, अर्थात् प्रकृति के राज्य में जो कुछ इन्द्रिय-गोचर होता है वह सत्य कहाता है; और कुछ लोगों का यह विचार भी है कि कला को प्रकृत्यनुरूप होना चाहिए । यह बात वहीं तक सत्य है जहाँ तक कला प्रकृति से 'रङ्ग और आकृति के विचित्र विचित्र मेल लेती है' । बिना प्रकृति को कभी देखे या उसके विषय में कुछ पढ़े या सुने, कला कल्पना और भावना कहाँ से ला सकती है ?

इस अंश में प्रकृति कला का आधारभूत है और इतने अर्थ में कला उसका अनुकरण भी करती है । ऊपर कह आये हैं कि 'जीव' कला का अनुगामी होता है, वैसेही प्रकृति भी कला की अनुकृति करती है। प्रायः प्रकृति में हम तब तक सौन्दर्य्य नहीं देखते जब तक कोई कला-चतुर प्रकृति के गर्भ में पैठकर सुन्दरता को प्रकट नहीं कर देता। वैदिक युग में लोग उषा-काल का क्या ही सुन्दर चित्र खींचते थे, सूर्योदय में वे क्या ही शृङ्गार पाते थे। पर हममें कितने हैं जो उषा के सौन्दर्य्य को देखें और उससे प्रेम करें ? यदि प्रकृति हमारे मन का खेल है—हमारे मन की भावना मात्र है—तो उसमें जो जो कल्पनायें और भावनायें की जावेंगी सब अनुभव में आवेंगी। कल्पना और भावना को निकालकर देखिए, तो प्रकृति अपने प्राकृत स्वरूप में आ जावेगी और वह सुषमा और सौन्दर्य्य आँखों से ओझल हो जावेगा । यह कला-चातुरी की महिमा है कि हमें केवल फल-फूल का जो सामान्य भौतिक पदार्थ दीखता है, उसमें कला अलौकिक शोभा देखती है । परन्तु जो कुछ कल्पना दिखलाती है वह भी कहीं न कहीं वर्तमान है और उसका रूप होने से वह सत्य ही है । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सत्य और कला में सहज़ विरोध है ।

जब 'वर्ड्सवर्थ' को प्रकृति में देख पड़ता है कि क्षुद्रातिक्षुद्र पुष्प उससे अति गम्भीर विचार कर रहा है—

> To me the meanest flower that blows
> can give,
> Thoughts that do often lie too deep
> for tears.

तब साधारण जन उसे फूल ही देखता है । कला में कल्पना और भावना का इतना स्थान है कि तुलसीदास जी बतलाते हैं—

जेहि के रही भावना जैसी । प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी ॥

तुलसीदास अपनी कल्पना में हिमालय पर्वत को क्या देख रहे हैं कि

> शैल सकल जहँ लगि जगमाहीं ।
> लघु विशाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
> वन सागर नद नदी तलावा ।
> हिमि-गिरि सब कहँ नेवत पठावा ॥

तुलसीदास को इन भौतिक पदार्थों में एक अलौकिक सत्य दीख रहा है और इतर साधारण जन को केवल भौतिक रूप । महाराज पुरूरवा उर्वशी की खोज में विहल हैं । ऊपर एक मेघ दिखाई पड़ता है, उसे वे समझते हैं कि राक्षस है जो उर्वशी को हरे लिये जा रहा है ।

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः ,
सुरधनुरिदन्दूराकृष्टं न नाम शरासनम् ॥
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा ,
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया नोर्वशी ॥

यह कालिदास की कला-चातुरी ही तो है। पुरूरवा राजहंस के कूजन को यदि उर्वशी के नूपुर का शिञ्जन समझ रहा है तो, दूसरी ओर, यह कल्पना करता है कि हंस उसकी प्रिया का समाचार कहेगा। भौंरा, चमेली, चम्पा, केतकी, उसकी बात बतलावेंगे। जब शकुन्तला महर्षि कण्व की तपोभूमि से विदा होती है तब उसे वृक्षादि वस्त्र और रागरङ्ग देते हैं। यह सब कालिदास की कल्पना का खेल है कि—

घौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणामाङ्गल्यमाविष्कृतं,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ॥
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥

सीता जी को ढूँढ़ते ढूँढ़ते रामजी विकल-मति हो पूछते हैं–

हे खगमृग, हे मधुकर-श्रेणी।
तुम देखी सीता मृगनयनी ॥
खञ्जन, शुक, कपोत, मृग, मीना।
मधुप-निकर, कोकिला प्रवीना ॥

यह तुलसीदासजी का खींचा हुआ चित्र है। इन सबमें वास्तविक तथ्य बहुत थोड़ा अथवा इतना ही है कि राम का जानकी पर अथवा पुरूरवा का उर्वशी पर अत्यन्त स्नेह है। यह गम्भीर प्रेम का भावमय चित्र है। यद्यपि यह गम्भीर प्रेम का चित्र है, और एक सत्य का द्योतक है, तथापि यह अक्षरशः सत्य नहीं है। यही सत्य और कला का पारस्परिक सम्बन्ध है।

अब कला और सत्य के सम्बन्ध में इस बात का विचार करते हैं कि कला किसी समय के लोगों की प्रकृतियों तथा सामाजिक और नैतिक अवस्थाओं को कहाँ तक प्रकाश करती और उनसे प्रेरित और प्रभावित होती है। किसी युग-विशेष के लोगों की सामाजिक या नैतिक, आर्थिक या राजनैतिक, अवस्था, उनकी प्रकृति अथवा प्रवृत्ति किसी काव्य या नाटक, चित्र अथवा शिल्प-कला की उत्पत्ति का कारण होती है। तुलसीदासजी की रामायण उनके समय की अवस्थाओं से प्रभावित हुई थी; बाबू मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती आधुनिक अवस्थाओं से प्रभावित है। पर इस सत्यता को तूल नहीं दे सकते। कला अपने समय का उतना चित्र नहीं खींचती जितना कल्पनात्मक समय का, और इस विषय में तत्त्वदृष्टि से यह कह सकते हैं कि सत्य से नहीं, असत्य से कला का सम्बन्ध अधिक है। वर्तमान अवस्थाओं से सन्तुष्ट या असन्तुष्ट होकर किसी कला को भले ही जन्म दीजिए, पर वह कला तभी उत्तम होगी जब उसमें सत्य का राज्य बहुत कम और कल्पना का विशिष्ट हो।

समय कला का जनयिता नहीं, किन्तु समय-विशेष कला की सन्तान है। रोमन-साम्राज्य के सम्राटों की जो मूर्तियाँ देखने में आती हैं उनसे यह अनुमान होता है कि रोमन-साम्राज्य का नाश 'उन भयानक अधरों और बड़े बड़े कामुक जबड़ों में' है। परन्तु इतिहास की दूसरी ही कुछ साखी है। जापान के चित्रों में जापानी जैसे चित्रित किये जाते हैं वैसे वे वास्तव में नहीं हैं। क्या रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद वैसे ही थे जैसे कि वे चित्रों में दिखाये जाते हैं? कदापि नहीं। सच तो यह है कि हम भूतकाल को कला के नेत्रों से देखने लगते हैं, और कला ने "कभी सत्य नहीं कहा है।"

जब हम जीव और प्रकृति को कला में अनुचित स्थान देने लगते हैं, तब कला का रूप थोथा हो जाता

है। जीव और प्रकृति कला के लिए सामग्री हैं—गारा हैं—जिसकी सहायता से कला की शानदार मंज़िल उठेगी। सत्य वे पङ्ख हैं जिनको आधार पाकर कला वायुयान की भाँति भूमि से उड़कर ऊँची से ऊँची दूरी तक आकाशमण्डल में मँडराएगी। कला में से कल्पना और भावना को निकालकर उसमें 'जीव' और 'प्रकृति' अर्थात् सत्य को बसाइए, फिर देखिए कि कला बेचारी बिना वेश-भूषा के रह जाती है! सारांश यह है कि यद्यपि सत्य और कला का स्वाभाविक वैर नहीं है तथापि कला में सत्य का स्थान गौण और कल्पना और भावना, अथवा यों कहिए कि सौन्दर्य्य की पूर्णता ही का स्थान प्रधान है।

चन्द्रबली त्रिपाठी।

सामाजिक पन्थ (Socialism)

सम्पत्ति-शास्त्र की दृष्टि से वर्त्तमान युग 'प्रचण्ड कारख़ानों' का है। इसके पहले का युग 'घरेलू धन्धों' का था। 'घरेलू धन्धों' के युग में मनुष्य-समाज की सब श्रेणियां, सम्पत्ति की दृष्टि से, क़रीब क़रीब बराबर थीं। परन्तु प्रचण्ड कारख़ाने की प्रथा ने अमीर और ग़रीब की स्थिति में ज़मीन-आसमान का अन्तर कर दिया है। इस प्रथा में एक बड़ा भारी दोष है। इस प्रथा से जो अमीर है, वह दिनों-दिन अमीर ही अमीर होता जाता है; और जो ग़रीब है वह भरपेट खाना भी उपार्जित नहीं कर सकता। इस प्रकार इस प्रथा के कारण सम्पत्ति की बँटाई में एक बड़ी विषमता पैदा होती है। इस विषमता को दूर करने के लिए सामाजिक पन्थ यानी सोशलिज़्म (Socialism) का उदय हुआ है।

सन् १८३४ ई० में इँगलिस्तान के प्रसिद्ध समाज-सुधारक राबर्ट ओमेन ने मज़दूरों की एक परिषद् बनाई। इस परिषद् के सम्बन्ध में सबसे पहले 'सोशलिज़्म' पद का उपयोग किया गया था। तब से यह पद शीघ्र ही सम्पत्ति-शास्त्र का एक विशेष पारिभाषिक शब्द बन गया। इस तरह यह शब्द अत्यन्त अर्वाचीन है। परन्तु यह पन्थ अपने इस नामकरण के कई वर्ष पहले ही से विद्यमान था। इसकी उत्पत्ति सम्पत्ति-शास्त्र के अभिमत पन्थ (Classical school) से है। इसके कई एक सिद्धान्त 'व्यापारीय पन्थ' (Mercantile System) से मिलते-जुलते हैं। आज-कल इस पन्थ का यूरोप में बड़ा ज़ोर है। इसका साहित्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि अर्वाचीन औद्योगिक-क्रान्ति का परिणाम समाज में साम्पत्तिक विषमता पैदा करने पर अधिक हुआ। यह तीव्र विषमता लोगों के चित्त में बहुत चुभी। वह उन्हें अन्याय के समान मालूम होने लगी। इसलिए समाज में, सम्पत्ति की बांट को, बराबरी के तत्त्व पर क़ायम करने की बुद्धि से या समाज के चाल-चलन और औद्योगिक व्यवस्था में हेर-फेर करने के विचार से अथवा समाज की बेढङ्गी साम्पत्तिक विषमता को दूर करने के अभिप्राय से, जो जो प्रयत्न हुए उनकी पूर्ण मीमांसा कर, जो संस्था उनका समर्थन करती है वह सामाजिक पन्थ है। अपना यह उद्देश समाज में प्रचलित करने के लिए सामाजिक पन्थ सीधी ही नहीं, किन्तु वक्र नीति का भी अवलम्बन करता है। उद्देश-सिद्धि के लिए वह कभी किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा, परोपकार बुद्धि से बताये गये मार्ग को स्वीकार करता है, कभी सरकारी क़ानूनों की सहायता चाहता है, और कभी कभी क्रान्ति करने पर भी कटिबद्ध हो जाता है। इस तरह सामाजिक पन्थ के प्रथमतः दो भाग हैं। एक वह जो ऊपर लिखा आन्दोलन समाज में शान्तिपूर्वक किया चाहता है; दूसरा वह जो क्रान्तिपूर्वक। शान्ति-मूलक सामाजिक पथ के चार उपभेद किये गये हैं—(१) व्यक्तिक सामाजिक पन्थ, (२) राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ, (३) समावेशक सामाजिक पन्थ और (४) संयुक्त सामाजिक पन्थ। क्रान्तिमूलक सामाजिक पन्थ के दो उपभेद हैं—(१) अराजक और (२) विध्वंसक।

नीचे बताये वृत्त और विवरण से ये भेद और उपभेद ठीक ठीक शीघ्र ही ध्यान में आ जायँगे।

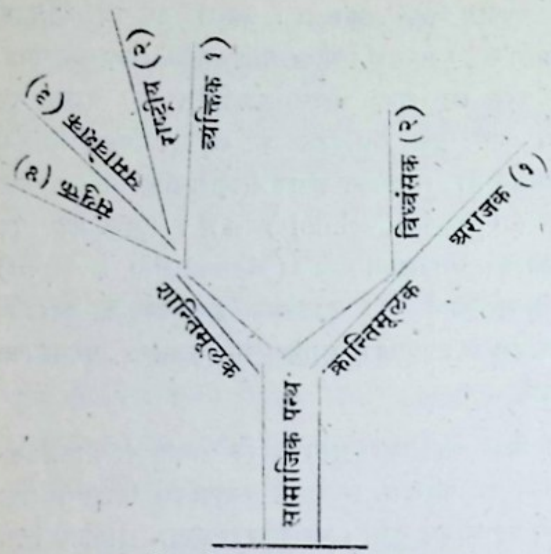

(सम्पत्ति-शास्त्र) अभिमत पन्थ

(१) व्यक्तिक सामाजिक पन्थ।

औद्योगिक क्रान्ति से मज़दूरों की साम्पत्तिक स्थिति पर बड़ा भारी असर पड़ा। उनकी स्थिति दिनों-दिन कष्टमय होती चली। अमीर और ग़रीब में बड़ा भारी अन्तर होने लगा। इस अन्तर को कम करने के लिए कुछ परोपकारी व्यक्तियों ने कई एक कल्पनायें और सिद्धान्त निकाले। उन्होंने केवल अपनी हिम्मत से ये कल्पनायें और सिद्धान्त समाज में प्रचलित करने के प्रयत्न किये। इसीसे इस मतवालों का नाम व्यक्तिक सामाजिक पन्थ पड़ा। इस पन्थ के अनुयायी, मज़दूर-सरीखी सम्पत्ति-हीन श्रेणी से मिलते हैं। उन्हें अपने भले बुरे का ज्ञान दिया जाता है, और उनमें सङ्घ-शक्ति क़ायम करने की चेष्टा की जाती है।

(२) राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ।

यह पन्थ राष्ट्रीय सरकार की सहायता से क़ायदे और क़ानून बनवाकर, सम्पत्ति का योग्य विभाग करने के प्रयत्न में रहता है। व्यक्तिक सामाजिक पन्थ स्वावलम्बी है। वह अपनी ख़ुशी से, बिना किसीकी सहायता के, समाज में सुधार किया चाहता है। परन्तु राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ का सारा भरोसा राष्ट्र की सरकार और उसके क़ायदों पर है। इसके मतानुसार प्रजा के जान-माल की रक्षा करना ही सरकार का कुल कार्य्य नहीं। जन-समाज को सुख देना और उन्हें सुस्थिति पर लाना भी सरकार का एक मुख्य कर्त्तव्य है। सामाजिक स्थिति में सरकारी क़ायदों के ज़रिये हेर-फेर करना जितना सहज है उतना और कुछ भी नहीं। इसलिए इस पन्थ का कहना है कि सरकार हमारे कहे अनुसार देश में अच्छे अच्छे क़ायदे बनावे।

(३) समावेशक सामाजिक पन्थ।

यह वह पन्थ है जो समाज की सब श्रेणी के पुरुषों का अपने एक पन्थ में समावेश करना चाहता है। इसका मत राष्ट्रीय पन्थ के मत से मिलता-जुलता है। इसके मतानुसार सम्पत्ति उत्पन्न करने के दो मुख्य साधन—पूँजी और ज़मीन—प्रचण्ड कारख़ाने की प्रथा के कारण देश के कुछ इने-गिने श्रीमान् लोगों के हाथ में चले गये हैं। इससे मज़दूरों को अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं मिलता। मज़दूरों के परिश्रम का सब फल, पूँजीवाले और ज़मींनदार बीच ही में लूट लेते हैं। इसलिए पूँजी और ज़मीन पर किसी भी एक विशेष व्यक्ति का अधिकार न होना चाहिए। देश की सब ज़मीन और पूँजी पर सिर्फ़ सरकार का ही स्वामित्व रहे और देश के सब कारख़ाने और धन्धे भी सरकारी हो जावें। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य सरकार का नौकर होकर रहेगा और किसीको भी बिना मिहनत किये सम्पत्ति का हिस्सा न मिलेगा। इस तरह देश में सम्पत्ति की बाँट समान तत्त्व पर आ जायगी। उपभोग्य और जङ्गम वस्तुओं पर व्यक्ति-विशेष का स्वामित्व भले ही रहे, परन्तु सम्पत्ति के उत्पन्न करनेवाले साधनों पर सिर्फ़ सरकार का ही आधिपत्य रहे।

(४) संयुक्त सामाजिक पन्थ।

इस पन्थ के सिद्धान्त हमारे हिन्दू-सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलते हैं। हिन्दू-सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा का विकसित स्वरूप ही मानो इस पन्थ का आदर्श है। इस पन्थ के मतानुसार देश की किसी भी

वस्तु पर किसी एक व्यक्ति विशेष का पूर्ण अधिकार रहना, वर्तमान सब अनर्थों का मूल है। इसलिए यह पन्थ चाहता है कि देश की सब सम्पत्ति पर सब लोगों का संयुक्त अधिकार हो। हिन्दू कुटुम्ब-प्रथा में, एक कुटुम्ब की सब चीज़ों पर किसी एक व्यक्ति-विशेष का पूरा अधिकार नहीं रहता। कुटुम्ब के सब लोग अलग अलग कमाते हैं, परन्तु चीज़ों का उपभोग सब मिलकर करते हैं। कुटुम्ब के किसी भी एक पुरुष को यह अधिकार नहीं कि वह उस कुटुम्ब की ज़मीन या पूँजी को अपनी इच्छानुसार किसी तीसरे को दे दे, या अपने मरने पर किसी तीसरे ही पुरुष के नाम उनका वसीयतनामा लिख दे। वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि वे चीज़ें उस ख़ास व्यक्ति की नहीं, किन्तु संयुक्त कुटुम्ब की हैं। उसका अधिकारी संयुक्त कुटुम्ब है; कोई एक विशेष व्यक्ति नहीं। इसी प्रकार देश की सब सम्पत्ति पर सब लोगों का संयुक्त अधिकार हो। देश की किसी भी वस्तु पर किसी भी ख़ास व्यक्ति का इतना अधिकार न हो कि वह उसे इच्छानुसार बर्त सके। इस दशा में कुटुम्ब के समान देश के सब लोग एक रूप हो जायँगे। तब सम्पत्ति की बाँट का प्रश्न ही न निकलेगा, और सब सामाजिक अनर्थों की इतिश्री हो जायगी।

व्यक्तिक सामाजिक पन्थ अपनी ख़ुशी से स्वयं परिश्रम करके, मज़दूरों की गिरी हुई दशा सुधारने का प्रयत्न करता है। मज़दूर-सङ्घ सहकारी बङ्क, आदि इसी पन्थ के सुधार हैं जो प्रायः लगातार सब देशों को सर्वमान्य हैं। राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ के नये सुधार कुछ भी नहीं। वह सरकार की सहायता से व्यक्तिक सामाजिक पन्थ के सुधार समाज में प्रचलित करना चाहता है। कारख़ाने के नये क़ायदे, प्राथमिक मुफ़्त शिक्षा इत्यादि इस पन्थ के साधारण सुधार हैं। और सब पन्थों की अपेक्षा सभ्य देशों में इस पन्थ का बड़ा मान है। सभ्य देशों की सरकार इसका कहना मानती है। समावेशक पन्थ राष्ट्रीय पन्थ से एक क़दम बढ़कर है। इसके अनुसार देश की सम्पत्ति उत्पन्न करने के सब साधनों और ज़मीन पर सिर्फ़ सरकार का ही स्वामित्व रहे। कोई भी पुरुष, सिर्फ़ अपने बढ़ने के लिए, सम्पत्ति उत्पन्न करने के किसी भी साधन का अधिकारी न हो। संयुक्त सामाजिक पन्थ के अनुसार देश का कोई भी पुरुष, देश की किसी भी वस्तु का स्वतन्त्र अधिकारी न बने। इसे यूरोप की वर्तमान सामाजिक रचना बिलकुल पसन्द नहीं, क्योंकि वह रचना 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना पर बनी हुई है। 'यह मेरा है, यह तेरा है' यही जिस समाज-रचना का प्रमुख अङ्ग है, ऐसी रचना का रहना ही ठीक नहीं। वह एकदम दूर कर दी जाय और उसकी जगह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली कल्पना प्रचलित की जाय। इस पिछली बात पर ही यह पन्थ विशेष ज़ोर देता है।

क्रान्तिमूलक सामाजिक पन्थ

अराजक पन्थ और विध्वंसक पन्थ

(Anarchism and Bolshevism)

ध्यानपूर्वक देखने से मालूम हो जायगा कि ये दोनों पन्थ ऊपर लिखे संयुक्त सामाजिक पन्थ से केवल कुछ डग आगे हैं। संयुक्त सामाजिक पन्थ के अनुसार 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना समाज के सब अनर्थों की मूल है। अराजक और विध्वंसक पन्थ के अनुसार देश की समाज और सरकार ही सब मानव जाति के आपत्तियों की मूल हैं। समाज और सरकार ही के कारण 'ख़ानगी जायदाद' का उदय होता है। समाज और सरकार ही 'ख़ानगी जायदाद' की वस्तुओं का रक्षण करना अपना मुख्य धर्म समझती हैं। इसलिए समाज और सरकार को उठा देना ही हर एक मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। इस पन्थ का मत है कि प्राकृतिक नियमों के अनुसार मनुष्य-प्राणी जन्म से और और जीवों के समान स्वतन्त्र है। परन्तु समाज और सरकार ने मनुष्य प्राणी को उसकी इस स्वाभाविक स्वतन्त्रता से वञ्चित कर दिया है। हर एक मनुष्य इन दोनों का ग़ुलाम बन गया है। इनके सबब वह अपने जीवन का स्वच्छन्द उपभोग नहीं कर सकता। वह कोई कार्य्य करने में स्वतन्त्र नहीं, समाज और सरकार जैसा कहती है, जैसा चाहती है, ठीक वैसा ही वह कहता और करता है। इस प्रकार उसका सारा जीवन बनावटी और दुःखमय है। वह अपनी प्रकृति-दत्त शक्तियों से स्वच्छन्द काम नहीं ले सकता। इसलिए यदि सच्चे सुख की आवश्यकता हो तो प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि पहले वह इन दोनों को जड़-मूल से मिटा देवे।

बुकानन और प्रूदों (Proudhon) इन पन्थों के जनक हैं। इनके मत से 'ख़ानगी जायदाद' केवल चोरी की जायदाद है। ऐसी जायदाद की रक्षा समाज और सरकार करती है। इसलिए समाज और सरकार भी चोर हैं; और दोनों को उठा देना मनुष्य के लिए हितकारी है। इस पन्थ के अनुयायी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि हम सब प्रकार की सत्ता के शत्रु हैं।

विध्वंसक पन्थ का जन्म रूस में हुआ। अराजक पन्थ के उद्देश इसके उद्देश से मिलते-जुलते हैं। परन्तु विध्वंसक पन्थ अराजक पन्थ से अधिक भयङ्कर है। अराजक पन्थ वर्तमान समाज और सरकार को मिटाकर उसके स्थान पर एक नया आदर्श स्थापित करना चाहता है। विध्वंसक पन्थ का उद्देश केवल मार-काट और नष्ट-भ्रष्ट करना है। रूस की वर्तमान स्थिति ने इस पन्थ को वहां इतना ज़ोरदार बना दिया।

इस प्रकार, अराजक तथा समावेशक और संयुक्त सामाजिक पन्थों का उद्देश समाज की फिर से रचना करने का है। परन्तु आज तक इन पन्थों में से किसी एक ने भी कोई कल्याणकारी बात स्थापित नहीं की। इसलिए विचारवान् लोग इन पन्थों से सदैव दूर रहते हैं।

सारांश, पूरा सामाजिक पन्थ 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना का घोर विरोधी है। वह इसे समाज से उठा देना चाहता है। अब हमें यह देखना चाहिए कि इनमें से किस पन्थ का उद्देश अधिक न्याययुक्त माना गया है।

अरिस्टाटल सरीखे यूनानी विद्वानों के मतानुसार संयुक्त सामाजिक पन्थी सच्चे मनुष्य-स्वभाव से परिचित नहीं। यह मानी हुई बात है कि जब तक किसी मनुष्य को यह न मालूम हो कि 'यह चीज़ मेरी है' तब तक उसके हाथ से जी तोड़ कर सच्चा परिश्रम न होगा। अँगरेज़ी कहावत 'Every body's work is no body's work' (सबका काम किसीका भी काम नहीं) बिलकुल सत्य है। इसलिए इन विद्वानों के अनुसार 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना मनुष्य की उन्नति का एक-मात्र उत्तम उपाय है। आज-कल मनुष्य-समाज ने जो कुछ उन्नति की है, वह सब इसी कल्पना के पाये पर की है। इस प्रकार यह कल्पना ठीक ही है और इसकी रक्षा करना प्रत्येक समाज और सरकार का मुख्य धर्म है। सामाजिक पन्थियों ने 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना को समाज से निकाल देने का भी बहुत कुछ प्रयत्न किया; परन्तु वे निष्फल रहे। तो भी यह सिद्ध है कि यह प्रथा समाज को हानिकारक नहीं।

राबर्ट ओवेन एक प्रसिद्ध सामाजिक-पन्थी सुधारक हो गया है जिसने सामाजिक-पन्थी आदर्श को समाज में फैलाने का सबसे पहले प्रयत्न किया है। इस सत्पुरुष के निज के कई कारख़ाने थे। उनमें वह बालकों को नियुक्त करता, और उनके आरोग्य तथा शिक्षा पर विशेष ध्यान देता। रात्रि की पाठशालायें खोलने का सबसे पहला प्रयत्न इसी सत्पुरुष ने किया है। कारख़ाने के क़ायदे बनवाने में इसने बड़ी मिहनत उठाई है। इसने अपनी सारी सम्पत्ति मज़दूरों की दशा सुधारने में लगा दी। इसका विचार था कि अन्दाज़न १२०० लोगों के लिए १२०० या १८०० एकड़ ज़मीन ख़रीदें। ये सब लोग एक ही इमारत में रहें, और उत्पत्ति का हिस्सा सब मिलकर भोगें। फोरियर और सेंट साइमन के विचार भी ऐसे ही थे। वे चाहते थे कि सारे समाज की छोटी छोटी टोलियां बनाई जायँ। प्रत्येक टोली एक ही इमारत में रहे और यह अपना खेती का मुख्य धन्धा करे। परन्तु अगर कोई टोली चाहे तो दूसरा धन्धा भी कर सकती है। इस टोली में ख़ानगी मिलकियत और कुटुम्ब-प्रथा अवश्य हो; परन्तु श्रीमान् और ग़रीब सब इकट्ठे रहें। सबके परिश्रम से उत्पन्न की गई सम्पत्ति का ठीक हिस्सा प्रत्येक मनुष्य को मिले। बची हुई सम्पत्ति का ५/१२ हिस्सा 'श्रम' (मज़दूर) को, ४/१२ 'पूँजी' को, और ३/१२ 'बुद्धि' को दिया जाय। इस कल्पना के बताये मार्ग पर नये समाज स्थापित करने के बहुत बहुत प्रयत्न किये गये, परन्तु कहीं भी यश न मिला।

फरडिनण्ड लेज़ली जर्मनी में एक बड़ा प्रसिद्ध सामाजिक पन्थी हो गया है। जर्मनी में सामाजिक पन्थ की नींव इसीने डाली है। इसके मतानुसार पूँजी किसी विशेष व्यक्ति की न हो। पूँजी की अधिकारिणी सिर्फ़ देश की सरकार हो। यह सरकार मज़दूरों का धनोत्पादक सङ्घ बनावे। मज़दूरों की दुरवस्था का दूर करना सिर्फ़ इसी एक सुधार से हो सकता है। लेज़ली चाहता था कि राष्ट्र का मज़दूर अपनी अपनी स्थिति सुधारने का मार्ग स्वयं ढूँढ़

निकाले। परन्तु लेज़ली के अनुयायियों ने इस हलचल को राष्ट्रीयता का स्वरूप दे दिया।

जर्मनी का दूसरा प्रसिद्ध सामाजिक पन्थी कार्ल मार्क्स है। इसने सम्पत्ति-शास्त्र और सामाजिक पन्थ पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। मार्क्स के पहले, लोग सामाजिक पन्थ की हँसी उड़ाते थे। वे उन्हें 'यूटोपियन्स' (हवाई महल बनानेवाले) कहा करते थे। सामाजिक पन्थ के सिद्धान्त उस समय ऐसे बे तुके जान पड़ते थे कि उनकी हँसी उड़ाना कोई कठिन न था। परन्तु मार्क्स ने, अपने ग्रन्थों में, अपनी विचार और तर्कना शक्ति से यह दिखा दिया कि सामाजिक पन्थी हवाई महल बनानेवाले नहीं हैं। उनके उद्देश न्याय-युक्त हैं, सत्य हैं, तर्कना से टक्कर लेनेवाले हैं और इस मानवी संसार में प्रचलित करने के लायक़ हैं।

इस लेखक का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पूँजी' है। यह अर्वाचीन सामाजिक पन्थियों का पवित्र ग्रन्थ है। इसमें मार्क्स ने सम्पत्ति-शास्त्र के कई पुराने तत्त्वों का खण्डन किया है और कई नये तत्त्व और सिद्धान्त ढूँढ़ निकाले हैं। इसके कुछ नये तत्त्व और सिद्धान्त ये हैं—

(१) केवल पैसा ही पूँजी है।

(२) विनिमय से पदार्थों की क़ीमत नहीं बढ़ती। पदार्थों की क़ीमत पूँजी पर अवलम्बित नहीं। पदार्थों की क़ीमत सिर्फ़ श्रम पर अवलम्बित है। श्रम ही सम्पत्ति उत्पन्न करने का मुख्य साधन है।

(३) "अधिक मज़दूरी देने से मज़दूरों की संख्या बढ़ती है। अधिक मज़दूरों के होने से मज़दूरी कम हो जाती है। इस प्रकार मज़दूरी की दर मज़दूरों पर ही अवलम्बित है।" माल्थस की यह उक्ति मार्क्स को बिलकुल पसन्द नहीं। मार्क्स के मतानुसार व्यापार की मन्दी-तेज़ी से पूँजी की कमी-अधिकता होती है। पूँजी के इस घटाव-बढ़ाव से ऐसा मिथ्याभास होता है, मानों जन-संख्या में परिवर्त्तन हो रहा हो। परन्तु यथार्थ में जन-संख्या में इतनी जल्दी परिवर्तन नहीं हो सकता। उसके लिए कम से कम १८ साल लगते हैं।

सारांश, मार्क्स के मतानुसार सब सम्पत्ति 'श्रम' से उत्पन्न होती है। पूँजीवाले बिना कुछ किये, बैठे-बैठाये, बीच ही में नफ़ा उड़ाते हैं, और श्रम का योग्य बदला मज़दूर को नहीं देते! इस अनर्थ का मूल 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना है। इसलिए ज़मीन, 'ख़ानगी जायदाद' में कभी न गिनी जावे। उस पर सारे राष्ट्र का अधिकार हो। पूँजी और कारख़ाने सरकारी विभाग हो जावें। इस प्रकार सुधार किये बिना, सम्पत्ति के सच्चे उत्पन्न करनेवाले, मज़दूरों की अवस्था न सुधरेगी। मार्क्स के ये नये विचार उस समय की सरकार अमल में लाने के लिए तैयार न थी। इसलिए कई एक सामाजिक पन्थों ने ऐसी सरकार को उठाकर उसके स्थान में नया सुधार करने के लिए उद्योग किया। इसमें वे यशस्वी न हुए। तब अराजक और ध्वंसक पन्थों की उत्पत्ति हुई।

इन सब सामाजिक पन्थों में आज-कल केवल राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। सुधरे हुए देशों की सब सरकारों पर इसका प्रभाव है। इसका उदय जर्मनी में हुआ था। जर्मनी में जब क्रान्ति-कारक सामाजिक पन्थ का ज़ोर बढ़ने लगा तब जर्मन सरकार और वहां के प्रसिद्ध महापुरुष प्रिन्स बिसमार्क ने उसे दबाने के लिए इस पन्थ का समर्थन किया और इसके मतानुसार देश के क़ानून-क़ायदों में सुधार करना आरम्भ किया। बिसमार्क को इस काम में सलाह देनेवाला सामाजिक पन्थ का प्रसिद्ध लेखक 'वागनर' था।

वागनर के मतानुसार समाज की भिन्न भिन्न श्रेणियों में प्रेमभाव उत्पन्न करना, अन्याय का प्रतिकार कर जहां तक बने सम्पत्ति का विभाग समान-तत्त्व पर करना, कनिष्ठ और मध्यम श्रेणी के लोगों की नैतिक और साम्पत्तिक दशा के सुधार के साथ क़ायदों द्वारा सरकारी सारे समाज को उन्नति के मार्ग पर लाने की कोशिश करना राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ के मुख्य उद्देश हैं। इसका कहना है कि सरकार अपने पुराने सङ्कीर्ण विचारों को त्याग दे। कनिष्ठ श्रेणी के लोगों की दशा सुधारने के लिए सरकार औद्योगिक कार्यों में अवश्य हेर-फेर करे। वह मज़दूरों में स्वावलम्बन, सहकारिता, सङ्घ इत्यादि के तत्त्व फैलावे। क़ायदे से मज़दूरी के घन्टे, छुट्टियां इत्यादि नियत करे। कारख़ाने हवादार, आरोग्य-कारी तथा जोखिम से रहित, बनवाने पर विशेष ध्यान देवे। मज़दूरों को पेन्शन दिलवाने, उनके

जीवन का बीमा करवाने, उनकी बीमारी में तथा उन्हें चोट लगने पर उनका पेट पालने की व्यवस्था करे। अगर कहीं एकही पुरुष के हाथ में सम्पत्ति की उत्पत्ति का साधन चला जाय, और वहां मज़दूरों पर ज़ुल्म होने का डर हो जाय, तो सरकार को चाहिए कि ऐसे कारख़ाने वह खुद अपने हाथ में ले ले।

बागनर के नीचे लिखे विचार बहुत प्रसिद्ध हैं—

(१) देश के जङ्गल की मालिकी सरकार अथवा किसी सार्वजनिक संस्था के पास हो। ऐसी स्थावर सम्पत्ति पर अनुपार्जित उत्पत्ति बहुत अधिक होती है। अगर यह उत्पत्ति सरकारी हो जायगी तो लोगों का कर बहुत कुछ कम हो जायगा।

(२) खेती की ज़मीन के सम्बन्ध से देश में बड़ी बड़ी जमींदारियों का होना देश के लिए विशेष हानिकारक है। इससे कुछ गिने गिनाये लोग ही ज़मीन के मालिक बन जाते हैं और इस कारण से ज़मीन का सार्वजनिक उपयोग नहीं होने पाता। इसलिए देश में छोटे छोटे किसान बनाये जावें और ज़मीन पर उन्हें पूर्ण अधिकार दिया जावे।

(३) शहर में ज़मीन पर किसी भी पुरुष का कभी ख़ानगी अधिकार न हो। ऐसा होने से ज़मीन की क़ीमत कल्पना से अधिक बढ़ जाती है; और शहर में रहने के लिए ग़रीबों को स्थान मिलना कठिन हो जाता है।

(४) रेलवे, सड़क, नहर सरीखे आवागमन के साधन सदैव सरकारी हों। रेलवे का उद्देश द्रव्य कमाने का न हो। सस्ते में लोगों को या उनकी चीज़ों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देना ही उसका मुख्य उद्देश हो। रेलवे राष्ट्रीय हो जाने पर रेलवे कम्पनियां प्रजा की सम्पत्ति को निचोड़ न सकेंगी और उनके मुनाफ़े की अनुपार्जित सम्पत्ति का सारा फ़ायदा सरकार के सब लोगों को एक समान मिलेगा।

(५) मिट्टी-तेल, नमक, पत्थर का कोयला, ये पदार्थ सब लोग एक समान उपयोग में लाते हैं; इसलिए ऐसे पदार्थों की खानें सरकारी हों।

बागनर प्रिन्स बिसमार्क का मुख्य मन्त्री था। इसलिए उसके विचारों का बहुतसा भाग जर्मन सरकार ने अपने राज्य में प्रचारित कर दिया। दूसरे दूसरे देशों की सरकारें भी उन्हें धीरे धीरे अपने अपने राज्य में फैलाती जा रही हैं। इससे यह मालूम होता है कि और और पन्थों की अपेक्षा राष्ट्रीय पन्थ अधिक यशस्वी हुआ है। उसके उद्देश और उसकी कल्पनायें बहुत कुछ सुसाध्य और न्याययुक्त मानी जाती हैं।*

लक्ष्मण गोविन्द आठले।

अध्यात्म-विषयक कुछ अनुमान।

इस विश्व की रचना क्यों और किस प्रकार हुई? यह विश्व किस तरफ़ गति कर रहा है और क्यों कर रहा है? यहाँ कोई नियम हैं या नहीं? यदि हैं तो कौन से और उनका प्रवर्तक कौन है? यदि नहीं तो इस रचना का क्या अर्थ है? या यह एक उद्देश-हीन कार्य है जो अनादि काल से चला आ रहा है और न जाने कब तक चलता रहेगा? इत्यादि। इस प्रकार की सैकड़ों बातें हैं, जिनके समाधान-कारक उत्तर नहीं मिलते, जिसके कारण लोग समझते हैं कि इस सृष्टि का प्रवर्तक ईश्वर है, और उसके नियम समझ में नहीं आ सकते। कोई कोई यह भी कहते हैं कि इस सृष्टि का कोई विशेष अर्थ नहीं है, यह ऐसी ही है और ऐसी ही चलती रहेगी। यहाँ कोई नियम नहीं है, और न कोई शासक है। कुछ कारणों से पृथ्वी सूर्य के आसपास चलती है; अन्य कई कारणों से आकर्षण होता है। कुछ कारणों से उत्पत्ति हो जाती है, अन्य कई कारणों से मृत्यु, इत्यादि। ऐसे अनेक

---

* फ़र्ग्युसन कालेज, पूना के प्रसिद्ध सम्पत्ति-शास्त्री प्रोफ़ेसर गो० चि० भाटे एम० ए० की एक विवेचना के विशेष आश्रय पर लिखित—लेखक।

कारण बतलाकर कुछ बातें समझा दी जाती हैं। इसी प्रकार अपने समाधान के लिए हमने सैकड़ों मत बना लिये हैं और बनाते जाते हैं।

परन्तु क्या इनसे हमारी शङ्काओं का समाधान हो जाता है? जितना जितना हम अधिक विचार करते हैं उतनी ही हमारी जिज्ञासा क्या अधिक नहीं बढ़ती? हम देखते हैं कि सब देशों में और सब कालों में विश्व के विषय में मनुष्य की यह जिज्ञासा बढ़ती ही रही है। इसी जिज्ञासा के कारण मनुष्य बहुत कुछ जानने और समझने लगा है, और अवश्य आगे बहुत कुछ जानने और समझने लगेगा। परन्तु यह जिज्ञासा क्या है और किस जिज्ञासु की यह जिज्ञासा है? यदि मनुष्य-मात्र की थोड़े या अधिक अंशों में यह जिज्ञासा है तो इस प्रकार मनुष्य-मात्र के लिए इस जिज्ञासा के होने का क्या कारण है? और इस जिज्ञासा का रखनेवाला यह मनुष्य ही क्या वस्तु है?

इस जिज्ञासा और जिज्ञासु का विचार ही हमारे यथार्थ ज्ञान की जड़ है। अब प्रथम हम इस बात का विचार करेंगे कि यह जिज्ञासु—यह मनुष्य—क्या है?

एक बीज अङ्कुर होकर ज़मीन से निकलता है। उसमें पल्लव आने लगते हैं, कली आती है, फूल खिलता है, फल निकलता है। मनुष्य अपने बाल्य-काल से जानने की चेष्टा करता हुआ पाया जाता है, अन्त तक उसकी यह चेष्टा क़ायम रहती है और अन्त में उसका ज्ञान भी बाल्यकाल की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाता है। मनुष्य के शरीर में जानने की चेष्टा करनेवाली यह क्या वस्तु है? अच्छी तरह विचार करने से मालूम होता है कि मनुष्य के शरीर में एक अद्भुत, अदृश्य—जागृत—शक्ति विद्यमान है, जिसके विना मनुष्य मनुष्य ही नहीं, और उसमें जो जिज्ञासा पाई जाती है वह इसी शक्ति की प्रेरणा है। इस शक्ति को हम आत्मा कहें वा अन्य कोई नाम दें, परन्तु शक्ति का अस्तित्व मनुष्य-मात्र में प्रतीत होता है। अधिक विचार करने से मालूम होगा कि यह शक्ति न केवल मनुष्य-मात्र में है, परन्तु वृक्षों में, प्राणियों में—विश्व में—भी यही शक्ति व्याप्त है। (विस्तार-भय से यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सकता। आधुनिक आधिभौतिक शास्त्रवाले भी इस बात को मानने लगे हैं कि परमाणुओं में भी इसी प्रकार की शक्ति का अस्तित्व माने विना बहुत से विज्ञान के सिद्धान्त नहीं समझाये जा सकते।) इतना ही नहीं, जिस प्रकार मनुष्यों में जिज्ञासा की शक्ति स्वाभाविक है उसी प्रकार, चाहे हम इस बात को समझ सकें या नहीं, वृक्षों में, प्राणियों में, सब पदार्थों में, जिनमें यही शक्ति व्याप्त है, जिज्ञासा की शक्ति स्वभाव से पाई जायगी। यह जिज्ञासा क्या है, इसका विचार करने से यह बात कुछ और स्पष्ट हो जावेगी।

यह जिज्ञासा और कुछ नहीं है, आत्मा का—उस शक्ति का—अपना यथार्थ स्वरूप जानने की इच्छा है—अपना विकास करते हुए पूर्णत्व को पहुँचने का प्रयत्न है। इस प्रकार विकास करते रहना इस शक्ति का स्वभाव है—नियम है। किसी किसी स्थिति में, यथा जड़ पदार्थों में, यह शक्ति अस्वयंवेद्य (Unconscious) रहती है, परन्तु फिर भी विकास करती ही रहती है। आगे चलकर इसी विकास-द्वारा जब वह स्वयंवेद्य (Conscious) हो जाती है तब भी यह विकास होना क़ायम ही रहता है। यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायगी। यदि मैं यह विचार करूँ—और इस प्रकार के विचार के लिए आधार है जो आगे स्पष्ट होगा—कि मैं एक परमाणु से लगा-कर अनेक योनियों में होता हुआ—वृक्ष, प्राणी इत्यादि में फिरता हुआ—मनुष्य-योनि को प्राप्त हुआ हूँ, तो मुझे अपनी आत्मा के विकास का स्वरूप, यह समझते हुए कि वही परमाणु का आत्मा

विकास करता हुआ मनुष्य-योनि को प्राप्त हुआ है, स्पष्ट रूप से मालूम होगा और इसी प्रकार यदि विकास होता चला जायगा तो अवश्य ही, कभी न कभी, वह आत्मा पूर्णत्व को पहुँच जायगा। इस रीति से ज्ञात होगा कि हम जिसे जिज्ञासा कहते हैं वह वास्तव में उस शक्ति का पूर्णत्व को पहुँचने का प्रयत्न है और इस प्रकार का प्रयत्न सब पदार्थों में स्वयं ही विद्यमान है। साथ ही, जैसा कि हम मनुष्यों में देखते हैं, ये सब पदार्थ पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा एक दूसरे के विकास में मदद करते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार विश्व की गति पूर्णत्व को पहुँचने की तरफ़ ही है—यही इसका नियम है।

इस अद्भुत और पूर्णतया विकसित शक्ति को परमेश्वर कहिए, परमात्मा कहिए—कोई भी नाम दीजिए। हम किसी किसी व्यक्तियों में इस शक्ति का बड़ा भारी अंश पाते हैं—इन व्यक्तियों का आत्मा हमारी अपेक्षा बहुत अधिक विकसित हुआ पाया जाता है—यही व्यक्ति महात्मा कहलाये जाते हैं। प्राणियों का बड़प्पन या छोटापन भी यही हो सकता है— जिसका आत्मा जितना ही अधिक विकसित है वह उतना ही बड़ा है। अवतार भी हम इसी को कहते हैं। जिस व्यक्ति को हम अवतारी कहते हैं उसमें यह शक्ति हमारी अपेक्षा बहुत अधिक विकसित पाई जाती है। यदि यह शक्ति कहीं पूर्णत्व को पहुँची हुई मिले तो हम उसे पूर्णावतार कह सकते हैं।

इस विषय के और भी अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। जन्म-मरण की क्या समस्या है? ये क्या हैं और क्यों होते हैं? यदि परमाणु से लगाकर मनुष्य-योनि तक एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो यह आत्मा क्यों और किस प्रकार एक योनि में से निकलकर दूसरी योनि में प्रवेश करता है? सुख-दुःख क्या हैं? नीति-अनीति क्या हैं? कर्म और भाग्य क्या हैं? ऐसे अनेक प्रश्न हमें घेर लेते हैं और इनका समाधानकारक उत्तर हमें नहीं मिलता। फिर भी जो बातें हमें स्पष्ट रूप से मालूम होती हैं उनसे हम बहुत कुछ अनुमान बाँध सकते हैं।

ऊपर बतलाया गया है कि आत्मा—एक शक्ति—सब पदार्थों में विद्यमान है और विकास को प्राप्त करते रहना उसका नियम है। इससे ज्ञात होता है कि सब व्यवहार आत्मा ही का है। तब यह प्रश्न होता है कि जब आत्मा ही अपना विकास कर रहा है तब फिर मनुष्य के लिए क्या कर्तव्य रहा? और मनुष्य में जो अनेक शक्तियाँ हैं—मन, हृदय, मस्तिष्क, अन्य आन्तरिक और बाह्य शक्तियाँ—इन सबका क्या अर्थ है? और ये किसलिए हैं? इन और इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का यही उत्तर होगा कि वास्तव में आत्मा के सिवा मनुष्य कोई वस्तु नहीं है और मनुष्य के जो अनेक अङ्ग और शक्तियाँ हैं वे सब अपनी प्रगति के लिए उत्पन्न किये हुए आत्मा ही के साधन हैं। ये साधन किस प्रकार निर्मित हुए, यह बतलाना हमारी शक्ति के बाहर है, परन्तु अनुमान इस बात को दृढ़ करता है कि ये शक्तियाँ आत्मा ही ने अपनी उन्नति के लिए उत्पन्न की हैं। हम देखते हैं, स्थावर पदार्थों की अपेक्षा वृक्षों में अधिक शक्तियाँ हैं, वृक्षों की अपेक्षा प्राणियों में, प्राणियों की अपेक्षा मनुष्यों में अधिक अधिक शक्तियाँ पाई जाती हैं और जिस प्रकार आत्मा की जिज्ञासा बढ़ी है—पूर्णत्व को पहुँचने के लिए विकास पाने का प्रयत्न हुआ है—उसी प्रकार उस विकास को प्राप्त करने के लिए आवश्यक शक्तियों की उत्पत्ति हुई है। अमेरिका के कुछ विद्वानों ने हमारे शरीर में एक नई इन्द्रिय का अस्तित्व बतलाया है जिसके द्वारा हम भौतिक दृष्टि से न दिखलाई देनेवाली वस्तुयें भी देख सकते हैं और दूसरों के विचारों को, बग़ैर उनके प्रकट किये जाने के,

समझ सकते हैं, और इन विद्वानों का अनुमान है कि कुछ शताब्दियों के अनन्तर यह इन्द्रिय साधारणतया उपयोग में आने लगेगी। इन सब बातों से मालूम होता है कि आत्मा के विकास के लिए आवश्यक साधनों का अस्तित्व में आना ही यह सब दृश्य कहा जा सकता है। इसी प्रकार अनेक योनियों में प्राप्त होना भी आत्मा का अपने विकास के लिए आवश्यक रूप धारण करना ही है और यही जन्म-मरण की समस्या है। जब एक योनि में वा शरीर में रहकर आत्मा कुछ विकास प्राप्त कर लेता है और उसमें अधिक विकास की सम्भावना नहीं रहती, तब अपनी शक्तियों द्वारा आत्मा दूसरी योनि में प्रवेश कर लेता है। जन्म-मरण का तात्विक कारण यही है। प्रत्यक्ष में ये किस तरह होते हैं—एक योनि में से दूसरी योनि में प्रवेश किस तरह होता है, किस योनि के बाद कौन सी योनि आती है, एकही प्रकार की योनि में—यथा मनुष्य-योनि में—कितने जन्म धारण करने पड़ते हैं, इन बातों का ठीक ठीक कारण बतलाना हमारी शक्ति के बाहर है।

पूर्व-जन्म-संस्कार क्या है, इसका भी यहाँ विचार कर लेना ठीक होगा। यह भी हमारा दिया हुआ नाम है और आत्मा के अनेक योनियों में से गुज़रने की बात को समझने का प्रयत्न है। हम देखते हैं और जानते हैं कि हम कुछ संस्कार अपनी उत्पत्ति के साथ ही ले आते हैं और—यहाँ विस्तार-भय से अधिक नहीं लिखा जा सकता—अनेक उदाहरणों में ये संस्कार पाये जाते हैं, जिनकी उत्पत्ति माता-पिताओं से वा अन्य कारणों से नहीं बतलाई जा सकती। अतएव उन्हें पूर्व जन्म के संस्कार ही मानने पड़ते हैं। ये संस्कार और कुछ नहीं हैं, आत्मा का एक विशिष्ट मर्यादा तक किया हुआ विकास है, जिससे आगे का विकास अब इस जन्म में चलेगा। इसीको हम भाग्य भी कह लेते हैं। यह बात स्पष्ट ही है कि पूर्व-जन्म में आत्मा का जिस हद तक विकास हो चुका है उसी प्रमाण से आगे विकास होगा। इसी बात को हम इस तरह कहते हैं कि पूर्व-जन्म में जैसा कर्म किया है उसी प्रकार आगे फल मिलेगा।

सुख और दुःख आत्मा के विशिष्ट मर्यादा तक किये हुए विकास की स्थिति बतलानेवाले, हमारे दिये हुए नाम हैं। एक मनुष्य किसी एक अवस्था को सुखावस्था समझता है, दूसरा उसे दूसरी अवस्था बतलाता है, तीसरे की सुख की कल्पना कुछ और ही है। यही प्रकार दुःख का है। वास्तव में आत्मा के लिए कोई सुख-दुःख नहीं है। इसी प्रकार नीति-अनीति भी आत्मा के विकास के द्योतक हमारे दिये हुए नाम हैं। यही कारण है कि नीति-अनीति और सुख-दुःख की कल्पना, वास्तव में देखा जाय तो, प्रत्येक व्यक्ति के साथ भिन्न भिन्न पाई जाती है।

इसी प्रकार, जड़ पदार्थ आदि से लेकर मनुष्य-योनि तक अधिक अधिक शक्तियों का अस्तित्व, मनुष्यों में दिखाई देनेवाले विकासों का अनेकत्व, और उत्पत्ति के साथ ही पूर्व संस्कारों का हममें भाव, इन सब बातों से हम कार्य-कारण की परम्परा-द्वारा अपने आरम्भ का अनुमान एक परमाणु वा जड़ पदार्थ से करते हैं।

अब कुछ और शङ्कायें भी रह जाती हैं जिनका समाधान-कारक उत्तर नहीं मिलता। तोभी—इनका उत्तर न मिलने पर भी—पूर्वोक्त बातों में कोई बाधा नहीं आती। संसार का आरम्भ किस प्रकार हुआ ? यदि हर एक व्यक्ति का आरम्भ एक परमाणु से है और विकास करनेवाला वही आत्मा है तो व्यक्तियों में अनेकत्व क्यों है ? ये सब बड़े गूढ़ प्रश्न हैं। विश्व का आरम्भ क्यों और किस प्रकार हुआ, यह हम नहीं बतला सकते। इसी प्रकार व्यक्तियों में—यदि यही

मान लिया जाय कि व्यक्ति परमाणुओं से आरम्भ हुए हैं—अनेकत्व क्यों है, यह भी नहीं बतलाया जा सकता। सम्भव है कि वे परमाणु जिनसे हम अपने आरम्भ का अनुमान करते हैं स्वयं ही अनेकत्व लिये हुए हों। फिर भी इस प्रकार के कई प्रश्न रहेंगे जिनका उत्तर सहज में नहीं मिल सकता। इस अगाध सृष्टि की रचना और उसके नियमों को पूर्णतया समझना अवश्य ही दुःसाध्य है और रहेगा।

अन्त में अब हम एक शङ्का पर कुछ विचार करके इस लेख को समाप्त करेंगे।

वह शङ्का यह है कि यदि आत्मा ही सब कर रहा है तो फिर मनुष्य के लिए कर्तव्य-अकर्तव्य क्या रहा? क्या मनुष्य निश्चिन्त होकर सोवे? वास्तव में यह शङ्का क्षुल्लक है। ऊपर कहा गया है कि आत्मा से रहित मनुष्य कोई वस्तु नहीं है। यदि वास्तव में हम आत्मा के लिए केवल यन्त्र-सदृश हैं तो फिर हमारी निश्चिन्तता और हमारे कर्तव्य-अकर्तव्य क्या रहे? आत्मा जिस प्रकार यन्त्र को चलाएगा उसी प्रकार कार्य अवश्यही होगा। यदि यन्त्र में साधनों की कमी है तो, जैसा ऊपर बतलाया गया है, आत्मा आपही उन्हें पूरा कर लेता है। मनुष्य-दृष्टि से—हमारे बनाये हुए नियमानुसार—आत्मा के इस कार्य को चाहे हम अपना कार्य वा पौरुष अथवा और किसी नाम से पुकारें, परन्तु वास्तव में वह आत्मा के कार्य के सिवा और क्या है? हम अपने लिए नीति-अनीति, धर्म-अधर्म ठहरा लें, पर जो शक्ति हमारे एक संसार की तरह अनेक संसारों में—विश्व में—कार्य कर रही है, वह सब यथार्थ में उसी आत्मा का कार्य हो सकती है। हमें अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि इस दृष्टि से हमारी किसी प्रकार की कर्तृत्व-शक्ति या उन्नति बन्द नहीं होती और हमने अपने लिए जो मनुष्यत्व, पुरुषार्थ, इत्यादि कर्त्तव्य ठहरा रक्खे हैं उनमें भी किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। हमारी ये सब बातें जैसी की तैसी क़ायम रहती हैं, और आत्मा का कार्य भी वही बना रहता है। इस विषय में केवल दृष्टि-भेद है। यही कारण है कि जो लोग—समझे या बिना समझे—कहते हैं कि जो कुछ करता है ईश्वर करता है, वे ठीक कहते हैं। साथ ही जो यह कहते हैं कि मनुष्य में सब कुछ करने का सामर्थ्य है वे भी ठीक कहते हैं। प्रथम उद्गार आत्मा—ईश्वर—की दृष्टि से किया हुआ है, दूसरा मनुष्य की सांसारिक दृष्टि से। दोनों में बात एक ही है।

तब यह प्रश्न होगा कि इन सब बातों का उपयोग क्या है? ईश्वर भी करता है, मनुष्य भी करता है, इस ज्ञान से तो कोई फ़ायदा नहीं दिखाई देता। हम जहाँ हैं वहीं बने हुए हैं, हमारे लिए कोई कर्तव्य-अकर्तव्य निश्चित नहीं होता। हमारे सब व्यवहार मनुष्य-दृष्टि से किये हुए नियमों द्वारा ही चलते हैं। ईश्वर-दृष्टि से इन व्यवहारों को देखने से क्या लाभ? सारांश यह कि मनुष्य-दृष्टि से इन तमाम बातों का क्या उपयोग हो सकता है? उत्तर में कम से कम दो मुख्य उपयोग बतलाये जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि इससे यथार्थ ज्ञान होता है। यह समझना कि पृथिवी सूर्य के चारों तरफ़ घूमती है, या यह कि सूर्य पृथिवी के चारों तरफ़ घूमता है, व्यवहार-दृष्टि से एक ही बात है; परन्तु एक बात सत्य है, दूसरी असत्य। दूसरा उपयोग यह है कि इस ज्ञान से हमारी उन्नति में बहुत कुछ सहायता मिलती है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि जिन्हें हम प्राकृतिक नियम कहते हैं उन्हींके अनुसार कार्य करते रहने से हम उन्नति कर सकते हैं और यही उन्नति स्थायी भी होती है। यदि हम उन नियमों के विरुद्ध चलें तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। यहाँ हम एक नियम पाते हैं; एक शक्ति अपना विकास कर रही है। किसी किसी अवस्था में वह शक्ति अस्वयंवेद्य (Unconscious) है; फिर भी अपना विकास करती जाती है। आगे चलकर, जिन्हें हम

महात्मा कहते हैं, ऐसे पुरुषों में वह शक्ति स्वयंवेद्य (Conscious) हो जाती है। अब उसका विकास सुगम मालूम देता है, क्योंकि हम देखते हैं कि अब उसके पास इच्छा (Will) नाम की एक शक्ति हो गई है जिससे वह शीघ्र इच्छित अवस्था को प्राप्त कर लेती है। इस इच्छा-शक्ति से कार्य करती हुई वह शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ती चली जाती है। अतएव मनुष्य-दृष्टि से इस ज्ञान के द्वारा हमें यह फ़ायदा हो सकता है कि हम इस शक्ति (आत्मा) का ज्ञान अपने आपमें उत्पन्न कर लें—इस शक्ति को समझने लगें—, इसे स्वयंवेद्य बनालें और इसके इच्छा-शक्तिरूपी साधन को जितना हो सके उतना बढ़ाएँ। इस शक्ति के स्वयंवेद्य हो जाने के बाद ज्यों ज्यों हम इसके द्वारा अपनी असीम शक्ति और असीम ज्ञान का अनुभव करने लगेंगे, त्यों त्यों हम इच्छा-शक्ति के द्वारा उस असीम शक्ति और ज्ञान को प्राप्त करते हुए, उन्नति-पथ पर बढ़ते और बढ़ाते हुए चले जायँगे।

गोपालदास झालानी, बी० ए०

वीराङ्गना ।

(दुर्योधन के प्रति भानुमती)

दासी अधीरा है सदा, नाथ, तुम जब से
यात्रा कर घोर कुरुक्षेत्र रण में गये
निद्रा नहीं आती, मिटी भोजन की रुचि है
दीखते नहीं हैं खाद्य द्रव्य इन आँखों से

जाती हूँ कभी मैं देव, देवालय में, कभी
राज-वाटिका में, कभी छत पर चढ़ के
देखती हूँ युद्धस्थल, रेणु-राशि नभ में
छाई है घटा सी, शर-राशि है चमकती
बिजली की भाँति झुलसाती हुई आँखों को
सुनती हूँ दूर सिंहनाद, शङ्ख-शब्द भी
थरथर काँपती है छाती महा भय से
देखा नहीं जाता, लौट आती हूँ तुरन्त ही
नीरव खड़ी हो देव, आड़ में मैं खम्भे की
युद्ध-कथा सुनती हूँ सञ्जय के मुख से
अन्ध नृप सम्मुख सभा में जो सुनाता है
जानती नहीं क्या सुनती हूँ, पगली हूँ मैं

लज्जा को जलाञ्जलि दे शोच-वश मैं कभी
सास के पदों में पड़ रोती हूँ विषाद से
नेत्र नीरधारा से भिगोती हूँ उन्हें अहो !
बोला नहीं जाता बस रोती मात्र हूँ प्रभो,
समझा न पाके मुझे महिषी भी रोती हैं
सारी कुरुनारियाँ हैं रोती और रोते हैं
अञ्चल पकड़ माँ का ऊँचे स्वर से अहो !
कुरु-कुल-वत्स आँसुओं से सब भीगते
हैं, हा ! नहीं जानती, क्यों रहती सदैव है
राज-अवरोध की दशा यों दुःखदायिनी

कुक्षण में मातुल तुम्हारा हा ! क्षमा करो
दुःखिनी को कुक्षण में मातुल तुम्हारा हा !
क्षालकुल का कलङ्क हस्तिना में आया था
कुक्षण में नाथ, अक्ष-विद्या उस पापी से
सीखी थी तुमने, इस सुविपुल कुल को
नष्ट किया दुष्ट ने हा ! काल कलि रूप से
होकर प्रविष्ट इस सुविपुल कुल में
धर्म्मराज जैसा धर्म्मशील कर्म्मक्षेत्र में
और कौन है हे नाथ, बतलाओ, मैं सुनूँ
भीम को निहारो, भीमविक्रमी अजेय है
देव-नर-पूज्य पार्थ सफल प्रहारी है
क्या ही गुण-शील नाथ, सुमति नकुल है
शिष्ट सहदेव सह जानते हो क्या नहीं ?
याज्ञसेनी द्रौपदी है लक्ष्मी धरा-धाम में
स्वामी, किसके लिए है छोड़ा इन सबको ?
गङ्गा-जल-पूर्ण घट ठेलकर पैरों से
मग्न होते हो क्यों तुम नाथ, कर्म्मनाशा में ?
विप्र की अवज्ञा और भक्ति क्यों श्वपच की ?
फूलों के तुषार-कण मोती नहीं होते हैं
देव, किस छल में पड़े हो, नहीं जानती

अब भी क्षमा करो मैं भिक्षा यही मांगती
क्षात्रमणि. सोचो. जब चित्रसेन तुमको
कुरु-वधुओं के साथ बांधकर रथ से
ले चला था अम्बर में, आके तब किसने
बन्धु ज्यों तुम्हारे कुल-मान प्राण रक्खे थे ?
कुरु-कुल-राज, देख सङ्कट में वैरी को
फूले नहीं लोग समाते हैं, तुम जिनके
नित्य महा वैरी रहे वे ही नेत्र-नीर से
भोगे थे विलोक तुम्हें सङ्कट में नाथ हा !
प्राण लेना चाहते हो बाण मार उनके
रक्खे थे जिन्होंने प्राण-प्राणाधिक मान भी !
जब असहाय तुम हाय ! मृगराज ज्यों
जाल में फँसे थे नाथ, कौशल से शत्रु के
हे दया, क्यों मातः, इस पाप-पूर्ण जग में
मानवों के मन में निवास करती है तू ?

गर्वी कर्ण को क्यों तुम कर्ण से लगाते हो ?
हे नरेन्द्र, जिसने सुरों को भी समर में
जीत लिया एकाकी, तुम्हारे रहते हुए
कुरु-दल दलित किया था मत्स्य देश में
रोक लेगा कर्ण उसी पार्थ को क्या रण में ?
व्यर्थ यह आशा नाथ, सोचो, कभी स्यार भी
कर सकता है क्या पराजित मृगेन्द्र को ?
सूतपुत्र मित्र हो तुम्हारा नर-रत्न, हा !
चन्द्रकुल-केतु तुम क्षत्रकुल-राज हो

जानती हूँ भीम-बाहु भीष्म-पितामह हैं
देव-नर-पूज्य रथी द्रोणाचार्य्य गुरु हैं
स्नेह-नदी गिरती है किन्तु इन दोनों की
पाण्डव-पयोधि में हे नाथ, कहती हूँ मैं
ऐसा न भी हो तथापि कैसे नाथ, हाय ! मैं
समझाऊँ दग्ध इस अपने हृदय को ?
जीता था अकेले इन तीनों को किरीटी ने
तुमने किया था जब गोहरण हा विधे !
दावानल रूप रचा अर्जुन को तूने क्या
आशा-वन दासी का जलाने को अकाल में ?

सुनो नाथ, नींद यदि आती है कभी मुझे
श्वेत अश्व और कपि-केतुवाला रथ मैं
देखती हूँ काल रूप पार्थ बैठा जिसमें
वज्र-सम चाप लिये बांयें हाथ में तथा
मर्म-भेदी देव-अस्त्र दांयें हाथ में लिये
छाती कांपती है देवदत्त-ध्वनि सुनके
गर्जता है मारुति ध्वजा पै काल मेघ सा
घर्घर गम्भीर घोष चक्र कर रथ के
मानों कालवह्नि हैं उगलते, किरीटी की
शोभा अहा ! चन्द्रचूड़-भाल पर चन्द्र ज्यों
करके विभासित दिशाएँ दसों तेज से
स्यन्दन सवेग कुरु-सैन्य ओर दौड़ता
भागती सभीति कुरुसेना सब ओर है
सूरज को देख तमोराशि यथा अथवा
निकट निहारकर वज्र-नख बाज़ को
भीत खग भागते हैं, जागकर रोती हूँ
भीम की कथा क्या कहूँ, मदकल नाग सा
दुष्ट वध करने में उद्धत है दीखता
लाल लाल लोचन कराल जवा-फूल से
मार मार शब्द मुँह में है, गदा हाथ में
हाय ! मानों दण्डधर कालदण्ड है लिये
लोगों से सुना है, इस दुर्द्धर को गर्भ में
कुन्ती सास ने है धरा देव-समागम से
यदि यह सत्य है तो देव पिता यम ही
होगा सर्वनाशी जो, पिलाया दूध दुष्ट को
जान पड़ता है किसी बाघिन ने, नारी का
दूध पाल सकता क्या ऐसे नर-यम को ?

बढ़ने लगा है पत्र, फिर भी कहूँगी मैं
कैसा बुरा स्वप्न देखा मैंने गत रात्रि में
प्राणनाथ, सोच देखो, विज्ञतम तुम हो
ये सदैव दग्ध प्राण जान नहीं सकते
नाथ; इस माया को, अकेली कल रात को
बैठके तुम्हारे शयनालय में, अब जो
शून्य निरानन्द है तुम्हारे बिना, रोई मैं
देव, सब ओर गन्ध फैल गया सहसा
पूर्ण चन्द्रिका से भी विशेप विभा छा गई
करके प्रदीप्त सी दिशायें दसों शीघ्र ही
दासी के समक्ष देव-बाला आ खड़ी हुई

तुलना नहीं है कहीं जिसकी जगत में
चौंक चरणों में नत हो गई मैं भय से
आंसू पोंछ बोली तब कान्तिमयी कातरा
"व्यर्थ कुरुवंश-वधू , खेद करती है तू
रोक सकता है कोन विधि के विधान को
हाय ! इस जगती में ? देख वह रण तू"
देखा भय-युक्त मैंने जाती जहाँ तक है
दृष्टि, रणभूमि महा भीषण है सामने
बहती है रक्त-धारा सरिता के रूप में
कुन्जर पड़े हैं वज्र-भग्न गिरि-शृङ्ग से
अश्व गति-हीन और टूटे हुए रथ हैं
सौ सौ शव, कैसे कहूँ कितना क्या देखा है !
प्राणनाथ, मैंने उस अन्तक-श्मशान में
देखा है रथीन्द्र एक तीक्ष्ण शर-शय्या पै
और एक महारथी पृथ्वी पर है पड़ा
कण्ठ में है रज्जु-हीन चाप, खड़ा सामने
शत्रु सिर काटने को खड्ग लिये, देखा है
एक अन्य वीर भूमि-सेज पर स्वप्न में
मेदिनी में मग्न रथ-चक्र धरे रोष से
देखा बली वक्ष पर वर्म्म नहीं जिसके
निष्प्रभ हैं भानु देव नभ में ज्यों शोक से
पास ही दिखाई दिया एक ह्रद जिसके
तीर पर एक महाराज रथी जाता है
भग्न-उरुवाला बड़े कष्ट से घसिटता
चिल्लाकर रोती हुई जाग पड़ी तब मैं
दीख पड़ा देव, बुरा स्वप्न यह क्यों मुझे ?

आओ तुम प्राणनाथ, छोड़कर रण को
पांच गांव-मात्र पांच पाण्डव हैं मांगते
तुमको अभाव क्या है, तुष्ट करो उनको
तुष्ट करो अन्ध पिता-माता को, अभागी को
रक्खो कुरुवंश कुरुवंश-अवतंस हे !

अनुवादक—
"मधुप"

इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स अर्थात् साम्राज्य की व्यापारोन्नति ।

बालकपन में हमने अपने गुरु से सुना था कि एक दफ़ा राजा मान्धाता ने संसार भर के चक्रवर्ती राजा होने के लिए अश्वमेध यज्ञ किया । कहते हैं, उस ज़माने के ऋषियों ने राजा के सब शत्रुओं को यज्ञ में हवन कर दिया । पर भवितव्यता प्रबल होती है । उसे यह बात मंज़ूर न हुई । राजा के हाथ से कोई दोष हो गया ; इसलिए जब ऋषियों ने उसको अपने भावी साम्राज्य का स्वरूप प्रत्यक्ष करने के लिए दिव्य दृष्टि दी (हमारे कई इतिहासवेत्ता तो कहते हैं कि दूर्बीन दी !) तब बहुत दूर सात समुद्रों के पार हनुमानजी के सूक्ष्म रूप के सिवा उसे कुछ भी नहीं दिखलाई दिया । इसका अर्थ यह किया गया कि किसी ज़माने में हनुमानजी सात समुद्र पार जन्म लेकर संसार भर में चक्रवर्ती राज्य करेंगे ।

स्कूल और कालेज में इतिहास के इतिहास हमने देख डाले ; पर हमारे गुरुजी के इतिहास का पता कहीं न लगा ! यह वृत्तान्त हमें कहीं दृष्टि-गोचर नहीं हुआ ; इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि यह वास्तविक है या कपोल-कल्पित । हाँ, इस बात का प्रमाण ज़रूर मिलता है कि इस समय सात समुद्रों के पार के एक छोटे से टापू के निवासी संसार भर में चक्रवर्त्ती राज्य कर रहे हैं । उनके साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता । इस साम्राज्य में अनेक देश हैं—छोटे भी और बड़े भी, दीन और पीन भी, निर्बल और सबल भी । इस साम्राज्य में नाना प्रकार के लोक हैं जिनमें कई कुटिल हैं और कई सरल; कई भले हैं और कई बुरे; कई पराधीन हैं और कई स्वाधीन; कई ऐसे हैं जिनको पेट भर रोज़ खाने को नहीं मिलता, और कई ऐसे हैं जिनके विभव का कोई ठिकाना नहीं । इस साम्राज्य

का नाम है "ब्रिटिश एम्पायर", अँगरेज़ी साम्राज्य। इसी साम्राज्य की व्यापार-पद्धति पर हमें यहाँ पर विचार करना है।

अँगरेज़ी साम्राज्य में बहुत देश शामिल हैं। युनाइटेड किङ्गडम में ही तीन लोक शामिल हैं—इँगलेंड, स्काटलेंड और आयर्लेंड। हम समझते थे कि इन तीनों का एकीकरण हो गया है, मानो दत्तात्रेय की मूर्त्ति स्थापित हो गई, पर मालूम होता है कि ब्रह्मा और विष्णु के साथ बेचारे भोलानाथ की बड़ी मुश्किल से पटती है! आयर्लेंड स्वतन्त्र होना चाहता है। अमेरिका में कनेडा इसी साम्राज्य के अन्तर्गत है। इसके निवासी फ़्रांसीसी हैं। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड, दक्षिण आफ़्रिका, ईजिप्ट, भारत इत्यादि बहुत देश इसी साम्राज्य की सीमा को दशों दिशाओं में फैला रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, पार्सी, क्रिस्तान, सभी अँगरेज़ी प्रजा हैं। फ़्रान्सीसी, बोर, चीना, अरब, ये सभी अँगरेज़ों के अधीन हैं। इनके उपरान्त बहुत से देशों पर इँगलेंड का रक्षक हाथ है। इतने विस्तृत साम्राज्य की एक धारा कर देना हँसी-खेल नहीं। पर इस कठिन कार्य्य को सम्पन्न करने के लिए—साम्राज्य के सभी देशों को एक सूत्र में बाँधने के लिए इँगलेंड के शासनकारों ने हाथ बढ़ाया है; इसलिए उनके माता-पिताओं को हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। जिस उपाय द्वारा यह एकीकरण-अनुष्ठान किया जानेवाला है उसका नाम है "इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स" अर्थात् "साम्राज्य की व्यापारोन्नति"।

'कामनवील' के अनुसार "इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स" का अर्थ यह है—"साम्राज्य में उत्पादित अन्नादि तथा तैयार किये गये माल से साम्राज्य की आर्थिक अवस्था को उन्नत करना।" इस पद का अर्थ मेरी समझ से यह होता है कि साम्राज्य के लाभ के लिए देश हैं, देशों के लाभ के लिए साम्राज्य नहीं, अर्थात् यदि साम्राज्य के लाभ के लिए यह आवश्यक हो कि इँगलेंड धातु और कपड़े आदि का माल तैयार करे और जहाज़ बनावे, भारत साम्राज्य के लिए कच्चा माल, जैसे पाट, रुई, चमड़ा, तमाखू, अन्न, चाय, और चीनी पैदा करे, एवम् कदाचित् साम्राज्य भर के लिए मज़दूर भी तैयार करे; कनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड कलबल, कला-कौशल, खुराकी तैयार माल आदि जो उनकी ज़मीन, प्रकृति और बुद्धि के अनुकूल हो, उत्पन्न करें (और इन देशों की आवश्यकता की वस्तु ऐसी कौन सी है जो इनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है?), तो इसमें कौन सी बुरी बात है? इसमें तो सब किसीको लाभ है। एक देश दूसरे देश पर आश्रित रहे और सब देश साम्राज्य के अधीन रहें; पर कोई एक देश बिलकुल अनाश्रित न रहे। हमारे व्यापार को कोई हानि न हो; हम माल या आवश्यक वस्तुयें साम्राज्य के बाहर के देशों से न लेकर उसके अन्तर्गत देशों से लें। जब तक हमें साम्राज्य के अन्दर माल मिले तब तक हम बाहर से कुछ भी न ख़रीदें। इसीको कहते हैं—इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स अथवा साम्राज्य व्यापारोन्नति। इसी नीति से सभी साम्राज्य के निवासी खूब प्रीति के साथ हिल मिल से जाते हैं। ऐसा समझिए कि साम्राज्य एक शरीर है और उसके अन्तर्गत देश उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। मानों, उस शरीर का शीश इँगलेंड है, आयर्लेंड और स्काटलेंड दो भुजाएँ हैं, भारत उसका धड़ है, और कनेडा, आस्ट्रेलिया आदि उपनिवेश उसके चरण हैं। जिस तरह से एक अङ्ग दूसरे अङ्ग का काम नहीं दे सकता उसी तरह एक देश में उत्पन्न होती हुई वस्तु दूसरे देश में पैदा नहीं होनी चाहिए। जैसे सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग एक दूसरे पर अवलम्बित हैं उसी तरह सब साम्राज्य के देश एक दूसरे पर अवलम्बित रहें। फिर जिस तरह शीश उड़ जाने से अङ्ग-प्रत्यङ्ग मिट्टी में मिल जाते हैं उसी तरह यदि साम्राज्य को हानि पहुँचेगी तो हम किसी काम के

नहीं रहेंगे। ऐसा भाव बना रहने से सब देश प्रीति की नीति और सूत्र में सदा बँधे रहेंगे और साम्राज्य के साँचे को कभी आँच न आने देंगे। इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स के पक्षपातियों का यही सिद्धान्त है।

मि० जोजफ़ चेम्बरलेन ने पार्लमेण्ट में बजट पेश करते हुए इसी नीति का प्रतिपादन किया है और जी-जान से वे इसके पीछे लगे हुए हैं। इनके पिता भी इसी नीति के पक्षपाती थे। मि० आस्टिन चेम्बरलेन ने साम्राज्य की नीति को बहुत कुछ स्थिर कर दिया था और उनका इँगलेंड तथा सभी उपनिवेशों में बड़ा आदर था। उनके पुत्र का भी उतना ही आदर है। अब ये शासन-मण्डल में भी शामिल हैं; इसलिए बहुत सम्भव है कि विलायत के सभी लोग इनकी इस नीति को पसन्द करें। यह "इम्पीरियल" नीति आज की नहीं है; सैकड़ों वर्षों से लोग इसका समर्थन करते आये हैं। जब से इँगलेंड के हाथ से अमेरिका निकल गया तब से आम लोगों का ध्यान इसी तरफ़ हो गया है। राजनीति और व्यापारनीति के बड़े बड़े प्रतिष्ठित ग्रन्थकारों की यही राय है। अमेरिका के निवासी अँगरेज़ हैं, अर्थात् जिन्होंने अमेरिका को सर किया वे अँगरेज़ इँगलेंड से अमेरिका गये थे। वर्षों तक अपनी मातृभूमि से उनका प्रेम और घना सम्बन्ध बना रहा। वे विलायत को कर देते थे। उन्होंने फ़्रान्स के हाथ से सारा देश निकाल इँगलेंड के अधीन किया था। पर उस समय विलायत में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ बहुत कम थे और जो थे उनकी कोई सुनता नहीं था। हम यह नहीं कह सकते कि इस समय ऐसे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं या नहीं, पर भविष्य में यह बात आपही आप प्रकट हो जायगी। उस समय इँगलेंड की व्यापार-नीति औपनिवेशिक (colonial policy) थी, जिसका अर्थ यह है कि सब उपनिवेश प्रधान देश के लाभ के लिए हैं अर्थात् यदि अमेरिका को हानि पहुँचे तो कोई हर्ज नहीं और दूसरे किसी देश को नुक़सान हो तो कोई परवा नहीं; पर विलायत को लाभ होना चाहिए। सब उपनिवेशों को विलायती माल लेना ही चाहिए और इँगलेंड को जिस चीज़ की ग़र्ज़ हो वह उस उपनिवेश को देनी ही होगी। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि इँगलेंड की कोख से पैदा हुआ बालक अपने जनक के विरुद्ध खड़ा हो गया! अन्त में उसको अमेरिका से हाथ धोना पड़ा। एक बराबरी का समर्थ उपनिवेश हाथ से निकल गया और बड़ा भारी पछतावा रह गया! किसी भी अँगरेज़ से कहिए—यदि अमेरिका आज अँगरेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत होता तो,—और देखिए, उसकी क्या हालत हो जाती है! इसलिए हम कहते हैं कि सावधान! ऐसा न हो कि फिर वैसे ही पछताना पड़े। खूब सोच-समझकर किसी नीति को ग्रहण कीजिए।

जब अमेरिका हाथ से निकल गया तब इँगलेंड की आँखें खुलीं। अब आदम स्मिथ और मिल की मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति का प्रचार हुआ। पर इँगलेंड के सौभाग्य से उस समय के पहले ही अर्थात् मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति के अवलम्बन करने के पहले ही उसका व्यापार इतना बढ़ गया था कि इँगलेंड के माल के आगे दूसरे किसी देश के माल का टिकना कठिन था। इसलिए इसी नीति को इँगलेंड ने ईश्वर के घर की नीति मान ली, मानों यह सदा और सब जगह लाभदायक है। वर्तमान महायुद्ध ने फिर इस एक-ब्रह्म की उपासना में विघ्न डाला। यदि जल पर इँगलेंड की सर्वोपरि सत्ता नहीं होती तो उसके निवासी इस महायुद्ध में आकाश के तारे गिनते। इसलिए उन्होंने एक बार और व्यापार-नीति में परिवर्तन करना विचारा है। देखें, उनकी यह नई नीति कहाँ तक मन की मुरादों को पूरी करती है।

पुरानी नीति में जिसके कारण अमेरिका से विछोह हुआ और इस नई नीति में क्या अन्तर है?

उस समय केवल इँगलेंड के लाभ का ख़याल था और इस समय साम्राज्य के लाभ का ध्यान है। ऐसा कोई नहीं है जो साम्राज्य का हित न चाहता हो, पर त्यागियों के सिवा ऐसा भी कोई नहीं होगा जो अपना हित नहीं चाहता। अपने लाभ के साथ साथ साम्राज्य के सभी देशों को लाभ हो तो बड़ी अच्छी बात है; पर क्या सदा सभी विषयों में ऐसा हो सकता है? क्या अशक्त और नौजवान एक साथ बराबर दौड़ सकते हैं? कहते हैं, अँगरेज़ी उपनिवेश इम्पीरियल प्रेफ़रेंस पसन्द करते हैं। ऐसा होगा! पर हम यह नहीं मान सकते कि उपनिवेश किसी के भी हित के लिए अपने हित की आहुति देंगे। अभी हाल में दक्षिण आफ़्रिका का एक प्रतिनिधि-दल जनरल हर्टज़ोग के साथ विलायत गया है। यह दल हर एक तरह से अपने प्रदेश को स्वतन्त्र करना चाहता है। इसका यह कहना है कि बिलकुल स्वतन्त्रता देने से उपनिवेश बिगड़ जायँगे या साम्राज्य से हट जायँगे, ऐसा भय करना निर्मूल है। हमारे शास्त्रकारों ने भी लिखा है कि जब पुत्र समर्थ और समझदार हो जाता है अर्थात् बड़ी उम्र का हो जाता है तब उस पर शासन नहीं करना चाहिए, उस पर अङ्कुश या दबाव नहीं डालना चाहिए। ठीक तौर से समझाने से ही वह समझ जाता है। कड़ाई करने से यदि वह बिगड़ जाय तो फिर उसको रास्ते पर लाना कठिन है—टेढ़ी खीर है। इसलिए प्रीति की ज़ंजीर से ही उसको बाँध लेना चाहिए। यही सब बुद्धिमानों की राय है। उपनिवेशों को स्वतन्त्रता देने से इँगलेंड में उनकी प्रीति बढ़ेगी। देश-काल के अनुकूल जो देश जैसे अपनी उन्नति करना चाहे वह वैसे ही करे। यदि भारतवर्ष को भी संरक्षण-नीति श्रेयस्कर हो तो वह उसे ही धारण करे; इसमें साम्राज्य के दूसरे किसी देश को क्यों हस्तक्षेप करना चाहिए? इसलिए इँगलेंड को चाहिए कि इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स के लिए विशेष आग्रह न कर, साम्राज्य के सभी देशों को अपने अपने व्यापार की उन्नति करने के लिए अवकाश देना चाहिए, इसीसे साम्राज्य के व्यापार की उन्नति होगी।

अब हमको इस बात का विचार करना चाहिए कि इस समय, भारत की आमदनी-रफ़्तनी की कैसी हालत है और हम लोग इस विषय में क्या सुधार चाहते हैं तथा 'इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स' की नीति प्रचलित होने पर हमारे व्यापार की उन्नति हो सकेगी या नहीं? हमारे यहाँ रुई का माल, सूत, शक्कर, लोहा, फ़ौलाद, मशीनरी, मिट्टी का तेल, रेशम, दवाइयाँ, धातु की चीज़ें, अँगरेज़ी ख़ुराक, काग़ज़-पत्र, शराब, मोटर-गाड़ियाँ, साइकलें, रेलवे का सामान, आदि वस्तुएँ दूसरे देशों से आती हैं। इनमें केवल सूत का माल ही एक साल में ४९ करोड़ रुपये से अधिक का आता है। साढ़े पन्द्रह करोड़ रुपयों की चीनी और लगभग पन्द्रह करोड़ रुपयों का लोहे का माल आता है। इनमें लगभग दो तिहाई माल इँगलेंड तथा उसके उपनिवेशों से आता है। १९०९-१० से १९१३-१४ की आमदनी की औसत निकालने से इससे भी अधिक माल की आमदनी पाई जाती है। यहाँ से विदेशों को पाट, रुई, सूत, अन्न, चमड़ा, चाय, ऊन, आदि चीज़ें जाती हैं। रुई का माल तथा सन का माल भी जाता है। इसमें से आधा माल इँगलेंड के अधीन प्रदेशों में भेजा जाता है और शेष दूसरे देशों में जाता है। लड़ाई के बाद जर्मनी, आस्ट्रिया और बेल्जियम को माल नहीं गया। सन् १९१०-११ की परिगणना के अनुसार, जर्मनी से पाँच करोड़ से ऊपर का माल, बेल्जियम से लगभग छः करोड़ का और आस्ट्रिया से तीन करोड़ का माल आता था। जापान से जो पहले माल आता था उससे अब पाँच गुना अधिक आता है। चीन, जावा, अमेरिका और इटली से भी बहुत माल आता है।

इससे यह मालूम होगा कि हमारे यहाँ से कच्चा माल विदेश को जाता है और तैयार माल के लिए हमें दूसरे देशों पर आश्रित रहना पड़ता है।

जिस भारतवर्ष में सब तरह का वाणिज्य होता था और जिसकी आवश्यकताओं को पूरी करने के बाद करोड़ों रुपयों का माल विदेश जाता था, उसी भारत में आज शक्कर, सूती कपड़े इत्यादि बाहर से आते हैं! सम्भव है, कभी हम केवल रुई और चाय की खेती करते ही रह जायँ और कभी खुराक के लिए भी हमें विदेशियों का मुँह ताकना पड़े! हम यह मानते हैं कि यदि भारत के व्यापार पर कर या लगान लगाया जाता तो आज भी भारत का व्यापार वैसा ही होता जैसा पहले था। उस अवस्था में मुक्त-द्वार वाणिज्य-नीति या इम्पीरियल प्रेफ़रेंस या और किसी नीति का प्रतिपादन किया जाता तो हम भारतवासी उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते; पर आज इस दीन हीन अवस्था में हम इनको स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। भारत में और अँगरेज़ी उपनिवेश में क्या समानता है? वे चाहे जिस तरह व्यापार कर सकते हैं, वे स्वतन्त्र हैं और हम हर किसीका मुँह ताकते रहते हैं। यदि साम्राज्य की व्यापारोन्नति का सिद्धान्त प्रचलित हो जाय और कोई उपनिवेश भारत को हानि पहुँचाने लगे तो हमारे पास क्या सत्ता है जो हम उस उपनिवेश से उत्तर ले सकें।

थोड़े समय पहले भारती मज़दूरों का प्रश्न प्रस्तुत था। इस विषय में ऐसा कहा गया कि भारतवासियों को उपनिवेशों में मज़दूर अवश्य भेजने चाहिएँ; परन्तु यदि उन मज़दूरों से वहाँ पर कड़ा बर्ताव किया जाय तो तुम भी उनके मज़दूरों से वैसा ही व्यवहार करो। तुमसे वे बुरी तरह से पेश आते हों तो तुम भी उनसे वैसा ही बदला लो। यह Retaliation यानी ले-दे की नीति ग्रहण करने के लिए भारत में अभी शक्ति नहीं है। भारतवासी उपनिवेश के निवासियों से क्या बदला ले सकते हैं? उपनिवेश के मज़दूर और दूसरे निवासी बदला देने के लिए आपके यहाँ क्यों आवेंगे? दूसरे, उनके हाथ में सत्ता है; वे आपके माल पर चाहे जो कर लगा सकते हैं। आपके हाथ में क्या है? यह चूहे-बिल्ली का मेल कब तक निभ सकता है? इसलिए हम कहते हैं कि इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स से भारत को कोई लाभ नहीं, बल्कि बड़ा नुक़सान है। यह इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स और कुछ नहीं, केवल मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति का रूपान्तर है। हमें यह नहीं चाहिए। हमको संरक्षण की आवश्यकता है। हमारे देशी व्यापार-धन्धों को फिर से प्रचलित करना है, हमारी इस व्यापारी दीन-हीनता को हटाना है—इसलिए आप अपनी प्रेफ़रेन्स-पालिसी अपने पास ही रखिए।

इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स से हमको हानि यह होगी कि हमारे यहाँ से जो माल बाहर जाता है वह तो जायगा ही, क्योंकि उससे कम दामों में वह कच्चा माल कोई पैदा नहीं कर सकता। पर जो माल हमारे यहाँ साम्राज्य के बाहर से आता है वही अधिक दाम देकर साम्राज्य के अन्दर से हमें ख़रीदना होगा। अर्थात् बाहर हमको माल सस्ते में भी मिले तो भी वह हम नहीं ले सकेंगे, पर अधिक दाम से वही माल साम्राज्य के अन्तर्गत देशों से ही ख़रीदना होगा। फ़र्ज़ कीजिए कि किसी देश ने किसी माल की दर अनुचित रीति से, मनमानी करके बेहद बढ़ा दी, तो भी हमको वही माल ख़रीदना होगा, क्योंकि बाहर से हम कुछ भी नहीं ख़रीद सकते। यह अवस्था हमारे लिए बहुत ही दुःखप्रद होगी। इसलिए इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स का प्रतिवाद होना चाहिए। हमें यह कुछ नहीं चाहिए। हमें आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। जब हमारे व्यापार-रोज़गार की बागडोर हमारे हाथ में नहीं है, तब हमें अपनी आर्थिक दशा सुधारने की आशा करना दुराशा-मात्र है। भारत के बड़े बड़े व्यापारियों की यही राय है। इंडस्ट्रियल कमीशन के समक्ष मि० करीमभाई इब्राहीम ने यही बात कही थी। इंडियन चेम्बर की भी यही राय है और सर पदलजी

वाचा ने इसी बात पर खूब ज़ोर दिया है। इंडियन मर्चन्ट्स चेम्बर एंड ब्युरो की १९१५-१६ की रिपोर्ट में आपका जो व्याख्यान प्रकाशित हुआ है उसमें आपका कथन है कि—

अगर भारत की दरिद्रता बहुत कुछ दूर करना हो, यदि भारत के असंख्य साधारण स्थिति के लोगों का दुःख-दर्द नष्ट करना हो, जो शिक्षा और स्वच्छता की अवस्था का सुधार करना हो, तो सबसे प्रथम हमें ऐसी आर्थिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए जो कि सुव्यवस्थित हो और हमारे काम में आ सकती हो। हम लोगों ने खूब अच्छी तरह से समझ लिया है कि जब तक हम लोगों को हमारी आर्थिक दशा सुधारने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जायगी तब तक सुख-समृद्धियुक्त इँगलेंड, फ़्रान्स और अमेरिका की तरह भारत को भी सुख-समृद्धियुक्त देखने की आशा करना केवल दुराशामात्र है। × × × × × × भविष्य में वर्तमान शासन-प्रणाली सुधारने के लिए चाहे आपको अधिक अधिकार प्राप्त हो जाय, पर जब तक भारत के व्यापार-वाणिज्य पर बनावटी अङ्कुश हैं तब तक दूसरे देशों के समान भारत को गौरव की आशा करना व्यर्थ है। भारत को कान पकड़कर इधर-उधर चलाने की अब बिलकुल ज़रूरत नहीं है। × × × × ×

ता० १६ फ़रवरी १९१७ को इस विषय में इसी चेम्बर ने बम्बई-सरकार को संवाद भेजा था जिसमें कहा गया था कि भारत कच्चे और तैयार माल के लेन-देन के सम्बन्ध में ब्रिटिश-साम्राज्य का एक शरीर हो और संसार के दूसरे देशों पर वह आश्रित न रहे। यह बहुत ही आवश्यक है; पर भारत की भलाई के लिए यह भी बहुत ही आवश्यक है कि वह अपनी आवश्यकताओं को आप ही पूरी करे। अपने व्यापार और उद्योग-धन्धों की स्वेच्छापूर्वक उन्नति करने में उसके आगे किसी बात का विचार उपस्थित न होना चाहिए। हाँ, यह ज़रूर है कि ऐसा कोई काम साम्राज्यान्तर्गत किसी देश को न करना चाहिए जिससे साम्राज्य भर को हानि पहुँचे।

माधवप्रसाद शर्मा, एम० ए०, एल-एल० बी०

व्यायाम या कसरत (Exercise)।

व्यायाम के गुण वा अवगुण, फ़ायदे या नुक़सान, उसके अन्न, पान, वस्त्र, आदि के विषय में लिखने से पहले कसरत के विषय में कुछ मामूली बातें लिखना आवश्यक है।

हममें से अनेक लोग बिना योग्यता के भी व्यर्थ तर्क करने लगते हैं, और कहने लगते हैं कि लेखक लोग तो सब अँगरेज़ी की ही बातें बताने लगते हैं, और नक़ल करना सिखाते हैं। हममें से प्रायः अधिक ऐसे लोग होते हैं जिनको अपने घर का कुछ भी हाल नहीं मालूम, और वे लोग न फ़ायदे की बातें, न अपने प्राचीन नेताओं के उपदेश और न पुरानी बातों को नये ढङ्ग से समझानेवालों के वचन मानना चाहते हैं। उन लोगों से जो इन बातों पर अमल करना चाहते हैं और इनसे फ़ायदा उठाना चाहते हैं, मेरी विनय यह है कि कसरत मस्तिष्क की या मन की ऐसी कसरत नहीं है जिसका फल बहस में विजय प्राप्त होते ही मिल जावे। "सूत न कपास, कोरे लट्ठम-लट्ठा"-वाली जुलाहों की लड़ाई से इसमें किसी पक्षवालों को फ़ायदा नहीं हो सकता। यहाँ तो अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी और अनुभव से ही हानि या लाभ का कुछ पता लग सकेगा। व्यौरे में बहुत कुछ मत-भेद हो सकता है, किन्तु इस विषय में केवल अनुभवी लोग ही कुछ कह सकते हैं।

मेरी सम्मति में यदि हो सके तो प्रत्येक मनुष्य को कसरत करने के पहले किसी समझदार वैद्य, हकीम या डाक्टर से यह बात जान लेना चाहिए कि दुनिया की सैकड़ों कसरतों में से मेरे योग्य कौन सी कसरत होगी।

स्कूलों में तो पहले डाक्टरों द्वारा सब विद्यार्थियों की परीक्षा हो जानी चाहिए और तब उनको भिन्न भिन्न प्रकार के खेलों में शामिल करना चाहिए। इस स्थान में यद्यपि इन बातों से विशेष सम्बन्ध नहीं, तो भी ये ध्यान के योग्य बातें हैं, इसलिए इन्हें लिखना आवश्यक मालूम होता है। जिस समय डाक्टर द्वारा स्कूल या कालेज के विद्यार्थियों के शरीर की परीक्षा की जावे उस समय उन्हें बाल-विवाह, व्यर्थ चश्मा लगाने और अन्य बुराइयों के बाबत भी कुछ ठीक ठीक उपदेश कर दिया जावे। बहुत से विद्यार्थी ऐसे कमज़ोर होते हैं या उनको दिल की ऐसी असाध्य बीमारी पैदाइश ही से होती है कि विवाह उनका काल हो जाता है। जो हो, कसरत का विषय ऐसा कोई अज्ञात विषय नहीं है जिसके सम्बन्ध में समझदार आदमी कुछ न कुछ न समझता हो और उसका अनुभव न रखता हो। हमारे घरों की स्त्रियां भी केवल ६० वर्ष पहले शरीर से घर के काम-काज करने के लाभों को अच्छी तरह समझती थीं। हम लोग पत्रों में केवल ऐसी बातों की चर्चा देखा करते हैं, जिनसे सर्वसाधारण का कोई अधिक लाभ नहीं हो सकता। पत्र पढ़नेवाले राय देना ख़ूब जानने लगते हैं, परन्तु स्वयं अभ्यासी या क्रियाशील बनना उन्हें बिलकुल ही नहीं आता। मैंने सैनीटरी इन्स्पेक्टरों तक के घरों में निहायत गन्दगी देखी है!

संयुक्त प्रान्त के लोगों का स्वास्थ्य बहुत ही गिरी दशा में है। यहां के लोग इतने अधिक ग़रीब हैं कि खाने पीने तक को काफ़ी नहीं पाते और उन पर अत्यन्त मिहनत पड़ने के कारण उनका स्वास्थ्य भी कम उम्र में बिलकुल बिगड़ जाता है। इसके अन्य कारण भी हैं। पढ़े लिखे या बीच के दर्जे के लोगों की तन्दुरुस्ती भी ऐसे ही कुछ कारणों से और कसरत या व्यायाम आदि का शौक़ न होने से सदा ही ख़राब रहती है। ऐसे बाबू-घरों के मर्द प्रायः बाबूपने के कारण, तेल-फुलेल, पान, बीड़ी, सोडा, लेमोनेड, बर्फ़, टाई वग़ैरह में, और कहीं कहीं शराब आदि नशे की वस्तुओं में या अन्य ऐसे ही हानिकर बाज़ारी शौक़ों में अपनी आमदनी ख़र्च कर डालते हैं। शहरों में इन लोगों के अथवा ग़रीब लोगों के पुराने, सस्ते खेल-कूदों के सामान—ठीक ठीक मौक़ा न मिलने से, और कुछ सुस्ती के कारण भी ग़ायब होते जाते हैं। इस देश की पुरानी किताबों में कसरतों का अच्छा हाल दिया गया है। अमीर-घरों की शिक्षा में लड़के-लड़कियों को उनके अनुकूल बहुत सी कसरतें भी सिखाई जाती थीं, जिनके नाम चौंसठ कलावाली विद्याओं में बताये गये हैं—आयुर्वेद और धर्म्मशास्त्रों के ग्रन्थों में इनका विषय ऋतुचर्य्या, दिन-चर्य्या आदि स्थानों में सूक्ष्म रीति से बता दिया गया है। स्वास्थ्य के ख़राब होने के अन्य कारण ये हैं—ख़राब मकानों में रहना, म्यूनीसिपल्टी और गांवों में प्रायः बस्ती के भीतर खेलने-कूदने या घूमने के स्थानों (Lawns) का न होना। दूध, घी का न मिलना, ठीक ठीक भोजनों का भी प्रबन्ध न होना, आदि। गांवों में और शहर की म्यूनीसिपलिटियों में योग्य स्थानों के बनवाने का भार केवल उनके मेम्बरों या सरकार पर है। अन्य बातों के लिए तो इस समय लोगों का सहायक कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए उनको ईश्वर-पूजन करते हुए भी इन सिद्धियों के लिए उद्योग करते रहना चाहिए। यदि शारीरिक कष्ट या मिहनत (कसरत) करने का उनका स्वभाव हो जायगा तो वे अपने कामों को पूरा करने में अधिक समर्थ होंगे।

हमारे घर में स्त्रियां, मातायें भी आज-कल अधिक मिहनत उठाना पसन्द नहीं करतीं। कहार और कहारियां, पीसनेवाली आदि भी अपने शरीर से कम काम करना चाहती हैं। इस तरह उनका भी स्वास्थ्य बिलकुल ख़राब होता जा रहा है। शहर के मर्द और औरत घर के मामूली कामों में भी हाथ-पैर न हिलाने के कारण दिन दिन कमज़ोर होते जारहे हैं और साथ ही साथ असल में वे पूरे ग़ुलाम और अधिक ग़रीब होते जा रहे हैं। बड़े घरों की औरतें केवल बैठे बैठे पान खाया करती हैं या ऐसे ही सुस्ती में समय बिताया करती हैं। फल यह होता है कि वे सदा ही रोगी बनी रहती हैं। बहुत से बाबू लोग भी पान सिगरट में ही दिन काटा करते हैं। ऐसे लोग अकसर कमज़ोरी, सनसनाहट, घबराहट और क़बज़ियत वग़ैरह की शिकायत करते देखे जाते हैं। बहुत से ग़रीब लोग अत्यन्त परिश्रम करने से या बिलकुल परिश्रम न करने के कारण भी कमज़ोर हो जाते हैं, जैसे मिलघरों के मज़दूर और बनियों के या दफ़्तरों के मुनीम, आदि।

मनुष्यों के शरीर का सच्चा शृङ्गार उनका स्वास्थ्य या तन्दुरुस्ती ही है, जिसको देखकर दूसरे लोग भी प्रसन्न होते हैं और खुद भी वैसे ही तन्दुरुस्त होने की इच्छा करते हैं। उन लोगों को जो तन्दुरुस्त और दीर्घायु बनना चाहते हैं नीरोग और बड़ी उम्रवाले मनुष्यों के जीवन के सिद्धान्तों को अपने धर्म्मानुसार ग्रहण करना चाहिए और उन पर अमल करना सीखना चाहिए।

व्यायाम(१) **या कसरत**—शरीर की चेष्टायें या हरकतें अर्थात् शरीर के अङ्गों को घुमाना-फिराना आदि, जो शरीर को स्थिर (क़ायम) रखने (= ज़िन्दा रखने) और उसका बल बढ़ाने के मतलब से किया जावे, वही देह की कसरत या व्यायाम कहा जाता है।

कसरत शरीर की शक्ति के अनुकूल ही करना चाहिए। प्रमाण से ज़्यादा कसरत करने से हानि है। यह उत्तम और सूक्ष्म सिद्धान्त इस देश के प्राचीन ऋषियों का बताया हुआ है। उसका मानना या न मानना हमसे सम्बन्ध रखता है। इस उसूल ही पर अमल करते हुए भिन्न भिन्न शरीरों की कई क़िस्म की शक्तियों के अनुकूल व्यायाम के भेद बताये जा सकते हैं। जो इन सूक्ष्म सिद्ध सूत्रों के विपरीत चेष्टायें करेगा उसके शरीर का बल घटेगा और शरीर दीर्घ काल तक स्थिर न रहेगा। मैं पहले इस देश के प्राचीन ग्रन्थों में लिखे हुए, कुछ आचार्य्यों के सूत्रों के आशय को लिखकर आगे और कुछ लिखूँगा। व्यायाम शक्ति से आधा(२) ही करना चाहिए और फिर साथ साथ चिकने भोजन भी करने चाहिएँ; अर्थात् घी, दूध, मक्खन, मलाई, बादाम आदि का सेवन करते रहना चाहिए। जो प्रमाण से अधिक या देह से बे-फ़ायदा व्यायाम करता चला जाता है वह थोड़े काल में अवश्य ही रोगी हो जाता है। इसीलिए पसीना (३) निकलने पर कसरत बन्द कर देना चाहिए। अत्यन्त **व्यायाम** (१) करने से श्रम, ग्लानि, क्षय, तृष्णा, रक्तपित्त (मुँह से ख़ून आनेवाला एक रोग), खाँसी, ज्वर, आदि रोग पैदा हो जाते हैं। जो कसरत **प्रमाण** (२) से की जाती है उससे ये गुण प्राप्त होते हैं—शरीर का हलकापन, काम करने की शक्ति, शरीर की स्थिरता, कष्ट सहने की शक्ति, दोषों में कमी, भूख का ख़ूब लगना, मुटाई (obesity) का क्षय आदि। प्रमाण से बहुत ज़्यादा कसरत (३) करनेवाले मनुष्य का शरीर शीघ्र नष्ट हो जाता है। कसरत के पीछे (४) शरीर को धीरे धीरे मलवाना चाहिए। तैल से मालिश कराना आज भी एक तरह की बिना चेष्टावाली (passive) कसरत कहलाती है। हिन्दू शास्त्रकारों ने और आयुर्वेद के ऋषियों ने इससे जो लाभ बताये हैं उनको भी यहाँ बताना अच्छा होगा।

मालिश (५) से शरीर मज़बूत हो जाता है, चिकना

---

(१) शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्य्यार्था बलवर्द्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥
चरक० सू० अ ०७

(२) अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः।
शीतकाले वसन्ते च मन्दमेव ततोऽन्यदा॥
वा० सू० अ० १

(३) स्निग्धः...... । तदहः स्विन्नगात्रस्तु व्यायामं वर्जयेन्नर इति॥ ६६॥ चरक० सू० अ० १४

(१) श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते॥३१॥
च० सू० अ० ७; वा० सू० अ० २ श्लो० १४

(२) लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥ ३०.॥
च० सू० अ० ७

लाघवं कर्मसामर्थ्यं......मेदसः क्षयः।
विभज्य घनगात्रत्वं......॥ १०॥
वाग्भट सू० अ० १

(३) व्यायाम-हास्य-भाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥ ३२॥
एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं न सेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति॥३३॥
च० सू० अ० ७

(४) तं कृत्वाऽनुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः॥
वा० सू० अ० २

(५) स्नेहाभ्यङ्गाद्यथा......चर्म स्नेहविमर्दनात्।
भवत्युपाङ्गो दक्षश्च दृढः क्लेशसहो यथा॥ ७६॥
......॥८०॥......॥८१॥......॥८२॥......॥८३॥
......॥८४॥......॥८५॥......गृध्रसीवाताः
(Sciatica)......॥८६॥ च० सू० अ० ५
"......वा० सू० अ० १ श्लोक॥ ७॥ ८॥

रहता है। शरीर को क्लेश सहने की शक्ति रहती है। मामूली घाव से शरीर नष्ट नहीं होता। नित्य मालिश करानेवाला मनुष्य दीर्घायु होता है और बुढ़ापे से नहीं सताया जाता। नज़र या आंख की रोशनी क़ायम रहती है। बहुत सी वात-व्याधिआं होने ही नहीं पातीं और बहुत सी अच्छी होजाती हैं और नींद अच्छी आती है।

कसरत का प्रभाव—हमारे शरीर में दो प्रकार की मांस-पेशियां या पट्ठे (Muscles) हैं। उनमें से एक प्रकार की पेशियां हम सब मनुष्यों की इच्छा के अनुसार (पर केवल तन्दुरुस्ती की दशा में) चेष्टा कर सकती हैं। किन्तु बहुत सी ऐसी हैं, जैसे धमनी (Arteries), हृदय, श्वासयन्त्र, आंत आदि, जो साधारण मनुष्य की इच्छा के अनुकूल चल या रुक नहीं सकतीं। सुना जाता है (और किसी किसी अवस्था में रोगियों में भी देखा गया है) कि ये पेशियां उन योगियों के वशीभूत रहती हैं जो प्राण, आदि वायु को इच्छा के अनुकूल चला या रोक सकते हैं।

जब हम लोग व्यायाम करते हैं तब पेशियों की चेष्टा से शरीर में रुधिर का प्रवाह तेज़ हो जाता है। शरीर में गरमी बढ़ने लगती है और हृदय की तथा श्वास की गति भी बढ़ जाती है। धीरे धीरे कुछ समय के पीछे पसीना भी आने लगता है। फिर प्यास मालूम होने लगती है और अधिक श्रम करने से श्वास लेने में कष्ट होने लगता है, तथा थकावट मालूम होने लगती है। इससे भी अधिक कसरत से लोग बेहोश होकर गिर पड़ते हैं और कभी कभी गिरकर मर भी गये हैं।

नित्यप्रति प्रमाणपूर्वक कसरत करने से शरीर के पट्ठे मोटे और मज़बूत हो जाते हैं, और समय पर काम देते हैं। व्यायाम से भूख भी बढ़ने लगती है। पाख़ाने या क़ब्ज़ की शिकायत भी ग़ायब हो जाती है। व्यायामवाले मनुष्य का शरीर चिकना और सुडौल हो जाता है।

नित्य प्रमाण से अधिक कसरत करने से मनुष्य कुछ समय पीछे कमज़ोर, दुबले हो जाते हैं। उनका दिल भी कमज़ोर हो जाता है। वे ज़रा मिहनत से हांफने लगते हैं। कभी कभी उन्हें ख़ूनी बवासीर भी हो जाती है।

कसरत बिलकुल न करने से और मामूली खाना खाते पीते रहने से कुछ अधिक हानि नहीं होती, तोभी ऐसी अवस्था में मनुष्य धीरे धीरे कमज़ोर हो जाते हैं और किसी न किसी रोग की शिकायत किया करते हैं, जैसे क़ब्ज़, स्थूलता, पेट बढ़ना, आदि। वे चलने फिरने में जल्द थक जाते हैं। देखने में भी ऐसे लोगों का शरीर कसरतियों के सदृश सुडौल नहीं होता।

कसरत के समय के वस्त्र—वस्त्रों में सदा से समय की सभ्यता के अनुसार ही परिवर्त्तन होता जाता है। पर इसके विरुद्ध कुछ वस्त्र ऐसे हैं जो साधारण गृहस्थियों को देश और ऋतु के अनुकूल पहनने ही पड़ते हैं और उनको मनुष्य अपनी समझ, सभ्यता, शिक्षा और ज़रूरत के अनुकूल बना लेता है। यदि कसरत लँगोट पहनकर नङ्गे-पांव की जावे (जैसे अखाड़े में कुश्ती के समय) तो बहुत अच्छा हो। आज-कल बाहर की कसरतों में ऐसे वस्त्रों का प्रचार न होने के कारण, पढ़े-लिखे लोग चाहें तो जांघिया (घुटने तक लम्बा) और बनियान आदि पहनकर कसरत करें। गरमी के दिनों में जहां तक हो सके बदन खोल ही कर कसरत करना चाहिए। पसीना आने पर कसरत बन्द कर देना ज़रूरी है। जाड़े के दिनों में या ठंढे देशों में गरम वस्त्र और जूता आदि पहनकर ही कसरत करना उपकारी हो सकता है, क्योंकि वैसी अवस्था में शरीर की गरमी ही रक्षा करती है। हमारे देश में और गरमी के दिनों में कपड़े जूते डाटकर अधिक परिश्रम से केवल हानि ही हो सकती है। जल की क्रीड़ा या तैरने में छोटा वस्त्र (लँगोट या जांघिया) ही अच्छा होता है। कसरत के वस्त्रों के बनाने में मूल सिद्धान्त यह समझना चाहिए कि वे किसी भी तरह की कसरत में बाधक न हों अर्थात् शरीर की उचित और आवश्यक चेष्टाओं को न रोक सकें और शरीर के अङ्गों को अभिघात या चोट आदि से बचावें। पहाड़ पर और गरम धूल में जल्दी जल्दी चलने के समय पैर में जूता ज़रूरी है। सिपाहियों के लिए चढ़ाई के समय जूते आवश्यकीय वस्तु हैं।

कसरत का प्रमाण—आयुर्वेद का मत पहले बताया जा चुका है। जवान आदमी को नित्य इतनी कसरत करना ज़रूरी है जितनी शहर की सड़क पर ६ से ८ मील तक बराबर चलने से हो सकती है। स्त्रियों को इसकी आधी काफ़ी

होती है । हम लोगों के घरों में बच्चों का अपनी इच्छानुसार खेलना, दौड़ना, कूदना, रोना, चिल्लाना ही काफ़ी है । स्त्रियों के लिए घर के काम-काज ही काफ़ी हैं । लेकिन अब नई पश्चिमी सभ्यता के कारण पुरानी बातें ग़ायब हो गईं । इस सभ्यता के माननेवालों को चाहिए कि वे स्त्रियों को भी खुली वायु में घूमने या कसरत करने का मौक़ा दें । वृद्धों के लिए खुली हुई वायु में धीरे धीरे चलना-फिरना अथवा एक जगह बैठे रहना ही काफ़ी है । वृद्धों से और बच्चों से जवानों की कसरत करवाने में उनको बहुत नुक़सान हो सकता है ।

स्त्रियों के घरेलू काम और कसरत—पुराने वक़्तों में—६० वर्ष पहले—इस देश की स्त्रियां भी इतनी मज़बूत और तन्दुरुस्त होती थीं कि वे आठ-दस मन का बोझा एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में सहज ही रख दिया करती थीं । इसका एक बड़ा भारी कारण यह था कि उन दिनों वे लोग घर का कुल काम (अन्न कूटना, फटकना, बीनना, पीसना, आटा मांडना, दाल पीसना, पकाना, बर्तन मांजना, सीना, सूत कातना, पानी भरना आदि) अपने ही हाथों किया करती थीं । इसके अतिरिक्त वे दूध दुहना, सानी करना, खेती का काम आदि किया करती थीं । इनमें से बहुत से काम बड़े बड़े घरों की औरतें भी किया करती थीं । खड़े होकर मट्ठा चलाना, चारपाई उठाना, बिछाना, लड़कों के तेल उबटन करना—ये काम करते करते ही उनकी इतनी कसरत हो जाती थी कि उनको नई सभ्यतावाली किसी अन्य टेनिस या बाइसिकिल या गोल्फ़ (golf) या डंबल आदि की ज़रूरत नहीं रहती थी । ऐसी औरत आज-कल की दस औरतों के लिए अकेली ही काफ़ी होती थी । तब आप समझ सकते हैं कि ऐसी स्त्रियों के बच्चे अफ़ीमची या मियां पिद्दी कैसे पैदा हो सकते थे, जिनको बहुत हिलाने और तङ्ग करने पर भी हाथ उठाना मुश्किल होता है ! ऐसी ही औरतें सती हो सकती थीं यानी अपने पतियों की इज़्ज़त और जान के लिए अपनी जान भी देने के लिए तैयार रहती थीं । ऐसी स्त्रियों की सन्तान सच्ची, वफ़ादार, मज़बूत, दूरदर्शी, मातृसेवक और अपनी इज़्ज़त को प्राणों से भी अधिक समझनेवाली होती थी ।

आज-कल स्कूल में पढ़नेवाली लड़कियों और ऐसी ही अन्य स्त्रियों को भी घर के कामों से बिलकुल परहेज़ होने लगा है । इसका प्रत्यक्ष फल यह देखने में आ रहा है कि उन कुटुम्बियों में सुस्ती के कारण अधिक दरिद्रता है और बच्चे, स्त्रियां, पुरुष कम ही उम्र में कमज़ोर होकर मरते देखे जा रहे हैं ।

कसरत और खाने-पीने की वस्तुओं का सम्बन्ध—कसरत करनेवालों के लिए चिकने पदार्थ जैसे घी, मक्खन, मलाई, बादाम, दूध आदि जितने लाभदायक होते हैं उतने और कोई नहीं होते । कसरत के पीछे मक्खन आदि वस्तु चाटने से बल शीघ्र ही बढ़ता है, सांस की ताक़त या दम भी बढ़ जाता है, और सब इन्द्रियां तृप्त हो जाती हैं । यदि उसे किसीके साथ पीना हो तो गरम चावल के पतले पानी में या दाल के पानी के साथ या दूध के साथ साथ पीले ।

शराब, सोडा, लेमोनेड वग़ैरह पीने से बहुत नुक़सान होता है ।

ऐसे लोगों के लिए और ऐसे समय में चना (भिगोकर) खाना या चने की रोटी मुफ़ीद होती है ।

कसरत और खुली, स्वच्छ वायु—शहर के घरों में ही नहीं, किन्तु बस्तियों में (म्यूनीसिपल्टी के भीतर) भी जवान लड़कों या छोटे बच्चों के कसरत करने और खेलने-कूदने के लिए बहुत कम मैदान रह गये हैं । सब जगह बँगलों और मकानों से घिरी जा रही है । इसीलिए धीरे धीरे शहरों का स्वास्थ्य बिलकुल बिगड़ता जा रहा है । हिन्दुस्तानी बस्तियों में बीमारी सदा बनी ही रहती है । ऐसे स्थानों में अधिक कसरत करनेवाले भी बीमार हो जाते हैं । कसरत करने के समय स्वच्छ वायु की और भी अधिक ज़रूरत रहती है । धुएँ या गर्द और बदबूदार हवा से फेफड़ों ही को नहीं बल्कि कुल शरीर को बहुत नुक़सान होता है ।

कसरत और वायु—वृद्ध, जवान और बच्चों के लिए एक ही प्रकार की, एक ही समय और एक ही प्रमाणवाली कसरत से उसी तरह हानि होने का भय है जैसे उन्हें एक ही प्रकार के भोजन से है । कहा जा चुका है कि वृद्धों के लिए माला लेकर बैठना, स्वच्छ रहना या थोड़ा घूमना

फिरना ही यथेष्ट व्यायाम है। १ से ६ वर्ष तक के बच्चों को पड़े रहना, समय समय पर रोना-चिल्लाना, घुटनों के बल खिसकना, दौड़ना, कूदना, आदि और तेल की मालिश, उबटन, ही काफ़ी कसरत हैं। इनसे कसरत कराना अच्छा नहीं है। जवान आदमियों के लिए कसरत में स्वाभाविक रीति से भेद होते हैं। यह उनके पेशे के अनुकूल ही हो सकती है; पर उनकी शक्ति से अधिक नहीं होनी चाहिए।

बहुत से ऐसे पेशे भी हैं जिनमें लोगों को कसरत की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती। ऐसे लोगों को अपने खाने की वस्तु एवम् समय पर, और काम करने के ढङ्ग पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए जिससे उनको हानि न हो। कहार, ठेलेवाले, किसान, लकड़ी चीरनेवाले, लोहार, बढ़ई, कुम्हार, बोझा ढोनेवाले, पुतली-घरों के मज़दूर आदि लोगों को खाते ही या ख़ाली पेट काम नहीं करना चाहिए। हो सके तो इनके लिए बन्द स्थानों में काम करने के समय स्वच्छ वायु का ठीक ठीक प्रबन्ध होना चाहिए। बन्द जगहों में काम करनेवालों को और अधिक मिहनत करनेवालों को आठ या नौ घण्टे से अधिक काम कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा न करने से वे चालीस वर्ष से अधिक ज़िन्दा नहीं रह सकते। ऐसे लोगों के लिए आराम, तेल-मालिश, स्नान और खुली वायु की अधिक ज़रूरत होती है।

ऐसे जवानों के लिए (जैसे विद्यार्थी, दफ़्तरों के बाबू, वकील या बैठकर हलका काम करनेवाले और लोग) यह चाहिए कि वे और कुछ न कर सकें तो कम से कम अपने घर के काम ही के बहाने थोड़ा सा उठ-बैठ और झुक लिया करें, सैर कर आया करें या अन्य कोई साधारण देशी कसरत करके शाम के वक़्त शरीर के सब अङ्गों की मालिश करा लिया करें।

ईसाई स्कूलों में पढ़नेवाली लड़कियाँ—ऐसी लड़कियाँ अपने घर के पढ़े-लिखे लोगों की तरह घर का काम करना भी भूलती और छोड़ती जाती हैं। यदि नई सभ्यता का यही फल है कि मनुष्य अपने शरीर की सेवा के कार्य्यों को भी भूल जावे तो उसकी नक़ल ख़ूब देख-भालकर करना चाहिए। पुरानी स्त्रियां घरों का कुल कार्य्य जानती और करती थीं और अपने बच्चों के छोटे छोटे रोगों का और स्त्रियों के जनाने का कार्य्य भी साधारण रीति से जाना करती थीं। आज-कल की स्कूल की पढ़ी लिखी स्त्री के लिए घर में एक झाड़ू-बुहारी देनेवाला, और चारपाई बिछाने-उठानेवाला, एक रसोइया (आज-कल छोटी छोटी क़ौम के लोगों के घर में भी एक रसोइया नौकर है), बर्तन मांजनेवाली एक कहारी, बच्चों को खिलानेवाला एक नौकर, एक आटा पीसनेवाली, मामूली कपड़ों की सिलाई के लिए दर्ज़ी, और घर की मामूली इस्तेमाली धोती, दुपट्टा, आदि रँगने के लिए एक रँगरेज़ चाहिए। उनको सूत कातने के लिए पुतली-घर होने चाहिएँ, कुएँ की जगह पाईप होना चाहिए, घर की तेल-बत्ती की जगह बिजली की रोशनी होनी चाहिए, थोड़ी दूर चलने के लिए भी डोली या इक्का होना चाहिए। अब हमारी माताओं और बहिनों के शरीर ऐसे कोमल, सुकुमार हो गये हैं कि हम केवल बातचीत ही से काम लेना चाहते हैं; हाथ पैर नहीं हिला सकते। घर के सब कामों को भूल जाना ही आज-कल की सभ्यता है। यह नहीं मालूम कि योरोप के लोग ज़रूरत पड़ने पर यहां के मज़दूरों से भी अधिक मैले-कुचैले और मिहनत के काम करने को तैयार रहते हैं। वे इतना आराम करते हुए भी शरीर से कड़ी मिहनत और कसरत करते रहते हैं जिससे वे इतने मज़बूत दिखाई पड़ते हैं। हम जानते हैं, हमारे खाने-पीने के पदार्थों में आज-कल कमी है। इसलिए उस कमी को पूरा करने के लिए हम लोगों को यथाशक्ति अपने घर के छोटे छोटे कामों को ख़ुद करके और पैसा बचाकर खाने की चीज़ों में लगाना चाहिए। दिन भर पान, तम्बाकू चबाने, सुर्ती खाने, तम्बाकू या सिगरट, भांग, गांजा, अफ़ीम, शराब, सोडा, लेमोनेड आदि के पीने से ही और ताक़त की दवाइयां खाने से कसरत करनेवालों का काम नहीं चल सकता। उनको घी, दूध और मठे की भी ज़रूरत है। यहां यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि घर में बैठे बैठे स्त्रियां भी अपने छोटे छोटे हुनर से २०) रुपया महीना कमा सकती हैं। प्रसङ्ग-वश इतना कहना ज़रूरी मालूम पड़ा, क्योंकि लोग कसरत के विरोध में इन विषयों के प्रश्न भी उपस्थित कर देते हैं।

कसरत और भोजन—कसरत खूब भरे-पेट या बिलकुल ख़ाली-पेट या भूख की हालत में नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से हाज़मे की शक्ति घट जाती है और पेट के रोग भी पैदा हो जाते हैं। स्कूल में विद्यार्थियों से ऐसी हालत में कसरत कराना उनके लिए हानिकारक है।

कसरत और क़ब्ज़ तथा अन्य रोग, जैसे कमज़ोरी, प्रमेह, आदि—कसरत करनेवालों को क़ब्ज़ की शिकायत नहीं रहती। उनको बहुत कम रोग होते हैं। वे प्रायः चिरञ्जीवी होते हैं। कमज़ोरी, प्रमेह आदि के लिए उन्हें ताक़त की दवाओं की आवश्यकता नहीं रहती।

कसरत से हमारे मन का सम्बन्ध—मनुष्य-शरीर के लिए वे कसरतें प्रायः अधिक लाभवाली होती हैं जिनमें कसरत करनेवालों का मन भी लगा रहे। देखने में आया है कि केवल ताक़त बढ़ाने की गरज़ से जो चेष्टायें (जैसे डंबल, मुग्दर आदि) की जाती हैं उनसे लाभ अवश्य होता है, पर उनके छोड़ने पर शरीर फिर कमज़ोर हो जाता है। लोगों के हाथ-पाँव कोई और काम करने से उतने कुशल नहीं होते जितने उन कसरतों से हो सकते हैं जिनमें उनका मन भी लगा रहे (जैसे लाठी लड़ना, फ़ुटबाल खेलना, थोड़े समय तक कुश्ती लड़ना, दौड़ना, तैरना, शिकार करना, आदि)। जब कई मनुष्य मिलकर कसरत करते हैं तब शरीर में जल्दी थकान नहीं मालूम होती। इसलिए हर श्रेणी के मनुष्यों को अपने पेशे के या दर्जे के अनुकूल ही मिलकर कसरत करने से अधिक आनन्द और लाभ हो सकता है। बाहर खेत में काम करनेवाले, पेड़ आदि लगानेवाले कभी कभी काशी के बड़े बड़े विद्वान् और हाईकोर्ट के जज तक देखे गये हैं; परन्तु नई रोशनी के हिन्दुस्तानी विद्वान् इनके कामों को तहज़ीब या सभ्यता के ख़िलाफ़ समझेंगे। उनके नेकटाई, कालर या बाल सँभालनेवाले या अन्य प्रकार का शृङ्गार करनेवाले हाथों में और उमदा पतले या रङ्गीन वस्त्रों में इन कामों से दाग़ आ जावेगा!

गांव के या देहातों के अमीर लोग अब भी अपने परिश्रम से मज़बूत दिखाई देते हैं। ईश्वर करे उनमें एक रँगवाली सभ्यता का प्रचार न हो।

प्रायः अनेक श्रेणी के मनुष्यों को देह के किसी अन्य व्यायाम की ज़रूरत नहीं रहती। लोहार, बढ़ई, मज़दूर, खेतिहर, ठेला खींचनेवाले, पानी भरनेवाले, चिट्ठीरसा, तारवाले, आदि लोगों के लिए केवल मालिश ही उपयोगी होगी। कम से कम कसरत करने का विचार मन में लाने के पहले लोगों को सोचना चाहिए कि किस किस पेशे में कितनी मिहनत पड़ती है और किसमें मिहनत या कसरत बिलकुल नहीं पड़ती। ऐसा विचार करने पर अपने शरीर, मन, श्रेणी, और आयु, आदि के अनुकूल ही शरीर से मिहनत लेनी चाहिए।

कसरत के अन्य सहायक या साधन—कसरत के लिए ठीक ठीक या उचित स्थान (जैसे तैरने के लिए नदी या तालाब आदि) की आवश्यकता है। वस्त्र, वायु, शरीर की सफ़ाई, उचित खाद्य पदार्थ (घी, दूध) और अन्य सामान, जैसे गोली, गेंद-बल्ला, गिल्ली-डण्डा, नाव, लाठी, गदका, तीर-कमान आदि कसरत के दूसरे साधन हैं। तात्पर्य्य यह है कि नये और पुराने ढङ्ग की कसरत का कुल सामान, सवारी और यन्त्र, आदि आवश्यक होते हैं।

कसरत का समय—प्रातःकाल या सायङ्काल में फुरसत का समय कसरत के लिए अच्छा समय है। आजकल बहुधा सायङ्काल ही को पढ़े-लिखे लोगों को अधिक फ़ुरसत मिलती है। बहुत से ऐसे घरेलू और बाहरी मिहनत के काम भी, जैसे पीसना, पानी भरना, आटा मलना, दाल पीसना, बर्तन मांजना, आदि, और मज़दूरी करना, ठेला चलाना, बोझा ढोना, खेतों में खोदना, चरसा चलाना आदि भी सवेरे और शाम को या दिन में ख़ाली-पेट करना चाहिए। जाड़े के दिनों में या ठंढे पहाड़ों में (गरमी के दिनों में भी) कसरत करने से ज़्यादा लाभ होता है, क्योंकि उन दिनों में घी या मक्खन आदि चिकने पदार्थ अधिक हज़म हो सकते हैं। इसलिए मामूली हलकी कसरतें दूसरे महीनों में विशेष कर ठंढे काल ही में करनी चाहिएँ। खाने-पीने की योग्य वस्तुओं को शरीर और समय की आवश्यकतानुसार इस्तेमाल करना चाहिए।

इस देश में कसरती लोगों का शरीर इतना सधा रहा करता था कि वे बड़े बड़े अचम्भे के काम कर सकते थे; जैसे पानी में या तलवारों पर नाचना। ऐसा करते हुए वे न डूबते थे और न ज़ख्मी होते थे। बताशों

पर दौड़ना आदि कसरतें अब कम देखने में आती हैं। जहाँ तक मेरा ख़याल है ऐसे लोगों को हठयोग[*] की अनेक कसरतें (आसन, मुद्रा, आदि) अच्छी तरह मालूम रहती थीं।

कसरत और कुछ रोगों की चिकित्सा—बहुत सी ऐसी चेष्टायें हैं जिनसे अनेक रोग भी अच्छे हो जाते हैं; जैसे मयूर-आसन से उदर के रोग[†]। इसी तरह श्वास की या प्राणायाम की कुछ विधियाँ हैं जिनसे दमे वग़ैरह पर असर पड़ता है। इनके लिए हठयोग देखिए।

कसरत करनेवाले को किन किन मुख्य बातों पर ध्यान देना चाहिए?—कसरत के विषय में ऊपर बताई बातों पर विचार करने से साफ़ मालूम हो सकता है कि नीचे लिखी तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(१) कसरत के भेद।
(२) कसरत का समय।
(३) कसरत का प्रमाण या अवधि।

कसरत के मुख्य भेद दो हैं—(१) जिनमें कसरत करनेवाला स्वयं शरीर के अङ्गों से धीरे धीरे या जल्दी जल्दी चेष्टा करता है। इन्हें चेष्टावाली कसरत (Active Exercise) कहना चाहिए। (२) वे चेष्टायें जिनमें कसरत करनेवाला स्वयं चुप पड़ा रहे या बैठा रहे और दूसरा मनुष्य उसके शरीर के अङ्गों से भिन्न भिन्न चेष्टायें कराता हो या उन पर मालिश आदि करता हो, यह बे-चेष्टावाली या आरामी कसरत (Passive Exercise) है।

चेष्टावाली कसरतों के उदाहरण—इनका सिद्धान्त बता दिया गया है। उसके अनुकूल आप भेद जान सकते हैं। कुछ भेद ये हैं--हठयोग के अनेक आसन, चलना, फिरना, दौड़ना, कुश्ती लड़ना, डण्डा या गदका लड़ना, कबड्डी, नाचना, बाजा बजाना, गाना, झूला झूलना या झुलाना, घोड़े पर सवार हो उसे दौड़ाना, शिकार करना, तैरना, नाव खेना, पेड़ पर चढ़ना, गेंद खेलना, डण्डे मुग्दर घुमाना, हाँकी, क्रिकेट, गौल्फ़ के बहाने सैर करना। अनेक घरेलू काम जिनका हाल लिखा गया है, जैसे पीसना वग़ैरह, और कई पेशे ऐसे हैं जिनसे कारीगर या मज़दूर बिलकुल थक जाते हैं। इनमें बच्चा, जवान, वृद्ध, सबही के योग्य उचित मिहनत हो सकती है।

बे-चेष्टावाली या आरामी कसरत के उदाहरण—गाड़ी, मोटर, या नाव में बैठकर सैर करना या हवा खाना, पड़े पड़े या बैठे बैठे अङ्गों को धीरे धीरे मलवाना। ऐसी कसरतें बहुत छोटे बच्चों और बहुत वृद्धों के लिए उपयोगी हैं। जवान लोगों के लिए भी ये समय समय पर ठीक हैं। मालिश (कुछ बीमारियों को छोड़कर) प्रायः सबके लिए उपयोगी है।

कुछ कसरतों पर विचार—सैर करना (walking)--यह उन लोगों के लिए जो अन्य कोई कसरत नहीं किया चाहते और दिमाग़ से अधिक कार्य्य करते हैं अच्छी कसरत है। यह कम से कम दो से तीन कोस तक होनी चाहिए। इसे करनेवाले प्रायः बीमार नहीं होते और क़ब्ज़ की भी शिकायत नहीं करते। वे अधिक स्थूल भी नहीं होने पाते। सीधे, सिर ऊँचा रख के, आँखें सामने करके घूमने से अधिक लाभ होता है। सब ऋतुओं में सबेरे-शाम फिरना अधिक अच्छा है। यह कसरत पहाड़ों पर दिन के समय अच्छी होती है।

तैरना, नाव चलाना--गरमी के दिनों में जवान आदमियों के लिए यह अच्छी कसरत है और उनके लिए बड़ी उपयोगी भी है।

घोड़े की सवारी--यह सीधे जानवर पर बच्चों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। जवान लोगों के लिए घोड़ा दौड़ाना अच्छी कसरत है। यह सैनिकों के लिए या उनके लिए जो सैनिकों के सदृश मज़बूत बनना चाहते हैं, अच्छी होती है।

ज़ोर ज़ोर से चिल्लाना, गाना या कुछ काल तक पाठ करना—यह बच्चों के लिए और उनके लिए जिनके फेफड़े कमज़ोर हैं अच्छी कसरत है। बाजे बजानेवालों के लिए ऐसा करना हानिकारक है। बच्चों को खेलते समय

(*) प्लाविनी कुम्भक–इस प्राणायाम से आदमी जल पर कमल के पत्ते के सदृश तैरता है—

"अन्तःप्रवर्तितोदारमारुता पूरितोदरः।
पयस्यगाधेऽपि सुखाल्प्लवते पद्मपत्रवत् ॥७०॥
ह० योग० उ० २

(†) धारामवष्टभ्य ॥...स्यान्मयूरम्...॥ ३० ॥
हरति सकलरोगानाशु गुल्मोदरादीन् ॥३१॥

साधारण शोर मचाने से नहीं रोकना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से ही उनके फेफड़े फैलते और बढ़ते हैं। काम करते समय (जैसे, पीसने में) स्त्रियों का गाना भी उनके लिए लाभदायक है। सर्दी की हालत में या दिल की बीमारियों में ये कसरतें हानिकर हैं।

अभ्यङ्ग या मालिश करना या शरीर को मलना— जैसे घोड़ों की मालिश से उनकी त्वचा चिकनी, झुर्री-रहित और कड़ी तथा पट्ठे मोटे और मज़बूत हो जाते हैं और घोड़ा देखने में सुडौल और गठीला मालूम पड़ता है, उसी तरह मनुष्य के शरीर की हालत भी निस्सन्देह सुधर जाती है। ऐसे मनुष्य प्रायः अन्धे-बहरे नहीं होने पाते। वे बुढ़ापे में मज़बूत मालूम होते हैं, दीर्घायु होते हैं, और मिहनत से जल्दी घबराते नहीं। छोटे-मोटे ज़ख़्मों या चोट से उनको कोई भी नुक़सान नहीं होता। यह व्यायाम नित्यप्रति करना रसायन है और बुढ़ापे को दूर रखता है।

गदका-फरी, लाठी लड़ना—ऐसी कसरतें जवान आदमियों के लिए ही मुफ़ीद हैं।

कसरत करनेवालों के लिए कुछ नियम—

१—व्यायाम या कसरत शरीर की शक्ति या ताक़त से आधी या कम होनी चाहिए। पसीने के निकल जाने पर कसरत बन्द कर देना चाहिए। बहुत थकान से हानि है।

२—कसरत धीरे धीरे करनी चाहिए।

३—जहाँ तक हो सके, कसरत स्वच्छ, खुले हुए स्थान में करना चाहिए।

४—पेट में खाना भरके या ख़ाली-पेट कसरत बिलकुल नहीं करना चाहिए। खाने के चार या पांच घण्टे पीछे कसरत करना ठीक होता है।

५—सवेरे और शाम के वक़्त कसरत करना अच्छा है।

६—कसरत करते ही ठण्डा पानी, शराब, आदि पीना या भारी वस्तु खाने से हानि है। मक्खन चाटना लाभदायक है।

७—ठण्डी ऋतु में कसरत से लाभ हैं। गरमी और वर्षा में कसरत कम करना चाहिए। वर्षा के ठण्डे भाग में कसरत करना लाभदायक है।

८—जाड़े के दिनों में दौड़नेवाली कसरतों से कोई नुक़सान नहीं होता; परन्तु गरमी के दिनों में उन्हींसे नुक़सान हो सकता है। किसी न किसी प्रकार की कसरत हर ऋतु में अच्छी है।

९—हिन्दू घर की या परदे में रहनेवाली स्त्रियों के लिए उनके घर के काम ही कसरत का काम दे सकते हैं।

१०—बच्चों के लिए खेल-कूद ही उनकी अच्छी कसरत है। दो से छः वर्ष तक के बच्चों से कोई अधिक कसरत नहीं लेना चाहिए।

११—कसरत करनेवालों को विषय कम करना चाहिए।

प्रसादीलाल झा,
आयुर्वेद-निधि, एल० एम० एस०

नालन्द-विश्वविद्यालय।

मगध देश का प्रसिद्ध नालन्द-विश्वविद्यालय महाभारत में सुविख्यात जरासन्ध की राजधानी राजगृह के निकट था। आज-कल पटना ज़िला के बिहार सब-डिवीज़न में जहाँ बड़गाँव नाम का ग्राम है, वहीं लोग इस विद्यालय का स्थान निश्चित करते हैं।[1]

चीनी तीर्थ-यात्री फ़ाहियान नालन्द के विषय की कोई बात अपने यात्रा-वृत्तान्त में नहीं लिखता है। परन्तु सुङ्ग-यात्रियों[2] ने इस स्थान का परिदर्शन किया था। वे राजगृह से १५ ली (Li)* उत्तर को इसकी स्थिति बताते हैं। ई-त्साङ्ग इसे महाबोधि वृक्ष से सात योजन से कुछ ऊपर दूरी पर स्थित बतलाता है। ह्वेन साङ्ग की जीवनी से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है।[3]

ह्वेन साङ्ग कहता है कि परम्परागत कथा के

---

[1] Cunningham—Anc. Geog., p. 468.

[2-3] Walter's Ywan-Chwang, Vol. II, pp. 165-66.

* Li (ली) चीन का मील है जो अँगरेज़ी मील की तिहाई से कुछ ऊपर होता है।

अनुसार नालन्द का नाम एक नाग से पड़ा जो विद्यालय के दक्षिण में आम्र-कुञ्ज के बीच किसी तालाब में रहता था।[१] पर इस कथा की अपेक्षा हमें दूसरी कथा पर अधिक विश्वास हुआ। वह यह है—

गौतम बुद्ध अपने किसी पूर्व जन्म में 'नालन्द' (न+अलम्+द) "दान में अतृप्त" के नाम से प्रसिद्ध थे[२]। असल बात यह है कि जू-ले (Julai) पूसा के (Pusa) नाम से यहाँ कभी राज करते थे, जिनकी राजधानी इसी जगह थी। वे बड़े दयावान् व्यक्ति थे। अतएव लोगों ने उन्हें नालन्द (न+अलम्+द) की उपाधि से सम्मानित किया था। इसी कारण इस विहार का नाम भी नालन्द पड़ा[३]। बौद्ध धर्म्म-ग्रन्थों में राजगृह के निकट[४] नालन्द नामक एक ग्राम का उल्लेख है, और 'आम्र' शब्द, जान पड़ता है, विद्यालय के आदि-स्वामी के लिए व्यवहृत हुआ है[५]।

जैसा कि लोगों को मालूम है, गुप्त काल में नालन्द विद्या के प्रधान केन्द्रों में से एक था। इस महाविद्यालय की नींव कब पड़ी, यह अनिश्चित है। फ़ाहियान ने, जो चौथी शताब्दी में यहाँ आया था, इसकी कुछ भी चर्चा नहीं की है। पर ह्वेन साङ्ग ने, जो सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष में पहुँचा, सम्पूर्ण विद्यालय का ज्वलन्त वर्णन किया है। अतएव इतिहास-कार अनुमान करते हैं कि इन्हीं दो शताब्दियों के बीच अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में किसी समय उसकी स्थापना हुई। पर यह सिद्धान्त सन्तोषजनक होना असम्भव है, क्योंकि ह्वेन साङ्ग अपने यात्रा-वृत्तान्त में लिखता है कि बुद्ध के निर्वाण[१] के कुछ समय बाद ही शक्रादित्य नाम के एक राजा ने इसे बनवाया और यह ७०० वर्षों से स्थित[२] है। डा० स्पूनर की भी राय है कि इसकी केवल भेद-सूचक प्रधानता इतने निकट की है; परन्तु जगह की प्रधानता और भी अधिक प्राचीन है[३]।

नालन्द-विश्वविद्यालय के जीवन में प्रायः तीन अवस्थायें[४] हुईं। पहली सात्विक अवस्था—यह 'शान्तियुग' के नाम से प्रसिद्ध है। यह काल अशोक के समय से आरम्भ हुआ। संसार से विरक्त कुछ संन्यासी मनुष्य-संसर्ग से अलग हो नालन्द में कुटी बनाकर रहने लगे। क्रमशः इनकी प्रशंसा फैलने लगी और नालन्द विद्या-पीठ में परिणत हो गया।

इसके बाद राजसिक अवस्था प्रारम्भ हुई। यह काल 'कर्म्म-युग' के नाम से विख्यात है। इस समय वीर विक्रमादित्य पृथ्वी का न्याय-पूर्ण शासन कर रहे थे। वे समय का सदुपयोग कर श्रीलक्ष्मी की कृपा से अतुल सम्पत्ति के अधिकारी हुए। इसी समय नालन्द महा-विश्वविद्यालय हुआ और भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्यार्थी यहाँ आकर विद्याध्ययन करने लगे।

अन्ततः इस की अवस्था में तामसिक काल का आगमन हुआ। आठवीं शताब्दी में भारतवर्ष से बौद्ध-धर्म्म के ह्रास होने के साथ ही साथ नालन्द का भी ह्रास हो गया; क्योंकि नालन्द विशेषतः बौद्ध ही की सम्पत्ति थी। अन्त में यवनों की तलवार भारतवर्ष पर पड़ी और संन्यासी लोग या तो मार डाले गये या अन्य देशों में भाग गये।

[१-२] Walter's Ywan-Chwang, Vol. II, pp. 164; Records of the Western World—Beal, Vol. II, pp. 167-168.

[३] Walter's Ywan-Chwang, Vol. II., p. 164.

[४] Majjhima Nikaya, Vol. I., p. 371.

[५] Walter's Ywan-Chwang, Vol II., p. 166.

[१-२] The life of Hiuen-Tsiang—Beal, pp. 110—12.

[३] Archæological Reports, Eastern circle, 1915-16, p. 33.

[४] The idea of stages, borrowed from Havell's "Indo-Aryan Civilization."

सातवीं शताब्दी में १०,००० संन्यासी नालन्द-विश्वविद्यालय में निवास करते थे।[१] ह्वेन साङ्ग, जो यहाँ कई वर्षों रहा, वर्णन करता है कि "इसमें भिन्न भिन्न चमकीले रङ्गों से रँगी हुई और शिल्पकारी से सुशोभित बड़ी बड़ी कोठरियाँ थीं। चारों ओर चतुष्कोण दीर्घकाय आठ दीवारें और पर्वत-शिखर के सदृश नुकीले गुम्बज़ थे। आकाश से बातें करते हुए इसके बुर्ज और कङ्गूरे ऐसे जान पड़ते थे मानों प्रातःकाल के कुहरे में विलीन हो गये हों। भवन की खिड़कियाँ इतनी ऊँची थीं कि वहाँ से मेघ-राशियों की गति स्पष्ट दीख पड़ती थी। इसकी ऊँची छतों से सूर्य्य और चन्द्र परस्पर मिलते हुए दिखाई पड़ते थे। छायादार कुञ्ज और उपवन, निर्म्मल जल से परिपूर्ण ताल, और उसमें प्रस्फुटित नील कमल, लाल लाल कलियों से आच्छादित कनक-वृक्ष, और काली काली पत्तियों से ढँपे आम्रवृक्षों के नीचे रमणीक एकान्त-स्थानों को देखकर मुझे अपूर्व आनन्द मिलता था"।

बाहरी ओसारे पर चार मञ्ज़िलें थीं जिनमें सर्पाकार बरगे (Projection) और रङ्गीन ओलतियाँ थीं। चित्रित और आभूषित मोतियों के सदृश लाल लाल खम्भे और सुसज्जित कटहरे लगे थे। ओसारे की छतें खपरों की थीं, जिन पर रोशनी सहस्रों रूप में प्रतिविम्बित होती थी। ये सब चीज़ें वहाँ के दृश्यों को और भी अधिक मनोहर बना देती थीं।

ई-साङ्ग भी (I-Tsiang) जो सातवीं शताब्दी के अन्त में यहाँ आया था, लिखता है कि इसमें आठ बड़े बड़े हाल (Halls) थे, और ३,००० कोठरियाँ थीं जिनमें ३,००० संन्यासी निवास करते थे।

ह्वेन साङ्ग कहता है कि उस समय भारत में सहस्रों सङ्घाराम थे; परन्तु नालन्द की विशालता, धन और कारीगरी में सभी फीके जान पड़ते थे। क्रमानुसार सभी राजाओं ने इसकी सुन्दरता बढ़ाने में स्पर्धा दिखाई और अन्त में यह यथार्थ में दर्शनीय हो गया।

छः कालेजों में से पहले को शक्रादित्य ने, दूसरे को बुद्ध गुप्त ने, तीसरे को तथागत ने, चौथे को बालादित्य ने, पाँचवें को वज्र ने और छठे को मध्य-भारत के किसी राजा ने बनवाया था।

नालन्द-विश्वविद्यालय को राजाओं और अन्य सहृदय पुरुषों से यथेष्ट आर्थिक सहायता मिलती थी। वहाँ के छात्रालयों में धनहीन विद्यार्थियों से कुछ फ़ीस नहीं ली जाती थी। क्रमानुसार उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों को अच्छी कोठरियाँ और निम्न श्रेणी के विद्यार्थियों को साधारण कोठरियाँ मिलती थीं। आधुनिक खुदाई से पता लगता है कि एक कोठरी में एक ही विद्यार्थी रहता था, क्योंकि आज तक प्राप्त, छात्रालय की बड़ी से बड़ी कोठरियों की लम्बाई १२ फ़ीट और चौड़ाई ८ फ़ीट है। विहार का ख़र्च दान के द्रव्य से चलता था। यह भी पता लगता है कि इसके अधीन २०० से ऊपर ग्राम थे जो बड़े बड़े राजाओं ने विद्यालय को दान-स्वरूप दे दिये थे [१]। ह्वेन साङ्ग कहता है कि मुझे प्रतिदिन १२० जम्बीर, २० जायफल, २० खजूर (Areca nut), एक औंस कपूर, १/४ बूशल महाशाली धान के चावल,

---

१. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 112.
२. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 111.
३. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, pp. 111—12.
४. 1—Tsiang Takakusu, p. 65.
५. Records of the Western World—Beal, p. 170.
६. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, pp. 110-111.
७. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 113.
८. 1—Tsiang Takakusu, p. 86.
९. Archæological Reports, Eastern Circle, 1915-16, p. 35.

१. I—Tsiang Takakusu, p. 65.

प्रत्येक मास में तीन राशि तैल और प्रतिदिन थोड़ा मक्खन, ये सब मिला करते थे[1]।

नालन्द का विहार यथार्थतः एक बड़ा विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) था, जहाँ हर सम्प्रदाय की शिक्षा दी जाती थी। नालन्द में आर्य्य दर्शन-शास्त्रों की भिन्न भिन्न शाखाओं की शिक्षा देने के लिए एक सौ आचार्य्य थे। विद्यालय में गणित, ज्योतिष आदि सांसारिक विषयों के साथ ही साथ आत्मविद्या और धर्म्म की शिक्षा वितरण की जाती थी। ह्वेन साङ्ग तो स्पष्ट-रूप से वर्णन करता है कि यहाँ बौद्ध-धर्म्म-ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, सांख्यदर्शन और अन्यान्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। हेतु-विद्या, शब्द-विद्या, वैद्यक, इत्यादि विविध विषय भी कालेज के कोर्स में सम्मिलित थे[2]। नालन्द राजकीय मान-मन्दिर (आकाश के ग्रह नक्षत्रादि देखने का स्थान) था और वहाँ की जल-घड़ी[3] सम्पूर्ण मगध-वासियों को ठीक समय का ज्ञान कराती थी। ई-साङ्ग कहता है कि नालन्द की जल-घड़ी दिन के सभी घण्टे ठोंका करती थी और उसकी राय थी कि यही बात चीन में भी प्रचलित की जाय[4]। नालन्द-विश्वबौद्यालय में शिल्पकला-विभाग भी था, क्योंकि बौद्ध शिक्षक शिल्पकला, चित्रकला और मन्दिरादि बनाने में भी कुशल थे। जान पड़ता है कि वहाँ एक कठिन प्रवेशिका परीक्षा होती थी जिसमें कड़े कड़े प्रश्न पूछे जाते थे और जो उसमें उत्तीर्ण होते वे ही विद्यालय में भरती किये जाते थे[5]। यदि सफलीभूत विद्यार्थियों की संख्या दश होती थी तो अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या सात या आठ से कम नहीं होती थी। वहाँ का पाठ्य-क्रम दो या तीन वर्ष का था[1]। उपाधिप्राप्त युवक-गण राजा के यहाँ सार्वजनिक सेवा के निमित्त जाते थे और शास्त्रार्थ में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा अद्भुत चतुराई का परिचय देते थे[2]।

आचार्य्यगण प्रतिदिन भिन्न भिन्न सौ मञ्चों से शिक्षा प्रदान करते थे और विद्यार्थी लोग ध्यानपूर्वक उनका उपदेश श्रवण करते थे[3]। सारा दिन तर्क-वितर्क में व्यतीत होता था। इसमें वृद्ध-युवा सभी भाग लेते और पारस्परिक सहायता करते थे। ह्वेन साङ्ग कहता है कि गूढ़ प्रश्नोत्तरों के लिए दिन-भर भी यथेष्ट नहीं होता था। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों से विद्वज्जन आ आकर यहाँ अपनी अपनी शङ्काओं का समाधान कराते थे[4]।

विश्वविद्यालय के पदक, मुहर और अन्यान्य प्रशंसापत्र (सार्टिफिकेट आदि) पाने के लिए लोग बड़े लालायित रहते थे, यहाँ तक कि इसी भाव से लोग अपने को विश्वविद्यालय का विद्यार्थी बताकर प्रतिष्ठित होते थे। नालन्द-विश्वविद्यालय की बहुत सी मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन पर ये शब्द खुदे हुए हैं "श्री-नालन्द-महाविहारीय-आर्य्य-भिक्षुक-संघस्य"। इन मुहरों के दो किनारों पर शान्तिभाव से बैठे हुए दो मृगों के चिह्न बने हैं जो अपना अपना सिर ऊँचा किये चक्र की परिधि की ओर देख रहे हैं[5]।

विश्वविद्यालय का शासन (Discipline) बड़ा सन्तोष-जनक था। नियमादि कड़े थे और सम्पूर्ण भारत नालन्द ही के नियमादिकों का अनुसरण करता

---

[1] The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 109.

[2] The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 112.

[3] Indo-Aryan Civilization—Havell.

[4] I—Tsiang Takakusu, pp. 145-46.

[5] Records of the W. World—Beal, p. 171.

[1-2] I—Tsiang Takakusu, p. 177.

[3] The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 112.

[4] Records of the Western World—Beal, p. 170.

[5] Archæological Reports, E. C., 1916-17, p. 43.

था । कार्य्य-सम्पादन में समय की बड़ी पाबन्दी देखी जाती थी । प्रति दिन प्रातःकाल एक बड़े घण्टे की घोषणा से स्नान करने का समय सूचित किया जाता था । विद्यार्थी-गण सौ सौ अथवा एक हज़ार के झुण्ड में अँगौछे हाथ में लिये चारों ओर से तालाब की ओर जाते हुए दिखाई पड़ते थे[२] । स्नान करने के ऐसे तालाबों की संख्या दश थी[३] । प्रतिदिन सन्ध्या से लेकर गोधूलि-वेला तक धर्माचार्य्य मन्त्र उच्चारण करते और स्तुति करते हुए एक कोठरी से दूसरी कोठरी में जाते थे ।

ह्वेन साङ्ग के निवास-काल में विद्यालय के महन्त सन्तत राजवंश के शीलभद्र नामक सज्जन थे । यूनिवर्सिटी के अन्य सदस्यों में धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिन्मित्र, ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध प्रभृति थे । लामा सम्प्रदाय के संस्थापक पद्मसम्भव भी इसी यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट (Alumnus) थे ।

नालन्द की प्रधान प्रधान प्रसिद्धियों में वहाँ का शिल्प भी शामिल है । डा० स्पूनर और मि० ब्राडले (Mr. Breadley) ने इसके मुख्य मुख्य भग्नावशेष प्राप्त किये हैं । मि० कनिङ्गहम की राय है कि समस्त भारत के शिल्पों में ये सबसे सुन्दर हैं, और यथार्थ में ये भग्नावशेष कलकत्ते के अजायबघर की शोभा बढ़ा रहे हैं । रायल एशियाटिक सोसाइटी की उदारता को धन्य है, जिसने हाल की खुदाई से बहुत सी अनमोल वस्तुएँ प्राप्त की हैं जो चीनी यात्री ह्वेन साङ्ग के ज्वलन्त वृत्तान्त की पुष्टि कर रही हैं । समूचे मकान ईंटों के बने हुए थे । डा० स्पूनर कहते हैं कि ये ईंटें हलके, पीले रङ्ग, अद्भुत बनावट तथा उत्तम श्रेणी की हैं । ईंटें परस्पर इस प्रकार बैठाई गई हैं कि कहीं कहीं एक दूसरे का सम्बन्ध तक नहीं जान पड़ता । उनकी राय है कि जहाँ तक हमने हाल के मकान देखे हैं उन सबों से इसके ईंट के काम में कहीं विशेषता है । अब यह दिखाया जा सकता है कि इस स्थान पर लगातार कई शताब्दियों तक क्रमशः चार भिन्न भिन्न विहार बने । जब एक नष्ट होता तो दूसरा बनाया जाता; और इस भाँति पहले का नामो-निशान मिट जाता था ।

हज़ारों वर्षों की स्थिति के बाद यह पवित्र स्थान कब ध्वंस हो गया, ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता । इसमें सन्देह नहीं कि दशवीं शताब्दी तक इसका अस्तित्व था, क्योंकि इतिहास से पता लगता है कि राजा देवपाल ने नगरहार (जलालाबाद) के वासी वीरदेव नामक किसी पुरुष को विहार का महन्त बनाया था । फिर, बङ्गाल के राजा महिपाल के राजत्वकाल के नवें वर्ष में विहार के जल जाने पर तैलधक ग्राम के बालादित्य ने इसका पुनरुद्धार किया था । कालचक्र की कुगति से हमारे इस प्राचीन गौरव की गवाही अब केवल दो-चार मिट्टी के टूटे फूटे पुश्ते दे रहे हैं । डा० स्पूनर का कथन है कि "समूचा स्थल अब भी आश्चर्य्यजनक दिखाई पड़ता है । मिट्टी के ऊँचे ऊँचे पुश्ते एक क़तार में दक्षिण और उत्तर, ३,००० फीट तक फैले हुए हैं । इसकी चतुष्कोण पूर्व की दीवारें यद्यपि बिलकुल पृथ्वी के भीतर लुप्त हैं, तोभी उनकी स्थिति साफ़ दिखाई देती है, क्योंकि ये साधारण पृथ्वीतल से कुछ ऊपर हैं । मिट्टी के भग्न पुश्ते जो पूर्व और उत्तर की ओर हैं दृश्य की मनोहरता और भी

---

[१] Records of the Western World—Beal, p. 170.

[२] I—Tsiang Takakusu, p. 108.

[३] I—Tsiang Takakusu, p. 154-55.

[१] Archæological Reports, E. C., 1915-16, p. 35.

[२] Archæological Reports, E. C., 1915-16, p. 2.

[३] Ganda Raja Mala, p. 48.

[४] Ganda Lekh Mala, p. 102.

बढ़ा रहे हैं। इतस्ततः फैले हुए शिल्प के भग्नांश और पुश्तों के टूटे फूटे टुकड़े सम्पूर्ण विहार के महत्त्व का पता बताने के साथ ही साथ पुरातत्त्व-वेत्ताओं को अभिलषित आनन्द दे रहे हैं।" *

अनुवादक—
दिनेशप्रसाद वर्म्मा
नन्दकुमारसिंह

अमरीका की सैर।

शिकागो में एक मास के क़रीब रहकर मैं पश्चिम की ओर चला। पांच दिन तक बराबर दिन-रात चलने के उपरान्त मैं लास-अंगलिज़ नगर में पहुँचा। बीच में कोई विशेष घटना नहीं हुई। हां राकी पहाड़ को पार करते समय पहाड़ी दृश्य बहुत अच्छे देख पड़े। बाक़ी का रास्ता तो प्रायः निर्जन वन था; पेड़-पत्तों का नामोनिशान भी नहीं था। केवल स्टेशनों के निकट कुछ वृक्ष देख पड़ते थे। रायल गार्ज Royal Gorge नामी दर्रे में से पार होते समय बड़ा ही मनोहर दृश्य देख पड़ा। दोनों ओर बड़ी ऊँची ऊँची पहाड़ियां और बीच में एक छोटी नदी है। इसी नदी के किनारे किनारे रेलगाड़ी दौड़ती जाती है। इस रास्ते का पता लगाना, फिर रेल बनाना, दोनों ही बातें परिश्रम की पराकाष्ठा की सूचना देती हैं। राकी पहाड़ को पार करने में पूरे २४ घण्टे बीत गये। इस पर्वत के बीच बीच में नाना प्रकार के धातुओं के कारख़ाने हैं। तांबे का कारख़ाना रेल के रास्ते में ही मिलता है। यहां से गुज़रकर प्रसिद्ध साल्ट लेक नगर में गाड़ी बदलना होती है। यह नगर 'मोर्मन' चर्च के लिए विख्यात है। मोर्मन एक प्रकार का ईसाई सम्प्रदाय है। यह अन्य सम्प्रदायों से अनेक बातों में भिन्न है। इसका पूरा वृत्तान्त जानने के लिए "चेम्बर्स इन्साइक्लोपिडिया (Chamber's Encyclopedia) के सातवें खण्ड में ३१० पृष्ठ पर 'मोर्मन' नामी निबन्ध देखिए। यहां पर मैं उसका सार दे देता हूँ—

१८२० में न्यूयार्क के निकट मैनचेस्टर ग्राम में जोज़ेफ़ स्मिथ नामी एक बालक रहता था। वह १४ वर्ष की अवस्था ही में धर्म्म की ओर झुका। उसकी प्रकृति धार्मिक प्रचार की ओर बढ़ी, किन्तु सामयिक ईसाई सम्प्रदायों में एक दूसरे के विरुद्ध इतना अपवाद था कि वह बेचारा घबड़ा सा गया कि किसका ग्रहण और किसका त्याग करें। इस अनिश्चय के उपरान्त वह ईश्वर का ध्यान कर उनसे ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना के उत्तर में उसे ध्यान में ईश्वर और उनके पुत्र ईसा का दर्शन मिला। उन्होंने उसे बताया कि प्रचलित सब सम्प्रदाय दोष-युक्त हैं। दूसरी बार ध्यान में उसे यह जान पड़ा कि मैं संसार में सच्ची बाइबिल को पुनः लाने का कार्य्य करूँगा और मेरे द्वारा ईश्वर के पुत्र का पवित्र धर्म्म फ़िर से संसार में स्थापित होगा। इस प्रकार ईश्वर का जो राज्य फ़िर से स्थापित किया जायगा वह कभी भी लुप्त न होगा। उसे ध्यान में उस जगह का भी पता बताया गया जहां उसे अमेरिकन निवासियों का पुराना इतिहास और सच्ची बाइबिल स्वर्ण-पत्रों पर लिखी मिलेगी। यह जगह अन्टोरियो (Ontario) में पालयिरा (Poloyra) पर्वत के पश्चिमी ओर ४ मील पर थी। २२ सितम्बर १८२७ को एक फ़रिश्ते ने वह पुस्तक लाकर इसे दे दी। यह धातु-पत्रों पर लिखी हुई ८ इञ्च लम्बी, ७ इञ्च चौड़ी और ६ इंच मोटी पुस्तक थी। पुस्तक का कुछ भाग खुला था, बाक़ी पर मुहर लगी थी। यह एक विचित्र भाषा में लिखी थी जिसे मोर्मन लोग "संस्कृत मिश्री" भाषा (Reformed Egyptian) कहते हैं। इसी पुस्तक के साथ "उरिम और थमिम" (Urim and Thummim) भी प्राप्त हुए। ये एक प्रकार के चश्मे थे जिनकी सहायता से स्मिथ महाशय ने इस पुस्तक का आशय समझा और उसका अनुवाद अँगरेज़ी भाषा में किया। इसीका नाम 'मोर्मन की पुस्तक' है। यह प्रथम प्रथम १८३० में छपी थी। इस समय तक इस पुस्तक का अनुवाद डेन, फ़रासीसी, जर्मन, इटली, वेलस, स्वीडिश, डच, हवाईयन, समोन, मोरी, तुरकी, दिवस और हिन्दुस्तानी भाषाओं में हो चुका है।

---

* गत सितम्बर मास के "हिन्दुस्तान रिव्यू" में प्रकाशित प्रो० शिवनाथ वसु के लेख का अविकल अनुवाद।

१८२६ की २५ मई को जान-दी-बैपरिस्ट ने इनके सामने प्रकट हो इन पर और ओलाइवर काऊडेरी (Oliver Cowdery) के ऊपर हाथ रक्खा, और दोनों को पवित्र कर उन्हें "आरोनिक" (Aaronic) की पदवी दी। इसी सन में पीटर जेम्स और जान ने भी प्रकट हो उन्हें मेलची-सीडेट (Melichisedate) की बड़ी पदवी प्रदान की। १८३० की ६ अप्रैल को स्मिथ महाशय ने यह नया सम्प्रदाय ईश्वर की आज्ञा से न्यूयार्क के लिए Fayette (फ़ेयट) ग्राम में स्थापित किया था।

धीरे धीरे इस सम्प्रदाय की वृद्धि होती गई और सामयिक सम्प्रदायों ने इन्हें तङ्ग भी बहुत किया। ये लोग मसोरी (Mussorie) और इलोनोईस (Illionois) से निकाले गये। स्मिथ महाशय तथा उनके भाई हिरम (Hyrum) को लोगों ने १८४४ में मार भी डाला; किन्तु धर्म्म की आग न बुझी, बरन प्रति दिन बढ़ती ही गई। इस समय इसके अनुयायियों की संख्या ३४,६०० है और इनके ६ गिर्जे हैं, जिनमें से सबसे बड़ा साल्टलेक नगर में है। इनके प्रधान विश्वास जो और सम्प्रदायों से नहीं मिलते, ये हैं—

(१) ये परमेश्वर तथा उसके पुत्र ईसा और पवित्र आत्मा पर विश्वास करते हैं। (२) इनके विश्वास के अनुसार मनुष्यों को अपने कार्य्यों का फल मिलेगा। (३) इनके विश्वास के अनुसार ईसा की कुर्बानी से मनुष्य-मात्र को मुक्ति-प्राप्ति हो गई। शर्त केवल मसीह पर विश्वास लाना-मात्र है। वह विश्वास (I) मसीह पर ऐतबार के द्वारा (II) पश्चात्ताप से (III) पानी में पूरा डुबोकर बपतिस्मा (Baptism by immersion) लेने से और (IV) पवित्र आत्मा की प्राप्ति के लिए सिर पर हाथ रखकर (Laying on of hands for the gift of the Holy Ghost) प्रकट किया जाता है। (४) इनके मत के अनुसार बाइबिल का वह हिस्सा ईश्वर-कृत है जिसका ठीक अनुवाद हुआ है। (५) ये पुरानी और नई (भविष्य में होनेवाली) आकाश-वाणियों में विश्वास रखते हैं। (६) इनके मत के अनुसार इसराईल लोग फिर से एकत्र होंगे और ज़ियोन (Zeon, नया जेरूसेलम) अमेरिका में बनेगा। मसीह फिर संसार में मनुष्य-देह में आकर राज्य करेंगे और पृथ्वी का नया कलेवर होगा, जिससे यह वैकुण्ठ के तुल्य पवित्र हो जायगी। (७) ये पुरुषों के अनेक विचारों में विश्वास करते हैं। इनके मत में एक पुरुष का विवाह सर्वदा के लिए होता है; तिलाक़ नहीं हो सकता। मरण के पश्चात् भी स्त्री-पुरुष स्वर्ग या नरक में पति-पत्नी की भाँति रहेंगे। इनका विश्वास है कि मनुष्य को अपने विश्वास के अनुसार ईश्वर की आराधना करने का अधिकार है; दूसरों को उसमें ज़बरदस्ती दख़ल देने की ज़रूरत नहीं है।

इसी सम्प्रदाय का मन्दिर इस नगर में विशेष देखने योग्य वस्तु है। यह नगर के मध्य में स्थित है। यहाँ पर एक विशाल सभा-मण्डप है जो २५० फुट लम्बा, १५० फुट चौड़ा और ७० फुट ऊँचा, देखने में कछुए की पीठ की तरह लगता है। इसके भीतर १२,००० मनुष्य कुर्सियों पर बैठ सकते हैं। यह ऐसी कारीगरी से बना है कि एक सिरे पर सुई गिराई जाय तो दूसरे सिरे पर उसका शब्द सुन पड़ता है। यह बात हमें हमारी मार्ग-प्रदर्शिका युवती ने प्रत्यक्ष करके दिखाई थी। मन्दिर इसके पूर्व भाग में बना है। यह पत्थर की एक विशाल इमारत है। इसके भीतर वही जा सकता है जो मोर्मन धर्म मानता हो और इस पर भी, पुजारियों तथा अन्य धार्मिकों को उसके पवित्र चरित्र का पता हो। यह इमारत २१० फुट ऊँची है। इसके ऊपर मोर्मनी देवदूत की सुनहली मूर्ति है। यहाँ पर और इमारतें भी हैं और एक लाट "सीगल" (समुद्री पक्षी) के स्मरण में बनी है। कहा जाता है कि जब मोर्मन लोग यहाँ आके बसे तब एक प्रकार के कीट-पतङ्ग खेती को खाकर ख़राब करने लगे। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि मनुष्य हताश हो गये। अकस्मात् इन पक्षियों ने कीट-पतङ्गों को खा लिया और फिर ये स्वयं चले गये। इस घटना को मोर्मन लोग ईश्वरीय कृपा और करिश्मा (लीला) बताते हैं। इसी घटना की स्मारक रूप यह लाट खड़ी की गई है।

इस मन्दिर के अतिरिक्त लवण-झील तथा अन्य इमारतें भी दर्शनीय हैं, पर समय की कमी के कारण मैं इन्हें नहीं देख सका। इस झील में २५ सैकड़ा नमक है, अर्थात् १०० बालटी पानी लेकर सुखाने से २५

बालटी नमक निकलेगा । यह झील ८० मील लम्बी और ३० मील चौड़ी है ।

नगर के बीच में एक फुहारा है । उसके चारों ओर चार मूर्त्तियाँ बनी हैं । उनमें से एक यहाँ के प्राचीन निवासी रक्तवर्ण इण्डियनों की है । यह मूर्त्ति मुझे बहुत परेशान कर रही है । इसके गले में जनेऊ की तरह एक रेखा बनी है, जो समझ में नहीं आती कि क्या है । मैंने सैनशियागो की प्रदर्शिनी में एक तसवीर में भी ऐसा ही चिह्न देखा था, जिस पर मैंने Dr. Hewett (डा० हिवेट) यहाँ के प्रधान आर्कियालोजिस्ट (पुरातत्त्वज्ञ) से उसके बारे में पूछा । इन लोगों की पुरानी सभ्यता का नाम "माया" है । मैंने हिवेट महाशय से कहा कि क्या यह माया शब्द हिन्दुओं के माया शब्द से और चिह्न जनेऊ से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता ? उन महाशय ने जनेऊ कभी देखा नहीं था । तब मेरे बताने पर वे एक प्रकार के सोच में पड़ गये और कहा कि यह समस्या मेरे सामने पहले नहीं उठी थी ; मैं इस पर विचार और अनुसन्धान करूँगा ।

आवश्यकता है कि हमारे देश के विद्वान् मिस्र, रोम, बैबिलोन, चैलेडिया और इस देश में आकर इस पुरानी किन्तु मृतक सभ्यता का पता लगाने में समय व्यतीत करें । पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक इस कार्य्य में बड़ा ही परिश्रम कर रहे हैं ।

यहीं से रवाना हो मैं लास-अँगलिज़ के लिए चला । रात्रि भर सोकर उठा तो मालूम हुआ कि बर्दवान पहुँच गया ! बङ्गाल और इस स्थान में फ़र्क़ इतना ही था कि बङ्गाल में ताड़ और खजूर के ऊँचे ऊँचे वृक्ष भी देख पड़ते हैं, जो यहाँ नहीं हैं । यहाँ अधिकतर नारङ्गी के पौधे थे । यह यहाँ की प्रधान खेती है । मीलों तक अंगूर के खेत भी थे । यहाँ साल में फलों से करोड़ों रुपयों की आमदनी है । फलों में नारङ्गी, सेब, नाशपाती, सतालू और अंगूर प्रधान हैं । जो पृथ्वी इन पेड़ों से बची थी वह घास, गेहूँ, जौ और जई के पौधों से भरी थी । "सजलाम्, सफलाम्, मलयज-शीतलाम्, शस्यश्यामलाम्" इसी भूमि को कहना पूरा शोभा देता है । यदि अमेरिका को एक अँगूठी से उपमा दें तो केलिफोर्नियाँ को मरकत-मणि कहना होगा ।

धीरे धीरे हमारी गाड़ी स्टेशन पर पहुँची । मैं उतरकर अपने निर्दिष्ट होटल में पहुँचा । यहाँ देखने को बस शहर के बाहर का मनोहर दृश्य है । आठ मास के बाद पृथ्वी को हरी देख, भारी कपड़े उतार हलके कपड़े पहनने में मुझे जो आनन्द आता था उसका लिखना कठिन है । नगर से प्रायः १२ मील बाहर समुद्र का किनारा है, वह देखने योग्य है । यहाँ मैंने पहले-पहल स्त्री-पुरुषों को साथ स्नान करते हुए देखा ।

दूसरे दिन यहाँ से मैं सैनशियागो-प्रदर्शिनी देखने के लिए चला गया । खेद है कि इस समय मेरे पास प्रदर्शिनी का हाल विस्तार से लिखने के लिए मसाला नहीं है । सानफ्रान्सिस्को की प्रदर्शिनी के विषय में विस्तार से लिखने के उपरान्त अब इसकी आवश्यकता भी नहीं रह गई । पर, ऐसा भी नहीं है कि इस प्रदर्शिनी को सानफ्रान्सिस्को की प्रदर्शिनी ने ग्रहण लगा दिया हो । इसकी छटा न्यारी है । बहुत सी चीज़ें जो यहाँ देखीं वे "फ्रिस्को" में नहीं देख पड़ीं । यहाँ का प्रधान स्थान कैलिफ़ोर्नियां-भवन है । इसमें यहाँ के पुराने निवासियों की सभ्यता के बचे-बचाये चिह्न एकत्र हैं । जो दुर्गा-मन्दिर, मूर्त्तियाँ, और ग्रामों के खिलौने यहाँ बनाकर रक्खे हैं उनसे दर्शकों के हृदय में उस विचित्र सभ्यता के सम्बन्ध से, जिसे स्पेन-निवासियों ने अपनी द्रव्य और भूमि की लोलुपता से धर्म के नाम की आड़ में नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, बड़ी ही श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है । उसके नष्ट होने पर आह भरनी पड़ती है । इन तसवीरों को देखने ही से अनुमान हो जाता है कि स्पेन-निवासी डाकू, लुटेरे और कज़्ज़ाकों की भांति क्रूर, पापी और भयानक पशु रहे होंगे । पुराने निवासी, इमारतों के नक़्शे, चित्र और मूर्त्तियाँ देखने से यह साफ़ मालूम होता है कि यहाँ की प्राचीन सभ्यता बड़े ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी ।

डाक्टर हिवेट ने इन लोगों की धर्म्म-पुस्तक भी दिखाई जो ग्लीफ़िक के सदृश थी । इसकी तीन पुस्तकें इस समय वर्तमान हैं—दो मैड्रिड (Madrid) में और एक बर्लिन में । जो पुस्तक मैंने देखी थी वह मैड्रिड की पुस्तक की नक़ल है । अभी इसके पूरे रूप पढ़ने की कुञ्जी नहीं मिली; उसके मिलने पर पुस्तक के बारे में बहुत कुछ ज्ञान

प्राप्त होगा। हिवेट महाशय कट्टर ईसाइयों की मूर्खता पर अफ़सोस करते थे और कहते थे कि इन मूर्ख, कट्टर मज़हबी लोगों ने संसार का बड़ा ही अपकार किया है।

प्रदर्शिनी में मेक्सिको ग्राम की पुरानी सभ्यता के बहुत कुछ चिह्न अभी तक मौजूद हैं। वहाँ पक्षियों के रङ्ग-बिरंगे परों से चित्र बनाने की कला और मोम की मूर्त्ति बनाने की कला बहुत ऊँचे आसन पर पहुँच गई थी।

इसके अलावा सैनशियागो की प्रदर्शिनी में इण्डियन ग्राम देखने योग्य है। यह ठीक उसी प्रकार का है जैसा मिट्टी की छतवाले, सुन्दर लीपे पोते घरों से पूर्ण पञ्जाबी ग्राम होता है। इण्डियन ग्राम को देख आँसू निकल पड़े! इस ग्राम में पञ्जाब की भांति घरों के बरामदे में मक्की, मिर्चा और गोहरियों की मालायें भी सूखने को लटकाई थीं। ये बेचारे हमारी ही तरह रोटी हाथ से बनाते हैं और उसे "रोटी" कहते हैं। यहाँ मैंने अन्य अनेक वस्तुएँ देखीं जिनका पूरा वर्णन संयोग होने पर फिर कभी पाठकों को भेंट करूँगा।

इस नगर के सम्बन्ध में तीन स्थानों का ज़िक्र करना और आवश्यक है—

(१) "कैफ़िटेरिया"—यह एक विशेष प्रकार की खाने की दूकान है। पूर्व में भी यह होती है; पर मैंने इसे यहीं देखा। इस नगर में इन दूकानों की बड़ी चाल है। यहाँ यह दस्तूर है कि आप गृह में जाकर वहाँ एक बड़ी लोहे की किश्ती, एक मुँह पोंछने का रूमाल, एक जोड़ी चाकू-कांटा और चम्मच उठा लें। फिर सामने जो भोजन की दूकान है उसमें जो पदार्थ आपको रुचें उन्हें आप थाली में रखा लें। अन्त में एक लड़की आकर सब वस्तुओं को देख टिकट दे देगी। अब आप बीच में बैठ भोजन करें और जाते समय दाम दे दें। इस प्रबन्ध में सफ़ाई और सस्तापन दोनों हैं। हमारे हलवाइयों की दूकानों में भी ऐसा ही प्रबन्ध हो तो बड़ा उत्तम हो।

(२) मूविङ्ग पिक्चर बनाने का कारख़ाना—इसका भी यहाँ बड़ा विस्तार है। कारख़ाने में हाथी, घोड़े, बाग़-बग़ीचे, नदी-नहर, नाव-जहाज़, सभी कुछ हैं। कहानी के अनुसार पात्रों को खड़ाकर तसवीर उतारते हैं। मैं इस स्थान को भी देखने गया था। जिस दिन मैं गया था, उस दिन एक तुर्की कहानी की तसवीर उतारी जा रही थी। तुर्की पोशाक में बहुत से मनुष्य घोड़ों पर चढ़े अभिनय कर रहे थे, और तसवीर उतारनेवाले विशेष यन्त्र-द्वारा तसवीर ले रहे थे।

(३) यहाँ मैंने एक धार्म्मिक नाटक देखा, जिसको मिशन प्ले कहते हैं। इसमें उस समय का दृश्य दिखाया है जब स्पेन-निवासी पादरियों ने प्रथम प्रथम एक समुद्रतटस्थ ग्राम में पहुँचकर केलिफोर्निया में धर्म-प्रचार करना आरम्भ किया था। धर्म्म के उपदेशकों के साथ सेना भी थी। धर्म्म-प्रचार लालच, धोखा और ज़बरदस्ती से किस प्रकार किया जाता था, इसका दृश्य इस अभिनय में ख़ूब देखने को मिलता है। अनायास ही इसमें उनकी सारी कूट नीति का पता चल जाता है। इसका प्रभाव ईसाइयों पर क्या होता होगा सो तो वे ही जानें; पर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा वह ऊपर वर्णित है।

इसी नगर में मैंने मगरों की एक बस्ती देखी। इसमें मगर रक्खे हुए हैं। अण्डे-बच्चे से लेकर ३०० वर्ष के पुराने मगर मौजूद हैं। यहाँ उन्हें मारते हैं और उनके चमड़े की वस्तु बनाकर बेंचते हैं। वे चीज़ें लोगों को दिखाते भी हैं। यहाँ बड़ा ही मनोहर और शिक्षाप्रद सबक़ मिला। यहीं पर प्रथम प्रथम मिर्च का पेड़ देखा। यह आम के बराबर बड़ा होता है। पत्ती हरी, छोटी छोटी, नीम के सदृश होती है। पत्ती भी खाने में मिर्च के स्वाद की होती है। फल पर एक प्रकार का छिलका रहता है जैसे पपीते के बीज पर होता है।

अमेरिका का राष्ट्रीय खेल 'बेस बाल' भी मैंने यहीं देखा। यह खेल बड़ा ही रोचक है। एक पतले, मुग्दर की भांति डण्डे से यह खेला जाता है। खेल मेरी समझ में भली भांति नहीं आता; पर देखने में यह क्रिकेट से अच्छा मालूम पड़ता है।

एक सप्ताह लास-ऍंग्लिज़ में व्यतीत कर मैं सान-फ़्रान्सिस्को पहुँचा। यहाँ होटेल नार्मण्डी में निवास किया। पूर्व के दो सप्ताह प्रदर्शिनी के देखने तथा पुस्तकों को ठीक कर घर भेजने में लगा दिये। प्रदर्शिनी का वृत्तान्त अन्यत्र दिया गया है।

प्रदर्शिनी के अतिरिक्त यहां, क्लिफ़, बर्कले और ओकलैंड देखने योग्य स्थान हैं। क्लिफ़ गोल्डन गेट के निकट है। यह जगह सानफ़्रान्सिस्को बन्दरगाह के मुहाने पर है, जो संसार में सबसे अच्छा बन्दरगाह है। यह चारों ओर पहाड़ी से घिरा हुआ है इससे यह स्वाभाविक रीति से हवा और तूफ़ान से बचा रहता है। इस क्लिफ़ से समुद्र का दृश्य बड़ा ही मनोहर देख पड़ता है। इसके ठीक सामने कोई २०० गज़ पर एक पहाड़ी का टीला जल से ऊपर उठा हुआ है। उस पर हर समय सील नामी जल-जन्तु खेला करते हैं। उनको देखने से जी नहीं ऊबता।

इस नगर में आते ही देहली-निवासी एक वणिक् से साक्षात् हो गया। आप बड़े साहसी हैं। आठ वर्ष पूर्व आप अपने पिता के जीवन-काल में यहां विद्योपार्जन के लिए आये थे। दो वर्ष पढ़ने के उपरान्त स्वास्थ्य अच्छा न रहने से आप घर लौट गये। घर जाने के थोड़े काल पूर्व आपकी माता और पिता का परलोक-वास हो गया था। आपके तीन छोटे भाई और दो बहिनें हैं। पिता का देहान्त होने के बाद इन्हें फिर अमरीका लौटकर अपने भाई-बहिनों को शिक्षित करने का विचार उत्पन्न हुआ। घर में बात प्रकट करने से कुटुम्ब के लोग आपत्ति करते और बहिनों तथा छोटे भाई का आना असम्भव हो जाता; क्योंकि इनकी आयु अभी छोटी थी। इससे हमारे नायक ने भाई-बहिनों से ही सलाहकर सब खिचड़ी पका ली और एक दिन आबू जाने के बहाने घर से निकल पड़े। आबू में इनके पिता नौकर थे और ये वहां रहे भी थे, इससे यह बहाना चल गया और हमारे नायक जहाज़ पर रवाना हो गये। ये जो कुछ धन घर से लेकर निकले थे वह सब धीरे धीरे व्यय हो गया और जो रोज़गार का विचार था वह भी सफल नहीं हुआ। इससे इनका हाल तङ्ग हो गया। इन्हें यहां आये पांच वर्ष से अधिक हो गये। अब तीनों बड़े भाई काम कर धन कमाने का यत्न करते हैं। ये बहिनों और छोटे भाइयों को पढ़ाते हैं। सबसे छोटा भाई मातृभाषा बिलकुल भूल गया है। वह अमेरिकन लड़कों की भांति धड़ाके से अँगरेज़ी बोलता है। छोटी बहिन भी मातृभाषा भूल सी गई है। वह भी अँगरेज़ी ख़ूब बोल सकती है। इन छहों भाई-बहिनों के विचार उच्च हैं। स्वदेश-प्रेम इनकी रग रग में कूट कूटकर भरा है। बहिन डाक्टरी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर देश-सेवा करना चाहती है। ईश्वर इनके मनोरथ को सिद्ध करे। हमारे देश में ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक होने लगे तो देश के दिन फिर जावें। मैंने १५ महीने इनके यहां दाल-रोटी खाई। परदेश का दुःख बिलकुल भूल सा गया था। छोटे भाई-बहिनों से तो सगे बहिन-भाइयों का सा प्रेम होगया है। चलते समय उनके और मेरे नेत्र भर आये थे।

इस देश के इस प्रान्त में अपने देशी भाइयों की संख्या बहुत है। मुसलमान और सिक्ख भाई प्रायः सभी प्रान्त के हैं। किन्तु इनमें से अधिक मज़दूरी पेशे के हैं और अशिक्षित हैं, ख़ास कर सिक्ख भाई जो बड़ी जटा रखते और साफ़ा बांधते हैं। ये लोग प्रायः गन्दे रहते हैं, इससे इनके विरुद्ध यहां बड़ा बुरा ख़याल फैल गया है। आवश्यकता है कि पढ़े-लिखे सज्जन आकर इन्हें सुधारें। इनकी आमदनी काफ़ी है। यदि थोड़ी शिक्षा का विचार इनमें आ जावे और ये सफ़ाई से रहने लगें तो बड़ा ही उपकार हो।

बर्कले का विश्वविद्यालय छात्रों के लिहाज़ से इस देश में बहुत बड़ा है। यहां छः हज़ार से अधिक छात्र हैं। अपने देश के विद्यार्थी भी यहां दस-पांच हैं। आब-हवा और सुन्दरता के लिहाज़ से यह स्थान देहरादून के सदृश है। हमारे यहां भी पहाड़ी जगहों में ऐसे शिक्षालयों की आवश्यकता है जहां जल-वायु अच्छी हो और रास्ता भी सुगम हो, जिससे विद्यार्थी और शिक्षक आकर एक कुल की भांति रहें और विद्या की उन्नति करें। आज-कल के शिक्षकों की जाति के शिक्षकों से काम नहीं चलेगा; इनकी तो छात्रों के उत्तीर्ण होने पर छाती फटती है।

इस देश में रामकृष्ण-मिशन बड़ा काम कर सकता है। न्यूयार्क, बोस्टन और फ़्रिस्को में हिन्दू स्वामी लोग भी धर्म का प्रचार करते हैं, परन्तु आवश्यकता है स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ के सदृश त्यागी और विद्वान् महाशयों की, जो हिन्दू धर्म का सिक्का संसार में बैठा दें। देश के भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। उन्हें ऊँची कोटि के विद्वानों को यहां धर्म-प्रचारार्थ

भेजना चाहिए जो दुराग्रह छोड़ निरपेक्ष बुद्धि से वास्तविक ज्ञान का प्रचार करें। यदि भारत के धर्म का प्रचार बाहर करना है तो उसकी दृष्टि से उपयोगी पुस्तकों की रचना भी होनी चाहिए।

यहां लूथर बरबंक (Luther Burbank) एक बड़े वैज्ञानिक पुरुष हैं। आप फल-फूल और वनस्पति के विद्या के पण्डित हैं। आपने अनेक फलों का संस्कार कर उन्हें उत्तम बना दिया है। नागफनी के कांटों को दूर कर उसे पशुओं के खाने योग्य बनाया है। इसी भांति अनेक फूलों तथा वृक्षों का संस्कार कर आपने उन्हें उत्तम बनाया है। मैं इनके बाग़ को देखने गया था। आप बड़े व्यवसायी हैं, अपने भेद को प्रकट नहीं करना चाहते, क्योंकि उसीसे धन प्राप्त होता है। इसी कारण से आप अपनी बड़ी प्रयोगशाला किसीको नहीं देखने देते। मैंने इनकी छोटी बगिया देखी। इसमें नागफनी और दो एक और वस्तुयें देखने योग्य थीं। बाक़ी कुछ भी नहीं था। अपने देश से इस देश में बहुत पदार्थ आते हैं और यहांसे वहां भी जाते हैं। भविष्य में इस सम्बन्ध के बढ़ने की बड़ी सम्भावना है। इस समय यह लेन-देन सीधे नहीं होता, तीसरे की मार्फ़त होता है। इससे लाभ का बड़ा अंश बीचवाले खा जाते हैं। केवल न्यू आरलियन्स में भारत से वर्ष में बीस लाख के क़रीब बोरे आते हैं। यहांसे भी मशीनें तथा अन्य पदार्थ जाते हैं। यदि अपने देश के व्यवसायी जहाज़ चार्टर कर यह लेन-देन सीधे करने लगें तो बड़ा लाभ हो। मैं कलकत्ते के व्यवसायियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया चाहता हूँ।

अमरीका का एक यात्री

विविध विषय।

१—कौंसिल में मध्यमा परीक्षा।

संयुक्त-प्रदेश के लाट साहब की ४ अगस्त १९१९ वाली कौंसिल में आनरेबल मुंशी नारायणप्रसाद ने काशी की मध्यमा परीक्षा के विषय में गवर्नमेंट से कई प्रश्न पूँछे। उत्तर से मालूम हुआ कि गत पांच वर्षों में काशी की संस्कृत परीक्षाओं से नीचे लिखे अनुसार आमदनी हुई—

साल	आमदनी	ख़र्च
१९१४—१५	रु० ७०५४	६१०६
१९१५—१६	रु० ७७१३	७३४१
१९१६—१७	रु० ८५७५	६५४१
१९१७—१८	रु० ९६६०	६१९४
१९१८—१९	रु० १०८५१	६४१८

यह आमदनी शिक्षा-विभाग में ही रह जाती है; किसी विशेष काम में ख़र्च नहीं होती।

मुंशीजी ने अपने प्रश्न द्वारा यह सम्मति भी दी कि जो विद्यार्थी धनाभाव के कारण काशी की परीक्षायें नहीं दे सकते उन्हें सरकार की ओर से शिक्षा-विभाग के अफ़सरों की सिफ़ारिश करने पर सहायता मिलनी चाहिए। परन्तु यह बात मंज़ूर न की गई। सरकार की तरफ़ से यह कहकर बात टाल दी गई कि ऐसे विद्यार्थियों का ख़र्च प्रायः पाठशालाओं से मिला करता है। मुंशी जी ने फिर यह सम्मति दी कि यदि कोई विद्यार्थी चाहे तो आचार्य्य परीक्षा सब विषयों में एक साथ दे सके। परन्तु यह बात भी स्वीकृत न हुई। हां, इतना अवश्य कहा गया कि मध्यमा परीक्षा के बारे में सरकार विचार करेगी कि यदि कोई विद्यार्थी किसी विषय में उत्तीर्ण न हो सके तो दूसरी बार केवल उसी विषय में परीक्षा दे। इसी सम्बन्ध में मुंशी नारायणप्रसादजी ने यह भी सम्मति प्रकट की कि यदि सरकार ऐसी ही परीक्षायें हिन्दी में भी लिया करे तो अच्छा हो। परन्तु यह बात भी सरकार की तरफ़ से यह कहकर टाल सी दी गई कि इस विषय में प्रथम यूनिवर्सिटी में विचार होना उचित है।

२—प्रथम प्राच्य-सम्मेलन।

इस वर्ष प्रथम प्राच्य-सम्मेलन (First Oriental Conference) पूना में ५, ६ और ७ वीं नवम्बर १९१९ को होना निश्चित हुआ है। इस सम्मेलन के मन्त्री हैं श्रीयुत पी० डी० गुने, श्रीयुत आर० डी० करमर्कर और श्रीयुत एस० बी० उद्गीकर। सम्मेलन का सूत्रपात हुआ है भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट की ओर से। इस कान्फ़रन्स या सम्मेलन का प्रबन्ध एक कमेटी के सिपुर्द

कर दिया गया है जिसमें काशी, पूना, बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, मैसोर, आदि स्थानों के बड़े बड़े विद्वान् हैं। इस कमेटी की ओर से अनेक संस्थाओं और विद्वानों को निमन्त्रण-पत्र भेजे गये हैं और उनसे प्रार्थना की गई है कि वे स्वयं या प्रतिनिधि-द्वारा सम्मेलन में उपस्थित हों और निम्नाङ्कित विषयों पर निबन्ध भेजें।

(१) संस्कृत भाषा और साहित्य
(२) अवस्ता और उसका संस्कृत से सम्बन्ध
(३) पाली
(४) जैन और प्राकृत
(५) भारतवर्ष की वर्तमान और प्राचीन भाषाओं का विज्ञान
(६) वर्तमान भाषायें और उनका प्राचीन साहित्य
(७) पुराण वस्तु-शास्त्र, मुद्रा-विद्या, शिला-लेख, पुरातन कला इत्यादि
(८) प्राचीन इतिहास, भूगोल और काल-निर्णय-विद्या
(९) प्राचीन आयुर्वेद, सङ्गीत इत्यादि
(१०) प्राचीन शास्त्र
(११) एक-लिपि इत्यादि
(१२) फ़ारसी और अरबी
(१३) नृवंश-विद्या और कथायें
(१४) संस्कृत और अन्य भाषाओं की पठन-पाठन-विधि

प्रत्येक प्रान्त के प्रतिष्ठित विद्वानों से प्रार्थना की गई है कि वे सम्मेलन की सफलता के लिए उद्योग करें और यद्यपि ६०० से अधिक विद्वानों और संस्थाओं को निमन्त्रण-पत्र भेजे जा चुके हैं तथापि जिन सज्जनों को निमन्त्रण न पहुँचा हो वे अपनेको आमन्त्रित ही समझें। सम्मेलन बम्बई के गवर्नर सर जार्ज लायड खोलेंगे और सर आर० जी० भाण्डारकर सभापति होंगे। अभ्यागतों के ठहरने इत्यादि का सुप्रबन्ध रहेगा।

३—हास्य-चित्र-कला (Cartoon drawing).

मनुष्य के विचारों को परिवर्त्तित करने के बहुत से ढङ्ग हैं। कोई गान-विद्या से, कोई वक्तृता से और कोई केवल शारीरिक बल या धन से ही मनुष्य को अपने विचार परिवर्त्तित करने के लिए बाध्य करते हैं। आज-कल के सभ्य समाज ने कुछ और नवीन ढङ्ग इसी सम्बन्ध में निकाले हैं—छाया-चित्र-कला, सिनेमेटोग्राफ़ी इत्यादि। परन्तु जिस विधि ने इस अर्ध-शताब्दी में शायद सबसे अधिक सफलता अर्ध-शिक्षित समाज के विचारों को अनायास ही परिवर्त्तित करने में प्राप्त की है, वह हास्य-चित्र-कला है।

हास्य-चित्र-कला वर्त्तमान युग की सबसे अधिक प्रभावशालिनी अज्ञात शक्ति जान पड़ती है। इस महायुद्ध के समय में इस कला की जितनी उन्नति हुई है, पहले किसीको यह बात स्वप्न में भी ज्ञात न थी। इस कला को यूरोपीय निवासी बहुत दिनों से जानते आये हैं, परन्तु इसको "कला" रूप में परिणत हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। विशेष कर युद्ध के समय में हास्य-चित्रों ने बड़े बड़े राजनीतिज्ञों के विचार साधारण जनता में फैलाने में बड़ी सहायता की। कुछ समय तक तो राजनीति-विशारदों की, विशेष कर पाश्चात्य देशों में, यह पूरी प्रेम-पात्री बनी रही। कहते हैं कि इस कला के जाननेवालों पर उन्होंने बड़ा व्यय किया और अपने अपने दलों के प्रतिपादक हास्य-चित्र निकलवाये जिनका जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

हमें इसी विषय पर आज कुछ देखना और सोचना है। अभी तक इस कला की गति बड़ी ही बेढङ्गी रही है। साधारण चित्र-कला-विशारदों से लोगों ने यह आशा की कि वे अच्छे अच्छे हास्य-चित्र भी प्रकाशित कर सकें, यह उन लोगों की नितान्त भूल है। प्रायः देखा गया है कि जहां चित्र-कला-विशारद चूक गये हैं वहां पर साधारण से हास्य-चित्र बनानेवालों ने ग़ज़ब कर दिया है।

यूरोप में इस युद्ध से पहले भी इस कला का प्रादुर्भाव था, यहां तक कि इसी विषय के कई मासिक तथा पाक्षिक पत्र निकलते थे, जो अब भी निकलते हैं। "पंच" नामक हास्य-चित्र-प्रकाशक पत्र के प्रचार का अन्दाज़ा लगाना कठिन है। यह पत्र युद्ध के पहले भी यूरोप तथा सारे संसार की प्रायः सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि सभी विषयों पर हास्य-चित्र प्रकाशित करता रहा। आरम्भ में इसने बड़े बड़े चित्र-कला-विशारदों से हास्य-चित्र बनवाकर प्रकाशित किये, परन्तु जब वह अपने ग्राहकों तथा पाठकों पर अधिक

प्रभाव न डाल सका, तब उसे अपनी नीति बदलनी पड़ी, और दूसरी प्रकार के कला-विशारद रक्खे। इन कला-मर्मज्ञों ने इस पत्र को अँगरेज़ी समाज में इतना प्रिय बना दिया कि प्रायः हर एक क्लब ने इसकी एक प्रति मँगाना उचित समझा। युद्ध के समय से इस पत्र ने अपने प्रकाशन में और अधिक उत्साह दिखाया। इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई, और बड़े बड़े गम्भीर पत्रों को भी इसकी नीति का अनुसरण करना पड़ा। "रिव्यू आफ़ रिव्यूज़" नामक पत्र ने अपने कई पृष्ठ इसी प्रकार के चित्रों में लगाये। पहले तो उसने भी "पंच" की भांति अच्छे चित्रकला-विशारदों का आश्रय लेना चाहा, परन्तु इससे कुछ काम न चला। अन्त में संसार के सब देशों के हास्य चित्रों में से सङ्कलित करके उसने प्रतिमास हास्य-चित्र छापे, जो शिक्षित समाज में आदरणीय हुए।

अब यह प्रश्न उठता है कि इस कला में बड़े बड़े चित्र-कला-मर्मज्ञ क्यों सफल नहीं हुए? कुछ विचार करने से ज्ञात होता है कि चित्र-कला और हास्य-चित्र-कला, ये दो बिलकुल भिन्न कलायें हैं, इनके उद्देश भिन्न हैं, और इनके जाननेवालों में भिन्न गुण भी होने आवश्यक हैं। यह हास्य-चित्र-कला स्वयं ही बड़ी कठिन कला है और इसका कार्य्य क्षेत्र साधारण चित्र-कला से भिन्न है।

हास्य-चित्रों का उद्देश यह होता है—

(१) दर्शकों में हास्य-भाव उत्पन्न करना

(२) दर्शकों में हास्य-भाव के साथ साथ सूक्ष्म विचार उत्पन्न करना

(३) और इसी भांति क्रमिक विचार-परिवर्त्तन के पश्चात् कार्य्य करने के लिए उत्तेजित करना।

पाठक समझ सकते हैं कि यह उद्देश साधारण सुन्दर चित्र बनानेवाले चित्रकारों के उद्देश से भिन्न है। साधारण चित्रकार का उद्देश न तो सूक्ष्म विचार उत्पन्न करने का होता है और न कार्य्य कराने का। चित्रकार अधिकतर मनुष्य की आंखों को तृप्त करता है, और वह तृप्ति क्षणिक होती है। इन्हीं उद्देशों के अनुसार हास्य-चित्रकार के गुण साधारण चित्रकार के गुणों से भिन्न होने चाहिएँ। सबसे प्रथम आवश्यकता हास्य-चित्रकार में स्वयं हास्य-रस की है; चित्रकार की प्रकृति में हास्य होना चाहिए। यदि इसके बिना चित्रकार हास्य-चित्र बना भी लेगा तो भी वह जनता पर प्रभाव नहीं डाल सकता। चित्रकार में सोचने की शक्ति का होना भी बहुत आवश्यक है। असाधारण हास्यरसावलम्बी चित्रकारों को छोड़कर प्रायः सभी चित्रकारों के लिए बिना पूर्णतया सोचे हास्य-चित्र बनाने की कोशिश करना व्यर्थ है। विलायत के बहुत से ऐसे चित्र देखे गये हैं जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये कृत्रिम चित्रकार के बनाये हुए हास्य-चित्र हैं। बात यह है कि ऐसे चित्र दर्शक पर यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न ही नहीं कर सकते।

हास्य-चित्र बनानेवाले में (Sketching from nature) प्रकृति से चित्र बनाने की शक्ति का होना भी आवश्यक है। साधारण चित्रकारों की भांति उसे रंगसाज़ी इत्यादि की आवश्यकता नहीं है, उसका उद्देश आंख को आनन्द पहुँचाने का नहीं है, वरन हृदय को प्रभावित करने का। उसमें चौथा आवश्यक गुण यह है कि हास्य चित्रकार को संसार में लाभदायक होने के लिए संसार के साथ साथ चलना आवश्यक है। संसार के लोग आज-कल किस विषय में अधिक अनुरक्त हैं, और किस ओर उनको झुकाना आवश्यक है, इस बात का ज्ञान हास्य-चित्रकार को हुए बिना उसका कार्य्य संसार में आदर नहीं पा सकता।

आदर्श हास्य-चित्र अभी तक बहुत कम देखने में आये हैं। यूरोपीय तथा अमेरिकन देशों में जहां यह कला एक पेशा समझी जाती है वहां से भी अब तक आदर्श हास्य-चित्र बहुत ही कम निकले हैं। एक बात इन सब चित्रों को देखने से यह प्रतीत होती है कि उन पेशेवालों ने हास्य उत्पन्न करने की कुछ कृत्रिम विधियां बना रक्खी हैं, वे अपने चित्रों को प्रकृति के विरुद्ध बनाकर हास्य उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ किसीका पेट बड़ा कर दिया तो किसीका कान छोटा कर दिया, इत्यादि। ये आदर्श चित्र नहीं कहे जासकते। आदर्श हास्य-चित्र प्रकृति के अनुकूल होने चाहिएँ।

दूसरी बात आदर्श चित्र में यह हो कि उसमें सूक्ष्म विचार की मात्रा अधिक न होनी चाहिए। ऐसा देखा

गया है कि अच्छे अच्छे हास्य-चित्रकारों ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् एक चित्र बनाया है और उसका प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ। कारण यह था कि चित्र में सूक्ष्म विचार की मात्रा उचित से अधिक होगई और वह चित्र साधारण लोगों की समझ ही में नहीं आया।

एक बात और आदर्श चित्रों में बहुधा पाई गई है। जहाँ तक हो, उस चित्र का अर्थ बतानेवाले शब्द बहुत थोड़े हों। जिस प्रकार "टाइम्स आफ़ इण्डिया" के Snapshots (स्नेप-शाट्स) दो एक शब्दों में कुल भाव प्रकट कर देते हैं, वैसे ही अन्यत्र होना चाहिए। चित्र और मनुष्य के मस्तिष्क के बीच में यदि अधिक शब्द आ जावेंगे तो भाव मारा जायगा।

ओङ्कारनाथ सकसेना, बी० ए०

४—अफ़ग़ान-युद्ध बन्द ।

अँगरेज़ों और अफ़ग़ानों के बीच सन्धि स्थापित करने के लिए रावलपिण्डी में जो सन्धि-परिषद् बैठी थी, उसका काम ८ अगस्त १९१९ को समाप्त होगया। उस दिन सन्धि-पत्र पर दोनों राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर होगये। सन्धि की शर्तें ये हैं—

(१) सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होने की तारीख़ से दोनों राष्ट्रों में सन्धि समझी जायगी।

(२) अँगरेज़ सरकार अफ़ग़ान सरकार के प्रति अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए उसके देश में हिन्दुस्तान होकर सैनिक सामान न जाने देगी।

(३) अमीर को जो १८ लाख रुपये सालाना दिया जाता था वह अब न दिया जायगा और पिछली बाक़ी भी डूबी हुई समझी जायगी।

(४) पूर्व अमीर के समय दोनों देशों की जो सीमा स्वीकार की गई थी, वही अब भी रहेगी।

(५) यदि अफ़ग़ान-सरकार छः महीने के पश्चात् अँगरेज़ सरकार से पुरातन मित्र-भाव स्थापित करने के लिए प्रस्ताव करेगी तो अँगरेज़ सरकार उस पर सहर्ष विचार करेगी।

अच्छा हुआ, सन्धि होगई और भारत दूसरी ख़ून-ख़राबी से बचा।

पुस्तक-परिचय ।

१—गोपालन-शिक्षा—यह 'गो-बछड़ों की पहचान, पालन और चिकित्सा की सचित्र पुस्तिका' है। परन्तु चित्र इसमें सिर्फ़ दो ही हैं। तोभी यह गोपालों के लिए बड़े काम की है। लेखक—डाक्टर गदाधरप्रसाद मिश्र, एम० बी० (होमियो)। मुद्रक और प्रकाशक—रामलाल वर्म्मा, वर्म्मन प्रेस, ३७१, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता। मूल्य ।=)।

⁂

२—पञ्जाब-केशरी—इसमें महाराजा रणजीतसिंह का संक्षिप्त जीवनचरित है। इसके लेखक और प्रकाशक पूर्वोक्त वर्म्मन प्रेस के मालिक रामलाल वर्म्मा हैं। मूल्य ॥)।

⁂

३—साहित्य-सुमन ।

सत्कविरचनाशूर्पी निस्तुषतरशब्दशालिपाकेन।
तृप्तो दयिताधरमपि नाद्रियते का सुधादासी॥
गोवर्द्धन

स्वर्गीय पण्डित बालकृष्ण भट्ट जी के ललित लेखों को एक स्थान में पढ़ने का सौभाग्य आज उनके सुपुत्र पण्डित महादेव भट्ट की कृपा से प्राप्त हुआ है। भट्टजी के लेखों के पुस्तकाकार छपने की बड़ी आवश्यकता थी। शोक से नहीं, वरन लज्जा से कहना पड़ता है कि हिन्दीप्रदीप की क़दर जितनी होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई। उसके न पढ़नेवाले हमें कृपा कर क्षमा करें। इसका कारण यह था कि भट्टजी के लेखों का रसास्वादन करने के लिए उनकी सूझ को समझने के लिए ज़रा ज़्यादा दिमाग़ ख़र्च करना पड़ता था। अँगरेज़ी साहित्य पढ़नेवालों में जिन्होंने लुई स्टिवेन्सन आदि के लेखों को पढ़ा है वे इन लेखों की क़दर कर सकते थे। परन्तु वे तो बहुधा इस मिथ्या माहात्म्य में चूर रहते हैं

कि क्या हम हिन्दी के लेख पढ़ें ? बेचारे शुष्क हिन्दी पढ़नेवालों की पहुँच अँगरेज़ी तक कहां ! यदि यही लेख अँगरेज़ी भाषा में होते तो अँगरेज़ीवालों में इनकी बड़ी क़दर होती । एक और बात है। जिस प्रकार साहित्य जन-समूह के हृदय का विकाश है इसी प्रकार मेरी समझ में जनता किस दरजे की सभ्यता और विद्वत्ता में अपना स्थान रखती है, यह इस बात से मालूम होता है कि उसमें किस प्रकार की पुस्तकों की क़दर है । अस्तु । हिन्दी का अभ्युदय हो रहा है । मासिक पत्रों तथा समाचार-पत्रों में जहां बहुत बड़ी भलाई यह है कि उनका प्रचार जनता में बहुत शीघ्र और अधिक होता है वहां उनमें यह बुराई भी है कि उनमें के बहुतेरे लेख पुस्तक के रूप में जनता के सम्मुख नहीं रहते । मासिक पत्रों में रहने के कारण मास बीतने पर वे प्रायः सर्वदा के लिए लुप्त होजाते हैं । पण्डित महादेव भट्ट का यह प्रयत्न सराहनीय है । आशा है कि लोग इसका उचित सत्कार करेंगे । लेखक और प्रकाशक को इसमें पूर्ण सन्तोष होना सम्भव है कि लोग उनके लेखों को पढ़ें और फिर रद्दी में फेक दें । परन्तु उनको यह असह्य हो जाता है कि वे तो मिहनत से उनको लिखें और संग्रह करें और लोग इतना भी न देखें कि वे भले हैं या बुरे !

चित्र-परिचय ।

इस संख्या का चित्र सरस्वती के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा का अङ्कित किया हुआ है। इसमें दीपक के प्रकाश से स्त्री के मुख-मण्डल की आभा, केशों का पवन में उड़ना, अञ्चल की ओट से दीपक को बचाना, आदि भाव बड़ी चतुराई से चित्रित किये गये हैं । दीपक के साथ साथ चित्र में पुस्तक भी है जिससे चित्रकार महाशय के मनोगत भाव और भी स्पष्ट हो जाते हैं । यह दीपक विद्या का वह प्रकाश फैला रहा है जिससे अज्ञान-रूपी अन्धकार का नाश होता है। मन अपनी चञ्चलता-रूपी पवन से दीपक को बुझाना चाहता है, परन्तु भक्ति-रूपिणी शक्ति उसे सँभालकर ज्ञान-रूपी प्रकाश से प्रभु को खोजती है । इस भावपूर्ण चित्र की सुन्दरता स्वयं ही प्रकाशित है और इसके लिए वर्माजी की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है ।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

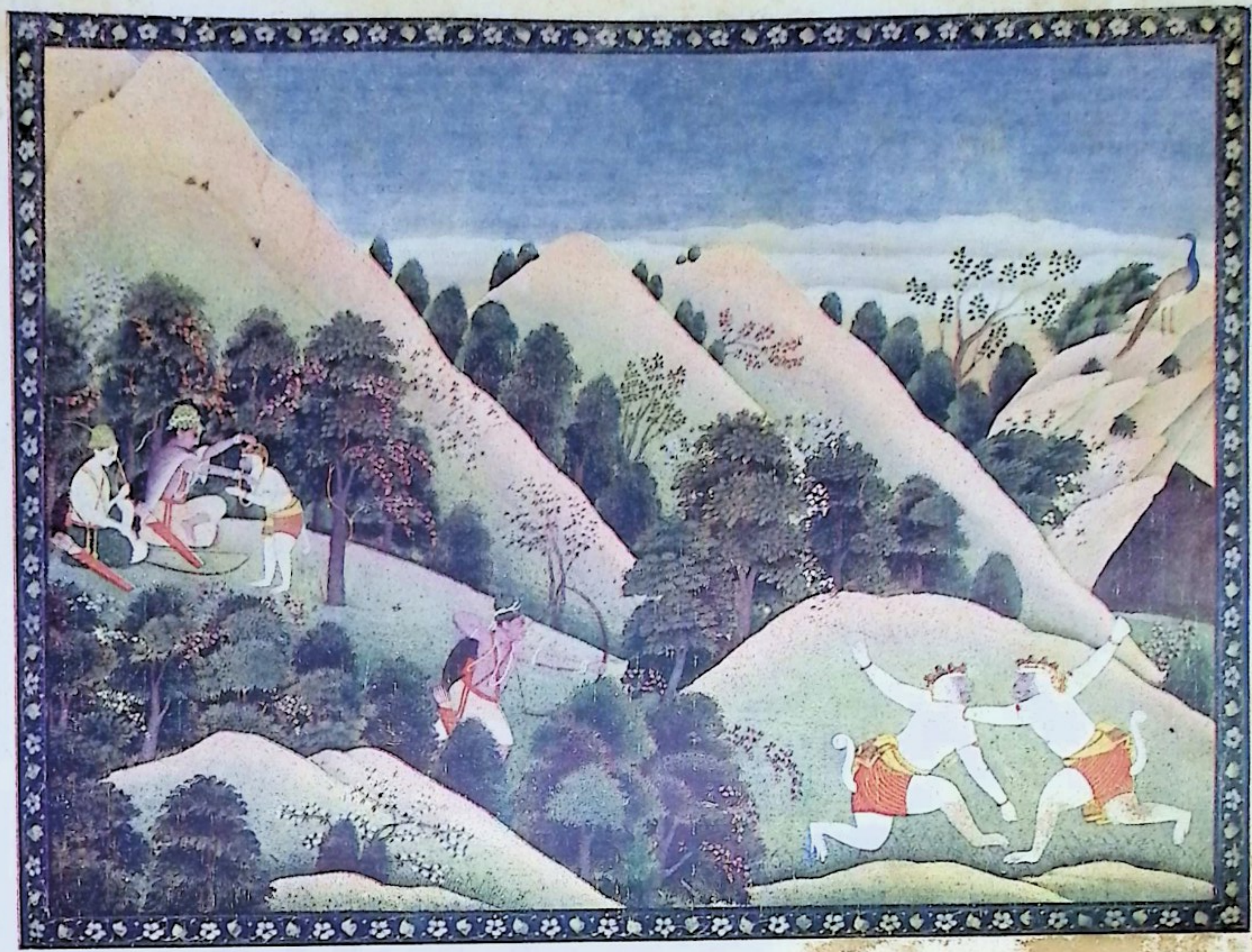

बालि और सुग्रीव का मल्ल-युद्ध ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

सरस्वती

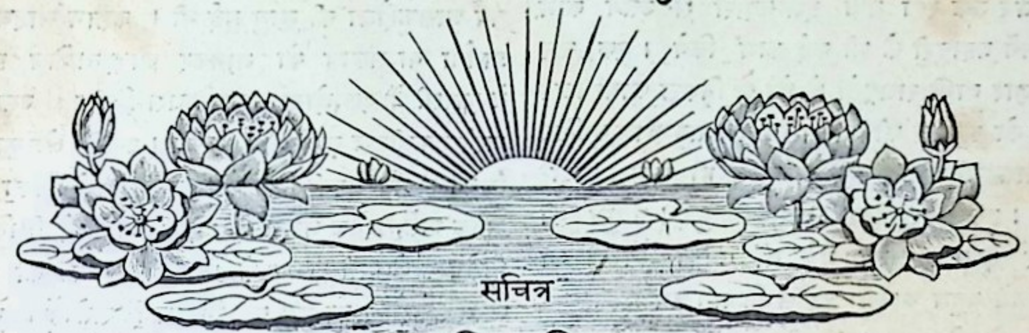

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड २] सितम्बर १९१९—आश्विन १९७६ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २३७

नक़ली फूल।

(माया के प्रति जीव की उक्ति)

मालिन, कैसे हैं ये फूल ?
क्या ये मेरे स्वामी को भी होंगे रुचि-अनुकूल ?
होगी कैसी वह फुलवारी, शोभित कैसी होगी क्यारी,
होंगी वहां बिछी सब खिलकर ज्यों सुन्दर मखतूल !
कैसी इनकी खुशबू , देखें, कह दो तो इनको छू देखें,
क्या कहती हो—करते हैं हम पहले दाम वसूल !
बोलो तो, लो दाम बताओ, अपना सौदा तुम्हीं चुकाओ,
'जीवन' अच्छा है जो इन पर गई सभी मति भूल।
जब से मैंने देखा इनको, जीवन का धन लेखा इनको,
क्या इतने सुन्दर स्वामी को होंगे नहीं क़बूल ?
यह क्या ! नेक सुवास नहीं है—इस जग में विश्वास नहीं है,
हाय हाय ! यह क्या कर डाला, जीवन गया समूल।

देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए०

नवाब आसफ़ुद्दौला।

फ़ारिस में इस्फ़हान नाम का एक मशहूर शहर है। वहां का रहनेवाला अबुलहसनबेग इस्फ़हानी हिन्दुस्तान में आया और नवाब बुरहानुल्मुल्क के मातहत, बहुत दिनों तक, एक अच्छे ओहदे पर रहा। फिर इसने अपने दामाद मुहम्मदबेग को भी हिन्दुस्तान में बुला लिया। अवध के नवाब सफ़दरजङ्ग के वक़्त में उसे एक फ़ौजी नौकरी मिली। धीरे धीरे उसकी तरक़्क़ी होती गई और नवाब शुजाउद्दौला के वक़्त में वह एक ज़िले का हाकिम हो गया; पर कुछ दिनों में, किसी कारण से, शुजाउद्दौला उससे नाराज़ हो गया और उसकी सारी सम्पत्ति उसने ज़ब्त कर ली। इस पर मुहम्मदबेग मुरशिदाबाद को चला गया।

१७५२ ईसवी में मुहम्मदबेग की बीबी के, लखनऊ में, एक लड़का हुआ। उसका नाम आबू तालिब पड़ा।

शुजाउद्दौला यद्यपि मुहम्मदबेग से नाराज़ था, तथापि आबू तालिब के लिखने-पढ़ने का उसने अच्छा प्रबन्ध कर दिया, और जब उसके बाप ने अपने लड़के को माँगा तब उसने उसे उसके पास मुरशिदाबाद भेज भी दिया। जब मुहम्मदबेग मर गया तब आबू तालिब लखनऊ को लौट आया। वहाँ उसने नौकरी कर ली और थोड़े ही दिनों में वह घोड़ों का फ़ौजदार हो गया। इस ओहदे पर वह बहुत दिनों तक रहा और जब तक रहा बड़ी ईमानदारी से उसने काम किया। उसने बहादुरी के भी कई काम किये। एक बार वह दस हज़ार बाग़ी राजपूतों के घेरे से निकल आया। जब कर्नल हना को सरवार की सूबेदारी मिली तब आबू तालिब ने उनकी मातहती में उस सूबे का बहुत ही अच्छा बन्दोबस्त किया। इससे उसकी बड़ी नामवरी हुई। बेगमों की जो जागीरें ज़ब्त कर ली गई थीं उनकी मैनेजरी का काम भी उसने बहुत अच्छी तरह से किया। सालारजङ्ग की जागीर में उसने दो लाख साल की आमदनी बढ़ाई और नवाब के बहुत बड़े दुश्मन राजा बलभद्रसिंह को उसने बड़ी भारी हार दी—इतनी बड़ी कि हार जाने के थोड़े ही दिनों बाद उसकी जान ही जाती रही। उसकी सचाई और ईमानदारी से डरकर नवाब वज़ीर के कितने ही अफ़सरों ने अपनी बुरी आदतों को छोड़ दिया। पर ऐसे सत्यप्रिय और स्वामिभक्त सेवक की भी क़दर न हुई। जहाँ अराजकता है; जहाँ गुणों की पहचान करनेवाला ही कोई नहीं; जहाँ स्वयं स्वामी ही दुर्गुणों की खानि हो रहा है वहाँ यदि योग्य और सद्गुणी आदमियों की क़दर न हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। अस्तु।

१७८७ ईसवी में आबू तालिब को लखनऊ छोड़कर कलकत्ते जाना और वहाँ अँगरेज़ों की शरण में रहना पड़ा। चार वर्ष तक वह कलकत्ते में रहा। जब लखनऊ में बड़ी ही अराजकता फैली तब लार्ड कार्नवालिस ने एक सिफ़ारिशी चिट्ठी देकर आबू तालिब को फिर लखनऊ भेजा। पर नवाब आसफुद्दौला के नायब, राजा टिकैतराय ने उसे कोई जगह न दी। सिर्फ़ २०० रुपये महीने पेनशन, जिसे मिलने का उसे कई साल पहले ही हुक्म हो गया था, उसे मिलती रही। जब उसने देखा कि मेरी दाल यहाँ न गलेगी तब वह कलकत्ते लौट गया। १७९९ के फ़रवरी महीने में आबू तालिब कलकत्ते से यूरोप को गया। वहाँ इँगलेंड, फ़्रान्स, टर्की इत्यादि घूमकर बसरा की राह से वह बम्बई को लौट आया। बम्बई से वह फिर कलकत्ते गया, जहाँ वह १४ अगस्त १८०३ को पहुँचा। इसके आगे का उसका हाल नहीं मालूम। उसने अपने प्रवास का वर्णन लिखा है।

१७९७ ईसवी में कप्तान रिचार्डसन ने उससे आसफुद्दौला के समय का इतिहास लिखने के लिए कहा। इसी वर्ष आसफुद्दौला की मृत्यु हुई थी। कप्तान साहब की इस प्रार्थना या सलाह को मानकर आबू तालिब इस्फ़हानी ने फ़ारसी में एक छोटा सा इतिहास लिखा। उसका नाम उसने तफ़ज़ीहुल् ग़ाफ़िलीन रक्खा। उसमें जो कुछ उसने लिखा है सब अपनी निज की जानकारी से लिखा है और अनेक बातें, अनेक घटनायें, अपनी आँखों देखी लिखी हैं। विशेष करके इसी पुस्तक के अँगरेज़ी-अनुवाद की सहायता से आसफुद्दौला पर हम यह निबन्ध लिखते हैं। पर इसके लिखने में कहीं कहीं और और लेखों से भी हमको सहायता लेनी पड़ी है।

आबू तालिब ने आसफुद्दौला के समय का जो इतिहास लिखा है उसमें उसने नवाब और उसके अफ़सरों के काम की बड़ी ही कड़ी समालोचना की है। उनके दुर्व्यसन, दुराचार और दुर्गुणों का वर्णन उसने निडर होकर किया है। पर कहीं कहीं किसी किसी अफ़सर की प्रशंसा भी उसने की है। राज्य-प्रबन्ध के विषय में उसने ऐसी अच्छी टीकायें की हैं कि वे उसकी योग्यता और कार्य-कुशलता का उत्तम परिचय देती हैं। इसीसे उसकी बातों पर विश्वास करने की इच्छा होती है।

शुजाउद्दौला के समय तक अवध के नवाब फ़ैज़ाबाद में रहते थे। पर जब आसफुद्दौला को नवाबी मिली तब उसने लखनऊ को अपनी राजधानी बनाया। इन नवाबों की पदवी "नवाब वज़ीर" थी। परन्तु लोग इनको विशेष करके नवाब ही कहते थे। इस कारण हम भी, जहाँ ज़रूरत पड़ेगी, बहुधा नवाब शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

जिस समय शुजाउद्दौला की मृत्यु हुई, उसके तीन बेटे थे—मिर्ज़ा अमानी, मिर्ज़ा सआदत अली और मिर्ज़ा जङ्गली। बड़े होने के कारण मिर्ज़ा अमानी को नवाबी मिली। १७७४ ईसवी में वह अपने पिता की गद्दी पर बैठा और

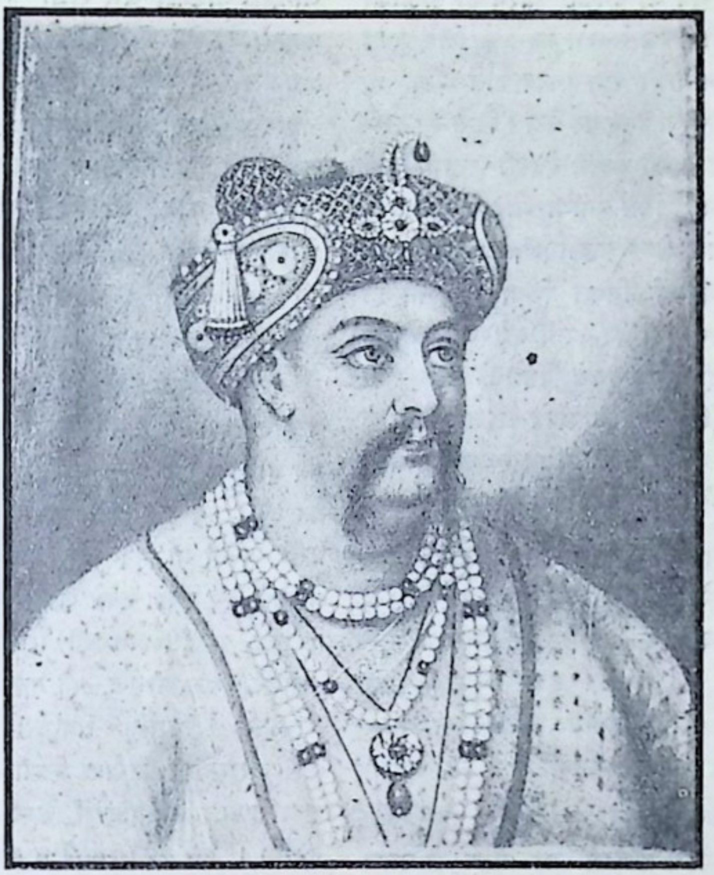

अवध के नवाब वज़ीर आसफुद्दौला।

(लखनऊ के प्राविंशल म्यूज़ियम से प्राप्त)

अपना नाम आसफुद्दौला रक्खा । पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया भी अच्छी तरह न होने पाई थी कि मिर्ज़ा अमानी ने पिता की मसनद पर बैठना चाहा । लोगों ने उसे बहुत समझाया कि जल्दी करने की ज़रूरत नहीं । आपका विपक्षी कोई नहीं; तीनों भाइयों में खूब प्रेम है; अँगरेज़ों से भी मित्रता है । पर मिर्ज़ा अमानी ने एक न सुनी । जो अमीर-उमरा पिता के जनाज़े के साथ गये थे, उनको फ़ौरन ही बुलाकर उसने अपनी मसनद-नशीनी का प्रबन्ध करने के लिए हुक्म दिया । हुक्म सबको मानना ही पड़ा । सब बातें ठीक हो जाने पर आसफुद्दौला नवाबी मसनद पर बैठा । बैठते ही उसने अपने पिता के नायब को किसी बहाने देहली रवाना करके मीर मुर्त्तज़ा ख़ाँ को अपना नायब बनाया और फ़ैज़ाबाद के रहनेवाले झाऊलाल नाम के एक आदमी को अपने निज के कारोबार का प्रबन्धकर्त्ता नियत किया । कितने ही अयोग्य और दुःशील आदमियों को उसने बड़े बड़े ओहदे दिये; बड़ी बड़ी ख़िलतें दीं; और उनके रहने के लिए बड़ी बड़ी हवेलियाँ दे डालीं । यह देखकर शुजाउद्दौला के समय के पुराने अफ़सरों ने अपने अधिकार की इतिश्री समझी और अपने दिन वे किसी तरह काटने लगे ।

जब आसफुद्दौला को नवाबी मिली तब उसकी दादी ज़िन्दा थी । उसे इस नये नवाब की एक भी बात पसन्द न आई । इससे उसने नवाब के कामों का विरोध शुरू किया । यह आसफुद्दौला को असह्य हुआ । इस कारण फ़ैज़ाबाद को छोड़कर उसने लखनऊ में रहना मंज़ूर किया । तब से अवध की राजधानी लखनऊ में उठ आई ।

इस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व हिन्दुस्तान में बहुत कुछ हो गया था । कम्पनी की तरफ़ से वारन हेस्टिंग्ज़ साहब कलकत्ते में गवर्नर जनरल थे । उनकी वक्र दृष्टि अवध पर पड़ी । इस वक्र दृष्टि के कारण अवध का कितना द्रव्यापहरण हुआ और बेगमों पर कितना अत्याचार हुआ, इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं । ये बातें इतिहास-प्रसिद्ध हैं । इँगलेंड के प्रसिद्ध वक्ता बर्क ने वारन हेस्टिंग्ज़ पर जिन अपराधों का आरोप किया उनमें ये भी शामिल हैं । अतएव जब तक उसकी तद्विषयक वक्तृतायें और काग़ज़-पत्र अस्तित्व में हैं तब तक हेस्टिंग्ज़ साहब की कुटिल नीति की कथा भी कहीं जाने की नहीं । आसफुद्दौला को गद्दी मिलते ही वारन हेस्टिंग्ज़ साहब ने पहले सन्धिपत्र को रद करके उससे एक नई सन्धि की । उसमें और और बातों के सिवा यह भी लिखा गया कि दोनों पक्षों में मित्रता रहे; बिना कम्पनी की आज्ञा के नवाब किसी यूरोप-निवासी को नौकर न रक्खें; कम्पनी कोड़ा और इलाहाबाद के ज़िले नवाब को दे; बनारस, जौनपुर, ग़ाज़ीपुर और राजा चेतसिंह का इलाक़ा नवाब कम्पनी को दे; अँगरेज़ी फ़ौज का ख़र्च २,१०,००० की जगह २,६०,००० कर दिया जाय; और कम्पनी बहादुर नवाब के मुल्क की रक्षा करे । २१ मई १७७५ को आसफुद्दौला ने इस सन्धि-पत्र पर दस्तख़त किये । इसके बाद कम्पनी की फ़ौज, जो अवध में रहती थी, बढ़ा दी गई और उसका ख़र्च नवाब साहब के ज़िम्मे हुआ ।

आसफुद्दौला को नवाबी मिलने पर राज्य की सब सम्पत्ति भी उसे ही मिलनी चाहिए थी; परन्तु लखनऊ के रेज़िडेंट ब्रिस्टो साहब को यह बात पसन्द न आई । उन्होंने प्रायः सारी सम्पत्ति आसफुद्दौला की माँ के हवाले कर दी और एक बहुत बड़ी जागीर भी उसके लिए अलग कर दी । यह बात आसफुद्दौला को बुरी लगी । इससे उसने अपनी माँ को तङ्ग करना शुरू किया और उसके पास से ६२ लाख रुपये लेकर कल की । बेगम ने रुपये तो दे दिये, पर इस बात की शिकायत उसने रेज़िडेंट से की । रेज़िडेंट ने इस मामले की तहक़ीक़ात की और बेगम की शिकायत सही पाई । तब उसने आसफुद्दौला से इस बात का इक़रारनामा लिखवा लिया कि अब मैं अपनी माँ की सम्पत्ति और जायदाद में किसी तरह की दस्तन्दाज़ी न करूँगा । इस इक़रारनामे ने यद्यपि ऊपरी तौर से माँ-बेटे का झगड़ा दूर कर दिया, तथापि पेट में वे दोनों एक दूसरे से अन्त तक अप्रसन्न ही रहे । आसफुद्दौला ने तो फ़ैज़ाबाद छोड़कर लखनऊ में रहना मंज़ूर किया । पर उसकी माँ फ़ैज़ाबाद ही में बनी रही और अपने इलाक़े का अलग बन्दोबस्त करके अपने नाम का सिक्का भी चलाने लगी । कोई दो-तीन हज़ार आदमी उसके आश्रय में थे ।

शुजाउद्दौला के समय से दो गोसाइयों की बहुत चलती थी । वे बीस बीस-हज़ार सवार रखते थे । उनमें से एक का नाम अनूपगिरि था; दूसरे का उमरावगिरि ।

आसफुद्दौला इनसे अप्रसन्न हो गया। इससे उसने इन्हें निकाल दिया और कहा कि कालपी के पास का मुल्क जीतकर, उससे जो कुछ मालगुज़ारी वसूल हो उसीसे तुम अपनी फ़ौज का ख़र्च चलाओ। यह बात इनको नागवार हुई। इससे उन्होंने ख़्वाजा बसन्त अली ख़ां नाम के एक फ़ौजी अफ़सर को मिला लिया और आसफुद्दौला के भाई सआदत अली ख़ाँ को गद्दी पर बिठाना चाहा। उन्होंने यह सलाह की कि किसी तरह मुख़तारुद्दौला मुर्तज़ा ख़ां और नवाब आसफुद्दौला को मार डालना चाहिए। इससे बसन्त और उसके मित्रों ने नायब वज़ीर मुर्तज़ा ख़ां की बदनामी फैलाना शुरू किया। उन्होंने नवाब को यह सुझाया कि अँगरेज़ों से मिलकर वज़ीरुद्दौला ने बनारस की तरफ़ का इलाक़ा अँगरेज़ों को दिला दिया है और फ़ौज में अँगरेज़ी अफ़सर भी उसीने किसी गुप्त इरादे से रक्खे हैं। इस तरह आसफुद्दौला को उभाड़कर बसन्त ने वज़ीरुद्दौला को मार डालने की आज्ञा उससे ले ली, इसके बाद उसने अपने घर दावत की। उसमें उसने वज़ीरुद्दौला और आसफुद्दौला दोनों को निमन्त्रित किया। वज़ीरुद्दौला तो गया; पर आसफुद्दौला के दिल में कुछ सन्देह पैदा हुआ। इससे बहुत कुछ हाथ-पैर जोड़ने पर भी वह दावत में शरीक न हुआ। बसन्त ने सोचा कि इन दोनों का साथ ही काम तमाम करके मैं सआदत अली को नवाब बना दूँ और खुद उसका नायब वज़ीर, अर्थात् मुख़तारुद्दौला, हो जाऊँ। पर आसफुद्दौला ने, तबीयत अच्छी न होने का बहाना करके, उसकी इस मन्त्रणा के एक अंश को विफल कर दिया। अतएव बसन्त ने आसफुद्दौला को किसी दूसरे मौके पर मारने का इरादा करके अपने घर आये हुए मुर्तज़ा ख़ां को मीर फज़ल अली नाम के एक आदमी से मरवा डाला। मौसम गरमी का था। मुर्तज़ा ख़ां एक गर्भ-गृह (तहख़ाने) के भीतर बैठा हुआ एक किन्नरकण्ठी का गाना सुन रहा था कि फज़लअली ने वहीं उस पर वार किया। उसके मारे जाने पर बसन्त ने सआदत अली को ख़बर भेजी कि आप अपनी फ़ौज लेकर मेरी मदद को आइए; मैं आसफुद्दौला को भी मुर्तज़ा ख़ां के साथ दूसरी दुनिया में भेजने जाता हूँ।

जब नवाब वज़ीर की ड्योढ़ी पर बसन्त पहुँचा तब उसे हुक्म हुआ कि वह अकेला भीतर आवे। उसे कोई डर तो था ही नहीं; क्योंकि नवाब ही के हुक्म से उसने मुख़्तारुद्दौला को मारा था। इससे वह अपने साथ सिर्फ़ दो आदमियों को लेकर अन्दर गया। उसे देखकर आसफुद्दौला ने सोचा कि यदि यह ज़िन्दा रहेगा तो मुझे मुख़्तारुद्दौला के मारे जाने की कैफ़ियत रेज़िडेंट को देनी पड़ेगी और मुमकिन है कि इस हत्या में मेरे भी शामिल रहने की बात ज़ाहिर हो जाय। अतएव उसने राजा नेवाज़सिंह की तरफ़ इशारा किया। उसने बसन्त का सिर तलवार की एक ही वार से काट गिराया। इस पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने बसन्त के गिर जाने पर भी कई वार किये और जूता पहने हुए अपना पैर उसके कटे हुए सिर पर उसने रख दिया। यह अपमान बसन्त के दो साथियों से नहीं देखा गया। इससे उनमें से बड़े मिर्ज़ा नाम के आदमी ने नेवाज़सिंह की गरदन पर अपनी तेज़ तलवार रख दी और देखते ही देखते उसका सिर ज़मीन पर लोटने लगा। यह देखकर नवाब के दो-चार आदमी उसकी तरफ़ झपटे, पर वह ऐसा बहादुर था कि उसके बदन पर कोई हाथ न लगा सका और वह निकल गया।

इस हत्याकाण्ड के समाप्त होने पर नवाब साहब ने पुराने नायब महम्मद हरज ख़ां को नियामत दी। पर थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गई। उसके समय में पुरानी फ़ौजें सब तोड़ दी गईं। तनख़्वाह न मिलने के कारण उनमें असन्तोष फैल गया था और उन्होंने इधर-उधर लूट-मार शुरू कर दी थी। इसकी दवा यही अच्छी समझी गई कि वे रक्खी ही न जायँ। न्याय इसीका नाम है! इन फ़ौजों ने अपने अँगरेज़-अफ़सरों को क़ैद कर लिया; उनका माल असबाब लूट लिया; और उनमें से दो-एक को मार तक डाला। इसके बाद नये सिपाही भरती किये गये और उनका कमाण्ड कर्नल गोवर को मिला।

इसके बाद हैदरबेग ख़ां नायबे-मुल्क हुआ। राजा टिकैतराय नाम के एक कायस्थ को पेशकार का पद मिला। आबू तालिब ने हैदरबेग ख़ां की बड़ी बुराई की है। उसने लिखा है कि वह महा अन्यायी, लुटेरा, धोखेबाज़, कृतघ्न; निर्दयी और ऐयाश था। जिस किसीने उसके साथ नेकी की उसका बदला उसने बुराई से दिया। रेज़िडेंट ब्रिस्टो

साहब की ही कृपा से उसे नियामत मिली थी। पर उन्हींके साथ उसने बुरा व्यवहार किया। आसफुद्दौला के समय में राज्य की जो दुर्दशा हुई और प्रजा पर जो आपदायें आईं उन सबका कारण वह और ख़ुद नवाब वज़ीर था। इसमें उसका अंश अधिक और नवाब वज़ीर का कम था। उसने गवर्नर जनरल के दफ़्तर के अहलकारों को और कौंसिल के मेम्बरों तक को मिला लिया था, यहाँ तक कि उनके ख़ानगी नौकरों को भी उसने अपने वश में कर लिया था। इसीसे उसकी दुःशीलता, अन्याय-परायणता और द्रव्यापहार-प्रीति का पता किसी गवर्नर जनरल को नहीं लगा। अपनी कुटिल नीति से उसने वारन हेस्टिंग्ज़ और लार्ड कार्नवालिस के दिल में अपनी तरफ़ से कोई सन्देह नहीं पैदा होने दिया।

नवाब शुजाउद्दौला की सन्तति और बेगमों को हैदरबेग ख़ां के कारण बेहद तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। उसके जितने बेटे थे सबको एक एक हज़ार रुपये महीने मिलने का हुक्म था। वे सब लखनऊ में ही रहते थे। पर हैदरबेग की धोखेबाज़ी और वादेख़िलाफ़ी के कारण उनको भूखों मरना पड़ा। नवाब की बेगमें सब फ़ैज़ाबाद में रहती थीं। उनकी हालत यहां तक ख़राब थी—उनकी विपत्ति यहां तक बढ़ गई थी—कि जब अन्न न मिलने से वे बहुत ही तङ्ग आ जाती थीं तब सौ-सौ दो-दो सौ स्त्रियां एक साथ हरमसरा से निकल पड़ती थीं; बाज़ार लूट लेती थीं; और जो कुछ मिलता था उसे लेकर फिर वे हरम को लौट जाती थीं! उनको हर महीने जो रुपया मिलना चाहिए था वह हैदरबेग ख़ां के मारे समय पर कभी मिलने ही न पाता था। बहुत दिनों तक शुजाउद्दौला की बेटियों की शादी का भी प्रबन्ध नहीं हुआ। जब रुपया ही नहीं मिलता था तब बिना ख़र्च के शादी हो किस तरह! शुजाउद्दौला की मां, नवाब आलिया बेगम, जब तक ज़िन्दा थी तब तक उसने यथासम्भव अपने बेटे के हरम को अपनी देख-भाल में रक्खा और रुपये-पैसे से भी मदद की। पर उसके पास सिर्फ़ एक लाख की जागीर थी। उससे वह कहां तक उनकी मदद कर सकती थी? उसके मरने के बाद नवाबी हरम की हालत बहुत ख़राब हो गई। आसफुद्दौला की मां, अर्थात् नवाब बेगम के पास बहुत बड़ी जागीर थी और रुपया भी ख़ूब था। पर उसे कहां फ़ुरसत थी जो इन बेचारी दीन बेगमों की तरफ़ नज़र उठाकर देखती। उसे अपने ही कामों से फ़ुरसत न मिलती थी। आप पूछेंगे कि वे काम कौन से थे? पर आबू तालिब कहता है कि मैं उनका न बतलाना ही अच्छा समझता हूँ। ऐसी लज्जाजनक बातें न सुनना ही अच्छा है। एक दफ़े, शुजाउद्दौला का एक बेटा ख़र्च से बहुत तङ्ग आ गया। जब वह अधिक दिनों तक भूख-प्यास न बरदाश्त कर सका तब वह कलकत्ते भाग गया और गवर्नर जनरल के सामने जाकर रोया। गवर्नर जनरल ने नवाब वज़ीर को इस विषय में हिदायत लिख भेजी। पर वज़ीर ने जो जवाब भेजा उसे आपको कलेजा कड़ा करके सुनना पड़ेगा! आपने फ़रमाया कि—लड़का ऐयाश है; प्रेम के फन्दे में फँसकर कलकत्ते गया है; उसे कोई तकलीफ़ नहीं; आप उसे वापस भेज दीजिए। भूखों मरना और ऐयाशी!

मुल्क का ठीक बन्दोबस्त न होने और फ़ौज का ख़र्च बढ़ जाने के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी को जो रुपया देना पड़ता था वह नहीं पहुँच सका। धीरे धीरे रक़म बहुत बाक़ी रह गई। जितने सूबेदार, फ़ौजदार और चकलेदार थे उन्होंने लाखों रुपये लूट खाये। जो दस रुपये का नौकर था उसका ख़र्च पचास रुपये महीने का था। बड़े बड़े अफ़सरों के यहाँ कभी कभी नवाब साहब दावत खाने और नाच-तमाशा देखने जाया करते थे। उनके लिए ख़ास तरह की तैयारियां करनी पड़ती थीं। उनमें हज़ारों रुपये ख़र्च होते थे। इस बात को नवाब साहब अपनी आँखों देखते थे। पर शायद ही कभी वे इस बात का ख़याल करते रहे हों कि ये लोग इतना रुपया कहाँ से लाते हैं। जहां प्रभु ऐसे हैं, तहां सेवकों की क्यों न बन आवे? फ़ौज का ख़र्च पहले कोई २५ लाख रुपया कम्पनी को देना पड़ता था। पर आसफुद्दौला के समय में वह ३१ लाख से भी कुछ अधिक हो गया। सात-आठ वर्ष में दो करोड़ रुपये कम्पनी के देने बाक़ी रहे। इससे नवाब साहब घबरा उठे। फ़िज़ूलख़र्ची बन्द होने लगी। नौकर-चाकरों की तनख़्वाह कम कर दी गई। जो रही सो भी मुश्किल से मिलने लगी। पर बाहर सूबों में लोग पहले ही की सी लूट-मार मचाते रहे और जो कुछ रुपया वसूल हुआ उसका अधिकांश वे अपनी ही सन्दूक़ के सिपुर्द करते रहे। सरवार के सूबेदार कर्नल हना ने तीन-चार वर्ष में ३० लाख रुपये पैदा

किये ! पर आबू तालिब का कथन है कि उन्होंने अन्याय से यह रुपया नहीं प्राप्त किया । नवाब के ख़ज़ाने में जितनी मालगुज़ारी जानी चाहिए उतनी भेजकर जो बचत हुई उसे ही उन्होंने लिया । यह उनके सुप्रबन्ध का फल था । जब बनारस-नरेश चेतसिंह और वारन हेस्टिंग्ज़ से लड़ाई हुई तब कर्नल हना हेस्टिंग्ज़ की मदद को नहीं आ सके । इससे गवर्नर जनरल ने उन पर बड़ी अप्रसन्नता प्रकट की । इस, या और किसी कारण से उन्हें कलकत्ते जाना पड़ा । वहां उन्होंने अपने ही हाथ अपनी जान ले ली ।

मुल्क की ख़राब हालत से घबराकर आसफुद्दौला ने वारन हेस्टिंग्ज़ को लिखा कि कृपा करके अँगरेज़ी फ़ौज कम कर दीजिए और अँगरेज़ी अफ़सरों को भी हटा लीजिए । इस सम्बन्ध में, १७८१ ई० में, आसफुद्दौला ने चुनार में जाकर गवर्नर जनरल से भेंट की । गवर्नर जनरल ने यह फ़ैसला किया कि थोड़ी सी फ़ौज छोड़कर बाक़ी सब अँगरेज़ी फ़ौज अवध से दूसरी जगह भेज दी जाय और जो तअल्लुक़ेदार बहुत प्रबल हो जाने के कारण मालगुज़ारी नहीं देते उनके तअल्लुक़े ज़ब्त कर लिये जायँ ।

इस फ़ैसले के मुताबिक़ बहुत कुछ काररवाई हुई । कर्नल हना का ज़िक्र ऊपर आ ही चुका है । उनके साथी डाक्टर ब्लेन, मेजर मेक्डोनल्ड, कप्तान फ्रैंक, कप्तान गार्डन, मेजर लम्सडन इत्यादि और भी अँगरेज़ धीरे धीरे अलग किये गये । कई पल्टनें भी तोड़ दी गईं । कर्नल हना की जगह पहले अब्दुल्लाबेग को, और उसके मारे जाने पर राजा सूरतसिंह को मिली । कुछ दिनों बाद रेज़िडेण्ट ब्रिस्टो साहब की जगह पर मिडिल्टन साहब आये—अर्थात् बहुत से पुराने अफ़सरों की जगह नये नियत हुए ।

बनारस के राजा चेतसिंह के साथ अँगरेज़ों का जो युद्ध हुआ उसमें फ़ैज़ाबाद की बेगमों ने अँगरेज़ों की मदद नहीं की और कर्नल हना के साथ भी उन्होंने अच्छा बर्ताव नहीं किया, जिससे वे भी उनकी मदद के लिए नहीं पहुँच सके । यह इलज़ाम बेगमों पर लगाया गया और वारन हेस्टिंग्ज़ का हुक्म हुआ कि उनकी जागीरें ज़ब्त कर ली जायँ । इसके साथ ही गवर्नर जनरल ने नवाब से ७५ लाख रुपये माँगे, क्योंकि कम्पनी के ख़ज़ाने में उस समय रुपये की बेहद कमी थी । इस पर हैदरबेग ने नवाब वज़ीर को सुझाया कि यह रुपया बेगमों से ही लिया जाय । नवाब को यह बात पसन्द नहीं आई । पर जब उस पर बहुत दबाव डाला गया और गवर्नर जनरल के हुक्म से हैदरबेग और रेज़िडेण्ट दोनों उसके पीछे पड़ गये तब उसने वह बात मंज़ूर की । पर बेगमों ने रुपया देने से साफ़ इनकार किया । इस पर उनके ऊपर चढ़ाई हुई । आबू तालिब का कथन है कि रेज़िडेण्ट मिडिल्टन साहब और उनके नायब जानसन साहब के साथ नवाब वज़ीर भी चढ़ाई पर गया । पर किसी किसी इतिहासकार का मत है कि वज़ीर नहीं गया । सिर्फ़ इन दो साहबों और हैदरबेग ख़ां ने ही चढ़ाई की । बेगमों के पास कोई चार हज़ार आदमी थे । उन्होंने नवाब की फ़ौज का मुक़ाबला किया । पर अख़ीर में उनकी हार हुई और बेगमों की और उनके वृद्ध गुलाम, ख़्वाजे और नौकर-चाकरों की बेहद दुर्दशा हुई । उन बेगमों तक के पैरों में बेड़ियां डाली गईं । उनका यहां तक अपमान किया गया और उनको यहां तक मानसिक और शारीरिक कष्ट दिया गया कि उसका वर्णन पढ़कर पत्थर का कलेजा भी पिघल जा सकता है । इन बेगमों की बदौलत हैदरबेग ने ख़ूब ऐश आराम किया था । इसका बदला उसने इस निर्दयता से दिया जिसका स्मरण होते ही बदन कांप उठता है । नवाब साहब अपनी मां से लड़कपन ही से नाराज़ थे । इससे इस अवसर पर उन्होंने उसके महल की तलाशी लेकर ५० लाख रुपया नक़द और ५० लाख रुपये का ज़ेवर और जवाहिरात वग़ैरह छीन लिया । जिस समय इँगलेंड में वारन हेस्टिंग्ज़ के अपराधों की जांच हुई है—जिस समय उसे एक मामूली मुजरिम की तरह घुटने टेककर पारलियामेण्ट के सामने जाना पड़ा है—उस समय उसकी आज्ञा से बेगमों पर किये गये इन अत्याचारों का जो वर्णन वाचस्पति बर्क ने अपनी वक्तृता में किया है वह बड़ा ही हृदयद्रावक है ।

नायब वज़ीर हैदरबेग के ज़ुल्म से सब तरफ़ हाहाकार मच गया । रेज़िडेण्ट मिडिल्टन साहब भी उसे तुच्छ दृष्टि से देखने लगे । इससे उन दोनों में खटपट हो गई । यह देखकर वारन हेस्टिंग्ज़ ने फिर ब्रिस्टो साहब को लखनऊ भेजा । परन्तु एक ही वर्ष बाद उनको इस्तेफ़ा देना पड़ा । राज्य की बड़ी ही दुरवस्था होने लगी । जितने आमिल और सूबेदार थे सब स्वतन्त्र से हो गये । उनकी सत्ता की सीमा

ही न रही। वे मन-माने काम करने लगे। नवाब का ज़रा भी डर उन्हें न रहा। "नवाबी" का जो अर्थ इस समय लोग करते हैं वह मूर्तिमान् देख पड़ने लगा। जो मुल्क शुजाउद्दौला के समय में ख़ूब उन्नति पर था, वह इस समय प्रायः उध्वस्त हो गया। फ़ौज के ख़र्च, अधिकारियों की द्रव्यापहार-बुद्धि और नवाब की असावधानी ने मामला इस नौबत को पहुँचाया! ब्रिस्टो साहब के बाद पामर साहब रेज़िडेंट हुए। उनका काम भी हेस्टिंग्ज़ साहब को पसन्द न आया। इससे कर्नल हायर को रेज़िडेण्टी मिली। इतने फेर-फार हुए; पर प्रायः सारी आपदाओं का मूल कारण हैदरबेग ख़ाँ हिमालय की तरह अचल रक्खा गया।

१७८४ में हेस्टिंग्ज़ साहब लखनऊ पधारे। उनकी ख़ूब मेहमानदारी हुई। नवाब के बहुत कहने सुनने पर उन्होंने फ़ौज वग़ैरह का कुछ ख़र्च कम कर दिया। पर उतनी कमी से नवाब को सन्तोष न हुआ। अतएव इस विषय में उसने लिखा-पढ़ी बराबर जारी रक्खी। इस बीच में वारन हेस्टिंग्ज़ साहब अपनी चिर-स्मरणीय राजसत्ता समेटकर अपने घर गये और लार्ड कार्नवालिस उनकी जगह पर आये। ये नये गवर्नर जनरल बड़े ही न्यायी, दयालु-प्रकृति और समझदार थे। इन्होंने १७८७ ईसवी में एक नया सन्धिपत्र लिखा। उसके अनुसार नवाब के लिए सिर्फ़ ५० लाख रुपये फ़ौजी ख़र्च देना निश्चित हुआ। इस सम्बन्ध में हैदरबेग ने बड़ी कारगुज़ारी दिखलाई। वह ख़ुद कलकत्ते गया और वहाँ रहकर बहुत सी बातें नवाब के फ़ायदे की करा लाया। यह सन्धिपत्र भी उसीकी चेष्टा का फल समझा गया। नवाब के ऊपर कम्पनी का जो बक़ाया था वह भी माफ़ कर दिया गया। छावनियों के ख़र्च के लिए जो कर लगाया गया था उसके बन्द कर दिये जाने का भी हुक्म मिल गया। सूबात में जो अँगरेज़ रह गये थे उनको भी बरख़ास्त करने की आज्ञा गवर्नर जनरल ने दे दी। इससे हैदरबेग की महिमा और भी बढ़ गई और उसने पहले से भी अधिक गहरा हाथ मारना शुरू किया।

हैदरबेग के कलकत्ते से लौट आने पर, दो महीने बाद, कर्नल हायर भी अलग किये गये। उनकी जगह पर एक और साहब आये। इसके बाद लार्ड कार्नवालिस ख़ुद लखनऊ पधारे। उनकी अगवानी के लिए हैदरबेग बनारस तक और नवाब वज़ीर इलाहाबाद तक गये। लखनऊ में उनकी ख़ूब ख़ातिरदारी हुई। पर लार्ड साहब ने नवाब की एक भी नज़र मंज़ूर न की। नवाब का एक पैसा भी उन्होंने अपने लिए ख़र्च न होने दिया। उन्होंने नवाब का बड़ा आदर किया; उसके साथ वे बहुत अच्छी तरह पेश आये। पर कुछ दिन रहने के बाद हैदरबेग की धूर्तता और नवाब की अयोग्यता उन पर प्रकट हो गई। इस पर उनको बहुत अफ़सोस हुआ। पर नवाब के साथ जो सुलूक वे कर चुके थे उसमें किसी तरह का ख़लल उन्होंने नहीं आने दिया।

हैदरबेग विषय-लोलुप आदमी था। उसका महल स्त्रियों से भरा हुआ था। ७० वर्ष की उम्र में उसके शरीर में क्षीणता आ गई। इस उम्र में भी आपने दवा से उसे दूर करना चाहा। आपने हकीम शफ़ी ख़ाँ की शरण ली। हकीम साहब ने फ़रमाया कि एक चीज़ के इत्र में सींक डुबोकर उस सींक को पान पर रगड़ दिया कीजिए और ऐसे पान दिन में एक-दो बार खा लिया कीजिए। ख़ाँ साहब को इससे फ़ायदा हुआ। इससे आप ऐसे पान दस-दस बीस-बीस खाने लगे। इसका फल यह हुआ कि आपके बदन में बेहद गरमी बढ़ गई और शीघ्र ही आपने उस मुल्क का रास्ता लिया जहाँ इस तरह की दवाइयाँ खाने की कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ती! उसके मरने के बाद उसकी जायदाद, क़ायदे के मुताबिक़, ज़ब्त नहीं की गई। उसने जो अनन्त धन पैदा किया था वह उसकी बीबियों और बेटों के हाथ आया, जिन्होंने उसे थोड़े ही दिनों में बरबाद कर दिया।

हैदरबेग के मरने पर आसफुद्दौला ने टिकैतराय को नायब और हसन रज़ा ख़ाँ को बख़्शी बनाया। आबू तालिब का कथन है कि टिकैतराय यद्यपि बहुत दिनों से एक अच्छे पद पर था; पर वह कुलीन घराने का न था। वह दृढ़-प्रतिज्ञ और गम्भीर भी न था और न लोग उससे डरते ही थे। नवाब ने समझा कि टिकैतराय के नायब होने पर मैं मन-माना काम कर सकूँगा; मुझे रोकने या नेक सलाह देने की उसे हिम्मत न पड़ेगी। हम नहीं कह सकते यह बात कहाँ तक सच है। पर जब तक टिकैत-

राय के हाथ में नियाबत रही उसने यथा-साध्य मुल्क का अच्छा प्रबन्ध किया। तथापि चिरकाल की दुर्व्यवस्था अल्पकाल में नहीं जा सकती। टिकैतराय ने अपने सजातियों और सम्बन्धियों को पहले ही से राज्य के दफ़्तरों में भर रक्खा था। नायब होने पर उनकी और भी अधिक चढ़ती कला हुई। टिकैतराय का बड़ा भाई निर्मलदास फ़ौजदार हुआ। बैजनाथ और धनपतराय ख़ज़ाने में आये। हुलासराय टिकैतराय का पेशकार हुआ। इन लोगों ने बेहद माल मारे और थोड़े ही दिनों में लक्षाधीश हो गये। टिकैतराय में धार्म्मिकता की मात्रा अधिक थी। उसने न मालूम कितने गाँव, कितनी ज़मीन और कितना रुपया ब्राह्मणों को दे डाला। कम उम्र के युवकों पर उसकी विशेष कृपा थी। इसलिए उन्हें उसने बड़े बड़े ओहदे दिये। उन्हें बे शुमार रुपया और बेशक़ीमती चीज़ें दे देकर उसने ख़ज़ाना ख़ाली कर दिया। कुछ दिनों के बाद दरबार के अधिकारियों में परस्पर विरोध पैदा हो गया। उसका फल यह हुआ कि टिकैतराय की नियाबत छिन गई और वह झाऊलाल को मिली। टिकैतराय ने अपना नाम बना रखने के लिए एक काम किया। उसने बारावंकी के ज़िले में टिकैतगञ्ज और टिकैतनगर बसाये। इनमें से टिकैतनगर अच्छा क़सबा है। उसे हमने खुद देखा है। उसमें बाज़ार लगता है। बाज़ार अच्छा बना हुआ है। मकानात भी अच्छे अच्छे हैं। उसके नाम से लखनऊ में एक-आध महल्ला भी मशहूर है। झाऊलाल के नाम का भी एक बाजार शायद लखनऊ में है। परन्तु झाऊलाल के समय में कोई मशहूर राजकीय काम नहीं हुआ। हाँ, टिकैतराय के समय में रुहेलों से अँगरेज़ों की लड़ाई हुई। उसमें आसफ़ुद्दौला ने अँगरेज़ों को मदद दी। इससे रुहेलों का आधा मुल्क उसे मिला।

लार्ड कार्नवालिस के बाद सर जान शोर गवर्नर जनरल हुए। वे जब लखनऊ आये तब वहां की बदइन्तज़ामी देखकर सख़्त नाराज़ हुए। उन्होंने झाऊलाल को नियाबत से हटा दिया और तफ़ज़्ज़ुलहुसेन को वह जगह दी। यद्यपि नवाब वज़ीर ने ऊपरी मन से यह फेरफार पसन्द किया; पर दिल से उसे तफ़ज़्ज़ुलहुसेन की नियाबत अच्छी नहीं लगी। सर जान शोर ने मुल्क का अच्छा प्रबन्ध होने के लिए फ़ौज बढ़ा दी और पांच-छः लाख रुपये का ख़र्च नवाब की पीठ पर अधिक लाद दिया। इन सब बातों से उसके चित्त पर ऐसा आघात हुआ कि २१ सितम्बर १७९७ को वह मर ही गया। किसी किसीका मत है कि बीमारी में उसने दवा तक नहीं खाई।

आसफ़ुद्दौला के बाद उसका बेटा वज़ीर अली लखनऊ की नवाबी गद्दी पर बैठा। आसफ़ुद्दौला की बेगम उसके बाद बहुत दिनों तक जीवित रही। सन् १८१३ ईसवी में वह मृत्यु को प्राप्त हुई। जब तक वह जीती रही तब तक उसे ८७,१६३ रुपये वसीक़ा मिलता रहा।

जिसके ख़ज़ाने में रुपये का हमेशा अकाल रहता था; जो फ़ौज का ख़र्च तक नहीं अदा कर सकता था; जिस पर कम्पनी का ऋण बना ही रहता था; ईस्ट इंडिया कम्पनी को रुपया देने के लिए जिसे अपनी मां की सम्पत्ति भी लूट लेनी पड़ी थी, उसकी फ़िज़ूल-ख़र्ची आबू तालिब के मुँह से सुनिए—

नवाब वज़ीर की फ़िज़ूल-ख़र्ची इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि जो रुपया बेफ़ायदा बरबाद किया जाता था उससे एक बहुत बड़ी फ़ौज रक्खी जा सकती थी। होली और मोहर्रम में, ब्याह, शादी और दावतों में, रोशनी और नाच-तमाशे में, हर साल, पांच-पांच छः-छः लाख रुपये फूँके जाते थे। उसके हाथियों, घोड़ों और कुत्तों वग़ैरह में जो ख़र्च होता था उसका अन्दाज़ा सिर्फ़ इस बात से किया जा सकता है कि नवाब साहब ने १२०० हाथी, ३००० घोड़े और १००० कुत्ते पाल रक्खे थे। इनमें से सिर्फ़ ४०० हाथी, २०० घोड़े और १०० कुत्ते सवारी या शिकार के लायक़ थे! बाक़ी किसी काम के न थे। वे सब नवाब को लूटने के लिए रक्खे गये थे। यदि एक कुत्ता मर जाता तो उसकी जगह पर दूसरा, शहर की किसी गली से, पकड़ लाया जाता था। नवाब ने अनन्त कबूतर, मुर्ग़, भेड़ें, हिरन, बन्दर, सांप, बिच्छू और मकड़े पाल रक्खे थे। यदि कोई अच्छा बन्दोबस्त करनेवाला होता तो वे भी आराम से रहते और बचे हुए रुपये से मृत नवाब शुजाउद्दौला की सन्तति और हरम का ख़र्च भी अच्छी तरह चला जाता। आपके पाले हुए सांप इतने बड़े थे कि उनमें से

कोई कोई एक एक मन मांस खा जाता था ! नवाब साहब ने जितने जानवर पाल रक्खे थे, सब अच्छी तरह रक्खे जाते थे ; सबके आराम का आपको ख़याल रहता था। आपको रहता किसके आराम का ख़याल न था ? आदमियों के ! विशेष करके अपने सम्बन्धियों और पुराने आश्रितों के ! ! ! आपके निज के नौकरों का शुमार नहीं था; वे हज़ारों थे। आपके यहां २,००० फर्राश थे, १०० चोबदार और ख़िदमतगार थे; ४,००० माली थे और सैकड़ों बावर्ची थे। आपके बावर्चीख़ाने का ख़र्च दो से लेकर तीन हज़ार रुपये रोज़ाना था। जब आप मुल्क देखने के नाम से बाहर दौरे पर जाते थे तब हज़ारों आदमी आपके साथ आपका माल-असबाब, मेज़-कुर्सी और डेरा-डण्डा वग़ैरह ले जाने के काम पर रहते थे। उनका ख़र्च भी ख़ज़ाने से दिया जाता था नवाब की फ़िज़ूल-ख़र्ची बयान से बाहर है। नवाब ही की नहीं हैदरबेग, टिकैतराय, हसन रज़ा ख़ां वग़ैरह की भी फ़िज़ूल-ख़र्ची बेहद बढ़ी-चढ़ी थी। फ़िज़ूल-ख़र्ची न करने से उस समय लोगों की, विशेष करके अधिकारियों की गिनती भले आदमियों में न होती थी। पर बेहद और बे-हिसाब ख़र्च करने के लिए रुपया दरकार होता था जिसे लोग लूट, मार, रिश्वत, चोरी और बेईमानी से पैदा करते थे।

१७९६ ईसवी में आसफुद्दौला ने अपने बेटे वज़ीर अली की शादी की। उसमें उसने ३० लाख रुपया ख़र्च किया। २० लाख रुपये के रत्नों के आभूषण उसने दूलह को पहनाये। १२०० सजे हुए हाथी बारात में थे। शादी के दिन वज़ीर अली के तख़्तेरवां के सामने आसफुद्दौला पैदल चला। आसफुद्दौला के बाद वज़ीर अली ही को गद्दी मिली। परन्तु नायब वज़ीर तफ़ज़्ज़ुलहुसैन को यह बात पसन्द न आई। इससे रेज़िडेंट च्यरी साहब से मिलकर आसफुद्दौला के छोटे भाई सआदत अली को उसने गद्दी दिलवाई। सआदत अली उस समय काशी में पड़ा हुआ अपने दिन काटता था। बसन्त ख़ां से मिलकर नवाब के ख़िलाफ़ साज़िश करने के अपराध में उसे लखनऊ छोड़ना पड़ा था। पदच्युत होने पर वज़ीर अली उसकी जगह काशी भेजा गया। वहां उसको डेढ़ लाख रुपये पेंशन मिलने लगी। पर पदच्युति के कारण उसने अँगरेज़ों से नाराज़ होकर बग़ावत की। इसलिए पहले वह कलकत्ते में, फिर बेल्लोर में क़ैद रक्खा गया। १८१७ ई० में वह मरा। उस समय उसके कफ़न वग़ैरह में सिर्फ़ ७० रु० ख़र्च हुए। जिसकी शादी में ३० लाख रुपये उड़ाये गये थे उसके दफ़न करने में सिर्फ़ ७० रुपये लगे ! ईश्वरी लीला !

जिस वज़ीर अली की शादी में नवाब साहब पैदल चले उससे, कुछ दिनों बाद, जब आप नाख़ुश हो गये तब उसकी सारी जायदाद आपने छीन ली। उस समय आपने फ़रमाया—यह फर्राशज़ादा अब अपनी असली हैसियत को पहुँच गया। वज़ीर अली हरमसरा में कबूतर और मुर्ग़ हलाल करके नौकरों से कहता था कि तुम सब लोग मातम करो, और वह ख़ुद काले कपड़े पहनता था। गोया नवाब वज़ीर के मरने पर होनेवाली बातों का, इस तरह, वह पहले ही से अभ्यास करता था। इसी बात पर नवाब उससे नाराज़ हो गया था। आबू तालिब कहता है कि वह सचमुच ही एक फर्राश का लड़का था। जब फर्राश की बीबी गर्भवती हुई तब उसने उसे, कुछ रुपया लेकर, नवाब साहब को दे डाला। उसी औरत से वज़ीर अली पैदा हुआ। नवाब के सभी लड़के प्रायः इसी तरह के थे। उसके नौकर इसी फ़िराक़ में रहते थे कि कोई गर्भवती स्त्री मिले। उसे वे उसके रक्षकों से मोल ले आते थे और नवाब के हरम में रख देते थे। जब नवाब बाहर हवा खाने निकलता था तब कभी कभी गर्भवती स्त्रियां उसकी पालकी के पास चिल्लाकर कहती थीं—आपको याद न होगा; पर आप अपने बेटे पर रहम करें। वह मेरे पेट में है ! नवाब साहब ऐसी स्त्रियों को क़बूल कर लेते थे और अपने हरम में पहुँचा देते थे ! नवाब की कितनी ही सन्तति कुरूप और काली थी। नवाब के दोस्तों में भी बहुत से ऐसे थे जो नीच ख़ानदान के थे। उनमें से किसी किसी का प्रवेश नवाब के हरम तक था। आबू तालिब इस्फ़हानी ऐसी ही कहानी कहता है।

दूसरों को आराम से रहते देख आसफुद्दौला को बड़ा क्रोध आता था। उसमें मत्सर की मात्रा बेहद थी। उसने इश्तहार दे रक्खा था कि मेरे सिवा कोई बर्फ़ इस्तेमाल न करे। और भी कई चीज़ों की उसने मनाई कर दी थी। लखनऊ और फ़ैज़ाबाद में नवाब के अनेक बाग़ थे। उनमें इतने फल और फूल होते थे कि उनकी

गिनती नहीं । वे सब बरबाद हो जाने पर फेंक दिये जाते थे, पर किसीको मिलते न थे ! आम के जितने अच्छे अच्छे बाग़ थे, मौसिम में, वे सब ज़ब्त कर लिये जाते थे । गुलाब और केवड़ा बेचने की मुमानियत थी । इसलिए अमीर, आदमियों को ये दोनों चीज़ें बङ्गाले से मँगानी पड़ती थीं । फूल तक बेचने का हुक्म न था । इससे जब किसीके यहाँ शादी होती थी तब वह जङ्गल से फूल मँगवाता था और उन्हींकी माला अपने मेहमानों के गले में डालता था । लखनऊ में किसी कारख़ाने की एक छींट नवाब साहब ने पसन्द की । वह जितनी थी सब आपने ले ली । एक दिन एक आदमी को आपने वही छींट पहने देखा । इस पर आपको बेहद ग़ुस्सा आया । आपने उस कारख़ानेवाले को गधे पर चढ़ाकर सारे शहर में घुमाया ! घोड़े के सौदागर अपने घोड़े पहले नवाब साहब को दिखलाने लाते थे । बाद में उनको औरों के हाथ बेचने की इजाज़त मिलती थी । नवाब के निज के जितने नौकर और ख़िदमतगार थे सबको स्त्रियों की तरफ़ देखने की सख़्त मनाई थी । अपनी विवाहिता स्त्रियों के यहाँ भी वे लोग नहीं जाने पाते थे ! इसके लिए जासूस मुक़र्रर थे । यदि कोई अभागी इसके ख़िलाफ़ काम करते पकड़ा जाता था तो वह फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया जाता था । इन बातों पर विश्वास नहीं होता ; पर आबू तालिब ने अपनी आंखों देखी बातें लिखी हैं । वह कहता है कि नवाब के सब दुराचार और दोषों का मैं वर्णन करूँ तो एक महाभारत ही हो जाय । इससे मैं सिर्फ़ वही दो-चार बातें लिखता हूँ जिनका सम्बन्ध सर्वसाधारण से है । यदि मैं इनको भी न लिखूँ तो आसफ़ुद्दौला के इतिहास का एक अङ्ग ही छूट जाय ।

आसफ़ुद्दौला साल में दो दौरे करता था । एक ठीक जेठ में और दूसरा वर्षा के बन्द होते ही । वह अकसर अलमोड़ा और बुढ़वल की तरफ़ जाता था । कुँआर-कातिक के महीनों में वहाँ जाना मानों "जहन्नुम" में जाना है । हज़ारों आदमी और जानवर मर जाते हैं । एक दौरे में, फ़ैज़ाबाद तक, आबू तालिब भी साथ था । इस दौरे का कुछ हाल उसीके मुँह से सुनिए—

नवाब वज़ीर बुढ़वल जाने के लिए तैयार हुआ । रेज़िडेंट च्यरी साहब ने कहा, कुछ दिन ठहर जाइए ; अभी मुमकिन है और बरसात हो । पर आपने एक न मानी । आपने कूच कर ही दिया । दूसरे ही पड़ाव पर पानी बरसा और बहुत तेज़ हवा चली । साथ में हज़ारों हाथी थे । तोपें भी बहुत सी थीं । उनके चलने से इतना कीचड़ हो गया कि रास्ता दलदल-मय हो गया । सबको बेहद तकलीफ़ हुई । दरियाबाद से फ़ैज़ाबाद तक यह जान पड़ता था कि मुर्दा घोड़े, बैल, ऊँट और आदमी कीचड़ के भीतर गाड़ दिये गये हैं । फ़ैज़ाबाद में सबके लिए नवाब वज़ीर के आसफ़बाग़ में जगह काफ़ी न थी । इससे बहुत आदमियों ने बाहर मैदान में ख़ेमे डाले । वहाँ पर डेढ़ फुट गहरा कीचड़ था । रात को इतना पानी पड़ा और इतने ज़ोर से हवा चली कि लोगों को उसी कीचड़ में डेरों के नीचे रस्से पकड़कर खड़ा रहना पड़ा । १५ दिन तक यह दशा रही ! नवाब साहब घबरा गये । उनका धैर्य्य छूट गया । वे वहाँ पर और न रह सके । कूच का हुक्म हुआ । घाघरा की छाती पर पुल बनाया गया । वह एक ही रात में टूट गया । जो लोग आगे भेज दिये गये थे उन्होंने आकर कहा कि जहाँ पर गत वर्ष शिकार खेला गया था वहाँ बाँसों पानी है और जिस गाँव में नवाब साहब ठहरे थे वहाँ भी पानी की चादर बिछी हुई है । पर नवाब साहब ने यह सब झूठ माना । उन्होंने समझा कि हमारे साथियों के सिखलाने से ये लोग ऐसा कह रहे हैं, जिसमें उनको दौरे पर न जाना पड़े । हुक्म हुआ कि पड़ाव का कूच हो । पांच दिन तक बरसते पानी में आदमी, असबाब और जानवर नावों पर उतरते रहे और नायब-वज़ीर ख़ुद खड़े खड़े उतराई की निगरानी करते रहे । उतरने में बहुत सी नावें उलट गईं । कितने ही हाथी डूब गये । कितने ही आदमी डूब मरे । असबाब की बरबादी का तो कुछ हिसाब ही नहीं । बरसात में घाघरा पार करना दिल्लगी नहीं है । पाँच दिन में सिर्फ़ आधे आदमी और जानवर उतर पाये । छठे दिन नवाब वज़ीर ने घाघरा पार करने का इरादा किया । पर रात को इतने ज़ोर का पानी आया और इतनी तेज़ हवा चली कि घाघरा के किनारे आपके डेरे के खूँटे ही उखड़ गये । रात भर कहार लोग उनको हाथों से थांभे रहे । दूसरे दिन नवाब ने अपना डेरा दूसरी जगह ले जाना चाहा ; पर कहीं

सूखी ज़मीन ही न मिली। इससे मूँड़ मारकर, घाघरा के किनारे से, उसे फ़ैज़ाबाद वापस आना पड़ा। जो लोग उतर गये थे वे फिर वापस बुलाये गये। इस तरह लोगों को जो तकलीफ़ हुई वह बयान से बाहर है। कुछ दिनों बाद जब पानी बन्द हुआ और मौसिम ज़रा अच्छा आया तब नवाब साहब ने घाघरा को पार किया। तब तक आपको फ़ैज़ाबाद ही में पड़े रहना पड़ा।

नवाब के सालाना दौरों में जो लोग उसके साथ रहते थे उनको हुक्म था कि वे घास, भूसा, लकड़ी और घड़े वग़ैरह प्रजा से ले लिया करें। इन चीज़ों का देना प्रजा को न खलता था, क्योंकि उन्हें इन चीज़ों के देने की आदत पड़ गई थी। पर नवाब के आदमी अनाज और रुपया-पैसा तक ज़बरदस्ती ले लिया करते थे—इतना कि दो-तीन महीने, जब तक वे बाहर रहते थे, वही काम आता था और लखनऊ लौटने पर भी कई महीने के लिए काफ़ी होता था। जहां नवाब का पड़ाव पड़ता था वहां आसपासवाले गांव ख़ाली हो जाते थे। लूट-मार के डर से लोग अपना अपना घर छोड़कर और कहीं चले जाते थे। इन ख़ाली घरों के छप्परों में नवाब के आदमी आग लगा देते थे! वह आग मानों उनके लिए रोशनी का काम देती थी! पड़ाव में आदमियों की इतनी अधिकता रहती थी कि सबके लिए ईंधन का बन्दोबस्त न हो सकता था। इससे वे लोग प्रजा के मकानों की छत और छप्पर वग़ैरह गिरा देते थे। तब उनकी लकड़ी से उन लोगों का आध सेर आटा पकता था!!! जब टिकैतराय ने नायब वज़ीर से इस ज़ुल्म की शिकायत की तब यह जवाब मिला कि यदि दौरे के समय, साल में दो-चार महीने, नवाब के आदमियों को इस तरह लूट-मार करने का मौक़ा न मिलेगा तो वे नवाब की नौकरी ही क्यों करेंगे? इससे यदि ये बातें रोकी जायँगी तो दिल बहलाने के लिए नवाब का सैर-सपाटे करना ही रुक जायगा!

आसफ़ुद्दौला के समय तक अवध में दीवानी या फ़ौजदारी की कोई नाम लेने लायक़ कचहरी न थी, बलवान् निर्बल को बेखटके सताता था। जिसमें बल था वही अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले को सज़ा दे सकता था। नवाब के अफ़सरों के नौकर और चोबदार क़ाज़ी और मुफ़्ती से मन-माने फ़तवे ले लिया करते थे और जिसके ख़िलाफ़ चाहते थे डिकरी लिखवा लेते थे। नवाब की अरदली में जो राजा और अमीर रहते थे उनमें से राजा भवानीसिंह भी थे। पहले-पहल इन्हींको चीफ़ जस्टिस की कुरसी मिली। पर उनका होना न होना बराबर था; क्योंकि नवाब के आदमियों को यह बात बिलकुल पसन्द नहीं आई। उन्होंने शहर में अपनी ही हुकूमत जारी रक्खी। नवाब को अपनी प्रजा के मरने-जीने की बिलकुल परवा न थी। सब्ज़ी मंडी में एक हवाईगर रहता था। उसीके मकान के पास आबू तालिब का भी मकान था। वह लोगों के लड़के चुरा लाता था और कुछ निर्दय जादूगरों के कहने से उन्हें मार डालता था। धीरे धीरे यह बात खुल गई। लोगों ने उसका घर खोदा और बहुत से लड़कों की लाशें निकालीं। उनके कलेजे निकाल लिये गये थे, उनकी ज़बानें काट ली गई थीं; उनके चेहरे जला दिये गये थे। वे सब लाशें नवाब की ड्योढ़ी पर पहुँचाई गईं। पर लोगों के हज़ार रोने और सिर पटकने पर भी नवाब ने इतना तक न पूछा कि ये कौन हैं और क्यों शोरो-गुल करते हैं। उनका न्याय न हुआ। इससे सिर पीटकर वे अपने अपने घर लौट आये। वह हवाईगर कुछ दिनों तक तो छिपा रहा; पर दो-चार महीने बाद उसका सिर अपने महल्ले में उतना ही ऊँचा हो गया जितना पहले था।

न्याय का एक और नमूना सुनिए। झाऊलाल के एक सम्बन्धी ने शुजाउद्दौला के एक सम्बन्धी रज़ाबेग ख़ां को मार डाला। रज़ाबेग की माँ ने हज़ार कोशिशें कीं कि मेरे बेटे के मारनेवाले को सज़ा मिले, पर सब व्यर्थ हुआ। तब रज़ाबेग के भानजे ने अपने मामू के मारनेवाले को नवाब के महल के फाटक पर ही क़त्ल करके अपने मामू के ख़ून का बदला लिया। ऐसे मामले प्रायः रोज़ हुआ करते थे। जिनमें ताक़त थी वह ख़ुद ही अपने अत्याचारियों को सज़ा दे लेते थे।

१७८३-८४ ईसवी में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। अनाज इतना मँहगा हो गया जितना सौ वर्ष पहले कभी नहीं सुना गया था। हज़ारों आदमी, भूख के मारे, रोज़ मरने लगे। लखनऊ के इर्द-गिर्द इतनी लाशें इकट्ठी हो गईं कि उनकी बदबू से शहर में रहना मुश्किल हो गया। उस समय लखनऊ में जितने अँगरेज़ थे उन सबने अकाल के कँगलों की बड़ी मदद की। हज़ार पांच सौ

आदमियों के खाने, कपड़े और दवा-पानी का बन्दोबस्त उन्होंने किया। उसी समय हेस्टिंग्ज़ साहब लखनऊ पधारे। उनके हुक्म से नायब-वज़ीर हैदरबेग ने हज़ार रुपये रोज़ कँगलों को बांटना शुरू किया। पर बांटनेवाले ऐसे लोभी, निर्दयी और चोर थे कि आधा रुपया वे रोज़ बीच ही में उड़ा लेते थे। रुपया बांटने के समय इतनी बद-इन्तज़ामी रहती थी कि बेचारे ग़रीब आदमियों के सिर फूट जाते थे और हाथ-पैर टूट जाते थे—यहां तक कि बहुत लोग ज़मीन पर गिरकर कुचल तक जाते थे। उस भीड़ में यदि कोई जवान लड़की देख पड़ती थी तो उसकी जांच होती थी। यदि वह बातचीत करने में चतुर जान पड़ती थी और उसके गले की आवाज़ अच्छी होती थी तो वह हैदरबेग ख़ां के हरम में पहुँचा दी जाती थी। आबू तालिब लिखता है कि हैदरबेग के बहुत से लड़के ऐसी ही लड़कियों से थे।

हैदरबेग के सम्बन्ध की बहुत सी बातें लिखने लायक़ हैं; पर प्रबन्ध बढ़ा जाता है; इससे हम और अधिक न लिखेंगे।

आसफ़ुद्दौला को इमारतें बनाने का बड़ा शौक़ था। इस काम में हर साल दस लाख रुपया ख़र्च होता था। जब एक इमारत बन जाती थी तब दो-चार रोज़ कोई उसमें रहता था। फिर वह ख़ाली हो जाती थी। तब उसमें न कोई चिराग़ जलाता था और न कोई झाड़ू लगाता था। नवाब को इमारतें बनाने की जो सनक थी उससे प्रजा को बेहद तकलीफ़ पहुँचती थी। जहां कोई इमारत बनती थी वहां के रहनेवाले निकाल दिये जाते थे; उनकी ज़मीन छीन ली जाती थी; उनके मकान ज़ब्त कर लिये जाते थे। वे लोग बहुधा अपनी चीज़-वस्तु तक न उठा ले जाने पाते थे—उनको इतना वक़्त ही न दिया जाता था। हुक्म मिलते ही लोगों के मकान गिरा दिये जाते थे और वे अपनी स्त्रियों और बच्चों को मुश्किल से बाहर निकालने पाते थे। नवाब के कारीगर और मिस्त्री बे सिर पैर के बहाने बतलाकर प्रजा के मकान खोद डालते थे, और उनकी ईंट, पत्थर और लकड़ी सरकारी काम में लाते थे। कभी कभी एक खम्भे या एक कड़ी के लिए बड़ी बड़ी आलीशान हवेलियां खोद डाली जाती थीं! नवाब के अफ़सर भी इस इमारती सनक की नक़ल करते थे। वे भी मकान और मक़बरे इत्यादि बनवाकर प्रजा को तङ्ग करते थे। काम इतनी शीघ्रता से होता था कि एक की जगह दस रुपये ख़र्च होते थे। तिस पर भी काम अच्छा न होता था। एक साल की बनी हुई इमारत दूसरे साल गिरने लगती थी। नवाब की बनवाई हुई इमारतों में इमामबाड़ा सबसे अच्छा और सबसे मज़बूत है। इमामबाड़ा बनवाने में बे शुमार रुपया ख़र्च हुआ है। जब से वह बन कर तैयार हुआ तब से हर साल, आसफ़ुद्दौला के समय में उसकी आरायश के लिए चार पांच लाख रुपया साल ख़र्च होता रहा है। इस इमामबाड़े के बनवाने में लाखों अकाल-पीड़ित आदमियों से काम लिया गया था। अतएव अनन्त आदमियों की प्राण-रक्षा हुई थी। सोने और चांदी के हज़ारों ताज़िये नवाब ने इसके लिए बनवाये थे। एक दफ़े एक डाक्टर साहब इँगलेंड जा रहे थे। उन्हें आपने एक एक लाख रुपये की लागत के दो ताज़िये वहां से लाने को हुक्म दिया। उनमें से एक हरे कांच का मांगा गया था और दूसरा लाल कांच का।

ऐशबाग़, चारबाग़, हसनबाग़, दौलतख़ाना, बिबियापुर की कोठी और चिनहुट की कोठी, इत्यादि और भी बहुत सी इमारतें आसफ़ुद्दौला ही के समय में, लखनऊ में, बनी थीं।

यद्यपि आसफ़ुद्दौला ने अपनी मां, दादी, भाई और रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक़ नहीं किया; यद्यपि उसने और उसके अफ़सरों ने बेहद फ़िज़ूलख़र्ची करके प्रजा से प्राप्त हुए धन का व्यर्थ नाश कर दिया; यद्यपि उसके समय में किसीको अपने जान-माल के रहने या चले जाने का एक पल भर के लिए भी भरोसा न था; यद्यपि मुल्क का प्रबन्ध बिलकुल ही अच्छा न था; यद्यपि रियाआ को कुछ भी सुख नहीं मिला—तथापि नवाब की आन्तरिक इच्छा यह थी कि मेरे पूर्वजों के किये हुए अच्छे कामों के ख़याल से लोग मेरा आदर करें; जो ज़ुल्म उन पर हों उन सबको गर्दन नीची करके वे बरदाश्त करें; मौत से भी अधिक अन्याय होते देख वे आंखें मूँद लें; और कभी किसी तरह की शिकायत करने के इरादे से वे होंठ न हिलावें!

नहीं मालूम आबू तालिब की कही हुई ये सब बातें कहां तक सच हैं। नवाब और उसके नायब वग़ैरह आबू

तालिब से अच्छी तरह पेश नहीं आये। यह बात उसकी किताब से ज़ाहिर है। इससे मुमकिन है वह नाराज़ हो गया हो और नवाब साहब की नवाबी का वर्णन जो उसने किया है उसमें उसने खूब नमक मिर्च लगाया हो।

कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-कमीशन।

जिस कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-कमीशन की रिपोर्ट की प्रतीक्षा हम इतने दिनों से कर रहे थे वह प्रकाशित हो गई। कमीशन १९१७ में सितम्बर के महीने में नियुक्त हुई थी। इसके मेम्बर डाक्टर सडलर (वर्तमान सर सडलर) सभापति, डाक्टर ग्रेगरी, मिस्टर हारटन, प्रोफ़ेसर रामसे म्योर, मिस्टर हारनैल, सर आशुतोष मुकरजी और डाक्टर ज़ियाउद्दीन अहमद थे अर्थात् पाँच अँगरेज़ और दो भारतवासी। कमीशन की नियुक्ति के समय जनता को भय था कि इसका भी परिणाम लार्ड कर्ज़न के १९०४ वाले यूनिवर्सिटी-कमीशन का सा होगा। परन्तु इसके अधिकतर मेम्बर धुरन्धर और उदारचित्त विद्वान् थे और उन्होंने कलकत्ता-यूनिवर्सिटी की शिक्षा की छान-बीन में बहुत परिश्रम उठाया। सर सडलर ऐसे निष्पक्ष और उदार विचारवाले अँगरेज़ विरले ही होते हैं। रिपोर्ट के सम्बन्ध में उन्हें और सर आशुतोषजी को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। श्री आशुतोषजी से तो हमें ऐसी ही आशा थी, क्योंकि वे सदैव विद्या-प्रचार और विद्योन्नति के पक्षपाती हैं और आप इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए सराहनीय कार्य्य भी करते रहे हैं। सडलर कमीशन की रिपोर्ट चार चार सौ पृष्ठ के पाँच भागों में है और इसके अतिरिक्त आठ भागों में परिक्षिप्त अङ्क और गवाहियाँ हैं। इस लेख में रिपोर्ट के विशेष विषयों का सार संक्षेप में दिये जाने का प्रयत्न किया गया है।

कमीशन ने प्रारम्भिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार नहीं किया। शिक्षा की वर्तमान प्रणाली के इतिहास के पश्चात्, उसने सैकण्ड्री शिक्षा के ऊपर विचार किया है, और उसकी सम्मति है कि स्कूलों की दशा अच्छी नहीं है, अध्यापक बहुत कम वेतन पाते हैं; परीक्षायें विद्यार्थी के लिए कठिन भार बन रही हैं, और मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा बड़ी भद्दी है, जिससे न शिक्षा ही की उन्नति होती है और न विद्यार्थी ही किसी योग्य बनता है। स्कूलों का शासन बुरा है, शिक्षा-विभाग और विश्वविद्यालय दोनों के शासन के कारण स्कूलों में पठन-पाठन बड़ा अस्त-व्यस्त होता है; और स्कूलों के काम का एक बड़ा और मुख्य भाग उनमें होता ही नहीं, जिससे वह कालेज में करना होता है। इन दोषों को दूर करने के लिए कमीशन की राय है कि स्कूलों के ढङ्ग में भारी परिवर्तन होना चाहिए। विद्यार्थी एफ० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया करें, और ज़िले ज़िले में एफ० ए० तक की शिक्षा देनेवाले 'इंटरमीडियेट' कालेजों की स्थापना होनी चाहिए। वर्तमान हाई स्कूल ही इस प्रकार के कालेज बना दिये जायँ। उनमें दो परीक्षायें हुआ करें, एक तो आज-कल के मेट्रिक्यूलेशन के ढङ्ग की और दूसरी एफ़० ए० के बराबर की; परन्तु इस दूसरी परीक्षा के पाठ्य-विषय कई प्रकार के हों और विद्यार्थी के मार्ग में आगे चलकर अनेक सुविधायें देनेवाले हों। 'इण्टरमीडियेट परीक्षा' में उत्तीर्ण होने के पश्चात्, विद्यार्थी चाहे तो आगे साहित्य का अध्ययन करेगा और नहीं तो वह कृषि, विज्ञान, शिल्पकला, वाणिज्य, आदि किसी भी विषय को सुविधा से ले सकेगा। एक प्रकार से, यह परीक्षा आगे की उच्च पढ़ाई के लिए सोपान का कार्य्य करेगी। कमीशन की सम्मति में यह परीक्षा बड़े महत्त्व की है।

स्कूलों की शासन-प्रणाली में भी बड़े बड़े परिवर्तनों की आवश्यकता है। यूनिवर्सिटी और शिक्षा-विभाग

की चक्की के दो पाटों के बीच में पिसनेवाले और जनता की आवश्यकताओं और प्रभावों से बिलकुल दूर रहनेवाले स्कूलों को कमीशन एक ऐसे शिक्षा-बोर्ड की अध्यक्षता में देना चाहता है, जिसमें १५ से लेकर १८ तक मेम्बर रहेंगे, और जिसमें जनता के विश्वास-पात्र प्रतिनिधियों की अधिकता होगी। शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष उसका कार्य्यकर्ता तो नहीं, हाँ, उसका एक सभासद् होगा। हिन्दू, मुसलमान, कौन्सिल और विश्वविद्यालय के भी प्रतिनिधि उसमें होंगे, और बोर्ड का कार्य्य यह होगा कि वह हाई स्कूलों और 'इन्टरमीडियेट कालेजों' का पाठ्य-क्रम निश्चय करे, पूर्वोक्त दोनों परीक्षाओं का प्रबन्ध करे, हाई स्कूलों और इन्टरमीडियेट कालेजों के निरीक्षण के लिए अपने इन्स्पेक्टर नियुक्त करे, और 'सहायता' इत्यादि के विषय में सरकार को उचित सम्मति दे। हाई स्कूलों और इन्टरमीडियेट कालेजों के अध्यापकों का वेतन और पद ऊँचा किया जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि वे सरकारी विद्यालयों से ग़ैर सरकारी विद्यालयों में सुविधा से जा सकें।

कमीशन की राय में, यूनिवर्सिटी की शिक्षा में निम्नलिखित दोष हैं—बालकों की संख्या की अधिकता है (इन्टरमीडियेट कालेजों के स्थापित हो जाने से यह कठिनाई बहुत कम हो जायगी); कालेजों में अध्यापकों और धन की कमी है (अनेक कालेज तो विद्यार्थियों की फ़ीस ही से अपना काम चलाते देखे गये हैं); शिक्षा केवल साहित्य सिखानेवाली है और साधारण व्याख्यानों ही से उसकी इति-श्री हो जाती है; पाठ्य-क्रम बहुत संकुचित ओर आवश्यकताओं को पूरा न करनेवाला होता है; शिक्षकों का वेतन बहुत कम है और आगे की उन्नति की कोई आशा नहीं होती। एम० ए० की पढ़ाई पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता; इसलिए उससे नीचे की पढ़ाई में समान उन्नति नहीं होती; गवर्नमेंट और यूनिवर्सिटी का, और यूनिवर्सिटी और विद्यालयों का पारस्परिक सम्बन्ध उचित और लाभदायक नहीं है; विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, चरित्र और अध्ययन में अनेक त्रुटियाँ हैं। फिर एक यह भाव फैल गया है कि नौकरी के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री का होना आवश्यक है, यहाँ तक कि अब क्लर्की तक के लिए ऐसा माना जाता है और बहुत विद्यार्थी शिक्षा की प्राप्ति के लिए नहीं, बरन नौकरी की प्राप्ति के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए कमीशन ने जो उपाय बताये हैं उनमें से मुख्य ये हैं—

यूनिवर्सिटी के शासन के कार्य में बहुत कुछ परिवर्तन किया जाय; डिग्री प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष की अवधि रक्खी जाय; भारत-मन्त्री और भारत-सरकार प्रोफ़ेसरों की नियुक्ति न करें; कालेजों के अधिकारी एक कमेटी की सम्मति से उनकी नियुक्ति किया करें; विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाय, और इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए प्रत्येक विद्यालय में एक बोर्ड रहे जिसमें अनुभवी चिकित्सक भी हों।

कमीशन मुसलमान छात्रों को कुछ विशेष सुविधायें देने के पक्ष में है, क्योंकि मुसलमानों में शिक्षा की कमी है और वह इस प्रकार की उत्तेजना से शीघ्र ही मिट जायगी। कमीशन की राय है कि ढाका-विश्वविद्यालय, जिसे सरकार १९१२ से स्वीकार कर चुकी है, शीघ्र ही स्थापित कर दिया जाय और उसमें छात्रों को सब प्रकार की ऐसी शिक्षा दी जाय जो एक विश्वविद्यालय में होनी चाहिए। ढाका-विश्वविद्यालय का अन्य बाहरी कालेजों से कोई सम्बन्ध न हो।

कमीशन ने कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के सुधार के लिए कई उपयोगी बातें बतलाई हैं। जो कालेज कलकत्ते में हैं उनको उन्नत करने और यूनिवर्सिटी से उन्हें पूरा लाभ उठाने का अवसर देने के लिए उनका यूनिवर्सिटी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।

वे सदा एक दूसरे के सहायक हों और परस्पर बहुत सी बातों का निर्णय कर लिया करें। अभी तक उनमें स्वामी और सेवक का सा जो सम्बन्ध है वह दूर हो जाय और वे सङ्गठित शक्ति से उच्च शिक्षा की गाड़ी को चलावें। पारस्परिक मत-भेद वायस चान्सलर के निर्णय से निपट जाया करे। कमीशन के मत में यह परम आवश्यक है कि ६०० अध्यापक प्रति वर्ष तैयार किये जायँ और उनके लिए बहुत सी सुविधायें दी जायँ।

स्त्री-शिक्षा की गति बहुत धीमी है; कमीशन उसे तीव्र रूप में परिणत करना चाहता है और इस उद्देश्य की पूर्त्ति के निमित्त वह एक ऐसे बोर्ड की रचना चाहता है जिसमें स्त्रियाँ भी हों और जो अन्य परदानशीन स्त्रियों से भी समय समय पर सम्मति लेता रहे। बोर्ड ऐसे परदा-स्कूल स्थापित करे जिनमें १५-१६ वर्ष तक की लड़कियाँ पढ़ सकें और वह स्त्रियों के लिए उपयोगी सिद्ध होनेवाले पाठ्य-क्रम का भी निश्चय करे।

संस्कृत, फ़ारसी और अरबी की शिक्षा की उन्नति के लिए कमीशन ने कुछ विशेष बातें कही हैं। कमीशन का कहना है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का यह बड़ा भारी दोष है कि वह छात्रों को क़ानून और चिकित्सा छोड़कर अन्य किसी धन्धे के योग्य नहीं बनाती। कमीशन इस त्रुटि को दूर करना अत्यावश्यक समझता है और क़ानूनी कालेज में सुधार और मेडिकल स्कूलों की वृद्धि की बात कहता हुआ, इञ्जीनियरी, खनिजविद्या, चित्रकारी, कृषि, शिल्पकला, वाणिज्य, आदि की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध करने के लिए, ब्योरे के साथ, सम्मति देता है। इस काम में धन का अधिक व्यय होगा, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि केवल साहित्य-शिक्षा से इस प्रकार की शिक्षा देश के लिए अधिक हितकर अवश्य सिद्ध होगी।

शिक्षा के माध्यम के विषय में, कमीशन की सम्मति है कि कालेजों में वह अँगरेज़ी रहे, और स्कूलों में अँगरेज़ी और गणित को छोड़कर, वह देशी भाषा ही रहे।

परीक्षाओं के सम्बन्ध में कमीशन की बड़ी कड़ी राय है। उसके मत से परीक्षायें विद्यार्थी को रट्टू बना देती हैं। विद्यार्थी बुद्धि से काम नहीं लेता, किन्तु रटता है और रट रटकर परीक्षा पास और बुद्धि का नाश करता है। इस विषय में आगे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय ऐसी परीक्षा-समितियों के हाथ में रहेगा जो इस बात का ध्यान रक्खेंगी कि परीक्षाओं से अध्ययन और शिक्षा पर बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ता। कमीशन पाठ्य-क्रम में कुछ ऐसे विषयों के भी रखने के पक्ष में है जिनमें परीक्षायें न ली जायँ।

कमीशन का विचार है कि इन सिफ़ारिशों के अनुसार तीन वर्ष में काम किया जा सकता है। उसका स्पष्ट रूप से कहना है कि यदि गवर्नमेंट हमारी सब बातें स्वीकार न कर सके तो, कम से कम, भविष्य में विश्वविद्यालय-सम्बन्धी जो सुधार करे उसमें इतना अवश्य ही करे कि छात्रावास और बढ़ाये जायँ, विद्यालयों के लिए स्थान भी बढ़ाया जाय, अध्यापकों को ट्रेण्ड करने के लिए अधिक सुविधायें उत्पन्न की जायँ, और विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को ठीक और उन्नत करने के उपाय निश्चित किये जायँ।

यदि कमीशन की सिफ़ारिशें कार्यरूप में परिणत की जायँगी तो कलकत्ते की सेकण्ड्री और उच्च शिक्षा के लिए कई करोड़ रुपये का व्यय करना होगा। दूसरी यूनिवर्सिटियाँ भी अपने यहाँ सुधार उसी भाँति करना चाहेंगी। समय की गति और जनता में विद्यावृद्धि के लिए प्रेम और उत्सुकता को दृष्टिगोचर कर यह आशा करना असङ्गत न होगा कि सरकार शिक्षा-विभाग में अधिक धन व्यय करने को हर्षपूर्वक उद्यत होगी। मांटेगू-चेम्सफ़र्ड-

सुधार स्कीम के अनुसार प्रान्तीय शिक्षा-विभाग भारतीय सचिव (Indian minister) के अधिकार में रहेगा; और सडलर महाशय ने पार्लीमेंट कमेटी के सम्मुख गवाही देते हुए कहा भी है कि मेरी सम्मति में भारतवासियों ही के अधिकार में प्रान्तीय शिक्षा-विभाग दे देना और शिक्षा का रूप राष्ट्रीय कर देना उचित है। उनके विचार में ये बातें कम से कम बङ्गाल में अवश्य होनी चाहिएँ। सर जेम्स मेस्टन ने पार्लीमेन्ट-कमेटी के सामने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि वर्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली दोष-रहित नहीं है। हर्ष की बात है कि एक गवर्नमेंट कर्मचारी ने ऐसा मान तो लिया। यदि ऐसा ही है तो भविष्य में गवर्नमेंट को ऐसी त्रुटियों से सचेत रहना चाहिए। भारतवर्ष में कई नवीन यूनिवर्सिटियाँ ढाका; अवध, आगरा और नागपुर में जल्दी ही खुलनेवाली हैं। लार्ड चेम्स्फ़र्ड ने सितम्बरवाली कौन्सिल की बैठक में तो ढाका-यूनिवर्सिटी की उत्पत्ति और अन्य यूनिवर्सिटियों में शीघ्र सुधार करने का वचन दिया है। देखना है कि वह कहाँ तक अपनी प्रतिज्ञा कार्यरूप में परिणत करते हैं।

सडलर कमीशन ने दो वर्ष के परिश्रम के पश्चात् रिपोर्ट प्रकाशित की है। इसमें जनता के सहस्रों रुपयों का व्यय हुआ है। आशा है कि सरकार इसकी सिफ़ारिशों की अवहेलना न करेगी और शिक्षा-विभाग में शीघ्र सुधार कर भारतीय विद्यार्थियों का उद्धार करने का प्रयत्न करेगी, जिससे वह भारतवासियों की कृतज्ञता की भागी बनेगी। रिपोर्ट में अनेक अच्छी बातें कही गई हैं, परन्तु हम यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं हैं कि यदि उनके अनुसार कार्य्य किया जाय तो हमारे शिक्षा-सम्बन्धी सब दोष दूर हो जायँगे। खेद की बात है कि शिक्षा के माध्यम की ओर कमीशन ने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। कालेजों में विदेशी भाषा—अँगरेज़ी द्वारा ही शिक्षा दी जायगी। अँगरेज़ी को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना जातीयता की हानि और भारतीय मानसिक क्षय का कारण होता है। सम्भव है कि भविष्य में दूसरा कमीशन जो दस-पन्द्रह वर्ष पश्चात् शिक्षा की जाँच-पड़ताल करने को बैठे इस त्रुटि को दूर कर सके। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यदि कमीशन के विचारों के अनुसार शिक्षा-विभाग में परिवर्तन किये जायँ तो दशा आज-कल से कहीं अच्छी अवश्य हो सकती है, शिक्षा का रूप बहुत कुछ राष्ट्रीय हो सकता है और रोटियों का प्रश्न भी किसी अंश में सरल हो सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा की उपयोगिता बढ़ सकती है और देश की शक्तियों का विनाश घट सकता है।

आशा है कि विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए सरकार विशेष प्रयत्न करेगी, क्योंकि बालक जाति के अमूल्य रत्न हैं और उनकी ही शारीरिक और मानसिक उन्नति से जाति उन्नत दशा को पहुँच सकती है।

गुरुनारायण मेहरोत्र, बिलग्रामी, बी० ए०

द्विजेन्द्र-नाटकावली।

हिन्दी के कुछ प्रकाशकों और अनुवादकों के अदम्य उत्साह से अब हमारे साहित्य में उच्च कोटि के अनुवादित नाटकों की कमी नहीं रही। साहित्य के इतिहास में अनुवाद के बाद ही मौलिकता आती है, इसलिए आशा है कि इन नाटकों के पढ़े जाने और अभिनीत होने पर हिन्दी-साहित्य में उच्च कोटि के मौलिक नाटक लिखे जाने लगें। अब तक द्विजेन्द्र बाबू के लगभग बारह बँगला नाटक हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं और इस लेख में इन्हीं नाटकों की आलोचना करनी है।

विदेशी भाषा से अनुवाद करने में जो कठिनाइयां पड़ती हैं, वे इन नाटकों में अधिक प्रकट नहीं होतीं।

इसके कई कारण हैं। एक तो द्विजेन्द्र बाबू हमींमें से हैं; बङ्गाल हमारे ही देश का एक प्रान्त है। हमारे ही देश के इतिहास को लेकर द्विजेन्द्र बाबू ने अधिकतर नाटक रचना की है। हिन्दू समाज की कुरीतियाँ, जिनका उन्होंने अपने नाटकों में दिग्दर्शन किया है, देश भर में थोड़ी-बहुत सभी जगह पाई जाती हैं। जाति के अधःपतन के घाव से जैसे वे पीड़ित हैं वैसे ही प्रत्येक विचारवान् भारतवासी दुखी है। दूसरी बात यह है कि उनके पात्र अधिकतर गद्य में बोलते हैं; और बङ्गाली भाषा हिन्दी से बहुत कुछ मिलती है। फिर, नाटकों के अनुवादक भी योग्य लेखक हैं। यदि कहीं दोष झलकता है तो वह 'सीता' ऐसे 'गीतनाव्य' को गद्य में अनुवादित करने में, या बँगला गीतों का हिन्दी रूपान्तर करने में है। इसका कारण यह है कि पिङ्गल तथा हिन्दी रङ्ग-मञ्च के बन्धन अनुवादक को इतना जकड़ देते हैं कि न तो वह अपने ही कवित्वरस की पुट दे सकता है, न मूल के ही भाव को पूर्णतया दिखा सकता है। क्या ही अच्छा होता यदि टिप्पणी या भूमिका में एक से अधिक गीत अपने ही (मूल) स्वरूप में दिखा दिये जाते। पाठकों के सामने मेवाड़-पतन ही का अन्तिम गीत है—'किसेर शोक करिस भाई। आवार तोरा मानुष हे'—'तुम शोक काहे को करौ, फिर से मनुष्य सबै बनौ'। इसमें चाहे आप स्वाद का वर्णन न कर सकें, क्योंकि भाषा अपनी नहीं है, पर इस कारण से इसमें कुछ भाव की कमी नहीं होती। इस सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि 'तारा' को अनुप्रास-हीन पद्य (Blank verse) में अनुवादित करके अनुवादक ने उसकी शोभा को बहुत कुछ बढ़ा दिया है। इससे कदाचित् अभिनय करने में कठिनता हो, परन्तु पढ़ने में 'तारा' से बढ़कर कर्ण-रोचक नाटक इस श्रेणी में कोई नहीं है। क्या अच्छा हो यदि 'सीता' भी यों ही अनुवादित की जाय। इस रूप में तो यह 'उत्तर-राम-चरित' ऐसे काव्य के सामने बिलकुल फीकी मालूम पड़ती है।

अनुवाद करने में यदि पण्डित कामताप्रसाद गुरुजी के विचारानुसार पात्रों की भाषा में थोड़ा बहुत अन्तर रहता तो कदाचित् रोचकता बढ़ जाती। परन्तु इसमें अनुवादकों का दोष बहुत कम है। द्विजेन्द्र बाबू आपही इस भेद को बहुत कम दिखाते हैं। उनके लिए राजा से लेकर रङ्क तक, रानी से लेकर दासी तक, सभी कवि हैं; सभी के लिए आकाश नीला, गहरा और स्वच्छ है। जब कोई दुर्घटना होनेवाली होती है सभी अन्धकार, बिजली और तूफ़ान से विचलित होते हैं। अनुवाद में भाषा को पात्र के योग्य बनाने का प्रयत्न केवल शाहजहाँ में किया गया है। भाषा फ़ारसी-मिश्रित है और सरल है; परन्तु उर्दू भाषा से परिचित समाज को 'खर्च', 'लायक', 'बागी' कुछ खटकते हैं। जब 'मुहब्बत', 'कोशिश', 'वालियेमुल्क' ऐसे शब्द ठीक लिखे गये हैं तब हलक़ से निकलनेवाले शब्दों ही ने क्या अपराध किया है! ऊँचे दर्जे के मुसलमान पात्रों के मुँह से अशुद्ध उर्दू के शब्द कहलाना वैसा ही है जैसे उच्च जाति के हिन्दू पात्रों से देहाती हिन्दी के शब्द कहलाना। ग्रामीण हिन्दी भी हो, और बे मुहाविरा उर्दू भी हो; परन्तु पात्रापात्र का विचार करके।

इन सब बातों को मानते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी भाषा में अभिनय करने और पढ़ने, दोनों के योग्य यदि कोई नाटकमाला है तो द्विजेन्द्र बाबू की। कालिदास के समय में यवनिका को छोड़कर शायद ही और कोई परदे रहे हों। शेक्सपियर के समय में भी रङ्ग-मञ्च ने बहुत ही कम उन्नति की थी। पात्रों के लिए कोई आड़ न थी। दिन को नाटक हुआ करते थे। ओस या धूप से बचाव न था। ऐसी दशा में नाटक की सफलता के लिए बहुत कुछ कल्पना की आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु आज-कल नाटक-कम्पनियों ने बहुत उन्नति की है; हर तरह के दृश्य दिखलाने के लिए परदों से, और हर एक घटना को दर्शाने के लिए करामातों से, ऊँचे वर्ग के थियेटर सुसज्जित हैं। जितना बढ़िया सामान हो नाटककार को नाटक दिखाने में उतनी ही कठिनाई पड़ती है; रङ्ग-मञ्च की आवश्यकताओं को नाव्य-कल्पना से मिलाये रखने की आवश्यकता पड़ती है। शेक्सपियर के समय में हैम्लेट के हत्याकाण्ड में खून नहीं बहता था; 'टेम्पेस्ट' में रङ्ग-मञ्च पर तूफ़ान नहीं आता था; और इसी कारण शेक्सपियर का यश अभिनय के समय से नहीं, पढ़ने के समय से फैला। परन्तु इस समय जो दृश्य नाटककार लिख देगा उसके दर्शाने में थियेटर के मैनेजर कोई कसर बाक़ी नहीं

रक्खेंगे। साधारण नाटककार रङ्ग-मन्च ही का विचार करके नाटक लिखते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उस पुस्तक के छपने की नौबत ही बहुत कम आती है। दर्शकों की वाह वाह ही तक उनका जीवन रहता है। रङ्ग-मञ्च से अनभिज्ञ कवि के नाटक में भी प्रतिभा का विकास नहीं होता, और उसके नाटक साधारणतः चिरजीवी नहीं होते। टेनीसन के नाटक कहाँ अभिनय किये जाते हैं ?

द्विजेन्द्र बाबू के नाटकों के चिरजीवी रहने में कोई सन्देह नहीं मालूम होता। वे पढ़ने, और अभिनय करने, दोनों में समाज को आनन्दित करते हुए शिक्षा देते हैं। उनके पात्र मनोविचार की सूक्ष्म से सूक्ष्म तरङ्गों में जा मिलते हैं और उनके मानसिक भाव हृदय में मिलकर पुनर्जीवन प्राप्त करते रहते हैं। हैम्लेट, आथेलो, और कार्डेलिया अभी तक जीवित हैं। द्विजेन्द्र बाबू के पात्रों को जन्म लिये अभी बहुत समय नहीं हुआ। परन्तु भविष्य की ओर देखते हुए यह विश्वास होता है कि जब तक देश में जातीय जोश रहेगा तब तक सत्यवती, महामाया, और गोविन्दसिंह जीवित रहेंगे; जब तक ब्रह्मचर्य्य का आदर्श इस देश में जीता रहेगा, तब तक भीष्म की पूजा होगी; जब तक स्वामि-भक्ति, पिता-भक्ति और पति-प्रेम के माननेवाले इस देश में रहेंगे तब तक क़ासिम, विजयसिंह, लीला और सीता जीवित रहेंगे। 'सीता' के लिए तो द्विजेन्द्र बाबू ने अधिक नहीं किया; उन्हें तो भवभूति और तुलसीदास ही अमर कर गये हैं। हमारे नाटककार ने उनको केवल बीसवीं सदी की साड़ी पहना दी है। नूरजहाँ, औरङ्गज़ेब, शाहजहाँ ऐसे ऐतिहासिक पात्र भी इतिहास में अवश्य अमर हैं, परन्तु मनुष्य-हृदय में उनको जगह द्विजेन्द्र बाबू ही ने दी है। जब तक प्रेम और गौरव के बीच सङ्कट रहेगा तब तक नूरजहाँ हृदय में प्रस्तुत रहेगी; जब तक हृष्ट-पुष्ट होकर भी मनुष्य का हृदय दुर्बल रहेगा, तब तक औरङ्गज़ेब और सिंहबाहु से सहानुभूति रखनेवाले बहुत मिलेंगे। जब तक विषयी मनुष्य बुढ़ापे तक जीवित रहेंगे तब तक शाहजहाँ और धीवर-राजसुता सत्यवती की हाय के साथ हाय करनेवाले भी रहेंगे।

निवेदन किया जा चुका है कि ये सब नाटक पढ़ने ही के योग्य नहीं, अभिनय करने के योग्य भी हैं। अँगरेज़ी समाज को किसी समय में चाहे ख़ून से प्रेम रहा हो, परन्तु भारतवर्ष में बुद्ध के समय से समाज के विचार प्रेम ही की ओर अधिक झुकते गये हैं। द्विजेन्द्र बाबू ने इस बात का बहुत विचार रक्खा है। उनके रङ्ग-मञ्च पर कहीं ख़ून नहीं बरसता। तलवारें झनकती अवश्य हैं, और दर्शकों को इसमें आनन्द भी आता है; परन्तु हत्या होने के पूर्व कोई न कोई आकर उसे अवश्य बचा लेता है। सिंहबाहु निरन्तर तलवार लिये अपने पुत्र के सिर पर सवार रहते हैं। चन्द्रगुप्त के आरम्भ में और मेवाड़-पतन के अन्त में दो वीरों की तलवारें खटकती हैं, परन्तु वार होने के पहले सिकन्दर और मानसी—एक विश्वविजयी वीर, दूसरी विश्वप्रेमिणी नारी—बीच-बचाव कर देते हैं। सोचिए तो, इनको देखकर दर्शकों के उछलते हुए हृदय को कितनी शान्ति पहुँचती होगी! द्विजेन्द्र बाबू ने बहुत से पात्रों को, जिनकी उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी, या जिनको अपने नाटक के अन्त तक ले जाने में कठिनता समझी, गोली से अन्त कर दिया। इस गोली का शब्द दर्शकों को चौकन्ना अवश्य कर देता है, पर वह ख़ून नहीं गिराती। औरङ्गज़ेब के सामने दारा का कटा हुआ शिर ही आता है; दारा रङ्ग-मञ्च पर क़त्ल नहीं किया जाता। तथापि अम्बा रङ्ग-मञ्च ही पर शाल्व का ख़ून कर देती है, और लीला भी दर्शकों के सामने ही अपने पेट में छुरी भोंक लेती है। यही दशा तारा की होती है; पर दरबारी, पहरेदार या पृथ्वी तुरन्त ही घटना को दर्शकों की दृष्टि से छिपा देती है। स्टेज-मैनेजर को अपनी करामात दिखाने का अवसर यहाँ भी नहीं मिलता।

इन नाटकों में परदों की कमी नहीं है। दर्शकों को परदों की शान में द्विजेन्द्रजी की कल्पना का आनन्द नहीं मिलता, परन्तु अभिनय के समय साधारण दर्शकों के लिए 'सिंहल-विजय' में तूफ़ान और 'पाषाणी' में कैलाश-शिखर कुछ कम रोचक नहीं हैं।

द्विजेन्द्र बाबू ने दर्शकों को 'स्वगत' के उच्च स्वर से बचा लिया है; परन्तु इससे पात्रों की कठिनता में कुछ कमी नहीं हुई है। 'अर्ध स्वगत' और 'अर्थ-पूर्ण नज़र' 'स्वगत' से कहीं कठिन है। सुना है कि द्विजेन्द्र बाबू के ही

तैयार करने पर उनके कुछ कठिन नाटक खेले जा सके थे। जो कुछ हो, इतना ज़रूरी है कि जब तक पात्रों के भावों की अच्छी परख न हो, तब तक वे रङ्ग-मञ्च पर ठीक ठीक न दर्शाये जा सकेंगे। सीधी भाषा में भाव दर्शाना बहुत कठिन है—

"राणा—नहीं तो और क्या करेंगे? चुपचाप सहन न करेंगे तो रो लेंगे। देखो, भोजन बना कि नहीं? डर की कोई बात नहीं है। अबकी बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा। जिस जाति में इतनी क्षुद्रता हो उसकी रक्षा स्वयं परमेश्वर नहीं कर सकते; मनुष्य की तो बात ही क्या है।"

रानी के सामने राणा रो नहीं सकते। उनके चेहरे पर केवल सूखी मुस्कराहट है और हृदय में निराशा का समुद्र उमड़ रहा है। रानी गृहिणी हैं, राज-नीति नहीं समझतीं, इसलिए उनसे यही पूछा गया कि 'भोजन बना कि नहीं'.?

इतिहास में सङ्ग का बड़ा नाम है, परन्तु नाटककार ने उनकी कुछ ही झलक दिखाई है। इतने ही से वह द्विजेन्द्र के कठिन पात्रों में गिनने योग्य हो गया है—

सङ्ग—(तारा का हाथ पकड़कर) तारा!

तारा—क्या मोहित! कहो।
यह क्या! यह क्यों सहसा भर आया गला!

सङ्ग—(हाथ छोड़कर) क्षमा करो। कल दूर देश को जा रहा हूँ मैं, तारा।

तारा—यह क्या? जाओगे कहाँ?
—बहुत दूर?

सङ्ग—मालूम नहीं—जिस ओर को
चल दूँ।

तारा—क्यों? किसलिए? कहो तो।

सङ्ग—"किसलिए"—
तारा तुम हो सुखी! न पूछो "किसलिए?"

यह सब कोई कविता नहीं है, बहुत ही सीधे सादे शब्द हैं। परन्तु इनके भीतर बहुत गहरा भाव है, जिसका दर्शाना बहुत कठिन है। सङ्ग देश से निकाला हुआ है। तारा का नौकर है, पर वह प्रेम के प्रवाह को नहीं रोक सका। इसलिए उसने सहसा तारा का हाथ पकड़ लिया; परन्तु निराशा ने फिर गला धर दबाया। "क्षमा करो":—कविता के लिए गले में ताक़त नहीं है। गम्भीरता और धैर्य ऊपर है, परन्तु हृदय जल रहा है।

नूरजहाँ के आन्तरिक क्लेश के दिग्दर्शन के लिए थोड़ासा वार्तालाप—

शेर०—मेहर,—बहुत अच्छी ख़बर है।

नूर०—क्या स्वामी?

शेर०—सम्राट् जहाँगीर ने मुझे पाँच हज़ारी का पद देकर आगरे में बुला भेजा है।

नूर०—सर्वनाश!

शेर०—यह क्या कहती हो! यह तो हमारे लिए बड़े सम्मान की बात है।

नूर०—जाओगे?

शेर०—जाऊँगा क्यों नहीं!

नूर०—मैं कहती हूँ, मत जाना।—ख़बरदार!

शेर०—इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो? यह तो बड़े आनन्द की बात है।

नूर०—बात सुनो—कहती हूँ, मत जाओ—सावधान।
(तेज़ी से जाना)

ऊपर से पति-प्रेम, भीतर गौरव और लालसा के पूर्ण होने की आशा। इसीलिए इतनी उत्तेजना है।

द्विजेन्द्र बाबू के हाथ में औरङ्गज़ेब उतना बुरा नहीं है जितना कि इतिहासज्ञों ने उसको दर्शाया है—

औरङ्ग०—आज ही!

शायस्ता०—(मृत्युदण्ड का आज्ञापत्र औरङ्गज़ेब के हाथ से लेकर) जितनी जल्दी बला टले उतना ही अच्छा।

जिहन०—बन्दगी, जहाँपनाह।

औरङ्ग०—ठहरो देखूँ। (दण्ड की आज्ञा को लेना, पढ़ना और फेर देना) अच्छा, जाओ। (जिहन ख़ाँ जाना चाहता है; औरङ्गज़ेब फिर उसे बुला लेता है।)

औरङ्ग०—ठहरो। (दण्ड की आज्ञा को फेर लेना और फिर फेर देना) अच्छा, जाओ। (जिहन ख़ाँ का प्रस्थान)

(औरङ्गज़ेब जिहन ख़ाँ की ओर बढ़ता है, फिर लौटकर सोचता है)

औरङ्ग०—ना, ज़रूरत नहीं है!—जिहन ख़ाँ! जिहन ख़ाँ! नहीं, चला गया।—शायस्ता ख़ाँ!

शायस्ता०—ख़ुदाबन्द!

औरङ्ग०—मैंने यह क्या किया!

शायस्ता०—जहाँपनाह ने समझदारों का ही काम किया ।

औरङ्ग०—ख़ैर, जाने दो ।

भाई से प्रेम है; परन्तु दृढ़ नहीं, क्योंकि हृदय दुर्बल है; और इसीलिए वह कभी शायस्ता ख़ाँ और कभी गुलनार की चाल में आजाता है । शरीर से कोई भाव नहीं मालूम होते; रुकते हुए शब्द ही क्लेश को सूचित करते हैं ।

द्विजेन्द्र बाबू के नाटकों में विदूषक के लिए तो कोई ख़ास जगह ही नहीं है; पर हँसी से एकदम विरोध भी नहीं है । विचार-मग्न पात्र कम हँसते हैं, और हलके हृदय के पुरुष और स्त्री ख़ूब हँसते हैं; परन्तु इन नाटकों में हास्य-पूर्ण कोई भी नहीं । हास्य की रोशनी केवल दुःख के अन्धकार को दर्शाने के लिए कहीं कहीं दिखाई देती है । इनके पुरुष पात्रों में नीचता और जाति-विद्रोह के लिए अधिकतर व्यङ्गही का दण्ड ठीक समझा गया है ।

हिदायत हुसैन शेख़ी बघारना ख़ूब जानता है, परन्तु हृदय का कच्चा है । सगरसिंह मुग़ल सम्राट् की शरण में रहते रहते बूढ़े हो गये हैं; वे अपनी कमज़ोरी का हाल आप ही बतलाते हैं । उन्हें यह ख़बर नहीं कि वाल्मीकि कौन थे—"महर्षि वाल्मीकि कौन ? तुलसीदास के लड़के ?" श्यामसिंह जाति-विद्रोही हैं, पर केवल क़ासिम की स्वामि-सेवा को दर्शाने के लिए । दिलदार विदूषक बना हुआ है ; पर उसकी बात में हँसी नहीं आती । औरङ्ग़ज़ेब उसको पहचान जाते हैं—तुम कौन हो, ठीक बतलाओ, तुम तो कोई मसख़रे नहीं हो । हँसी केवल मुराद की मूर्खता पर आती है । 'चन्द्रगुप्त' में नन्द के सालों ही पर हँसी की बौछार है । 'तारा' में याभूराव की दुर्गति उसके दर्बारी ही करते हैं । 'भारत-रमणी' में उपेन्द्र के भक्त ही अपने गुरु की नीचता दर्शाते हैं । 'पाषाणी' में विश्वामित्र के घमण्ड की ख़बर चिरञ्जीव ही लेता है ।

स्त्री-चरित्र को जितना अच्छा द्विजेन्द्र बाबू अङ्कित कर सके हैं, कदाचित् कोई नाटककार अभी तक नहीं कर सका । उन्हें कुछ भारतीय स्त्री-जाति पर विशेष श्रद्धा थी । वे अपने गार्हस्थ्य-जीवन में उसका अनुभव कर चुके थे ; इसीलिए उनके स्त्री-पात्रों में घृणित कोई नहीं है । गुलनार और सिंहबाहु की रानी तक में परस्पर घृणा उत्पन्न नहीं होती । स्त्री का शरीर कमज़ोर है, परन्तु उसके हृदय में असीम बल है । जब वह उग्र रूप धारण करता है, संसार हिल जाता है । बड़े बड़े अभिमानी वीर उसकी उँगली पर नाचने लगते हैं । उस समय उनमें हँसी का नाम भी नहीं रहता । पतित अहल्या के लिए भी घृणा-सूचक कोई शब्द नहीं है, और अन्त में द्विजेन्द्र बाबू उसका भी उद्धार कर देते हैं । जब तक उनका हृदय किसी विशेष कामना से विचलित नहीं होता, उसके दिव्य रूप पर मुसकराहट ही झलका करती है । 'भीष्म' में अम्बिका और अम्बालिका हँसती ही रहती हैं; उनके हृदय हलके हैं; उन्हें वैधव्य भी नहीं सताता । शुजा पर मुसीबतों का बोझ लदा हुआ है, परन्तु पियारा को गाना ही सूझता है ! "सूबा छीन लिया जायगा ! यही न ? जाने दो । अब और तो कुछ कहने को नहीं है; अब मैं गाना गाऊँ ?" 'सिंहल-विजय' में लीला पर बड़ी बड़ी विपदायें पड़ती हैं; परन्तु वह हँसती ही रहती है, क्योंकि उसके हृदय में प्रेम को छोड़ कोई और वासना ही नहीं है । इसीलिए उसके हृदय में शान्ति है, और चेहरे पर हँसी है । "उसके जले हुए चमड़े को देखकर वे हट गये"; "चलो अच्छा ही हुआ । मेरे प्रेम का मोह दूर हो गया । अग्नि-परीक्षा में मलिनता जल गई" । माधुरी भी पति-प्रेम में मग्न रहती है, चिरञ्जीव उसको चाहे जितना पीटे ।

कहीं कहीं स्त्रियों का भोलापन आनेवाली घटनाओं को और भी अधिक हृदयद्रावक बना देता है । मेवाड़ की रानी सरल गृहिणी है ; उसको मेवाड़ के ऊपर आनेवाली विपदाओं का ज्ञान नहीं । सरस्वती की सास एक भोली-भाली माँ है । उसको यह नहीं मालूम कि चाँद ऐसी बहू का रूप लड़के से उसको छुड़ा देगा । 'भारत-रमणी' में कामिनी बेचारी एक पुराने ख़याल की, समाज के बन्धनों से जकड़ी हुई, गृहिणी है । उसे 'सुशीला' की बातें कुछ समझ ही नहीं पड़तीं । वह चोरी के इलज़ाम को भी चुपचाप सहन कर लेती है ।

इस नाटकावली में कोई फ़ैलस्टाफ़ (गृह-शूर) नहीं है, परन्तु 'हैम्लेट' 'आथेलो' 'मेकबेथ' या 'लियर' की टक्कर के करुणा-जनक पात्रों की कमी नहीं है । इन नाटकों में करुणारस

की प्रधानता के कई कारण हैं। प्रहसन यौवन का स्वप्न है। मनुष्य-जीवन की प्रौढ़ता तथा वृद्धावस्था अधिकतर दुःखमय है। शेक्सपियर के प्रहसन भी जवानी के हैं, और दुःखान्त नाटक प्रौढ़ावस्था के। दूसरे, जिस देश में हमारे नाटककार ने जन्म लिया है, उसकी अवस्था बहुत हीन है। समाज सैकड़ों रोगों से ग्रसित है; और इतिहास भी हमारे पतन ही का है, उन्नति का नहीं। द्विजेन्द्र बाबू की लेखनी पर उस जातीयता की पश्चिमी वायु का अवश्य असर पड़ा है, जो मेकाले के प्रस्ताव के साथ जन्म लेकर अब सारे भारतवर्ष में व्याप रही है। इस कारण उनके उन्हीं पात्रों में जीवन अधिक है, जो उनकी जातीयता के भाव को प्रकट करते हैं। राणा अमरसिंह, महावत ख़ाँ, सत्यवती, महामाया, हेलन, केदारनाथ, ये सब अपने अपने रूप में समय समय पर देश-प्रेम, जाति-प्रेम प्रकट करते हैं। एक बात और भी है। द्विजेन्द्र बाबू को अपने गार्हस्थ्य-जीवन में पत्नी-वियोग का एक बड़ा भारी दुःख उठाना पड़ा। इस घटना ने इनकी स्त्री-परम्परा को विशेषतः दिव्य बना दिया है। लीला, अम्बा, महामाया, नूरजहाँ, लैला, जहाँआरा, हेलन, मानसी, मुन्नी, सुशीला, कुवेणी, अहल्या ऐसे चित्र किसी दूसरे नाटककार की क़लम से नहीं निकले हैं। तारा से डेस्डिमीना की कोई समता नहीं। लीला बालक-वेष धारण करने पर भी रोज़ेलिंड से कहीं बढ़कर है। हेलन और मानसी के विश्वप्रेम से शेक्सपियर स्वयं अनभिज्ञ थे। अम्बा, नूरजहाँ, कुवेणी और सुशीला के आत्मिक बल की बराबरी लेडी मेकबेथ ही कर सकती है।

इन नाटकों में करुणा और हास्यरस दोनों विद्यमान हैं, और करुणा की मात्रा हास्य से अधिक है; परन्तु 'तारा' और 'सीता' को छोड़कर और किसीका अन्त हृदय-द्रावक नहीं होता। 'तारा' के अन्त में अन्धकार ही अन्धकार है। हैम्लेट, लियर और आथेलो के भयङ्कर दृश्य आंखों के सामने फिर जाते हैं। 'सीता' के अन्त का इससे अधिक हृदय-द्रावक दृश्य पहले ही से हृदय में अङ्कित है। और सब नाटकों के अन्त में दर्शकों को शान्ति की झलक मिल जाती है, तथा निद्रा-भङ्ग नहीं होती। भीष्म का अन्त भी शान्तिमय है और उसको कृष्ण दिव्य भी बना देते हैं। 'दुर्गादास' के अन्त में नाटक के सब आदर्श इकट्ठे हो जाते हैं। 'सिंहलविजय' बहुत अधिक हृदय-द्रावक है, परन्तु उसके अन्त में भी बौद्ध-धर्म के प्रचार का भार लेकर, विजयसिंह दर्शकों के भार को हलका कर देते हैं। 'पाषाणी' में गौतम अहल्या को क्षमा कर देते हैं; परन्तु इससे भी द्विजेन्द्रजी को शान्ति नहीं मिलती; वे फिर उसको रामचन्द्रजी से शुद्ध कराते हैं। यदि 'उस पार' गार्हस्थ्य-जीवन को प्रलय में लीन कर देता है, तो 'मेवाड़-पतन' भारतवर्ष की स्वाधीनता के इतिहास का अन्तिम अध्याय है। यों ही इन दोनों में कम दुःख नहीं है, परन्तु देशपतन के बाद 'मानसी' हमको आशा की झलक दिखा देती है; और भाई भाई—अमरसिंह और महाबत, हिन्दू और मुसलमान—फिर गले मिलते हैं; देश की आशा भी इसीमें है। 'चन्द्रगुप्त' के अन्त में छाया और हेलन के मिलन में पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यता के संयोग का दृश्य है। नूरजहाँ का पतन होने पर भी वह लैला से मिलती है। बाहर मेघगर्जन अवश्य है, पर इन मा-बेटी के हृदय में शान्ति है। शाहजहाँ का पुत्र-प्रेम और इतिहास की आवश्यकता, दोनों मिलकर औरङ्ग़ज़ेब को भी अपने पिता से आशीर्वाद दिला देते हैं। इतिहास के बन्धन ने 'शाहजहाँ' में बहुत जगह त्रुटियाँ डाल दी हैं, परन्तु ऐसे तूफ़ान के बाद इतनी जल्दी शाहजहाँ को पानी पानी कर देना द्विजेन्द्रजी ही का काम था। सामाजिक नाटकों में भी वैराग्य और शान्ति का मिलन है। 'उस पार' में भगवानदास और मुन्नी के अन्तिम मिलन में प्रथम मिलन की लालसा के बदले उदासीनता और वैराग्य के ही भाव अधिक हैं। 'भारत-रमणी' में उपेन्द्र का उद्धार किया गया है, परन्तु यदि इन सामाजिक नाटकों के अन्त में किसी तरह कुछ भविष्य की आशा का चित्र भी अङ्कित किया जाता, तो हृदय को अधिक सान्त्वना मिलती। नाटक से उपन्यास की तुलना नहीं की जा सकती, परन्तु कहने में अत्युक्ति न होगी कि इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द्र जी ने 'सेवा-सदन' में समाज के भविष्य का जो चित्र खींचा है, यदि वह स्वप्न भी हो तो भी आदर्शरूप में समाज का बहुत हित कर सकता है।

जीवन में सुख के साथ दुःख का सम्बन्ध है। यदि

नाटक उसका अच्छा चित्र है, तो उसमें भी दोनों भाव परस्पर मिले रहना चाहिए। प्रस्तुत नाटकों को आप यूनानी नाटकों की तरह या शेक्सपियर के कुछ नाटकों के समान ट्रैजिडी (Tragedy) वियोगान्त और कमेडी (Comedy) संयोगान्त में विभक्त नहीं कर सकते। कहानी के आधार के हिसाब से इनको सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में विभक्त किया गया है; 'पाषाणी' 'सीता' और 'भीष्म' पौराणिक नाटकों की श्रेणी में हैं, क्योंकि अहल्या का उल्लेख रामचरितमानस में भी है। सीता की अन्तिम कथा वाल्मीकीय रामायण तथा उत्तर-रामचरित से ली गई है; और भीष्म महाभारत की कथा के प्रधान पात्र हैं। परन्तु ये नाटक कथा के बन्धन से नहीं बँधे हैं। अहल्या को पतित करने पर भी इन्द्र साफ़ बचा दिये जाते हैं। 'सीता' में राम के चरित्र को रामायण के उच्च पद से गिरा दिया है। केवल भीष्म का चरित्र कथानुसार अङ्कित किया गया है। 'उस पार' और 'भारतरमणी' सामाजिक नाटक हैं। इनको यह पदवी इसलिए दी गई है कि इनमें हिन्दू समाज की प्रचलित कुरीतियों का दिग्दर्शन गार्हस्थ्य-जीवन के पतन-द्वारा कराया गया है। इनकी कथा के लिए कोई पुस्तक देखने की आवश्यकता नहीं है; घर घर इनका अभिनय हो रहा है।

द्विजेन्द्रलाल के अधिकतर नाटक ऐतिहासिक हैं, क्योंकि इनकी कथा प्राचीन हिन्दू इतिहास और आधुनिक मुग़ल तथा राजपूत इतिहासों से ली गई है। 'चन्द्रगुप्त' और 'सिंहलविजय' में इतिहास का तो एक बहाना ही है; उनमें अधिकतर कल्पना का समावेश है। 'तारा', 'मेवाड़पतन', और 'दुर्गादास' के लिए नाटककार को सामग्री ही अच्छी मिली है। सच पूछिए तो भारतीय नाटक तथा काव्य-साहित्य के आधार तीन ही पुस्तकें हैं—रामायण, महाभारत और टाड का राजस्थान। 'तारा' राजपूताने के उत्थान, 'मेवाड़पतन' उसके पतन और 'दुर्गादास' उसके उद्धार के सूचक हैं। राजस्थान में इनकी कहानी ही कम रोचक नहीं है; पर नाटककार ने भी अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया। 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' मुग़ल इतिहास के बन्धनों से जकड़े हुए हैं; तो भी जहाँ कल्पना को अवसर मिला है, वहाँ वह बन्धनों से भाग निकली है। लैला, और पियारा द्विज बाबू ही के हैं, इतिहास के नहीं। औरङ्गज़ेब के चित्र ने भी इतिहास को बहुत कुछ धोखा दे दिया है।

परन्तु क्या इन नाटकों को कथानुसार ही विभक्त करना ठीक होगा? क्या इनको विषयानुसार वा विचार-धारानुसार, श्रेणीबद्ध नहीं कर सकते? सबमें प्रेम का प्रवाह आदि से अन्त तक है। कहीं वह दूसरी कामनाओं से टक्कर खाकर उबल पड़ता है, और महा विप्लव कर देता है, जैसे 'नूरजहाँ', 'शाहजहाँ' में; कहीं वह शान्तिपूर्वक उमङ्गें लेता हुआ यवनिका में लीन हो जाता है, जैसे 'मानसी', 'विजयसिंह' या 'तारा' में; परन्तु वह, जाति और गृह—दो धाराओं में बहता है। जाति-सेवा और पत्नी-प्रेम—यही दो द्विजेन्द्र बाबू के आन्तरिक जीवन के प्रधान अङ्ग थे। वे एक दूसरे से न जीवन में अलग थे, न नाटकों में ही हैं; परन्तु यह मानना पड़ेगा कि कहीं एक प्रधान है, और कहीं दूसरा। यदि इस प्रकार श्रेणीबद्ध करने का और साहस किया जाय तो 'मेवाड़-पतन', 'दुर्गादास', 'चन्द्रगुप्त', 'भीष्म' और 'तारा' जातीय नाटक हैं; 'सीता', 'पाषाणी', 'उस पार', 'सिंहल-विजय', 'नूरजहाँ', 'शाहजहाँ', और 'भारत-रमणी', गार्हस्थ्य नाटक हैं।

निवेदन यह है कि नाटक की परख प्रधान पात्र और उनसे मिले हुए कथा के स्रोत के ढूँढ़ निकालने से होती है। उसी स्रोत से अन्य पात्रों को अपना अपना रूप-रस मिलता है; और उनका भाग्य प्रधान पात्र के भाग्य के साथ बदलता रहता है। 'मेवाड़पतन' और 'दुर्गादास' के विषय में तो अधिक सन्देह नहीं है। कथा का स्रोत मुग़ल और राजपूत के विद्रोह से बहता है। अमरसिंह और महावत ख़ाँ उस विद्रोह के नेता हैं, और विश्वप्रेमिणी मानसी उनकी समालोचक है। 'दुर्गादास' बहुत ही सरल है। दुर्गादास और महामाया उसके प्रधान पात्र हैं, और राजपूत जाति का उद्धार कथा का प्रधान उद्देश्य है। 'चन्द्रगुप्त', 'तारा' और 'भीष्म' के विषय में कुछ अधिक विचार करने की आवश्यकता है। 'भीष्म' के प्रधान पात्र साफ़ प्रकट हैं। यह रचना मानों नाटकरूप में भीष्म-चरित है। इसकी प्रधान घटना भीष्म-प्रतिज्ञा है। यह प्रतिज्ञा पिता को प्रसन्न करने के लिए ही भीष्म ने की है। परन्तु ब्रह्मचर्य्य के प्रण के पश्चात् अम्बा की प्रेमभिक्षा को तिरस्कार करके ही वे अपने को गार्हस्थ्य-जीवन से मुक्त कर लेते हैं। उनका उद्देश्य आदि

से अन्त तक एक राजा की लालसा से उत्पन्न अशक्त सन्तान के राज्य को अपने कठिन व्रत से सँभालना ही है । यदि ध्यान से देखा जाय तो भीष्म महाभारत के राजनैतिक पात्र हैं । गार्हस्थ्य-प्रेम का उनमें लेश भी नहीं ।

चन्द्रगुप्त के प्रधान पात्र चाणक्य और हेलेन हैं । चाणक्य का उद्देश्य नन्द-वंश को नाश कर, चन्द्रगुप्त के छत्र के नीचे, देश को सङ्गठित करना है । वह प्रधानतः राजनैतिक ही पुरुष है; यद्यपि कभी कभी गार्हस्थ्य-जीवन के सुख-स्वप्न की लहर आकर उसके शून्य हृदय को विचलित कर देती है । हेलेन, मानसी की सगी बहिन है । उसका विवाह चन्द्रगुप्त के साथ एक गार्हस्थ्य-घटना नहीं है । यह एक विश्वप्रेम के लिए बलिदान है । इस विवाह में उत्सव मनानेवाले साधारण गृहस्थ नहीं हैं । यहाँ हिरोडोटस और व्यास, सुकरात और बुद्ध, एकिलिस और भीष्म, पैन्थियन और पुराण एक हो गये । इस विवाह से पूर्व और पश्चिम, स्वर्ग और मर्त्य, इहकाल और परकाल, एक दूसरे में लीन हो गये, और इस विवाह का अभिनय लेखक की ओर से कालिदास और शेक्सपियर इस शताब्दी में कर रहे हैं । अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, देश के अधिपतन के साथ जो विश्वप्रेम अङ्कुरित हुआ है, उद्धार के साथ उसका पूर्ण विकास होता है ।

'तारा' के मुख्य पात्र पृथ्वीराज और तारा हैं । एक दूसरे से मिलन, प्रेम का उद्गार, विवाह, भ्रम और अन्त में एक का अपने बहनोई के हाथ मरना और दूसरी का सती होना गार्हस्थ्य-जीवन की ही घटनायें मालूम होती हैं । परन्तु उनके नीचे जातीय प्रेम की एक तीव्र धारा बह रही है । तारा जयमल को लौटा देती है ।

इधर जयमल तारा को कुछ और समझे हुए था, इसलिए शूरतान के हाथ उसको प्राणदण्ड मिलता है । पृथ्वीराज ही टोड़ा के उद्धार से अनुज की विफल प्रतिज्ञा पूर्ण करता है, और तारा को वरता है । गार्हस्थ्य-प्रेम तारा पृथ्वीराज ही से सीखती है । तारा देश के लिए अर्पण हो चुकी थी, पृथ्वीराज के शव पर तो अन्त में अर्पण हुई ।

जिन नाटकों को गार्हस्थ्य-प्रेम की दर्शक श्रेणी में रक्खा गया है उनमें 'सीता' के विषय में विशेषतः कुछ नहीं कहना है । द्विजेन्द्र बाबू भवभूति की क़लम लेकर कुछ अपनी प्रतिभा दिखा नहीं पाये, या अनुवाद ठीक तरह से नहीं हुआ । गार्हस्थ्य-प्रेम की स्वर्गीय धारा के साथ प्राचीन सामाजिक कुरीतियों की पुट देना ही कुछ शोभाजनक नहीं है; राम के गले उनको मढ़ना और भी अधिक पीड़ा-जनक है । मुँह से दुर्मुख के प्रति दुर्वचन कहलाना, और हाथ से शूद्रक का सिर कटाना—इन दोनों कर्मों से लेखक इतने अशुद्ध हो गये हैं, कि हम उनकी चरण-रज अपने मस्तक पर नहीं लगा सकते ।

'पाषाणी' के पात्र अहल्या और इन्द्र हैं । लालसा के वश पतित होना और क्षमा द्वारा पतित का उद्धार कराना इस नाटक का उद्देश्य है । बे-जोड़ विवाह से गार्हस्थ्य-जीवन को कैसी गहरी चोट पहुँचती है ! द्विजेन्द्र बाबू ने अपनी लेखनी की शक्ति से, दर्शकों को शब्दों की झड़ी का भुलावा देकर, इन पतितों को क्षमा करा दिया है; पर मनुष्य-शक्ति के तो बाहर ही है ।

'उस पार' और 'भारतरमणी' बङ्गाल की वर्तमान सामाजिक दशा का दिग्दर्शन कराते हैं । और इनके पात्र भी उसी समाज के हैं ।

'उस पार' के मुख्य पात्र भोलानाथ, भगवानदास और मुन्नी हैं । भोलानाथ का सरलता से लसा हुआ पौत्री-प्रेम, भगवानदास की रूप-लालसा, और मुन्नी का अपूर्व नैसर्गिक प्रेम—इन्हीं के सङ्गठन से नाटक का जन्म हुआ है । सामाजिक नाटक एक ही देश काल के लिए होते हैं । इनका अनुवाद होने से या सामाजिक जीवन में परिवर्तन हो जाने से इनमें उतना बल नहीं रहता । 'उस पार' कुछ हद तक ऐसा ही नाटक है । बङ्गाल में इसका बड़ा आदर है, परन्तु हिन्दी भाषा में मूलनाटक का परिवर्तन होने पर भी, वह उतना ग्राह्य नहीं है जितना बँगला में । भोलानाथ को लीजिए । आप अपनी पौत्री को प्रेम करना सिखाते हैं । जैसी बातें हमारे समाज में नई बहू की ननदें या भावजें किया करती हैं, वैसी बातें बूढ़े भोलानाथ के मुँह से हमारे हिन्दी रङ्ग-मञ्च पर तो शोभा न देंगी ।

स्वयं द्विजेन्द्र बाबू को छोड़ भोलानाथ की सरलता किस मनुष्य के हृदय में पाई जाती है ? वह बङ्गाली आथेलो है, और गौरीनाथ उसका आयागो है। उसकी

समझ ही में नहीं आता कि मनुष्य इतना नीच हो सकता है जितना गौरीनाथ है । उसने कभी सोचा ही नहीं कि सरस्वती को छोड़ भगवानदास कभी किसी पर-स्त्री से भी प्रेम कर सकता है । बूढ़े का विश्वास टूटने के साथ ही गार्हस्थ्य-जीवन का विप्लव है । जगह जगह पर भोलानाथ का चरित्र हृदय को पीड़ा पहुँचाता है। 'मेरा सर्वस्व ले लो, परन्तु मुझे प्यार करो'; इस पीड़ा को पहुँचाना ही इस नाटक का उद्देश्य है ।

'उस पार' में गार्हस्थ्य-जीवन के टुकड़े टुकड़े उसके पात्र ही करते हैं; परन्तु 'भारतरमणी' की दुःख-कथा के लिए समाज की एक विशेष कुप्रथा ही उत्तरदाता है। यह कुप्रथा हिन्दू-समाज भर में व्याप्त है, परन्तु बङ्गाल में इसका प्रचार बहुत अधिक है । सामाजिक प्रश्नों पर इसके पात्रों द्वारा नाटककार ने अपने बड़े गम्भीर विचार प्रकट किये हैं, और इसीलिए यदि कोई भी नाटक सामाजिक कहा जा सकता है, तो वह यही है । यदि नाटक के पात्रों की ही ओर देखा जाय तो समाज के अत्याचार से गार्हस्थ्य-जीवन ही नष्ट होता है । देवेन्द्र की एक लड़की को वैधव्य का रोना है । दूसरी औषध के न पहुँचने से असमय ही माँ की गोद को सूना करके चल देती है । तीसरी ने पढ़ी-लिखी होने के कारण समाज की कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है; वह व्याह ही न करेगी और द्विजेन्द्र बाबू उसकी सहायता के लिए भी तैयार हैं। चौथा पुत्र कुसङ्गति में पड़कर जेल की हवा खाता है । ऐसे में पिता क्यों न पागल हो जाय और माता घर से भाग निकले ? 'भारतरमणी' नाटक-कला के विचार से प्रतिभाशाली न होने पर भी नाटककार के सब नाटकों से अधिक उपयोगी है । जो काम सामाजिक कानफ़्रेन्सों के प्रस्ताव नहीं कर सकते, वह इस नाटक के अभिनय से हो सकता है ।

'सिंहलविजय', 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' ऐतिहासिक नाटकों की श्रेणी में रक्खे गये हैं। 'सिंहलविजय' का बीज इतिहास में अवश्य है ; परन्तु चरित्र-चित्रण में नाटककार ने पूर्ण स्वतन्त्रता ली है, और इसीलिए यह नाटक शाहजहाँ और नूरजहाँ से अधिक पूर्ण है । तथापि बङ्गाली समालोचकों ने 'नूरजहाँ' और शाहजहाँ ही के प्रति विशेष भक्ति दिखाई है। इस नाटक के प्रधान पात्र विजयसिंह और कुवेणी हैं। उन्हींके चरित्र के चारों ओर बङ्गाल और सिंहल की घटनायें घूमती हैं, और उन्हींके मिलन तथा विच्छेद से नाटक के परदे बदलते हैं । सौत के पितृ-भक्त पुत्र के साथ दुर्बल-हृदय पिता का बर्ताव ही इस नाटक की कथा का केन्द्र है । पात्रों के नाम राजसी हैं, नाटक का नाम 'राजनैतिक' है, परन्तु घटनायें एक साधारण गृहस्थ ही के घर की हैं ।

'सिंहलविजय' और नूरजहाँ, तथा शाहजहाँ में अन्तर यह है कि एक में तो मानुषिक हृदय की प्रत्येक कामना का निष्कण्टक उद्गार दिखाया गया है; और दूसरे में एक कामना का दूसरी कामना से युद्ध दिखाने का प्रयत्न किया है । द्विजेन्द्र बाबू ऐसे सरल-हृदय नाटककार ने एक को तो बिना विशेष प्रयत्न के अपूर्व रूप दे दिया है, परन्तु दूसरा काम बहुत कठिन है । विशेष प्रयत्न करने पर भी चित्र त्रुटिमय है, और यदि बहुत कहा जाय तो यह कहना होगा कि शेक्सपियर की खूब नक़ल की गई है ।

लीला, सिंहबाहु, विजयसिंह, कुवेणी और सूरमा के चित्रों की ओर देखिए । एक एक चरित्र में एक ही कामना का उद्गार है। अपने अन्धे न्याय-प्रेम के कारण सिंहबाहु का पतन होता है । विजयसिंह अपने पितृ-प्रेम के कारण निर्वासित किये जाते हैं । लीला अपने पति-प्रेम में मग्न है; उसका प्रेम स्वच्छ है; वह प्रत्युपकार नहीं चाहती । कुवेणी लालसा के तूफ़ान में लीन हो जाती है । सूरमा गार्हस्थ्य-सङ्गठन में विच्छेद होने देना पसन्द नहीं करती; परन्तु वासनाओं का रोकना अबला कन्या की शक्ति के बाहर है । नाटक का अन्त सिंहबाहु की मृत्यु से होता है; परन्तु परदा गिरने के पहले हमको आश्वासन हो जाता है कि सिंहल का उद्धार करने के लिए विजयसिंह ही इस तूफ़ान में बचे हैं ।

'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' में कथा के इतिहास की शृङ्खला से बँधे होने पर भी कवि ने मनोविकार के पारस्परिक युद्ध को दिखाने का प्रयत्न किया है । ये नाटक उद्देश्य-हीन हैं । कहा जाता है कि 'शाहजहाँ' का जितना आदर बँगला रङ्ग-मञ्च पर हुआ उतना द्विजेन्द्र बाबू के और किसी नाटक का नहीं हुआ । द्विजेन्द्र बाबू ने 'नूरजहाँ'

की विशेषताओं को स्वयं नाटक की भूमिका में लिखा है। धुरन्धर विद्वानों की राय में राय मिलाना सहज है; परन्तु अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करना भी लेखक का कर्त्तव्य है, पाठक उससे सहमत हों या न हों। 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' द्विजेन्द्र बाबू के श्रेष्ठ नाटकों में हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि सब पहलुओं की तरफ़ देखते हुए 'मेवाड़-पतन' और 'उस पार' से इनका पद कहाँ तक ऊँचा है।

शाहजहाँ और नूरजहाँ के नाम से भारत का शिक्षित समाज अच्छी तरह परिचित है। उनका चित्र बचपन ही से हमारे हृदय में अङ्कित है। यदि कथा से कुछ हद तक परिचय हो तो नाटक के दर्शकों की भीड़ और भी अधिक हो जाती है। इन नाटकों की कथा से हिन्दू, मुसलमान, सभी परिचित हैं। भीष्म, अहल्या, अमरसिंह, चन्द्रगुप्त से, मुसलमान बालकों की कौन कहे, हिन्दू बालक भी इतने परिचित नहीं जितने नूरजहाँ, शाहजहाँ और औरङ्गज़ेब से। सीता से इतना अधिक परिचय है कि उनके चरित्र-अभिनय में कोई विशेषता नहीं मालूम पड़ती। फिर इन पात्रों का समय भी इतना दूर नहीं है कि साधारण जन-समाज की समझ में न आ सके, और न इतना निकट ही है कि उसमें कोई कौतूहल-जनक बात न मालूम पड़े। मुग़ल-साम्राज्य का विनाश हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। उसके भग्न गौरव के चिह्न अब भी आगरे और दिल्ली में शान के साथ खड़े हुए हैं। भीष्म, अहल्या, सिंहबाहु और चन्द्रगुप्त के समय को समझने के लिए कुछ कल्पना की मात्रा होनी चाहिए, जिसके लिए साधारण दर्शकों से आशा नहीं की जा सकती। नूरजहाँ की सज-धज से बेचारी अहल्या क्या मुक़ाबला करेगी? एक हीरे और मोतियों की चकाचौंध से घिरी हुई भारत-साम्राज्ञी, दूसरी साधारण वस्त्र पहने हुए तपस्विनी! तब पाठक जान सकते हैं कि किस पर अधिक करतल-ध्वनि होगी। कुछ लोगों के विचार से इतिहास शाहजहाँ के अभिनय में रुकावटें डालता है; पर हम समझते हैं कि वह नाटक ही में भले ही रुकावटें डालता हो, पर अभिनय में तो सहायता ही पहुँचाता है।

इतिहास के साथ साथ पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से भी इन नाटकों की कीर्त्ति को सहायता मिली है। अँगरेज़ी नाट्य-साहित्य में—कदाचित् संसार के नाट्य-साहित्य में भी शेक्सपियर से बढ़कर कोई दूसरा नाटककार नहीं हुआ। वह कोई दार्शनिक न था; और न मानवशास्त्र का अध्ययन किये हुए था। वह उस समय के रङ्ग-मञ्चों पर अभिनय करनेवालों में एक भी था। उसने जान बूझकर नहीं—अपने अपूर्व मानवीय हृदय से परिचित कल्पना की तरङ्ग में ही मानसिक जीवन के जो चित्र 'आथेलो', 'हेम्लेट', 'लियर' और 'मेकबेथ' में खींच दिये हैं, उनकी बराबरी करनेवाले अब भी कोई नाटक नहीं हैं। द्विजेन्द्र बाबू ने पश्चिमी शिक्षा के भार से उऋण होने के लिए ही इन नाटकों में मानसिक क्लेश का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। 'हेम्लेट' और 'आथेलो' के चरणों तक पहुँचने ही में 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' का गौरव है।

शाहजहाँ की तुलना लियर के साथ की गई है, परन्तु समालोचक स्वयं ही स्वीकार करते हैं कि वह लियर के आदर्श तक नहीं पहुँच सका। यदि नाटककार इतिहास की शृङ्खला से न बँधे होते, तो कदाचित् शाहजहाँ को महल के बाहर ले जाकर यमुना के श्मशान पर समाप्त कर देते; या नूरजहाँ को इतने उच्च शिखर पर से एक-दम गिरने पर क्लियोपाट्रा की दशा तक पहुँचा देते। परन्तु नूरजहाँ तो इतिहास में पतन के पश्चात् भी बीस वर्ष तक जीवित रहती है; फिर वे उसको अन्त में लैला से मिलाकर क्यों न शान्त कर देते।

इतना होने पर भी द्विजेन्द्र बाबू के महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। बहुत सम्भव है कि यदि वे किसी दूसरी कथा को लेकर, जिसमें उनको अपनी कल्पना से अधिक सहायता मिलती, मानसिक क्लेश के दिखाने का प्रयत्न करते, तो नाटक को 'हेम्लेट' या 'आथेलो' की बराबरी तक पहुँचा देते। अपने काल्पनिक पात्रों में वे इस मानसिक क्लेश का दिग्दर्शन करा चुके हैं। अहल्या के कर्तव्य और लालसा के युद्ध पर दृष्टि डालिए; सूर्य्यमल में मेकबेथ की झलक देखिए; भोलानाथ में आथेलो के दर्शन कीजिए। गौरीनाथ आयागो के सगे भाई बनने का दावा कर रहे हैं। परन्तु जिन नाटकों के ये पात्र हैं उनको मानसिक क्लेश दिखाने के उद्देश्य से नहीं, कदाचित् किसी दूसरे—और अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से—नाट्यकार ने लिखा है; इसलिए वे नाटक हमारे बङ्गाली समालोचकों की दृष्टि में 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' से समता नहीं कर सकते।

मानसिक क्लेश का दुर्बोध होना ही उसका एक गुण है। द्विजेन्द्र बाबू बात यह समझे हुए थे, और इसीलिए उनके विचार में नूरजहाँ का चरित्र विशेष प्रकार से जटिल और दुर्बोध हो गया है। सम्भव है कि नाटककार की सरल प्रकृति ने ही अपने से उत्पन्न चरित्र को जटिल समझा हो; परन्तु बात ऐसी नहीं है। 'नूरजहाँ' के अपने मुँह से कहने पर भी—आत्म-प्रतारणा करने पर भी—यह बात सहज ही समझी जाती है कि उसने बदला लेने के लिए सम्राट् से विवाह नहीं किया था। उसके मन में क्षमता और गौरव की आकांक्षा के साथ साथ भोग-लालसा ही गुप्त रूप से बलवती थी। द्विजेन्द्र बाबू की सरलता और कला-कुशलता ने इस बात को समझने का मार्ग सर्वत्र ही सुगम कर दिया है। नूरजहाँ कुछ हेम्लेट नहीं है जिसके विषय में अभी तक यही निर्णय नहीं हुआ कि वह वास्तविक पागल था या बना हुआ।

'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' के सम्बन्ध से मानसिक क्लेश के विषय में चाहे जो कुछ कहा जाय, पर द्विजेन्द्र बाबू की वृत्ति दूसरी ही ओर थी। उनका धर्म न सनातन है न आर्य, न हिन्दू न मुसलमान। उनका धर्म है प्रेम। इस प्रेम का स्रोत माता की गोद से उमड़कर पति-पत्नी के जीवन को सींचता हुआ देश-भक्ति में व्याप्त हो जाता है। परन्तु उसकी सुगन्ध देश ही के भीतर नहीं रहती; वह विश्वप्रेम के रूप में सर्व-व्यापी हो जाती है। गार्हस्थ्य-जीवन के अन्त से, या देश के पतन से, उसका नाश नहीं होता। वह अमर और निर्विकार है। उसीके दिग्दर्शन में द्विजेन्द्र बाबू का महत्त्व है, उसीमें उनका गौरव है। यदि संसार को दिखाने योग्य द्विजेन्द्र के कोई भी पात्र हैं तो वे नूरजहाँ, शाहजहाँ नहीं—मानसी, हेलेन और भोलानाथ हैं।

विषय विस्तृत है और समय तथा सामग्री की कमी है इसलिए कोई आश्चर्य्य नहीं कि इस लेख में बहुत कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। लेखक अब यही चाहता है कि आगे इन नाटकों के महत्त्व के योग्य विस्तृत समालोचना हो, जिसको पढ़कर हमारे साहित्य में भी किसी द्विजेन्द्र का जन्म हो।

कालिदास कपूर

स्त्री के विषय में नीटशे के विचार।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक नीटशे पर सरस्वती के किसी गताङ्क में एक लेख निकल चुका है। आज हम उसी तत्त्ववेत्ता के स्त्री-सम्बन्धी विचार पाठकों की भेंट करते हैं। नीटशे को अनेक लोग स्त्री-निन्दक समझते हैं; पर यह उनकी भूल है। वह सामूहिक रूप से स्त्री-जाति की कभी निन्दा नहीं करता, वरन जगह जगह पर उसकी प्रशंसा, और उसके प्रति सम्मान और पूजा का भाव प्रदर्शित करता है। उसे आपत्ति है केवल आधुनिक सभ्यता की उपज, एक विशेष नमूने की सदोष स्त्री पर। "पुण्य और पाप से परे" नामक पुस्तक में नीटशे ने इस विषय में जो कुछ लिखा है उसका सारांश आगे दिया जाता है—

स्त्री स्वतन्त्रता चाहती है, इसीलिए वह पुरुष को अपने "वास्तविक स्वरूप" का ज्ञान कराने चली है—यूरोप के मुख को जितनी बातें कुरूप बना रही हैं उनमें सबसे बड़ी बात स्त्री है। स्त्री में अनेक ऐसी बातें हैं जिन पर उसे लज्जित होना चाहिए। उसमें पाण्डित्य-प्रदर्शन, दिखलावा, दूसरों को शिक्षा देने का स्वभाव, क्षुद्र धृष्टता, मुँह-ज़ोरी, और गुप्त अविवेक भरे पड़े हैं। यदि वह अपनी बुद्धिमत्ता, वशीकरण-विद्या, क्रीड़ा, शोक को डराकर दूर भगा देने की शक्ति, प्रत्येक कठिन से कठिन काम को भी नरम कर देने और सुगम समझने की योग्यता, इत्यादि गुणों को जान-बूझकर भूलना आरम्भ कर दे, यदि वह रुचिर कामनाओं के लिए अपनी कोमल प्रवृत्ति को भूल जाय, तो न मालूम क्या हो! अभी से स्त्रियों के शब्द सुनाई देने लगे हैं। इन्हें सुनकर डर लग रहा है। वे धमकी के साथ स्पष्ट रीति से कह रही हैं कि स्त्री पुरुष से पहले यह और उसके उपरान्त वह लेना चाहती है।

स्त्री का इस प्रकार अपने वैज्ञानिक होने का अभियोग करना क्या रसिकता की अतीव भ्रष्टता नहीं? सौभाग्य से ज्ञान अब तक पुरुषों का व्यापार, पुरुषों का दान रहा है—इसको पाकर हम "अपने आपे में" रहे हैं। स्त्रियाँ जो कुछ 'स्त्री' के विषय में लिख रही हैं उस सारे का विचार करके हमें इस बात में सन्देह होता है कि क्या स्त्री को वस्तुतः अपने विषय में ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा है भी—क्या उसे इस की इच्छा हो सकती है? यदि स्त्री इस आत्म-ज्ञान के रूप में अपने लिए कोई नया आभूषण नहीं ढूँढ़ रही—मैं समझता हूँ आभूषणों की इच्छा स्त्री का सहज गुण है—तो वह फिर क्यों चाहती है कि लोग उससे भयभीत रहें? शायद वह इसके द्वारा आधिपत्य प्राप्त करना चाहती है। परन्तु उसे सत्य का प्रयोजन नहीं—स्त्री सत्य की क्या परवा करती है! आरम्भ से ही सचाई से बढ़कर स्त्री के प्रतिकूल, अयोग्य, और विरुद्ध और कोई चीज़ नहीं—उसकी सबसे बड़ी माया झूठ है, उसका प्रधान व्यापार दिखलावा और सौन्दर्य है। हम पुरुषों को यह स्वीकार करना चाहिए; हम स्त्री की इसी माया का, उसकी इसी सहज बुद्धि का सम्मान और इसीसे प्रेम करते हैं। हम लोगों को घोर परिश्रम करना पड़ता है; इसीलिए हम प्रसन्नता-पूर्वक ऐसे प्राणियों की संगति ढूँढ़ते हैं जिनके हाथों, कटाक्षों और कोमल मूर्खताओं के नीचे हमारी गम्भीरता, हमारा धैर्य्य और हमारी गुरुता प्रायः मूर्खता के समान जान पड़ती है। अन्ततः मैं एक प्रश्न पूछता हूँ—क्या कभी किसी स्त्री ने 'स्त्री' के मन में गम्भीरता अथवा स्त्री के हृदय में न्याय का होना स्वीकार किया है? क्या यह सत्य नहीं कि सर्वतोभावेन अब तक "स्त्री" से अत्यन्त अधिक घृणा स्त्री ही करती रही है? हमने उससे बिलकुल घृणा नहीं की।

स्त्री से पुरुष आज तक उन पक्षियों का सा व्यवहार करता रहा है जो अपना मार्ग भूलकर किसी ऊँचे स्थान से उसके पास आ गये हैं। वह उसे एक कोमल, भङ्गुर, जङ्गली, मीठी, विलक्षण और उल्लासजनक वस्तु समझता रहा है जिसे, उड़ जाने के डर से, पिंजरे में बन्द रखने की आवश्यकता है।

स्त्री-जाति का जैसा आदर इस समय है वैसा पहले किसी भी युग में न था। क्या आश्चर्य है कि शीघ्र ही इस आदर का दुरुपयोग होने लगे! वे और माँगती हैं—वे अधिकार माँगना सीख रही हैं। अतः सम्भव है कि यह आदर-रूपी कर अन्त को दुःखदायक सिद्ध हो। अधिकारों के लिए स्पर्धा (वस्तुतः कलह) इससे अच्छा कर मालूम होगा। सारांश यह कि स्त्री विनय खो रही है; उसमें, साथ ही, रसिकता भी कम हो रही है। वह पुरुष का डर भुला रही है। जो स्त्री "डरना भूल रही है" वह अपनी स्त्री-सुलभ सहज बुद्धि का परित्याग कर रही है। यह बात तो समझ में आने योग्य और युक्तिसंगत है कि जब मनुष्य में भयोत्पादक गुण—या अधिक निश्चित-रूप से कहें तो पुरुषत्व—का प्रयोजन न हो अथवा वह पूर्णरूप से विकसित न हुआ हो, तब स्त्री को आगे आना चाहिए। परन्तु अधिक दुर्बोध बात यह है कि ठीक इसीसे स्त्री का ह्रास हो जाता है और यही आज हो रहा है। हमें अपने आपको इस विषय में धोखे में नहीं रखना चाहिए। जहाँ कहीं औद्योगिक भाव ने सैनिक और सनातन भाव पर विजय प्राप्त की है वहाँ स्त्री क्लार्क बनकर आर्थिक तथा क़ानूनी स्वाधीनता पाने का यत्न करती है। जो आधुनिक समाज बन रहा है उसकी ड्योढ़ी पर "स्त्री-क्लार्क" लिखा हुआ है। इस प्रकार जहाँ वह एक ओर नये अधिकार प्राप्त कर रही है, स्वामिनी बनने की अभिलाषिणी है, और अपने झण्डों तथा पताकाओं पर स्त्री की "प्रगति" लिख रही है, वहाँ दूसरी ओर इसका ठीक उलटा दृश्य स्पष्टता के साथ

दिखाई दे रहा है—**स्त्री का अधःपतन हो रहा है!**

फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति से लेकर अब तक स्त्री ने अपने स्वत्वों तथा अधिकारों को जितना बढ़ाया है उतना ही उसका प्रभाव कम हो गया है। "स्त्री की मुक्ति", जिसे केवल उथले मस्तिष्कवाले पुरुष ही नहीं, बरन स्वयं स्त्रियाँ चाहतीं और माँगती हैं, स्त्री-सुलभ सहज बुद्धि के अधिक निर्बल और निर्जीव हो जाने का स्पष्ट चिह्न है। इस नई लहर में ऐसी मूर्खता है जिस पर एक कुलीन समझदार स्त्री को हार्दिक लज्जा हो सकती है। उस आधार को खो देना जिसके आश्रय में वह निश्चयपूर्वक विजय प्राप्त कर सकती है, अपने विशेष अस्त्रों का प्रयोग छोड़ देना, प्रत्येक बात में पुरुष के आगे दौड़ना, जब कि पूर्वकाल में वह अपने आपको मर्यादा और नम्रता में रखती थी; स्त्री के लिए कोई गौरव की बात नहीं।

निश्चय ही पुरुष-जाति के पढ़े-लिखे मूर्खों में 'स्त्री' के बहुत से ऐसे मूढ़ मित्र और उसे बिगाड़नेवाले हैं जो उसे इस प्रकार अपने आपको स्त्रीत्वहीन बना लेने और उन सब मूर्खताओं का अनुकरण करने का परामर्श दे रहे हैं, जिनसे यूरप में 'पुरुषत्व' दुःख पा रहा है; और जो स्त्री को राजनीति में हाथ-पैर मारने की दशा तक गिरा देना चाहते हैं। कहीं कहीं तो वे स्त्रियों को स्वतन्त्र आत्मायें और साहित्य-सेविकायें बनाना चाहते हैं, मानों भक्तिविहीन स्त्री एक गम्भीर और नास्तिक पुरुष के लिए पूरी पूरी प्रिय अथवा गौरव-जनक वस्तु हो जायगी! प्रायः सब कहीं स्त्री की नाड़ियों को एक अतीव दूषित और विषम प्रकार के सङ्गीत से नष्ट करने का उद्योग किया जा रहा है, और वह दिन पर दिन गर्भोन्माद (हिस्टीरिया) का अधिक शिकार होती जाती है, तथा अपने मुख्य धर्म्म का पालन करने—नीरोग और बलवान् सन्तान उत्पन्न करने—में अधिक असमर्थ हो रही है। ये लोग स्त्री को सामान्यतः और भी अधिक "संस्कृत" करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हमारी इच्छा "अबलाओं" को संस्कृति (कलचर) द्वारा सबला बना देने की है। पुरुष भय और सहानुभूति—इन दो भावों के साथ ही आज तक स्त्री के सम्मुख खड़ा होता रहा है। परन्तु अब इन सब बातों की समाप्ति होनेवाली है। स्त्री का सम्मोहन अब दूर हो रहा है। स्त्री की क्लेशकारिता (tediousness) अब क्रमशः बढ़ रही है। हा यूरप! हा यूरप!

'ज़र्दुश्त', 'प्रफुल्ल ज्ञान' और "Human, All Too-Human" नामक पुस्तकों में नीटशे ने यह लिखा है—

स्त्री की प्रत्येक बात एक पहेली है, और स्त्री की प्रत्येक बात का एक ही समाधान है। उसका नाम है गर्भधारण। पुरुष स्त्री के लिए एक साधन है; इस का उद्देश्य सदा सन्तान है। पुरुष को युद्ध के लिए और स्त्री को योद्धा के मनोरञ्जन के लिए तैयार होना होगा; शेष सब मूर्खता की बातें हैं। आनन्द मेरे पीछे दौड़ता है; इसका कारण यह है कि मैं स्त्री के पीछे नहीं दौड़ता।

इस संसार में पुरुषत्व बहुत थोड़ा है, इसीलिए लोगों की स्त्रियाँ अपने आपको पुरुष बना रही हैं। इस दशा का कारण यह है कि केवल वही मनुष्य स्त्री के स्त्रीत्व की रक्षा करेगा जिसमें पर्याप्त पुरुषत्व है। माता और पुत्री की अपेक्षा पिता और पुत्र में बहुत कम झगड़ा होता है। सब सचाइयों से (जहाँ तक उनका सम्बन्ध पुरुष, प्रेम, सन्तान, समाज, और जीवनोद्देश्य से है) घृणा करना स्त्री का एक स्वाभाविक गुण है। जो व्यक्ति उसकी आँखें खोलता है उससे वह बदला लेने का यत्न करती है।

पुरुष के लिए स्त्री ऐसी ही है जैसी कि मनुष्य-समाज के लिए निद्रा। जिस प्रकार दिन भर की

थकावट से मनुष्य-शरीर में उत्पन्न होनेवाली कमी को निद्रा दूर कर देती है वैसे ही मनुष्य-समाज में युद्ध-जन्य घाटे को स्त्री पूरा करती है।

कुछ लोग किसी युवक को पकड़कर एक विज्ञानी के पास ले गये और कहने लगे—देखिए, जी, स्त्रियाँ इस युवक का नाश कर रही हैं। विज्ञानी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, पुरुष ही स्त्रियों को बिगाड़ते और उनका नाश करते हैं। जिन बातों की स्त्रियों में कमी पाई जाय, पुरुषों को उन्हें पूरा करना और सुधार देना चाहिए, क्योंकि पुरुष ने अपने लिए स्त्री का एक चित्र बना रक्खा है और स्त्री अपने आपको उस चित्र के अनुरूप बनाती है। तब जन-समूह में से एक पुरुष बोला—आप स्त्रियों के पक्ष में बहुत अधिक झुके हुए हैं! ज्ञानी ने उत्तर दिया—तुम उन्हें नहीं जानते। पुरुष का गुण सङ्कल्प है और स्त्री का स्वीकृति। स्त्री-पुरुष का ऐसा ही नियम है और सचमुच, स्त्रियों के लिए यह बड़ा कड़ा नियम है!

सन्तराम, बी० ए०

हिन्दी-गुण-गान*।

करें सब हिन्दी का गुण-गान।
आओ, भ्रात! छेड़ें हम सब, मिल हिन्दी की तान ॥१॥
हिन्दी तन है, हिन्दी मन है,
हिन्दी धन है, हिन्दी जन है,
कहें आज हम कोटि कण्ठ से,—हिन्दी जीवन-प्राण ॥ २ ॥
हिन्दी है अभिमान हमारा,
हिन्दी है सम्मान हमारा,
हिन्दी विद्या, विभव, बड़ाई, ज्ञान और विज्ञान ॥ ३ ॥
हिन्दी योग, याग, जप, तप है
हिन्दी वाञ्छा-कल्प-विटप है,
हिन्दी तन्त्र-मन्त्र है, हिन्दी पूजन-भजन-विधान ॥ ४ ॥
हिन्दी दुख में, हिन्दी सुख में,
हिन्दी निशि दिन हो बस मुख में,
हिन्दी भुक्ति-मुक्ति है, हिन्दी ऋद्धि-सिद्धि की खान ॥ ५ ॥
मरते-जीते, हँसते-रोते,
हिन्दी कहें जागते-सोते,
कहते-सुनते, करते-धरते, हिन्दी का हो ध्यान ॥ ६ ॥
हिन्दी भारत का सम्बल है
हिन्दी पुण्य-प्रेम का फल है,
हिन्दी सङ्घ-शक्ति है अद्भुत, अविजित, त्रिभुवन-त्राण ॥७॥
हिन्दी सरस-सुधा-सरिता है,
भक्ति और श्रद्धा-भरिता है,
जिसके अमर सुकवि जग-वन्दित, तुलसी, सूर समान ॥८॥
हिन्दी पाप-ताप-दुख-हरणी,
हिन्दी सकल शान्ति-सुख-करणी,
हिन्दी धर्म-धाम है अनुपम, हिन्दी तीर्थ-महान ॥ ९ ॥
आओ, प्यारे, बन्धु हमारे,
हिल मिलकर सब कपट बिसारे,
करें स्नान हिन्दी-सुरसरि में, हों भव-दुख-अवसान ॥ १० ॥

—मुरली-मुकुटधर।

अपमान।

(अरुणकुमार की कहानी।)

मेरा नाम श्रीअरुणकुमार मित्र है। आप मेरे पिता का नाम पूछते हैं? वह मैं नहीं बतलाऊँगा—घर-जमाई को पिता का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। श्वशुर का नाम?—उस नाम को भी मैं इस जीवन में कभी न लूँगा—उस वंश का नाम-धाम नहीं बतलाऊँगा। उनके गुणों की जो कुछ कहानी मैं सुनाऊँगा, उसे सुनकर ही उस भद्रनामधारी, धनवान् घोषपुङ्गव का नाम सुनने की किसीकी इच्छा न रहेगी।

---

* मध्य-प्रान्तीय द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में पठित। ले०।

मेरे श्वशुर बहुत बड़े आदमी हैं,—धन में बड़े, मान में बड़े, ज़मींदारी में बड़े, सरकार से प्राप्त सम्मान में बड़े। और छोटे कितने हैं?—यह भाषा में नहीं बताया जा सकता। हृदय अतिक्षुद्र,—क्षुद्र से भी क्षुद्र। अहङ्कार कितना? उसका कोई विशेषण ही नहीं—विशेषण खोजने पर भी नहीं मिलता।

मैं गुरु-निन्दा कर रहा हूँ! हाँ, पर मैं बड़ों की बातें बतला रहा हूँ, बड़ों का परिचय दे रहा हूँ, निन्दा नहीं करता। क्या उन्होंने मेरा उपकार किया है? यह मैं किस तरह अस्वीकार करूँगा! किन्तु जो कुछ उपकार उन्होंने किया है, उस ऋण से यदि जान दे देने पर भी मैं मुक्त हो सकता, तो इसी समय उस गुरु भार से मुक्त होकर अन्तिम श्वास लेने में अपना सौभाग्य समझता।

आप मेरी कुछ बातें सुन लीजिए। मेरा शरीर बहुत दुर्बल—रोग से जीर्ण—है। मैं मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ बड़े दुःख से, बड़े कष्ट से यह कहानी कहता हूँ।

मैं ग़रीब का लड़का हूँ। पिता ने बड़े कष्ट से मेरे पढ़ने का ख़र्च उठाया था। गाँव में ही एक अँगरेज़ी स्कूल था, इसी कारण मैं एन्ट्रेन्स का इम्तिहान दे सका था। एन्ट्रेन्स से आगे मैं न पढ़ सकूँगा, यह मैं अच्छी तरह जानता था; किन्तु भाग्य मुझे किसी और ही मार्ग पर ले जाने के लिए तैयार था। गाँव के स्कूल से फर्स्ट डिवीज़न (पहली श्रेणी) में पास करके मैंने पन्द्रह रुपये मासिक की छात्रवृत्ति प्राप्त की। फिर क्या मैं पढ़ना छोड़ सकता था? पिता ने भी कहा, जब पन्द्रह रुपये वज़ीफ़ा मिल गया है तब फिर क्या है? जिस तरह होगा महीने में पाँच रुपये मैं और दे दूँगा; तुम आगे पढ़ो। पिता की आज्ञा हुई; मैं पढ़ने के लिए हुगली चला गया।

जब मैं सेकन्ड इयर में पढ़ रहा था, उसी समय पिता की मृत्यु हो गई। अब माता के सिवा मेरा कोई न रहा। ज़मींदारी के सरिश्ते में पिता एक साधारण नौकरी करते थे। उन्होंने अन्याय से कभी एक पैसा पैदा नहीं किया था। कुछ थोड़ी सी घर की ज़मीन थी, उसकी आमदनी तथा नौकरी की तनख़ाह से किसी तरह घर का ख़र्च चलता था।

पिता की मृत्यु के बाद घर का भार मेरे ऊपर पड़ा। एक बार सोचा, पढ़ना छोड़ दूँ। फिर सोचा पन्द्रह रुपये तो मिलते ही हैं, एफ० ए० और पास कर लूँ, फिर आगे नहीं पढ़ूँगा। एफ० ए० पास करके एक नौकरी कर लूँगा, और माता की सेवा करूँगा। माता ने कहा, पढ़ना छोड़ना ठीक नहीं। यदि तू अपना ख़र्च चला सके तो सब ठीक है। जो कुछ ज़मीन है, उसकी आमदनी से एक विधवा के मुट्ठी-भर दानों का काम चल ही जायगा। बेटा, मेरी कुछ चिन्ता न कर। मन लगाकर पढ़े जा। तब मैंने ऐसा ही किया, और एक वर्ष बाद एफ० ए० का इम्तिहान दे दिया। फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हुआ, किन्तु वज़ीफ़ा नहीं मिला।

उस समय भी यदि पढ़ना छोड़ देता, तो क्या इतना कष्ट, इतना अपमान भोगना पड़ता। किन्तु उस समय तो और इम्तिहान पास करने का ख़ब्त सवार था। मैंने सोचा, यदि किसी तरह सहायता मिल जाय तो अनायास ही एम० ए० पास कर सकता हूँ, क़ानून की परीक्षा देकर वकील बन सकता हूँ। उस समय मैं अपने भविष्य का उज्ज्वल चित्र अपने सामने देख रहा था। परीक्षा पास करके बड़ा आदमी बनूँगा, ख़ूब पैदा करूँगा, दस आदमी इज़्ज़त करेंगे। इस उच्चाभिलाषा ने मुझे उन्मत्त बना दिया था। मैंने सोचा, जिस तरह होगा, विश्वविद्यालय की ऊँची डिग्री लेनी ही होगी। माता ने भी मेरे इस सङ्कल्प की पुष्टि की—बेटा, जिस तरह होगा उस तरह मैं चार-पाँच बरस और काट लूँगी, तू आगे को पढ़ने की फ़िक्र कर।

उपाय उपस्थित होगया—बड़ा ही सहज उपाय था। एक ज़मींदार अपनी एकलौती लड़की के लिए वर की तलाश में थे। मुझ सा ही ग़रीब लड़का चाहते थे। उनका विचार था कि अपने ख़र्च से लड़के को पढ़ा-लिखाकर अपनी ज़मींदारी और कुल रुपया जमाई और लड़की को दे देंगे। मैं बहुत कुलीन था। प्रथम श्रेणी में एफ़० ए० पास किया था। कालेज के प्रोफ़ेसर कहा करते थे कि यह खब तेज़ है; देखते-देखते बड़े अच्छे नम्बरों से एम० ए० पास कर लेगा। मेरा स्वभाव और चाल-चलन भी अच्छा था। ज़मींदार महाशय जो जो चाहते थे, सब एक ही बार मिल गया। इधर मैंने भी देखा, मेरी उच्चाभिलाषा पूरी होने में और कोई विघ्न ही नहीं है। पर क्या घर-जमाई होना पड़ेगा? नहीं, उस समय इस बात का कुछ ज़िक्र नहीं हुआ था। और यदि होता भी तो मैं अस्वीकार न करता। सब बातें सोचने का उस समय अवकाश कहाँ था? पढ़ने का सुयोग उपस्थित है; बस, मैंने और कुछ नहीं सोचा। माता भी पुराने ख़यालात की थीं; उन्होंने भी बिना कुछ सोचे-विचारे अपनी सम्मति दे दी। मैं ज़मींदार महाशय की रूपवती, विदुषी, षोडशी कन्या से विवाह करके एक रात में ही ग़रीब विधवा की सन्तान से एक-दम बड़े ज़मींदार का 'जमाई बाबू' बन गया। उस समय क्या मैंने यह सोचा था कि मैंने ज़मींदार को ग़ुलामी का पट्टा लिख दिया है! हाय आत्म-सम्मान-वर्जित, नीच युवक!

श्वशुर ने जब कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेज में मेरे पढ़ने की व्यवस्था की तब मैं मारे ख़ुशी के फूला न समाया। विवाह के बाद ज़मींदार महाशय ने अपनी कन्या को मेरे मकान पर नहीं भेजा। आदमी भेजकर मेरी माता को चार-छः दिन के लिए अपने घर बुलवा लिया; और इस तरह उनकी पुत्र-वधू को देखने की आशा पूरी कर दी। इससे भी मेरे आत्म-सम्मान में धक्का न लगा। इसके बाद मेरे श्वशुर जब माता को पुत्र-विक्रय के बदले में १५) मासिक देने लगे, तब भी उन रुपयों को हाथ फैलाकर लेने में मुझे ज़रा भी शर्म या घृणा न मालूम हुई। हाय एम० ए० पास! हाय मान और यश का नशा!

मैंने कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में पढ़ना आरम्भ कर दिया। बड़ी छुट्टी होने पर ससुराल ही जाना पड़ता था, नहीं तो ससुर नाराज़ होते और कहते थे, ग़रीब आदमी के घर बार बार जाने आने से मन और चाल-चलन बहुत छोटा हो जाता है। यह बात सुनने से मुझे बड़ी व्यथा होती थी, पर बड़ा बनने की आकाङ्क्षा हृदय की वेदना को फाड़कर अलग फेंक देती थी! न मालूम तब मैं कितना नीच हो गया था!

सास-ससुर से छिपकर मैं शनिवार को घर जाता, और रविवार को ही चोर की तरह वापस आ जाता था। यदि कोई होस्टल का लड़का पूछता तो कभी कह देता कि किसी रिश्तेदार के यहाँ गया था और कभी कह देता कि ससुराल गया था। मैं माता की एक ही सन्तान हूँ—विधवा का मेरे सिवा और कोई नहीं है।

एक ही वर्ष के बाद मुझे एक पुत्र प्राप्त हुआ। तब मैंने बी० ए० भी पास नहीं किया था। पोते को देखने के लिए माता बहुत व्याकुल हुईं। एक दिन मैंने इसके विषय में सास से कहा। उन्होंने उत्तर दिया, तुम्हारे घर में लल्ला को किसी तरह भेज ही नहीं सकती, और न उनसे ही इसके लिए कह सकती हूँ। तुम्हारी मा यहाँ आकर देख सकती हैं। यहाँ आने के लिए तो मैं उन्हें मना नहीं करती। खाने के लिए भी कुछ मनाई नहीं है। मेरे घर इतने आदमी खाते हैं; क्या तुम्हारी माँ को दो रोटियाँ भी नहीं दे सकूँगी? बात सुनते ही मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। बहुत सुन चुका था, बहुत सह

चुका था, किन्तु यह बात एकदम असह्य मालूम हुई। क्या मेरी दुःखिनी माँ दो रोटियों के लिए इनके यहाँ आयगी! बड़े आदमी की स्त्री का इतना नीच हृदय! मैं रोने लगा। मुझे रोता देखकर मेरी सास ने—उसी ज़मींदार की स्त्री ने—कुछ कड़ी आवाज़ में कहा, मैंने ऐसी क्या बात कह दी है जिस से तुम्हारे आँसू ढलकने लगे! मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं, यह कहकर वह चली गई। सौभाग्य की बात थी, उस घर में उस समय और कोई न था। मैं आँसू पोंछकर बाहर चला आया। किसीसे भी कुछ न कहा—अपनी स्त्री से भी नहीं। अब तक बीसियों बातें सुन चुका था, किन्तु आज तक अपनी स्त्री से एक बात का भी ज़िक्र नहीं किया था। सोचता था, बड़े आदमी की लड़की है, कहीं अपनी माँ की तरह दस बातें कह दीं तो मेरी यन्त्रणा असह्य हो उठेगी। उस दिन बाहर बैठकर मैंने बहुत कुछ सोचा। तब दिल में यह आया कि अब इनके यहाँ नहीं रहना चाहिए; एक ट्यूशन कर लेने से क्या मेरा ख़र्च नहीं चलेगा? परन्तु उसी वक़्त यह भी ख़याल हुआ कि परीक्षा निकट है, और इस समय ट्यूशन ही कहाँ मिलेगी? फिर यदि मिल भी जाय तो समय का नष्ट करना भी तो ठीक नहीं। जहाँ इतने दिन सहा है, वहाँ कुछ दिन और भी सही। ठीक ठीक ख़याल नहीं, उस वक़्त मैंने क्या क्या सोचा था। आख़िरकार इस अपमान को सहने का ही निश्चय किया—मैं इसी योग्य हो गया था।

कलकत्ते जाकर अगले शनिवार को ही घर गया। माता लड़के को देखने के लिए ज़िद करने लगीं। मैंने एक ही बात कही, तुम्हारे वहाँ जाने का काम नहीं है। आख़िरकार माता ने कहा, अरुण, क्या मैं तेरी बात नहीं समझती? समझती हूँ! बेटा! सब समझती हूँ! हम ग़रीब आदमी हैं, हमारा अपमान से क्या होगा? ग़रीब आदमी का मान-अपमान ही क्या? मैंने आज तक जितना अपमान सहन किया है, क्या तुझसे उसका कभी एक बार भी ज़िक्र किया है? क्या करूँ, यदि भगवान् दिन दिखायेंगे तो सब भूल जाऊँगी। मैं एक बार बच्चे को देखना चाहती हूँ। मैंने फिर वही कहा, नहीं मा, तुम्हारा वहाँ जाने का कुछ काम नहीं। जब वह बड़ा हो जायगा, तब मैं उसे यहीं ले आऊँगा। माता ने एक गहरी साँस लेकर कहा, समझ गई बेटा! भगवान् ने मेरे भाग्य में यह सुख ही नहीं लिखा। जाओ, लल्ला अच्छा रहे, मैं यही आशीर्वाद देती हूँ। माता की इस बात से मेरा कलेजा फटने लगा। किन्तु मैं का-पुरुष, माता की उस गभीर वेदना को दूर करने का उस समय कोई उपाय न सोच सका।

छः महीने बीत गये। मेरे पुत्र के—नहीं नहीं ज़मींदार महाशय के एकलौते धेवते (नाती) के अन्न-प्राशन का समय आया। जानते हैं, कौनसा दिन निश्चित हुआ?—मेरी बी० ए० परीक्षा का दूसरा दिन! सुना कि इससे पहले पत्रे में कोई और अच्छा मुहूर्त्त ही नहीं निकलता; बाद को चार महीने तक दिन ख़राब हैं। इस कारण मेरी उपस्थिति के लिए कोई और तिथि नहीं बदली जा सकती। बात भी ठीक है! यह दरिद्र अरुणकुमार मित्र के पुत्र का अन्न-प्राशन थोड़े ही है—यह बड़े ज़मींदार के धेवते का अन्न-प्राशन है! उसमें लड़के के दरिद्र तथा घर-जमाई पिता के मौजूद रहने की ऐसी आवश्यकता ही क्या है?

इस मौक़े पर उन्होंने मेरी माता को भी याद किया था। अपने एक नौकर को मेरे घर भेजा था। माता जाने के लिए तैयार न हुईं, उन्होंने उस आदमी से कहला भेजा कि मैं यहीं से बच्चे को आशीर्वाद देती हूँ। बड़े ही दुःख से माता ने इस निमन्त्रण को फेरा था। ऐसी माता के पेट से ऐसे पुत्र ने क्यों जन्म लिया, क्या आप लोगों में से कोई कह सकता है?

यथासमय बड़ी धूमधाम के साथ ज़मींदार के धेवते का अन्न-प्राशन होगया। जिस दिन परीक्षा समाप्त हो, उसी दिन ससुराल पहुँचने का मुझे आदेश मिल चुका था, किन्तु वह पाला नहीं गया। जिस दिन परीक्षा समाप्त हुई, उसी दिन ख़बर मिली कि माता को भयानक ज्वर आगया है। मैं और अधिक विलम्ब न करके सीधा मकान को चल दिया।

घर जाकर देखा, माता की अवस्था अच्छी नहीं है। जिस दिन बच्चे का अन्न-प्राशन था, उस दिन वह दिन भर रोई थीं, और उसी रात उन्हें ज्वर आगया था। वही बढ़ते बढ़ते इस दशा पर पहुँच गया था। मेरी परीक्षा में विघ्न पड़ने के ख़याल से, माता के आदेशानुसार, पड़ोसियों ने मुझे पहले सूचित नहीं किया।

डाक्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि माता की अवस्था अच्छी नहीं है, इस दशा से रक्षा पाना कठिन है। सबसे कठिन यह बात थी कि वह कोई औषध नहीं खाती थीं। मैंने भी बहुत चेष्टा की, किन्तु वे बराबर यही कहती थीं कि मेरा समय आगया है, दवा से क्या होगा?

उसी दिन तीसरे पहर माता ने मुझसे कहा, अरुण, मेरी एक चाह पूरी न हुई। लल्ला का मुँह देख लेती तो सुख से मरती।

मैंने कहा, माँ, तुम कुछ चिन्ता मत करो। लल्ला को बुलाने की मैं अभी व्यवस्था करता हूँ। यह कहकर मैं बाहर आया और पड़ोसियों से परामर्श किया। किसीने कहा एक पालकी भेज दो, किसीने कहा, एक आदमी भेज दो; किन्तु स्कूल के वृद्ध हेड मास्टर बाबू ने कहा, ना, ना, इससे काम नहीं चलेगा। अरुण, जब तक तुम स्वयं नहीं जाओगे तब तक वह कभी नहीं भेजेंगे। तुम्हारे जाने पर भी भेजदें, इसमें भी सन्देह है। तब भी मेरी राय में तुम्हारा ही जाना उचित है। तुम्हारी माँ की जैसी अवस्था है, इससे दो एक दिन तक कुछ भय की बात नहीं है। तुम एक काम करो, अभी जाने आने के लिए एक गाड़ी किराया करके ससुराल चले जाओ। सात कोस तो है ही, रात को आठ बजे तक पहुँच जाओगे, और उन्हें लेकर यदि वहाँ से खूब तड़के चल दोगे तो आठ-नौ बजे तक यहाँ आ पहुँचोगे। यही करो, जाओ, अभी प्रबन्ध करो। हेड मास्टर बाबू मेरे गुरु थे, उन्हीं की राय के अनुसार मैंने स्वयं जाने का निश्चय किया। गाँव में कुल तीन किराये की घोड़ा-गाड़ियाँ थीं; सौभाग्य से उनमें से एक उसी समय मिल गई। पड़ोसियों ने पहले की तरह उस दिन भी माता की सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया। डाक्टर बाबू भी रात को मेरे घर ही रहने के लिए राज़ी होगये। मैं स्त्री तथा पुत्र को लेने के लिए चल दिया।

रास्ते में बीसियों बातें सोचता जाता था। न जाने क्यों, रह रहकर यही ख़याल होता था कि जाना बेकार है; वे कभी न भेजेंगे। सम्भव है, मुझे भी दस-पाँच उलटी सीधी सुननी पड़ें। एक बार सोचा, घर को लौट चलूँ। किन्तु उसी समय मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई माँ के वे वेदनापूर्ण शब्द याद आ गये। मैं अपनी माता का इतना कर्महीन पुत्र हूँ कि उनकी कोई वासना ही पूर्ण न कर सका। क्या अब उनकी इस अन्तिम वासना को पूर्ण करने के लिए एक बार चेष्टा भी न करूँ? क्या उसके लिए अपमान से डरना कर्त्तव्य है? नहीं—जाना ही होगा।

रात को आठ बजे ससुराल पहुँच गया। मुझे इतने बे वक़्त वहाँ देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। मेरे ससुर ने कहा, ख़बर भी नहीं भेजी; स्टेशन पर गाड़ी भेज देते। कैसे आये? मैंने कहा, मैं कलकत्ते से नहीं आरहा हूँ। माता की बीमारी का समाचार

पाकर आज प्रातःकाल ही मकान पर पहुँचा था। देखा कि उनके बचने की आशा नहीं है; इसी—

बीच ही में मेरी बात काटकर ससुर महाशय ने कहा, क्या उन्हें यहाँ ले आये हो ?

मैंने कहा, नहीं, वे इस योग्य नहीं हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि मरने से पहले एक बार लल्ला को देखें। इसी—

फिर मेरी बात को बीच ही में काटकर उन्होंने बड़े ताने के साथ कहा, मालूम पड़ता है, इसीलिए 'लोक-लस्कर' साथ लेकर लल्ला को लेने आये हो ?

मैं कुछ उत्तेजित हो गया था; बड़ी कठिनता से उत्तेजना को संवरण करके कहा, जी हाँ।

ज़मींदार महाशय ने कहा, क्या तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है! हमारी लड़की तुम्हारे घर जायगी! बराबरी भी कुछ कम नहीं है! जाओ, जाओ, लड़कपन न करो। आये हो, अच्छी बात है। कहो तो तुम्हारी माँ के यहाँ आने का प्रबन्ध कर दें।

मैं और स्थिर न रह सका, कड़ककर कहा, आप ज़रा सोच समझकर मुँह से शब्द निकालिए। मैं अपनी स्त्री तथा पुत्र को अवश्य ले जाऊँगा। मुझे कौन रोकनेवाला है ?

ससुर महाशय ने कहा, सच! देखते हैं, बड़े मर्द हो गये हो! इतनी तेज़ी कब से आगई ?

मैंने भी कहा, "मैं आपका गुलाम नहीं हूँ, ज़रा होश सँभालकर बोलिए। मैं अपनी स्त्री को लेकर ही जाऊँगा। कहिए, अभी भेजिएगा या नहीं ?"

ज़मींदार महाशय गरजकर बोले, नहीं, हरगिज़ नहीं भेजेंगे। बस ज़्यादा मत बको, अभी कान पकड़कर निकाल देंगे।

क्या, कान पकड़कर ?—गुस्से के मारे मेरे मुँह से आवाज़ न निकली। मैं झपटकर अन्दर की ओर जाने लगा।

ज़मींदार महाशय ने कहा, ख़बरदार, उस तरफ़ मत जाना। कहे देता हूँ, अपमान होगा।

मैं क्रोध के मारे अधीर हो गया; अच्छे बुरे का ज्ञान न रहा। मैंने कहा, कौन अपमान करेगा, आवे न ?

यह सुनकर वे स्वयं उठे और मेरी गर्दन पकड़कर बोले, रास्केल, जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात! मुझमें उस समय चिल्लाने तक की शक्ति न थी।

मुझे घर से बाहर निकालकर उन्होंने स्वयं दरवाज़ा बन्द कर लिया। मैं दरवाज़े पर ही बैठ गया। कह नहीं सकता, उस वक़्त मुझे क्या हो गया था।

कुछ देर के बाद मुझे होश हुआ। मैं दरिद्र हूँ, असहाय हूँ, निराश्रय हूँ! और उपाय ही क्या है ? सिर पकड़े कुछ देर तक वहीं बैठा रहा। बाद को धीरे धीरे चलकर गाड़ी तक पहुँचा। गाड़ी में बैठकर गाड़ीवान से उसी वक़्त घर को चलने के लिए कहा। उसके बाद क्या हुआ, मुझे मालूम नहीं।

जब मुझे होश हुआ तब आँख खोलकर देखा कि मैं अपने उसी टूटे मकान में मैले बिछौने पर पड़ा हूँ। और देखा—क्या देखा—मेरे पास ही मेरी स्त्री 'सुषमा' लड़के को गोद में लिये उदास-मुँह बैठी है। यह दृश्य मैं न सह सका, फिर बेहोश हो गया।

× × × × × ×

(सुषमा की कहानी)

इस कहानी का बाक़ी अंश कहने के लिए स्वामी मुझे छोड़ गये हैं। जब तक वे बीमार थे, तब तक जिस दिन तबीयत ज़रा भी सावधान होती थी, उसी दिन लिखते थे। उसके बाद और लिखना नहीं हुआ—सब ज्वाला, सब यन्त्रणा, सब अपमान को इस पार छोड़कर वे उस पार चले गये! मैं आज रो रोकर इस शोकप्रद कहानी का उपसंहार करती हूँ।

मेरे पिता ने जब मेरे स्वामी का अपमान किया,

अपने हाथ से गर्दन पकड़कर घर के बाहर कर दिया, उस समय यह ख़बर मुझे नहीं मिली। ख़बर मिलने पर क्या होता, भगवान् ही जानें! कुछ देर बाद ही यह बात अन्दर फैल गई, सब ने सुनी, मैंने भी सुनी। उस समय मेरी क्या दशा हुई, यह ईश्वर ही जानते हैं। मेरी इच्छा हुई कि अभी गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ। आँखों से एक बूँद भी न निकली, जल मानो सूख गया था; छाती जैसे फटने लगी। कभी तबीयत चाही कि दुमंज़िले के बराम्दे से कूद पड़ूँ। इन प्राणों को रखकर क्या होगा। किन्तु लल्ला—

अन्त को मैं न मर ही सकी, न क्रोध ही कर सकी। किसके ऊपर क्रोध करूँगी? ये मेरे कौन हैं? कोई नहीं हैं—कोई नहीं हैं! जो मेरे स्वामी का अपमान कर सकते हैं, जो गर्दन पकड़कर उन्हें मकान से निकाल सकते हैं, वे मेरे कोई नहीं हैं; उनके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है!

एक बार जी चाहा कि घर का दरवाज़ा बन्द कर लूँ, किसीको आने न दूँ। किन्तु लल्ला तो बाहर दासी के पास था। मैं उसी वक़्त बाहर गई और लल्ला को लाकर अपनी छाती से चिपटा लिया। मैंने उसी छः महीने के बच्चे से कहा, लल्ला रे, बता तो सही, क्या करूँ! उसने रो दिया।

अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द करके मैं बहुत कुछ सोचती रही। लल्ला मेरी गोद में ही सो गया। मैं जितना उसका मुँह देखती थी, उतना ही उनकी सूरत का ध्यान आता था। वे यहाँ से कितनी व्यथा पाकर गये हैं, कितना मनःकष्ट भोगते होंगे! फिर ख़याल हुआ, वे कहीं चले तो नहीं गये! नहीं, वे कहीं नहीं गये होंगे; घर पर माँ जो बीमार हैं।

फिर यही स्थिर किया कि रात को सब आदमियों के सो जाने पर, किसीसे बिना कुछ कहे, लल्ला को लेकर श्यामनगर चली जाऊँगी। जाना ही होगा—जहाँ वे हैं वहीं मैं भी जाऊँगी। माता-पिता मुझे किसी तरह नहीं रोक सकते।

किन्तु रात में सात कोस चलूँगी कैसे? किसके साथ जाऊँगी? रास्ता तो मालूम नहीं, अकेली जाऊँगी किस तरह? फिर सोचा बामा को साथ ले जाऊँगी। उसीने मुझे इतना बड़ा किया है, वही लल्ला को पाल रही है, उसे ही साथ ले जाऊँगी। क्या वह जाने को राज़ी नहीं होगी? जिस तरह होगा हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर राज़ी ही करूँगी, वह ज़रूर मान जायगी। अब मैं इस मकान में नहीं रहूँगी, सास की मृत्युशय्या के पास रहूँगी। और वे—उनके चरण पकड़कर कहूँगी, मेरा कुछ अपराध नहीं है। नाथ, मैं बिलकुल निरपराध हूँ। मैं सब सुख को लात मारकर तुम्हारा अपमान बटाने के लिए आई हूँ। क्या वे मुझे क्षमा नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। इस नन्हे का, इस दुधमुँहे का ख़याल करके वे मुझे अपने चरणों में अवश्य स्थान देंगे। यदि नहीं देंगे तो, लल्ला को उन्हें देकर, उनके चरणों में लोटकर मर जाऊँगी!

उसी समय बामा को बुलाकर उससे सब बातें खोलकर कह दीं। पहले तो वह राज़ी न हुई। किन्तु बाद को जब मैंने बहुत खुशामद की, बहुत हाथ-पैर जोड़े तब राज़ी हो गई। किन्तु एक बात और थी। क्या मैं रात में सात कोस पैदल चल सकूँगी? और कहीं ठण्ड लग जाने से लल्ला को कुछ असुख हो गया तो? तब न मालूम हृदय के भीतर से कौन बोल उठा, कोई डर की बात नहीं है। इस पर मैंने सोचा, भय किसका?—सात कोस अच्छी तरह चल सकूँगी। वे पागल की तरह रात में ही सात कोस अकेले चले गये हैं—मैं क्यों नहीं चल सकूँगी? ख़ूब चल सकूँगी। लल्ला को भी कुछ न होगा; उसका बाल भी बाँका न होगा। मैं जाऊँगी ही। बामा को भी हिम्मत दिलाई, वह बिलकुल तैयार हो गई।

रात को ग्यारह बजे सब आदमियों के सो जाने

पर, वामा के साथ मैं खिड़की से उतर पड़ी। जो कुछ गहना मैं पहन रही थी, सब उतारकर वहीं रख दिया। मैंने सोच लिया कि इनकी कोई वस्तु साथ न ले जाऊँगी। मैं ग़रीब की स्त्री हूँ, मुझे सोने-चाँदी की ज़रूरत नहीं। एक मोटी चादर से बच्चे को ढककर, केवल एक वस्त्र पहने हुए, मैं अपने धनवान् बाप के घर से चल पड़ी। रास्ते में शरीर काँपने लगा। कभी घर से तो बाहर निकली ही नहीं थी, न कभी दस क़दम पैदल ही चली थी, और आज रात में सात कोस चलने के लिए निकल पड़ी हूँ! एक कोस चलने के बाद ही पिंडलियाँ टूटने लगीं। लल्ला उस वक़्त भी वामा के ही पास था। मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, वामा, मैं अब और नहीं चल सकती। वामा ने कहा, बीबीजी, मैंने तो तुम से तभी कहा था, पर तुमने एक न सुनी। सड़क पर इस समय रात में कोई आदमी भी नहीं दिखाई देता, बताओ, अब मैं क्या करूँ? मैंने कहा, वामा, इधर आ, ज़रा बैठ लूँ। ज़रा सुस्ताकर फिर चल सकूँगी। यह कहकर मैं बैठ गई।

किन्तु मैं तो बैठकर फिर उठ ही नहीं सकी। पिंडलियाँ मानों बिलकुल बेजान हो गई थीं। मैं एकाग्रचित्त हो भगवान् से प्रार्थना करने लगी, आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। एकाएक कुछ दूर पर एक गाड़ी का शब्द सुनाई दिया। ऐसा मालूम पड़ा कि जिधर से हम आ रहे थे, उधर ही से गाड़ी भी आ रही है। मेरी जान में जान आई। मैंने वामा से कहा, वामा, भगवान् ने हमारी प्रार्थना सुन ली। यह देख, एक गाड़ी की आवाज़ सुनाई देती है।

हम सड़क के किनारे बैठकर गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। जब गाड़ी हमारे सामने आई तब वामा ने गाड़ीवान से कहा, अरे, गाड़ी किराये पर ले चलेगा? जब गाड़ीवान को मालूम हुआ कि ये श्यामनगर जायगी तब वह राज़ी हो गया और बोला, मेरी गाड़ी भी श्यामनगर की ही है और मेरा मकान मित्र बाबू के नज़दीक ही है। अच्छा, बारह आने किराया देना होगा। हम लोग वही स्वीकार करके गाड़ी में बैठ गईं। तब दम में दम आया।

जिस वक़्त हम लोग घर पहुँचीं, कोई दो घंटे रात बाक़ी थी। मैंने भीतर जाकर देखा, वहाँ उस समय सब हो चुका था। सास का शव अर्थी पर रखा जा रहा था, और श्मशान जाने की तैयारी हो रही थी। मैं स्थिर न रह सकी। सास की छाती पर सिर रखकर रोने लगी, माँ, एक बार तो आँख खोलकर देखो, मैं तुम्हारे लल्ला को लेकर आई हूँ। मैं सब कुछ छोड़कर आई हूँ। माँ! एक बार लल्ला को गोद में ले लो! दो-एक बातें कर लो—मा! दो एक—

और स्त्रियों ने पकड़कर मुझे बराम्दे में बिठला दिया। एक पड़ोसिन बोली, बहू, यदि तू कल शाम भी आ जाती तो सास का मुँह देख लेती। आहा! बेचारी का लल्ला लल्ला ही कहते कहते दम निकल गया! केवल "अरे लल्ला, अरे लल्ला" यही धुन थी। इन हृदयविदारक बातों को सुनकर मेरी छाती दहलने लगी।

पड़ोसिन ने कहा, बहू, अब रोने से क्या होगा! एक के ऊपर एक आफ़त है। अरुण जिस दिन तुझे लेने गया था, उसी रात को वापस आ गया। आदमियों ने देखा कि वह गाड़ी में बेहोश पड़ा है। उसे अब भी होश नहीं है।

यह सुनते ही मानों मेरे सिर पर पहाड़ टूट पड़ा! मैंने घबड़ाकर पूछा, क्यों, वे कहाँ हैं? मुझे उस वक़्त कुछ लाज-शर्म न रही। पड़ोसिन मुझे एक कमरे में ले गई। मैंने देखा, वे बेहोश पड़े थे।

तीन दिन तक वे उसी तरह पड़े रहे। बाद को धीरे धीरे बहुत कुछ स्वस्थ हो गये। इसी बीच में उन्होंने मुझसे कहा, सुषमा, क्या इतना कष्ट सहकर तुम यहाँ रह सकोगी?

मैंने कहा, बहुत अच्छी तरह और सुनो, मैं

तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करती हूँ कि उस घर का नाम ज़ुबान पर कभी न लाऊँगी । तुम तो कभी वहाँ जाओगे ही नहीं, लल्ला को भी कभी नहीं जाने दूँगी । चाहे भीख माँगकर खाना पड़े, चाहे भूख से प्राण निकल जायँ, किन्तु उनसे कभी एक दाने की सहायता न लूँगी ! यदि लल्ला बड़ा होकर उन की मदद चाहेगा तो—तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करती हूँ, उसे—उन्होंने मेरा मुँह बन्द कर लिया ।

दो-एक दिन बाद ही उनकी तबीयत फिर बिगड़ गई, और फिर अच्छी न हुई; उसीमें वे चल बसे । मरने के पहले दिन उन्होंने बड़े क्षीण स्वर में मुझसे कहा, सुषमा, मैं तो चलता हूँ; तुम अपमान को भूल जाओ । इस लड़के को रास्ते का भिखारी मत बनाओ । मेरा तो कोई है नहीं, मैं तुम्हें किसे सौंप जाऊँ ? सब भूल जाओ, मैं भी भूल गया हूँ । बच्चे को लेकर अपनी मा के यहाँ चली जाओ; पहली सब बातें दिल से निकाल दो ।

मैंने कहा, इस जन्म में नहीं । क्षमा !—इस जन्म में नहीं । तुम देवता हो—तुम क्षमा कर सकते हो—तुम भूल सकते हो, किन्तु मैं स्वामी के अपमान को किसी तरह नहीं भुला सकती । यदि पिता मेरा अपमान करते तो मैं भूल जाती, किन्तु उन्होंने तुम्हारा अपमान किया है ! उन्हें क्षमा ! यह बात मत कहो । इस पर वे, न मालूम क्या कहना चाहते थे, किन्तु कह न सके । अगले ही दिन सब खेल बिगड़ गया ।

× × × × ×

उनकी कहानी पूरी होगई । अब कुछ कहने की क्या आवश्यकता है । मेरे दुख-दर्द की कहानी सुनने का अब क्या काम है ! वह सर्वव्यापी ईश्वर ही जानता और सुनता है । माता-पिता ने आकर कितना विलाप किया, चलने के लिए कितना अनुरोध किया, किन्तु मैं नहीं गई—जाऊँगी भी नहीं । इस टूटे मकान में पड़ी हूँ—भीख माँगकर खाऊँगी, तब भी यहीं रहूँगी । यह मेरे स्वामी का मन्दिर है, मैं इसी तीर्थ में मरूँगी ।

क्या कहते हो ?—मेरे हृदय में बड़ी चोट पहुँची है, इसलिए यह कह रही हूँ ? नहीं, नहीं, मेरे हृदय में बड़ी चोट क्या पहुँची है ! चोट पहुँची थी उस दक्ष राजा की लड़की सती के हृदय में, जिसने पति की निन्दा सुनते ही प्राण त्याग दिये ! और मैं—पति-निन्दा नहीं—पति का अपमान और उसी वेदना में पति का देहान्त देखकर भी जीवित हूँ ! माँ शिव-सोहागिनि, यदि तुम उस दिन अपनी इस हतभागिनी पुत्री को अपना थोड़ा सा सती-तेज दे देतीं तो, उनके अपमान-विष को पीकर, उनके सामने ही पार होकर अपना नारी-जन्म सफल करती । करुणामयि, तुम्हें इतनी भी दया नहीं आई !*

कैलासचन्द्र गुप्त

पवन-दूत ।

मेघदूत के ढङ्ग का एक दूसरा अवतरण पवन-दूत नाम से प्राप्त हुआ है । इसके आदि-उद्धारकर्ता हरिप्रसाद शास्त्री ने इसे १८९८ ई० में बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के सम्मुख लाने का यत्न किया और यह उन्हीं शास्त्रीजी का काम है, जो संस्कृत-साहित्य का एक अनूठा रत्न आज खोते खोते बच गया ।

इसके मूल-लेखक धोयी कविराज बङ्गाल के सेनवंशीय राजा लक्ष्मणसेन के राजकवि थे । गीतगोविन्द को देखने से विदित होता है कि वे भी जयदेव के ही समकालीन थे । किन्तु दुःख है कि जयदेव का कालनिर्णय अभी तक नहीं हो सका है । इधर जालहंस की सुभाषित-मुक्तावली में उद्धृत धोयी के पदों से यह स्थिर होता है कि इनका काल भी १२०५ ई० के लगभग ही है । इनका समय

---

* जलधर बाबू की एक बँगला कहानी का अनुवाद ।

जालहंस से इधर का हो सकता है ; क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक में लक्ष्मणसेन ही को कवि ने अपना नायक माना है और लक्ष्मणसेन के ११७० से १२०० ई० तक राज्य करने का पता इतिहासों से चलता है। ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि लक्ष्मणसेन ने कुछ काल शासन करने के बाद ही भूमण्डल-विजय का सङ्कल्प किया होगा, जिसका वर्णन कवि ने अपनी पुस्तक में किया है।

अतः कवि का जीवन-काल ११८० ई० के लगभग मान लेना सर्वथा ठीक होगा।

कवि ने पवन-दूत की रचना ठीक मेघदूत की छाया पर की है। छन्द, अलङ्कार, कथा, प्रायः सभी बातें उसी ढङ्ग की हैं। केवल विशेषता इतनी ही है कि मेघदूत में जहाँ कालिदास ने एक विरही के मुख से वियोगवार्ता भिजवाई है, और मेघ को अपना दूत माना है वहाँ धोयी ने एक विरहिणी के मुख से वियोग-संवाद भिजवाया, तथा पवन को अपना दूत माना है। कवि के इस चुनाव में, चमत्कार तो अवश्य है, क्योंकि कवि के लिए विरहवार्ता-वाहन का कार्य्य मेघ की अपेक्षा पवन कहीं अच्छे प्रकार कर सकता है। पवन की तरल गति, उसकी व्यापकता, उसका आलिङ्गन-गुण इस बात के स्वतः प्रमाण हैं कि पवन दूत का काम कहीं अच्छी तरह कर सकता है। और कदाचित् यही कारण है कि उर्दू के अनेक कवियों ने इस साधन का आश्रय लिया है।

कवि ने विरहिणी को अपनी नायिका चुनने में भी कमाल किया है। वियोग-वेदना-वर्णन जितना अच्छा विरहिणी के मुख से हो सकता है उतना एक विरही के मुख से नहीं। अब रही कवि की कल्पना की बात। इसके लिए यह मानना पड़ेगा कि कालिदास मेघ को अपना दूत और विरही यक्ष को अपना नायक मानकर जितना प्रतिभा-प्रदर्शन कर सके हैं उतना उपयुक्त नायकों के होते हुए भी धोयी ने नहीं कर पाया है। फिर भी धोयी कवि कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं थे। उनकी इस रचना को पढ़कर यह पहचानना कुछ कम कठिन नहीं है कि प्रतिभा-विकास किस कवि में अधिक योग्यता से हो सका है।

यद्यपि पुस्तक का ढङ्ग लेखक की मूल कल्पना नहीं ठहरी, फिर भी अवतरण इतना अच्छा है कि यदि इसे कालिदास का दूसरा दूत कहें तो अत्युक्ति न होगी। पुस्तक बहुत अंशों में ऊँचे दर्जे की है। इसका वर्णन उतना ही रोचक और भावपूर्ण है, जितना कि मेघदूत का।

अब हम हिन्दी-पाठकों के विनोदार्थ उसका कुछ पद्यानुवाद देते हैं। आशा है कि हिन्दी के सुबोध विद्वान् इधर अपनी रुचि दिखलावेंगे।

[पूर्व 'पवन']

अस्ति श्रीमत्यखिलवसुधासुन्दरे चन्दनाद्रौ ,
गन्धर्व्वाणां कनकनगरी नाम रम्यो निवासः ।
हैमैर्लीलाभवनशिखरैरम्बरं व्यालिखद्भि-
र्धत्ते शाखानगरगणनां यः सुराणां पुरस्य ॥
अखिल जगत में सबसे सुन्दर मलयाचल है जिसका नाम ।
उस पर एक कनकनगरी थी जो था गन्धर्वों का धाम ॥
कनक-भवन पर अम्बर-चुम्बी लगे हुए थे कलश-ललाम ।
जिससे अमरपुरी का शाखा-नगर हो रहा था वह ग्राम ॥१॥

× × ×

त्वत्तः प्राणाः सकलजगतां दक्षिणस्त्वं प्रकृत्या
जङ्घालं त्वां पवन मनसोऽनन्तरं व्याहरन्ति ।
तस्मादेव त्वयि खलु मया संप्रणीतोऽर्थिभावः
प्रायो भिक्षा भवति विफला नैव युष्मद्विधेषु ॥
सहज उदार सकल जीवों का तू ही जीवन-दाता है ।
मन के बाद दौड़ने में तेरा ही नम्बर आता है ॥
अतः आपसे मुझ भिखारिनी की है विनती, देव समर्थ ।
प्रायः तुम ऐसे पुरुषों से जाती नहीं याचना व्यर्थ ॥४॥
तीक्ष्णावस्थां विरहविधुरां रामचन्द्रस्य हेतो—
र्यातः पारं पवन सरितां पत्युरप्याञ्जनेयः ।
तत्तातस्याप्रतिहतगतेर्यास्यतस्ते मदर्थं
गौडी क्षोणी कति नु मलयक्ष्माधरायोजनानि ॥
देख विरह में अतिशय व्याकुल बनकर धावन पवनकुमार ।
तेरे सुत ने रामचन्द्र के हित जब किया उदधि को पार ॥
फिर यह मेरे लिए तुम्हें हे अप्रतिहतगति ! उसके तात ।
मलयभूमि से गौड़ देश का जाना कौन बड़ी सी बात ॥२॥

× × ×

श्रीखण्डाद्रेः परिसरमतिक्रम्य गव्यूतिमात्रं
गन्तव्यस्ते किमपि जगतीमण्डनं पाण्ड्यदेशः ।
तत्र ख्यातं पुरमुरगमित्याख्यया ताम्रपर्ण्या-
स्तीरे मुग्धक्रमुकतरुभिर्व्बद्धरेखैर्भजेथाः ॥

मलयाचल के आस-पास केवल दो कोस भूमि कर पार।
तुम्हें मिलेगा पाण्ड्यदेश जो जगतमुकुट है सुखमागार॥
क्रमुक-वृक्ष-आच्छन्न ताम्रपर्णी पर उरग-नगर सरनाम।
जाकर उसी राजधानी में कर लेना कुछ काल विराम॥८॥

सम्भोगान्ते श्लथभुजलतानिःसहानां बधूनां
(१) व्याधुन्वन्तोऽनुचितकबरीभारमव्याजमुग्धम्।
अस्मिन् सद्यः श्रमजलनुदः सौधजालैरुपेत्य,
प्रत्यासन्ना मलयमरुतस्तालवृन्तीभवन्ति॥

रति के बाद हारकर बैठी होंगी बधू झरोखे पर।
उनकी बिथुरी लटें हवा में उड़ती होंगी फर फर फर॥
ऐसे समय पसीने से जब भींग रहा हो देह तमाम।
मारुत! जाकर तुम्हीं वहाँ दोगे उनको पंखे का काम॥९॥

× × ×

लीलागारैरमरनगरस्यापि गर्व्वं हरन्तीं
गच्छेः काञ्चीपुरमथ दिशो भूषणं दक्षिणस्याः।
नक्तं यत्र प्रहरिक इवोज्जागरं नागराणां
कुर्व्वन् पाणिप्रणिहितधनुर्जायते पञ्चबाणः॥

दक्षिण-दिग्भूषण कांचीपुर जो है सुरपुर से बढ़ कर।
ऐसे लीलागार नगर को शीघ्र देखना तुम जाकर॥
नागरिकों का रात्रि-जागरण जहाँ यही बतलाता है।
कामदेव प्रहरी बन मानो लेकर धनुष जगाता है॥१२॥

मन्ये मोचः कठिनसुरतायासलब्धस्य तूर्णं
दुष्प्रापस्ते पवन भविता चोल-सीमन्तिनीभ्यः।
के वा तासामलकरचनानीललीलासनाथे
गण्डाभोगे मलयजपयःपिच्छिले न स्खलन्ति॥

थकी हुई रति-श्रम के मारे चोल-नारियों के द्वारा।
समझ रही हूँ जल्दी दुर्लभ होगा तेरा छुटकारा॥
उनकी श्याम गुथी अलकों पर, चिकने गोल कपोलों पर।
मलय पवन! क्यों नहीं फिसल जाओगे तुम सहसा जाकर १४

[उत्तर 'पवन']

श्रीखण्डाद्रेर्वसति शिखरे कोऽपि गन्धर्वलोक-
स्तत्रास्त्येका कुवलयवती नाम धन्याङ्गनानाम्।
दूतं तस्याः कलय मलयोपत्यकामारुतं मां
कामिद्वन्द्वं घटयति मिथो विप्रयुक्तं य एकः॥

कह देना मलयाचल पर गन्धर्वलोक है एक महान।
वहाँ एक धन्या है कुवलयवती नाम की रूप-निधान॥
राजन्! मैं हूँ मलय-पवन तुम मुझे दूत उसका जानो।
युगल प्रेमियों को आया हूँ यहाँ मिलाने, पहिचानो॥६२॥

× × ×

मुष्टिग्राह्यं किमपि विधिना कुर्व्वता मध्यभागं
मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्म्मुकाय।
राजन्नुच्चैर्व्विरहजनितक्षामभारं वहन्ती
जाता संप्रत्यहह सुतनुः सा च मौर्वीलतेव॥

ब्रह्मा ने जो उस बाला की मुट्ठी भर की रची कमर।
काम-धनुष के लिए बनाई मानों सामग्री सुन्दर॥
राजन्! दबकर विरह-भार से दुबली होती जाती है।
सोने की वह देह शोक में मिट्टी होती जाती है॥६६॥

× × ×

धत्ते द्वेषं शशिनि कुरुते न ग्रहं केशहस्ते
दूरे हारं क्षिपति रमते निन्दया चन्दनस्य।
वक्तुं देव त्वयि परमसौ नामवस्थां कथञ्चि—
द्गाढोद्वेगा नयति कविताचिन्तया वासराणि॥

चन्दन की निन्दा करती है छूती तक न हाथ से केश।
हार फेंक देती है उर से रखती शीतद्युति से द्वेष॥
राजन्! फिर भी मैंने जाकर देखा उसका ऐसा हाल।
कविता की रचना कर करके काट लिया करती है काल॥७३॥

आदौ याते नयनपदवीं स्तम्भयन् पक्ष्ममालां
चुम्बन् गण्डस्थलभुवमथो पीतबिम्बाधरोष्ठः।
कुर्व्वन् कण्ठग्रहमपि कुचोत्सङ्गशय्याशयान-
स्तस्या वासः (वाष्पः?) किमिव न खलु त्वद्वियोगे करोति॥

पहले तुम्हें देखकर उसके कमल-नेत्र पर जा पौढ़े।
चुम्बन कर कपोल का सहसा अधरपान करने दौड़े॥
कंठ पकड़कर, स्तनशय्या पर लेटे जाकर तत्पश्चात।
तेरी बिछुड़न में की उसके आँसू ने न कौनसी बात॥७४॥

शारङ्गाक्ष्या जनयति न यद्गस्ससादङ्गकानि
त्वद्विश्लेषे स्मरहुतवहः श्वाससङ्धुक्षयेऽपि।

---

(१) इसका पाठ यों होता तो अच्छा होता—
व्याधुन्वन्तोऽविचितकबरीभारमव्याजमुग्धम्।

जाने तस्याः स खलु नयनद्रोणिवारां प्रभावो
यद्वा शश्वन्नपतपमनोवर्त्तिनः शीतलस्य ॥

तेरी विरह-काम-ज्वाला पाकर भी गर्म साँस का जोड़ ।
उसे भस्म क्यों नहीं कर सकी, कोर-कसर क्यों रक्खी छोड़ ॥
या तो इन्हीं आँसुओं का यह ज़ाना जाता प्रचुर प्रभाव ।
अथवा शीतल चन्द्रकान्त बन तूने उसका किया बचाव ॥७५॥

शान्तप्राये रजनिसमये किञ्चिदामीलिताक्षी
प्राप्य स्वप्ने कथमपि पुरस्त्वामतिप्रौढरागा ।
श्लिष्यन्ती त्वां तनुमनुपदं विप्रबुद्धाथ बाला
लज्जालोलं वलयति दृशं सा सखीनां मुखेषु ॥

शेष हुई रजनी में आँखों पर निद्रा का पर्दा डाल ।
तुम्हें स्वप्न में प्रमुख देखकर होती है वह अधिक निहाल ॥
आलिंगन करती है, पर जाती है निद्रा शीघ्र उचट ।
लज्जित नयनों से सखियों का मुख लखने लगती है झट ॥

× × ×

त्वद्वक्त्रानुस्मरणरसिका कातरा च प्रकामं
ज्योत्स्नासेकैर्द्विजपतिमधिक्षेपपात्रं करोति ।
किञ्चिद् द्वेष्टि त्रिदशभिषजो सुन्दर त्वां विचिन्त्य
प्रायेणैवं भवति विधुरासन्नमृत्योर्म्मनीषा ॥

कभी चाँद की ओर देखती करके तेरा मुख-शशि याद ।
शीतलता के कारण करती है उसका भी निन्दावाद ॥
तेरी सुन्दरता के आगे आश्विन पर करती बौछार ।
प्रायः मरणासन्न जीव के ऐसे होते बुद्धि-विचार ॥८६॥

सा वैरस्यादसितनयना हेमतन्त्रीं दधानां
प्रश्नाख्यानात् प्रकृतिसुभगं केशपाशं बिभर्त्ति ।
तद्गात्राणां किमपि सहसा दुर्ब्बलत्वं विचिन्त्य
त्यक्तं त्रासाद्गुणमिव मनोजन्मना कार्म्मुकस्य ॥

अलि-नयनी ने विरस भाव से धारा है अति दुर्बल वेष ।
बात पूछने पर छूती है सहज सलोने कुंचित केश ॥
मानों कामदेव ने पहले संधाना था उस पर बान ।
पर अब उसे उतार लिया है बेचारी को दुबली जान ॥८७॥

शिवदास गुप्त

क्षय-रोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा ।

डाक्टर चौरी मुत्थू (Chowry Muthu) क्षय-रोग के एक अच्छे डाक्टर माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी (मदरासी) होकर भी उन्होंने विलायत में एक नवीन ढङ्ग का आरोग्याश्रम (Sanatorium) खोल रक्खा है। कुछ दिन हुए उसे देखने के लिए मैं उनके साथ ठहरा था। यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान में डाक्टर मुत्थू की अच्छी पहुँच है और उन्होंने अपने जीवन के ३५ वर्ष विदेश में व्यतीत किये हैं, तथापि हृदय से वे सच्चे हिन्दुस्तानी हैं और भारतीय विज्ञान, कला, दर्शन और धर्म का उन्हें बड़ा अभिमान है। उन्होंने भारतीय वैद्यक शास्त्र का भी अध्ययन किया है और इसीलिए वे यह भी बता सकते हैं कि क्षय-रोग के लिए प्राचीन और अर्वाचीन में से कौन सी चिकित्सा अधिक उपयोगी है। इन्हीं सब कारणों से मैंने उनसे पूछा कि डाक्टर साहब, हमारे पूर्वज क्या इस रोग के निदान को जानते थे और यदि जानते थे तो क्या उन्हें इसकी चिकित्सा भी मालूम थी ?

मेरे इस प्रश्न का जो उत्तर डाक्टर महोदय ने दिया उसे उन नवयुवक विद्यार्थियों को ध्यान में रखना चाहिए जो स्कूलों और कालिजों से परीक्षोत्तीर्ण होकर निकलने पर नवीन बातों को तो बड़े प्रेम की दृष्टि से देखते हैं; परन्तु प्राचीन बातों को सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। डाक्टर मुत्थू ने कहा कि यूरोपीय चिकित्सा के जन्मदाता हिपोक्रेटीज़ (Hippocrates) के शताब्दियों पहले क्षय-रोग और उसके भिन्न भिन्न लक्षण भारत-निवासियों को ज्ञात थे। वे उसे क्षय-रोग (wasting disease) कहते थे। क्षय-रोग (wasting disease) शब्द की उत्पत्ति भारत में हुई, ग्रीक देश में नहीं। चरक और सुश्रुत दोनों ने एक एक अध्याय इस विषय पर लिखा है।

हिन्दुओं का कहना है कि यह रोग चिन्ता, शोक, काम की अधिकता, तथा अधिक वीर्य्यपात से और दूषित वायु के श्वास लेने से उत्पन्न होता है। उनकी समझ में खांसी का आना, कुछ पीले कफ (yellowish phlegm) का

डाक्टर चौरी मुत्थू।

गिरना, ज्वर का चढ़ना, शरीर का क्षीण होना (emaciation), मुँह से रुधिर का बहना (hemorrhage) और आगे चलकर अँतड़ियों में फफोले पड़ जाना और फिर दस्त लगना इस रोग के लक्षण हैं।

वेल्स, समरसेट में स्थित, डा० चौरी मुल्थू के आरोग्याश्रम के रोगी।

सभ्यता के बढ़ने के साथ साथ जब नगरों में जन-संख्या के बढ़ने से बस्ती घनी हो जाती है तभी क्षय का प्रादुर्भाव होता है। प्राचीन समय में इस रोग का होना इस बात का प्रमाण है कि भारतवासी सभ्यता के उच्च शिखर तक पहुँच चुके थे।

उस समय के हिन्दू इस रोग में निम्न-लिखित ओषधियों का प्रयोग करते थे—

(१) बकरी और गदही का दूध।
(२) हाथी, हिरन और अन्य जङ्गली जानवरों का कड़ा मांस।
(३) जङ्गली जानवरों के मांस का बना हुआ और शीघ्र पचनेवाला शोरबा (broth)।
(४) लहसुन।
(५) मिर्च।
(६) बकरियों के साथ रहना।
(७) प्राणायाम (breathing exercises), मन की शान्ति, साधना (contemplation) और प्राकृतिक सौन्दर्य्य का निरीक्षण।

ओषधियों की इस सूची से जाना जाता है कि प्राचीन समय के हिन्दुओं की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। प्रकृति के जिन जिन गूढ़ तत्त्वों का अनुसन्धान वर्तमान वैज्ञानिकों ने अभी किया है उनमें से बहुतों को हिन्दुओं ने अपने अनुभव द्वारा पहले ही मालूम कर लिया था। अच्छा, बकरियों के साथ रहने और बकरी और गदही के दूध पीने ही की बात को लीजिए। वैज्ञानिकों का मत है कि बकरी के मूत्र में अमोनिया (नौसादर) होता है; इसीलिए क्षय के रोगी बकरियों के साथ रक्खे जाते थे। बकरी और गदही का दूध पौष्टिक है और जल्द पचता है। मिर्च पाचन-क्रिया को उत्तेजित करती है। लहसुन से आयर्लैंड के डाक्टर मिनचन (Dr. Minchen) एक प्रकार का तेल बनाते हैं और दूसरे डाक्टर उसे भोजन के साथ खाने का निर्देश करते हैं। मन की शान्ति, साधना और प्राकृतिक सौन्दर्य्य के निरीक्षण को अब आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सक भी क्षय के लिए उपयोगी मानने लगे हैं।

डाक्टर मुल्थू का सैनीटोरियम विज्ञान के सर्वोच्च नियमों के अनुकूल अपना काम कर रहा है। इतने दिनों के अनुभव के पश्चात् उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि रोगी को रहने के लिए यदि शान्त, आरोग्यवर्द्धक और

स्वच्छ स्थान मिले; उसे खाने को पौष्टिक पदार्थ दिये जायँ; उसका चित्त हमेशा प्रसन्न रक्खा जाय और उसकी देखरेख के लिए विचारशील, दयालु और हँसमुख डाक्टर मिलें, तो प्रकृति इस बीमारी को, जो पाश्चात्य और पूर्वीय देश-निवासियों को इतनी अधिक संख्या में उदरस्थ कर रही है, जल्द अच्छा कर सकती है। उन्होंने अपने सैनीटोरियम का नाम पर्वतीय कुञ्ज (Hill-grove) रक्खा है। इस नाम का कारण यह जान पड़ता है कि सैनीटोरियम हज़ार फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है, नगर के चहल-पहल और शोर-गुल से कहीं दूर है और चतुर्दिक् कुछ अधिक ऊँची पहाड़ियों से घिरा है जो उसे पूर्व की ठण्डी हवाओं से सुरक्षित रखती हैं। सैनीटोरियम की मुख्य मुख्य इमारतें जिनमें परामर्श-गृह (consulting room), भोजनालय, क्रीड़ा-स्थान और काठ के छोटे छोटे घर बने हैं, बीच में जङ्गल पड़ जाने के कारण नगरों से बिल्कुल अलग हो जाती हैं। ये जङ्गल इसी जायदाद के अधिकार में हैं और शिशिर और ग्रीष्म, दोनों ऋतुओं में हरे-भरे रहते हैं। इनको बीच से काटकर रास्ते बनाये गये हैं और ऊपर वृक्ष की शाखायें एक दूसरे से मिला दी गई हैं। इन रास्तों में रोगी स्वच्छ हवा के लिए हर समय घूम सकता है, मौसिम चाहे कैसा ही भयावह क्यों न हो।

आरोग्याश्रम का प्रबन्ध-भवन।

पर्वतीय कुञ्ज में पहुँचते ही रोगी को डाक्टर मुत्थू के परामर्श-गृह में जाना पड़ता है जिसमें एक ख़ुर्दबीन, एक बिजली का यन्त्र, एक्स-रे मशीन और एक नापने और तौलने की कल रहती है। वहाँ रोगी तौला जाता है, उसकी नाप होती है, उसकी छाती की परीक्षा होती है, उसका तापमान अंकित किया जाता है, उसका पूरा इतिहास लिखा जाता है और यदि आवश्यकता हो तो एक्स-रे से उसके फेफड़ों की तसवीर खींच ली जाती है। डाक्टर दवा तजवीज़ करता है, आराम और व्यायाम का समय निर्धारित करता है, और रोगी को उपदेश करता है कि नगर के बीच रहने से जो ख़राबी तुम्हारे फेफड़ों में आ गई है उसे प्रकृति यहाँ आप ही आप दूर कर देगी। साधारणतः रोगी को डाक्टर साहब के पास मास में दो बार जाने की ज़रूरत है, किन्तु रोग कठिन होने पर उसे कई बार जाना पड़ता है। यदि नसों में ख़राबी आ गई हो, तो बिजली की चिकित्सा सप्ताह में दो बार की जाती है। बिजली की चिकित्सा के समय का ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। जितने दिनों तक उसकी आवश्यकता समझी जाती है उतने दिनों तक वह जारी रक्खी जाती है।

जिन रोगियों की दशा सन्तोष-जनक होती है वे आनन्दपूर्वक सवेरे, दोपहर को और सन्ध्या के समय

भोजनालय में बैठकर भोजन कर सकते हैं। भोजनालय के सामनेवाली दीवार पर एक बड़ी खिड़की है जो मौसिम के अनुसार, डाक्टर की आज्ञा से, न्यूनाधिक खुली रक्खी जाती है। इसमें परदे नहीं रहते और न कोई रोगी इसे छूने पाता है।

जिस रोगी को जितने भोजन की आवश्यकता डाक्टर साहब समझते हैं उस रोगी को उतना ही वे अपने हाथ से परोसते हैं। कोई दूसरा नहीं परोसने पाता। उनकी सम्मति में खोई हुई शक्ति को पुनः उपलब्ध करने के लिए रोगी को पौष्टिक पदार्थ खाने के लिए देना चाहिए, लेकिन आवश्यकता से अधिक ठूँस ठूँसकर नहीं। जर्मनी में रोगी को ठूँस ठूँसकर खिलाते हैं। डाक्टर मुत्थू इसे नापसन्द करते हैं। ये ब्लेक-फोस्ट (Black Fœst) गये थे और नारड्राक के डाक्टर वालथर (Dr. Walther of Nordrach) से मिलकर उन्होंने इनकी निकाली हुई चिकित्सा का अध्ययन भी किया था। इस चिकित्सा में रोगी को ठूँस ठूँसकर पौष्टिक भोजन कराते हैं और उसे घूमने का परामर्श देते हैं। डाक्टर मुत्थू रोगी का घूमना तो पसन्द करते हैं, किन्तु उसे ठूँस ठूँसकर भोजन कराना पसन्द नहीं करते।

प्रत्येक रोगी अकेला एक कमरे में रहता है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई १२ और १० फ़ीट होती है। कमरे का मुँह दक्षिण की ओर रहता है। उसके सामने एक बराम्दा होता है जिसकी छत कांच की बनी होती है और पीछे एक दालान (corridor) होता है। सामनेवाले बराम्दे में बड़ी बड़ी खिड़कियाँ लगी होती हैं और उन खिड़कियों पर परदे पड़े रहते हैं। इनके कारण मेह भीतर नहीं जाने पाता। खिड़कियां दिन-रात खुली रहती हैं। डाक्टर की आज्ञा से जब कभी चारपाइयां बराम्दे में कर दी जाती हैं। डाक्टर मुत्थू का पूर्ण विश्वास है कि ताज़ी शुद्ध हवा ही क्षय-रोग को दूर कर सकती है।

चारपाइयाँ लोहे की बनी हुई हैं। उनमें बढ़िया कमानियाँ लगी हैं और रबर के पहिये हैं जिनसे वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुगमतापूर्वक हटाई जा सकती हैं। कोठे में एक ख़ानेदार अलमारी, खाना खाने की एक मेज़, वस्त्रालय (wardrobe), कुर्सियाँ, बिजली की रोशनी और बिजली की घंटी होती है। कमरे में पानी खौलता रहता है जिससे खिड़कियाँ खुली रहने पर ठण्डे से ठण्डे दिनों में भी कमरा गरम रहे। इसके सिवा कपड़ा पहनने और स्नान करने के स्थान (lavatory) का भी अच्छा प्रबन्ध है। निस्तार की कोठरी में सूखी मिट्टी रहती है और नलों में गरम तथा ठण्डा पानी आता है।

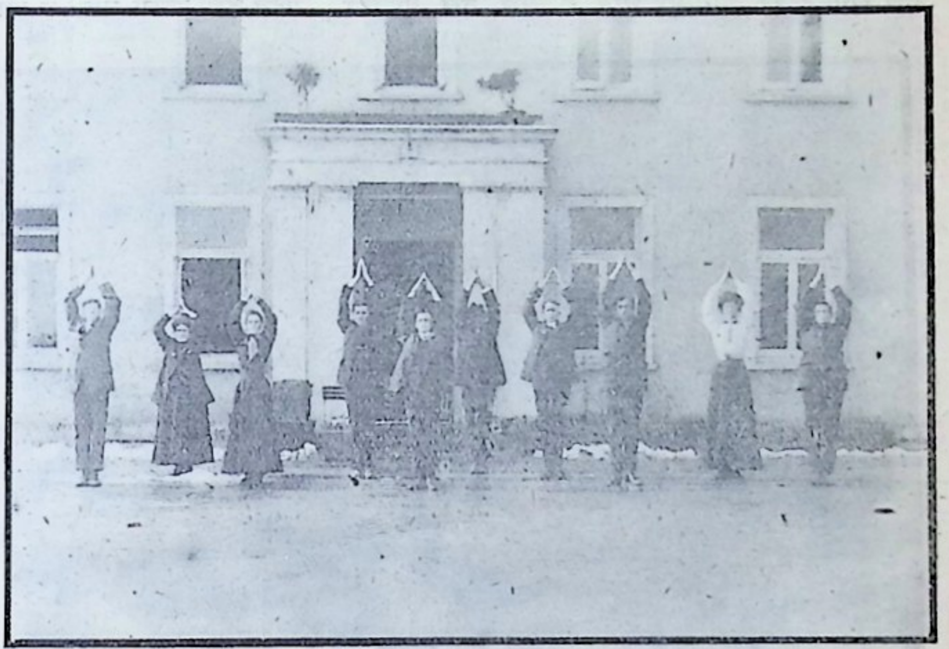

आरोग्याश्रम के रोगियों का व्यायाम-अभ्यास जिसे डा० मुत्थू ने आविष्कृत किया है।

प्रातः ७ बज कर ४० मिनट पर डाक्टर मुत्थू दाईं

(matron) को साथ लेकर हर एक कोठे का निरीक्षण करते हैं। वहाँ प्रत्येक रोगी की जाँच होती है और फिर उसे यह बतलाया जाता है कि आज दिन भर तुम्हें क्या क्या करना होगा—बिस्तर पर पड़े रहना होगा अथवा उठकर बैठना, कौन सी कसरत करनी पड़ेगी; कौन सा भोजन करना होगा और ज़रूरत पड़ने पर कौन सी दवा पीनी होगी।

पहला घण्टा आठ बजे बजता है। उस समय उठनेवाले रोगी उठकर हाथ-मुँह धोते हैं और वस्त्र पहनकर थोड़ी दूर घूमने के लिए बाहर निकल जाते हैं। नौ बजे उन्हें जलपान कराया जाता है, जिसमें शोरबा (porridge), चीनी मिश्रित दूध, रोटी-मक्खन, सुअर का मांस, मछली, अण्डे, मुरब्बा, चाय अथवा क़हवा मिलता है।

आरोग्याश्रम में रोगी स्त्रियाँ डाक्टर की सूचनाओं के अनुसार लकड़ी चीर रही हैं।

जलपान के पश्चात् डाक्टर साहब परामर्श-गृह में रोगियों की जाँच करते हैं। हर एक रोगी को यहाँ मास में दो बार अथवा ज़रूरत पड़ने पर कई बार आना पड़ता है। यदि लाभ न हुआ, उलटे कोई ख़राबी दिखलाई पड़ी तो इस ख़राबी के दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

दस बजे साँस लेने और गाने की कसरतें (breathing and singing exercises) प्रारम्भ होती हैं। यदि मौसिम अच्छा रहा तो खुली हवा में, और यदि पानी बरसने लगा अथवा बरफ़ पड़ने लगी तो आराम-घर (recreation room) में कसरत की जाती है। रोगी सीधे खड़े होते हैं; उनकी छाती सामने निकली रहती है; गर्दन ऊँची रक्खी जाती है और हाथ दोनों ओर कड़े करके लटकाये जाते हैं। पुराने (senior) रोगी डम्बबेल (dumb-bells) का अभ्यास करते हैं।

कसरत नं० १—जाँघों तक लटकते हुए हाथ धीरे धीरे ऊपर उठाये जाते हैं यहाँ तक कि वे कन्धे के इधर-उधर एक सीध में हो जाते हैं। हाथ उठाते समय रोगी का मुँह बन्द रहता है और वह ताक़त भर नाक से ख़ूब साँस लेता है। साँस खींचकर वह फिर पञ्जों (toes) के बल खड़ा हो जाता है और धीरे धीरे हवा बाहर निकालता है। इस समय हाथ भी पहले की अपेक्षा कुछ अधिक तेज़ी के साथ, पर धीरे धीरे नीचे आते रहते हैं यहाँ तक कि पूर्ववत् वे फिर जाँघों तक पहुँच जाते हैं। यह कसरत छः बार की जाती है।

कसरत नं० २—रोगी साँस खींचता हुआ दोनों हाथ बगल से ऊपर लाता है और साँस निकालता हुआ ऊपर से फिर नीचे ले जाता है। हाथ नीचे लाते समय वह छाती को कोहनी से ख़ूब दबाता है जिससे भीतर का बचा-बचाया बलगम हवा द्वारा बाहर

निकल जाता है। यह कसरत भी छः बार की जाती है।

कसरत नं० ३—रोगी झटके से दोनों हाथ छाती के सामने लाकर फैलाता है और फिर उन्हें जोड़ लेता है। तत्पश्चात् उन्हें फैलाता हुआ कंधे की सीध में लाता है। हाथ फैलाते समय वह दाहिना पैर तीन बार और बांया दो बार, दो फुट तक आगे ले जाता और पीछे ले आता है।

इसके अनन्तर गाने की कसरत शुरू होती है। रोगी पहले एक सांस में स्वर चढ़ाता है और फिर एक ही सांस में उसे उतार देता है। फिर हर एक स्वर को चढ़ाते हुए वह ६ तार पर गाता है और फिर आठ तार तक जाता है। अन्त में वह एक छोटी मधुर तान अलापता हुआ इस व्यायाम को समाप्त करता है। श्वास लेने और गाने की कसरत में २० मिनट लगते हैं।

साढ़े दस बजे से रोगियों को अपनी शक्ति के अनुसार क्रम-पूर्वक कसरत (graduated exercises) करनी पड़ती है। कुछ जङ्गल में जाकर वृक्ष काटते हैं, कुछ आरे और रन्दे से काम करते हैं, कुछ मैदान की घास इकट्ठी करते हैं, और कुछ बग़ीचों में खोदने का काम करते हैं। ग्यारह बजे तक इस काम से छुट्टी पाकर सब अपने अपने कमरे में पहुँच जाते हैं। यहाँ वे जो चाहें सो कर सकते हैं—चाहे लेटें, चाहे बैठे रहें।

आराम करने के बाद उन्हें सवा ग्यारह बजे सड़कों या जङ्गलों में घूमने जाना पड़ता है। कुछ आध घण्टे तक घूमते हैं और कुछ इससे भी अधिक, लेकिन सबको १२½ बजे तक लौट आना पड़ता है। जो स्त्री-पुरुष डाक्टर मुल्यू की ख़ास निगरानी में रहते हैं वे नाक और मुँह को एक कपड़े से ढांककर घूमने निकलते हैं। इस कपड़े में दवा से भीगा हुआ एक फाहा (lint) होता है जो फेफड़ों को साफ़ करता रहता है। इसे स्वयं डाक्टर मुल्यू ने आविष्कृत किया है।

१२½ बजे से आराम और शान्ति का समय प्रारम्भ होता है। रोगियों को इस समय तक अपने अपने कमरों में अवश्य लौट आना चाहिए। वे बेत की आराम-कुरसी पर चुपचाप लेटे रहते हैं, किसीसे बातें नहीं कर सकते। १½ बजने से कुछ मिनट पहले वे फिर उठते हैं और हाथ-मुँह धोकर खाने की तैयारी करते हैं।

आरोग्याश्रम के कुछ रोगी आवरण लगाये हुए घूम रहे हैं।

भोजन में शोरबा या मछली, गरम गोश्त, दो तरकारियां, फल या गुलगुले, पनीर और बिस्कुट, रोटी और मक्खन, और शिशिर ऋतु में गरम तथा ग्रीष्म ऋतु में ठंडा (एक-दो गिलास) दूध मिलता है। सप्ताह में दो दिन क़हवा भी मिलता है और उस समय फल की जगह गुलगुले (pudding) दिये जाते हैं।

भोजन के पश्चात् सब रोगी अपने अपने कमरों में ढाई बजे तक फिर आराम करते हैं। ढाई से साढ़े तीन तक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मौसिम को देखकर वे क्रोकेट (croquet), बिलियर्ड (billiard), गार्डन गोल्फ (garden golf) आदि खेल खेलते हैं। खेल-कूदकर वे फिर अपने अपने कमरों में चले जाते हैं। वहाँ वे सब दरवाज़ों और खिड़कियों को बन्द कर लेते हैं और उस लैम्प को जलाते हैं जिसको डाक्टर ने स्वयं तैयार किया है। उसमें से फारमलडीहाइड (Formaldehyde) नाम की गैस निकलकर कमरे भर में भर जाती है। इस गैस में रोगियों को साँस लेना पड़ती है। पन्द्रह से तीस मिनट के अनन्तर लैम्प बुझा दिया जाता है और तब रोगी साँस लेने और गाने की कसरत करने के लिए फिर बाहर मैदान में निकल आते हैं।

रोगी दवा से भीगा फाहा लगाये है।

चार बजे उन्हें चाय दी जाती है जिसका प्रबन्ध एक पुरानी रोगी स्त्री के स्वाधीन रहता है। चार से छः बजे तक रोगी जो चाहें सो कर सकते हैं। इस समय वे बिलियर्ड (billiard), ताश या शतरञ्ज खेलते हैं, अथवा उपन्यास पढ़ते या टहलते हैं। भीतर बैठे रहने से बाहर घूमना या खेलना अच्छा समझा जाता है। यदि मौसिम ख़राब हो तो दूसरी बात है। सिद्धान्त यह है कि जहां तक हो रोगी हर समय खुली हवा में रहे। छः से सात तक वे फिर आराम कुर्सियों पर चुपचाप आराम करते हैं।

सात बजे वे व्यालू करते हैं। उस समय उन्हें (जाड़े में) गरम मांस या (गरमी में) ठंढा मांस, मछली, तरकारी, गुलगुले, दूध, रोटी और मक्खन खाने को मिलता है।

व्यालू के अनन्तर नौ बजे तक रोगी मनमाना काम करते हैं। कुछ खेलते हैं, कुछ बैठकर पढ़ते हैं और कुछ टहलने के लिए बाहर निकल जाते हैं। ठीक नौ बजे सबके लिए अपने बिछौने पर लेट रहना आवश्यक है। आध घण्टे के बाद दाई घूम घूमकर सब लैम्प ठण्ढे कर देती है। यदि उस समय किसी रोगी को विशेष कष्ट हो तो वह डाक्टर को बुला देती है।

पर्वतीय कुञ्ज एक प्रकार का होटेल (hotel) है जहाँ रोगी ख़ूब गुल-छर्रे उड़ाया करते हैं। उन्हें और दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा आराम और स्वच्छ वायु की अधिक आवश्यकता है, इसीलिए जहां तक सम्भव हो सकता है डाक्टर मुल्थू अपने सैनीटोरियम के रोगियों को बहुत प्रसन्नचित्त और सुख से रखते हैं। यही कारण है कि रोगी एक साथ कुटुम्ब के समान रक्खे जाते हैं और उन्हें रोचक नाटक भी दिखाये जाते हैं।

ओषधियों पर डाक्टर मुल्थू का विश्वास बहुत कम है और जब तक कोई ख़ास ज़रूरत न हो तब तक वे उनका प्रयोग नहीं करते। वे रोगी को ऐसे नियम से रखते हैं कि

प्रकृति आपसे आप उसको अच्छा करदे। ओषधियां देने के बदले वे रोगियों से कहा करते हैं कि तुम आरोग्यवर्द्धक और आनन्ददायक स्थान में रहो, मन को शान्त रक्खो, बिगड़ी हुई नसों को ठीक करने के लिए बिजली काम में लाओ और कृमिनाशक भाफ (antiseptic vapour) सूँघा करो। यह गैस फेफड़ों को साफ़ कर शरीर को सुदृढ़ बनाता है।

जिन कारणों से क्षय-रोग उत्पन्न होता है उन पर विचार करने से मालूम होता है कि इस प्रकार की चिकित्सा इस रोग के लिए अत्यन्त उपयोगी है और इसीका प्रयोग होना चाहिए। डाक्टर मुल्थू सभ्यता ही को इस रोग का निदान बतलाते हैं। कई घण्टे लगातार आग के सामने काम करने से मनुष्य का दिमाग़ गरम हो जाया करता है। नगरों में जन-संख्या अधिक होने से वहां के निवासियों को स्वच्छ काफ़ी हवा सांस लेने को नहीं मिलती। बोतलों में भरा हुआ बासी दूध, और पीपों में भरी हुई बासी रोटी, तरकारी और मांस खाने को मिलता है। उनमें से वह सत्व निकल जाता है जो शरीर प्रायः दृढ़ करने में सहायता देता है। ग़रीबों को आर्थिक कष्ट के कारण यह भोजन भी नसीब नहीं होता। इन्हीं कारणों से शरीर के अवयव मिलकर अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते जैसा वे निरोगी शरीर में किया करते हैं। सभ्यता के बढ़ने से स्वास्थ्य ख़राब होता है और सचमुच यही ख़राबी क्षय-रोग का मुख्य कारण है।

क्षय के कीड़े क्या नुक़सान पहुँचाते हैं, इस पर अभी बड़े बड़े डाक्टरों का मत-भेद है। कीटाणु-विज्ञान-विशारद (bacteriologists) अब भी दावे के साथ कहते हैं कि कीड़े रोग और रोग का आधार (soil) दोनों उत्पन्न करते हैं। डाक्टर मुत्थू का कथन है कि क्षय के प्रायः ऐसे ऐसे रोगी देखने में आये हैं जिनमें बड़े बड़े कीटाणु-विज्ञान-विशारद कीड़े नहीं निकाल सके। उनकी राय में इस रोग की जड़ शारीरिक विकार है, और शारीरिक विकार का कारण मानसिक दुर्बलता है। मानसिक विकार से शरीर के कोठे अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते। यही सम्मति और बहुत से चिकित्सकों की होने लगी है। कहने का सारांश यह है कि जब तक मानसिक विकार और अवयवों की ख़राबी न हो, तब तक कीड़े कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। डाक्टर साहब का इतने दिनों का अनुभव बतलाता है कि यह बीमारी गन्दे रहन-सहन से पैदा होती है, कीड़ों से नहीं।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार से हिन्दुस्तान के लोग भी गांवों से खिंचकर शहरों में बसने लगे हैं। शहरों में भीड़-भड़का अधिक होने, देर तक लगातार काम करने और मदिरा के सेवन से हिन्दुस्तान में भी क्षय-रोग की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। डाक्टर मुत्थू हिसाब लगाकर बतलाते हैं कि प्रतिवर्ष ९,००,००० (नौ लाख) से १०,००,००० (दस लाख) तक प्राणी इस भयङ्कर रोग की भेंट होते हैं।

डा० चौरी मुत्थू द्वारा आविष्कृत लम्प जिससे फारमेलडी हाइड नामक गैस निकलकर कमरे में भरती है।

कलकत्ता, बम्बई, मदरास और दूसरे हिन्दुस्तानी शहरों की मृत्यु-संख्या जन-संख्या के लिहाज़ से विलायत के बरमिंघम, ग्लासगो और अन्य व्यापारिक नगरों की अपेक्षा बढ़ी हुई है।

हिन्दुस्तान में स्त्रियाँ क्षय-रोग से मर्दों से भी अधिक मरती हैं। ऐसा दृश्य उन श्रेणियों के मनुष्यों में दिखाई देता है जिनके यहाँ परदे का प्रचार है। बालक उत्पन्न कर सकनेवाली नवयुवतियाँ विशेष कर इस रोग से आक्रान्त रहती हैं। इसीलिए अभाग्यवश देश की दुहरी हानि हो रही है।

सबसे अधिक शोक इस बात का है कि इतने बड़े हिन्द देश में इस प्राण-घातक रोग से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा करने के लिए केवल चार या पाँच आरोग्याश्रम हैं। डाक्टर मुत्थू इस सम्बन्ध से हिन्दुस्तान में कई बातों का होना अत्यावश्यक बतलाते हैं। प्रथम तो एक हेड आफ़िस खोला जाय और फिर उसकी शाखायें प्रान्तों और नगरों में रक्खी जावें ताकि लोगों को क्षय-रोग के उत्पन्न होने और बढ़ने के कारण, और अच्छे होने के सुलभ साधन बराबर मालूम होते रहें। दूसरे, कई एक अस्पताल खोले जायँ जिनमें बहुत से ऐसे कमरे हों जिनमें रोगी के सम्बन्धी रह सकें और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसल्मान, और ईसाई आदि जातियों के लोग अपनी वर्ण-व्यवस्थानुसार भोजन अलग अलग पका सकें। तीसरे, शहरों के बाहर और गाँवों से लगे हुए आरोग्याश्रम खोले जायँ जिनमें क्षय-रोगाक्रान्त मनुष्य सपरिवार रहकर दोनों काम कर सकें—अपनी दवा करें और काम करके परिवार की सहायता भी कर सकें।

डाक्टर मुत्थू की बातें वस्तुतः विशेष ध्यान देने योग्य हैं। यूरोप और अमेरिका के लोग क्षय को सफ़ेद प्लेग (white plague) के नाम से पुकारते हैं और उसको निर्मूल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम हिन्दुस्तानियों का भी कर्तव्य है कि इस प्राण-घातक रोग की हानियों को समझें और अपने देश से इसे निर्मूल करने का यथा-साध्य प्रयत्न करें।

सन्त निहालसिंह (लन्दन)

विविध विषय।

१—सफ़ाई के महकमे की रिपोर्ट।

गवर्नमेंट, हर साल, सफाई के महकमे की रिपोर्ट प्रकाशित करती है। गत वर्ष की रिपोर्ट अभी हाल में निकली है। इस रिपोर्ट में और और बातों के सिवा इस प्रान्त के निवासियों की जन्म और मृत्यु-संख्या रहती है; किस रोग से कितना नर-नाश हुआ तथा सफ़ाई और रोग-निवारण के लिए क्या क्या यत्न किये गये, इसका भी वर्णन रहता है। पिछले साल की रिपोर्ट के पाठ से ताप, सन्ताप, परिताप और अनुताप सभी कुछ होता है। हमारे प्रान्त की जितनी आबादी है प्रायः उतनीही, आबादी अँगरेज़ लोगों की विलायत अर्थात् 'ग्रेट-ब्रिटन' के संयुक्त-राज्य की भी है। विश्वास कीजिए, यह जो युद्ध अभी ५ वर्षों तक होता रहा है उसमें विलायत-वासी जितने मनुष्यों का नाश हुआ, उससे भी अधिक नर-नाश इस प्रान्त में गत वर्ष रोग से हुआ! आप जानते हैं, कितने मनुष्य मरे? कोई ४० लाख! अर्थात् आबादी का द्वादशांश एक ही वर्ष में नष्ट हो गया। इन्फ़्लुयञ्ज़ा और ज्वर से ही ३२ लाख से ऊपर मनुष्य मर गये; बाक़ी और रोगों से। जितने बच्चे पैदा हुए, उनसे कहीं अधिक मनुष्य मरे। पैदा तो हुए केवल २० लाख, पर मरे ४० लाख, अर्थात् दूने! अभी तक प्लेग और हैज़ा ही की कृपा हम पर थी, अब तो उनके साथी दो और उत्पन्न हो गये हैं। उनके नाम हैं—इन्फ़्लुयञ्ज़ा और बार बार आनेवाला बुख़ार (relapsing fever) ज़रा सोचिए तो। चालीस लाख मनुष्य तो हम लोगों से सदा के लिए बिछुड़ ही गये। न मालूम कितने लाख मनुष्य बीमार होने पर, हफ़्तों और महीनों, यम-यन्त्रणा भोगकर अच्छे हुए होंगे। इनको कितनी तकलीफ़ें उठानी पड़ी होंगी, कितना ख़र्च करना पड़ा होगा, इनके काम-काज की कितनी दुरवस्था और हानि हुई होगी। यह सब घाते में।

सूबे भर का हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि फ़ी

एक हज़ार आदमी पीछे ८२ से कुछ अधिक आदमी मर गये। किसी किसी ज़िले में तो इतना प्राणनाश हुआ कि सुनकर रोमाञ्च होता है। आगरा सबसे अधिक अभागी निकला। वहाँ फ़ी एक हज़ार आदमियों में कोई १४४ आदमी चल बसे! बरेली में ११४, फर्रुख़ाबाद में ११३, शाहजहाँपुर और सुलताँपुर में १०६ मरे—फ़ी एक हज़ार पीछे। और भी ऐसे कितने ही ज़िले हैं जिनकी मृत्यु-संख्या प्रति-सहस्र १०० से अधिक हो गई। बच्चे बहुत ही अधिक मरे। हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ है कि विलायत में मृत्यु-संख्या का जो औसत पड़ता है उससे लगभग ५½ गुना अधिक मनुष्य इस प्रान्त में परलोक सिधारे। ईश्वरीय कोप, और क्या कहें। सरकार तो उपाय भर सफ़ाई का ख़याल रखती ही है और बड़े बड़े शहरों और क़सबों में शफ़ाख़ाने खोलकर दवा-पानी का प्रबन्ध भी करती ही है। और ज़रूरी कामों—मसलन् फ़ौज और रेल से अगर कुछ अधिक रुपया बच जाता है तो इस मद में वह और भी ख़र्च कर देती है। पर नहीं बचता। लाचारी है। फिर भी पिछले साल उसने मामूली से कुछ अधिक ख़र्च किया भी था। इस साल भी इन्फ़्लुयेञ्ज़ा के आगमन की आशङ्का है। इस कारण सरकार पहले ही से लोगों को सचेत कर रही है। मकान साफ़ रक्खो, भीड़ में मत धँसो, मेले-ठेले में मत जाओ, नमक मिले हुए पानी से कुल्ले करो, उसकी बतलाई हुई दवायें पानी में घोलकर उस पानी को नाक से सुड़को। ये सब सरकार ही के बड़े बड़े अफ़सरों की बताई हुई तरकीबें तो हैं।

२—महाभारत का एक नया संस्करण।

महाभारत बहुत बड़ा ग्रन्थ है। प्राचीन ग्रीस देश में होमर नाम का एक महाकवि हो गया है। उसके बनाये हुए इलियड और आडेसी नाम के दो ऐतिहासिक महाकाव्य, पश्चिमी देशों में, बहुत प्रसिद्ध हैं। वे दोनों मिलकर जितने बड़े हैं, हमारा महाभारत उनसे बहुत नहीं, तो सात-आठ गुना बड़ा ज़रूर होगा। महाभारत में कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का विस्तृत वर्णन ही नहीं, और भी सैकड़ों-हज़ारों बातें हैं। राजनीति, कूटनीति, धर्म्मनीति, सदाचार, इतिहास, पौराणिक गाथायें—न मालूम उसमें क्या क्या है। वह ज्ञातव्य बातों का भव्य-भाण्डार अथवा अक्षय्य कोश है। इसीसे उसकी इतनी महिमा है। वह पञ्चम वेद कहाता है। उसके रचयिता वेदव्यास नाम से विश्रुत हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता, कलाकुशलता, ऊर्ज्जितावस्था और शक्ति का यथेष्ट परिचय यदि कहीं मिल सकता है तो महाभारत में ही मिल सकता है। इस ग्रन्थ के अनुवाद अनेक देशी और विदेशी भाषाओं में हो चुके हैं। श्रीयुत प्रतापचन्द्र मजूमदार ने इसे अँगरेज़ी भाषा में भी अनुवादित कर डाला है। बाबू रमेशचन्द्र दत्त का रचा हुआ इसके मुख्य कथांश का पद्यात्मक अनुवाद भी अँगरेज़ी भाषा में विद्यमान है। पर इतने से ही भारतीय विद्वानों को सन्तोष नहीं। पूने में भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट नामक पुस्तकालय से और गवेषणालय से सम्ब्रन्ध रखनेवाली जो विद्वत्परिषद् है उसके कितने ही सभासदों ने अब इस ग्रन्थ-रत्न का एक बहुत ही बढ़िया संस्करण निकालने का पक्का इरादा कर लिया है। इस काम के लिए एक समिति सङ्गठित हुई है। वह देशान्तरों तक में महाभारत की हस्त-लिखित पोथियों का संग्रह और उनके पाठान्तर आदि का ज्ञान प्राप्त करेगी। महाभारत से सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन लेख, प्राचीन पुस्तकें, प्राचीन काव्य आदि, जो जहाँ मिलेंगे, एकत्र किये जायँगे। उन सबकी सहायता से, कोई १५ वर्ष के सतत परिश्रम से, इस ग्रन्थ का यह नया संस्करण प्रकाशित होगा। इस काम में लगभग ३ लाख रुपये का ख़र्च कूता गया है। एक हज़ार रुपये महीने से कम ख़र्च न पड़ेगा। कम से कम १० जिल्दों में यह ग्रन्थ समाप्त होगा। प्रत्येक जिल्द में एक हज़ार पृष्ठों से भी अधिक पृष्ठ रहेंगे। दाम पूरे ग्रन्थ का २०) होगा। इस काम के लिए जो समिति बनी है उसमें विद्वानों और पण्डितों के सिवा कुछ लोग—उदाहरणार्थ औंध-राज्य के सरदार—ऐसे भी हैं जो विद्वान् भी हैं और श्रीमान् भी। ईश्वर इस समिति को अपने इस सदुद्योग में सफलता दे!

३—कानपुर की विस्तार-वृद्धि।

कानपुर अभी कल का शहर है। कोई सवा सौ वर्ष पहले वह एक छोटी सी ग्रामावलि के गर्भ में था। १७७८ ईसवी के पहले वर्तमान कानपुर के बदले कुछ छोटे छोटे

गांव मात्र थे। पूर्वनिर्दिष्ट वर्ष, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने, कानपुर में, गङ्गा के किनारे, एक कारख़ाना खोला। तब उसकी रक्षा के लिए फ़ौज रखने की ज़रूरत हुई। १७७३ ईसवी में कम्पनी और अवध के नवाब-वज़ीर के बीच, फ़ैज़ाबाद में, जो सन्धि-स्थापना हुई थी उसकी शर्तों के अनुसार अवध की रक्षा का भार कम्पनी ने अपने ऊपर लिया था। इसलिए उसे बिलग्राम में फ़ौज रखनी पड़ी थी। वह फ़ौज अब कानपुर को भेज दी गई और वहीं रक्खी गई। तभी से कानपुर कम्पू कहाया, जो अब तक प्रसिद्ध है। पुराने कानपुर से जाजमऊ तक कोई १२ मौजों की ज़मीन लेकर छावनी बनाई गई। कम्पनी का कारख़ाना खुला, फ़ौज रक्खी गई, लूट-पाट का डर जाता रहा, गङ्गा में नावों के ज़रिये माल आने-जाने लगा। व्यापार बढ़ा। दूर दूर से बनिये, महाजन, व्यापारी आ आकर बसने लगे। ज़िले की कचहरियाँ पहले छावनी में थीं। १८११ से १८१९ तक वे बिठूर में रहीं। उसके बाद, कानपुर से मिले हुए नवाबगंज नामक क़सबे में उठ आईं। १८५७ ईसवी के ग़दर के बाद वे शहर में लाई गईं और गङ्गा के किनारे, कुछ दूर पर, उनके लिए इमारतें बनीं।

दिन पर दिन शहर की उन्नति होती गई। नये नये कारख़ाने खुलते गये। ग्वालटोली, ख़लासी-लैन और परमट बाज़ार में कारख़ानों के कर्म्मचारी उमड़ चले। जब वहाँ काफ़ी जगह न मिली तब उनमें से सैकड़ों हज़ारों आदमी शहर में रहने लगे। इधर शहर की भी आबादी बढ़ रही थी। इतने में रेलों ने अपना जाल बिछाया। फल यह हुआ कि जिस कानपुर में, १८४७ ईसवी में, छावनी को छोड़कर, १, ०८, ७९६ मनुष्य थे, उसी कानपुर में, १९११ में, १, ९५, ४९८ मनुष्य हो गये। रहने को जगह मिलना कठिन हो गया। गन्दगी बढ़ी। बीमारी बारहों महीने रहने लगी। मकानों का किराया बेतरह बढ़ गया।

इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए गवर्नमेंट ने एक कमिटी बनाई। उससे कहा गया, बताइए क्या किया जाय। दो-तीन वर्ष बाद उसने रिपोर्ट दी। वह प्रकाशित हो गई है। कमिटी की राय है कि ग्वालटोली, ख़लासी-लैन और परमट बाज़ार नष्ट कर दिये जायँ। वहाँ, तथा और भी इधर-उधर, दूर तक, बँगले बनें अर्थात् सिविल लाइन्स का विस्तार बढ़ाया जाय। उधर छावनी का भी कुछ भाग इस काम के लिए ले लिया जाय। कारख़ाने सब उठाकर बी० बी० सी० आई० और ई० आई० रेलवों के बीच की त्रिकोणाकार भूमि में लाये जायँ। जो सड़क कानपुर से हमीरपुर को जाती है उसके और जी० आई० पी० रेलवे के बीच की त्रिभुज-भूमि पर कारख़ानों में काम करनेवाले कर्म्मचारियों के लिए मकान बनाये जायँ। हमीरपुर की सड़क और पूर्व ओर ई० आई० रेलवे के बीच की जगह नगर-निवासियों को मकान आदि बनाने के लिए दी जाय। कई सड़कें नई निकाली जायँ। रेलों की लैनें और नहर पार करने के लिए तीन-चार पुल भी बनें। बीच में सब्ज़ बाग़ के लिए जगह छोड़ी जाय। और भी दो तीन खुली जगहें योंही छोड़ दी जायँ।

इन सब कामों के लिए अभी कई वर्ष चाहिए। कमिटी की सलाह के अनुसार काम हुआ तो कानपुर की बस्ती और भी बहुत अधिक हो जायगी; साथ ही उसके उद्योग-धन्धों और व्यापार की भी वृद्धि होगी। उसके सौन्दर्य्य की भी बढ़ती होगी। शहर देखने लायक़ हो जायगा। जिनके मकान और ज़मीन सरकार ले लेगी उन्हें मुआविज़ा ज़रूर ही मिलेगा। पर कितने ही ज़मींदारों और ज़मीन तथा मकानों के मालिकों की हानि भी होगी। हमीरपुर की सड़क के इर्द गिर्द की ज़मीन आज-कल बड़ी महँगी हो रही है। उसके दाम एक हज़ार रुपये बीघे तक हो गये हैं। सरकार इतने दाम थोड़े ही देगी। वह तो अपने निश्चित निर्ख़ ही के हिसाब से मुआविज़ा देगी। जो ज़मीन मकान बनाने के लिए म्यूनिसिपैलिटी लोगों को देगी उसकी क़ीमत वह लेगी। इस क़ीमत का औसत अन्दाज़ा कमिटी ने ४) फ़ी गज़ मुरब्बा रक्खा है। इस तरह, उसका ख़याल है कि ६० फुट लम्बी और ४५ फुट चौड़ी ज़मीन के दाम ३००) देने पड़ेंगे।

४—पुनर्जन्म का स्पष्ट प्रमाण।

रियासत धौलपुर की तहसील सैंपऊ में तसीमों नाम का एक ग्राम है। इस ग्राम में मूला नाम का एक वैश्य रहता था। लगभग ५ वर्ष हुए कि इस वैश्य को उसी ग्राम के गुलाबसिंह ठाकुर ने क़त्ल कर डाला था। गुलाबसिंह को आजन्म कारावास की सज़ा हुई, और वह इस

समय धौलपुर जेल में सज़ा भुगत रहा है। तसीमों ग्राम के निकट ही चार मील की दूरी पर नौनेरा ग्राम है। यहां पर एक वैश्य का लड़का इस समय लगभग ५ वर्ष की अवस्था का है, जो कहता है कि मैं तसीमों का मूला हूँ। मुझे पहले जन्म में गुलाबसिंह ठाकुर ने मार डाला था। वह अपने पहले घर के सब चिह्न बताता है, और मूला-सम्बन्धी सब बातों का पता देता है। इस बात को आम तौर पर सुनकर मैंने तहसीलदार साहब सेंपऊ से हाल दरयाफ़्त किया। उन्होंने तहक़ीक़ात करके उत्तर दिया है।

जो पत्र मैंने तहसीलदार साहब को लिखा था, और जो पत्र उन्होंने उत्तर में मुझे लिखा है, उन दोनों पत्रों की अक्षरशः नक़ल नीचे दी जाती है। इनके पढ़ने से ज्ञात होगा कि मामला झूठा नहीं है। सम्भव है कि वह कुछ बढ़ाकर लिखा गया हो, परन्तु निर्मूल नहीं है।

पहला पत्र

इनायत व करमफ़रमाये मन तहसीलदार साहब, तसलीम। यहां बहुत गर्म ख़बर मशहूर हो रही है कि मौज़े नौनेरा परगने कोलारी में एक बक्काल के यहां एक लड़का पैदा हुआ है, जिसकी उम्र पांच साल के क़रीब कही जाती है। किसी मौक़े-शादी पर उसने गुलाबसिंह, क़ातिल-मूला की औरत को देखकर जब कि वह मुताबिक़ रिवाज देह के उसके पास किसी रसम के अदा करने के लिए गई, यह कहा कि तू मेरे दुश्मन की औरत है। मैं तुझे अपने वास्ते यह रसम न अदा करने दूँगा। चुनांचे उस वक़्त से यह चरचा आम हुआ। वह लड़का कि जो अपने आपको मूला-मक़तूल होना ज़ाहिर करता है, अपने उस मकान पर लाया गया जिसमें बहैसियत मूला रहता था। उसने अपने अज़ीज़ो-अक़ारिब को शनाख़्त करके बतलाया और अपना क़र्ज़ा लोगों के ज़िम्मे होना ज़ाहिर किया, और कुछ दफ़ीना भी ज़ाहिर किया, कि जो बरामद हुआ। और एक लकड़ी अपने बांधने की अपने हमराह लिवा ले गया। दर असल इस शोहरत की क्या असलियत है, इसकी तसदीक़ आपके ज़रिये से चाहता हूँ। इसमें आपको तक़लीफ़ तो ज़रूर होगी; मगर इस तकलीफ़ को गवारा फ़रमाकर अगर मुफ़स्सिल हालात से आप मुत्तला फ़रमावें तो आपकी इस इनायत और मेहरबानी का मशकूर व ममनून हूँगा। ३० जुलाई १९१९।

दूसरा पत्र (उत्तर)

जनाबआली

हस्ब वरूद चिट्ठी हुज़ूरवाला इस मामले का दरयाफ़्त हाल किया गया। और लड़का व वालिद-लड़का व बक्क़ालान तसीमों एक जलसा बुलवाये गये, तो वाक़आत इस तरह पर ज़ाहिर हुए हैं।

मुसम्मी मूला बक्क़ाल सकनः तसीमों चैत अव्वल सुदी पांचें संवत् १९७२ को क़त्ल हुआ। और यह लड़का चैत दोयम सुदी द्वादशी संवत् १९७२ में बमौज़े नौनेरा बख़ाना बूचा-नामी बक्क़ाल पैदा हुआ है। जब यह लड़का कुछ बोलने लगा, तो अक्सर गाहे-बगाहे अपनी मां और दादी से ज़िक्र करता था कि मैं मूला तसीमों का हूँ। मगर किसीने ग़ौर नहीं किया। लड़कों में खेलता हुआ भी कहता था कि मेरे घोड़ी है, हवेली है। वग़ैरः वग़ैरः गाहे-बगाहे कहना शुरू किया। इन्हीं अय्याम में इस लड़के के पड़ोस में एक ठाकुर सकनः नौनेरा के यहां शादी थी। और बवजह रिश्तेदारी, गुलाबसिंह ठाकुर क़ातिल की औरत इस शादी में शरीक हुई थी। यह ब्याह में पूरियां बेल रही थी कि यह लड़का भी वहां खेलता हुआ चला आया और इस औरत को देखकर बोला कि यह तो गुलाबसिंह की ठकुरानी है। और उसने मुझे मारा था।

कहते हैं कि गुलाबसिंह की ठकुरानी ने यह सुनकर लड़के से कुछ दरयाफ़्त भी किया; मगर यह लड़का फिर न बोला। और बाहर चला आया। यह बात अक्सर लोगों में फैल गई। और लड़के के मा-बाप ने ज़ियादहतर हाल दरयाफ़्त करना शुरू किया। तो कहा जाता है कि इस लड़के ने अपना नाम मूला-मक़तूल बतलाया। और कहा है कि गुलाबसिंह ने मुझको मार डाला था, गरदन में तलवार मारी थी। मेरा एक बेटा है। तसीमों से मैं किसी गाड़ी पर यहां आ गया था। वग़ैरः वग़ैरः। यह शोहरत मौज़े तसीमों में भी पहुँच गई। नौनेरा से तसीमों सिर्फ़ दो कोस के फ़ासले पर है। शोहरत होने पर मूला-मक़तूल का बेटा और हक़ीक़ी भाई दोनों नौनेरा में आये। तो लड़के

ने उन दोनों को पहचान लिया। और उनके सवालों का जवाब तसल्लीबख़्श देता रहा। जब उन लोगों को पूरा इतमीनान हो गया, तो मक़तूल का लड़का और भाई उस लड़के को अपने हमराह मौज़े तसीमों में ले आये। और गांव के बाहर से लड़के को पैदल छोड़ दिया गया; और उससे कह दिया गया कि मूला है तो मकान पर चला चल। चुनांचे यह लड़का गांव के अन्दर अपने मकान (हवेली) पर चला गया। और अपनी पुरानी हवेली भी बतला दी गई। इसी तरह से बूचा बौहरा वग़ैरः की हवेली भी बतला दी गई। और बूचा बौहरा व बीधा व मीका वग़ैरः आदमियों को भी इशारे से बतला दिया गया। और अपने मकान में जाकर वह जगह भी बतला दी गई, जहां वह रोज़मर्रा बैठकर रसोई के कोने में खाना खाया करता था। हालां कि उस रोज़ उस जगह खाट वग़ैरः रखी हुई थी। खाट में से गुज़रकर जाय दरयाफ़्त शुदा पर जा बैठा था। और इसी तरह उसकी लाठी जिसको वह हमेशा बांधता था, चन्द लाठियों में मिलाकर उसके सामने रख दी गई, तो उसने अपनी लाठी उठा ली। बल्कि वापसी पर यह लड़का लाठी अपने साथ ही ले आया है। और और बातें भी बक़ालान तसीमों उसकी क़ाबिल इतमीनान बयान करते हैं, जो उन्होंने मौक़े पर दरयाफ़्त कीं। बक़ालान तसीमों को पूरा पूरा इतमीनान हो गया है। आपकी चिट्ठी की तामील में, अव्वल मैंने लड़का और वालिद लड़का व बूचा बौहरा वग़ैरह को सेंपऊ बुलवाकर इस लड़के से दरयाफ़्त हाल किया, तो मुझको उसने कुछ जवाब नहीं दिया। उस वक़्त यह लड़का आशोब-चश्म की वजह से ज़रूर बेचैन था।

जब यह लड़का दरवाज़े-गढ़ी पर पहुँचा था, तो कहते हैं कि उसने क़िलेदार तहसील और जमादार जङ्गलात वग़ैरः को पूछने पर इशारे से बतला दिया था। यानी शनाख़्त किया। इसके बाद मैं ख़ुद इतवार के दिन मौज़े नौनेरा में गया। और लड़के से चन्द सवाल किये गये, मगर कुछ जवाब नहीं दिया। यह बतलाना उसका कि मूला हूँ, गुलाबसिंह ने मारा था, तलवार मारने का निशान गरदन पर हाथ से कर देना क़ाबिल इतमीनान नहीं। क्योंकि रोज़मर्रा के पूछने से यह बातें उसको हिफ़्ज़ हो चुकी हैं। मसलन अगर कोई उससे पूछता है कि गुलाबसिंह ने तेरे कहां तलवार दी थी। तो गरदन पर हाथ रखकर बताता है कि यहां तलवार दी थी। मगर बक़ालान तसीमों को पूरा इतमीनान हो गया है। जवाबन् अर्ज़ है। २५/२ मुकर्रर यह भी अर्ज़ करना नामुनासिब न होगा कि मैंने उस लड़के से यह भी सवाल किया था कि गुलाबसिंह के बाप का क्या नाम है; मगर उसने कुछ जवाब नहीं दिया था।

कन्नोमल एम० ए०

५—सम्पादकता की सनद।

लन्दन-विश्व-विद्यालय ने सम्पादकता की सनद स्थापित की है जो परीक्षार्थियों को उनकी सफलता पर दी जायगी। मैट्रिक या नान-मैट्रिक प्रार्थी को दो वर्ष पढ़ना होगा, पर ग्रेजुएट का अध्ययन-काल कुछ कम रहेगा। यह परीक्षा सम्पादक-सङ्घ, शिक्षा-समिति, नियुक्ति-विभाग तथा श्रमजीवी दल की सम्मति से स्थापित की गई है। इसमें वे अफ़सर और सैनिक अधिकतर लिये जायँगे जो आज-कल ख़ाली हैं और जिनकी प्रवृत्ति साहित्य-सेवा की ओर है। विश्व-विद्यालय ने इस परीक्षा के शिक्षा-पत्र में ऐसे विषय रक्खे हैं जिनसे विद्यार्थी का आधुनिक ज्ञान बढ़े और उसे समाचार-पत्रों में लेख लिखने की योग्यता प्राप्त हो। इन विषयों में शार्ट हैंड और टाइप-राइटिङ्ग न रहेंगे, पर विद्यार्थी को इनमें यथासम्भव योग्य होना पड़ेगा।

पाठ्य-विषय दो भागों में विभक्त होगा, जिनमें से एक आवश्यक रहेगा और दूसरे में इच्छानुसार विषय लिये जा सकेंगे। आवश्यक पाठ्य-विषयों में अँगरेज़ी-रचना, समाचारपत्रों के लिए लेख लिखने का अभ्यास, विज्ञान का साधारण इतिहास, राजनैतिक विचारों का इतिहास, समालोचना के सिद्धान्त और उनका व्यवहारी उपयोग रहेगा। इनके अतिरिक्त आगे लिखी ज्ञान की शाखाओं में से कोई भी तीन शाखायें चुननी होंगी—अँगरेज़ी-साहित्य और समालोचना, इतिहास, आधुनिक भाषायें (फ़्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इटालियन और रशियन में से एक, अथवा विशेष अवस्था में, दो), राजनैतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, प्राणिशास्त्र, पदार्थ-रसायन-शास्त्र, तत्त्वज्ञान,

और मनोविज्ञान। विद्यार्थी यूनिवर्सिटी कालेज, किंग्ज़ कालेज, ईस्ट लन्दन कालेज, बेडफोर्ड कालेज और लन्दन-अर्थशास्त्र-शाला में पढ़ सकेंगे।

विद्यालय का कार्य आगामी अक्टूबर से आरम्भ होगा और प्रतिवर्ष परीक्षा होगी। प्रथम परीक्षा सन् १६२१ में ली जायगी।

बहुत अच्छा हो, यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इस प्रकार की परीक्षा का प्रबन्ध कर हिन्दी-सम्पादक तैयार करे, जिनका आज-कल बहुत अभाव है।

६—स्त्रियों के राजनैतिक अधिकार।

यूरोप में स्त्रियों को राजनैतिक अधिकार देने की चर्चा अनेक वर्षों से हो रही है और इस विषय में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। स्त्रियों ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए वहाँ कुछ समय पूर्व बड़ा आन्दोलन किया था और सत्याग्रह की भी शरण ली थी। गोसाईंजी ने ठीक ही कहा है—"अति सङ्घर्षण करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन तें होई॥"

आज-कल भारतवर्ष की शिक्षित स्त्रियों को भी इस बात की चिन्ता हुई है कि हमें राजनैतिक अधिकार दिये जायँ। इनकी अधिकार-हानि का एक उदाहरण यह है कि हमारे देश में स्त्रियाँ वकालत नहीं कर सकतीं, यद्यपि कई महिलायें ऐसी हैं जिन्होंने क़ानून की परीक्षायें पास की हैं। उनका कथन है कि जब स्त्रियाँ अन्य सरकारी काम-काज जैसे डाक्टरी, मास्टरी, इन्सपेक्टरी, आदि कर सकती हैं, तब उन्हें वकालत अथवा कौन्सिल की मेम्बरी करने का अधिकार देने में क्यों आगा-पीछा किया जाता है। इस विषय में आन्दोलन करने के लिए यहाँ से श्रीमती सरोजिनी नैडू प्रभृति सुशिक्षित महिलायें इँगलेंड गई हुई हैं। देखिए, इनके उद्योग का क्या फल होता है।

पुस्तक-परिचय।

१—श्रीश्रीरामकृष्ण-कथामृत, प्रथम भाग—इस बड़े आकार की पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ३१५ है। छपाई और काग़ज़ साधारणतः अच्छा है। मूल्य है डेढ़ रुपया, मरचेंट प्रेस, कानपुर, को लिखने से मिलती है।

बङ्गाल में रामकृष्ण परमहंस नाम के एक पहुँचे हुए महात्मा हो गये हैं। सर्वश्रुत स्वामी विवेकानन्द उन्हींके शिष्य थे। परमहंसजी कोई नामी विद्वान् न थे; पर आत्म-तत्त्व के वे पारगामी पण्डित थे। उनमें पारमार्थिक और पारलौकिक ज्ञान की मात्रा बहुत अधिक थी। भक्ति-भाव के उन्मेष से वे बात की बात में समाधिमग्न हो जाते थे। बड़े बड़े ज्ञानी और विज्ञानी उनकी सेवा करने और उनके समागम से लाभ उठाने के लिए उन्हें घेरे रहते थे। परमहंसजी साधारण बातचीत में भी लौकिक दृष्टान्तों के द्वारा ऐसी ऐसी पारमार्थिक बातें कह देते थे जैसी बड़े बड़े शास्त्रज्ञों और पण्डितों को न सूझ सकती थीं। इन बातों या कथाओं को परमहंसजी के शिष्य लिख लिया करते थे। बातें बँगला में होती थीं। उनका सङ्ग्रह बँगला भाषा में निकले बहुत समय हुआ। उसकी कई आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी सङ्ग्रह के हिन्दी अनुवाद का पहला भाग है। अनुवादक हैं बाबू हरनारायण बाथम, एम० ए०। पुस्तक की कथायें सचमुच ही अमृतवर्षिणी हैं। उनके "कथामृत" होने में कुछ भी सन्देह नहीं। पुस्तक पढ़ने और उसकी कथाओं का अमृत जी भरकर पीने योग्य है। उससे अजीर्ण होने का डर नहीं। पुस्तकारम्भ में परमहंस जी का एक हाफ़-टोन चित्र भी है।

※

२—भारतवर्ष में सरकारी नौकरियाँ—इसकी पृष्ठ-संख्या २०० है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। मूल्य १२ आने है। भारतबन्धु कार्यालय, हाथरस, से यह प्रकाशित हुई है। वहीं से मिल सकती है। यह एक अँगरेज़ी पुस्तक (The Public Services in India) का हिन्दी अनुवाद है। उसके लेखक पण्डित हृदयनाथ कुंजरू, बी० ए०, बी० एस-सी० हैं। अनुवादक हैं—पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०। इस कारण भाषा-विषयक शिकायत करने के लिए बहुत ही कम जगह है। पुस्तक राजनैतिक है। "इस छोटी सी पुस्तक के लिखने में मेरा मुख्य उद्देश यह बतलाने का है कि ऊँचे ऊँचे सरकारी पदों में बे-रोक-टोक नियत किये जाने के अपने जन्मसिद्ध अधिकार को व्यक्त करने के लिए भारतवासियों ने क्या क्या प्रयत्न किये हैं और अधिक महत्त्वपूर्ण सरकारी नौकरियों के

सम्बन्ध में आज-कल उनकी क्या अवस्था है?'—लेखक के इस एक वाक्य से ही पाठक समझ जायँगे कि इस पुस्तक में क्या है और वह कुछ महत्त्व भी रखता है या नहीं। इसे पढ़ने से साधारण पाठकों को ऐसी भी कितनी ही बातें मालूम होंगी जो उन्हें और किसी भी मार्ग से, हिन्दी में, बिना विशेष झंझट के, कदापि न मालूम हो सकतीं।

⁂

३—अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (इन्दोर) का कार्य्य-विवरण—यह विवरण सरस्वती के आकार का है। साधारण काग़ज़, पर अच्छे टाइप में छपा है। सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति ने इन्दोर से इसे प्रकाशित किया है। उसीको लिखने से शायद इसकी कापियाँ मिल सकती हैं। मूल्य ज्ञात नहीं।

इस विवरण के दो भाग हैं। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या ८० है। चार-पाँच बड़े बड़े सुन्दर हाफ़टोन चित्रों से अलङ्कृत है। सम्मेलन के कार्य्य-कलाप का पूरा विवरण इसमें है। प्रदर्शिनी का भी विवरण है। इसके सिवा कई परिशिष्ट भी हैं। दूसरे भाग की पृष्ठ-संख्या १८६ है। इस भाग में उन सब लेखों का समावेश है जो सम्मेलन के लिए लिखे गये थे। लेख अनेक विषयों के हैं। सुयोग्य लेखकों के लिखे हुए हैं। पढ़ने और शिक्षा-ग्रहण करने लायक़ हैं। विवरण के ये दोनों भाग हिन्दी-प्रेमियों के पुस्तक-सङ्ग्रह की शोभा बढ़ा सकते हैं।

⁂

४—चेतसिंह और काशी का विद्रोह—इसकी पृष्ठ-संख्या ९० और मूल्य ९ आने है। कानपुर के प्रताप प्रेस ने इसका प्रकाशन किया है। उसीसे पुस्तक मिल सकती है। इसे श्रीयुत सम्पूर्णानन्द ने काशी में ही बैठकर लिखा है। अँगरेज़ी की कई पुस्तकें देखकर आपने इसकी रचना की है। पर नक़ल किसीकी नहीं की। अपनी बुद्धि से ही विशेष काम लिया है। घटनाओं का वर्णन करके अपनी निज की राय भी लिखी है। इस पुस्तक से काशी-राज्य के पूर्वेतिहास का भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है और वारन हेस्टिंग्ज़ तथा चेतसिंह के कारनामों के सिवा राजा मनसाराम, राजा बलवन्तसिंह और अन्य भी अनेक पुरुषों का बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता है। विद्रोह का वर्णन तो पुस्तक का प्रधान अंश ही है। वह तो पढ़ने को मिलता ही है। इस विस्मृतप्राय घटना के वर्णन को फिर से सुना देना ऐतिहासिक दृष्टि से प्रशंसनीय हुआ है।

⁂

५—नर्म्मदा-परिक्रमा-वर्णन—इस १९६ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) है। काग़ज़ अच्छा, पर छपाई साधारण है। लेखक हैं—पण्डित दामोदर मोरेश्वर लघाटे। आर० एल० देसाई, फ़ोटोग्राफ़र, लश्कर—ग्वालियर—से मिलती है। नर्म्मदा की परिक्रमा स्वयं करके लेखक ने इस पुस्तक की रचना की है। आरम्भ में पहले आपने नर्म्मदा की एक स्नान-यात्रा का चित्र दिया है, फिर अपना भी दे दिया है। उसके आगे परिक्रमा-सम्बन्धी एक नक़शा देकर उसमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थान तथा रेलवे-लैनें भी आपने चिह्नित कर दी हैं। फिर आपने परिक्रमा में जो स्थान, मन्दिर, नदियाँ, मेले, वन, पर्वत आदि पड़ते हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन किया है। कहाँ ठहरना चाहिए, कहाँ न ठहरना चाहिए; कहाँ खाने-पीने की सामग्री मिलती है, कहाँ नहीं मिलती—इत्यादि बहुत कुछ आपने लिखा है। इसके सिवा और भी अनेक बातें आपने काम की लिखी हैं। भाषा आपकी काम-चलाऊ है, पर इससे विशेष हानि नहीं। परिक्रमा करनेवालों को इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिल सकती है।

चित्र-परिचय।

इस महीने का रङ्गीन चित्र टेहरी-गढ़वाल के राजा साहब की कृपा से प्राप्त हुआ है। राजा साहब सरस्वती पर विशेष कृपा करके उसे अपने दरबार के प्राचीन चित्रकारों के चित्रों से समय समय पर सुसज्जित किया करते हैं। वर्त्तमान चित्र में बालि और सुग्रीव का मल्ल-युद्ध, श्रीरामचन्द्र का अपनी प्रतिज्ञानुसार बालि को मारने के लिए लक्ष करना, उनका सुग्रीव को जयमाला पहनाना और फिर सुग्रीव का प्रभु के निकट कृतज्ञ होना ये सब दृश्य योग्यतापूर्वक अङ्कित किये गये हैं। जिस सुन्दर स्थान पर ये सब घटनायें हुई हैं उसका चित्र भी स्वाभाविक तथा मनोहर है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

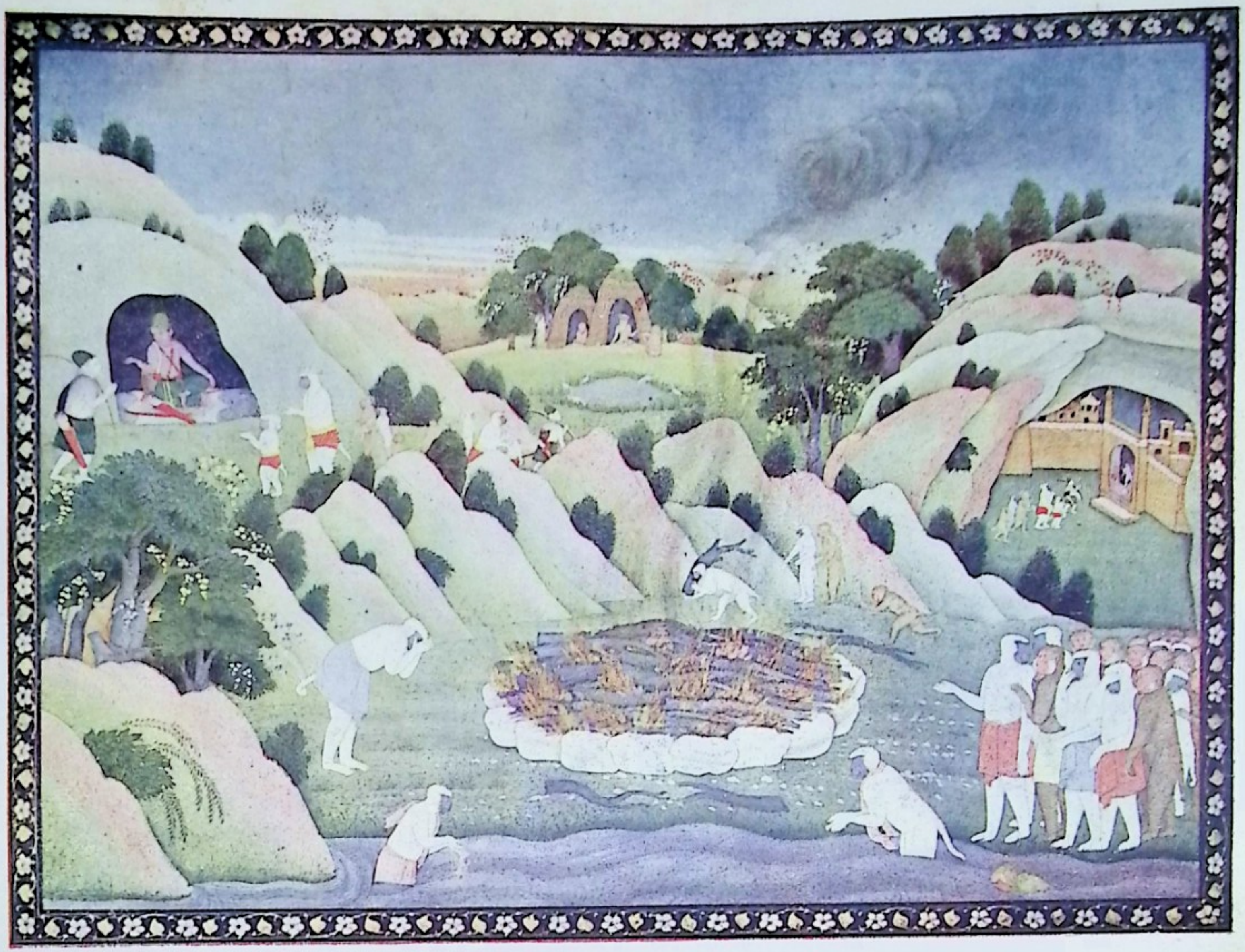

बालि का दाह-कर्म ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

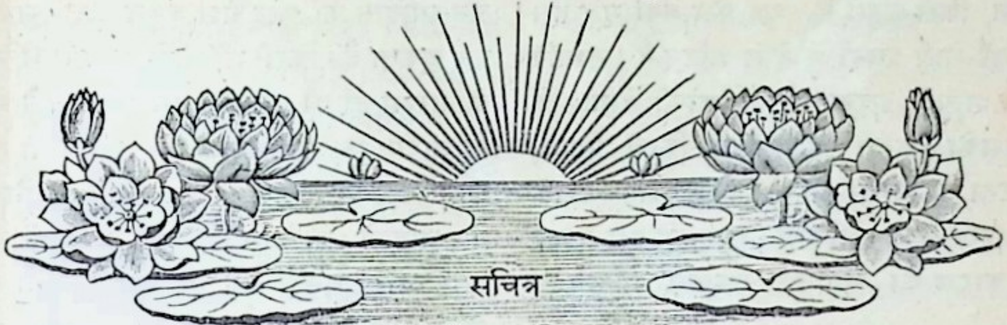

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड २] अक्टूबर १९१९—कार्तिक १९७६ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २३८

प्रतिज्ञा।

न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम ;
हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम।
हमारी राष्ट्र-भाषा मातृ-भाषा है ;
सफल होगी न क्यों ? आत्माभिलाषा है।
समय के साथ उन्नति की शुभाशा है,
बने भागीरथी जो कर्म्मनाशा है।
बहककर अब न विषयों में बहेंगे हम,
न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम॥
हमीं उस भाव-सागर को हिलोड़ेंगे ;
हलाहल देखकर भी मुँह न मोड़ेंगे।
करोड़ों रत्न पाकर भी विलोड़ेंगे,
पुरुष होकर कभी पौरुष न छोड़ेंगे।
अमृत पीकर, अमर होकर रहेंगे हम,
न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम॥

मैथिलीशरण गुप्त

ऐतिहासिक और पूर्व ऐतिहासिक बातें।

इस समय से सौ वर्ष पहले, लोग इतिहास को प्रायः मनोरञ्जक या कभी कभी शिक्षाप्रद विषय समझा करते थे। यह किसीको गुमान भी न था कि यह विषय महत्त्व में किसी बड़े से बड़े वैज्ञानिक विषय से कम नहीं। अट्ठारहवीं शताब्दी में इँगलेंड के विद्वान्, डाक्टर जानसन का तो कथन था कि इतिहास साहित्य की एक लचर शाखा है।

उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान की सभी शाखाओं ने बड़ी उन्नति की। वैज्ञानिक युग का आरम्भ ईसवी सन् के कोई ३०० वर्ष पहले, अर्थात् यूनानी तत्त्ववेत्ता अरस्तू या अरिस्टाटल के समय से, माना जाता है। उस समय से लेकर दो हज़ार वर्षों में

जितने वैज्ञानिक सिद्धान्त स्थिर हुए या वैज्ञानिक आविष्कार काम में लाये गये उससे कहीं ज़ियादह बातें इस एक सदी में ज्ञात हुईं। इतिहास का क़दम भी अपनी दौड़ में पीछे नहीं रहा। इन एक सौ वर्षों में उसकी काया पलट गई; और अब, बीसवीं सदी में, उसकी उन्नति की और भी अधिक आशा है।

विज्ञान किसे कहते हैं, यह प्रश्न बड़ा गूढ़ है। इसका उत्तर थोड़े शब्दों में देना कठिन है। तथापि संक्षेप में शायद इतना कहना काफ़ी होगा कि विज्ञान उसको कहते हैं जिसमें किसी विषय, पदार्थ, घटना या विचार की वास्तविक दशा—उसके मूल या कारण—की खोज हो; वह भी इस प्रकार कि कार्य्य-कारण का निश्चित सम्बन्ध मालूम हो जाय।

और इतिहास क्या है? यों तो किसी जाति, किसी पदार्थ या किसी विचार का हाल, आदि से लेकर जहाँ तक मालूम हो, बयान करना सभी इतिहासों के अन्तर्गत हो जाता है। इस हिसाब से तो "दुनिया का इतिहास" इन तीन शब्दों में जितनी विद्यायें हैं उन सभी का समावेश हो सकता है। इसलिए इतिहासों का अर्थ कुछ सङ्कुचित करके उससे साधारणतया "मनुष्य-जाति का इतिहास" समझा जाता है। अतएव वैज्ञानिक इतिहास उसको कहना चाहिए जिसमें मनुष्य-जाति या उसके किसी अंश का हाल इस प्रकार वर्णन किया गया हो कि उसकी प्रत्येक अवस्था के उलट-फेर का कारण मालूम हो सके।

बहुत ही विस्तृत विषय होने के कारण "इतिहास" शब्द का मतलब एक तरह और भी सङ्कुचित कर दिया गया है। यथार्थ इतिहास वही कहा जाता है जो तत्कालीन लिखित प्रमाणों का आधार रखता हो। वे लिखित प्रमाण भी ऐसे हों जिनका समय ठीक ठीक मालूम हो। उसके पहले का जो हाल मिलता है या जो और तरह के प्रमाणों से जाना जा सकता है वह पूर्व इतिहास कहलाता है।

इतिहास का आरम्भ उसी समय से कहा जा सकता है जब से लिखित प्रमाण मिलें और उन प्रमाणों का समय भी निश्चित हो। अतएव स्पष्ट ही प्रकट है कि इस अवस्था को पहुँचते पहुँचते जन-समुदाय का कुछ अंश बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकता है। किसी भी जाति के ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ ही की अवस्था पर ध्यान देने से मालूम हो जायगा कि उस समय भी खेती होती थी। लोग खाना पकाकर खाते थे; कपड़े बुनते और पहनते थे; धातुओं को काम में लाते थे; हथियार और वर्तन वग़ैरह बनाते थे; मिलकर मुखियों के अधीन गाँवों और क़सबों में रहते थे; किसी न किसी धर्म्म के अनुयायी थे; और गीत या कविता की रचना करते थे। इतना ही नहीं, किन्तु नितान्त प्रारम्भ में भी सौदा-सुलफ़, लेन-देन, चिकित्सा, गणित, ग्रहों के ज्ञान इत्यादि की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। अतएव लिखने की कला ईजाद होने के पहले ही मनुष्य-जाति में सभ्यता के मुख्य मुख्य लक्षण प्रकट हो चुके थे।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि लिखित प्रमाणों के अभाव में पूर्व ऐतिहासिक हाल जाने कैसे गये? इसका उत्तर यह है कि पृथ्वी की सब जातियाँ यदि एक ही सी उन्नति करतीं या यों कहिए कि सब मनुष्य एक ही जन-समुदाय के होते तो पूर्व ऐतिहासिक काल का कभी बोध ही न होता। पर प्राचीन इतिहासकारों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अपने इतिहास इस ढङ्ग से आरम्भ किये हैं मानों मनुष्य सदा से ही इतना सभ्य था जितना कि उसे वे अपने समय में—इतिहास-रचना के समय में—देखते थे। बड़ी खोज और जाँच के बाद यह बात पीछे से मालूम हुई कि यह बड़ी भूल थी। जिस अवस्था में इतिहास आरम्भ हुआ

वह लाखों वर्ष की क्रमशः बढ़ती हुई सभ्यता का परिमाण था।

जब विज्ञानवेत्ताओं ने उन अनेक जन-समुदायों की अवस्था को देखा और जाँचा जिनमें इतिहास का जन्म न हुआ था, यहाँ तक कि इतिहास लिखने की कुछ चर्चा भी न थी, तब उन्हें मनुष्य-जाति की उन्नति के क्रम का अनुमान हो सका। यही क्रम पूर्व ऐतिहासिक काल का पता देता है। यह अवश्य है कि पूर्व ऐतिहासिक वृत्तान्त इतना ब्योरेवार नहीं मालूम हो सकता जितना ऐतिहासिक वृत्तान्त मालूम हो सकता है। परन्तु जो कुछ मालूम हुआ है वह अत्यन्त मनोरञ्जक अवश्य है। वैज्ञानिक जाँच करनेवालों को उससे सहायता भी बहुत मिल सकती है।

पूर्व ऐतिहासिक काल का पता विशेष करके उन वस्तुओं से चलता है जो ज़मीन की तहों में, ग़ारों में, अथवा पुराने ढीहों या क़ब्रों में गड़ी हुई निकलती हैं। उनमें प्रधानता अस्तव्यस्त वस्तुओं ही की है। परन्तु कहीं कहीं हज़ारों वर्ष पहले के मकान, गाँव, रोज़मर्रा के इस्तेमाल के बर्तन और गहने वग़ैरह भी मिले हैं। योरप में इन वस्तुओं के अनेक सङ्ग्रहालय हैं, जो विज्ञान-विशारदों के लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

पूर्व ऐतिहासिक समय का वृत्त पूरे तौर पर बतलाने के लिए अनेक बड़ी बड़ी पुस्तकें चाहिएं। विद्या और विज्ञान पर हिन्दी-प्रेमियों की श्रद्धा बढ़ती गई तो किसी समय ऐसी पुस्तकें बन भी जायँगी। इस छोटे से लेख में तो हम संक्षेपतः केवल उन परिणामों का वर्णन करेंगे जो विज्ञानवेत्ताओं ने इस विषय में स्थिर किये हैं।

पूर्व ऐतिहासिक अवस्था प्राप्त होने के पूर्व मनुष्य (अर्थात् दो पैरों पर चलने और हाथों से और और काम करनेवाला प्राणी) चार अवस्थाओं को, जिनके लक्षण जुदा जुदा हैं, तय कर चुका है। वे चारों अवस्थाएं ये हैं—

(१) भद्दे पत्थरों के अस्त्र-प्रयोग की अवस्था।
(२) चिकने किये गये पत्थरों के अस्त्र-प्रयोग की अवस्था।
(३) ब्रांज़ नामक धातु के अस्त्र-प्रयोग की अवस्था।
(४) लोहे के प्रयोग की अवस्था।

सरलता के लिए इन चारों दशाओं के संक्षिप्त नाम ये होंगे। (१) भद्दा पत्थर-काल, (२) चिकना पत्थर-काल, (३) ब्रांज़-काल, (४) लोह-काल।

पहली अवस्था तो बिलकुल जङ्गली थी। उस काल में मनुष्य अकेला या छोटी छोटी टोलियाँ बनाकर जङ्गल में इधर-उधर जानवरों को मारता और खाता फिरता था। शिकार के लिए भद्दे पत्थरों को वह तोड़ ताड़कर उन्हें नुकीले बना लेता था। उन्हींसे वह अस्त्रों का काम लेता था। उस समय वह कच्चा ही मांस खाता था; हड्डियाँ तोड़कर उनके भीतर की मज्जा निकाल लेता था। विशेष करके वह कन्दराओं ही में रहता था। इस काल के अन्तिम भाग में शायद मांस भून लिया जाता था और कपड़े की जगह खाल का इस्तेमाल किया जाता था। कन्दराओं में जो हड्डियाँ मिलती हैं वे विशेष करके बड़े बड़े जानवरों के बच्चों की हैं। इससे साबित है कि उस समय मनुष्य बड़े बड़े जानवरों का शिकार न कर सकता था। यह अवस्था लाखों वर्ष रही। दो लाख वर्ष पहले तक इस अवस्था के मनुष्यों का पता लगता है।

दूसरे काल में पत्थर के अस्त्र-शस्त्र बड़े, बहुत साफ़ और तेज़ बनते थे। आग का इस्तेमाल मालूम हो जाने से शस्त्र-निर्माण में बहुत सहायता मिली और ऐसे हथियार बनने लगे जिनसे मनुष्य बड़े बड़े जानवरों का भी शिकार सुगमता से करने लगा। हिंसक जानवरों से कुछ कम डर रह जाने के कारण, इस समय मनुष्य कन्दराओं को छोड़कर झोपड़ों

और गाँवों में रहने लगा, गोल बाँधकर शिकार करने लगा, मिट्टी के बर्तन बनाने लगा, कुत्ते और शायद एक-आध और घरेलू जानवर पालने लगा, और कुछ कुछ खेती भी करने लगा। इस काल का प्रारम्भ कब से माना जाय, इसका अभी तक ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका है। मगर अब से ३०,००० वर्ष पहले तक के पत्थर के बहुत ही साफ़ और तेज़ चाकू, कटार वग़ैरह मिले हैं। ऐतिहासिक काल का आरम्भ होने, अर्थात् अब से कोई दस हज़ार वर्ष पहले, तक मनुष्य विशेषतः इसी अवस्था में था। इस काल के अन्तिम भाग में शायद मिट्टी के बर्तन बनाना और खाना उबालना जारी हो गया था।

ऊपर की दोनों अवस्थायें बिलकुल ही असभ्यता-सूचक थीं। सभ्यता का आरम्भ तो तब हुआ जब मनुष्य ने धातु गलाना और उससे हथियार बनाना जाना। ब्रांज़ नामक धातु बहुत आसानी से गलाई जा सकती है। इससे पहले इसीका प्रयोग आरम्भ हुआ और इसी धातु से तीसरे काल की पहचान स्थिर हुई। इस काल में मिट्टी के उमदा बर्तन बनने लगे, कपड़ों का बुना जाना जारी हुआ, सोने-चाँदी के आभूषण बनने लगे। खेती की और उन्नति हुई। बकरी और भेड़ पालना, दूध खाना और भोजन भले प्रकार बनाना प्रचलित हुआ।

इस तीसरी अवस्था का एक नाम चरवाहों या पशुपालों की अवस्था भी है। यह अवस्था, सभ्यता बहुत कुछ बढ़ जाने के बाद, इस काल की अन्तिम अवस्था थी। उस समय अपने अपने गोत्र का समस्त जन-समुदाय एक ही साथ अपने अपने गाय, बैल, भेड़-बकरी, ऊँट-घोड़े और बाल-बच्चे साथ लिये हुए इधर-उधर, चारे की तलाश में, फिरने लगा। नदी-किनारे जहाँ कहीं अच्छी ज़मीन पाई, वहीं ख़ेमे डाल दिये, थोड़ी बहुत खेती कर ली और जब तक वहाँ की ज़मीन काफ़ी उपज देती रही तब तक वहीं रहे। फिर डेरा-डण्डा उठाया और दूसरी जगह चल दिये। यदि और किसी ऐसे ही गोल से सामना हुआ तो उससे लड़े भिड़े। जिसकी जीत हुई उसकी प्रशंसा के गीत बन गये। इस अवस्था में सभ्यता बहुत कुछ बढ़ी; वाणिज्य-व्यापार का आरम्भ हुआ। लोग मिल जुलकर गीत गाते, छोटे छोटे झगड़ों का आपस में फ़ैसला करते, अपने पूर्वजों या बहादुर लोगों या सुन्दर स्त्रियों की प्रशंसा करते। इन विषयों पर वे गीतों की रचना भी करते। यही गीत इतिहास के बीज हैं और सभी सभ्य देशों के इतिहासों में इस सुखपूर्ण दशा की मनोरञ्जक कथायें मिलती हैं।

चौथा काल आधुनिक समय है, जिसमें धातुओं का, और विशेष कर लोहे का प्रयोग बहुत बढ़ा, खेती प्रधान व्यवसाय हो गया, और इधर-उधर घूमना और ख़ेमों में रहना छोड़कर मनुष्य बड़ी बड़ी बस्तियों में रहने लगा। दो एक जातियाँ, चौथे काल में प्रवेश करने के पहले ही, ऐतिहासिक हो गईं, अर्थात् उन्होंने अपनी जीत इत्यादि के लिखित प्रमाण या स्मारक निर्म्मित कर दिये। लेकिन अधिकतर जातियाँ चौथा काल आने के बाद ही ऐतिहासिक हुईं। कोई कोई तो अब तक भी इस अवस्था को नहीं प्राप्त हुई हैं, यद्यपि लोहे का प्रयोग उनमें जारी है। अभी तक इस बात का पता ठीक ठीक नहीं लगा कि लोहे का इस्तेमाल किस जाति ने कब आरम्भ किया। हाँ, अब से सात हज़ार वर्ष पहले तक तो इस धातु का काम में लाया जाना अलबत्ते साबित है।

यह भी याद रखना चाहिए कि सभी जातियाँ बराबर बराबर समय तक इन अवस्थाओं में नहीं रहीं। एक बात और भी है। कुछ जातियों में इन अवस्थाओं का मिश्रण साथ ही साथ पाया जाता है। भद्दे और सचिक्कण पत्थरों के हथियार साथ ही साथ मिलते हैं। इसी तरह पत्थर और ब्रांज़ धातुओं के हथियार भी साथ ही मिलते हैं। इन सबके साथ

कहीं कहीं लोहे के भी हथियार मिलते हैं। ऐसा सम्भव भी नहीं कि सब लोग एकदम ही बदल जायँ। उन्नति धीरे धीरे होती है और उसका प्रभाव बहुत छोटी अवस्था से आरम्भ होता है। उस समय बदली हुई हालत को ठीक तरह पहचानना भी कठिन हो जाता है। जब किसी नई बात का प्रचार भले प्रकार हो जाता है तभी मालूम होता है कि अवस्था बदल गई है। आज-कल भी मिट्टी और पत्थर के बर्तनों का, और कहीं कहीं पत्थर के औज़ारों का भी इस्तेमाल जारी है। अभी तक आपको कुछ जातियाँ ऐसी मिलेंगी जो लोहे का इस्तेमाल करती हैं, मगर न वे खेती करती हैं और न उनमें सभ्यता के कोई और ही लक्षण पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त हर मनुष्य-जाति ने एक सी उन्नति नहीं की। किसीने बहुत जल्द उन्नति की, किसीने बहुत धीरे। कुछ जातियाँ तो दूसरी उन्नत जातियों के संसर्ग से एक-दम ही पहले या दूसरे काल से चौथे काल में आ गईं। संसर्ग का परिणाम यहाँ तक व्यापक हुआ है कि अब कोई भी जाति बिलकुल ही पहली, दूसरी या तीसरी अवस्था में नहीं मिलती। तथापि किसी समय बहुत सी जातियाँ इन अवस्थाओं में थीं, इसके ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं।

जब तक लिखना नहीं जारी हुआ था तब तक जो जातियाँ कुछ सभ्य हो गई थीं वे अपनी बातें परम्परागत कथाओं या गीतों के रूप में ज़बानी याद रखती थीं। अभी तक इसका पता नहीं चला कि सबसे पुरानी कथायें किस जाति की हैं। हम हिन्दुओं में से कितनों ही का विश्वास है कि इसका गौरव हमीं को प्राप्त है, और इस हिसाब से हमीं लोग पहली ऐतिहासिक जाति हैं। परन्तु अभाग्यवश एक तो इस देश के इतिहास की खोज ही अभी अच्छी तरह नहीं हुई और दूसरे कई कारणों से यहाँ ज़बानी विद्याभ्यास का रिवाज बहुत दिनों तक रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यद्यपि इस देश की सभ्यता बहुत पुरानी है तथापि उसका लिखित प्रमाण कोई नहीं। इस देश का कुछ प्राचीनतम हाल फ़ारिस के बादशाहों के विषय में लिखित लेखों में मिलता है और इसके बाद यूनानियों के ग्रन्थों में। स्वयं भारत में कोई लिखित चिह्न राजा अशोक के पहले का मिलता ही नहीं।

गिरिजादत्त वाजपेयी

पश्चिमीय अर्थ-शास्त्र।

जब हम अर्थशास्त्र (Political Economy) का इतिहास लिखने बैठते हैं तब पहला प्रश्न हमारे सामने यह उपस्थित होता है कि अर्थ-शास्त्र का अर्थ क्या है? किसी भी पारिभाषिक संज्ञा का अर्थ बतलाने अथवा उसकी व्याख्या करने का यह तात्पर्य नहीं है कि उसके शब्दार्थ बतला दिये जायँ, क्योंकि शब्दार्थ मालूम कर लेना न कठिन ही है न लाभदायक, और न साधारण लोग इसे जानने की परवा करते हैं। किसी शब्द की व्याख्या करने का केवल यही उद्देश है कि उस शब्द के उच्चारण-मात्र से उसका बोध हो जाय, और मस्तिष्क में उसके प्रवेश करने पर उसके सम्बन्धी विचारों का आभास होने लगे। सारांश यह कि उस शब्द के सुनने से साधारणतः तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि उसके साथ किन किन विषयों का सम्बन्ध है, उसका मौलिक सिद्धान्त क्या है और उसके द्वारा बुद्धिपटल पर किस प्रकार का चित्र अङ्कित होता है। उदाहरणार्थ, मनुष्य शब्द के उच्चारण करतेही हमें एक विशेष प्रकार के जीव का ध्यान आता है। हम जानते ही हैं कि यह शब्द एक ऐसे जीव का नाम है जिसके दो पैर, दो हाथ, इत्यादि अङ्ग-विशेष होते हैं और जिसमें सृष्टि के और

जीवों की अपेक्षा ज्ञान-शक्ति की मात्रा विशेष तौर से पाई जाती है, जिसके द्वारा वह बातों को समझ बूझ सकता है। दूसरे जानवर ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार वनस्पति-शास्त्र के कहने से हमें एक ऐसे शास्त्र का बोध होता है जिसका सम्बन्ध वनस्पतियों से है और जिसका मुख्य उद्देश नाना प्रकार के पौदों की प्रकृतियों तथा तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों की खोज करना है। ऐसे ही अर्थ-शास्त्र की व्याख्या करने में यह जानना आवश्यक है कि इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य क्या है, और यह शास्त्र किन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है।

दुर्भाग्यवश कई कारणों से अर्थ-शास्त्र की पूर्ण व्याख्या करना बहुत कठिन है, क्योंकि अभी तक इसके उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विषय में विद्वानों में बहुत कुछ मत-भेद रहा है। कुछ मोटी बातें ऐसी अवश्य हैं जिन पर प्रायः सभी सहमत हैं। जैसा कि इसके नाम ही से प्रतीत होता है, अर्थ-शास्त्र का मुख्य सम्बन्ध अर्थ अथवा द्रव्य से है। अर्थ अथवा द्रव्य का मतलब केवल रुपये-पैसे से नहीं है, वरन उन सब पदार्थों से है जो मनुष्य की इच्छाओं अथवा कामनाओं की पूर्ति करने में समर्थ हैं।

वस्तुतः अर्थ-शास्त्र अथवा अर्थ-विज्ञान समाज-शास्त्र का एक अङ्ग है। जिस प्रकार पदार्थ-विज्ञान (Physical science) में प्रकृति के नियमों का अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार समाज-विज्ञान (Social science) में मनुष्यों की प्रकृति तथा तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों और नियमों का अध्ययन किया जाता है। अर्थ-शास्त्र समाज-शास्त्र का वह अङ्ग है जिसका उद्देश्य मनुष्य के उन आपस के व्यवहारों का अध्ययन करना है जिनके द्वारा वह अपनी रोज़ की आवश्यकताओं की सामग्री को इकट्ठा करता है और उसको नाना प्रकार से काम में लाता है।

अर्थ-शास्त्र की इस व्याख्या पर विचार करने के पहले हमको यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि हम यहाँ अर्थ-शास्त्र का पूर्ण अथवा वैज्ञानिक अर्थ बतलाने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं। यहाँ पर हम अर्थ-शास्त्र के उद्देश्य का केवल साधारण रूप से परिचय कर लेना चाहते हैं। यों तो देखतेही इस व्याख्या में कई जगह सन्देह उत्पन्न हो जायगा; परन्तु जैसा हमने पहले ही कहा है, कई कारणों से अर्थ-शास्त्र का यथार्थ और वैज्ञानिक आशय जान लेना सरल नहीं है। पहली बात तो यह है कि समाज-शास्त्र की सभी शाखाओं की नाईं अर्थ-शास्त्र मनुष्य की प्रकृति और उसके व्यवहारों पर अवलम्बित है। यदि इस शास्त्र का उद्देश्य कुछ ऐसे सिद्धान्तों का खोज निकालना है जिनके अनुसार मनुष्य सदा काम किया करता है और जो उसके धनोपार्जन और धन-व्यय इत्यादि जीवन के अनेक व्यवहारों को किसी परिमित मार्ग में ले जाया करते हैं तो यह कहना कठिन है कि इस कार्य्य में विद्वानों को कहाँ तक सफलता प्राप्त हो सकेगी। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं जो प्रायः सभी मनुष्यों में पाई जाती हैं और जो नित्य ही हुआ करती हैं। इनको हम मनुष्य की प्रकृति अथवा स्वभाव कह सकते हैं। किन्तु हमारी सभ्यता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य की प्रकृति, उसके विचार, उसकी संस्थायें और प्रथायें समय समय पर बदला करती हैं। जो बात आज से दो सहस्र वर्ष पहले थी वह आज नहीं पाई जाती। मनुष्य की परिवर्तन-शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि उसने केवल अपने ही को नहीं, किन्तु अपने से पृथक् सृष्टि को भी बहुत कुछ बदल दिया है। तोभी प्रकृति के ऊपर मनुष्य का अभी तक बहुत थोड़ा अधिकार हुआ है। जो प्राकृतिक नियम संसार के आदि में थे वे ही अब भी हैं। जिस प्रकार दो सहस्र वर्ष पहले ऊपर से गिरा हुआ पत्थर आकर्षित होकर पृथ्वी

पर आ जाता था वैसे ही आज भी । किन्तु सामाजिक नियमों और विचारों में बहुत कुछ अन्तर हो गया है । जो धार्मिक विचार आज से सौ वर्ष पहले प्रचलित थे उनमें से बहुतों का आज पता भी नहीं है । अब भी कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रवेश नहीं हुआ है । उन जगहों के लोगों से और सभ्य लोगों से मिलान करने पर मालूम हो जायगा कि दोनों में कितना अन्तर है । इन्हीं कारणों से बहुत लोगों का मत है कि अर्थ-शास्त्र के बहुत से सिद्धान्त नित्य नहीं माने जा सकते ।

समाज की किसी विशेष अवस्था से निर्धारित सिद्धान्त उसी अवस्था के लिए सत्य अथवा उपयोगी कहे जा सकते हैं । दूसरे युग अथवा दूसरी दशा में उनका घटित होना बहुत कठिन है । उदाहरणार्थ, पहले समय में वस्तुओं का मूल्य मज़दूरों की मज़दूरी, पृथिवी का कर (rent) इत्यादि बहुत सी बातें सामाजिक परम्परा पर निर्भर थीं । यद्यपि संसार के कुछ विभागों में किसी अंश तक यह बात अब भी ठीक है ; परन्तु साधारण तौर पर आज-कल मूल्य आदि उपज और माँग के अनुसार बदलते रहते हैं । यदि अन्न की उपज कम हुई अथवा माँग अधिक, तो मूल्य तुरन्त बढ़ जायगा । यदि मज़दूरों की माँग अधिक हुई और संख्या कम, तो वेतन अवश्य बढ़ जायगा । इसका एक कारण यह है कि आज-कल की सभ्यता में स्वेच्छाचार और व्यक्तिगत आत्म-निर्णय का बड़ा ऊँचा स्थान है । प्राचीन काल में इतनी स्वतन्त्रता नहीं थी और लोग प्रायः एक ही लकीर के फ़क़ीर बने रहते थे । दासत्व अथवा ग़ुलामी की प्रथा, अनियन्त्रित शासन, वर्ण-व्यवस्था इत्यादि बहुतसी प्रथायें इसी सिद्धान्त के बल पुराने समय में प्रचलित थीं । लेकिन उनके पक्ष में बात करना ही आंज-कल सठिया जाने का प्रमाण समझा जाता है ।

फिर यह भी निश्चित नहीं है कि आज-कल की औद्योगिक तथा सामाजिक दशा कब तक स्थिर रहेगी । वर्तमान महायुद्ध में संसार की औद्योगिक अवस्था में बहुत कुछ हेर-फेर होगया है और वह हेर-फेर अब भी जारी है । कुछ पुराने सिद्धान्त जो अभी तक अटल माने जाते थे, अब त्याग दिये गये हैं और नई समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं जिनको सुलझाने के लिए हमारे नेताओं को बहुत दिनों तक अपना मस्तिष्क अर्पण करना पड़ेगा । अस्तु ।

अर्थ-शास्त्र को पूर्ण रूप से समझने में एक और भी कठिनाई आ पड़ती है । वह यह है कि अभी थोड़े दिन पहले तक विद्वानों का ध्यान भली भाँति इस शास्त्र की ओर आकर्षित नहीं हुआ था । इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कुछ काल पहले योरप में वाणिज्य नहीं हुआ करता था । कहने का आशय केवल यही है कि अर्थ-शास्त्र को वैज्ञानिक रीति से उन्नति देने में लोगों को बहुत अधिक उत्साह नहीं था । इसका फल यह हुआ कि इसके मुख्य उद्देश और सिद्धान्तों पर बड़ा मतभेद है । इस मतभेद को अच्छी तरह जाने विना अर्थ-शास्त्र का ठीक ठीक मतलब समझ में नहीं आ सकता । इसलिए पहले यह आवश्यक है कि इस शास्त्र के इतिहास का दिग्दर्शन कर लिया जाय ।

Economy (एकानमी) शब्द यूरोपीय साहित्य में बहुत दिनों से प्रचलित है । ग्रीस अथवा यूनान की सभ्यता यूरोप के सभी देशों की सभ्यता से पुरानी है । सच तो यह है कि यूनानी सभ्यता ही आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की आधार-रूप है । यूरोप की कला, साहित्य, समाज-सङ्गठन, आचार-व्यवहार इत्यादि सभ्यता और उन्नति के सभी मुख्य अङ्गों को ग्रीस के साहित्य और रहन-सहन से उत्तेजना तथा आदर्श प्राप्त हुए हैं । इसी यूनानी भाषा के दो शब्दों को मिलाकर Economy शब्द बना है और प्रसिद्ध यूनानी ग्रन्थकार ज़ेनाफन (Xenophon) ने अपनी एक पुस्तक का नाम भी एकानमी रक्खा

था। तथापि इससे यह न समझना चाहिए कि उस समय अर्थ-शास्त्र का उसी वैज्ञानिक रीति से अध्ययन किया जाता था जैसा कि आधुनिक सभ्य देशों में होता है। उस समय वाणिज्य अवश्य होता था, लोग आय-व्यय का व्यौरा भी किसी न किसी रूप में रखते ही थे ग्रोर बहुतसे प्रश्न जो आज-कल सभ्य समाज के ध्यान पर अधिकार जमाये हुए हैं उस समय भी उपस्थित थे। किन्तु सब बातें उस समय शास्त्ररूप में परिणत नहीं हुई थीं ग्रोर इन पर अखिल राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से विचार नहीं किया जाता था। एकानमी शब्द ही का अर्थ है—'घरेलू नियम'। कभी कभी विद्वान् लोग सम्मति के रूप में इन विषयों पर अपने विचार प्रकट कर दिया करते थे।

यह कुछ आश्चर्यजनक मालूम होता है कि साहित्य, सङ्गीत, कला इत्यादि उन्नति के प्रधान अङ्गों में चढ़े-बढ़े होने पर भी ग्रीस के लोगों ने अर्थ-शास्त्र की उन्नति करने में अपना चित्त नहीं लगाया। इसका कारण यह है कि यूनानी लोग बड़े उपजाऊ ग्रोर व्यसन पैदा करनेवाले देश में रहते थे। उनको पेट भरने के लिए कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता था। दासत्व अथवा गुलामी की प्रथा को वे बुरा नहीं समझते थे ग्रोर उच्च श्रेणी के लोगों का जीवन प्रायः भोग-विलास ग्रोर सरस्वती की आराधना में व्यतीत हुआ करता था। वे लोग इतने धन-धान्य युक्त थे कि उनके दासों को भी आत्म-सुधार का अवसर मिल जाया करता था। ऐसी दशा में उनको उदर-पोषण के गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने अथवा धन बढ़ाने की कोई आवश्यकता न थी। जल-वायु का भी उनके ऊपर प्रभाव पड़ा ग्रोर उसने भी उनको बहुत कुछ आराम-तलब बना दिया। फल यह हुआ कि न तो कभी उन्होंने कठिन परिश्रम में अपना जीवन बिताया ग्रोर न उसकी उन्हें आदत ही पड़ी। यही कारण है कि ग्रीस में अर्थ-शास्त्र को महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ ग्रोर इसी कारण से कालान्तर में ग्रीस का राजनैतिक महत्त्व भी जाता रहा।

उसी समय से सभ्यता का केन्द्र ग्रीस की राजधानी एथेन्स (Athens) से हटकर रोम (Rome) में चला गया। रोमवाले यूनानियों (ग्रीसवालों) से कई बातों में भिन्न थे। वे इनकी अपेक्षा अधिक परिश्रमी, अधिक संयमी तथा अधिक सूझ-बूझ के आदमी थे। ग्रीसवालों का जीवन रसमय था, इनकी प्रकृति काव्यमयी थी ग्रोर सौन्दर्य्य के विवेचन में इनके चक्षु दिव्य-चक्षुओं का काम करते थे। तो भी इन लोगों में सांसारिक चातुर्य की मात्रा बढ़ी हुई नहीं थी। रोमवाले इनकी अपेक्षा इस विद्या में अधिक प्रवीण थे। लड़ाई ग्रोर राज-नीति से उनको विशेष स्नेह था; परन्तु वे वाणिज्य की अवहेलना नहीं करते थे। उनके समय में भिन्न भिन्न व्यवसायवालों के लिए भिन्न भिन्न समितियाँ अथवा व्यापार-सङ्घ मौजूद थे। दासों को उपयोग में लाकर वे लोग बड़े बड़े कार्यालय खोलते थे। ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियों का भी वे प्रबन्ध किया करते थे ग्रोर बड़े बड़े ठेकों का काम करते थे। रोम की भाषा रोमन साम्राज्य के दूर दूर अंशों तक फैली हुई थी ग्रोर उसके द्वारा परस्पर व्यापार करने का बड़ा सुभीता था।

इन सब बातों के होते हुए भी रोम में अर्थशास्त्र की उन्नति नहीं हुई। इसका कारण यह है कि रोम का व्यापार लेन-देन के स्वाभाविक नियमों के अनुसार नहीं हुआ करता था। वाणिज्य का अधिकांश जो रोम में आता था लूट-मार के द्वारा लाया जाता था। उस समय के व्यापारी-दल में धनलोलुपता का अधिक भाग था ग्रोर बीसों छल-कपट द्वारा धनोपार्जन का प्रयत्न किया जाता था। कभी सम्राट् की कृपा द्वारा, कभी अन्य उपायों से, वे लोग रुपया पैदा किया करते थे ग्रोर उस सच्चाई, ईमानदारी ग्रोर परिश्रम का उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहता

था, जिनके ऊपर राष्ट्र का वाणिज्य निर्भर रहता है। सारांश यह कि उस समय का व्यापार किसी नियत सिद्धान्त के अनुसार नहीं हुआ करता था और इसीलिए उस समय भी अर्थ-शास्त्र की उन्नति नहीं हुई।

हाँ, यह अवश्य है कि पश्चिम के भावी अर्थ-शास्त्र पर रोमन सभ्यता का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। ये लोग पहले ही से राष्ट्र के स्वत्वों को जाति-विशेष अथवा कुटुम्ब-विशेष के स्वत्वों से अधिक महत्त्वपूर्ण और बली मानते थे। प्राचीन समय में समाज कुटुम्बों में विभक्त था। क्रमशः बहुतसे कुटुम्ब एक दूसरे से मिल गये और सबने मिलकर किसी जाति-विशेष का निर्माण कर लिया। ऐसा होने पर यद्यपि भिन्न भिन्न कुटुम्ब अब भी बने रहे, किन्तु जब कभी अखिल जाति और किसी विशेष कुटुम्ब के स्वार्थ एक दूसरे के विरुद्ध रहते थे अर्थात् एक को ऊपर रखने से दूसरे की हानि की सम्भावना होती थी, तब जाति ही के अधिकारों को श्रेय दिया जाता था। ग्रीस और रोम में समाज एक दर्जा और ऊपर बढ़ गया और जाति अथवा कुटुम्ब की अपेक्षा राष्ट्र अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा। परन्तु राष्ट्र का ज़ोर होने पर भी कुटुम्ब निःशेष नहीं हुए। बहुतसी पुरानी प्रथायें उनमें अब भी बनी रहीं। कुटुम्ब का स्वामी अथवा बड़ा बूढ़ा अब भी उसके प्रतिनिधि की दृष्टि से देखा जाता था और इस समय तक व्यक्तिगत स्वत्वों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। थोड़े दिनों में रोम का गौरव और बढ़ा और उसे एक प्रकार से चक्रवर्ती का स्थान प्राप्त हुआ। इस दशा में उसके न्यायकर्ताओं को बहुतसे अधीन राष्ट्रों के अधिकार सीमाबद्ध करने पड़े। ऐसे समय में स्वभावतः न्यायशास्त्र को बड़ी उत्तेजना मिली और रोम के बड़े बड़े न्यायकर्ता कुछ ऐसे अटल और नैसर्गिक सिद्धान्तों की खोज में लगे जिनके द्वारा स्वामित्व के अधिकार भली भाँति स्थिर किये जा सकें। धीरे धीरे व्यक्तिविशेष की सम्पत्ति और उसके अधिकारों का पूर्ण रूप से विधान कर दिया गया और इस समय से उसे यह स्वत्व प्राप्त हुआ कि निज की जायदाद को वह यथेष्ट रूप से व्यय कर सके। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का अर्थ-शास्त्र पर कितना प्रभाव पड़ा। केवल यही कह देना बस है कि आज-कल का समाज ही इसी सिद्धान्त पर ठहरा हुआ है।

इस समय रोम में जो दार्शनिक विचार प्रचलित थे उन पर 'स्टोइक' (Stoic) सिद्धान्तों का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। पश्चिमीय दर्शन के इतिहास में स्टोइक विचारों का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल में स्टोइक लोगों का बड़ा प्रसिद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय ग्रीस में था। बहुतसी बातों में इन लोगों के सिद्धान्त आज-कल के सामाजिक सिद्धान्तों से मिलते-जुलते हैं। यह बात अवश्य है कि प्राचीन भारतीय ऋषियों की भाँति ये लोग सांसारिक सुख को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखा करते थे। नियमबद्ध, कर्तव्य-परायण तथा काठिन्यमय जीवन व्यतीत करने ही में इन लोगों की आत्मा को सन्तोष मिलता था। इसका एक कारण यह है कि प्राचीन यूरोपीय सभ्यता पर पूर्वीय देशों का बहुत असर पड़ा था। विशेषतः रोम के बहुत से स्टोइक तत्त्ववेत्ताओं का तो पूर्वीय देशों ही से अधिक सम्बन्ध था। अस्तु।

यद्यपि रोम बड़ा प्रतापशाली था, उसका आधिपत्य और सभ्यता योरप के दूर दूर देशों तक फैली हुई थी और अपने उत्थानकाल में उसने ऐसे ऐसे राजनीतिज्ञों और शासकों को जन्म दिया था जिनके लेखों और वक्तृताओं को लोग अब भी बड़े चाव से पढ़ते हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं, तोभी उसका गौरव बहुत दिनों तक स्थिर न रह सका। उत्तर योरप के कुछ अंशों (जर्मनी) में गाथ आदि कुछ असभ्य जातियाँ रहती थीं। ये लोग बड़े मज़बूत और लूटमार के प्रेमी थे और प्रायः रोमन साम्राज्य

पर आक्रमण कर दिया करते थे। बहुत दिनों तक तो रोमन सेनायें इन लोगों को परास्त करती रहीं और साम्राज्य की सीमा के अन्दर इनका पैर न जमने दिया। परन्तु ३७८ सन् में ऐड्रियानोपेल (Adrianople) के समीप एक बड़ी भारी लड़ाई हुई जिसमें जर्मनों की पूर्ण विजय हुई और रोमन सम्राट् मारा गया। उसी तिथि से रोमन साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ। फिर कुछ ही दिनों में लगभग समस्त साम्राज्य टुकड़े टुकड़े होकर कई असभ्य जातियों के अधिकार में आ गया। ये जातियाँ बहुत दिनों तक परस्पर लड़ती रहीं। कभी एक को विजय प्राप्त होती थी, कभी दूसरी को। कभी कभी कोई सुयोग्य सैनिक अथवा शासक अपने बाहुबल द्वारा औरों को परास्त करके उन पर अपना अधिकार जमा लिया करता था, परन्तु उसकी मृत्यु हो जाने पर कालान्तर में फिर सब उलट-पुलट हो जाता था।

नवीं शताब्दी में फ़्रैंक जाति में शार्लिमैन नामक बड़ा भारी राजा हुआ। उसने धीरे धीरे अन्य जातियों पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया और इस प्रकार उसने एक बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित कर लिया। इतना विस्तृत साम्राज्य रोमन साम्राज्य के पतन के बाद योरप में कभी भी नहीं हुआ था। शार्लिमैन की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य उसके पुत्रों में बँट गया और यह बाँट-चूँट का लड़ाई-झगड़ा कई पीढ़ियों तक चलता रहा। इसी बाँट-चूँट के द्वारा योरप की वर्तमान रियासतों का सूत्रपात हुआ। साम्राज्य के पृथक् पृथक् भाग पृथक् पृथक् नामों से प्रसिद्ध हो गये और थोड़े-बहुत हेर-फेर के सहित वे अब तक चले आते हैं।

अब प्रश्न यह है कि इन बातों से और अर्थ-शास्त्र के इतिहास से क्या सम्बन्ध? हार-जीत, लूट-मार की ये सब घटनायें योरप के राजनैतिक इतिहास से सम्बन्ध रखती हैं; अर्थ-शास्त्र के छात्र को इनसे क्या प्रयोजन? पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यद्यपि यह सच है कि रोमन-साम्राज्य के पतन के बाद कई सौ वर्षों तक योरप में इतनी गड़बड़ मची रही कि उस समय अर्थ-शास्त्र अथवा किसी भी सभ्य व्यवसाय की ओर लोगों का चित्त नहीं आकर्षित होता था, तो भी ज्यों ज्यों असभ्य जातियों पर रोमन सभ्यता का प्रभाव पड़ता गया त्यों त्यों इनकी रुचि भी कला साहित्य इत्यादि की ओर दौड़ने लगी। ये लोग परिश्रमी और उत्साही तो पहले ही से थे, और इनका जो उत्साह अभी तक उच्छृङ्खल रहा करता था और प्रायः लूट-मार इत्यादि पाशविक व्यवहारों में लगाया जाता था, वह अब सभ्यता के मार्ग को सुगम बनाने में लग गया।

इस विवेचन से प्रकट होता है कि योरप के अर्थ-शास्त्र पर उसके पूर्व इतिहास का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है।

बेनीमाधव मेहरोत्र, बी० ए०

कवि।*

बतलाओ, वह कौन जिसे है कवि कहता सारा संसार?
रख देता शब्दों को क्रम से, घटा-बढ़ा जो किसी प्रकार।
क्या कवि वही? काव्य-किसलय क्या उसका ही लहराता है?
जिसके यशः-सुमन-सौरभ से निखिल विश्व भर जाता है ॥१॥
नहीं, नहीं, मेरे विचार में कवि तो है उसका ही नाम,
यम-दम-संयम के पालनयुत होते हैं जिसके सब काम।
रहती है कल्पना-कामिनी जिसके हृदय-कमल आसीन;
सञ्चारित करती सदैव जो भाँति भाँति के भाव नवीन ॥२॥
भूत, भविष्यत्, वर्तमान पर होती है जिसकी सम-दृष्टि,
प्रतिभा जिसकी मर्त्यधाम में करती सदा सुधा की वृष्टि।
जो करुणा, शृङ्गार, हास्य, वीरादि नवों रस का आधार,
जिसको ईश्वरीय तत्त्वों का अनुभव-युत है ज्ञान अपार ॥३॥

---

* माइकेल मधुसूदन दत्त की एक बँगला कविता की छाया।

जिसकी इच्छा से अरण्य में रम्य फूल खिल जाता है,
नन्दन-वन से पारिजात की लता छीन जो लाता है।
मरीचिका-मय मरु-स्थली में जिसकी आज्ञा के अनुसार,
कलकल-नाद-पूर्ण बहती है अतिशय शीतल जल की धार॥४॥

पाण्डेय मुकुटधर

सबसे अधिक बुद्धिमान् कुत्ता।

कुत्ता बड़ा बुद्धिमान् जानवर है। इस बात को सभी जानते हैं। कुत्ते की बुद्धिमानी के अनेक उदाहरण सुने गये हैं। सेंट बर्नार्ड नाम के कुत्ते बर्फ़ में भूले-भटके मुसाफ़िरों को रास्ता बतलाते हैं; उनको खाने-पीने का सामान देते हैं; और अनेक आदमियों को अकाल-मृत्यु से बचाते हैं। कहीं हमने पढ़ा है कि योरप में कुत्ते पुलिस तक में भरती होने लगे हैं। पर अमेरिका के शिकागो नगर में एक ऐसा अद्भुत कुत्ता है जिसे कुत्ता नहीं, मनुष्य कहना चाहिए। मनुष्य भी ऐसा-वैसा नहीं—अन्तर्यामी! दुनिया में, इस समय, उससे अधिक बुद्धिमान् और कोई कुत्ता नहीं है।

"स्ट्रैंड मैगेज़ीन" नामक एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में लिखा है कि यह कुत्ता जार्ज बी० क्रेसन नामक एक अमेरिकन साहब के पास है। वह गिन सकता है; जोड़, बाक़ी और गुणा कर सकता है; वक्त बतला सकता है; और बहुत अच्छा जासूसी काम कर सकता है। उसके इन गुणों को सुनकर संसार भर के मनोविज्ञान-विशारद दङ्ग हो रहे हैं। वे उसकी प्रत्यक्ष परीक्षा लेने के अभिप्राय से शिकागो जाने की तैयारी में हैं। सबसे अधिक आश्चर्य्यजनक बात इस कुत्ते में यह है कि वह औरों के मन की बात जान लेता है!

यदि किसी दिन बहुत आदमी क्रेसन साहब से भेंट करने जाते हैं तो उनके सामने उस कुत्ते को पेश करके क्रेसन साहब पूछते हैं—मोती, कितने आदमी, इस समय, हमसे मिलने आये हैं? यह सुनकर कुत्ता कमरे में चारों तरफ़ देखेगा और जितने आदमी होंगे उतनी ही दफ़ा भूँककर वह उनकी ठीक ठीक संख्या बतला देगा। यह उसके लिए बहुत सहज बात है। इसमें वह कभी ग़लती नहीं करता। इसके बाद क्रेसन साहब अकसर अपने मिलनेवालों में से किसीसे कहते हैं कि आप मोती से कोई गणित का सवाल पूछिए। एक दफ़ा एक प्रदर्शिनी में किसीने मोती से पूछा—तीन ऋण एक धन दो (३—१+२) का क्या फल हुआ? ज़रा देर में मोती ने चार दफ़ा भूँककर पूँछे गये सवाल का ठीक उत्तर दे दिया! इसके बाद काग़ज़ के छोटे छोटे टुकड़े लाये गये। उन पर वर्णमाला के अक्षर छपे हुए थे। उन्हें दिखलाकर मोती से कहा गया कि तुम अपने नाम के हिज्जे करो। उसने झट-पट काग़ज़ के उन टुकड़ों को अपने पैर से अलग किया जिन पर उसके नाम के अक्षर थे। फिर उनको उसने तरतीबवार, ठीक ठीक, एक के बाद दूसरा रख दिया। मोती की इस बुद्धिमानी पर लोगों को बहुत हैरत हुई। फिर उससे और कई छोटे छोटे शब्दों के हिज्जे कराये गये। मोती इस परीक्षा में भी पास हो गया। एक-आध ग़लती उसने ज़रूर की, पर बहुत छोटी।

एक आदमी ने एक दफ़ा कहा कि मोती को शब्द-रचना का ज्ञान नहीं हो सकता; इस विषय में उसका मालिक ज़रूर उसकी मदद करता होगा। इस पर क्रेसन साहब कमरे से बाहर चले गये और जो लोग कमरे में थे उनसे कह गये कि मेरी ग़ैर-हाज़िरी में आप शब्द-रचना में मोती की परीक्षा लीजिए। कमरे से बाहर जाते समय अपने मालिक की तरफ़ मोती ने ग़ौर से एक बार देखा और अपना काम उसने शुरू किया। एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे और तीसरे के बाद चौथे—इसी तरह कितने ही शब्दों की रचना काग़ज़ के

टुकड़ों के द्वारा करके उसने सबको आश्चर्य्य में डाल दिया।

जब क्रेसन साहब कमरे में वापस आये तब उन्होंने मोती से पूँछा—मोती, बतलाओ तो सही, अभी कुछ देर पहले, इन लोगों के मन में क्या था? मोती के सामने अक्षराङ्कित काग़ज़ के टुकड़े बिछा दिये गये। मोती झटपट काग़ज़ के कई टुकड़ों पर दाड़ गया। उन टुकड़ों पर छपे हुए वर्णों जोड़े गये तो "धोखा" और "चालाकी" शब्द बने। यह देखकर जितने आदमी वहाँ मौजूद थे सब कहकहा मारकर हँस पड़े। तब क्रेसन साहब ने कहा—मोती, मैं चाहता हूँ तुम ठीक ठीक वही करो जो ये लोग तुमसे करने को कहें। यह कहकर क्रेसन साहब ने जितने आदमी वहाँ उपस्थित थे सबसे कहा कि आप लोग काग़ज़ का एक एक टुकड़ा लें और उस पर कोई अङ्क लिख दें। उसे आप मन में रक्खें। मोती उसे बता देगा। सबने ऐसा ही किया। पहले आदमी ने ८ का अङ्क लिखा। मोती उसके सामने गया और आठ दफ़ा उसने भूँका। दूसरे ने ४ का अङ्क मन में लिया। एक मिनट सोचकर मोती ने उसे भी ठीक ठीक बता दिया। और जिन लोगों ने उस काग़ज़ को देखा था वे कह उठे "ग़लत"। परन्तु जिसके हाथ में काग़ज़ था, अर्थात् जो परीक्षा कर रहा था, उसने कहा, नहीं, कुत्ते ने सही बतलाया है; मैंने कुत्ते को धोखा देना चाहा था। इससे मन में तो मैंने चार का अङ्क लिया, परन्तु काग़ज़ पर लिखा पाँच का।

इस तरह बड़ी देर तक मोती की जाँच हुई। पर कुत्ते ने मन में भावना की गई बात को तत्काल ही बतलाकर सबको चकित कर दिया। क्रेसन साहब ने एक काग़ज़ पर लिखा—अपने मन में मोती को आज्ञा दीजिए कि आज सुबह का अख़बार उठा लाओ। इस काग़ज़ को उन्होंने एक आगत व्यक्ति को दिया। उस व्यक्ति ने कुत्ते की तरफ़ कुछ देर तक देखा और उससे मन ही मन सुबह का काग़ज़ लाने को कहा। मोती ने पूँछ हिलाई और दौड़कर सुबह का अख़बार वह उठा लाया।

कहिए, मोती अन्तर्यामी जीव है या नहीं?

इब्न बतूता की यात्रा।

मुसलमान यात्री इब्न बतूता का आसन उन सब यात्रियों से ऊँचा है जिन्होंने ऐसे समय में यात्रा की थी जब न रेल थी और न आज-कल के ऐसे बड़े बड़े जहाज़ ही थे। उस समय यात्रियों को पग पग पर बड़ी बड़ी भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ता था। इब्न बतूता तीस वर्ष तक एशिया और अफ़रीक़ा के भिन्न भिन्न देशों में घूमता रहा। सब मिलाकर उसने लगभग पचहत्तर हज़ार मील से अधिक क़ी यात्रा की। उस समय संसार भर में इसलाम की विजय-दुन्दुभि बज रही थी। योरप की ईसाई शक्तियां उसके आतङ्क से थरथर कांपती थीं। स्पेन, अफ़रीक़ा, हिन्दुस्तान, फ़ारिस, भारतीय समुद्र के जावा, सुमात्रा आदि द्वीप सभी कहीं इसलाम का आधिपत्य था। इसलाम धर्म्म का अनुयायी होने के कारण ही इब्न बतूता इतना लम्बा सफ़र बिना विशेष कष्ट पाये हुए कर आया।

वह १३२५ ईसवी में यात्रा करने निकला। टेञ्जियर से चलकर वह मिस्र देश के प्रधान नगर काहिरा में आया। वहाँ से वह जेरूशलम, मक्का आदि मुख्य मुख्य नगरों और तीर्थों की यात्रा करता हुआ फ़ारिस देश में पहुँचा। शीराज़, इस्फ़हान; दमश्क, बग़दाद आदि होता हुआ वह फिर मक्के को लौट गया। उसने दमश्क की बड़ी तारीफ़ की है। उस समय दमश्क था भी एक बड़ा ही सुन्दर नगर। नगर भर में नहरों और बाग़ों की भरमार थी। वहाँ की जामे-मसजिद उस समय संसार भर में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। सात सौ हाफिज़ केवल कुरान पढ़ने के लिए उसमें नियत थे। इसके अतिरिक्त दमश्क उस समय विद्या का केन्द्र और उदार और दान-वीर लोगों का घर हो रहा था।

मक्के में वह तीन वर्ष तक रहा । एक जगह पर उस के क़दम बहुत दिनों तक न जमते थे । न मालूम उसने किस प्रकार ये तीन वर्ष मक्के में काटे । मक्के से अदन होता हुआ वह अफ़रीक़ा में समुद्र के पूर्वी तट की यात्रा करने लगा । इस यात्रा में उसने ज़ंज़ीबार और मुम्बासा आदि कितने ही द्वीपों और नगरों की सैर की । अफ़रीक़ा से वह फिर फ़ारिस गया । कुछ दिन उस देश में घूमकर वह फिर तीसरी बार मक्के गया । मक्के से वह हिन्दुस्तान जाना चाहता था, परन्तु उसे हिन्दुस्तान जानेवाला कोई जहाज़ ही न मिला । लाचार उसने उस समय भारत-यात्रा का विचार त्याग दिया । परन्तु उससे बैठे न रहा गया । लालसागर पार करके वह मिस्र देश में आया और वहाँ से नील नदी के किनारे किनारे चलकर फिर काहिरा पहुँचा । कुछ दिन वहाँ आराम करके वह योरप के दक्षिण में, छोटे छोटे द्वीपों में, घूमता रहा । वहाँ से वह काले समुद्र को पार करके रूस देश के अन्तर्गत वालगा नदी के तट पर पहुँचा । मुहम्मद उज़बक उस समय उस देश का राजा था । उस समय, संसार में, सात बादशाह बड़े ही शक्तिशाली समझे जाते थे । उज़बक भी उन्हीं सातों में था । उज़बक वंशवाले दीने-इसलाम के पाबन्द थे; परन्तु स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा न उनमें थी और न उनकी प्रजा में ही ।

रमज़ान में इब्न बतूता बलगेरिया पहुँचा । वहाँ रात बहुत छोटी होती थी । दिन भर उसे रोज़ा रखना पड़ता था । वह कहता है कि मग़रिब की नमाज़ पढ़ते ही इशा की नमाज़ का वक्त आ जाता था—अर्थात् रात बीत जाती थी । इस यात्रा में वह उज़बक बादशाह से भी मिला । बादशाह ने उसका बड़ा आदर किया और अपने पास ठहरा लिया । बादशाह के कई बेगमें थीं । प्रधान बेगम कुस्तुनतुनिया के ईसाई बादशाह की बेटी थी । वह उस समय गर्भवती थी । उसने बादशाह से अपने पिता के यहाँ जाने की आज्ञा चाही । आज्ञा मिल गई । बादशाह की आज्ञा से बतूता भी बेगम के साथ हो लिया । कुस्तुनतुनिया में उसका बड़ा आदर-सत्कार हुआ । वहाँ के बादशाह से मुलाक़ात होने पर उसे बहुत कुछ इनाम मिला । वहाँ वह एक महीना छः दिन रहा । तथापि वह इस यात्रा से ख़ुश न हुआ । ईसाई गिरजों के घण्टों का नाद उसे बहुत ही नापसन्द था । एक बात और भी थी । उज़बक बादशाह की जिस बेगम के साथ वहाँ गया था वह अपने पिता के पास पहुँचकर सुअर का मांस खाने और शराब पीने लगी । उसका यह आचरण बतूता को बहुत ही बुरा लगा । जब बतूता और उसके साथियों ने देखा कि बेगम अपने पति के पास अब नहीं जाना चाहती तब ये लोग उज़बक के पास लौट गये ।

इसके बाद वह हिन्दुस्तान की ओर चला । रास्ते में जो जो नगर पड़े उनमें ठहरता हुआ वह उस पर्व्वत पर पहुँचा जिसे आज-कल 'हिन्दू-कुश' कहते हैं । उसने लिखा है कि इस पर्व्वत को 'हिन्दू-कुश' इसलिए कहते हैं कि जो ग़ुलाम हिन्दुस्तान से पकड़कर लाये जाते थे वे इस पर्व्वत के शीत को न सह सकने के कारण मर जाते थे । हिन्दू-कुश के निकट बशाई नाम के एक पहाड़ पर उसे एक बूढ़ा आदमी मिला । उसने बतलाया कि मेरी उम्र इस समय ३५० वर्ष की है ! प्रत्येक शताब्दी समाप्त होने पर मेरे नये दांत और बाल नये हो जाते हैं !

बतूता को उस वृद्ध की बातों पर विश्वास न हुआ । वहाँ से वह काबुल होता हुआ १३३२ ईसवी के मुहर्रम महीने में पञ्जाब पहुँचा ।

उस समय हिन्दुस्तान में मुहम्मद तुग़लक बादशाह था । देश में शान्ति नाम को भी न थी । कोई राजपथ तक सुरक्षित न था । मुसाफ़िर सब कहीं लूट लिये जाते थे । स्थान स्थान पर उत्पात होते थे । निर्बलों को सताना ही बलवान् अपना कर्तव्य समझते थे । अपनी भारत-यात्रा के विषय में इब्न बतूता ने अपने सफ़रनामे में इस प्रकार लिखा है—

"सिन्ध, हिन्दुस्तान का बड़ा भारी दरिया है । यहां डाक प्यादों और सवारों द्वारा लाई और भेजी जाती है । हिन्दुस्तान का कोई मेवा हमारे देश में प्रसिद्ध नहीं । केवल तरबूज़ ही ऐसा फल है जो यहाँ भी होता है और वहाँ भी । परन्तु यहां का तरबूज़ बड़ा और मीठा होता है । यहाँ वृक्ष बहुत बड़े बड़े हैं; परन्तु अपने यहाँ का कोई वृक्ष मुझे नहीं दिखाई पड़ा । यहाँ का एक फल आम है । कच्चा आम खट्टा होता है । उसका अचार पड़ता है । पका

आम सेब की तरह मीठा होता है। खिरनी, जामन, महुआ, बेर, आदि कितने ही और भी मेवे यहां होते हैं। अङ्गूर और अनार बहुत नहीं होते। खजूर होते ही नहीं। अनाज बहुत क़िस्म के होते हैं। यहां के अधिकतर निवासी काफ़िर और बुतपरस्त हैं। उनमें जो इसलामी शासन के अधीन नगरों और गांवों में बसते हैं वे तो शान्ति-प्रिय हैं; परन्तु जो पहाड़ों पर रहते हैं वे लूट-मार करते हैं। इन लोगों में मृत पति के साथ स्त्रियां ज़िन्दा जल जाती हैं। जब पति मरता है तब स्त्री शृङ्गार करती है। ब्राह्मण और अन्य लोग बाजा बजाते हैं। जिस आग में मृत पति जलाया जाता है उसीमें स्त्री भी जा गिरती है। दोनों थोड़ी देर में राख हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब विधवायें अपने पति की लाश के साथ जलें। परन्तु यह प्रथा बहुत अच्छी समझी जाती है। जिस घर की कोई स्त्री इस प्रकार जल जाती है उस घर का लोग बड़ा आदर करते हैं। जो विधवा नहीं जलती उसे मोटे कपड़े पहनकर अपना सारा जीवन अपने सम्बन्धियों के साथ बिताना पड़ता है। जलने के पहले स्त्री ख़ूब खुश हो होकर हँसती, बोलती और नाचती है।

"हिन्दू लोग जलाये गये मुर्दों की राख गङ्गा में फेंक देते हैं। बहुत से हिन्दू गङ्गा में जान बूझकर ख़ुद ही डूब जाते हैं। जो डूबना चाहता है वह अपने किसी सम्बन्धी को बुलाकर कहता है—'यह मत समझना कि मैं गङ्गा में किसी सांसारिक इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए डूबता हूँ। नहीं, मेरा मतलब केवल यही है कि मैं भगवान् के पास पहुँच जाऊँ।'

"देहली हिन्दुस्तान की राजधानी है। संसार के इसलामी राज्यों में कहीं भी इतना बड़ा शहर नहीं। जैसी अच्छी शहरपनाह देहली के चारों तरफ़ है वैसी अच्छी शहरपनाह शायद ही दुनिया के किसी शहर की हो। शहरपनाह की दीवार ग्यारह गज़ चौड़ी है। उसके ऊपर ठौर ठौर पर आड़ की जगहें बनी हुई हैं जिनमें शहरपनाह की रक्षा करनेवाले सिपाही रहते हैं। दीवार के अन्दर कितने ही सिलहख़ाने हैं। क़िले में गल्ला भी बेहद भरा हुआ है। गल्ला ज़मीन में गड़ा रहता है, परन्तु ख़राब नहीं होता। बादशाह बलबन के समय के, लगभग नब्बे वर्ष के पुराने, गड़े हुए चावल मैंने देखे। रङ्ग उनका कुछ मैला तो अवश्य हो गया था, पर स्वाद उनका वैसा ही था। दीवार के नीचे का भाग पत्थर का है और ऊपरी भाग ईंट और चूने का। दीवार पर दो सवार बड़ी अच्छी तरह दौड़ सकते हैं। शहरवाले उन्हें देख सकते हैं; परन्तु बाहरवाले नहीं। इसका कारण यह है कि दीवार पर भी जाने-आने का रास्ता छोड़कर बाहर की तरफ़ एक छोटी चहार दीवारी बना दी गई है। शहरपनाह में बाहर आने जाने के लिए २८ फाटक हैं।

"देहली की जामे-मसजिद भी अपने ढङ्ग की एक ही है। पहले वह काफ़िरों की परिस्तिश-गाह थी। वह सङ्गमर्मर की बनी हुई है। लकड़ी और मामूली पत्थर का कहीं नाम नहीं। बीच मसजिद में एक तीस गज़ लम्बा स्तम्भ है। कहते हैं, वह सात धातुओं को मिलाकर बनाया गया है, और किसी भी शस्त्र से काटा नहीं जा सकता। मसजिद का एक मीनार बहुत ही ऊँचा है। वह सुर्ख़ पत्थर का बना हुआ है। उसके ऊपर चढ़ने की सीढ़ियां इतनी चौड़ी हैं कि हाथी भी उन पर चढ़ सकता है।

"शहर के बाहर एक बड़ा भारी हौज़ है। वह दो मील लम्बा और एक मील चौड़ा है। उससे भी बड़ा एक और हौज़ है। देहली से जो सड़कें और नगरों को जाती हैं उन पर दोनों तरफ़ इतने वृक्ष हैं कि सदा छाया रहती है। उन पर तीन तीन मील पर सरायें बनी हुई हैं, जिनमें मुसाफ़िर ठहरते हैं।

"हम लोगों के आने का समाचार बादशाह मुहम्मद तुग़लक को मिल गया था। उसने अपने कर्मचारियों को आज्ञा दे दी थी कि हमें रास्ते में किसी तरह की तकलीफ़ न होने पावे। देहली पहुँचकर हम वज़ीर और क़ाज़ी के साथ राज-माता को सलाम करने गये। राज-माता ने हमारा अच्छा सत्कार किया और हमारे ठहरने और भोजन का उचित प्रबन्ध कर दिया। हर रोज़ प्रातःकाल हम वज़ीर को सलाम करने जाते थे। एक दिन उसने मुझे दो हज़ार दीनार दिये और कहा कि यह आपके कपड़ों की धुलाई है। इसके सिवा उसने मुझे एक बहु-मूल्य चोग़ा और मेरे नौकरों को जो लगभग चालीस थे, दो हज़ार दीनार दिये। उस समय बादशाह कहीं बाहर गये हुए थे, परन्तु उनकी कृपा से हम

लोगों के आराम में कोई विघ्न नहीं पड़ा। इसी बीच मेरी एक लड़की का देहान्त हो गया। वज़ीर ने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया का सब ख़र्च सरकारी ख़ज़ाने से दिया।

"हमारे देहली पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद समाचार मिला कि बादशाह राजधानी को लौट रहे हैं। हम लोग नज़रें ले लेकर, सात मील आगे बढ़कर बादशाह से मिलने गये। बादशाह ने मेरा और मेरे साथ के मुसाफ़िरों का ख़ूब सत्कार किया और सबको ख़िलअतें दीं। देहली पहुँचकर बादशाह ने हममें से हर मुसाफ़िर को योग्यतानुसार एक एक पद पर नियत कर दिया। मुझे देहली के क़ाज़ी का पद मिला। मेरी तनख़्वाह बारह हज़ार रुपये साल नियत हुई। इसके सिवा बारह हज़ार की जागीर भी मिली। मैं हिन्दुस्तान की ज़बान बिलकुल न समझता था। इसलिए बादशाह ने मेरे दो नायब नियत किये, जो मुझे हर बात में सहायता दें।

"मुहम्मद तुग़लक बड़ा ही उदार और दयालु बादशाह है; परन्तु साथ ही ज़िद्दी भी परले सिरे का है। ज़रा ज़रा सी बात पर ज़िद कर बैठता है। ज़िद में आकर कभी कभी वह बड़े बड़े कठोर काम कर डालता है। कुछ बाग़ियों ने देहलीवालों को बादशाह के विरुद्ध भड़का दिया। फल यह हुआ कि बादशाह ने हुक्म दे दिया कि देहली ख़ाली कर दी जाय। यदि कोई आदमी नगर के किसी मकान में पाया जायगा तो उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा। लोग अपने अपने घर छोड़कर भाग गये। केवल दो आदमी जिनमें एक अन्धा था, एक घर में छिप रहे। शाही नौकरों ने उन्हें ढूँढ़ निकाला। जो अन्धा था उसे देहली से दौलताबाद तक घसीटे जाने का हुक्म हुआ और दूसरे को एक ऊँची छत पर से गिरा दिये जाने का। कोई न कोई घटनायें इस तरह की हुआ ही करती हैं। कभी कोई शेख़ अपनी जान खोता है और कभी कोई अमीर हाथी के पैरों में बंधवाकर मारा जाता है।

"यद्यपि बादशाह मुझ पर बड़ी कृपा करता था, परन्तु मैं प्रतिदिन होनेवाले इन अत्याचारों को न देख सकता था। इधर हिन्दुस्तान में रहते मुझे बरसें हो गई थीं; इसलिए घूमने के लिए मेरा जी ललचा रहा था। मेरा ख़र्च भी बहुत बढ़ गया था। पचपन हज़ार रुपये का तो मेरे ऊपर क़र्ज़ हो गया था। इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। बादशाह ने एक शेख़ पर नाराज़ होकर उसे क़ैद कर दिया। शेख़ के मिलने-जुलनेवाले भी पकड़े जाने लगे। मैं भी उससे मिला करता था, इसलिए दूसरों के साथ मुझे भी बादशाह के सामने हाज़िर होना पड़ा। औरों को तो फांसी दे दी गई, परन्तु मैं छोड़ दिया गया। छूटतेही मैंने अपने काम से इस्तेफ़ा दे दिया और अपना सब माल-असबाब फ़क़ीरों को बांटकर फ़क़ीरी वेश धारण कर लिया।

"इसी समय चीन के सम्राट् ने बादशाह मुहम्मद के पास कुछ सौगातें भेजीं। मैं जो फ़क़ीरी वेश में बादशाह से मुलाक़ात करने गया तो उसने पहले से भी अधिक मेरा सत्कार किया। उसने कहा—'मैं जानता हूँ कि तुम सफ़र को बहुत पसन्द करते हो। अच्छा, तुम मेरे एलची बनकर चीन जाओ और मेरी तरफ़ से चीन के सम्राट् के पास सौगातें लेजाओ'। मैंने इस काम को स्वीकार कर लिया। मैं बादशाह की तरफ़ से सौगातें लेकर चीन से आये हुए एलची के साथ देहली से चल पड़ा। रास्ते में हिन्दुओं ने हम लोगों पर डाका डाला। हम सब भागकर तितर-बितर हो गये। मैं अकेला रह गया। सात दिन तक जङ्गली फलों और पत्तों को खाता मैं चला गया। एक दिन कमज़ोरी के कारण बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़ा। जो आँखें खुलीं तो मैंने अपनेको शाही सिपाहियों के बीच में पाया। मैं बादशाह के पास पहुँचाया गया। वह मेरे लूटे जाने का हाल सुन चुका था। मुझे बारह हज़ार रुपये देकर कुछ आदमियों के साथ उसने फिर रवाना किया।

"रास्ते में हम लोग 'जोगियों' से मिले। ये जोगी ज़मीन के नीचे अपना मकान बनाते हैं। हवा आने के लिए केवल ज़रा सा छेद रहता है। ये महीनों कुछ नहीं खाते। मैंने सुना है कि एक जोगी ने साल भर तक कुछ नहीं खाया। बादशाह जोगियों को बहुत पसन्द करते हैं। वे उनकी सुहबत में भी बैठते हैं। जोगी लोग केवल एक बार देखकर ही आदमी को मार सकते हैं। एक दिन मैं बादशाह के पास बैठा था कि दो जोगी आये। बादशाह ने उनका बड़ा आदर किया और मेरी तरफ़ इशारा करके उनसे कहा, यह मुसाफ़िर है; इसे कोई करामात दिखलाइए। एक जोगी उठा और आकाश में उड़ गया। मैं इस विचित्र लीला को

देखकर बेहोश हो गया। जब मैं होश में आया तब देखा कि जोगी उसी प्रकार हवा में उड़ रहा है। इतने में दूसरा जोगी उठा और चन्दन का एक टुकड़ा ज़मीन पर मारकर वह भी उसी तरह हवा में उड़ने लगा। जब मैं बहुत घबरा गया तब बादशाह ने जोगियों के इस खेल को बन्द करवा दिया।

'चलते चलते हम लोग सिन्धुपुर नाम के द्वीप में पहुँचे। इसमें एक बड़ा भारी तालाब और एक मन्दिर है। मैं मन्दिर के पास पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि एक जोगी दो मूर्तियों के बीच में बैठा है। मैंने उसे बुलाया; पर वह न बोला। मैंने इधर-उधर देखा; पर कोई खाद्य पदार्थ मुझे न दिखाई पड़ा। मैं देख ही रहा था कि वह एक-दम कड़का और एक नारियल के उस वृक्ष से जो उसके सामने ही था, पट से नीचे गिर पड़ा। यह नारियल उसने मेरी तरफ़ फेंक दिया। मैंने उसे कुछ रुपये देना चाहा; पर उसने तुरन्त मुझे मेरे रुपयों से दस रुपये अधिक दे दिये। मैं उसे मुसलमान समझता हूँ; क्योंकि जब मैंने उसे बुलाया तब पहले तो उसने आकाश की तरफ़ सङ्केत किया, फिर मक्का-मुअज़्ज़मा की तरफ़। इन इशारों से उसने यह प्रकट किया था कि वह खुदाय-वाहद और रसूल-अल्लाह को जानता है और उन्हीं पर ईमान रखता है।

"यहाँ से हम लोग मलाबार पहुँचे। यहाँ की सड़कों पर आधे आधे मील पर मुसाफ़िरख़ाने बने हुए हैं। हिन्दू और मुसलमान, कोई क्यों न हो, बिना किसी रोक-टोक के इन मुसाफ़िरख़ानों में ठहर सकते हैं। इन मुसाफ़िरख़ानों में एक एक कुआँ है। एक आदमी कुएँ पर सदा बैठा रहता है और लोगों को पानी पिलाया करता है। हिन्दुओं को पानी किसी पात्र में दिया जाता है और मुसलमानों को चुल्लू में। हिन्दू अपने पात्र मुसलमानों को नहीं छूने देते। यदि कोई पात्र किसी मुसलमान से छू जाय तो वह तुरन्त तोड़ दिया जाता है। यहाँ अधिकतर हिन्दू ही रहते हैं। परन्तु मुसलमान व्यापारी भी बहुत पाये जाते हैं। नगरों में मुसलमान यात्री मुसलमान व्यापारियों के यहाँ ठहरा करते हैं। जहाँ मुसलमान व्यापारी नहीं, वहाँ हिन्दू लोग मुसलमानों को केले या किसी दूसरे पत्ते पर खाना दे देते हैं। इस राज्य में मैंने दो मास तक सफ़र किया; परन्तु कहीं ज़रा सी भी ज़मीन बिना जोती-बोई न देखी। हर एक आदमी के पास एक एक बाग़ है, जिसमें रहने के लिए घर बना है। यहाँ सिवा बादशाह के कोई घोड़े पर सवार नहीं होता। अमीर लोग पालकियों पर सवार होते हैं। व्यापारी लोग लदनेवाले जानवरों का काम कुलियों से लेते हैं। चोरों को यहाँ प्राण-दण्ड तक दिया जाता है; इसीलिए यहाँ चोरी नहीं होती। मलाबार में बारह राजा हैं। सबसे बड़े राजा के पास पचास हज़ार सेना है और सबसे छोटे के पास पाँच हज़ार। इन राजाओं के उत्तराधिकारी इनकी बहनों के पुत्र होते हैं। इस देश में काली-मिर्च बहुत होती है।

"हेली और पट्टन होते हुए हम लोग कालीकट पहुँचे। यहाँ से चीन को जहाज़ जाते हैं। प्रत्येक जहाज़ में एक हज़ार नौकर रहते हैं, जिनमें छः सौ मल्लाह होते हैं और चार सौ नौकर-चाकर। बड़े जहाज़ के साथ तीन छोटे छोटे जहाज़ भी रहते हैं। ये जहाज़ चीन में बनते हैं। ये बड़ी बड़ी शहतीरों के डाँड़ों से खेये जाते हैं। बीस-पचीस मल्लाह मिलकर एक डाँड़ चलाते हैं। जहाज़ों में लकड़ी के घर बने रहते हैं, जिनमें जहाज़ के कर्मचारी रहते हैं।

"हम लोग चीन जानेवाले जहाज़ों पर सवार हुए। दुर्भाग्यवश चलते ही तूफ़ान आ गया। जहाज़ टूट-फूट गये। मेरे सब साथी समुद्र में डूब गये। केवल मैं बच गया। अन्त को घूमते-घामते मैं माल-द्वीप पहुँचा।"

यहाँ से इब्न बतूता की भारत-यात्रा समाप्त होती है। उस समय माल-द्वीप में कोई स्त्री राज कर रही थी। पहुँचते ही बतूता को वहाँ के क़ाज़ी का पद मिल गया। वह वहाँ लगभग एक वर्ष के रहा। उसने वहाँ की चार स्त्रियों से शादी की। एक से तो एक पुत्र भी हुआ। अधिक दिनों तक वह वहाँ न ठहर सका। अपनी स्त्रियों को तिलाक़ देकर वह सीलोन को चलता बना। वहाँ उसने बाबा आदम के पद-चिह्नों के दर्शन किये। वहाँ से वह दक्षिण भारत में घूमता हुआ बङ्गाल के चटगाँव में पहुँचा। चटगाँव से एक जहाज़ पर सवार होकर वह चीन गया। रास्ते में जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों की भी सैर करता गया। उस समय चीन में चङ्गेज़ ख़ाँ का कोई वंशज राज्य करता था। वह चीनवालों की शिल्प-कला-सम्बन्धिनी चतुरता को देखकर

दङ्ग रह गया। उसने चीन की राज-पद्धति की भी बड़ी प्रशंसा की है। चीन में मुसाफ़िरों को बड़ा आराम था। देश भर में कहीं डाकुओं और चोरों का नाम न था। उसके चीन में पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद वहाँ एक बड़ा राज्य-विप्लव हुआ। उसमें चीन का बादशाह मारा गया। तब उसका भतीजा सिंहासन पर बैठा। देश में अशान्ति बढ़ती देख बतूता वहाँ से चल दिया। जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में फिर एक चक्कर लगाकर वह बीस वर्ष बाद अरब पहुँचा। मक्का, दमश्क, काहिरा आदि तीर्थों और नगरों में ठहरता हुआ वह १३४९ ईसवी के अन्त में सकुशल स्वदेश को लौट गया।

१३५२ में वह फिर यात्रा करने निकला था। दो वर्ष तक वह मध्य अफ़रीक़ा की सैर करता रहा। बाद को वह स्वदेश लौट गया और बीस वर्ष तक जीता रहा। ७३ वर्ष की उम्र में इस बड़े यात्री की जीवन-यात्रा समाप्त हो गई।

साँपों का स्वभाव।

मुम्बई-समाचार में इस विषय पर एक छोटा सा लेख निकला है। उसका मतलब सुनिए—

हिन्दुस्तान के प्रायः सभी भागों में साँप होते हैं। साँप में यह एक विशेषता है कि जब तक उसको कोई सताता नहीं तब तक वह नहीं काटता। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि उसके ऊपर से निकल जाने पर भी उसने किसीको नहीं काटा। इसके विपरीत यदि किसीने उसके साथ ज़रा भी छेड़छाड़ की तो उसकी कोप-दृष्टि से बचना मुश्किल हो जाता है। साँपों के सम्बन्ध की दो-चार सच्ची घटनाओं का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है जिससे सरस्वती के पाठकों को, मन-बहलाव के साथ साथ, साँपों के स्वभाव का भी थोड़ा-बहुत पता लग जायगा।

छोटे छोटे गाँवों में ग्वाले प्रातःकाल ही अपनी गाय और भैंसों को दुहते हैं। एक दिन एक ग्वाले ने जब अपनी गाय दुही तब उसको उसका दूध हमेशा से कम मालूम हुआ। उस दिन तो उसने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया; परन्तु जब प्रतिदिन उसको दूध कम मिलने लगा तब उसको यह सन्देह हुआ कि रात के वक़्त कोई पड़ोसी आकर गाय को दुह जाता होगा। यह विचारकर वह एक दिन सारी रात अपने बाड़े में छिपकर बैठा रहा। सारी रात बीत गई; परन्तु कोई मनुष्य वहाँ पर न आया। निदान थककर वह गाय दुहने की तैयारी करने लगा, इतने में उसने एकाएक गाय को काँपते देखा। भय से उसके मुँह पर मुरदनी सी छा गई थी, मानों किसी रोग से उसका शरीर अकड़ गया हो। ग्वाला गाय से थोड़ी ही दूर पर था। इस प्रकार गाय का रङ्ग बदला देखकर वह बड़ा विस्मित हुआ। ग्वाला इसी आश्चर्य में डूबा था कि उसने और भी एक आश्चर्यमयी घटना देखी। उसने देखा कि एक बड़ा सा साँप गाय की अगली और पिछली टाँगों में लिपटा हुआ है और उसका एक स्तन अपने मुँह में लेकर बच्चे की तरह दूध पी रहा है। यह हाल देखकर ग्वाला चुपचाप एक कोने में छिप रहा, क्योंकि वह जानता था कि यदि थोड़ी सी भी आवाज़ साँप के कान में पड़ेगी तो वह झट गाय को काट खायगा। निदान जब साँप दूध पीकर अपने बिल में घुस गया तब ग्वाले के जी में जी आया।

एक मदारी और उसके साँप।

एक गाँव में दो मदारी-भाई रहते थे। वे हमेशा जङ्गलों से साँपों को पकड़ते और लोगों को उनके तमाशे दिखाकर टके कमाते थे। एक दिन उन्होंने जङ्गल से छः साँप एक ही साथ पकड़े और उनको एक टोकरे में बन्द करके अपनी झोपड़ी के एक

कोने में रख दिया। उस झोपड़ी के दो हिस्से थे; एक में भोजन बनाया जाता था और दूसरे में दोनों भाई सोया करते थे। साँपों का टोकरा सोने के कमरे में रक्खा गया था। रात को दोनों भाई एक ही बिछौने पर चादर बिछाकर सो रहे। सबेरे एक भाई बहुत जल्द उठकर भोजन की तैयारी करने लगा और दूसरा सोता ही रहा। थोड़ी देर बाद जब उसकी आँख खुली तब उसने देखा कि सब साँप उसके चारों तरफ़ फन निकालकर खड़े हैं। पहले तो यह दृश्य देखकर वह बहुत घबराया और चाहा कि कूदकर भाग जाऊँ। परन्तु चारों तरफ़ से घिरा होने के कारण भागना मुश्किल था। यह भयङ्कर दृश्य बहुत देर तक न देख सकने के कारण उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। वह मन में सोचने लगा कि ये साँप टोकरे से कैसे निकल आये और इन्होंने मेरी जान लेने का मनसूबा क्यों किया है और फिर जान लेने की सारी तैयारी करके भी विलम्ब क्यों कर रहे हैं? इस प्रकार वह थोड़ी देर तक विचार करता रहा। परन्तु उसको निश्चय न हुआ कि साँपों का मतलब क्या है। आख़िर उसके ध्यान में आया कि झोंपड़ी की ज़मीन गोबर से लिपी होने के कारण कुछ काले रङ्ग की हो गई है और जिस चादर पर मैं पड़ा हूँ उसका रङ्ग दूध की तरह सुफ़ेद है। इसीलिए साँप इस ओर आकर्षित हुए हैं। यह बात ध्यान में आते ही वह अपने बचाव की तदबीर सोचने लगा। परन्तु उसको किसी सूरत से भी साँपों से बच निकलने की तदबीर न सूझी। आख़िर उसने बहुत ही दबी आवाज़ से अपने भाई को बुलाया। अपने भाई का मन्द स्वर सुनकर दूसरा भाई, जो उस समय दूध गरम कर रहा था, वहाँ आया और अपने भाई को साँपों से घिरा हुआ देखकर झट भोजन-घर में लौट गया। जो दूध उसने पीने के लिए गरम कर रक्खा था, उसे वह एक थाली में डालकर वहाँ पर ले आया और उसको साँपों से थोड़ी दूर पर रखकर फिर भोजन-घर में चला गया। वहाँ से वह देखने लगा कि अब क्या होता है। थोड़ी ही देर में साँपों को दूध की सुगन्धि आई और वे सबके सब दूध की थाली पर टूट पड़े। उनके दूर होतेही वह मनुष्य, जो अपने को जीते ही मरा हुआ समझ रहा था, दौड़कर भोजन-घर में घुस गया।

साँपों का सङ्गीत-प्रेम।

साँपों को सङ्गीत से बड़ा प्रेम होता है। इसी प्रेम के कारण वे अपनेको मदारी के हाथों में फँसा देते हैं। इसी सङ्गीत द्वारा ही मदारी लोग उनको अपने बिलों से बाहर निकाल लेते हैं। यद्यपि मुरली को वे सबसे ज़्यादा पसन्द करते हैं तथापि अन्य वाद्य भी उनको कम प्रिय नहीं होते। किसी समय एक स्त्री अपनी वाटिका में बैठी सारङ्गी बजा रही थी। इतने में उसने अपने से केवल दो फुट की दूरी पर एक बड़े से साँप को फन निकालकर डोलते देखा। उसको देखकर वह बहुत घबराई और सोचने लगी कि किसी तरह यहाँ से भाग जाऊँ। परन्तु केवल एक हाथ के फ़ासले पर साँप अपने फन को हिलाकर उसीकी तरफ़ देख रहा था। ऐसी अवस्था में वहाँ से भाग निकलना कठिन था। उस मौक़े पर उसे एक बहुत अच्छा विचार सूझा जिससे उसकी रक्षा हुई। उसने उस वक़्त एक नवीन राग बजाना शुरू किया जिससे नाग अत्यन्त आनन्दित होकर झूमने लगा। जैसे जैसे सारङ्गी से आलाप निकलने लगे वैसे ही वैसे साँप भी डोलने लगा और वह स्त्री धीरे धीरे पीछे हटती गई। पहले तो उसका यह विचार था कि इस प्रकार साँप को धोखे में डालकर भाग जाऊँ। परन्तु जब वह बहुत दूर निकल गई तब उसको साँप के डोलने से बड़ा मज़ा आने लगा। क्योंकि जिस प्रकार का ताल वह बजाती थी उसी प्रकार साँप भी अपने सिर को

हिलाता था। कभी कभी सारङ्गी की गति त्वरित हो जाने पर साँप का सिर भी बड़ी तेज़ी से हिलने लगता था। वाद्य की गति यदि मन्द हो जाती थी तो वह भी मानों नींद के झोंके खाने लगता था। एक बार उस स्त्री ने जान-बूझकर ताल को बिगाड़ दिया। उससे साँप ने बड़ा दुःख प्रकट किया, मानों इससे वह बड़ा ही अप्रसन्न हुआ हो। मतलब यह कि राग के पहचानने में साँप ने एक अच्छे गवैये की सी चतुराई दिखाई। आख़िर उस स्त्री ने तङ्ग होकर, और इस प्रकार साँप से खेल-खाल करते रहने से शायद कोई दूसरा तूफ़ान न खड़ा हो जाय, इस भय से अपने घर में घुसकर किवाड़ बन्द कर लिये। साँप भी राग पूरा हो जाने से अपने बिल में जा घुसा।

नाग को पैर तले कुचल डालनेवाली माँ-बेटी।

हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ जूता नहीं पहनतीं; सब जगह खुले पैरों फिरा करती हैं। यह रिवाज कुछ अच्छा नहीं, क्योंकि इससे कभी कभी बड़ी हानि होती है। एक दिन सन्ध्या-समय एक लड़की अपने घर के बरामदे में फिर रही थी। घर के बाहर पीपल का एक वृक्ष था। वह लड़की फिरते फिरते उस पीपल के वृक्ष के पास आई और सहसा स्तब्ध होकर खड़ी रह गई। डर से उसका सारा बदन काँपने लगा। उसमें बोलने की शक्ति भी न रही।

"अम्मा! ओ अम्मा!"—आख़िर उसने ज्यों त्यों करके बहुत डरी हुई आवाज़ से अपनी माँ को बुलाया।

"क्यों बेटी क्या है?"—अन्दर से आवाज़ आई।

"माँ! मेरा पैर एक साँप पर—उसके सिर पर—पड़ गया है"—लड़की ने कहा।

"वैसे ही खड़ी रहना; मैं अभी आती हूँ; देखना ज़रा भी हिलना मत"—मा ने कहा।

इस प्रकार लड़की को आश्वासन देती हुई वह एक दिया हाथ में लेकर उसके पास आई। लड़की वहीं खड़ी थी। उसका मुँह पीला पड़ गया था। खून सूख गया था और मुख पर घबराहट छाई हुई थी। परन्तु उसने अपना पैर साँप के सिर पर ख़ूब ज़ोर से दबा रक्खा था। साँप भी उसकी टाँगों में लिपट गया था और उसके पैर के नीचे से अपना सिर छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। साँप कुछ छोटा था; इसलिए लड़की के पैर-तले से निकल न सका। यदि वह बड़ा होता तो अवश्य लड़की को मार डालता।

लड़की की माँ ने आकर अपना पैर लड़की के पैर पर रख दिया और उसको खूब ज़ोर से दबाने लगी। उसने लड़की के बग़ल में अपने दोनों हाथ डालकर उसको बड़ी मज़बूती से पकड़ रक्खा था। कितनी ही देर तक दोनों माँ-बेटी साँप का सिर अपने पैर के नीचे दबाये खड़ी रहीं। यदि थोड़ी सी भी ग़फ़लत हो जाती तो दोनों माँ-बेटी आलिङ्गित अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जातीं! इस प्रकार कुछ देर तक दबा रहने से साँप मर गया। निदान जब साँप मरकर धरती पर गिर पड़ा तब माँ ने लड़की के पैर पर से अपना पैर उठाया और उन दोनों के जी में जी आया।

छबीलदास सामन्त

शरद्वर्णन।

नील नीरद नाहिं दीसत इन्द्र-धनु नहिं भाय।
मन्द गति सरितान की भइ सुठि सोई दरसाय॥ १॥
व्योम-शोभा बढ़ति निशि में नखत-अवली पाय।
मनु सितारन जड़ित माया-नील-पट सरसाय॥ २॥
विमल सरवर लसत कहुँ कहुँ जल अगाध लखाय।
ललित पीत सुशालि की मृदु महँक सौंधि सुहाय॥ ३॥

विविध रँग के खिले सरसिज कुमुदिनी लहराय ।
भ्रमर-गन गुञ्जरहिं मानहुँ प्रकृति यश कौं गाय ॥ ४ ॥
मोर मद सों मत्त ह्वै अब शोर नाहिं मचाय ।
नृत्य-रत कहुँ नाहिं दीखत उपवननि में जाय ॥ ५ ॥
हंस कलरव करत अब वह विमल सरितन-तीर ।
सारसन की सुभग जोरी कहुँ किलोलत नीर ॥ ६ ॥
शुक चक्रवाक लखाहिँ कहुँ कहुँ खञ्जनन की भीर ।
सेत पंछी उड़त नभ-पथ मनहु उजरो चीर ॥ ७ ॥
कञ्ज-रज सों सौरभित शुचि बहत मन्द समीर ।
हरत हिय सन्ताप कों अरु कर निरोग शरीर ॥ ८ ॥
पाय सुखमय समय यह हे देश-सेवा-वीर !
करहु भारत को सुखी अब हरहु वाकी पीर ॥ ९ ॥

विद्याधर तिवारी ।

महाकर्षण ।

यदि कोई वस्तु पृथ्वी से कुछ दूर ऊँची उठाकर निराश्रय छोड़ दी जाय तो वह शीघ्र ही पृथ्वी-तल पर आ जाती है। वृक्ष का आश्रय छूटतेही फल, फूल, पत्ते आदि ज़मीन पर गिर पड़ते हैं। ऐसी घटनायें नित्य ही हम लोगों के दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु क्या एक बार भी हम लोगों को इस पर आश्चर्य्य हुआ है ? क्या किसीने कभी भी यह जानने की चेष्टा की है कि इस आश्चर्य्यजनक घटना का कारण क्या है ?

वैज्ञानिकों ने इस विषय में बहुत छानबीन करके यह निश्चय किया है कि पृथ्वी में एक प्रकार की आकर्षण-शक्ति है। वह शक्ति सब पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। इसीसे वे ज़मीन पर गिर जाते हैं। अनुसन्धान द्वारा जाना गया है कि केवल पृथ्वी में ही नहीं, किन्तु इस विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों के प्रत्येक अणु में यह शक्ति न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है। इस अनन्त नीलाकाश में जितने ग्रह और नक्षत्र हैं, उन सबकी विचित्र गति का कारण भी यही अद्भुत आकर्षण-शक्ति है। वैज्ञानिकों ने इसका नाम महाकर्षण-शक्ति रक्खा है।

चुम्बक के सामने लोहे का एक टुकड़ा ले जाइए। चुम्बक शीघ्र ही उसको अपनी ओर खींच लेगा। चुम्बक में जैसी आकर्षण-शक्ति है, वैसी ही आकर्षण-शक्ति पृथ्वी में भी है। किन्तु दोनों की शक्ति में कुछ भेद है। लोहा, निकल आदि केवल कुछ ही धातुओं को चुम्बक अपनी ओर खींच सकता है; पर पृथ्वी सभी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। धरादेवी किसी को भी अपनी गोद में लेने से इनकार नहीं करतीं। किन्तु जब हम गुब्बारे और चिड़ियों की ओर देखते हैं तब इस नियम का कुछ व्यतिक्रम सा देख पड़ता है। वे निराधार होने पर भी पृथ्वी पर नहीं गिरते। परन्तु यह यथार्थ व्यतिक्रम नहीं है। व्यतिक्रम का आभास-मात्र है। विचार करने से मालूम होगा कि उनमें प्रत्येक को मुख्य अथवा गौण रूप में वायु से सहायता मिलती है। उसीके बल से वे पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति को रोकने में समर्थ होते हैं। यदि हवा न होती तो निश्चय ही वे अन्य पदार्थों की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ते।

इस शक्ति के सम्बन्ध में और अधिक बातें जानने के लिए परीक्षा आवश्यक है। एक सीसे का टुकड़ा लीजिए। उसे कुछ ऊँचा उठाकर ज़मीन पर गिरने दीजिए। ऊपर से ज़मीन तक आने में उस टुकड़े को कुछ समय लगेगा। फिर एक और उससे बड़ा टुकड़ा लीजिए और दोनों को एक ही साथ बराबर ऊँचाई से गिराइए। इस परीक्षा में बड़े टुकड़े को, भारी होने के कारण, ज़मीन पर पहले आ जाना चाहिए ; परन्तु ऐसा न होगा। दोनों साथ ही साथ ज़मीन पर गिरेंगे। इसी तरह और भी अनेक पदार्थों की सहायता से परीक्षा कर सकते हैं। परन्तु फल एक ही होगा। हलका पदार्थ जितने समय में ज़मीन पर गिरेगा भारी पदार्थ भी ठीक उतने ही समय में गिरेगा। किन्तु यदि किसी पक्षी का पर लेकर आप परीक्षा करेंगे तो वह कुछ अधिक समय में ज़मीन पर गिरेगा। इसका कारण यह है कि पर बहुत हलकी चीज़ है ; इससे हवा उसकी गति में बाधा देती है। यदि पर को एक पैसे पर रखकर आप गिरावेंगे तो वह पैसे के साथ ही ज़मीन पर गिरेगा। कारण यह होगा कि नीचे का पैसा हवा की बाधा को दूर करके पर के गिरने का रास्ता साफ़ कर देता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी निर्दिष्ट ऊँचाई से ज़मीन तक आने में सभी वस्तुओं को

बराबर एकसा समय लगता है, चाहे वे हलकी हों चाहे भारी।

परीक्षा द्वारा जाना गया है कि यदि कोई वस्तु सोलह फ़ीट ऊँची उठाकर छोड़ दी जाय तो उसे ज़मीन तक आने में एक सेकण्ड लगेगा। चाहे जो वस्तु हो सबके गिरने का समय बराबर ही होगा। यदि हवा की बाधा दूर करके पर गिराया जाय तो वह भी सोलह फ़ीट उँचाई से एक ही सेकण्ड में ज़मीन पर आ जायगा। पृथ्वी के चाहे जिस स्थान में यह परीक्षा की जाय फल सर्वत्र एक ही होगा।

अतएव निष्कर्ष यह निकला कि पृथ्वी-तल पर सभी जगह किसी वस्तु को सोलह फ़ीट की उँचाई से ज़मीन तक आने में एक सेकण्ड लगता है। अब ज़रा पहाड़ के ऊपर चलकर परीक्षा कीजिए। पहाड़ पर परीक्षा करने से मालूम होगा कि वहाँ सोलह फ़ीट की उँचाई से नीचे आने में पदार्थों को एक सेकण्ड से कुछ अधिक समय लगता है परन्तु पहाड़ के नीचे एकही सेकण्ड लगता है। इससे यह जान पड़ता है कि पृथ्वी-तल से ज्यों ज्यों ऊपर कोई वस्तु जाती है त्यों त्यों उस पर उसकी आकर्षण-शक्ति का प्रभाव कम होता जाता है। परन्तु इस तरह कम होते होते कितनी उँचाई पर इस आकर्षण-शक्ति का बल एक-दम निःशेष हो जायगा, इसका पता लगाना बड़ा कठिन काम है। वैज्ञानिक लोग जी-जान से प्रयत्न करने पर भी अब तक केवल पांच-छः मील तक का ही हाल जान सके हैं।

न्यूटन ने अपने विज्ञान-बल से स्थिर किया था कि २,४०,००० मील ऊपर तक भी पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति पहुँचती है। उस स्थान पर भी यदि कोई पदार्थ छोड़ दिया जाय तो वह पृथ्वी पर गिरेगा। उस स्थान से सोलह फ़ीट नीचे आने में एक सेकंड के बदले एक मिनिट समय लगेगा। चन्द्रमा की गति की परीक्षा करके ही न्यूटन ने यह सिद्धान्त स्थिर किया था। चन्द्रमा पृथ्वी से २,४०,००० मील की दूरी पर स्थित है। न्यूटन ने परीक्षा करके देखा कि चन्द्रमा धीरे धीरे पृथ्वी की ओर आता है। इसी आधार पर उसने उक्त सिद्धान्त स्थिर किया।

इन्हीं सब विषयों की आलोचना करके न्यूटन ने, कुछ समय बाद, महाकर्षण-सम्बन्धी तत्त्व का आविष्कार किया। उसने यह भी निश्चय किया कि दो वस्तुओं के बीच में जितना अधिक दूरत्व होगा, उनकी परस्पर की आकर्षण-शक्ति भी उतनी ही कम होगी। किसी प्रकाशमान् पदार्थ से प्रकाश जितना अधिक दूर जायगा उतना ही वह कम होता जायगा। इसी तरह किसी आकर्षणशील पदार्थ से अन्य पदार्थ का जितना ही अधिक अन्तर होगा आकर्षण भी उस पर उतना ही कम पड़ेगा। आश्चर्य्य की बात है कि उक्त दोनों अवस्थाओं में ह्रास की मात्रा एक ही नियम के अनुसार होती है। वह नियम यह है – पदार्थ के आकर्षण का बल उसके दूरत्व के वर्ग के अनुपात से कम होता है। पृथ्वी का ऊपरी भाग उसके केन्द्र से २,००० मील ऊपर है और केन्द्र-स्थल में ही आकर्षण-शक्ति का निवास माना जाता है। इससे यह सिद्ध है कि २,००० मील की दूरी पर पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति किसी वस्तु को एक सेकण्ड में सोलह फ़ीट नीचे खींच सकती है। इसी नियमानुसार हिसाब करने से मालूम होता है कि पृथ्वीतल से २,००० मील ऊपर (अर्थात् केन्द्र से ४,००० मील की दूरी पर) आकर्षण-शक्ति का बल पृथ्वीतल के बल का चतुर्थांश होगा।

अब तक पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के ही सम्बन्ध की बातें कही गई हैं। महाकर्षण का बल इससे भी अधिक है। महाकर्षण से यही न समझना चाहिए कि पृथ्वी अन्यान्य पदार्थों को अपनी ओर खींचती है और अन्यान्य पदार्थ पृथ्वी को अपनी अपनी ओर खींचते हैं। महाकर्षण के सिद्धान्त का यह अभिप्राय है कि विश्व-ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं, सभी परस्पर आकर्षण करते हैं। और वह आकर्षण दूरत्व के अनुपातानुसार कम होता है।

इस महाकर्षण के नियम से कौन कौन कार्य्य सम्पन्न होते हैं, इसका पूरा वर्णन करना असम्भव है। इसी नियम के बल से अनन्त नीलाकाश-स्थित ग्रह-समूह की विचित्र गति का पता लगता है। और इसी नियम के आधार पर गणना करके ज्योतिषी लोग देखने के पहले ही अनेक ग्रहों के अस्तित्व का पता लगा लेते हैं। एक उदाहरण लीजिए। बात उस समय की है जब नेपचून् ग्रह का आविष्कार नहीं हुआ था। अँगरेज़ विद्वान् ऍडाम्स और फ़रासीसी विद्वान् लेवेरियर दोनों स्वतन्त्र भाव से महाकर्षण के नियमानुसार गणित-शास्त्र के बल से ग्रहोपग्रहों की गति का मिलान कर रहे थे। जब वे लोग यूरेनस ग्रह की गति का

मिलान करने लगे तब उन्हें कुछ गोलमाल मालूम हुआ। उस समय उन्होंने सोचा कि यदि यूरेनस के पीछे और एक ग्रह हो तो बखेड़ा मिट जाय। इस कारण उन्होंने दुबारा गणना की तो उन्हें मालूम हो गया कि अवश्य ही इसके पीछे एक और ग्रह है। तदनन्तर लेवरियर ने हिसाब करके नेपचून ग्रह का स्थान निश्चित किया और चेष्टा करके उसका आविष्कार भी कर लिया।

पृथ्वी चन्द्रमा का आकर्षण करती है। किन्तु अब तक चन्द्रमा पृथ्वी पर नहीं गिरा। इसका क्या कारण ? इसी तरह जब सब ग्रहोपग्रह एक दूसरे को खींचते हैं तब उन्हें एक दूसरे से टकराकर नष्ट होजाना चाहिए था। पर अब तक ऐसा क्यों नहीं हुआ ? यदि उनमें आकर्षण-शक्ति है तो वे क्यों एक दूसरे के पास नहीं आ जाते ? ऐसे ही अनेक प्रश्न लोगों के मन में उठ सकते हैं, क्योंकि आज तक हम लोगों ने कभी ग्रहों के सङ्घर्ष की बात नहीं सुनी।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि सारे ग्रहोपग्रह अपने अपने स्थान पर निश्चल रहते तो अवश्य ही वे परस्पर की आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से टकराने लगते। परन्तु इन सब पिण्डों की अपनी अपनी स्वतन्त्र गति भी है। उसी गति के प्रभाव से इनका सङ्घर्षण नहीं होता।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ़ घूम रहा है और पृथ्वी अपनी आकर्षण-शक्ति से बराबर उसको अपनी तरफ़ खींच रही है। तो भी अब तक चन्द्रमा की गति में अन्तर नहीं पड़ा। इस बात को समझने के लिए यहां पर दिये गये चित्र को देखिए। मान लीजिए कि इस चित्र में भीतरवाला वृत्त पृथ्वी को बीच से काटकर प्राप्त हुआ है। चित्र के ऊपरी भाग में जो चिह्न है उसे पृथ्वी-तल पर एक पर्वत समझिए। इस पर्वत के ऊपर क-चिह्नित स्थान पर बन्दूक़ रखकर यदि क-ख की ओर एक गोली साधारण वेग से चलाई जाय तो वह खण्डित रेखा-पथ से होकर च-चिह्नित स्थान पर गिरेगी। यदि फिर उसी स्थान से गोली कुछ अधिक वेग से चलाई जायगी तो वह छ–चिह्नित स्थान पर गिरेगी। किन्तु यदि गोली का वेग किसी उपाय से बहुत बढ़ा दिया जाय तब क्या होगा ? उस अवस्था में वह गोली पृथ्वीतल पर न गिरेगी। वह ग-घ-ङ-चिह्नित वक्र रेखा-पथ पर ज़ोर से चलेगी। पृथ्वी के आकर्षण के प्रभाव से वह क-ख रेखा से भ्रष्ट होकर वक्रपथ ग्रहण करेगी; किन्तु अपने वेग के कारण वह पृथ्वीतल पर न गिरकर ग-घ-ङ वृत्ताकार मार्गों में भ्रमण करने लगेगी। इस समय यदि पर्वत बन्दूक़ आदि सब हटा दिये जायँ तो वह गोली बराबर उस भीतरवाले मण्डल के चारों तरफ़ उसी तरह निराधार घूमती रहेगी।

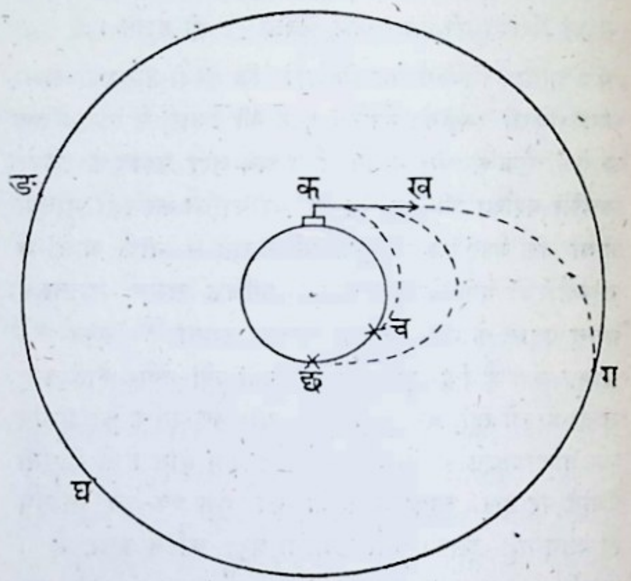

अब ज़रा इस कल्पना को कुछ और बढ़ाकर चन्द्रमा के विषय में विचार कीजिए। मान लीजिए कि चन्द्रमा एक गोला है जिसका व्यास कोई २००० मील है। वह एक बहुत ही बड़े धनुष पर रखकर इतने वेग से छोड़ा गया है कि वह एक सेकंड में ३००० फ़ीट जा सकता है और यह धनुष पृथ्वी से प्रायः २,४०,००० मील ऊपर रक्खा हुआ है। यह गोला पृथ्वी के आकर्षण के प्रभाव से क-ग-घ-ङ वक्रपथ अवलम्बन करके पृथ्वी की परिक्रमा करना आरम्भ करेगा और एक बार पृथ्वी की पूरी प्रदक्षिणा करने में उसे चार सप्ताह समय लगेगा। अब धनुष को हटा लीजिए। ऐसा करने से यह गोला युग युगान्त तक इसी तरह घूमता रहेगा। कोई भी शक्ति उसकी गति को न रोक सकेगी।

धनुष की जो कल्पना यहाँ पर की गई है वह केवल

काल्पनिक है। हम ठीक ठीक नहीं कह सकते कि वास्तव में यह चन्द्रमा-रूपी गोला किस तरह प्रक्षिप्त हुआ था। किन्तु आज तक यह घूमता हुआ दिखाई देता है। पृथ्वी के साथ चन्द्रमा का जैसा सम्बन्ध है ठीक वैसा ही सम्बन्ध सूर्य्य के साथ अन्यान्य ग्रहोपग्रहों का है। इसीलिए वे सब बराबर सूर्य्य की परिक्रमा कर रहे हैं।

महाकर्षण के प्रभाव से चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ़ घूमता है और ग्रहोपग्रह सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि महाकर्षण एक बहुत ही प्रबल शक्ति है। जो शक्ति पृथ्वी आदि ग्रहों को अपने अपने पथ पर बराबर घुमा रही है—जो इस सौर-जगत् को एक अखण्ड परिवार की तरह नियन्त्रित किये हुए है—उसकी प्रबलता में सन्देह ही क्या? किन्तु उक्त सब वस्तुओं का आकार बड़ा होने के कारण ही उनमें महाकर्षण-शक्ति अधिक है। हम लोग जितने पदार्थ देखते हैं सबमें आकर्षण-शक्ति है। सभी परस्पर खींच रहे हैं। किन्तु दो वस्तुओं में यदि एक बड़ी नहीं तो उनमें आकर्षण की शक्ति बहुत कम होगी।

जिन पदार्थों के बल का हम लोग अनुमान कर सकते हैं उनमें व्याप्त हुई आकर्षण-शक्ति का परिमाण भी जाना जा सकता है। कल्पना कीजिए कि दो लोहे के गोले इतने बड़े हैं कि प्रत्येक का वज़न १,१६,७६,००० मन और प्रत्येक का व्यास ४७ गज़ है। ये दोनों परस्पर एक मील के फ़ासले पर रक्खे हुए हैं। दोनों एक दूसरे को आकर्षण करते हैं। इनका परस्पर आकर्षण इतना प्रबल होगा कि इनके बीच यदि कोई पहाड़, मकान या और कोई चीज़ आ जाय तो भी ये दोनों अपना काम करते ही रहेंगे। किसी तरह इनके कार्य में बाधा न पड़ेगी। किन्तु यह सब होने पर भी यह काम बहुत धीरे धीरे होगा। इतने बड़े बड़े गोलों के भी परस्पर आकर्षण का परिमाण इतना कम होगा कि एक छोटा लड़का भी आसानी से उसका प्रतिरोध कर सकेगा। मान लीजिए कि किसी दैव-बल से पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की बाधा दूर करके ये दोनों गोले एक समतल क्षेत्र में रख दिये गये हैं। इस दशा में महाकर्षण के बल से ये दोनों एक दूसरे की ओर बढ़ने लगेंगे; किन्तु इनकी गति ऐसी सूक्ष्म होगी कि ख़ुर्दबीन की सहायता बिना उसका पता भी न मालूम होगा। उन दोनों के बीच का अन्तर एक फुट कम होने में, अर्थात् प्रत्येक को छः इञ्च चलने में, कम से कम डेढ़ घंटा समय लगेगा। पीछे अवश्य ही धीरे धीरे उनकी गति बढ़ेगी और तीन-चार दिनों में, वे दोनों एकत्र हो जायँगे।

जो महाकर्षण-शक्ति यहाँ सूक्ष्म भाव से काम कर रही है उसीके बल से इस विश्वब्रह्माण्ड के सब पदार्थ नियन्त्रित हैं। वही शक्ति पृथ्वी को अपने पथ से विचलित होने से रोकती है। वही इस सौर जगत् को स्थानभ्रष्ट होने से बचाती है। सारे ग्रहोपग्रह अपने अपने मार्ग पर नियमित रूप से घूम रहे हैं और सूर्य्य बीच में रहकर महाकर्षण-बल से सबको अपने अपने स्थान पर रक्खे है। इन ग्रहोपग्रहों के बड़े आकार के कारण ही महाकर्षण का प्रभाव इतना अधिक है। एक एक ग्रह इतना बड़ा है कि हम लोग उसका अन्दाज़ा नहीं कर सकते। आकार से किसी वस्तु के केवल स्थूलाकार से ही मतलब नहीं, किन्तु उसके पिण्ड (Mass) से भी मतलब है। महाकर्षण का एक यह भी नियम है कि जिस वस्तु का विस्तार और पिण्ड जितना ही अधिक होगा उसका आकर्षण भी उतना ही अधिक होगा। एक घन-इंच रुई की अपेक्षा एक घन-इंच लोहे का पिण्ड अधिक है। इसीसे लोहे का आकर्षण भी रुई से अधिक है। अतएव यह पृथ्वी रुई की अपेक्षा लोहे को अधिक आकर्षण करेगी।*

मेवाड़ की राजधानी उदयपुर।

मेदपाट अर्थात् मेवाड़ की राजधानी का नाम उदयपुर है। वह राजपूताने के दक्षिणी हिस्से में, समुद्र की सतह से २०६४ फ़ीट ऊपर, अर्वली पर्वत के पूर्व में बसा हुआ है। उसको श्री महाराना प्रतापसिंह जी ने अपने पिता के नाम पर, संवत् १५६० में, बसाया था।

यह शहर २४ अंश ३५ कला १९ विकला उत्तर

---

* प्रवासी से सङ्कलित।

अक्षांश और ७३ अंश ४३ कला २३ विकला पूर्व-देशान्तर रेखा मे स्थित है। मनुष्य-संख्या के हिसाब से भारत मे इस शहर का नम्बर ८३ और राजपूताने में ६ है।

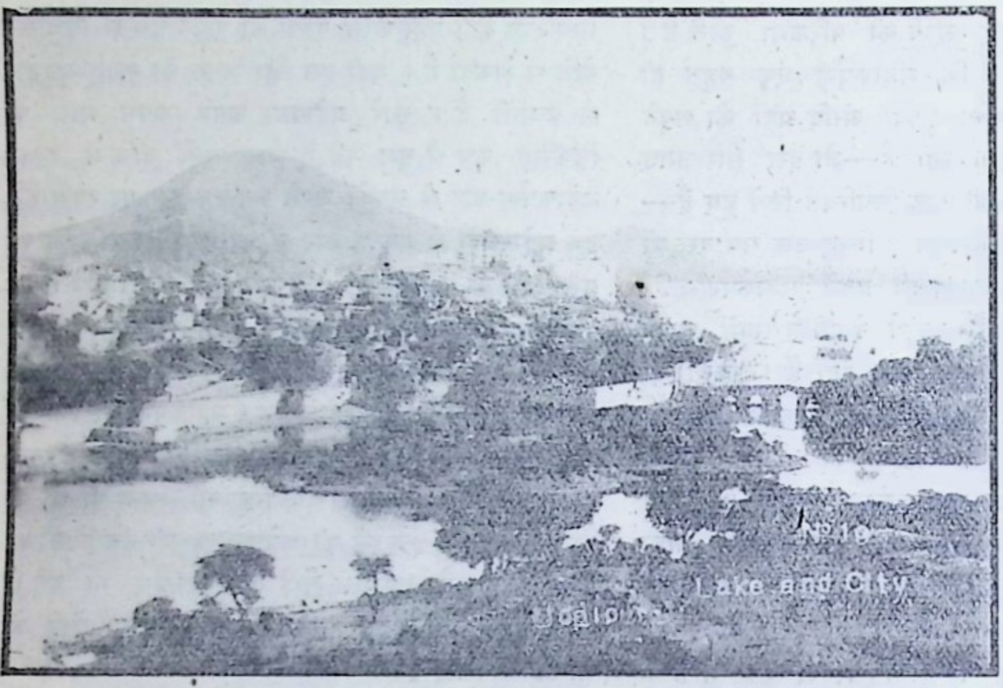

पिचौला झील के ऊपर से उदयपुर का दृश्य।

शहर के पश्चिम में पिचौला नाम की २½ मील चौड़ी एक झील है। उत्तर और पूर्व की ओर खाई है, जिसमें इसी झील से पानी आता है। दक्षिण की ओर लिङ्गगढ़ की एक पहाड़ी है जो शहर की क़िलाबन्दी का काम देती है। शहर के चारों ओर दीवार है, जिसके दक्षिण तरफ़ कई बग़ीचे हैं। चहार-दीवारी में चार प्रधान फाटक हैं—उत्तर की तरफ़ हाथीपोल, दक्षिण की तरफ़ किसन-पोल, पूर्व की तरफ़ सूर्य्यपोल और पश्चिम की तरफ़, जिधर झील है, तीन महराबोंवाला त्रिपोलिया नामक पानी का फाटक है। पूर्व की ओर एक और भी फाटक है जो दिल्ली-दरवाज़ा कहलाता है।

हाथीपोल से प्रधान-बाज़ार होकर राजमहल को रास्ता गया है। गुलाबबाग़ को सूर्य्यपोल से रास्ता गया है; वहाँ तालाब, बाग़ आदि देखने के लायक़ जगहें हैं। गुलाब-बाग़ होकर दूध-तालाब को जाते हैं जो पिचौला झील की एक शाखा है।

शहर में कई देव-मन्दिर हैं। जगदीश का सुन्दर मन्दिर महाराना जगत्सिंहजी का बनाया हुआ शहर भर की इमारतों से ऊँचा और उत्तम है। शहर के पश्चिम पिचौला झील के बीच जग-निवास और जग-मन्दिर नाम के दो सुन्दर महल हैं। उन्हें पूर्वोक्त महाराना ने सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग में बनवाया था।

जग-निवास महल कोई १२ बीघे भूमि पर सङ्गमरमर का बना हुआ है। जगह जगह दीवारों पर पच्चीकारी का काम है। फूलबाग़, झरने, नारङ्गी की कुञ्जें इत्यादि बहुत ही मनोहर हैं। जग-मन्दिर-महल ज़मीन से १००½ फ़ीट ऊँचा है। वह चौकोनी शकल का है और ग्रेनाइट पत्थर और सङ्गमरमर का बना हुआ है। उसमें अठपहले गुम्बज़दार मीनार हैं। पूर्व की ओर महल की प्रधान अट्टालिकायें हैं। नीचे मिहराबों की तीन पंक्तियाँ हैं। मिहराबी दीवार की उँचाई ५० फ़ीट है। गणेश-द्वार से महल में प्रवेश करना होता है। भीतर बाड़ी-महल, शीश-महल और शम्भु-निवास-

महल हैं। शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर से बाग़ी होकर कुछ दिन जग-मन्दिर में ही निवास किया था, जिसकी यादगार में वहाँ पर पत्थर का एक स्थान है। झील के किनारे महाराना के महाराज-महल हैं जो बड़े ही सुन्दर और सुहावने हैं।

कविराज गयादत्त ने इन महलों की शोभा और महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है—

उदयपुर का जग-मन्दिर-महल।

काम कारीगर के बनाये हैं विशाल धाम,
　उन्नत शिखर घने गुम्बज़ सुजाने हैं;
सुवरण-कलश कँगूरन पै राजि रहे,
　मानों रवि-बिम्ब बहु रूप ह्वै लखाने हैं।
शोभा सुरराज के सुभौन की सङ्केलि लीन्हीं,
　मन्दिर अनूप ठौर ठौर दरसाने हैं;
चक्रित चितोतहीं चकित चित होत ऐसे,
　महल विचित्र महाराना के बखाने हैं॥

झील से तीन मील पूर्व, महासती नामक स्थान में, मृत महाराना जलाये जाते हैं। यहाँ पर ऊँची दीवार के घेरे में उन लोगों की छतरियाँ बनी हुई हैं और यहाँ सतियों की मूर्तियाँ भी हैं। छतरियों में दूसरे संग्रामसिंह की छतरी बहुत बड़ी और ख़ूबसूरत है। उदयसिंह के पोते अमरसिंह की छतरी भी अच्छी है।

पिचौला झील का दृश्य बड़ा ही मनोमोहक और अद्‌भुत है। उसके दोनों तरफ़ सुन्दर सुन्दर इमारतें हैं। इस सिरे से उस सिरे तक मनोहर घाट बने हैं। पिचौला के किनारे ही बाणनाथजी महादेव का प्रसिद्ध शिवालय; और कुछ दूर पर, झील के किनारे ही, महाराजाजी के हवा खाने और शिकार खेलने का स्थान ख़ासओदी नामक बड़ा ही मनोहर है। यहाँ से उदयपुर नगर का अद्‌भुत दृश्य देख पड़ता है। इस स्थान पर हज़ारों जङ्गली सुअरों को मकई वग़ैरह दी जाती है। उनके झुण्ड के झुण्ड यहाँ पर जमा रहते हैं। हिन्दुस्तान में शायद ही कोई दूसरी जगह ऐसी हो जहाँ इतने जङ्गली जानवरों का समूह रोज़ एक साथ भोजन करता हो।

पिचौला झील तो अपनी स्वाभाविक सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध ही है। वर्त्तमान महाराना जी का

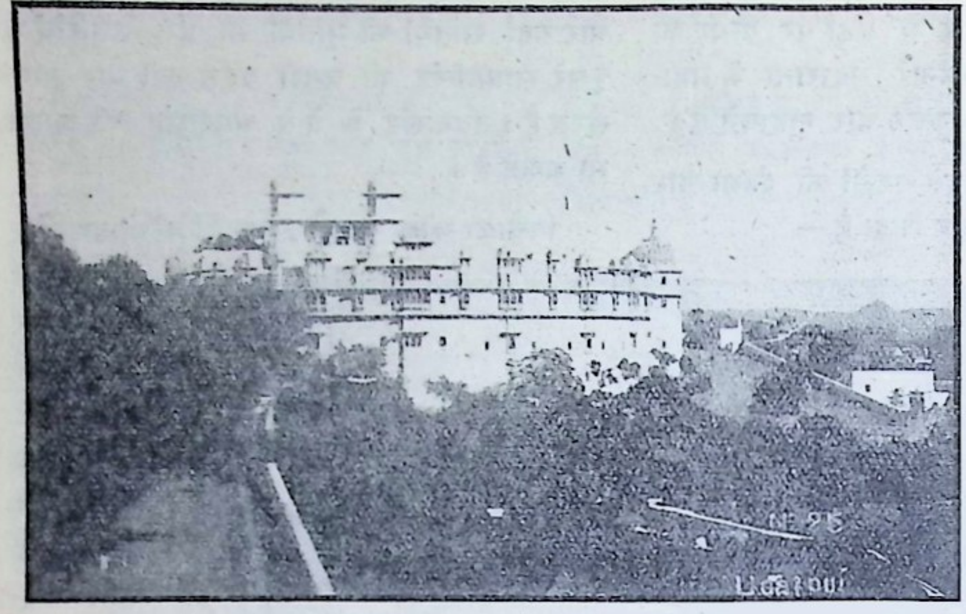

उदयपुर का शम्भुनिवास-महल।

बनवाया हुआ फ़तहसागर नामक तालाब भी बड़ा ही शोभाशाली है। फ़तहसागर का जल पिचौला से अच्छा है। अन्त में पिचौला, फ़तहसागर और सरूपसागर, ये तीनों तालाब एक नहर के द्वारा मिला दिये गये हैं। फ़तहसागर के मध्य में भी महल है। उसके किनारे सहेलियों की बाड़ी नामक एक उत्तम बग़ीचा वर्त्तमान महाराना साहब ने बनवाया है। फ़तहसागर तीन पहाड़ियों के बीच में है। उनमें से एक पहाड़ी के ऊपर महाराना सज्जनसिंहजी के बनवाये हुए सज्जनगढ़ नामक महल बहुत ही सुन्दर हैं।

पिचौला के किनारे, महल से आगे, एक मील पर जलबुर्ज़ नामक एक उत्तम स्थान है। यहाँ से ख़ासओदी को सड़क गई है। इस स्थान पर साधु लोग राज्य की ओर से डेरा जमाये पड़े रहते हैं। यह उदयपुर का हृषीकेश है। यह एक उत्तम तपोभूमि है। मोर, हरिण, सुअर आदि विविध प्राणियों के समूह यहाँ एक ही साथ चरते रहते हैं।

Lake and City
Udaipur

उदयपुर का गनगोर-घाट।

गनगोर-घाट पिचोला झील का सबसे सुन्दर और उत्तम घाट समझा जाता है। गनगोर का प्रसिद्ध मेला यहीं से शुरू होता है। आतिशबाज़ी छूटते समय इस झील के किनारे अद्वितीय शोभा होती है। सारे शहर के स्त्री-पुरुष अपने अपने मकान की अट्टालिकाओं तथा दरिया के किनारे के मकानों के ऊपर से यह दृश्य देखते हैं। उदयपुर प्रकृति-सुन्दरी की विहार-भूमि है। प्रसिद्ध कवि पद्माकर भट्ट ने उदयपुर में गनगोर का मेला महाराना भीमसिंह जी के समय में देखा था। उक्त कविराज की एक उक्ति इस मेले की शोभा के विषय में सदा से प्रसिद्ध है। वे कहते हैं:—

द्यौस गनगौर के सुगिरिजा गुसाँइन की
माची उदयपुर में बधाई ठौर ठौर है ;

कहै पद्माकर यों तमाशा ताकिबे के लिए,
छाई आसमान में विमानन की भौर है।

धोखे में उमा के त्यों देखो महाराना जू ,
गौरिन के गोद में गजानन की दौर है ;

मार मार हेला महा मेला में महेश पूछे ,
गौरिन में कौन धरैं हमारी गनगौर है ॥

इस शहर में स्त्रियों के लिए एक नया अस्पताल, सज्जन-निवास बाग़ में, जुबिली की यादगार में बना है। अस्पताल के सामने ही स्वर्गीया श्रीमती महारानी विक्टोरिया की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ पुस्तकालय और अजायब-घर भी है। अजायब-घर में मेवाड़ की पैदावार के नमूने हैं।

मनोहरलाल मिश्र

गीता-रहस्य-विवेचन।*

(अध्यात्म)।

वेदान्त-प्रतिपादन।

ग्रन्थकार ने अपने अध्यात्म प्रकरण के सिद्धान्तों पर तर्क-बुद्धि का प्रयोग करने के आदि में ही नकारात्मक सूचना दे दी है। उन्होंने स्वामी शंकराचार्य्य के इस श्लोक को—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥—

पूरा पूरा स्वीकार कर लिया है। इसे स्वीकार कर इस विषय में उन्होंने कुछ और अपनी तरफ़ से कहा है। उन सबका सार यह है:—

"आधिभौतिक शास्त्रों के विषय इन्द्रियगोचर होते हैं। और अध्यात्म-शास्त्र का विषय इन्द्रियातीत अर्थात् स्वसंवेद्य है। × × यदि कोई यह कहे कि आत्मा तो स्वसंवेद्य है, इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उसके विषय में जैसा ज्ञान होवे, होने दो ; तब फिर अध्यात्म-शास्त्र की आवश्यकता ही क्या है ? इसका उत्तर यह है कि यदि प्रत्येक मनुष्य का मन या अन्तःकरण समान रूप से शुद्ध हो तो यह प्रश्न ठीक होगा ; परन्तु जब इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव है कि सब लोगों के मन या अन्तःकरण शुद्धि और शक्ति में एक से नहीं होते तब जिन लोगों के मन अत्यन्त शुद्ध, पवित्र और विशाल हो गये हैं उन्हींकी प्रतीति हमारे लिए इस विषय में प्रमाणभूत होना चाहिए। × × × वेदान्त-शास्त्र तुमको युक्तियों का उपयोग करने से नहीं रोकता ; वह सिर्फ़ यही कहता है कि इस विषय में निरी युक्तियाँ वहीं तक मानी जायँगी जहाँ तक कि इन युक्तियों से अत्यन्त विशाल, पवित्र और निर्मल अन्तःकरणवाले महात्माओं के इस विषय-सम्बन्धी साक्षात् अनुभव का विरोध न होता हो। क्योंकि अध्यात्म-शास्त्र का विषय स्वसंवेद्य है। × × × जिस प्रकार आधिभौतिक

---

* यह लेख एप्रिल १९१९ की सरस्वती में निकले हुए लेख से आगे समझना चाहिए।

शास्त्र में वह अनुभव त्याज्य माने जाते हैं जो प्रत्यक्ष के विरुद्ध हों, उसी प्रकार वेदान्त-शास्त्र में युक्तियों की अपेक्षा स्वानुभव की ही योग्यता अधिक मानी जाती है। परन्तु मैं प्रत्येक मनुष्य का यह जन्म-सिद्ध अधिकार समझता हूँ कि वह परमात्मा की दी हुई बुद्धि को किसी भी सिद्धान्त में ख़र्च करे।"

ग्रन्थकार के विचारों पर मैं अपना मत नीचे लिखता हूँ—

लेखक का यह कहना कि आधिभौतिक शास्त्रों का विषय इन्द्रिय गोचर है, ठीक है। तथा यह भी ठीक है कि आध्यात्मिक विषय इन्द्रिय-गोचर नहीं, किन्तु स्वसंवेद्य है। पर यदि स्वसंवेद्य का अर्थ यह है कि युक्ति-रहित बुद्धि से जाना जाय तो यह बात अवश्य आपत्ति करने के योग्य है। क्योंकि, जानना मन का या बुद्धि का धर्म है। मन से या इस तरह से कहिए कि बुद्धि से जाना जाता है। अब जिन नियमों के अनुसार मन या बुद्धि से किसी बात की जाँच की जाती है उन्हींमें से एक का नाम तर्क या युक्ति है। आधुनिक, पाश्चात्य-न्यायशास्त्र की परिभाषा में यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी गई है। ऐसी दशा में यह कहना कि स्वसंवेद्य विषयों में तर्क-बुद्धि का उपयोग न करो, ज़रा खटकनेवाली बात है, क्योंकि इसके बिना बुद्धि का उपयोग ही कैसे हो सकेगा। और यह कहना कि तर्क वहीं तक करो जहाँ तक हमारे कथन से विरोध न हो, एक प्रकार की खुशामद या यों कहिए कि चापलूसी कराना है। इतना ही नहीं, किन्तु यह इस बात को सिद्ध करता है कि आगे की खोज-जाँच बंद कर दो—हम सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके।

फिर यह कहना कि सब लोगों के अन्तःकरण समान रूप से शुद्ध नहीं हैं; इसलिए अत्यन्त, विशाल और पवित्र अन्तःकरणवालों की बात मानो, मुझे अत्यन्त सारहीन प्रतीत होता है। जिस प्रकार 'महाजनो येन गतः स पन्थाः'-वाले सिद्धान्त पर ग्रन्थकार ने यह आक्षेप किया था कि उन महाजनों की मति भी तो भिन्न भिन्न है, हम उसमें किसको प्रामाणिक मानें, उसी प्रकार यहाँ भी हम कह सकते हैं कि उन विशाल अन्तःकरणवाले महापुरुषों की भी मतियाँ भिन्न भिन्न हैं, हम उनमें किसका प्रमाण मानें? क्या रामानुजाचार्य्य, गौतम, कपिल, कणाद, स्वामी दयानन्द, भगवान् बुद्ध आदि निर्मल और विशाल अन्तःकरण के नहीं? यदि नहीं, तो क्या निर्मल और विशाल अन्तःकरण की यही परिभाषा है कि, जो अद्वैतवेदान्ती हो, और उसका प्रतिपादन करे?

केवल इतना ही नहीं यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि बिना युक्ति और तर्क के दर्शन-शास्त्र को लकवा मार जायगा और इस बीसवीं सदी में जो दर्शन और विज्ञान की परस्पर चढ़ा-ऊपरी हो रही है उसमें दर्शन को निश्चय नीचा देखना पड़ेगा। अस्तु। इन्हीं विचारों को लेकर मैं यथाशक्ति तर्क-बुद्धि के साथ ग्रन्थकार के मना करते रहने पर भी यह क्षुद्र लेख लिखने में प्रवृत्त होता हूँ।

न्याय और सांख्य के प्रकरण हो चुके। अब अध्यात्म-प्रकरण रह गया है। यह प्रकरण अन्य सब प्रकरणों की अपेक्षा बड़ा और कठिन है। इसीलिए इसका स्वतन्त्र वर्णन करना मैंने उचित समझा। इस प्रकरण को कई वार पढ़ने के बाद मुझे अन्त में जो इसका सार-सिद्धान्त समझ पड़ा है उसे मैंने ग्रन्थकार के शब्दों और जहाँ तक हो सका है उनके वाक्यों में ही संक्षेप से लिख दिया है। उस पर भी जहाँ जहाँ मुझे अकारण विस्तार मालूम पड़ा है वहाँ वहाँ मैंने उनको बदल भी दिया है। ऐसा करने में मेरा मतलब यही रहा है कि जिसमें सिद्धान्त का ज्ञान संक्षेप, सुगमता, और स्पष्टता से हो जाय। असली तात्पर्य्य को जहाँ तक हो सका है मैंने वैसा ही रहने देने की यथाशक्ति चेष्टा की है। अस्तु।

अब ग्रन्थकार के द्वारा प्रतिपादित वेदान्त-सिद्धान्त का सार सुनिए—

वेदान्त-शास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक, अव्यक्त, निर्गुण, चराचर सृष्टि का मूल, नित्य, अक्षर, और अमृततत्त्व है। उसका श्रेष्ठ स्वरूप अव्यक्त ही है; अव्यक्त से व्यक्त होना उसकी माया है। यद्यपि परमेश्वर के सगुण स्वरूप का भी बहुत वर्णन है तथापि उसका असली स्वरूप निर्गुण ही है; और निर्गुण से सगुण होना भी उसकी माया ही है। इसी

प्रकार सांख्यों की प्रकृति भी उसकी माया है। सांख्य का पुरुष या जीवात्मा वेदान्त के ईश्वर के ही समान है। वह अज्ञान के कारण अपनेको कर्ता समझता है। यही चित्स्वरूपी ब्रह्म जब माया में प्रतिबिम्बित होता है तब सांख्यों की त्रिगुणमयी प्रकृति का निर्माण होता है, और जब अविद्या में प्रतिबिम्बित होता है तब जीव का निर्माण होता है। यहाँ पर माया, अविद्या आदि शब्द समानार्थक ही समझने चाहिए। सृष्टि के आदि में जो कुछ था वह बिना नाम-रूप के ही था। फिर आगे चलकर नाम-रूप मिल जाने पर वही व्यक्त अर्थात् सगुण बन गया। अतएव विकारवान् या नाशवान् नाम-रूप को ही माया नाम दे करके कहते हैं कि यह सगुण अर्थात दृश्य शक्ति एक ही मूल द्रव्य अर्थात् ईश्वर की माया का खेल या लीला है। सृष्टि-ज्ञान केवल इन्द्रियों को प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला जड़ पदार्थ ही नहीं, किन्तु इन्द्रियों के द्वारा मन पर होनेवाले अनेक संस्कारों या परिणामों का जो एकीकरण आत्मा किया करता है—उसका फल है।

यह तो हुई सार-सिद्धान्त की बात। अब हमें उधर चलना चाहिए जिधर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि प्रतिपादन खूबी के साथ किया गया है। तथापि मैं यह भी कहे बिना नहीं रह सकता कि विषयों का क्रम ऐसा है जिसमें किसी भी मनुष्य को पढ़ने और सम्पूर्ण रूप से प्रतिपादन पर सम्मति प्रकट करने में अनायास ही कष्ट मिल सकता है। कम से कम मेरे विषय में तो यही बात हुई; मेरा तो अधिकांश समय दलीलों के छांटने और उनको एक क्रम से करने में ही लग गया। मैंने उनको छांटकर ९ विभागों में विभक्त किया है। अब क्रम से एक एक पर पहले ग्रन्थकार के, और फिर अपने विचार, संक्षेप से आगे लिखूँगा।

१ सारे नाम-रूपात्मक पदार्थ परिवर्तनशील हैं. इसलिए नाशवान् हैं; चाहे वे नैय्यायिकों के महाभूतों से उत्पन्न हुए हों और चाहे सांख्यों की मूल सगुण प्रकृति से। यह बात सदा एक सी ही रहेगी कि वे विनाशी हैं। ऐसी दशा में ऐसा सगुण परमेश्वर भी नाशवान् ही सिद्ध होगा। अतएव जिसे प्रकृतिवाद स्वीकार है उसे परमेश्वर को अविनाशी कहना छोड़ना चाहिए; नहीं तो सगुण से परे उसकी खोज करना चाहिए। और यदि हम अमृततत्त्व को मिथ्या कहें तो मनुष्यों की यह स्वाभाविक इच्छा देख पड़ती है कि वे किसी राजा से मिलनेवाले पुरस्कारादि का प्रबन्ध न केवल अपने लिए, किन्तु अपने वंश के लिए भी करना चाहते हैं। हम यह भी देखते हैं कि, जब कभी चिरस्थाई कीर्त्ति मिलने का सौभाग्य आ पड़ता है तब मनुष्य प्राणों की भी परवा नहीं करता। अब विचार कीजिए कि मनुष्य में यह चिरकाल की कल्पना कहाँ से आई? यदि स्वभाव से मानें—और ऐसा मानना ठीक भी है,—तो विवश होकर यह भी मानना पड़ेगा कि इस नाशवान् देह के सिवा कोई अमृत-वस्तु अवश्य है। अब यदि इस अमृततत्त्व की खोज करना है तो प्रत्यक्ष नाशवान् वस्तु से आगे बढ़ना चाहिए। और यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि वेदान्त-शास्त्र में इसी नामरूप को मिथ्या कहते हैं। तथा उपनिषदों में इसीको अविद्या और माया आदि शब्दों से कहा है।

ग्रन्थकार के इस सिद्धान्त पर पहली बात मुझे यह कहनी है कि, जब तक, मनुष्य की इच्छाओं, और वासनाओं से प्रकृति या ब्रह्म का कोई स्पष्ट सम्बन्ध न सिद्ध कर दिया जाय तब तक 'मनुष्य के मन में चिरकाल के यश या कल्याण की इच्छा है' इतने से ही, 'इस नाशवान् शरीर के अलावा कोई अमृतवस्तु अवश्य है' ऐसा हम कैसे मान लें। क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं। दूसरी बात यह कि यदि एक बार सगुण प्रकृति नाशवान् भी साबित हो जाय तो भी हम सगुण ईश्वर को भी कैसे विनाशी कहें। क्योंकि यह कथन तो ठीक उसी प्रकार का हुआ, जिस प्रकार का यह कि, यदि सफ़ेद नमक पानी में घुल जाता है तो सफ़ेद हीरा भी उसमें घुल जायगा। तीसरी बात हमें नाम-रूपात्मक पदार्थों के विनाशी होने पर कहनी है। नाम-रूप से तात्पर्य्य गुण और पदार्थ से द्रव्य का है। चांदी पदार्थ या द्रव्य है, कटोरा, करधनी आदि नाम-रूप। जब कटोरे से करधनी होती है तब चांदी का तो परिवर्तन होता नहीं, पर कटोरे का अवश्य होता है। ग्रन्थकार इसे परिवर्तन

न कहकर नाश कहते हैं। अब यदि इस बात की परीक्षा करनी है तो उस करधनी का फिर कटोरा बनाइए, यदि यह बन जाय तो उसका नाश कहाँ सिद्ध हुआ। क्योंकि अभाव से भाव नहीं होता, तिरोभाव होता है। वही यहाँ भी हुआ। इसी नियम को सभी नाम-रूपों पर लगा सकते हैं।

२ इस नामरूप की जड़ में कोई तत्त्व या द्रव्य है जो कभी नहीं बदलता। यही सत्य है, यही अमृत है। और सृष्टि के आदि में केवल यही पदार्थ था। उसमें जब नामरूप मिल गया तब सगुण होकर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हो गया। यद्यपि यह सत्य और अपरिवर्तनशील पदार्थ हमें इन्द्रियों से नहीं देख पड़ता तथापि यह है अवश्य, क्योंकि हमें सारी सृष्टि का ज्ञान एकता से होता है।

इसमें तीन बातें कही गईं। प्रथम यह कि नाम-रूपों के मूल में कोई एक द्रव्य है, जो अपरिवर्तनशील एवं अविनाशी है। दूसरी यह कि सृष्टि के आदि में केवल वही द्रव्य था, नाम-रूप पीछे से मिला। और तीसरी यह कि उसका ज्ञान हमें यद्यपि नेत्रों या इन्द्रियों से न हो, तो भी सृष्टि का ज्ञान एकता होने के कारण हमें उसका अस्तित्व अवश्य मानना पड़ेगा। इनमें से प्रथम पर मुझको कुछ भी नहीं कहना है। दूसरी पर यह निवेदन है कि 'आदि में द्रव्य बिना नामरूप के था' यह कहना मानों यह स्वीकार करना है कि द्रव्य और गुण अलग अलग रह सकते हैं। पर स्मरण रखना चाहिए कि आज तक कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक इस बात को नहीं सिद्ध कर सका है। क्योंकि इनका अनादि सम्बन्ध है, और भावरूप में अनादि सम्बन्ध कभी सान्त नहीं होता। और जो आगे चलकर यह कहा गया है कि मूल द्रव्य का अनुमान हम सृष्टि-ज्ञान की एकता के कारण ही करते हैं, सो वह पूर्ण रूप से इसका कारण नहीं हो सकता। यह बात अवश्य है कि उसको सिद्ध करने के लिए यह भी खींच-खाँचकर प्रमाण बनाया जा सकता है। पर वह गौण है, मूल प्रमाण वही है जो गुण के लक्षण करने से निकलता है। जो द्रव्याश्रयी, अगुणवान् और संयोग-विभाग में अनपेक्ष्य हो वही गुण है। ग्रन्थकार के गुण में ये लक्षण पूरे नहीं उतरते।

३ आत्मा को नाम-रूपात्मक सारे पदार्थों का ज्ञान होने के लिए, मन पर इन्द्रियों के द्वारा बाह्य-नामरूप के जो संस्कार हुआ करते हैं, और जिनके एकीकरण से आत्मा को ज्ञान होता है, उनके मेल के लिए कुछ न कुछ एक ऐसा मूल नित्य द्रव्य होना चाहिए जो आत्मा का आधारभूत हो, और बाह्य सृष्टि के भी नाम-रूपों के मूल में रहनेवाला हो। यदि ऐसा न मानेंगे तो नाम-रूपात्मक पदार्थों का ज्ञान होने का कारण न मिलेगा और जो कुछ एकीकरण से ज्ञान होता है वह स्वकपोलकल्पित और निराधार होकर असत्य प्रमाणित हो जायगा।

इसको थोड़ा सा और भी खोल देना अच्छा होगा। इसमें मैंने ग्रन्थकार का और मि० ग्रीन का सिद्धान्त मिलाकर कह दिया है, क्योंकि ग्रन्थकार को भी यही मान्य है। वास्तव में ग्रीन का सिद्धान्त है कि 'मन पर इन्द्रियों के द्वारा जो नाम-रूपों के भिन्न भिन्न संस्कार हुआ करते हैं, उससे जो ज्ञान होता है उस ज्ञान के मेल के लिए बाह्य सृष्टि के नाम-रूपों में एकता से रहनेवाली कोई वस्तु होनी चाहिए।' इसमें यह नहीं कहा गया है कि वही पदार्थ आत्मा में भी रहना चाहिए, पर ग्रन्थकार ने इस कमी को भी पूरा कर दिया है। यदि यह देखा जाय कि ग्रन्थकार के इस विशेष कथन में प्रमाण क्या है तो शायद 'अपने आत्मा को नाम-रूपात्मक पदार्थों का ज्ञान होने के लिए', इस वाक्यांश को छोड़कर कोई दूसरा कथन न मिलेगा। मैं पूछता हूँ कि क्या आत्मा को उस दशा में ज्ञान नहीं हो सकता जब कि दोनों के आधार भिन्न भिन्न हों ? क्या यह कोई नियम है कि उसे सजातीय पदार्थ का ही ज्ञान हो ? यदि हाँ, तो नाम रूप तो आत्मा का सजातीय नहीं, फिर उसका ज्ञान क्यों होता है ? इन प्रश्नों का भी उत्तर देना ग्रन्थकार का आवश्यक कर्त्तव्य था।

४ इसी एक पदार्थ को ब्रह्म कहते हैं। अन्य पदार्थों की भाँति इसका स्वरूप व्यक्त और स्थूल नहीं हो सकता। परन्तु व्यक्त और स्थूल पदार्थों के सिवा, मन, स्मृति, वासना आदि बहुतसे ऐसे पदार्थ हैं जो स्थूल नहीं। एवं सम्भव है कि ब्रह्म इनमें से किसी एक-आध के स्वरूप का हो। किसीने इसको

वासनात्मक कहा है। वासना मन का धर्म होने से वह मनोमय हुआ, पर अध्यात्म-विचार से ये सब रूप नाम-रूपात्मक ही हैं, क्योंकि इनका ज्ञान बुद्धि से होता है। निश्चय है कि इन सबमें आत्मा श्रेष्ठ है। ऐसी दशा में ब्रह्म का वही स्वरूप हुआ जो आत्मा का है। पर यदि ऐसा न मानकर उसे आत्मा से भिन्न मानें तो यह मानना ही पड़ेगा कि भिन्न पदार्थ के परिणाम या कार्य्य भी भिन्न ही होते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टि के जो भिन्न भिन्न संस्कार मन पर होते हैं, उनका आत्मा की क्रिया से एकीकरण होता है। इस एकीकरण का उस एकीकरण से मेल होना चाहिए जिसे भिन्न भिन्न बाह्य पदार्थों के मूल में रहनेवाला वस्तुतत्व निष्पन्न करता है। यदि इस प्रकार इनमें मेल न होगा तो समूचा ज्ञान ही निराधार हो जावेगा। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि ब्रह्म आत्मस्वरूपी है।

मुझे इस पर ही सन्देह है कि इस सर्वाधार पदार्थ का स्वरूप व्यक्त और स्थूल क्यों नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि गुण या नाम-रूप बिना किसी व्यक्त या स्थूल पदार्थ के ठहर ही कैसे सकेंगे। ग्रन्थकार के मत से नाम-रूप तो मिथ्या और व्यक्त पदार्थों की श्रेणी में हैं, और नाम-रूपों का आधार-भूत आत्मा, या ब्रह्म, नित्य पदार्थों की श्रेणी में। यह तो ठीक, पर वासना, मन, बुद्धि आदि को भी जो नाम-रूप की श्रेणी में रक्खा गया है वह समझ में न आया। यदि उनका ज्ञान बुद्धि या मन से हो जाता है इसीलिए वह नाम-रूप की श्रेणी में है, तो इसी प्रकार वस्तुतत्त्व का ज्ञान भी तो होता है, सो क्या वह भी इसी श्रेणी में रक्खा जायगा। इससे स्पष्ट होता है कि यह कसौटी ठीक नहीं। फिर जो ग्रन्थकार ने यह सिद्धान्त निकाला है कि भिन्न भिन्न पदार्थों के कार्य्य या परिणाम भी भिन्न भिन्न ही होने चाहिए, सो बिलकुल ठीक है। पर मैं देखता हूँ कि वह खुद ही इसके अनुसार नहीं चलते—यदि चलते होते तो आत्मा और वस्तुतत्त्व के भेद का कारण अवश्य स्पष्ट कर देते।

२ आत्मा के सान्निध्य से उत्पन्न होनेवाले धर्म को चित् अर्थात् ज्ञान कहते हैं। पर बुद्धि के इस धर्म को आत्मा पर लादना उचित नहीं। आत्मा के मूल स्वरूप को निर्गुण ही मानना चाहिए। अब यदि ब्रह्म आत्म-स्वरूपी है तो ब्रह्म को या आत्मा को चिद्रूपी कहना ठीक नहीं। और इससे यह आप ही आप स्पष्ट होता है कि उसके लिए सत् विशेषण भी लगाना ठीक नहीं, क्योंकि ये दोनों विशेषण परस्पर विरुद्ध और सदैव परस्पर सापेक्ष हैं। अतएव विचार करने के बाद ब्रह्म या आत्मा का अज्ञेयत्व स्वीकार किये बिना गति ही नहीं रहती।

इसमें कुछ विशेष बात नहीं कही गई। एक बात ही है और वह यह कि ज्ञान या बुद्धि अथवा इसी प्रकार की अन्य चीज़ें आत्मा का गुण नहीं, और इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि से जो न्यायाचार्य्य ने आत्मा का लक्षण किया है वह ठीक नहीं। पर प्रश्न होता है कि यदि ज्ञान बुद्धि या मन का ही धर्म है, ऐसा आप किसी दलील से सिद्ध भी कर देंगे तो फिर वह कौन सी दलील है जो आत्मा का सान्निध्य मानने को मजबूर करती है—विवश करती है। फलितार्थ यह हुआ कि जब बुद्धि से ज्ञान हो सकता है, मन से मनन हो सकता है और सारे महाभूतों या प्रकृति से अन्य तमाम काम हो सकते हैं, तब फिर आत्मा है, इस बात का आपके पास प्रमाण ही क्या रह गया? इसी बात को सोचकर शायद न्यायशास्त्र में आत्मा का लक्षण और तरह का माना गया है।

यदि इन विषयों पर विस्तार से लिखा जाय तो जिल्दें भर सकती हैं। इसलिए इनका दिग्दर्शन-मात्र कराकर अब मैं आप लोगों को प्रकरण के उस भाग में ले चलता हूँ जिसमें, ग्रन्थकार ने अध्यात्म-वाद पर होनेवाली एक महाशङ्का का उत्तर दिया है।

थोड़ी देर के लिए, यदि ग्रन्थकार का उक्त सिद्धान्त मान भी लिया जाय तो भी मानते मानते यह शङ्का खड़ी होती है कि, निर्गुण से सगुण कैसे हो गया। यहाँ पर आपका माना हुआ सत्कार्य्यवाद कहाँ चला गया जो निर्गुण से सगुण की उत्पत्ति आपने मान ली। इस शङ्का के सम्बन्ध में ग्रन्थकार के विद्वत्ता और तर्क-कौशल से सने हुए विचारों का संक्षेप यह है—

उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि सांख्य-वाले इसको हल कर चुके हैं। पर उनका उज़्र यह है कि इसी हल करनेवाले रास्ते को हम भी स्वीकार कर लेंगे तो जगत् के मूलतत्त्व दो हुए जाते हैं। इसलिए उन्होंने इसके लिए दूसरा मार्ग पकड़ा है। बड़ा अच्छा हुआ जो यहाँ हमें यह नहीं कहना पड़ा कि वे पक्षपात को छू गये। यह उन्हींके लेख से स्पष्ट हो जाता है। इसमें सांख्यों की युक्ति के क़ायल होते हुए,— अपने लिए 'सच्ची उलझन' और 'सच्चा पेंच' मानते हुए भी वे उसे भिन्न रीति से हल करते हैं। पर यह होही नहीं सकता कि सत्य दो प्रकार का हो।

उनकी युक्ति का सारांश यह है कि इस नियम का उपयोग वहाँ होता है जहाँ कार्य्य और कारण, दोनों एक ही श्रेणी और वर्ग के होते हैं। इससे यह हो सकता है कि सत्य और निर्गुण ब्रह्म से सत्य और सगुण माया न हो सके। पर जहाँ एक पदार्थ सत्य और दूसरा केवल दृश्य है, वहाँ यह नियम नहीं लग सकता। माया अनादि बनी रहे, फिर भी वह सत्य नहीं। वह तो मोह अज्ञान या इन्द्रियों को दिखाई देनेवाला दृश्य है।

यह तो हुआ उनकी दलील का सार। इसके बाद उन्होंने इसके सिद्ध करने को कई उदाहरण भी दिये हैं। उनमें कई तो बिलकुल नवीन हैं। इन सबका वर्णन करना अत्यावश्यक है; इसलिए मैं सबको, संक्षेप से नीचे लिखता हूँ—

१ जब बाप से लड़का पैदा होता है तब कहते हैं कि गुण परिणाम से होता है। पर जब पिता कभी बूढ़े का और कभी जवान का स्वाँग बनाये देख पड़ता है, तब कह सकते हैं कि उसके इन स्वाँगों में गुण-परिणाम-रूपी कार्य्य-कारण-भाव नहीं है।

२ जब यह निश्चय है कि सूर्य्य एक है तब फिर हम पानी में उत्पन्न उसके प्रतिबिम्ब को दूसरा सूर्य्य नहीं मानते।

३ कानों को सुनाई देनेवाले शब्दों और आँखों से दिखाई देनेवाले रङ्गों के विषय में यह निश्चय हो गया है कि, शब्द वायु की लहर या गति है और रङ्ग सूर्य्य के प्रकाश का विकार है। सूर्य्य-प्रकाश, एक प्रकार की गति है ही। गति मूल में एक होने पर भी कान उसे शब्द और नेत्र उसे रूप बतलाते हैं।

४ दूरबीन से किसी ग्रह के स्वरूप के निश्चित हो जाने पर ज्योतिष-शास्त्र स्पष्ट कह देता है कि नेत्रों से दीखनेवाला उसका दृश्य निरा दृश्य है, और वह अत्यन्त दूरी तथा नेत्रों की कमज़ोरी के कारण ऐसा मालूम पड़ता है।

५ रस्सी में साँप तथा सीप में चाँदी का भ्रम, आँख में उँगली डालने से एक पदार्थ के दो देख पड़ने का भ्रम, रङ्गीन चश्मों से पदार्थों के रङ्गीन होने का भ्रम, आदि अनेक दृष्टान्त।

इसी प्रकार के अतात्त्विक अन्यथाभाव को विवर्त कहते हैं। इस सम्बन्ध में मैं दो अवतरण और देता हूँ—

"जहाँ विवर्तवाद से यह सिद्ध हो गया कि एक निर्गुण ब्रह्म से त्रिगुणात्मक सगुण प्रकृति का देख पड़ना शक्य है, वहाँ से वेदान्त-शास्त्र को यह स्वीकार करने में कोई हानि नहीं कि अगला विस्तार गुण-परिणाम से हुआ है"।

"एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न रूप देख पड़ना उस वस्तु का धर्म नहीं, पर दृष्टि-भेद के कारण द्रष्टा से ये भिन्न भिन्न भेद होते हैं। निर्गुण ब्रह्म और सगुण जगत् के लिए इस न्याय का उपयोग करने पर कहेंगे कि ब्रह्म तो निर्गुण है, पर मनुष्य के इन्द्रिय-धर्म के कारण उसमें सगुणत्व की झलक हो जाती है। यही विवर्तवाद है।"

अब यह कहा जा सकता है कि हमने ग्रन्थकार की युक्तियों का सार कह दिया। इस युक्ति वाद पर अब मैं अपने कुछ विचार लिखता हूँ—

जिस पदार्थ की उत्पत्ति विवर्त्तात्मक अतएव भ्रमात्मक है क्या उसमें आगे चलकर गुण परिणाम हो सकता है? यदि हाँ, तो इसमें प्रमाण, युक्ति तथा उदाहरण क्या हैं? मतलब यह कि अतात्त्विक अन्यथाभाव में क्या आगे चलकर तात्त्विक अन्यथाभाव भी होना सम्भव है, जैसे रस्सी में विवर्त के अनुसार सर्प का अतात्त्विक अन्यथाभाव हुआ? अब प्रश्न यह है कि क्या उस सर्परूपी अतात्त्विक अन्यथाभाव में आगे चलकर गुण-परिणामात्मक तात्त्विक अन्यथाभाव भी हो सकेगा? इसमें प्रमाण क्या है?

दूसरी बात यह है कि जब आपने एक बार मान लिया कि ब्रह्म में पहले अतात्त्विक अन्यथाभाव, और फिर तात्त्विक अन्यथाभाव होने लगता है, तब आप इस बात से कैसे इन्कार कर सकते हैं कि जवान से बुड्ढा होना तात्त्विक गुण परिणामात्मक अन्यथाभाव नहीं है। आयुर्वेद के नियमों के अनुसार वह गुण परिणामात्मक ही सिद्ध होता है। पानी में सूर्य्य का प्रतिबिम्ब देख पड़ना भी विज्ञान-शास्त्र के अनुसार कार्य्य-कारण के नियम से रहित नहीं। इसी प्रकार दूर के ग्रहों का छोटा और भिन्न प्रकार का दीखना भी प्रकाश और नेत्रमण्डल के नियमों के अनुसार कार्य्य-कारण की शृङ्खला से सुसम्बद्ध है तथा रङ्ग और शब्द के विषय में भी विकाश के नियमों के अनुसार गुण परिणाम का क्रम मौजूद है । ये सब बातें रस्सी में सर्प के भ्रम के समान नहीं हैं। ऐसी दशा में विवर्तवाद की पुष्टि में जो चार नई दलीलें ग्रन्थकार ने दी हैं वे उसके अनुकूल न होकर ठीक प्रतिकूल हैं।

तीसरी बात यह है कि इस जगत् को विवर्तात्मक,—रस्सी में सर्प के भ्रम के समान—तो बतलाया ; पर यह बात स्मरण से उतार दी कि इस प्रकार के विवर्तात्मक भ्रम उसी दशा में होते हैं, जब कि प्रथम उस पदार्थ को देख लिया हो। जिसने सर्प देखा-सुना ही न होगा उसे सर्प का रस्सी में भ्रम हो ही कैसे सकता है ? इस नियम के अनुसार इन्द्रियों को ब्रह्म में यह भ्रम तभी होना था जब कि इन्द्रियों ने उस प्रकार का कोई पदार्थ देख लिया होता। अतएव, जब तक इन्द्रियों के द्वारा कोई पूर्वकृत तत्सदृश ज्ञान न मान लिया जाय, तब तक ब्रह्म में यह विवर्तात्मक भ्रम नहीं माना जा सकता। इसलिए मुक्तकण्ठ से कहना पड़ता है कि विवाद-सङ्कट पूर्ववत् उपस्थित है।

अन्त में मुझे एक बात यह कहनी है कि यदि सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि ग्रन्थकार ने जगत् को विवर्तात्मक अन्यथाभाव कहकर, प्रस्तुत प्रश्न को टाल सा दिया है। पर वास्तव में बात वैसी नहीं हुई। क्योंकि इस प्रकार टालने में भी उन्हें एक 'इन्द्रिय' पदार्थ की कल्पना करनी ही पड़ी, और उन्हें विवर्तात्मक ज्ञान का मूल उसे मानना ही पड़ा। जिस बात से डरकर सांख्य का स्पष्टीकरण उन्होंने अस्वीकार किया था, वह बात अन्त में फिर सामने आ ही गई। हम कह सकते हैं कि इस तरफ़ उनका ज़रा भी ध्यान नहीं गया।

अब तक हमने दो प्रकार की दलीलों का वर्णन किया, और यह दिखलाने की चेष्टा की कि उन पर भी कई प्रकार की अन्य शङ्कायें उत्पन्न होती हैं जिनका ग्रन्थकार ने उल्लेख तक नहीं किया। प्रथम प्रकार की वे शङ्कायें थीं जो अद्वैत-प्रतिपादन में उठीं। दूसरे प्रकार की वह शङ्का थी जिसका वर्णन अभी ऊपर हो चुका। पर इनके अलावा एक प्रकार की और भी शङ्कायें होती हैं। उनको हम इस सिद्धान्त के स्वीकार कर लेने के बाद की शङ्कायें कह सकते हैं। उनका उत्तर दे देना कोई साधारण बात नहीं है। ग्रन्थकार ने उनमें से एक का भी वर्णन नहीं किया—नमूने के लिए मैं उनमें से एकाध का वर्णन करता हूँ।

अद्वैतवादी, माया को सीमायुक्त, काल को अनादि, तथा जीव का मोक्ष मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि जीव मोक्ष से फिर नहीं लौटता—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'। इस दशा में यह प्रश्न होता है कि जब मोक्ष होता है, तथा काल अनादि है और माया सीमा-युक्त है तब फिर यह सृष्टि हमको क्यों मिल रही है। चाहे जितने युगों के अन्तर पर भी एक एक जीव का मोक्ष होना माना जाय तो भी काल के अनादि होने के कारण यह सृष्टि ख़तम हो चुकनी थी। इसी प्रकार एक बात और भी है। वे लोग मानते हैं कि विद्या का ईश्वर अपने स्वरूप में है और हम सब अविद्या-वाले ईश्वर हैं। हमारा सबका मोक्ष हो जायगा, हम फिर कभी अविद्या में न लौटकर आवेंगे। तब यह प्रश्न होता है कि जिसका आदि है उसका अन्त भी होना चाहिए। यदि मोक्ष का आदि है तो उसका अन्त भी होना चाहिए। इस पर यदि कोई प्रागभाव या प्रध्वंसाभाव का उदाहरण दे तो वह अच्छी तरह से सोच ले कि यह उदाहरण अभाव का है—भाव का नहीं और वह भाव का ही होना चाहिए। सारांश यह कि इसी प्रकार की बहुत शङ्कायें उठती हैं। पर ग्रन्थकार ने उनका वर्णन तक नहीं किया है। मेरी राय में इनका भी थोड़ा थोड़ा वर्णन हो जाता तो ठीक था।

अन्त में मुझे यह कहना है कि यद्यपि यह सब ऐसा है, तथापि जिसन ग्रन्थ का अध्यात्म-प्रकरण पढ़ा है वह जान

गया होगा कि ग्रन्थकार की वेदान्तविषयक योग्यता अव्वल दर्जे की है। साथ ही पाश्चात्य दर्शन में भी उनका असाधारण प्रवेश है।

सम्भव है कि मेरी ये शङ्कायें ठीक न हों। हो सकता है कि यह सब मेरे विचारों का भ्रम हो। तथापि जो कुछ मेरे विचार में शुद्ध भाव से, बिना किसी राग-द्वेष के आया वह मैंने कह दिया। बहुत आवश्यक था कि मैं ये सब बातें भी विस्तार के साथ लिखता; पर कुछ सोचकर मैंने इन्हें संक्षेप से ही लिखना ठीक समझा।

मुक्तिनारायण सुकुल

रामायण का एक दृश्य।

किस नींद में हो कूवते बाज़ू उठो उठो। मेरे रफ़ीक़ो मूनिसो दिलजो उठो उठो।
टुकड़े तुम्हारे ग़म में है पहलू उठो उठो। पोंछो तो मुझ ग़रीब के आंसू उठो उठो।
देखो नज़र उठाके कि छाती को कूटकर।
बालीं पै कब से रोता हूँ मैं फूट फूटकर।
क़ुर्बान जाऊँ, अब तो ज़रा आँख खोल दो। दामन में मेरे गौहरे मक़सूद रोल दो।
मुशताक़ हूँ, मैं प्यार के दो बोल बोल दो। होंठों से मुस्कराके ज़रा क़ंद घोल दो।
चिल्ला रहा हूँ कब से मैं, प्यारे जवाब दो।
आँखें तो खोलो, आँखों के तारे जवाब दो।
वह आह मुस्कराने की आदत किधर गई। मुझको गले लगाने की आदत किधर गई।
वह मेरा दुख बटाने की आदत किधर गई। ढारस मुझे बँधाने की आदत किधर गई।
बेकस समझके वादिये गुरबत में छोड़कर।
जाते कहाँ हो मुझको मुसीबत में छोड़कर।
मर जाऊँगा तड़पके मैं, मुझसे जुदा न हो। दीरीना ग़मगुसार हो, नाआशना न हो।
जादानवर्द मंज़िले राहे फ़ना न हो। पूछूँ मैं एक बात जो भाई ख़फ़ा न हो।
तनहा गया अवध को तो दुनिया कहेगी क्या।
लछमन कहाँ हैं मुझको सुमित्रा कहेगी क्या।
सीता सी नाज़नी का है क्या कम मुझे वियोग। अपनी मुफ़ारक़त का लगाओ न मुझको रोग।
भाई का आस्माँ न दिखाये अदू को सोग। लौटा अवध को मैं तो कहेंगे वतन के लोग।
भाई को खोके हाथ से ज़न की फ़िराक़ में।
लौटे अवध को राम वतन की फ़िराक़ में।
तुम पर निसार, मुझसे बिरादर न हो ख़फ़ा। आई हँसी वह होंठों पै देखो इधर ज़रा।
जाकर सुमित्रा को मैं दूँगा जवाब क्या। टीका मेरी जबीं पै लगाओ न नील का।
मुझको मुफ़ारक़त का ग़मे जावदाँ न दो।
बिस्तर पै यों तड़पके दमे निज़अ जाँ न दो।
बेफ़ायदा है इनका करे ग़म कोई अगर। मिल जाते हैं यह सब ज़नो-फ़र्ज़न्दो मालो-ज़र।
दुशमन भी हो न ग़म में बिरादर के नूहागर। मिलता नहीं तो यह नहीं मिलता है छूटकर।
भाई से आह क़हर है भाई का छूटना।
गिरना इक आस्माँ का है बाज़ू का टूटना।

भाई न हो तो हेच मनाज़र जहाँ के हैं। आँखों में ख़ार फूल रियाज़े ज़माँ के हैं।
सदमे न आह बाप के ऐसे न मां के हैं। इस ग़म में टुकड़े होते दिले-नातवाँ के हैं।
भरता नहीं है जो कभी नासूर यह वह है।
सौ मरतबा हरा हो जो अंगूर यह वह है।
जाती है सेंकने से कहीं यह जिगर की चोट। सदमा यह दम के साथ है, यह उम्र भर की चोट।
ख़ंजर का ऐसा वार न है नेशतर की चोट। है लाइलाज इस ग़मेवहशत-असर की चोट।
गहरा जिगर पै घाव है इस तीर जस्ता का।
थमता नहीं लहू कभी क़लवे शिकस्ता का।
इस बेकसी में छोड़के मुझको किधर, दरेग़। तुम चल दिये बिरादरे-ख़स्ता-जिगर, दरेग़।
देखा मुझे न प्यार से भरकर नज़र, दरेग़। मुझसे गले मिले भी न वक़्ते-सफ़र, दरेग़।
क़ौलो-क़रार क्या यही मुझ ख़स्तार्जां से थे।
हैं याद वह वचन भी जो हारे ज़बाँ से थे।
यों मुझसे रूठ जाने की पहले तो ख़ू न थी। चाके जिगर की कब मेरे फ़िक्रे-रफ़ू न थी।
लब पर तुम्हारे प्यार की कब गुफ़्तगू न थी। देहीमो-सलतनत की तुम्हें आरज़ू न थी।
उफ़ताद इक जहाँ की उठाई मेरे लिए।
वन बन की तुमने ख़ाक उड़ाई मेरे लिए।
थी गरचे आह! दश्त-नवर्दी तुम्हें गराँ। लाई वतन से मेरी मुहब्बत कशाँ-कशाँ।
गुरबत में हैफ़! मुझसे छुटा जैसे ख़ानमा। साये की तरह साथ रहे तुम रवाँ-दवाँ।
छोड़ा न मेरे दामने-उलफ़त को हाथ से।
जाने दिया न वज़अ रफ़ाक़त को हाथ से।
ऐ बाप, आज फेरके मुझसे नज़र को तुम। जाते हो आह! जान-बिरादर किधर को तुम।
दे जाओगे फ़िराक़ का सदमा जिगर को तुम। ज़ानू पै लाश होगी, न होगे सहर को तुम।
आँखों में आह! निस्फ़ शबे ग़म गुज़र गई।
ऐ जज़्ब इश्तियाक़! सजीवन किधर गई।

[आर्य्य-समाचार से उद्धृत

मृच्छकटिक और उसके रचनाकाल का हिन्दू-समाज।

प्राचीन भारतवर्ष के आर्य्यों ने लगभग सब विषयों में उन्नति की थी और जिस समय योरप-निवासी आजकल की जङ्गली जातियों से बढ़कर नहीं कहे जा सकते थे उस समय भारत सभ्यता के शिखर पर था। इस विषय के प्रमाण दिन-पर-दिन मिलते जाते हैं। तोभी आश्चर्य्य की बात यह है कि भारतनिवासियों ने अपना इतिहास लिखने की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। कल्हण की राजतरङ्गिणी को छोड़कर उनका लिखा हुआ इतिहास का और कोई ग्रन्थ नहीं। पुराने समय का जो कुछ इतिहास मालूम होता है वह या तो मेगस्थेनीज़, फ़ाहियान इत्यादि विदेशी यात्रियों की पुस्तकों से, या पुराने शिला-लेखों, दान-पत्रों और सिक्कों से अथवा पुराने साहित्य-ग्रन्थों से। इन काव्य-ग्रन्थों को पढ़ने से उनमें चित्रित समाज की

दशा का ज्ञान-अनायास ही हो जाता है। मम्मट ने काव्यप्रकाश में लिखा ही है—

> काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
> सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

संस्कृत के नाटकों में मृच्छकटिक का बहुत आदर है। यद्यपि उसमें कालिदास की शकुन्तला की सी उत्कर्ष काव्य-निपुणता और घटनाओं का समावेश, भवभूति के उत्तर-रामचरित का सा उच्चकोटि का करुणरस, नारायण के वेणी-संहार का सा उत्कट वीररस और मुद्राराक्षस की सी राजनीति-पटुता नहीं है, तथापि वह इन्हीं नाटकों की श्रेणी का समझा जाता है और इतना ही पढ़ा भी जाता है। इस आदर का विशेष कारण यह है कि इस नाटक में हिन्दू-समाज का चित्र बड़े कौशल से खींचा गया है। अन्य नाटकों में राजा, महाराजाओं का वर्णन है; परन्तु इसमें एक सामान्य श्रेणी के ब्राह्मण का वर्णन है। और नाटकों में राजमहलों और प्रमदवनों की सैर कराई जाती है; पर इसमें नायक एक जीर्ण पुष्पोद्यान ही से सन्तुष्ट है। मृच्छकटिक नाटक की सब शर्तों को पूरी नहीं करता, इस कारण वह प्रकरण-मात्र है; किन्तु इससे उसकी शोभा और बढ़ गई है और लेखक अधिक स्वच्छन्दता से लिख सका है। इस पुस्तक का आदर पश्चिमी विद्वानों ने अधिक किया है। विल्सन और राइडर के अनुवाद प्रसिद्ध हैं।

मृच्छकटिक को किसने लिखा, यह अभी तक निर्णीत नहीं है। भारतीय पण्डितों का कहना है कि यह शूद्रक राजा का बनाया हुआ है और पश्चिमी विद्वानों का मत है कि शूद्रक राजा के दरबार के किसी कवि का रचा हुआ है; परन्तु शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध है।[*] इस मतभेद का कारण प्रस्तावना का एक श्लोक[*] है जिससे ज्ञात होता है कि शूद्रक एक सौ वर्ष और दस दिन जीवित रहकर अग्नि में प्रवेश करके पञ्चत्व को प्राप्त हुआ। अब प्रश्न यह है कि यदि शूद्रक ने स्वयं नाटक लिखा है तो वही अपनी मृत्यु के विषय में किस प्रकार लिख सकता था। इससे यह स्पष्ट है कि या तो शूद्रक ने यह ग्रन्थ नहीं लिखा अथवा उसने उसकी प्रस्तावना नहीं लिखी और पश्चात् किसी कवि ने वह तथा दो-एक और अंश[†] जोड़ दिये हैं। शूद्रक के मृच्छकटिक के लेखक होने के विरुद्ध कोई निर्विवाद और युक्तिसङ्गत प्रमाण न होने के कारण प्राचीन लेखकों का अनुमोदित मत मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वामन अपनी काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्ति में शूद्रक को कवि मानकर मृच्छकटिक से दो पद्य उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करते हैं। फिर यदि शूद्रक के आश्रित किसी कवि का रचा हुआ यह ग्रन्थ मान लिया जाय तो वह कवि शूद्रक की मृत्यु के पश्चात् यह नाटक क्यों बनाने बैठा? यदि उसे अपने स्वामी का नाम करना था तो शूद्रक के पुत्र आदि उत्तराधिकारी का नाम प्रकाशित करता। इससे प्रकट होता है कि प्रस्तावना अवश्य किसी अन्य कवि की लिखी है, परन्तु मूल पुस्तक शूद्रक की ही बनाई हुई है।

मृच्छकटिक के रचना-काल के विषय में भी बहुत

---

[*] पिशल (Pischel) साहब का मत है कि यह नाटक दण्डी का बनाया हुआ है; परन्तु यह भ्रम शूद्रक को छठी शताब्दी का समझने से उत्पन्न हुआ है। दण्डी की रचना से इस ग्रन्थ की रचना में बड़ा भेद है; इस कारण यह मत भ्रम-मूलक ही जान पड़ता है।

[*] ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षाम्।
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा।
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥
॥ प्रथम अङ्क ४॥

[†] यथा वसन्तसेना के मकान का वर्णन (चतुर्थ अङ्क का उत्तर भाग)।

मत-भेद है। मैक्डानेल[*] साहब की राय है कि यह नाटक छठी शताब्दी का है और प्रो० वेबर[†] का मत है कि ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व का यह नाटक नहीं हो सकता। विलसन साहब का मत है कि यह ग्रन्थ ईसवी सन् के प्रारम्भ के कुछ वर्ष इधर या उधर का रचा हुआ है[‡]—बहुमत से यह सिद्ध-प्राय है कि शूद्रक कालिदास से पहले हुए हैं और पुस्तक की रचना आदि के प्रमाणों से भी यह पुस्तक पुरानी मालूम होती है। इस पुस्तक में जो प्राकृत प्रयुक्त की गई है वह पुरानी है और वररुचि के समय की या उससे पहले की जान पड़ती है। वररुचि ईसवी सन् के पूर्व प्रथम शताब्दी के इधर का नहीं माना जाता। इस कारण मृच्छकटिक ईसवी सन् के पूर्व प्रथम शताब्दी में बनाया गया मालूम होता है।

इस पुस्तक से विदित होता है कि इसके निर्म्माण-काल में यह देश सुख-समृद्धियुक्त था। समृद्धि के दोष वेश्या, जुआ, मदिरा-पान इत्यादि भी प्रचलित थे। खाने-पीने के लिए कोई तरसता न था। व्यापार बहुत चढ़ा-बढ़ा था और भारतीय व्यापारियों के निज के जहाज़ थे (अङ्क ४, २९ वें श्लोक के पश्चात्—"भवति, किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति")। नगर-रक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध था और चोर-डाकू सड़कों पर और गलियों में निर्भय नहीं घूम सकते थे (अङ्क ३, २० वें श्लोक के उपरान्त, "अये पदशब्दः इव, मा नाम रक्षिणः" इत्यादि)। शकुन्तला नाटक की तरह इस नाटक में पुलिस के कर्म्मचारियों का ज़ुल्म और कुटिलता नहीं दिखाई गई है[*]। मृच्छकटिक में एक स्थान पर कर्म्मचारी चन्दनक आर्य्यक को, अभय माँगने पर, अपनी जान जोखिम में डालकर छोड़ भी देता है।

न्याय करने के लिए भी उस समय बहुत यत्न किया जाता था। न्यायाधीश अपने कार्य्य से उन दिनों भी खिन्न थे और गवाही इत्यादि से सच्ची बात जानने में बड़ी कठिनता पड़ती थी[†]। झूठी सच्ची बातें उस समय भी सरलता से गढ़ी जाती थीं और झूठे मुक़द्दमे तैयार किये जाते थे। क़ानून की गूढ़ बातें तब भी उठती थीं और बयानों में एक शब्द इधर या उधर होने पर तुरन्त लिख लिया जाता था[‡]। क़ानून को सब मानते थे और न्याय-कर्त्ता को छिपी बात जानने के विशेष अधिकार थे (व्यवहारस्त्वां पृच्छति इ०)। जैसी बात साबित होती थी उसके अनुसार मुलज़िम को अपना दोष स्वीकार करना पड़ता था और हर जुर्म के लिए अलग अलग दण्ड दिया जाता था। न्यायाधिकारी क़ानून के जटिल बन्धन से बँधे रहते थे और अपनी इच्छा-

---

[*] History of Sanskrit Literature—A. A. Macdonell, p. 361 :—

"In any case, it not improbably belongs to the sixth century."

[†] वेबर साहब के मतानुसार नाणक शब्द जो इस पुस्तक में आया है कणेरकी से (जिसका समय लगभग सन् ४० ई० है) निकला है—और इसीको लेकर उन्होंने अपना मत स्थापित किया है; परन्तु इसका खण्डन मैक्समूलर साहब ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sanskrit Literature' में किया है। पृ० ३३२ देखिए।

[‡] The Toy Cart by Wlison, p. 4.

[*] शकुन्तला के षष्ठ अङ्क का प्रवेशक देखिए।

[†] छन्नं कार्य्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतम्,
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम्।
तैः पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते,
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः॥ नवमाङ्क श्लो० ३॥

[‡] "शकारः—...... बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेनिका मारिता न मया।
अधिकरणिकः—अहो, नगररक्षिणां प्रमादः। भोः श्रेष्ठि-कायस्थौ, न मयेति व्यवहारपदं प्रथममभिलिख्यताम्।" नवमाङ्क में।

नुसार न्याय-परिवर्तन नहीं कर सकते थे। असेसर तब भी नियुक्त होते थे; परन्तु वे 'हाँ हुज़ूर' ही अधिकतर होते थे। लिखने का काम कायस्थ लोग करते थे। जज गवाही इत्यादि से जुर्म साबित करके राजा के पास भेज देता था और राजा के हस्ताक्षर होने पर सज़ा होती थी। जल्लादों को फाँसी देने के स्थान पर मनमानी रीति से फाँसी देने का अधिकार था। फाँसी की आज्ञा भारी रक़म देने से टाली जा सकती थी और कोई बड़ी ख़ुशी की बात होने पर अपराधी छोड़ भी दिये जाते थे।

राजा को प्रजा की रक्षा करने में दत्तचित्त रहना पड़ता था और शास्त्र-विहित रीति से कार्य्य करना होता था। अन्याय करने पर राजा गद्दी से उतार दिया जाता था। न्यायानुसार शासन करनेवाले राजा का बड़ा मान होता था और उसकी भक्ति की जाती थी। राजा के नातेदारों का तब भी दबाव था।

जुए का प्रचार तब भी था, परन्तु वह नियत स्थानों में, नियत कर्म्मचारियों के संरक्षण में होता था। क़र्ज़ का रुपया क़र्ज़दार से मारपीट कर, उसका असबाब बेचकर अथवा ख़ुद उसे ही बेचकर वसूल किया जा सकता था।

स्त्रियों का मान अधिक था, और इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे। उनके कपट की शिकायत पुरुषों को तब भी रहती थी। पर्दे का कुछ अंश उस समय भी था। मालूम होता है कि भले घर की स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकलती थीं और पर-पुरुषों के सामने घूँघट निकालती थीं *। वेश्यायें भले आदमियों के घरों के अन्दर नहीं जा सकती थीं *।

जाति-बन्धन उस समय बहुत कड़ा नहीं था। ब्राह्मण लोग केवल वेदपाठी ही नहीं होते थे, किन्तु व्यापार भी करते थे। चारुदत्त का पिता बड़ा भारी सेठ था। चारुदत्त का विवाह वसन्तसेना से हो जाता है जो केवल शूद्राणी कही जा सकती है और सब उसका अनुमोदन करते हैं। आर्य्यक अहीर का बालक होने पर भी राजा हो जाता है। वीरक और चन्दनक नाई ऐसी नीच जाति में उत्पन्न होने पर भी उच्च कर्म्मचारी बनाये जाते हैं। इससे विदित होता है कि उस समय जाति उन्नति में बाधक न होती थी।

खाने-पीने में छुआ-छूत इतनी नहीं थी। ब्राह्मण चारणों और वेश्याओं के घर भोजन कर लेते थे। दान लेना तब भी ब्राह्मण बुरा समझते थे; परन्तु न्योता खानेवाले ब्राह्मणों की उस समय भी कमी नहीं थी और न्योता खाने में ब्राह्मणों में तब भी स्पर्धा होती थी। धर्म्मोपासना और तर्पण इत्यादि आज-कल की भाँति उस समय भी होते थे। स्त्रियों की तब भी उपवासों में श्रद्धा थी। इस पुस्तक में 'अभिरूपपति' और 'रत्न-षष्ठी' के नाम आये हैं†। उत्सवों में इन्द्रमह और कामदेवोत्सव के नाम

---

* वसन्तसेना वेश्या को जब चारुदत्त की वधू बनाते हैं तब लिखा है कि "वसन्तसेनामवगुण्ठ्य"। शकुन्तला के पाँचवें अङ्क में शकुन्तला के विषय में ये शब्द हैं:—

"कास्विदवगुण्ठनवती...इत्यादि" १३ वाँ श्लोक

"गौतमी—जाते मुहूर्त्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति"—

इन बातों से स्पष्ट है कि पर्दे का कुछ अंश प्राचीन काल में भी था और घूँघट तो अवश्य निकाला जाता था।

* वसन्तसेना (चारुदत्त से)—मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य—प्रथम अङ्क।

वसन्तसेना—हञ्जे किं प्रविष्टाऽहमिहाभ्यन्तरचतुःशालम्—छठा अङ्क।

† 'अभिरूपपति' कदाचित् आज-कल की बरसाइत और 'रत्नषष्ठी' आज-कल की हरछठ हैं।

मिलते हैं। कुआँ, तालाब और बाग़ इत्यादि बनवाना उस समय भी पुण्य समझा जाता था*।

दासत्व की प्रथा प्रचलित थी; परन्तु दासों को भोजनाच्छादन का सुख था। अलग से जोड़ा हुआ रुपया उन्हींका रहता था और स्वामी की इच्छा पर अथवा छुड़ौती का रुपया देने पर दास छोड़ दिये जाते थे।

इस नाटक में चोर-विद्या का अच्छा उल्लेख है। इस विद्या की बहुतसी पुस्तकें पुराने समय में थीं जिनमें चोरी करने की साइत, स्थान, सेंध के भेद इत्यादि के वर्णन थे। ऐसी पुस्तकें आज-कल नहीं मिलतीं। इस विद्या को सिखाने के लिए आचार्य्य होते थे, और कई आचार्य्यों के नाम इस नाटक में आये हैं। चोर सेंध नापने के लिए यज्ञोपवीत सूत्र का प्रयोग करता है †।

इन सब बातों का चित्र खींचकर शूद्रक भारत के तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डाल गया है।

बाबूराम सक्सेना

लुक़मान के अनमोल बोल।

१

ازکتب خانه عالم چهار کلمه برگزیدم دورا یاد و دورا فراموش باید کرد-خدا و مرگ را یاد دار و نیکي که با کسے کني و بدي که کسے با تو کند فراموش کن -

अक्षरान्तर।

अज़ कुतब खानए आलम चहार कलमः बर गुज़ीदम। दोरा याद व दोरा फ़रामोश बायद कर्द। ख़ुदा व मर्ग रा याद दार; व नेकी कि बाकसे कुनी, व बदी कि कसे बा तो कुनद, फ़रामोश कुन।

अनुवाद।

संसार के पुस्तकालय से मैंने चार वाक्य छाँटे हैं। दो को याद रखना चाहिए और दो को भूल जाना चाहिए—ईश्वर और मृत्यु को याद रख; और नेकी जो तू किसीके साथ करे, और बदी जो कोई तेरे साथ करे, भूल जा।

२

لقمان را پرسیدند که تو شبان بودي بدرجه حکما چگونه رسیدي گفت بسه چیز راست گفتن و خاموش ماندن و از صحبت بد احتراز کردن-

अक्षरान्तर।

लुक़मान रा पुरसीदंद, कि तू शब्रान बूदी, बदरजह हुक्मा चिगूनः रसीदी-गुफ़, व सेह चीज़। रास्त गुफ़न, व ख़ामोश माँदन, व अज़ सुहबते बद इहतराज़ करदन।

अनुवाद।

लुक़मान से किसीने पूछा कि तू चौकीदार था, हकीमों के दरजे पर कैसे पहुँच गया? उसने कहा, तीन बातों से। सत्य बोलने से, मौन रहने से, और बुरों की सङ्गत से बचने से।

३

حاصل من از فضیلت همین بود که بر جهل خود اطلاع یافتم -

अक्षरान्तर।

हासिले मन अज़ फ़ज़ीलत हमीं बूद कि बर जहले ख़ुद इत्तलाअ याफ़्तम।

---

*"The same notions," Dr. Bhandarkar observes, "as regards these matters prevailed then as now."

† आज-कल भी तो जनेऊ कुञ्जियाँ बाँधने के काम में लाया जाता है !!

अनुवाद।

विद्वत्ता से मैंने यही लाभ उठाया कि अपने मूर्खत्व का मुझे ज्ञान हो गया।

नानकचन्द

एलक्ज़न्डर का एकान्तवास।

जो कुछ दृष्टि मुझे आता है, उस सबका मैं हूँ स्वामी।
स्वत्वों का विरोध करने को, यहाँ न कोई अनुगामी॥
चारों ओर केन्द्र से लेकर, सागर-सीमा तक विस्तार।
जितने पशु-पक्षी हैं, सब पर है पूरा मेरा अधिकार॥
अरे! आज वे मन्त्र कहाँ हैं, बतला दे, एकान्त।
तेरे मुख पर जिनको देखा, ऋषियों ने हो शान्त॥
भय में रहना अधिक श्रेष्ठ है, मेरा यही विचार।
किन्तु न हो इस महा भयानक थल का राज्य-प्रसार॥
मानव जाति नहीं पा सकती मेरा यह संस्थान।
केवल मैं ही पार करूँगा अपना कठिन पयान॥
मैं न सुनूँगा बात-चीत का अब सारा सङ्गीत।
अपनी ही ध्वनि सुन, अचरज से होता हूँ भयभीत॥
ये अनेक पशु मैदानों में अति स्वच्छन्द विचरते हैं।
निर्भय होकर मुझे देखते, नहीं ध्यान कुछ करते हैं॥
हैं ये इतने बिलग मनुज से, चंचल होता ज्ञान।
इनके पालू हो जाने का आता है जब ध्यान॥
प्रेम, मित्रता वा समाज का है जितना व्यवहार।
दिये हुए है मनुज-जाति को स्वामी जगदाधार॥
हाय! दिये होते यदि विधि ने, पक्षी के से पंख।
तो फिर शीघ्र इन्हींका अनुभव करता मैं निःशंक॥
तब फिर अपने कष्टों का मैं शीघ्र निवारण कर लेता।
सच्चाई वा मत के सत्पथ पर अपना पग धर देता॥
दुख कम करते वृद्धपने के उत्तम उच्च विचार।
युवा अवस्था की मारों से होता हर्ष अपार॥
इसका तो मैं खेल बना हूँ, हे हे चञ्चल वायु।
इस निर्जन तट पर अब आके कर दे मुझे चिरायु॥
अब तो पवन सुना दे मुझको कोई सुखद सँदेश।
उसका, जहाँ न अब जाऊँगा, जो है मेरा देश॥
मेरी इच्छा करते हैं क्या मेरे मित्र महान।
क्या उनको अब तक होता है मेरा भी कुछ ध्यान॥
अरे! बता दे क्या अब भी है मेरा एक सुमित्र।
यदपि न होगा किसी मित्र का दर्शन हाय! पवित्र॥
कितनी शीघ्र-गामिनी है यह मम मस्तक की चाल।
जिसकी समता करे न कोई कहीं किसी भी काल॥
इसकी गति से आँधी पीछे रहती है गंभीर।
नहीं पार पा सकते इससे वे प्रकाश के तीर॥
अपनी जन्मभूमि के प्रति मैं कभी ध्यान जब करता हूँ।
यही जान पड़ता क्षण भर में मानों वहीं विचरता हूँ॥
किन्तु शोक है, हा! तुरन्त ही मेरे उभरे हुए विचार।
मुझे निराशा दिखलाते हैं जिसका कहीं न वारापार॥
किन्तु देखिए, अबाबील अब चला बसेरे को अपने।
पशु भी अब सब लेट गये हैं, दिन के दृश्य हुए सपने॥
अहो! यहाँ भी आती है ऋतु करने को विश्राम।
मैं भी पर्णकुटी को लौटूँ, जो है मेरा धाम॥
कृपापूर्ण सुविशाल जगत का है प्रत्येक स्थान।
उसी कृपा से ये विचार भी होते पुष्ट महान॥
देकर शुभ साहस विचार को सुन्दर वही बनाती है।
करती है सन्तुष्ट भाग्य, वह दुख-सुख भी सरसाती है॥

तोरनदेवी

मनोरञ्जक श्लोक।

पात्रीकृत्य कपालमण्डलमिदं पीयूषभानोः कलां
वर्तीकृत्य फणामणिं फणिपतेः सम्पाद्य तस्मिन्शिखाम्।
सायं दीपविधिं वितन्वति शिशौ मन्दं हसन्त्या तया
किञ्चित्कुञ्चदपाङ्गभङ्गकुटिला दृष्टिः समारोपिता॥

भगवान् चन्द्रशेखर ध्यान में लीन हैं। पास ही जगज्जननी भवानी बैठी हुई हैं। इतने में सन्ध्या हुई। बालक कार्त्तिकेय ने घर में अँधेरा देख दीपक जलाना चाहा। पर उसे वहाँ दीपक जलाने की कोई सामग्री न देख पड़ी। अकस्मात् पिता चन्द्रचूड़ की कपाल-माला पर उसकी नज़र पड़ी। बस उसी कपाल-मण्डल को कार्त्तिकेय ने पात्र बनाया और पिता के जटाजूट पर चमकती हुई चन्द्र-कला को बत्ती बनाया। फिर भुजङ्ग-राज की फणा-मणि को लेकर बत्ती के

आगे रख दिया। बस दीपक का काम होने लगा। बालक की इस अपूर्व कार्य-कुशलता को देख मन्द मन्द हँसती हुई पार्वती ने किञ्चित् आकुञ्चित नेत्र-प्रान्त से बालक कार्त्तिकेय की ओर देखा।

अहा! कैसा मधुर भाव है! चित्त को लुभानेवाला कैसा मधुर मुसकाना है!

श्रीशुभानन्द शर्मा

विविध विषय।

१—मृत्यु के पूर्व लक्षण।

संसार में कोई अमर नहीं। सबको एक न एक दिन मरना ही होगा। पर मरने के पहले ही यदि हम यह जान सकें कि इतने दिनों के बाद हमें काल-कवलित होना पड़ेगा तो इससे हमें कितने ही लाभ हों।

तन्त्र, पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिष और स्वरोदय आदि शास्त्रों में मृत्यु के कितने ही लक्षण दिये हुए हैं। परन्तु साधारण लोगों के लिए उनका समझना और उनके द्वारा मृत्यु की पहचान करना बड़ा कठिन है। अतएव उनके सुभीते के लिए हम अपने कितने ही अनुभूत लक्षण यहाँ देते हैं—

(१) साल, महीने या पक्ष के पहले दिन जिसके दोनों नथनों से बराबर ज़ोर से साँस निकले, समझ लीजिए कि उसी दिन से तीन वर्ष बाद वह मर जायगा।

(२) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन से दो रात और दो दिन जिसके दाहने नथने से साँस निकले, उस दिन से दो वर्ष बाद उसे मृत्यु का शिकार होना पड़ेगा।

(३) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन से तीन दिन और तीन रात जिसके दाहने नथने से साँस चले उस दिन से एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु होगी।

(४) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन थोड़ी देर तक बायें नथने से जिसकी साँस न निकलकर दाहने नथने से निकलती रहे तो उसे पन्द्रह दिन में मौत के घर जाना होगा।

(५) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन से सोलह दिन तक जिसकी साँस दाहने नथने से चलती रहे उसे उस दिन से एक महीने के बाद के अन्तिम दिन मौत का शिकार होना पड़ेगा।

(६) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन जिसका मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु एक साथ ही निकले उसे दस ही दिन में ज़रूर मौत का मुँह देखना होगा।

(७) जिस दिन से मनुष्य अपनी भौंहों के बीच की जगह नहीं देख पाता उस दिन के सातवें या नवें दिन उसे मरना पड़ेगा।

(८) जिसे अपनी नाक नहीं देख पड़ती वह तीन दिन में मौत का थप्पड़ खाता है और जिसको अपनी जीभ नहीं दिखाई देती वह एक ही दिन में।

(९) मौत जिसके सर पर सवार है उसे आकाश में अरुन्धती, ध्रुव, मातृका-मण्डल और विष्णुपद नहीं दिखाई देता।

(१०) जिसके दोनों नथने बिलकुल बन्द रहते हों और मुँह से साँस निकलती हो उसकी शीघ्र ही मृत्यु होगी।

(११) जिसकी नाक टेढ़ी पड़ गई हो, दोनों कान ऊपर को उठ गये हों, और आँखों से आँसू बराबर निकल रहे हों तो वह शीघ्र ही मौत का ग्रास हो जाता है।

(१२) घी, तेल, या पानी में अपनी परछाईं—प्रतिबिम्ब—देखते वक़्त जिसको अपना सिर नहीं देख पड़ता वह एक महीने में मृत्यु को प्राप्त होता है।

(१३) जो स्वप्न में गधे पर चढ़ता है और तैल मर्दन करता है उसे जल्दी ही मौत आती है।

(१४) जो मनुष्य स्वप्न में लोहे का डण्डा लिये, काले कपड़े पहने, काले रङ्गवाले पुरुष को देखता है वह तीन महीने में मौत का मिहमान बनता है।

(१५) जिसका गला, होंठ, जीभ और तालु सदा सूखता रहता है वह छः महीने के भीतर ही दुनिया से कूच कर जाता है।

(१६) अकारण ही यदि कोई मोटा आदमी अकस्मात् दुबला हो जाय या दुबला मोटा हो जाय तो एक महीने बाद उसे मौत के घर जाना पड़ता है।

(१७) हाथ से कान का छेद बन्द करने पर एक

प्रकार की अस्पष्ट आवाज़ सुनाई देती है । जिसे वह नहीं सुनाई देती वह एक महीने के भीतर ही मृत्यु का ग्रास हो जाता है ।

(१८) अण्डी के तेल से जलते हुए दीपक के बुझने पर जिसे बू न आती हो वह छः महीने के भीतर यमलोक को सिधार जाता है ।

(१९) दाँत दबाने से जिसे दर्द नहीं मालूम होता वह तीन महीने के भीतर ही मौत के घर चला जाता है ।

(२०) अपने दाहने हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसे नाक या भौंह के बीच में रखिए । फिर सामने नज़र डालिए । आपको हाथ बहुत पतला देख पड़ेगा । जिस दिन हाथ से मुट्ठी अलग मालूम हो, समझ लीजिए, छः महीने और दुनिया में रहना है ।

(२१) अपनी आँखें बन्द कर लीजिए । फिर उँगली के सिरे से आँख का एक कोना दबाइए । यदि चमकते हुए सितारे के सदृश कोई बिन्दु न देख पड़े तो समझ लीजिए कि दस दिन बाद दुनिया से कूच करना होगा ।

मरने के लक्षण देख पड़ने पर घबराना न चाहिए । धैर्य्य रखना चाहिए । भगवान् का ध्यान करना चाहिए । यथाशक्ति दान-पुण्य करना चाहिए । मरने से डरना व्यर्थ है । क्योंकि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

गोवर्द्धन शर्म्मा

२—बर्फ़स्तानी जल में जीवित मत्स्य ।

संसार में मत्स्यभोजियों की कमी नहीं । शायद ही ऐसा कोई देश हो जहाँ मछली खानेवाले न हों । पर मछलियाँ सब देशों में कसरत से नहीं पाई जातीं; कहीं अधिक होती हैं कहीं कम । अतएव इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की अकसर ज़रूरत पड़ती है । मतलब यह कि इनका भी आन्तर्जातिक व्यापार होता है । पर इस प्रकार एक देश से दूसरे देश को भेजने में मछलियाँ बहुधा रास्ते ही में सड़ जाती हैं और खाने के काम की नहीं रहतीं । इससे मत्स्यव्यापारियों को बहुत हानि उठानी पड़ती है । इसलिए योरप और अमेरिका के लोग बहुत दिनों से कोई ऐसी तरकीब ढूँढ़ रहे थे जिससे जीवित अवस्था में ही मछलियाँ एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा सकें । उनके भाग्य से अब एक तरकीब निकल आई है । जिस प्रकार से इस तरकीब का पता लगा उसका भी हाल सुनिए ।

एशिया महाद्वीप के उत्तर में साइबीरिया नामक एक अत्यन्त शीत-प्रधान देश है । वहाँ की कितनी ही बड़ी बड़ी नदियाँ जाड़े के दिनों में बिलकुल जम जाती हैं । साथ ही साथ उन नदियों में जो मछलियाँ होती हैं वे भी जम जाती हैं और जाड़े के कई महीनों तक लाखों मन बरफ़ के ढेर के नीचे दबी पड़ी रहती हैं । पर वे मरती नहीं । गरमी में ज्योंही पानी पिघलता है त्योंही वे इधर-उधर तैरने लगती हैं । यह देखकर लोगों ने यह सिद्धान्त निकाला कि बरफ़ में दबी रहने से मछलियाँ महीनों और बरसों तक जीवित रह सकती हैं । अतएव यदि बरफ़ में दबाकर वे एक देश से दूसरे देश को भेजी जायँ तो कदापि न सड़ेंगी और बरसों तक जैसी की तैसी, अतएव खाने के योग्य, बनी रहेंगी । फ़्रांस के कई स्थानों में इस सिद्धान्त की परीक्षा की गई और वह सत्य सिद्ध हुआ । बरफ़ के टुकड़ों के अन्दर दबी हुई मछलियाँ एक जगह से दूसरी जगह भेजी गईं और महीनों तक उसी दशा में रक्खी गईं; पर न वे मरीं न ख़राब हुईं । बरफ़ का टुकड़ा ज्योंही पिघलाया गया त्योंही वे इधर-उधर रेंगने लगीं । इससे अब जान पड़ता है कि कुछ दिनों में जीवित मछलियों का व्यापार भी संसार में होने लगेगा । क्योंकि इस तरकीब से हज़ारों मील दूर के स्थानों को भी अब मछलियाँ भेजी जाने लगी हैं ।

३—दुनिया का सबसे बड़ा जल-प्रपात ।

सरस्वती में नियागरा नामक जल-प्रपात का वर्णन बहुत पहले निकल चुका है । इस प्रपात की जल-धारा १६४ फ़ीट ऊपर से गिरती है । इसका दृश्य बड़ाही भयङ्कर और आतङ्कजनक है । दुनिया में यह प्रपात अब तक सबसे बड़ा समझा जाता था । पर इसका नम्बर अब एक और प्रपात छीन रहा है । यह नव-ज्ञात प्रपात ब्रिटिश गायना में है । वहाँ पोटारो नाम की एक नदी है । एक जगह इस नदी की धारा ८२२ फ़ीट ऊँचे पहाड़ की चोटी से नीचे एक पाताल-तल-स्पर्शी खड्ड में गिरती है । अतएव इसकी उँचाई नियागरा-प्रपात की उँचाई से पँचगुनी हुई । गरमियों में इस प्रपात का दृश्य बरसात की अपेक्षा अधिक देखने योग्य

होता है। दूर दूर से लोग इसे देखने जाते हैं और प्रकृति के इस अद्भुत खेल को देखकर दङ्ग रह जाते हैं।

अभी इस प्रपात के सम्बन्ध की सारी बातें ज्ञात नहीं हुईं। खोज हो रही है। धीरे धीरे इसकी लीलाओं का उद्घाटन होगा।

४—आदमियों का काम कलों से।

अमेरिका के एक सचित्र पत्र में एक बड़ा ही कौतूहल-वर्धक लेख प्रकाशित हुआ है। मेक्कारमक नाम के लेखक ने उसमें अनेक चित्र देकर यह दिखाया है कि अमेरिका में हिसाब रखने का प्रायः सारा काम कलें करने लगीं। उसने ऐसी कितनी ही कलों के चित्र भी दिये हैं और विस्तार-पूर्वक बताया है कि कौन कौन काम किस तरह ये कलें करती हैं। बड़ी बड़ी दूकानों पर अब इन्हीं कलों से बेखटके काम लिया जाता है। यही कलें जमाखर्च लिखती हैं, यही बिक्री का हिसाब रखती हैं, शाम को यही विधि मिलाती हैं और रोज़ सबेरे ये यह बता देती हैं कि दूकान के किस विभाग में कितना माल है और पिछले दिन कितने की बिक्री हुई। हर कर्मचारी के पास उसके काम के अनुरूप एक एक कल रहती है। वह जो कुछ बेचता या ख़र्च करता है उसका पाई पाई का हिसाब वही रखती है। भूल कभी नहीं होती। खाते भी यही कलें रखती हैं। चिट्ठियाँ लिखने का काम जैसे अब टाइप-राइटिंग् मैशीनें करती हैं वैसे ही ये कलें हिसाब रखने का काम करती हैं। लेखक का अनुमान है कि कुछ दिनों में ये कलें टाइप-राइटिंग् मैशीनों की ही तरह सर्वत्र काम करती दिखाई देंगी।

५—एक अद्भुत टाइप-राइटिंग्-मैशीन।

रेमिंग्टन आदि की बनाई हुई टाइप-राइटिंग्-मैशीनें अब यहाँ सर्वत्र ही प्रचलित हैं। दफ़रों में, कचहरियों में, कारख़ानों में, दूकानों में—सभी कहीं उनका खटाखट शब्द सुनाई देता है। अँगरेज़ी ही की नहीं, नागरी लिपि लिखनेवाली भी मैशीनें अब बनने और बिकने लगी हैं। इन्हें देर तक चलाने से उँगलियाँ दर्द करने लगती हैं। लिखाई का काम भी बहुत अधिक नहीं होता। इन दोषों को दूर करने की चेष्टा बहुत समय से हो रही थी। उसमें अब कामयाबी के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। अमेरिका में एक जगह ब्रुकलीन है। वहाँ जान-फ्लावर नाम का एक इञ्जिनियर रहता है। वह एक ऐसी टाइप-राइटिंग् मैशीन बना रहा है जिससे काम लेने में उँगली उठाने की ज़रूरत ही न पड़ेगी। उसे सामने रखकर केवल मुँह से इबारत बोल देना पड़ेगा। लिखनेवाला बोलता जायगा, मैशीन लिखती चली जायगी। जितनी जल्दी बोलनेवाला बोलेगा उतनी ही जल्दी वह लिखती जायगी। इस मैशीन में टाइप-राइटिङ्ग् और टेलीफ़ोन दोनों के कल-पुरज़े रहेंगे। इसके सिवा और भी कितने ही अद्भुत अद्भुत पुरज़े रहेंगे जो हर तरह की ध्वनि को अक्षरों में परिवर्त्तित करते चले जायँगे। यह मैशीन प्रायः बन चुकी है। कुछ ही कठिनाइयों का हल होना बाक़ी है।। उनके भी शीघ्र ही हल हो जाने की आशा है। मैशीन तैयार हो जाने पर टेलिफ़ोनों के दफ़रों में भी लगाई जा सकेगी। उसे लगाने से मुँह से कही गई बातें आपही आप लिख भी जायँगी और यदि सुननेवाला चाहेगा तो यन्त्र के पास बैठा हुआ उन्हें सुनता भी जायगा।

६—लन्दन की विचित्रता।

दुनिया में लन्दन सबसे बड़ा नगर है। धन, आबादी और विस्तार में उसके बराबर भूमण्डल में और कोई नगर नहीं। नीचे लिखी गई कुछ बातों से ही इस कथन की पुष्टि हो जायगी:—

(१) नगर का विस्तार, जिसमें वह भाग जिसे बड़ा लन्दन (Greater London) कहते हैं शामिल है	६९२ मुरब्बा मील
(२) आबादी	७२,५२,९६३ (७२½ लाख के ऊपर)
(३) दैनिक जल-ख़र्च	३०, ३५५ मन
(४) उन वस्तुओं के दाम जो हर साल नगर में बाहर से आती हैं	२,५१,३५,२३,८१० रुपये (२½ अरब के ऊपर)

(५) उन वस्तुओं के दाम जो हर साल नगर से बाहर भेजी जाती हैं	१,४०,४१, ७०, ८९५ रुपये (लगभग १½ अरब)	
(६) नगर के बाग़ीचों तथा अन्य खुले स्थानों का विस्तार	८ मुरब्बा मील	
(७) शहर के क़ब्रस्तानों का विस्तार	६०९ एकड़	
(८) शहर की पुलिस की संख्या	१९,७६१	
(९) पारलियामेंट के मेम्बर जो शहर से चुने जाते हैं	६२	
(१०) कपड़े और सिलाई की बड़ी बड़ी दूकानें	७७	
(११) ऊपर की दूकानों में लगा हुआ धन	२२,५०,००,००० रुपये (२२½ करोड़)	
(१२) नगर के मध्य भाग से रोज़ आने-जानेवालों की संख्या	१२,५०,००० (१२½ लाख)	
(१३) मनुष्य-जन्म, प्रतिदिन	३६१	
(१४) मृत्यु, ,,	६६	
(१५) उन गलियों की लम्बाई जिनमें बड़ी भीड़ रहती है	४८½ मील	
(१६) लन्दन में रहनेवाले विदेशियों की संख्या	२,००,००० अर्थात् २ लाख	
(१७) स्कूलों की संख्या (कालेजों को छोड़कर)	१०५६	
(१८) ऊपर के स्कूलों में छात्रों की गुंजायश	८,००,००० (८ लाख)	
(१९) प्रतिदिन नगर से बाहर जानेवाले मुसाफ़िर	रेल पर ७,९०,००० (क़रीब ८ लाख)	
	सवारी गाड़ियों पर (अधिकतर मोटर कारों पर)	३,८०,००० (क़रीब ४ लाख)
	ट्रैमवे पर	५०,००,००० (पचास लाख)
(२०) किराये की गाड़ियों की संख्या (जो अधिकतर मोटर हैं)	११,०००	
(२१) ,, ,, ,, में भूल से रह गई चीज़ों की संख्या	८०,०००	
(२२) कारख़ानों में काम करनेवाले उन लोगों की संख्या जो कारख़ानों से शाम को बाहर निकलते हैं	१,७४,८५८ (१ लाख ७५ हज़ार)	
(२३) कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या	२,००,००० (२ लाख)	
(२४) नगर-निवासी, जो केवल एक कोठरी या कमरे में अपना गुज़र करते हैं	३,००,००० (३ लाख)	
(२५) ,, ,, जो खुले मैदान या बाग़ीचों में रात व्यतीत करते हैं	२,०००	
(२६) शहर में जायदाद रखनेवालों की संख्या	३४, ६००	

सबसे अधिक जायदाद के मालिक बादशाह हैं। उनसे कम के मालिक नगर के प्रधान पादरी (Ecclesiastical Commissioners), उनसे कम की मालिक सिटी कारपोरेशन (City Corporation) हैं। इन तीनों का अधिकार १९ मुरब्बा मील पर है, १८३ ज़मींदार और हैं जिनके पास कोई ¼ मुरब्बा मील कमोबेश की जायदाद है।

[सङ्कलित]

गौरीदत्त वाजपेयी

७—आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा।

यह देखकर हर्ष होता है कि बड़े लाट की कौंसिल के महामान्य मेम्बर भी अब अपने देश की रोग-चिकित्सा की उन्नति की चिन्ता करने लगे हैं। १९१६ की सरस्वती की किसी संख्या में इस चिन्ता की चर्चा हो चुकी है। इस बार, गत सितम्बर में, २३ तारीख़ को, मध्यप्रान्त के मेम्बर, राय साहब सेठ नथमल ने फिर कौंसिल में इस विषय की चर्चा की। आपने एक प्रश्न द्वारा यह पूछा कि स्वदेशी चिकित्सा की उपयोगिता बढ़ाने और उसे विज्ञान-सिद्ध बनाने के लिए भारतीय और प्रान्तीय गवर्नमेंटों ने, १९१६ से आज तक, कुछ किया या नहीं और किया तो क्या किया?

इस पर सर विलियम विन्सेंट ने यह उत्तर देने की कृपा की—

> प्रान्तीय गवर्नमेंटों से सलाह मशविरा हो चुका। उन सबकी, एक स्वर से, यही सम्मति है कि आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा को वैज्ञानिक बनाने के लिए अभी कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो लोग इन चिकित्सा-प्रणालियों के अनुसार रोग-निवारण का काम कर रहे हैं उन्हें पहले अपना सुधार करना और अपने को एक समुदाय में सङ्गठित कर लेना चाहिए। परन्तु अब तक ऐसा होने का कोई प्रमाण नहीं मिला और कहीं कुछ प्रमाण के चिह्न मिले भी हैं तो बहुत ही स्वल्प हैं। जब इस तरह का सुधार और सङ्गठन हो जायगा तभी गवर्नमेंट कुछ कर सकेगी, उसके पहले नहीं। भारतीय गवर्नमेंट की राय, तथापि, यह है कि देशी दवाओं के गुण-दोष आदि की वैज्ञानिक खोज होने से लाभ होने की सम्भावना ज़रूर है। महामान्य मेम्बर महाशय जो बात चाहते हैं उसकी सिद्धि शायद वैसी खोज से हो जाय—सम्भव है वैसी खोज से यहाँ की प्राचीन चिकित्सा-प्रणालियों की उपयोगिता बढ़ जाय। अभी हाल में गवर्नमेंट ने एक कमिटी बना दी है। वह दवाओं के कारोबार (Drugs Manufacture) के सम्बन्ध में जाँच करेगी। और और बातों के सिवा वह इस बात की भी जाँच करेगी कि देशी दवायें कुछ महत्त्व या मोल भी रखती हैं या नहीं। डाक्टरी चिकित्सा में जिन दवाओं से काम लिया जाता है उनके सिवा अन्यान्य खनिज या काष्ठादि ओषधियाँ, जिनका उपयोग यहाँ के वैद्य और हकीम करते हैं और जो यहाँ मिल सकती हैं उनके विषय में भी यह कमेटी ज्ञातव्य बातें जानने की चेष्टा करेगी।

हकीमजी और हमारे वैद्यजी इस सरकारी उत्तर को सुन लें। जी चाहे तो अपना सुधार करें और अपने समुदाय को मज़बूत सङ्गठन-सूत्र से बाँधें। तब सरकार से कुछ सहायता पाने के लिए आवाज़ लगावें। तब तक उनके खँभार, पँवार, पाढ़ी, अपामार्ग, ब्राह्मी और शङ्खपुष्पी आदि की जाँच होगी और यदि ये ओषधियाँ किसी काम की समझी गईं तो इन्हें एकत्र करने या विलायती ढङ्ग से इनके कल्क, क्वाथ, फाण्ड, क्षार, और सार आदि, बनाने के कारख़ाने भी खुल जायँगे। आप लोग यह कुछ भी न कर सकें तो अपने भपके, इमामदस्ते और पाताल-यन्त्र के भरोसे चैन की बंसी बजाते रहें। झंडू फर्मास्यूटिकल वर्क्स नाम के कारख़ाने को देखकर भी तो आपकी नींद नहीं टूटी। फिर कैसे आशा करें कि आप सुधार और सङ्गठन के फन्दे में फँसेंगे। और फँसना भी चाहें तो सुधार और सङ्गठन की कुछ विशेष व्याख्या या दिशा भी तो मालूम हो।

८—गिन्नी का मोल।

गत सितम्बर में बड़े लाट की कौंसिल की कई बैठकें हुईं। उनमें से २३ तारीख़ की बैठक में एक बड़ी ही मज़ेदार बात, प्रश्नोत्तर के रूप में, सुनने में आई। वह सचमुच ही सुनने लायक़ है। सूबे बिहार के माननीय मेम्बर श्रीयुत सच्चिदानन्दसिंह ने कहा, मैंने स्टेट्स्मैन नाम के अँगरेज़ी अख़बार में यह पढ़ा है कि—

> (क) यदि आप एक सावरेन (गिन्नी), किसी और देश से अपने साथ लाकर, इस देश के किसी बन्दरगाह में जहाज़ से उतर पड़ें तो सरकार वह गिन्नी ले लेगी और बदले में आपको ११=) दे देगी (ख) यदि आप इसी देश में हैं और दैवयोग से आपके पास एक गिन्नी है तो जो आप उसे किसी करंसी आफ़िस में (चलन बाज़ार सिक्के के दफ़्तर में, जैसा कि कानपुर में है) ले जायँगे तो आपको उसका मोल १५) मिल जायगा (ग) यदि आप उसी गिन्नी को बाज़ार में बेचने ले जायँगे तो आपको ऐसे गाहक मिल जायँगे जो उसका मोल २१) देने को तैयार हो जायँगे; मगर जो कहीं आपने उसे बाज़ार में बेच दिया तो आप मुजरिम समझे जायँगे।
>
> क्या ये बातें सच हैं? हैं, तो क्या गवर्नमेंट इस पर कुछ कारखाई करना चाहती है? हाँ, तो कैसी कारखाई? नहीं, तो क्यों नहीं? क्या गवर्नमेंट कुछ भी कारखाई न करने का कारण बताने की कृपा करेगी?

इस पर गवर्नमेंट की तरफ़ से माननीय हॉवर्ड साहब ने जो कुछ फ़रमाया उसका सार सुनिए—

> बात ऐसी ही है। सेने के तीन भाव हो रहे हैं। बाज़ार में कुछ, गवर्नमेंट के घर में कुछ और, करंसी आफ़िस में कुछ और ही। इस बेतरतीबी या विभिन्नता का कारण वे बनावटी रुकावटें हैं जिनकी सृष्टि गवर्नमेंट ने सोने की आमदनी के सम्बन्ध में की है। उनके दूर हो जाने पर यह विभिन्नता न रहेगी। चलन बाज़ार सिक्के से सम्बन्ध रखनेवाली एक कमिटी इस समय लन्दन में इन सब बातें पर विचार कर रही है। वह जब यह निश्चय कर देगी कि इस देश में सोने के सिक्के की अमुक दर होनी चाहिए तब यह सारी न्यूनाधिकता दूर हो जायगी। रही बाज़ार दर की बात सो कुछ समय से हर पन्द्रहवें दिन सरकार अपना सोना बेच रही है। इस कारण बाज़ार दर बहुत कुछ अब भी गिर गई है।

सो अभी बहुत दिनों तक बेचारी गिन्नी के मोल में स्थिरता असम्भव सी जान पड़ती है।

९—हिन्दुस्तान में मुक़द्दमेबाज़ी।

सन् १९१४ में २०,५५,२७२।
सन् १९१५ में २२,२६,४६८।
सन् १९१६ में २३,२९,०००।

दीवानी के दायर किये गये पिछले ५ वर्षों के मुक़द्दमों का औसत था २१,५३,०००। इनमें से २/३ (दो तिहाई) मुक़द्दमे नक़द या जङ्गम सम्पत्ति के सम्बन्ध में थे, और बाक़ी मुक़द्दमों में आधे माल के थे। मुक़द्दमेबाज़ी में बङ्गाल का नम्बर अव्वल रहा, उससे उतरकर मद्रास का और फिर पञ्जाब का। फ़ी सदी ५३ मुक़द्दमे सिर्फ़ ५०) तक की रक़मों के लिए दायर किये गये और ९५ सैकड़ा ५००) तक। ख़फ़ीफ़ा के मुक़द्दमों में संयुक्त-प्रदेश का नम्बर प्रथम रहा। यदि ये मुक़द्दमे अदालतों में न जाकर पञ्चायत ही से तय हो जाते तो क्या ही अच्छी बात होती। सन् १९१६ में १६,६९,६७० नालिशें हुईं और ये भी २४,३६,०७,०३४ की आबादी में। १०,११,२१० को सज़ा हुई। सन् १८८९ में फ़ी १०००० की आबादी पीछे ३८ लोगों को सज़ा हुई थी, परन्तु १९१६ में ४२ को। जुर्म भी बढ़ते ही जाते हैं।

१०—काठमाण्डू के कुछ दृश्य।

नैनीताल, अलमोड़ा, मन्सूरी आदि स्थानों में घूमकर मुझे नैपाल देखने की इच्छा हुई। यह मेरे बड़े ही सौभाग्य की बात थी कि मुझे इस प्रदेश में घूमने के लिए शीघ्र ही सुविधा हो गई। यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व मुझे कब आशा थी कि वैज्ञानिक-शिल्प आर्य्य-कारीगरी से मिलकर बड़े बड़े पहाड़ों के बीच एक विस्तीर्ण घाटी में छिपा बैठा है। इस घाटी के निवासी अपने निवास को 'नैपाल' नाम से पुकारते हैं, परन्तु हम इस शब्द से नैपाल का सम्पूर्ण प्रदेश अभिहित करते हैं।

घाटी में प्रवेश करते ही सात मील की दूरी से काठमान्डू के सफ़ेद महलों का समूह नज़र आता है। और उसके बीच से एक मीनार भी अपनी ऊँचाई का गर्व दिखाती है। वहाँ के लोग इसे 'धरारा' कहते हैं। यह शहर के दक्षिण कोने में अपने बनानेवाले जनरल भीमसेन थापा के स्मारक-यश को बढ़ा रहा है। बाग़मति के किनारे पर यह विशाल मीनार खड़ी है। इसकी ऊँचाई बनते समय २३० फ़ीट थी पर दो बार वज्रपात से वह ऊँचाई घट गई और अब सिर्फ़ २०० फ़ीट ही रह गई है।

धरारा (मीनार)।

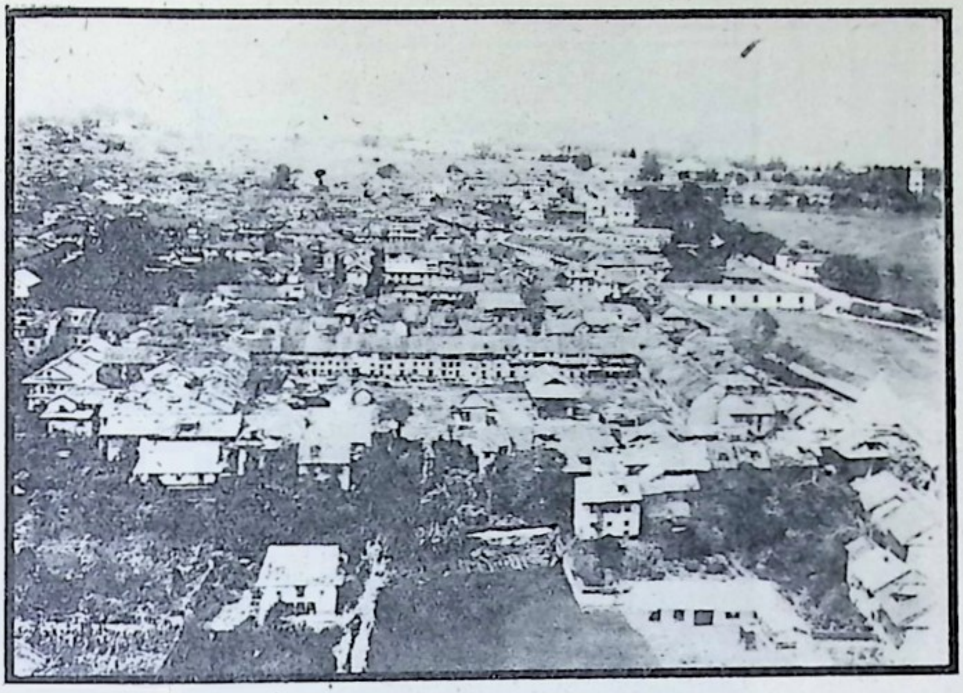

काठमांडू नगर के पूर्वोत्तर भाग का एक दृश्य (धरारा पर से)।

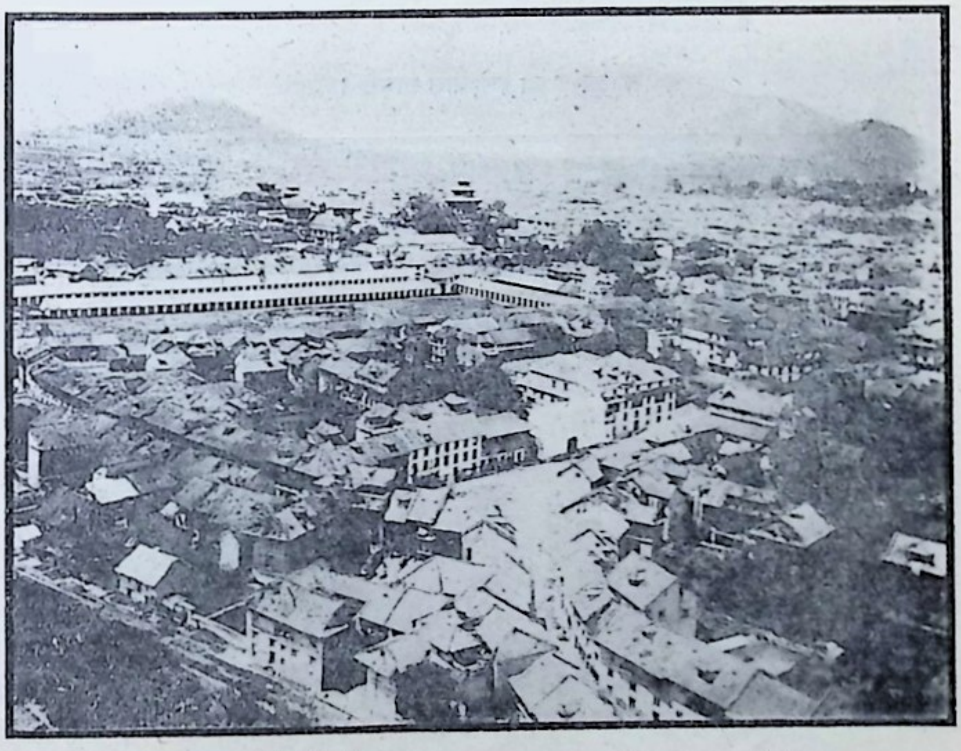

काठमांडू नगर के पश्चिमोत्तर भाग का एक दृश्य (धरारा पर से)।

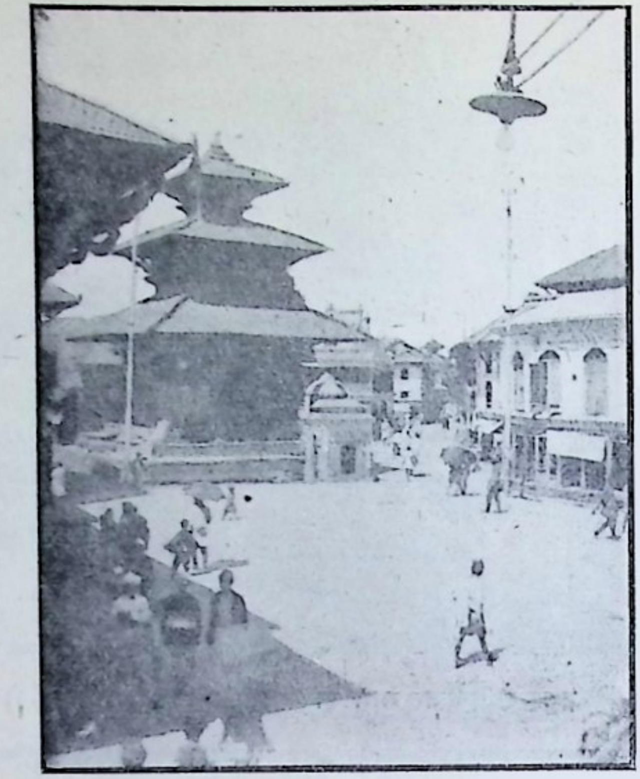

काठमांडू का इन्द्रचौक बाज़ार ।

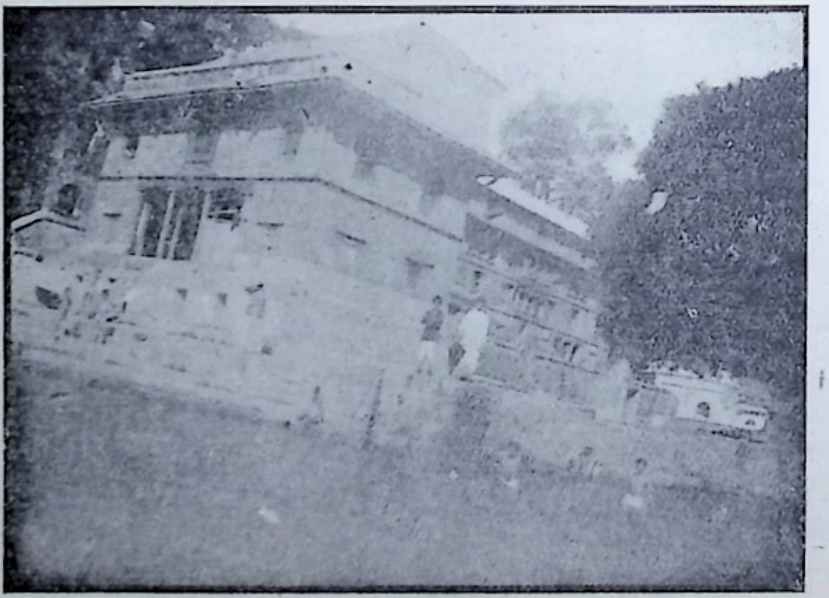

गुंजेश्वरी घाट ।

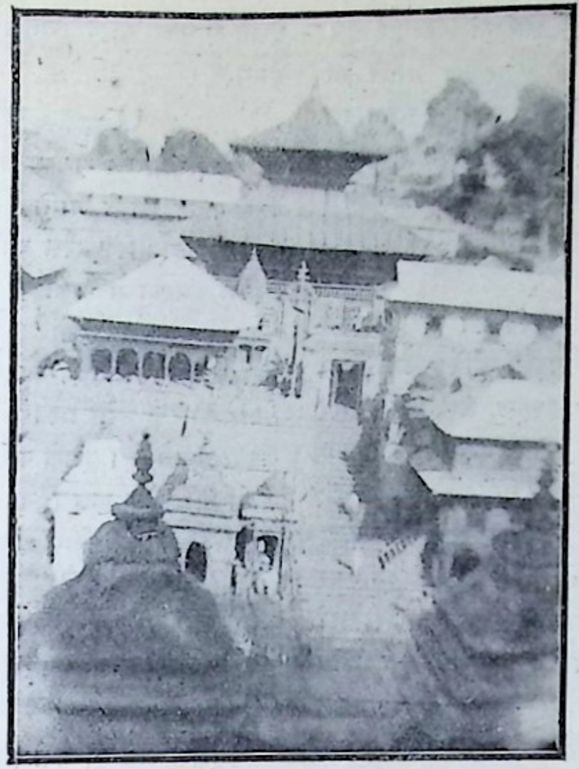

पशुपतिनाथ का मन्दिर।

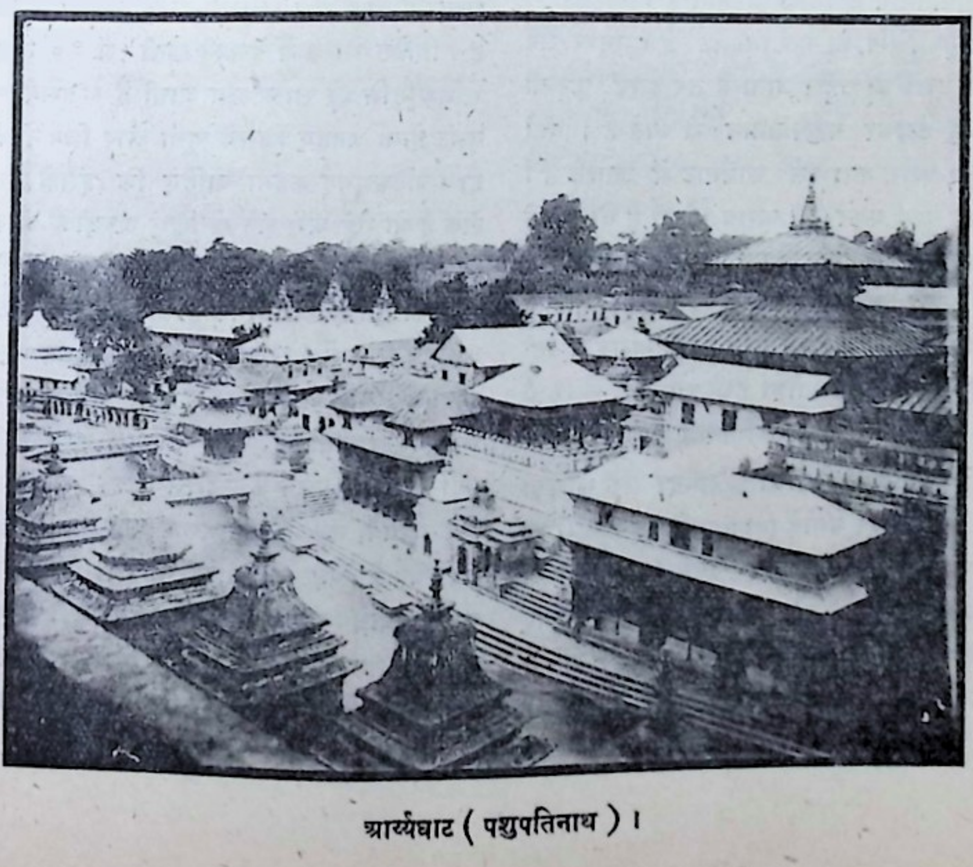

आर्य्यघाट (पशुपतिनाथ)।

इसके अन्दर ही अन्दर फेरदार सीढ़ियां बनी हुई हैं। जब जङ्गबहादुर लेफ़्टनेन्ट ही थे और जब धरारा भी अपनी पूरी २३० फ़ीट की ऊँचाई में था, उस समय उस वीर जङ्ग ने अपने हाथों में दो छत्रियां ले मीनार से ज़मीन पर कूदकर अपने महाराजाधिराज को प्रसन्न किया था। इस मीनार से शहर का बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है।

देदीप्यमान रमणीय महल, बिजली से प्रकाशित लम्बी-चौड़ी और साफ़-सुथरी सड़कें, पवित्र ठण्डे पानी के नल, बाज़ार, परेड, घंटाघर, स्कूल, अस्पताल आदि नाना प्रकार के स्थानों से युक्त, क़रीब आध लाख नैपालियों से भरा हुआ काठमाण्डू शहर बाग़मति और विष्णुमति के सङ्गम पर बसा हुआ है। इस शहर का प्रसिद्ध बाज़ार इन्द्रचौक है। इन्द्रचौक से तीन मील की दूरी पर नगर की पूर्वोत्तर दिशा में बाग़मति नदी गुञ्जेश्वरी घाट होती हुई पशुपतिनाथ की ओर बहती है। यात्री लोग पशुपतिनाथ का दर्शन करने से पहले इस घाट पर स्नान कर लेते हैं। तत्पश्चात् गुञ्जेश्वरी के दर्शन कर कैलाश पर्वत के ऊपर से होते हुए आर्य्यघाट के निकट बाग़मति को पारकर पशुपतिनाथ के मन्दिर में जाते हैं।

आर्यघाट नैपालियों का स्मशान-घाट है। मनुष्य जब अपनी अन्तिम दशा को पहुँच जाता है तब उसके कुटुम्बी उसे शय्या में उठाकर पशुपतिनाथ ले जाते हैं। वहाँ पशुपतिनाथ का दर्शन करा उसे आर्यघाट में उतारते हैं। यदि बीमार की दशा बहुत ही ख़राब होती है तो उसके पैर बाग़मति में डुबा उसे एक शिला पर लिटा देते हैं और उसके मुँह में पानी डालकर उसका कष्ट शीघ्र ही दूर कर देते हैं। पर यदि बीमार की दशा उतनी ख़राब न रही तो उसे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा इसी आर्यघाट के किसी विश्राम-स्थान (rest-house) में करनी पड़ती है।

आर्य्यघाट से पशुपतिनाथ जी के मन्दिर तक सीढ़ियां बनी हुई हैं। यह मन्दिर पगोदे (pagoda) मन्दिरों की भांति बना हुआ है। इसके अन्दर चतुर्मुखी शिव जी की पत्थर की मूर्त्ति है। प्रत्येक मुख के दर्शन करने के लिए मन्दिर के चारों दरवाज़ों से देखना पड़ता है। इस मन्दिर के चारों ओर बहुत से छोटे छोटे मन्दिर हैं जिन्हें देखने से एक अपूर्व धार्मिक गम्भीरता का भाव उत्पन्न होता है। (पद्मा)

११—अलसी या तीसी।

इस बीज को मनुष्य-जाति बहुत दिनों से जानती है। पहले-पहल आर्य्य जाति ने अपने पुरातन स्थान में जो कि काले समुद्र और फ़ारस की खाड़ी के बीच में था, इसको जङ्गली अवस्था में पाया था। इसका पौधा अति प्राचीन है। “अतसी स्यादुमा क्षुमा”। जैसे इस समय आयरलेंड और रूस इत्यादि स्थानों में अलसी के पौधों के रेशों से कपड़ा तैयार करते हैं उसी प्रकार प्राचीन भारतवासी भी इससे कपड़ा बनाते थे। इसके कपड़ों का वर्णन पुराणों में पाया जाता है। परन्तु कुछ दिनों से इस देश में अलसी की खेती केवल बीज ही के लिए होती है। इस समय के सरकारी कृषि-विभागों ने कहीं कहीं इसकी खेती रेशे के लिए कराई, जिसका वर्णन पूसा-कृषि-विद्यालय के बुलेटिनों में छपा है और जिसके पढ़ने से इस काम की सफलता भी मालूम होती है।

इसके बीज दो प्रकार के होते हैं, एक सफ़ेद और दूसरे लाल। सफ़ेद अलसी का तेल लाल अलसी के तेल से अच्छा होता है और लगभग दो फ़ी सैकड़ा अधिक भी होता है। ब्रिटिश-भारत में इसकी खेती में ३० लाख एकड़ से अधिक भूमि हर साल लग जाती है। इसके लिए भूमि दूमट होना चाहिए जिसमें चूना और चिकनी मिट्टी अधिक हो। बल्कि यह कहना चाहिए कि इसके लिए वह भूमि ठीक है जो गेहूँ और चने के लिए अच्छी है और यह चने के साथ बोई भी जाती है। इसके लिए गहरी और भली रीति की जुताई लाभदायक होती है। यह भाद्रपद अथवा आश्विन मास में चार से छः सेर तक हर एकड़ में बोई जाती है। यदि और देर में बोई गई तो इसे सींचने की आवश्यकता होती है, नहीं तो जल की कुछ ऐसी ज़रूरत नहीं। जब यह पकने के लगभग हो अथवा इसमें फूल निकल आयँ, तब जल हानिकारक हो जाता है। फाल्गुन तथा चैत्र में यह पक जाती है और पौधों को काटकर फलों से बीज अलग कर लिये जाते हैं। लगभग छः से आठ मन तक अलसी हर एकड़ में उत्पन्न होती है। इसका भूसा जानवरों के खाने के काम में नहीं आता; परन्तु

कहीं कहीं इसकी लकड़ी को जल में सड़ाकर इसके रेशों को अलग कर लेते हैं जिनसे रस्सी, डोर इत्यादि बना लेते हैं।

जब अलसी के पौधे वृक्ष से अलग कर लिये जाते हैं तब उनसे तेल निकाला जाता है। यदि बीज कच्चे रह जायँ तो उनसे तेल कम निकलता है और अधिक पतला होता है। काटने के बाद ही यदि अलसी से तेल निकाल लिया जाय तो भी कम निकलता है। इसलिए इसको तीन-चार महीने किसी सूखी जगह में रखकर फिर पेरते हैं जिससे तेल अच्छा और अधिक निकलता है। इसमें २१ से २८ फ़ी सैकड़ा तेल रहता है अर्थात् १ भाग अलसी से लगभग १/४ भाग तेल निकल आता है।

अलसी के ख़ालिस अथवा स्वच्छ तेल में गन्ध और रङ्ग अत्यन्त कम होता है, परन्तु बाज़ार का तेल बहुत पीला होता है और उसकी गन्ध भी अच्छी नहीं होती। जब यह तेल किसी काँच के ऊपर पतला पतला लगाकर वायु में रख दिया जाता है तब यह सूखकर एक पपड़ी का रूप धारण कर लेता है। इस गुण के कारण अलसी के तेल का व्यवहार बहुत कामों में होता है। इससे लकड़ी और लोहे के रँगने के लिए पेन्ट (paint) अथवा रङ्ग का लेप बनाते हैं। यदि पूर्वोक्त वस्तुएँ रँगनी हों तो इसके लिए निम्नलिखित उपाय से रङ्ग तैयार करे। अगर सफ़ेद रङ्ग चढ़ाना है तो सफ़ेदा अथवा खड़िया ले। यदि लाल रँगना है तो सेंदुर, और गहरा लाल रँगना है तो गेरू या हिरमिजी ले। जो पीला रँगना हो तो पीली मिट्टी अथवा रामरज ले। फिर इन चीज़ों को पीसकर अत्यन्त महीन कर ले जिसमें दरदरापन बिलकुल न रहे। इसके बाद अलसी के तेल को एक बटलोई में धीमी आँच पर गरम करे और पूर्वोक्त रङ्गों में से किसी एक रङ्ग को उसमें धीरे धीरे डाले और इतना घोटे कि तेल और रङ्ग एक-दिल हो जायँ। यदि पतला रखना है तो उतना ही तेल अधिक डाले। रङ्ग अनेक हैं, इस कारण सबोंका वर्णन यहां नहीं कर सकते। जब रँगना लेप तैयार हो जाय, तब उसको जिस वस्तु को रँगना हो उसके ऊपर लेप कर दे; फिर सूखने के लिए ऐसी जगह में रख दे जहां हवा जाती-आती हो और चीज़ धूल से बची रहे।

इस तेल से छापेख़ाने की स्याहियां बनती हैं। इन स्याहियों का एक मुख्य गुण शीघ्र सूखने का होता है; इसलिए इनमें अलसी के तेल का प्रयोग किया जाता है। पहले अलसी के तेल का वारनिश बनाते हैं, फिर उसमें रङ्ग को अच्छे प्रकार से घोटते हैं जिससे छापने की स्याही तैयार हो जाती है।

वारनिश बनाने की विधि—पहले राजिन (राल) को एक तांबे के बर्तन में आंच के ज़रिये से गलाते हैं और अलसी के तेल को दूसरे तांबे के बर्तन में २६०° सेन्टीग्रेड दरजे तक गरम करते हैं। फिर उस गरम तेल को गली हुई राजिन में मिलाते हैं और ख़ूब चलाते हैं। जब दोनों एक-दिल हो जाते हैं तब इसको लोहे के बरतनों में रख देते हैं। जब मिश्रण ठण्ढा हो जाता है तब उसमें तारपीन का तेल मिलाकर पतला करते हैं और फिर एक बड़े बरतन में भरकर रख देते हैं। समय पाकर यह वारनिश स्वयं स्वच्छ हो जाता है। इसे अलसी के तेल का वारनिश (linseed oil varnish) कहते हैं।

जब यह वारनिश तैयार हो जाता है, तब स्याही बनाने के लिए इसमें रङ्ग मिला देते हैं। काली स्याही के लिए काजल डालते हैं और ख़ूब घोटते हैं। जैसी स्याही दरकार हो उसीके अनुसार काजल का परिमाण मिलाते हैं। समाचार-पत्रों की स्याही में ७६ फ़ी सैकड़ा वारनिश और २४ काजल; किताबों की स्याही के लिए ७७ वारनिश और २३ काजल मिलाते हैं। रङ्ग अधिक काला करने के लिए कभी कभी नील एक वा दो भाग हर सैकड़े में मिला दिया करते हैं। रङ्गीन स्याही के बनाने में काजल के स्थान में और रङ्ग मिला देते हैं। लाल स्याही के बनाने में मजीठ अथवा और कोई लाल रङ्ग वारनिश में मिलाते हैं। नीली स्याही के लिए अल्ट्रामेरीन (ultramarine) अथवा प्रूशियन ब्लू; पीली के लिए क्रोमयलो मिलाते हैं।

इस तेल से एक प्रकार का साबुन भी बनता है जिसको साफ़्ट सोप (soft soap) अर्थात् मुलायम साबुन कहते हैं, और जो तेल के समान पतला होता है। इसके बनाने के लिए कास्टिक सोडा अथवा कास्टिक पोटाश और अलसी का तेल अथवा बिनौले का तेल होना आवश्यक है। यद्यपि इस साबुन के बनाने में अन्य तेलों का भी प्रयोग किया

जाता है तथापि अलसी के तेल और कास्टिक पोटाश से जो साबुन बनता है वह औरों की अपेक्षा उत्तम होता है। कास्टिक सोडा और कास्टिक पोटाश बने बनाये बिकते हैं, परन्तु साधारण मनुष्य इनको अपने घर में भी बना सकता है। कास्टिक सोडा सज्जी मिट्टी और चूने से बनता है। और कास्टिक पोटाश केले के पौधों अथवा आलू के पौधों की राख और चूने से बन जाता है। एक लोहे की कड़ाई में सज्जी मिट्टी अथवा केले की राख को १० गुने पानी में घोले और इसमें चूना मिला दे। फिर दोनों को खूब खौलावे और थोड़ी देर के लिए स्थिर रहने दे। इसके बाद थोड़ा सा ऊपर का जल निथार ले अथवा ब्लाटिङ्ग काग़ज़ से एक शीशी में छान ले और फिर इसमें थोड़ा गन्धक अथवा नमक का अम्ल डाले। यदि फेन न उठे तो जानना चाहिए कि कास्टिक तैयार हो गया। यदि फेन उठे तो उसमें और चूना मिलाकर फिर खौलावे। जब तक कि अम्ल के मिलाने से फेन उठना बन्द न हो तब तक इसी प्रकार करता रहे। जब फेन उठना बन्द हो जाय, तब कड़ाई को उतार ले और स्थिर होने के लिए रक्खा रहने दे। थोड़ी देर बाद सब कास्टिक जल में घुलकर ऊपर आ जायगा और कूड़ा-कर्कट नीचे बैठ जायगा।

तदुपरान्त दूसरी कड़ाई में तेल ले और उसके नीचे आँच करे और फिर धीरे धीरे उसमें कास्टिक का घोल मिलाता जाय और अच्छे प्रकार से चलाता भी जाय। इस घोल को तेल में इतने प्रमाण से मिलावे कि कड़ाई को आँच पर से उतारने के बाद तेल ऊपर छेहरा न आवे। यदि तेल छेहरा आवे तो जानना चाहिए कि अभी अधिक कास्टिक मिलाने की आवश्यकता है। जब साबुन में तेल बिलकुल न मालूम दे तब जाने कि साबुन तैयार हो गया। इससे कपड़े आदि धोये जा सकते हैं।

इस तेल से नक़ली रबर भी बनता है। जब वह तेल गन्धक के साथ गरम किया जाता है तब एक लचीली ठोस वस्तु रबर के समान तैयार हो जाती है जो कि बाइसिकलों और मोटरकार के पहियों के रबर में बहुतायत से मिलाई जाती है।

यदि अलसी का तेल एक ताँबे की बटलोई में बाष्प (steam) से गरम किया जाय और उसके भीतर धौंकनी के ज़रिये से हवा दी जाय तो ५ या ६ घण्टे में तेल गाढ़ा हो जायगा। तदनन्तर इस गाढ़े तेल को तश्तरियों में भर दे। ठण्डा होने पर तेल एक ठोस लचीली वस्तु का रूप धारण कर लेता है। इसको अँगरेज़ी में लिनाक्सिन (linoxyn) अथवा (solid linseed oil) ठोस अलसी का तेल कहते हैं। यह वस्तु आयल क्लाथ (oil-cloth) के बनाने में काम आती है। आयल क्लाथ एक प्रकार का कपड़ा होता है जो रूप में जूते बनाने के चमड़े के वारनिश के समान होता है और लोग इसको मेज़ों पर बिछाते हैं। इससे जूते भी बनवाते हैं और अनेक काम इससे लेते हैं जिनसे पाठकगण परिचित भी होंगे। जब आयल क्लाथ बनता है तब पहले ठोस अलसी के तेल को भाफ की उष्णता से गलाते हैं, फिर उसमें राजिन गोंद, काजल और पिसा हुआ काग (cork) मिलाते हैं। इस मिश्रित वस्तु को कलों और बेलनों के ज़रिये से खूब एक-दिल करके कपड़े के ऊपर चढ़ा देते हैं और फिर विशेष कलों से इस मिश्रित वस्तु की तह के ऊपर वारनिश फैला देते हैं जो कि शीघ्र सूख जाता है और कपड़े के ऊपर अत्यन्त चमक उत्पन्न कर देता है।

लोहे और लकड़ी को चमकदार करने के लिए लोग उन पर इस तेल का वारनिश लगाते हैं। यह वारनिश बनाने की विधि अति सरल है। एक ताँबे की बटलोई में तेल लो, फिर उसमें उतना ही जल मिला दो और चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर उसे खौलाओ, उसी समय एक धौंकनी के ज़रिये से तेल के भीतर हवा देते जाओ। २ या ३ घण्टे बाद बटलोई को चूल्हे से उतार लो और ठण्डा होने पर तेल को पानी से अलग कर लो। फिर इस तेल को किसी लोहे के सामान के ऊपर लेप कर दो और सूखने के लिए रख दो। दो या तीन घण्टे बाद तेल सूख जायगा और सामान चमकदार हो जायगा।

उपर्युक्त, लेख से दर्शित होता है कि पश्चिमीय विज्ञानवेत्ताओं ने अलसी के तेल से कितने ही उपयोगी कार्य किये हैं। इसलिए हम भारतवासियों को भी उचित है कि विज्ञान का प्रचार तन, मन, धन से करें। इससे पहला लाभ तो यह होगा कि भारतवर्ष में ज्ञान बढ़ेगा, दूसरे आर्थिक उन्नति भी होगी, क्योंकि करोड़ों मन अलसी हर

वर्ष हिन्दुस्तान से योरप जाती और वहाँ से उसकी बहुमूल्य वस्तुयें बनकर फिर यहाँ बिक्री के लिए आती हैं जिनसे पश्चिमीय मनुष्य लाभ उठाते हैं। वही लाभ हमारे भारतवासी भी उठाने लगेंगे। तीसरा बड़ा लाभ यह होगा कि कुछ बेकार भारतवासियों को काम मिल जायगा।

१२—एन्ड्रू कार्नेगी।

गत ११ अगस्त १९१९ को मिस्टर एन्ड्रू कार्नेगी का देहान्त हो गया। ये बड़े विलक्षण पुरुष थे। इनका जन्म १८३७ में हुआ था। लड़कपनही में इन्होंने एक जुलाहे की नौकरी की। फिर तार-घर के चपरासी बने। क्रमशः इन्होंने तार का काम सीखा और पेनी सिलवेनिया रेल ऐंड कम्पनी में सुपरिन्टेन्डेन्ट हो गये। कुछ काल के अनन्तर उडरफ़ स्लीपिङ्गकार कम्पनी में इनका साझा हो गया और इन्होंने कुछ सम्पत्ति एकत्र की। फिर क्या था? इस पूँजी से इन्होंने कई कम्पनियाँ खड़ी कीं और अमेरिका ही में नहीं, किन्तु सारी दुनिया के बड़े मालदारों में इनकी गणना हो गई। इनकी आमदनी प्रतिदिन ७५०००) रुपये थी। धनोपार्जन के साथ ही साथ ये बड़े उदार और दानी भी थे। संसार में इनकी प्रतिष्ठा दान ही से हुई। जुलाई १९१८ तक इन्होंने परोपकार में १,०५,००,००,०००) रुपये ख़र्च किये। पुस्तकालयों और छात्रवेतनों में इनका बहुत कुछ धनव्यय हुआ करता था। इनका सिद्धान्त था कि किसी धनी को बहुत रुपया छोड़कर न मरना चाहिए। धन की शोभा दानही में है। किया भी इन्होंने ऐसा ही।

१३—योरोपीय महायुद्ध में भारतवर्ष की ओर से सहायता।

योरोपीय महायुद्ध में भारतवर्ष से करोड़ों रुपयों की सहायता तो दी ही गई किन्तु सैनिकों की सहायता भी कम नहीं रही। जब लड़ाई आरम्भ हुई भारतवर्ष की सेना में रिज़र्वों को मिलाकर केवल १,९४,००० सिपाही थे। लड़ाई के समय में ७,९१,००० और भरती हुए और भारतवर्ष की सेना ९,८५,००० आदमियों की हो गई। इनमें से ५,५२,००० सिपाही भारतवर्ष से समुद्र पार लड़ने के लिए भेज दिये गये। फ़ौज में ऐसे लोग जिनका काम लड़ने का नहीं है लड़ाई के शुरू होने के पहले सिर्फ़ ४५,००० थे। लड़ाई के समय में ऐसे ४,२७,००० आदमी भरती किये गये और इनमें से ३,९१,००० समुद्र-पार रवाना कर दिये गये थे। भारतवर्ष की ओर से कुल १४,५७,००० सैनिकों की सहायता रही जिनमें से ९,४३,००० समुद्र-पार गये। १,०६,५२४ सिपाही काम आये परन्तु इनमें ३६६९,६ भी शामिल हैं जिनकी मृत्यु अन्यान्य कारणों से हुई। सैनिकों के अतिरिक्त १,७५,००० जानवर भी भारतवर्ष से समुद्र-पार भेजे गये।

१४—अमेरिका में हिन्दुस्तानी एसोसियेशन और अमेरिका के लिए हिन्दुस्तानी शिक्षा-कमीशन।

सरस्वती के पाठक श्रीयुत रामकुमार खेमका से परिचित होंगे। ये अमेरिका में हैं और सरस्वती पर कृपा किया करते हैं। इनके उद्योग से अमेरिका में हिन्दुस्तान एसोसियेशन स्थापित हुई है, जिसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दुस्तान के विषय में अमेरिकावालों के ज्ञान की वृद्धि करना और हिन्दुस्तानियों की अमेरिका के विषय में। यह संस्था एक और बड़ी संस्था की शाखा है जिसका नाम है World's Hindustanee Students' Federation अर्थात् समस्त संसार के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों का संघ। अमेरिका के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की इस एसोसियेशन (संस्था) में २०० विद्यार्थी सभासद् हैं और ये अमेरिका के भिन्न भिन्न विद्यालयों में शिक्षा पा रहे हैं। इसका वर्तमान कार्य्यालय न्यूयार्क में है। यह संस्था न तो राजनैतिक है और न किसी विशेष धर्म्म ही से इसका सम्बन्ध है। इसके मुखपत्र का नाम है 'हिन्दुस्तानी स्टूडेन्ट'। इस संस्था की एक कमेटी अमेरिका के व्यापार और शिक्षा के विषय में हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों और व्यापारियों को ख़बरें देती है और हर तरह की सहायता देती है। ऐसे विद्यार्थियों को जिन्हें आर्थिक कष्ट है क़र्ज़ देकर धन की भी सहायता करती है। अपने उद्देश्य की सफलता के लिए यह व्याख्यान और सम्मेलन इत्यादि भी कराती है। इस एसोसियेशन के आनरेरी मेम्बर सर रवीन्द्रनाथ टेगोर, मिस जेन एडम्स, मिसज़ सरोजिनी नैडू, हर हाइनस बेगम भोपाल प्रभृति हैं।

इसके सभापति हैं श्रीयुत रामकुमार खेमका ।
उपसभापति बी० एन० बैसाख और एस० आर० मण्डल ।
मन्त्री एस० एन० बोस ।
ख़ज़ाञ्ची ए० के० सोम ।
बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स के मेम्बर हैं
बी० बी० सरकार, जी० बी० देसाई, जे एल० अर्जाला ।

इसी संस्था के प्रधान सदस्य सुधीन्द्र बोस, एम० ए०, पी० एच० डी० आयोवा यूनिवर्सिटी (अमेरिका) में अध्यापक हैं । आपने हमारे पास एक लेख भेजा है जिसमें उन्होंने हमारे देशवासियों से प्रार्थना की है कि वे एक (Indian Educational Commission) अर्थात् हिन्दुस्तानी शिक्षा-कमीशन अमेरिका भेजें । उनकी विनय विशेषकर काशी-विश्वविद्यालय, भावी मोहमडन यूनिवर्सिटी, मैसोर यूनिवर्सिटी इत्यादि संस्थाओं के सञ्चालकों से है । उनका कहना है कि लोग अमेरिका जाकर वहाँ के विद्यालयों को देखें और हिन्दुस्तान के शिक्षालयों को सुधारें । हिन्दुस्तान क्या योरप भी शिक्षा के विषय में अमेरिका से बहुत पीछे है ।

१५—इलाहाबाद हाईकोर्ट के नये चीफ़ जस्टिस ।

इलाहाबाद हाईकोर्ट के नये चीफ़ जस्टिस ।

इलाहाबाद हाईकोर्ट के नये चीफ़ जस्टिस सर ग्रिमउड मियर्स गत २६ अक्टोबर को प्रातःकाल प्रयाग पहुँचे और दूसरे ही दिन उन्होंने हाईकोर्ट में अपना काम शुरू कर दिया । उन्हें उत्तर देते समय सर ग्रिमउड ने वकीलों और जजों के कर्तव्य पर एक अच्छा व्याख्यान दिया । कार्यारम्भ के पहले वहाँ के जजों और हाईकोर्ट के अन्यान्य अफ़सरों, वकीलों और बैरिस्टरों ने उनका स्वागत किया । सर ग्रिमउड सन् १८९५ में बैरिस्टर बने थे । १९१४ और १९१५ में होम-सेक्रेटरी रहे । और १९१६ में जब आयर्लैंड में गड़बड़ हुई थी तब भी सर ग्रिमउड मियर्स ने बड़ा काम किया । १९१६ अगस्त से जनवरी १९१८ तक डार्डनल्स-कमीशन में उन्होंने कार्य्य किया और सन् १९१७ में आप नाइट बनाये गये । बेल्जियम के महाराज ने भी इन्हें नाइट आफ़ आर्डर आफ़ क्राउन आफ़ बेल्जियम बनाया ।

आशा है कि ये इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश के पद को सुशोभित कर भारतवर्ष और विशेषतः संयुक्त-प्रान्त का कल्याण करेंगे ।

१६—क्या गाड़ी का चाक घूमता है ?

बुई सोमर साहब इण्डियन प्रेस के प्रसिद्ध चित्रकार हैं। उनकी कल्पना है कि गाड़ी का चाक घूमता नहीं। प्रमाण ? उन्हीं के मुख से सुनिए—"लोग कहा करते हैं कि गाड़ी का चाक घूमता है, पर यह केवल भ्रम है। यथार्थ में वह धरती पर से लुढ़कता जाता है। चाक तभी घूम सकता है जब उसका धुरा जिस पर वह चक्कर खाता है स्थिर रहे। जब यह धुरा कसा हुआ नहीं रहता किन्तु घूमता रहता है और अपने साथ चाक को चक्कर खिलाता है, उस समय चाक यथार्थ में घूमता नहीं है किन्तु लुढ़कता है और इस दशा में उसकी गति वृत्ताकार नहीं होती।

जिसे इस विषय की सत्यता की परीक्षा करनी हो वह सड़क पर कुछ तेज़ी से जाती हुई गाड़ी के चाकों को ध्यानपूर्वक देखे। इससे उसे मालूम होगा कि धरती के पास के आरे तो साफ़ दिखाई देते हैं, पर कुछ ऊपरवाले धुँधले दीख पड़ते हैं। इसका कारण क्या है ?

हम जानते हैं कि कोई भी सरल वा वक्र रेखा बिन्दुओं का एक तांता है। अब यदि हम चाक की परिधि को एक अनादि और अनन्त रेखा समझ लें तो उसमें भी ऐसा ही बिन्दुओं का तांता मिलेगा। इनमेंसे प्रत्येक बिन्दु धरती से स्पर्श होते ही स्थिर हो जाता है और धरती को छोड़ने पर क्रमशः बढ़ते हुए वेग से ऊपर और आगे को चलता है। जब वह ऊँचे से ऊँचे स्थान पर पहुँचता है तब उसका वेग सबसे अधिक हो जाता है और तब वह उसी अनुपात में घटते हुए वेग से नीचे और आगे की ओर चलकर एक बार फिर पृथ्वी का स्पर्श करता है और कुछ समय के लिए स्थिर हो जाता है। जब तक गाड़ी चलती रहेगी तब तक यह प्रक्रिया भी जारी रहेगी।

आगे जो उदाहरण दिया जाता है उससे इस लेख का अर्थ सहजही समझा जा सकता है। किसी डिब्बे का गोल ढकन लेकर उसके बीचोंबीच एक छेद करो और उसमें से एक कीला या आलपीन डालकर उसे चाक के समान बनालो। उसके किनारे (परिधि में) पेन्सिल की नोक का छोटासा टुकड़ा जमा दो और ढकन को किसी रूल के किनारे इस तरह चलाओ कि उसके नीचे रक्खे हुए काग़ज़ पर पेन्सिल की नोक का चिह्न बन जाय। तब मालूम होगा कि उस बिन्दु (पेन्सिल की नोक) ने वृत्तार्द्ध-रूपी रेखा खींची है। इसी प्रकार चाक की परिधि के प्रत्येक बिन्दु की गति से वृत्तार्द्ध-रेखा बनेगी। इससे सिद्ध होता है कि पहिया घूमता नहीं

पुस्तक-परिचय।

१—**अनुभूत-योगमाला**—यह पुस्तक १०० सफ़े की है। जिल्द चढ़ी हुई है। काग़ज़, छपाई साधारण है। मूल्य ॥) है। कानपुर के राजवैद्य किशोरीदत्त जी शास्त्री ने इसकी रचना की है। साधारणतः जितने मुख्य मुख्य रोग हैं उन सभी पर, सरल हिन्दी भाषा में, अच्छे अच्छे योगों का उल्लेख इसमें किया गया है। योगों से मतलब दवाओं से है ! ये सभी योग अनुभूत हैं। यह बड़े ही महत्त्व की बात है। दवाओं के नाम, उनकी तौल, उनको बनाने और खिलाने की विधि, तथा उनके गुण, बोलचाल की भाषा में, लिख दिये गये हैं। कुछ योग तो वैद्यक के प्रामाणिक ग्रन्थों के हैं, कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्यों के और कुछ निज के जाने हुए हैं। पर हैं सब अनुभव किये हुए। देहात में जहां वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों की पहुँच नहीं वहां इन सीधे-सादे नुसखों से गृहस्थ-मात्र को लाभ पहुँच सकता है। शहरों और क़सबों में भी इन योगों से, साधारण दशा में, रोग-निवारण हो सकता है। इनके प्रयोग से रुपये की भी बचत हो सकती है। इन कारणों से यह पुस्तक बड़े काम की है। लेने और सङ्ग्रह करने लायक़ है।

⁂

२—**Indian Home Rule (इण्डियन होमरूल अथवा भारतीय स्वराज्य)**—यह छोटी सी पुस्तक महात्मा गान्धी की लिखी हुई है। इसे गणेश एण्ड कम्पनी मदरास ने प्रकाशित किया है। पुस्तक अँगरेज़ी में है, परन्तु पहले-पहल यह गुजराती में लिखी गई थी। उसीका अनुवाद अँगरेज़ी में कर दिया गया है। मूल्य पुस्तक के पृष्ठ पर कुछ नहीं दिया गया परन्तु ।=) में आ जाती है। यद्यपि महात्मा गांधी के सत्याग्रह-सम्बन्धी विचार अब भले प्रकार लोगों को विदित हो गये हैं, तथापि इस विषय में उनके मत का और भी पता लगाना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। इसके पढ़ने से महात्माजी

के विचार भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति, शिक्षा, कल, पुतलीघर, वकील, डाक्टर, रेल इत्यादि के बारे में मालूम हो जाते हैं। भारतवर्ष के उद्धार होने के उपाय भी बतलाये गये हैं। महात्माजी के सभी सिद्धान्तों से कोई सहमत हों या न हों परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके विचारों में मौलिकता है और मत-प्रकाश करने की विधि में निर्भयता। पुस्तक शिक्षाप्रद होने के साथ साथ रोचक भी है। इस पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद अभी हमारे पढ़ने में नहीं आया।

⁂

३—सौ वर्ष जीवित रहने के सुगम उपाय—लेखक छीतरसिंह (सी . एस) द्विवेदी। पुस्तक का मूल्य =) और डा० म०)॥ है। और मिलने का पता सी० एस० द्विवेदी, सुल्तानपुरा, आगरा छावनी। जीवनसुधार-पुस्तक-माला की यह पहली ही पुस्तक है। पुस्तक का विषय नाम ही से प्रकट है। स्वास्थ्य और सदाचार के कुछ नियम ३२ पृष्ठों में बतला दिये गये हैं। भाषा में कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है जिन्हें ग्रन्थकार महोदय को द्वितीयावृत्ति में सुधार देना चाहिए। गीता इत्यादि पुस्तकों के हवाले भी ठीक होने चाहिए।

⁂

४—सदुपदेश—"अर्थात् विद्यार्थियों को फ़र्स्ट एड क्लास व अन्य कर्तव्य-विषयक एक अच्छी सलाह। लेखक पं० विश्वेश्वरदयालु मिश्र, बी० ए०, एल० टी०। प्रकाशक अगरवाल बुकडिपो, लखनऊ। पुस्तक का उद्देश्य नाम ही से प्रकट है; परन्तु उसके विषय-क्रम में सुधार की आवश्यकता है।

⁂

५—गीतादर्शन—लेखक, श्रीयुत कन्नोमल एम० ए०, धौलपुर। मूल गीतापाठ को छोड़कर पृष्ठ-संख्या २२६ है और मूल्य २)। पुस्तक की रचना नये ढङ्ग से की गई है। अन्य टीकाकारों की भांति प्रत्येक श्लोक पर टीका नहीं दी गई, किन्तु गीता में दिया गया भगवान् श्रीकृष्ण का उपदेश प्रत्येक विषय पर सरलता से दिखला दिया गया है। 'पाश्चात्य शास्त्रीय विचार और गीता' के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ लिखा गया है। एवं जीव, सृष्टि और ईश्वर के विषय में प्रत्येक दर्शन के सिद्धान्त बतलाये गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को समझाने की ग्रन्थकार ने जो चेष्टा की है वह प्रशंसनीय है; परन्तु उनके सारे प्रमाणों से सभी लोग सहमत नहीं हो सकते। ग्रन्थकार की कुछ युक्तियां चिन्त्य अवश्य हैं। चीर-हरण-लीला, गिरि-धारण-लीला, रास-लीलादि विषयों पर अनेक पण्डितों का ग्रन्थकार से मत-भेद होगा। जो हो, ग्रन्थकार ने "गीता के सम्बन्ध में जो अन्य बातें लिखी हैं वे यद्यपि गौण हैं, तथापि उनसे गीता का तात्पर्य्य समझने में बहुत सहायता मिलती है। उनसे गीता का महत्त्व भी बढ़ गया है। भिन्न भिन्न शास्त्रों के ज्ञान का बहुत कुछ समन्वय जो उन्होंने गीता में दिखाया है, वही इस पुस्तक की विशेषता है।"

चित्र-परिचय।

इस महीने का रङ्गीन चित्र भी टेहरी-गढ़वाल के राजा साहब की कृपा से प्राप्त हुआ है। इस कृपा के लिए हम राजा साहब के बड़े कृतज्ञ हैं। प्राचीन दरबारी चित्रकार के बनाये हुए इस चित्र में एक ओर बालि का दाह-कर्म हो रहा है और दूसरी ओर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को सुग्रीव के राजतिलक करने और अङ्गद को युवराज बनाने की आज्ञा दे रहे हैं। बीच में किष्किन्धा राजवंश के कुल-पुरोहित की कुटी अङ्कित की गई है। इस चित्र में चित्रकार ने चिता का निर्माण, दाह-कर्म का सम्पादन, वानर-यूथ का शोक और कुछ वानरों का पम्पा-नदी में स्नान कर प्रेत को तिलाञ्जलि देना इत्यादि दृश्य भले प्रकार दिखाये हैं। चित्र में धार्मिक भाव भी खूब ही झलकता है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad

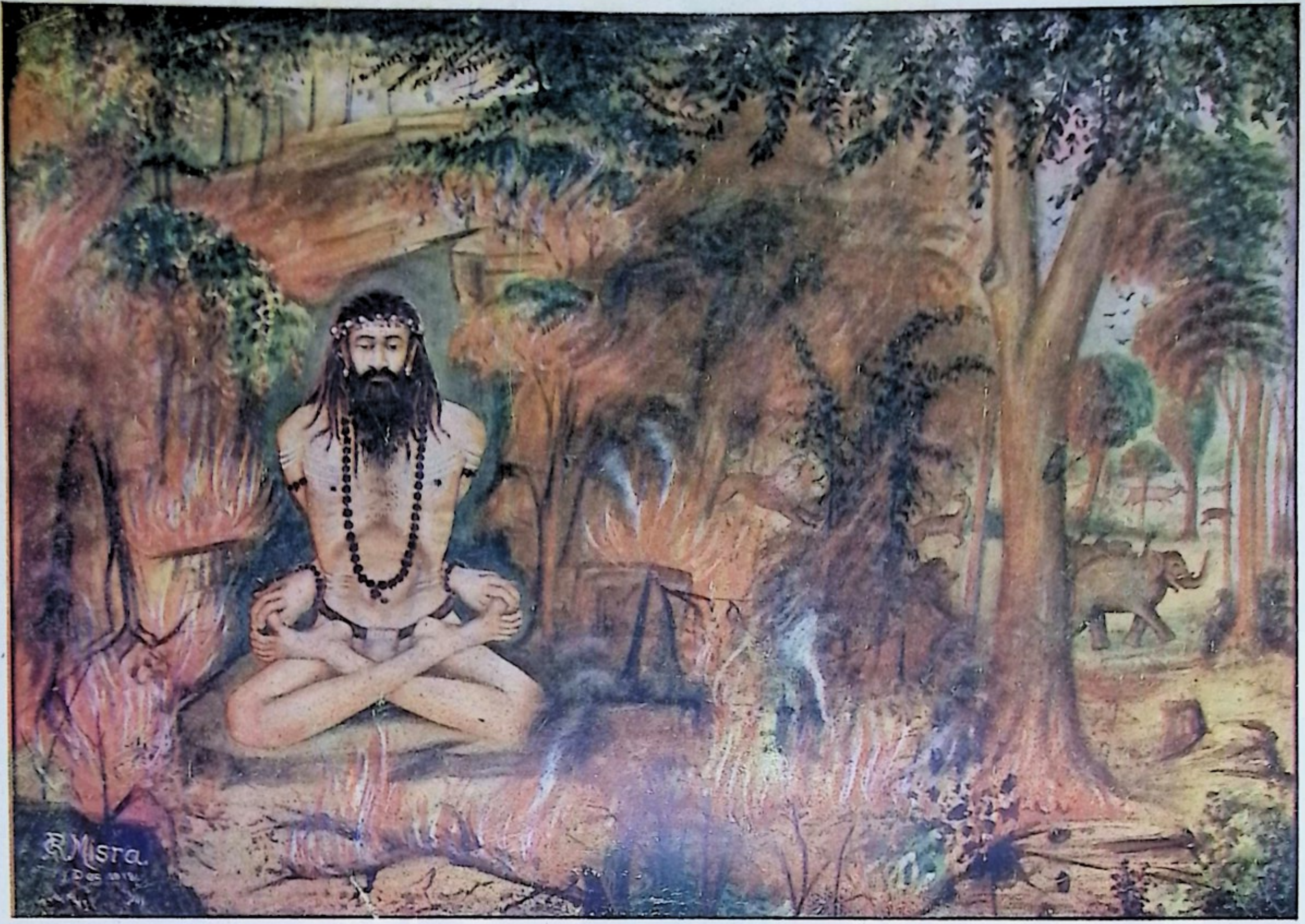

बाणासुर की तपस्या।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड २] नवम्बर १९१९—मार्गशीर्ष १९७६ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २३९

हाट।

देना पड़ा वही जो लाया
हाँ, मैं हाट देख आया।
धर्म्म-कर्म्म का विक्रय उसमें रूप-रङ्ग का क्रय देखा,
लाखों के दूकानदार थे, कौड़ी कौड़ी का लेखा।
चारों ओर एक ही माया
हाँ, मैं हाट देख आया।
दो आँखें थीं किन्तु एक मन, उसमें यही बुद्धि जागी,
मन ही एक और ले लूँ तो दो होंगे—सुख-दुख-भागी।
सुनकर विक्रेता मुसकाया
हाँ, मैं हाट देख आया।
निज जीवन का एक रत्न हँस मैंने भी रख दिया वहाँ
वह बोला—"पागल, पत्थर से मन का विनिमय हुआ कहाँ ?
मत छूना तुम उसकी छाया"
हाँ, मैं हाट देख आया।
"धन देकर मन कभी न लेना इसमें धोखा खाओगे
पाओगे तब उसको मन के बदले ही तुम पाओगे।"
मैंने मन देकर मन पाया
हाँ, मैं हाट देख आया।

मैथिलीशरण गुप्त

माघ कवि और उनका काव्य।

यद्यपि महाकवि माघ-रचित केवल शिशुपालवध नामक एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है; पर अकेले उसीके प्रभाव से वे साहित्य-जगत् में सदैव के लिए अमर हो गये हैं। आज माघ का साहित्य-रसज्ञों में जो आदर है वह विरले ही कवियों को प्राप्त हुआ है, यहाँ तक कि शिशुपालवध काव्य के बिना पढ़े किसीकी संस्कृत-शिक्षा पूरी नहीं समझी जाती। सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में छः काव्य-ग्रन्थ सबसे उत्कृष्ट माने जाते हैं।

रघुवंश, मेघदूत, और कुमारसम्भव--ये 'लघुत्रयी' कहलाते हैं और किरातार्जुनीय, नैषधचरित और शिशुपालवध—ये 'बृहत्त्रयी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। बृहत्त्रयी में सबसे उत्कृष्ट दर्जा बहुधा माघ काव्य अर्थात् शिशुपालवध को ही मिलता है। हां, श्रीहर्ष के प्रेमी नैषध-चरित को ही संस्कृत-साहित्य-रत्नाकर का अमूल्य रत्न समझते हैं। उनका कथन है—

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥

[भारवि की कान्ति तभी तक शोभित होती है जब तक माघ का उदय नहीं; लेकिन नैषध-काव्य के उदय होने पर कहां माघ और कहां भारवि ?]

दूसरी ओर से यह आवाज़ आती है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

[कालिदास में उपमा, भारवि में अर्थ-गौरव और नैषध में पद-लालित्य है; पर माघ में तीनों गुण हैं।]

वास्तव में कवियों की छुटाई-बड़ाई का निर्णय करना असम्भव नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य है। कारण यह कि उनकी कृतियों की तुलना करने के लिए हमें किसी नियति या परिमिति का आधार मिल ही नहीं सकता। प्रत्येक कवि में कोई न कोई नवीनता होती है, कोई ख़ास गुण रहता है। प्रत्येक कवि की रचना-शैली भिन्न होती है। उसके काव्यों में भिन्न भिन्न गुणों का समावेश होता है। ऐसी दशा में किसे अच्छा कहा जाय, किसे बुरा ? क्योंकि जो कवि एक प्रकार के विचारवाले मनुष्य की दृष्टि में उत्तम है वही दूसरे प्रकार के विचारवालों की दृष्टि में बहुधा उत्तम नहीं ठहरता। ऐसी दशा में किसीको किसी कवि की रचना रुचती है, किसीको किसीकी। "अच्छा क्या है ? जो जिसे अच्छा लगे"—यह कहावत यहां पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। सच तो यह है कि प्रत्येक कवि की कविता-कामिनी का सौन्दर्य्य भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जिन्हें जिस प्रकार का सौन्दर्य्य रुचता है वे उसी ओर दौड़ते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी कवियों के थोड़े-बहुत प्रेमी होते ही हैं। इसीलिए तो कुछ लोग कालिदास को, कुछ माघ को और कुछ श्रीहर्ष को सबसे उत्तम कवि समझते हैं।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि माघ बड़ी उत्कृष्ट कोटि के कवि थे और उनकी प्रशंसा प्राचीन और अर्वाचीन काल के अनेक विद्वानों और समालोचकों ने की है। श्री प्रभाचन्द्र कवि ने उनके सम्बन्ध में कहा है—

श्रीमाघोऽगाधधीः श्लाघ्यः प्रशस्यः कस्य नाभवत्।
चित्तजाड्यहरा यस्य काव्यगङ्गोर्मिविप्रुषः॥

[अगाध बुद्धिवाले माघ किसके लिए प्रशंसनीय और श्रेष्ठ न हुए जिनकी गङ्गा-रूपी कविता की लहरों की बूँदें चित्त की जड़ता को हरनेवाली हैं।]

मल्लिनाथ ने कहा है—'धन्यो माघकविः वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्', अर्थात् माघ कवि धन्य हैं और हम लोग भी उनकी सुन्दर उक्तियों के सेवन से धन्य हैं।

राजशेखर ने उनके सम्बन्ध में कहा है, 'माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते'—माघ मास की तरह (माघ की वीर-रस भरी हुई कविता) द्वारा किसको कँपकँपी नहीं लगती ? इसके अतिरिक्त 'काव्येषु माघः' इत्यादि तो प्रसिद्ध ही है।

वर्तमान समय में भी अनेक विद्वानों ने उनकी प्रशंसा की है और फ़रासीसी भाषा में माघ-काव्य का अनुवाद भी हो चुका है।

माघ कवि किस समय में थे, इस विषय में आधुनिक विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। प्रसिद्ध जर्म्मन विद्वान् जेकोबी के मत में वे ईसा की छठी शताब्दी के मध्य-काल में रहे होंगे। प्रोफ़ेसर पाठक आठवीं शताब्दी का अन्तिम भाग उनका समय बतलाते हैं। प्रोफ़ेसर मेकडानेल का विचार है कि वे नवीं और दसवीं शताब्दी के बीच में किसी समय हुए होंगे। वेबर के मतानुसार दसवीं सदी का अन्तिम भाग हमारे कवि का समय रहा होगा। प्रोफ़ेसर क्लाट उन्हें दसवीं सदी के आरम्भ में रखते हैं और रमेशचन्द्र दत्त हमारे कवि का समय ग्यारहवीं शताब्दी ठहराते हैं। इनमें से अनेक मत बहुत पुराने हैं; अतएव वे साहित्य-सम्बन्धी नवीन अनुसन्धानों के प्रकाश से वञ्चित रहे हैं। हां, प्रोफ़ेसर पाठक का मत नवीन और निश्चयात्मक है और उन्हींकी अकाट्य युक्तियों और प्रबल प्रमाणों के

आधार पर हम आगे चलकर माघ का काल-निर्णय करेंगे ।

कुछ लोगों का मत है कि माघ कवि बहुत पुराने हैं, यहाँ तक कि वे कालिदास के भी पहले हुए थे। इसका आधार और कुछ नहीं, केवल निम्न-लिखित श्लोक तथा उसीके सम्बन्ध में पण्डितों में प्रचलित एक गप्प है—

पुष्पेषु जाती नगरेषु काञ्ची,
नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः ।
नदीषु गङ्गा नृपतौ च रामः,
काव्येषु माघः कविकालिदासः ॥

[फूलों में चमेली, शहरों में काञ्ची, स्त्रियों में रम्भा, पुरुषों में विष्णु, नदियों में गङ्गा, राजाओं में रामचन्द्र, काव्यों में माघ काव्य और कवियों में कालिदास (सर्वश्रेष्ठ) हैं ।]

कहा जाता है कि यह श्लोक घटखर्पर-रचित है, क्योंकि घटखर्पर महाराज विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से थे, जैसा कि निम्न-लिखित श्लोक से सिद्ध होता है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

[धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, प्रसिद्ध वराहमिहिर और वररुचि—ये विक्रमादित्य की सभा में नव रत्न थे ।]

इसलिए माघ कवि कालिदास इत्यादि कवियों के बहुत पहले रहे होंगे ।

पर जिस आधार पर यह सिद्धान्त निर्भर है वह बिलकुल अश्रद्धेय है, क्योंकि आज तक किसीने भी यह सिद्ध नहीं किया कि 'पुष्पेषु जाती' इत्यादि श्लोक घटखर्पर का है। केवल किसी किंवदन्ती के आधार पर यह मान लेना बड़ी भारी भूल है। 'घटखर्पर काव्य' तथा 'नीतिसार' नामक दो छोटी पुस्तकों को छोड़कर और कोई ग्रन्थ घटखर्पर-रचित नहीं मिलता और यह श्लोक न तो उनमें ही है और न किसी दूसरे ही स्थल में इस श्लोक के घटखर्पर-रचित होने का कोई प्रामाणिक उल्लेख आया है; फिर किस आश्रय पर हम इसे उनका मान लें ? साथ ही यह बात भी तो विचारणीय है कि यह श्लोक काव्य के नियमों के अनुसार दोष-पूर्ण है। अतएव घटखर्पर-सदृश विद्वान् की यह रचना नहीं हो सकती । फिर यह भी किंवदन्ती तो प्रचलित है कि कालिदास और घटखर्पर में आपस में अनबन रहती थी। ऐसी अवस्था में घटखर्पर का अपने विपक्षी की ऐसी स्तुति करना एक अनहोनी बात मालूम होती है। जो हो, जब तक यह सिद्ध नहीं होता कि यह श्लोक घटखर्पर का है तब तक पूर्वोक्त सिद्धान्त कदापि मान्य नहीं हो सकता ।

एक दूसरा मत यह है कि माघ धारा के राजा भोज के समकालीन थे। बल्लाल-रचित भोजप्रबन्ध में तथा जैन-मेरुतुङ्गाचार्य्य-रचित प्रबन्ध-चिन्तामणि में जो माघ का हाल दिया गया है उसमें तथा श्रीप्रभाचन्द्र-रचित प्रभावक-चरित में भी ऐसी ही बात कही गई है। यथा—

तस्य श्रीभोजभूपालबालमित्रं कवीश्वरः ।
श्रीमाघो नन्दनो ब्राह्मीस्यन्दनः शीलचन्दनः ॥

[दत्तक के पुत्र, सरस्वती के रथ-स्वरूप, शील में चन्दन के समान माघ कवीश्वर हुए जो भोज राजा के बाल-सखा थे ।]

यह निश्चय हो चुका है कि राजा भोज ईसा की ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्ध में थे, अतएव पूर्वोक्त आश्रय पर माघ भी उसी समय में रहे होंगे ।

पर भोज-प्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि और प्रभावक-चरित कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से पहले दो ग्रन्थों में राजा भोज के समय को भारतीय इतिहास में सबसे उत्कृष्ट समय दिखलाने की कोशिश की गई है। उनके अनुसार संस्कृत के प्रायः सभी बड़े बड़े कवि राजा भोज के समकालीन थे। इस कारण से उनकी बातें विश्वास करने योग्य नहीं। रह गया प्रभावक-चरित, उसमें तो ग्रन्थकार ही ने स्वयं ग्रन्थ के आरम्भ में यह बात कह दी है कि हमने जो कुछ लिखा है जनश्रुति के आधार पर लिखा है। इसलिए उन ग्रन्थों के आश्रय पर माघ कवि को ग्यारहवीं सदी के अन्तिम भाग में ठहराना भूल है।

इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे प्रमाण मौजूद हैं जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि माघ ग्यारहवीं शताब्दी के बहुत

पहले विद्यमान थे। यह बात निश्चित हो चुकी है कि सोमदेव कवि ईसा की १०वीं शताब्दी में थे, और उन्हींके रचे हुए यशस्तिलक में माघ का नाम आया है। मम्मट भट्ट ने, जो ग्यारहवीं सदी में थे, अपने काव्यप्रकाश में माघ-काव्य के अनेक श्लोक उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किये हैं। काश्मीर के प्रसिद्ध कवि और ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्द्धन ने भी, जो कि नवीं शताब्दी में रहे, अपनी कृति में माघ-काव्य के दो श्लोक उद्धृत किये हैं।

नृप तुङ्ग ने अपने ग्रन्थ कविराज-मार्ग में माघ कवि की बड़ी प्रशंसा की है और उन्हें कालिदास के बराबर ठहराया है। यह नृप तुङ्ग और कोई नहीं अमोघवर्ष प्रथम का नामान्तर है और यह निश्चय हो चुका है कि ८१४ ई० में उनका राज्याभिषेक और ८७७ में उनका देहान्त हुआ। इन प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि माघ कवि राजा भोज के समकालीन नहीं थे, बरन नवीं शताब्दी के पहले कभी रहे होंगे।

माघ के समय की उत्तरावधि तो पूर्वोक्त प्रमाणों द्वारा निश्चित हो गई। अब केवल पूर्वावधि का निर्णय करना शेष रह गया है, जिसके लिए निम्नलिखित आन्तरिक प्रमाण देखिए—

१—शिशुपालवध के अन्तर्गत एक श्लोक में महाराज जयादित्य और वामन की काशिका-वृत्ति तथा जिनेन्द्रबुद्धि रचित उसके टीका-न्यास का स्पष्ट उल्लेख आया है। वह श्लोक यह है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पृशा॥

मल्लिनाथ ने इस श्लोक की टीका करते हुए 'न्यास' का अर्थ 'वृत्तिव्याख्यानग्रन्थविशेषो' और 'वृत्ति' का अर्थ 'काशिकाख्य-सूत्रव्याख्यानग्रन्थविशेषो' लिखा है। ऐसा ही अर्थ कुछ और टीकाकारों ने भी लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि इस श्लोक में 'काशिका-वृत्ति' तथा 'न्यास' दोनों का उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त और कई स्थलों में 'न्यास' के कतिपय सिद्धान्तों का भी उल्लेख आया है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि माघ कवि काशिकावृत्ति तथा न्यास की रचना के बाद रहे होंगे।

२—यह सिद्ध हो चुका है कि महाराज जयादित्य और वामन सातवीं शताब्दी के मध्यकाल में और जिनेन्द्रबुद्धि आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे।

इससे यह निश्चय हुआ कि माघ आठवीं शताब्दी विशेष कर उसके पूर्वार्ध में रहे होंगे।

माघ कवि की जन्म-भूमि गुजरात थी। प्रबन्ध-चिन्तामणि, प्रभावकचरित और भोजप्रबन्ध के अतिरिक्त आन्तरिक प्रमाणों से भी इस बात की पुष्टि होती है। शिशुपालवध में, समुद्र, द्वारका, रैवतक पर्वत (जिसे आज-कल गिरनार पर्वत कहते हैं) इत्यादि का वर्णन आया है। उसे पढ़कर तो ऐसी ही प्रतीति होती है कि माघ कवि कहीं इसी ओर के निवासी होंगे।

शिशुपालवध की एक हस्तलिखित प्रति के अन्त में 'इतिश्रीभिन्नमालववास्तव्यदत्तकसूनोः महावैयाकरणस्य माघस्य' इत्यादि लिखा हुआ मिला है। प्रभावकचरित में 'भिन्नमालव' के स्थान पर 'श्रीमाल' माघ का निवास-स्थान बतलाया गया है। कहा जाता है कि आज-कल भी 'भिनमाला' नाम का एक गाँव गुजरात और मारवाड़ की सरहद पर बसा हुआ है। यदि ऐसा है तो यही माघ की जन्मभूमि रही होगी।

शिशुपालवध के अन्त में माघ कवि ने अपने पूर्वजों का भी कुछ हाल दिया है जिससे पता लगता है कि उनके बाबा का नाम सुप्रभदेव और पिता का नाम दत्तक था। यथा—

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः
श्रीवर्म्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव
देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा॥

... ...

तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः
क्षमी मृदुर्धर्म्मपरस्तनूजः।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रो-
र्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये॥

... ...

तस्यात्मजः सुकविकीर्त्तिदुराशयाऽदः।
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥

[श्रीवर्म्मल राजा के सुप्रभदेव नाम के एक महामन्त्री थे जो बड़े धर्म्मात्मा, सात्विकभावयुक्त तथा असक्तदृष्टि-वाले थे। मालूम होता था कि माने दूसरे राजा ही हैं। उनके दत्तक नाम के पुत्र हुए जो गम्भीर, क्षमी, कोमल स्वभाववाले तथा धर्म्मात्मा थे………इत्यादि। उनके पुत्र (माघ) ने अच्छे कवि की दुर्लभ कीर्त्ति को पाने की इच्छा से शिशुपालवध नामक काव्य की रचना की।]

इससे पता चलता है कि सुप्रभदेव श्रीवर्म्मल-राजा के महामन्त्री अथवा वल्लभदेव के अनुसार महासेनापति थे। शिशुपालवध की अनेक प्रतियों में 'श्रीवर्म्मलाख्य' के स्थान पर भिन्न भिन्न नाम आये हैं, जैसे धर्म्मनाथ, धर्म्मनाभ, धर्म्मलाभ, वर्मलात, वर्मलाभ, इत्यादि। इस नाम के राजा कौन और कहां हुए, यह पता नहीं चलता; नहीं तो इससे माघ के समय-निरूपण करने में बड़ी सहायता मिलती। मालूम होता है कि वे भारत के उन छोटे छोटे राजाओं में से होंगे जो इतिहास के प्रकाश से सर्वथा वञ्चित रहे हैं।

प्रभावकचरित में भी हमारे कवि का ऐसा ही वंश-वर्णन किया गया है। हां, उसमें कुछ बातें और भी जोड़ दी गई हैं। उसके अनुसार सुप्रभदेव के दो लड़के थे। दत्तक और शुभङ्कर। दत्तक के पुत्र माघ और शुभङ्कर के सिद्ध थे। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त और कहीं भी शुभङ्कर और सिद्ध के नाम नहीं आये हैं, इससे हम इस बात को प्रामाणिक नहीं मान सकते।

यह तो स्पष्ट ही है कि माघ कवि बड़े ऊँचे दर्जे के कवि थे; पर उनका पाण्डित्य और भी ऊँचे दर्जे का था। कवित्व-शक्ति में इनकी बराबरी के—इनसे उच्च कोटि के भी—कवि रहे हैं; पर विद्वत्ता में श्रीहर्ष को छोड़कर और कोई इनकी बराबरी करनेवाला नहीं। यही कारण है कि साहित्य में जहां कहीं उनका नाम आया है उनके लिए अधिकतर 'पण्डित' शब्द का ही प्रयोग किया गया है, 'कवि' का बहुत कम। भोजप्रबन्ध और प्रबन्ध-चिन्तामणि में कालिदासादि को 'कवि' और 'महाकवि' की पदवियां दी गई हैं; पर माघ के लिए कवि शब्द का कहीं प्रयोग ही नहीं, बार बार 'पण्डित' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। इससे तो यही जँचता है कि उक्त ग्रन्थकारों की आंखों में भी माघ की विद्वत्ता उनकी कवित्व-शक्ति से कहीं बढ़ी-चढ़ी थी।

वास्तव में उनके काव्य में किन्हीं किन्हीं स्थलों पर दर्शनशास्त्र, इतिहास, पुराण, राज-नीति के ऐसे ऐसे महीन सिद्धान्त गुँथे पड़े हैं, जिन्हें देखकर उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। कुछ उदाहरण देखिए—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः
पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्छना-
मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥

इस श्लोक का तात्पर्य्य तो केवल इतना ही है कि नारदजी बार बार अपनी वीणा को देखते जाते थे जिसमें हवा भर जाने के कारण शब्द हो रहा था। पर सच पूछिए तो सम्पूर्ण सङ्गीतकला इस छोटे से श्लोक में कूट कूट-कर भरी हुई है। 'श्रुति' क्या है? उसके 'मण्डल' क्या हैं? 'स्वर' किन्हें कहते हैं? 'ग्राम' क्या वस्तु है? 'मूर्छना' से क्या तात्पर्य है? इत्यादि। इसमें सङ्गीतशास्त्र की प्रायः सभी मूल मूल बातें आगई हैं और बिना इन्हें जाने श्लोक को पूर्ण रीति से समझना असम्भव है।

उदासितारं निगृहीतमानसै-
र्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥

… … …

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्म्मविदो विधाय,
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाधिगम्य,
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥

पूर्वोक्त दोनों श्लोक सांख्य-दर्शन के सिद्धान्तों से ओत-प्रोत हैं। 'पुरुष' 'प्रकृति' 'विकार' 'मैत्री' इत्यादि चित्तवृत्तियां, 'पञ्चक्लेश' 'अविद्या' 'ज्ञान' इत्यादि सांख्य-दर्शन की अनेक रहस्य-पूर्ण बातों का जानना इन श्लोकों के समझने के लिए आवश्यक है।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥

इसमें भी सांख्य-दर्शन के विशेष शब्द 'साक्षी', 'बुद्धि', 'भोग' इत्यादि आ गये हैं। इनके जानने के अतिरिक्त श्लोक के समझने के लिए सांख्य का यह सिद्धान्त 'कर्तेव भवत्युदासीनः' जानना आवश्यक है।

सर्वकार्य्यं शरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥

इसमें बौद्ध फ़िलासफी भरी पड़ी है।

ऐसे ही और अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इन श्लोकों की गूढ़ता केवल इतने ही से समझी जा सकती है कि मल्लिनाथ-सदृश टीकाकार को भी, जिन्होंने आरम्भ में ही वचन दे दिया है कि 'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते'—उन्हें भी इन श्लोकों पर बहुत कुछ लिखना पड़ा है।

पौराणिक कथायें तो माघ की अँगुलियों पर नाचती हैं। पद पद पर किसी न किसी कथा का उल्लेख है और अनेक पुराणों की कथायें आ गई हैं। शिशुपाल-वध के कोई पास पास के पांच श्लोक देख जाइए; उनमें कोई न कोई पौराणिक कथा अवश्य मिलेगी। जहां विशिष्ट रूप से उल्लेख की आवश्यकता नहीं पड़ी वहां और कुछ नहीं, तो उनकी ओर सङ्केत ही है। उदाहरणार्थ यह कहना है कि 'श्रीकृष्ण ने नारद को देखा' तो माघ इस प्रकार कहेंगे

"चिरन्तनः मुनिः हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं ददर्श"।

'चिरन्तनः मुनिः' कौन? श्रीकृष्ण। क्यों? क्योंकि प्राचीन समय में विष्णु ने नारायणरूप से बदरिका-वन में तपस्या की थी। हिरण्यगर्भ कौन? ब्रह्मा। क्यों? देखिए—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

अर्थात् परमात्मा ने अनेक प्रकार की सृष्टि के उत्पन्न करने की इच्छा करके ध्यान द्वारा अपने शरीर से आरम्भ में जल को उत्पन्न किया और उसमें अपने तेज को डाला। यह तेज सूर्य्य के समान प्रभावाला एक सोने का अण्डा बन गया। उसमें सब लोकों के पितामह ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए।

इसलिए उनके शरीर से नारद की कैसे उत्पत्ति हुई? क्योंकि 'उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः'। इसी प्रकार सूर्य्य के लिए 'अनूरुसारथिः', श्रीकृष्ण के लिए 'मुरद्विट्', 'कैटभद्विट्', 'कंसकृषः', 'उपेन्द्र', इन्द्र के लिए 'अहिद्विट्', 'नमुचिद्विट्', शिशुपाल के लिए 'सात्वतीसूनुः', 'सुतश्रवसः सुतः', बलराम के लिए 'सीरपाणि', 'रौहिणेयः' 'रेवतीजानिः', राहु के लिए 'सैंहिकेयो', इत्यादि पौराणिक वार्ताओं से भरे हुए शब्दों का प्रयोग हमारे कवि के पौराणिक ज्ञान का साक्षी है।

माघ कवि व्याकरण के विशेष पण्डित थे। अपने समय में वे "महावैयाकरण" कहलाते थे और इसमें सन्देह नहीं कि वे इस पदवी के लिए सर्वथा योग्य थे। शिशुपाल-वध का एक एक श्लोक उनके व्याकरण-पाण्डित्य का साक्षी है। इसीलिए तो कुछ पण्डितों की यह भी राय है कि भट्टिकाव्य की तरह शिशुपालवध भी व्याकरण के नियमों को समझाने, उसकी उलझनों को सुलझाने और उसके गूढ़ रहस्यों को खोलने के लिए रचा गया है; पर यह बात ठीक नहीं जँचती।

यह अलौकिक विद्वत्ता, असीम ज्ञान का यह स्वराज्य, प्रवीणता की ऐसी प्रखरता—यह सब होते हुए भी माघ को अभिमान का लेश नहीं। श्रीहर्ष की तरह वे आपे से बाहर नहीं होगये। जयदेव की तरह खुद अपनी कविता पर लट्टू होकर उन्होंने उसे अमृत से उपमा नहीं दे डाली। अपने स्वात्मत्व को उन्होंने कहीं प्रकट ही नहीं होने दिया। चाहे प्रशंसा समझिए चाहे निन्दा, उन्होंने अपने लिए ग्रन्थ के अन्त में केवल यह लिखा है—'सुकविकीर्तिदुराशयाऽदः,' अर्थात् सुकवि की कीर्ति पाने के दुराशय से युक्त (मैं)। धन्य माघ! धन्य तुम्हारा गर्वराहित्य!

माघ-काव्य के अतिरिक्त हमारे कवि के रचे हुए कुछ और भी श्लोक मिलते हैं। नीचे लिखे हुए दो श्लोक सुभाषितावली में वल्लभदेव ने माघ कवि के नाम से उद्धृत किये हैं—

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना,
माश्रौषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम्।
शौर्य्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा।
येनकेन बिना गुणास्तृणबुसप्रायाः समस्ता अमी॥

[शील पर्वत पर से गिर पड़े, भाई-बन्धु आग में जल जायँ, संसार में परिश्रम को विफल करनेवाले शास्त्रों का नाम भी न सुनें, वीरतारूपी वैरी पर वज्र शीघ्र ही गिर जाय, हमें तो हमेशा केवल धन चाहिए जिस एक के बिना ये सब गुण खर-पात के समान हैं।]

नारीनितम्बफलके प्रतिबध्यमाना,
हंसीव हेमरशना मधुरं ररास।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा-
अक्रन्दुरार्त्तमुखरं चरणावलग्नाः॥

[स्त्री की जघनस्थली पर बँधी हुई सोने की करधनी (बँधी हुई) हंसी की तरह मधुर शब्द करने लगी। उसको छुड़ाने के लिए मानों नूपुररूपी राजहंस उसके पैरों में पड़कर ज़ोर से चिल्लाने लगे।]

निम्नलिखित श्लोक औचित्यविचार-चर्चा में क्षेमेन्द्र ने माघ-कवि-रचित बतलाया है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः॥

[भूखे मनुष्य व्याकरण नहीं खाते, प्यासे लोग काव्य-रस नहीं पीते, विद्या से किसीने भी अपने कुल को नहीं उठाया; इसलिए धन को ही उपार्जन करो; कलायें तो निष्फल ही हैं।]

ये श्लोक शिशुपाल-वध में नहीं मिलते; अतएव बहुत सम्भव है कि माघ-रचित और भी एक या अधिक ग्रन्थ रहे हों।

अब माघ-काव्य को देखिए। इसका असली नाम शिशुपाल-वध है और संस्कृत-काव्य के नियमों के अनुसार यह एक महाकाव्य है। नियम है कि महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग हों; इसमें बीस हैं। नियम है कि नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त, उत्तम वंशवाला क्षत्रिय हो; इसमें भगवान् श्रीकृष्ण नायक हैं। शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीन रसों में से कोई एक रस प्रधान होना चाहिए और शेष रसों को गौणरूप से रहना चाहिए; इसमें वीर-रस प्रधान है और शेष रस भी इतस्ततः आ गये हैं। नियम है कि महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक हो अथवा किसी सज्जन के जीवन के आधार पर लिखी गई हो; शिशुपाल-वध की कथा महाभारत तथा कई पुराणों में आई है। आरम्भ में प्रार्थना या आशीर्वाद हो अथवा योंही कथा आरम्भ कर दी जाय; इसमें योंही कथा आरम्भ कर दी गई है। नियम है कि प्रतिसर्ग के बीच में एक ही प्रकार के छन्द हों और सर्ग के अन्त में एक या अधिक पद्य भिन्न भिन्न छन्दों में हों, पर कहीं कहीं पर अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त सर्ग भी हो सकते हैं; माघ-काव्य में यह नियम पूर्ण रीति से निबाहा गया है, हां केवल चौथे सर्ग में भिन्न भिन्न छन्दों से युक्त पद्य आये हैं। प्रतिसर्ग के अन्त में आगे आनेवाले सर्ग की कथा का सङ्केत हो; इसमें ऐसा ही है। महाकाव्य में, यथासम्भव, सन्ध्या, सूर्य्य, चन्द्र, रात, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, दोपहर, शिकार, पर्वत, ऋतु, जङ्गल, समुद्र इत्यादि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए; शिशुपाल-वध में इनमें से अधिकांश का वर्णन है। महाकाव्य का नामकरण कवि के, काव्य के या और किसीके नाम पर, होना चाहिए; इसके दो नाम हैं—एक कवि के नाम पर, दूसरा काव्य के आधार पर। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सर्ग का भी नामकरण उक्त सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर होना चाहिए; इसका भी पालन हुआ ही है। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। महाकाव्य का ऐसा कोई लक्षण नहीं जो इस काव्य में न घटता हो।

जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट होता है, इसमें चेदिनरेश शिशुपाल के श्रीकृष्ण द्वारा मारे जाने का वर्णन है। कथा का क्रम इस प्रकार है—आरम्भ में नारद मुनि भगवान् श्रीकृष्ण के पास आये और उनसे शिशुपाल की जन्म-जन्मान्तर की दुष्टताओं का वर्णन किया और उसके वध करने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने मुनि को उसके मारने का वचन दिया और इस मन्तव्य को राम और उद्धव के सामने पेश किया। कुछ वाद-विवाद के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि शिशुपाल के विरुद्ध अभी कुछ न करके हस्तिनापुर में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिए जिसके लिए पहले ही से निमन्त्रण आ चुका था। बस, श्रीकृष्ण ने दल-बल के साथ हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए हस्तिनापुर पहुँचे। वहां युधिष्ठिर ने राजसभा में उन्हें

अर्घ्यदान किया। इस पर अत्यन्त क्रोधित होकर शिशुपाल ने अनेक दुर्वाक्य कहे और अपने साथियों के साथ सभा से उठ गया और युद्ध की तैयारी करने लगा। फिर दोनों पार्टियों के बीच में दूत भेजे गये; पर कुछ फल नहीं हुआ। अन्त में युद्ध हुआ और श्रीकृष्ण के हाथ से शिशुपाल आहत हुआ।

कथा का इतना सूक्ष्म कलेवर होते हुए भी कवि ने उसे किस प्रकार २० बड़े बड़े सर्गों में विस्तीर्ण किया है। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं रहती, जब हम देखते हैं कि शिशुपाल-वध का आधे से अधिक भाग कथा से बाहरी बातों से भरा हुआ है। चौथे सर्ग से लेकर तेरहवें तक केवल प्राकृतिक दृश्यों का ही वर्णन है।

वैसे तो शिशुपाल-वध की कथा कई पुराणों में आई है; पर माघ ने अपनी रचना में मुख्यतया भागवत का ही आश्रय लिया है, क्योंकि एक-दो छोटी छोटी बातों को छोड़कर प्रायः दोनों कथायें एकसी ही हैं। दोनों में आरम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के पास नारद आते हैं। दोनों में उद्धव के साथ मन्त्रणा होती है। इसके बाद दोनों ही में श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान करते हैं। फिर श्रीकृष्ण को देखने के लिए इन्द्रप्रस्थ की पुर-नारियों का राजमार्ग में दौड़ना, पाण्डवों द्वारा श्रीकृष्ण का स्वागत, राजसभा में श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया जाना, तथा शिशुपाल का दुर्वचन कहना दोनों ही में हैं।

इसके अतिरिक्त देखिए कि दोनों में किन्हीं किन्हीं विशेष स्थलों में अर्थ, भाव अथवा शब्दों में कैसी समानता झलकती है:—

… … … देवर्षिः परमद्युतिः।
बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः॥
तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः।
ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यस्सानुगो मुदा॥
— भागवत

दधानमम्भोरुहकेसरद्युती-
जंटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
… … …
पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः
पुरोस्य यावन्न भुवि व्यलीयत॥
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकै-
र्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः॥
—माघकाव्य

इनमें 'बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं' तथा 'दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः' दोनों एक हैं। भागवत के 'यथा रविः' के स्थान पर माघ में 'पतत्पतङ्गप्रतिमः' तथा 'देवर्षिः' की जगह 'तपोनिधिः' है। भागवत के 'उत्थितः' का ही माघ के शेष श्लोक में दिग्दर्शन है। 'ववन्द' इत्यादि बिलकुल छोड़ दिया गया है।

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं,
न जानतोनर्थवहाच्छरीरतः।
लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं
प्राज्वालयत्त्वां तमहं प्रपद्ये॥
—भागवत

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-
रभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विन-
स्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥
—माघ

भागवत की पहली दो लकीरों का यह अनुवाद सा है।

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः।
नोवाच किञ्चिद् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम्॥
—भागवत

प्रतिवाचमदत्त केशवः,
शपमानाय न चेदिभूभुजे।
अनहुङ्कुरुते घनध्वनिं,
नहि गोमायुरुतानि केसरी॥
—माघ

इन दोनों का भाव तो एक ही है; पर दूसरा श्लोक पहले की स्पष्ट प्रतिध्वनि है।

हमारे कवि शिशुपाल-वध की कथा के लिए कुछ अंश तक महाभारत के भी ऋणी हैं। जहाँ तक हमें विदित है, महाभारत के अतिरिक्त और कहीं भी शिशुपाल के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख नहीं आया है कि जन्म के समय उसके चार हाथ तथा तीन आँखें थीं; अत-

एव इस प्रसङ्ग के लिए कवि महाभारत के ऋणी हैं। साथ ही युधिष्ठिर की सभा में भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति भी महाभारत के आधार पर है। इसी प्रकार शिशुपाल के पूर्व-जन्म का इतिहास कि वह पहले हिरण्यकशिपु था, फिर वही रावण हुआ और फिर तीसरे जन्म में शिशुपाल हुआ, अग्नि-पुराण पर निर्भर मालूम होता है। कथा के अन्त का अंश, युद्ध-वर्णन इत्यादि बिलकुल काल्पनिक है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस शुष्क पौराणिकी कथा में माघ ने बिलकुल नवीन जीवन फूँक दिया है। माघ की लेखनी के जादू से कथा फिर हरी-भरी हो गई, उसमें सरसता की कल्लोलिनी कलकल-शब्द से बहने लगी और वीररस के प्रवाह से वह आप्लावित हो गई। कथा-प्रसङ्ग में जिन जिन व्यक्तियों ने भाग लिया है वे भी इस जादू से नहीं बचे हैं और माघ ने उन्हें अपने चातुर्य्य से ऐसे साँचे में ढाला है कि उनमें एक प्रकार की नवीनता आ गई है। क्या माघ-काव्य के शिशुपाल वही हैं जो महाभारत के अथवा भागवत के? शिशुपाल ही क्यों, उद्धव, श्रीकृष्ण इत्यादि को भी कवि ने अपनी इच्छानुसार ही रङ्ग-रूप दिया है।

पौराणिक शिशुपाल बहुत ही क्रोधी और दुष्ट स्वभाव के राजा हैं। अन्याय करने तथा गाली देने में वे अद्वितीय हैं। राज-नीति से तो मानों उनका वैर है; और ईर्ष्या-द्वेष तो मानों ईश्वर ने उन्हींके लिए बनाये हैं; पर माघ के शिशुपाल पौराणिक शिशुपाल से कहीं ऊँचे दर्जे के हैं। उनमें क्रोध के साथ साथ गम्भीरता है, गालियों में प्रवीणता के साथ साथ वीरता तथा वाक्पटुता है। ईर्ष्या के स्थान पर मान है। राजनीतिज्ञता के साथ साथ दिल की सफ़ाई भी है। जो हो, पौराणिक शिशुपाल से एक-दम घृणा होती है; पर माघ के शिशुपाल के प्रति थोड़ा-बहुत प्रशंसा का भाव तथा सहानुभूति जागृत होती है। माघ के शिशुपाल कैसे वीर तेजस्वी हैं, देखिए—

अभितर्जयन्निव समस्तनृपगणमसावकम्पयत्।
लोलमुकुटमणिरश्मि शनैःशनैः प्रकम्पितजगत्त्रयं शिरः॥

[(श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिये जाने पर खड़े होकर) शिशुपाल ने सब राजसमूह की भर्त्सना सी करते हुए, तीनों लोकों को भली भाँति कँपानेवाले अपने शिर को हिलाया, जिसमें मुकुट के मणियों की किरणें स्वतः धीरे धीरे काँप रही थीं।]

... ...

ध्वनयन्सभामथ सनीरघनरवगभीरवागभीः।
वाचमवदतिरोपवशादतिनिष्ठुरस्फुटतराक्षरामसौ॥

[जलभरे हुए मेघ की गर्जना के समान गम्भीर स्वरवाला, वह निर्भय शिशुपाल सभा को गुँजाता हुआ, अति क्रोध के कारण अति निठुर तथा स्पष्ट अक्षरों से युक्त वाणी बोला।]

अब क्या कहा, उसके भी एक-दो नमूने सुनिए—

यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ मुरजितमपूजितं सताम्।
प्रेम विलसति महत्तदहो दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते॥

[हे पार्थ! तुमने सज्जनों से अपूजित मुरारि का सभा में जो पूजन किया है उससे उनके प्रति तुम्हारा अधिक प्रेम ही द्योतित होता है। आश्चर्य्य की बात है कि लोग अपने प्रेम-पात्र को ही गुणी समझते हैं।]

यदि वार्चनीयतम एष किमपि भवतां पृथासुताः।
शौरिरवनिपतिभिर्निखिलैरवमाननार्थमिह किं निमन्त्रितैः॥

[हे पाण्डवो! यदि श्रीकृष्ण किसी प्रकार आप लोगों के पूज्य भी हैं तो फिर भला अपमान के लिए बुलाये हुए सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं से क्या प्रयोजन?]

पूर्वोक्त श्लोकों से सहृदय पाठक स्वयं माघ के शिशुपाल के चरित्र का अनुभव कर सकते हैं।

माघ के कृष्ण भी भिन्न हैं। पौराणिक कृष्ण में ईश्वरत्व अधिक है। माघ के कृष्ण में ईश्वरत्व कम और नृपत्व या मनुष्यत्व अधिक है। भागवत में श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार बैठे ही बैठे चक्रद्वारा शिशुपाल को मार डाला उससे उनकी ऐश्वरी शक्ति द्योतित होती है पर दृश्य बिलकुल हत्याकाण्ड सा लगता है। माघ के कृष्ण नीतिशास्त्र में निपुण, उदारचरित, दुष्टों के शत्रु, साधुओं के मित्र—आदर्श राजा हैं।

भागवत में उद्धव श्रीकृष्ण के 'भृत्य' हैं। भागवत के उद्धव में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं। पर माघ के उद्धव श्रीकृष्ण के भृत्य नहीं बरन उनके 'गुरुजन' हैं। उनके सदृश राजनीतिज्ञ विरले ही होंगे। उनका स्वभाव जैसा सरल वैसा ही शान्त भी है।

अब बलराम का चित्र देखिए—

ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामोष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना ॥

… … …

घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युती ।
रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ॥
आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम् ।
म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः ॥
दधत्संध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ॥

… … …

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥

[मन्त्रणा करते समय श्रीकृष्ण के बोलने के बाद जब बलराम बोलने को उद्यत हुए उसी समय का यह उनका वर्णन है—तब, स्त्रियों के ओष्ठबिम्बों के चुम्बन करने में चतुर, बलराम का ओठ, शत्रुओं के किये हुए अपराध के स्मरण से उत्पन्न क्रोध के कारण काँपने लगा। मदिरापान के मद से, रक्तकान्तिवाली, तथा रेवती के मुँह की (पान इत्यादि की) झूठन से पवित्र पुटवाली अपनी आँखों को घुमाते हुए, आलिङ्गन की लोभिनी वधू के कुचकाठिन्य की साक्षिणी वनमाला को, अभिमान के कारण गरम मुँह की साँसों से, कुम्हलाते हुए, शत्रु के प्रति द्वेष के कारण रक्तवर्णवाले शरीर पर स्वेद-कणों को—जो साँझ के लाल बादलों में चमकते हुए तारों के समान मालूम पड़ते थे—धारण किये हुए, तथा रेवती के मुँह में रहने के कारण उनके (रेवती के) मुँह की ख़ुशबू जिसमें आगई थी ऐसी मदिरा से संसर्ग रखनेवाली अपने मुँह की ख़ुशबू को फैलाते हुए—बलराम जी बोले।]

पूर्वोक्त पंक्तियों में बलराम को हद से ज़्यादा क्रोधी, कामी और शराबी दिखलाया गया है।

बलराम में सिपाहीपन अधिक और राजनीति का ज्ञान बहुत कम है। उनकी नीति का क्षेत्र केवल यहीं तक पहुँचता है "आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती" अर्थात् 'अपनी उन्नति और शत्रु की हानि—इतनी ही तो नीति है। अपमानित होने पर किसी दशा में भी स्वस्थ रहना उनकी समझ में बड़ी भूल है।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥

[वह धूल भी जो कि पैरों से आहत होने पर सिर पर चढ़ती है उस मनुष्य से अच्छी है जो कि अपमानित होने पर भी उदासीन रहता है।]

बलराम की समझ में नम्रता बड़ा भारी दोष है।

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः ।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥

[चन्द्रमा, जिसने गोद में हरिण को बैठा लिया है मृगलाञ्छन कहलाता है; पर निठुराई से मृग-समूह को मारनेवाला सिंह मृगाधिप कहलाता है।]

शत्रु से बदला लेने के सामने उन्हें मित्र के कार्य्य की भी परवा नहीं।

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपस्विनः ।
वयं ह नाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ॥

[पाण्डव यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करें, सूर्य्य प्रकाश करें और हम शत्रुओं को मारें—सभी अपने अपने स्वार्थ को खोजते हैं।]

बस वे तो केवल यह स्वप्न देखते हैं कि—

प्राप्यतां विद्युतां सम्पत्संपर्कादर्करोचिषाम् ।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः ॥

[शत्रुओं के सिर काटने से बहते हुए रक्तद्वारा सिञ्चित हमारे शस्त्र सूर्य्य की किरणों के सम्पर्क से विद्युत् की शोभा पावें।]

बलराम का ऐसा चित्र खींचने के कारण माघ कवि इहकालिक अनेक समालोचकों की अकृपा के पात्र बने हैं। ऐसे समालोचकों से हमारा यह कथन है कि सचमुच बलराम का यह चित्र अच्छा नहीं; पर साथ ही उनसे हम यह पूँछते हैं कि क्या प्राचीन कवियों में केवल माघ ही ने ऐसा अपराध किया है? क्या पुराणों से लेकर छोटे छोटे कवियों के ग्रन्थों तक में बलराम का ऐसा ही चित्र नहीं खींचा गया है? फिर माघ पर यह कोप क्यों? देखिए—

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥

… … …

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी तरुकोटरात् ।
पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥

… … …

वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः।

और भी देखिए—

प्रेमोन्नामितरेवती मुखगतामास्वाद्य कादम्बरी-
मुन्मत्तं क्वचिदुत्पतत्क्वचिदपि भ्राम्यत्क्वचित्प्रस्खलत्।

इस प्रकार के असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। हमारे विचार में तो यह आता है कि जैसे कवियों ने अनेक बातों के मान रक्खा है वैसे ही बलराम के मदिरा-पान को भी मान रक्खा है, इसीलिए जैसे हम उन पर यह कहने के लिए कुपित नहीं होते कि स्त्रियों के पैर के मारने से अशोक-तरु फूल जाता है, उसी प्रकार बलराम के मदिरा-पान को भी समझना चाहिए, यद्यपि दूसरा पहले की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

संस्कृत-साहित्य में इस महाकाव्य का स्थान जानने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले उक्त साहित्य के विकाश का क्रम भली भांति समझ लिया जाय। विद्वानों का मत है कि साहित्य का पूर्वांश स्वाभाविक, प्राकृतिक और प्रसादगुण-पूर्ण है। उसमें अर्थ की ओर विशेष ध्यान है, शब्दों की ओर कम। पर जैसे जैसे समय बढ़ता गया वैसे वैसे कविता से पूर्वोक्त गुण दूर होने लगे, यहां तक कि काव्य-साहित्य के अन्तिम भाग में शब्द-वैचित्र्य दिखलाना कविता का बड़ा भारी गुण समझा जाने लगा। अर्थ की प्रधानता न रही, किन्तु 'अर्थ' और 'शब्द' दोनों की बराबरी समझी जाने लगी। प्रसादगुण के स्थान में क्लिष्टार्थता को स्थान मिला और कविता का प्राकृतिक गुण कपूर की तरह उड़ गया; उसके स्थान पर एक प्रकार की अनैसर्गिकता या बनावटीपन का सिक्का जम गया। काव्य-साहित्य के अन्तिम भाग के प्रायः सभी काव्य इसी ढँग के हैं।

जैसे कालिदास की रचनायें काव्य-साहित्य के प्रथम भाग की प्रतिनिधि हैं उसी प्रकार यह उसके अन्तिम भाग का धान प्रतिनिधि है। तभी तो इसमें स्वाभाविकता और प्रसादगुण प्रधानतया नहीं हैं। तभी तो इसमें अर्थ की ओर जितना ध्यान दिया गया है उतना ही शब्दों की ओर। कहीं कहीं तो अर्थ की ओर बहुत कम ध्यान रखकर शब्द-वैचित्र्य तथा शब्दालङ्कारों पर ही विशेष ध्यान है। उदाहरणार्थ—

इह मुहुर्मुदितैः कलभैरवः
प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।
स्फुरति चानुवनं चमरीचयः
कनकरत्नभुवां च मरीचयः ॥

क्या ही विचित्र शब्द-वैचित्र्य है! शब्दालङ्कारों की क्या ही भरमार है! पर मतलब केवल यही है कि यहाँ (रैवतक पर्वत पर) हाथी शब्द किया करते हैं, चमरी-मृग इधर-उधर घूमते हैं और यहाँ सोने और रत्नों के स्थान हैं।

अधिक कहने की आवश्यकता नहीं; काव्य-साहित्य के अन्तिम भाग की सभी विशेषता इसमें विद्यमान है। यथा

१. वर्णन-प्राचुर्य्य
२. भाव-गाम्भीर्य्य
३. कठोरपदोपन्यास तथा अद्वितीय शब्द-बन्ध।

ऊपर हमने जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे केवल इसी काव्य में नहीं, बरन उस समय के सभी काव्यों में किसी न किसी हद तक अवश्य पाई जाती हैं। मालूम होता है कि उक्त समय के कवियों को अपनी काव्य-रचनाओं में संस्कृत-भाषा की खूबियों का दिखाने का बड़ा चाव रहता था, इसी कारण ये गुण उनकी कविता में स्वतः आजाते थे। किसी भाषा की खूबियाँ ज़्यादातर किसी महीन भाव या दृश्य के वर्णन में भली भांति प्रकट होती हैं—इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इनमें कवि को अधिक स्वतन्त्रता मिलती है। इसीलिए कथा की आड़ में वे प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन लिखते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि माघ-काव्य का आधे से अधिक भाग प्राकृतिक वर्णनों से भरा पड़ा है, जिनमें कवि कथा के सूत्र को बिलकुल भूल-से जाते हैं। ये वर्णन चाहे हम काव्य में अनावश्यक भले ही समझें; पर यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि इनमें संस्कृत-भाषा के सच्चे जैाहर प्रकट होते हैं।

भावगाम्भीर्य्य आज-कल के कुछ समालोचक दोष बतलाते हैं; पर वास्तव में किसी भाषा का गौरव जितना इससे प्रकट होता है उतना किसी और से नहीं। किसी

मामूली बात का वर्णन करते हुए या किसी मामूली भाव का चित्रण करते हुए उसे प्रसिद्ध प्राकृतिक दृश्यों से उपमा देकर समझा देना सरल बात है, पर हृदय के महीन महीन अन्तरङ्ग भावों को स्पष्टरूप से चित्रण कर देना, मानसिक विकारों को उनके सच्चे रङ्ग-रूप में दिखाना प्रत्येक भाषा में सम्भव नहीं और न हर कोई इसे कर ही सकता है । इसके लिए पहले तो भाषा पर्य्याप्त हो, फिर कोई उक्त भाषा का पूर्ण विद्वान् हो जो उक्त भावों को उपर्युक्त शब्दों में प्रकाशित कर सके । तभी यह सम्भव है । ऐसा करने में बहुधा कवि को अपने शब्दों को बहुत घुमाव या हेर-फेर से रखना पड़ता है । माघ-काव्य में किन्हीं किन्हीं स्थलों पर भावगाम्भीर्य्य को देखकर दाँतों-तले अँगुली दबानी पड़ती है ।

साथ ही माघ-काव्य में जैसा अद्वितीय शब्द-बन्ध है वैसा साहित्य में बिरले ही स्थलों में देखने को मिलता है । कालिदास के कुल ग्रन्थ पढ़ जाइए, अमर-कोष से बाहर का एक भी शब्द न मिलेगा । पर माघ के अध्ययन के लिए बड़े बड़े कोष भी पर्य्याप्त नहीं । वास्तव में इस कहावत में बहुत कुछ सत्यता है कि 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' । इन गुणों के कारण कुछ समालोचकों ने माघ-काव्य की बड़ी निन्दा की है । उनके मत में यह इतना क्लिष्ट तथा अनैसर्गिकतायुक्त है कि इसमें कविता का आनन्द ही नहीं आता । वे कालिदास और माघ की तुलना करते हैं और कहते हैं कि कालिदास की कविता में स्वतः प्रवाह (spontaneous flow) है ; उसके लिखने में कवि को प्रयास नहीं उठाना पड़ा तथा अधिक सोच-विचार की ज़रूरत नहीं पड़ी । उनके मत में माघ-काव्य में प्रयास की बू आती है तथा इस काव्य की रचना में कवि को बहुत सोच-विचार की ज़रूरत पड़ी है, क्योंकि

> कविता वनिता चैव सरसा स्वयमागता ।
> बलादाकृष्यमाणा चेत् सरसा विरसायते ॥

इसलिए कालिदास की कविता सरस है, तथा माघ की नीरस ।

इन लोगों से हमारा केवल यह कथन है कि किसी काव्य को उसके समय से अलग करके उसकी आलोचना करना अन्याय है और शायद ऐसा करने से बिरले ही काव्य प्रशंसनीय ठहरेंगे । वास्तव में माघ-काव्य और कालिदास की रचनाओं में उतना ही अन्तर है जितना शेक्सपियर और मिल्टन की रचनाओं में । एक की कविता स्वाभाविक तथा प्रसादगुण-पूर्ण है । दूसरे की इन गुणों से सर्वथा भिन्न है । क्यों ? कारण ?—उनका समय । शेक्सपियर और कालिदास का समय कविता का बाल्यकाल है; इसलिए उनके काव्यों में बाल्योचित सरलता है, मृदुता है और सरसता है । मिल्टन और माघ का समय कविता का प्रौढत्व-काल है । तभी तो उनके काव्यों में कठोरता है, गाम्भीर्य्य है, शब्द-वस्त्रों का चमत्कार है, पद पद पर अलङ्कारों की झनकार है—साथ ही साथ एक उच्चकोटि की सरसता है ।

हम मानते हैं कि एक मामूली विद्यार्थी की दृष्टि से माघ-काव्य बड़ा क्लिष्ट है और इसका एक एक श्लोक लोहे का चना है; पर यह कोई दोष नहीं । 'माघे मेघे गतं वयः' की शिकायत से इस काव्य का गौरव घट नहीं सकता, उलटा बढ़ता ही है ।

इस सम्बन्ध में हमारी केवल यह प्रार्थना है कि किसी काव्य के गुण-दोषों पर विचार करते समय काव्य-काल को भी ध्यान में रखना चाहिए, नहीं तो वर्तमान आलोचना की वेदी पर सभी प्राचीन काव्यों का बलिदान हो जायगा ।

जो कुछ हो, माघ-काव्य का साहित्य-रसज्ञों में सदैव से आदर रहा है । इसका इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है कि इस पर आठ टीकायें हुई हैं । मल्लिनाथ के अतिरिक्त, वल्लभदेव, दिनकर मिश्र, चारित्रवर्द्धन प्रभृति विद्वानों ने भी इस पर लेखनी उठाई है ।

हमारे विचार में तो माघ-काव्य के सम्बन्ध में यह उक्ति बहुत कुछ ठीक है—

> ऐदंयुगीनलोकस्य सारसारस्वतायितम् ।
> शिशुपालवधं काव्यं प्रशस्तिर्यस्य शाश्वती ॥

भूपनारायण दीक्षित, बी० ए०

गङ्गा में दीपक ।

[धुन—श्यामकल्यान]

मैं प्रकाश का पुञ्ज मौत अँधियारी से घबड़ाऊँ क्यों ?
आज कि कल आवेहीगी, फिर बिना बात भय खाऊँ क्यों ?

मेरे सिर पर मौत खेलती, मैं उसके सिर खेल रहा ;
जाता आत्मानन्द सिन्धु में मैं निर्भय निर्द्वन्द बहा।
ऊपर मेरे पवन मौत है, नीचे है सुरसरी-प्रवाह ;
मेरी नाव बनी काग़ज़ की मौज उड़ाता उसमें वाह !
जीवन के आधार तेल-बाती को काल कर रहा छीन ;
यह भी डर है—कहीं नाव में लग जावे न आग मतिहीन।
पर है मुझे भरोसा उसका जो दुर्जन-कुल-घालक है ;
अनिल, अनल, जल का तो है ही मेरा भी प्रतिपालक है।
जब तक उसकी मरज़ी है तब तक न किसीका कुछ भय है;
वरना फिर तो अनिल, अनल, जल एक बहाना निश्चय है।
इसीलिए हूँ मौज उड़ाता, नहीं सोच का कुछ कारण ;
अन्त समय जब आया तब उच्चाटन क्या मारण-जारण।
धन्यवाद है उसे कि जिसने अब तक मुझे बचाया है ;
करके कृपा असीम घड़ी भर मुझको खेल दिखाया है।
उसकी आज्ञा बिना न पल भर भी मैं यहाँ बिताऊँगा ;
अन्त ?—उन्हीं चरणों में शीश नवाऊँगा-मिल जाऊँगा।

बदरीनाथ भट्ट

दो हज़ार वर्ष पहले की पुलिस।

नाटककार प्रायः अपने नाटकों में उन भावों और विचारों का वर्णन करते हैं जो तत्कालीन समाज में प्रचलित होते हैं। नाटकों से एक लाभ यह भी होता है कि देश तथा काल की दशा ज्ञात हो जाती है। उनको एक प्रकार का तत्कालीन इतिहास समझना चाहिए। संस्कृत-नाटकों में मृच्छकटिक एक प्रसिद्ध नाटक है जिसकी बाबत यह कहा जाता है कि उसे शूद्रक नामी राजा के नाम से किसी कवि ने लिखा है। बहुत से लोगों के मत के अनुसार वह कवि "दण्डी" था। राजा शूद्रक की दण्डी पर विशेष कृपा होने से उसने इस नाटक को अपने आश्रयदाता के नाम से ख्याति दी। प्रोफ़ेसर मेकडानल ने इस नाटक का रचना-काल छठी शताब्दी में निश्चित किया है। परन्तु प्रोफ़ेसर विलसन का मत है कि राजा शूद्रक ईसा के पूर्व पहली या दूसरी शताब्दी में हुआ था। मोटे तौर पर जिस काल के मनुष्यों की दशा का वर्णन इस नाटक में है उसको बीते हम २००० वर्ष मान सकते हैं। देखा जाता है कि आज-कल भी बहुधा 'चालबाज़ी', 'कपट', 'मिथ्या अभियोग चलाने' आदि का दोषारोपण पुलिस पर किया जाता है। जनता का यह कथन सत्य है अथवा असत्य, इससे हमारे लेख को कोई सरोकार नहीं है। हमको तो केवल भाव देखना है। जो रुचि पुलिस के प्रति आधुनिक प्रजा के हृदय में है और पुलिस दारोग़ा का जो चित्र आधुनिक कवि खींचने को तैयार है, वही चित्र शूद्रक के मृच्छकटिक में पाया जाता है।

नाटक लिखे २००० वर्ष बीत गये। उस समय से आज तक सब कुछ बदला; परन्तु पुलिस की ओर से प्रजा का ख़याल नहीं बदला।

ऊपर कही हुई बात सिद्ध करने के लिए जहाँ तक मृच्छकटिक की कहानी आवश्यकीय है वह नीचे लिखी जाती है।

उज्जयिनी के राजा पालक का साला "संस्थानक" उसी राज्य का कोतवाल भी था—"कडुवा और नीम-चढ़ा"। इसके घमण्ड का क्या ठिकाना था—तृणवत् मन्यते जगत्! यह बड़ा मूर्ख और कुटिल था। इसी उज्जयिनी में एक बड़ी धनवती वेश्या वसन्तसेना रहती थी। चारुदत्त एक ब्राह्मण था जो किसी समय में बड़ा धनवान् था; परन्तु काल-वश अपना सब धन खो चुका था। तोभी उसके चित्त से उदारता नहीं गई थी। वसन्तसेना की आँख चारुदत्त से लग गई और वह चारुदत्त के गुणों को देखकर उन पर आसक्त थी और अपना सर्वस्व उनके अर्पण करने को प्रस्तुत थी। संस्थानक वसन्तसेना को चाहता था। मूर्ख का चाहना ही क्या ? और वसन्तसेना चारुदत्त के सामने ऐसे गुण-हीन मनुष्य से

क्यों मिलने लगी ? एक दिन अँधेरी रात में वसन्तसेना अपने घर से चारुदत्त के घर जारही थी। संस्थानक और उसके साथियों ने मार्ग में उसे पकड़ लिया और बहुत तङ्ग किया। एक साथी के इशारे से अवसर पाकर वह अँधेरे में अपने आभूषण उतारकर काँख में दबाये, चुपके से चारुदत्त के घर में घुस गई। मूर्ख संस्थानक ने बहुत कुछ यत्न किया, परन्तु वसन्तसेना न मिली। ऐसी ऐसी बातों से चारुदत्त से संस्थानक बहुत रुष्ट हो गया था।

एक दिन वसन्तसेना चारुदत्त के घर आई और पावस की मदमाती सेना से डरी हुई रात में घर न लौटसकी। वहीं सो रही। सबेरे उसकी बहली उसे लेने घर से आई और चारुदत्त के घर के सामने खड़ी थी। वसन्तसेना को कपड़ा बदलने में देर हुई। गाड़ीवान गद्दी भूल आया था, उसे लेने के लिए गाड़ी वापस लेगया। इसी बीच में संस्थानक की गाड़ी जो पुष्पकाण्ड बाग़ को जाती थी, रास्ते में भीड़ होने के कारण चारुदत्त के घर के सामने रुक गई और गाड़ीवान भीड़ को हटाने चला गया। वसन्तसेना यह समझकर कि गाड़ी मेरी ही है चारुदत्त के घर से निकलकर संस्थानकवाली गाड़ी में सवार हो गई।

एक अहीर के लड़के आर्यक को पालक के स्थान में लोग राजा बनाना चाहते थे। पालक ने इसी भय से उसको पकड़वाकर बन्दी कर रक्खा था। उसके एक मित्र ने उसे बन्दी-गृह से छुड़ा दिया था वह भागा जारहा था कि इसी बीच में वसन्तसेना की गाड़ी लौटी और उसे ख़ाली देखकर चोरी से आर्यक उसमें सवार होगया। चारुदत्त ने अपनी दयालुता से यह सब वृत्तान्त जानकर भी आर्यक को बचा लिया।

संस्थानक की गाड़ी वसन्त-सेना को लिये हुए पुष्पकाण्ड बाग़ में पहुँची जहाँ संस्थानक अपने सहचरों के साथ मौजूद था। वसन्तसेना को देख उसने अनेक प्रकार से धमकाया और फुसलाया। जब वह किसी प्रकार से वश में न आई और चारुदत्त की ही प्रशंसा गाती रही, तब संस्थानक ने उसे जान से मारडालने की जी में ठानी। सहचरों ने ऐसा निन्दित कर्म करने से इनकार कर दिया और संस्थानक को भी उससे रोकना चाहा; परन्तु यह कब माननेवाला था! सहचरों को तो झूठे झूठे बहाने से उसने भेज दिया और स्वयं वसन्तसेना को मारकर पत्तों में छिपा आया। जब सहचर लौट आये तब उसने उनको झूठी झूठी बातें बनाकर बहका दिया। जब उन्हें यह बात प्रकट होगई तब उसने यह कोशिश की कि उनमें से कोई इस हत्या का दोष अपने ऊपर ले ले। जब इस में भी सफलता न हुई तब उसने उनको झूठा साक्षी बनाना चाहा और फिर उन पर झूठा दोष लगाने की चेष्टा की। उनमें से एक तो उसका साथ छोड़कर भाग गया और दूसरे को इस भय से कि वह हत्या का सच्चा हाल न प्रकाशित कर दे, संस्थानक ने अपने घर में बन्द कर दिया और फिर स्वयं न्याय-गृह में जाकर चारुदत्त पर यह अभियोग लगाया कि आभूषण लेने के लालच से इसने वसन्तसेना को मार डाला।

चारुदत्त बुलाया गया। वसन्तसेना की मृत्यु का हाल सुनकर उसे बड़ा खेद हुआ। उसने पहले तो जुर्म से इनकार कर दिया। फिर यह सोचकर कि बिना वसन्तसेना के जीवन वृथा है उसे अपने सिर ओढ़ लिया। इसी अभियोग में न्यायाधीश को और सेठ कायस्थ को जो व्यवस्था देने के लिए न्यायाधीश के पास बैठे थे, संस्थानक का धमकाना, उन पर बारम्बार अपना और राजा का सम्बन्ध जताना, अनेक प्रकार से उनका तिरस्कार करना, साक्षियों को घुड़की देना, ये सब बातें कोतवाल के चरित्र का परिचय देती हैं। बेचारे न्यायाधीश ने यही ठहराया कि अभियोग सिद्ध है और चारुदत्त को फाँसी पाने की आज्ञा मिली।

चाण्डाल ढँढोरा पीटते हुए उसको ले चले। ढँढोरा सुनकर वह सहचर जिसे संस्थानक ने इस भय से बन्द कर रक्खा था कि वह कदाचित् साक्षी न बन जाय बन्दीगृह के ऊपर से कूद पड़ा। उसने सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया। तुरन्त संस्थानक की पुलिस-बुद्धि काम आई। संस्थानक ने उसको एक सोने का आभूषण पकड़ा दिया और कहा कि तुम झूठी साक्षी दे दो और इसको ले लो। जब वह राज़ी न हुआ तब उस पर संस्थानक ने यह दोष लगाया कि यह नौकर चोर है, इसने मेरे घर में चोरी की है, इसलिए बन्द किया गया है और द्वेष से झूठा साक्षी बनता है। चाण्डाल कोतवाल के सामने नौकर की क्यों सुनने लगे थे? वह हटा दिया गया।

एक संन्यासी जिसके साथ संन्यास लेने से पहले चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों उपकार कर चुके थे तालाब में स्नान करके अपना वस्त्र सुखाने गया। उसकी दृष्टि कटी हुई वसन्तसेना पर पड़ी। उसको पहचानकर वह अपनी झोपड़ी पर ले आया और सेवा करके उसको मरने से बचा लिया। वसन्तसेना जीवित हो गई। चारुदत्त के मरने का समय समीप आया। वसन्तसेना और संन्यासी घर जा रहे थे। जब उन्होंने अन्तिम ढँढोरा सुना तब तुरन्त वहाँ पहुँचे। वसन्तसेना को देखते ही संस्थानक के होश ने उसके शरीर से और संस्थानक ने उस स्थान से प्रस्थान कर दिया।

राजा पालक का राज्य जाता रहा। आर्यक राजा हो गया। वसन्तसेना के सच्चा हाल बताने पर चारुदत्त निर्दोष ठहरा। पुराना उपकार याद करके आर्यक ने चारुदत्त को बड़ा अधिकार सौंपा। अपने, किये हुए का दण्ड पाने के लिए संस्थानक पकड़ा हुआ चारुदत्त और राजा के सम्मुख लाया गया।

अब उसका चरित्र देखिए। वह चारुदत्त की शरण चाहता है, उसके चरणों पर गिरता है और प्राण-दान माँगता है। उदारशील चारुदत्त उसे क्षमा करता है और उसके पहले पद पर उसे नियुक्त करता है। संस्थानक का चरित्र एक पुलिस-अधिकारी का नमूना है। ऐसे अभियोग कितने न सुनने में आये होंगे?

खड्गजीत मिश्र, एम० ए०,
एल-एल० बी०

हमारा व्यापार।

“इस बात से देश के औद्योगिक विकास की अच्छी तरह परख की जा सकती है कि देश में से तैयार माल की निकासी के परिमाण में कच्चे माल की कितनी निकासी होती है और कच्चे माल की आमदनी के परिमाण में तैयार माल की कितनी आमदनी होती है। साधारण रीति से यह बात मानी हुई है कि तैयार माल के निकास और कच्चे माल की आमद पर देश के उद्योग की अभिवृद्धि होती है, और कच्चे माल के निकास और तैयार माल की आमद पर अवनति। औद्योगिक अर्थ-शास्त्र का यह विश्वसनीय नियम है।”—श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड़।

सरकार के वणिज् व्यापार-विभाग से प्रतिवर्ष हमारे देश के उद्योग-व्यापार-सम्बन्धी अङ्कों के नक़्शे प्रकाशित किये जाते हैं। ये वृत्तान्त एकत्र छपवाने के लिए इस विभाग की ओर से बहुत कुछ ख़र्च किया जाता है। परन्तु सर्वसाधारण भारतवासियों के अभाग्य से सारी हक़ीक़त अँगरेज़ी में प्रकट होती है, जिससे इस विषय की ओर जनता का पूरा पूरा ध्यान नहीं खिँचने पाता। इन्हीं अङ्कों के आधार पर, सरकार, एँग्लोइण्डियन अँगरेज़ी समाचार-पत्र, और अन्यान्य हमारे हितैषी कहते हैं कि इस साल इतना व्यापार हुआ और अमुक साल इतना ही हुआ था; आयात में जो इतनी वृद्धि हुई सो भारत की आर्थिक दशा के सुधरने का सबूत है, इत्यादि। ये भ्रामक बातें न केवल विदेशियों को, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत की सर्वसाधारण प्रजा को भी, देश की सच्ची स्थिति के ज्ञान से वञ्चित रखने के लिए काफ़ी जान पड़ती हैं। कहीं कहीं इस

भूलभुलैयाँ में से निकालकर, हमें माननीय जोशी, न्यायमूर्ति रानडे, माननीय गोखले और सर दीनाशा वाचा ऐसे सज्जन सत्य मार्ग बतलाते हैं और पूर्वोक्त वाग्जाल के भँवर में डूबने से हमें बचाते हैं।

किसी भी देश की निकासी और आमदनी के अङ्कमात्र से यह ध्यान में नहीं आ सकता कि देश की वास्तविक आर्थिक स्थिति कैसी है। यदि अङ्क पर ही विश्वास रक्खा जा सकता हो तो कितने ही वर्षों से आमदनी की अपेक्षा हिन्दुस्तान की निकासी बढ़ी हुई है। इसका परिणाम यह होना चाहिए था कि हमारे यहां ज़्यादा पैसा आता और उसका प्रभाव सारी प्रजा पर पड़ता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह सच है कि आमदनी से निकासी ज़्यादा है; परन्तु ऐसा होने का सच्चा कारण यह है कि भारत के सिर पर जो बड़ा भारी क़र्ज़ है (भारत ने जो क़र्ज़ में रुपया लिया है) उसका व्याज भरना पड़ता है, अँगरेज़ अफ़सरों की पेंशन विलायत में चुकाई जाती है और सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के दफ़्तर इत्यादि का ख़र्च देना पड़ता है। अर्थात् आमदनी और निकासी के ऊपर रचा हुआ जो अभिवृद्धि का महल है वह इस तरह ऊपर का ऊपर हवा में उड़ जाता है।

इसके सिवा, जो देश केवल तैयार माल मँगवाता है और उसके एवज़ में असंशोधित सुवर्ण के ऐसा कच्चा (raw) माल भेजता है उस देश की अपेक्षा वह देश सदा बहुत ही अच्छी स्थिति में रहेगा जो कच्चे माल की आमदनी कर तैयार माल की निकासी करता होगा। कच्चे माल की निकासी करने से हमारी प्रजा की हानि होती है। उसे तैयार माल करने की रोज़ी, नफ़ा, व्याज और व्यापार का मुनाफ़ा नहीं मिलता—अर्थात् कारीगर को रोज़ी नहीं मिलती, पूँजीवाला व्याज से महरूम रहता है और व्यापारी नफ़े से कोरा रह जाता है। परिणाम में देश पर ख़राब असर पड़ता है। इसके विरुद्ध तैयार माल की निकासी बढ़ने से ऊपर बताये हुए सारे लाभ देश को होते हैं और उद्योग-धन्धों का पोषण होने से पैसा बढ़ता है और सभी प्रकार से देश की आर्थिक स्थिति का सुधार होता है। यही बात सयाजीराव गायकवाड़ ने संक्षेप में, कलकत्ते में कही थी जिसका अवतरण इस लेख के प्रारम्भ में किया है।

इतना उपोद्घात लिखने के बाद अब हम अपने देश के व्यापार-सम्बन्धी कुछ अङ्कों का अवलोकन करते हैं।

लड़ाई के पहले और पीछे की आमदनी और निकासी के अङ्क नीचे लिखे मुआफ़िक हैं।—

			लड़ाई के बीच में
सन्	१९१०—११	१९१३—१४	१९१५—१६
कुल आमदनी	१७३·४४ करोड़	२३५ करोड़	१४९ करोड़
कुल निकासी	२१७·०९ ,,	२५६ ,,	२०८ ,,
कुल योग	३९०·५३	४९१	३५७

(चांदी, सोना और सरकारी सामान सहित)

लड़ाई शुरू होने से पहले १९१०—११ में ४३·६५ करोड़ और १९१३-१४ में २१ करोड़ की निकासी ज़्यादा थी और लड़ाई के बीच में भी ५९ करोड़ की निकासी ज़्यादा थी। यह ज़्यादती स्थूल दृष्टि से सामान्य मनुष्य को भूल में डाल देने के लिए काफ़ी है।

प्रति मनुष्य की औसत के हिसाब से आमदनी और निकासी नीचे लिखे मुआफ़िक है—

सन् १९००—१	आमदनी	निकासी	कुल यो
(बस्ती २९,४०,००,०००) रु०	३—८—०	४-०-०	७-८-०
सन् १९१०—११			
(बस्ती ३१,५०,००,०००) ,,	५·८-०	६-१४-४	१२-६-

अन्यान्य देशों की सुख-समृद्धि के साथ तुलना करने से हमारी मनुष्यवार आमदनी का औसत बहुत ही कम है। इस विषय में कराँचीवाले चन्द्र महाशय ने नीचे लिखे मुआफ़िक व्यापार-विषयक आमदनी की तुलना की है—

आस्ट्रेलिया	रु०	४४१
कनेडा	,,	३६२—४—०
युनाइटेड किंगडम (इँग्लेंड वग़ैरह)	,,	३ २
फ़्रांस	,,	२१२—४—०
जर्मनी	,,	२०१—१२—०
इटली	,,	९५—४—०
तुर्किस्तान	,,	४२—०—०
भारतवर्ष	,,	१३—८—०

इस तुलना के देखने से भली भाँति समझ में आ जाता है कि अँगरेज़ों के न्यायी, शान्त और सुलह-पूर्ण कहे जाने-

वाले राज्यतन्त्र के नीचे आने पर भी अन्यान्य देशों के साथ की तुलना में भारत की क्या स्थिति है।

लड़ाई के कारण से आमदनी और निकासी में बहुत कमी हुई है। इससे अख़ीरी सत्तावार अङ्कों के साथ लड़ाई के पहले अर्थात् १९१३–१४ सन् में हमारे देश का व्यापार कितना था, सो नीचे के अङ्कों से समझ पड़ेगा। ज़्यादातर ध्यान को खींचनेवाली बात तो यह है कि लड़ाई होने की हालत में भी दियासलाई, साबुन, ताश आदि की आमदनी बढ़ी है। अ, आ, इ, में बतलाई हुई चीज़ों को हमारे यहां तैयार करने में बहुत ही कठिनाई का डर नहीं है। इनमें से कितनी ही चीज़ें तो ऐसी आती हैं जो भारतवासियों को नीचा दिखानेवाली हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मौज-शौक़ के लिए हमें कितना कर देना पड़ता है।

अ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
बिस्किट (सील)	९३,४५,०००	६६,२४,०००	४४,८१,०००	३५,२७,०००
बनावटी दूध (रतल)	१,५६,८१,०००	९७,७०,०००	४१,५१,०००	३३,३०,०००
आटे की बनी हुई और पेटेन्ट खुराक (हंडरवेट)	२,९८,०००	२,५२,०००	४७,७५,०००	४३,५५,०००

आ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
हारमोनियम (आरगिन सहित), नग	५६८	३२१	६०,०००	३०,०००
पियानो ”	८१८	४३७	४,५०,०००	२,५०,०००
ग्रामोफ़ोन			१०,७०,०००	४,६०,०००
सेंट वग़ैरह			५,००,०००	३,३०,०००
श्रृङ्गार की फुटकल चीज़ें			२२,०३,०००	१९,०२,०००
ताश वग़ैरह			६,३०,०००	८,००,०००
फ़रनीचर			३३,६०,०००	२५,३०,०००
बाइसिकल, नग	३४,५७७	१९,३४२	३४,७२,०००	२१,२२,०००
मोटर, साइकल और उसका सामान	४,४१९	४,३०४	१,५३,००,०००	१,२९,००,०००

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
गाड़ी, नग	१३,६१८	५,०७०	२५,३८,०००	८,१४,०००
बूट, शूज, जोड़ी	३२,९५,०००	१४,१९,०००	७९,२६,०००	३७,५०,०००
काच के मणके और खोटे मोती (हंडर०)	३२,०००	१६,०००	२४,५०,०००	११,००,०००
कांच की चूड़ियां			८०,४५,०००	२३,१६,०००
साबुन (हंडर०)	३,६३,०००	४,७४,०००	७५,०६,०००	८४,५३,०००
छाते। नग	१९,६७,५६०	१०,५७,८५९	५३,१०,०००	३१,६९,०००
पहनने के कपड़े			८३,२१,०००	६५,४३,०००
टोपियाँ, हैट् वग़ैरह			२१,१७,०००	१२,१४,०००
उतरे कपड़े (सेकंड-हैंड)			१०,६४,०००	६,७४,०००
अलूमेनियम का सामान			२५,५१,०००	१४,३०,०००
मीना चढ़ाई हुई चीज़ें			२७,६७,०००	८,६८,०००
चाक़ू, कैंची, वग़ैरह लोहे की चीज़ें			१८,७०,०००	७,६८,०००
खिलौने			४४,१७,०००	३१,१०,०००

इ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
ईंट की नलियां	२,५०,३७,०००	१,९२,४२,०००	२४.७०,०००	२१,११,०००
बोतलें, ग्लास	३,५७,०००	३,३७,०००	२१,९३,०००	१६,१७,०००
कुल कांच का सामान			१,९४,५३,०००	१,०६,४४,०००

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
सीमेंट (हंडर०)	२९,३०,०००	२६,३३,०००	६५,८५,०००	७०,३५,०००
लोहे की पटड़ी, टन	३१,०००	३१,०००	४३,१८,०००	६४,००,०००
कीले, स्क्रू वग़ैरह, टन	२७,०००	२५,०००	६१,८७,०००	७९,४४,०००
तांबे का सामान (हंडर०)	६,६७,०००	९६,०००	३,६५,६७,०००	६,२०,४०,०००
दीपक और उसके मुताल्लिक सामान			५२,४७,०००	२८,८३,०००
रङ्ग (रतल)	१,६१,७३,०००	७,१५,०००	१,४१,३९,०००	४५,१३,०००
टाइप राइटर्स	६,०००	४,०००	१०,०५,०००	७,६४,०००

नीचे लिखे हुए कोष्टकों में और भी चौंका देनेवाले हाल दर्ज किये जाते हैं। हमारे यहां कैसी और कितनी चीज़ें आती हैं! यदि हमारे सेठ, साहूकार इधर ध्यान देवें तो अवश्य लाभ हो सकता है।

अ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
सब प्रकार की मदिरा (गेलन)	६७,८६,०००	४८,२६,०००	२,२३,७१,०००	१,८७,३४,०००
शकर (हंडरवेट)	१,७९,३७,०००	१,२८,५५,०००	१४,९५,६९,०००	१६,६१,७८,०००
दियासलाई (ग्रोस)	१,३८,९४,०००	१,८३,०५,०००	८९,६५,०००	१,३८,३१,०००
नमक (टन)	६,०७,०००	५,४९,०००	८७,६६,०००	१,२५,०१,०००
पेटेन्ट दवाइयाँ			२६,४०,०००	२०, ६३,०००
भरने, गूँथने और सीने की कलें			४०,७०,०००	२९,८२,०००
रेल के लिए स्लीपर्स (हंडरवेट)	१०,५०,०००	१,४०,०००	३८,२७,०००	५,२६,०००
रेलगाड़ियां और उसके विभाग			४,६९,५९,०००	१,४४,८३,०००
निब, पैंसिल वग़ैरह			७०,००,०००	५६,८०,०००
तमाखू या उससे बने हुए पदार्थ (रतल)	२४,५८,०००	२४,३७,०००	७५,३०,०००	८०,१५,०००

आ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
मोज़े, गंजीफराक वग़ैरह सूती			९१,७७,०००	६४,००,०००
रूमाल, शाल वग़ैरह (नग)	३,८०,८८,०००	८३,०६,०००	८८,९२,०००	१४,९३,०००
सीने के धागे (रतल)	१,७०,०५,०००	१९,२०,०००	३९,००,०००	४३,७६,०००
पेटीकोट्			५४,१२,०००	४३,६४,०००
लेस			६,३०,०००	७,८०,०००
सूती साड़ियाँ			१,८४,१०,०००	८४,७५,०००
सफेद धोती, लुंगी वग़ैरह			१६,६५,००,०००	११,०५,००,०००
सारा सूती माल			६६,५७,६६,०००	४३,३३,८६,०००
सारा रेशमी माल			४,३७,१९,०००	३,८४,१८,०००
गरम शाल (नग)	२१,०१,०००	२,६३,०००	५६,४२,०००	७,४५,०००
सारा ऊनी माल			४,०५,१६,०००	१,१९,११,०००

जो माल हमारे देश में न तो तुरन्त मिल ही सकता है और न बनाया जा सकता है उसकी आमदनी नीचे लिखे मुआफ़िक हुई है —

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
बीम्स गर्डर्स (टन)	९०,०००	२६,०००	१,१५,५५,०००	४१,७०,०००
ताँबे के पतरे (हंडर०)	८०,०००	२०,०००	४६,१४,०००	१२,११,०००
जर्मन सिल्वर ,,	२६,०००	२,०००	२२,१६,०००	२,१३,०००
रुई सन वग़ैरह के मिलों के लिए साँचे			३,२७,९९,०००	२,१७,४९,०००
बाइलर्स			३५,५४,०००	२१,२३,०००

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
सब प्रकार के सांचे			७,७५,८३,०००	४,७७,७४,०००
सारा रेलवे का सामान डब्बों सहित			१०,०३,४७,०००	४,२१,८५,०००
इंजन			१,९०,३४,०००	१,४४,२४,०००
कागज़ और पुट्ठे			१,५८,७७,०००	१,४४,२४,०००
रबर			५२,९०,०००	९१,४१,०००
घड़ी और उसके मुताल्लिक सामान (नग)	८,४६,२७३	५,३५,३८९	२६,६३,०००	१९,९७,०००

आनेवाली चीज़ों का हाल हमें मालूम हुआ। अब हम हमारे यहाँ से निकास होनेवाली चीज़ों का अवलोकन करें। मोटी निगाह से देखनेवाले को भी जान पड़ेगा कि निकासी की चीज़ों में बहुत बड़ा हिस्सा कच्चे माल का ही है। आवश्यक है कि 'ख' और 'ग' पर ख़ास तौर पर ध्यान दिया जावे।

क

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न	१९१५–१६ वज़न	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
रंगने और चमड़ा कमाने के उपयोगी सामान (हं०)	१४,६७,०००	१६,८०,०००	१,०४,०३,०००	३,१३,०३,०००
लाख (हं०)	३,३९,०००	४,१७,०००	१,९६,५८,०००	१,७१,७६,०००
हड्डियाँ (टन)	१,०५,०००	५१,०००	७८,३३,०००	३५,३४,०००
सींग (हं०)	८०,०००	२३,०००	१५,९०,०००	५,८४,०००
तम्बाखू (रतल)	२,७८,१७,०००	२,४२,५०,०००	३१,७७,०००	३०,१९,०००
घी (रतल)	५५,६९,०००	५२,९१,०००	३४,९४,०००	३०,७७,०००
कच्ची धातु (टन)	७,२६,०००	४,७८,०००	१,५४,६१,०००	१,३९,१९,०००

ख

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
गायों के चमड़े (हं०)	७,४३,०००	६,८९,०००	५,९०,५५,०००	५,६१,५९,०००
बछड़ों के चमड़े (हं०)	२६,०००	३०,०००	१८,३१,०००	२३,६०,०००
सब प्रकार के कच्चे चमड़े (हं०)	१६,२२,०००	१३,३५,०००	११,७२,२९,०००	९,७९,५३,०००
गाय का पका चमड़ा (हं०)	१,५८,०००	२,४७,०००	१,४७,४०,०००	२,८३,८९,०००
सब तरह का पका चमड़ा (हं०)			४,२५,०२,०००	५,६३,८२,०००
सन (टन)	७,६८,०००	६,००,०००	३०,८२,६४,०००	१५,६४,२०,०००
सन के रेशे (हं०)	७,१२,०००	६,०८,०००	१,०२,३५,०००	१,०२,५४,०००
रुई (हं०)	१,०६,२६,०००	८८,५४,०००	४१,०४,२५,०००	२४,९२,८९,०००

ग

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न	१९१५–१६ वज़न	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
गेहूँ (हंडरवेट)	२,४०,४४,०००	१,३०,५८,०००	१२,१३,२४,०००	८,४४,०७,०००
चावल ,,	४,९०,०७,०००	२,७३,४८,०००	२६,६०,६५,०००	१५,४५,५२,०००
चना	१३,९२,०००	६,५०,०००	६२,२७,०००	३२,६६,०००
सब प्रकार का अनाज	८,३८,९५,०००	४,८७,१९,०००	४५,१४,१४,०००	२९,०७,१२,०००
अलसी	८२,७७,०००	३८,६०,०००	६,६८,७०,०००	२,९७,४२,०००
सरसों	४९,८०,०००	१९,०४,०००	४,२७,७६,०००	१,४०,७९,०००

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
मूँगफली	५५,५८,०००	३५,०९,०००	४,८८,१४,०००	२,५०,३४,०००
बिनोले	५६,८७,०००	१९,१३,०००	२,१२,५१,०००	६६,७६,०००
सब प्रकार के बीज	३,१६,५३,०००	१,३९,९९,०००	२५,६७,५४,०००	१०,१२,२६,०००

१९१३–१४ ई० में कुल माल २३५ करोड़ का आया। इसमें सरकारी स्टोर को अलग कर देने पर इँग्लेंड (यूनाइटेड किंगडम) से १,१७,५८,२६,२५५ रुपये का माल नीचे लिखी हुई मुख्य वस्तुओं से मिलकर होता है। (इसी अर्से में ७,५०,२०,२५० का माल विलायत से सरकारी स्टोर के रूप में आया था।)

माल	क़ीमत	माल	क़ीमत
रेशमी और गरम कपड़े पहनने के तैयार कपड़ों सहित	३,२२,३५,४०५ रुपये	शराब	१,४१,०३,६४५
सूती कपड़ा और सूत	५९,७५,१४,३५० ,,	काग़ज़ किताबें वग़ैरह	१,८६,२६,३२५
धातु और कच्ची धातु	१४,०४,९९,१०५	दवा	१,२३,२८,१५५
रेलवे का सामान	९,३२,८८,३४५	साबुन	६८,५४,४१५
सांचे	६,९५,७७,७८५	नमक	२०,४४,८१५
हार्डवेअर—कटलरी	२,४४,०७,२३५	छत्री	३०,२०,२३०

यहाँ पर इस बात का विचार करना भी अनुपयुक्त न होगा कि आख़िरी ४० वर्ष में नीचे लिखे हुए देशों से किस क़दर माल की आमदनी बढ़ती गई।

सन्	युनाइटेड किंगडम	बेलजियम	आस्ट्रिया हङ्गरी	जर्मनी	जापान
१८७५–७६	३२,२७,६१,०००	२,१७०	९,५५,४००	२,३५,२००	५३,५००
१८७५–८४ तक	३७,९०,६६,०००	५,०७,३८०	२२,०४,१००	६,२८,८००	१,०६,४००
१८८५–९४ तक	५१,८३,६०,०००	१,०१,६०,३००	८६,८९,५००	९४,०३,५००	८,८०,३००

सन्	युनाइटेड किंगडम	बेलजियम	आस्ट्रिया हङ्गरी	जर्मनी	जापान
१८९५–०४ तक	५६,४१,५२,०००	२,७१,१५,८००	२,५६,६८,६००	२,५३,२०,६००	७३,७५,९००
१९१०–११	८३,११,५१,०००	५,८१,४८,६००	३,१६,५१,८००	५,१५,७४,१००	३,३५,८६,०००
१९१३–१४	१,२५,०८,४६,८००	४,२८,२३,०००	४,२९,१९,१००	१२,६७,७१,५००	४,७८,०३,२००

इस तरह विदेशी तैयार माल ज़्यादा ज़्यादा हमारे यहाँ आकर खपता रहा और उसके एवज़ में हम कच्चे माल का निकास करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत की प्रजा को इस बात की ज़्यादा से ज़्यादा ज़रूरत पड़ती गई कि वह खेती पर अपनी गुज़र करे। इसका ख़याल नीचे लिखे कोष्ठक से होगा।

सन्	बस्ती	टके	कितनों का खेती पर गुज़र होता है
१८९१	२८,७०,००,०००	६२	१७,७९,४०,०००
१९०१	२९,४०,००,०००	६८	१९,९९,२०,०००
१९११	३१,५०,००,०००	७१	२२,३६,५०,०००
स्वर्गीय गोखले और अन्यान्य लोक-नेताओं के मत से १९११ ईसवी में	३१,५०,००,०००	८०	२५,२०,००,०००

स्टेटिस्टिक (अङ्क-संग्रह) के डाइरेक्टर फेंडले शिरास महाशय ने १९१५–१६ के वणिज्-व्यापार का अवलोकन करते हुए, हमारी हालत के विषय में नीचे लिखे हुए विचार प्रकट किये हैं —

"लड़ाई प्रारम्भ होने के समय से भारत में व्यापार की जो विलक्षण स्थिति रही है उससे नीचे लिखी हुई दो भावनायें विशेष दृढ़ हुई हैं। (१) यह कि इस देश का बहुत बड़ा आधार अपने कच्चे माल की निकासी पर है और (२) इन निकासी की वस्तुओं की खपत बहुत ज़्यादा तादाद में यहीं करके उद्योग-हुनर के द्वारा तैयार माल यहीं बनाना चाहिए। भारत के मनुष्यों का खेती पर बेहद आधार है। इस आश्रय का परिणाम अनावृष्टि आदि के सालों में बड़ा ही गम्भीर होता है। लोग बेरोज़गार हो जाते हैं और भयङ्कर दुकाल पड़ जाते हैं। इस बात में मत-भेद नहीं है कि इस पराधीनता को, नये नये कल-कारख़ाने खोल और उद्योग-हुनर की उन्नति कर, कम करना चाहिए। कहने का तात्पर्य्य यही है कि वणिज्-व्यापार और रोज़गार-धन्धे के बारे में भारत जिस प्रकृति-विरुद्ध रीति को अङ्गीकार कर बैठा है उसे दूर करना चाहिए।"

आनेवाले माल के परिमाण में वह माल स्वयं यहाँ पर कितना तैयार होता है, यह आगे लिखे कोष्ठक से जान पड़ेगा।

सन् १९१३–१४

	आनेवाला माल		यहाँ तैयार होनेवाला माल		
चीज़ें	वज़न (रतल)	क़ीमत (रुपये)	वज़न (रतल)	क़ीमत (रुपये)	कारख़ानों की संख्या
काग़ज़ (रतल)	१२,९०,४०,०१६	१,६६,८३,३८३	६८,०५,९३,०००	८०,३७,०००	९
बनावटी ऊन का माल (रतल)	ठीक हाल नहीं मिला	३,९१,१९,६०९	५१,५०,०००	६१,६१,०००	७
नमक (टन)	६,०६,९४०	८७,६६,४८३	१४,७३,११६	८१,२१,००७	...
कोयला	६,४४,९३४	१,४८,०६,२०२	१,६२,०८,००८	५,६९,७२,०५५	...
पेट्रोलियम (गेलन)	३६,८७५	४२,०१५	२७,७५,५५,२२५	१,५५,१८,७९४	...
केरोसिन तैल (गेलन)	६,८८,४९,९७३	२,८५,६४,५११	१०,६१,१८,९९८	क़ीमत नहीं मिली	...
शराब	६७,८६,०००	२,२३,७१,२८७	३६,५४,५२१	...	२१
सूत (रतल)	३,७३,५२,६६७	४,१६,४२,४४९	६८,२७,७६,८५१	...	...
सूती बुना हुआ माल (रतल)	अलहदा ठीक विगत मालूम नहीं		२७,४३,८८,५५०	...	...
कुल सूती माल	...	६१,७८,९०,१६९	...	१६,०९,८३,०५७	२१६
सीसा (टन)	३९५२	१५,६४,५६०	५८५८	१०,७२,६७४	...

भारतवर्ष में जो कुछ थोड़ासा यह उद्योग है सो भी केवल भारतवासियों के हाथ में नहीं है। क़रीब क़रीब वे सारे उद्योग विदेशियों के हाथ में हैं, क्योंकि उनमें विशेष पूँजी, साहस और उच्च प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। सन् १९१३–१४ तक ६८८८ कम्पनियाँ यहाँ पर रजिस्टर हुई थीं जिनमें २७४४ कम्पनियाँ ही चालू रही थीं। इनका मंज़ूर हुआ मूलधन २,३३,२३,६१,३९८ था। इसमें ८७,३०,४३,४७५ के शेअर निकाले गये थे जिनमें ७६,५६,१८,२७४ के शेअर भर गये।

२७४४ कम्पनियों में मुख्य मुख्य आगे लिखे मुआफ़िक थीं—

कम्पनी	संख्या	पूँजी (रुपये)
बैंक और सर्राफी दूकानें	५५२	७,९१,५१,४००
बीमा के मुताल्लिक	२१४	४६,०८,८७१
जहाज़ के मुताल्लिक	२३	१,२३,६६,४८६
रेल्वे और ट्राम्वे के मुताल्लिक	४३।	७,०६,४४,५८२
कपड़े और सूत की मिल	२०९	१५,५६,९८,१७८
सन की मिल	३५	७,४४,९४,८३०
रुई और सन के प्रेस	१४५	२,७२,४४,५६८
ऊन, रेशम, आदि की मिल	१७	१,२८,९५,२३२
चाय के मुताल्लिक	२०१	४,०९,०५,३९५
कोयले के मुताल्लिक	१३७	५,८६,५८,४२९
ज़मीन और पुल वग़ैरह के मुताल्लिक	३५	१,९१,५८,२९८

इनके सिवा १९१३–१४ ई० तक हमारे देश में व्यापार करने के लिए ५७९ कम्पनियाँ क़ायम हुई हैं; परन्तु इनके प्रधान कार्य्यालय विदेश में हैं और ये वहीं रजिस्टर हुई हैं। यह स्वाभाविक बात है कि इन्हें जो कुछ नफ़ा होता है वह विदेश में जाता है। विदेश में रजिस्टर हुई इन ५७९ कम्पनियों की मंज़ूर पूँजी ८,४३,४७,४३,९१५ रुपये में से ३,००,७०,९५,८८८ रु० वसूल हुए और इनके सिवा ८७,९३,०२,१७५ के डिबेंचर्स निकले हैं।

५७९ कम्पनियों में मुख्य इस प्रकार हैं—

बैंक और सर्राफी की दूकानें	१५
बीमे के मुताल्लिक	८१
रेल्वे ट्राम	३१
जहाज़ चलाने के मुताल्लिक	८
रुई की मिल	७
सन की मिल	९
चाय, काफ़ी के मुताल्लिक	१६८
खान से सोना निकालने के मुताल्लिक	१७
कोयले के मुताल्लिक	९

ऐसे अङ्क होने पर भी और वणिज्-व्यापार सालों-साल बढ़ते रहने पर भी, भारत की आर्थिक दशा सुधरने के बदले बिगड़ती जाती है। देश के घर घर में दरिद्रता दर्शन दे रही है। सर विलियम डिग्वी, अङ्क और प्रमाणों के साथ कहते हैं कि सुलह-शान्तिवाली अँगरेज़ी हुकूमत के नीचे हिन्दुस्तान ग़रीब होता चला जारहा है।

बे-सरकारी गिनती के मुआफ़िक १८५० ई० में भारतवासियों की आय का दैनिक औसत दो आने

रोज़ था और चौंतीस रुपये तीन आने छः पाई सालाना आय का औसत था। फिर १९०० ई० में सब प्रकार की आय का पृथक्करण करके तहकीकात करने पर दैनिक औसत)॥। और वार्षिक १७-)॥। निकला। लार्ड कर्ज़न के समय की १९०२-३ की गिनती के अनुसार दैनिक आय लगभग ०—१—३॥। और वार्षिक ३०) से ज़्यादा न होसकी। इस आय को अन्यान्य देशों की आय से तुलना करने पर मालूम हो जायगा कि सब देशों से यहीं की आय कम है।

भारतवर्ष	३०)
इटली	१८३)
आस्ट्रिया	२३२॥)
फ़्रांस	४१७)
जर्मनी	४६५)
युनाइटेड स्टेट्स	६००)
युनाइटेड किंगडम	६००)

भारत में क्यों ग़रीबी बढ़ती जाती है और भारत क्यों दिन दिन दरिद्र होता जाता है? इसका मुख्य कारण यहाँ के कच्चे माल की निकासी है। कच्चे माल की निकासी कर तैयार माल की आमदनी होने देने से, देश को जो जो लाभ मिलने चाहिएं, वे नहीं मिलने पाते, बल्कि भयङ्कर हानि होती है। यह हानि हज़ारों या लाखों से नहीं गिनी जासकती। इसकी गिनती करोड़ों रुपयों से हो सकती है। यह बात किसी अंश में ध्यानस्थ होने के लिए यहाँ पर कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। विचारशील सज्जनों को इन पर ध्यान देना चाहिए—

(१) यहां से ११-१२ करोड़ रुपये के कच्चे चमड़े का निकास होता है। यदि हम कच्चे चमड़े की क़ीमत १॥।) मानें और पके चमड़े की कम से कम औसतन ७) मानें, तो सालों-साल हिन्दुस्तान ५० करोड़ रुपये खोता है। इस बात को तो कोई भी सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य मान लेगा कि इस प्रकार के ५० करोड़ रुपये किसी भी विदेशी प्रजा को समृद्ध करने के लिए काफ़ी हैं।

(२) बिनौले का तेल निकालने के उद्योग के सम्बन्ध में, सुतरिया महाशय नीचे लिखे मुआफ़िक सम्मति प्रकट करते हैं—

रुई की पैदावार पर विचार करने से जान पड़ता है कि प्रतिवर्ष १६,००,००० टन बिनौले निकलते हैं। इनमें से $\frac{१}{१०}$ बोने के लिए गिनने और २,५०,००० टन विदेश जाने के लिए अलग कर देने पर १२,००,००० बच रहते हैं। इनका उपयोग बहुत करके जानवरों को खिलाने में होता है। यदि इनका तेल निकालने का प्रयत्न यहां पर किया जाय तो देश को नीचे लिखे मुआफिक लाभ होवे। विशेष कर ध्यान देने की बात तो यह है कि जानवर ख़ालिस बिनौलों को पचा नहीं सकते; तेल निकालने के बाद जो खली बच रहती है वह जानवरों के खाने के योग्य होती है, क्योंकि बिनौलों में से $\frac{१२}{१००}$ परिमाण में तेल निकलता है।

लाभ इस प्रकार से हो सकता है—

१२,००,००० टन बिनौलों में कम से कम

१ ०,००० टन तेल निकलेगा—प्रतिटन	४५०	रुपये के भाव से रु०	५,४०,००,०००
५,३०,००० खली ,,	५०	,,	२,६५,००,०००
५,५०,००० फोक वग़ैरह ,,	२०	,,	१,१०,००,०००
		बिनौलों की कुल पैदावार	९,१५,००,०००

१२,००,००० टन बिनौलों की ५० रु० टन के हिसाब से क़ीमत निकाल देने पर ६,००,००,०००

लाभ ३,१५,००,०००

हमारे देश में रहे हुए बिनौलों का इस तरह उपयोग करने से, ख़र्च निकाल देने पर भी, तीन करोड़ से ऊपर का लाभ होता है। हमारे यहां से अलसी, दाने (पोस्त), सरसों, तिल, मूँगफली, बिनौले आदि मिलकर कुल

बीज (Seeds) कोई २५½ करोड़ की क़ीमत के बाहर जाते हैं। यदि इनमें से यहीं तेल आदि निकाले जायँ तो देश को कितना लाभ न हो ? छः करोड़ के बिनौलों में जब तीन करोड़ का लाभ होता है तब इस बात को समझना कठिन नहीं है कि इस हिसाब से लगभग छब्बीस करोड़ के बीजों में गये-बीते तौर पर भी बारह-तेरह करोड़ का लाभ अवश्य हो सकता है।

(३) यदि हम रुई का उदाहरण लेवें तो यह बात और भी अधिक आवश्यक जान पड़ती है कि देश में स्वदेशी उद्योग का विकास होना चाहिए। सन् १९१३-१४ में यहाँ से ३०,३६,०८८ गाँठें रवाना हुईं। यदि ३½ हंडरवेट की एक गाँठ मानें तो १,०६,२६,३१२ हंडरवेट रुई का निकास हुआ। सरकारी काग़ज़ात में इसकी क़ीमत ४१,०४,२४,८२५ रु० दर्ज हुई है। यह रुई की असली क़ीमत है। इससे बने हुए माल की असली क़ीमत प्रायः १,२३,१२,००,००० रुपये होगी। अब इसमें से रुई की क़ीमत अलग करदें तो बचत इस प्रकार होगी—

रुई के बने हुए माल की क़ीमत	१२३ करोड़
निकास की हुई रुई की क़ीमत	४१ ,,
बचत	८२ करोड़

हमारे हिसाब में थोड़ा फेर-फार भी मान लें तोभी ७५ करोड़ की बचत मान लेना किसी तरह भी अयोग्य नहीं है। कच्चे माल की ख़ूब बिक्री करने पर भी हिन्दुस्तान निर्धन रहता है। इसका कारण यह है कि नफ़ा, ब्याज, रोज़ी वग़ैरह मिलाकर ७५ करोड़ रुपया एक रुई का पक्का माल यहाँ तैयार न होने की वजह से विदेशों में रहता है। यदि रुई का निकास न कर उसकी कताई कर यहीं बुनाई होती तो यह रुपया यहीं रहता और काम आता। इस तरह अन्यान्य कच्चे माल के निकास से हमारा रुपया जादू के छू-मन्त्र की तरह पराये मुल्कों में परदेशियों की जेबें भरने के लिए निकल जाता है। हमारे व्यापार की यथार्थ स्थिति ऊपर लिखे मुआफ़िक है। हितैषी सेठ, साहूकारों और महाजनों का ध्यान इस ओर जाने में कल्याण है।

एक देशहितैषी।

सुलोचना।

[रामचरितचन्द्रिका से उद्धृत]

नरक में धर्मदेवी यदि विचरती,
गढ़े में राजहंसी यदि विचरती।
तदपि अचरज न था, पर दैत्य-कन्या,
सती हो क्यों हुई त्रैलोक्य-धन्या ॥१॥

असुर-कुल को सुनयना यों मिली थी;
मनों दावाग्नि में कोई खिली थी।
मनों मरुभूमि में गङ्गा बही थी;
गरलनिधि से सुधा-सरिता बही थी ॥२॥

असुर-पति भाग्य में तेरे लिखा था;
मनों विधि ने अनय करना सिखा था।
करीरों में मनों कोयल बसी थी;
मनों करि-कन्यका कीचड़ फँसी थी ॥३॥

किया तूने तथा सेवन स्वपति का;
धतूरे पर यथा हो कल्प-लतिका।
तुझे पा धन्य थे लङ्का-निवासी;
जहाँ तू थी वहीं थी गुप्त काशी ॥४॥

जगत में और कुछ तूने न जाना;
स्वपति को विश्वपति के तुल्य माना।
तुझे प्रिय था वही, कोई न दूजा;
उसे तज की न तूने अन्य-पूजा ॥ ५ ॥

सदा अनुकूल पति के तू रही थी;
तुझे श्लाघा किसीकी भी नहीं थी।
बिना पति के न गति मिलती सती को;
बिना संकल्प फल हो क्यों व्रती को ॥६॥

किसी विध का रहे भर्ता, कहीं हो,
सती का मन उसीमें हो; वहीं हो।
रहा इस भाँति का ही चित्र तेरा;
अपर नर पर न तूने नैन फेरा ॥७॥

कभी तूने कहा कुछ भी न उससे;
नहीं पल भर रही तू हीन उससे।
मरा वह जब, हुई अनुगामिनी तू;
मनों राकेश था वह, यामिनी तू ॥८॥

निशाचर-राज रण में मरगया जब;
विभीषण से मिली मन्दोदरी तब।
सतीपन फिर तुम्हें कैसे मिला था ?
कमल विषवल्लरी में क्यों खिला था ? ॥९॥
सिया से सीख थी क्या प्राप्त तुझको ?
मिला उपदेश कैसे आप्त तुझको ?
सती क्यों राक्षसी होके हुई तू ?
त्रिपथगा कर्मनाशा से हुई तू ॥१०॥
राम-शिबिर में गई; लिया पति का सिर तूने।
शीश हँसाकर दिया सती-परिचय फिर तूने॥
विस्मित रघुपति हुए देख तेरा पातिव्रत।
चढ़ी चिता पति सङ्ग, मिला तुमको फल अभिमत॥११॥
सतियों में तव नाम सुनयने, होगा तब तक,
प्रभा सूर्य से अलग नहीं होवेगी जब तक।
वह लङ्का है धन्य, जहाँ पर तू रहती थी।
मनों म्लेच्छ के ग्राम वियद् गङ्गा बहती थी॥१२॥

रामचरित उपाध्याय।

मुग़ल सम्राट् बाबर के इतिहास की सामग्री।

हिन्दी भाषा में इतिहास-लेखन का कार्य्य अभी गम्भीरता के साथ और नियमपूर्वक आरम्भ ही नहीं हुआ है। यही कारण है कि इस भाषा में भारतवर्ष क्या, किसी देश का—किसी देशांश का भी—स्वतन्त्र, विचार-पूर्ण, खोज-पूर्ण, सप्रमाण इतिहास नहीं मिलता। अधिकतर जो इतिहास मिलते हैं, अन्य भाषाओं के अनुवाद मिलते हैं और ये अनुवाद भी प्रायः त्रुटि-पूर्ण रहते हैं। हिन्दी में स्वतन्त्र पुस्तकें मध्यम अथवा निकृष्ट श्रेणी की हैं; प्रथम श्रेणी की पुस्तकों का तो नितान्त अभाव है। तोभी यह अभाव हमारी भाषा की हीनता को नहीं प्रमाणित करता। हाँ, इससे हमारी प्रयत्नहीनता अवश्य स्पष्ट होती है।

मेरे विचार में इस अभाव का वर्णन ही पुनरुक्ति-दोष है। इस अभाव को दूर करने का उपाय होना चाहिए। परन्तु कार्य्य बड़ा है। यह छोटा-सा लेख इस महत्कार्य की पूर्ति में किञ्चिन्मात्र सहायता देने के उद्देश्य से उपस्थित किया जाता है।

सम्राट् ज़हीरुद्दीन मुहम्मद (उपनाम) बाबर भारतीय इतिहास के एक प्रधान वंश का स्थापनकर्ता है। इसके वंश ने भारत में लगभग तीन शताब्दियों तक बहुत बल-पूर्वक और मानपूर्वक शासन किया। अकबर और औरङ्ग-ज़ेब दोनों इसीके वंशज थे। यह सम्राट् स्वयं अमीर तैमूर के वंश में उत्पन्न हुआ था; और इसीके शरीर में मातृ-पक्ष से, मध्य-एशिया के विकराल चङ्गीज़ ख़ाँ का रक्त भी प्रवाहित था; बाबर भारत के इतिहास का एक प्रधान पुरुष है। इसके वंश के इतिहास का अध्ययन करने के पूर्व ख़ुद इसीके इतिहास का जानना परमावश्यक है।

यद्यपि बाबर का नाम भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अमिट है, और यद्यपि यह नाम संसार के इतिहास में अपने भारतीय साम्राज्य द्वारा ही प्रसिद्ध है, तोभी यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि बाबर के जीवन का प्रायः सम्पूर्ण अंश भारतवर्ष के बाहर व्यतीत हुआ था। सन् १५२६ ई० की पानीपत की लड़ाई में इसने हिन्दुस्तान के लोदी वंश के सुल्तान इब्राहीम को परास्त किया। इसी समय इसके साम्राज्य का सूत्रपात हुआ, और सन् १५३० ई० में ही इसकी मृत्यु होगई। इन चार वर्षों के बीच भी इसे अपने साम्राज्य को स्थिर करने का अवसर न मिला। इसका सम्पूर्ण समय भिन्न भिन्न प्रान्तों के विजय करने में व्यतीत हुआ। बाबर की अड़तालीस वर्ष की अवस्था के केवल चार वर्ष भारत में व्यतीत हुए। बाबर के जीवन के शेष वृत्तान्त के लिए हमें मध्य-एशिया के इतिहास का आश्रय लेना पड़ेगा। इसीसे कुछ लोगों का विचार है कि बाबर भारत का वास्तविक सम्राट् था ही नहीं। बाबर के जीवन-वृत्तान्त का वर्णन अथवा उसके विषय में किसी प्रकार का वाद-विवाद इस लेख के तात्पर्य के बाहर है। इस लेख में केवल यही लिखा जायगा कि किन पुस्तकों के आधार पर बाबर के वृत्तान्त की रचना हो सकती है। अवश्य, खोज का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, और इस विषय पर अन्तिम शब्द उच्चारण करना कठिन

ही नहीं, बरन असम्भव है। तथापि एक मार्ग दिखलाया जा सकता है और यही इस लेख का निर्दिष्ट है।

बाबर के जीवन-सम्बन्धी प्रमाणों का विभाग निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(क) मुख्य प्रमाण।

(ख) साधारण प्रमाण।

इनके अतिरिक्त यदि आधुनिक पुस्तकों का आश्रय भी लिया जाय तो एक तीसरा विभाग किया जा सकता है, अर्थात्—

(ग) आधुनिक लेख।

मुख्य प्रमाण सभी तुर्की या फ़ारसी भाषा में हैं। इनके अनुवाद (एक पुस्तक को छोड़कर) हिन्दी भाषा में नहीं हुए हैं। सुगमता के लिए, इनमें से जिनके अँगरेज़ी भाषा में अनुवाद हो चुके हैं उन्हींका परिचय दिया जायगा। यही नियम साधारण प्रमाणों के विषय में भी पालन किया जायगा, क्योंकि साधारण प्रमाण सभी फ़ारसी भाषा में हैं। आधुनिक लेख भिन्न भिन्न भाषाओं में हैं; परन्तु खेद है कि हिन्दी भाषा में कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण लेख नहीं है जिसका वर्णन किया जा सके। अतएव यहाँ भी अँगरेज़ी भाषा ही की शरण लेनी पड़ेगी।

प्रमाणों की गम्भीरता नियत करने के लिए ऊपर किया हुआ विभाग आवश्यक है; परन्तु यदि हम बाबर के जीवन का भी विभाग कर लें तो हमें इस पुरुष के इतिहास के समझने और अध्ययन करने में और भी सुगमता हो जायगी। यद्यपि मनुष्य का जीवन एक-मात्र जीवन है तथापि इस जीवन के विभाग—उसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं और जीवन की घटनाओं को देखते हुए—किये जा सकते हैं। बाबर के जीवन का विभाग तीन खण्डों में किया जा सकता है—

(१) प्रथम काल, जब कि बाबर तुर्किस्तान में समरक़न्द के आधिपत्य के लिए प्रयत्न करता रहा (जन्म से १५०४ ई० तक)।

(२) द्वितीय काल, जब बाबर काबुल पर राज्य करता रहा (१५०४ ई० से १५२६ ई० तक)।

(३) तृतीय काल, जिसमें बाबर ने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की (१५२६ ई० से १५३० ई० तक)।

प्रमाणों के वर्णन में यह बात आवश्यक होगी कि कौन-सी प्रमाण-पुस्तक किस काल के लिए श्रेष्ठ है।

अन्त में यह बतला देना भी उचित होगा कि बाबर के इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि कुछ देशों के समकालीन इतिहासों का भी अध्ययन किया जाय।

बाबर एक बड़ा साहसी और पराक्रमी पुरुष था, और यह आजन्म एक देश से दूसरे देश का पर्यटन करता रहा। अन्त में इसके पाँव भारत में आकर स्थिर हुए। सत्य तो यह है कि वे यहाँ भी स्थिर न होने पाये थे कि इसकी मृत्यु हो गई। मध्य तुर्किस्तान में, तैमूर के घराने में (जैसा कह आये हैं) इसका जन्म हुआ। मङ्गोलिस्तान के ख़ाँ, यूनूस ख़ाँ की बेटी इसकी माता थी। उत्तर-पश्चिमी तुर्किस्तान की उज़बेग जाति के शैबानी ख़ाँ से जन्म भर इसकी शत्रुता रही। तुर्किस्तान से परास्त होकर यह काबुल और ग़ज़नी की ओर आया। यहाँ फ़ारस के शाह सफरवी वंश के इस्माइल शाह से इसका सम्बन्ध हुआ और फिर वैर भी हुआ। अन्त में यह काबुल भी छोड़कर हिन्दुस्तान में आया। इसलिए इसके इतिहास के अध्ययन करने के साथ ही आवश्यकता है कि समकालीन तुर्किस्तानी, मङ्गोलिस्तानी, काबुली, फ़ारसी और भारतीय इतिहास का अध्ययन भी किया जाय और उस समय की इन सब देशों की ऐतिहासिक अवस्था का मनन किया जावे।

प्रमाणों का वर्णन इस प्रकार है—

मुख्य प्रमाण।

(१) तुज़ुके-बाबरी, वाक़याते-बाबरी, बाबरनामा अर्थात् बाबर का आत्मचरित—मुख्य प्रमाणों में सबसे श्रेष्ठ स्थान बाबर के आत्मचरित को दिया जायगा। बाबर ने यह आत्मचरित तुर्की भाषा में लिखा था। यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि अपने द्वारा लिखा हुआ वृत्तान्त निष्पक्ष नहीं हो सकता, तथापि बाबर का आत्म-वृत्तान्त एक सङ्कुचित हृदय के लेखक का लेख नहीं है। इसने अपनी पुस्तक में अपनी त्रुटियों और दोषों का वर्णन उतनी ही स्पष्टता के साथ किया है जिस स्पष्टता के साथ इसने अपने साहस का वर्णन किया है। बाबर का आत्मचरित और आधारों से मिलान करने

पर प्रायः सभी अंशों में सत्य प्रमाणित होता है। बाबर आजन्म सैनिक रहा है; परन्तु इसकी पुस्तक में साहित्य का आनन्द आता है। बाबर अच्छे प्रकार पढ़ा-लिखा मनुष्य था। तुर्की तो उसकी मातृ-भाषा ही थी। इसके अतिरिक्त यह फ़ारसी भाषा भी जानता था, और ग़ज़लें कहता था। स्वयं इसके हस्त-लिखित कुछ पद्यों की प्रति नवाब रामपुर के पुस्तकालय में अब तक है। आदमी के स्वभाव की इसे बड़ी भारी परख थी। इसकी पुस्तक में हमें कितने ही मनुष्यों का वर्णन मिलता है। इसकी बुद्धि अनोखी थी। यह बड़ा साहसी था। इसकी पुस्तक को पढ़ने ही से यह भाव हमारे हृदयों में उत्पन्न होजाता है कि लेखक की बातें झूठी नहीं हैं। यह किसी बात को छिपाने का प्रयत्न नहीं करता था।

इस पुस्तक में बाबर के जय-पराजय दोनों का अच्छा चित्र मिलता है। अभाग्यवश यह पुस्तक पूर्ण नहीं, किन्तु खण्डित है। सन् १५०३–१५०४, १५०८—१५१९ और १५२०–२५ तक के अंशों का पता नहीं है। यह बात अभी निश्चित नहीं है कि ये अंश बाबर ने लिखे ही नहीं या लिखे तो अप्राप्य हैं। इन अंशों के प्राप्त न होने के कारण इतिहास के विद्यार्थियों की बड़ी हानि हुई है। बाबर के इतिहास के इन अंशों की पूर्ति और और प्रमाणों द्वारा करनी पड़ती है। इन अंशों के दुष्प्राप्य होने से बाबर के 'आत्म-चरित' के तीन टुकड़े हो गये हैं। ध्यानपूर्वक देखने से मालूम पड़ता है कि लेखन-शैली में अन्तिम भाग प्रथम दो भागों से कुछ हीन है। कदाचित् बाबर को इस अन्तिम भाग को दुहराने का अवसर नहीं मिला और बीच ही में मृत्यु होगई। बाबर अपने इस रोज़नामचे को बहुत प्यार से रक्खा करता और अपने मित्रों को भी इसकी नक़लें कराकर भेट किया करता था।

बाबर की यह पुस्तक, जैसा कह चुके हैं, तुर्की भाषा में है। इल्मिनिस्की ने सन् १८५७ ई० में इसकी प्रति छपाई थी। सन् १९०५ ई० में श्रीमती बेवरिज महोदया ने इस पुस्तक की एक प्रतिलिपि छपाई। हैदराबाद पुस्तकालय में इसकी मूल पुस्तक है, और विद्वानों का मत है कि बाबर की हस्तलिखित पुस्तक की यह ख़ास नक़ल है। तुर्की भाषा से इस पुस्तक के फ़ारसी में कई अनुवाद हुए हैं जिनमें से दो मुख्य हैं। एक अनुवाद तो पयांदा हसन का है और दूसरा अनुवाद मिरज़ा अब्दुर्रहीम का। अँगरेज़ी भाषा में इस पुस्तक के कई अनुवाद हैं। उनमें से मुख्य दो हैं। एक अनुवाद अर्सकीन और लीडन साहब ने मिलकर किया था। यह अनुवाद सन् १८२६ में प्रकाशित हुआ था; पर अब दुष्प्राप्य है। यह मिरज़ा अब्दुर्रहीम के फ़ारसी अनुवाद का अनुवाद है। इसकी भाषा बहुत सुन्दर और चलती हुई है; परन्तु मूल पुस्तक से अर्थ कहीं कहीं भिन्न होगया है। दूसरा अनुवाद श्रीमती बेवरिज महाशया का है जो बाबर के इतिहास की पण्डिता हैं। बहुत श्रम से और खोज तथा प्रमाण के साथ इनका अनुवाद सन् १९१८ में समाप्त हुआ है। अभी बेवरिज महाशया की भूमिका भी नहीं निकली है। यह अनुवाद अर्सकीन और लीडन के अनुवाद से श्रेष्ठ है। यह हैदराबाद लाइब्रेरी की प्रति पर आश्रित है और इसमें टीका-टिप्पणियों की अधिकता है। यह अनुवाद बहुत शुद्ध माना जाता है।

फ़्रांसीसी भाषा में इसका अनुवाद तुर्की प्रति से महाशय पैवेट डि कोर्टील ने सन् १८७१ ई० में किया था। श्रीमती बेवरिज महाशया का अनुवाद निकलने के पूर्व सम्पूर्ण यूरोप में अभी तक यही अनुवाद सबसे प्रतिष्ठित माना जाता था।

हिन्दी भाषा में भी यह पुस्तक उपस्थित है। इसे अनुवाद नहीं कहना चाहिए, किन्तु बाबर के आत्मचरित के आधार पर लिखा हुआ इतिहास। यह इतिहास हिन्दी के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जोधपुर के मुंशी देवीप्रसादजी का लिखा हुआ है। यह पुस्तक हमारे सम्मुख है। इसे हम बहुत उच्च स्थान नहीं दे सकते। इसकी भाषा और अर्थ, दोनों में त्रुटियाँ हैं; तथापि यह कम सौभाग्य की बात नहीं कि हिन्दी में भी यह पुस्तक उपस्थित है। मुंशी देवीप्रसादजी इस पुस्तक की भूमिका में इस प्रकार लिखते हैं—

“बाबर का यह इतिहास तुज़ुक बाबरी से लिखा गया है जो उन्हींका अपना लिखा हुआ रोज़नामचा है। कहीं कहीं दूसरी तवारीख़ों से भी कुछ टीका-टिप्पणी की गई है और असल में जहाँ कहीं कुछ हाल बाक़ी रह गया था वह हबीबुल-सियर और तवारीख़ फ़िरिश्ता वग़ैरह से पूरा कर दिया गया है।”

(२) तारीखे़-रशीदी, लेखक मिरज़ा हैदर, दोग़लात। बाबर की पुस्तक में जहाँ कहीं कुछ हाल बाक़ी रह गया था, उसकी पूर्ति मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ ने हबीबुल-सियर और तवारीख़-फ़िरिश्ता वग़ैरह से की है। बाबर के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए इन हालात की पूर्ति का मुख्य आश्रय तारीखे़-रशीदी है। इस पुस्तक के लेखक का सम्बन्ध बाबर से था और हैदर दोग़लात बाबर का भाई लगता था। काबुल में जब बाबर आधिपत्य कर रहा था, उस समय यह बाबर की शरण में आया था और बाबर ने इसे शरण दी थी। बाबर अपने सम्बन्धियों और अपरिचित व्यक्तियों को भी शरण दिया करता था। मिरज़ा हैदर ने मध्य एशिया के मुग़लों का इतिहास लिखा है। इसमें बाबर का भी वर्णन है। बाबर के निकटस्थ होने के कारण बाबर के विषय में जानने का इसे अच्छा अवसर मिला था। यह भारत में भी आया था और बाबर के पुत्र हुमायूँ के भी साथ रहा है। इसने अपनी पुस्तक फ़ारसी भाषा में लिखी है। इसकी पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। यूरोप के कितने ही विद्वानों ने इसकी पुस्तक का परिचय दिया है। इसके तुर्की भाषा में भी कुछ खण्डित अनुवाद होचुके हैं। अँगरेज़ी भाषा में अर्सकीन साहब ने इसके अंशों का भाषान्तर भी किया था; परन्तु वह प्रकाशित नहीं हुआ, ब्रिटिश अजायबघर में रक्खा हुआ है। मूल भाषा की कुछ हस्त-लिखित प्रतियाँ भी ब्रिटिश अजायबघर में हैं और तुर्की के खण्डित अनुवादों की कुछ प्रतियाँ भी। अँगरेज़ी में एकही अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इसके अनुवादक हैं ईलियस साहब और डेनिसन रॉस साहब। यह अनुवाद १८९५ ई० में प्रकाशित हुआ था। अनुवाद बहुत उत्तम और विद्वत्ता-पूर्ण है। इस पुस्तक की भूमिका में अनुवादकों ने मिरज़ा हैदर दोग़लात का पूरा हाल भी दिया है। इस लेखक की पुस्तक में मुग़लों का साधारण हाल है। पुस्तक के दो भाग हैं—दूसरे भाग में बाबर का हाल है। जिस समय बाबर काबुल में था उस समय (हम ऊपर कह चुके हैं) मिरज़ा हैदर बाबर की शरण में आया था। उस समय का इसका हाल विशेष रूप से मान्य है। बाबर की अपनी जीवनी के हालात की पूर्ति इसके द्वारा की जा सकती है। परन्तु एक बात विचार रखने के योग्य है। मिरज़ा हैदर कट्टर सुन्नी था, और फ़ारस के शाह इस्माइल को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। इस कारण अपनी संपूर्ण पुस्तक में इसने बाबर के वैरी उज़बेगों का (सन् १५१० में) पक्ष लिया है। इस अवसर पर इसका वृत्तान्त कम विश्वसनीय है, यद्यपि इसने बाबर की कृपा स्वीकार की है, और अपनी पुस्तक में भी इसका वर्णन किया है। हैदर मिरज़ा ने बाबर की चापलूसी नहीं की है। स्वयं लेखक एक उच्चवंश का वंशज था और अपनी मानहानि नहीं स्वीकार कर सकता था।

(३) हबीबुल-सियर, लेखक ख्वाँदमीर। मुंशी देवीप्रसादजी ने इस पुस्तक से सहायता ली है। इस पुस्तक की लीथो में छपी हुई प्रतियाँ बम्बई और टहरान में प्रकाशित हुई हैं। यह एक साधारण इतिहास है। इस पुस्तक के तीसरे खण्ड के तीसरे और चौथे अध्याय बाबर के इतिहास-लेखक के लिए उपयोगी हैं। बाबर और फ़ारस के शाह इस्माइल के बीच जो सम्बन्ध थे उनका पता इससे अच्छे प्रकार चलता है। इस पुस्तक का लेखक बाबर का समकालीन था। सामयिक राजनीति का इसे अच्छा ज्ञान था। जब बाबर हिन्दुस्तान में था तब इसका लेखक बाबर से मिला भी था। परन्तु यह किसी प्रकार से बाबर पर आश्रित न था; इसलिए इसकी पुस्तक में निष्पक्ष विचारों और हालों का मिलना स्वाभाविक है। यह पुस्तक हिज्री सन् ९२७ में आरम्भ की गई थी और हिज्री सन् ९३५ में समाप्त हुई थी। अभी तक इतिहास-लेखकों ने इसका बहुत उपयोग नहीं किया है। प्रयाग यूनिवर्सिटी के अध्यापक रशब्रुक विलियम्स साहब ने इस पुस्तक की बातों का समावेश अपनी पुस्तक में किया है। इसके अनुवाद अँगरेज़ी भाषा में नहीं हुए हैं। कदाचित् यही कारण है कि इस पुस्तक का अभी तक बहुत उपयोग नहीं किया गया है। यह पुस्तक भी फ़ारसी भाषा में लिखी है।

(४) शैबानी-नामा—लेखक, मिरज़ा मुहम्मद सलेह। शैबानीख़ाँ, उज़बेग बाबर का सबसे बड़ा वैरी था। इसने बाबर को तुर्किस्तान से भगाया था, और काबुल में भी बाबर को चिन्तित रक्खा था। बाबर ने इससे कई बार अपने राज्य लेने का प्रयत्न किया; परन्तु

इसमें बाबर की सफलता न हुई। शैबानी ख़ाँ, मध्य एशिया का एक बड़ा बली सम्राट् होगया है। यह शैबानीनामा उसीकी प्रशंसा में लिखा गया इतिहास है। यद्यपि इस इतिहास में ग्रन्थकार ने शैबानी ख़ाँ का पक्ष स्पष्ट रूप से लिया है; तथापि बाबर और शैबानी ख़ाँ की लड़ाइयों के सम्बन्ध में उज़बेग-पक्ष की बातें जानने के लिए पुस्तक बहुत उपयोगी है। यह पुस्तक प्रशंसा में तो लिखी ही गई थी और इसमें शैबानी की बहादुरी का बहुत बढ़ा-चढ़ा वर्णन है; पर इसका पद्य में होना भी प्रशंसा का एक अङ्ग था। यह पुस्तक तुर्की भाषा के पद्यों में है। अँगरेज़ी भाषा में इसका अनुवाद नहीं हुआ है। ए० वैम्ब्री महोदय ने—जिन्होंने बुख़ारा का प्रसिद्ध इतिहास भी लिखा है—इस पुस्तक का अनुवाद जर्मन भाषा में किया था। अध्यापक रशब्रुक विलियम्स ने इस पुस्तक का भी उपयोग किया है।

(५) हुमायूँ-नामा—लेखिका, गुलबदन बेगम। बेगम गुलबदन सम्राट् बाबर की पुत्री थी। इसने अपने भाई के नाम पर पुस्तक लिखी है और उसमें अपने पिता का भी प्रसङ्गवश वर्णन किया है। यह बाबर की पुत्री ही थी, इसलिए अपने पिता का हाल इसने आत्मीयतावश लिखा है। बाबर से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण इसका लेख बहुत उपयोगी है; परन्तु इसकी पुस्तक का उपयोग करते समय एक बात का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि यह लेख नितान्त निष्पक्ष नहीं है। जहाँ पर लेखिका ने बाबर का अपने पुत्रों के साथ व्यवहार दिखलाया है वहाँ सत्य की मात्रा से उस पार वर्णन किया है। अन्यथा पुस्तक प्रामाण्य है। श्रीमती बेवरिज महोदया ने इस पुस्तक का अनुवाद और सम्पादन बहुत विद्वत्ता-पूर्ण किया है।

(६) अहसानुस्सियर—लेखक, मिरज़ा बरखबरदार तुर्कमान। इस पुस्तक का भी प्रयोग अध्यापक रशब्रुक विलियम्स साहब ने किया है। इस पुस्तक की एक ही प्रति, और वह भी खण्डित, प्राप्त हुई है। यह प्रति रामपुर (संयुक्त प्रान्त) के नव्वाब अब्दुस्सलम ख़ाँ के पुस्तकालय में है। यह किताब फ़ारस के शाह इसमाइल को समर्पण की गई थी। इसमें शाह इस्माइल और बाबर के सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में एक बात जानने योग्य है। इसका लेखक शिया था। सुन्नी लेखक ख़्वांदमीर के हबीबुल-सियर की अशुद्धियों को शुद्ध करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई थी। यद्यपि इसे एक शिया ने लिखा था तोभी मुख्य मुख्य सभी बातों में इसका और हबीबुल-सियर का साहमत्य है। इससे हबीबुल-सियर की सत्यता और भी पुष्ट होती है। अहसानुस्सियर सन् ९३१ हिज्री में समाप्त हुई थी।

(७) आलिम-आराई-अब्बासी—लेखक, मिरज़ा सिकन्दर मुंशी। इस पुस्तक में फ़ारस के सफ़ावी वंश की उत्पत्ति से लेकर सन् १०-११ हिज्री तक का वर्णन है। इसमें मुख्यतः सफ़ावी वंश के शाह अब्बास (सन् १५८८ से १६२८ ई० तक) का वर्णन है; पर बाबर और शाह इस्माइल के सम्बन्ध का भी उल्लेख है।

इन मुख्य प्रमाणों के अनन्तर साधारण प्रमाण निम्नलिखित हैं—

साधारण प्रमाण।

(८) अकबर-नामा—लेखक, अबुल फ़ज़ल। अबुल फ़ज़ल सम्राट् अकबर का प्रसिद्ध सलाहकार था। अकबरनामे के भूमिका-भाग में इसने बाबर का भी वर्णन किया है। इसका वर्णन स्वयं बाबर के 'आत्मचरित' पर आश्रित है। इसने बाबर की बहुत बड़ाई की है; मुख्यतः इसलिए कि उसका स्वामी अकबर बाबर का वंशज था। कहीं कहीं इसकी पुस्तक पढ़ने योग्य है। यह बिब्लियाथिका इण्डिका में प्रकाशित हुई है। इसके अनुवादक महाशय एच० बेवरिज हैं। मूल पुस्तक फ़ारसी में है।

(९) तबक़ाते-अकबरी—लेखक, निज़ामुद्दीन अहमद। यह हिन्दुस्तान का मुसलमानों के आक्रमण से लेकर १६ वीं शताब्दी के अन्त तक का साधारण इतिहास है। इसमें बाबर का भी हाल है। पुस्तक लखनऊ में, लीथो छापे में प्रकाशित हो गई है।

(१०) मन्तख़बुल-तवारीख़—लेखक, अब्दुल-क़ादिर अलबदौनी। यह पुस्तक भी बिब्लियाथिका इण्डिका में प्रकाशित है और यह भी साधारण इतिहास है। इसमें बाबर और शाह इब्राहीम लोदी के आधिपत्य का वर्णन पाठ्य है।

(११) तारीख़े फ़िरिश्ता—लेखक, मुहम्मद बिन क़ासिम फ़िरिश्ता। मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर ने इसका

भी उपयोग किया है। यह पुस्तक फ़ारसी से अँगरेज़ी में महाशय ब्रिग्ज़ द्वारा अनूदित है। अनुवाद में त्रुटियां हैं; परन्तु वह कलकत्ते में छपा हुआ है और सुगमता से प्राप्य है। फ़िरिश्ता दक्षिण देश का रहनेवाला था। इसकी पुस्तक से भी बाबर के आत्मचरित में छूटे हुए अंशों की पूर्ति हो सकती है। यद्यपि यह बाबर का समकालीन नहीं था, तथापि इसकी पुस्तक बाबर के विषय में बहुत पाठ्य है। इसने अकबर तक का हाल दिया है।

(१२-१३) **तारीखे़-हक़ी—लेखक, शेख़ अब्दुल हक़ बिन सैफ़ुद्दीन दिहलवी और अहसानुत्तवारीख़—लेखक, हसन।** अध्यापक रशब्रुक विलियम्स ने अपनी पुस्तक में इन दो इतिहासों का भी वर्णन किया है। इन इतिहासों की हस्त-लिखित प्रतियां आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय में रक्षित हैं। इनमें से पहली पुस्तक में तो लोदी वंश का वर्णन है और दूसरी में शाह इस्माइल और शाह तमस्प का। परन्तु पुस्तक खण्डित है। इसमें सन् ९१३–९३१ हिज्री तक का अंश नहीं है। बाबर के सम्बन्ध में वर्णन अधिक लाभदायक नहीं है।

मुख्य प्रमाणों और साधारण प्रमाणों के अनन्तर जब हम आधुनिक लेखों की ओर आते हैं तब हमें पुस्तकें अधिक मिलती हैं। हिन्दी भाषा में तो कोई भी पुस्तक मेरी जानकारी में ऐसी नहीं है; परन्तु भिन्न भिन्न देशी और विदेशी दोनों भाषाओं में कुछ पुस्तकें निकल चुकी हैं। उर्दू भाषा की कई पुस्तकों में हमें बाबर का हाल मिल सकता है। इसी प्रकार जर्मनी, फ़्रांस आदि देशों की भाषाओं में भी वृत्तान्त मिलते हैं। रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल खोज-सम्बन्धी विषयों पर अमूल्य प्रमाणित हुआ है। इसी प्रकार जर्नेल एशियाटिक (फ़्रांसीसी) भी बहुत उपयोगी है। यहां पर केवल कुछ प्रसिद्ध अँगरेज़ी पुस्तकों का परिचय देना उचित होगा—

(१४) **टाड साहब का राजस्थान का इतिहास[1]।** इस पुस्तक के एक से अधिक हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। इस पुस्तक के मेवाड़-खण्ड में राना सांगा, बाबर के प्रसिद्ध राजपूत वैरी का इतिहास मिलेगा। पुस्तक को लिखे बहुत दिन हो गये। यह पुस्तक इँगलैंड के चौथे जार्ज को समर्पित की गई थी। यह विशेष कर उदयपुर के पक्ष के राजपूत इतिहासों पर आश्रित है।

आधुनिक लेख।

(१५) अर्सकीन महोदय की पुस्तक **"बाबर और हुमायूँ के समय का भारत का इतिहास[1]"** है। यह पुस्तक १८५४ ई० में प्रकाशित हुई थी। यह बड़ी उत्तम और विद्वत्ता-पूर्ण पुस्तक है। ऐसी पुस्तक कोई नहीं। इसके पहले भाग में बाबर का वृत्तान्त है। मध्य भारत से लेकर वृत्तान्त लिखा गया है; और मध्य भारत की भी अच्छी चर्चा है। पुस्तक अमूल्य है और साथ ही अप्राप्य भी है।

(१६) इसके बाद अध्यापक एल्० एफ्० **रशब्रुक विलियम्स की पुस्तक**[2,3] है। यह पुस्तक बहुत खोज के साथ लिखी गई है। अभी १९१८ ई० में प्रकाशित हुई है। यह अर्सकीन की पुस्तक से छोटी है। अँगरेज़ी में बाबर का ऐसा उत्तम संक्षिप्त वृत्तान्त और कोई नहीं है। पुस्तक प्रयाग यूनिवर्सिटी की ओर से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी हो रहा है और आशा है, शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

(१७) लेनपूल महाशय की पुस्तक 'बाबर' रूलर्स आफ़् इण्डिया सीरीज़ में प्रकाशित हुई है। अध्यापक रशब्रुक विलियम्स की पुस्तक निकलने के पूर्व छोटी पुस्तकों में इसीका आदर था। पुस्तक अच्छी है। महाशय लेनपूल मुसलमानी इतिहास के स्वयं अच्छे विद्वान् हैं और इन्होंने 'मध्य-कालीन भारत' नामक पुस्तक भी लिखी है।

(१८) 'बाबर की जीवनी[4]' शीर्षक एक पुस्तक

---

[1] Tod's Annals and antiquities of Rajasthan.

[1] A History of India in the time of Babur and Humayun.

[2] An Empire Builder of the XVI Century (Longmans).

[3] Medieval India (T. Fisher Unwin—Story of the Nation.)

[4] Life of Babur.

कैल्डिकाट महाशय की भी है। यह विशेष कर बाबर के आत्मचरित पर आश्रित है, और साधारणतः अच्छी पुस्तक है। इनके अतिरिक्त इल्फ़िन्स्टन इत्यादि के इतिहास में बाबर का संक्षिप्त और अच्छा वृत्तान्त मिल सकता है।

यों तो, जैसा कह चुके हैं, खोज का क्षेत्र विस्तृत है और इतिहास-लेखन का कार्य बड़ा कठिन और गम्भीर है—मनुष्य एक विषय पर जितना चाहे अध्ययन कर सकता है—तोभी आशा की जा सकती है कि ऊपर लिखी पुस्तकों से बाबर के इतिहास की अच्छी सामग्री मिल सकती है।

रामचन्द्र टण्डन, बी० ए०

बाणासुर की तपस्या।

निदाघ-ऋतु का घोर, भूमण्डल पर राज्य है।
मानों नृपति कठोर, सता रहा हो निज प्रजा ॥

× × × × ×

इन्हीं दिनों एक वनस्थली में,
प्रसिद्ध बाणासुर नाम दैत्य।
समाधि साधे शिव को रिझाने,
सुशान्ति से था करता तपस्या ॥ १ ॥

यथा वरोहों-युत शान्त भारी,
स्वरूप दीखे वट-वृक्ष का है।
जटादि से भूषित अङ्ग सारा,
तथा तपस्वी नृप बाण का था ॥ २ ॥

अतीव सूखा तरु दीखता ज्यों,
हुआ तपस्याकृत पिण्ड त्योंही।
शरीर में केवल अस्थियाँ हैं,
परन्तु है आनन में शुभ-श्री ॥ ३ ॥

विराजता है हठ-योग साधे,
प्रशान्त पद्मासन को लगाये।
सुमूर्त्ति मानों दृढ़ साधना की,
विराजती हो वन में अनूठी ॥ ४ ॥

अरण्य सारा वह दुर्ग सा है,
दशा वहाँ है गढ़ के समान।
अगम्य होता पथ दुर्ग का ज्यों,
अरण्य का भी पथ लुप्त त्यों है ॥ ५ ॥

घिरा हुआ है वन शैल से यों,
रहे घिरा ज्यों गढ़ कोट से है।
खड़े हुए हैं बहु वृक्ष ऊँचे,
सिपाहियों की समता सजाये ॥ ६ ॥

कभी कभी हिंसक जन्तुओं का,
अरण्य में गर्जन गूँजता है।
यथा शतघ्नी कर शब्द भारी,
गभीरता से गढ़ है गुँजाती ॥ ७ ॥

विघर्ष से कानन-वेणुओं के,
कृशानु जागा सहसा प्रचण्ड।
हुआ महा उग्र शनैः शनैः सो,
यथा बढ़े आपस का विरोध ॥८॥

भयावनी मूर्ति लगी दिखाने,
विशाल ज्वाला बिजली सरीखी।
उठा घना ऊपर धूम फैला,
समीप मानों लय-काल आया ॥ ९ ॥

सहायकर्त्री अति घोर आँधी,
लगी गिराने विटपी सहस्रों।
विरोध स्वाभाविक सोच मानों,
सरोष लेती बदला द्रुमों से ॥ १० ॥

लगी सहस्रों फटने शिलायें,
प्रतप्त अत्यन्त कृशानु से हो।
निनाद होता उनसे कि मानों,
शतघ्नियों का रव हो कठोर ॥११॥

अतीव होके भयभीत पक्षी,
अरण्य में से नभ को सिधारे।
सशीघ्र सारे वन-जीव भागे,
जहाँ जहाँ प्राप्त हुआ ठिकाना ॥१२॥

चिघाड़ते हैं भयभीत हाथी,
मृगेन्द्र भी कातरता दिखाते।

भयार्त्त भारी वन-प्राणियों के ,
निनाद से व्योम भरा अनन्त ॥१३॥

प्रचण्ड दावा विकरालता से ,
लगी जलाने सब प्राणियों को ।
स्वयं वहां धारण मूर्त्तिमान ,
स्वरूप मानों यम ने किया हो ॥१४॥

कराल दावानल से अवस्था ,
अरण्य की है उस दुर्ग जैसी ।
विनष्ट होता रण-काल में जो ,
प्रघातिनी शत्रु-शतघ्नियों से ॥१५।

प्रक्रुद्ध हो भीषणता बढ़ाता ,
कृशानु आया नृप के समीप ।
परन्तु तौभी वह धैर्यशाली ,
डरा न किंचित् उसको विलोक ॥१६॥

—

सुजान जो हैं अति धैर्यवाले ,
उद्देश्य से भ्रष्ट कभी न होते ।
प्राणान्त चाहे उनका भले हो ,
अवश्य पूरी करते प्रतिज्ञा ॥१७॥

—

यों बाणासुर की विलोक दृढ़ता ,
अत्यन्त सन्तुष्ट हो ।
श्री शूली प्रकटे वहां उदित हों ,
मार्त्तण्ड ज्यों पूर्व में ॥

हो उद्देश्य अवश्य पूर्ण उनका ,
ऐसे रहें जो व्रती ।
आशा है फल की वृथा न जब लों ,
कर्त्तव्य की टेक है ॥१८॥

गोविन्ददास

प्लेटो ।

प्लेटो यूनान का एक प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हो गया है। उसीका दूसरा (अरबी) नाम अफ़लातून है। पश्चिमी देशों में प्राचीन काल से लगाकर आज तक जितनी प्रतिष्ठा इसकी हुई है उतनी और किसीकी नहीं हुई। इतना ही नहीं, पूर्वी देशों के तत्त्वज्ञानियों में भी प्लेटो का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। प्लेटो के गुरु का नाम साक्रेटिस अर्थात् सुक़रात था। सुक़रात ज़हर पिलाकर मार डाला गया था। एथेंस के निवासियों ने सुक़रात को देश-द्रोही और देव-द्रोही समझा था। अतएव उन्होंने यही इलज़ाम लगाकर उस पर मुक़द्दमा चलाया था।

सुक़रात के दो शिष्य संसार में विख्यात हैं। एक प्लेटो, और दूसरा अरस्तू* (अरिस्टाटल)। योरप का तत्त्वज्ञान इन्हीं दोनों के सिद्धान्तों पर निर्म्मित हुआ है। हम यहाँ पर संक्षेप से प्लेटो के सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे। साथ ही उसके और अरस्तू के सिद्धान्तों में जो समानता या विभिन्नता है उसको भी दिखलाने की चेष्टा करेंगे। योरप की उन्नति में इन दोनों के सिद्धान्तों ने बड़ा काम किया है।

ईसा के ४२७ वर्ष पूर्व प्लेटो विद्यमान था। इसके प्रयत्न से एथेंस में धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार की उन्नतियाँ हुईं। प्लेटो भारतवर्ष के उपनिषदों के आचार्यों और बौद्ध विद्वानों से नीची श्रेणी का तत्त्ववेत्ता था; पर राजनैतिक विषयों में इसका ज्ञान बहुत ऊँचा था। भारतवर्ष के तत्त्ववेत्ताओं ने धार्मिक विचारों के सामने राजनैतिक विचारों की अवहेलना की है। इसीसे आजकल भी हम लोग धार्मिक विचारों की ओर अधिक

---

* कई कारणों से अरस्तू को भी सुक़रात का शिष्य मानना पड़ता है। लेखक।

झुकते हैं, और राजनैतिक विचारों से बहुत कुछ उदासीन रहते हैं। प्लेटो ने अपने बुद्धि-बल तथा अपने आचार्यों की शिक्षा से जिस तत्त्वज्ञान का आविष्कार किया है उससे हमारे देश के वेदान्तियों का सिद्धान्त बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

प्लेटो के सिद्धान्त अरस्तू के सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक सरल और स्वाभाविक हैं। अरस्तू के ग्रन्थ पढ़ते समय मन में क्लान्ति आ जाती है, क्योंकि वे क्लिष्ट और नीरस हैं। पर प्लेटो के ग्रन्थ पढ़ते समय मन प्रफुल्लित हो जाता है। सुक़रात का शिष्य होने पर भी विचार-स्वातन्त्र्य में प्लेटो उससे भी आगे बढ़ गया है। एक मित्र ने इसके लिए एक पाठशाला (एकेडमी) खोल दी थी। यह उसीमें लड़कों को शिक्षा दिया करता था। इसीसे इसके अनुयायी एकेडमीशियन्स (Academicians) कहे जाते थे। सुक़रात साधारण जीवन व्यतीत करता था; वह ग़रीब और अमीर सब किसीको शिक्षा देने में ज़रा भी न हिचकता था। प्लेटो एकान्त में बड़े आराम से रहता और बहुत कम लोगों से मिलता-जुलता था। प्लेटो ने अपने सिद्धान्तों को गुरु-शिष्य के संवाद-रूप में (Dialogues of Plato) प्रकाशित किया है।

प्लेटो के एक शिष्य का नाम था हरिकुल्टेस। उसके विचारों की भी छाया प्लेटो के सिद्धान्तों में पाई जाती है। शिष्य के लिए यह बड़े ही गर्व की बात है। प्लेटो ने हरिकुल्टेस से यह शिक्षा ग्रहण की कि संसार परिवर्तनशील है। इस परिवर्तन के सम्बन्ध में सत्य की खोज करना व्यर्थ परिश्रम करना है। साथ ही इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह भी भ्रमपूर्ण है। अपने गुरु सुक़रात से प्लेटो ने यह शिक्षा ग्रहण की कि मनुष्य अपनी आत्मा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इटली के तत्त्ववेत्ता पैथागोरस से प्लेटो ने न्यायशास्त्र सीखा। अर्थात् जिससे जो उपादेय शिक्षा मिल सकी उसे लेने में प्लेटो ने ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया।

प्लेटो विचारवादी (Idealistic) है। पर उसे सङ्कल्पवादी भी कहना अनुचित न होगा। वह केवल सङ्कल्प पर विश्वास करता था। संसार सङ्कल्पमय है। उसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, सभी सङ्कल्प ही पर अवलम्बित है। सांसारिक मनुष्य, पशु, पक्षी, सभीके पीछे सङ्कल्प का पचड़ा लगा हुआ है। ध्यान, धारणा, मनन और अध्ययन आदि, सभी पर सङ्कल्प ही का साम्राज्य है। सङ्कल्प के कारण ही इन सब वस्तुओं में हम नित नई नई हलचल देखते हैं। सङ्कल्प की सृष्टि ईश्वर की इच्छा से है। जितनी वस्तुएँ हम देखते हैं सब नाश को प्राप्त होंगी, केवल सङ्कल्प शेष रह जायँगे। संसार के अधिकांश विद्वान् अब भी यही मानते हैं कि उन्हें इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान-प्राप्ति होती है। पर प्लेटो का कथन है कि सङ्कल्प-शक्ति की स्थूल छाया ही इन्द्रियादिक नामों से पुकारी जाती है। हमारे मन के सङ्कल्प सब अपूर्ण और अशक्त होते हैं। इस संसार का चक्र केवल ईश्वर ही के सङ्कल्प से चलता है।

सौन्दर्य के विषय में प्लेटो के विचार बड़े विचित्र हैं। ग्रीस देश के निवासी पहले ही से सौन्दर्य के बड़े उपासक थे। सुन्दर चित्रकारी और शिल्पकला के अद्वितीय नमूने ग्रीस देश में ही अधिकता से मिलते हैं। प्लेटो कहता है कि सौन्दर्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे कोई देख सके। वह एक निराकार तत्त्व के सदृश है। संसार में जितने सुन्दर नर-नारियाँ और वस्तुएँ दिखाई देती हैं वे सब उसकी सुन्दरता की छाया-मात्र हैं जो अदृश्य संसार में वर्तमान है।

संसार क्या है ? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? वह सत्य है या असत्य ? ऐसे प्रश्नों के उत्तर में प्लेटो के ग्रन्थों में पूर्वापर विरोध पाया जाता है। इसके सङ्कल्पवाद में संसार की सत्यता के लिए कोई स्थान नहीं। ग्रीस के निवासी संसार को सत्य

और स्थायी मानते थे। उन्हींके विचारों के संस्कार से प्लेटो कभी तो जड़-प्रकृति की सत्यता स्वीकार करता है और कभी उसे सत्य (चैतन्य) की छाया-मात्र मानता है। पर इसके ग्रन्थों से संसार की सत्यता सिद्ध नहीं होती।

मनुष्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में प्लेटो कहता है कि मनुष्य संसार का केन्द्र है। मनुष्य का प्रत्येक अङ्ग एक एक विशेष कार्य चलाने के लिए बनाया गया है। मनुष्य का मस्तिष्क शरीर के ऊपरी भाग में इसलिए बनाया गया है कि वह ज्ञान का स्थान है। उसका आकार गोल है। (ग्रीस में गोल आकार बड़े महत्त्व का समझा जाता था।) मनुष्य का हृदय उसके भावों का अधिष्ठान है और उसका उदर उसकी वासनाओं का घर। मनुष्य की वासनाओं के बुरे प्रभाव को रोकने के लिए उदर में एक और भी अवयव* (organ) है। वहाँ से बुद्धि का—ज्ञान का—प्रकाश वासनाओं पर पड़ता है।

संसार में तत्त्ववेत्ता लोग समाज के मस्तिष्क का काम देते हैं, सैनिक हृदय का, कृषक, व्यवसायी और दास पेट का। प्लेटो के समय ग्रीस में यही वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। यह व्यवस्था जन्म पर नहीं, किन्तु योग्यता और वृत्ति पर अवलम्बित थी। इन तीन वर्णों या वर्गों के लिए तीन विशेष गुणों की आवश्यकता है। ये गुण हैं ज्ञान, साहस और संयम। ज्ञान मस्तिष्क का गुण है, साहस हृदय का और संयम उदर का। तत्त्ववेत्ता इन तीनों ही गुणों को प्राप्त कर सकता है। पर और वर्णवाले ऐसा नहीं कर सकते। बस, प्लेटो का समाज-शास्त्र इन्हीं तीनों गुणों के आधार पर बना है।

समाज की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का पहला कर्तव्य है। स्वयं कष्ट और क्लेश सहकर भी मनुष्य को समाज की उन्नति करने में सर्वदा तत्पर रहना चाहिए। अपने बच्चों को समाज की सेवा के लिए ही शिक्षा देनी चाहिए। एक से तीन वर्ष की उम्र तक उनकी रक्षा आदि का भी पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिए। तीन से छः वर्ष तक बालकों को कहानियों के बहाने शिक्षा देनी चाहिए। छः से दस वर्ष तक उन्हें व्यायाम और दस से तेरह वर्ष तक लिखना-पढ़ना सिखाना चाहिए। तेरह से सोलह वर्ष तक कविता, सोलह से अठारह वर्ष तक गणित और अठारह से बीस वर्ष तक अस्त्र-शस्त्र अर्थात् सिपहगरी सिखलाना भी समाज के हित के लिए प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य होना चाहिए।

ग्रीस में पूर्वोक्त रीति से शिक्षा पाये हुए युवकों का चुनाव बीस वर्ष की उम्र में होता था। इस चुनाव में उत्तीर्ण युवक ग्रीस के राज्य-प्रबन्ध और सेना-विभागों में भरती किये जाते थे। तीस वर्ष की उम्र में एक बार फिर भी चुनाव होता था। इस चुनाव में उत्तीर्ण होनेवाले लोग तत्त्वज्ञानी अर्थात् फिलासफर (Philosophers) कहे जाते थे। इस चुनाव के १५ वर्ष बाद एक और चुनाव होता था। यह अन्तिम चुनाव रहता था। इसमें उत्तीर्ण, ४५ वर्ष की उम्र के प्रौढ़ जन राजनीतिज्ञ कहाते थे। ग्रीस में राजनैतिक विषयों पर विचार करने का अधिकार केवल इन्हीं लोगों को था। औरों को इन विषयों पर कुछ भी कहने सुनने का अधिकार न था।

संसार में प्रायः दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं—एक सांसारिक सुख भोगनेवाले, दूसरे उसका त्याग करनेवाले; अर्थात् एक तो संसार से अनुरक्त, दूसरे उससे विरक्त। यदि इनमेंसे कुछ लोग किसी प्रयत्न द्वारा बीच के पथ पर लाये जा सकें तो वे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार की उन्नति कर सकते हैं। ऐसे लोग सांसारिक जनों को सुमार्ग दिखलाकर अपना परमार्थ और जगत् का स्वार्थ,

---

* भारत के योगी इस अवयव को कुण्डलिनी कहते हैं।
—लेखक।

दोनों सिद्ध कर सकते हैं । अतएव ऐसे ही लोग श्रेष्ठ पुरुष, देश के नेता बनने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं । प्लेटो में यह योग्यता वर्तमान था । अद्वैत-वाद का प्रचारक होने पर भी, प्लेटो ने राजनैतिक विषयों में भी बड़ी उन्नति की । योरप के आधुनिक राजनीतिज्ञों ने प्लेटो और उसके समान दो एक और विद्वानों के सिद्धान्तों पर ही वर्तमान राजनीति की स्थापना की है । यह इन्हीं सिद्धान्तों की कृपा का फल है जो योरप में आज-कल मनुष्य को हर प्रकार के अधिकार मिलने का अवसर प्राप्त है ।

व्रजमोहनलाल वर्म्मा

रेल में बिजली ।

रेल में यात्रा करनेवाले महाशयों ने अक्सर अपने डिब्बों में बिजली की रोशनी होती हुई और पङ्खा चलता हुआ देखा होगा । शायद उन्हें अचरज भी हुआ हो कि इस रोशनी को उत्पन्न करनेवाली और पङ्खों को चलानेवाली शक्ति बिजली क्योंकर और कहाँ से उत्पन्न होती है । इसका हाल सुनिए ।

थोड़े दिन हुए आपने समाचारपत्रों में पढ़ा होगा कि फ़ीरोज़ाबाद के निकट दो रेलगाड़ियाँ आपस में लड़ गई थीं जिससे अनेक डिब्बे यात्रियों और उनके असबाब के सहित जलकर भस्म हो गये । आग लगने का कारण यह था कि इन डिब्बों में बिजली की रोशनी के बदले गैस की रोशनी होती थी जिसके वास्ते डिब्बों के पेंदों में गैस भरी हुई थी । गाड़ियों के लड़ने पर इस गैस में आग लग गई जिससे दम की दम में तमाम गाड़ी निरपराध यात्रियों और उनके माल के सहित जलकर राख हो गई । यदि गैस के स्थान पर बिजली की रोशनी होती तो आग कदापि न लगती और इतने जान और माल का नुकसान न होता । क्योंकि बिजली के सामान में साधारणतः कोई वस्तु ऐसी नहीं होती जो अग्निवर्द्धक हो और दूसरे, गाड़ी में किसी प्रकार का धक्का आने से केवल मशीन बिगड़ जाती है और बिजली का उत्पन्न होना बन्द हो जाता है ।

रेलगाड़ियों में बिजली उत्पन्न करने के साधारणतः दो प्रकार के प्रबन्ध होते हैं । एक तो यह है कि धीरे चलनेवाली और स्थान स्थान पर ठहरनेवाली छोटी गाड़ियों (Metre gauge) में केवल बिजली की बैटरी होती है जो लैम्पों को रोशन करने और पङ्खों को चलाने के लिए शक्ति देता है । इस बैटरी में बिजली भरने के लिए दूर दूर पर बिजली के कारख़ाने स्थापित करने पड़ते हैं, जिनमें एञ्जिन और मशीन द्वारा बिजली उत्पन्न करके बैटरियों में डालते हैं और फिर बिजली से भरी हुई इन बैटरियों को गाड़ी के डिब्बों में रखकर तार द्वारा लैम्पों और पङ्खों से जोड़ देते हैं । जब तक इन बैटरियों में बिजली भरी रहती है तब तक ये लैम्पों को रोशन करती और पङ्खों को चलाती रहती हैं । बाद को इनमें से बिजली निकल जाती है । इसलिए कुछ कुछ दूर के स्टेशनों पर यह प्रबन्ध किया जाता है कि बिजली ख़तम हुई बैटरियाँ डिब्बों से निकाल ली जावें और उनके स्थान पर बिजली भरी हुई नई बैटरियाँ रख दी जावें । बिजली द्वारा रोशनी होने और पङ्खे चलने का यह प्रबन्ध आपने गोरखपुर B. N. W. Ry., फ़र्रुख़ाबाद, कासगञ्ज B.B. & C.I. Ry., सीतापुर R. K. Ry., इत्यादि स्थानों की यात्रा करते समय देखा होगा । यह प्रबन्ध उसी अवस्था में सम्भव हो सकता है जब गाड़ी स्थान स्थान पर बहुत देर तक ठहरती हो जिससे बैटरियाँ बदली जा सकें और जब गाड़ियों में थोड़े ही से पङ्खे और रोशनी हो जिससे बैटरी कुछ घंटों तक उन्हें उधार ली हुई बिजली दे सके ।

रेल में बिजली द्वारा रोशनी और पङ्खा चलाने की दूसरी विधि वह है जो तेज़ चलनेवाली और स्टेशनों पर कम ठहरनेवाली बड़ी गाड़ियों (Broad gauge) में की जाती है। यहाँ पर प्रत्येक गाड़ी (carriage) के नीचे एक बिजली उत्पन्न करनेवाली डाइनमो नामक मशीन होती है और उसीके पास बिजली की तेज़ बैटरी रहती है। इनके साथ अपने आप खुल जानेवाली और बन्द हो जानेवाली एक स्विच (Automatic Switch) लगी होती है जिसके द्वारा रेल के चलते समय तो पङ्खों और रोशनी का सम्बन्ध डाइनमो से हो जाता है; परन्तु गाड़ी के ठहरते ही डाइनमो से सम्बन्ध खुलकर बैटरी से हो जाता है। इस प्रकार चाहे रेल खड़ी हो वा चलती, बिजली पङ्खों और लैम्पों में सदैव पहुँचती रहती है।

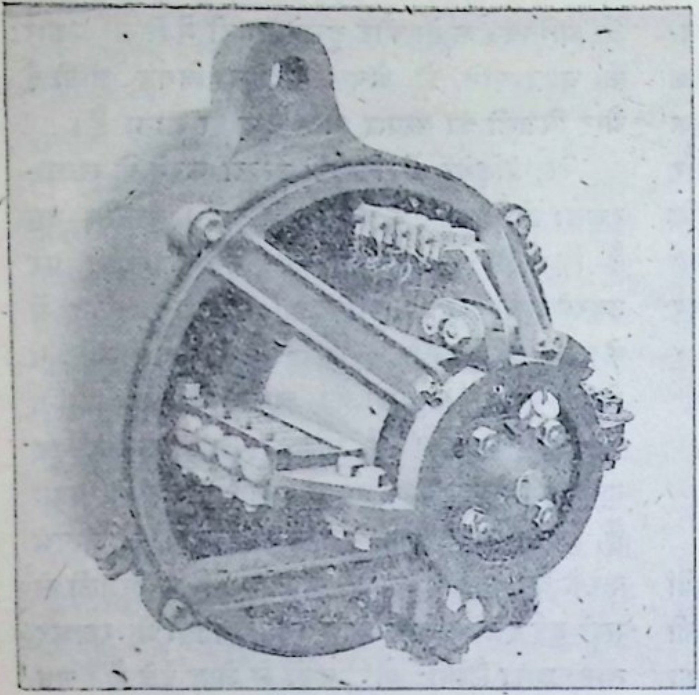

रेलगाड़ियों में रोशनी पहुँचानेवाला डाइनमो।

डाइनमो मशीन का यह सिद्धान्त है कि जब वह एक ख़ास चाल से चलती रहे तभी

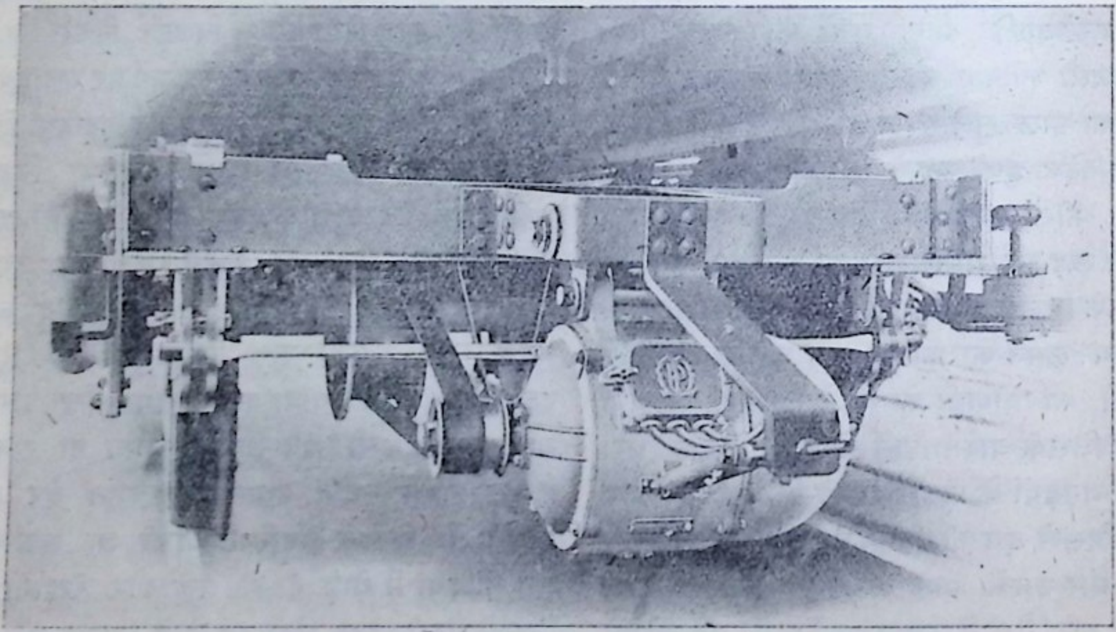

गाड़ी में जड़ा हुआ डाइनमो।

बिजली पैदा करेगी। इसलिए यह मशीन रेल के पहियों के धुरे से पट्टे (Belt) द्वारा लगा दी जाती है जिससे रेल के चलने पर यह मशीन भी चलने लगती है और चलने पर बिजली उत्पन्न करती है। अब प्रश्न यह है कि रेल की चाल तो कम ज़्यादा होती रहती है, तब डाइनमो की बिजली एक-सी

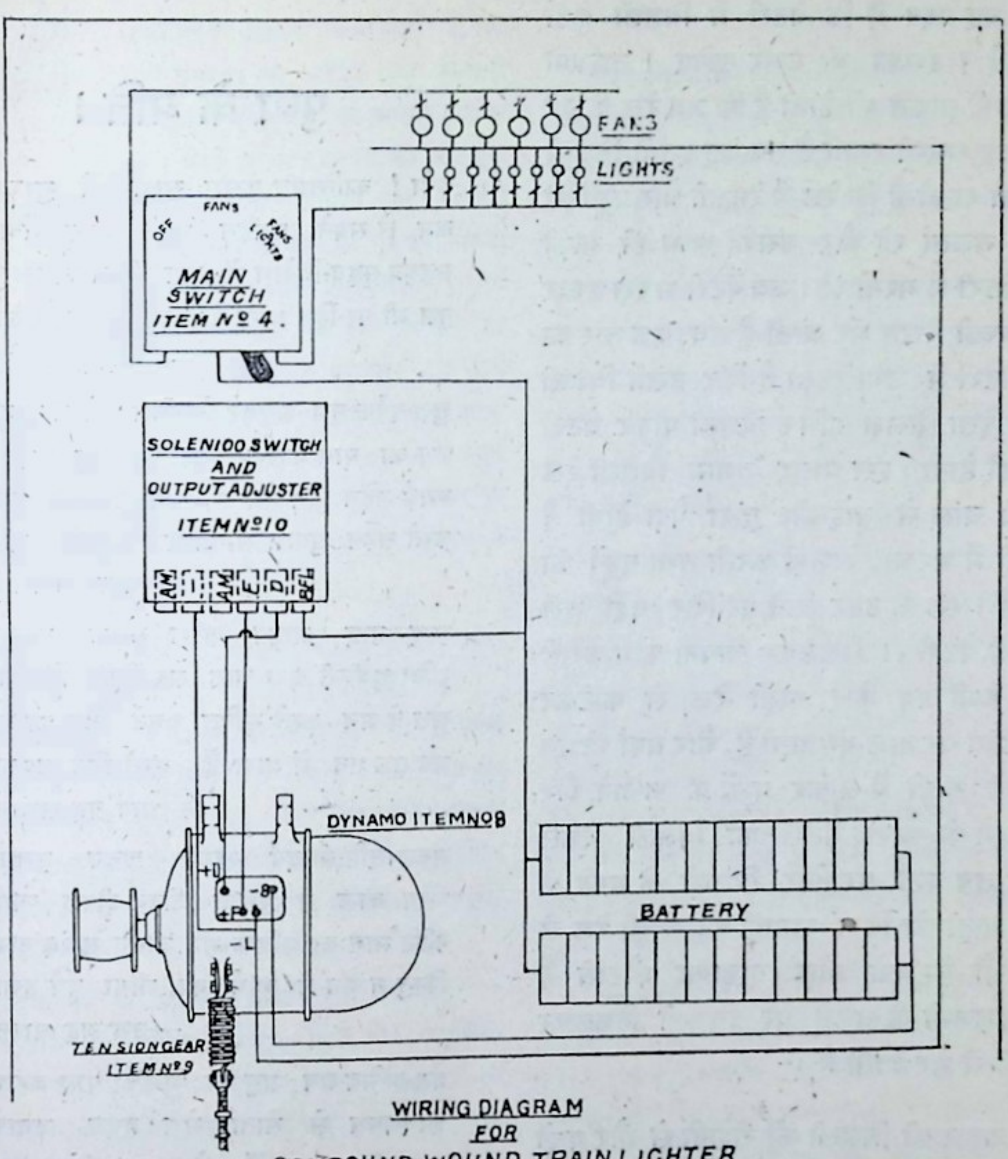
FANS
LIGHTS
FANS
OFF
FANS LIGHTS
MAIN SWITCH ITEM Nº 4.
SOLENIOD SWITCH AND OUTPUT ADJUSTER
ITEM Nº 10
AM
I
AM
E
D
BFL
DYNAMO ITEM Nº 8
+D
-BP
+P
-L
BATTERY
TENSION GEAR
ITEM Nº 9
WIRING DIAGRAM
FOR
COMPOUND WOUND TRAIN LIGHTER

रेलगाड़ियों में डाइनमो द्वारा पङ्खे चलाने और रोशनी करने की विधि।

कैसे बनी रहे जिससे रोशनी न्यूनाधिक न होने पावे? इसके वास्ते यह डाइनमो ऐसा बनाया जाता है और इसके साथ इस प्रकार के उपाय लगाये जाते हैं कि इसकी चाल कितनी ही हो; पर वह बिजली एक ही तेज़ी से देती रहे। जब रेल के ठहरने के समय इसकी चाल एक ख़ास चाल

से नीचे हो जाती है तब स्विच डाइनमो से खुल कर बैटरी से लग जाती है। उस समय बिजली बैटरी से निकलने लगती है।

अब यह प्रश्न है कि बैटरी में बिजली कहाँ से आती है ? इसका भी उत्तर सुनिए। डाइनमो मशीन इतनी ताक़त की होती है कि जब रेल के धुरे के साथ यह चलती रहती है तब यह इतनी बिजली पैदा करती रहती है कि रेल में रोशनी और पङ्खों का काम भी चलता रहे और उसके साथ ही बाक़ी बिजली बैटरी में भरती रहे। जब बैटरी में इस प्रकार बिजली अच्छी तरह भर जाती है तब एक तार का पेच जो बैटरी में लगा रहता है फिर उसमें बिजली नहीं जाने देता जिससे अधिक बिजली पाकर बैटरी ख़राब नहीं होती। इस प्रकार तमाम बिजली रेल के धुरे की चाल से डाइनमो द्वारा पैदा होती है और बैटरी में भरकर, रोशनी करती तथा पङ्खों को चलाती है। रेल के ठहर जाने पर फिर वही भरी हुई बिजली बैटरी से निकलकर अपना काम करती है। कभी कभी जब कोई गाड़ी रेल से काटकर किसी स्टेशन पर डाल दी जाती है, और वहाँ स्टेशन के लोगों के गाड़ी में जाकर पङ्खों के चलाने और रोशनी करने के कारण बैटरी की बिजली निकल जाती है, तब वहाँ पर फिर बिजली के भरने के लिए उस गाड़ी को बिना सवारी की किसी रेल से जोड़कर सौ दो सौ मील दौड़ाकर लौटाते हैं जिससे डाइनमो के चलने पर बिजली निकलकर फिर बैटरी में भर जाती है।

इस प्रकार की बिजली की रोशनी से और पङ्खों से यात्रियों को कितना आराम पहुँचता है और कितनी प्रसन्नता रहती है और आग लगने का डर किस प्रकार बिलकुल मिट जाता है, इसका अनुमान अब पाठकगण करें। बिजली द्वारा जितना सुभीता रेल के और अनेक कामों में हुआ है उतना ही बिजली की रोशनी और पङ्खों से भी मिला है।

जगन्नाथ खन्ना

पुष्प के प्रति।

अहो ! कान्तिमय कुसुम, सखा तेरे मुरझाये।
क्रम से सबने परहित प्यारे प्राण गँवाये॥
सहृदय-सुहृद-वियोग में, क्या जीवन का सार ?।
तुम भी पर-हित प्राण दो, यह असार संसार॥
—यही है प्रार्थना॥ १॥

सुख-पूर्वक तुम मधुकर को निज गोद झुलाते।
मधु का पान कराकर सुख से अङ्क सुलाते॥
स्वार्थ-रहित पुनि प्रेम से, कर अनुपम शृङ्गार।
करते सरस सुवास से, उचित अतिथि-सत्कार॥
—धन्य आराधना॥ २॥

मन्द मन्द मारुत द्वारा सौरभ सरसाते।
रुचिर छबीली छटा चारु सब दिशि छिटकाते॥
सुख दे मन करते मुदित, बनते हिय का हार।
जब तक तन में प्राण हैं, करते नित उपकार॥
— धन्य यह साधना॥ ३॥

सकल-सृष्टि-सौन्दर्य स्वरूप अनूप तुम्हारा।
अल्प काल में बुझता जीवन-दीपक प्यारा॥
कीर्तिमान का क्षणिक भी, जीवन सुखद अपार।
किन्तु न जग में व्यर्थ का, जीना वर्ष हज़ार॥
—उच्च यह धारना॥ ४॥

प्रेम-अमिय-मय मधु का मुझको पान कराओ।
ज्ञान-गन्ध से सोता मेरा हृदय जगाओ॥
मम नीरस मन में करो, नव-जीवन-सञ्चार।
बनूँ तुम्हारे तुल्य मैं, निश्छल, विमल, उदार॥
—यही है कामना॥ ५॥

भवानीशङ्कर याज्ञिक

भाग्य-चक्र ।

बाबू चन्द्रशेखरसहाय, मुन्सिफ़ के इजलास में आज लोगों की बहुत अधिक भीड़ लगी है। जितने लोग वहां हैं सब यही प्रतीक्षा कर रहे हैं कि किसकी जय होती है—धर्म्म की अथवा अधर्म्म की। कोई मुन्सिफ़ साहब की ओर देख रहे हैं, कोई पेशकार साहब पर दृष्टि-पात कर रहे हैं। मुन्सिफ़ साहब ने बहुत सोच-विचारकर घर पर ही फ़ैसला लिख डाला था, तथापि लोगों की उत्सुकता बढ़ाने के विचार से वे इजलास पर भी फ़ैसले के पन्नों को कई बार उलट-पलट कर रहे हैं। लोगों ने बेशुमार शोर-गुल करना आरम्भ कर दिया ताकि फ़ैसला जल्दी सुना दिया जाय। मुन्सिफ़ साहब समझ गये कि अब लोग बहुत व्यग्र हो गये हैं; अतः उन्होंने फ़ैसला अपने पेशकार को देकर घर की ओर प्रयाण किया। पेशकार साहब ने ज़ोर से कहा—

सुनते जाइए। मुन्सिफ़ साहब ने जो फ़ैसला किया है उसका असल मतलब यह है कि रघुवीरसिंह की स्त्री, मुसम्मात तारादेवी पर ठाकुर अशर्फ़ीलाल ने जो दावा पेश किया है वह बहुत दुरुस्त और ठीक है। पचास हज़ार असल और पैंतीस हज़ार सूद, सब मिलाकर पचासी हज़ार रुपये तारादेवी ठाकुर अशर्फ़ीलाल को पन्द्रह दिन के भीतर दे दें, नहीं तो उनकी जायदाद नीलाम कर मुद्दई के जो रुपये बाक़ी हैं वे दे दिये जायँगे।

तारादेवी पर यह फ़ैसला वज्राघात से बढ़कर हुआ। तारा वहीं डोली में मूर्छित हो गई। लड़के और लड़कियाँ अपनी माता की यह अवस्था देखकर चिल्लाने लगीं। जब वह होश में आई तब कई लोगों ने उसे सान्त्वना प्रदान की। तारादेवी घर पर पहुँचाई गई।

इधर ठाकुर अशर्फ़ीलाल भी बाजे-गाजे के साथ घर पर आये। सत्यदेवजी की पूजा हुई। मित्रों की राय ठहरी कि रण्डी का नाच होना भी बहुत ही आवश्यक है। लखनऊ की सुन्दर-जान सौ रुपये रोज़ पर आई। भाई-बन्धुओं ने भी इस कार्य में पूरा साथ दिया। सारी रात मदिरा-पान और वेश्या-नृत्य में ख़तम हुई। प्रातःकाल लोगों के मुँह से यही निकलता था—वाह! वाह! क्यों न हो! अशर्फ़ी ने तो अपने जन्म को सार्थक बना ही डाला! उसके साथ साथ हम लोग भी तर गये!

(२)

बाबू रघुवीरसिंह धरहरा गांव के एक बड़े ज़मींदार हैं। इनकी ज़मींदारी कई पुश्तों से चली आती थी। इसी कारण लोगों में इनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उच्च वंश के होने की वजह से इनमें बहुत से स्वाभाविक गुण थे; परन्तु आत्माभिमान इनमें बहुत हो गया था। विद्वान्, गुणवान्, सदाचारी, चतुर, न्यायशील तथा कार्यतत्पर रहने पर भी अहङ्कार के कारण इनका पतन बहुत शीघ्र हो गया। सब कोई इनके यहाँ आते थे; परन्तु दूसरों के यहां जाना ये पाप समझते थे। अपने यहाँ कार्य्य-प्रयोजन में ये दूर दूर के गुणी पण्डितों को बुलाते थे और उनका आदर-सत्कार करते थे।

इनका विवाह सर्वगुणसम्पन्ना श्रीमती तारादेवी के साथ हुआ। तारा के पिता भी एक ज़मींदार थे। जिस समय इनकी ख़ूब बनी थी उसी समय रघुवीर जी के एक पुत्र हुआ जिसका नाम बुद्धेश्वरसिंह रक्खा गया। कालान्तर में इनके दो कन्यायें हुईं जिनके नाम सरस्वती और लक्ष्मी थे। दोनों बहिनों में ऐसी प्रीति थी कि एक के बिना दूसरी रह नहीं सकती थी। ईश्वर के प्रकोप से सरस्वती महामारी रोग से पीड़ित हुई और जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त हुई। लक्ष्मी भला ऐसी दशा में कब ठहरनेवाली थी! वह भी उसी रास्ते चल बिदा हुई।

ठाकुर अशर्फ़ीलाल लालपुर का एक सुखी गृहस्थ था। वह बड़ा साहसी, कार्य्यकुशल, धैर्य्यवान्, परन्तु छली था। उसका एक-मात्र उद्देश्य धन बढ़ाना था। यदि इस कार्य के लिए उसे घोरतम पाप भी करना पड़ता तो उसे वह न्याय ही समझ कर डालता था। इससे और रघुवीर से लेन-देन होता था। दो बार रघुवीरसिंह ने हैण्डनोट पर इससे क्रमशः चार और पाँच सौ रुपये भी लिये थे।

इसी बीच में रघुवीरजी की मृत्यु हो गई। स्तम्भ के गिरने से घर की दशा ख़राब हो गई। ख़र्च का कोई हिसाब ही नहीं रहा। नौकर-चाकर जो चाहते वही करते। आम-

दनी घटती गई और ख़र्च बढ़ता गया। आसामियों ने भी ज़मीन दबाना शुरू किया। रघुवीरसिंह के घर की ऐसी दशा देखकर अशर्फ़ीलाल ने अपना कार्य्य साधने का अच्छा अवसर पाया।

जालसाज़ी का षड्यन्त्र रचा गया। रघुवीरसिंह के अक्षर की नक़ल कर पचास हज़ार का एक तमस्सुक तैयार किया गया। इसके अनन्तर अशर्फ़ी ने रघुवीरसिंह के यहाँ के नौकरों को मिलाना प्रारम्भ किया। कलक्टर आदि बड़े बड़े अफ़सरों के यहाँ डाली पहुँचना शुरू हुई। अशर्फ़ी का भाग्य भी चमकने लगा। खेत में उपज भी ख़ूब होने लगी। वह सूद पर रुपये भी लगाने लगा और एक बड़ा व्यापार भी करने लगा। कुछ ही वर्षों में अशर्फ़ी एक भारी ज़मींदार हो गया।

आज-कल अशर्फ़ीलालजी शहर में ही रहते हैं। इनकी कोठी सिविलियनों की सी है। अब यह पुराने गृहस्थ नहीं रहे। इस समय इन्हें लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी अवस्था में, जब कि सब नौकर मृत स्वामी के विरुद्ध हो रहे हैं और अशर्फ़ीलाल इस ऊँचे पद पर आसीन हुए हैं, यदि अशर्फ़ी ने तारादेवी पर पचास हज़ार की नालिश ही कर दी तो कौन विश्वास कर सकता है कि यह सरासर जाल ही है।

(३)

रघुवीरसिंह के घर में आज हाहाकार मचा हुआ है। रघुवीर के मर जाने पर अशर्फ़ी सेठ बनकर बैठा हुआ है। रघुवीरसिंह की ज़मींदारी नीलाम होकर अशर्फ़ी के अधीन हो चुकी है। रघुवीर के नौकर भी आज अशर्फ़ी के कहलाते हैं। रघुवीर का धन अशर्फ़ी का है और रघुवीर का मकान अशर्फ़ी का हो रहा है। या यों कहिए कि रघुवीर और अशर्फ़ी का आज उलट-फेर हो गया है। इसीको कहते हैं—भाग्यचक्र।

जब से तारादेवी के स्वामी की मृत्यु हुई और उसका दुर्दैव आया है, तब से उसे न दिन दिन जान पड़ता है और न रात रात ही। जो तारा महल में रहती थी वही आज झोपड़ी में वास करती है; जो तारा पूरी-पकवान खाती थी वही साग-सत्तू के लिए भी तरसती है। यह क्या है?—केवल दिनों का फेर।

तारा गहने बेचकर पेट-पूजा करती थी। इस समय भी उसे तीन आदमियों के लिए ख़र्च उठाना पड़ता है—अपने लिए, बुद्धेश्वर के लिए और विमला के वास्ते। बुद्धेश्वर तारा का प्रिय पुत्र है और विमला उसकी चेरी। इस विपत्ति में विमला ने तारा का साथ नहीं छोड़ा। विमला ने तारा के शाक को अमृत समझा; परन्तु अशर्फ़ी की मिठाई को विष। यही विमला तारा के गहने बाज़ार में ले जाकर बेचती थी। जब एक एक करके सब गहने ख़तम हो चुके, तब विमला अपनी ही कमाई से सबका पोषण करने लगी। दिन भर परिश्रम कर वह जो कुछ लाती उसे सबमें बाँटकर खाती थी। बुद्धेश्वर अभी पाँच ही वर्ष का था। इसे देखकर विमला के हृदय के टुकड़े टुकड़े होते थे; और वह केवल आह भरकर ही रह जाती थी।

एक दिन विमला बुद्धेश्वर के पैर के तलुए को देखकर चौंक उठी। तारा के पूछने पर उसने उत्तर दिया, तारा, देखो तो बुद्धू के पैर में कमल के चिह्न हैं! यह क्या साधारण मनुष्यों में पाया जा सकता है! मैंने अपने स्वामीजी को कहते सुना था कि जिसके पैर में कमल का फूल होता है वह बड़ा धनी और यशस्वी ... ...।

धनी का नाम सुनतेही तारा की आँखों से एकदम आँसुओं की धारा बह चली।

× × ×

तारा ने विमला से कहा, विमला, इस देश (गाँव) में मेरा जी नहीं लगता। कहीं दूसरी ही जगह चलो। वहाँ कम से कम मन तो आनन्दित रहेगा।

प्रातःकाल तारा ने चलने की तैयारी की; पर इसी बीच में इसके सिर में अचानक बड़ा दर्द होने लगा। अब ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता जाता था त्यों त्यों तारा बेहोश होती जाती थी। फिर लगभग दो घण्टे में वह एकदम ही बेहोश होकर गिरपड़ी। विमला तारा तारा कहकर पुकारने लगी। परन्तु तारा तो अब तारा में मिलचुकी थी! वह सदा के लिए सोगई! विमला ने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की।

विमला ने बुद्धू को गले लगाया और प्रण किया कि मैं यावज्जीवन तारा की दासी बनकर रहूँगी और बुद्धू का पालन करूँगी। तारा के पुत्र के सुख में मेरा सुख होगा

और तारा के पुत्र के दुःख में मेरा दुःख। तारा ने इस स्थान को त्यागने का विचार किया था; इस कारण मैं अब यहां एक पल भी नहीं ठहर सकती। चलो, बुद्धू, कुछ दिन के लिए जन्म-स्थान को भूल जाओ। इसीमें आनन्द है।

(४)

विमला बुद्धू के साथ एक निर्जन स्थान में रहती है। इसकी झोपड़ी से दो कोस पर वाग्मती नदी बहती है। इसीके तीर पर एक मन्दिर में श्रीकृष्ण की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। जब से विमला यहां आई है वह प्रति रविवार को बुद्धू के साथ श्रीकृष्ण आनन्दकन्द के दर्शनार्थ जाती है। यहां कन्द-मूल की कमी नहीं है।

समय समय पर यहां लोग भी आजाया करते हैं; परन्तु इने-गिने लोग ही। हां, साधु-महात्माओं की कमी नहीं रहती। साधुओं को एकान्त स्थान प्रिय होता है; परन्तु गृहस्थों को नहीं। इसी कारण गृहस्थ संयोग से ही यहां भूले-भटके आजाया करते हैं।

विमला प्रति रविवार को बुद्धू के साथ इस मन्दिर में आती थी। साधुओं में विशेष भक्ति रहने के कारण वह सवेरे ही से आती थी और संध्या को लौटकर चली जाती थी। दूसरे दिनों की तरह आज भी वह यहां आई है; पर आज वह अधिक प्रसन्न थी। क्या रास्ते में कोई मङ्गलजनक शकुन तो नहीं हुआ था?

विमला ने बुद्धू से श्रीकृष्ण को प्रणाम करने के लिए कहा और स्वयं भी उन्हें प्रणाम किया। जब वह बाहर लौटी तब उसने वहां एक संन्यासी को देखा। विमला ने श्रद्धा से इन्हें प्रणाम किया। संन्यासी बोले—बेटी क्या चाहती है? विमला ने कहा—आशीर्वाद।

संन्यासी—तू झूठ क्यों बोलती है? साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहती कि बुद्धू को अपनी ज़मींदारी हासिल होजाय!

विमला संन्यासी के चरणों पर गिर पड़ी और बोली, महात्मन्, मुझे क्षमा करें। आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ........।

वह अधिक बोल भी नहीं सकी कि संन्यासी ने कहा, अच्छा, तेरा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा।

विमला घर पर लौट आई; परन्तु वह आनन्द से विकल हो रही थी। उसे रात भर नींद नहीं आई। वह बड़ा ही आश्चर्य करती थी कि संन्यासी ने मेरे अभिप्राय को क्यों कर जान लिया! वह सोचने लगी कि वे मुझको और बुद्धू को कैसे पहचानते हैं, और बुद्धू को ज़मींदारी क्यों कर प्राप्त होगी? इतने में ही एक साफ़ आवाज़ ने कहा—आश्चर्य मत कर। आगामी रविवार को ही सब कार्य्य सम्पन्न हो जायगा। परन्तु तेरी और बुद्धू की भेंट दूसरे वर्ष होगी। सच्चिदानन्द पर विश्वास कर।

(५)

ठाकुर अशर्फ़ीलाल ने प्रचुर धन इकट्ठा कर लिया है; परन्तु इससे उन्हें आनन्द नहीं मिलता। वे रात दिन चिन्तित रहते थे; पर जब से स्वामी सच्चिदानन्द से भेंट हुई है वे उतने दुःखी अथवा चिन्तित नहीं रहते। अब उन्हें न कलक्टर के यहां जाना पसन्द है और न जज के यहां डाली पहुँचाना। एक प्रकार से वे विरक्त होगये हैं और यही कहते हैं कि जब पुत्र ही नहीं तब मैं धन लेकर क्या करूँगा? हा, यह तो मुझे एक भार सा ही मालूम होरहा है!

ठाकुर अशर्फ़ीलाल कोठरी में बैठे बैठे राम-नाम का जप कर रहे हैं। इतने में ही एक नौकर ने आकर कहा कि स्वामी सच्चिदानन्द जी द्वार पर खड़े हैं। अशर्फ़ीलाल ने उन्हें सादर बुला लाने के लिए अपने सेवक से कहा।

जब स्वामी जी समीप आगये तब अशर्फ़ीलाल ने उठकर उन्हें प्रणाम किया और आसन पर बैठाकर बोले, स्वामिन्, यदि आपने मुझे बराबर ज्ञानोपदेश न दिया होता तो आज मैं पागल होकर संसार में मारा मारा फिरता। यह आपकी ही कृपा है कि न तो मुझे धन से प्रेम है और न पुत्र पाने की इच्छा है।

स्वामी०—यदि तुझे इतना ज्ञान हो गया है तो और चाहिए ही क्या? परन्तु मेरी राय है कि तू पाप के प्रायश्चित्त के लिए अपने आधे धन को कृष्णार्पण कर दे और शेष को एक पोष्य-पुत्र के अधीन कर दे। वही श्रीकृष्ण के धन का मैनेजर और तुम्हारे शेष धन का अधिकारी होगा।

अशर्फ़ी०—महाराज ! पोष्य-पुत्र चुनने का भार मैं आपही पर छोड़ता हूँ।

स्वामी०—अच्छा, इसके लिए तुझे चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

× × × ×

आज स्वामी सचिदानन्द और अशर्फ़ीलाल ठाकुर दोनों ही श्रीकृष्ण के मन्दिर में बैठे हुए हैं। पास ही आठ वर्ष का एक लड़का खड़ा है। स्वामीजी ने अशर्फ़ी से कहा—अशर्फ़ी, इसे तू पोष्य-पुत्र बना। इससे तेरा कल्याण होगा। यह लड़का बड़ा ही भाग्यवान् मालूम होता है। इसके हाथ में राजा के लक्षण दीख पड़ते हैं।

अशर्फ़ी०—आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है; परन्तु मैं एक वर्ष से अधिक गृहस्थाश्रम में नहीं रहूँगा। मेरी इच्छा संन्यास लेने की है। इस बीच में पोष्य-पुत्र लेने का विषय समाचारपत्रों में प्रकाशित करा दूँगा और सरकारी कचहरी में भी इसकी आज्ञा ले लेता हूँ। इसके अतिरिक्त एक मैनेजर भी क़ायम कर देता हूँ जो मेरे पुत्र को उचित शिक्षा-दीक्षा देवें।

स्वामी०—हाँ, यह बात तो ठीक है; परन्तु एक बात मैं कह देना उचित समझता हूँ कि इस लड़के को मैं चुराकर लाया हूँ। यद्यपि इस का वारिस कोई नहीं है; पर यह एक उच्च वंश का होनहार बालक है।

इसका असल भेद मैं तब बतलाऊँगा जब तुम संन्यास लेलोगे।

× × ×

अशर्फ़ीलाल ठाकुर ज्ञानानन्द कहलाने लगे। स्वामी सचिदानन्द से ही इन्होंने दीक्षा ली है। स्वामीजी के द्वारा यह सुनकर उन्हें बहुत हर्ष है कि बुद्धू रघुवीरसिंह का लड़का है। अब उन्होंने उस घोर पाप का प्रायश्चित्त कर डाला है जो उन्हें रघुवीर के विरुद्ध जाल रचने के कारण लगा था। ज्ञानानन्द जी को इस पुण्य-कार्य्य से जो हर्ष हुआ है उसकी सीमा नहीं है।

× × ×

इतने दिनों तक विमला उसी झोपड़ी में रहती है, जहाँ वह पहले आई थी। बुद्धू के खो जाने का उसे बहुत दुःख है; पर स्वामीजी की बात पर विश्वास कर वह वर्ष पूर्ण होने की राह देख रही है।

आज वर्ष समाप्त हो गया। स्वामी सच्चिदानन्द और ज्ञानानन्दजी विमला की झोपड़ी के पास जाकर खड़े हो गये; जहाँ विमला बुद्धू के शोक में एक वर्ष से दिन काट रही थी। स्वामी जी ने विमला को पुकारा और अपने साथ लेकर बुद्धेश्वर के महल पर पहुँच गये। फिर स्वामीजी ने बुद्धेश्वर को पुकारा। ज्योंही वह बाहर आया त्योंही विमला को देखकर बोल उठा—विमला ! विमला ने प्रत्युत्तर में कहा—बुद्धू !

तब ज्ञानानन्द ने विमला से कहा—सच्चिदानन्द की ओर तो देखो। क्या यही न एक दिन तुम्हारे प्रिय पति थे जो अपने स्वामी रघुवीरसिंह के घर की बुरी अवस्था के कारण विरक्त होकर संन्यासी हो गये थे ?

इस पर सचिदानन्द ने कहा—और बुद्धू को जमींदारी देनेवाले यही ज्ञानानन्द हैं जो पहले रघुवीरसिंह के कट्टर शत्रु अशर्फ़ीलाल ठाकुर थे।

सब एक दूसरे की ओर एक-टक देखते रहे।

'कण्टक'

विविध विषय।

१—झालरापाटन में नागरिक अधिकार।

अभी थोड़े दिन हुए झालावाड़ के पूर्ण शिक्षित तथा प्रजा-प्रिय महाराजा रानाजी ने अपनी राजधानी के नागरिकों को स्थानीय स्वराज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करने की कृपा की है। इन अधिकारों के आधार पर जो संस्था बनेगी उसके सदस्य वोट (राय) द्वारा चुने जायँगे और उसके उप-सभापति का चुनाव सदस्यों द्वारा होगा। उस संस्था के सभापति का आसन स्वयम् महाराजा सुशोभित करेंगे।

इस अधिकार-प्रदान में सबसे अधिक महत्त्व की

बात यह हुई है कि महाराजा ने स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार प्रदान किया है । सदस्यों के चुनने में वहाँ स्त्रियाँ भी अपनी रायें दे सकेंगी ।

अपनी राजधानी के नागरिकों को पूर्वोक्त अधिकार प्रदान करते समय महाराजा राना ने एक बड़ा सारगर्भित भाषण किया था जिसमें आपने सदस्यों को सम्बोधन कर कहा—

“आप लोग अपनेको अधिकारी न समझें; किन्तु सार्वजनिक सेवक । आप लोगों को इन अधिकारों के लेने में जितना हर्ष हो रहा है उससे कहीं अधिक आनन्द मुझे इनके देने में है ।” आपने अपने भाषण में टाड साहब के राजस्थान से निम्न-लिखित पंक्तियाँ उद्धृत करके अपनी उच्च-शिक्षा तथा उदार भाव का विशेष परिचय दिया है—“यह हिन्दुस्तान का एकही नगर है जिसमें नागरिक स्वतन्त्रता के अङ्कुर पाये जाते हैं और इन अङ्कुरों में नागरिक नियम बनाने की शक्ति है ।” आज महाराजा ने उन अङ्कुरों को एक मनोहर पौधे के रूप में परिणत कर दिया है । हम यह शीघ्र सुनने की आशा करते हैं कि उक्त राजधानी के नागरिक अपनेको इन अधिकारों के पाने के पूर्ण उपयुक्त प्रमाणित करेंगे । इस युगान्तर के लिए महाराजा राना और उनकी प्रजा दोनों को सहर्ष बधाई है ।

२—नये मेट्रापॉलिटन ।

भारतवर्ष में क्रिश्चियन चर्च का सङ्गठन भी प्रायः वैसा ही है जैसा कि गवर्नमेंट का । क्रिश्चियन चर्च से हमारा अभिप्राय क्रिश्चियनों के उस विशेष सम्प्रदाय से है जिसे चर्च आफ़ इँगलेंड कहते हैं । यों तो क्रिश्चियन धर्म के अनेक सम्प्रदायों के अनुयायी और उनके पुरोहित इस देश में मौजूद हैं ; परन्तु हमारे शासकों का सम्प्रदाय चर्च आफ़ इँगलेंड ही है । जैसे भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में एक गवर्नर रहता है और उसके नीचे प्रत्येक ज़िले में कलक्टर और फिर सब गवर्नरों के ऊपर गवर्नर जनरल हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ज़िले में क्रिश्चियनों का एक पुरोहित रहता है जिसे चेपलेन कहते हैं और समस्त प्रान्त के पुरोहितों के ऊपर बिशप रहते हैं और फिर सब बिशपों के ऊपर मेट्रापालिटन । कलकत्ते के लार्ड बिशप मेट्रापालिटन कहलाते हैं ।

किसी समय में बङ्गाल के गवर्नर ही गवर्नर जनरल होते थे । कालान्तर में काम बढ़ जाने से वहाँ के गवर्नर का पद पृथक् कर दिया गया । कुछ दिन पहले तक कलकत्ता ही भारतवर्ष का मेट्रापालिस (राजधानी) था । इसीसे कलकत्ते के बिशप को ही प्राधान्य प्राप्त रहा ।

कलकत्ते और लखनऊ के लार्ड बिशप ।

कलकत्ते के परलोकवासी लार्ड बिशप लेफ़राय के विषय में हम पहले लिख चुके हैं । इस संख्या में हम उनके उत्तराधिकारी, लार्ड बिशप फ़ास वेस्टकट का चित्र पाठकों की भेंट करते हैं । यद्यपि इन्हें इस पद के लिए नामाङ्कित

हुए कई मास हुए, तोभी इनके मेट्रापालिटन के आसन पर आसीन होने का संस्कार अभी हाल ही में किया गया है।

इनका जन्म २३ अक्टोबर सन् १८६३ में हुआ था। इन्होंने पहले चेल्टन स्कूल में शिक्षा पाई और तदनन्तर पीटर हाउज़ केम्ब्रिज में। स्कूल और कालेज में ये क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ियों में थे। कालेज में शिक्षा पाने के बाद सेन्ट-पिटर्स-बिशप वियरमाउथ सेंडलेंड में क्योरेंट नियुक्त हुए। वहाँ तीन वर्ष रहने के बाद ३०- नवम्बर १८८९ में आप कानपुर पधारे। १९०५ में ये छोटा नागपुर के बिशप बनाये गये और अब इस वर्ष से मेट्रापालिटन के पद को सुशोभित करते हैं।

कालेज में, और भारतवर्ष आने पर १९०५ तक, ये अपने बड़े भाई रेवरेन्ड जार्ज वेस्टकट के साथ रहे। इनके बड़े भाई भी जो चित्र में इनके साथ खड़े हैं, आज-कल संयुक्त-प्रदेश के बिशप हैं। इन दोनों भाइयों की गणना सङ्कीर्ण हृदयवाले पादरियों में नहीं है। इनमें उदारता और स्वार्थत्याग के भाव बहुत ही बढ़े हुए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दुस्तानियों के साथ, चाहे वे किसी धर्म या सम्प्रदाय के हों इनकी सदैव सहानुभूति रहती है। दूसरे धर्मों की व्यर्थ निन्दा करना और लोगों को येन-केन-प्रकारेण ईसाई बना डालना आप अच्छा नहीं समझते।

३—क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल इलाहाबाद के विषय में हम पहले भी लिख चुके हैं। यह संस्था दिनोंदिन उन्नति कर रही है। इस वर्ष इसके सञ्चालकों ने अस्सी हज़ार रुपये के खर्च से एक नया बोर्डिङ्ग हाउज़ भी बनवा दिया जिसमें १०० लड़कियाँ बड़े आनन्द से रह सकती हैं। बोर्डिङ्ग हाउज़ में शौच, स्नान, भोजनादि का अच्छा प्रबन्ध है। लड़कियों के साथ उनके निरीक्षण के लिए

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल से मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा देनेवाली लड़कियाँ और उनकी अध्यापिका।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल, इलाहाबाद।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल से अँगरेज़ी मिडिल की परीक्षा में सम्मिलित होनेवाली लड़कियाँ।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल के छोटे दर्जों की बालिकायें और अध्यापिकायें।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल के हिन्दू, छात्रालय की कुछ लड़कियां।

अध्यापिकायें भी रहती हैं। यदि कोई लड़की अस्वस्थ हो गई तो उसका इलाज भी वहीं बोर्डिङ्ग हाउज़ के अस्पताल में हो जाता है। भोजन सहित यह सब सुभीता सिर्फ़ आठ रुपये माहवार में कर दिया जाता है।

इस स्कूल की प्रधानाध्यापिका मिस मानकर बी० ए० का देहान्त हो गया। उनके स्थान पर मिस कृष्णाबाई तालस्कर, एम० ए० नियुक्त हुई हैं। मिस तालस्कर ने पहले बम्बई में शिक्षा पाई। वहां केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र) और एस्ट्रानमी (ज्योतिष) का अध्ययन कर डाक्टरी पढ़ने के लिए अमेरिका गईं। बाटनी, ज़ूआलोजी, फ़िज़ीआलजी आदि शास्त्रों को पढ़ उन्होंने इतिहास पढ़ना आरम्भ किया और शिकागो यूनिवर्सिटी से इस विषय में एम० ए० की पदवी प्राप्त की। तदनन्तर अध्यापन में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी की एम० ए० की परीक्षा पास कर भारतवर्ष लौटीं। बम्बई के सेवासदन में वे अवैतनिक काम कर रही थीं। श्रीमती कृष्णाबाई तालस्कर ऐसी सुयोग्य अध्यापिका का, क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल में आजाना उस संस्था के लिए सौभाग्य की बात है। उनके आते ही प्रबन्ध पहले से भी अच्छा हो चला है। स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउज़ में अनेक प्रान्तों की ८० लड़कियां रहती हैं। स्कूल में शिक्षा मेट्रीक्यूलेशन तक दी जाती है। इस वर्ष ११ लड़कियां यह परीक्षा देंगी। लड़कियों को रोगियों की सेवा करना, घर-गृहस्थी का प्रबन्ध करना भी सिखाया जाता है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस संस्था के सञ्चालकों ने अभी तक सङ्गीत सिखलाने का यथेष्ट प्रबन्ध नहीं किया। बिना सङ्गीत के स्त्रियों की शिक्षा अपूर्ण ही समझनी चाहिए। आशा है कि इस त्रुटि को भी स्कूल के सञ्चालक शीघ्र ही दूर कर देंगे।

४—प्रथम प्राच्य-सम्मेलन।

प्रथम प्राच्य-सम्मेलन सानन्द समाप्त हो गया। दूसरा अधिवेशन अगले वर्ष कलकत्ते में होगा। सम्मेलन के सभापति सर आर० जी० भाण्डारकर का सम्भाषण उन ऐसे विद्वान् के अनुरूप ही था। उनका शिक्षाप्रद और गम्भीर व्याख्यान सभी विद्वानों के, विशेष कर पुरानी चाल के पण्डितों के पढ़ने योग्य है। व्याकरण, न्याय, काव्य, दर्शन, वेद, प्राचीन इतिहासादि अनेक शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने की वर्तमान शैली को दिखलाते हुए, उसकी त्रुटियों को दूर करने के लिए, अपनी सम्मति प्रकट की। व्याकरण में महाभाष्य पढ़ने-पढ़ाने के लिए उन्होंने ज़ोर दिया और न्याय में जगदीश भट्टाचार्य्य और गदाधर भट्टाचार्य्य ही के पीछे पड़े रहने को मना किया। गौतम और वात्स्यायन के ग्रन्थों का उद्धार करने का आग्रह किया। जिस छानबीन और खोज के साथ योरप के विद्वान् पढ़ते हैं, वैसी ही गवेषणा करने के लिए उन्होंने भारतवर्ष के पण्डितों को भी सम्मति दी। योरप और भारतवर्ष के पण्डितों में सत्यान्वेषण के लिए परस्पर प्रेम होना चाहिए।

शिला-लेखों, ताम्र पत्रों और विदेशियों की लिखी हुई उन पुस्तकों के पढ़ने के लिए उन्होंने ज़ोर दिया जिनमें हमारे ग्रन्थों और हमारे देश की घटनाओं की चर्चा है।

५—नरेन्द्र-मण्डल।

गत तीसरी नवम्बर को चीफ़्स कान्फ़रन्स के अधिवेशन में जो दिल्ली में हुआ था वाइसराय ने एक महत्त्वपूर्ण वक्तृता देते हुए यह प्रकट किया कि गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया तथा हिज़ मेजिस्टीज़ गवर्नमेन्ट का विचार भारतवर्ष में एक नरेन्द्र-मण्डल स्थापित करने का है। इस संस्था का नाम नरेन्द्र-मण्डल ही रहेगा या और कुछ रक्खा जायगा यह तो उसके सभ्यगण ही निश्चित करेंगे परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह होगी अपूर्व और प्रभावशालिनी। इसका प्रभाव न केवल उन रियासतों ही पर होगा जिनके शासक इस संस्था के सदस्य होंगे किन्तु ब्रिटिश इण्डिया पर भी इस नरेन्द्र-मण्डल का बहुत कुछ असर पड़ेगा। जो हो भारतवर्ष की अनेक रियासतों के राजाओं का एकत्र होकर अपने देश, साम्राज्य और संसार की स्थिति पर विचार करना उनके और देश के लिए कल्याणकारी ही होगा।

संसार की राजनैतिक स्थिति की ओर राजाओं और महाराजाओं का ध्यान आकर्षित करते हुए वाइसराय महोदय ने उन्हें अपनी अपनी रियासतों की दशा सुधारने, तथा देश, काल, अवस्थानुसार शासन-पद्धति में क्रमशः परिवर्तन करने की सलाह दी।

भारतवर्ष के छोटे-बड़े अनेक राजाओं का किसी एक

सभा का सदस्य बनाना आसान नहीं। उन सन्धि-पत्रों पर जो ब्रिटिश सरकार और रियासतों के बीच लिखे गये हैं बहुत कुछ ध्यान देना पड़ेगा; परन्तु ब्रिटिश-राजनीति-कौशल के सामने सभी कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं।

पूर्वोक्त नरेन्द्र-मण्डल के सङ्गठन के नियमोपनियम का अन्तिम रूप क्या होगा अभी से नहीं कहा जा सकता, पर आरम्भ में इस मण्डल के सदस्य वे नराधिप तो होवेंगे ही जिनकी ग्यारह या ग्यारह से अधिक तोपें की सलामी होती है; परन्तु इनके अतिरिक्त वे नरेन्द्र भी इस मण्डल में सम्मिलित किये जायँगे जिनकी ९ तोपें की सलामी होती है और जो अपने राज्य के शासन में स्वतन्त्र हैं। ऐसे राजाओं के विषय में जिनकी ९ तोपें की सलामी तो होती है परन्तु शासन में स्वतन्त्र नहीं हैं, फिर से शीघ्र ही विचार होगा और जहाँ तक हो सकेगा उन्हें भी शासन में स्वतन्त्र करके पूर्वोक्त नरेन्द्र-मण्डल में सम्मिलित होने का अधिकार दे दिया जायगा। ऐसे राजाओं का भी जिनकी सलामी नहीं होती किसी प्रकार इस मण्डल में योग हो यह विषय भी विचाराधीन है।

मण्डल के अधिवेशनें में नराधिपें का स्वयं उपस्थित होना अथवा वोट देना आवश्यक न होगा। मण्डल से केवल परामर्श या मन्त्रणा होती रहेगी। उसे प्रबन्धकारिणी संस्था का कार्य्य न करना होगा।

६—मलेरिया से बचने का सहल उपाय।

ग्वालियर के कृषि-विभाग ने कृषकों को मलेरिया से बचने के लिए निम्नलिखित उपाय बतलाये हैं।

(१) अपने निवास-स्थान के इर्द-गिर्द जल इकट्ठा न होने दो। ऐसे प्रत्येक स्थल में मच्छड़ों की वृद्धि होती है जिससे मलेरिया पैदा होता है।

(२) कुछ चिरायते का अर्क या क्विनाइन खाना उचित है।

(३) मलेरिया से बचने की एक और सहज दवा यह है। नीम की पत्ती धूप में सुखा ले, फिर उसे पीस कपड़े से छान ले। यह चूर्ण एक तोले लेकर उतना ही गुड़ मिला ८ गोलियाँ बना ले। दिन भर में चार गोलियाँ खानी चाहिए। जिन पत्तियें से चूर्ण बनाया जाय वे न तो बहुत पुरानी हों और न नई।

(४) महीने में एक दफ़ा सनाय की पत्ती का जुलाब ले लेना चाहिए या चौबीस घंटे का अनाहार व्रत रख लेना चाहिए।

(५) सुस्त कभी न रहना चाहिए।

७—इलाहाबाद में शिक्षा-विभाग की कुछ नई इमारतें।

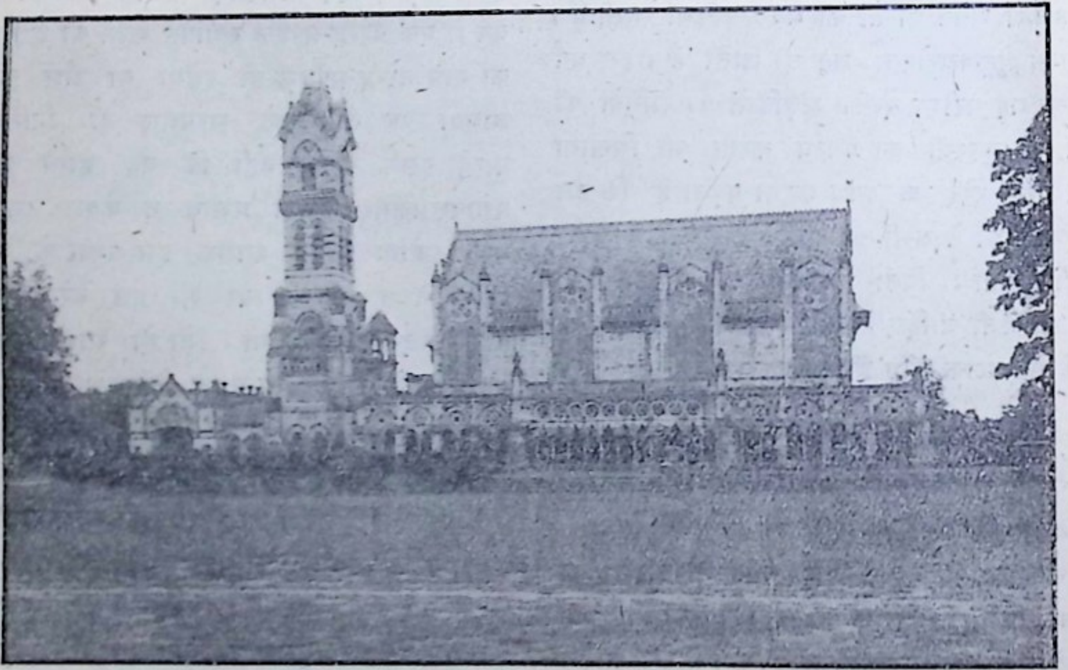

इलाहाबाद की पबलिक लाइब्रेरी।

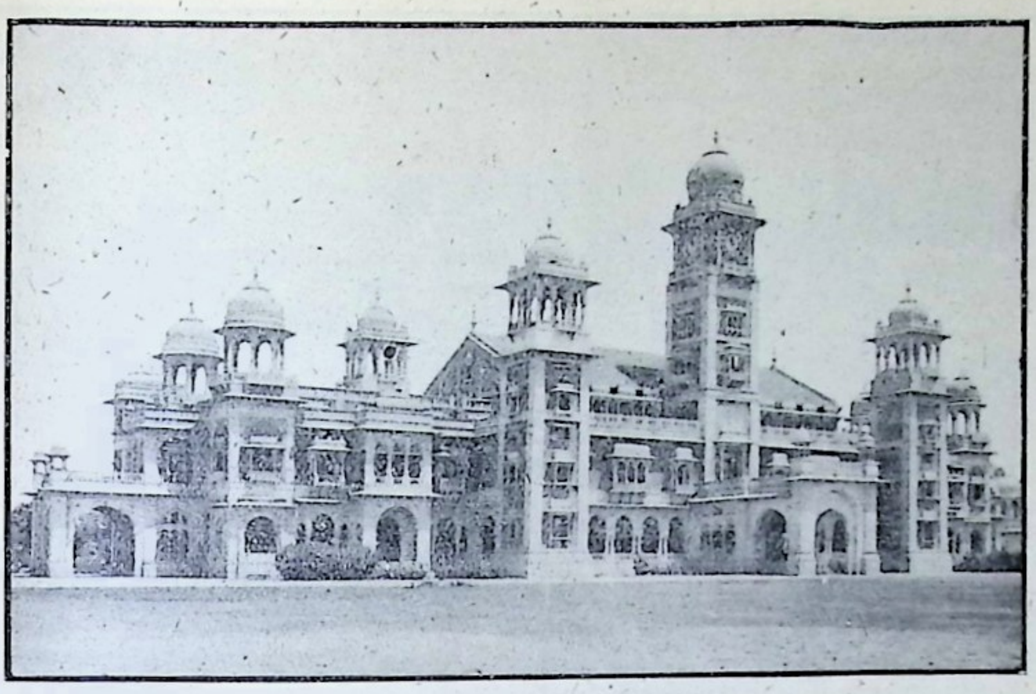

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का सेनट हाल।

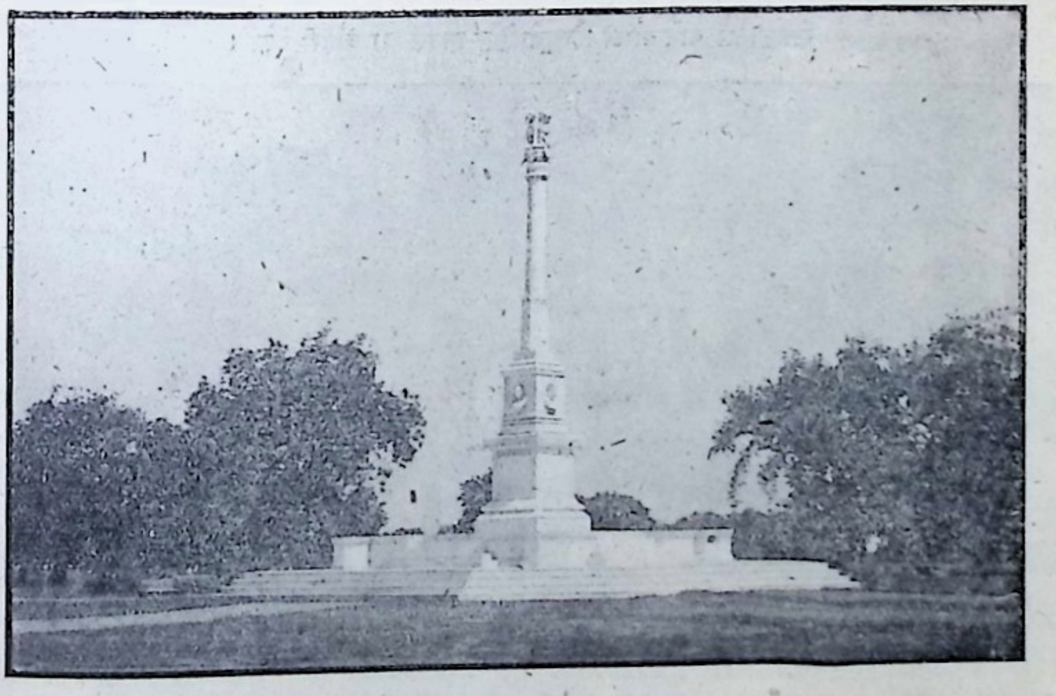

इलाहाबाद के मिन्टो मेमोरियल पार्क में प्रोक्लेमेशन पिलर।

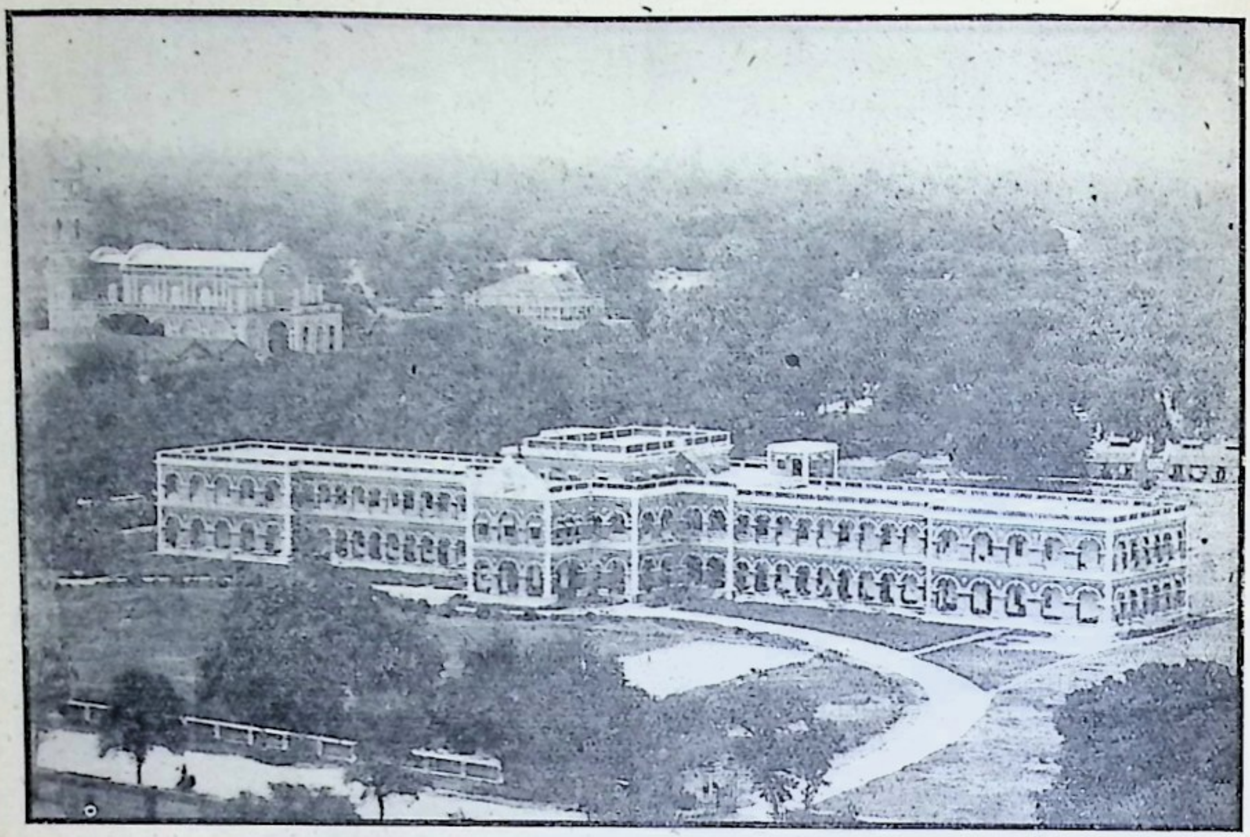

मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दूबोर्डिङ्ग हाउस का बाहरी दृश्य।

मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दूबोर्डिङ्ग हाउस में रहनेवाले विद्यार्थी।

इलाहाबाद संयुक्त-प्रदेश की राजधानी और प्रयाग विश्वविद्यालय का केन्द्र होने के कारण दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। थोड़े ही दिनों में यहाँ कई कालेज और कितने ही छात्रालय होगये हैं। क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल की चर्चा हम पिछले एक नोट में कर ही चुके हैं। म्योर कालेज और मेयोहाल, पबलिक लाइब्रेरी इत्यादि पुरानी इमारतें तो थीं ही परन्तु अब कायस्थ-पाठशाला कालेज, इविङ्ग क्रिश्चियन कालेज प्रभृति अनेक शिक्षा-विभाग की इमारतें बन गईं और बननेवाली हैं। सेनट हाल जहाँ प्रान्त भर के कालेजों के विद्यार्थी ऊँचे दर्जे की परीक्षाएँ देते हैं, हाल ही में बना है। माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कुछ ही दिन हुए अपने उद्योग से भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो महोदय का स्मारक मिन्टो-पार्क बनवा दिया है और वहीं एक स्तूप स्थापित किया है जिसमें वे प्रतिज्ञायें हैं जोकि सन् १८५७ के बाद महारानी विक्टोरिया ने भारतवर्ष की प्रजा से की हैं।

प्रयाग के कालेजों में पढ़नेवाले हिन्दू विद्यार्थियों को निवास-स्थान का बड़ा कष्ट था। उसकी बहुत कुछ निवृत्ति माननीय मालवीयजी ने अपने उद्योग से मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस बनवाकर कर दी। सर एन्टनी मेकडानल ने इस कार्य्य में बहुत सहायता की थी। इसीसे इनका नाम इस छात्रालय से संयुक्त कर दिया गया है। पहले इसमें केवल ८४ विद्यार्थियों के रहने और आराम का प्रबन्ध था। अब यह इमारत और भी बढ़ा दी गई और अब इसमें २१६ विद्यार्थी रहते हैं। यद्यपि इस बोर्डिङ्ग हाउस के बनने में ३ लाख रुपये से अधिक ख़र्च हो चुका है परन्तु इसमें व्यायाम-शाला, पाकशाला, स्नानागार, सन्ध्या-मन्दिर, आदि स्थानों और खेल-कूद के लिए मैदानों की कुछ कमी है। मालवीयजी ने इस कमी के दूर करने के लिए अपील की है। आशा है कि जिन राजाओं और रईसों की मदद से यह सुप्रसिद्ध छात्रालय बना है उनकी और अन्यान्य लक्ष्मीजी के कृपा-पात्रों की उदारता से अवशिष्ट त्रुटियाँ भी दूर हो जायँगी।

८—संस्कृत-सम्मेलन।

अखिलभारतवर्षीय संस्कृत-सम्मेलन (All-India Sanskrit Conference) का सप्तम अधिवेशन इस वर्ष कलकत्ते में होना निश्चित हुआ है। स्वागतकारिणी कमेटी के सभापति हैं सर आशुतोष मुकर्जी, और मन्त्री श्रीयुत सतीशचन्द्र विद्याभूषण। पण्डितों से विनय है कि आगामी १ दिसम्बर तक निम्नलिखित विषयों पर निबन्ध लिखकर मन्त्री महोदय के पास भेज दें।

विषय

१ अलङ्कार-शास्त्र की उन्नति।

२ वेद, षट् अङ्ग, श्रौत और गृह्य-सूत्र।

३ मीमांसा, धर्म्म-शास्त्र, क़ानूनी फ़ैसले और उनका परस्पर सम्बन्ध।

४ ऋषि-प्रणीत आस्तिक और नास्तिक दर्शन-शास्त्र, उनमें परस्पर समानता और भेद।

५ सांख्य, योग, पाशुपत और अन्यान्य दर्शनों की उपयोगिता।

६ न्याय और वैशेषिक।

७ वर्तमान व्याकरण-शास्त्रों की विशेषता और उपयोगिता।

८ भारतवर्षीय और पाश्चात्य ज्योतिष।

९ प्राच्य और पाश्चात्य आयुर्वेद।

१० पुराण, भारतीय महापुरुषों की कथायें।

९—सङ्गीत-सम्मेलन।

अखिलभारतवर्षीय सङ्गीत-सम्मेलन इस वर्ष १९ से २२ दिसम्बर १९१९ तक काशी में होगा। महाराज बनारस सभापति के आसन को सुशोभित करेंगे और उपसभापति होंगे राजा मुंशी माधवलाल साहब। स्वागत-कारिणी सभा के सदस्यों से ५०) फ़ीस ली जायगी और दर्शकों और प्रतिनिधियों से १५)। भोजन और निवास-स्थान के लिए अलग देना होगा। निरामिष भोजन के लिए २), नौकरों के लिए ॥)। जिन सङ्गीत-वेत्ताओं को स्वागत-कारिणी आमन्त्रित करेगी उनकी सवारी, भोजनादि का ख़र्च कमेटी की ओर से दिया जायगा और सब अधिवेशनों में बिना किसी प्रकार की फ़ीस दिये वे जा सकेंगे। उन्हें सोने और चांदी के पदक भी प्रदान किये जायँगे। जो सज्जन सङ्गीत का पेशा नहीं करते उन्हें उपाधियाँ दी जायँगी। दर्शकों और प्रतिनिधियों को ३० नवम्बर तक अपनी फ़ीस मिस्टर एस. बासू जनरल सेक्रेटरी आल इंडिया थर्ड म्यूज़िकल कानफ़रन्स बनारस के पास भेज देनी चाहिए।

पुस्तक-परिचय।

पुस्तक-पञ्चक—पण्डित रामदहिन मिश्र ने, बांकीपुर के ग्रन्थमाला-कार्य्यालय से पांच पुस्तकें भेजने की कृपा की है। सभी पुस्तकें एक ही—मँझोले—आकार की हैं और अच्छी छपी हैं। विवरण—

पहली पुस्तक—**भारत भूगोल**:—है। इसकी भाषा संस्कृत है। बिहार की मध्यपरीक्षा के लिए तैयार होनेवाले छात्रों के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। केवल संस्कृत भाषा पढ़नेवालों के लिए अब तक नये ढङ्ग का कोई भूगोल न था। इस पुस्तक ने इस अभाव को दूर कर दिया। इसमें यत्र-तत्र ज्योतिष-ग्रन्थों के प्रमाण देकर पृथ्वी के आकार, गति, स्थिति और आकर्षण आदि के विषय में भारत के प्राचीन पण्डितों की विशेषज्ञता भी सूचित कर दी गई है। भाषा सरल है। इसकी भूमिका में लिखा है—

(१) आसीच्च तेषां (प्रचीनानां) निरवधि भूगोलज्ञानम्।

(२) आंग्लभाषोल्लिखिता भूगोलाः सर्वथा दुर्बोधाः।

(३) प्राकृतभाषानिबद्धाश्च ते (भूगोलाः) निस्साराः।

लेखक, मिश्रजी, की इन उक्तियों से हम सहमत नहीं। पुस्तक की पृष्ठ संख्या ८० और मूल्य ॥) है।

दूसरी पुस्तक का नाम है—**साहित्य-सुषमा**। इसकी पृष्ठ-संख्या १२० है; पर मूल्य इसका भी ॥) ही है। इसमें चन्द बरदाई से लेकर ग्वाल तक २४ पुराने और ११ नये कवियों की कविताओं का संग्रह है। संग्रह अच्छा है। स्कूलों और मदरसों के छात्रों के लिए उपयोगी है। शृङ्गार-रस की कविता इसमें नहीं रक्खी गई। नई और पुरानी, सभी तरह की कविताओं के नमूने छांट छांटकर रक्खे गये हैं। इसमें अनेक कवितायें नीति पर भी हैं। इसके सङ्ग्रहकार पूर्वोक्त मिश्र जी ही हैं।

तीसरी पुस्तक है—**सिखों का बलिदान**। बङ्गला-पुस्तक "सिखेर बलिदान" का यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं पण्डित राधामोहन मिश्र। इसमें तेग़बहादुर आदि ६ सिक्ख वीरों के धर्मार्थ प्राण-विसर्जन का वर्णन है। पुस्तक है तो छोटी—केवल ३२ सफ़े की, पर बड़ी अच्छी है। मूल्य है ३ आने।

चौथी पुस्तक का नाम है—**रामचरित्रचन्द्रिका**—इसकी पृष्ठ-संख्या ६२ और मूल्य ॥) है। पद्य में है। लेखक इसके पण्डित रामचरित उपाध्याय हैं। इसके नाम से इसके विषय का ठीक ठीक अनुसन्धान नहीं हो सकता। दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, राम, लक्ष्मण, जनक, अङ्गद, हनूमान, रावण और मेघनाद आदि उन २५ व्यक्तियों के चरित की आलोचना है जिनका वर्णन रामायण में पाया जाता है। आलोचना में गुणों और दोषों, दोनों, का दिग्दर्शन है। पर कविजी की आलोचना में कहीं कहीं अतिरञ्जना और कहीं कहीं निष्ठुर कटुवाद भी है, यह पुस्तक अपने ढङ्ग की पहली ही है और अनोखी है।

पांचवीं पुस्तक है—**बिहार का विहार**। इसकी पृष्ठ-संख्या १५० और मूल्य ॥।) है। इसे बाबू शिवपूजन-सहाय ने लिखा है। यह बिहार और उड़ीसा प्रान्त का भूगोल है। ऐतिहासिक, प्राकृतिक और भौगोलिक, इन तीनों दृष्टियों से इसकी रचना की गई है। ऐतिहासिक बिहार के वर्णन में प्राचीन समय की अनेक बातें ढूँढ़ ढूँढ़कर लिखी गई हैं। पुस्तकारम्भ में १२ पृष्ठों का एक उपक्रम है। वह पण्डित रामदहिन मिश्र का लिखा हुआ है। इसमें भी प्राचीन विहार के इतिहास आदि का सुन्दर वर्णन है। पुस्तक सुपाठ्य है।

चित्र-परिचय।

सरस्वती की वर्त्तमान संख्या का रङ्गीन चित्र जबलपुर के हिन्दी-हितैषी बाबू गोविन्ददास जी की कृपा से प्राप्त हुआ है। इस कृपा के लिए हम बाबू साहब को धन्यवाद देते हैं। चित्र सरस्वती के परिचित चित्रकार पं० गणेशराम मिश्रजी की रचना है। बाबू साहब की एक अप्रकाशित पुस्तक के लिए आपने जो कई चित्र बनाये हैं उनमें से यह एक है। इस चित्र में वन का दृश्य, बाणासुर की दृढ़ तपस्या, वन में दावाग्नि का उत्पन्न होना, वन-जीवों की विकलता और अन्त में शिवजी का प्रादुर्भाव योग्यता-पूर्वक अङ्कित किया गया है। मिश्रजी की यह चित्रण-चातुरी प्रशंसनीय है।

इस चित्र से सम्बन्ध रखनेवाली, बाबू साहब की रची हुई कविता इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित की गई है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

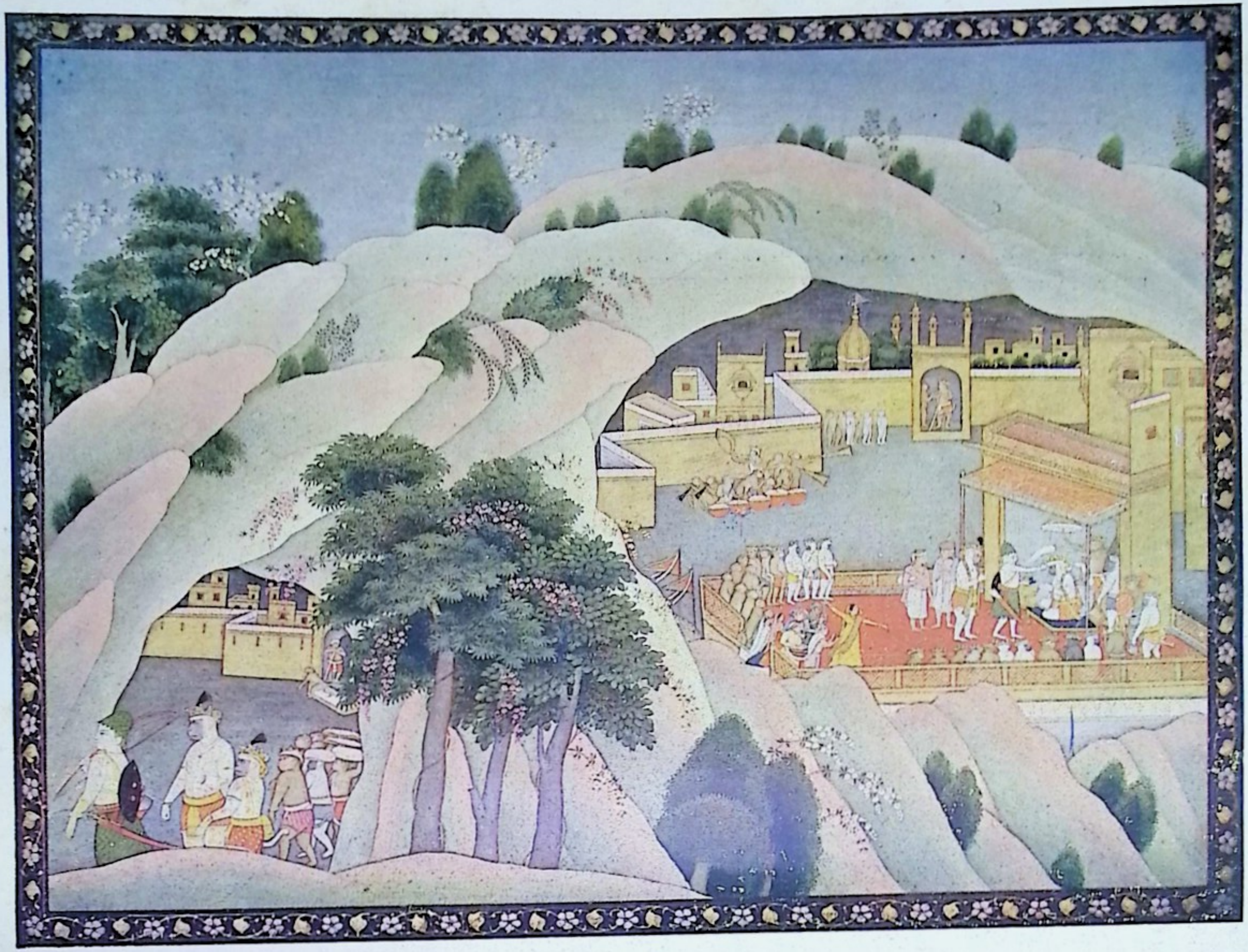

सुग्रीव का राज-तिलक।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

निवेदन

इस संख्या से सरस्वती का बीसवाँ भाग समाप्त होता है। अगली संख्या से इसके इक्कीसवें वर्ष का आरम्भ होगा और साथ ही इसके सम्पादन-कार्य में भी नवीनता का समावेश किया जायगा। अतएव अब सम्पादन-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार, छपने के लिए लेख और चित्र, तथा बदले में आनेवाले पत्र

सम्पादक सरस्वती,
इंडियन प्रेस,
इलाहाबाद

के नाम भेजे जाने चाहिए। उन्हें किसी व्यक्ति-विशेष के नाम से भेजने की अब आवश्यकता नहीं। इधर गत सवा वर्ष से श्रीयुत पण्डित देवीप्रसादजी शुक्ल, बी० ए०, ने सरस्वती के सम्पादन का प्रायः समग्र भार अपने ऊपर उठाकर हम लोगों को अत्यधिक आप्यायित किया। अतएव हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। जो लेखक महाशय शुक्लजी के समय में सरस्वती पर कृपा करते रहे हैं, आशा है, आगे भी वे इसे अपनी कृपा का पात्र बनाये रहेंगे।

मैनेजर, सरस्वती

मृदु कलरव से नदियाँ गाकर, सिन्धु-मिलन को जाती है।
नीड़ों से निज चिड़ियाँ उड़ उड़, गान मनोरम गाती हैं॥
सूर्य-किरण से पुष्प-निचय के, सूख अश्रु सब जाते हैं।
पाकर इष्ट हृदय का अपने, सब आनन्द मनाते हैं॥

अलि-दल टूट टूट फूलों पर, मधुमय रस ले जाते हैं।
भूँ भूँ स्वर से गा गाकर वे, श्रवण-सुधा बरसाते हैं॥

र्ष संख्या २४०

न नर होते हैं।
जोतते बोते हैं॥

ोड़ में सोते हैं।
में सब खोते हैं॥
मिनी आती है।
लेश भुलाती है॥

किन्तु मुझे हा ! बिना तुम्हारे, सुन्दर दृश्य न भाते हैं।
ठण्ढी वायु गरम लगती है, प्राण व्यथित हो जाते हैं॥
नदियों, भ्रमरों और खगों की, प्रिय बोली दुख देती है।
कुसुम-सुरभि यह बिना तुम्हारे, सब धीरज हर लेती है॥

कार्त्तिकेय।

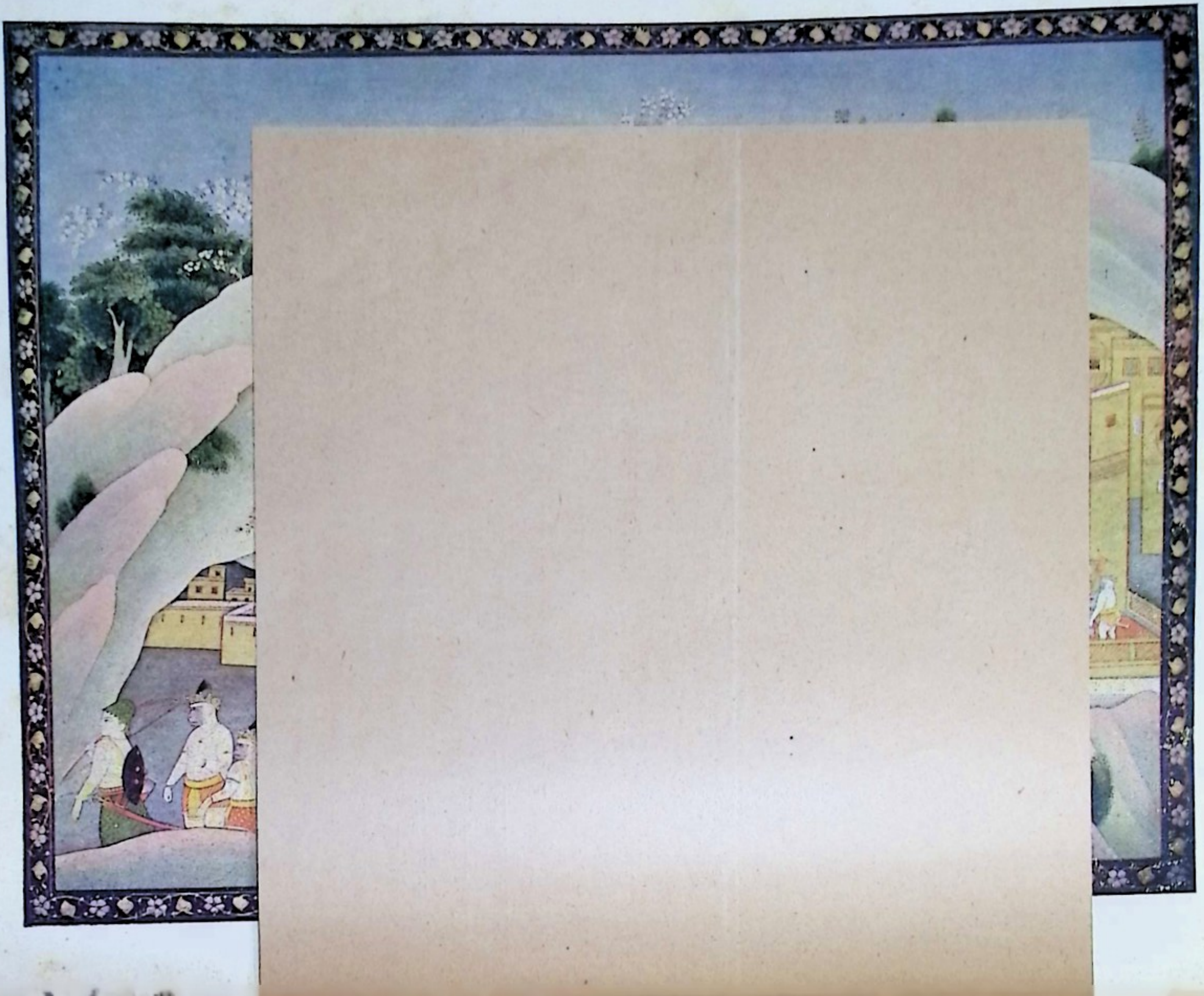

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २०, खण्ड २]   दिसम्बर १९१९—पौष १९७६   [संख्या ६, पूर्ण संख्या २४०

विरह।

यद्यपि प्रातःकाल मही का , दृश्य मनोहर होता है।
पवन मन्द गति बह बह करके, कुसुम-सुरभि बहु ढोता है॥
वालातप की रश्मि-राशि भी , नील गगन में छाती है।
जिन्हें देखकर कमल-कली निज , ठण्ढी करती छाती है॥

मृदु कलरव से नदियाँ गाकर, सिन्धु-मिलन को धाती हैं।
नीड़ों से निज चिड़ियाँ उड़ उड़ , गान मनोरम गाती हैं॥
सूर्य-किरण से पुष्प-निचय के सूख अश्रु सब जाते हैं।
पाकर इष्ट हृदय का अपने , सब आनन्द मनाते हैं॥

अलि-दल टूट टूट फूलों पर , मधुमय रस ले जाते हैं।
भूँ भूँ स्वर से गा गाकर वे , श्रवण-सुधा बरसाते हैं॥
उठते हैं रवि को लख नभ में , कार्यलीन नर होते हैं।
कृषक-वृन्द तज आलस अपने , खेत जोतते बोते हैं॥

दिन के श्रम से थके सूर्य फिर , मातृ-क्रोड़ में सोते हैं।
सारा तेज, प्रताप, रश्मि-बल , क्षण भर में सब खोते हैं॥
तारों और सुधाकर के सँग , सती यामिनी आती है।
प्राणाधार चातकी पाकर , सारा क्लेश भुलाती है॥

किन्तु मुझे हा! बिना तुम्हारे , सुन्दर दृश्य न भाते हैं।
ठण्ढी वायु गरम लगती है , प्राण व्यथित हो जाते हैं॥
नदियों, भ्रमरों और खगों की , प्रिय बोली दुख देती है।
कुसुम-सुरभि यह बिना तुम्हारे , सब धीरज हर लेती है॥

कार्त्तिकेय।

राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ ।

(State Socialism.)

हमने अपने पिछले लेख में बताया है कि सामाजिक पन्थ के जितने उपभेद हैं उनमें सिर्फ़ राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ ही बहुत कुछ यशस्वी होता जा रहा है। सभ्य देशों की सरकार पर इसके मत का दबाव दिन दिन पड़ता जा रहा है। धीरे धीरे वह इसके उद्देशों को न्याययुक्त मानने लगी है। योरप और भारत की सरकार की वर्तमान असली अर्थ-नीति इस पन्थ के उद्देशों में सम्मिलित है। बिना इन उद्देशों के समझे, उनकी नीति का ठीक स्वरूप ध्यान में आना अत्यन्त कठिन है; बिना इस कुञ्जी के, उस वर्तमान अर्थ-नीति के भीतर प्रवेश करना असम्भव है। इसलिए इसके उद्देशों का कुछ विस्तृतरूप से अवलोकन करना इस लेख का मुख्य कार्य्य है।

समाज की भिन्न भिन्न श्रेणियों में सम्पत्ति की विषमता को रोकने के लिए, इस पन्थ का सबसे पहला और सबसे प्रिय उद्देश यह है कि देश की सब ज़मीन पर एक मात्र सरकार का अधिकार हो। ज़मीन पर, कहीं भी, किसी भी पुरुष का निजू अधिकार न हो। किसी भी व्यक्ति की 'निजू जायदाद' में ज़मीन का समावेश न हो। अब यह देखना है कि यह उद्देश कहाँ तक न्याययुक्त है, और इसमें इस पन्थ के अनुयायी योरप और भारत में कहाँ तक फलीभूत हुए हैं।

योरप में देश की सरकार या राजा, राष्ट्र की ज़मीन का मालिक नहीं। कहीं कहीं छोटे छोटे किसान, परन्तु विस्तृत रूप में विशेषकर वहाँ के ज़मीन्दार ही ज़मीन के मालिक माने गये हैं। ये अपनी ज़मीन के स्वतन्त्र मालिक हैं। अपनी इच्छानुसार लगान पर ये अपनी ज़मीन किसी भी किसान या काश्तकार को दे सकते हैं। इसमें किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं। सरकार या राजा इसमें किसी प्रकार का कोई भी दख़ल नहीं दे सकता। राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ को यह बात पसन्द नहीं। उसकी दृष्टि से ज़मीन्दार मुफ़्त का खानेवाला है। किसान या काश्तकार दिन-रात कड़ी मिहनत करके अन्न पैदा करता है, परन्तु इसके बदले में उसे पेट-भर खाना नहीं मिलता। यह ज़मीन्दार बेकार बैठा रहता है, एक तिनका इधर से उधर नहीं सरकाता और रोज़ मिष्टान्न पर हाथ मारता है! यह भारी अन्याय है।

ज़मीन से ज़मीन्दार को एक और मुफ़्त का बड़ा भारी फ़ायदा है। रिकार्डो ने अपने "लगान के नियम" की विवेचना करते हुए कहा है कि देश की जन-संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों त्यों अनाज महँगा होता जाता है और त्यों त्यों साथ ही साथ लगान भी बढ़ता जाता है। जन-संख्या की बढ़ती में ज़मीन्दार का कोई हाथ नहीं। वह जन-संख्या को नहीं बढ़ाता, परन्तु जन-संख्या की बढ़ती से जो लगान बढ़ता है वह ज़मीन्दार को पूरा का पूरा बिना कुछ श्रम किये, मुफ़्त ही में मिल जाता है। जन-संख्या की बढ़ती से इस प्रकार इधर ज़मीन्दार तो धनवान् होता जाता है, उधर उसी बढ़ती से मज़दूर, या काश्तकार के श्रम की क़ीमत कम होती जाती है। एक बिना कुछ श्रम किये मालामाल हो रहा है; दूसरा दिन रात सिर से पैर तक पसीना निकाल, जी तोड़ मिहनत करते रहने पर भी भूखों मरता है! एक के पास द्रव्य है; वह दिनों-दिन धनवान् ही धनवान् होता जाता है। दूसरे के पास पैसा नहीं; वह कङ्गाल से भी कङ्गाल होता जा रहा है। "जिसके पास है उसको दिया जायगा और जिसके पास नहीं है उसके पास जो थोड़ा सा है, वह ले लिया जायगा"—बाईबिल के इन वचनों का प्रत्यक्ष उदाहरण वहाँ पाया जाता है। सामाजिक पन्थियों का कहना है कि यह अनुपार्जित बढ़ती सिर्फ़ ज़मीन्दारों ही को क्यों मिलनी चाहिए? ज़मीन्दार 'श्रम' को यानी मज़दूरों को पूरा वेतन नहीं देते। 'श्रम' का योग्य वेतन वे ख़ुद दबा लेते हैं। यह बड़ा भारी अन्याय ज़मीन को 'निजू जायदाद' में रखने से होता है। यही ज़मीन अगर सरकार की हो जाय तो उस अनुपार्जित बढ़ती का हिस्सा अकेले एक आलसी ज़मीन्दार को न मिलकर, सारे समाज को मिलेगा।

मिल सरीखे सम्पत्ति-शास्त्री भी सामाजिक पन्थ के इस उद्देश को मानते थे। उनके मत से देश की सारी

ज़मीन पर अनुपार्जित आय होती ही है। इस आय पर किसी एक व्यक्ति का कुछ भी हक़ नहीं। इस आय का मुख्य कारण उत्तम राज्य-प्रबन्ध है। इस आय में व्यक्ति-विशेष का कुछ भी हाथ नहीं। इसलिए अगर इसका कोई अधिकारी है, तो वह देश की सरकार ही है—अर्थात्, देश की ज़मीन पर सरकार का अधिकार रहना अधिक न्याययुक्त है। मिल के कहने का सिर्फ़ एक ही हेतु है, और वह यह कि देश में स्थायी बन्दोबस्त न हो। परन्तु हेनरी जार्ज सरीखे दूसरे राष्ट्रीय सामाजिक पन्थी इतने पर सन्तुष्ट नहीं। वे चाहते हैं कि सरकार ज़मीन्दरों से किसी न किसी तरह ज़मीन लेकर, उसे अपने अधिकार में कर ले और फिर वह उसे छोटे छोटे किसानों को लगान पर दे दे। मिल ज़मीन्दारों को रखना चाहता है; परन्तु ज़मीन पर सरकारी अधिकार रहना अधिक न्याययुक्त मानता है। इधर सामाजिक पन्थी ज़मीन्दारों को रखना ही नहीं चाहते। मिल और सामाजिक पन्थियों में यही सूक्ष्म अन्तर है। सामाजिक पन्थ चाहता है कि ऊपर लिखा हुआ अन्याय अब समाज में न हो। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि ज़मीन्दारी प्रथा उठा दी जाय और देश की सारी ज़मीन पर एक मात्र सरकार का अधिकार हो जाय।

सामाजिक पन्थियों के अनुसार, ज़मीन दो रीतियों से सरकार की हो सकती है। प्रथम तो यह कि सरकार वर्तमान ज़मीन के मालिकों को ज़मीन की पूरी क़ीमत देकर, उनसे ज़मीन ख़रीद ले। दूसरी रीति यह कि बिना कुछ क़ीमत दिये सरकार ज़मीन को अपने क़ब्ज़े में कर ले। ऐसा करने से भी सरकार को कुछ भी दोष नहीं लग सकता। पुराने ज़माने में ज़मीन का मालिक समाज था। किसान खेती करता था; परन्तु ज़मीन का स्वामित्व सब गाँववालों के पास था। समाज से सरकार का विकास हुआ है। इस विकास-काल के आरम्भ में ज़मीन पर कुछ व्यक्ति-विशेष, अधिकारी बनाये गये, जोकि उस समय समाज के प्रतिनिधि थे। उस समय सरकार को ऐसा करने का कोई भी अधिकार न था। ऐसा करना बेक़ायदा हुआ। इसलिए अब सरकार यदि फिर से अपनी ज़मीन उन विशेष व्यक्तियों से वापस ले ले, तो इस कार्य्य में कुछ भी अन्याय न होगा।

ऊपर लिखी दूसरी रीति का तर्क भ्रमपूर्ण है। इस समय जिसके पास ज़मीन है, उसने वह किसी समय पूरी क़ीमत देकर ही पाई होगी। प्राचीन काल में कैसी भी स्थिति हो, परन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी जिस वंश ने जिस ज़मीन पर अधिकार किया है, उस पर उसका स्वत्व रहना अधिक न्याययुक्त है। सरकार, इस कारण, बिना कुछ क़ीमत दिये, ज़मीन को किसी भी व्यक्ति के पास से नहीं निकाल सकती। अगर वह ज़मीन लेना चाहे तो उसे प्रत्येक दशा में ज़मीन की पूरी क़ीमत देनी पड़ेगी। 'निजू जायदाद' की रक्षा करना सरकार का एक प्रमुख कर्तव्य है। यह सरकार का कर्तव्य वर्तमान सुख-सम्पत्ति का मुख्य कारण है। अब यदि सरकार उस कर्तव्य की अवहेलना कर ख़ानगी जायदाद पर ज़बरदस्ती अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करे तो इसका परिणाम देश की औद्योगिक और साम्पत्तिक स्थिति पर बड़ा ही अनिष्टकारी होगा। साधारण बुद्धिवाला भी यह बात निडर होकर कह सकता है। इस तरह इस दूसरी रीति का अमल में लाया जाना सर्वसाधारण के लिए विशेष आपत्तिजनक होगा।

अब ज़मीन की पूरी क़ीमत देकर वर्तमान ज़मीन के मालिकों से उसके ख़रीदे जाने का प्रश्न रहा। इँगलिस्तान सरीखे देशों में ज़मीन को बाज़ार-भाव से ख़रीदना अत्यन्त कठिन कार्य है। गिफ़िन नामक एक लेखक ने हिसाब करके बताया है कि वहाँ सब ज़मीन ख़रीदने में सरकार को कम से कम दो अरब पौण्ड देने पड़ेंगे! अर्थात् इँगलिस्तान को अपने वर्तमान (इस युद्ध के पहले का) राष्ट्रीय क़र्ज़ का तिगुना द्रव्य क़र्ज़ लेना पड़ेगा। इस भारी क़र्ज़े का बोझ इतना भयङ्कर होगा कि उसके आगे अनुपार्जित बढ़ती हज़ारों वर्ष तक किसी गिन्ती में न रहेगी। इँगलिस्तान सरीखे देशों में ज़मीन का लगान हद से अधिक बढ़ गया है। अनुपार्जित आय का इससे आगे बढ़ना असम्भव है। अनुपार्जित बढ़ती की कल्पना की इमारत सिर्फ़ रिकार्डो के 'लगान के नियम' के पाये पर खड़ी है। यह कोई ज़ोर देकर नहीं कह सकता कि यह कल्पना सत्य ही है। यह भी कोई दावे के साथ नहीं बता सकता कि लगान सदैव, हर एक स्थिति में, बढ़ता ही जायगा। अनुभव से जाना गया है कि लगान कम भी होता है।

इस दशा में, जब कि सरकार अनुपार्जित बढ़ती पर कर लगाकर फ़ायदा उठाती है, तब अनुपार्जित कमी की नुकसानी उसे क्यों न भर देनी चाहिए ? अनुपार्जित आय सिर्फ़ ज़मीन के लगान से ही नहीं निकलती। दूसरे दूसरे धन्धों में भी अनुपार्जित या आकस्मिक लाभ होता है। इस अनुपार्जित या आकस्मिक लाभ पर सरकार क्यों हाथ नहीं लगाती ? सारांश, रिकार्डो के नियम पर उठाई हुई मिल की इस अनुपार्जित बढ़ती की कल्पना में असत्यता का अंश अधिक है। देश के लिए ऐसी कल्पना उपयोगी नहीं।

इस उद्देश पर एक और आक्षेप है। सामाजिक पन्थियों ने यह उद्देश सिर्फ़ ग़रीब किसान की स्थिति सुधारने के लिए निकाला है। परन्तु ज़मीन सरकारी हो जाने पर भी ग़रीब की स्थिति का सुधरना कठिन है। ज़मीन सरकारी हो जाने पर, सरकार उसे सबसे अधिक लगान देनेवाले काश्तकार को ही देगी। इस तरह सरकार और ज़मीन्दार में कुछ भी अन्तर न रहा। अब मान लिया जाय कि सरकार कम लगान पर या किफ़ायती दर से ही काश्तकारों को ज़मीन देगी। इससे भी अनर्थों की उत्पत्ति हुए बिना न रहेगी। एक तो, जिस क़र्ज़ से सरकार ज़मीन ख़रीदेगी, लगान की कमी से शायद ही उसका ब्याज तक वसूल हो। यह किसी दूसरे नये कर या करों से ही पट सकता है। इससे सर्वसाधारण पर करों का बोझ अधिक होगा। दूसरे, सिर्फ़ वसीलेवाले इस कम लगान का अच्छी तरह उपभोग कर सकेंगे, सब नहीं। इससे घूँस सरीखे अनीतिकारक उपाय भी शुरू हो सकते हैं। सारांश, ज़मीन सरकारी करनेवाले उद्देश में दोष बहुत हैं। इससे बहुजन समाज को फ़ायदा कुछ भी नहीं।

सन् १९०३ में आयर्लैण्ड में खेती का जो नया क़ायदा पास हुआ है वह कुछ सामाजिक पन्थियों के इस उद्देशानुसार है। वहाँ सरकार ग़रीब काश्तकारों को क़र्ज़ देती है। काश्तकार इस द्रव्य से ज़मीन्दार की ज़मीन ख़रीदता है। सरकार काश्तकार से अपना क़र्ज़ ४०–५० वर्ष में किस्त से वसूल करती है। इस सुधार में कुछ भी दोष नहीं। इसका सुपरिणाम शीघ्र ही आयर्लैण्ड में दिखाई पड़ेगा। इस पर यह प्रश्न हो सकता है कि जब यह सुधार आयर्लैण्ड में इतना यशस्वी और फलप्रद हुआ, तब यह दूसरे देशों में भी क्यों न सफल हो सकेगा ?

यह प्रश्न बहुत ठीक है। केवल सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ही हम इसका उत्तर दे सकेंगे। आयर्लैण्ड में इस सुधार के सफल होने के कई कारण हैं जो और दूसरे देशों में लग नहीं सकते।

(१) आयर्लैण्ड एक बहुत ही छोटा द्वीप है। यह द्वीप उन लोगों के स्वाधीन है जिनको वहाँ के मूल निवासी बिलकुल नहीं चाहते।
(२) आयर्लैण्ड की विस्तृत खेती की प्रथा।
(३) आयर्लैण्ड की ज़मीन्दारी प्रथा भी विचित्र है। वहाँ की ज़मीन के मालिक या ज़मीन्दार ख़ुद उस द्वीप के निवासी नहीं किन्तु विदेशी अँगरेज़ हैं।
(४) ये ज़मीन्दार अपनी ज़मीन्दारी में नहीं रहते; प्रायः सभी इँगलिस्तान में रहते हैं। इँगलिस्तान में बैठे बैठे ये लोग अपने मुनीम या गुमाश्ते के द्वारा आयर्लैण्ड में अपनी ज़मीन्दारी चलाते हैं। राजा अपनी प्रजा पर, स्वामी सेवक पर, ज़मीन्दार काश्तकार पर प्रेम-भाव रख सकता है; परन्तु ज़मीन्दार और काश्तकार के बीच का यह मुनीम काश्तकारों को कभी अपना कहकर न समझेगा और न कभी उनसे प्रेम-भाव रक्खेगा। यह बात अनुभव-सिद्ध है। इसलिए आयर्लैण्ड के किसान या काश्तकार इन मुनीमों या गुमाश्तों द्वारा ख़ूब ही सताये जाते हैं।

इन सब कारणों से वहाँ के किसान इस अनोखी ज़मीन्दारी-प्रथा से बहुत असन्तुष्ट हैं। आयर्लैण्ड में सैकड़ों वर्षों से जो असन्तोष फैला हुआ है उसका एक असली कारण यह भी है। ज़मीन्दार लोग वहाँ के मूल-निवासी के समान नहीं हो सकते। जब तक वे वहाँ रहने के लिए मजबूर नहीं किये जा सकते, तब तक मुनीम-गुमाश्तों की नादिरशाही का अन्त नहीं हो सकता। इन सब कारणों से आयर्लैण्ड में ऊपर लिखा सुधार सफल हुआ है। जहाँ कहीं यह दशा होगी, वहाँ यह सुधार भी फलप्रद होगा।

इससे यह सिद्ध है कि आयर्लैण्ड की ज़मीन्दारी-प्रथा का दोष 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना पर नहीं, किन्तु

वहाँ की 'विस्तृत खेती' की प्रथा पर है। विस्तृत खेती के बदले, छोटी खेती शुरू की जाय तो बहुत भला होगा। परन्तु छोटी खेती की सफलता के लिए स्थायी बन्दोबस्त की ज़रूरत है। ज़मीन "ख़ानगी जायदाद" में गिनी ही जानी चाहिए। बात सिर्फ़ यही है कि वह इने-गिने आयर्लेण्ड के से ज़मीन्दारों अथवा किसी सरकार की न हो, असल में वह कमानेवाले किसान या काश्तकार की हो।

इस प्रकार मिल की अनुपार्जित बढ़ती और स्थायी बन्दोबस्त का तर्कशास्त्र देश के लिए उपयोगी नहीं। योरप के किसी भी राष्ट्र में यह सिद्ध नहीं हुआ। परन्तु जो बात योरप या इँगलेण्ड के लिए असम्भव हुई वह भारतवर्ष के लिए सम्भव है। मिल की ऊपर लिखी तर्कना का भारतवर्ष में इस समय ख़ूब ही उपयोग किया गया है। प्रायः भारत भर में स्थायी बन्दोबस्त का फैलाव करनेवाली यही मिल की कल्पना है।

इसका सबब भी ज़बरदस्त है। भारत में परम्परा से यह बात मानी जाती है कि देश की ज़मीन की मालिक सरकार है। मुसलमानी राज्य में इस रूढ़ि का विशेष उपयोग किया गया। भारत के किसान परम्परा से निर्धन और कङ्गाल होते आये हैं। उनकी निर्धनता और ग़रीबी का मुख्य कारण देश की यह रूढ़ि है। बर्नियर सरीखे बहुश्रुतज्ञ, राजनीतिज्ञ, विदेशी भारत-प्रवासियों ने भी इसी बात पर ज़ोर दिया है। यहाँ की निर्धनता का मुख्य कारण, उन्होंने भी, इसी रूढ़ि को बताया है। अँगरेज़ी राज्यारम्भ में प्रायः सब अँगरेज़ राजपुरुष इस बात को कुबूल करते थे। वे सदैव इस रूढ़ि को समाज से बाहर करने की कोशिश में रहते थे। लार्ड कार्नवालिस का बङ्गाल का स्थायी बन्दोबस्त इस बात का प्रमाण है। वे चाहते थे कि सारे भारत में स्थायी बन्दोबस्त हो जायँ। भारत को श्रीमान् करने का यही एक मुख्य साधन था। अगर वह अमल में लाया जाता तो आज कल सारा भारतवर्ष बङ्गाल के समान हो जाता। परन्तु मिल के 'अनुपार्जित बढ़ती' के सिद्धान्त का उदय होते ही इन सब विचारों पर पानी फिर गया। यहाँ के अँगरेज़ राजपुरुष मिल के इतने अनुयायी हो गये कि उन्हें स्थायी बन्दोबस्त में सिवा दोष के गुण कुछ भी दिखाई नहीं दिया। भारत में 'ज़मीन-कर' न लगाने का वचन देते हुए भी, उन्होंने बङ्गाल के ज़मीन्दारों पर 'ज़मीन-कर' लगा ही दिया!

सर टामस मनरो ज़मीन्दारी-प्रथा का घोर विरोधी था। मद्रास और बम्बई-प्रान्तों में ज़मीन्दारी तोड़कर रैयतवारी बन्दोबस्त आरम्भ करनेवाला यही इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष था। मनरो चाहता था कि विस्तृत खेती की प्रथा न हो। ज़मीन्दार ज़मीन का मालिक न हो। ज़मीन का असली मालिक किसान या काश्तकार हो। रैयतवारी बन्दोबस्त से उसका यही हेतु था कि इटली के समान भारत में भी ज़मीन छोटे छोटे किसानों की 'ख़ानगी जायदाद' हो जाय। वह समझता था कि देश के किसानों की, परम्परा से नष्ट हुई लक्ष्मी का उद्धार करने का यही एक साधन है। केवल इसी उपकारी बुद्धि से उसने रैयतवारी आरम्भ की। वह स्थायी बन्दोबस्त की रैयतवारी का प्रचार करनेवाला था। अगर यह भी सिद्ध हो जाता तो आज भारत के किसान इटली के किसानों के समान ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न रहते। परन्तु मिल की 'अनुपार्जित बढ़ती' ने इस पर भी पानी फेर दिया। बम्बई और मद्रास प्रान्त के अस्थायी बन्दोबस्त की वर्तमान रैयतवारी में कोई किसान सुखी हो, ऐसा कहीं भी सुनने में नहीं आता।

ऊपर लिखी बातों से यह सिद्ध है कि ज़मीन को सरकारी करने का, सामाजिक पन्थ का उद्देश इस देश के लिए हितकर नहीं। ज़मीन का 'ख़ानगी जायदाद' में गिना जाना ही अधिक न्याययुक्त और लाभकारी है। बात सिर्फ़ यही है कि वह सर टामस मनरो तथा न्यायमूर्ति रानडे के मतानुसार, किसी बड़े ज़मीन्दार की ख़ानगी जायदाद में न हो, वरन उसे कमानेवाले, उस पर असली मिहनत करनेवाले किसान की जायदाद में हो।

देश की भिन्न भिन्न श्रेणियों में सम्पत्ति की विषमता होने का दूसरा कारण पूँजी की बाढ़, यन्त्रों की बाढ़ और विस्तृत कारख़ानों की प्रथा है। सामाजिक पन्थियों का उद्देश है कि देश की पूँजी और कारख़ाने सरकारी हो जायँ। यह उद्देश भी ठीक नहीं, क्योंकि यह आज़माई हुई बात है कि ख़ानगी कामों की अपेक्षा सरकारी कामों में अधिक ख़र्च पड़ता है। इस समय सम्पत्ति की जो आश्चर्यजनक बाढ़ हुई है उसका मुख्य कारण यन्त्रशक्ति

का उपयोग, श्रम-विभाग, विस्तृत कारख़ाने की प्रथा और निजू जायदाद है। विस्तृत कारख़ाने की प्रथा का नाश करना मानों सम्पत्ति के नाश करने के बराबर है।

देश में कई एक धन्धे ऐसे अवश्य हैं जिनका सरकार के हाथ में रहना अधिक फ़ायदेमन्द है। पोस्ट, तार इत्यादि धन्धे व्यापार के उपयोग के हैं; परन्तु किसी व्यक्तिविशेष की अपेक्षा, इन धन्धों में सरकार लोगों का अधिक भला कर सकती है। वह इससे अपना कुछ भी मुनाफ़ा न ले, सस्ते दर से सर्वसाधारण को बहुत लाभ पहुँचा सकती है। सामाजिक पन्थियों के अनुसार पोस्ट, तार, रेलवे के सामान, आवागमन के साधन, खेती के उपयोग में पड़नेवाले, नहर सरीखे कार्य्य सरकारी हों। इस पन्थ का यह उद्देश अधिक श्रेयस्कर और लोकोपकारी है। क्योंकि अगर किसी कम्पनी या व्यक्ति के ख़ानगी अधिकार में ऐसे धन्धे चले जायँ तो वह उनसे सिर्फ़ अपना ही भला करने का हद से अधिक प्रयत्न करेगा। इससे सर्वसाधारण और विशेषकर ग़रीबों का बड़ा नुक़सान हो सकता है। परन्तु सरकार के अधिकार में इन धन्धों के जाने से इस अनिष्ट की सम्भावना नहीं हो सकती।

सम्पत्ति की विषमता का तीसरा कारण सम्पत्ति की अदला-बदली की प्रथा है। ख़ानगी जाययाद वंश-परम्परा की होती है। पिता की सारी जायदाद या मिलकियत का मालिक कहीं कहीं उसका सिर्फ़ बड़ा लड़का और कहीं कहीं सब लड़के होते हैं। एक पुरुष ने बहुत सी सम्पत्ति पैदा की। वह सारी सम्पत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी उसीके वंश में रहती है। इससे एक अनर्थ होता है। वह यह कि बिना परिश्रम जायदाद पानेवाले लड़के बहुधा निकम्मे और आलसी हो जाते हैं। इस तरह इस प्रथा से देश में आलसियों का एक झुण्ड पैदा होता है। सामाजिक पन्थियों का कहना है कि इस प्रथा में सुधार किया जाय। सबसे सीधा सुधार ऐसी जायदाद पर भारी कर लगाना हो। कर लगाने से दूसरे दूसरे लोगों के कर का बोझ कम होगा। सरकार को आय का एक सीधा रास्ता मिल जायगा और कर का बोझ बिना परिश्रम सम्पत्ति पानेवाले पर पड़ेगा। इसमें कुछ अन्याय भी नहीं। योरप की प्रायः सब सुधरी हुई सरकार इस सुधार को अमल में ला रही हैं।

सम्पत्ति की विषमता का चौथा कारण शिक्षा का ख़र्च है। सम्पत्ति की उत्पत्ति का एक प्रत्यक्ष कारण शिक्षा है। देश के सुधार के साथ शिक्षा का ख़र्च बढ़ता जाता है। इससे ग़रीब लोग शिक्षा से जैसा चाहिए वैसा लाभ नहीं उठा सकते। इसका सब फ़ायदा पास में पैसा रहने के कारण, धनवान् ही उठाते हैं। इस प्रकार धनवान् सुशिक्षित ही सुशिक्षित होता जाता है। सुशिक्षित होने से वह उत्तरोत्तर श्रीमान् होता जाता है। ग़रीब मूर्ख का मूर्ख ही रहता और दिन दिन दरिद्रता के पङ्क में धँसता जाता है। इसलिए यदि सम्पत्ति की समता करना ज़रूरी है, तो ग़रीबों को पढ़ने के लिए बहुत सहूलियत दी जानी चाहिए। शिक्षा राष्ट्रीय हो जाय और उसका ख़र्च सरकार चलावे। सामाजिक पन्थियों का कहना है कि सरकार लोगों को अधिक सस्ते में पढ़ा सकती है। वह सामान्य और औद्योगिक शिक्षा मुफ़्त कर दे और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य्य कर दे। योरप के शिक्षित देशों में यह सुधार अमल में लाया जा चुका। भारत में, एक दो देशी राज्यों को छोड़, यह सुधार कहीं भी नहीं। जब भारत-सरकार सामाजिक पन्थ के और और उद्देशों के मानने में सबसे आगे है, तब उसे इसी एक उद्देश के मानने में सबसे पीछे क्यों रहना चाहिए?

विस्तृत कारख़ाने की प्रथा से समाज में एक बड़ा भारी अनर्थ पैदा होता है। इससे समाज का एक बड़ा भारी हिस्सा केवल रोज़ी पर पेट भरनेवाला मज़दूर बन जाता है। इसके पास न तो किसी प्रकार की पूँजी रहती है और न कोई बुद्धि। इसलिए बीमारी में या बुढ़ापे में इसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। ऐसे समय वह काम नहीं कर सकता और इसलिए उसे ऐसी दुरवस्था में भूखों मरना पड़ता है। घरेलू धन्धे की प्रथा में इसके पास थोड़ी न थोड़ी पूँजी रहती ही है, जिस पर अगर वह नहीं, तो उसके घरवाले पास-पड़ोसियों की सहायता से पेट चलाने लायक़ काम कर लेते हैं। उनकी रोज़ी एकदम बन्द नहीं होती। परन्तु विस्तृत कारख़ाने की प्रथा से वह एकदम बन्द हो जाती है। अगर यह मज़दूर-वर्ग अपनी रोज़ी से कुछ हिस्सा बचा रक्खे तो वह उसकी बीमारी या चोट लगने पर या उसके बुढ़ापे में बहुत कुछ मदद दे सकता है। परन्तु उसकी मज़दूरी इतनी कम रहती है कि देश की उन्नति के

साथ साथ अधिक अधिक महँगाई होने के कारण, वह उसमें से कुछ भी नहीं बचा सकता। इस प्रकार इसकी दशा दिनों-दिन गिरती जाती है। सामाजिक पन्थ का कहना है कि सरकार का धर्म है कि वह मज़दूर की इस दशा में सुधार करे। इस सुधार को अमल में लाने के लिए वागनर की सलाह से प्रिन्स बिसमार्क ने जर्मनी में सबसे पहले 'बीमा' का क़ानून पास किया।

इस क़ानून के अनुसार प्रत्येक मज़दूर को बीमा कराना ज़रूरी है। बीमे की पूरी रक़म में $\frac{२}{३}$ हिस्सा कारख़ानेवाला देता है और $\frac{१}{३}$ हिस्सा मज़दूर। बीमारी के तीसरे दिन से लगाकर तेरह हफ्ते तक इस रक़म में से मज़दूर को आधी मज़दूरी मिलती है। इसके बाद भी अगर वह बीमार रहा तो उसका बन्दोबस्त अनाथालय से होता है।

मज़दूर को चोट लगने पर उसके ख़र्च-पानी का सब बन्दोबस्त कारख़ाने के मालिक को करना पड़ता है। इस नियम से कारख़ाने का मालिक अपने कारख़ाने की सफ़ाई और सुरक्षा का ज़िम्मेदार बनाया जाता है।

इन दोनों क़ायदों की अपेक्षा 'बुढ़ापे के बीमे' का तीसरा क़ायदा अधिक प्रसिद्ध है। यह क़ानून संन् १८८९ में जर्मनी में पास हुआ। इसके अनुसार ७० वर्ष की अवस्था पूरी होने पर प्रत्येक मज़दूर को पेन्शन मिलती है। मज़दूर को कम से कम २५ वर्ष तक बीमे की रक़म भरना पड़ती है। किस मज़दूर को कितनी पेन्शन मिलनी चाहिए, इन सब क़ायदों का वर्णन किया हुआ है। मज़दूरों के पांच विभाग किये गये हैं। बीमे की आधी रक़म कारख़ानेवाला और आधी मज़दूर देता है और प्रत्येक पेन्शन पर ५० शिलिंग सरकार देती है।

बीमे के इन क़ायदों पर अँगरेज़-सम्पत्ति-शास्त्रियों के कई आक्षेप हैं। वे कहते हैं कि (१) इससे मज़दूरों के स्वावलम्बन में धक्का पहुँचता है, क्योंकि इससे वे प्रत्येक बात में सरकार पर अधिक अवलम्बित रहेंगे। (२) इन बीमों का ख़र्च अन्त में मज़दूरों के सिर पर ही पड़ता है। पहले पहल इसका ख़र्च कारख़ाने के मालिक पर पड़ेगा। वह उसे पूरा करने के लिए या तो अपनी वस्तुओं की क़ीमत बढ़ावेगा या फिर मज़दूर कम रक्खेगा। इन दोनों रीतियों से उद्योग-धन्धे की कमी होगी और इससे मज़दूरों का ही नुक़सान अधिक होगा।

इन आक्षेपों पर बीमों के समर्थकों का कहना है कि इनसे कुछ भी नुक़सान नहीं। स्वावलम्बन की प्रकृति समाज के सब पुरुषों में और सब श्रेणियों में नहीं होती। वह कुछ इने-गिने लोगों में होती है। सरकार बहुजन-समाज के कल्याण पर अधिक ध्यान दे, न कि इने-गिने लोगों के। इँगलिस्तान में पहले-पहल इस सुधार का बड़ा ही विरोध हुआ; परन्तु वहाँ ज्यों ज्यों मज़दूर-दल का ज़ोर बढ़ता चला, त्यों त्यों इस सुधार पर लोगों की सहानुभूति होती चली। बुढ़ापे में पेन्शन देने के क़ायदे पर लोकमत का अधिकाधिक ज़ोर पड़ने लगा; यहाँ तक कि ख़ुद इँगलिस्तान में, सन् १९०८ में, 'लिबरल-दल' की प्रभुता से यह क़ानून पास ही हो गया। भारतवर्ष में इस हलचल का अभी कहीं नामों-निशान नहीं।

ऊपर लिखी बातों से यह सिद्ध है कि इस सामाजिक पन्थ का प्रभाव योरप के समस्त राष्ट्रों पर है। सब सुधरी हुई सरकारें दिनों-दिन इसके उद्देश को ठीक मानने लगी हैं। यह पन्थ ख़ानगी जायदाद की कल्पना का अन्ध शत्रु नहीं। यह ख़ानगी जायदाद को उखाड़ना नहीं चाहता। परन्तु उसमें जो बुराइयाँ घुसी हुई हैं उन्हें दूर करने के प्रयत्न में है। विस्तृत कारख़ाने की प्रथा से मज़दूरों का बहुत नुक़सान होता है। ख़ानगी जायदाद से श्रीमान् लोगों का बहुत फ़ायदा होता है। इस सम्पत्ति की विषमता को दूर करने के लिए यह पन्थ चाहता है कि सरकार अपने क़ायदे-रूपी अस्त्र से इस विषमता को दूर करे। जिसे अधिक फ़ायदा होता है उससे उसके फ़ायदे का कुछ अंश लेकर सरकार उसे उन लोगों को दे, जिन्हें कम लाभ है। इस पन्थ का यह प्रयत्न युक्ति-पूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं।

इस पन्थ को योरप में अपने उद्देश फैलाने के लिए बड़े बड़े कष्ट सहने पड़े। परन्तु भारत में ये उद्देश एक-दम, बिना रोक, प्रचलित हो गये। यहाँ बहुत काल से सरकार लोगों की मा-बाप समझी जाती है। लोगों का विश्वास है कि सरकार जो कुछ करती है सबके भले के लिए करती है। यहाँ लोग तो अशिक्षित हैं, परन्तु

सरकार बहुत शिक्षित है। आरम्भ से ही सरकार ने बड़े बड़े महत्त्व के काम यहाँ अपने हाथ में ले लिये हैं। यहाँ सारी ज़मीन सरकार की है। पोस्ट, तार, रेलवे, सड़क, नहर वग़ैरह, आवागमन के साधन सरकारी हैं। जङ्गल, खदानें, नमक के कारख़ाने वगैरह सब सरकारी हैं। अर्थात् यहाँ राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ का प्रत्यक्ष राज्य है। इस राज्य में यहाँ की प्रजा को कितना फ़ायदा हुआ है, या हो रहा है, या आगे होगा, यह एक विकट प्रश्न है। प्रत्येक भारतवासी का यह एक मुख्य धर्म है कि वह इस प्रश्न पर अवश्य ध्यान दे और इसे हल करने का प्रयत्न करे। *

लक्ष्मण गोविन्द आठले।

प्राकृत के कुछ सुभाषित।†

(१)

मोती जैसी कविता, स्वभाव-विमला, सुवर्ण-जटिता, तब
खिलती है, जब पड़ती, श्रोता के कर्ण-छिद्रों में॥ (८)

(२)

आपस में राग-भरी, सालङ्कारा, सलक्षणा, रसिका।
क्या गाथा क्या रमणी, दुख देती है न आने से॥ (१०)

(३)

साँठे की सी पोरी, कुचली निर्दय गँवार दातों से।
गाथा! तू टूटेगी, या लघुता बिबस पावेगी॥ (१६)

(४)

गाथा का, गीतों का, वीणा-ध्वनि का, सरस-महिला का।
जो लोग रस न जानें, दण्ड उन्हींको वही समझो॥ (१७)

(५)

मन्दर-गिरि-सम चिन्ता की मथनी से, अथाह सागर सा।
कवि-मन विपुल मथित हो, उपजाता काव्य-रत्नों को॥ (१९)

(६)

अपशब्द शब्द पै डर, पद पद पर होय कुछ न कुछ चिन्तित।
कष्टों से कवि पावे कविता को, अर्थ को तस्कर॥ (२३)

(७)

भाता दोष दिखाना, कवि-रचना में उसी सुजन का है।
जो काट कुपद को झट, सुन्दर पद दूसरा धर दे॥ (२६)

(८)

यह कौन काल गर्जन का? हे कलिकाल, मत्त गजराज!
सज्जन-सिंह-पदों की, पृथ्वी पर हैं अभी लगी छापें॥ (४३)

(९)

पर-छिद्र लक्ष रक्खे, चितकबरा, घोर, दो जीभवाला।
टेढ़ी चाल चलै, उस खल से या सर्प से कहाँ सुख हो? (५७)

(१०)

कुल से शील भला है, दारिद है रोग से भला, विद्या
राजपद से भली है, क्षमा भली है तपस्या से॥ (८३)

(११)

औरों की रहने दो, जो अपने पाँच भूत तन में हैं।
काम किया तज देवें तो उनसे भी लजाते हैं॥ (९३)

उसी 'वज्जालग्ग' की कुछ गाथाओं के नमूने 'सरस्वती' के पाठकों को भेट किये जाते हैं। कहीं कहीं टिप्पणी भी दिये देता हूँ।

गाथा २—आना = स्मरण होना। (दूसरे पक्ष में) आना = पास आना,

गाथा ९—चितकबरे रङ्ग का, (दूसरे पक्ष में) चितकपटा।

---

*प्रो० भाटे, प्रो० काले और न्यायमूर्त्ति रानडे के अर्थशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की विशेष सहायता से लिखित—लेखक।

† श्वेताम्बर जैन कवि जयवल्लभ ने 'वज्जालग्ग' नामक एक बहुत बड़ा सुभाषित-सङ्ग्रह रचा है। उसमें 'बहु-कवियों की रचिता गाथाओं में से भली भली चुनकर' इकट्ठी की हैं। कवि का यह दावा है कि—

शृङ्गार युत, रसीली, कामिनि-मन-भाविनी, मिठास-भरी।
प्राकृत कविता रहते संस्कृत को कौन है पढ़ता?

मैं उन गाथाओं का मिलते हुए आर्या या गीति छन्दों में अनुवाद कर रहा हूँ। मेरे पास एक हस्तलिखित प्रति थी। अनुवाद जहाँ तक बन पड़ा मूल प्राकृत से किया गया है, संस्कृत-छाया का अनुसरण कहीं कहीं ही किया है। भाषा, भाव, श्लेष आदि को निभाने का यत्न किया गया है। एक जर्मन विद्वान् का सम्पादन किया हुआ मूल, संस्कृत-छाया सहित, 'बिब्लोथिका इंडिका' में भी छपने लगा है। उसकी संस्कृत-छाया दोष-रहित नहीं है। आज

(१२)

मेरु तभी तक ऊँचा, जलनिधि दुस्तर गिना तभी तक है।
कार्य-गति कठिन तब तक, धीर जभी तक न हथियाते॥ (१०३)

(१३)

तृणसा मेरु, गगन-तल हाथ-छुआसा, उदधि क्षुद्र-नदी।
घर के आँगन जैसा स्वर्ग, सदा साहसी जन को॥ (१०५)

(१४)

रे दैव! धीर के संग, होड़ा-होड़ी जमायगा जो तू।
ऐसा कलङ्क होगा, जो धोये से न जावेगा॥ (११२)

(१५)

जो जो शाखा पकड़े, जिस जिसका हाथ धर सहारा ले।
वह चट करती टूटे, यदि होवे दैव प्रतिकूल॥ (१२४)

(१६)

परिणाम पूर्व-कर्मों का, यह देखो समुद्र-मन्थन में।
हर के हित विष उपजा, स्तन-भर-लचकी रमा हरि के॥(१३१).

(१७)

लेते समुद्र-जल यत्नों से मेघ श्याम हो जाते।
बरसाने पर धौले, लेते देते निरख यह भेद॥ (१३७)

(१८)

धन-वायु के झकोरों के मारे चाल जो चलें टेढ़ी।
यदि सीधे वे हों तो होते दारिद-दवाई से। (१४२)

(१९)

सूर्य खिले पर खिलता, सिमटे रवि तो सिकुड़ सा जाता।
दीन-कुटुम्ब विचारा, जाड़े में कमल हो रहता॥ (१४६)

(२०)

'ढलकें स्तन', इस भय से, जनमे ही धाय को दिये जावें।
वे प्रभु नीच-प्रेमी होवें, यह दूध की गिनो महिमा॥ (१४९)

(२१)

विरस हुए हो राजन्! अब जावें, आप धर्म में रहना।
चित्र-लिखे हाथीसा दान कभी आपका नहीं देखा॥ (१५४)

(२२)

और सब सेवकों के, कटहल से नाथ! पास-फल-वाले।
पार्थिव! हमने माँगा, तो भी तरु-ताल-से रहे आप!॥ (१५५)

(२३)

दे पाँव दाँत पै, रख दूजा सिर पै, धरे कहाँ तीजा?
यों गज पर भट चढ़ता, बलि-बन्धक विष्णु ज्यों नभ में॥ (१७२)

(२४)

इनकी पङ्ख-हवा से प्रभु की मूर्छा हटे, विचार यही।
पास पड़ा, गीधों से, आँतों को वीर नुचवाता॥ (१७७)

(२५)

जानेगा, जब चिकनी फिसलन में, भार से, धँसे पहिया।
भोले पटेल! यों तो, धवलों से विमुख तू रहता॥ (१८२)

(२६)

काले काले गज के, भीतरिये दाँत, माल नित्य चरें।
विपदा के जो साथी वे धौले हैं सदा बाहर! (१५९)

(२७)

हिलते दन्त-मुसल हैं, मद उतरा है, गई जवानी भी।
तों भी सनाथ वन है, यूथाधिप! आपके बैठे॥ (१९०)

(२८)

चिरकाल के विहारों को करके याद, साँस यों भर ली।
गजपति ने, तृणकौरा, सूखा झट सूँड में लगा जलने॥ (१९६)

(२९)

हथिनी-निज-कर सौंपे, कोमल-सेली-कवल सुमरन कर।
यदि गज मरे न तो क्या, दुबला भी वह नहीं होवे? (१९९)

(३०)

ये पाँच वस्तु छीजें ज्यों ज्यों बढ़ते रोज व्याधी के।
कटि, पति, धनु, सब छैले बस्ती के, और निज सौतें॥ (२०८)

(३१)

व्याधवधू के स्तन-युग को देती अर्घ हथिनियाँ सब आ।
सुन्दरि! मिला रँडापा हमको न कृपा तुम्हारी से॥ (२११)

(३२)

दल हैं तो बास नहीं, बास नहीं तो न प्रचुर मकरन्द।
मधुकर एक कुसुम में गुण दो या तीन तो नहीं मिलते॥ (२३७)

गाथा १७,२६—धौले = श्वेत (दूसरे पक्ष में) निर्मल।
गाथा २१—'धर्म में रहना' = जाते समय का आशीर्वाद, जैसे, प्रसन्न रहना।
दान = देना, (दूसरे पक्ष में) मद।

गाथा २५—धवल = सफ़ेद बलवान् बैल।
गाथा २६—भीतरिये = भीतर के (दूसरे पक्ष में) अन्तरङ्ग (जैसे कि बड़े मन्दिरों में होते हैं)

(३३)

गुणविरहित फूलों ने 'भ्रमर भ्रमर' है कलङ्क यह थोपा।
रस-निपुण मालती को पाकर देखें भ्रमर तो, भ्रम ले॥ (२४७)

(३४)

चित-काँटे पै तौलें जग को, फिर जोख नयन-पलड़ों से।
काम करें, उन बनिये-चतुरों की काट कौन कर सकता? (२७७)

(३५)

पञ्चम गाना सुनते, वृष-वाहन देव पूजते निसदिन।
मन-भावन से रमते, जग में है सार इतना ही॥ (२६०)

चन्द्रधर शर्म्मा।

अमृतसर नेशनल कांग्रेस के सभापति, पं० मोतीलाल नहरू।

पं० मोतीलाल नहरू ने पञ्जाब में मारशल-ला से पीड़ित देशवासियों के साथ जो उपकार किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। उन्होंने दुःखित और व्यथित पञ्जाबी भाइयों की तन-मन-धन से सेवा की। जब कि वहाँ बहुत से वकील फँस गये थे, कुछ लोग कर्मचारियों से भयभीत हो रहे थे, इधर-उधर के बैरिस्टरों और वकीलों को लोभ ने आ घेरा था, उसी समय देश की आर्त्त और दीन दशा को दृष्टिगोचर कर पण्डितजी ने इलाहाबाद में अपनी बढ़ी-चढ़ी वकालत की ओर कुछ भी ध्यान न दिया और पञ्जाब में दुःखित भाइयों की सेवा करने को तत्पर हो गये। वहाँ उन्होंने कठिन परिश्रम किया; लोगों की अपीलें तैयार कर प्रीवी-कौन्सिल में दायर करने के लिए भेजीं और श्रीमान् मालवीयजी के साथ घूम घूमकर जनता को सान्त्वना दी और उनकी अनेक प्रकार से सहायता की। देशवासियों ने उनकी सराहनीय सेवा और उपकार के उपलक्ष में उन्हें नेशनल कांग्रेस का सभापति निर्वाचित किया है। पण्डित मोतीलालजी इस अनुपम प्रतिष्ठा के सर्वथा योग्य हैं। भारत इससे अधिक किसीका क्या सम्मान कर सकता है?

पं० मोतीलाल नहरू का जन्म सन् १८६१ ईसवी में हुआ था। दुर्भाग्य-वश उनके पिता का देहान्त चार महीने पहले ही हो गया था। आप देहली में कोतवाल थे। पण्डितजी का पालन-पोषण उनके ज्येष्ठ भ्राता पं० नन्दलाल नहरू ने किया। बारह वर्ष की अवस्था तक उन्होंने घर पर अर्बी और फ़ारसी का अध्ययन किया। तत्पश्चात् उन्होंने गवर्नमेंट स्कूल कानपूर में अँगरेज़ी पढ़ने के लिए प्रवेश किया और वहीं से एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा की प्राप्ति के निमित्त उन्होंने म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद में नाम लिखाया। कालेज के प्रिन्सिपल मि० हैरिसन उनसे विशेष प्रसन्न रहते थे। वह वहाँ चार वर्ष रहे, परन्तु बी० ए० की परीक्षा नहीं दी। फिर इलाहाबाद-हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा में सफलता प्राप्त की और उत्तीर्ण विद्यार्थियों में सबसे श्रेष्ठ पद लाभ किया। क़ानूनी योग्यता का पदक भी उन्हें पारितोषिक रूप में मिला।

उन्होंने कानपूर में वकालत आरम्भ की। तीन वर्ष पश्चात् १८८६ ईसवी में वे हाईकोर्ट में वकालत करने के लिए इलाहाबाद चले आये। उनके ज्येष्ठ भ्राता भी इस-समय हाईकोर्ट में वकालत करते थे और उनकी आय भी अच्छी थी। दुर्भाग्य से आगामि वर्ष उनका स्वर्गवास हो गया। अब पं० मोतीलाल नहरू को केवल अपना सहारा रह गया; इसके अतिरिक्त उनको एक बड़े कुटुम्ब के पालन-पोषण का भी भार सहसा उठाना पड़ा। इसलिए पण्डितजी ने अपने व्यवसाय में कठिन परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने ऐसी योग्यता से कार्य किया कि उनके भाई के सब मुवक्किल उनके पास आने लगे। पाँच ही वर्ष में उनका यश इधर-उधर फैल गया और उनकी आमदनी भी १५००) से २०००) रुपया मासिक तक हो गई। धीरे धीरे वे वकालत में उन्नति करते गये और इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने उन्हें ऐडवोकेट बना दिया।

पण्डितजी के एक पुत्र और दो कन्याएँ हैं। उनके पुत्र पं० जवाहरलाल नहरू केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के ग्रेजुएट और बैरिस्टर हैं। उनकी ज्येष्ठा कन्या ने भी घर पर

गाथा ३३—भ्रम ले = भटक ले, घूम ले।

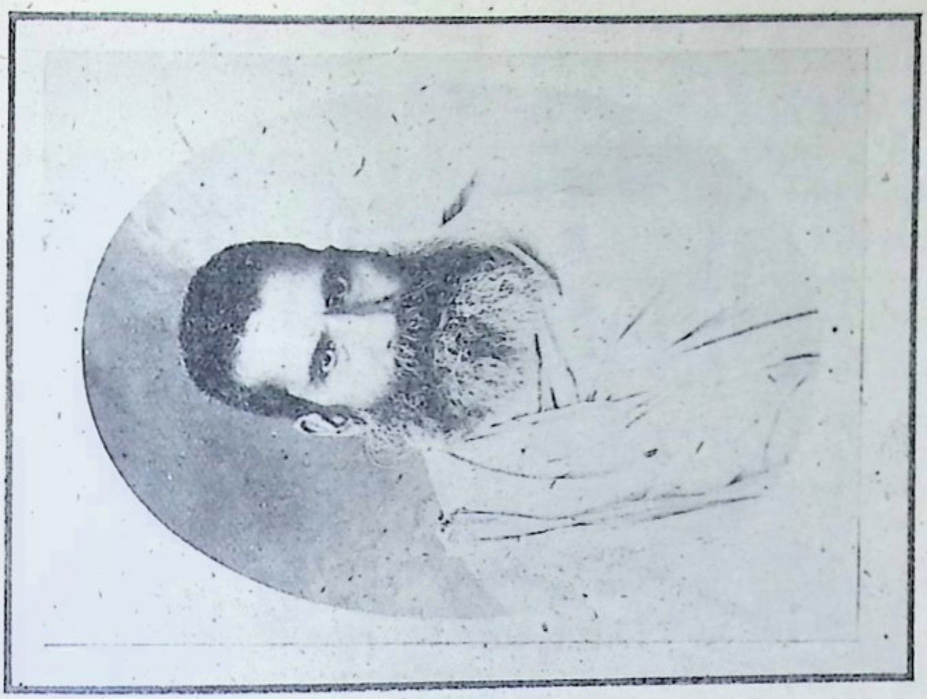

स्वामी श्रद्धानन्द।

पण्डित मोतीलाल नहरू

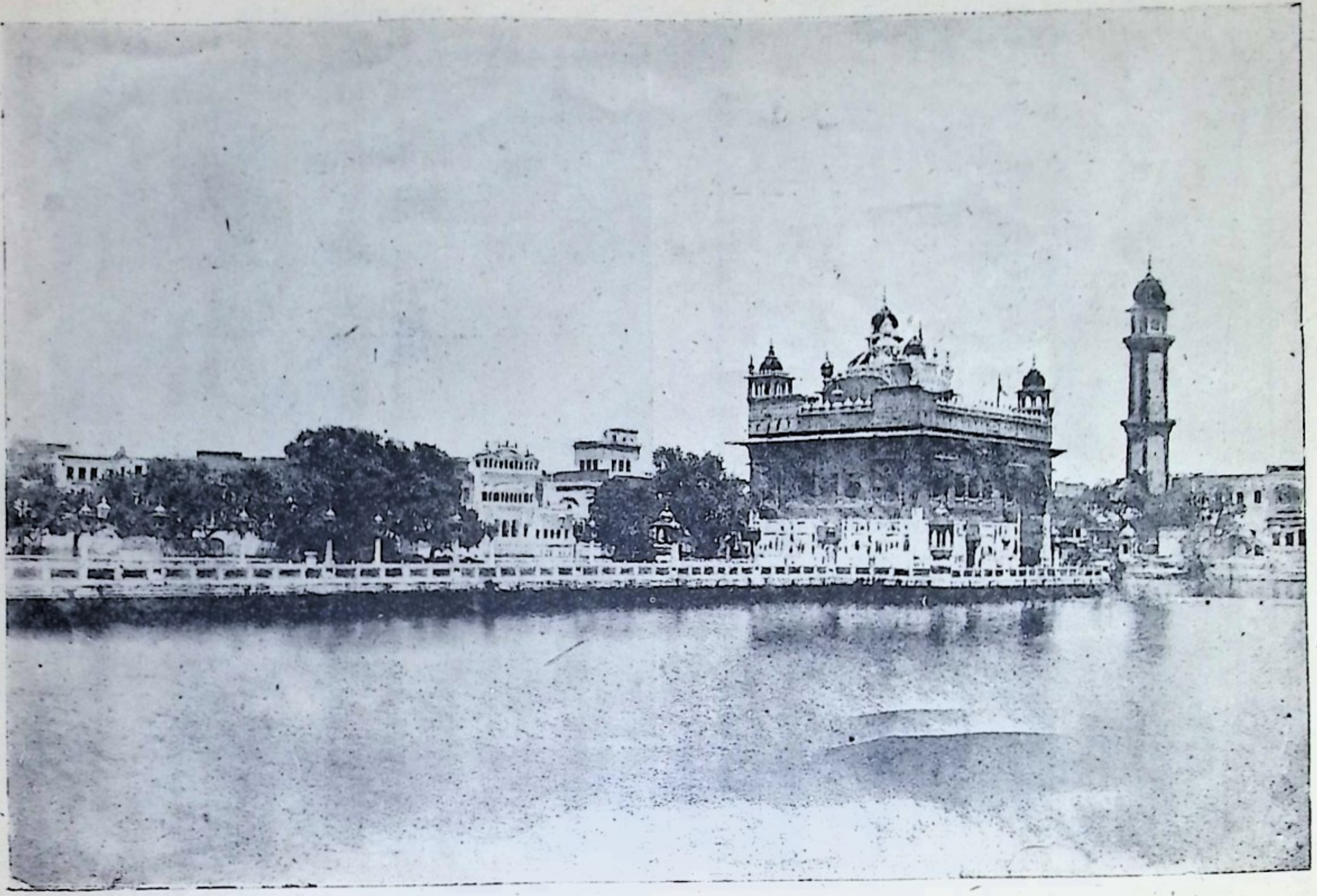

स्वर्ण-मन्दिर का एक और दृश्य।

उच्च कोटि की शिक्षा पाई है। पण्डितजी योरप का कई बार भ्रमण कर चुके हैं।

पण्डितजी को आरम्भ ही से राजनैतिक विषयों में रुचि थी। पहले वे नरम दल से सहानुभूति रखते थे और राजनैतिक क्षेत्र में साधारण ही भाग लेते थे। संयुक्त प्रान्त की प्रथम कान्फरेंस जो १९०७ ईसवी में इलाहाबाद में हुई थी, उसके सभापति पण्डितजी ही चुने गये थे। समय के अनुसार उनकी वक्तृता अच्छी थी। १९०१ से वे आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी के सभासद और लगभग सात वर्ष से संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस कमेटी के सभापति रह चुके हैं। उन्होंने मिन्टो मेमोरियल कमेटी में सेक्रेटरी के पद पर कार्य किया है। आप सेवा-समिति प्रयाग के उप-सभापति, विद्या-मन्दिर हाई स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी सभा और हाईकोर्ट के वकील-असोसियेशन के सभापति हैं। पण्डितजी कुछ समय तक लीडर प्रेस के डाइरेक्टर भी थे और अब इण्डिपेन्डेन्ट प्रेस के डाइरेक्टरों के सभापति हैं। गवर्नमेंट ने बहुधा उन्हें सिलेक्ट कमेटियों में भी नियुक्त किया है। वे संयुक्त प्रान्त के पबलिसिटी बोर्ड के भी मेम्बर रह चुके हैं और उन्होंने गवर्नमेंट की भारत-रक्षा-सेना के सङ्गठन में भी सहायता की थी।

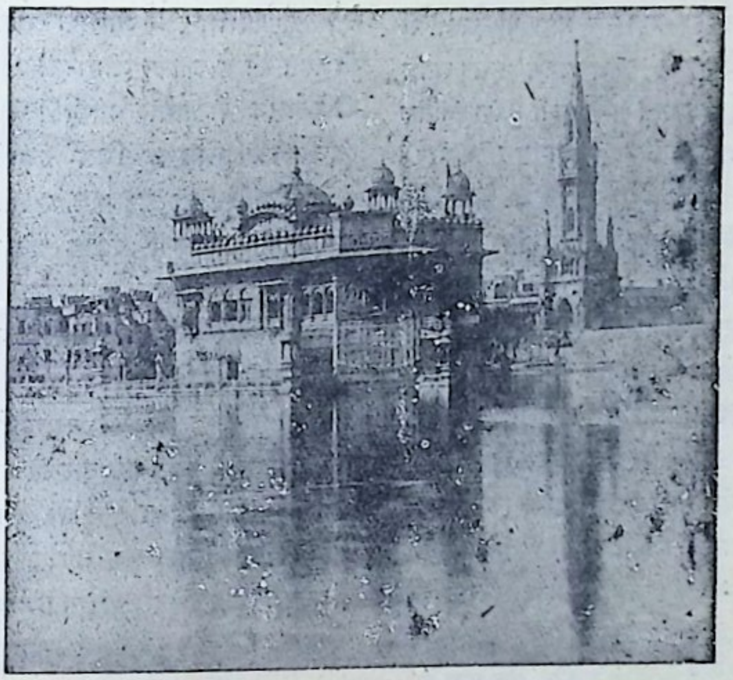

अमृतसर का स्वर्ण-मन्दिर।

हैं। आगरे में प्रान्तीय सामाजिक कान्फरेंस, लखनऊ में विशेष राजनैतिक कान्फरेंस, और समस्त भारतीय पटेल-मैरेज बिल कान्फरेंस में भी पण्डितजी ने ही सभापति का आसन ग्रहण किया था। १९०९ ईसवी से वे संयुक्त प्रान्त के छोटे लाट की कौन्सिल के भी मेम्बर हैं। आप इलाहाबाद म्यूनिसिपैलिटी के भी दो वर्ष तक मेम्बर

यद्यपि १९१५ में जहाँगीराबाद प्रस्ताव का समर्थन करने और मुसलमानों को म्युनिसिपैलिटी में कुछ अधिक स्थान दिये जाने के पक्ष में होने के कारण हिन्दू-जनता उनके कार्य से असन्तुष्ट हो गई थी, तो भी वे अपने विश्वास से विचलित न हुए। आप थोड़े ही दिन पश्चात् फिर जनता के प्रेम-पात्र हो गये।

१९१५ ईसवी तक पण्डितजी ने राजनैतिक प्रश्नों में साधारण भाग लिया; परन्तु देशानुराग की ज्वाला उनमें सदैव विद्यमान रही। १९१६ ईसवी में १६ जून को एक ऐसी घटना हुई जिसने उनकी देश-प्रेम की ज्वाला को और भी प्रज्वलित कर दिया और उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में नवीन उत्साह के साथ कार्य करना आरम्भ कर दिया। यह घटना श्रीमती मिसेज़ बेसेन्ट के राजनैतिक कारागार में भेजे जाने की थी। जब पण्डितजी ने यह दुःखद समाचार सुना तब उनके रोष का वारापार न रहा। एक ओर भारत के उत्थान के लिए मिसेज़ बेसेन्ट का अविरल परिश्रम, तन-मन-धन से देश की सेवा और असाधारण त्याग; दूसरी ओर वृद्धावस्था में भी निरपराध कारागार और कठोर व्यवहार—बस, पण्डितजी से न रहा गया। देश-प्रेम की अग्नि उनमें इस समय भड़क गई। फिर क्या कहना था! पण्डितजी ने राजनैतिक आन्दोलन को खूब ही उत्तेजित किया। श्रीमान् सी० वाई० चिन्तामणि और डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने भी योग दिया और इलाहाबाद, बरन संयुक्त प्रान्त की राजनैतिक स्थिति में एक विशेष नवीन जीवन का सञ्चार हो गया। पण्डितजी ने एक बँगला किराये पर लेकर उसमें होमरूल-लीग खोल दी। सभासदों ने उन्हींको सभापति चुना और सर्वत्र आन्दोलन होने लगा। पण्डितजी ने देश-दशा और जनता के कर्तव्य पर अनेक बार सारगर्भित व्याख्यान दिये। उनकी वक्तृता मनोहर और हृदय-ग्राहिणी होती थी और उनके प्रत्येक शब्द से देशानुराग झलकता था। प्रान्त-भर में प्रबल आन्दोलन होता रहा और देश-दशा पर विचार करने के लिए लखनऊ में एक विशेष कान्फ्रेंस हुई। उसके भी सभापति पण्डितजी बनाये गये और उन्होंने एक बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया।

धीरे धीरे पण्डितजी की सहानुभूति गर्म दलवालों की ओर होने लगी। मान्टेगू-चेम्सफोर्ड-सुधार-स्कीम के प्रकाशित होने पर नर्म दल और गर्म दल में और भी मतभेद बढ़ गया। इस समय संयुक्त प्रान्त में एक ऐसे राष्ट्रीय दैनिक की परम आवश्यकता समझी गई जो जनता के वास्तविक हृदय के उद्गारों और विचारों को प्रकाश कर स्कीम की यथार्थ समालोचना करे। इस अभाव की पूर्ति के लिए पं० मोतीलाल नहरू ने बड़ा प्रयत्न किया। उन्होंने राजा महमूदाबाद और अन्य महाशयों की सहायता से मि० सैयद हुसेन के सम्पादकत्व में "इन्डिपेन्डेन्ट" नाम का अँगरेज़ी दैनिक पत्र निकलवाया।

पं० मोतीलाल नहरू वकालत ही में अग्रसर नहीं, उनके सामाजिक विचार भी बहुत बढ़े हुए हैं। वे देश के उत्थान के लिए जाति-पांति का विचार बहुत कम करते हैं। आडम्बर से तो वे सदा दूर भागते हैं। फ़ैशन में भी वे बहुत बढ़े-चढ़े हैं। उनकी राजसी रहन-सहन इलाहाबाद में प्रसिद्ध है।

पहले पण्डितजी के विचार कैसे ही रहे हों; परन्तु मिसेज़ बेसेन्ट के कारागार में जाने के समय से उन्होंने देश की जो सेवा की है उसका जीता-जागता प्रमाण संयुक्त प्रान्त की वर्तमान राजनैतिक जागृति है। संयुक्त-प्रान्त के छोटे लाट की कौंसिल में जिस स्वाधीनता से उन्होंने अपने कर्तव्य को निभाया वह सब लोगों पर प्रकट है। हाँ, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि वे शान्ति और आपस में समझौते को अधिक पसन्द करते हैं। देहली कांग्रेस में भी फूट को निवारण करने का प्रयत्न उन्होंने किया था। श्रीमान् मालवीयजी को फिर से बड़े लाट की कौंसिल में आग्रह कर भेजना पण्डितजी की राजनीतिज्ञता को प्रकट करता है। नर्म दल और गर्म दल के पक्षपात को छोड़कर यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि पण्डितजी उच्च कोटि के महानुभाव हैं और उनकी निर्भीकता, स्वतन्त्रता, कर्तव्यपरायणता, व्यावहारिक बुद्धि, देशानुराग और अपूर्व त्याग सर्वथा प्रशंसनीय है।

इस वर्ष अमृतसर में पण्डितजी ही नेशनल कांग्रेस के सभापति का आसन सुशोभित कर अमृत-रूपी भाषण करेंगे। ईश्वर करे वे इसी भाँति अविश्रान्त देश-सेवा करते रहें और "जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" को स्मरण रखते हुए जीवन का सुख भोगें।

गुरुनारायण मेहरोत्र (बिलग्रामी), बी० ए०।

घटना-चक्र ।

(१)

बी० ए० फ़ेल और बी० ए० पास लोगों को भी नौकरी मिलने में अनेक कठिनाइयाँ उठाते देख—विशेषकर उन्हें विद्याहीन अतएव अविनयी रईसों की पदधूलि को इसलिए ग्रहण करते देख कर कि वे लाट साहब से सिफ़ारिश कर देंगे—बी० ए० पास करने पर मेरी तबीयत नौकरी से हट गई। सबसे अधिक दुःख मुझे इस बात का था कि मैं अपने प्रिय विषय संस्कृत में फ़ेल था। संस्कृत-प्रोफ़ेसर की चिट्ठी आई; उन्होंने आश्चर्य और दुःख प्रकट करते हुए लिखा कि एक बार तुम्हें और परिश्रम करना चाहिए। पर मेरी तबीयत ने कहा—"खाने के लिए घर में दो मुट्ठी अन्न है, नौकरी की पर्वा नहीं; अब हृदयनाथ, कुछ दिनों इधर-उधर घूम।"

जो लड़के संस्कृत लेकर फ़ेल होते हैं और आगे पढ़ने का विचार नहीं रखते वे प्रायः दो काम करते हैं—(१) हरद्वार-यात्रा और (२) मिसेज़ बिसेंट की गीता का अध्ययन। मैंने एक पद-दलित मार्ग का त्याग करके काशी की यात्रा की।

पिताजी एँट्रेंस के बाद ही आगे पढ़ने के लिए मना करते थे। वे कहते थे, घर का काम-काज देखो, मेरा बुढ़ापा है; ज़मींदारी से परिचय प्राप्त कर लो, आगे पढ़कर क्या करोगे? किन्तु पहले वर्ग में प्रवेशिका परीक्षा पास करके आगे न पढ़ना अनुचित समझकर मैं कालेज चला गया। बी० ए० फ़ेल होकर जब मैं घर आया तब पिता से बढ़कर माता प्रसन्न हुईं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि इस बार माता ने मेरे विवाह का प्रस्ताव न उठाया—फ़ेल हो जाने के कारण मुझे सुस्त देखकर उन्हें कदाचित् भय हुआ कि कहीं यह इस बार अधिक न चिढ़ जाय। पर घर पर मेरी तबीयत न लगती थी। ख़ाली समय में बहुत से उपन्यास पढ़कर "रोमेन्स" (Romance) की धुन दिल में समा गई थी। इसीलिए पिताजी से आज्ञा लेकर मैंने क़ाशी की यात्रा की। माताजी भी साथ चलने के लिए कहने लगीं; पर मैं चाहता था कि इस यात्रा में यथेच्छ विहार करूँ और उपन्यासों में इस विषय के जो वर्णन पढ़े हैं, हो सके तो उनका भी प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करूँ। इसलिए किसी तरह उन्हें समझा-बुझाकर मैं अकेला ही विश्वनाथपुरी की ओर चल दिया।

अवश्य ही मेरे मन में संस्कृत पढ़ने का चाव छिपा हुआ था; किन्तु प्रधान उद्देश सैर-सपाटा ही था।

शाम के समय गाड़ी बनारस के स्टेशन पर पहुँची। जाड़ों की शाम थी, अतएव स्टेशन पर निर्जनता का हल्का-सा रँग चढ़ा हुआ था। मैं अपने कम्बल को उठाकर गाड़ी से उतरा और रेल-बाबू को टिकट देकर पुल पार कर बाहर आया। कालेज के चार वर्षों के वास ने मेरे कपड़ों और उनके कारण मेरे स्वरूप में इतना परिवर्त्तन कर दिया था कि मेरे पास खड़े यात्रियों के नाम-धाम और गोत्र की पड़ताल करनेवाले पण्डों ने मुझे अपने प्रश्नों का लक्ष्य नहीं बनाया।

सूर्य्य अस्त हो चुके थे। पश्चिम-दिशा उन्हें थका-माँदा पाकर लाललाल हो रही थी। मैं भी काफ़ी थका हुआ था, पर मुझे थका हुआ देखकर प्रेम से लाल होनेवाला वहाँ कोई न था। तबीयत ने कहा, "रोमेन्स" का श्रीगणेश यहीं होता है।

मैं एक पेड़ के नीचे बैठ गया और किसी इक्केवाले की प्रतीक्षा करने लगा। शरत्सायङ्काल की मनोहर छटा का मेरे हृदय पर कुछ अधिक प्रभाव न पड़ा, क्योंकि जठराग्नि की तीव्रता उसकी मनोहरता का अपहरण कर रही थी। चौक के पास एक धर्म्मशाला में ठहरने का विचार था, और यह इच्छा थी कि सायङ्काल का पतला-अन्धकार कुछ घना होने पर मैं काशीपुरी में प्रवेश करूँ।

इक्का न मिलने पर मैं पैदल ही काशीपुरी की ओर बढ़ा। जिस सड़क पर मैं जा रहा था उसी पर एक सज्जन जा रहे थे। उनका प्रशस्त ललाट और सौम्य बदन देखकर मेरी उनमें एक तरह की श्रद्धा हुई। वे बड़े ही निश्चिन्त भाव से पदचारण कर रहे थे। उन्होंने मानो मेरे मनोभाव को ताड़कर मुझसे पूछा—मालूम होता है आपका स्थान काशी में नहीं है।

मैंने कहा—जी नहीं। मैं इसी समय यहाँ आया हूँ। मेरा स्थान अजमेर के पास है।

वृद्ध ने बड़े आश्चर्य से कहा—फिर आप इधर कहाँ जा रहे हैं ? यह सड़क तो जङ्गल को जाती है ! काशी में कोई आपके परिचित हैं ?

मैंने कहा—नहीं। कृपया बता दीजिए, मुझे किस सड़क से शहर को जाना चाहिए।

वृद्ध ने मेरा नाम-धाम, शिक्षा और आने का उद्देश पूछकर कहा—यदि आप अनुचित न समझें तो मेरे स्थान पर चले चलिए। वहाँ रहकर आप एक पन्थ दो काज कर सकते हैं। मेरे बच्चों को पढ़ाइए और स्वयं भी शिक्षा प्राप्त कीजिए।

मैंने वृद्ध को सभी बातें ठीक बताई थीं। संस्कृत-शिक्षा प्राप्त करने का विचार भी मैंने उन पर प्रकट कर दिया था। उनके शान्त मुख को देखकर मैं उनसे कुछ भी न छिपा सका। मुझे चुप देखकर वृद्ध बोले—आप यदि मेरे बच्चों को न पढ़ाना चाहें तो भी मेरे यहाँ रह सकते हैं। मुझे बच्चों के लिए शिक्षक की आवश्यकता है; इसलिए मैंने आपसे कहा था। मुझे एक ऐसा शिक्षक चाहिए जो मेरे ही घर पर रहे और मेरी पोती और पोते को मेरे उद्भावित शिक्षा-नियमों के अनुसार शिक्षा दे।

मैंने पूछा—महाशय ने शिक्षा के किन नियमों का उद्भावन किया है ? बहुत सम्भव है, मैं उनके अनुसार काम न कर सकूँ।

वृद्ध ने कहा—वे बड़े सीधे-सादे हैं। मान लीजिए, आप मेरे बच्चे को अँगरेज़ी रीडर पढ़ायँगे, और उसमें एक पाठ लन्दन-नगरी पर है। तब मेरे नियम के अनुसार आप पहले अच्छी तरह उस विषय का अध्ययन करें; फिर उस पर मेरी आपसे बातचीत हो। इस उपाय से मैं देखूँगा कि उस विषय पर आपका अध्ययन पुस्तक से अलग कितना है; तब उस विषय पर जो कुछ मैं जानता हूँ वह आपको बता दूँगा। इसके पश्चात् मैं आपको उस विषय के पढ़ाने की शास्त्रीय रीति बताऊँगा। मेरी आपकी यह बातचीत प्रातःकालीन भ्रमण के समय होगी। आठ से दस तक आप बच्चों को पढ़ायँगे, दस से शाम तक आप स्वतन्त्र हैं। सात बजे सन्ध्या को आध घण्टे तक बच्चों को हिसाब पढ़ाना होगा। रात को सोने से पहले आपको अगले दिन का पाठ स्वयं पढ़ना होगा जिससे दूसरे दिन प्रातःकाल आप मुझसे उस विषय पर बातचीत करने के लिए तैयार हो जायँ। एक वर्ष में दो मास की छुट्टी रहती है। सप्ताह में शनिवार को अवकाश होता है और उस दिन हम सब जल-क्रीड़ा या और कोई विहार करते हैं। छुट्टी के दो महीने आप हमारे साथ पर्वत-यात्रा में काट सकते हैं या जहाँ आपकी इच्छा हो जा सकते हैं। मकान, भोजन, वस्त्र आदि के अतिरिक्त आपको ४०) मासिक वेतन मिलेगा।

वृद्ध ने ये बातें धीरे धीरे इस ढङ्ग से कहीं कि मेरे चित्त पर जम गईं। मैंने मन में कहा—अजीब इत्तफ़ाक़ है, बड़ी अच्छी नौकरी है, वृद्ध का सत्सङ्ग, दिन भर की छुट्टी और खाने-पहिनने से बेफ़िक्री ! विश्वनाथजी की पुरी में प्रवेश करते ही उनके विश्वम्भर होने का परिचय खूब प्राप्त हुआ ! मैंने विनय दिखाते हुए कहा—धन्यवाद। मुझे आपकी नौकरी मञ्ज़ूर है; किन्तु मेरे विषय में आप किससे पूछताछ कीजिएगा ? मेरे सर्टीफ़िकेट भी मेरे पास यहाँ नहीं हैं।

वृद्ध ने अपनी बड़ी, पर शान्त भाव-पूर्ण आँखों को मेरे चेहरे पर जमाते हुए कहा—मैंने तुम्हारे चेहरे से सब पूछताछ कर ली है। तुम मुझसे बातचीत करना चाहते थे; इसीलिए तो मैंने तुमसे कहा था कि तुम्हारा स्थान काशी नहीं है। ३५ वर्ष जासूस-विभाग में नौकरी करके मैं १० वर्ष से काशी-सेवन कर रहा हूँ। मेरे लिए ऐसी बात जान लेना कुछ कठिन नहीं है।

मैं वृद्ध की बात सुनकर चकित रह गया। हम लोग कोई दो मील के क़रीब बाहर निकल आये थे। वृद्ध की बातों और बातों से उत्पन्न हुए आश्चर्य और हर्ष के कारण मुझे कुछ भी थकान प्रतीत नहीं होती थी। तबीयत ख़ुश थी। कुछ दूर पहुँचने पर वृद्ध ने कहा—आइए, यही मेरी कोठी है। शहर से बाहर रहने में बहुत सुख है। बड़े शहरों में सफ़ाई का प्रबन्ध न होने से कोई न कोई रोग सदा ही बना रहता है और फिर यह तो विश्वनाथपुरी है; इसमें जो आ जाता है उसका जी जाने को नहीं करता। यहाँ रोगों के लिए भी यही उत्साह है। यह कहते कहते वृद्ध महाशय अपनी विशाल कोठी के प्रशस्त

सोपानों पर नवयुवकों की तरह खटाखट चढ़ गये। मैं भी साथ था। उन्होंने आवाज़ दी—अन्नपूर्णा !

'जी' की सुकोमल ध्वनि के साथ १३–१४ वर्ष की एक बालिका कोठी के एक कमरे से बाहर निकल आई। वृद्ध ने उससे कहा—बेटी, ये तुम्हारे शिक्षक, हृदय बाबू हैं। इन्हें पश्चिम के कमरे में ठहराओ और चुन्ना कहार से कह दो कि इनके लिए जल आदि का प्रबन्ध कर दे।

अन्नपूर्णा सफ़ेद साड़ी और कोहनी तक कुर्ती पहिने हुए अपने अङ्ग की कान्ति से साड़ी के सफ़ेद रङ्ग का मानो मुक़ाबला कर रही थी। सिर खुला हुआ था। उसने मेरी ओर देखा और कहा—आइए, महाशय ! मैं उसकी बात सुनकर अवाक् रह गया। उसमें नाम को हिचक न थी; पर लज्जा ज़रूर थी। इस बात का पता मुझे उसके आकर्णविस्तृत नेत्रों से ज़रूर मिलता था। वह स्लीपरों से मानो ताल देती हुई आगे आगे चलने लगी। कमरे में पहुँचते ही उसने पूछा—आप मुझे पढ़ाइएगा ? आपने क्या पास किया है ? बालिका की बातों में भोलेपन की मात्रा यथेष्ट थी। मैंने कहा—बी० ए० तक पढ़ा है।

उसने तत्काल कहा—तब यों कहिए कि एफ़० ए० पास किया है।

मैं झेंप गया। उसने 'पास' की बात पूछी थी और मैंने बी० ए० फ़ेल विद्यार्थियों की प्रथा का पालन करते हुए 'पढ़ने तक' की बात कही। अन्नपूर्णा मुझे कमरा दिखाकर चली गई और मैं निश्चिन्त होकर उस साफ़ सुथरे और सादगी से सजे कमरे में लेटकर शुक्लपक्ष की सप्तमी के चन्द्रमा का शरद्विलास देखने लगा।

(२)

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही वृद्ध तैयार होकर मेरे कमरे के द्वार पर आ मौजूद हुए। मैं भी तैयार था। उनके साथ टहलने चल दिया। उन्होंने बातों बातों में कहा—आप मेरे बच्चों के स्वतन्त्र स्वभाव से रुष्ट न हों। वे अविनयी नहीं हैं; किन्तु उन्हें जिस तरह पाला गया है उससे उनके स्वाभाविक उत्कर्ष में बाधा नहीं पड़ी है। वे अपने मन की बात साफ़ कह देते हैं। इन बातों से आप नाराज़ न हूजिएगा।

वृद्ध के साथ घूमकर मैं साढ़े सात बजे कोठी पर लौट आया। वृद्ध अपनी दिनचर्या में लग गये। मैं उनकी कार्य्य-पद्धति और रहने के अमायिक ढङ्ग को देखने लगा।

वृद्ध के पुत्र रमाप्रसाद एम० ए० का देहान्त ३० वर्ष की अवस्था में हैज़े से हो गया था। तभी से वृद्ध काशीवास कर रहे हैं। अन्नपूर्णा और नवीन रमाप्रसाद की सन्तति हैं। वृद्ध ने इन्हें बड़े प्रेम से पाला है। ये ही दोनों उनके जीवन का आश्रय हैं।

आज शनिवार था। भोजनोपरान्त हम सब लोग जङ्गल में चले गये। वहाँ गाना-बजाना हुआ। वृद्ध को गाने बजाने का बड़ा शौक़ है। कण्ठ भी बड़ा कोमल है। उनके गान को सुनकर कोई न समझ सकता था कि ६० वर्ष का बूढ़ा गा रहा है। अन्नपूर्णा ने भी भजन गाये। कैसा कोमल कण्ठ और हृदयस्पर्शी लय थी ! लड़का नवीन हिन्दू कालेज के दूसरे वर्ष का विद्यार्थी था। हम तीनों की एक दौड़ हुई। दो मील की दौड़ थी। मैं थककर रास्ते में बैठ गया। वे लोग जब लौटे तब मैं फिर उनके साथ हो लिया। वृद्ध के पुरुषार्थ को देखकर मैं चकित था। उन्होंने हँसते हुए कहा—हृदय बाबू, अगले मास में आप नहीं थकेंगे।

मैं अन्नपूर्णा को हिन्दी और नवीन को संस्कृत पढ़ाने लगा। पहले दिन मुझे 'भारतीय किसान' पर उसे पाठ पढ़ाना था। रात को मैंने उस पाठ को पढ़ा, मुझे उसमें कोई कठिन बात दिखाई न दी; पर प्रातःकाल को जब बड़े बाबू के साथ टहलने गया और उन्होंने मुझ से प्रश्न करने शुरू किये तब मुझे मालूम हुआ कि 'भारतीय किसान' भी कितना प्रणिधान-योग्य विषय है। बड़े बाबू ने अन्य देशों के किसानों के साथ भारतीय किसान की तुलना की। वृद्ध को भूखण्ड के सभी सभ्य देशों के किसानों का हाल मालूम था। उन्होंने कहा, भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है, इसलिए यहाँ के किसानों की उन्नति से देश की उन्नति होगी। किन किन देशों को भारत कितना कितना अनाज देता है, यह वृद्ध को ज़बानी याद था। अन्य देशों के किसान थोड़ी भूमि में अधिक अनाज पैदा करके कैसे अपनी आर्थिक उन्नति कर रहे हैं—इसका उन्होंने बड़ा अच्छा वर्णन किया।

बाबू का हर विषय में अच्छा अनुभव था। जासूस-विभाग में ऊँचे पद पर काम करने से उनका मनुष्य-स्वभाव-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही बढ़ गया था।

कोठी पर आकर मैंने पाठ पढ़ाना आरम्भ किया। अन्नपूर्णा ने भी उस पाठ को पहले दिन थोड़ा-बहुत पढ़ लिया था। मैंने पुस्तक उठाकर एक तरफ़ रख दी। प्रश्नोत्तर की रीति पर खेती के विषय को सीधी-सादी भाषा में खूब समझाया। अन्नपूर्णा को जहाँ सन्देह होता था वह उँगली उठा देती थी। मैं उस वाक्य की समाप्ति पर रुक जाता था और उसका सन्देह दूर कर देता था। पौन घण्टे तक मूल विषय पर वार्तालाप हुआ; इसके पीछे पुस्तक का पाठ किया गया।

बड़े बाबू की आज्ञा थी कि पढ़ाने में कोई बात चिल्लाकर न कही जाय, धीरे से कही जाय। धीरे से कही बात का प्रभाव सुननेवाले पर अच्छा पड़ता है। चिल्लाकर बात कहने में बात का बहुत सा प्रभाव आवाज़ की कर्कशता में नष्ट हो जाता है। उनका यह भी कहना था कि शिक्षक आप अधिक न बोले, किन्तु शिष्य को ही स्पष्टता से और सम्मानपूर्वक बोलने के लिए उत्तेजित करे। पाठ के बाद अन्नपूर्णा लिखने बैठती थी और मैं उसे मासिकपत्रों के उन लेखों में से जिन पर बड़े बाबू पढ़कर निशान लगा देते थे, कुछ मज़मून बोल देता था। हिसाब के सहज सवाल ज़बानी पूछता था और वह उनको ज़बानी ही हल करती थी। स्लेट का प्रवेश निषिद्ध था। पाठ समाप्त होने पर वह प्रणाम करके चली जाती थी और मैं उसकी बुद्धि, विनय, विचार और भोलेपन की बातों को बैठा बैठा सोचता रहता था।

एक सप्ताह बाद मैंने मकान को पत्र लिखा और अनायास नौकरी पाने का समाचार भी लिखा। यथासमय पिता का पत्र मिला। वे मेरी नियुक्ति पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने लिखा, जब तक चाहो वहाँ रह सकते हो।

पत्र पढ़कर तबीयत का बोझ उतर गया। मुझे डर था कि पिता कहीं घर पहुँचने की आज्ञा न लिख भेजें।

(३)

छः महीने बीत गये।

नवीन मुझसे संस्कृत पढ़ता था; पर सच यह है कि मैं ही उससे संस्कृत पढ़ता था। वह मुझसे तन्न तन्न करके हर एक बात पूछता था और मुझे उसको जवाब देने के लिए तैयार होना पड़ता था। तैयारी के लिए मुझे विशेष अध्ययन करना पड़ता था। मेरे पढ़ाने से नवीन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी प्रसन्नता बड़े बाबूजी पर भी प्रकट कर दी। एक दिन टहलते हुए उन्होंने मुझ से कहा—हृदय बाबू, आपका पढ़ाने का ढङ्ग बहुत अच्छा है। इस बार नवीन संस्कृत में सर्व-प्रथम हुआ। वह कहता है कि यह आपके ही पढ़ाने का फल है।

मैंने नम्रता दिखाते हुए कहा—नवीन बाबू की बुद्धि बड़ी पैनी है, वे विषय को खूब समझते हैं और परिश्रम करते हैं। मैं तो स्वयं बी० ए० की परीक्षा में संस्कृत में फ़ेल हुआ हूँ!

बड़े बाबू ने कहा - इस बात को न कहिए। अधिक रोशनी भी आँखों को अन्धा कर देती है; बड़ी आवाज़ भी कानों को नहीं सुनाई देती। इसी तरह बहुत तेज़ लड़के भी कभी अपनी तेज़ी से फेल हो जाते हैं। अगले वर्ष से आप भी हिन्दू कालेज में भरती हो जाइए और बी० ए० की परीक्षा दे डालिए।

मैंने कहा, नवीन बाबू भी उस दिन यही कहते थे; आप लोगों की यही आज्ञा होगी तो मैं कालेज में फिर पढ़ने लगूँगा।

दूसरे दिन अन्नपूर्णा ने पूछा—आप भी हिन्दू कालेज में भरती हूजिएगा?

मैंने कहा—हाँ।

उसने कहा—बहुत अच्छी बात है। फिर तो आप को बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। देखिए, अधिक परिश्रम करने से स्वास्थ्य ख़राब न हो जाय।

यह सुनकर मैंने उसकी ओर देखा। उस समय उसके इन्दुसम उज्ज्वल मुख पर ज़रा भी बनावटी भाव न था। वह सरलता से हँस रही थी। मेरे आश्चर्य को देखकर उसने कहा—बाबूजी, हमें रात को पढ़ने नहीं देते, वे कहते हैं कि रात में पढ़ने से नेत्रों में विकार उत्पन्न हो जाता है। दस बजे के बाद कमरों में रोशनी बुझा दी जाती है।

मैंने कहा—ठीक है।

(४)

और एक वर्ष बीत गया। अन्नपूर्णा का वह सरल भाव अब कम होने लगा है। यौवन के आरम्भ से उसमें सरलता का स्थान सङ्कोच ग्रहण कर रहा है। उसका रूप दिन दिन उज्ज्वल हो रहा है। पहले की तरह वह अब मुझसे खुलकर बातें नहीं करती है। मुझे भी उससे बात करने का साहस नहीं होता।

मुझे उससे अवश्य प्रेम हो गया है। पर क्या स्वर्ग का वह फूल कभी मेरा हो सकता है? इसे दुराशा समझकर ही अब तक मैंने अपने तरुण हृदय को प्रेम के मृदु-स्पर्श से उत्पन्न हुए घात-प्रतिघातों से दूर रक्खा है। एक सद्गृहस्थ के घर में जहाँ मैं इतने सुख से रहता था, प्राकृतिक होने पर भी प्रेम का यह प्रवेश मुझे बहुत अनुचित मालूम होता था। इसीलिए मेरा चित्त अस्वस्थ रहता था। एक दिन अन्नपूर्णा ने पूछा—आपका शरीर अच्छा तो है?

मैंने कहा—अच्छा है, अब मैं घर जाना चाहता हूँ। आप लोगों के साथ रहकर मेरा समय बहुत अच्छी तरह कटा; किन्तु पिता नहीं चाहते कि मैं अधिक दिनों बाहर रहूँ।

मेरी बात सुनकर अन्नपूर्णा का चेहरा उतर गया। उसके उज्ज्वल सुन्दर मुख पर भावों का उदय-अस्त स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। मैंने अवश्य बात बनाकर कही थी। पिताजी ने मुझे वहाँ से आने के लिए नहीं लिखा था।

अनपूर्णा ने सूखे मुँह से कहा—आपको यहाँ कुछ कष्ट है? इस बार हमारे साथ नैनीताल न जाइएगा? बाबूजी एक सप्ताह बाद नैनीताल जायँगे। अबकी बार गवर्नमेंट-हाउस के पास किराये की कोठी ली है और वह साफ़ हो गई है। पिताजी को लिख दीजिए कि हम यहाँ अच्छी तरह हैं।

मैंने मन में कहा—अब बहुत दिनों तक मैं हृदय की परीक्षा नहीं कर सकता। पिछली बार नैनीताल-यात्रा में अन्नपूर्णा के साथ 'चाइनापीक' की यात्रा को मैं उम्र-भर नहीं भूलूँगा। पर अब उसके साथ रहने को मेरा साहस नहीं होता; उसके शरीर की आभा से अब मुझे आनन्द नहीं, भय होता है। जिस परिवार में मैं घर की तरह रहा हूँ, जिन देवसम मनुष्यों में मेरी मानसिक उन्नति हुई है, उनके साथ मैं वञ्चना नहीं करूँगा, उनके साथ धोखा नहीं करूँगा। अन्नपूर्णा से प्रेम करने का मुझे अधिकार नहीं; पर यहाँ से चले जाने का मुझे पूरा अधिकार है। पर प्रेम का अबाध प्रवेश अन्नपूर्णा के सुकोमल मानस-क्षेत्र में हो चुका था—यह बात मुझे मालूम थी; पर आज उसके उतरे हुए चेहरे को देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने बात टालने के लिए कहा—तुम्हारे यहाँ मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है, इतना सुख तो मुझे अब तक कभी और कहीं प्राप्त नहीं हुआ। पर पिताजी वृद्ध हैं, उनकी आज्ञा है कि तुम मेरे पास रहो; फिर भी मैं उन्हें लिखूँगा।

मेरे यह कहतेही मैंने उस दिन का समाचार-पत्र सामने कर लिया। अवश्य ही मेरे नेत्र मेरे रुँधे हुए गले की तरह मेरे हृदय की दुर्बलता का परिचय दोनों ही चाहते थे।

अन्नपूर्णा उठ गई। बाबू साहब गमलों का निरीक्षण कर रहे थे। अन्नपूर्णा उनके पास जाकर फूलों से मन बहलाने लगी।

उसी रात्रि को अन्नपूर्णा को ज्वर हो गया। डाक्टर ने कहा, ज्वर मियादी है। परिचर्या में कुछ कसर न थी। मेरा जी चाहता था कि दिन-रात उसके पलङ्ग के पास बैठा रहूँ; पर बाबूजी की तीक्ष्ण दृष्टि के भय से मैं बिना बुलाये न जाता था। बाबूजी को मेरे हृदय का भाव न मालूम हो जाय, इस बात की मैं सदा चेष्टा करता था। मैं अन्नपूर्णा की मानसिक अर्चना करता था, अपनी पूजा का भाव किसी तरह भी प्रकट न होने देता था। उसकी बीमारी देखकर मेरा हृदय बैठा जाता था। बाबूजी की आज्ञा से मैं रात को चार घंटे उसकी देख-भाल करता था। दिन में भी मैं उसके पास दो-तीन घण्टे बैठता था। बूढ़े बाबू रात-भर जागते थे। अब ज्वर का स्वरूप दिन दिन भयङ्कर होने लगा। हम सब लोग बारी बारी से उसकी शुश्रूषा करते थे। नवीन की माँ को भी दूसरे दिन ज्वर हो गया। बूढ़े बाबू को इतना चिन्तित मैंने कभी नहीं देखा था।

दूसरे दिन सिविल सर्जन ने कहा—लड़की को पहाड़ ले जाइए; बनारस की गर्मी में उसका अधिक रहना अच्छा नहीं।

उसी रात को मैं और नवीन अन्नपूर्णा को लेकर नैनीताल के लिए चल दिये। कोठी पहले से ही तैयार थी। वहां जाने के बाद ही उसे आराम होना शुरू हो गया। फिर वह हमारे साथ थोड़ी दूर तक टहलने लगी। मैं उसे देखकर अत्यन्त चञ्चल हो जाता था। उसने एक दिन क्षीण स्वर में कहा—हृदय बाबू, मेरी बीमारी के कारण आपका घर जाना रुक गया।

मैंने कहा—वहां जाने की अब ऐसी ज़रूरत नहीं। पिताजी ने मुझे यहां कुछ दिनों और रहने की अनुमति देदी है।

उसके दुबले चेहरे पर ख़ुशी की रेखा झलक गई। उसने कहा—मेरी बीमारी ने अच्छा काम किया!

मैंने कहा—मुझे घर नहीं जाने दिया।

उसने मुस्कुराकर कहा—हां, और आपका स्वास्थ्य भी अच्छा कर दिया।

इसी समय नवीन ने हांपते हुए आकर कहा—You stood first in the B. A. Examination, here is Babuji's telegram. बधाई! बधाई!! यह समाचार सुनकर मैं हर्ष-विह्वल हो गया और अन्नपूर्णा—उसका कुम्हलाया हुआ मुख तो हर्ष के कारण दमकने लगा और नेत्रों से आनन्द के आंसू बहने लगे। उसने भी उत्तेजनापूर्ण स्वर में कहा—बधाई!

(५)

तीसरे दिन गज़ट में परीक्षा-फल आ गया। नवीन की माता का स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया था। बड़े बाबूजी के साथ वे भी नैनीताल में आ गई थीं। मेरे पास होने की सबने ख़ुशी मनाई।

दूसरे दिन बड़े बाबू छोटे लाट से भेट कराने के लिए मुझे अपने साथ ले गये। भारत-सरकार में बाबूजी का बड़ा मान था। छोटे लाट भी उनसे किसी किसी मामले में परामर्श करते थे। बड़े बाबूजी को उनके पास जाने का अबाध अधिकार था। मेरा परिचय सुनकर लाट साहब बहुत प्रसन्न हुए और मुझसे हाथ मिलाया। मुझे यथासमय डिप्टीकलक्टर बनाने की भी उन्होंने स्वयं ही इच्छा प्रकट की। बाबू जी और मैंने उनका धन्यवाद किया।

बी० ए० में प्रथम होने और डिप्टीकलक्टर हो जाने के समाचार से बढ़कर मुझे पिताजी के उस पत्र को पढ़कर आश्चर्य हुआ जो उन्होंने मेरे अन्तिम पत्र के उत्तर में लिखा था। वह पत्र यह है—

बेटा हृदय,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। तुम्हारे पास होने और डिप्टी-कलक्टरी में नामज़द होने की बात सुनकर यत्परोनास्ति हर्ष हुआ।

आज तुम्हें एक बात लिखता हूँ। बाबू राधिकाप्रसादजी (मतलब है बड़े बाबूजी से) तुम्हें मुझसे मांगते हैं। जानते हो किस लिए? अन्नपूर्णा को पढ़ाने के लिए नहीं, उसको तुम्हें देने के लिए—उसके साथ तुम्हारा विवाह करने के लिए। बाबूजी के लिखने से और तहक़ीक़ात करने से यह भी मालूम हुआ है कि उनसे हमारा पुराना सम्बन्ध भी है; किन्तु वे चिरकाल तक बम्बई प्रान्त में रहे हैं और अपने एक-मात्र पुत्र की मृत्यु के बाद उसके दोनों बच्चों और विधवा स्त्री को लेकर काशीवास कर रहे हैं, इससे उन्हें इधर बहुत कम लोग जानते हैं। उनके पास रहकर तुम्हारा असीम उपकार हुआ है और लड़की की तुम स्वयं बहुत तारीफ़ करते हो; इसलिए मुझे इस सम्बन्ध को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं मालूम होती। अब तुम शीघ्र मकान चले आओ। अगले मास की १५ तारीख़ को तुम्हारा विवाह है।

जब से तुम्हारी माता ने तुम्हारे पास होने का समाचार सुना है वह ख़ुशी के मारे बावली हो रही है। मैंने उसे तुम्हारे विवाह का समाचार अभी नहीं सुनाया है। वह कमज़ोर है, कहीं हर्ष के समाचार उसे सचमुच पागल न कर दें। इस पत्र के उत्तर के बदले तुम स्वयं ही मेरे पास पहुँचना।

आशीर्वादक,
रामनाथ।

(६)

विवाह के बाद अन्नपूर्णा को लेकर जिस ट्रेन से मैं बनारस से चला था, वह भी शाम को ७ बजे वहां से चलती थी। वह ग्रीष्मकाल की सन्ध्या थी। दिन-भर की गर्मी के बाद शाम का सुहावना समय सन्तप्त प्रकृति को सान्त्वना दे रहा था। मुझे वह दिन याद आ गया जिस

दिन मैं एक कम्बल लेकर बनारस स्टेशन पर उतरा था। शरत्सायङ्काल और ग्रीष्म की सन्ध्या में जितना भेद है उससे कहीं अधिक आज मेरी अवस्था में भेद था। उस दिन मैं एक साधारण मुसाफ़िर था और आज बरात का अधिपति और अमूल्य स्त्रीरत्न अन्नपूर्णा का हृदय! अपने "रोमेन्स" की धुन से उत्पन्न हुई उस यात्रा का स्मरण करता हुआ मैं पहले से ही रिज़र्व किये फ़र्स्ट क्लास के कमरे में घुसा।

× × × ×

पिताजी की मृत्यु के बाद उनकी ख़ास सन्दूक में एक ज़रूरी काग़ज़ को ढूँढ़ते हुए एक चिट्ठी मिली जिसे बनारस से बाबूजी ने भेजा था। उसे पढ़कर मेरा "रोमेन्स" का गर्व काफ़ूर हो गया। उसमें लिखा था—

प्रिय पण्डितजी,

यदि हृदयनाथ बनारस आना चाहते हैं तो आने दीजिए। जिस ट्रेन से वह चलें उसकी सूचना ज़रूरी तार से मुझे दे दीजिए। मैं उन्हें स्टेशन पर पा लूँगा; वह यह न समझ सकेंगे कि मैं उनकी तलाश में हूँ। आजही मैंने अपने यहाँ के अध्यापक को बर्ख़ास्त किया है। मेरी बातों में आ गये तो उन्हींसे अपने बच्चों को पढ़वाऊँगा; यहाँ रहकर उनका मन बहुत जल्द पढ़ने में लग जायगा। आप निश्चिन्त रहें, यह रहस्य उनकी माता को भी मालूम न हो। स्त्रियों का कोमल हृदय अपनी सन्तान से किसी तरह के रहस्य की रक्षा नहीं कर सकता।

उनसे विवाह की इस समय बात चलानी आपकी तरह मुझे भी किसी तरह ठीक मालूम नहीं होती। अभी कुछ दिनों तक इस विषय में चुप रहना ही ठीक है, ख़ास कर जब कि वह ख़ुद इधर आ रहे हैं।

इस सप्ताह में कहीं न जाऊँगा।

भवदीय
राधिकाप्रसाद।

जिस काग़ज़ की तलाश में मैं व्यस्त था उसका मुझे घण्टों ध्यान न आया, बैठा बैठा इस पत्र को पढ़ता रहा। पिछली सब घटनायें जो 'रोमेन्स' के काल्पनिक सूत्र में गुथी हुई थीं, बिखर गईं और फिर उनमें मनुष्य की हित से भरी बुद्धि का मज़बूत और बारीक़ डोरा पुर गया। जिसे मैं सिर्फ़ 'घटना-चक्र' समझता था, अब मालूम हुआ उसमें पूज्य पिताजी के बुद्धि-कौशल से भरे आशीर्वाद का भी बहुत हिस्सा था—यह सोच कर कृतज्ञता और लज्जा दोनों तरह के भावों का मेरे हृदय में एक साथ उदय हुआ।

ज्वालादत्त शर्म्मा।

आत्मा।

मनुष्य में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् नाक, कान, नेत्र, जिह्वा और त्वक् हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँचों के धर्म हैं, अर्थात् नाक का काम सूँघना, कान का सुनना, नेत्र का देखना, जिह्वा का स्वाद लेना और त्वक् का स्पर्श करना यानी छूना। इसी तरह पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी हैं अर्थात् हाथ, पैर, अपान, उपस्थ और वाणी। काम करना, चलना, मल त्याग करना, मूत्र विसर्जन करना, और बोलना इनके काम हैं। इन दस इन्द्रियों के सिवा एक ग्यारहवीं इन्द्रिय और है जो मनुष्य के भीतर है और बाहर से दिखाई नहीं देती। इसे इसी कारण अन्तःकरण कहते हैं, यानी भीतर की इन्द्रिय। इसके चार भेद हैं, अर्थात् मन, चित्त, अहङ्कार और बुद्धि। सङ्कल्प-विकल्प करना मन का काम है; अच्छे-बुरे भाव जिन्हें वृत्तियाँ कहते हैं, उत्पन्न करना चित्त का काम है; किसी वस्तु में ममता उत्पन्न करना अहङ्कार का काम है, यानी अहङ्कार के द्वारा मनुष्य कहता है कि यह वस्तु मेरी है, यह स्त्री, पुत्र मेरे हैं, इत्यादि। किसी वस्तु का निश्चय करना, यानी अन्धकार में किसी वृक्ष की सूखी पीठ देखकर निश्चय करना कि यह मनुष्य नहीं है, पीठ है, यह काम बुद्धि का है। बुद्धि से ही विवेक और ज्ञान उत्पन्न होता है। जीवों की अनेक योनियों में मनुष्य की श्रेष्ठता बुद्धि की उत्कृष्टता के कारण ही है। इन चीज़ों के सिवा मनुष्य में प्राण हैं जिससे वह साँस लेता है। प्राण-वायु पाँच प्रकार की है।

इन सब चीज़ों के समूह को अर्थात् पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, पाँचों प्राण, मन (चित्त-सहित), बुद्धि (अहङ्कार-सहित) के समूह को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि जैसे स्थूल-शरीर में ये सब चीज़ें हैं वैसे ही स्थूल शरीर के भीतर एक छोटा शरीर है जो इनका बनाया हुआ है। जब मनुष्य सोता है तब उसकी बाहर की दसों इन्द्रियाँ अपना अपना काम बन्द कर देती हैं। तथापि स्वप्न में यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि वह बाहरी इन्द्रियों के योग के बिना ही सब काम करता है। स्वप्नावस्था में मनुष्य देखता भी है, सुनता भी है, सूँघता भी है, चलता, फिरता भी है अर्थात् दसों इन्द्रियों के जो जो काम हैं वह सभी करता है। यह सब सूक्ष्म शरीर के द्वारा ही होता है। यदि सूक्ष्म शरीर न होता तो ये काम नहीं हो सकते थे।

इसी सूक्ष्म शरीर को वेदान्ती और सांख्य-मतवाले जीव कहते हैं। तो क्या यही सूक्ष्म शरीर आत्मा है? नहीं। आत्मा इससे परे है। पर सूक्ष्म शरीर का आधार आत्मा पर ही है। यदि आत्मा न हो तो सूक्ष्म शरीर कुछ काम नहीं कर सकता। जैसे सूक्ष्म शरीर के बिना स्थूल शरीर कुछ काम नहीं कर सकता, वैसे ही आत्मा के बिना सूक्ष्म शरीर भी कोई काम नहीं कर सकता। कल्पना कीजिए कि एक लकड़ी या टीन धातु का ऐसा खिलौना बना है जिसके नाक, कान, नेत्र, मुँह, शरीर आदि सभी हैं। ये अवयव खिलौने के शरीर में इस प्रकार लगाये गये हैं कि यदि उसकी चाबी भर दी जाय तो वे सब हिलने लगते हैं, और अपना अपना काम वैसे-ही करने लगते हैं जैसे मनुष्य के शरीर के अवयव। जब तक चाबी से भरी हुई शक्ति खिलौने के भीतर रहती है तब तक उसकी कृत्रिम इन्द्रियाँ बराबर काम करती हैं। जब वह शक्ति जाती रहती है तब इनमें से कोई भी इन्द्रिय कुछ काम नहीं करती। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की शक्ति का मूलाधार आत्मा ही है। आत्मा में न स्थूल इन्द्रियाँ हैं न सूक्ष्म इन्द्रियाँ, न मन है न बुद्धि है। वह सर्वाकार-रहित अन्तिम चेतन-शक्ति है जो सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों को चलाती है। यदि यह चेतन-शक्ति अन्तर्हित हो जाय तो न स्थूल शरीर और न सूक्ष्म शरीर ही काम कर सकते हैं। यह चेतन-शक्ति सूक्ष्म शरीर में सदैव रहती है, उससे पृथक् नहीं होती। परन्तु मनुष्य की मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर इस शक्ति को लिये हुए पृथक् हो जाता है। इसी दशान्तर का नाम मृत्यु है। यही सूक्ष्म शरीर फिर दूसरे जन्म धारण करता है। जिस समय सूक्ष्म शरीर इस शक्ति से पृथक् हो जाता है उस समय मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। सूक्ष्म शरीर के छूटने का नाम ही मुक्ति है। अब इस आलोचना से यह सिद्ध हुआ कि जिसको आत्मा कहते हैं वह न तो किसी इन्द्रिय का धर्म है, न प्राण, न मन, न बुद्धि है, बल्कि इन सबको अपने अपने कार्य में चलानेवाली अन्तिम चेतन-शक्ति है। यही भगवद्गीता में कहा है—

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥

इस आत्मा के रूप के विषय में यही कहा जा सकता है कि वह सत्यज्ञान-अनन्तरूप है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी आत्मा के विषय में कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

इन श्लोकों का भावार्थ यह है—

आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न होकर नाश को प्राप्त होता है और न उसका जन्म होता है। वह अजन्मा, नित्य सदैव रहनेवाला और सनातन है। शरीर नाशवान् है। आत्मा अविनाशी है।

इसको न शस्त्र छेद सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है, न वायु सुखा सकती है। वह न कट सकता है, न जल सकता है, न भीग सकता है, न सूख सकता है; वह नित्य सर्वव्यापी, अचल, सनातन और अनन्तस्थितिवाला है।

कर्म।

संसार में रहता हुआ मनुष्य जो कुछ कर्म करता है उसका फल अवश्य होता है। पर फल तत्काल ही नहीं हो सकता। कर्म के करने से जीव में संस्कार हो जाते हैं और समयानुसार इन संस्कारों से फल उत्पन्न होता रहता है। इन संस्कारों का होना और इनके फलों का भोगना ही बन्धन है, जिसके कारण जीव को बार बार जन्म लेना पड़ता है। क्योंकि एक जन्म इन कर्म-फलों को भोगने के लिए पर्याप्त नहीं है। कर्म बराबर होते रहते हैं, इनका चक्र कभी बन्द नहीं होता। पहले किये हुए कर्मों का फल-भोग समाप्त नहीं होने पाता कि नये कर्म और हो जाते हैं। इस प्रकार कर्म-फलों के ऋण का भार बढ़ता ही जाता है और जीव को अपना पहला ऋण विशेषतः एक जन्म में चुकाने का अवसर नहीं मिलता। इसलिए उसे बार बार जन्म अनेक योनियों में लेना पड़ता है। और जब तक सब कर्म परमात्मा की कृपा तथा योगबल या पूर्ण ज्ञान-विकास से दग्ध नहीं हो जाते तब तक उसका मोक्ष नहीं होता।

आवागमन।

कर्म-बन्धन से बँधकर जीव के बार बार जन्म लेने को आवागमन कहते हैं। शास्त्रकारों ने लिखा है कि चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन सबमें जीव को अपने कर्मानुसार जाना पड़ता है। आवागमन का सिद्धान्त संसार में बड़ा प्राचीन और माननीय है। प्राचीनकाल में यूनान, रोम, मिस्रादि देश-निवासी तथा ईसाई भी इसको मानते थे और बाइबिल आदि में इसके प्रमाण भी मिलते हैं। परन्तु करीब पिछले तीन सौ वर्ष से नवीन ईसाई इसको नहीं मानते और न मुसलमान ही मानते हैं। इस समय भी संसार के बड़े बड़े विद्वान्—वे किसी मत के क्यों न हों—इस सिद्धान्त के क़ायल हैं, क्योंकि इसके बिना संसार में विद्यमान दुःख, सुख तथा मनुष्य की दशा-परिवर्तन का और कोई सन्तोषदायक उत्तर नहीं हो सकता।

गीता में आवागमन के विषय में यह कहा है—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
> नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
> न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर नये वस्त्र पहनता है वैसेही जीव पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीर धारण करता है।

आत्मा का रूप सत्यज्ञानानन्त कहा है। ऐसी दशा में वह सुख-दुःख दोनों से परे है और न उसका किसी कारण से बन्ध ही होता है और न वह आवागमन के चक्र में ही है। दुःख, सुख और आवागमनादि सूक्ष्म शरीर को ही होते हैं जो चैतन्य के आधार पर स्थित हैं और इसका आभास जीव का काम देता है। यह मत वेदान्त और सांख्य-शास्त्रों का है; परन्तु न्याय और वैशेषिक शास्त्र जिन्होंने सूक्ष्म शरीर की पृथक् विवेचना नहीं की है, आत्मा अथवा जीव के ये लक्षण लिखते हैं—

> इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।
> (न्यायदर्शन)

इच्छा करना, द्वेष करना, यत्न करना, सुख, दुःख का अनुभव करना, और ज्ञान प्राप्त करना।

> प्राणयाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकारः
> सुखदुःखेच्छाद्वेषो प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गानि।
> (वैशेषिक-दर्शन)

प्राण (साँस बाहर निकालना), यान (साँस

भीतर खींचना), नेत्रों को खोलना, बन्द करना, मन, गति, (चलना फिरना) इन्द्रियों का अन्तर-विकार (क्षुधादि), सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ये सब लक्षण जीव के हैं ।

ये लक्षण सांख्य, वेदान्त-मतानुसार सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर में मिलते हैं; इसलिए इन्हें पृथक् नहीं समझना चाहिए । आवागमनादि-दृष्टि से दोनों बातें एक ही हैं; केवल लिखने का भेद है ।

आत्मा एक है या अनेक हैं ?

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और पूर्वमीमांसा-दर्शनों की दृष्टि से जीव अनेक हैं । जितने प्राणी हैं उतने ही जीव हैं ।

सांख्य-शास्त्रवाले, जीव को पुरुष के नाम से पुकारते हैं । केवल वेदान्त-दर्शन का ही कथन है कि आत्मा एक है; सूक्ष्म शरीर—जिन पर आत्मा का चिदाभास है—अनेक हैं और ये ही आवागमन के चक्र में हैं । जैसे आकाश एक है और घटाकाश, महाकाश, जलाकाश, मेघाकाश—एक ही आकाश की उपाधियों के कारण पृथक् पृथक् दिखाई देता है वैसे ही आत्मा एक है ; पृथक् पृथक् सूक्ष्म शरीरों के अर्थात् उपाधियों के कारण वह पृथक् पृथक् दिखाई देता है । गीता में कहा है—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥

उसके भाग नहीं हो सकते, तथापि सब प्राणियों में पृथक् पृथक् स्थित है । उसे सब प्राणियों का भर्ता जानो । वही खाता है, वही उत्पन्न करता है । जब ज्ञानादि वेदान्त-निर्दिष्ट साधनों से उपाधियों का लोप हो जाता है तब एक आत्मा ही रह जाता है ।

जैसे सूर्य एक है और बादलों के आने से छिप जाता है, वैसे ही उपाधियों के आवरण से आत्मा का प्रकाश मलीन हो गया मालूम होता है । वास्तव में न तो सूर्य के ही स्वाभाविक प्रकाश में अन्तर आता है और न आत्मा के प्रकाश में ही । वास्तव में आत्मा एक ही है और वही आत्मा परमात्मा है । इस प्रकार दोनों में कोई भेद नहीं है; परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से आत्मायें पृथक् पृथक् दिखाई देती हैं । जब तक सूक्ष्म शरीर है और प्रत्येक सूक्ष्म शरीर अपने अपने कर्म-बन्धनों से आवागमन में पड़ा रहता है तब तक इन दोनों को पृथक् पृथक् कहना ही ठीक मालूम होता है ।

कन्नोमल ।

क्लाइव की आत्म-हत्या ।

क्लाइव को १७६५ ई० में एक बार पुनः भारत आने का अवसर प्राप्त हुआ । इस बार आकर उसने देखा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कामों में बड़ी गड़बड़ी फैली हुई है और शासकों की असावधानी के कारण देश में यत्किञ्चित् अंश में अराजकता और उद्दण्डता का भी प्रचार बढ़ रहा है । इसलिए उसने आतेही राजकीय-प्रबन्ध में परिवर्त्तन करना शुरू कर दिया । कम्पनी के नौकरों में घूस लेने, छिपकर अपने अपने नाम से व्यापार करने और लड़ाई के समय भत्ता के लिए सिर पीटने की चाट बेतरह पड़ गई थी । क्लाइव का पहला काम इनको ऐसा करने से रोकना और बदले में यथोचित वेतन बढ़ा देना हुआ । इससे लालची नौकरों में बड़ा असन्तोष फैला, किन्तु क्लाइव ने इस ओर रत्तीभर भी ध्यान नहीं दिया । इसके बाद क्लाइव ने दूसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण काम डबल गवर्नमेण्ट का किया । अधीनस्थ प्रान्तों का शासन-भार उसने कुछ तो कम्पनी के हाथ में और कुछ देशी नवाब के हाथ में रक्खा । कम्पनी का काम कर उगाहना, नौकरों को तनख़ाह देना, बादशाह के पास कर पहुँचाना, देश-रक्षा के लिए सेना का प्रबन्ध तथा बचे हुए

ख़ज़ाने की निगरानी करना, एवं नवाब का काम दीवानी, फ़ौजदारी और पुलिस का इन्तज़ाम रखना निर्धारित हुआ। यहाँ तक तो प्रबन्ध से किसी तरह की हानि नहीं देखी गई। लेकिन चालाक क्लाइव इतना ही करके आसूदा नहीं हुआ। उसने सोचा कि इस प्रकार लोगों के मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अतएव बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ उसने दीवानी, फ़ौजदारी और मालगुज़ारी वसूल करने का काम नवाब के कर्मचारी रज़ाख़ाँ और शिताबराय को दे डाला। लेकिन—ईश्वर की इच्छा—उसकी चालाकी में बट्टा लग गया। इधर क्लाइव यह प्रबन्ध कर भारत से अन्तिम बार बिदा हुआ, इधर कर्मचारियों ने बड़ा ही हल्ला मचाया। उन्होंने मनमाना लगान वसूल कर प्रजाओं का खून चूसना प्रारम्भ कर दिया। कम्पनी को केवल अपनी आमदनी का लोभ था, अतः उसने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। थोड़े ही दिनों में सारे देश में अन्याय और अत्याचार के मारे हाहाकार मच गया। लोग लगान और तावान चुकाते चुकाते कङ्गाल हो गये; और १७७० ई० में बङ्गाल को एक भयङ्कर दुर्भिक्ष का मुख देखना पड़ा, जिसके स्मरण-मात्र से आज भी कलेजा दहल उठता है। इस विकराल अकाल में सारा बङ्गाल निर्जन और उजाड़-सा हो गया। उसकी तिहाई आबादी भूख-प्यास से साफ़ हो गई। कुछ दिन बाद यह सब समाचार कानों-कान विलायत पहुँचा। वहाँ लोग कम्पनी के नौकरों की और साथ ही क्लाइव के शासन-प्रबन्ध की भी घोर निन्दा करने लगे। यह दुर्दृश्य देखकर पार्लियामेण्ट से भी चुप न रहा गया। वहाँ भी इसके तहक़ीक़ात की चर्चा होने लगी। आख़िर, दो वर्ष के उपरान्त १७७२ ई० के अप्रैल मास में जेनरल बरगोनी (General Burgoyne) की सिफ़ारिश से एक अनुसन्धान-सभा (Select Committee) क़ायम हुई, जिसमें ३१ सभासद नियत किये गये। बस यही सभा क्लाइव की आत्म-हत्या का मूल कारण हुई। न यह सभा बनती और न क्लाइव अपनी भरी जवानी में परलोक का यात्री होता। अपने निश्चय के अनुसार सभा ने छः ही सप्ताहों में दो रिपोर्टें तैयार कर उन्हें पार्लियामेण्ट में पेश कर दिया। किन्तु उस समय पार्लियामेण्ट की बैठक समाप्त हो रही थी, इसलिए उस पर कोई विशेष कार-रवाई नहीं हुई। इसके उपरान्त वहाँ के महामन्त्री लार्ड नार्थ ने कम्पनी के प्रबन्ध-संस्कार के लिए एक नये क़ानून की सृष्टि की, जिसका नाम India Regulating Act पड़ा। इसमें शासन-सुधार की अनेक गूढ़ बातों का समावेश है।

समय ज्यों ज्यों बीतता था, क्लाइव के विरोधियों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। क्रमशः समय के प्रभाव से पार्लियामेण्ट और अनुसन्धान-समिति, दोनों जगह क्लाइव की बड़ी निन्दा हो रही थी। वे बङ्गाल के दुर्भिक्ष का सारा दोष इसीके माथे मढ़ते थे। लोगों की यह अटल धारणा हो गई थी कि क्लाइव भारत से अतुल सम्पत्ति लाकर और कम्पनी का रुपया पचाकर धनी हो गया है। जो लोग क्लाइव के शासन-प्रबन्ध को बुरा और हानिकर बताकर उस समय इसके शत्रु बन गये थे, उन्हें आज अच्छा मौक़ा हाथ लगा और वे लोग निर्भय होकर इसके विरुद्ध अभियोग चलाने लगे। विलायत में इसका सबसे बड़ा शत्रु बरगोनी था और वही अनुसन्धान-सभा का सभापति भी था। शत्रु कब दाव चूकनेवाला था। उसने अपने तीर का पहला निशाना क्लाइव ही को बनाया। उसने क्लाइव पर दो अभियोग ठहराये। एक यह कि तुमने एडमिरल वाटसन (Admiral Watson) का जाली हस्ताक्षर बनाया है। दूसरे, ऐसा कर तुमने बेचारे अमीचन्द को धोखा दिया है।

इस मामले का क़िस्सा यह है कि बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला को सिंहासन-च्युत करने के लिए मुर्शिदाबाद में कुछ लोग षड्यन्त्र रच रहे थे।

मीर ज़ाफ़र को, जिसने अँगरेज़ों को कुछ रुपया देने की प्रतिज्ञा की थी, बङ्गाल की नवाबी देने के इरादे से, क्लाइव ने भी मिस्टर वाट नामक एक अँगरेज़ और अमीचन्द नामक एक बङ्गाली के साथ उस षड्यन्त्र में भाग लिया। कुछ समय बाद अमीचन्द ने मि० वाट को धमकाया कि यदि तुम मुझे अँगरेज़ों से ३० लाख रुपये नहीं दिला दोगे तो मैं यह भण्डा सिराजुद्दौला के आगे बहुत जल्द फोड़ दूँगा। वाट बना बनाया घर बिगड़ते देख बहुत डरा और किसी प्रकार अमीचन्द को शान्तकर उसने यह ख़बर कलकत्ते में रहनेवाले सिलेक्ट् कमिटी के कुछ सभासदों के कान तक पहुँचा दी। क्लाइव ने इस पर एक उपाय सोच निकाला। उजले और लाल—दो रङ्ग के काग़ज़ों पर सन्धि-पत्र लिखे गये। उजला असल था जिसमें अमीचन्द का कोई ज़िक्र ही नहीं था; और लाल जाली था, उसमें अमीचन्द के पक्ष की बातें लिखी थीं। लेकिन एडमिरल वाटसन ने ईमानदारी से एक ही काग़ज़ पर जो असल था, दस्तख़त किया। इसपर क्लाइव ने दूसरे लाल काग़ज़ पर वाटसन का जाली दस्तख़त किसी से बनवा लिया। सिराजुद्दौला से सन्धि के होने के समय क्लाइव ने अमीचन्द को वही लाल काग़ज़ दिखलाकर काम निकाल लिया और दूसरा सफ़ेद काग़ज़ नवाब के पास भेजा। इस प्रकार क्लाइव ने अमीचन्द को धोखा दिया था।

क्लाइव पर विचारकों ने उसके अनेक महान् तथा गौरवान्वित कार्यों का तिलभर भी विचार न कर लाञ्छन लगाया, इसके लिए क्लाइव को कितना दुःख हुआ था, यह उसीके वीर मुख से सुन लीजिए। उसने एक बार बहुत सन्तप्त होकर अपने भाषण में कहा था—"I, their humble servant, the baron of Palassey, have been examined by the Select Committee more like a sheep-stealer than a member of this house!" मतलब यह कि मैं उनका तुच्छ दास और पलासी का वीर होकर, पार्लियामेण्ट के मेम्बर की अपेक्षा एक भेड़ी चुरानेवाले की भाँति सिलेक्ट् कमिटी के द्वारा मुजरिम हुआ हूँ। इसके अतिरिक्त उसने और भी अनेक बार निर्भयता-पूर्वक और स्पष्ट रूप से अपनेको निर्दोष साबित किया है।

मई १७७३ ई० में बरगोनी ने पार्लियामेण्ट में क्लाइव पर लाञ्छन का प्रस्ताव (Vote of censure) पेश किया, जिसका कुछ अंश जो अनिवार्य था सभा से पास हो गया; किन्तु क्लाइव के दोषारोपण-सम्बन्धी प्रस्ताव में मेम्बरों में मत-भेद हो गया। अधिकता उन लोगों की हो गई, जो क्लाइव के पक्ष में थे। भीतर भीतर लाख चिढ़े रहने पर भी उनकी आत्मा ने उन्हें क्लाइव के विरुद्ध जाने से रोका और तदनुसार वेडरबर्न साहेब के पेश करने पर यह प्रस्ताव भी सर्व-सम्मति से पास हो गया—That Robert Lord Clive did at the same time render great and meritorious services to his country—कि राबर्ट लार्ड क्लाइव ने साथ साथ स्वदेश की महान् तथा प्रशंनीय सेवा भी की है। इस प्रकार मुक़द्दमे में क्लाइव की सफलतापूर्वक जीत हुई। इस कार-रवाई ने उसके शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये।

उस बड़ी बदनामी से क्लाइव को जितना दुःख हुआ था, इस छोटी सी जीत के हर्ष से वह कुछ भी कम न हुआ, बल्कि स्वभावतः इसने और भी उसे बढ़ा ही दिया। मुक़द्दमा फ़ैसल हो जाने के बाद से उसके जीवन में युगान्तर हो गया। जीते हुए अपमान और उसकी हानियों का स्मरण कर वह सन्तत चिन्तित रहने लगा। पूर्वोक्त घटनाओं ने उसके हृदय पर ऐसा गहरा आघात पहुँचाया, जिसका आराम होना पीछे कठिन ही नहीं, असम्भव हो गया। जीवन उसे भार सा मालूम पड़ने लगा। वह अपने आप प्रतिपल ग्लानि के मारे मरा जाता था। जो क्लाइव कभी कर्णाटक के मैदान में निर्भय होकर विचरता था—जो क्लाइव कभी बङ्गाल की शासन-सभा

में सिंह की भाँति घोर गर्जन से विरोधियों के मन में आतङ्क उत्पन्न करता रहता था, दैव-दुर्विपाक से वही क्लाइव आज अपने हाते में कभी तो देवदार के वृक्ष के नीचे, और कभी क्लेयरमॉण्ट के हाल में एक पागल सियार की भाँति डग मारते दिखाई देता है! सच्चे आत्म-सम्मान (Self-respect) से उत्पन्न चिन्ता ने उसके शरीर को जर्जर कर दिया था।

एक समय उसके यहाँ कोई स्त्री मेहमान आई। २२ नवम्बर १७७४ ईसवी का दिन था। बरकली स्कायर के मकान में बैठी वह स्त्री एक चिट्ठी लिख रही थी और क्लाइव उसी समय आत्म-चिन्ता में चूर बाहर टहल रहा था। इसी बीच उस लेखिका की क़लम टूट गई; उसने क्लाइव को क़लम बनाने के लिए बुलाया। क्लाइव उसके बुलाने पर आया और उसने चाकू लेकर क़लम भी बना दी। अवसर ताक वह चाकू लेकर कोठरी से बाहर निकल समीप की दूसरी कोठरी में चला आया। यहाँ आकर उसने प्रथम श्वास में देशवासियों को धिकारा, दूसरे में परमात्मा से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। और फिर तीसरे में--नहीं अन्तिम में--उसने परम पिता को एक बार पुनः स्मरण किया और जी कड़ाकर देखते देखते अपने गले पर वही कठोर छूरी फेर ली! मुण्ड रुण्ड से विच्छिन्न भी न हो पाया था कि उस नर-शार्दूल का विशाल धड़, धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और वह वहीं तत्काल शान्त हो गया! जिस वीर-हृदय महापुरुष का, पलासी और कर्णाटक के भयानक समराङ्गण में हिन्दू-मुसलमानों के सहस्र सहस्र अस्त्र-शस्त्र बाल बाँका न कर सके थे, उसके जीवन-नाटक का पटाक्षेप एक क़लम-तराश चाकू ने कर दिया—यह बात सोचकर बड़ी दया आती है! जिस सूरमा ने अपने देश और जाति की भावी भलाई का ख़याल कर भारत में अँगरेज़ों का सिक्का-जमाया और बृटिश-शासन की नींव डाली, उस क्लाइव को अपने ही जातीय शत्रुओं से आहत होकर आत्मघात कर लेना पड़ा—यह अँगरेज़ जाति के लिए निस्सन्देह लज्जा और परिताप का विषय है।

लोगों का इस स्थल पर यह आक्षेप हो सकता है कि यह क्लाइव की आत्मिक दुर्बलता थी कि उसने सर्वसाधारण की निन्दा करने से अपनी आत्महत्या कर डाली। यदि वह निर्दोष था तो उसे इसकी कुछ परवा न करनी चाहिए थी। यह ठीक है। लेकिन यह बात क्लाइव की प्रकृति के विरुद्ध—एकदम विरुद्ध थी। जिन्होंने उसका जीवन-चरित ध्यानपूर्वक पढ़ा है, उनसे यह बात छिपी न होगी। उसमें शुरू ही से आत्माभिमान ठूस ठूसकर भरा था और वह इतना क़ायल था कि ज़रा ज़रा अपमान की बात उसे असह्य हो जाती थी। निन्दित जीवन विताने से मृत्यु को वह सदा से श्रेष्ठतर समझता आया।

एक बार की बात है, मद्रास में क्लर्की के काम से जब उसका जी ऊब गया, तब उसने एक एकान्त कोठरी में पिस्तौल भरकर अपने सिर पर मारी, किन्तु इससे उसको कुछ हुआ नहीं और उसी बीच एक आदमी वहाँ आगया। उससे भी क्लाइव ने वातायन के बाहर से अपने (क्लाइव) के ऊपर गोली चलाने की प्रार्थना की। उसने वैसा ही किया; किन्तु उससे भी उसको कुछ नहीं हुआ, और वार ख़ाली गया। इस पर क्लाइव आनन्द से उछलकर चिल्ला उठा कि—"अवश्य मैं कोई विशेष कार्य करने इस संसार में आया हूँ!"

जनता के घृणित आक्षेपों ने क्लाइव के चरित को कलङ्कित कर दिया था सही, किन्तु फिर भी उसका गौरव अक्षुण्ण था। उसकी दुर्दमनीय शूर-वीरता के प्रताप से कीर्त्ति उसके चरणों पर लोटती थी। उत्तरीय अमरीका के महायुद्ध में, इङ्गलेण्ड की गौरव-ध्वजा फहराने के लिए वह सरकार की ओर से भेजा जानेवाला था। कौन कह सकता है कि यह अवसर उसके जीवन में और भी कितनी बड़ी मर्यादा का कारण होता। यही क्या, उस साहसी के लिए और

जितने ऐसे अवसर आते, उन सभों से वह कितना लाभ उठाता, इसका कुछ ठिकाना है! मृत्यु के समय वह पूरा पचास का भी न होने पाया था। शायद ईश्वर को यह स्वीकार ही नहीं था कि क्लाइव और भी भूतल पर अपना यश-विस्तार करे।

महावीरप्रसाद चौधरी, 'विभूति'।

जयपुर का "राम-निवास" बाग़ और अजायबघर।

राजपूताने में जयपुर सबसे बड़ा और सुन्दर नगर है। राजपूताने ही में नहीं, किन्तु भारतवर्ष के सब से सुन्दर नगरों में जयपुर भी एक समझा जाता है। यह नगर चारों ओर ऊँचे कोट से घिरा हुआ है जिसमें स्थान स्थान पर सात फाटक हैं। कोट के भीतर नगर बड़ी सुन्दरता से बसा हुआ है। नगर के अतिरिक्त जयपुर के आस-पास कई बाहरी स्थान भी दर्शनीय हैं। इन्हींमें से एक "राम-निवास" बाग़ है जिसका वर्णन इस लेख में किया जाता है।

यह बग़ीचा वर्तमान जयपुराधीश के पूर्वज महाराजा रामसिंहजी ने बनवाया था। उन्हींके नाम पर इस बग़ीचे का नाम "राम-निवास" रक्खा गया है। उद्यान नगर के कोट के बाहर की ६२५ बीघा भूमि पर फैला हुआ है। बग़ीचे के चारों ओर लगभग ६ फुट ऊँची लोहे की रेलिंग-युक्त सुन्दर दीवार है जिसमें स्थान स्थान पर सुन्दर फाटक बने हुए हैं। उत्तरीय फाटक में घुसते ही भारतवर्ष के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड मेयो की मूर्त्ति मिलती है। इस मूर्त्ति के दाहनी ओर "मेयो हासपिटल" नामक अस्पताल लार्ड मेयो के स्मारक-रूप में स्थापित है। भारतवर्ष में कदाचित् कहीं भी नगर के इतने सन्निकट ऐसा सुन्दर और इतना बड़ा उद्यान न होगा।

नगर के इतने पास होने के कारण बग़ीचे से नगर-निवासियों को बड़ा सुख है। प्रति दिन प्रातःकाल और सन्ध्या समय यहाँ सैकड़ों मनुष्य टहलने आते हैं। जिस समय ग्रीष्म-ऋतु में निदाघ का उत्ताप लोगों को पीड़ित करता है उस समय यही उद्यान उनको आश्रय देता है। कोई कोई मनुष्य तो प्रातःकाल से ले रात्रि के नौ बजे तक यहीं रहते हैं। बग़ीचे के भीतर अनेक चौड़े चौड़े मार्ग टहलने को बने हुए हैं। ये मार्ग बहुत स्वच्छ रक्खे जाते हैं और इनके दोनों ओर दूर्वा-दल-मण्डित लगभग ४ फुट चौड़ी भूमि ने इन मार्गों की शोभा को बहुत ही बढ़ा दिया है। इस भूमि में स्थान स्थान पर दोनों ओर लालटेन के सुन्दर खम्भे खड़े हैं तथा अनेक क्यारियाँ कटी हुई हैं जिनमें रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प दर्शकों के चित्त को हरण करते हैं। कहीं कहीं इस भूमि के दोनों ओर घनी वृक्षावली है जिससे इस भूमि और मार्गों की शोभा बहुत ही बढ़ गई है और मार्ग बहुत ठंढे रहते हैं। ये समस्त मार्ग आड़े-टेढ़े घूमकर आगे एक-दूसरे से मिल जाते हैं।

उद्यान के मध्य में बाजा बजाने के लिए एक सुन्दर चबूतरा (बैण्ड स्टैण्ड) बना हुआ है जिस पर प्रति सोमवार और बुधवार को बाजा बजता है। इसके अतिरिक्त उद्यान में अनेक दूर्वा-दल-मण्डित चौक हैं जिनमें से कई एकों में सन्ध्या को सर्व-साधारण टेनिस, हाकी, फुटबाल आदि अँगरेज़ी खेल खेलते हैं। यहाँ खेलने आदि के लिए रोक-टोक नहीं है, न यहाँ खेलनेवालों से किसी प्रकार का कर ही लिया जाता है। भारतवर्ष में सर्व-साधारण को इतनी स्वतन्त्रता कदाचित् ही किसी उद्यान में दी गई हो। स्थान स्थान पर बग़ीचे में अनेक कुण्ड, नहरें, कुएँ और बङ्गले बने हैं। अनेक स्थलों पर पशु, पक्षी और जल-चर पले हैं। कहीं से सिंह का गर्जन सुन

पड़ता है, कहीं बन्दरों की किलकिलाहट गूँजती है। कहीं मृग चौकड़ी भरता हुआ दृष्टि-गोचर होता है, कहीं रीछ की कलोल दीख पड़ती है। कहीं कोयल कूकती है, कहीं मोर नाचता है और कहीं काकातुआ अपनी ही धुन में मग्न दिखाई देता है। जीवों को देख प्रकृति के वैचित्र्य का अनुभव होता है। यद्यपि अब यहाँ इन जीवों की संख्या पहले से बहुत कम हो गई है, तथापि अब भी कलकत्ते को छोड़कर भारतवर्ष के कदाचित् और किसी भी स्थान में पशु, पक्षी, चलचर आदि का ऐसा अच्छा सङ्ग्रह न होगा।

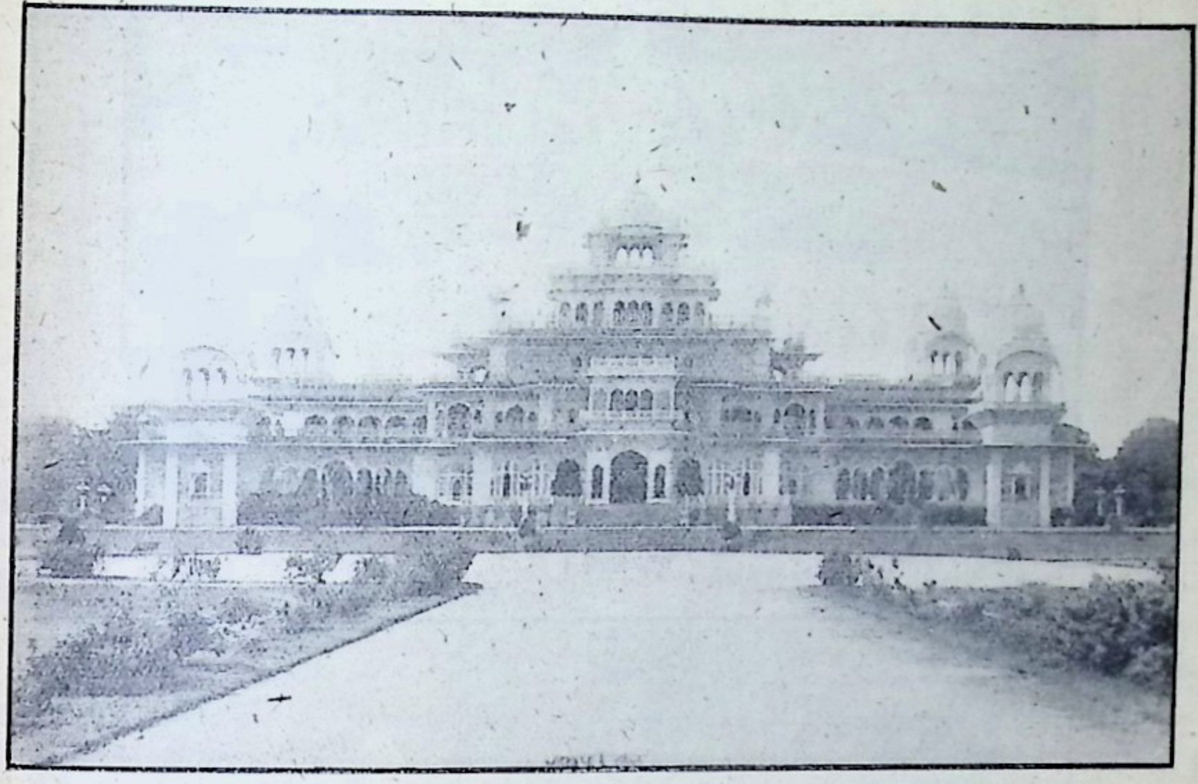

जयपुर का "आलबर्ट हाल" अर्थात् अजायबघर।

बग़ीचे की भूमि सम नहीं है। कहीं वह ऊँची है और कहीं नीची। इससे बग़ीचे की शोभा बहुत बढ़ गई है। जो स्थल नीचे हैं वहाँ उतरने को तथा जो स्थल ऊँचे हैं उन पर चढ़ने को सुन्दर सीढ़ियाँ और पुल आदि बने हैं। ये स्थल भी कहीं दूर्वा के चौकों, कहीं रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों की क्यारियों, कहीं जल के कुण्डों और फ़व्वारों से सुशोभित हैं।

इस उद्यान का प्रति वर्ष का व्यय एक लाख रुपये के लगभग है।

इसी बग़ीचे में बेण्ड-स्टेण्ड के सामने दक्षिण ओर अजायबघर के रूप में पाँच खण्ड का एक सुन्दर और विशाल भवन बना हुआ है। सामने से इस भवन का दृश्य आगरे के सिकन्दरा-बाग़वाली अकबर बादशाह की कबर की इमारत से मिलता-जुलता है। इसकी पत्थर की खुदाई, जाली, पचीकारी, चूने आदि का काम बहुत सुन्दर बनाया गया है। यह काम आगरे के ताजमहल तथा सिकन्दरा, फतेहपुर-सीकरी और दिल्ली की, मुसलमानों के समय की इमारतों और आबू के प्राचीन जैन-मन्दिरों से मिलता हुआ है। इसका कारण यह है कि यह अजायबघर का भवन

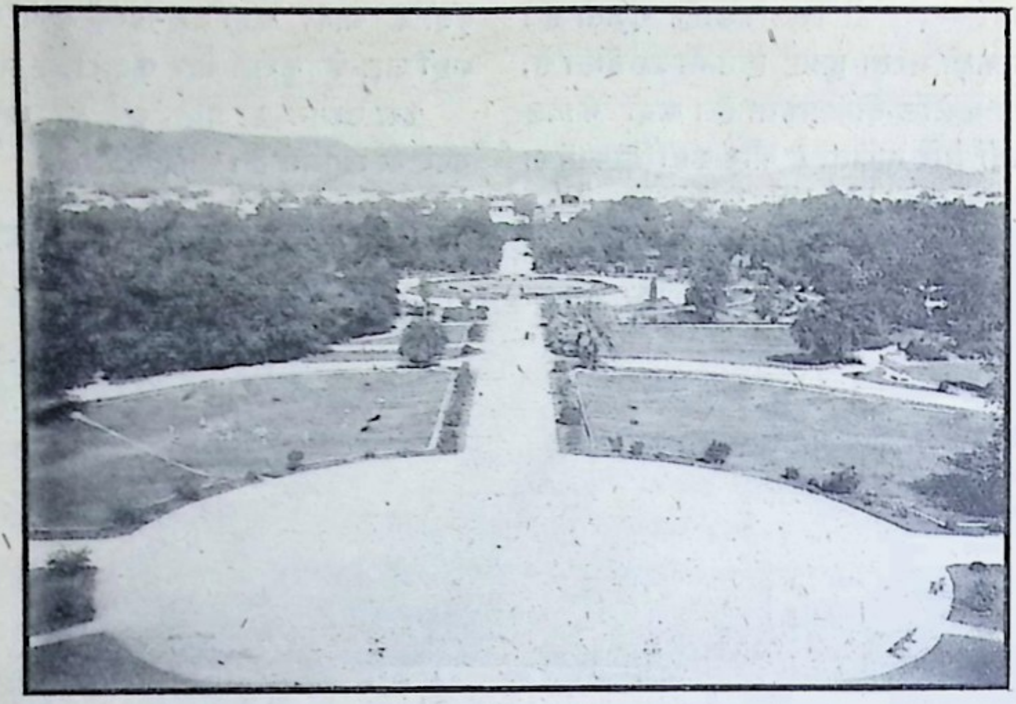

अजायबघर के भवन के पाँचवें खण्ड से "राम-निवास" बाग़ और जयपुर नगर का एक दृश्य।

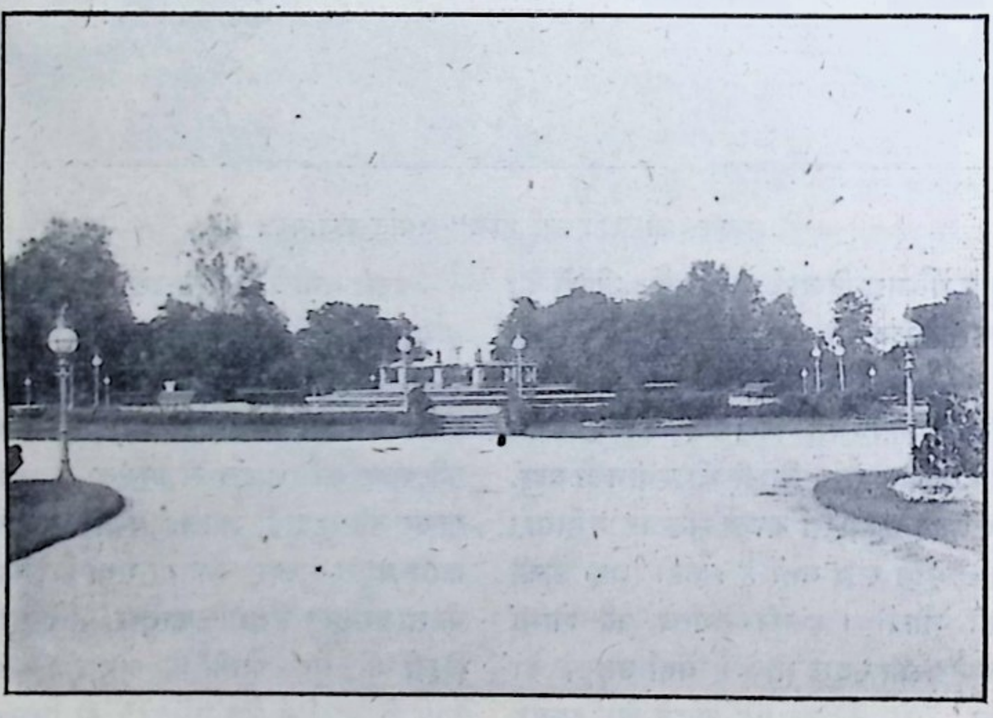

"राम-निवास" बाग़ का बैण्ड स्टैण्ड।

हवासिल।

इस जलचारी पक्षी को अँगरेज़ी में Pelican (पेलीकन) कहते हैं। यह काश्मीर में पाया जाता है।

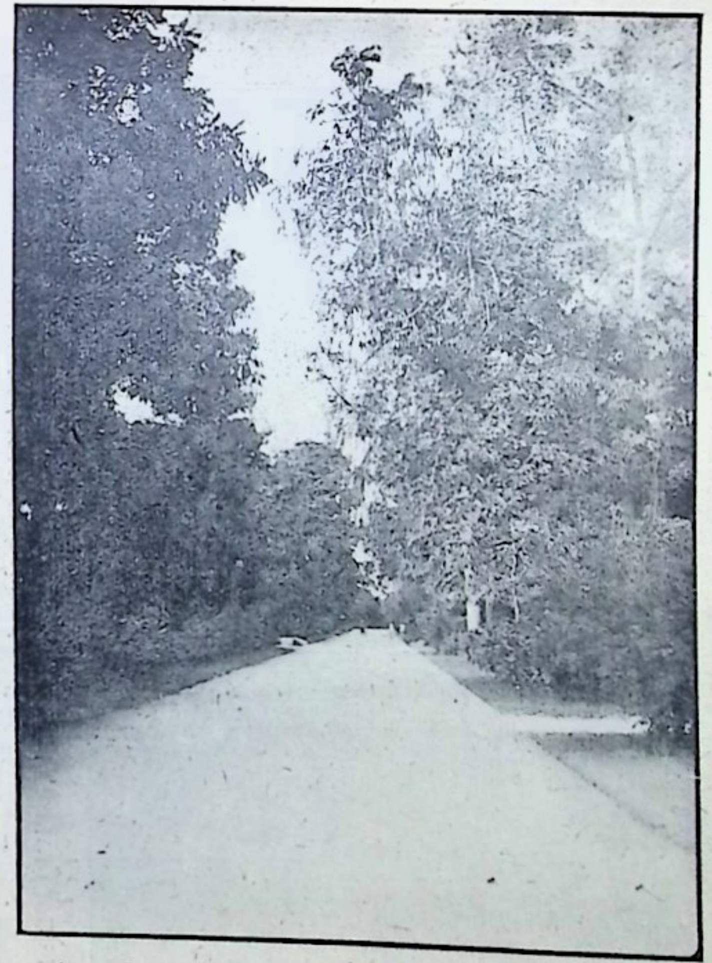

"राम-निवास" बाग़ का, घनी वृक्षावली से आच्छादित एक सुन्दर मार्ग।

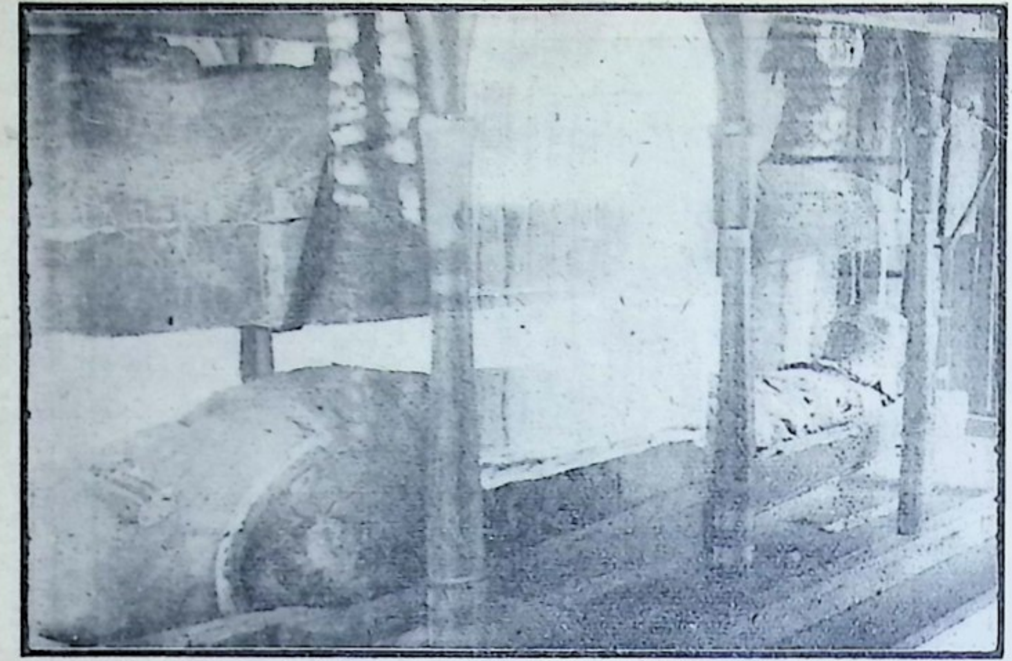

मिस्र देश में मिली हुई शेम घराने की, लगभग २२११ वर्षों की पुरानी एक स्त्री की लाश ।

बीजू ।

इसे अँगरेज़ी में Weasel (वीज़िल) कहते हैं । यह रीछ-वर्ग का मांसाहारी जानवर राजपूताने ही का है ।

होने से इसमें सब तरह के शिल्प का काम दिखाया गया है।

भवन के सामने के द्वार से भीतर प्रवेश करने पर एक चौकोर दालान मिलता है। इस दालान की दीवारों के ऊपरी भाग में जयपुर के चौदह राजाओं के पूरे आकार के रङ्गीन चित्र बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं। वहीं भवन और अजायबघर-सम्बधी लेख लगे हैं। शेष दालानों की दीवारें अबुल फ़ज़ल के लिखे हुए "रज़मनामे" के चित्रों और ऐजेण्टा के गुफा-मन्दिरों के तथा चीन, जापान, असेरिया, चालिडआ, ईजिप्ट, बाइज़ेन्टाइन, रोम आदि के प्राचीन प्राचीन चित्रों से विभूषित हैं।

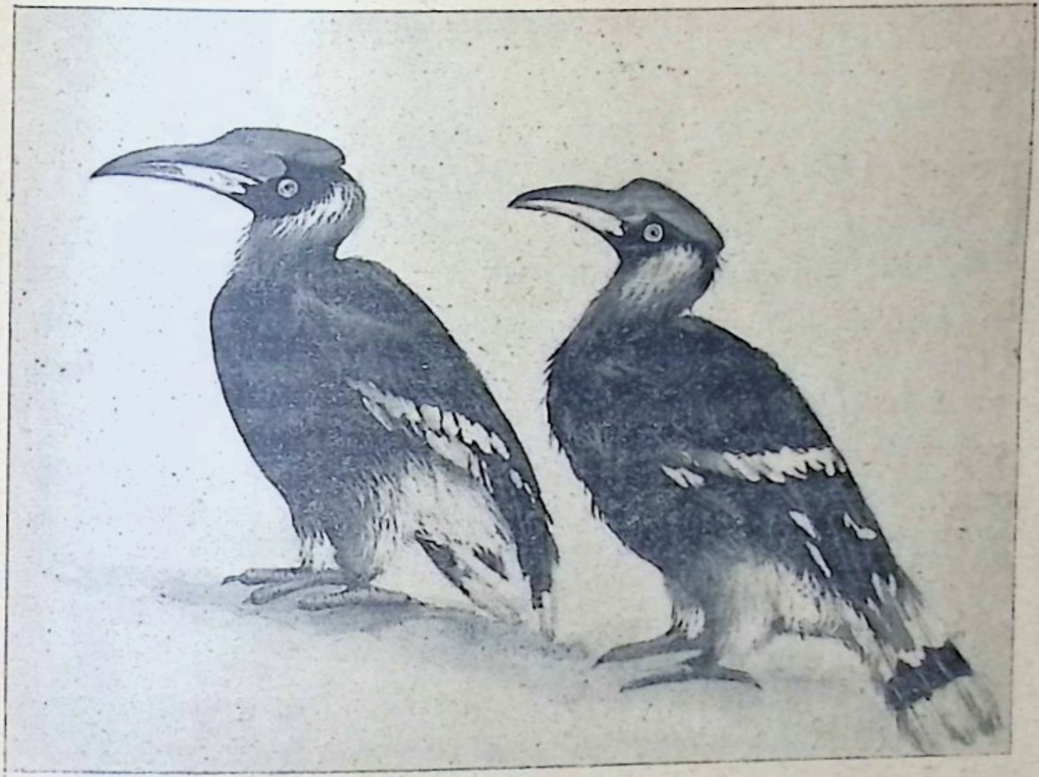

बनराज।

यह शिकारी पक्षी गरुड़ के स्वरूप का होता है। अँगरेज़ी में इसे Hornbill हार्नबिल कहते हैं। यह पूर्वीय जावा में पाया जाता है।

सामने के दालान के सम्मुख एक बहुत बड़ा कमरा है जो "दरबार-हाल" के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमरे की लम्बाई ७० फुट और चौड़ाई ४५ फुट है। भवन के तीन खण्डों तक इसकी ऊँचाई गई है और इसकी छत अत्यन्त सुन्दर चार डाटों पर स्थित है। इस कमरे में लगभग ३०० कुरसियाँ सुविधा-पूर्वक रक्खी जा सकती हैं। कमरे के ऊपरी भाग में स्त्रियों के बैठने के लिए सुन्दर झरोखे बने हैं, जिनमें परदे का प्रबन्ध सरलता-पूर्वक हो सकता है। कमरे का फ़र्श नृत्य, नाटक आदि के उपयोग के लिए लकड़ी की पटियों से पाटा गया है। यह कमरा दरबार, व्याख्यान, और समस्त राजपूताने की, विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के उपयोग में आता है।

भवन के दो खण्डों के शेष भागों में नाना प्रकार

की चित्र-विचित्र वस्तुओं का सङ्ग्रह है। यह सङ्ग्रह बिग्रेड सरजन टी० एच० हेन्डली साहब, सी० आई० ई० के निरीक्षण में हुआ है और ४ विभागों में विभक्त है—(१) शिल्प (२) इतिहास (३) शिक्षा और (४) अर्थ-शास्त्र। इन चारों विभागों की छोटी-बड़ी समस्त वस्तुओं की संख्या लगभग २० सहस्र के है, जिनमें से बहुतसी वस्तुएँ तो इस समय अमूल्य हैं।

चारों विभागों में सबसे बड़ा शिल्प-विभाग है। यही कारण है कि नीचे के खण्ड में केवल इसी विभाग की वस्तुएँ सज सकी हैं। शेष तीन भागों की वस्तुएँ दूसरे खण्ड में सुसज्जित हैं। भारतवर्ष में कलकत्ते का अजायबघर सबसे बड़ा माना जाता है; परन्तु वहाँ का शिल्प-विभाग भी कदाचित् इतना बड़ा नहीं है। यद्यपि इस विभाग में समस्त देशों की प्राचीन और अर्वाचीन शिल्प की वस्तुएँ रक्खी हुई हैं, तथापि इनमें से अधिकांश वस्तुएँ जयपुर की ही बनी हैं। भारतवर्ष की शिल्प-विद्या इतनी गिरी दशा में होने पर भी जयपुर इस विद्या के लिए अब तक भारतवर्ष के मस्तक को ऊँचा उठाये हुए है।

मिस्र देश में जो आश्चर्यजनक, सहस्रों वर्षों की पुरानी लाशें निकली हैं उनमें से "शेम" के महन्तों के घराने की लगभग २२११ वर्ष की पुरानी, "टालेमी" के समय की मिली हुई एक औरत की लाश भी इस अजायबघर में रक्खी हुई है। यह लाश "एखमीम" में मिली है। "शेम" उस देवता का नाम है जिसे मिस्र देश के लोग "एमन" कहते और संसार को उत्पन्न करनेवाला मानते हैं। सुनते हैं कि इस लाश के यहाँ मँगाने में कई सहस्र पाउण्ड व्यय हुए हैं।

यह भवन श्रीमान् महाराजा सर रामसिंहजी बहादुर के राजत्व-काल में प्रिन्स आलबर्ट एडवर्ड, प्रिन्स आफ़ वेल्स के जयपुर आने के स्मारक-स्वरूप में बनाया गया है। इसकी नींव तारीख़ ६ फरवरी सन् १८७६ ईसवी को प्रिन्स एडवर्ड ने स्वयं रक्खी थी और सन् १८८७ ईसवी में वर्तमान जयपुर-नरेश सर माधवसिंहजी बहादुर के शासन-काल में यह पूर्ण होकर तारीख २१ फरवरी को सर एडवर्ड ब्राडफोर्ड, एजेण्ट गवर्नर जनरल राजपूताना द्वारा खोला गया था। अजायबघर की सज्जित वस्तुओं को छोड़ केवल इस भवन के बनने ही में उस समय पाँच लाख से ऊपर व्यय हुआ है और आज तो इससे दूने-चौगुने व्यय में भी ऐसा सुन्दर भवन निर्माण होना असम्भव है। प्रिन्स आलबर्ट एडवर्ड का स्मारक होने के कारण इस भवन का नाम "आलबर्ट हाल" है।

इतना सब होने पर भी हमें यह बात अत्यन्त खेद के साथ लिखनी पड़ती है कि अजायबघर की वस्तुओं का पूर्ण रीति से वर्णन हिन्दी में न होकर अँगरेज़ी में है। शिक्षा-विभाग में वैज्ञानिक वस्तुओं का वर्णन तो फ्रेञ्च भाषा में लिखा गया है! इस अभाव अथवा कुभाव का फल यह है कि अजायबघर का पूरा लाभ हमारे भारतवासी नहीं उठा सकते। हिन्दू-राज्य में हिन्दी को इतना भी स्थान न देखकर किस शिक्षित हिन्दू को खेद न होगा?

अजायबघर के भवन और कुछ वस्तुओं के, तथा उद्यान के कुछ दृश्यों और कुछ विचित्र जीवों के चित्र इस लेख में दिये गये हैं।

गोविन्ददास।

स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य ग्रन्थकारों के उद्गार।

१ स्त्रियों को जो मान हम देते हैं वह केवल उनके सौन्दर्य के लिए नहीं है, वरन स्वाभाविक गुणों के लिए भी उनका गौरव किया जाता है।—एडिसन।

२ पातिव्रत ही स्त्रियों का मुख्य सद्गुण है। —एडिसन।

३ अपना कर्तव्य करते समय वे किसी भी सङ्कट की परवा नहीं करतीं। प्रेम, इज़्ज़त, और धर्म, इन गुणों के विरुद्ध उनका आचरण होना अशक्य है; दया उनका शील है, सुख और सत्ता उन्हें मामूली मालूम होती है। रोगी की शुश्रूषा करना ही उनका नैसर्गिक गुण है। सङ्कट को टक्कर देनेवाला उनके समान कोई धीर भट नहीं।—बालफर।

४ स्त्री का पुरुष पर अवलम्बित होना रूढ़ि और अभ्यास के कारण है। यथार्थ में, स्त्री यदि निश्चय कर ले तो वह भी पुरुष के समान स्वतन्त्र रह सकती है।—बेथमान्ट।

५ पुरुष की सच्ची और सर्वोत्तम मित्र सुशिक्षित पत्नी है, क्योंकि वह उसी पर गृह का सर्व कृत्य छोड़ देता है। वह पुरुष के विश्वास का कभी भी दुरुपयोग नहीं करती। यदि पुरुष दुःखी रहा तो उसे वह आनन्दित करने की चेष्टा करेगी, वह अपने लड़कों को सुशिक्षा देगी और लड़के सुशिक्षित माता के लाभ के स्मारक ही होंगे।—विशप हार्न।

६ हे स्त्री, हम लोगों के समान ही तू भी मानव-जाति में रहकर, सङ्कट के असल मौक़े पर पुरुष की मार्गप्रदर्शिका बनकर, यह सिद्ध कर देती है कि तुझमें ईश्वरीय अंश है।—बुलवर।

७ स्त्री के हृदय में प्रेम का अखण्ड झरना रहता है; उसका शुष्क होना अशक्य है।—बुलवर लिटन।

८ यदि स्त्री कुछ अपराध करती है तो वह क्षमा माँगने के लिए एक पैर पर तैयार रहती है, किन्तु यदि वही अपराध पुरुष से होता है तो स्त्री उसे तुरन्त भूल जाती है।—बुलवर।

९ स्त्री का प्रेम पुरुष के लिए अमृत है। उसके बिना पुरुष को सौख्य-शब्द की स्मृति भी नहीं होगी।—कार्टन।

१० माता के स्वभाव का परिणाम उसके पुत्र में दृष्टि-गोचर होता है।—कार्टर।

११ पुरुष के समान स्त्री को भी सौख्य की आवश्यकता है।—कोल्टन।

१२ स्त्री में एक ऐसा जादू है कि पुरुष कितना ही जङ्गली क्यों न हो, उसे वह अपनी तरफ़ आकर्षित कर ही लेती है।—काली।

१३ जिस प्रकार दर्पण में देखनेवाले का प्रतिबिम्ब दीखता है, उसी तरह पति के सुख-दुःखादि मनोविकारों का प्रतिबिम्ब पत्नी के मुख पर दीख जाता है।—इज़्यासमस।

१४ स्त्री शान्ति की देवी है, इस उच्च पद से उसे नीचे ढकेलना केवल जङ्गलीपन है।—फोर्डायस।

१५ पत्नीपद के योग्य कौन सी स्त्री है? यदि मुझसे कोई यह प्रश्न करेगा तो मैं उसे यह उत्तर दूँगा कि 'जिस स्त्री ने अपने माता-पिता की आज्ञा का कभी उल्लङ्घन नहीं किया है वही स्त्री पत्नी होने योग्य है'।—फ़ोर्डायस।

१६ उसका सौन्दर्य, उसका तारुण्य, उसका आनन्दी स्वभाव, उसके गुण, उसके दोष, उसकी अनेक स्वभाव-तरङ्गें, ये सब मिलकर पुरुष का प्रेम आकर्षण करने के कारण होते हैं।—गेटे।

१७ जो अपने पति और पुत्रों को सदैव सानन्द रखती है उसके आगे जगत् की महाराणी का वैभव भी तुच्छ है।—गोल्डस्मिथ।

१८ बालक सुन्दर हो अथवा कुरूप, वह माता के अक्षय्य प्रेम का हिस्सेदार है।—हर्डर।

१९ पतिव्रता स्त्री में ईश्वर का सम्पूर्ण वैभव दीख पड़ता है।—हर्मिस।

२० केवल अवयव की रचना से स्त्री को सच्चा सौन्दर्य प्राप्त नहीं होता।—ह्यूज़ेस।

२१ सद्गुणी स्त्री संसार में सबसे श्रेष्ठ रमणीय वस्तु है।—हंट।

२२ सद्गुणी स्त्री प्राप्त होना ईश्वर का एक सर्वोत्कृष्ट वरदान ही है।—जेरेमी टेलर।

२३ जिस समय माता बालक को गोद में लेकर बैठती है, उस समय की उसकी प्रेम-दृष्टि कौनसा कुशल चित्रकार खींचने में समर्थ है?—किंग्ज़ले।

२४ स्त्री मनुष्य का दहिना हाथ है।—ल्या मरटाइन।

२५ गृह में शान्ति का साम्राज्य रखने की इच्छा हो तो अपनी स्त्री के किसी भी कार्य को संशयात्मक दृष्टि से न देखो।—ल्यान्डार।

२६ पतिव्रता स्त्री अभिमानिनी, पर सरल मार्ग में चलनेवाली होती है।—बेकन।

२७ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक सदिच्छा से धर्म पालन करती हैं।—लूथर।

२८ स्त्रियों में विनोद और गाम्भीर्य, सुख और दुःख, प्रीति और द्वेष, ये विरोधी गुण-दोष स्वभाव से एकत्र वास करते हैं।—मार्स्टन।

२९ पुरुष को सद्गुण-रूपी स्त्री-धन सदा पास रखना चाहिए।—प्ल्यान्टस।

३० पढ़ने की अपेक्षा अवलोकन से स्त्री का ज्ञान बढ़ता है।—रूसो।

३१ आलिङ्गन और अश्रु, इन दोनों के योग से स्त्री पुरुष को अङ्कित कर लेती है।—रूसो।

३२ हमारे क़ानून की अपेक्षा स्त्री की दृष्टि में अधिक सत्ता है।—होव्हिले।

३३ स्त्री का अन्तरङ्ग प्रेम-रज्जु से बुना गया है।—शेक्सपियर।

३४ स्त्री के नैसर्गिक सद्गुणों को शिक्षा प्रकाशित करती है।—शेक्सपियर।

३५ पुरुष के लिए आवश्यक है समझ और शक्ति; स्त्री के लिए आवश्यक है मृदुता और भीरुता।—सर रिचर्ड टवलि।

३६ मुझे स्त्री के भ्रुकुटि-भङ्ग का जितना भय लगता है उतना किसीका नहीं।—साउदी।

३७ धर्म में स्त्री और पुरुष, दोनों की समानता की गई है; परन्तु इस विचार के अनुसार कितने धार्मिक पुरुष चलते हैं?—सेंट पायरे।

३८ स्त्री को मानव-जाति का वैभव समझकर मैं उसे मान देता हूँ।—टवीस।

३९ सद्गुणी स्त्री मृत्युलोक में एक स्वर्गीय पुष्प के समान है। यह पुष्प कितना सुन्दर, कितना निर्मल, कितना निष्कलङ्क है!—थेकरे।

४० अपना दुःख किसी दूसरे से न कहकर वह भीतर ही भीतर उससे वेदना पाती है।—वाशिंग्टन अर्व्हिङ्ग।

४१ माता के प्रेम का अभाव और किसीसे पूरा हो सकता है क्या?—वाशिंग्टन अर्व्हिङ्ग।

४२ अनुभव बिना पत्नी का सच्चा मूल्य मालूम नहीं हो सकता।—वाशिंग्टन अर्व्हिङ्ग।

४३ पुरुष के दुःख में दुःख, सुख में सुख, मान में मान, अपमान में अपमान, इज़्ज़त में इज़्ज़त माननेवाली, उसके दुर्गुण छिपानेवाली और उसकी सेवकाई—नहीं नहीं गुलामी—करते हुए अपना स्वत्व भूलनेवाली अगर कोई है तो वह केवल पत्नी ही है।—वाशिंग्टन अर्व्हिङ्ग।

४४ उत्तम गृह ही स्त्री का सच्चा सुख है।—जियरमन।

रामकृष्ण राजवैद्य।

विदेशी भाषा का प्रभाव *

विदेशी भाषा के ज्ञान को प्रायः सभी कहीं आवश्यकता से अधिक आदर दिया जाता है; क्योंकि शिक्षित लोग तक यह समझ लेते हैं कि विदेशी भाषा जाननेवाला बड़ा ही विद्वान् होता

---

* इस लेख में मातृ-भाषा को छोड़कर शेष सब भाषायें 'विदेशी' मानी गई हैं। इस दृष्टि से हिन्दी-भाषियों के लिए संस्कृत तथा भारत की प्रान्तीय भाषायें भी 'विदेशी' हैं।—लेखक

है। लोगों की बहुधा ऐसी धारणा रहती है कि बिना अलौकिक योग्यता के विदेशी भाषा नहीं सीखी जा सकती। कुछ समय पहले तक अँगरेज़ी जाननेवालों को भी लोग ऐसा ही अलौकिक विद्वान् समझा करते थे, पर अब तो साधारण अँगरेज़ी-दाँ मारे मारे फिरते हैं, जिससे उनका आदर बहुत-कुछ घट गया है।

जो अँगरेज़ टूटी-फूटी हिन्दी सीखकर इस भाषा में बातचीत करने लगते हैं वे अपने देश-भाइयों ही में नहीं, वरन भारतवासियों में भी निःसन्देह बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। भारतवासियों ही में जब कोई किसी दूसरे प्रान्त की भाषा सीख लेता या सीख आता है, तब इस विदेशी-भाषा-ज्ञान के कारण उसका आदर बहुत-कुछ बढ़ जाता है। कभी कभी तो इस भाषा के दो चार अटसट शब्द ही साधारण लोगों की समझ में विद्वत्ता के चिह्न समझ लिये जाते हैं और इनका बोलनेवाला भी लोगों की इस प्रवृत्ति के कारण अपने में कुछ अधिक गौरव की कल्पना करने लगता है। जो लोग किसी दूसरे प्रदेश में अधिक काल रहने के कारण अथवा वहाँ जन्म लेने के कारण अपनी भाषा भूलकर शुद्ध विदेशी भाषा अथवा उसकी खिचड़ी बोलने लगते हैं, वे भी अपने इस नये ज्ञान से आनन्द और आदर प्राप्त करते हैं; और अपनी भाषा भूल जाने पर कभी दुखी नहीं होते। सारांश यह है कि अधिकांश लोग विदेशी-भाषा का ज्ञान केवल इसीलिए प्राप्त करते हैं कि उससे उन्हें कुछ लोगों के बीच थोड़ा-बहुत आदर प्राप्त हो।

खेद की बात है कि यह भाव केवल अर्द्ध-शिक्षित लोगों ही में नहीं, किन्तु प्रायः पूर्ण-शिक्षितों में भी पाया जाता है। मासिक-पत्रों के पाठकों को इस बात का अनुभव होगा कि कोई कोई लेखक विदेशी भाषाओं के ऐसे ऐसे अवतरण उद्धृत करते हैं कि पढ़नेवाले चकरा जाते हैं। कोई कोई महाशय तो यहाँ तक धृष्टता कर बैठते हैं कि जिस भाषा का वे एक भी शब्द नहीं जानते उसके बड़े बड़े लेखांशों से अपने लेखों को निधड़क अलङ्कृत कर डालते हैं। ये लोग व्याख्यानों में भी अपूर्णोच्चरित विदेशी शब्दों का निरङ्कुश उपयोग करते हैं और सहज ही उस उपहास के पात्र बनते हैं जिसका उन्हें अपने आत्म-भाव के कारण अनुमान ही नहीं होता। इसी भाव के वशी-भूत होकर लेखक और वक्ता विदेशी लोगों का मत उद्धृत कर कहा करते हैं कि अमुक साहिब का यह मत है। ऐसे ही लोग अपनी रची पुस्तकों के लिए विदेशियों के दिये हुए प्रमाण-पत्र का अधिक आदर करते हैं, और उसे प्राप्त कर लेना अपना अहोभाग्य समझते हैं।

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि भाषा का ज्ञान विषय के ज्ञान से भिन्न होता है और व्यावहारिक दृष्टि से चाहे वह ज्ञान श्रेष्ठ भी हो, पर मानसिक उन्नति के लिए वह दूसरे ज्ञान की समता नहीं कर सकता। भाषा का ज्ञान बहुत-कुछ अभ्यास पर निर्भर है और वे लोग भी जो इस ज्ञान को विशेष व्युत्पत्ति-द्वारा उपार्जित करते हैं इसमें शब्द-जाल के अतिरिक्त और कोई दृढ़ता प्राप्त नहीं कर सकते। इधर साधारण लोग निरे शब्दों के ज्ञान को बहुधा वस्तुओं का ज्ञान मान लेते हैं, क्योंकि शब्द ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष वस्तु के ज्ञान के आवश्यक साधन हैं। ऐसी अवस्था में साध्य और साधन के अर्थ में बड़ा भ्रम हो जाता है।

विदेशी भाषा सीखने के लिए मिथ्या प्रशंसा को छोड़ कई एक योग्य कारण भी होते हैं। ये कारण बहुधा दो प्रकार के हैं—(१) राजनैतिक (२) सामाजिक।

राजनैतिक कारणों में मुख्य कारण विदेशी राज-शासन है। इसके वशीभूत होकर लोगों को कभी कभी इच्छा से और बहुधा विवशता से विदेशी भाषा सीखनी पड़ती है। इस अवस्था का सब से

बुरा परिणाम तो यह होता है कि लोग अपनी भाषा की ओर उदासीन होकर धीरे धीरे उसका तिरस्कार करने लगते हैं और अन्त में उसे भूल जाने में अथवा उसे गँवारी बोली समझने में अपना गौरव मानने लगते हैं। ये लोग अपने को एक अलग जाति समझकर दूसरों को हीन और तुच्छ भी समझने लगते हैं।

राजनैतिक कारणों से विदेशी भाषा सीखने की आवश्यकता भी है, क्योंकि राजा की यथार्थ नीति उसकी भाषा का ज्ञान हुए बिना नहीं जानी जा सकती। आजकल हिन्दुस्थान के लोगों में जो जागृति दिखाई देती है वह अँगरेज़ी भाषा और उसके साहित्य के अध्ययन का फल है। विदेशी शासन में राजकीय बड़े बड़े पदों के लिए भी राज-भाषा का सीखना आवश्यक होता है। इसलिए विदेशी भाषा को सर्वथा त्याज्य समझना बड़ी भारी भूल है। कभी कभी तो केवल विदेशी भाषा का ज्ञान रखनेवाले ही के हाथ से ऐसी ऐसी विदेशी राजनैतिक जटिल समस्यायें हल हो जाती हैं जो बड़े बड़े विद्वानों के द्वारा नहीं हो सकतीं। कई राजनैतिक दूतों ने अपने विदेशी-भाषा-ज्ञान के कारण युद्ध के कई अवसर टाले हैं।

एक भाषा बोलनेवालों में चाहे वह सबकी मातृ-भाषा न हो, परस्पर ऐसी एक आन्तरिक सहानुभूति पाई जाती है जिसमें रङ्ग, रूप, धर्म और रहन-सहन की भिन्नता कोई बाधा नहीं डाल सकती। पादरी लोग विदेशी भाषा के ज्ञान के बल पर ही दूसरे देशों के लोगों से ऐसे हिल-मिल जाते हैं कि इनको अपने मत पर लाने में उन्हें बहुत सरलता हो जाती है। इसलिए धर्म के प्रचार में भी विदेशी भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है।

विदेशी भाषा सीखने के सामाजिक कारणों में मुख्य कारण व्यापार और उदर-पोषण हैं। इन दोनों कारणों के लाभ भी प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। भारत ही में एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त में वहाँ की भाषा के ज्ञान के सहारे व्यापार में बड़ी सफलता प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार दूसरे स्थान में नौकरी करने की इच्छा करनेवालों को उस जगह की भाषा जानने ही से लाभ हो सकता है। हम जहाँ की बोली ही नहीं जानते वहाँ हमारी बात कौन सुनेगा? वहाँ तो हम एक तमाशे की वस्तु बन जायँगे! जो लोग इन दो दृष्टियों से विदेशी भाषा सीखते हैं उनसे बहुधा मातृ-भाषा को कोई हानि नहीं पहुँचती। वे विदेशी भाषा को केवल एक साधन समझते हैं। ‘‘पितृ-भाषा के बिगाड़क’’ तो असल में शिक्षित लोग ही हैं जो अपने अर्द्ध-ज्ञान का प्रदर्शन करना चाहते हैं।

पूर्व लिखित दो प्रकार के कारणों के सिवा कुछ मेधावी लोग विदेशी भाषा को केवल इसी एक मुख्य विचार से सीखते हैं कि हम अपने नये ज्ञान से भाषा-शास्त्र में कुछ आविष्कार कर अपनी मातृ-भाषा की उन्नति और अपने देश-भाइयों का हित करें। इस विचार के लोग शिक्षित होकर भी अपनी भाषा का अनादर नहीं करते, बरन उसे अधिकाधिक आदरणीय बनाते हैं। ऐसे ही लोग विदेशी भाषा सीखने के सच्चे अधिकारी हैं और यही सच्चे आदर के पात्र हैं। हमारी हिन्दी के लिए इसी श्रेणी के सज्जनों की आवश्यकता है। विदेशी-भाषा सीखकर अपनी भाषा भूलनेवाले हम लोगों में बहुत हो गये हैं।

विदेशी-भाषा के ज्ञान के कारण शिक्षित लोगों के द्वारा मातृ-भाषा पर जो बुरे प्रभाव पड़ते हैं उनमें से मुख्य हानिकारक प्रभाव यह है कि ये लोग अपनी भाषा को कुडौल बनाने में नहीं चूकते और उस पर विदेशी शब्दों के शुद्ध उच्चारण और वर्ण-विन्यास का व्यर्थ बोझ लादते हैं। अधिकांश संस्कृतज्ञों की हिन्दी भाषा तो प्रसिद्ध ही है; वे तो ‘जो है सो’ का ही मन्त्र जपा करते हैं। इधर अँगरेज़ी-दाँ लोगों को “आइडिया स्ट्रक होता रहता है।” ये लोग

केवल बोलने ही में नहीं, किन्तु लिखने में भी ऐसी बेढङ्गी रचना करते हैं कि बेचारी मातृ-भाषा इन महानुभावों का हाथ ताकती रहती है कि देखें, श्री क़लम से कैसे शब्द निकलते हैं ! कभी कभी तो ये लोग अनजाने ही, निरे मन्दाभ्यास के कारण इस प्रकार की नष्ट भूलें कर डालते हैं; पर इनमें अधिकांश सज्जन ऐसे हैं जो अपने विदेशी-भाषा-ज्ञान के अभिमान ही में रहकर बेचारी हिन्दी की दुर्दशा करते रहते हैं।

इन निरङ्कुश लेखकों के कारण हमारी भाषा की रचना पर विदेशी भाषाओं का जो प्रभाव पड़ा है उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। सबसे पहले संस्कृत ही के प्रभाव को लीजिए। संस्कृत की हिन्दी टीकाओं में इसके नमूने पाये जाते हैं। मनुस्मृति के एक श्लोक* की टीका का उदाहरण यह है—"उन महात्माओं करिकै उक्त प्रकार से पूछे गये वे सामर्थ्यवाले मनुजी उन सब महर्षियों का सत्कार करिकै यह बोले कि सुनिए"। इसमें अनुवादक ने संस्कृत शब्दों के साथ साथ उसकी रचना का भी अनुवाद कर दिया है। हिन्दी में ऐसी रचना इस अवसर पर स्वाभाविक नहीं जान पड़ती। संस्कृत के ये टीकाकार अपनी पुरानी पण्डिताऊ भाषा के स्वप्न में कदाचित् यह भी न जानते होंगे कि गत पचास वर्षों में हिन्दी की रचना बहुत-कुछ बदल गई है। अब उर्दूवालों को लीजिए। ये लोग हिन्दी लिखते समय मौलवी साहब के इस वाक्य को हमेशा याद रखते हैं कि "कूद पड़ा बीच मकान उसके, साथ आवाज़ धमके"। इनकी बिन्दियाँ बड़ा अन्धेर करती हैं। इस प्रकार के प्रभाव से दबी हुई हिन्दी के दो एक उदाहरण ये हैं—"संसार में अपवित्र वायु के सबब अधिक आदमी मरते हैं बनिस्बत और कुल सबबों के"। "गरम देशों में व्रत रखना किसी क़दर अच्छा है, मगर ज़्यादती हर एक चीज़ की बुरी होती है"। हिन्दी पर बँगला, मराठी और गुजराती का भी प्रभाव पड़ता है; पर वह तुरन्त ही ताड़ लिया जाता है जिससे उसका प्रचार बढ़ने नहीं पाता।

अँगरेज़ी रचना के प्रभाव के उदाहरण हिन्दी में दिन-दिन बढ़ रहे हैं। वाक्य के बीच में विशेषण उपवाक्य का और अन्त में सङ्केतवाचक वाक्य का प्रयोग हिन्दी में एक साधारण रचना हो गई है। इसी प्रकार इकान्त (प्राथमिक, साहित्यिक, आदि) विशेषणों का भी अधिक प्रचार होने लगा है। इनमें कुछ प्रयोग तो आवश्यकता के कारण प्रचलित हुए हैं; पर अन्यान्य विदेशी भाषा के निरे प्रभाव के फल हैं। अँगरेज़ी-रचना के प्रभाव के कई एक दोष नीचे लिखे उदाहरण में हैं—"उसकी मृत्यु के समाचार ने उसके स्वदेश को दुःख की गहराई में डुबो दिया है जिससे निकलने को वह एक लम्बा समय लेगा। उसकी दृढ़ स्वतन्त्रता और चाल-ढाल के गाम्भीर्य्य से, देश-प्रेम के पक्ष के प्रति अटल भक्ति से, उसके हृदय की सहानुभूति और दया से उसने भारतवासियों के आदर और प्रशंसा को प्राप्त किया—एक सौभाग्य जो इन दिनों दूसरों द्वारा कठिनता से उपयोग किया जाता है"। यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की रचनावाली भाषा पचास वर्ष के पूर्व प्रचलित न थी।

समय की गति को कोई नहीं रोक सकता। हिन्दी को जिन विदेशी शब्दों और वाक्यों की आवश्यकता होगी, वह उन्हें कालान्तर में अवश्य ग्रहण करेगी; पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शिक्षित लोग अपनी भाषा में अकारण ही विदेशी शब्दों और रचनाओं की भरमार करने लगें। नये शब्दों और रचनाओं के सच्चे प्रचारक तो अपढ़ लोग हैं और जब इनमें कोई एक शब्द

---

* स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ।
प्रत्युवाचार्च्यं तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥

पूर्णतया प्रचलित हो जाता है तभी उसकी पहुँच शिक्षितों के पास होती है और फिर शिक्षितों को उसे स्वीकार करना पड़ता है। "हवा-गाड़ी" या "मोटर-काट" अशिक्षितों का चलाया शब्द है। इसके विरुद्ध शिक्षित लोग जिन विदेशी शब्दों और रचनाओं का प्रचार करना चाहते हैं वे लोगों के पास तक पहुँचते पहुँचते ही लुप्त हो जाते हैं। आज तक शिक्षितों के द्वारा सैकड़ों प्रकार के अलग अलग पारिभाषिक शब्द बने और अकाल-मृत्यु से मर गये। जो हो, शिक्षितों के द्वारा हमारी भाषा का जो व्यर्थ काया-पलट और अनर्थ हो रहा है उसके विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद करना प्रत्येक हिन्दी-हितैषी का काम है।

कामताप्रसाद गुरु।

परिचय।

(१)

हम सत्य से सटे हैं, प्रण से हटे नहीं;
धन में घटे सही हैं, मन में लटे नहीं।
कायर कदर्य कोई हमको नहीं कहे;
हम भारतीय नर हैं, सबको स्मरण रहे॥

(२)

निज कर्म जान लें जो फिर दुख कभी न हो;
मुख दुष्ट का हमारे सम्मुख कभी न हो।
चाहें न जो हमें हम फिर क्यों उन्हें चहें ?
हम भारतीय गुरु हैं, सबको स्मरण रहे॥

(३)

यदि ऐक्य जोड़ लें हम आलस्य छोड़ दें,
मुख मोड़ लें खलों से प्रतिबन्ध तोड़ दें;
हुङ्कार से हमारे फिर गिरि न क्यों ढहे ?
नरसिंह तो हमीं हैं, सबको स्मरण रहे॥

(४)

क्या हम मनुज नहीं हैं, क्यों क्रीत दास हों ?
जग में हमीं सुखों से कैसे निराश हों ?
अपमान क्यों किसी से संसार में सहें ?
हम मान के धनी हैं, सबको स्मरण रहे॥

(५)

चोटें लगें अनेकों तो भी न क्यों जगें ?
निज पूर्वजों के पथ पर चलने न क्यों लगें ?
कब तक अचेत होकर हम वारि को गहें ?
निःसत्व हम न होंगे, सबको स्मरण रहे॥

(६)

निःस्वार्थ हो परस्पर परमार्थ को करें,
अपकीर्ति से डरें, हम सत्कीर्ति से मरें।
जातीयता-नदी फिर कैसे नहीं बहे ?
एकी अनेक हैं हम, सबको स्मरण रहे॥

रामचरित उपाध्याय

हिन्दी-कौमुदी।

(समालोचना)

हिन्दुस्तान में हिन्दी-भाषी अनेक विद्वान् हैं; पर उन्होंने अपनी भाषा का व्याकरण लिखने की ओर आज तक ध्यान नहीं दिया। इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी में व्याकरण की एक भी ऐसी पुस्तक नहीं है जिसे प्रामाणिक मान सकें, अथवा यथार्थ हिन्दी-व्याकरण कह सकें। हिन्दी-व्याकरण के नाम से जो चार-छः पुस्तकें हम लोगों में प्रचलित हैं वे केवल इस विषय की लाज रखने के लिए ही हैं। ऐसी अवस्था में पं० अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी-प्रणीत हिन्दी-कौमुदी का प्रकाशन हमारी भाषा के इतिहास में एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। यद्यपि यह पुस्तक "लघु" है और हिन्दी होने पर भी बहुत कुछ अँगरेज़ी ढँग से लिखी गई है तोभी इसमें कई उपयोगी नियम और शुद्ध उदाहरण पाये जाते हैं।

हिन्दी-व्याकरण के सम्बन्ध से हिन्दी-भाषी विद्वानों में कई मतामत हैं, पर वे सब दो प्रकार के हैं। एक प्रकार का मत व्याकरण की उपयोगिता के सम्बन्ध में बाह्य रूप से है, और दूसरे प्रकार का आन्तरिक मत है जो व्याकरण के विषयों से सम्बन्ध रखता है। बाह्य-मतावलम्बियों में कोई

कोई यह समझते हैं कि जीती-जागती भाषा का व्याकरण ही क्या ? व्याकरण से तो भाषा की गति ही रुक जाती है, इत्यादि । इसके विरुद्ध इसी वर्ग का दूसरा मत यह है कि जिन कारणों की प्रेरणा से अधिकांश जीवित अथवा मृत भाषाओं के व्याकरण लिखे गये हैं वा लिखे जाते हैं, उन्हीं कारणों के आधार पर हिन्दी-व्याकरण-निर्माण की भी आवश्यकता है । दूसरे प्रकार के (आन्तरिक) मतवाले व्याकरण के विषयों के सम्बन्ध में झगड़ते हैं । कोई कहता है कि हिन्दी-व्याकरण में केवल शब्द-साधन और वाक्य-विन्यास, यही दो विषय रहने चाहिए और कोई यह कहता है कि इसमें वर्ण-विचार भी रहे, छन्दोनिरूपण भी रहे, विराम-चिह्नों के उपयोग के नियम भी रहें और रस, अलङ्कार, कहावतों और मुहाविरों का भी समावेश हो, अर्थात् वे सभी विषय रहें जो भाषा और साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होते हैं । इसी वाद-विवाद में हिन्दी की आयु के बहुत वर्ष बीत गये, पर उसके लेखकों को अपनी भाषा का व्याकरण लिखने का चाव न हुआ । जहां भारतवर्ष की अनेक आर्य-भाषाओं के अच्छे अच्छे प्रामाणिक व्याकरण पाये जाते हैं, वहां हिन्दी में लिखा हुआ, नाम लेने लायक़, हिन्दी का एक भी व्याकरण नहीं है ।

हिन्दी-कौमुदी योग्यता-पूर्वक लिखा गया लघु व्याकरण है ; पर इसमें भी दो-एक प्रकार के मतों की छाया है । लेखक महाशय अपनी भूमिका में लिखते हैं कि...“जो बातें इस पुस्तक में उन्हें (पाठकों को) नयी जँचें और जिन्हें स्वीकार करने को उनका जी न चाहे उनपर यदि वे पूर्व-संस्कारों का त्याग कर विचार करेंगे, तो आशा है कि बहुतसा मत-भेद दूर हो जायगा ।” इसपर हमारा निवेदन है कि पूर्व-संस्कार किसी एक दल की सम्पत्ति नहीं है । आपने भी अपने पूर्व-संस्कारों का उतना त्याग नहीं किया है जितने कि आप दूसरों से आशा करते हैं । यदि ऐसा न होता तो आप अपनी भूमिका के अन्तिम भाग में इस बात की शङ्का क्यों करते कि आपकी भूलें बतानेवाले लोग यथार्थ भूलें बता सकेंगे या नहीं । आपके पूर्व-संस्कारों का परिचय आपकी कृति में भी अनेक स्थानों में है ; जैसे चन्द्रबिन्दु का स्वीकार कर पुस्तक-भर में उसका उपयोग न करना । जो लोग किसी एक विषय का विशेष अध्ययन करते हैं, उनमें पूर्व-संस्कारों का अस्तित्व स्वाभाविक ही है । इनके सम्बन्ध से उनकी चिन्ता करना अथवा उन्हें हीन समझना अनुचित और निरर्थक है ।

हिन्दी का वैयाकरण किसी भी प्रकार के मत का प्रवर्त्तक क्यों न हो, उसे इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि जो कुछ वह लिखे वह स्पष्ट हो और उससे उसके निज के मतों का स्वयं-खण्डन न होवे । जान पड़ता है कि लेखक महाशय ने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया । आप कई स्थानों में कदाचित् भ्रमवश कुछ का कुछ लिख गये हैं । फिर सूत्र-रूप से लक्षण बनाने की चेष्टा में आपके लक्षण भी कई जगह दूषित हो गये हैं । उदाहरण—

(क) कारकों का विवेचन करने में (पृ० ३७) आप केवल छः कारक मानते हैं, क्योंकि (पृ० ३९) “सम्बन्ध और सम्बोधन का सम्बन्ध क्रिया के साथ नहीं होता, इसलिए संस्कृत वैयाकरणों ने इन्हें कारक नहीं माना है ।” फिर आप स्वयं (पृ० ३८) यह भी लिखते हैं कि “दो वस्तुओं में मेल बताने में ‘सम्बन्ध कारक’ का प्रयोग किया जाता है ।” अब एक बार जिसको ‘कारक’ मानना छोड़ दिया उसे फिर कारक कहने की क्या आवश्यकता ? जान पड़ता है, यहां आप ‘विभक्ति’ के बदले कदाचित् भ्रम से ‘कारक’ लिख गये हैं ।

(ख) “कर्म कर्त्तृवाच्य में कर्म ही कर्त्ता हो जाता है और उसमें पहली विभक्ति होती है । कर्म करनेवाला कर्त्ता नहीं बताया जाता और दिखाया जाता है कि काम आपसे आप होता है ; जैसे, भोजन बनता है अर्थात् आप ही बनता है”; इ० (पृ० ४६) । इस नियम को लिखते समय लेखक महाशय ने कर्त्ता शब्द के उस अर्थ का ध्यान नहीं रक्खा जो आपने अन्यत्र (पृ० ३८) लिखा है । वहां आप लिखते हैं कि “किसी काम के करनेवाले को ‘कर्त्ता’ कहते हैं और यहां आप कर्म को कर्त्ता बताते हैं ! वहां आप (पृ० ३८) यह भी लिख चुके हैं कि कर्त्ता का काम ‘कर्म’ कहाता है । तब भोजन बनानेवाला स्वयं भोजन कैसे बन जायगा ! यथार्थ में जो कर्त्ता है सो कर्त्ता और कर्म है सो कर्म ।

कर्त्ता और कर्म के रूप विभक्तियों से भले ही बदल जायँ ; पर एक ही क्रिया में कर्म का कर्त्ता होना सभी जगह एक असम्भव घटना है। व्याकरण में ऐसी पूर्वापरविरुद्ध बातें अनिष्ट हैं।

(ग) सम्बन्ध-सूचक अव्यय (पृ० ८३) शब्दों से सम्बन्ध रखनेवाला बताया गया है और उभयान्वयी अव्यय (पृ० ८४) के विषय में यह कहा गया है कि उसका सम्बन्ध दो शब्दों (वा वाक्यों) के अन्वय से होता है। अब इन दोनों शब्द-भेदों के 'सम्बन्धों' का अन्तर केवल "अन्वय" शब्द के आधार पर निकल सकता है, पर उसका कुछ भी स्पष्टीकरण नहीं किया गया। इसके सिवा लेखक ने सम्बन्ध-सूचक अव्ययों की जो सूची दी है उसमें बिना कारण बताये, कई एक दूसरे प्रकार के शब्द भी सम्मिलित कर दिये हैं। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि सम्बन्ध-सूचक अव्ययों का पृथक् विचार अँगरेज़ी ग्रामर के अनुकरण का फल है।

(घ) "पूर्ण वर्त्तमान बताता है कि काम पूरा हो चुका है ; जैसे, मैं आया हूँ। पूर्ण भूत में कार्य की समाप्ति हो जाती है ; जैसे, मोहन ने पोथी पढ़ी थी" (पृ०४३)। इन दोनों लक्षणों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता, यद्यपि दोनों में कालों का बहुत भेद है।

(ङ) "किसी वस्तु के गुण, दोष, परिमाण, अवस्था और संख्या को विशेषण कहते हैं ; जैसे, काला घोड़ा, बुरा आदमी, दूना भोजन", इ० (पृ० १५)। "गुणवाचक संज्ञा उसे कहते हैं जिसमें किसी प्रकार का गुण पाया जाय; जैसे, मिठाई, खटाई आदि।" (पृ० १७) "जिस संज्ञा में किसी वस्तु के गुण वा दोष वा क्रिया का भाव पाया जाय, वह भाववाचक संज्ञा कहाती है ; जैसे, लड़कपन, मिठास, हँसी आदि" (पृ० १८)। इन तीनों लक्षणों में गुण वा दोष की स्थिति प्रधान है। अब यदि 'मिठास' गुण है तो उसे लेखक के लक्षण के अनुसार विशेषण ही क्यों न कहें, क्योंकि आप एक जगह गुण को विशेषण, दूसरी जगह गुणवाचक संज्ञा और तीसरी जगह भाववाचक संज्ञा बताते हैं! आपके लक्षणों से यह भी तो स्पष्ट नहीं जाना जाता कि आप स्वयं गुण को विशेषण कह रहे हैं अथवा गुण-द्योतक 'गुण' शब्द को। इन तीनों लक्षणों में किसी भी लक्ष्य पद का असाधारण धर्म सूचित ही नहीं होता। एक का लक्षण दूसरे में सहज ही घटित हो जाता है। यह अतिव्याप्ति दोष है। जान पड़ता है कि पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करने की उतावली में स्पष्टता की ओर ग्रन्थकार की विशेष प्रवृत्ति नहीं रही।

इस पुस्तक में बहुधा मोटे मोटे नियम दिये गये हैं। इससे इनके अपवादों को बहुत कम स्थान मिला है। उदाहरणार्थ, लिङ्ग-विवेचन में (पृ० २४) कहा गया है कि "अप्राणिवाचक आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों में इया प्रत्यय लगाकर स्त्री-लिङ्ग बनाते हैं; जैसे, लोटा + इया = लोटिया सोंटा + इया = सोंटिया।" पर बुढ़िया, बिटिया, बछिया, कुतिया, आदि प्राणिवाचक संज्ञाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है। और न डिबिया, पुड़िया, फुड़िया, डलिया आदि दूसरे अप्राणिवाचक शब्दों ही का विवेचन है। इयान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के जो एक-से दो उदाहरण लेखक ने दिये हैं उनसे तो यह भ्रम हो सकता है कि इया प्रत्यय आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों में नहीं, किन्तु टाकारान्त शब्दों में लगता है! आपको चाहिए था कि लोटा और सोंटा के सिवा और भी दो एक आकारान्त शब्दों के उदाहरण दे देते; जैसे लोढ़ा, गट्ठा, थैला। यथार्थ में इयान्त अप्राणिवाचक शब्द ऊनवाचक संज्ञाओं के उदाहरण हैं और लेखक ने भी इसका विचार तद्धित-प्रकरण में (पृ० ६१) किया है। पर वहाँ केवल 'सोंटा' का उदाहरण है; 'लोटा' के बदले वहाँ 'खाट' आ गई है। यहाँ यह भी प्रश्न है कि शुद्ध शब्द 'लोटिया' है या 'लुटिया'? प्रामाणिक कोषकार केवल पिछला शब्द शुद्ध मानते हैं। अपवादों के अभाव के अनेक उदाहरणों में एक और उदाहरण यह है कि यौगिक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने के नियम में (पृ० १२४) लेखक ने यह नहीं बताया कि "देखा करना", "रो देना", आदि यौगिक क्रियाओं का कर्मवाच्य होता है या नहीं। यौगिक क्रियाओं के कर्मवाच्य के नियम में ऊपर लिखी दोनों क्रियाएँ अपवाद हैं ; पर आपने जो नियम लिखा है उससे अपवाद की गन्ध तक नहीं आती। हिन्दी व्याकरण में ऐसे निरपवाद नियम भाग्य से क्वचित् ही होंगे। यहाँ तो अधिकांश नियम "प्रायः" और "बहुधा" से

आरम्भ होते हैं। जहाँ स्वयं लेखक ने "प्रायः" शब्द लिखा है वहाँ भी (पृ० २६) आपने अपवाद बताने की आवश्यकता नहीं समझी ! अस्तु ।

लेखक महाशय ने अपनी भूमिका में कोई दस-बारह ऐसे विषयों की सूची दी है जिनमें आपके कथनानुसार नयापन है । आप स्त्रीलिङ्ग से पुल्लिङ्ग बनाने के अपने कुछ नियमों के विषय में कहते हैं कि ऐसे नियम "किसी भाषा के व्याकरण में आज तक नहीं देखे गये" । पर आप कदाचित् यह भूल गये कि साहित्य-सम्मेलन ने ऐसे नियमों का प्रचार पहले ही कर दिया था । इन नयेपनवाले विषयों में हिन्दी की सन्धि भी है, और हम यहाँ केवल इसी पर कुछ विचार करते हैं, क्योंकि लेखक महाशय इस विषय को अपना एक विशेष आविष्कार मानते हैं ।

अच्छा, तो अब सन्धि किसे कहते हैं, यह पहले देखना चाहिए । लेखक महाशय का कहना है कि "दो अक्षरों के मेल को सन्धि कहते हैं" (पृ० ११) । पर यह तो सन्धि का केवल अर्थ हुआ और इस अर्थ में क्ख, ग्घ, आदि व्यंजनों के संयोग का भी समावेश होता है । सन्धि का शास्त्रीय लक्षण यह है—दो वर्णों के पास पास आने के कारण उनके मेल से जो विकृति होती है उसे सन्धि कहते हैं । सन्धि का यह लक्षण व्यापक है और कौमुदीकार का वर्णन (जो लक्षण नहीं कहा जा सकता) केवल दस-पाँच उदाहरणों में घटित होता है। उदाहरणार्थ, आपका एक नियम यह है कि "जब किसी शब्द के अन्त में ब हो और उसके बाद "ही" आवे, तो ब के अ का लोप हो जायगा और ब् + ही मिलकर "भी" हो जायगी; जैसे, अब + ही = अब् + ही = अभी, जब + ही = जब् + ही = जभी", इ० (पृ० १३) । यह नियम सार्वत्रिक नहीं है । यदि हम कहें कि "यह गट्ठा दब ही नहीं सकता", तो इस वाक्य में "दब + ही" मिलकर "दभी" नहीं हो सकता । तब फिर हिन्दी की सन्धि के विज्ञापन में यह नियम रखने से क्या लाभ हुआ ? यथार्थ में जिन थोड़े से उदाहरणों पर आपने एक सङ्कुचित नियम को व्यापक बताने का प्रयास किया है वह तद्धित से सम्बन्ध रखता है और थोड़े से प्रत्ययों की योजना में चरितार्थ होता है । इस विषय को इतना बाहरी महत्त्व देकर आविष्कार के रूप में अलग लिखने की कोई आवश्यकता न थी; इसके नियम यथा-स्थान बता दिये जा सकते थे । यह बात नहीं है कि पूर्व-वैयाकरणों ने इस विषय पर ध्यान नहीं दिया, पर उन्होंने इसे एक प्रकार का आविष्कार नहीं माना । जो लोग कहते हैं कि हिन्दी में सन्धि नहीं है वे बहुत ठीक कहते हैं; क्योंकि वे सन्धि का शास्त्रीय अर्थ लेते हैं । यही बात गुजराती और मराठी के वैयाकरण भी अपनी अपनी भाषाओं के सम्बन्ध में बताते हैं । लेखक ने अपने नियम में "ही" को कामाओं के भीतर रखकर कदाचित् यह बताने की चेष्टा की है कि वह स्वतन्त्र शब्द है, "हीन" अथवा "हीरा" का आद्य अक्षर नहीं है, नहीं तो सब + हीरे मिलकर "सभीरे" हो जाता । इसके बाद "भी" को भी आपने कामाओं से घेर दिया है जिससे यह ध्वनित होता है कि "भी" शब्द (अव्यय) इसी नियम के अनुसार बना है और अभी, कभी, जभी आदि में जो "भी" है वह भी "भी" अव्यय है ! इस लिपि से आपके विराम-चिह्नों के उपयोग की प्रणाली का कुछ परिचय मिल जाता है ।

इस पुस्तक की पूरी समालोचना लिखने के लिए बहुत स्थान और काल की आवश्यकता है; क्योंकि इसके प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर बहुत कुछ खण्डन-मण्डन लिखा जा सकता है । इसलिए अब हम यहाँ, संक्षेप में, केवल इसके गुणों का उल्लेख करते हैं ।

आज तक के छपे हुए हिन्दी लिखित हिन्दी-व्याकरणों में यह पुस्तक अधिक प्रामाणिक और विचार-पूर्ण है । प्रायः प्रत्येक विषय क्रम-पूर्वक और संक्षेप में लिखा गया है और लेखक ने यथा-शक्ति बहुत कुछ खोज की है । नियमों को समझाने के लिए जो उदाहरण दिये गये हैं वे बहुधा उपयुक्त और शुद्ध हैं । पुस्तक का सब से प्रधान गुण भाषा की सरलता है । नौसिखुओं के लिए यह पुस्तक उपयोगी हो सकती है ।

पुस्तक की छपाई और बँधाई अच्छी है । आकार मँझोला और पृष्ठ-संख्या । + १४४ है । मूल्य ॥=) कुछ अधिक मालूम होता है ।

छापे की भूलों के लिए लगभग दो पृष्ठ का एक शुद्धि-पत्र है; पर पुस्तक में और भी इसी प्रकार की कुछ भूलें रह गई हैं । एक दो भूलें शुद्धिपत्र ही में हैं ।

पुस्तक के प्रकाशक, श्रीयुत प्रतापनारायण वाजपेयी, (३० बासाधोबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता) हैं श्रौर उन्हींके पास से यह पुस्तक मिलती है।

देवदत्त शर्मा।

अमरीका में क्रिस्मस।

आज हमें इस देश में आये एक मास से पांच दिन अधिक हो गये। अभी तक हम न्यूयार्क ही में पड़े रहे। इस छोटे से वृत्तान्त में मैं न्यूयार्क नगर का विस्तृत दृश्य श्रौर विवरण लेख बढ़ जाने के भय से नहीं देना चाहता; किन्तु उसका दिग्दर्शन मात्र अवश्य कराना चाहता हूँ। यह नगर हडसन नदी के तट पर अमरीका के पूर्व अटलाण्टिक महासागर के निकट वर्तमान है। योरप के यात्री प्रायः यहीं आकर उतरते हैं। जिस समय जहाज़ सागर को छोड़ हडसन नदी में प्रवेश करता है, यात्री-समूह जो जहाज़ की छत पर नगर देखने के निमित्त एकत्र होते हैं, उनके नेत्रों को शीतल करने के लिए उन्हें एक विशाल भीमकाय मूर्त्ति का दर्शन होता है, जो अपनी दक्षिण भुजा उठाये उसमें एक विशाल मशाल लिये हुए मानों यात्रियों को प्रकाश प्रदान करती हुई अपनी ओर बुलाती है। पूछने से ज्ञात होता है कि यह विशाल मूर्त्ति पवित्र स्वतन्त्रता देवी की मूर्त्ति (Statue of Liberty) है।

यह मूर्त्ति इस संसार में सबसे बड़ी मूर्त्ति कही जाती है। यह फ़्रांस देश-निवासी विख्यात मूर्त्ति-निर्माता अगस्त बरथालडी (Auguste Bartholdi) की विचार-शक्ति का फल-स्वरूप है जिसे फ़्रांस देश के पञ्चायती राज्य ने अमेरिका के पञ्चायती राज्य को स्नेहाञ्जलि-स्वरूप सन् १७७६ में भेंट किया था। इस मूर्त्ति की उँचाई पैर से सिर तक १११ फुट है। यह इस्पात के ढांचे पर ताम्रपत्र जड़कर बनी है। इसके भीतर ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियां लगी हैं। स्वतन्त्रता के उपासकों का हृदय इस मूर्त्ति को देख गद्गद हो जाता है श्रौर अपने इष्टदेवता को देख उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु निकल पड़ते हैं।

उपर्युक्त मूर्त्ति के अतिरिक्त जो अन्य पदार्थ यात्रि को प्रथम देख पड़ते हैं उनमें सीधे आकाश में चली जा वाली इमारतें हैं। इनमें से सब से ऊँची दो इमारतें ये हैं- ७९३ .फुट ऊँची मंज़िल "उलवर्थ हवेली" (Wo worth Building) श्रौर ६१२ .फुट ऊँची मंज़िल "सिं का कारख़ाना" (Singer Building)। इनमें से पूर्वो हवेली संसार की सब हवेलियों से ऊँची है।

अमरीका के प्रधान नगरों की प्रधानता ऊँची ऊँ इमारतों में ही है। इस अंश में यह देश योरप से बढ़ चढ़ा है। न्यूयार्क की प्रधानता भी इसी कारण से है। य नगर लम्बान-चौड़ान में संसार के सब नगरों से विस्तृत है जन-संख्या के अनुसार केवल एक ही नगर श्रौर है जो इस बाजी जीत जाता है। यहां चौड़ी चौड़ी साफ़-सुथरी सड़ हैं श्रौर नवीन होने के कारण बड़े अच्छे ढङ्ग से बनी है समस्त नगर चौपड़ की भांति बना हुआ है। नगर के ब में इतने ही से सन्तोष कर अब हम अपने मुख्य विषय ओर ध्यान देते हैं।

जिस प्रकार अपने देश में कृष्ण-जन्माष्टमी के काली काली घटायें न छाई हों, बिजली की घनघोर यदि हृदय न कांपता हो, श्रौर मूसलाधार वर्षा न होत हो, तो जन्माष्टमी की छटा श्रौर शोभा फीकी ही रहत है, उसी प्रकार यीशु ख्रीष्ट की जन्माष्टमी के पूर्व यदि हिम न गिरे श्रौर रास्ते, चौराहे, खेत, बाग़, घर, मैदान—सार सृष्टि बरफ़ से न ढकी हो, तो यहां का क्रिस्मस फीका ह समझा जाता है। इस वर्ष यहां का क्रिस्मस फीका नहीं था। २४ तारीख़ के प्रातःकाल से ही आकाश से रुई गिरने लगी। बर्फ़ आकाश से धुनी हुई रुई के रूप में गिरती है श्रौर बूके हुए सेंधे नमक के समान कई दिनों तक सड़कों पर पड़ी रहती है; वह प्रायः गलती नहीं। देखते देखत तीन चार घण्टों में सारी जगह श्वेत हो गई। अहा! कैस सुहावना श्वेत स्वरूप था, मानों महात्मा ख्रीष्ट की जन्म गांठ मनाने के लिए प्रकृति सुन्दर धोये हुए नैनसुख क साड़ी पहिनकर निकली हो! सड़कें, पटरियां, मका की सीढ़ियां, छतें, नीरस पत्र-हीन वृक्ष, मैदान, बाग़, बग़ी छोटे ताल, तलैयां, स्रोत तथा हडसन नदी के बाग़ हिम से भर गये थे। सरोवरों ने तो हिम के भय से अप